DHAR 90

रामेश्वर टांटिया समग्र

सपादन— विश्वनाथ मुखर्जी

प्रचारक ग्रंथावली परियोजना
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पिशाचमोचन, वाराणसी-२०१०१०

पो०ब० ११०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१०१० के लिए विजयप्रकाश बेरी द्वारा प्रकाशित तथा मोनार्क इण्डस्ट्रीज जौनपुर मे मुद्रित

मूल्य ५०.००

प्रचारक ग्रंथावली योजना — ६

प्रकाशन तिथि - अप्रैल, १९९०

रामेश्वर टांटिया समग्र

RAMESHWER TANTIA SAMAGRA

COLLECTED WORKS OF RAMESHWER TANTIA

EDITED BY VISWANATH MUKHERJEE

प्रकाशकीय

श्री रामेश्वर टाटिया की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे केवल प्रसिद्ध उद्योगपति ही नहीं, बल्कि कुशल प्रशासक, मिलनसार और उदार प्रवृत्ति के थे। वैभवशाली होते हुए भी सरलता की प्रतिमूर्ति थे। अपने समकालीन गांधीवादी मित्रों के कारण उन्होंने 'भारत छोडो' आन्दोलन मे भाग लिया। सर्वश्री मातृका प्रसाद कोइराला, जयप्रकाश नारायण जैसे नेताओ के सम्पर्क मे आने के कारण उनकी राजनीति मे दिलचस्पी बढी। प० जवाहरलाल नेहरु, लालबहादुर शास्त्री, मोरारजी देसाई से लेकर इन्दिरा गाधी तक के निकट आये।

आप सीकर से लोकसभा के दो बार सदस्य बने। काग्रेस ससदीय दल के कोपाध्यक्ष के अलावा कलकत्ता की मारवाडी रिलीफ सोसायटी के प्रधान मत्री रहे। राजस्थान तथा बिहार के अकाल के समय तथा उत्तर प्रदेश के बाढ-पीडितो की सहायता तन-मन-धन से करते रहे। आपने अपने गृह-नगर सरदार शहर एव कलकत्ता मे बच्चो के लिए हाई स्कूल स्थापित किया। इसके अलावा अन्य सेवा कार्यो को करते हुए आपने टाटिया वश का मुख उज्जवल किया।

कानपुर मे जब आप ब्रिटिश इडिया कारपोरेशन के प्रबध-निदेशक नियुक्त हुए, तब साहित्य के प्रति आपकी गहरी दिलचस्पी बढी। इसके पूर्व आप छिटफुट लिखते रहे। कानपुर के प्रवासकाल मे आप नगर महापालिका के मेयर बने। इसी बीच आपने सर्वश्री सीमान्त गांधी अब्दुल गफ्फार खा, चन्द्रभानु गुप्त, सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर आदि लोगो को सम्मानित किया। तीन बार विश्व भ्रमण करने का लाभ उन्होंने अच्छी तरह उठाया। इसका प्रमाण है—विश्वयात्रा के सस्मरण।

टाटियाजी की कहानियो मे एक विशेषता यह है कि इनकी कहानिया पुरुष, नारी और बालक समान रुप से पढ सकते है। सरल भाषा और ज्ञानवर्द्धक होने के कारण प्रत्येक कहानी पाठको पर एक छाप छोडती है।

आपकी आत्मकथा—'मेरा गॉव-मेरा बचपन' सस्मरण-साहित्य की अमूल्य निधि है। राजस्थान के जन-जीवन का एक आइना है। राजस्थानी किस प्रकार कष्ट सहते हुए अपने जीवन को उन्नत बनाते है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण—'मेरा सघर्ष . मेरे कलकत्ता' मे देखा जा सकता है।

भारतेन्दु समग्र, बकिम समग्र, देवकीनन्दन समग्र, शरत् समग्र, वृन्दावनलाल वर्मा समग्र के पश्चात् आज हिन्दी के पाठको के सम्मुख रामेश्वर टाटिया समग्र रखने मे हर्ष का अनुभव हो रहा है। जिस प्रकार पाठको ने हमारे अन्य समग्रो का स्वागत किया है, आशा करते हैं कि उसी प्रकार रामेश्वर टाटिया समग्र का स्वागत होगा।

इसी प्रकार पाठकों का सहयोग प्राप्त होता रहा, तो हम हिन्दी पुस्तके-काफी महेंगी है, इस शिकायत को दूर करने मे सहायक होगे।

प्रकाशक

विषय सूची

(इतिहास के निर्झर)

अपनी बात

सार्वजनिक और व्यावसायिक जीवन मे देश-विदेश घूमने के अनेक सुयोग मिले। जन-जीवन के निकट आ सका और बहुत-कुछ देखा, सुना और समझने की कोशिश की।

अनुभव हुआ, मानवीय चेतना का उद्‌बोधन् सस्कारो पर निर्भर है न कि धन-वैभव अथवा पाडित्य-विद्वत्ता पर। शायद, इसीलिये भारतीय सस्कृति मे आत्मशुद्धि, अपरिग्रह और सयम पर अधिक बल दिया गया है। प्रकृत शिक्षा, वस्तुत वही है जो सस्कारो को परिमार्जित कर मनुष्य को ऊपर उठाती है। इस प्रकार, स्वत ही लोक-कल्याण सहज सभव हो जाता है।

अपने पर्यटन-काल मे समय-समय पर बहुत से ऐसे ही आदर्शो को व्यक्तिगत रूप से जान पाया, कुछेक के बारे मे सुना भी। अनकहे-अनजाने और प्रचार-प्रसार से विरत इन विभूतियो से प्रभावित हुआ।

पिछले दस वर्षो मे देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे इन पर लिखता रहा हूँ। मित्रो को अच्छी लगी। सुझाव मिले कि कथाओ का सकलन प्रकाशित हो। कुछ अशो तक समय का अभाव एव कुछ सीमा तक, साहित्यकार न होने के कारण मेरी हिचक बाधक रही।

प्रस्तुत सकलन मे कथाओ के अलावा निजी अनुभव भी है, जिन्हे यथावत् रखने का प्रयास किया गया है। औचित्य की दृष्टि से पात्र और स्थान के नाम मे परिवर्त्तन किये गये है किन्तु घटनाए और तथ्य वास्तविक है।

मा-भारती को यह छोटा-सा अर्घ्य भेट।

स्नेह सूत्र

बात शायद बीसवी शताब्दी के शुरू की है। राजस्थान के किसी कस्बे मे राधेश्याम और रामस्वरूप दो सगे भाई थे। सम्पन्न परिवार था। व्यापार और धन-दौलत के अतिरिक्त दो-तीन गावो की जमीदारी थी। जमीदारी और व्यापार के सब काम को छोटा भाई राधेश्याम सँभालता था। बडे भाई के जिम्मे गॉव की पच-पचायती, अपना धर्मादा खाते का काम और परिवार वाले तथा पडोसियो की विभिन्न समस्याओ का समाधान करना था। दोनो भाइयो के प्रेम को देख कर लोग उन्हे राम-लक्ष्मण की जोडी बताते थे। उन दोनो के बीच मे रामस्वरूप के केवल एक ३ वर्ष का लडका था। बच्चा अधिकतर अपनी चाची के ही पास रहता था। रात मे भी उसी के साथ सोता था। कभी-कदाच उसकी माँ ले लेती तो जोर-जोर से रोने लग जाता था। वह हस कर कहती—'छोटी बहू, तुमने किशन पर टोना कर दिया है'।

वास्तव मे, वह टोनो का युग था। राधेश्याम की पत्नी सन्तान प्राप्ति के लिए नाना प्रकार के जप-तप, देवी-देवताओ की पूजा आदि करती थी।

एक बार बालक किशन बीमार पडा। लगातार ज्वर रहने मे बहुत दुबला हो गया। वैद्य-डाक्टरो के अनेक उपचारो के बावजूद बीमारी बढती गई। पडोस की एक महिला ने बडी बहू के मन मे विश्वास जमा दिया कि तुम्हारी देवरानी बाँझ है इसलिए उसने बच्चे पर टोना कर दिया है। वैसे वह देवरानी को बहुत प्यार करती थी। दोनो की आयु मे पर्याप्त अन्तर था। वही अपनी पसन्द से उसे घर की बहू बनाकर लायी थी। परन्तु दुर्भाग्य से उस दिन इस अनहोनी बात को उसने सच मान लिया।

पत्नी की बात मे आकर रामस्वरूप ने दूसरे दिन छोटे भाई को बुला कर बहुत बुरा-भला कहा। क्रोध मे मनुष्य की मति मारी जाती है। उसने यहाँ तक कह दिया कि तुम पति-पत्नी चाहते हो कि बच्चा न रहे तो सारी सम्पत्ति तुम्हे मिल जाए।

राधेश्याम बडे भाई को पिता-तुल्य मानता था। कभी उसके सामने सिर उठा कर बात भी नही की थी। इस प्रकार अप्रत्याशित रूप से ऐसा लाछन सुन सुबक-सुबक कर रोने लगा। कहने लगा कि भैय्या जी, इतना बडा कलक लेकर अब हम किस मुह से यहाँ रह सकेगे? थोडी देर बाद स्वस्थ होकर बडे भाई के पैरो मे गिर कर का̤ कि हम आज ही नगर छोड कर गॉव के घर मे चले जायेंगे। मुन्ना जितना आपको प्यारा है, उससे कम हम लोगो को नही। उसकी चाची तो उसके बिना एक घडी भी नही रह सकती। हमारे भाग्य फूट गये कि आपके मन मे इस प्रकार के विचार आये। आपके चरणो की सौगन्ध खा कर कहता हूँ कि आगे आप हमे कभी इस घर की देहली पर नही पायेंगे।

अपना जन्मस्थान सभी को प्यारा होता है। अगर चाहता तो राधेश्याम घर का आधा हिस्सा लेकर वही रह सकता था। परन्तु उसको किसी प्रकार भी यह स्वीकार नही था कि उसके कारण से परिवार का अनिष्ट हो। विदा के समय पति-पत्नी दोनो ने भाभी-भैय्या के पैर छुए, परन्तु बहुत मन होने पर भी कमरे मे जाकर बीमार बच्चे के सिर पर हाथ नही फेर

सके ।

उनके जाने के बाद रामस्वरूप गुमसुम सा रहने लगा । कुछ इस प्रकार का मानसिक कष्ट हुआ कि उसने खाट पकड ली । थोडे दिनो बाद बच्चा भला-चंगा हो गया परन्तु वह दिन पर दिन सूखने लगा । उसको लगातार ज्वर रहने लगा । उस समय तक क्षय-रोग का निदान नही था ।

पत्नी से बीमारी का कारण छिपा नहीं था । परन्तु सकोचवश गॉव जाकर देवर-देवरानी को मना कर लाने का साहस नही हुआ । उधर आरम्भ मे तो राधेश्याम लोगो द्वारा बडे भाई की बीमारी के समाचार मंगवाता रहा परन्तु जब नही रहा गया तो गॉव से आकर हवेली के बाहर बैठ जाता और वैद्य-डाक्टरो से पूछ-ताछ कर चिकित्सा की व्यवस्था करता रहता । सौगन्ध खाई हुई थी, इसलिए बहुत इच्छा होते हुए भी घर मे जाकर अन्तिम घडी मे भी भाई की सेवा नही कर सका । चलावे मृतक के क्रियाकर्म) के सारे कामो के लिए पति-पत्नी पास के एक घर मे आकर ठहर गए । बारह गॉवो के गरीबो को भोजन कराया गया । काशी के पण्डितो को श्राद्ध-कर्म के लिए बुलाया । इतना बडा आयोजन आज तक इस कस्बे मे कभी नही हुआ था । तेरहवे दिन पूरी बिरादरी को न्योता गया और चौदहवे दिन वे पुन अपने गॉव चले गए ।

समय बीतता गया; किशन का बडी धूम-धाम से विवाह हुआ । उसकी मॉ बीमार रहने लगी थी । इसलिए चाचा-चाची ने दिन-रात परिश्रम करके सारे नेगचार बडी अच्छी तरह से निपटाए ।

राजस्थान मे नई बहू से पैर-छुआई और उसकी मुह-दिखाई का नेगचार होता है । परिवार के और पास-पडोस के लोग उसके घर आकर कुछ-न-कुछ भेट देते है ।

जब वह पडोस के घर मे चाची जी के पैर छूने को गई तो उन्होने सन्दूक मे से एक डिब्बा निकाला और अपना सारा गहना जो उन्हे विवाह के समय मिला था—बहू को पहना दिया । कहा कि इस शुभ दिन के लिए मैंने भगवान से न जाने कितनी मनौतियॉं मानीं और कितने व्रत-उपवास किए । उन्होने मेरी लाज रख ली, मेरा कलक मिट गया । पितरों के आशीर्वाद से मेरा किशन फले-फूले और तुम सदा सुहागिन रहो । दूधो नहाओ और पूतो फलो । इसके बाद उसका गला भर आया । शुभ घडी मे ऑसुओ से कही अमगल न हो जाए इसलिए शीघ्र ही भीतर के कमरे मे चली गई ।
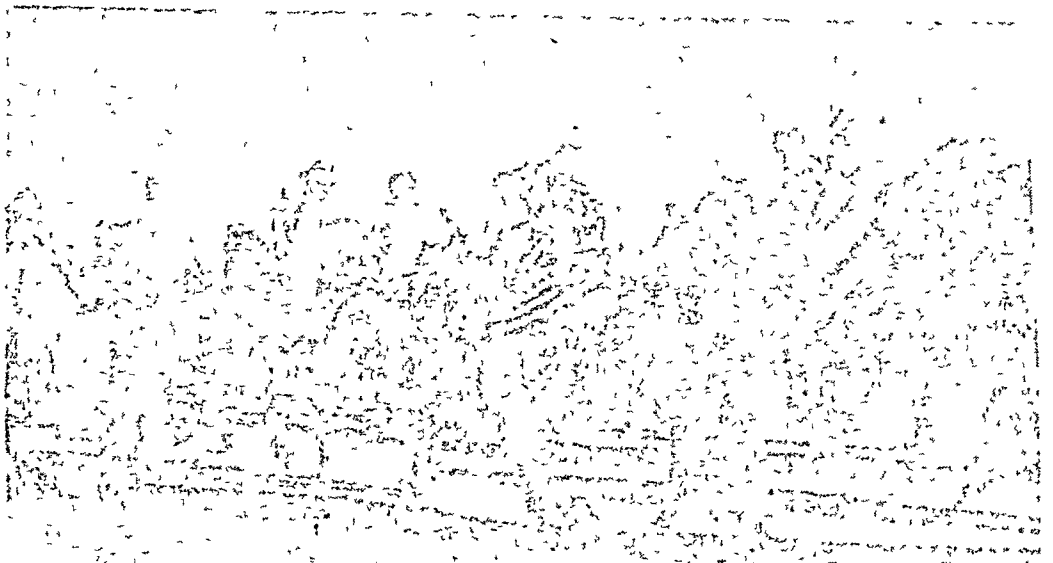
पिता का कर्ज

राजस्थान मे चुरू एक पुराना कस्बा है। आज से सवा-सौ, डेढ सौ-वर्ष पहले यहाँ एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार रहता था जिसका मालवा मे बडे पैमाने पर व्यापार था। जब अफीम को लेकर ब्रिटेन और चीन का युद्ध हुआ तो इनको घाटा लग गया, काम बन्द हो गया और देनदारी रह गई।

इसके बाद परिवार के स्वामी सेठ उजागरमल को घर के बाहर निकलते कभी नही देखा गया। कभी-कदाच कोई आदमी उनसे मिलने भी गया तो उनका चेहरा नही देख पाया, क्योकि वे अपना मुह चद्दर से ढके रहते थे। इसी शोक मे उनका छोटी उम्र मे ही देहान्त हो गया। परिवार मे उनकी विधवा पत्नी और तेरह वर्ष का पुत्र, रामदयाल रह गए।

गहने और जमीन-जायदाद बेचकर उजागरमल ने अपना बहुत-सा कर्ज़ तो चुका दिया था, फिर भी मरते समय कुछ कर्ज बाकी रह गया था। अन्तिम समय मे उन्होने पत्नी और पुत्र रामदयाल को एक काग़ज दिया जिस पर कर्ज़दारो के नाम और रकमे लिखी थीं। पुत्र को उनका अन्तिम आदेश था कि मेरी आत्मा को तभी शान्ति मिल पायेगी, जब किसी दिन तुम यह सारा कर्ज ब्याज समेत चुका दोगे।

दो वर्ष बाद रामदयाल का विवाह हुआ। इस मौके पर विधवा माँ ने थोडा-बहुत कर्ज़ लेकर पूरी बिरादरी को न्यौता दिया। बहू की अगवानी के समय किसी ने ताना कस दिया कि बाप का कर्जा तो चुका ही नही ओर विवाह मे इतनी धूमधाम है! किशोर रामदयाल को यह बात चुभ गई और विवाह के कगन-डोरे खुल भी नही पाए थे कि उसने सुदूरपूर्व असम जाने का निश्चय कर लिया। माँ और पडोसियो ने रामदयाल को बहुत समझाया कि कुछ दिन ठहर जाओ और थोडे बडे हो जाने पर चले जाना, पर उसने किसी की भी न सुनी और रोती बिलखती माँ और बालिका बहू को छोडकर, कुछ लोगों के साथ जो पूरब की यात्रा पर जा रहे थे, वह भी चल पडा।

उस समय असम की यात्रा मे तीन-चार महीने लग जाते थे। रेल कलकत्ते से कानपुर तक ही बनी थी। राजस्थान से कानपुर जाने मे २५-३० दिन लगते थे। कलकत्ता से नौका मे बैठकर असम जाने मे भी डेढ-दो महीने लग जाते थे। रास्ते मे पद्मा नदी पडती थी जिसके तेज बहाव मे कभी-कभी नौकाएँ डूब जाती थी। इसके सिवाय जल-दस्युओ का भी डर बना रहता था, इसलिए कई आदमी एक साथ मिलकर और पूरा बन्दोबस्त कर असम-यात्रा पर जाते थे। एक बार जाकर लोग ८-१० वर्ष की मुसाफिरी करके लौटते थे। रास्ते इतने सकटमय थे कि बहुत-से लोग तो वापस ही नही आ पाते थे। यात्रा के समय रामदयाल के पास सबल स्वरूप एक धोती, एक लोटा और कुछ चना-चबैना था और दृढ विश्वास एव साहस।

असम की आबहवा बहुत ही नम रहने के कारण वहाँ मलेरिया और काला-ज्वर का प्रकोप बना रहता था पर व्यापार मे गुजाइश थी, इसलिए लोग पानी की जगह चाय पीकर

रहते थे। बुखार हो जाने पर दवाइयाँ खाते। कुनैन का तो उस समय तक आविष्कार ही नही हुआ था।

रामदयाल को राजस्थान से तिनसुकिया (असम) पहुँचने मे चार महीने लग गए। वहाँ जाकर उसने कपडे की फेरी का काम शुरू किया। सुबह कन्धे पर कपडे लादकर गावो मे निकलता और शाम को एक या दो रूपये कमाकर अपने डेरे पर वापस आ जाता।

इस समय तक वहाँ मारवाडियो की कुछ दूकानें हो गई थी और यह आम-रिवाज था कि नया आया हुआ कोई भी व्यक्ति निस्सकोच उनके बासे मे खाना खा सकता था। जब अच्छी कमाई होने लगती तब अपनी अलग व्यवस्था कर लेता। इसके सिवाय पहले से बसे हुए मारवाडियो से व्यापार मे भी वाजिब सहायता और प्रोत्साहन मिलता रहता था। रामदयाल को इनका पूरा सहयोग मिला।

कडी मेहनत और ईमानदारी से दस वर्षो मे उसने इतना धन कमा लिया जिससे वह अपने पिता का पूरा कर्ज़ ब्याज सहित चुका सका। वर्ष में एक-दो बार किसी पडोसी से लिखाया हुआ माँ का पत्र मिल जाता, जिसमे देश आने का तक़ाजा रहता था। उन दिनो बेचारी पत्नी पति को पत्र देने का साहस ही नही कर सकती थी।

इसी प्रकार ६-७ वर्ष और व्यतीत हो गए। इस बीच मे रामदयाल के पास ४०-५० हजार की पूजी हो गयी और अपनी निज की दूकान भी। एक दिन अचानक ही पत्र मिला कि उसकी माँ सख्त बीमार है और अन्तिम समय मे उसको देखना चाहती है।

अपनी दूकान की सारी व्यवस्था मुनीमो को सौपकर वह देश के लिए रवाना हुआ और जैसे आया था, उसी प्रकार तीन महीने मे भिवानी पहुँचा इस समय तक रेल कानपुर से भिवानी तक बन गयी थी। असम जाते वक्त तो रुपयो के अभाव मे रामदयाल अपने घर (राजस्थान) से पैदल ही कानपुर तक आया था, पर अब उसकी स्थिति अच्छी हो गयी थी, इसलिए भिवानी से ऊट किराए पर लेकर वह अपने गाँव के लिए रवाना हुआ। १६-१७ वर्ष के लम्बे समय के बाद वह राजस्थान लौट रहा था। असम की हरी-हरी उपजाऊ भूमि से उसका इतना सान्निध्य हो गया था कि इस रेतीली मरुभूमि को एक प्रकार से भूल-सा गया था। परन्तु जैसे ही उसने बडे-बडे टीबो और उनकी चमचम करती हुई बालू को देखा तो उसे अपने बचपन के दिन याद आ गए जब वह इन पर हम-उम्र सगी-साथियो के साथ खेलता और लोटता था। उसका मन हुआ कि ऊँट पर से इसी दम उतर पडे और जी-भरकर एक बार फिर इस रेत का आलिगन करे।

चार दिन बाद, एक सुबह जब वह अपने गाँव के काकड (किनारे) पर पहुँचा तो देखा कि कुछ व्यक्ति एक सधवा स्त्री की अर्थी लिये हुए जा रहे है। रामदयाल १६-१७ वर्ष के बाद गाँव लौटा था, इसलिये न तो वह किसी को पहचानता था और न कोई उसे ही। अर्थी के साथ जा रहे लोग आपस मे बाते कर रहे थे कि इस बेचारी (मृत महिला) ने जीवन मे देखा ही क्या ? १७ वर्ष पहले ब्याह होते ही पति परदेश चला गया और अभी तक वापस नही लौटा। एकमात्र सास का सहारा था वह भी तीन महीने पहले इसे सदा के लिए छोड गई।

रामदयाल के मन मे कुछ आशका और जिज्ञासा हुई। उसने लोगो से पूछा तो पता चला कि यह तो उसकी ही पत्नी की ही अर्थी है।

जिस वात्सल्यमयी माँ और पत्नी से मिलने की आकाक्षा लिये वह आया था, वे दोनो ही अब नही रही। जो कुछ शेष रहा, वह था गाँव-पडोस के लोगो के कटु वचन और निन्दा-स्तुति। रामदयाल बिना किसी को अपना परिचय दिए उल्टे पैरो चुपचाप वापस लौट गया। उसका पैत्रिक मकान अभी था, परन्तु सूने मकान मे जाने की हिम्मत नही हुई। इतने बडे सकट मे भी उसे सबसे बडा सतोष और सहारा इसी बात का था कि उसने अपने पिता का

मारा कर्ज़ व्याज सहित चुका दिया था।

गमदयाल के पिता ने उसे केवल काग़ज दिया था जिस पर लेनदारो के नाम और रकमे लिखी थी। उस समय न तो स्टाम्प के कागज पर ही कर्ज़ की लिखा-पढी होती थी और न कोई गवाह या जामिन होते। परन्तु वे लोग सबसे बडी लिखा-पढी और गवाह-जामिन ईश्वर को मानते थे और पिता-पितामह का कर्ज़ चुकाए बग़ैर सार्वजनिक उत्सवो मे कभी-कदाच ही शामिल होते थे। ऐसे अनेक उदाहरण मिलेगे कि ३०-४० वर्ष बाद तक पुत्र और पौत्रो ने अपने पिता और पितामह के कर्ज़ चुकाए है।

यही कारण है कि हाल के वर्षो तक हमारे पूर्वजो के, बिना-मात्रा के हरफो मे लिखे बही-खातो की अदालत मे भी साख और इज्जत थी।

●
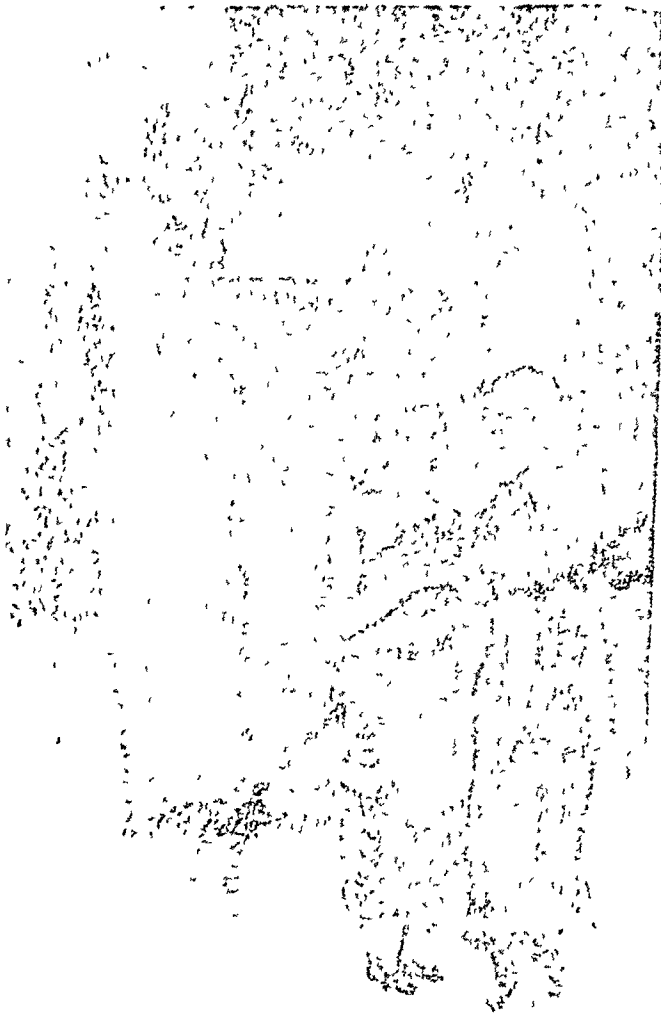
राजा और रंक

राजस्थान के बूदी राज्य मे हाडा-राजपूतो का शासन था। सन् १७५० ई० मे महाराज उमेद सिह यहाँ राज्य करते थे। छोटी आयु मे ही पिता की मृत्यु हो जाने से इन्हे राजगद्दी मिल गयी। आपको शिकार खेलने का बडा शौक था। प्राय ही, १०-१५ मुसाहबो और शिकारियो को साथ लेकर पहाडो और जगलो मे शिकार के लिए चले जाते।

माघ का महीना था। एक दिन महाराज अपने सरदारो और शिकारियों के दल के साथ पास के पहाडो मे शिकार के लिए गए। शाम होते-होते एक बडे चीतल को देखा तो राजा ने अपना घोडा उसके पीछे छोड दिया। दौडते-दौडते जगल मे रास्ता भूलकर बहुत दूर निकल गये। सभी साथी पीछे छूट गए।

रात हो गई और भयकर तूफान के साथ ओले और वर्षा शुरू हो गई। रास्तो मे चारो तरफ पानी जमा हो गया। ऊपर से बर्फीली हवा सॉय-सॉय करके चल रही थी।

ऐसी भयकर सर्दी मे महाराज ठिठुर कर वेहोश हो गए, किन्तु घोडा बहुत ही समझदार था। वह उन्हे अपनी पीठ पर लादे घूमता हुआ एक झोंपडी के द्वार पर आया और हिनहिनाने लगा। जब कुछ देर तक किवाड नही खुले तो घोडे ने दरवाजे पर पैरो की टाप लगाई। हाथ मे दीपक लिए एक वृद्ध बाहर आया और कुछ क्षणो मे सारी परिस्थिति समझकर बेहोश युवक को पीठ पर लादकर भीतर ले गया। कीमती कपडे और गहने देखकर वह यह तो समझ गया कि यह अवश्य ही कोई बडे घर का युवक है, परन्तु उसने स्वप्न मे भी यह न सोचा कि स्वय महाराज उसके अतिथि बने है।

झोंपडी मे उसकी किशोरी पुत्री रूपमती के सिवाय और कोई न था। पिता-पुत्री दोनो ने मिलकर युवक के भीगे वस्त्र उतारे और उसे आग के पास लिटा दिया। चम्मच से मुँह खोलकर गरम दूध पिलाने लगे। वहुत प्रयत्न करने पर भी युवक की वेहोशी दूर नही हुई। शरीर ठडा ही बना रहा। डर लगा कि कही वह मर न जाय। एक क्षण को वृद्ध विचलित-सा हुआ किन्तु वह अनुभवी था, वैद्यक का ज्ञाता भी। उसने पुत्री को सकुचाते हुए कहा—"बेटी, इसके शरीर मे गरमी लाने का अब एक ही उपाय है। तुम इसकी शय्याचारिणी वनो, इसके शरीर को अपने शरीर की गर्मी पहुँचाओ। बेटी को लज्जित देखकर वृद्ध ने दृढ स्वरो मे कहा—"घर आए अतिथि के प्राण बचाना हमारा कर्तव्य है। इससे वडा पुण्य पृथ्वी पर नही है। तुम सकोच त्यागकर धर्म का पालन करो अन्यथा नर-हत्या का पाप हम दोनो के मत्थे चढेगा।"

उच्च आचार-विचार वाली कुमारी कन्या के लिए, जिसने पिता के सिवाय किसी पर-पुरुष को छूआ तक नही था, उसके लिए पिता की यह आज्ञा बहुत ही कठोर थी। गहरे मानसिक द्वन्द्व के उपरान्त वह पिता के आदेश को मानते हुए मेहमान को भीतर ले गयी।

वहुत देर वाद युवक के शरीर मे गरमी आयी। उसने अपने आपको एक किशोरी की नग्न बाहो मे पाया तो विचलित हो उठा। जव सुबह हुई तो कुमारी रूपमती स्त्री बन चुकी थी।

महाराज ने अपने वृद्ध मेजवान के कुल, जाति आदि की जानकारी ली तो ज्ञात हुआ कि वह भी राजपूत सरदार है, अपनी स्त्री के किसी सामाजिक अपराध से दु खी होकर एकमात्र कन्या के साथ

लोगो की दृष्टि से दूर १४ वर्षो से इस निर्जन गॉव मे रहने लगा है। परन्तु अब उसे अपनी जवान पुत्री के विवाह की चिन्ता है ।

दूसरे दिन सुबह महाराज के साथी उन्हे खोजते हुए इसी झोपडी के पास आए, बाहर खडे अश्व ने हिनहिनाकर स्वामी के अन्दर होने का सकेत दिया। महाराज को सुरक्षित पाकर सबको बडी प्रसन्नता हुई ।

राजा ने वृद्ध को बहुत-सा धन उपहार मे देना चाहा, परन्तु बाप-बेटी दोनो ने नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। कहने लगे कि हमने जो कुछ किया, वह सब कर्त्तव्य के वश किया है न कि धन के लोभ मे ।

विदा होते समय महाराज ने वृद्ध के समक्ष उसकी पुत्री को अपनी रानी बनाने का प्रस्ताव रखा। एक बार तो उसे विश्वास ही नही हुआ, परन्तु जब हीरेजडी अँगूठी पहना दी गयी तो उसकी ऑखो मे हर्ष के आँसू आ गए ।

तीन-चार महीने बीत गए। इस बीच बेटी के कहने से पिता दो-बार बूदी गए। महाराज से भेट हुई, कन्या के विवाह की उन्हे याद दिलाई तो वह क्रोधित हो उठे। कहा—"आदमी को अपनी हैसियत देखकर सबध की बात करनी चाहिए। तुम लोग चाहो तो सौ-दो-सौ रुपये महीने का वसीका राज्य से मिल सकता है। फिर कभी मत आना, नही तो अपमानित होकर जाना पडेगा।"

आखिर, एक दिन रूपमती ने अपने पिता को सकोच त्यागकर सारी बात कह दी और बता दिया कि उसे महाराज का गर्भ है। यह सुनकर वृद्ध को ऐसा सद्मा पहुँचा कि वह थोडे दिनो मे मर गया।

समय पाकर रूपमती ने एक बहुत ही सुन्दर बालक को जन्म दिया। सेवा-सुश्रूषा के लिए देहाती स्त्रियॉ थी जो इस पितृहीन युवती को प्यार करती थी ।

पूछने पर रूपा बराबर यही कहती कि उसका पति एक बहुत बडा राजा है और जल्द ही उसे राजधानी ले जायेगा ।

एक दिन उसने सुना कि महाराज आमेर की राजकुमारी से विवाह करके बारात लिए लौट रहे है। यद्यपि रूपमती ने राजधानी न जाने की एक प्रकार से सौगन्ध खा ली थी, पर उस दिन मन को कडा करके, बच्चे को जुलूस दिखाने नगर की ओर चल दी ।

सारे शहर मे अपूर्व सजावट हुई थी। चारो तरफ तोरण-बन्दनवार बँधे थे। शहनाइयॉ बज रही थी, पटाखे छूट रहे थे, पुर-नारियॉ मधुर गीत गा रही थी ।

रूपवती ने देखा गाजे-बाजे सहित महाराज की सवारी आ रही है। सोने के हौदे सजे हाथी पर महाराज और उनके पीछे रथ मे नव-विवाहिता महारानी। लोग गर्व से एक दूसरे कह रहे थे कि महाराज कितने प्रतापी है तभी तो आमेर की राजकुमारी से सम्बन्ध हुआ है, आदि ।

लोगो के धक्को से किसी प्रकार बचती हुई रूपवती अपने शिशु को लिए राजा के सामने जा पहुँची। महाराज ने उन्हे क्षण भर के लिए देखा और मुँह फेर लिया।

थोडी देर बाद भीड मे शोर मचा, कुछ हलचल हुई। लोगो ने देखा कि अतीव सुन्दर नवयौवना अपने नवजात शिशु के साथ जमीन पर कुचली पडी थी। चारो तरफ ताजे लहू की धार बह रही थी। उनमे से कुछ लोग कह रहे थे—"हमने इसे, दौडकर हाथी के पैरो के नीचे जाते देखा था"।

लाशो को रास्ते से अलग हटा दिया गया। बाजे और नगाडे फिर जोरो से बजने लगे। आखिर किसी पगली के पीछे इतने बडे उत्सव मे व्यवधान क्यो आये ?

छज्जो से महाराज के हाथी पर पुष्पो की वर्षा हो रही थी। 'महाराज की जय हो', 'अन्नदाता घणी खम्मा' की आवाजो मे आकाश गूँज रहा था ।

चन्दरी बुआ

राजस्थान मे पुराने जमाने मे ऐसी प्रथा थी कि एक ही गॉव मे शादी-विवाह नही होते थे। लड़की को दूसरे गॉव मे देते और दूसरे गॉव की लड़की को बहू बनाकर लाते थे। यहॉ तक होता था कि अगर किसी गॉव मे बारात आती तो वर-पक्ष के गॉव की जितनी भी लडकियॉ वहॉ ब्याही हुई होती, सबको मिठाइयॉ भेजी जाती थीं।

अपने गॉव की लडकी को, चाहे किसी भी जाति की हो, आयु के अनुसार भतीजी, बहिन या बुआ कहकर पुकारा जाता था। मुझे याद है कि घर के पास मुसलमान लखारो का एक घर था, हम उन सबको चाचा, ताऊ या चाची, ताई कहकर पुकारते थे।

अब गॉव, कस्बो मे परिवर्त्तित हो गए है और यातायात के साधन सुलभ होने से आवागमन भी बढ गए है, इसलिए यह प्रथा कम होती जा रही है।

इस कथा की नायिका चन्दरी बुआ का जन्म राजस्थान की बीकानेर रियासत के एक गॉव मेंआज सेकरीब ११० वर्ष पहले एक ब्राह्मण-परिवार मे हुआ था।

जब चन्दरी १२ वर्ष की हुई तो उसका विवाह हुआ। पास के गॉव से बारात आई और सारे कार्य धूम-धाम से सम्पन्न हूए।

उसका पिता साधारण स्थिति का ब्राह्मण था, परन्तु उन दिनो विवाह-शादियो मे घर वालो को कुछ विशेष नही करना पड़ता था। गॉव के पुरुष और स्त्रियॉ सारे कामो का आपस मे बँटवारा कर लेते थे। प्रति घर से एक-दो रुपए टीके या दान के रूप में दिए जाते जिससे मॉ-बाप के लिए खर्च का बोझ भी कम हो जाता था।

विवाह तो बचपन मे हो जाते, पर गौना तीन या पॉच वर्ष बाद होता था। इससे पहले वहू ससुराल नही जाती थी। चन्दरी के पति का देहान्त गौना होने के पूर्व ही हो गया, फिर वह ससुराल नही गई और मायके मे ही रहने लगी।

पहले तो वह शायद बेटी या बहन के नाम से पुकारी जाती होगी, पर मैने जब होश सभाला, तब तक वह प्रौढा हो चुकी थी और उसे बुआ का पद मिल चुका था। उसके मॉ-बाप स्वर्गवासी हो चुके थे। वह सारे मुहल्ले की बुआ कहलाने लगी थी।

दान-दक्षिणा लेने मे उसे प्रारम्भ से ही ग्लानि थी इसीलिए वह सबके साथ अच्छे सम्बन्धो के कारण श्रम करके ही अपना जीवन-निर्वाह करती थी। सुबह ४ बजे उठकर चक्की पीसने बैठ जाती और सूर्योदय तक ८ से १० सेर तक अनाज पीस लेती। इससे प्रतिदिन २ से २॥ आने तक कमाई हो जाती। उसे कभी काम का अभाव न रहता, क्योकि एक तो वह काम मे स्वच्छता रखती तथा दूसरे अनाज को साफ करके पीसती तथा पिसाई मे आटा घटाती न थी।

जब कभी हमारी नीद पहले खुल जाती तो चन्दरी बुआ के भजन तथा उनकी चक्की की आवाज सुनाई पड़ती। उन दिनो एलार्म घडियॉ तो सुलभ थी नही, अत जिसे कभी मुहूर्त साधकर जाना होता या पहले उठना होता, वह चन्दरी बुआ को समय पर जगाने को कह जाता और वह उसे नियत समय पर जगा देती। उस समय तारो को देखकर समय का ज्ञान

बडी- बूढी स्त्रियो को रहता था ।

उनकी आवश्यकताएँ कम थी । इसलिए दो-ढाई आने मे सामान्य जीवन-निर्वाह हो जाता था । चन्दरी बुआ ने इससे अधिक कमाने की आवश्यकता नही समझी । दिन मे वह मुहल्ले के बच्चो की देखभाल करती तथा कोई बीमार होता तो उसकी सेवा करती रहती । उन दिनो प्रसव का काम सयानी स्त्रियाँ या दाइयाँ ही सभालती थी । कठिन-से-कठिन समय मे भी चन्दरी के आ जाने पर घर वालो को और जच्चा को सान्त्वना व साहस मिल जाता था ।

उसने जीवन का सारा प्रेम और ममत्व दूसरो के बच्चो पर उँडेल दिया था । मुहल्ले के बच्चे सारे-दिन उसे घेरे रहते । किसी को पतग के लिए लेई चाहिए तो किसी को अपनी गुडिया के विवाह के लिए रग-विरगे कपडे । उसके दरवाजे से निराश जाते किसी को नही देखा ।

सगीत की शिक्षा लिए बिना ही उसे ताल और स्वर का यथेष्ट ज्ञान था । विधवा होने के कारण विवाह-शादी के गीत तो नही गाती, परन्तु भजन और 'रतजगा' (रात्रि-जागरण) उसके बिना नही जमते थे । मीरा और सूर के पदो को इतनी लवलीन होकर मधुर रागिनी से गाती कि सुनने वाले भावविभोर हो जाते ।

जब वह काफी वृद्धा हो चली तब भी मैने उसे देखा था । उस समय अनाज पीसना तो उसके वश की बात नहीं थी, फिर भी कुछ छोटा-मोटा काम करती रहती थी । वह इतनी बूढी हो चुकी थी कि उसके हाथ और गर्दन काँपने लग गये थे और आवाज मे भी हकलाहट-सी आ गई थी ।

प्रति वर्ष गर्मी के मौसम मे लोग हरिद्वार और बदरीनाथ जाते थे । चन्दरी बुआ से लोगो ने बहुत बार आग्रह किया, परन्तु उसका एक ही जवाब होता कि मुझ गरीब और अभागिन के भाग्य मे तीर्थ-यात्रा कहाँ है, यह सब तो भाग्यशाली लोगो को मिलता है ।

एक दिन उसने मुझे बुलाया और कहने लगी—"आजकल स्वास्थ्य जरा ठीक नही रहता, पता नही कब शरीर छूट जाय । मेरे मन मे अपनी ससुराल के गाँव मे एक कुआ बनाने की साध है । वहाँ एक ही कुआ है इसलिए गर्मी मे गाये और ढोर तो प्यासे रहते ही है, मनुष्य को भी पूरा पानी नही मिलता । तुम पता लगाकर बताओ कि कुए पर कितना खर्च बैठेगा । मैं सोचने लगा कि बुढापे मे बुआ का दिमाग खराब हो गया है । आजकल दोनो वक्त का खाना तक खुद नही जुटा पाती, इस पर भी कुआँ बनाने की धुन लगी है ।

बात आई- गई हो गई, परन्तु १०–१२ दिन बाद देखता हूँ कि लाठी टेकती बुआ सुबह ही सुबह हाजिर है । मन मे अपने ऊपर ग्लानि और क्षोभ हुआ कि जिसके स्नेह की छाया मे बचपन के इतने वर्ष विताए, जिससे नाना-प्रकार के छोटे-मोटे काम लिए, बहुत रात तक गए कहानियाँ सुनीं, उसके एक छोटे-से काम पर भी मैंने ध्यान नही दिया ।

मैने कहा," वहाँ पानी बहुत नीचा है, इसलिए कुए पर दो-ढाई हजार रुपये खर्च होगे । यदि कुई (छोटा कुआ) बनायी जाय तो शायद डेढ हजार तक मे बन सकेगी ।"

मेरा उत्तर सुनकर बुआ के झुर्रियो से भरे चेहरे पर एक गहरी उदासी छा गयी मन-ही-मन कुछ हिसाब- सा लगाने लगी । दूसरे दिन मुझे अपने घर आने को कहकर चली गई ।

अगले दिन जब मैं उसके यहाँ पहुँचा तो देखा कि वह मेरा इन्तज़ार कर रही है । थोडी देर इधर-उधर देखकर मुझे भीतर की एक कोठरी मे ले गयी । खाट के नीचे से एक पुराना डिब्बा निकाला और उसे खोलकर मेरे सामने उडेल दिया ।

विक्टोरिया, एडवर्ड और जार्ज पचम की छाप के पुराने रुपये थे तथा कुछ रेजगारी थी । थोडे-से चाँदी के गहने और सोने की मूरत थी जो शायद उसकी माँ ने उसके विवाह के समय उसको दी होगी ।

मैं रूपये गिन रहा था और पिछले ६०-७० वर्षो का इतिहास मेरे मानस मे तैर रहा था। सोच रहा था, इस वृद्धा की सारी उम्र की गाढी कमाई का यह पैसा है जो उसने कठिन जीवन बिताकर, यहाॅ तक कि तीर्थयात्रा की बलवती इच्छा को दबाकर इकट्ठा किया है। आज जीवन के सध्याकाल मे सारा-का-सारा परोपकार मे लगा देना चाहती है। गिनकर मैने बताया कि लगभग ६००) रुपय है। ३००) रुपये के गहने होंगे। इतने मे काम बन जायेगा, जो कुछ थोडी कमी रहेगी, उसकी व्यवस्था हो जायगी, कोई चिन्ता की बात नही है।

वह बोली—"बेटा, मेरे पति के निमित्त कुआॅ बनेगा। इसमे दूसरो का पैसा नही ले सकूगी। नही होगा तो एक मज़दूर कम रख कर कुछ काम मै कर दिया करूॅगी।" मैने पूछा, 'बुआ कुए पर किसके नाम का पत्थर लगेगा?" अपनी धुधली आॅखो को कुछ फैलाने की चेष्टा करते हुए बुआ ने जवाब दिया—"नाम की इच्छा से पुण्य घट जाता है फिर मानुष तो स्वयं क्षणभगुर है, उसके नाम का मूल्य ही क्या ?"

मुझे इस अपढ वृद्धा के तर्क पर आश्चर्य के साथ श्रद्धा हो रही थी, यह कुआँ बनाने के परोपकारी काम के लिए सर्वस्व लगाकर भी न तो अपना और न अपने पति के नाम का पत्थर लगाने की इच्छा रखती है—जबकि आज १ लाख लगाकर ५ लाख की इमारत या सस्था पर नाम लगाने की खीच-तान धनवान और विद्वानो मे लगी रहती है तथा उद्घाटन-समारोह किस मत्री या नेता से कराये, इस परकाफी सोच-विचार होते है। तय नही कर पा रहा था कि कौन बडा दानी है और किसका दान अधिक सात्विक है।

कुछ दिनो बाद उस गाॅव मे गया तो कुआ बन रहा था और चन्दरी बुआ भी मजदूरो के साथ टोकरी ढो रही थी। उसकी लगन और परिश्रम देखकर दूसरे मजदूर-कारीगर भी जी-जान से काम मे जुटे थे।

किसी ने कहा—"बुआ, तुम्हारे कुए का पानी तो बहुत मीठा निकला है, परन्तु तुम तो बहुत दिन नही पी न सकोगी।" वह बोली, "मेरा इसमे क्या है ? तुम सब लोगो मे रहकर कमाया हुआ पैसा था, वह भले काम मे लग गया। दूसरो के कुओ से सारी उम्र पानी पिया है, इसलिए इस छोटे-से प्रयत्न के द्वारा मैने अपना ऋण चुकाने का प्रयास किया है। मेरी आखिरी इच्छा है कि जब मेरे प्राण निकले तो गगाजल की जगह इसी कुए का पानी मेरे मुह मे डालना।"

कुआ बनकर तैयार हो गया, परन्तु बुआ थक कर बीमार हो गई। जिस दिन हनुमान जी का जागरण और प्रसाद हुआ, वह बेहोश-सी थी।

जागरण मे आस-पास से देहात के काफी लोग इकट्ठे थे। भजन-कीर्तन चल रहा था, थोडी देर बाद वही सबके सामने बुआ का देहान्त हो गया।

आज वह गाॅव बडा हो गया है और दूसरे कुए भी बन गए है, परन्तु चन्दरी-कुए के पानी के समान मीठा पानी किसी का भी नही है।

●

उतार-चढ़ाव

उन्नीसवी सदी के अन्तिम चरण की बात है । कराची के एक मध्यमवर्गीय सिन्धी परिवार मे हरनाम नाम का बालक था । मा बचपन मे ही मर चुकी थी । बाप ने प्रौढावस्था मे फिर से एक गरीब घर की लडकी से विवाह कर लिया । उसके दो सौतेले बहन-भाई भी हो गए थे ।

हरनाम की शादी-शुदा अपनी एक बडी बहन थी परन्तु उसे कभी त्योहार पर भी पीहर नही बुलाया जाता था । कभी-कभी छुपकर भाई की पाठशाला मे आती और कुछ चीजे दे जाती । घर मे छोटे भाई-बहन के लिए विशेष अवसरो पर नए कपडे और तरह-तरह की मिठाइया बनतीं, परन्तु हरनाम को कोई भी नही पूछता । बेचारा बालक ललचाई आखो से देखता रहता । कभी-कदाच, वे दोनो इसे कुछ देना चाहते तो मा उन्हे मना कर देती ।

एक दिन, किसी साधारण से कसूर पर विमाता ने हरनाम को बहुत पीटा । पिता भी पत्नी के डर से कुछ नही बोला । भूखा-प्यासा बच्चा घर से भागकर समुद्र किनारे खडे किसी भार-वाही जहाज मे जाकर छिप गया ।

थोडी देर बाद जब जहाज रवाना हुआ तो उसे वस्तुस्थिति का भान हुआ और सुबक-सुबक कर रोने लगा । परशियन ऑयल कम्पनी का जहाज था । ज्यादातर मल्लाह अरब थे, दो-चार आफिसर भी थे । जब उन्होने १२-१३ वर्ष के एक अति सुन्दर बालक को इस स्थिति मे देखा तो आश्चर्य चकित रह गए । धीरे-धीरे सारी बातो की जानकारी ली। जहाज का कराची वापस जाना सम्भव नही था । बालक पर कप्तान का स्नेह हो गया । उसने अपनी कैबिन मे रख उसे लिया । ईरान पहुचकर कप्तान ने उसे एक धनी ईरानी परिवार मे नौकर रखा दिया । हरनाम की बुद्धि कुशाग्र थी । थोडे दिनो मे ही उसे अरबी, फारसी और अग्रेजी बोलने का अच्छा अभ्यास हो गया ।

उन दिनो, ईरान मे तेल कम्पनी के बहुत से अग्रेज अधिकारी थे । परशियन ऑयल कम्पनी का बडा साहब वहा ब्रिटेन की तरफ से सर्वोच्च राजदूत भी था । एक दिन साहब और उसकी पत्नी टहलते हुए किसी अरबी शब्द के बारे मे बहस कर रहे थे । हरनाम उधर से गुजर रहा था । उसने क्षमा मागते हुए विनयपूर्वक कहा कि मेम साहिबा का जमला सही है ।

अब तो हरनाम पर उन दोनो की पूर्ण कृपा हो गई । उसे उन्ही के बगले मे रहने, खाने की सुविधा मिल गई । हाथ-खर्च के लिए दो सौ रुपया महीना दिया जाने लगा । काम था, मेम साहिबा को अरबी और फारसी पढाना ।

प्रथम महायुद्ध मे ईरान, मध्यपूर्व का सप्लाई केन्द्र बना । करोडो रुपये महीने का सामान वितरण होने लगा । तेल-कम्पनी का बडा साहब निर्देशक नियुक्त हुआ ।

अधिकाश सामान के वितरण का काम मिला हरनाम दास एण्ड कम्पनी को । सन् १९१८ ई० तक हरनाम दास करोडपति सेठ बन गया । वही चार-छ मुताह (कन्ट्रक्ट मैरिज या अल्पकालीन विवाह) कर लिये । इन बीबियो के अलावा उसके रगमहल में एक-से-एक

सुन्दरी दासिया थी। सैकडो नौकर-चाकर, मुनीम-गुमाश्ते घर और आफिस का काम देखते। उसके दरवाजे पर अनेक अतिथि और प्रतिनिधि आते रहते, सबका यथायोग्य आदर-सत्कार होता।

सयोग से एक दिन एक भारतीय साधु घूमता हुआ वहा जा पहुचा। स्वदेश के सयासी की दूसरो की अपेक्षा अधिक खातिरदारी होनी स्वाभाविक ही थी। एक महीने तक किसी राजा-महाराजा का-सा आयोजन उनके लिए हुआ। विदाई की दक्षिणा मे कीमती शाल-दुशाले तथा अच्छी रक़म नक़द दी गई।

पन्द्रह वर्ष के लम्वे समय के बाद, एक सावु महाराज हरिद्वार के पास मुनि की रेती मे एक बडे-पकौडी की दूकान पर खडे होकर, दूकानदार को वे बडे ध्यान से देख रहे थे। महाराज को प्रेम से नाश्ते का निमन्त्रण मिला। पहले से ही ५-४ सन्यासी प्रसाद पा रहे थे। दूकान पर ग्राहको की अच्छी भीड थी।

दूकानदार ने पूछा कि महाराज आप इतने ध्यान से मुझे क्यो देख रहे थे ?

सन्यासी नें १५ वर्षो पहले के ईरान प्रवास की अपनी कहानी सुनाकर कहा कि सेठ हरनामदास का चेहरा आपसे एकदम मिलता-जुलता है।

जब उन्हे पता चला कि वे उस हरनामदास से ही बाते कर रहे है तो उनके आश्चर्य को ठिकाना नही रहा।

जो कहानी उन्हे सुनाई गई, वह इस प्रकार थी

आपके चले जाने के एक वर्ष बाद वडे साहब का तबादला हो गया और छोटे साहब ने काम सम्हाला। मैने कभी उसकी परवाह नही की थी, इसलिए वह और उसके मुहलगे दोस्त एव कर्मचारी मुझ से जलते रहते थे। कुछ ही दिनो बाद मुझ पर जालसाजी का मुकदमा चलाया गया जिसकी सजा होती मौत।

जल्दी से व्यवस्था करके, मुनीमो को काम सम्हलाकर मै ४-५ लाख की सम्पत्ति लेकर अपने सचिव के साथ ईरान से छद्मवेश मे रवाना हुआ। रास्ते मे मेरा सचिव सन्दूके लेकर न जाने कहा उतर गया। मै जब बम्वई बन्दरगाह पहुचा तो मेरे पास थोडे से रुपये और एक वहुमूल्य हाथ-घडी बची थी।

घड़ी वेचने के लिए दो-तीन दूकानो मे गया। दूकानदार मेरी मैली वेश भूषा और वढी हुई दाढी देखकर सन्देह करने लगे कि शायद मै घडी चुराकर लाया हू। केवल ५०), ६०) रुपये तक देने को तैयार हुए। मैने क्रोध मे आकर घडी को समुद्र मे फेक दिया।

जगह-जगह मजदूरी करता हुआ, सयोग से यहा आकर बडे-पकौडी की यह दूकान कर ली। थोडे दिनो तक तो मन मे सताप रहा, फिर एक दिन एक महात्मा आये। उनका उपदेश था, "वच्चा, धन और मान मे सच्चा सूख नही है। ईश्वर के बन्दो की सेवा करो, शान्ति मिलेगी।" तव से महात्माओ को प्रसाद देकर जो बच जाता है उसी से दो जून की खुराक आराम से मिल जाती है। सुबह ६ बजे से लेकर रात के १२ बजे तक मेहनत करने से शरीर स्वस्थ रहता है और मन भी नाना चिन्ताओ से मुक्त है। भगवती गगा का तट है और साधु-महात्माओ का सग-लाभ, सचमुच, वहत आनन्द मे हू।

सन्यासी ने प्रसाद पाकर हरनामदास को प्रणाम किया और कहा कि वास्तव मे ही आप सुख-दुख के समदर्शी-समभोगी है।

सन् १६६१ मे हरनामदास की मृत्यु हुई। मेरे मित्र स्वर्गीय श्रीराम शर्मा (सम्पादक, विशाल भारत) के घर पर एक-दो वार उनसे मुलाकात हुई थी। गरीबी होने पर भी आदते पहले जैसी ही थीं। एक-दो कम्बल या कोट पास मे होता तो वह किसी जरूरतमन्द को दे देता। कई दिनो तक कडाके की सर्दी भुगतने के वाद फिर वना पाता परन्तु कभी उसके चेहरे पर दीनता के भाव नही दिखाई दिए।

आत्मीयता

बात पुरानी है, परन्तु बहुत पुरानी भी नही, क्योकि ४०-५० वर्ष पहले ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होने सेठ जी को देखा था। उनका अपना गॉव तो राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्र मे था, परन्तु ज्यादा-तर वे रहते थे बम्बई मे। वहाँ बडे पैमाने पर रूई और आढत वगैरह का उनका कारोबार था।

वर्ष मे एक बार गॉव जाते तो गरीब और जरूरतमन्दो मे महीनो पहले से चर्चा शुरू हो जाती। गॉव के सैकडो व्यक्ति दो-चार कोस अगवानी करने के लिए जाते। सेठजी भी छोटे-बडे सबको उनके नाम से सम्बोधित करके राजी-खुशी का हाल पूछते। इतने बडे व्यक्ति से अपना नाम सुनकर लोगो के मन मे गुदगुदी-सी होती और अपने को भाग्यवान् मानते।

जितने दिन वे वहाँ रहते, प्राय रोज ही कभी हनुमानजी के प्रसाद मे तो कभी सत्यनारायण भगवान् की कथा- उद्यापन के उपलक्ष्य मे गाव के लोगो को भोजन के लिए बुलाते रहते। ब्राह्मणो को प्रति-घर एक रुपया एक धोती और एक साडी भेट दी जाती। यद्यपि आज के बडे धनिको के अनुपात मे उनके पास रुपया कम था, परन्तु उन दिनो चीजे बहुत सस्ती थी और उनका मन बहुत ऊचा था, इसलिए जितनी आय होती उसका अधिकाश दान-धर्म मे खर्च कर देते।

उनके एक-मात्र लडके का विवाह देश के गाव मे ही होना निश्चित हुआ। उन दिनो छपे हुए निमत्रण-पत्र भेजने की प्रथा नही थी। नाई या ब्राह्मण गाव के सब घरो मे जाकर न्यौता-बुलावा देते थे। परन्तु जो गोत्र-भाई थे उनको न्यौता देने सेठजी स्वय गये। वैसे उनके साथ पाँच-दस दूसरे व्यक्ति तो हमेशा रहते ही थे।

सयोग से उनकी बिरादरी मे एक घर ऐसा भी था जिनके भुने हुए चने, मुरमुरे की दूकान थी। लोगो को बडा ताज्जुब हुआ जब इतने बडे सेठ एक गरीब भाई की दुकान पर रखी हुई मूज की खाट पर बैठ गए।

दो-तीन बार निमत्रण की याद दिलाने के बाद भी सामने वाला व्यक्ति चुप रहा। शायद सेठजी उसकी चुप्पी का मतलब समझ गए। उन्होने कहा, "भाई, सुबह से घर से निकला हुआ हूँ, प्यास लग रही है, थोडा-सा पानी मगवा दो।' दूकानदार जब लोटे मे पानी लेकर आया तो सेठजी ने हँसकर कहा, कि "तुम इतना तो जानते ही हो कि खाली पेट पानी पीने से वायु हो जाती है, इसलिए थोडा-सा गुड और चने-मुरमुरे खाकर पीऊगा।" उसने सहमते हुए ये दोनो चीजे लाकर दी, जिन्हे खाकर बडे प्रेम से सेठजी ने पानी पीया।

पास खडे हुए लोगो ने देखा कि उस गरीब की आखो मे हर्ष की अश्रुधारा बह चली। इतने बडे व्यक्ति उनके दरवाजे पर बडे प्रेम से चना-मुरमुरा खा रहे थे। उसने हाथ जोडकर कहा—"पूज्यवर, भोज मे शामिल होने का मन तो नही था, क्योकि मेरा ऐसा खयाल था कि मेरे यहा काम पडने पर आप आएगे नही। परन्तु मेरी धारणा गलत निकली, इसलिए मैं लज्जित हू और हम सपरिवार भोजन के लिए आपके यहा आएगे।"

कहा जाता है कि दावत चार-पाच दिनो तक चलती रही। आसपास के गावो से हजारो व्यक्ति आए। सबका यथायोग्य आदर-सत्कार किया गया।

विवाह के कामो मे व्यस्त रहते हुए भी सेठजी के ध्यान मे यह बात आई कि घर की भगिन 'भूरी' की जगह काम करने के लिए कोई दूसरी ही आ रही है। उसे बुलाकर पूछा तो कहने लगी कि आपको भगिन की लडकी के विवाह पर रुपये की अटक पड गई थी, इसलिए मैने १००) रू० उधार देकर आपका घर गिरवी रख लिया है। उसकी बात सुनकर सेठजी बहुत गुस्सा हुए और उन्होने उसी समय 'भूरी' को बुला भेजा।

बम्बई से बीसो दोस्त-मित्र शादी मे आए हुए थे, उन सबके सामने ही सेठजी ने कहा, "भूरी चाची, भला तुमने गलत काम क्यो किया ? जब-जब तुम्हारे यहा से समाचार गए तब-तब तुम्हे बम्बई से रुपए भिजवा दिए थे।" भूरी ने कुछ सहमते हुए-सी स्वीकार किया कि पहली तीनो लडकियो के विवाह के रुपये तो आपके यहा से आ गए थे, उस समय आपके काका भी जीवित थे। इस समय कुछ जल्दी मे थी, अच्छा घर और वर मिल रहा था, इसलिए एक बार जीवणी से रुपये उधार लेकर धापी (लडकी) का विवाह कर दिया है, उसी की एवज मे आपका घर गिरवी रखना पडा, चार-छ महीनो मे छुडा लूँगी।"

एक गरीब भगिन के प्रति सेठजी द्वारा 'चाची' का सम्बोधन सुनकर उपस्थित लोगो को आश्चर्य होना स्वाभाविक था और भूरी बिना झिझक के अपने स्वर्गीय पति को सेठजी का चाचा बना रही थी।

जीवणी किसी तरह भी विवाह के पहले घर छोडने को तैयार न थी, किसी तरह समझा-बुझाकर उसे २००) रुपये देकर वापस भूरी को काम सौप दिया गया।

आजकल की मान्यताओ और तहजीब के आधार पर ये बाते अटपटी-सी लगेगी, परन्तु उस समय तन की छुआछूत रखते हुए भी लोगो के मन मे प्यार था, एक दूसरे के दु ख-सुख मे शामिल रहते और आत्मीयता के साथ आपस मे सम्बोधन भी चाचा, ताऊ, मामा, इत्यादि का था।
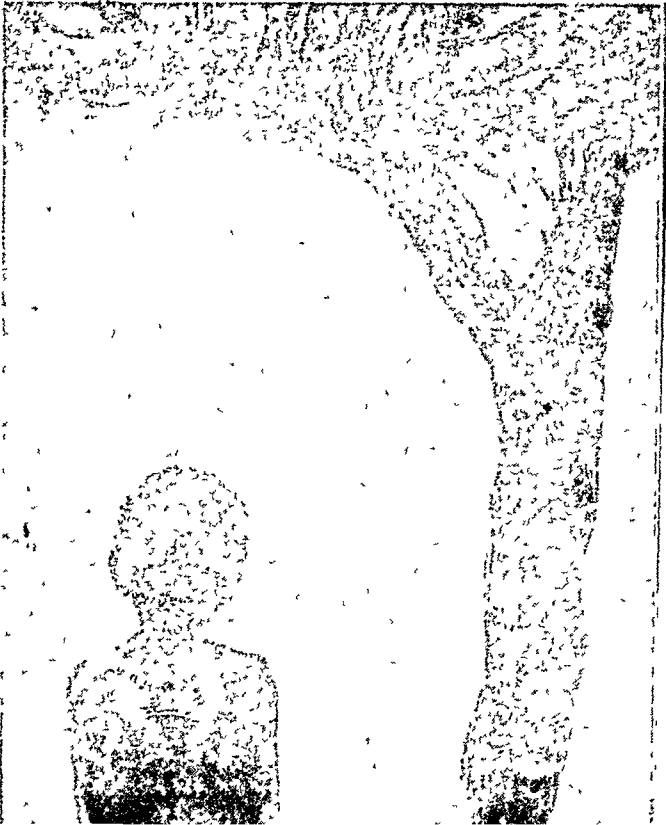
पाप का धन

कुछ वर्षो पहले बम्बई मे अशरफ भाई नामक व्यक्ति जवाहरातो का एक दलाल था। धनवान तो नही, परन्तु नेक और मेहनतकश इतना था कि व्यापारियो का उस पर पूर्ण विश्वास था : इसलिए वे बहुत रुपयो का माल उसे बेहिचक सौप देते थे। एक बार, एक सेठ के यहाँ हीरो की खरीददारी थी। अशरफ भाई सेठ की पसन्द के लिए एक पुडिया ले गया। सेठ ने कहा, "पुडिया छोड जाओ, दो एक दिन मे जवाब दे दूँगा।"

सेठ काफी धनी और नामी-गरामी था। अशरफ ने पुडिया छोड दी और घर लौट आया। रास्ते मे उसे खयाल आया कि एक छोटी-सी पुडिया जिसमे १५ बेशकीमती हीरे थे, सेठ के वही छूट गई। वह उल्टे पैरो भागा-भागा सेठ की कोठी पर पहुँचा और बहुत ही सकोच के साथ बोला, "सेठ जी, मैंने अभी जो पुडिया आपके पास छोडी है, उसमे एक छोटी पुडिया और थी, भूल से वह भी उस बडी पुडिया मे रह गई है। कृपया देख कर मुझे लौटा दे।" सेठ जी ने अपनी अलमारी से पुडिया निकाल कर ज्यो-की-त्यो अशरफ के सामने रख दी। काफी उलट-पुलट कर देखने के बाद भी उसमे छोटी पुडिया नही मिली। अशरफ के पैरो तले से जमीन खिसक गई। वह रुंधे गले से सिर्फ इतना ही बोल पाया, सेठ जी, मै तो मर गया। जिस जौहरी से वे हीरे लाया था, उसे क्या जवाब दूँगा ?"

सेठ ने सहानुभूति दिखाते हुये कहा, "भाई, तुम अच्छी तरह याद करो, जल्दी मे कही भूल गये होगे, घर जाकर तलाश करो। मेरे यहाँ तो जो पुडिया तुम दे गये थे, वैसी-की-वैसी तुम्हारे सामने है। अभी हडबडाए हुए हो, आश्वस्त होकर शान्ति से घर मे ढूँढोगे तो कही मिल जाएगी।"

अशरफ ने कहा, "सेठ जी वह छोटी पुडिया इसी बडी पुडिया मे थी, ऐसा मुझे याद है। इसे छोड कर जैसे ही मै आपके यहाँ से गया मुझे रास्ते मे ही याद आई और वापस यहाँ आया हूँ। आप अपनी आलमारी मे फिर से देख ले।" सेठ ने आलमारी खोल कर अशरफ को दिखा दी, वहाँ कोई पुडिया नही थी।

हताश और चिन्तित अशरफ वहाँ से अपने घर आ गया। मन की तसल्ली के लिए उसने अपने यहाँ भी खोज-बीन की, पर पुडिया नही मिलनी थी, नही मिली। वह रोने लगा। खाना-पीना सब छूट गया। दो एक दिन निकल गए। हिम्मत करके फिर वह सेठ के यहाँ गया और गिडगिडा कर कहने लगा, "सेठ जी, मुझ गरीब पर रहम कीजिए। पुडिया आपके यही छूटी है। हो सकता है, आप कही रख कर भूल गए हो। एक बार फिर देख लीजिए।" सेठ जी को अशरफ की इन बातो से गुस्सा आ गया। उनकी नीयत पर एक मामूली दलाल शक़ करे यह असहनीय था। डाँट कर उन्होने उसे कोठी से बाहर निकाल दिया।

अब अशरफ की आँखो के सामने अंधेरा छा गया, लेकिन वह हताश नही हुआ। वह उस जौहरी के पास गया, जिससे कीमती हीरो की पुडिया ली थी। बहुत ही स्पष्ट शब्दो मे उसने सारी बात बता दी। सेठ पर अपना शक़ भी जता दिया।

जौहरी अशरफ को बहुत समय से जानता था। उसकी ईमानदारी और नेकनीयती मे भी

शक करने की गुंजायश नही थी । वह उसे ढाढस देते हुए बोला, "घबराने की कोई बात नही, कही इधर-उधर रख कर भूल गए होगे, या सेठ के यहा कहीं भूल से रखी पडी होगी, दस पॉच दिन में मिल जायगी ।" अशरफ को सन्तोष तो नही हुआ, परन्तु करता भी क्या ? घर आ गया ।

लेकिन मन को चैन नही मिला । ३-४ दिन बाद ही वह फिर जौहरी के पास पहुँचा और बोला—"भाई साहब, वह पुडिया तो मिली नही । मैं जानता हूँ कि इस समय उन हीरो की कीमत इतनी अधिक है कि उसे चुकाना मेरे बस की बात नही । बडी कृपा होगी, यदि आप उनकी लागत कीमत मुझसे ले ले । अधिकाश तो अभी चुका दूँगा, बाकी रकम का रुक्का लिख दूँगा ।"

जौहरी ने धीरज से सब कुछ सुना और अशरफ को सलाह दी कि तुम एक बार पुन सेठ के यहाँ जाओ, शायद पुडिया मिल जाए । अशरफ ने दिल कडा किया और एक बार फिर सेठ जी के घर पहुँचा और उनके पैर पकड कर रोने लगा कि सेठ जी मै बाल-बच्चो वाला आदमी हूँ, वे सब बरबाद हो जाएगे । आइदा कौन मेरा विश्वास करेगा ? कौन मुझे जवाहरात सौपेगा ? मेरा धन्धा ही चौपट हो जाएगा । आप एक बार फिर तलाश ले ।" सेठ ने सब कुछ सुना और उसे पहले की भाति इस बार भी दुत्कार कर घर से निकाल दिया ।

इसके बाद अशरफ को इतना सदमा पहुँचा कि वह विक्षिप्त-सा रहने लगा । कभी-कभी रात मे चौंक कर उठ बैठता और रोने लगता । जौहरियो से अशरफ की यह अवस्था छिपी नही थी, उन्होंने सेठ से बातचीत की और इन दोनो के बीच एक पच नियुक्त कर दिया ।

पच के सामने अशरफ ने अपना बयान देते हुए बताया कि जिस दिन मै सेठ जी के पास हीरे रख कर गया था, उस दिन और कही नही गया । १५ हीरो की पुडिया उस बडी पुडिया मे थी, ऐसा मुझे याद है । सेठ जी के यहा पुडिया छोड कर घर आ रहा था कि रास्ते मे ही दूसरी पुडिया की याद आई और उल्टे पैर लौट कर सेठ जी की कोठी पर आया । मुझे यकीन है कि पुडिया वहा रह गई हैं । पच ने प्रत्यक्ष प्रमाण मागा तो उसने 'ना' कह दी और बताया कि न तो मेरे पास कोई तीसरा प्रत्यक्ष गवाह है और न मैंने इन्हे अपनी जानकारी मे वह पुडिया ही दी थी । इधर, सेठ ने अपने जवान लडके के सिर पर हाथ रखकर सौगन्ध खाई कि मेरे पास इसकी कोई दूसरी पुडिया नही आई थी । फैसला अशरफ के खिलाफ हो गया ।

अचानक अशरफ सेठ के पैरो पर गिर पडा और कहने लगा, "यह आपने क्या किया ? आपका चेहरा बताता है कि हीरे आपके पास है । क्यों आपने इकलौते जवान बेटे के सिर पर हाथ रख कर इतनी बडी कसम खाई ? खुदा का दिया आपके पास सब कुछ है ।"

सयोग से तीन-चार दिनो बाद ही सेठ के लडके को गर्दन तोड (मैनेनजाइटीज) बुखार हो गया और दूसरे दिन ही चल बसा । उस घर मे तो शोक हुआ ही, परन्तु अशरफ भी दु खी होकर रोने लगा कि उसके कारण से यह सयोग बना ।

दो-तीन दिन बाद सेठ हीरे की पुडिया लेकर अशरफ के पास आया और उसके गले लगकर बिलख-बिलख कर कहने लगा, "अशरफ भाई, मेरे मन मे लालच समा गया और मैंने बेटे से अधिक धन को तौला 'किन्तु, भगवान के घर देर है, अधेर नही । मेरी पत्नी कहती है कि मेरे ही पापाचार ने बेटे के प्राण ले लिए ।"

दान

एक दिन किसी मित्र के साथ एक सस्था देखने गया वहाँ के पखो की तीनो ताडियो पर वडे-वडे अक्षरो मे उनके द्वारा प्रदान की घोपणा लिखी हुई थी। जब मैने इस सन्दर्भ मे कुछ नही कहा तो वे कहने लगे कि पिछले वर्ष ये चारो पखे हमने ही दिये है। मुझे ऐसा लगा कि वे यहाँ आने वालो मे से अधिकाश लोगो से यही बात दोहराते है। मैने हँसकर कहा कि यह तो इतने वडे-वडे अक्षरो के विज्ञापन से ही पता चल जाता है। देखा कि मेरी वात सुनकर वे कुछ झेप-से गए।

वैसे दान देकर नाम-वडाई सभी व्यक्ति चाहते है। परन्तु इसकी भी एक सीमा होनी उचित है। आज अधिकाश दानी सौ देकर पाँच सौ का नाम चाहते है परन्तु आज से चार सौ वर्ष पहले प्रसिद्ध दानवीर रहीम को किसी ने पूछा था कि आप दान देते समय आँखे नीची क्यो रखते है ? इस पर उनका जवाब था कि–

"देनहार कोऊ और हैं भेजत है दिन रैन
लोग भरम हम पर धरै यातै नीचे नैन"

खानखाना अब्दुल रहीम अद्‌भुत दानी थे,परन्तु उस तरह के कुछ व्यक्ति विरले ही होते है। इस सन्दर्भ मे विभिन्न समय के तीन चित्र उपस्थित करता हूँ।

देश के प्रसिद्ध नेता श्री श्रीप्रकाशजी के पूर्वजो मे दो सौ वर्ष पहले इसी प्रकार के एक दानवीर हो गये है। उनके यहाँ बीसो नौकर, मुनीम-गुमाश्ते थे, जिनका वेतन था, एक रूपया से दस रुपया माहवार। एक वार लगातार दो वर्षो तक अकाल पडा, चीजो के दाम महँगे होते गए। सर्वसाधारण के भूखो मरने की नौवत आ गई। शाहजी ने एक दिन तीन-चार मुनीमो को वुलाकर कहा कि वहुत दिनो से तहखाने मे पडी रहने के कारण अशर्फियाँ गीली हो गई हैं इसलिए उनको धूप मे सुखा लो। शाम को तौलने पर अशर्फियाँ उतनी ही रही, भला सोने का क्या सूखता ? शाहजी ने उनको कहा, "तुम लोग कुछ काम करना नही जानते, कल इनको अच्छी तरह से सुखाओ।" इशारा स्पष्ट था। दूसरे दिन अशर्फियाँ एक पाव कम थी, शाहजी खुश थे। सूखी हुई अशर्फियाँ वापस तहखाने मे रख दी गयो। इसी तरह जव तक वे जीये जरूरतमन्दो को गुप्त-रूप से हर प्रकार की सहायता देते रहे। यहाँ तक कि एक हाथ का दिया दूसरे हाथ को भी पता नही चलता। लोग उन्हे झक्की समझते और प्यार और हँसी मे 'झक्कडशाह' कहने लगे। उनके परिवार वालो ने बडावाजार के प्रसिद्ध मनोहरदास कटरा के साथ-साथ धर्मतल्ला के मैदान मे मनोहरदास तालाव वनवाया था। इसके चारो तरफ की छतरियो मे आज भी सैकडो व्यक्ति धूप और वर्षा मे आश्रय लेते है और उनके द्वारा छोडी हुई गोचर-भूमि मे सैकडो जानवर चरते रहते है।

इस प्रसग मे, रामगढ (शेखावाटी) के एक सेठ की बात याद आ जाती है पौष-माघ मे, इस क्षेत्र मे वहुत ज्यादा सर्दी पडती है। कभी-कभी तो रात मे बाहर रखा हुआ पानी जम कर वर्फ हो जाता है। ऐसी ही एक रात मे सेठ जी ने गीदडो की 'हुँआ-हुँआ' सुनी। दूसरे दिन पण्डितो को बुलाकर पूछा तो उन्होने वताया कि ज्यादा सर्दी के कारण सब ठिठुर रहे है।

गीदडों की संख्या पूछने पर चौदह-सौ, पन्द्रह-सौ बता दी और उतना ही रजाइयो की आवश्यकता थी। सेठ जी ने गुस्से से कहा कि महाराज ऐसा अधेर क्यो करते है। पन्द्रह सौ मे पॉच सौ बच्चे भी तो होगे, उनको अलग रजाई की क्या दरकार है ? वे तो मॉ-बाप के साथ ही सो जायेगे।

खैर, दो-तीन दिनो मे ही हजार रजाइयॉ भरवाकर पण्डितो की मार्फत भेज दी गयी। सेठ जी मित्रो और सेठानी को हॅसकर कह रहे थे कि मुझे ठगना सहज नही है, देखो-किस प्रकार पॉच सौ रजाइयो की बचत कर ली !

दूसरी रात फिर गीदडों की दर्द-भरी पुकार सुनकर सेठ जी की नीद उचट गयी। पूछने पर उत्तर मिला कि श्रीमान् ! रजाइयो से सर्दी तो मिट सकती है परन्तु पेट की भूख नही, बेचारे कई दिनो से भूखे है इसलिये रो रहे है। दूसरे दिन बहुत-सा हलुआ-पूडी बनवाकर भेज दिया गया। अगली रात फिर वही आवाजे आयी। लिहाजा, फिर पण्डितो को बुलाया गया। इस बार हॅसते हुए उन्होने कहा—"सेठ जी ! वे अच्छी तरह खा-पीकर आराम से रजाइयॉ ओढकर बैठे है। आपको आशीर्वाद दे रहे है और रोज इसी तरह देते रहेगे।"

मुनीमो ने सेठ जी को बहुतेरा कहा कि इन पण्डितो ने आपको ठग लिया है, भला कही गीदड भी रजाइयॉ ओढते है या पगत लगाकर हलुआ-पूडी खाते है ? परन्तु सेठ जी किसी तरह यह स्वीकार करने को तैयार नही थे। शायद मन मे तो वे भी जानते थे। परन्तु उनको इस प्रकार के कार्यो से एक नैसर्गिक आनन्द मिलता था और इस बहाने गॉव के गरीब ब्राह्मणो के पास कुछ चीजे पहुँच जाती थी।.

ये बाते सौ डेढ-सौ वर्ष पहले की हैं, परन्तु इन दिनो मे भी ऐसे व्यक्ति हुए है। मेरे मित्र श्री महावीर त्यागी ने भारत-सरकार के तत्कालीन खाद्य-मन्त्री स्वर्गीय रफी अहमद किदवई की एक घटना सुनायी थी, जिसे सुनकर वहॉ बैठे हुये मित्रो की ऑखे गीली हो गयी थी।

एक दिन किदवई जी की नई दिल्ली वाली कोठी मे ५-६ मित्र बैठे थे, एक पुराना काग्रेस कार्यकर्त्ता आकर उदासी भरे लहजे मे कहने लगा—"रफी भाई ! लडकी बडी हो गयी है, विवाह तय हो गया है, तीन हजार की जरूरत है इससे कम मे किसी तरह भी काम पार नही पडेगा।" रफी साहब के पास अपना तो था ही क्या ? परन्तु उनके कुछ ऐसे मित्र थे जो उनकी ऊलजलूल फर्माइशो को पूरी करते रहते थे। खैर, उसको तीन हजार रुपये दिला दिये।

उसके जाने के बाद स्व० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने कहा—"रफी तुम भी अव्वल दर्जे के बेवकूफ हो, फिजूल मे रुपये ठगा बैठे। उस साले की शादी तो हुई ही नही, फिर यह बेटी कहॉ से आ टपकी ?" किदवई जी ने मजूर किया कि वे भी जानते है कि न तो उसकी शादी हुई है और न उसके बेटी ही है। फिर तो त्यागी जी ने किदवई जी को बुरा-भला कहना शुरू किया—"वजारत से कुल बाइस सौ रुपये मिलते है, वे तो नवाब साहब पॉच-चार दिनो मे खर्च कर दिया करते है। भला, यह भी कोई बात हुई ?"

देखा गया कि किदवई जी की ऑखो मे ऑसू आ गये, कहने लगे—"भाई मेरे, यह बेचारा जरूर किसी आफत मे पड गया होगा तभी तो बेटी की शादी का नाम लेकर रुपया मॉगने आया था। भला मै उसको बेईमान साबित करने बैठता या मुसीबत मे थोडी-सी सहायता करता ? जिनसे दिलाता हू, वे तो लखपति-करोडपति है। उनके लिए १०-२० हजार मे क्या फर्क पडता है।"

कहते है कि जब पडित नेहरू स्वर्गीय किदवई जी के गॉव गये और उन्होने टूटे खपरैलो का उनका छोटा-सा मकान देखा तो उन्हे रुलाई आ गयी थी। चारो तरफ गरीबी और अभाव नजर आ रहा था। उन्होने बेगम से पेशन लेने को बहुतेरा कहा, परन्तु उनका जवाब था, "जवाहर भाई, मुझे ऐसे शख्स की बेवा होने का फख्र हासिल है जिसने अपनी सारी जिन्दगी फाका-मस्ती मे गुजार दी परन्तु उम्र-भर दोनों हाथो से ज़रूरतमन्दो को दिया ही दिया। भला, अब मैं ज़िन्दगी के आखिरी दिनो मे सरकार से पेशन लेकर क्या करूँगी ? आखिर मेरा अकेली का खर्च ही कितना है ?"

●

बलजी-भूरजी

आज से सत्तर-अस्सी वर्ष पहले राजस्थान के शेखावाटी अचल मे बलजी-भूरजी धाड़ैतो (डाकुओ) का बडा दवदबा था। लोग उनके नाम सुनकर ही कापने लगते। ऐसी भी घटनाए सुनने मे आई कि १००-१५० बारातियो के हथियारो से लैस दल को बलजी-भूरजी के ५-६ साथियो के सामने अपना सामान और धन-दौलत रख देना पडता था।

जो भी हो, उनका एक नियम था, उन्होने कभी भी ब्राह्मण, हरिजन, गाव की बहन-बेटी अथवा दु खी-दरिद्र को नही सताया। इनके प्रति वे इतने सदाशय रहे कि कई बार तो प्राणो की बाजी लगाकर या गिरफ्तारी की जोखिम उठाकर भी वे गरीब ब्राह्मणो की कन्याओ के विवाह मे मायरा (भात) भरने के लिए आया करते थे।

कुछ वर्षो बाद, उनके नाम का नाजायज फायदा उठाकर नानिया नाम का एक म्गा (राजस्थान की एक नीच जाति) अपने को बलजी बता कर निरीह लोगो को सताने लगा। इस बात की चर्चा बलजी-भूरजी तक भी पहुची, किन्तु उन्होने इसे गम्भीरता मे नही लिया।

इसी बीच एक वारदात हो गई। बिसाऊ नाम का कस्बा शेखावाटी के उत्तरी कोने मे है। यहा के सेठ खेतसीदास पोद्दार अत्यन्त सरल और धर्मप्राण व्यक्ति थे। उनके दान-पुण्य की चर्चा पास पडोस के अचल मे फैली हुई थी। लोग उनका नाम बडे आदर के साथ लिया करते थे। जरूरतमन्दो को वे गुप्तरूप से सहायता करते, नाम या शोहरत की उन्होने परवाह कभी की नही।

एक दिन सेठ जी अपने चीलिये ऊट पर सवारी कर पास के गाव मे रिश्तेदारी मे जा रहे थे। उनके इस ऊट की चर्चा आस-पास गावो और कस्बो मे थी। वह सवारी मे जितना आरामदेह था, उतना ही चाल मे चील की तरह तेज था, इसीलिये उसका नाम चीलिया पड गया था। आमतौर से सेठजी के साथ सफर मे हमेशा एक-दो ऊट या घोडे और दो-चार सरदार रहते थे किन्तु सयोग की बात है कि उस दिन वे अकेले ही थे।

पोष की सध्या थी। हल्की सर्दी पडने लगी थी, झुरपुटा हो चला था। सेठजी ने देखा कि कुछ दूर रास्ते के किनारे एक अर्धनग्न वृद्ध उन्हे रुकने का सकेत कर रहा है। तेजी से ऊट बढाकर वे उसके पास पहुचे।

पूछने पर पता चला कि वह भी उसी गाव जा रहा है जहाँ सेठजी जा रहे थे। पैर मे मोच आ गयी इसलिए लाचारी से बैठ जाना पडा। जाना जरूरी है, यदि सेठजी उसे साथ ले ले तो बडी कृपा हो।

सेठजी ने ऊट को जैका (बैठा) लिया और सहारा देकर वृद्ध को अपने पीछे बैठाकर ऊट को आगे बढाया।

थोडी देर मे ही उन्हे पीछे से जोर का एक झटका लगा वे ऊट पर से नीचे गिर पडे। दौडते ऊट पर से गिरने के कारण एक बार तो उन्हें गश आ गया, किन्तु किसी तरह से वे सम्हल गये। एक पैर के घुटने की हड्डी टूट गयी, पीडा जोरो से बढने लगी।

ऊट स्वामीभक्त था और समझदार भी। बहुत मारपीट और खीचातानी पर भी वह आगे नही बढा। अड गया और टरडाने (आवाज करने) लगा।

सेठजी ने देखा, ऊट के सवार की सफेद दाढी-मूछे हट चुकी थी, उसकी शक्ल बडी भयावनी दिखाई दे रही थी। असह्य पीडा से वे विकल हो रहे थे, फिर भी स्थिति समझने मे उन्हे देर नही लगी। उन्होने सवार से कहा—"तुम्हारा परिचय जानना चाहूगा।"

डाकू ने मूछो पर हाथ फेरते हुए प्रसन्नता से अट्टहास करते हुए कहा—"मै बलजी का आदमी हू, उनका मन इस ऊंट पर बहुत दिनो से था, पर मौका नही लग रहा था। अब आप या तो इस ऊट को अपने सकेत से मेरे साथ जाने के लिए राजी कर दे, नही तो मुझे आपको इस दुनिया से उठा देना पडेगा।"

सेठजी बडे मर्माहत हुए, उन्हे बलजी-भूरजी से इस प्रकार के धोखे की कल्पना नही थी। उन्हे सहसा विश्वास भी नही हो पा रहा था। उन्होने कहा कि बलजी-भूरजी डाकू जरूर है, पर इस ढग की धोखेबाजी उन्होने की है, ऐसा सुनने मे अब तक नही आया। मुझे इस बात मे कुछ धोखा-सा लगता है। खैर, तुम जो कोई भी हो, तुम्हे जीण माता की सौगन्ध है कि आज की इस घटना की बात कही भी नही कहना। तुम चाहो तो ऊट के साथ सौ-दो सौ रुपये और दे दूगा!

डाकू ने देखा कि उसका पाला एक अजीब आदमी से पडा है। ऊट तो जा ही रहा है, कुछ रुपये देने को तैयार है। ताज्जुब तो यह घटना के बारे मे चुप रहने की शर्त रखता है!

कुछ असमजस से उसने सेठजी से शर्त को समझाने के लिए कहा। सेठजी ने बताया कि वे डरते है कि इस घटना की चर्चा यदि फैली तो भविष्य मे लोग अपरिचित बूढो या असहाय राहगीरो की सहायता करने से डरेगे। उन्हे इसमे धोखा नजर आएगा। मनुष्य का अपनी ही जाति पर से विश्वास उठ जाएगा। तुमने बेकार ही इतना सब किया। तुम्हे ऊट इतना पसन्द था, मुझसे यू ही मॉग लेते।

इतनी बाते सुनने पर भी डाकू ने सेठजी से ऊट को चलाने के लिए इशारा देने को कहा। सेठजी ने इशारा किया और ऊट चल पडा। डाकू ने उन्हे उसी घायल हालत मे बियावान जगल मे छोड दिया।

दूसरे दिन सेठजी को ढूढते हुए लोग वहाँ पहुचे और उन्हे घर ले गए। क्या हुआ, ऊट कैसे गया, इसकी चर्चा को उन्होने टाल दिया।

असलियत बहुत दिनो छिपाये छिपती नही। बलजी-भूरजी को सेठजी के ऊट गायब हो जाने की खबर लग गयी और यह भी पता चला कि नानिया रूगा के पास वह ऊट है। वे सारी बाते समझ गए।

कुछ ही दिनो बाद सेठजी का ऊट उनके नोहरे मे बधा हुआ मिला। उसके गले मे बधी एक दफ्ती पर लिखा था—"सेठ खेतसीदासजी को बलजी-भूरजी की भेट। वे डाकू जरूर है, पर धोखेबाज नही।"

ठीक इसी के दूसरे दिन नानिया रूगा की लाश झुझनू के पास की पहाडी की तलहटी मे पाई गई।

भूरी की नानी

बात बहुत पुरानी है, पर लगता जैसे कल की हो। भूरी की नानी जाति से वैश्य, दुबली-पतली-सी काठी, साँवले रग और साधारण नाक-नक्शे की थी। प्रौढ अवस्था पार कर वह बुढापे की ओर बढ रही थी। प्रात ४ बजे से रात्रि के १० बजे तक काम करती रहती। अपना काम तो था ही क्या ? परन्तु लोग उसकी कमजोरी पहचान गए थे। "नानी तुम्हारे बिना यह काम पार नही पडेगा" बस इतना कहना ही पर्याप्त था। फिर तो वह काम मे जी-जान से जुट जाती और रात-दिन एक कर देती।

नानी की बेटी या दोहती 'भूरी' को शायद ही किसी ने देखा होगा। दोनो बहुत पहले ही मर गई थी। परन्तु भूरी का नाम सुनकर उसे ३० वर्ष पहले की एक बालिका की याद.आ जाती थी और आँखे गीली हो जाती। अब तो वह बच्चो से लेकर प्रौढो तक सब की नानी बन गई थी।

प्रति वर्ष गर्मी मे गाँव के लोग बदरी-केदार की यात्रा पर जाते। रास्ते बीहड थे। आवागमन के साधनो के अभाव मे नाना प्रकार के कष्ट झेलने पडते थे। परन्तु "गया बदरी काया सुधरी" की एक ऐसी मान्यता थी कि बीमार और वृद्ध व्यक्ति भी इस विकट और दुर्गम यात्रा के लिए तैयार हो जाते थे।

महीनो पहले से ही साथ ले जाने वाले सामान की तैयारी होने लग जाती, जैसे गरम कपडे, छाता, सूखा साग, फीके-मीठे पकवान, लौग, जावित्री, जायफल आदि। पास-पडोस के लोगो से मिलकर क्षमा-याचना भी कर ली जाती कि शायद वापस आना न हो सके।

उन दिनो नौकरो का २) रु० माहवार वेतन भी लोगो को भारी लगता था। अत यात्रा मे सब लोग आपस मे मिलकर सारा काम कर लेते थे। वैसे तो यात्रियो की सख्या २५-३० तक हो जाती थी, परन्तु वे सब ५-७ दलो मे बँट जाते। यात्रा के बहुत दिनो पहले से ही भूरी की नानी से लोग वचन ले लेते कि वह उनके साथ जायगी क्योकि, सिवाय खाने के उसे और कुछ तो देना नही पडता था और काम करती चार आदमियो के बराबर। इसके सिवा कई बार उत्तराखण्ड की यात्रा कर चुकी थी, अत एक अच्छे 'गाइड' का काम देती थी। किस चट्टी मे ठहरने की सुविधा है, कहाँ देखने योग्य क्या-क्या है—यह सब उसे भलीभाँति मालूम था।

नानी जिनको पहले वचन दे देती, उनके ही साथ जाती। उसके बाद नजदीक के सम्बन्धियो के दबाव पर भी अपनी बात नही बदलती।

लगभग २५ वर्ष पहले हम लोग बदरी-केदार गए थे। भूरी की नानी को हमने पिछले वर्ष से ही कह रखा था—इसलिए वह हमारे दल के साथ थी।

ऋषिकेश से ही पैदल, टट्टू पर अथवा डाडी मे जाना पडता था। उन दिनो साबित रुपये को भुनाना आज के एक सौ के नोट के बराबर होता था। सामान ढोने के लिए लोग कुली नही करते थे। अपना-अपना बोझा स्वय लेकर चलते थे। शुरू के दिनो मे तो सभी राजी-खुशी जाते, परन्तु बाद मे किसी को दस्त, किसी को बुखार या किसी को सिर-दर्द की बीमारी हो जाती। तब नानी अपनी गठरी के अलावा बीमार व्यक्तियो का बोझा भी जिद्द करके ले लेती।

सात-आठ मील चलने के बाद लोग जब किमी चट्टी पर पहुचते तब थकावट से चूर-चूर होकर लेट जाते। जितने ज्यादा पैर दुखते, उससे कही अधिक पेट की भूख बढी हुई होती। ऐसी हालत मे खाना बनाना भी एक समस्या थी। परन्तु नानी को कहने की आवश्यकता नही

पडती । चूल्हे पर दाल चढाकर आटा गूँधने वैठ जाती । कभी-कदाच हम लोग पूछते—"नानी, कितनी बार वदरी आ चुकी हो ?" उत्तर मे वह दोनो हाथो की ८ या ६ अगुलियाँ दिखा देती । वह कहती कि मुँह से कहने पर 'पुन्न' घटता है ।

जैसे-जैसे ऊपर पहुँचते सर्दी वढने लगती । नानी के पास ओढने के दो कम्बल और विछाने की एक चादर थी । जोशीमठ पहुँचने के पहले ही नानी ने अपना एक कम्वल किसी दक्षिणी साधु को दे दिया । जव हम जोशीमठ पहुँचे तव रात हो गई थी । थोडी वर्षा भी शुरू हो गई थी । चट्टी के बारामदे मे एक वृद्धा सर्दी से ठिठुर रही थी । भूरी की नानी ने अपना वचा हुआ कम्वल उसको ओढा दिया । साथ वालो ने इस पर उसे वहुत बुरा-भला कहा ।

सर्दी से वचाव के लिए साथ की एक महिला ने उसे अपना एक कम्वल उधार दे दिया ।

जहाँ भी हम लोग पहुँचते, पता नही क्यो भूखे व नगे लोग उसे ही घेरे रहते । हनुमान चट्टी पहुँचे तव तक सर्दी बहुत वढ गई थी । नानी ने उधार लिया हुआ कम्वल एक गरीव महिला-यात्री को दे दिया । जिस महिला का कम्बल था, वह गाली-गलौज पर उतर आयी । "पास नही धेला, चली है दानी-कर्ण वनने को" । दूसरे लोग शायद वीच-बचाव करते, परन्तु वे नानी की इस आदत से खिचे हुए थे ।

वैसे रसोई बनाते समय दोनो वक्त दो-चार व्यक्तियो को वह चुपचाप रोटी दे देती थी और यह वात वर्दाश्त भी कर ली जाती । लेकिन धीरे-धीरे किसी की जाकेट कम होने लगी तो किसी की चद्दर, जिन्हे नानी दूसरे जरूरतमन्द लोगो को चुपके से दे देती थी ।

मैंने देखा कि उसे लोग चोट्टी तक कहे जा रहे थे और वह सबके कटु-वाक्य चुपचाप सुन रही थी । उसकी आँखो से अश्रुधारा बह रही थी ।

अगले दिन नानी को दल से एक प्रकार अलग-सा कर दिया गया । जब दूसरे साथी पीछे रह गए, मैंने उससे पूछा कि उसने ऐसा काम क्यो किया ? थोड़ी देर बाद उदास मनसे कहने लगी, "इन लोगो के पास तो जरूरत से ज्यादा कपडे है, पर जिनको दिया गया, वे सर्दी से ठिठुर रहे थे । बच्चो के साथ भला वे इस प्रकार की ठढक कैसे सह पाते ? मै देश जाकर मजदूरी करके इन सबकी कीमत चुका दूँगी ।"

सोचने लगा कि नानी ने न तो मार्क्स पढा और न एञ्जिल्स् । फिर पता नही किस प्रकार से इन अपरिग्रह व समता के सिद्धान्तो का उसे ज्ञान हो गया । शायद, मानवीय सवेदना सिद्धान्तो की मुखापेक्षी नही होती । सहज करुणा की अनुभूति किसी भी पुस्तकीय ज्ञान मे वडी है ।

लौटते समय भी वह रसोई वगैरह का काम तो उसी प्रकार से करती रही, परन्तु अब उसमे वह उत्साह नही रह गया था । सदैव उदास, डरी-डरी और सहमी हुई-सी रहती । जब भी दो-चार व्यक्ति कोई बात करते तो वह समझती कि उसकी ही चर्चा हो रही है ।

हरिद्वार आने पर कुछ लोग मथुरा-वृन्दावन चले गए, कुछ वापस राजस्थान । सभी लोगो ने आपस मे एक दूसरे से क्षमा-याचना की, आलिगन किया । परन्तु नानी सबसे अलग एक कोने मे खडी थी, उससे बातचीत करने की शायद किसी ने जरूरत ही नही समझी । लोगो ने यह नही पूछा कि उसके पास वापस देश जाने के लिये खर्चा है या नही !

हमे वहा से काशी जाना था । हमने नानी को साथ चलने के लिए कहा परन्तु उसने ना कह दिया, उसके मन मे एक प्रकार की झेंप-सी आ गई थी । ऐसा लगा कि कुछ दिनो के लिए वह एकान्त चाहती है । विदा होते समय मैंने नानी को कुछ रुपये देने चाहे, परन्तु उसने नम्रतापूर्वक मना कर दिया । वैसे उसकी अपनी जरूरते थी कितनी ?

ट्रेन मे बैठा हुआ मै समाचार-पत्र पढने का प्रयत्न कर रहा था, परन्तु रह-रह कर नानी की बात याद आ जाती थी । सोचने लगता था कि क्या वास्तव मे नानी चोर है ? उसके पास तो दो धोती और दो चद्दर के सिवा कुछ भी नही है ।

दुःख में सुख

पुराने जमाने मे राजस्थान मे ऐसी मान्यता थी कि अगर व्यक्ति की अर्थी मे पुत्र का हाथ नही लगे या क्रिया-कर्म करने के लिए पुत्र न हो तो उसे मोक्ष नही मिलती। इसीलिए वहाँ निपूते की बहुत खराब गाली मानी जाती थी। पुत्र प्राप्ति के लिए लोग व्रत-पूजन और कठिन तपस्या करते थे।

शेखावाटी अचल के एक शहर मे धनाढ्य सेठ थे। सब प्रकार की धन सम्पत्ति से भरा-पूरा घर होने पर भी सन्तान के बिना पति-पत्नी दु खी रहते थे। अनेक प्रकार के व्रत उपवास, दान-धर्म और तीर्थ-यात्रा की, परन्तु परमात्मा ने उनकी नही सुनी। प्रौढावस्था होने लगी तब एक प्रकार मे निराश हो गए। पडोस मे उन्ही की जाति का एक गरीब परिवार था जिनके यहाँ सात लडके थे। एक दिन पति-पत्नी उनके घर गये। देखा कि डेढ-दो वर्ष से लेकर १४-१६ वर्ष तक के बच्चे आगन मे खेल रहे थे। उन्हे देख कर दोनो की आँखे भर आई। सेठानी ने गृह-स्वामिनी से कहा कि बहिन, लोग मुझे निपूती कहकर ताना देते है। तुम्हारे सेठजी जब दूकान मे सूने घर मे आते है तो दु खी से रहते है। मै तुम्हारे से आँचल पसार एक की भीख माँग रही हूँ। परमेश्वर ने तुम्हे सात दिये है, इनमे से सात सौ हो जाये।

बहुत आरज़ू-मिन्नत के बाद भी उन लोगो को निराश वापस लौटना पडा।

फतेहपुर (शेखावाटी) के पास एक टीले पर नाथ सम्प्रदाय के एक महात्मा जी रहते थे। सब प्रकार मे निराश होकर एक दिन वे उनकी शरण मे गए और पैर पकडकर रोने लगे।

कहते है कि नाथजी महाराज वचनसिद्ध थे। [illegible] कहा कि अकाल का वर्ष है। भूखे-नगे बच्चो का पालन करो, भगवान तुम्हारी [illegible]

अपने गाँव आकर एक बडे नोहरे मे गरीबो [illegible] बच्चो को खिलाने-पिलाने लगे। दोनो पति-पत्नी सारे दिन उनकी देख-भाल करते [illegible]।

भगवान कृपा मे एक वर्ष के भीतर ही उनके घर मे पुत्र-जन्म हुआ। उस अवसर पर सेठजी ने जी खोलकर दान-धर्म और पूजा-पाठ किया। सारे गाँव मे मिश्री-बादाम भेजे।

बच्चे को लेकर वे नाथजी महाराज की सेवा मे गए। महाराज जी ने कहा कि आप दोनो की अवस्था भगवान के भजन करने की है। समार की मोह-माया मे जितना कम पडोगे

उतना ही अच्छा है ।

सेठ-सेठानी उस समय इतने हर्ष-विभोर थे कि नाथ जी की इस गूढ बात पर उन्होने ध्यान नही दिया ।

सुख के दिन बीतते देर नही लगती । देखते-देखते बिहारी सोलह वर्ष का हो गया, बहुत ही सुन्दर, स्वस्थ, शिक्षित और विनयी ।

दीपावली के बाद वे प्रतिवर्ष महाराज जी के पास धोक खाने को बिहारी के साथ जाते थे । उस बार उन्होने जब उसके विवाह करने की आज्ञा चाही तो महाराज जी ने टाल-मटोल कर दी और कहा कि इतनी जल्दी क्या है ?

लाड-प्यार का इकलौता बालक था । सेठ-सेठानी कभी उसे आँखो से ओझल नही होने देते । कभी-कदाच उसका पेट या सिर दुखने लगता तो वैद्य-डाक्टर से घर भर जाता । परन्तु कहते हैं कि मृत्यु सौ रास्ते बना लेती है ।

राजस्थान मे जिस दिन अच्छी वर्षा हो जाती है, लोग हर्ष विभोर होकर जोहड-तालाब मे कितना पानी जमा हुआ है, यह देखने को जाते है । पानी को माथे से लगाकर आचमन करते है ।

ऐसे ही एक दिन बिहारी मित्रो के साथ गाँव के जोहडे पर गया था । आचमन करते समय पैर फिसल गया और क्षण भर मे ही जलमग्न हो गया । बहुत बडा तालाब भी नही था, परन्तु साथियो के बहुत प्रयत्न करने पर भी कुछ फल नही निकला ।

सेठ-सेठानी का बुरा हाल था । पागल-से हो गए, तालाब मे डूबने के लिए जिद्द करने लगे, लोगो ने मुश्किल से पकड रखा ।

दूसरे दिन ही दोनो महाराज जी के टीले पर जाकर उनके पैर पकडकर बैठ गए । कहने लगे कि आपने हमे इस बुढापे मे उल्टा दु खी कर दिया, इससे तो अच्छा होता कि हमारे पुत्र पैदा ही न होता ।

महाराज जी ने समझाने का प्रयत्न किया कि जो कुछ होता है सब ईश्वर को इच्छा से होता है और मनुष्य को उसे शिरोधार्य करना ही चाहिए । बिहारी से तुम्हारा इतने दिनो का ही सम्बन्ध था ।

बहुत विनती-प्रार्थना पर महाराज ने कहा कि गरीब और अनाथ बच्चो के लिए एक स्कूल खोलकर उनकी पढाई की और रहने-खाने की व्यवस्था करो ।

सेठ जी ने अपने एक मकान मे इस प्रकार के छोटे बच्चो का एक स्कूल खोल दिया । दोनो पति-पत्नि दूसरे सारे कार्यो को छोडकर सुबह से शाम तक उनकी शिक्षा, देखभाल और खाने-पिलाने की व्यवस्था करने लगे ।

बच्चे उनसे इतने हिल-मिल गए कि उन्हे 'माताजी', 'पिताजी' कहने लगे । वे कभी उनकी गोद मे आकर बैठ जातें तो कभी पीछे से आकर आँखे बन्द कर देते । कभी-कदाच कोई बच्चा बीमार हो जाता तो उनके हाथ से दवा लेने की जिद्द करने लगता ।

सदा की भाति, दीपावली के बाद वे दोनों दर्शन और चरण-स्पर्श के लिए महाराज जी के पास गए । उन्होने पति-पत्नि को सुखी रहने का आशीष दिया और हाल चाल पूछा ।

सेठ सेठानी का उत्तर था, "महाराज आपके आदेश का हम पालन कर रहे है । अब हम सुखी है, परम सुखी! हमे पाठशाला के बच्चो मे अपना बिहारी मिल गया ।"

●

लक्ष्मी बहन

बचपन मे देखते थे कि माँ और चाची जब बडी-बूढियो के पैर छूती तो उन्हे सात पूत की माँ होने की आशीष मिलती। हमारे मुहल्ले मे एक माँजी थी। उनके सात लडके, उनकी बहुऐं और बहुत से पोते-पोतियाँ थी।

वार-त्यौहार पर सधवा स्त्रियाँ उनसे आशीर्वाद लेने के लिए जाती थी, क्योकि सात पुत्रो की माँ होना उस समय गौरव और शुभ-लक्षणो की बात मानी जाती थी।

ऐसा लगता है कि उन दिनो जमीन के अनुपात मे जनसख्या बहुत कम थी। यांत्रिक खेती थी नही, इसलिए हर प्रकार के उत्पादन के लिए ज्यादा आदमियो की आवश्यकता रहती थी। इसके सिवा छोटे-छोटे राज्य थे, जिनमे आपस मे आए दिन लडाइयाँ होती और उनमे भी लडने के लिए सिपाहियो की जरूरत रहती।

विधवा और बाँझ महिला को अशुभ माना जाता था। परदेश विदा होते समय यदि सयोग से कभी इस प्रकार की स्त्री रास्ते मे मिल जाती तो बुरा मुहूर्त समझ कर वह यात्रा स्थगित कर दी जाती। विदा के समय सगी चाची या ताई भी अगर विधवा होती तो सामने आकर आशीष नही देती थी। इसी सन्दर्भ मे उन दिनो की एक घटना मुझे याद है।

हमारे मोहल्ले मे लक्ष्मी बहन सर्वमान्य और सर्वप्रिय थी। छोटे-बडे सब उसका आदर करते थे। अपने माता-पिता की वह पहली सन्तान थी। उसके बाद लगातार पाँच पुत्र हुए और घर मे धन-सम्पदा भी बढती गई।

उन दिनो, लडकियो के विवाह बचपन मे ही हो जाते थे। परन्तु लक्ष्मी अपने पिता की लाडली बेटी थी, इसलिए वे १८ वर्ष तक उसे बालिका ही समझते रहे। आखिर बहुत खोज-बीन के बाद एक सम्पन्न परिवार मे उसकी शादी तय हुई। विवाह मे माता-पिता ने दिल खोलकर सब किया। वर-पक्ष को बहुत बडे दहेज के अलावा, लडकी को कीमती गहने-कपडो से लादकर विदाई दी। उसकी सास का तो विवाह से पहले देहान्त हो गया था। ससुराल में जेठानियाँ थी। उसके रूप और धन से उन्हे ईर्ष्या होने लगी। उसे हर समय उनके कटु वचन सुनने पडते। उन सबको खुश करने के लिए वह रात-दिन काम मे जुटी रहती। पीहर से जो चीजे आती, वे सब उनके पास ही भेजती, परन्तु उनको इसमे भी लक्ष्मी के पिता का दिखावा नजर आता।

तीन-चार वर्ष तक जब उसके सन्तान नही हुई तो उन्होने देवर के कान भरने शुरू कर दिए कि वह बाँझ है। दूसरी शादी करनी चाहिए। पति अपनी बीमारी के बारे मे जानता था। परन्तु पुरुष भला अपना दोष कब स्वीकार करता है?

लक्ष्मी जब पीहर आती बहुत ही उदास और मुरझाई हुई रहती। माता या भौजाई के

बहुत पूछने पर भी बात टाल देता। थोड़े दिनो बाद क्षय-रोग से पति मर गया। उस समय तक यह रोग असाध्य-सा माना जाता था। बाईस वर्ष की अवस्था मे लक्ष्मी विधवा होकर रोती-बिलखती पिता के घर आ गई। उसके बाद भी दो-एक बार ससुराल गई थी परन्तु उसके साथ वहाँ बहुत ही अशोभनीय व्यवहार किया गया। तरह-तरह की भद्दी गालियाँ भी दी गई। शुरू से ही वह स्वाभिमानी स्वभाव की थी तथा मान-सम्मान के वातावरण में पली थी इसलिए सारे गहने और कपडे उन्हे सौपकर केवल एक साडी पहने पिता के घर आ गई। इसके बाद, ससुराल वालों ने उसकी खोज-खबर कभी नही ली।

कुछ वर्षो बाद माता-पिता का देहान्त हो गया। अब लक्ष्मी बहिन ही उस सम्पन्न परिवार की वास्तविक मालकिन थी। भाई और भाभियाँ उसकी हर इच्छा को आज्ञा की तरह मानकर चलते।

सुबह से शाम तक साधु-सन्यासी, गरीब और जरूरतमन्द उसे घेरे रहते। सबको प्रेमपूर्वक उत्तर देती और सहायता करती। अपनी कोई सन्तान नही हुई, परन्तु गरीब ब्राह्मणो की कन्याओ के बहुत से विवाह उसने सम्पन्न कराये, जिनमे कन्यादान अपने हाथो कराया। विवाह के बाद भी बार-त्यौहार पर उनको बुलाती रहती।

राजस्थान के उस इलाके मे कई बार अकाल पड़े। उन दिनो लक्ष्मी बहिन को उसके भाइयो के आसामी घेरे रहते। किसी को अपने कर्ज की अदायगी मे मोहलत चाहिए तो किसी को नया कर्ज। उसके पास से निराश होकर शायद ही कोई लौटता था। कभी-कभी भाई नाराज भी होते, परन्तु बहिन की बात टालने की हिम्मत उन्हे नहीं होती। अपने माँ-बाप से बच्चे नही डरते थे, पर क्या मजाल कि बुआ के सामने कुछ भी गलत-सही बात करे या झगडा-झझट करे। कभी-कदाच आपस मे लड लेते तो दोनो पक्ष उसके पास शिकायत लेकर पहुँचते।

समय पाकर पहले भतीजे का विवाह मडा (तय हुआ)। बारात पास के गाँव मे जाने को थी। निकासी पर वर की घुड़चढी के समय आरती करने का नेग बुआ का होता है। वर को बुआ ने ही पाल-पोसकर बडा किया था। वह उसे अपने पेट के जन्मे पुत्र से भी ज्यादा प्रिय था। स्वय विधवा और निस्सन्तान थी, इसीलिए अमगल के डर से आरती के लिए उसने किसी दूर के सम्बन्ध की बुआ को बुला लिया था। यहाँ तक तो सब ठीक चल रहा था, परन्तु एक बार वह अपने भतीजे को वर-राजा के वेश मे सेहरा पहने हुए देखना चाहती थी। उसके मन मे बहुत दिनों से इसकी साध थी।

नेगचार के बाद जब बारात की रवानगी का समय आया तो (प्रथानुसार) घोडी पर चढने के पहले वर बडे-बूढो के पैर छूने लगा। माता-पिता के पैर छूकर वह जब बुआ की तरफ आने लगा तो उसके पिता ने रोक लिया। बहन को भी गुस्से मे बुरा-भला कह दिया, "इस शुभ वेला मे तुम्हें कुछ तो खयाल रखना चाहिए था। असगुन करने को हर समय बीच मे आ जाती हो।"

शायद, एकान्त मे समझा कर कहने से वह स्वय ही नही आती, परन्तु सैकडों सगे-सम्बन्धियो के बीच इस प्रकार के अनधारे अपमान से बुआ का हृदय तिलमिला गया। उसे लगा जैसे वह सिंहासन से उतार कर कीचड मे गिरा दी गई है। थोड़ी देर तक तो वह फटी-फटी आँखों से देखती रही, फिर जोर-जोर से रोते हुए कहने लगी—"वर्षो से घर मे रात-दिन मेहनत करती रही हूँ। सर्दी-गर्मी की परवाह किए बिना तुम्हारे बच्चो को पाल-पोस कर बडा किया है। आज मै कुलक्षणी और अमगली हो गई! इसलिए अपने गिरधारी की बारात भी नही देख सकती! जिसको मैंने बीस वर्ष तक पाला-पोसा है, भला उसका मैं अमंगल चाहूँगी? इसके पहले ही मेरी आँखे न फूट जायँगी!" रोते हुए अचेत होकर कटे वृक्ष की तरह गिर गई।

उसके प्रति लोगो के मन मे अटूट श्रद्धा-भक्ति थी। इस अप्रत्याशित काण्ड से उन सबके मन मे भय-सा समा गया। अब तो भाई भी बहुत पछता रहे थे, परन्तु कही हुई बात तो वापस आ नही सकती। बारात का मुहूर्त टला जा रहा था, परन्तु वर अन्य सब बच्चो के साथ बुआ के पास बैठकर बच्चो की तरह रोने लग गया था। बहुत समझाने-बुझाने पर भी वह उठना नही चाहता था। थोडी देर बाद लक्ष्मी बहन को चेत होने पर वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ। सुसंस्कृत और प्रतिष्ठित घराने की बेटी थी। अच्छे-बुरे की पहचान भी पूरे तौर थी। शीघ्र ही एक नतीजे पर पहुँच गई। वर को उठाकर छाती से लगाकर विदा होने का आदेश देकर जल्दी मे कमरे मे जाकर किवाड बन्द कर लिए।

हजारी दरोगा

राजस्थान के बीकानेर राज्य मे उस समय एक महाराजा का शासन था। खुशामदी लोग कहते थे कि चोर-डाकू राज्य की सीमा मे घुसने की हिम्मत नही करते, अन्नदाता के पास घूसखोर अफसरो की शिकायत पहुँचते ही उन्हे बेइज्जत करके निकाल दिया जाता है आदि। वैसे इन सब बातो मे कुछ तो तथ्य था। जो भी हो, उन दिनो जनता को अपने अधिकारो के बारे मे जानकारी नही थी। यहाँ तक कि तहसीलदार को भी अन्नदाता और मालिक कहकर पुकारते थे। बडे ओहदे आमतौर पर राजपूत छुटभैयो को दिए जाते, चाहे वे पढे-लिखे बिलकुल न हो।

ठाकुरो के गाँव मे दूसरी जातिवाले घोडे या ऊँट पर चढकर नही जा पाते थे। बेगार मे मजदूरी ली जाती थी। किसी ठाकुर के मरने पर गाँव केबडे-बूढो को भी सिर मुँडाना पडता था।

दूसरे सब देशो मे गुलामी प्रथा समाप्त हो गई थी, परन्तु हमारे राजस्थान मे दरोगा जाति के रूप मे बहुत बाद तक यह प्रथा चालू थी। राजाओ और ठाकुरो के विवाह मे दरोगा लडकियो को दहेज मे दिया जाता था। नाम-मात्र के लिए उनके विवाह तो कर दिए जाते, परन्तु वे आमतौर पर कुँवर-साहब की उप-पत्नी के रूप मे रहती थी।

बीदासर के पास के गाँव का एक बडे ठिकाने का जागीरदार महाराजाके यहाँ ऊँचे ओहदे पर था, महाराज का मुँह-लगा था, उसे हर प्रकार के अत्याचार करने की छूट थी। लोग तो यहाँ तक कहते थे कि उसके सात खून माफ है। उसी गाँव मे हजारी नाम का दरोगो का लडका था। बचपन से ही कुश्ती-दगल लडता था। घर मे गाय-भैस थी, खाने-पीने की कमी नही थी। १८ वर्ष की उम्र मे ही पास-पड़ोस मे उसके बल-पौरुष की ख्याति फैल गई थी।

एक दिन पास के कस्बे मे एक राजपूत पहलवान आया। पैर मे साँकल डाले सात दिन तक घूमता रहा, परन्तु किसी की हिम्मत साँकल रोकने की नही हुई। लोग हजारी के बाप के पास जाकर कहने लगे,गाँव की इज्जत का प्रश्न है। हमेशा के लिए यह बात चालू रह जायगी कि अमुक गाँव मे कोई भी मर्द नही था। बहुत डरते हुए उसने बेटे को उनके साथ भेज दिया। कस्बे मे जाकर हजारी ने पहलवान के पैर की साँकल रोक ली—जिसका अर्थ था, उससे दगल करना।

कुश्ती के दिन आस-पास के गाँवो के भी हजारो व्यक्ति जमा हो गए। वे सब सहमे-से थे, कहाँ तो दैत्य-सा पहलवान और कहाँ बेचारा हजारी जिसकी अभी मसे ही नही भीगी थी।

जोड शुरू होते ही लोगो ने देखा कि हजारी ने पहलवान को सिर पर उठा लिया और थोडी देर तक इधर-उधर घुमाकर बडे जोर से एक तरफ फेंक दिया। फिर तो भिडने की हिम्मत ही उसकी नही हुई। शर्मिन्दा-सा एक तरफ के रास्ते से बाहर चला गया। वहाँ जो राजपूत सरदार मौजूद थे, उन्होने इसमे अपनी जाति का अपमान महसूस किया। एक दरोगा के छोकरे ने नामी राजपूत घराने के सरदार की हजारो व्यक्तियो के सामने बेइज्जती कर दी! वे लोग ठाकुर साहब के पास शिकायत लेकर गढ मे पहुँचे। परन्तु उस समय लोगो का रुख देखकर बात आई-गई कर दी गई। फिर भी वे सब मौका देखकर बदला लेने की ताक मे रहने लगे।

थोडे दिनो बाद हजारी का विवाह हुआ। प्रथा के अनुसार बहू रावले मे ठाकुरानी जी के पैर छूने गयी। नई बहू बहुत ही सुन्दरी थी। सयोग से ठाकुर साहब ने उसे देख लिया और खवास को उसे रात मे हाज़िर करने को कहा। जाति-बिरादरी के लोगो को बहुत समझाने पर भी हजारी बहू को रावले मे भेजने को तैयार नही हुआ। खवास को एक प्रकार से धमकाकर अपने घर से निकाल दिया। दूसरे दिन गढ मे उसकी बुलाहट हुई। उसने खवास को गाली-गलौज दी, इसकी कैफियत माँगी गई। उसका कहना था कि महाराज आप तो मेरे पिता जी की आयु के है और गाँव के मालिक होने के कारण हमारे पिता-तुल्य है, इसलिए मेरी पत्नी आपकी पुत्री के समान है परन्तु इस खवास ने उससे बहुत ही गन्दी बाते कही, इसलिए मैंने भी इसे गुस्से मे कुछ कह दिया था।

एक दरोगा के लडके की ठाकुर साहब के सामने ऊँची नजर करके यह सब कहने की हिम्मत उस जमाने मे अभूतपूर्व घटना थी। कुछ पुरानी अदावत थी ही, मुसाहिबो ने कहा कि महाराज, यह तो आँखे दिखाता है और अपनी पत्नी को आपकी पुत्री बनाकर स्वय जमाई बनता है, इसलिए इसकी आँखे निकाल देनी चाहिए।

ठाकुर साहब गहरे नशे मे थे, हुक्म हुआ, "इसकी आँखो मे लोहे की गरम सलाखे डाल दी जाए!"

उसी समय उसे पकड कर बाँध दिया गया। लोहे की बडी-बडी सलाखे गरम की गई और गाँव के सैकडो लोगो के सामने उसकी आँखो मे भोक दी गयी। उसके बाप-माँ और पत्नी एक कोने मे खडे उसकी करुणा-भरी चीख-पुकार सुनकर सुबुक रहे थे।

महाराज को सूचना दी गयी, परन्तु वहाँ से भी न्याय नही मिला, क्योकि ठाकुर उनका ए० डी० सी० था।

हजारी के घरवालो ने सोचा कि अब बहू की इज्जत भी शायद ही बच पाये, इसलिए सब दूसरे गाँव मे जाकर रहने लगे।

बीदासर के एक सेठ उस ठाकुर के मित्र थे। एक दिन वे ठाकुर साहब की न्याय-प्रियता की प्रशसा करते हुए कहने लगे कि हजारी को दण्ड तो कुछ कडा जरूर दिया गया, परन्तु इन छोटी जातिवालो को सिर पर चढाना भी अच्छा नही रहता। पद और उम्र मे वे मेरे से बडे थे, परन्तु मुझे उस दिन कुछ ज्यादा ही गुस्सा आ गया था इसलिए कह बैठा—"आप शायद ठाकुर साहब की हुक्म-उदूली नही करते और रावले मे अपनी बहू को भेज देते।" मैंने देखा कि वे मेरी बात सुनकर बहुत ही क्रोधित हो गए है।

मैंने हजारी को सन् १९५७ के शुरू मे देखा था। राजाओ के राज्य समाप्त हो चुके थे। वे भी साधारण लोगो की तरह वोट माँगते फिर रहे थे। उस समय वह ५०-५५ वर्ष का हो गया था। झुर्रियो से भरे चेहरे पर एक असीम शोक की छाया नजर आती थी। दुःख और सन्ताप ने उसे असमय मे ही वृद्ध बना दिया था। पत्नी दूसरो के घर झाडू बर्त्तन का काम करके कुछ कमा लेती थी, जिससे दोनो किसी तरह उदर-पूर्ति करते थे।

विवाह होते ही जो घटना हो गई थी, उससे कुछ ऐसी ग्लानि उन दोनो के मन मे हुई कि

उन्होने प्रतिज्ञा कर ली कि 'ठाकुरो के लिए गुलाम बच्चे पैदा नही करेगे' और वे वानप्रस्थियो की तरह रहने लगे थे ।

मेरे साथ उसी कस्बे के कुछ कार्यकर्त्ता थे, उनका हजारी से अच्छा सम्पर्क था । उनके साथ हजारी के घर गया । जीवन-चर्या के बारे मे पूछताछ की । शुरू मे तो हजारी की पत्नी को थोड़ी-सी झिझक हुई, परन्तु कुछ देर के बाद ऐसा लगा कि बहुत दिन पहले की ढँकी हुई परतें उधेडने मे उसके दिल का बोझ हलका हो रहा है । कहने लगी, उस दिन इसकी करुणा-भरी चीख सुनकर मैं तो बेहोश हो गई थी । होश आया तो देखा कि बडी-बडी सुन्दर आँखो की जगह खून से सने दो गड्ढे हो गए है । शायद लोहे की सलाखो मे कुछ जहर जैसी चीज थी । पास मे साधन भी नही था कि कुछ दवा-पानी करते । किसी तरह नीम के पानी और पत्तो की सेक से ३-४ महीनो मे घाव भरे । इसी दु ख से मेरे सास-ससुर की मृत्यु हो गयी । भला हो, इन गाँववालो का, जिन्होने हमे सहारा देकर बचा लिया । परन्तु मेरे पति को उस घटना से कुछ इस तरह का सदमा पहुँचा कि बराबर रोगी रहने लगा । इस समय भी कभी-कभी बरसात की रातो मे आँखो मे टीस चलती है तो दर्द से चिल्ला उठता है । ठाकुर के तीन-तीन जवान बेटे है, गाँव की बहू-बेटी की जब चाहे इज्जत ले लेते है । जमीदारी चली गई, परन्तु जमीने तो है ही । इसके सिवा पहले का भी बहुत है । लोग कहते है कि परमात्मा के घर मे न्याय है, परन्तु मुझे तो इसका विश्वास नही होता ।

मैंने देखा कि बात करते हुए, उसकी आँखो से अश्रुधारा बह चली थी ।

राजा भी चुनाव लड रहा था, उसी गाँव मे उसकी मीटिंग थी । लोगो ने स्वागत मे तोरण-दरवाजे बनाए थे । 'अन्नदाता की जय', 'घणी खम्मा' आदि कह रहे थे । काग्रेसी शासन से राजाओ का राज्य अच्छा बता रहे थे । मेरे मन मे हुआ कि हजारी को और उसकी बहू को ले जाकर उन सबके सामने मच पर उपस्थित करूँ ।

परन्तु पैतीस वर्ष पहले की घटना पर अब हजारी को रोष नही रह गया था । उसका कहना था कि पूर्व-जन्म के पाप थे, जिससे दरोगा की जाति मे हमने जन्म लिया, इसमे दूसरे किसी को क्यो दोष दिया जाय ?

अनायास ही उस सहिष्णु-वीर के प्रति मेरा सिर झुक गया ।

हरखू की माँ

बात शायद ५०-५५ वर्ष पहले की है। उस समय राजस्थान के प्राय प्रत्येक गाँव मे किसी वट या पीपल के वृक्ष पर या किसी सूने कुएँ की सारन (सहन) मे भूत-प्रेत या जिन्न का निवास माना जाता था। गाँव मे बहुत से ऐसे व्यक्ति मिल जाते थे जो कसम खाकर कहते कि उन्होने अपनी आँखो से एक रात अमुक स्थान पर सफेद कपडे पहने बडे-बडे पैरो वाले, वृक्ष की ऊँचाई-के एक भूत को देखा था।

भूत-भूतनी के सिवाय प्रत्येक कस्बे या गाँव मे एक-दो डाकी या डाकिन भी होते थे। मुझे अपने गाँव की एक घटना अब भी अच्छी तरह याद है। हरखू की माँ वहाँ डाकिन के रूप मे प्रसिद्ध थी। उस समय वह प्रौढावस्था मे थी। स्वास्थ्य भी साधारणतया ठीक था। परन्तु लोग उससे डरते थे इसलिए किसी घर मे उसे काम-काज मिलता नही था। कमाने वाला कोई था नही, भीख माँगकर किसी तरह अपना निर्वाह करती थी। जब मोहल्ले मे आती तो सारे घरो मे पहले से ही उसके आने की खबर फैल जाती। स्त्रियाँ बच्चो को छिपा लेती और घर के दरवाजे पर से ही जल्दी से अनाज या रोटी देकर उसे वापस कर देती। हम बच्चे सहमे हुए से उसे जाते हुए पीछे से देखने का प्रयत्न करते।

उन दिनो गावो मे डाक्टर-वैद्य तो थे नही। बच्चो को 'डब्बा' या अन्य किसी प्रकार की बीमारी होने पर हरखू की माँ पर सन्देह जाता था। दो-तीन सयाने व्यक्ति जाकर उसका थूक लाकर बच्चो पर छिडकते थे। उनमे से बहुत-से तो अपने आप ठीक हो जाते, मगर कुछ रोगो के कारण मर जाते। मरने वालो की जिम्मेदारी हरखू की माँ समझ जाती। हरखू की माँ ने भी इस अपमानित जीवन से एक प्रकार का समझौता-सा कर लिया था, क्योकि जीवन-यापन करने के लिए किसी-न-किसी प्रकार से अन्न-वस्त्र की व्यवस्था करना तो जरूरी था ही।

कई वर्षो बाद अपने गाँव गया था। दूसरी बातो के साथ-साथ हरखू की माँ की भी चर्चा आई तो पता लगा कि वह बहुत दिनो से बीमार है, इसलिए भिक्षा के लिए नही आ पाती। उसे नजदीक से जानने की जिज्ञासा तो बहुत वर्षो से थी और अब मेरे लिए उसका कोई भय नही रह गया था, इसलिए लोगो के मना करने पर भी एक मित्र के साथ उसके घर मिलने के लिए गया।

वह गाँव से बाहर एक झोंपडी मे रहती थी। वहा जाकर देखा कि एक टूटी-सी खाट पर वह लेटी हुई थी। दो-चार मिट्टी के और अलुम्युनियम के बर्तन इधर-उधर बिखरे हुए पडे थे। कई दिनो से शायद सफाई नही की गई थी इसलिए कूडा-करकट भी फैला पडा था

दो-तीन बार आवाज़ देने पर वह उठी और फटी-फटी आँखो से हमे देखने लगी। उसे विश्वास ही नही हो रहा था कि कोई उसे भी पूछने के लिए आ सकता है! दुखी मनुष्य को जब सान्त्वना मिलती है तो वह द्रवित हो जाता है। हमें देखकर वह रोने लगी। कुछ कहना चाहती थी, परन्तु हिचकियाँ बँध गई अत कह न सकी। फ्लास्क मे चाय ले गए थे, एक बडे कटोरे मे पीने को दी, सब पी गई। शायद बहुत भूखी-प्यासी थी।

मैंने अपने मित्र को मोहल्ले मे से किसी एक मजदूर को लाने के लिए भेजा परन्तु कोई भी उसके पास आने को तैयार नही हुआ। मेरे साथ कलकत्ते से एक नौकर आया हुआ था। उसे साथ लेकर मैं शाम को पुन उसके यहाँ गया था। साथ मे गरम दूध, दलिया तथा साधारण ताकत की औषधि ले गया था। जितनी राहत उसे पथ्य और दवा से नही मिली, शायद उससे ज्यादा इस बात से मिली कि उस उपेक्षिता के प्रति भी किसी की सहानुभूति है।

दूसरे दिन समझा-बुझाकर एक वैद्यजी को ले गया और उनकी चिकित्सा शुरू की। उचित पथ्य और दवा की समुचित व्यवस्था से थोडे दिनो मे ही वह स्वस्थ हो गई। फिर तो कई बार वहाँ गया, उसके प्रति एक आत्मीयता-सी हो गई थी। मन मे एक कचोट-सी भी थी कि इस असहाय के साथ अन्ध-विश्वास के वशीभूत होकर, समाज और गाँव के लोगो ने एक बहुत बडा अन्याय किया है।

एक दिन मैने कहा, हरखू की माँ! मै तुम्हारे बारे मे कुछ जानकारी प्राप्त करना चाहता हूँ, अगर बुरा न मानो तो मुझे अपने जीवन की सारी बाते बताओ। थोडी-सी हिचकिचाहट के बाद जो इतिहास उसने बताया, वह इस प्रकार है—

"जब मै १३ वर्ष की थी तब अमुक गाँव के ठाकुर साहब की बाई-सा के विवाह मे दायजे मे दे दी गयी। उनकी ससुराल मे आकर मेरा विवाह वहाँ के एक दरोगा के लडके के साथ कर दिया गया। हम दोनो पति-पत्नी रावले की चाकरी मे रहते थे। साधारण खाने-पहिनने को मिल जाता था। पति कँवर साहब का काम करता और मै कँवरानी जी का।"

"कुछ वर्षो बाद हमे एक बच्चा हुआ, प्यार का नाम रखा गया हरखू! एक बार गाँव मे हैजा फैला। मेरा पति भी इस से अछूता न बचा। गाँव का एकमात्र वैद्य दूसरे बडे लोगो की चिकित्सा मे लगा हुआ था। बहुत आरजू-मिन्नत करने पर भी वह मेरे पति को देखने नहीं आया और दवा-दारू के अभाव मे वह मर गया। रावले मे खबर भेजी गयी परन्तु वहाँ से कोई भी श्मशान तक साथ जाने के लिए नही आया क्योकि हैजे के रोग से मृत व्यक्ति की छूत लग जाने का डर जो था! मैंने दो-चार पडोसियो की सहायता से किसी प्रकार उसकी दाह-क्रिया की। घर आने पर बच्चें को भी दस्त और उल्टी होते हुए पाया। दवा के नाम पर भगवान का नाम लेकर प्याज का रस देने की तैयारी कर ही रही थी कि ठाकुर साहब के यहाँ से बुलावा आ गया। बहुत रोने-गिडगिडाने पर भी छुटकारा नही मिला। कँवरानी जी की चोटी-कघी करके जब मैं भागती हुई घर लौटी तो मेरा हरखू सारे दु खो को भूलकर सदा के लिए सोया हुआ मिला। इसके बाद मैं पागल-सी रहने लगी, रात-दिन हरखू को पुकारती रहती। थोडे दिनो के बाद ही फिर से मुझे रावले के काम पर जाना पडा। हम दरोगे एक प्रकार से ठाकुरो के जर-खरीद गुलाम की तरह थे।

"सयोग से उन्ही दिनो कँवरानी जी के दोनो पुत्र मर गए। मुझे कुलक्षणी समझ कर वहाँ से निकाल दिया गया और फिर मै इस कस्बे में आकर मेहनत-मजदूरी करके निर्वाह करने लगी। मुझे बच्चो से कुछ इस प्रकार का मोह हो गया था कि बिना मेहनताने के ही मोहल्ले के बच्चो का काम करती रहती, उन सबमे मुझे अपने हरखू की झलक मिलती थी।

"शायद पूर्व-जन्म मे मैने बडे पाप किए थे। एक दिन एक बच्चे को मैं उसकी माँ से लाकर खेला रही थी कि थोडी देर मे ही कमेडा आकर उसका देहान्त हो गया। उसके बाद तो

मै गॉव मे डाकन के नाम से बदनाम हो गई। औरते मुझे देखते ही बच्चो को छिपा लेती थी। गॉव के बडे बच्चे पीछे मे पत्थर मार कर चिल्लाते 'हरखू की मॉ डाकिन है' पहले तो लोगो के घर मे कुछ मिल जाता था अब वह भी बन्द हो गया। पचास वर्ष हो गए तबसे भीख मॉगकर ही किसी प्रकार अपना यह पापी पेट पालती हूँ परन्तु आज भी जब मैं किसी छोटे बच्चे को देखती हूँ तो मुझे अपना हरखू याद आ जाता है।"

उसने खाट के नीचे से एक टीन का गोल डिब्बा निकाला और उसमे से गोट लगे हुए टोपी-कुरते निकाल कर दिखाने लगी। वे सब उसके हरखू के थे। दो छोटे-छोटे चॉदी के कडे और एक हनुमान जी की मूर्ति भी थी। यह सब दिखाते-दिखाते वह अपने-आपको और ज्यादा न रोक सकी। उसके धीरज का बॉध टूट गया और ऑखो से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। बडे जोर से रोते हुए कहने लगी, "परमात्मा जानता है, मैंने गॉव मे किसी का कोई नुकसान नही किया। फिर भी पिछले ५० वर्षो से इन लोगो ने मुझे बदनाम कर रखा है और मेरा इतना बडा अपमान करते आ रहे है, अब और सहा नही जाता। दुनिया मे इतने लोग मरते है पर मुझ अभागिन को मौत भी नही आती।"

बहुत भारी मन से मै उस दिन उसे सान्त्वना देकर घर लौटा। दो-तीन दिन बाद ही आवश्यक कार्य से मुझे अपने गॉव से रवाना होना पडा। कलकत्ता आकर अनेक प्रकार के झझटो मे फँसकर हरखू की मॉ की बात भूल गया। तीन-चार वर्ष बाद मैं पुन गॉव गया तब पता चला कि हरखू की मॉ की गॉव के लोगो ने दिन-दहाडे हत्या कर दी थी।

घटना इस प्रकार बतायी गयी कि एक दिन गॉव के एक प्रतिष्ठित सेठ का बच्चा बीमार हो गया। सयोग से उसके पहले दिन हरखू की मॉ उनके यहॉ रोटी लेने गई थी अत. उस पर उनका शक जाना स्वाभाविक था। चार-पॉच व्यक्ति उसके यहॉ गए और एक कटोरी मे थूकने के लिए कहा। उस दिन उसे भी कुछ इस प्रकार की ज़िद हो गई कि वह थूकने को तैयार ही नही हुई।

निरीह बुढिया का थूक निकालने के लिए उनमे से दो-तीन व्यक्तियो ने जोर से उसका गला दबाया। बीमार और कमजोर वृद्धा भला कहॉ इतना जोर-जुल्म सह पाती? झाग और थूक के साथ-साथ उसके प्राण भी निकल गए।

घर आकर देखा गया कि बच्चा भला चगा खेल रहा है। परन्तु गॉव के 'समझदार' लोगो की धारणा थी कि अगर उससे जबरन थूक नहीं लिया जाता तो शायद बच्चे की जान नहीं बचती। डाक्टर और पुलिस को किसी प्रकार राजी करके मामला दबा दिया गया। उस गरीब औरत के लिए किस को पडी थी कि सेठ जी से बैर मोल लेता?

थोडे दिनो बाद सेठ जी के यहॉ बच्चे के स्वास्थ्य-लाभ की खुशी मे हनुमान जी का प्रसाद भोज हुआ। गॉव के पचासो व्यक्ति दाल-चूरमा खाते हुए हरखू की मॉ की मौत के बारे मे इस प्रकार से बात कर रहे थे जैसे वह एक साधारण-सी घटना थी। मैं भी तो निमत्रण मे गया था परन्तु किसी प्रकार भी भोज मे सम्मिलित न हो सका। मुझे वहॉ की हवा मे उस वृद्धा के अन्त समय की चीख-पुकार सुनाई पड रही थी।

जाको राखे साँइयाँ

दिल्ली मे मई-जून मे, भयकर गरमी पडती है । रेत की आँधियाँ शुरु हो जाती हैं । कभी-कभी तो पारा ११६ डिग्री तक पहुच जाता है । सन् १६६२ की बात है, उस वर्ष की गर्मी शायद पिछले पचास-साठ वर्षो मे अधिकतम थी । गरम लू से आस-पास के गाँवो मे प्राय नित्य ही एक-दो व्यक्तियो के मरने के समाचार आते रहते थे ।

वैसे इन दिनो लोकसभा का सत्र नही रहता परन्तु उस वर्ष मार्च मे चुनाव सम्पन्न हुए थे इसलिए अधिवेशन मई से अगस्त तक था ।

मेरी पत्नी और १२ वर्ष का छोटा पुत्र राजू, दिल्ली मे थे । वे प्राय ही कलकत्ता मे रहते थे इसलिए उनके लिए यह गर्मी एक नई बात थी । हम लोग रात मे बहुत-सा पानी छिडक कर बँगले के बाहर के बगीचे मे सोते परन्तु जमीन से आग-सी निकलती और १२ बजे तक नींद नही आती । पडोस के लोग शिमला, मसूरी या कश्मीर जाने लगे ।

पत्नी और राजू का आग्रह रहा कि हमे भी कश्मीर चलना चाहिए । एक तो कश्मीर मे मेरा छोटा भाई सपरिवार पहले गया हुआ था, दूसरे उन्होने कभी कश्मीर देखा नही था ।

मई की २३ तारीख को हम पठानकोट-एक्सप्रेस से रवाना हुए । मेरे पास एक नयी एम्बेसेडर कार के सिवाय ४५ माडल की एक स्टूडीबेकर स्टेशन-वैगन थी ।

पत्नी ने उस पुरानी गाडी के बदले मे नयी एम्बेसेडर ले जाने को कहा, परन्तु मैंने देखा कि उस बड़ी गाडी मे सारा सामान और सब लोग आराम से चले जायेंगे । गाडी भी बेचनी है इसलिए क्यो नही उसी से काम ले लिया जाय इसलिए इसे रवाना होने से दो दिन पहले नौकरों के साथ भेज दिया ।

पठानकोट स्टेशन पर मोटर तैयार मिली । सयोग से वही पर हमारे वयोवृद्ध मित्र श्री मुनीश्वरदत्त उपाध्याय एम पी मिल गये । मोटर मे जगह थी इसलिए उन्हे भी साथ बैठा लिया ।

जम्मू से आगे जब चढाई शुरू हुई तो मोटर हर पाँच मील पर गरम होने लगी, हम पानी डालते रहे । कभी-कभी सब मिल कर ठेलते भी रहे। यद्यपि उपाध्याय जी काफी वृद्ध थे, परन्तु सकोचवश वे भी इसमे सहायता देते । ३०-३५ मील जाने के बाद एक कडी चढाई पर वह अड़कर रुक गयी । बहुत प्रयत्न करने पर भी आगे नही बढ रही थी । पास के गाँव मे एक छोटा-सा मोटर-मरम्मत का कारखाना था । थोडी देर मे ही बहुत से लोग इकट्ठे हो गए । उनमें दो-एक मिस्त्री भी थे । वे हँसकर कहने लगे कि सेठ जी इस मोटर को तो आपको विन्टेज-कार-रैली (बहुत पुरानी मोटर-दौड़-प्रतियोगिता) मे भेजनी चाहिए थी । कहा यह पहाड़ो की चढ़ाई, कहाँ यह बेचारी बूढी गाडी ! मुझे उनकी बाते सुनकर गुस्सा और झेप हो रही थी परन्तु चुपचाप सुनने के सिवा चारा भी क्या था ?

पत्नी भी उलाहना देने लगी कि आपने सोचा, नई मोटर खराब हो जायगी, इसलिए इस खटारे को मेरे रोकने पर भी ले आए । उस दिन दिशाशूल था, इसका विचार भी आपने नही किया ।

आखिर एक घण्टे की कडी मेहनत के बाद मोटर रवाना हुई। पहाडो और डगर मगर मे चलाते हुए, दूसरे दिन शाम तक किसी प्रकार श्रीनगर पहुच गये। १०-१५ दिन वहा रहने के बाद समाचार मिला कि दिल्ली मे वर्षा हो गयी है। हमने वापस आने का प्रोग्राम बनाया।

पत्नी और राजू की इच्छा थी कि हवाई जहाज मे चले परन्तु मै फिजूल मे ६००) रु० खर्च करना नही चाहता था। उन्हे समझाया कि आते समय तो मोटर खराबी के कारण रास्ते के दृश्य नही देख पाये थे परन्तु अब ठहरते हुए चलेंगे। स्टूडीबेकर को वहीं छोडकर हम लोग वहां से एक नयी एम्बेसेडर पर रवाना हुए।

बठोठ के पास पहुचे तब शाम हो गई थी। रास्ते के किनारे कोट-पैंट पहने युवक खडा था। उसने हाथ से गाडी रोकने का सकेत किया। हमने गाडी रोक ली। वह कहने लगा कि बडी कृपा होगी अगर आप मुझे अगले गाँव तक पहुँचा देंगे। मैं अपना ठेकेदारी का काम सम्हालने आया था। यहा देर हो गयी। ट्रके सब पहले ही जा चुकी है। हमारे पास जगह थी। युवक की वेश-भूषा और बातचीत का भी प्रभाव पडा, उसे मोटर मे बैठा लिया।

हमारा ड्राइवर पहाडों के लिए नया था, गाडी धीरे-धीरे चला रहा था। थोडी देर बाद युवक ने कहा कि मेरा इस तरफ मोटर चलाने का नित्य का अभ्यास है, अगर आप कहे तो मैं चलाऊ। ड्राइवर को भी आराम मिल जायेगा और बठोठ कुछ जल्दी पहुच जायेंगे।

हमे ऐसा लगा कि युवक का वह रास्ता पूरा तौर पर जाना हुआ था। ३५-४० मील की स्पीड से वह मोटर चला रहा था। मोडने की भी अच्छी तरह जानकारी थी।

थोडी देर बाद गहरा उतार आया, गाडी की स्पीड बढी। एक घुमावदार मोड आया और युवक से गाडी बेकाबू होकर सामने के खड्ड की तरफ तेजी से बढी।

आसन्न मृत्यु को सामने पाकर मनुष्य किस प्रकार का हो जाता है, इसका उस दिन मुझे पता चला। सामने तीन-चार हजार फीट गहरा खड्ड अजगर की तरह मुह बाये था और गाडी उसी तरफ बढ रही थी। उस कडी सर्दी मे भी हम सब पसीने से तर थे। आखो के आगे अँधेरा छा गया और होश-हवास गुम हो गए।

हमारे दादाजी कहा करते थे कि सकट के समय राम का नाम लेने से कष्ट कट जाते है। मुझे वह बात याद आई और मैंने जोर-जोर से राम का नाम लेना शुरु किया। जीवन मे शायद ही कभी इतने सच्चे मन से मैंने प्रभु का नाम लिया होगा।

हम सब आंखे मींचे मृत्यु की राह देख रहे थे। कुछ ही क्षण बीते होंगे कि गाडी को एक जोर का धक्का लगा। आखे खोलीं तो देखा कि सडक के किनारे मरम्मत करने के लिए पत्थरो के छोटे टुकडो का ढेर है और गाडी उनमे फँस गयी है। किसी प्रकार साहस कर नीचे उतरे। तब भी शरीर काँप रहा था, सिर चकरा रहा था। देखा गाडी के आगे का हिस्सा थोडा-सा टूट गया है; रेडियेटर मे से सारा पानी निकल गया है।

एक मील पर ही बठोठ था, किसी प्रकार पैदल वहाँ पहुचे। रात मे एक होटल मे ठहरे। युवक बहुत ही सहमा हुआ और शर्मिंदा था परन्तु उसे भला-बुरा कहने से क्या फायदा था–आखिर वह भी तो साथ मे ही मरता। दूसरे दिन कुलियो को भेजकर गाडी ठेलकर बठोठ लाये। वहाँ एक कारखाने मे टकी मरम्मत करायी। दो दिन इसके लिए रुकना पडा।

रास्ते मे हम लोग आपस मे बात करते रहे कि मारने वाले से बचाने वाला बडा है –
“जाको राखे साँइया मार सकै नहि कोय।”

अछूत

सेठ रामजीलाल अपने कस्बे मे ही नही बल्कि प्रान्त-भर मे प्रसिद्ध थे। उनके विभिन्न प्रकार के पॉच-छ कारखाने थे जिनमे हज़ारो मज़दूर काम करते थे। विदेशो के साथ भी आयात-निर्यात का करोडो रुपये का कारोबार था। व्यापार के सिवा सार्वजनिक-क्षेत्र मे भी अच्छा नाम था। उनके द्वारा सचालित कई स्कूल, कॉलेज, छात्रावास और अस्पताल थे। वे निम्बार्क-सम्प्रदाय के वैष्णव थे, इसलिए उन्होने अपनी हवेली के पास ही श्रीनाथजी का एक विशाल मन्दिर बनवाया था जिसमे घर के हर व्यक्ति के लिए नित्य दोनो समय जाकर प्रसाद लेना जरूरी था।

सब तरह से सम्पन्न और सुखी परिवार था परन्तु सन्तान न होने से पति-पत्नी दुखी रहते थे। एक बार वे कुम्भ के पर्व पर यात्रा के लिए हरिद्वार गये। वही उन्हे दो वर्ष का एक बच्चा, सेवा-समिति के स्वयंसेवको द्वारा मिला। सेठानी लडके को गोद लेते ही निहाल हो गयी। उसका गौर-वर्ण और सुन्दर रूप-रग देखकर ही अनुमान लगा लिया कि जरूर किसी कुलीन घराने का है। अपने गॉव आकर बहुत धूम-धाम से गोद के नेगचार किए गए। हज़ारो व्यक्तियो को भोज दिया गया। इस अवसर पर एक अस्पताल और एक कॉलेज की नीव डाली गयी। बच्चे का सुन्दर-सा नाम रखा गया, गोपाल कृष्ण। उस समय लोगो ने भी ज्यादा पूछताछ की जरूरत नही समझी।

बच्चे का आना कुछ ऐसा शुभ हुआ कि एक वर्ष के भीतर ही उनके एक पुत्री हुई। धन-दौलत भी रात-दिन बढती गयी।

इसी प्रकार १७-१८ वर्ष आनन्द से व्यतीत हो गये। गोपाल और छोटी बहिन सुमन दोनो कॉलेज मे पढते थे। आपस मे सगे भाई-बहन से भी ज्यादा प्यार था। गोपाल पढने के सिवा खेल-कूद मे भी हमेशा प्रथम या द्वितीय रहता था। एम० ए० मे उसे कालेज मे प्रथम स्थान मिला।

एम० ए० करने के बाद पढने के लिए वह विदेश जाना चाहता था परन्तु सेठजी शादी करके उसे व्यापार मे लगा देना चाहते थे। सुमन ने अपनी एक सुन्दर और सम्पन्न सहेली का चयन भी कर लिया था—यहॉ तक कि उसको कई बार अपने घर बुलाकर गोपाल और माता-पिता को दिखा भी दिया था। एक तरह से बात पक्की हो गयी थी, केवल नेगचार होने बाकी थे।

उसी वर्ष बीकानेर के उत्तरी हिस्से मे बडा अकाल पडा। हजारो व्यक्ति अपने गॉव छोडकर पशुओ के साथ मालवा की तरफ जाने लगे।

सेठजी ने अपने कस्बे मे उनके विश्राम के लिए व्यवस्था कर रखी थी। एक दो दिन वहा रहकर सुस्ता लेते थे। दूसरे स्वय-सेवको के साथ-साथ गोपाल और सुमन भी इस काम मे, दिलचस्पी लेते थे। एक दिन वे इसी प्रकार के एक यात्री-दल की व्यवस्था कर रहे थे कि उनमें मे एक अधेड-मा व्यक्ति गोपाल को घूर-घूर कर देखने लगा, थोडी देर मे अपनी पत्नी को भी बुला लाया।

सुमन ने हँसकर कहा कि बाबा इस प्रकार आप क्या देख रहे है, और आपकी ऑखो मे आसूँ क्यो है ? थोडी देर तो वृद्ध चुप रहा- फिर सहमते हुए कहा— "बाई-सा मेरा लडका रामू आज से १८ वर्ष पहले हरिद्वार के कुम्भ मेले मे गुम हो गया था। उसका रग भी इसी तरह साफ था। उसके बाये गाल पर भी इसी प्रकार का निशान था। कुँवर साहब को देखकर हमे अपने खोये हुए पुत्र की याद आ गई है।"

घर जाकर सुमन ने पिता जी को जब यह बात कही तो देखा गया कि उनके चेहरे पर उदासी छा गई थी।

रात मे उस वृद्ध को बुलाकर पूछताछ की गई तो पता चला कि वे लोग जाति के चमार है। उस वर्ष कुम्भ-स्नान करने के लिए गए थे। वही उनका एकमात्र पुत्र भीड मे खो गया जिसका आज तक पता नही चला। लडके के कुछ और चिन्ह था क्या ? यह पूछने पर उसने कहा कि उसके दाये हाथ मे भी चोट का एक निशान था।

यह सब बाते गोपाल और उसकी माँ भी सुन रही थीं। उस समय वृद्ध को १००), २००) रुपये देकर उसे यह कह कर विदा किया कि तुम्हे इस प्रकार की फिजूल बाते नही करनी चाहिए। अच्छा हो तुम लोग कल यहाँ से चले जाओ।

परन्तु ऐसी बाते छिपी नही रहती। लोगो को अपना हर्ज करके भी दूसरो के छिद्र ढूँढने का शौक रहता है। यह बात धीरे-धीरे सारे कस्बे मे फैल गई।

इधर सेठ जी और सेठानी दोनो कमरा बन्द करके भीतर बैठ गए। बहुत कहने-सुनने पर भी भोजन के लिए बाहर नही निकले।

गोपाल हर प्रकार से योग्य और समझदार था। वस्तु-स्थिति उसकी समझ मे आ गई थी। वह एक निश्चय पर आकर दूसरे दिन सुबह सुमन के पास जाकर कहने लगा, "बहन जी, जो कुछ होना था, वह तो हो गया। परमात्मा जानता है कि उसमे मेरा कुछ कसूर नही है फिर भी, मेरे कारण आप लोगो को इतना बडा अपमान सहना पडा। अब किसी तरह पिता जी और माताजी को भोजन कराने का उपाय करो, वे कल मे ही भूखे प्यासे है।"

सुमन ने देखा कि जो भाई उससे हमेशा हँसी-मजाक करता रहता और सुमन कहकर पुकारता था, वह 'बहन जी' कह रहा है और सहमा-सा थोडी दूरी पर बैठा हुआ है।

उन दोनो ने बहुत अनुनय-विनय करके कमरे का दरवाजा खुलवाया। देखा कि एक दिन मे ही पिताजी वृद्ध से लगने लगे है। माता एक तरफ अचेत पडी हुई है। अन्य दिनो की तरह आज गोपाल ने पिता के पैर नही छूए। कुछ दूरी मे ही कहा, "पिताजी, मेरा आपका सम्बन्ध इतने दिनो का ही ईश्वर को मजूर था। अब आप हिम्मत करके मुझे विदा दे। माता जी का बुरा हाल है, उन्हे भी सान्त्वना दे। आपने जितना लिखा-पढा दिया है, उससे २००), ३००) रु० माहवार आसानी से कमा सकूँगा।"

बहुत देर का रोका उद्वेग एक बरसाती नाले के बाँध की तरह टूट गया। इतने बडे प्रतिष्ठित सेठ, छोटे बच्चे की तरह जोर-जोर से रोने लगे। कहने लगे, "मैं भले ही चमार हो जाऊँगा, परन्तु किसी हालत मे भी तुम्हे नही छोडूँगा। हो सकता है, तुमने जन्म अछूतो के घर लिया हो, परन्तु भला कोई बताये तो कि तुम जैसे धार्मिक और निष्ठावान युवक ऊँची जातिवालो मे भी कितने है ? राम तो १४ वर्ष के लिए ही बनवास गए थे परन्तु तुम मुझे

बुढ़ापे मे, सदा के लिए छोडकर जाना चाहते हो !"

इधर हवेली मे सुबह से ही किसी-न-किसी बहाने सगे-सम्बन्धी आकर इकट्ठे हो गए थे और झूठी सहानुभूति दिखा रहे थे। सब कुछ जानते-बूझते हुए भी 'क्या हुआ ' 'कैसे हुआ ' आदि पूछ रहे थे। साथ मे उन चमारो मे से कुछ को ले आए थे।

थोडी देर मे ही गोपाल उन सबके सामने जाकर कहने लगा कि आपने जो कुछ सुना है, वह सब सत्य है। मै कोलायत के चमारो का लडका हूँ। इसी समय घर और आपका गाँव छोडकर जाने को तैयार हूँ। कृपा करके आप सेठजी को क्षमा कर दे। उन्होने जो कुछ किया, बिना जानकारी के किया है फिर, वडे से बडे कसूर का भी प्रायश्चित्त तो होता ही है।

परन्तु सेठजी किसी तरह भी गोपाल को छोडने को तैयार नही थे। आँसू की धारा वह रही थी, वे उसे जबर्दस्ती गले लगाकर कहने लगे, "सुमन भी कपडे बाँधकर तुम्हारे साथ जाने की तैयारी कर रही है, फिर भला हम अकेले इस घर मे रह कर ही क्या करेगे ? किसी दूसरे गाँव मे जाकर चमारो के साथ रह लेंगे।"

गोपाल चाहता तो सेठजी के इन स्नेहपूर्ण उद्‌गारो का लाभ उठा सकता था परन्तु उसने सुमन और सेठ जी को अनेक प्रकार से समझा-बुझाकर वहाँ से विदा ली। दूसरे दिन ही एक यात्री-दल के साथ मालवा के लिए रवाना हो गया। बहुत अनुनय-विनय के बावजूद घर से दो-चार धोती-कुर्त्तो के सिवा अन्य कोई भी वस्तु साथ मे नही ली।

विदा के समय एक प्रकार से सारा गाँव ही उमड पडा था। कल तक इस घटना मे लोग ईर्ष्यायुक्त रस ले रहे थे. परन्तु आज वे फूट-फूट कर रोते हुए देखे गए।
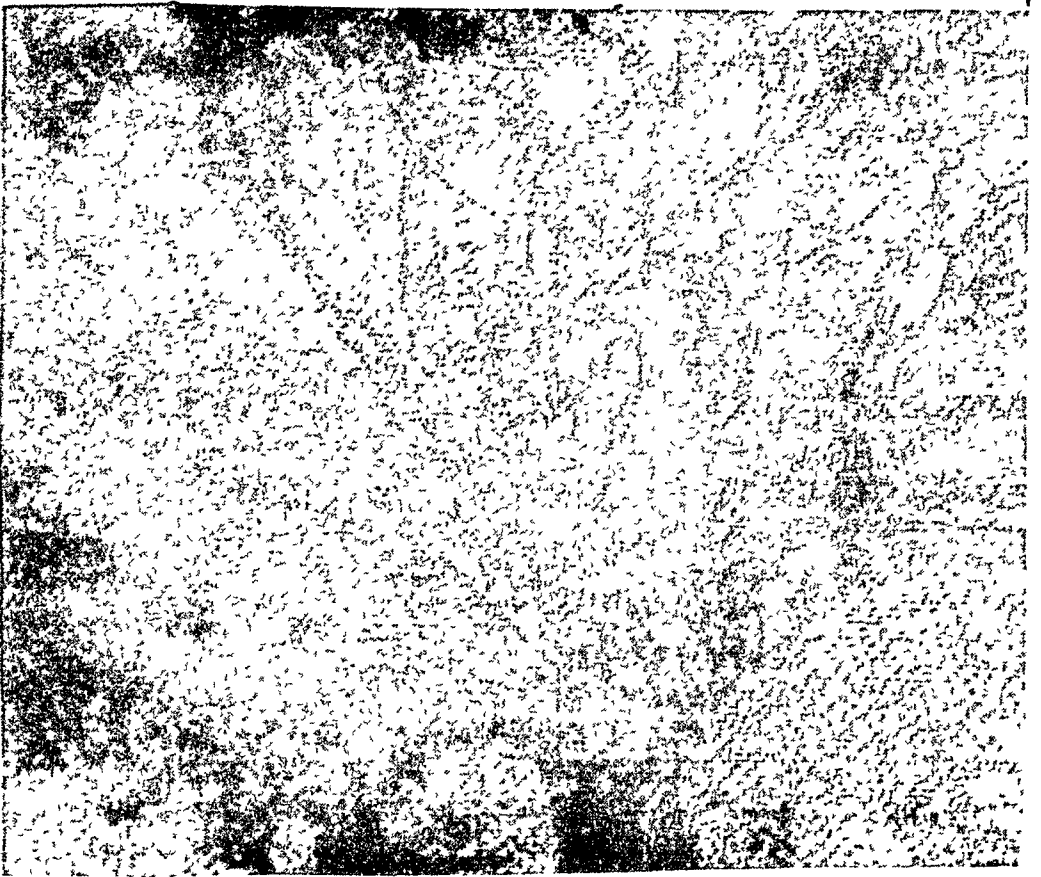
परोपकार

आज से पचास-साठ वर्ष पहले राजस्थान मे वडे शहरो के सिवा अन्यत्र कही भी डॉक्टर नही थे। अगर कोई धनी व्यक्ति ज्यादा वीमार हो जाता तो इलाज के लिए जोधपुर या वीकानेर से डॉक्टर को बुलाया जाता। हमारे कस्वे मे एक बार एक सेठ के इलाज के लिए कलकत्ता मे एक वगाली डॉक्टर आये थे। इन्हे देखने के लिए स्थानीय लोगो के अलावा वहुत मे ग्रामीण भी आये थे क्योकि एक-सौ रुपया प्रति दिन की फीस उस समय एक अद्भुत और अनोखी वात थी।

वीमारियाँ तो उस समय भी होती थी, परन्तु डाक्टरी इलाज का प्रचलन नही के वरावर था। सर्दी, जुक़ाम, सिर-दर्द और यहाँ तक कि मलेरिया और मियादी बुखार मे कालीमिर्च और लौंग की चासनी या दशमूल का काढा दे दिया जाता। अधिकाश रोग इन्ही देशी जडी-बूटियो से दूर हो जाते।

वैद्यो के अलावा हर मोहल्ले मे एक दो सयानी स्त्रियाँ रहती जिनकी कोथली (थैली) मे जच्चा और वच्चा दोनो के लिए दवाए रहती। वीमार के घरवालो को इन्हे वुलाने की आवश्यकता नही पडती। खवर पाकर वे स्वय ही पहुँच जाती और रोगी की सेवा मे लग जाती। किसी प्रकार की फीस या औषधि के मूल्य का तो प्रश्न ही नही था वल्कि ऐसे मौको पर पुराने वैर-वदले भी ममाप्त हो जाते।

थोडे वर्षो वाद, शायद सन् १६३० के लगभग एकाध डाक्टर भी आ गए थे जिनके गले मे या कोट के ऊपर की जेव मे रवर का स्टेथिस्कोप पडा रहता। फीस अधिकतम दो रुपया होती किन्तु उस समय लोगो को यह भी अखरती थी इसलिए अधिकाश रोगी झाड-फूँक या स्थानीय वैद्य जी का सहारा ही लेते।

वैद्य का वेटा अपने आप वैद्य हो जाता। आयुर्वेद की डिग्रियाँ तो नही थी परन्तु वडों द्वारा प्राप्त नाडी और औषधि का ज्ञान उन्हे यथेष्ट रहता। आजकल की तरह थूक-खून और मूत्र की परीक्षा के साधन न होने पर भी नाडी-ज्ञान द्वारा ये लोग रोग का सही निदान कर देते। कुछ एक पुश्तैनी वैद्यो के पास विश्वसनीय और कीमती आयुर्वेदिक दवाए अच्छी मात्रा मे पाई जाती जिनका असर अचूक होता।

शायद, सन् १६३६ की वात है। हमारे कस्वे और आस-पास के गावो मे वडे जोर का हैजा फैला। प्रतिदिन २०, ३० आदमी मरने लगे। लोगो मे घवराहट फैल गई। जिनके पास साधन थे, वे दूर के गावो और कस्वो मे अपने सगे-सम्वन्धियो के यहा चले गए। यहा तक कि डॉक्टर और वैद्य भी गाव छोडकर चले गए क्योकि जिनसे फीस मिलने की आशा थी, वे तो पहले से ही जा चुके थे। वच गए थे ग़रीव लोग जिनके पास फीस तो क्या दवा के दाम भी नही थे। इतना ही नही, रोग का प्रकोप ज़्यादा वढा तो घरवाले भी रोगियो को छोडकर भागने लगे।

घर-घर मे रोगी पड़े थे और डाक्टर-वैद्यो मे केवल एक ही रह गए थे, कविराज बृजमोहन गोस्वामी। यद्यपि परिवारवालों ने और मित्रो ने उनसे बहुत आग्रह किया कि वे भी कस्बा छोड दे, आखिर, अकेले कर ही कितना जाएगे ? साथ ही, जान जोखिम मे रहेगी। उनका जवाब था कि मेरे पितामह और पिता माने हुए वैद्यराज थे। उन्होने कभी सकट के समय रोगी को नही छोड़ा। यहाँ तक कि ग़रीबो के लिए दवा के सिवा कभी-कभी पथ्य की भी व्यवस्था उन्होने अपने पास मे की। इस समय अगर मैं भी भागकर चला जाऊगा तो इन असहायो का क्या होगा ? मृत्यु तो अवश्यम्भावी है, एक दिन होगी ही फिर कर्तव्य-विमुख होकर अपकीर्ति का बोझ क्यो उठाऊ ?

हैज़े का सबसे ज़्यादा प्रकोप था चमारो और भगियो के मुहल्लो मे। वीरान गाव, भयावह गलिया, सूने घर और मुर्दो की सडाध से पूरा गाव श्मशान सा नज़र आता था। गोस्वामी जी सुबह ६ बजे उठते और दोपहर १२ बजे तक बीमारो को देखते रहते। फिर खाना खाकर बिना सुस्ताये रात १० बजे तक वही कार्यक्रम चालू रहता। उस समय तक हैज़े के इंजेक्शन और एलोपैथिक दवाए ईजाद हो चुकी थीं, पर वहा न तो इजेक्शन देने वाले डाक्टर या कम्पाउण्डर थे और न दवाफरोश ही। वैद्यजी को तीन-चार हिम्मतवाले युवको ने साथ दिया, मनो प्याज का रस निकाल कर मटके भर लिए और ऊटो का मूत्र भी बडी मात्रा मे इकट्ठा कर लिया। रोगियो को भगवान का नाम लेकर वे दोनों औषधि पिलाने लगे और इनमे ही चमत्कारिक लाभ होने लगा।

उस समय राजस्थान मे छूआछूत बहुत थी। गोस्वामी जी परम वैष्णव थे परन्तु उन्हे तो इन भगी-चमारो मे वास्तविक हरि के दर्शन होने लगे। बहुत बार तो उनके मल-मूत्र भरे कपडे धोने पडते और जगह की सफाई भी करनी पडती। बीमार माता और छोटे बच्चो को लोरी देकर सुलाना पडता। जान और माल का मोह छोड भी दे तो भी नाम और यश की कामना तो रहती ही है और इसी के चलते ऐतिहासिक बलिदान हुए है परन्तु उस बीमार इलाके मे न तो समाचार-पत्रो के संवाददाता थे जो वैद्य जी के सेवा-कार्य को प्रचार-प्रसार देते और न वैद्य जी ही अपने नाम और काम का ढिढोरा पीटना चाहते थे। उन्होने तो अपना कर्त्तव्य समझ कर ही मृत्यु का आलिगन करना स्वीकार किया था।

उनका शरीर भारी था, वृद्धावस्था हो चली थी। रात को थक कर चूर हो जाते परन्तु जैसे ही थोडा-सा खा-पीकर सोने जाते कि रोती हुई कोई महिला आती और अपने बच्चे के उल्टी-दस्त की बात कह कर गिडगिडाने लगती। वैद्य बृज मोहन का मनुष्यत्व जाग उठता और वे प्रभु का नाम लेकर उसी समय चल देते। सारी रात बाहर ही बीत जाती। इस प्रकार कई बार हुआ। एक कहावत है कि जाको राखे साइया मारि सके न कोय। महामारी समाप्त हो गयी, लोग वापस आने लगे। उन्होने देखा कि गोस्वामी जी सही-सलामत हैं। हा, शरीर से काफी थक गए है, एक प्रकार टूट-से गये हैं।

आसपास के कस्बो के लोग उन्हे देखने आने लगे। उनके सार्वजनिक अभिनन्दन का प्रस्ताव रखा गया परन्तु उन्होने नम्रतापूर्वक इसकी मनाही कर दी। उनका कहना था—"मैंने अपना कर्त्तव्य पालन किया है। यही तो भारतीय परम्परा रही है और यही भगवान धन्वन्तरी की आज्ञा है। बचानेवाले तो ईश्वर है, मैं तो केवल निमित्त-मात्र हूँ।"

कुछ दिनो बाद ही गोस्वामी जी बीमार पडे। सैकड़ो व्यक्ति रोज उनके दर्शनो को आते लेकिन आयु समाप्त हो चुकी थी, वैद्य जी का देहान्त हो गया। सारे गाव मे, विशेषकर हरिजनो और ग़रीबो की बस्ती मे शोक छा गया। उनके दाह-कर्म मे इतने स्त्री और पुरुष गए जितने आज तक किसी भी व्यकित के नही गए थे।

●

मजदूर से मालिक

बात पुरानी है, परन्तु बहुत पुरानी नही। यही कोई साठ-सत्तर वर्ष पहले की होगी। उस समय खत्री समाज का कलकत्ते के व्यवसाय-वाणिज्य मे विशिष्ट स्थान था, बडे-बडे अंग्रेजी ऑफिसो की बेनियनशिप इनके पास थी। उस समय तक देश मे कारखाने बहुत कम बन पाए थे इसलिए अधिकाश आवश्यक वस्तुएं विदेशो से, खासकर ब्रिटेन से आयात की जाती थी। १६१०-११ ई० तक भी पालकी-गाड़ी और फिटन-गाडयो का युग था। शौकीन रईसों के पास दो घोडो की गाडियाँ तो थी ही, परन्तु किसी-किसी के यहाँ ४ घोडो की भी थी, जिन्हें चौकडी कहा जाता था। कोचवान और साईस की पोशाके बहुत ही आकर्षक होती थीं। उन वेलर घोडो की फिटनो के सामने आज की बडी-से-बडी मोटरो का भी कोई मुकाबला नही है।

सेठ निक्कामल घोडो की रास थामे अपनी सोने की नक्काशी की हुई सुन्दर फिटन मे बैठे हुए जिधर से निकलते तो लोग घर के भीतर से दौडकर देखने को बरामदे में आ जाते थे। कहा जाता है कि उनके घोडो को बेहतरीन गुलाब और केवडा-जल से स्नान कराया जाता था और जिधर से उनकी गाडी निकलती, वहाँ सुमधुर सुगन्ध का समाँ बँध जाता था। ऐसे थे सेठ निक्कामल खत्री, कार-तारक-कम्पनी के बेनियन और सर्वेसर्वा। यद्यपि उनकी वार्षिक आय १-१॥ लाख से ज्यादा नही थी। चूँकि प्रथम महायुद्ध के पहले वस्तुए बहुत सस्ती थी और प्रचुर मात्रा मे दैनिक आवश्यक चीजे उपलब्ध थी, इसलिए उस समय आज से पाँच प्रतिशत की आय मे भी लोग अच्छी तरह से रह सकते थे।

सेठ बहुत देर से सोकर उठते। उसके बाद ताश-शतरञ्ज से फुरसत मिलने पर जब वे खा-पीकर ऑफिस आते तब तक ३-३॥ बज जाते। वे ऑफिस का काम स्वय बहुत कम देखते थे। उनके नीचे कई दलाल और दूसरे लोग काम करने वाले थे। उनमे से गिरधारीलाल नामक एक १५ वर्ष का मारवाडी-लडका भी था। इसका मा[illegible]न १४) रु० और काम था बाजार के पुर्जा चुका लाने का। इन चोदह रुपयो मे ही गि[illegible] को अपने छोटे भाई और विधवा माँ का खर्च भी चलाना पडता था। यद्यपि अभाववश [illegible] और कालेज की पढाई तो नही हो पाई थी फिर भी, वह शुरु से ही परिश्रमी और होशियार होने के अलावा देखने मे सुन्दर और सुशील भी था।

पुर्जे चुकाने के सिलसिले म उसे दूकानदारोके पास प्राय नित्य ही जाना पडता था इसलिए विभिन्न तरह के कपडो के दाम भी उसे याद हो गए थे। सेठ के कुछ अपने बँधे हुए दूकानदार थे जिन्हे किसी कारणवश बाज़ार से कुछ सस्ते दर पर कपडा दिया जाता था। एक दिन बडी नम्रता से उसने सेठ का ध्यान किसी एक सौदे के बारे मे आकर्षित किया जो बाजार-भाव मे कुछ नीचे मे हुआ था।

उसे बडा दु ख हुआ जब सेठ ने शाबाशी देने के बजाय उसे धमका दिया कि उसका काम केवल पुर्जा चुका लाना है, उसे इन सब बातो से कोई प्रयोजन नही रखना चाहिए ।

ऑफिस के बडे साहब का ध्यान गिरधारीलाल के व्यवहार और परिश्रम की ओर गया। वह कभी-कभी उसको अपने कमरे मे बुलाकर बातचीत करने लगा । उस समय के अधिकाश अग्रेज-व्यापारी साधारण हिन्दी और बंगला बोल लेते थे । सेठ को यह मेल-जोल अच्छा नही लगा और उसने गिरधारीलाल को साहब से मिलने की मनाही कर दी ।

गिरधारी स्वामी-भक्त था और उसे साहब से कुछ आशा-भरोसे का सवाल नही था। इसलिए वह उनसे अलग-सा रहने लगा।

कुछ दिनो बाद एक दिन साहब ने उसे बुलाकर नही मिलने का कारण पूछा । चूँकि वह किसी प्रकार भी मालिक की शिकायत नही करना चाहता था इसलिए उसने सच्ची बात न बताकर दूसरे कामो मे फँसे रहने का बहाना कर दिया । इतने मे ही सेठ निक्कामल वहाँ आ गए । साहब को इस मामूली 'छोकरे' से हँस-हँस कर बाते करते देखकर उन्हे बहुत ही गुस्सा आया परन्तु उस समय वह कुछ बोले नही । दूसरे दिन गिरधारीलाल को घर पर बुला कर एक-सौ रुपया देते हुए सेठ ने उसे नौकरी से अलग कर दिया और कहा कि आइन्दा वह ऑफिस की तरफ न आये ।

यद्यपि उस समय एक-सौ रुपया उस ग़रीब युवक के लिए बहुत बडी राशि थी परन्तु उसने नम्रतापूर्वक वह रक़म वापस कर दी, क्योकि बिना-कमाई का पैसा वह नही लेना चाहता था । उसने सेठ को विश्वास दिलाया कि मैंने आपका नमक खाया है, मेरे से आपका किसी प्रकार का भी अहित नही होगा ।

घर आने पर माँ के पास जाकर उसे रुलाई आ गई । उसे नौकरी से क्यो हटाया गया, इसका वह कोई कारण नही बता सका । अपने पुत्र की ईमानदारी और मेहनत पर माँ को पूरा भरोसा था । फिर भी उसने यही सीख दी, "बेटा, कुछ-न-कुछ तो गलती हुई ही है, नही तो तुम्हे मालिक क्यो छोडते ? खैर, अपने शरीर मे उनका नमक है इसलिए उनकी बुराई हो, ऐसा काम कभी मत करना ।"

सेठ निक्कामल का इतना दबदबा था कि उनके छोडे हुए व्यक्ति को रखने का किसी को साहस नही होता था इसलिए बेचारा युवक रोज इधर-उधर घूम-फिर कर वापस घर आ जाता । जो कुछ पास मे था, वह समाप्त हो गया और अन्त मे उन लोगो के भूखे रहने की नौबत आ गई

गिरधारीलाल को विश्वास था कि साहब के पास जाने पर कुछ-न-कुछ जरूर मिल जायेगा किन्तु मालिक ने ऑफिस मे जाने की मनाही जो कर दी थी ।

दस-पन्द्रह दिन बाद साहब ने सेठ से उसके बारे मे पूछा तो बीमार होने का बहाना कर दिया गया ।

कुछ दिन और बीत जाने पर एक दिन साहब ने अपने बडे दरबान को बुलाकर कहा कि वे गिरधारीलाल के घर उसे देखने जाएगे, वह शायद ज्यादा बीमार है । दरबान से पता चला कि वह बीमार तो नही है वरन् उसको नौकरी से अलग कर दिया गया है ।

उस दिन शनिवार था । सेठ ऑफिस नही आए थे क्योकि वे नियमानुसार शुक्रवार की शाम को चुने हुए मुसाहिबो के साथ अपने लिलआ के बगीचे चले गए और सोमवार सुबह वापस आने को थे ।

गिरधारीलाल को बुलाकर जब साहब ने पूछ-ताछ की तो उस स्वामी-भक्त युवक ने सेठ को बचाने के लिए कहा, "मेरे से एक बडी गलती हो गई इसलिए उन्होने मुझे हटा दिया है ।"

बात तो उसने कह दी, परन्तु आधा-पेट भूखे छोटे भाई और माँ का ख्याल आने पर उसे बरबस रुलाई आ गई । प्रयत्न करने पर भी आँसूओ को नही रोक सका ।

साहब ने कहा, "तुम तो विभिन्न प्रकार के कपडो के दाम और व्यापारियो को जानते हो अगर तुम्हे कपडे बेचने का काम दिया जाय तो कर सकोगे ?" उसने जवाब दिया, "श्रीमान् यह मेरे मालिक का हक है। आज यद्यपि मै उनके यहाँ नही हूँ पर मैने उनका नमक खाया है इसलिए मै यह काम नही करूँगा।"

उस फटेहाल लडके की इस बात ने साहब को और भी प्रभावित किया और उसने हर प्रकार से उसे समझाया कि इससे सेठ को किसी प्रकार की क्षति नही होगी। यह तो नया काम है। उसे कुछ कपडो के नमूने देकर और कीमते बताकर १००० गाँठ तक बेच देने का आदेश दिया।

बनिये का लडका था, व्यावसायिक बुद्धि प्रचुर-मात्रा मे थी ही। वह उन दूकानदारो के पास गया जो इस ऑफिस का माल लेने को तरसते रहते थे। साहब ने जो भाव बताए थे, उससे प्रति गज एक-दो पैसे ऊँचे मे सौदे पक्के कर लिए और खरीदारो को ऑफिस मे लाकर साहब से रजू करा दिया।

सारे बाजार मे चर्चा फैल गई कि कार-तारक-कम्पनी का कपडा गिरधारीलाल ने बेचा है। निक्कामल के व्यापारी घोडे-गाडियाँ लेकर लिलुआ के बगीचे खबर देने पहुँचे।

सेठ मुसाहिबो से घिरे हुए नाच-गाना देखने-सुनने मे मस्त थे परन्तु जब इस बात का पता चला तो नशा हिरन हो गया। तबले की थाप और सारगी की तान बन्द हो गई और उसी समय फिटन दौडाते हुए ऑफिस पहुँचे।

वे ऑफिस के पुराने बेनियन थे और उनकी इज्जत तथा धाक भी थी। शायद अपनी गलती मजूर कर लेने पर साहब मान जाता परन्तु क्रोध मे मनुष्य की मति भ्रष्ट हो जाती है।

उन्होने आते ही बडे साहब पर रोब गाँठना शुरू किया परन्तु साहब झगडा बढाना नही चाहता था। उसने कहा—"एक महीने से यह माल बिक नही रहा था और जिन दामो मे हम बेचना चाहते थे, उससे भी चार-पाँच पाई प्रति गज ऊँचा बिका है। गिरधारीलाल की तो केवल दलाली ही रहेगी, बाकी बेनियनशिप-कमीशन तो आपका ही है।"

साहब की नम्रता को कमजोरी समझकर सेठ निक्कामल ने विलायत के बडे साहबो से अपनी मित्रता और प्रभाव की धौस जताते हुए कहा कि दलाल चुनना मेरा काम है न कि ऑफिस का इसलिए इस सौदे की जिम्मेदारी मै नही लूँगा। गिरधारीलाल के पास तो एक कानी कौडी भी नही है कि वह आपको जमानत के रूप मे दे सके। मै अब आपकी ऑफिस से किसी प्रकार का सम्बन्ध भी नही रखना चाहता। उसी समय सेठ ने बेनियनशिप से इस्तीफा लिखकर दे दिया।

सेठ को पूरा भरोसा था कि साहब दब जायेगा और मान-मनुहार करके इस्तीफा वापस कर देगा परन्तु जब टाइपिस्ट को बुलाकर इस्तीफे की मजूरी लिखा दी गयी तो निक्कामल सेठ की आँखो के आगे अँधेरा छा गया क्योकि उनकी शान-शौकत और मौज-बहार तो सब इस ऑफिस के भरोसे ही थी। उन्होने साहब से गलती और गुस्से के लिए क्षमा भी माँगी। परन्तु बात बहुत आगे बढ चुकी थी और अब किसी प्रकार का समझौता सम्भव नही था।

कलकत्ते की ऑफिस से बिना रुपये जमा लिए ही गिरधारीलाल के लिए बेनियनशिप की सिफारिश लन्दन ऑफिस को की गयी। इधर सेठ निक्कामल ने भी पूरा जोर लगाया। अपने तीस वर्षो के सम्बन्ध और गिरधारीलाल की नाजुक आर्थिक स्थिति और नातजुर्बेकारी के बारे मे बडे-बडे तार दिए। दूसरे व्यापारियो से भी तार दिलाए परन्तु बात बडे साहब की ही रही।

अब कार-तारक-कम्पनी के बेनियन बने सेठ गिरधारीलाल मटरूमल, कल के १४) महीने मे पुर्जी चुकाने की नौकरी करने वाले। बहुत वर्षो तक दोनो भाइयो ने ईमानदारी

और कड़ी मेहनत से काम किया। ऑफिस के काम की भी उनके समय मे अच्छी तरक्की हुई। उनके अपने लाभ के सिवा व्यापारियो को भी उनके द्वारा अच्छा मुनाफ़ा होता रहा।

धनाढ्य हो जाने पर भी उन्होने अपने रहन-सहन मे सादगी रखी और ग़रीबी के दिनो को नही भूले। जो भी कोई ग़रीब युवक उनके पास आया, उसे हर प्रकार की सहायता दी। कुछ वयोवृद्ध लोग अभी तक है जिन्होने गिरधारीलाल को देखा है। हरिसन-रोड मे उनकी धर्मशाला है। राजस्थान मे भी कुआँ, तालाब और धर्मशाला है। गरीब विद्यार्थियो के लिए अन्नक्षेत्र भी शायद कुछ समय पहले तक था। ऐसा कहा जाता है कि गरीब लड़कियो की तो गुप्त-रूप से उन्होने बीसियो शादियाँ कराई थी।

आज न तो गिरधारीलाल है और न कार तारक-कम्पनी का साहब। परन्तु उनके स्मारक और भलाई की बाते लोगो के मन मे अभी तक बसी हुई है और दूसरे व्यक्तियो को प्रेरणा प्रदान करती रहती है।

बलिदान की परम्परा

राजस्थान की भूमि वीर-प्रसविनी कहलाती है। चित्तौड का यश तो सर्वविदित है। भूतपूर्व जोधपुर रियासत मे अनेक वीर पैदा होते रहे है जिनकी गाथाए उन क्षेत्रो के चारण गद्गद् होकर आज भी गाते है। बाबा रामदेव, वीर दुर्गादास और प्रण-वीर पाबजी राठौड़ का नाम आज भी अमर है। सन् १९६२ मे मेजर शैतान सिंह चीनी आक्रमणकारियो मे बहुत बहादुरी के साथ देश की रक्षा करते हुए शहीद हो गये थे। उसी मरुधारा की ढाणियों की एक छोटी-सी राजपूत-बस्ती, वीरपुरी मे एक साधारण परिवार है, जहा की यह परम्परा चली आ रही है कि प्रत्येक पुरुष तीस-बत्तीस वर्ष की उम्र पाने से पूर्व ही किसी-न-किसी युद्ध मे वीरगति प्राप्त कर लेता है।

इस परिवार को जोधपुर रियासत से सिरोपाव सोना और नगारे की इज्जत मिली हुई थी। यहाँ तक कि दरबार मे जाने पर महाराजा स्वय खडे होकर परिवार के सरदार का स्वागत करते थे। कहा जाता है कि इनके पूर्वजो मे कई ऐसे अद्भुत जुझार पैदा हुए जो सिर कट जाने के पश्चात् भी काफी देर तक हाथ मे तलवार लिए युद्ध करते रहे। इसी घराने के ठाकुर हीर सिंह ने प्रथम महायुद्ध मे, फ्रास की रणभूमि मे जर्मनो के छक्के छुडा दिये थे। स्वय घायल होकर भी एक दूसरे घायल सिपाही को कन्धे पर डालकर ले जाते हुए उसको सुरक्षित स्थान पर पहुँचाते समय दुश्मन की गोलियो से उनका प्राणान्त हो गया।

ठाकुर हीर सिंह की मृत्यु का समाचार, उनकी विधवा माँ और पत्नी को मिला तो शोकाकुल माता ने सर्वप्रथम यह बात पूछी कि मेरे पुत्र के शरीर मे गोली किस जगह पर लगी, यद्यपि उसको यह पता चल गया था कि किस प्रकार वह जर्मन सिपाहियो को मौत के घाट उतारता रहा और अन्त मे घायल साथी के प्राण बचाते हुए धोखे से मारा गया। फिर भी वह अपने शेष जीवन मे इसी सताप से ग्रस्त रही कि उसका पुत्र पीठ मे लगी गोली से मारा गया, जो उस परिवार के लिए कलक था।

विधवा-माँ और पत्नी, मृत ठाकुर के मासूम बच्चे पर सारी आशाएँ केन्द्रित कर उसे वीरता-भरी कहानियाँ सुनाया करती थी। जब उसकी आयु तेईस-चौबीस वर्ष की हुई तो द्वितीय विश्व-महायुद्ध का प्रारम्भ हो चुका था। जोधपुर नरेश के बुलाने पर युवक भूरसिंह परिवार की परम्परानुसार दादी, माता और पत्नी के पास विदा लेने गया। विदा करते हुए माँ ने कहा, "बेटा, मुझे एक सताप आज भी खाए जा रहा है, यद्यपि तेरे स्वर्गीय पिता को यथेष्ट यश मिला था किन्तु उनकी मृत्यु पीठ पर गोली लगने से हुई। अत यह ध्यान रखना कि इसकी पुनरावृत्ति न हो। पितेश्वरो के आशीर्वाद से तुम्हे विजयश्री प्राप्त हो, मेरी कोख व परिवार के नाम को उज्ज्वल करना।"

युवक भूरसिंह ने अपने पिता से भी ज़्यादा यश प्राप्त किया। सैंकडो दुश्मनो को इटली के रणक्षेत्र मे मौत के घाट उतार कर वह वीरगति को प्राप्त हुआ। गोलियो से छलनी हुई लाश को श्रद्धा के साथ मस्तक झुकाकर शत्रु-सेना के अफसरो ने भी सलामी दी और सम्मानपूर्वक उसे दफना दिया गया।

जब भूरसिंह घर से चला था तो पत्नी गर्भवती थी। उसकी मृत्यु के समय बालक पुत्र की आयु केवल दो वर्ष की थी। सरकारी पेशन से किसी प्रकार घर का निर्वाह होता रहा। वैसे उनकी थोडी-सी जमीन भी थी किन्तु परिवार मे कोई पुरुष सदस्य खेती को देखने वाला था नही अत जो कुछ बँटाई से प्राप्त होता उससे गुजारे मे मदद मिल जाती थी।

बचपन से ही बालक बडा हृष्ट-पुष्ट था, इसलिए उसका नाम रखा गया जोरावरसिह। दस साल की उम्र मे जोरावर सिंह मे इतनी ताकत व हिम्मत थी कि स्कूल मे अपने से दुगुनी उम्र के लडको को पछाड दिया करता था फलत आसपास के गाँवो मे कई प्रकार की किंवदन्तियाँ उसके बल के बारे मे प्रचलित हो गई। उन बातो को सुनकर विधवा-माँ का हृदय सदैव भयभीत रहता था। वह पुत्र को सैनिक स्कूल मे भर्ती न करवा कर घर पर ही दूसरे प्रकार की शिक्षा दिलाना चाहती थी। परन्तु जोरावर सिंह, माँ से बिना कुछ कहे एक दिन छुपकर घर से चल दिया और सैनिक-स्कूल मे भर्ती हो गया। स्कूल से उसने अपनी विधवा माँ को पत्र लिखा, "यद्यपि देश स्वतन्त्र हो गया है पर हमारी उत्तरी सीमा पर दुश्मन चढ आया है। इस हालत मे भारत-माता को किसी भी समय वीरो के बलिदान की आवश्यकता हो सकती है और यदि उसमे सर्वप्रथम हमारे परिवार का योग न रहा तो आपकी कोख से मेरा जन्म लेना ही व्यर्थ होगा।" पत्र पढते समय माँ की दाहिनी आँख फडक रही थी फिर भी उसने आशीर्वाद सहित जोरावर को सैनिक शिक्षा की मजूरी दे दी।

अक्टूबर-नवम्बर १९६२ का समय था। चीन का आक्रमण हुआ। जोरावर सिंह सेना की सर्वोच्च परीक्षा मे सफलता से उत्तीर्ण होकर निकला था। उसकी प्रबल इच्छा थी कि उसे लडाई मे जाने का अवसर मिले परन्तु यह इच्छा पूर्ण हो, इसके पहले ही युद्ध-विराम हो गया।

कुछ अर्से बाद पाकिस्तान ने हमारे देश पर हमला किया। काश्मीर पजाब व राजस्थान के बाडमेर की सीमाओ पर हमलावरो को रोकने के लिए जिन फौजो को भेजा गया था, उनमे एक टुकडी नायक था युवक जोरावर सिंह। मोर्चे पर जाने से पूर्व वह अपने गाँव, माँ से मिलने आया।

विदा के समय माँ को 'असगुन' हो रहे थे। बहुत यत्न करने पर भी वह अपने आँसू न रोक सकी। उसने अपने पुत्र को छाती से लगाकर आशीर्वाद दिया और इतना ही कहा, "बेटा! मुझ से भी बडी तुम्हारी भारत-माँ है, उस पर आज दुश्मनो ने हमला किया है। कुलदेवता तुम्हे विजयी बनायेंगे परन्तु याद रखना अगर युद्ध मे वीरगति प्राप्त हो तो दुश्मन की गोली पीठ मे न लगे।"

मरुभूमि-बाडमेर के सूने इलाक़े मे सिर्फ, सात अन्य जवानो के साथ इस बहादुर रण-बाँकुरे को एक सीमा चौकी की रक्षा का भार सौपा गया। युद्ध का अधिक जोर काश्मीर और पजाब की सीमा पर ही था अत राजस्थान के इस वीरान इलाक़े मे थोडे-से सिपाहियो को साधारण हथियार व गोलियाँ देकर ही तैनात किया गया था।

सितम्बर के दूसरे सप्ताह मे एक दिन अचानक ही इस चौकी पर सत्तर-अस्सी पाकिस्तानी सिपाहियो ने गोला-बारूद और हथियारो से लैस होकर हमला बोल दिया। दुश्मन के बहुत से सिपाही मौत के घाट उतार दिए गए किन्तु इस तरफ भी केवल तीन ही जवान शेष बचे। वे बुरी तरह घायल हो चुके थे तथा उनकी गोलियाँ भी समाप्त हो गई थी।

ज़ोरावर सिह घायल अवस्था मे ही दो-बार मरे हुए दुश्मनो के पास जाकर हथियार व गोला-बारूद लाने मे सफल हुआ परन्तु, तीसरी बार आगे बढते ही सामने से शत्रु-दल ने उस पर एक साथ गोलियो की बौछार शुरू कर दी और वह बेहोश होकर गिर गया। कुछ समय पश्चात् दूसरी चौकी के हमारे सिपाही वहाँ पहुँच गए और उनको देखकर बुजदिल पाकिस्तानी हमलावर भाग गए। इस समय तक ज़ोरावर सिह को भी कुछ होश आ चुका था परन्तु उसके शरीर से इतना खून निकल गया कि वह अन्तिम साँसे ले रहा था।

मरते समय उसने अपने साथियो से कहा, "गोलियाँ सीने मे लगी है । अगर सम्भव हो तो मेरी लाश को मेरे गाँव भेज देना, क्योकि मेरी माँ ने कहा था । "मै चाहता हूँ कि मेरी माँ देखे कि मैने कुल की परम्परा का पूर्णतया पालन किया है ।" इतना कहने के पश्चात् उसका शरीर शान्त हो गया। पास मे खडे उसके साथी सिपाहियो ने देश के प्रति कुर्बान हुए उस शहीद को सैनिक सलामी दी।

आत्माभिमान

विशेसर बहुत वर्षो बाद बम्बई से राजस्थान अपने गाव आया था। साथ मे पत्नी और बच्चा भी था। दो-तीन नौकर-दाई भी थे। बहुत बडा कारबार छोडकर १०-१५ दिनो के लिए आता तो नही परन्तु बच्चा, वर्षो बाद हुआ था। उसके मुडन की मनौती थी, सालासर के हनुमान जी की। पत्नी बहुत बार याद दिला चुकी थी, इसीलिए आना पडा। गाव मे उसके मामा-मामी थे जिन्होने उसे पाल-पोस कर और पढ़ा-लिखा कर होशियार किया था अतएव अपनी सूनी हवेली मे न रुक कर ननिहाल मे ही ठहरना उचित समझा।

बम्बई के अपने कारबार मे उसे अभूतपूर्व सफलता मिली इसीलिए पिछले पन्द्रह वर्षो से रहन-सहन एकदम बदल गया था। वहाँ के बंगले मे एयर-कन्डीशन्ड, बेहतरीन फर्नीचर, बडी-बडी मोटरे और अन्य सब प्रकार की सुख-सुविधाएं थी।

देश मे गल्ले की छोटी सी दुकान मामा की थी। गरीबी तो नही थी, फिर भी साधारण सा घर था। मामी चूल्हे-चौके से लेकर घर को झाडने-बुहारने तक के सब काम हाथ से करती थी। विशेसर और उसकी पत्नी को किसी प्रकार की असुविधा न हो इसलिए एक कमरे को अच्छी तरह सँवार दिया था। दो-एक निवार के पलग डाल दिए आगरे की एक दरी बिछा दी।

सुबह मामी ने चाय-नाश्ता दिया तो बिशेसर ने देखा कि चीनी-मिट्टी के बर्तनो की जगह कासे के बर्तन है। खैर, वह मामी का बहुत अदब रखता था, कुछ नही बोला परन्तु उसकी पत्नी ने तो कह ही दिया कि मामाजी, इस प्रकार के बर्तनो मे तो हमारे यहा दाई-नौकर भी चाय नही पीते। मामी के मन पर चोट तो लगी पर कुछ बोली नही।

दूसरे दिन पास के शहर से बिशेसर के दो मित्र मिलने आए। मामा भी वही बैठे थे, परन्तु वे देहाती वेश-भूषा मे थे इसलिए मित्रो से इनका परिचय कराना उचित नही समझा। उसी दिन वह बाज़ार से स्टेनलेस-स्टील के बर्तन, अच्छे किस्म का एक टी सेट और बहुत से सामान खरीद लाया। मामी के पूछने पर कहा कि उसके दोनो मित्र बडे आदमी है वे भला कासे के बर्तनो मे भोजन कैसे करेगे?

मामी बड़े घर की बेटी थी। उसके पीहर मे स्टील के सिवा चादी के बर्तन भी थे किन्तु अपने घर मे हैसियत और आय के अनुरूप सम्हाल कर खर्च करती थी, पर उसमे स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा था। उसे बहू का तौर-तरीका अच्छा नही लगा। उसकी बातचीत मे धन के अभिमान की स्पष्ट झलक दिखाई दी, फिर भी, मामी ने सोचा कि दो-चार दिनो की ही तो बात है अत चुपचाप सह लेना ही उचित है।

हमीद खां भाटी

प्रत्येक गाव या कस्बे मे कभी-कभी ऐसे व्यक्ति हो जाते है जिनको बहुत समय तक लोग याद किया करते है और उनकी अमिट छाप जनमानस पर अकित हो जाती है। इस प्रकार के मनुष्य केवल धनी अथवा विद्वान घरानो मे ही पैदा होते हैं, ऐसी बात नही है।

बीकानेर के उत्तर मे पूगल नाम का इलाका है। कहा जाता है, किसी समय में यहा पदामनी स्त्रिया होती थी। जो भी हो आजकल तो यहा वीरान, रेतीली बजर-भूमि है। पीने के पानी की कमी रहती है, इसलिए गाव भी छोटे और दूर-दूर है।

यहा के बासिन्दो का मुख्य धन्धा भेड़ पालना है। थोडे से ब्राह्मण और बनिये है जो लेन-देन या दूकानदारी का काम करते है। उनके सिवा यहां मुसलमान गूजरो की पर्याप्त सख्या है जिनके पास बेहतरीन किस्म की गाए रहती है। वे इनका दूध-घी बेचकर अपना निर्वाह करते है। कहावत है— 'सेवा से मेवा मिलता है' शायद इसीलिए इनकी गाएं दूध ज़्यादा देती है और अच्छी नस्ल के बछडे-छडिया भी।

सन् १९५१ मे इस तरफ भयकर अकाल पडा था। कुओ मे पानी सूख गया। घरो मे जो थोडा-बहुत घास और चारा था, उससे उस वर्ष किसी प्रकार पशुओ की जान बची। जब दूसरे वर्ष भी वर्षा नही हुई और अकाल पड़ गया तो यहा लोगो की हिम्मत टूट गई।

कलकते की मारवाडी-रिलीफ सोसाइटी ने दोनो वर्ष ही वहा राहत का काम किया था। मैं भी दूसरे वर्ष कुछ समय तक उस सिलसिले मे वहा रहा। हम देखते कि नित्य-प्रति हज़ारो स्त्री, पुरुष और बच्चे अपने ढोरो को लिए पैदल कोटा, बारा और मालवा की तरफ जाते रहते थे। ४-५ महीनो के बाद वापस आने की सभावना रहती इसलिए घर का सारा सामान भी गाय और बैलो पर लदा हुआ रहता। घर छोडकर जाने में दु ख होना स्वाभाविक है और फिर अभावो से घिरी हुई हालत मे। वीहड लम्बा रास्ता, वैशाख की गर्मी, इसलिए सबके चेहरो पर दु ख एव थकान की स्पष्ट छाया नजर आती थी। रास्ता काटने के लिए स्त्रिया भजन गाती हुई चलती। उन लोगो से पूछने पर प्राय एक सा-ही उत्तर देते कि पानी, अनाज, घास और चारा मिलता नही है, क्या तो हम खाए और क्या इन पशुओ को खिलाए ?

हमे पूगल के गावो के सीमान्त पर गाय-बैलो के बहुत से ककाल और लाशे देखने को मिली। पता चला कि बूढे बैलो और गायो को उनके मालिक जगलो में छोड़ गए। यहा भूख, प्यास और गर्मी से इनके प्राण निकल गए।

कई बार तो सिसकती हुई गाए भी दिखाई दी । उनके लिए यथाशक्ति चार-पानी की व्यवस्था की गई परन्तु समस्या इतनी कठिन थी कि यह बन्दोबस्त बहुत थोडे पैमाने पर ही हो सका । यह भी पता चला कि अच्छी हालत के लोगो ने भी पानी और चारे की कमी के कारण बेकाम गाय-बैलो को मरने के लिए जगल मे छोड दिया है ।

ज्यादातर घरो मे इस प्रकार की वारदाते हो चुकी थी इसलिए आपस की निन्दा-स्तुति की गुजाइश भी नही थी ।

यही के किसी गाव मे एक दिन दोपहर के समय पहुचा । धरती गर्मी मे धू-धू करके जल रही थी । अगारो के समान तपती हुई रेत की आधी चल रही थी । तालाबो और कुओं मे पानी कभी का सूख गया था । लोग १०-१५ मील की दूरी से पानी लाकर प्यास बुझाते । अधिकाश लोग गाव-इलाका छोडकर चले गए थे, कुछ ब्राह्मण और बनिये बचे हुए थे । यही मैंने हमीद खा भाटी के बारे मे सुना और उसके घर जाकर मिला ।

घर कच्चा था पर साफ-सुथरा और गोबर से लिपा-पुता । हमीद खा की उम्र ६५-७० वर्ष के लगभग थी । शरीर का ढाचा देखकर पता लगा कि किसी समय काफी बलिष्ठ रहा होगा । अब तो हड्डिया निकल आई थी, चेहरे पर गहरी उदासी छाई हुई थी ।

दुआ-सलाम के बाद मैंने पूछा "खा साहब गाव के प्राय सारे लोग चले गए फिर आप क्यो यहा इस तरह की किल्लत मे अकेले रह रहे है ?"

वह कुछ देर तक तो मेरी तरफ फटी-फटी आखो से देखता रहा फिर कहने लगा, "अल्लाह मालिक है, उसका ही भरोसा है । कभी-न-कभी तो वर्षा होगी ही । बेटे और बहुए, बच्चो और धन (यहा गाय-बैल, ऊट आदि को धन कहते है) को लेकर एक महीने पहले ही मालवा चले गये हैं । मुझे भी साथ ले जाने की बहुत ज़िद्द करते रहे पर भला आप ही बताइये, अपनी धौली और भूरी, दोनो को छोडकर कैसे जाऊ ? इन दोनो से तो एक कोस भी नही चला जाता । (धौली और भूरी इसकी बूढी गाए थी जिनमे एक लंगडी और दूसरी बीमार थी) ।

"आज इनकी इस प्रकार की हालत हो गई है नही तो दोनो ने न जाने कितने नाहर-भेडियो से मुठभेड ली है । आस-पास मे, इनके बराबर दूध भी गाव मे किसी गाय के नही था । ३-४ सेर तो बछडे ही पी जाते, फिर भी १०-१२ सेर प्रत्येक का हमारे लिए बच जाता ।"

"ये दोनो मेरे घर की ही बेटिया है, जिस वर्ष मेरे छोटे लडके फत्ते का जन्म हुआ था, उसके लगभग ही ये दोनो जन्मी थी । बीस वर्ष तक हम लोग इनका दूध पीते रहे । अब आप ही बताइये बुढापे मे इन्हे कहा निकाल दूँ ? भला कोई अपनी बहन-बेटी को घर से थोडे ही निकाल देता है ?" बाते करते हुए उसकी आवाज रुआसी हो गई थी । देखा, उसकी धुधली आखो से टप-टप आसू गिर रहे है ।

बाते तो और भी करना चाहता था परन्तु इतने मे सुनाई दिया कि बाहर के सहन मे धौली और भूरी रम्भा रही है, शायद भूखी या प्यासी होगी । हमीद खा उठकर बाहर चला गया ।

गांव के मुखिया प० बशीधर के साथ ८-१० व्यक्ति रात मे मिलने को आए । उनके कहने के अनुसार ५० वर्ष मे ऐसा भयकर अकाल नही पडा था । उन्होने कहा, "हमीद खा भी ज़िद्दी कम नही । अपने लिए दो जून खाना तक नही जुटा पाता पर इन दोनो गायो पर जान देता है । दिन मे धूप बहुत हो जाती है इसलिए रात को दो बजे उठकर ५ मील दूर स्थित तालाब से दोनो के लिए एक मटका पानी लाता है । घरवाले जो अनाज छोडकर गए थे, उसमे से बहुत-सा बेचकर इनके लिए चारा और भूसा खरीद लाया । जब वह चुक गया तो अपना मकान ऊचे ब्याज पर गिरवी रखकर और चारा लिया है ।"

गर्मी के मौसम मे भी इस तरफ राते ठडी हो जाती है परन्तु मुझे नीद नहीं आ रही थी। सोच रहा था—क्या वास्तव मे ही हमीद खां मूर्ख और ज़िद्दी है ? वातचीत से तो ऐसा नही लग रहा था। हा, एक बात समझ मे नही आई, वह तो मुसलमान है जिसके लिए गाय 'माता' नही है फिर क्यो इन दो वेकाम गायो के पीछे नाना प्रकार के कष्ट सहकर, तिल-तिल करके स्वय मृत्यु की तरफ अग्रसर हो रहा है ? अपना एक-मात्र मकान इनके चारे-पाले के लिए गिरवी रख दिया है। थोड़े दिनों वाद मूल और ब्याज वढकर इतना होगा कि चुकाना असम्भव हो जायेगा। जव उसके वाल-वच्चे मालवा से थके-हारे वापस आएगे तो उन्हे शायद अपना पैतृक घर छोड देना पडेगा।

जाने से पहले एक बार फिर हमीद खा से मिलने की इच्छा हुई। वहुत सुवह वहा जाकर देखा कि वह धौली और भूरी के शरीर पर तन्मय होकर हाथ फेर रहा है और वे दोनो बडी ही करुण दृष्टि से उसकी तरफ देख रही है, शायद कह रही होगी कि गाव छोडकर सव चले गए फिर भी तुम इस प्रकार भूखे-प्यासे रहकर मृत्यु के मुख मे जा रहे हो हमे अपने भाग्य पर छोडकर बच्चो के पास चले जाओ।

सोसाइटी की तरफ से थोडी-बहुत व्यवस्था कर मन-ही-मन उस अपढ मुसलमान को प्रणाम करके भारी-मन से उस गाव से रवाना हुआ। १५ वर्ष बाद भी हमीद खा का वह ग़मगीन चेहरा आज तक भुला नही पाया हू।

लक्ष्मी दरोगी

श्रीमती स्टो की विश्व प्रसिद्ध कृति 'अकल टाम्स कैबिन' का हिन्दी अनुवाद 'टाम काका की कुटिया' बहुत वर्षो पहले पढा था, उस पुस्तक मे अमेरिका के हब्शी गुलामो का कुछ ऐसा हृदयद्रावक वर्णन है कि ४० वर्ष बाद भी वह मेरे मानस-पटल पर अकित है।

बहुत वर्षो बाद अगर स्पेन, पुर्तगाल, ब्रिटेन और डचो द्वारा हब्शी-गुलामो और दक्षिण अफ्रीका मे भारतीयो के साथ किए गए अत्याचारो के वर्णन नही पढ लेता तो ऐसा लगता कि शायद मिसेज स्टो ने अतिशयोक्ति मे काम लिया है।

वैसे मौर्य-काल मे हमारे यहा भी दासियो के बारे मे वर्णन मिलते है, किन्तु भारत मे यह प्रथा ज्यादा दिन नही रही और यहा गुलामो के साथ व्यवहार भी यूरोप और अमेरिका के सदृश नृशमतापूर्ण नही था। वाल्मीकि रामायण मे भी राजा जनक द्वारा सीताजी के दहेज मे दास-दासियो का दिया जाना लिखा है परन्तु ये सब गुलामो की कोटि मे ही थे या नहीं, यह विवादास्पद है।

मुगल बादशाहो द्वारा आए-दिन अपमानित और लाछित राजपूत राजाओ को अपना आक्रोश निकालने और ऐय्याशी के लिए कोई साधन चाहिए था, इसी दौर मे सत्रहवी शताब्दी मे दूसरी अनेक बुराइयो के साथ-साथ राजस्थान के राज-घरानो मे दारोगा या गोला-प्रथा का प्रादुर्भाव हुआ। अठारहवी ओर उन्नीसवी सदी मे राजाओ के अलावा छोटे-छोटे सरदारो के यहा भी दस-बीस गोले-गोलिया रहते थे। इनके पुरुषो का काम होता था, ठाकुर या कवर-साहब की चाकरी करना और स्त्रियो ठकुरानी या कुवरानी का साज-श्रृगार करने के सिवा पलग-सेवा।

बहुत-से पाठक जो राजस्थानी सामन्तो की प्रथाओ से अनभिज्ञ है, पलग-सेवा का अर्थ नही समझ पायेगे। राजा या ठाकुर जब रानी या कृपापात्री रखेल के साथ काम-क्रीडा मे रहते तो उस समय पलग के इर्द-गिर्द २-४ गोलिया शराब के गिलास, तौलिये, रूमाल अथवा केसरिया दूध आदि पौष्टिक पदार्थ लेकर खड़ी रहती थी। कभी-कभी, मन हो जाने पर रानी को अलग हटाकर इन गोलियो मे से किसी एक या दो को पलग पर बुला लिया जाता था।

गोले और गोली, एक प्रकार से रावले के गुलाम होते थे। इनकी सन्तानो पर राजाओ और ठाकुरो का पूर्ण अधिकार था। अधिकाश तो उनकी अपनी नाज़ायज सन्तति ही होती थी।

कुवरानी के विवाह मे अपनी हैसियत के मुताबिक ५ से लेकर १०० तक अविवाहित गोलियो को दहेज मे दिया जाता था।

इनका नाम-मात्र का विवाह वर-पक्ष के गोलो से कर दिया जाता परन्तु उन सबको रहना पडता था कुँवर-साहब या उनके कृपापात्र मुसाहिबो की रखैलो के रूप मे।

आकृति-विशेषज्ञो का कहना है कि वर्ण-सकर सन्ताने ज्यादा सुन्दर और कुशाग्रबुद्धि की होती हैं। शायद, इसीलिए ये गोले और गोलियाँ राजकुमार और राजकुमारियो से अधिक आकर्षक होते थे। इनमे से बहुत से रावले की सुविधाओ के कारण अच्छी शिक्षा भी प्राप्त कर लेते।

मेरे राजनैतिक क्षेत्र के एक जागीरदार के गाँव मे एक दारोगा काग्रेस-कार्यकर्ता है, बहुत ही परिश्रमी और सूझ-बूझ वाला, एक प्राईमरी स्कूल मे अध्यापक है। मासिक वेतन ११०) रुपया। हिन्दी-साहित्य मे उसकी रुचि है। अध्ययन भी पर्याप्त है इसलिए समय निकाल कर आपस मे हम कुछ साहित्य-चर्चा कर लेते थे

उन दिनो शक्ल-सूरत से वह किसी आग्ल-राजकुमार-सा लगता था। शिक्षा साधारण सी थी, परन्तु स्मृति और प्रतिभा इतनी थी कि अगर मौका मिलता तो शायद वडा विद्वान होता।

पहली बार देखने पर ही उसके प्रति मेरा आकर्षित हो जाना स्वाभाविक था। जान-पहचान बढ जाने पर एक दिन उसने मुझे अपने घर भोजन पर बुलाया। दही छाछ की रावडी, शुद्ध घी और शक्कर के साथ बाजरे की रोटी और कैर-सागर का साग। आज भी वह सुस्वादु भोजन याद आता है।

छोटे-से सस्कृत परिवार मे मा पति-पत्नी और एक बच्चा था। वैसे, पत्नी भी सुन्दरी थी परन्तु मा तो उस प्रौढ अवस्था मे भी अप्सरा-सी लगती थी। उसकी बातचीत और तौर-तरीकी में राज-घराने की तहज़ीब स्पष्ट थी।

पता नही क्यो, इन लोगों के प्रति सहानुभूति बढती गई। जब भी गाव मे जाता, इनसे मिलता। शायद ही कभी उन्होने अपने किसी कार्य के लिए मुझसे कहा होगा। खेती और स्कूल की शिक्षकी से जो आय होती, उसी मे अपना खर्च चला लेते।

असेम्बली के चुनाव मे उस क्षेत्र से मेरा काग्रेस-मनोनीत साथी बुरी तरह हार गया और वहा का जागीरदार जीत गया। वैसे बहुत प्रकार की गन्दी बाते उस ठाकुर के बारे मे प्रचलित थीं परन्तु न जाने क्यो लोगो ने उसे इतने अधिक मत दिए।

वहा इस वात की आम-चर्चा थी कि मेरे मित्र की मा उस ठाकुर के पिता के गढ मे थी। वह पर्दायत तो नहीं हो पायी परन्तु कुछ वर्षो तक बडे ठाकुर की उस पर विशेष कृपा रही थी। ठाकुर की और मेरे मित्र की शक्ल-सूरत इतनी मिलती-जुलती थी कि वहा के लोगो में धारणा थी कि वह वर्तमान ठाकुर के पिता का औरस-पुत्र है।

चुनाव के नतीजे के बाद एक दिन मै उनके घर गया हुआ था। ठाकुर के बारे मे बाते हो रही थीं। मैंने देखा कि वृद्धा की आखे गीली हो गई है। शायद, उसे बीते जमाने की बाते याद आ गई।

वैसे, वह मितभाषिणी थी, परन्तु उस दिन शायद बहुत मुखर हो गई, सकोच भी नही रहा। उसने जो आत्मकथा सुनाई उसका सक्षेप यह है—

"मेरी मा एक बड़े जागीरदार की उपपत्नी थी। मै अपनी मा की इकलौती सतान थी। वह ठाकुर मुझे अपनी पुत्री की तरह ही प्यार करता था। चूकि मुझ पर बाई सा (कुवरानी) का बहुत स्नेह था इसलिये मा के बहुत आरजू-मिन्नत के बावजूद मुझे उनके साथ दहेज मे दे दिया गया।

"इस ठिकाने मे आकर मेरे दुःखो का पार नही रहा। विवाह तो एक प्रथा के अनुसार एक दरोगा से कर दिया गया परन्तु रहती थी मैं कुँवर-साहब की सेवा मे ही; कभी-कभी वे मुझे कुँवरानी जी के सामने ही पलग पर बुला लेते थे।"

"दो वर्ष बाद रामू का जन्म हुआ। कुवर साहब इसको बहुत प्यार करते थे। परन्तु बाई सा हम दोनो से बहुत नाराज रहने लगी। रात दिन जली-कटी सुनाती रहती। एक-दो बार तो बच्चे को ज़हर देने का भी प्रयास किया गया।"

"थोडे दिनो बाद ही कुँवर-साहब की कृपा एक दूसरी दरोगी लडकी पर हो गयी और मुझे अपने घर भेज दिया गया। ठाकुर-साहब के स्वर्गवासी होने के बाद कुँवर-साहब ठाकुर बने। फिर तो उनके ऐशो-इशरत की कोई सीमा नही रही। एक दिन उन्होने मुझे पलग-सेवा के लिए बुलाया। उस दिन मेरे पति बहुत बीमार थे, उन्हे छोडकर मैं नहीं जा सकी। दूसरे दिन रावले से तीन-चार व्यक्ति आए और मेरे पति को और मुझे पकड कर गढ मे ले गए उस दिन ठाकुर ने अपने मुसाहिबो द्वारा बारी-बारी से मेरे पति के सामने ही मुझ पर जो अत्याचार कराया, वह वर्णन योग्य नही है। मेरे बीमार पति ने कुछ रोक-थाम का प्रयत्न किया तो हत्यारो ने तत्काल उसको गला घोटकर मार दिया।"

कुछ क्षण चुप रहकर उसने फिर कहा—

"विक्षिप्त और आधी-बेहोशी की हालत मे रोती-बिलखती मैं अपने घर आ गई। इसके थोडे दिन बाद ही वर्तमान ठाकुर का जन्म हुआ। इनकी और मेरे रामू की शक्ल इतनी मिलती-जुलती थी कि ठाकुर-साहब को बाई-सा पर वहम हो गया और उनमें आपस मे अनबन हो गयी। कुछ समय बाद बाई सा ने ठाकुर-साहब को जहर देकर मरवा दिया। राज घरानो मे इस प्रकार की घटनाए प्राय ही होती रहती थीं।"

"बाई-सा अपने एक कृपा-पात्र मुसाहिब के जरिये ठिकाने का कार्य सभालने लगी। पता नही क्यो, पुन उनका मेरे प्रति स्नेह हो गया और मुझे रावले मे बुला लिया गया। रामू कुँवर-साहब के साथ-साथ पढने लगा।" मैंने देखा कि उसकी आखो से टप-टप आसू गिर रहे हैं। उसने मुह फेर लिया और शीघ्रता से घर के भीतर चली गई।

शिवजी भैया

कुछ इस प्रकार के व्यक्ति होते है, जिनसे मिलते-जुलते लोग हर काल, समाज और देश मे मिल जाते हैं। मैं शरत बाबू का उपन्यास 'विराज बहू' पढ रहा था। उसमे नीलाम्बर चक्रवर्ती के प्रसग मे मुझे राजस्थान के शिवजीरामजी की याद आ गई। अगर यह पुस्तक उस अचल के किसी लेखक द्वारा लिखी गई होती तो जानकार लोगो को नीलाम्बर के चरित्र मे शिवजी रामजी का भ्रम होता।

इस कथा के नायक का जन्म आज से सौ-वर्ष पहले शेखावाटी के कस्बे मे हुआ था। पिता का देहान्त बहुत पहले हो गया था। साधारण-सी सम्पन्न गृहस्थी थी। घर मे माता और दो भाई थे। माता यद्यपि पढी-लिखी तो नही थी, परन्तु बहुत ही चतुर और बुद्धिमती थी। पति के मरने के बाद दोनो पुत्रो को अच्छी शिक्षा दी। घर-गृहस्थी को भी सम्भाल कर रक्खा। दोनो भाइयो मे आपस मे इतना प्रेम था कि गॉव के लोग इनको राम-लक्ष्मण की जोडी की उपमा देते। उस समय की रीति के अनुसार दोनो के विवाह बचपन मे ही हो गए थे।

एक दिन, बड़े भाई रामकिशन ने बम्बई जाकर काम करने का विचार माता के सामने रक्खा। यद्यपि उसकी आयु केवल बीम वर्ष की ही थी, परन्तु पिता का साया सिर पर था नही। जो कुछ पास मे था, वह पिछले वर्षो मे खर्च हो गया था, इसलिए भारी मन से माता ने आज्ञा दे दी।

छोटे भाई शिवजीराम और पत्नी को वृद्धा माता की सेवा के लिए घर पर छोड कर वह बम्बई के लिए विदा हो गया। शिवजीराम के जिम्मे कुछ काम तो था नही इसलिए भाई के छोटे बच्चे को खेलाता रहता और गाव मे कभी साधु-सन्त आते तो उनकी सेवा मे सबसे आगे पहुँच जाता।

तीन मील दूर जगल में एक कुआँ था, सुबह जल्दी उठकर नित्यकर्म के लिए, वहाँ चला जाता। साथ मे चार-पॉच सेर अनाज ले जाता जो वहाँ पक्षियो को चुगा देता। वहाँ से आकर अपनी दो गायो को दाना-पानी खिलाता, उनके ठाण की सफाई आदि का सब काम वही करता। फिर स्नान करके नियम से रामजी के मन्दिर जाता, वे उनके कुल-देवता थे।

गाव रहकर वैद्यक और नाड़ी-परीक्षा का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था इसलिए बचे हुए समय मे ग़रीब रोगियो की चिकित्सा करता और बहुतो को दवा के सिवा पथ्य भी अपने पास से देता था।

इन सबके अलावा, उसने एक नियम यह भी बना रखा था कि गॉव मे किसी की भी मृत्यु हो, वहाँ जरूर पहुँच जाता और चलावे सारे कामो मे पूरे मनोयोग से हिस्सा लेता। चाहे

वैशाख-जेठ की गर्मी हो या पूस-माघ की सर्दी की रात, ऐसा कभी नही हुआ कि शिवजीराम ऐसे मौके पर नही पहुँचा हो।

उन दिनो छुआछूत का बहुत विचार था परन्तु उसकी मान्यता थी कि मृत्यु के बाद भगवान की जोत मे जोत मिल जाती है। मृतक की कोई जाति नही होती इसलिए गरीब हरिजनो के यहाँ भी ऐसे मौकी पर पहुँच जाता। अपने गाँव और आस-पास के देहात मे सब लोग उसको शिवजी भैया कहकर पुकारते थे।

माता धार्मिक-भावना की थी और उसकी प्रेरणा से ही शिवजीराम की इन काम रुचि हुई थी परन्तु पत्नी और भौजाई बराबर नाराज रहती। वे कहती—"सब ऊलजलूल काम तुम्हारे जिम्मे ही पडे हैं।"

कभी-कभी गाव के मंडे-मुसडे भी बीमारी या कष्टो का बहाना करके ठग ले जाते थे। शिवजीराम के पास आकर शायद ही कोई निराश लौटा हो। बडा भाई तीन-चार वर्षो के अन्तराल से गाव आता और दो-तीन महीने रहकर बम्बई चला जाता। माता का देहान्त होने के बाद पत्नी और पुत्र को भी वह अपने साथ बम्बई ले गया। गाँव मे अब पत्नी और बच्चो के साथ शिवजीराम अकेले रह गये।

सन् १६०१ मे बम्बई में जो महामारी हुई, उसमे रामकिशन की मृत्यु हो गयी। उसकी पत्नी और चौदह वर्ष का पुत्र रामदयाल दोनो रोते-बिलखते अपने गाँव वापस आ गये। शिवजीराम ने तो कभी कमाया नही था परन्तु अब सारा भार उस पर पडा। बम्बई न जाकर अपने कस्बे मे ही गल्ले की दूकान कर ली, भतीजे को भी साथ ले जाकर काम सिखाने लगा।

दुकानदारी मे जो सूझ-बूझ और चालाकी चाहिए, उसका शिवजीराम में सर्वथा अभाव था। लोग उधार ले जाते, रुपया-पैसा देते नही। वे जानते थे, शिवजीराम कभी कचहरी जाकर अदायगी के लिए नालिश नही करेगा। आखिर, दो-तीन वर्ष बाद नुकसान देकर दूकान उठानी पडी। इसी बीच, भतीजा रामदयाल अपने पिता की तरह ही काफी होशियार हो गया और बम्बई चला गया।

रामदयाल के पिता का वहाँ के बडे व्यापारियो से अच्छा सम्पर्क था और उसकी ईमानदारी की साख भी थी। बम्बई जाकर उसने कॉटन एक्सचेंज में अपने पिता के नाम के पुराने फर्म को फिर से चालू कर लिया। सयोग ऐसा बना कि थोडे वर्षो मे ही काम जम गया और उसके पास लाखो रुपये हो गये।

कई बार चाचा को बम्बई आने के लिए रामदयाल ने लिखा परन्तु गाँव मे इतने तरह के काम रहते कि शिवजीराम बम्बई न जा सका। बाद मे द्वारका-धाम की यात्रा के समय उसको सपरिवार बम्बई ठहरने का मौका मिला। वहा अपने भतीजे का वैभव और सुनाम देखकर उसे बडी प्रसन्नता हुई। रामदयाल ने ओर उसकी पत्नी ने उन्हे सदा के लिए वही रहने का आग्रह किया परन्तु उसका मन इस महानगरी मे नही लगा और थोडे दिनो बाद ही वापस राजस्थान आ गया। अब शिवजी भैया की जगह सेठ शिवजीराम हो गया। दान-धर्म की मात्रा बढ गई परन्तु प्रौढ हो गया था इसलिए पहले जितनी भागदौड नही कर पाता था।

इतने गुणो के बावजूद उसमे एक कमी रही कि घर की समस्याओ की तरफ कभी ध्यान नही दिया। दोनो लडकियो का विवाह तो अच्छे घरो मे हो गया परन्तु एकमात्र लडका लिख-पढ नही पाया।

कुछ ऐसे लोग भी थे जिनको शिवजीराम के यश और मान-बडाई से ईर्ष्या होने लगी। उन्होने बम्बई मे रामदयाल के कान भरने शुरू किए इतनी मेहनत करके कमाते तो तुम और वाह-वाही तथा सेठाई सब तुम्हारे चाचाजी की होती है। उसकी स्त्री तो पहले से ही भरी बैठी थी पर पति के डर से चुप थी। रामदयाल स्त्री-बच्चो सहित बम्बई से अपने गाँव

आया। वास्तव मे ही, जो बात लोगो ने कही थी, वह सही निकली। चारों तरफ सेठ शिवजीराम की प्रशसा हो रही थी। वे जिस तरफ भी निकल जाते लोग खडे होकर, राम-राम करते सुबह-शाम सैंकडो अभ्यागतो के लिए अन्न-क्षेत्र चालू था। मौका देखकर रामदयाल ने चाचा से बँटवारे के लिए कहा। एक बार तो शिवजीराम को बहुत ही कष्ट हुआ पर तुरन्त ही सम्हल कर बोले, "बेटा, कमाया हुआ तो सब तुम्हारे पिताजी का ही है। मैंने तो उम्र-भर केवल खर्च ही किया, इसलिए जैसे चाहो कर लो, मुझे इसमे क्या कहना है ?" एक काग़ज पर सम्पत्ति का ब्यौरा लिखा गया।

बडी हवेली और बम्बई का फर्म रामदयाल ने अपने लिए रखना चाहा। नक़द रुपयों का दो बराबर का हिस्सा हुआ। अपना मकान छोडकर जाने में बहुत क्लेश होता है परन्तु शिवजीराम के चेहरे पर जरा भी शिकन नही आयी। उसने कहा, "तुम्हारी मान-बड़ाई और इज्जत के लिए बडी हवेली मे रहना सर्वथा उचित भी है। मैं कल ही छोटी हवेली मे चला जाऊँगा। अब रही नक़द रुपयों की बात, सो मुझे तो अन्दाज ही नही था कि अपने पास इतना सारा रुपया है ! मैं इनको कहाँ सम्हाल पाऊगा ? देवदत्त जैसा है, तुम जानते ही हो, इन रुपयो को तुम अपने पास ही रहने दो। खर्च के लिए जितनी जरूरत होगी, मँगवा लिया करूँगा।" अन्तिम वाक्य कहते हुए उसकी आँखे जरूर गीली हो गई थी। रामदयाल सोचने लगा कि न तो चाचा जी ने हिसाब की जाँच की, न हवेली छोडने मे आपत्ति की और न बम्बई के फर्म की साख (गुडविल) के बदले मे ही कुछ चाहा, बल्कि सारे रुपये भी मेरे पास ही छोड रहे हैं।

उसे अपने आप पर ग्लानि और लज्जा हो आयी। रोता हुआ चाचा के पैरो पर गिर कर क्षमा माँगने लगा। कहने लगा, "लोगों के बहकावे मे आकर मैंने यह नासमझी की। मुझे किसी प्रकार का भी बँटवारा नही करना है। बडे भाग्य से आप सरीखे चाचा मिलते हैं। पिताजी तो बचपन मे ही छोडकर चले गए। मगर आप पढा-लिखाकर मुझे योग्य नही बनाते तो भला आज हम सबका क्या होता ?"

कुछ दिनो बाद बम्बई जाते समय अपने छोटे भाई देवदत्त को भी साथ ले गया। वहाँ जाकर उसकी पुरानी आदते छूट गयी और वह भी काम मे लग गया।

मैंने जब शिवजीरामजी को देखा था, उस समय वे अस्सी वर्ष के वृद्ध थे। सयम और त्याग का जीवन रहा, इसलिए उस समय भी स्वास्थ्य अच्छा था। दान-धर्म के तौर-तरीके बदल गए थे। सदाव्रत और ब्राम्हण-भोजन के साथ-साथ, उनके द्वारा स्थापित स्कूल अस्पताल और जच्चाघर भी जनता की सेवा कर रहे थे।

धर्म की समाधि

दिल्ली से ७० मील उत्तर मे सरधना नाम का एक छोटा सा कस्बा है। इस समय इसकी दशा खराब है। टूटे हुए पुराने महल, दो-चार गिरजे, थोडे से जैनमन्दिर एव कुछ पुराने जीर्ण-शीर्ण मकानात है। इन सबके सिवा एक छोटा-सा बाज़ार है जिसमे स्थानीय दूकानदारो के अलावा बीस-तीस शरणार्थियो की दूकाने है। परन्तु आज से लगभग २०० वर्ष पहले इस कस्बे का अपना महत्व था। देश-विदेश के अनेक प्रकार के सामानो से यहा की दूकाने भरी रहती। पजाब से दिल्ली के रास्ते में यह कस्बा पडता है इसलिए यहा प्राय बडे-बडे सरदार, फौजी अफसर व्यापारी एव अन्य लोग आते-रहते थे। यहा का शासन बेगम समरू नाम की एक दुर्धर्ष, बहादुर परन्तु कामुक एव सुन्दरी विधवा के हाथ मे था।

बेगम समरू की भी अपनी एक कहानी है। ऐसी औरते सौ-पचास वर्षो मे दो-चार ही पैदा होती है। इस सन्दर्भ मे इगलैण्ड की महारानी एलिजाबेथ, आस्ट्रिया की मैरिया थेरेस्सा और हमारे यहा की रजिया बेगम के नाम लिए जा सकते है। बचपन मे सकूर खा नाम के एक सरदार ने इसे गुलामो के सौदागरो मे खरीदा था। सकूर खा के मरने के बाद उसके लडके बशीर खा के हरम मे वह पाच वर्ष तक रही। एक दिन मेरठ के नौचन्दी के मेले मे प्रसिद्ध फ्रासीसी जनरल समरू ने उसे देख लिया और उसकी सुन्दरता पर मोहित होकर १० हजार सोने की अशर्फियों में मुन्नी उर्फ दिल-आराम को बशीर खा से खरीद लिया। वहा जाकर मुस्लिम मजहब छोडकर वह ईसाई हो गई नाम भी दिल-आराम से बदल कर हो गया जुवाना उर्फ समरू बेगम।

दोनो, पति-पत्नी बहादुर और सूझ-बूझ वाले थे। एक अच्छी सुशिक्षित फौज इनके पास थी जिसको किराये पर भेजते रहते। उन दिनो, छोटी-छोटी लडाइया होती रहती थी जिनसे इन्हे अच्छी आय हो जाती थी। सेना की शिक्षा एव सचालन का कार्य दोनो स्वय करते। रुहेलो से दिल्ली के बादशाह शाह-आलम को बचाने के कारण इन्हे शाही खिलअत और सरधना का उपजाऊ परगना इनाम मे मिला। थोडे वर्षो बाद ही सदेहात्मक ढग से बूढे नवाब का देहान्त हो गया और तब सत्ता रह गई, एक मात्र विधवा बेगम के हाथ मे। उसके बाद, इसने अपनी फौजी ताकत और भी बढाई। विदेशी विशेषज्ञो द्वारा उन्हे नए ढग से सुसज्जित किया। बडी-बडी तोपे, बेहतरीन बन्दूके और तेज दौडने वाले घोडे दूर-दूर से मगाए गए। टामस और लवसुल नाम के दो बहादुर विदेशी सेनापतियो के सरक्षण मे इसकी फौजे थी, दोनो उसके प्रेमी थे। उस समय के जागीरदार लडाइया न होने पर डाके डलवाते थे परन्तु बेगम ऐसे कार्यो को बुरा समझती। यहा तक कि उसके परगने मे डाकुओ की लूट-मार करने

की हिम्मत कभी भी नही हुई। वह अपराधियो को बहुत कडा दण्ड देतीं। किसी की आखे निकलवा लेती तो किसी को जमीन मे गडवा कर उस पर कुत्ते छुडवा देती थी। उन दिनो लोगो मे आतंक उत्पन्न करने के लिए ये सभी बाते ज़रूरी भी थी।

वैसे सरधना मे अब भी सौ-पचास घर अग्रवाल-जैनियो के है, परन्तु उस समय तो वहाँ उनकी प्रधानता थी। वे बेग़म के खजांची, अर्थ-मंत्री एव गृह-प्रबन्धक जैसे ऊँचे ओहदे पर थे।

ज्ञानचन्द नाम के एक वैश्य की वहा मोदीखाने की बडी दूकान थी। यहां से बेगम की फौजो के लिए रसद आती थी। ज्ञानचन्द दूकान का काम सँभालता और उसका एक-मात्र पुत्र रतनचन्द रसद का आर्डर लाने के लिए क़िले मे जाता था। रतनचन्द की आयु लगभग २६-३० वर्ष की थी। घर में बहुत सी गाय-भैंसे थी, खाने-पीने के लिए कमी नही थी। बचपन से ही कसरत-कुश्ती करता रहा इसलिए चेहरे पर सुन्दरता के साथ पौरुष की आभा भी यथेष्ट थी। एक दिन, किले मे वह गया हुआ था कि बेग़म की नज़र उस पर पडी। इसके वाद, महल से बुलावे आने शुरू हो गए। बेग़म के कहने पर गल्ले के सिवा उसने एक कपडे की दूकान भी कर ली। दोनो दूकाने बहुत अच्छी चलने लगी।

पौष-माघ की एक रात्रि मे रतनचन्द के लिए बेगम साहिबा के यहा से बुलावा आया। खिदमतगार उसे ख्वाबगाह में छोडकर बेगम को खबर देने चली गई। रतनचन्द पहली बार ही महल के उस हिस्से मे गया था। बिल्लौरी शीशे के झाड-फ़ानूसो मे हजारों मोमबत्तियां रोशन थीं, हिना की खूशबू चारो तरफ फैल रही थी। नगी औरतो की आदमक़द बडी-बडी तस्वीरे विभिन्न कामोत्तेजक मुद्राओ मे दीवारो पर लगी हुई थी। बीच मे सोने-चाँदी का एक बहुत बडा पलंग था जिसके पास ही तरह-तरह की शराब की सुराहिया और खाली प्यालिया रखी थी। हीरे-पन्नोसे जडा हुआ मोतियो की झालर का एक हुक्का भी रक्खा हुआ था। थोडी देर बाद बेगम आई, उसके साथ चार पाच दासियाँ हमेशा रहती थी पर आज वह अकेली थी। कपडे भी कुछ अजीब ढग मे पहने हुए थे। रतनचन्द ने बाअदब उठकर सलाम अदा किया और कहा कि "हुजूर ने इस वक्त गुलाम को किस लिए याद फर्माया ?"

जान-बूझ कर कमरे मे केवल एक पलग रखा गया था, बेगम ने रतनचन्द से खडे न रहकर अपने पास बैठने को कहा। जिसके भय और प्रताप से लोग कांपते रहते, वह बेग़म आज उस साधारण से व्यक्ति से जिस प्रकार पेश आ रही थी, वह बात रतनचन्द थोडी ही देर मे समझ गया। बेगम ने अपने हाथो से फ्रास की बेहतरीन शराब डालकर एक जाम रतनचन्द को दिया परन्तु उसने डरते हुए पीने से 'ना' कर दी। इसके बाद जब इशारे ज्यादा साफ होने लगे तब उसने हाथ जोडकर कहा कि आप हमारी पूज्या हैं, अन्नदाता है, आयु मे और पद मे भी बडी है। शायद, आज आप की तबीयत परेशान है इसलिए मै कल हाजिर होऊंगा। फन कुचली विषैली नागिन की सी फुफकार से बेगम ने डपटकर कहा कि नादान छोकरे या तो तुम अव्वल दर्जे के बेवकूफ हो या हिजडे; जिसकी इनायत की एक नजर के लिए बडे-बडे सरदार और जमीनदार तरसते रहते है, वह मुल्के जमानिया बेग़म समरू तुम्हारी मोहब्बत मागती है और तुम हो कि फिजूल बकवास की जुर्रत करते जा रहे हो ? खैर, मैं तुम्हे सात दिन की मोहलत देती हू, इस बीच मे मेरी मोहब्बत के साथ लाखो रुपयो की तिजारत या मौत, दोनो मे मे एक को तुम्हे चुनना है। खबरदार, अगर एक लफ़्ज भी इस के बारे मे बाहर निकाला तो तुम्हे जगली कुत्तो से नुचवा दिया जायेगा।

दूसरे दिन से रतनचन्द उदास रहने लगा। पिता-माता और पत्नी ने बहुत कुछ पूछ-ताछ की परन्तु बेगम के डर से कुछ भी न कह सका। आधी रात मे पत्नी के अनुनय-विनय पर उसने सारी बाते खोल कर बता दीं।

भारतीय पतिव्रता स्त्री थी, बेगम की क्रूरता से परिचित भी। पति को बहुत प्रकार समझाने-बुझाने लगी कि जान है तो जहान है, आप बेगम की बात मान लीजिए। अगर

आपको कुछ हो गया तो फिर माता-पिता, मेरा और इन बच्चो का क्या होगा . दूसरे दिन रतनचन्द एक निश्चय पर पहुच गया और पत्नी से कहा कि भगवान को साक्षी देकर सौगन्ध ली थी कि मैं एक पत्नी-व्रत रहूगा फिर भला इस क्षण-भगुर जीवन के लिए यह पाप क्यो ? थोडी देर मे ही दोनो पति-पत्नी ने सोते हुए बच्चो को प्यार किया और संखिया खाकर सो गए।

दूसरे दिन ही सारे कस्बे मे इनकी दर्दनाक मौत की खबर फैल गई। लोगो को सदेह तो पहले ही हो गया था क्योकि ऐसी बाते छिपी नही रहतीं। रतनचन्द सर्वप्रिय व्यक्ति था जब पति-पत्नी दोनो की अर्थिया उठी तो सारे कस्बे के लोग रोते-बिलखते साथ थे। बेगम का भय यहा तक फैल गया कि कई माता-पिता ने तो अपने जवान पुत्रो को सरधना से बाहर भेज दिया।

कहते हैं कि पाप का फल अवश्यम्भावी है, गरीब और अमीर, सबके लिए। थोडे दिनो बाद ही विद्रोही फौज ने बेगम के प्रेमी लवसुल की हत्या कर दी और बेगम को बेइज्जत करके एक खम्भे मे बाध दिया। अगर समय पर टामस नही पहचता तो उसका भी बोटिया नोच लेते।

रतनचन्द और उसकी पत्नी की समाधि सरधना के वीरान गाव मे इस समय भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था मे है। यहा आस-पास के गावो से विवाहित जोडे मनौती के लिए आते रहते हैं और भादो के महीने मे एक मेला लगता है।
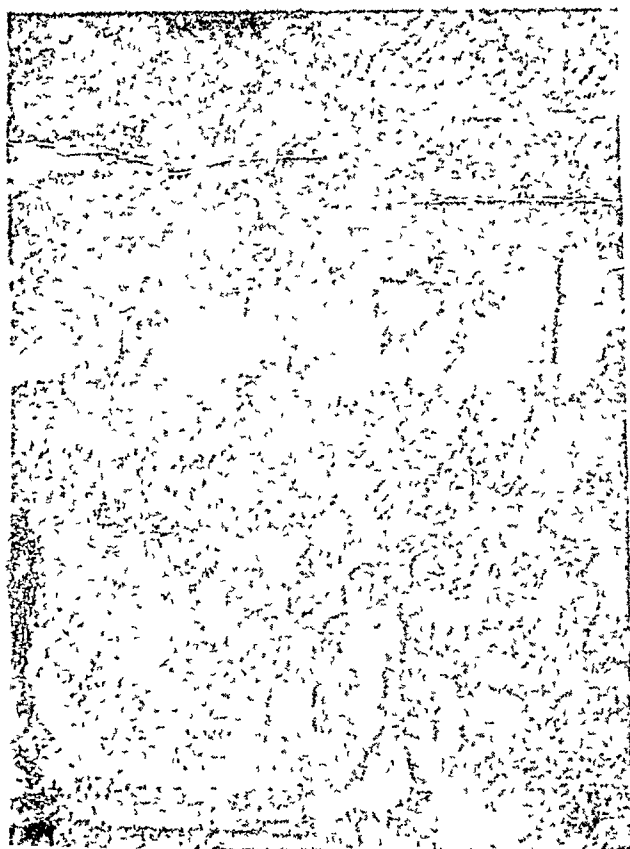
भाग्य-चक्र

उन्नीसवीं सदी की बात है। रामगढ से फतेहपुर (शेखावाटी) बारात जा रही थी। बहुत से हाथी, घोड़े, रथ और ऊँट थे, जो ज़रीदार रेशमी कपडों की 'झूल' के साथ चाँदी और सोने के गहनों से सजे थे। बारातियो की संख्या हज़ार तक पहुँच गयी थी। गाँव के गरीब-से-गरीब घर का आदमी भी बारात मे निमन्त्रित था। यह बारात थी सेठ रामबिलास के पुत्र नन्दलाल के विवाह की, जिसकी चर्चा बाद के बहुत वर्षों तक होती रही।

उनका वड़े पैमाने पर भिवानी मे कारबार था। उन दिनो व्यापार की वह बड़ी मंडी थी। राजस्थान की चीजे दूसरे प्रान्तो मे और वहाँ से राजस्थान मे, भेजने-मगाने का भिवानी ही माध्यम था।

सेठ के अपने परिवार मे कुल चार व्यक्ति थे। स्वय, पत्नी, पुत्र और पुत्र-वधू। परन्तु वे इतने उदार और कुटुम्ब-वत्सल थे कि दूर के बहुत से सम्बन्धी भी उन पर आश्रित रहते। उनके दरवाजे से शायद ही कभी कोई अतिथि या याचक निराश लौटा हो। यह उदारता यो किवदन्ती वन गयी थी कि उन्होने गीदडो के लिए भी सर्दी से बचाव के लिए रजाइयाँ वनवायी थी।

प्रौढ़ होने के पहले ही सेठ का देहान्त हो गया और इसके साथ ही इस परिवार का सकट-काल भी प्रारम्भ हो गया। गाँव के सारे लोग दुखी होकर रो रहे थे, जैसे कि उनके कुटुम्ब का ही कोई मर गया हो। साथ ही एक और दुर्घटना घट गई। उनके शव की प्रदक्षिणा के लिए स्त्रियाँ जब सेठानी को लाने गईं तो देखा कि वह भी इहलोक छोड़कर पति की आत्मा के पास जा चुकी हैं। दोनों की अर्थी साथ-साथ उठी और एक ही चिता मे दाह-सस्कार किया गया। शायद ही गाव और आस-पास का कोई आदमी बचा होगा जो इनकी शवयात्रा मे शामिल न हुआ हो।

विशाल हवेली मे अब उनका पुत्र, अपनी पत्नी तथा दो बच्चो के साथ रह गया था। मनुष्य के भाग्य और फिरत-घिरत की छाया को एक ही उपमा दी गई है। 'सूतक' की समाप्ति के बाद आए हुए मेहमान जब चले गए तो नन्दलाल कारबार सम्हालने के लिए भिवानी गया। वहाँ उसे अपनी आर्थिक स्थिति की जो जानकारी मुनीमो से मिली, उससे आश्चर्य और दु.ख का ठिकाना न रहा। पिछले कई वर्षो से व्यापार तो घाटे मे चल रहा था जबकि दान-पुण्य और दूसरे खर्चे प्रतिवर्ष बढते जा रहे थे।

धन्धा वन्द हो गया। मुनीम-गुमाश्ते छोडकर चले गए। कर्ज चुकाने मे पत्नी के सारे गहने बिक गए और वडी हवेली रेहन रख दी गई। वे सब किराये के एक छोटे-से मकान मे

रहने लगे। परिस्थिति यहाँ तक विगडती गई कि दोनो समय का खाना जुटाना भी मुश्किल हो गया। पत्नी वडे घर की वेटी थी और वडे घर मे ही बहू वनकर आई थी। किसी समय वीसो नौकर और नौकरानियाँ घर के काम के लिए थे, पर अव रसोई के अलावा वर्त्तन मांजना और बुहारना-झाडना आदि सब काम उसे स्वय करने पडते। थोडी-बहुत सहायता वच्चे कर देते थे। मुँह-अँधेरे ही पति-पत्नी कुएँ से पानी ले आते क्योकि दिन चढने के वाद लोगो की भीड मे उन्हे सकोच होता था।

जव कष्ट सीमा से बाहर होने लगे तो पत्नी ने अपने भाइयो के पास सहायता के लिए जाने को कहा जिनका मालवा तथा दूसरे देशावरो मे बडे पैमाने पर कारवार था। जिन लोगो ने सब कुछ जानते हुए भी बहन और उसके बच्चो की सकट के समय खवर तक नही ली, उनके यहाँ सहायता के लिए जाने की इच्छा ती नही थी पर पत्नी द्वारा बार-बार आग्रह के कारण उसने उज्जैन जाना तय कर लिया। विदा के समय पत्नी ने किसी तरह व्यवस्था की, रास्ते के लिए खाने का सामान तैयार कर एक कपडे मे बाँध दिया।

एक शाम, तालाब के किनारे हाथ-मुँह धोकर खाने की तैयारी मे था कि कुछ साधु-महात्मा आ गये और भिक्षा माँगी। जिसके घर मे पिता के समय सैकडो अतिथि-अभ्यागत नित्य भोजन पाते थे वह भला ना कैसे करता ? स्वय भूखा रहकर सारा सामान उन्हे दे दिया।

दूसरे दिन, दोपहर के बाद जव वह ससुराल की कोठी पर पहुँचा तो रास्ते की थकावट एव भूख के कारण कैसा ही लग रहा था। उसके दोनो साले वहाँ कई मित्रो के साथ वातचीत कर रहे थे। उन्होने न तो उसकी आवभगत की और न बहन या बच्चो की कुशल-क्षेम ही पूछी। शाम होने पर मुनीमो को उसे ढाबे मे खिलाने को कहकर घर चले गए।

इस प्रकार अपमानित होने पर उसके दु ख और ग्लानि की सीमा न रही। परन्तु गाँव लौटने का किसी प्रकार का साधन नही था इसलिए उसी शहर मे अपने एक मित्र के यहा गया जिसकी किसी समय उसके पिता ने सहायता की थी।

सब मनुष्य एक से नही होते। मित्र वहुत ही प्रेम से मिला और सारी स्थिति की जानकारी के बाद हर प्रकार की सहायता का वचन दिया। दूसरे दिन से ही, 'रामविलास नन्दलाल की फर्म फिर से स्थापित हो गई। देशावरो मे इस फर्म की ईमानदारी और कार्य-क्षमता की साख थी इसलिए पहले के व्यापारिक सम्बन्ध फिर से जुड गए तथा थोडे समय मे ही व्यवसाय जम गया।

एक वर्ष वाद वह लखपति बनकर घर लौटा। पत्नी ने भाइयो के बारे मे समाचार पूछा तो राजी-खुशी की कहकर दूसरी बातो मे टाल दिया। उसकी पत्नी को तो यही विश्वास था कि मायके-वालो के सहयोग और कृपा से ही यह सब हुआ है।

एक महीने बाद ही फिर वह उज्जैन आ गया और इस बार ज्यादा हिम्मत से व्यापार करने लगा। भाग्य ने साथ दिया और दो वर्ष बाद, दूसरी बार अपने गाँव लौटा, तब नन्दलाल करोडपति हो गया था। कर्ज चुका कर पिता की बनाई हुई बडी हवेली छुडा ली। फिर से एक बार मुनीम-गुमाश्ते, नौकर-चाकरो तथा कुटुम्बियो से घर भर गया।

ससुराल मे साले के लडके का विवाह था निमन्त्रण देने के लिए स्वय वर का बडा भाई कुकुम-पत्रिका लेकर आया। जो पत्र वह साथ लाया था, उसमे बहुत वर्षो से बहन और बच्चो को नही भेजने का उलाहना था एव इस अवसर पर सबको जरूर-जरूर बुलाया था।

नन्दलाल की इच्छा वहाँ जाने की नही थी परन्तु पत्नी बार-बार भाइयो के उपकार का बखान कर रही थी। इस बीच मे उसने मायके जाने की सारी तैयारी भी कर ली थी अत विवाह मे शामिल होने के लिए वे सब रवाना हुए। वह स्वय तो घोडे पर था, पत्नी और बच्चे

रथो मे तथा दूसरे राजपूत सरदार, नाई, नौकर-दाई ऊँटो पर। फतेहपुर से एक कोस दूर पर ही अगवानी के लिए दोनो सालो के सिवा गाँव के बहुत से प्रतिष्ठित व्यक्ति भी आए। पत्नी तो हवेली मे चली गयी और सेठ नन्दलाल के डेरे लगे एक बहुत सजी हुई कोठी मे। रात्रि मे भोजन के लिए हवेली मे तैयारी की गई थी। चाँदी-सोने के थालो मे नाना प्रकार के व्यजन सजे थे। खातिरदारी मे परिवार के सारे लोग हाथ बाँधे खडे थे। स्त्रियाँ मधुर रागिनी मे सीठणे गा रही थी।

भोजन के लिए कहा गया तो उसने अपने हाथ की हीरे की अगूठी को थाल मे रखकर उसे खाने के लिए कहा। उन लोगो की समझ मे बात नही आई। दूसरी बार आग्रह करने पर उसने गले से पन्ने के हार को निकाल कर उसे भोजन करने को कहा। किसी बडे-बूढे ने कहा, "जमाई, हँसी-दिल्लगी बहुत हो चुकी, अब कृपया भोजन कीजिये।"

वह बिना भोजन किये ही उठ गया और कहने लगा कि यह मान-सम्मान तो मेरे हीरे-पन्ने और धन-दौलत का हो रहा है अन्यथा जब मै ३ वर्ष पूर्व इनके यहाँ आया तो इन्होने मुझे पहिचाना तक नही था। पत्नी को वास्तविकता की जानकारी कराने के लिए मुझे आना पडा वरना मैने उसी दिन इन लोगो से किसी प्रकार भी सम्बन्ध न रखने की प्रतिज्ञा कर ली थी।

महिलाओ मे बैठी पत्नी को बुलाकर, अपने बच्चो तथा दूसरे साथ के लोगो को लेकर उसी समय रामगढ रवाना हो गया।

विवाह का अवसर था। घर नाते-रिश्तेदारो से भरा था परन्तु इतनी बडी घटना के बाद किसी की भी हिम्मत उन्हे रोकने की नही हुई।
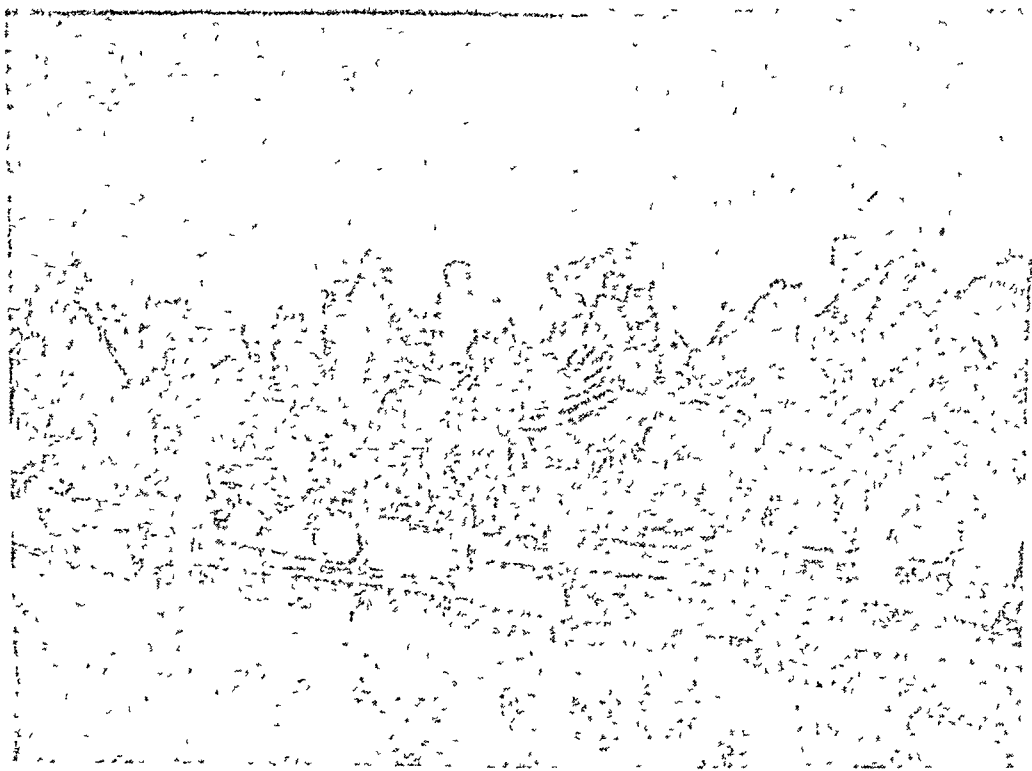
मोती काका

हमारे गाँव मे वाहर से साधु-महात्मा आते रहते थे। उनके प्रवचनो के समय देखा जाता कि एक वृद्ध नियमित रूप से सबसे पहले आता और सबके बाद जाता। लोगो की जूतियो के पास बैठकर हाथ मे माला लिए जाप करता रहता। आयु प्रौढावस्था को पार कर चुकी थी, परन्तु शरीर की काठी देखकर लगता कि किसी समय बहुत सुन्दर और बलवान रहा होगा। गोरे चेहरे पर झुर्रियाँ थी, परन्तु आँखो मे तेज की चमक थी।

बच्चो से उसे ऐसा प्यार था कि सारे दिन वे उसे घेरे रहते, कोई दाढी खीचकर भाग जाता तो कोई पीठ मे धौल जमाकर।

पत्नी, पतोहुओ और पोते-पोतियो से भरा-पूरा घर था। दो जवान लडके फौज मे थे। गाँव के पास ही खेत थे जिनसे अच्छी आय हो जाती थी :

लोग कहते थे कि किसी समय मोती काका नामी डाकू थे, उसने सैकडो डाके डाले थे परन्तु ब्राह्मण या गाँव की बहिन-बेटी को कभी नही लूटा। यहाँ तक कि ब्राह्मणो की बेटियो के विवाह मे अपने आदमियो के द्वारा दान-दहेज भेजते रहते थे

शुरू-शुरू मे तो हम बच्चे उससे सहमे-से रहते परन्तु कुछ अर्से वाद इस प्रकार हिलमिल जाते कि उसके कधो पर चढकर नाचते रहते। यद्यपि उस समय डाकू क्या है, इसके वारे मे स्पष्ट जानकारी हमे नही थी, फिर भी ऐसा समझते थे कि वह कोई खराव आदमी है। काका से पूछने पर वह हँसकर बात टाल देता। कभी-कभी दोनो हाथो से आँखो को बडी-बडी करके डराने लग जाता।

उस वार, बहुत वर्षो तक देशावर रहने के बाद मैं गाँव आया। मोती काका ७५-८० वर्ष के हो गये थे, चल फिर नही सकते थे। हाथ-पैर काँपते परन्तु आँख-कान दुरुस्त थे। बचपन में उससे कहानियाँ सुनते हुए मैं कहा करता कि हम बडे होगे तब तुम्हारे लिए एक अच्छी-सी ऊनी चद्दर लायेंगे। वह बात मुझे याद रही और धारीवाल की एक चद्दर उसके लिए ले गया था।

बाते करते हुए मैने देखा कि उसकी आँखो मे हर्ष के आँसू आ गये थे। वह कहने लगा कि "सुना है, तुम्हारी १०,०००) महीना तनख्वाह है। मैं इसके लिए हमेशा भगवान से प्रार्थना किया करता था। रामजी ने मेरी बात सुन ली।"

उन दिनो काका को गाधी जी के दर्शन करने की प्रबल इच्छा थी। हमारे उधर, राजस्थान के गावों मे, उनके बारे मे बहुत सी किंवदन्तियाँ फैली हुई थीं, जैसे, 'उनको भगवान्

के साक्षात दर्शन होते है,' 'जेल के फाटक अपने-आप खुल गए,' 'चोर-डाकू भी उनके सामने जाकर सच्ची बात कहने से पाप-मुक्त हो जाते है, आदि ।

काका का शरीर इतना अस्वस्थ रहने लग गया कि उस इच्छा की पूर्ति नहीं हुई परन्तु उन्हीं दिनो हरिद्वार से एक बडे महात्मा अपने कई शिष्यो के साथ आये । मोती काका ने बड़े आग्रहपूर्वक उनको निमन्त्रित किया और साथ-ही-साथ गॉव के दूसरे प्रतिष्ठित व्यक्तियो को भी ।

भोजन के पहले काका ने सैकडो आदमियो के सामने हाथ जोडकर कहा कि मेरा अन्त समय अब नजदीक है । जीवन मे मैने जघन्य पाप किये है । मुझे कल रात मे सपना आया है कि तुम महात्मा जी और गॉव के लोगो के समक्ष अपने पापो को स्वीकार करो, इससे तुम्हे शान्ति मिलेगी । अपने जीवन की जो घटनाएँ बताई, उन्हें सुनकर यह निश्चय नही कर सका कि वह पापी है या धर्मात्मा ।

मोती काका ने अपनी जीवन-गाथा इस प्रकार सुनायी—

"मै अपने मॉ-बाप का इकलौता बेटा था । विवाह होकर बारात वापस आई थी । अभी कगन-डोरे भी नही खुले थे कि गॉव का महाजन अपने कर्ज के तकाजे के लिए आकर बैठ गया । उन दिनो कर्ज न चुकाने पर कैद की सजा होती थी, बहुत-से सगे-सम्बन्धियो के बीच बापू को पुलिस के सिपाही हथकडी डाल कर ले गए । उस दिन के बाद तो शर्म के मारे मेरा घर से निकलना दुश्वार हो गया ।

"मैंने प्रतिज्ञा कर ली कि जैसे भी होगा, कर्ज चुका कर पिता को जेल से छुडाऊँगा, किन्तु बहुत प्रयत्न करने के बावजूद काम नही मिल पाया । सयोग से, मेरी जान-पहिचान प्रसिद्ध डाकू ठाकुर राम सिंह के साथियो से हो गयी और मै उनके दल मे शामिल हो गया । हिम्मत, सूझ और शारीरिक बल के कारण रामसिह के मरने के बाद दल का मुखिया मुझे ही चुना गया ।"

"कर्ज से दुगुना रुपया लेकर एक रात को सेठ के घर पहुँचा । उस सेठ के प्रति मेरे मन मे ऐसी घृणा हो गयी थी कि कर्ज चुकती की रसीद लेकर लौटते समय मैने उसके नाक-कान काट लिये । उसके बाद तो मैंने सैकडो डाके डाले पर परमात्मा जानता है कि मैने कभी ब्राह्मणो और गॉव की बहू-बेटियो को नही सताया, न गरीब और निम्नवर्ग के लोगो को ही ।"

"मुझे प्राय ही खबरे मिलती कि मेरे मॉ-बाप को नाना-प्रकार की यातनाएँ दी जा रही है । एक दिन यह भी सुना कि मेरी पत्नी को थाने मे बन्द कर रखा है और उसके साथ बहुत ही अमानुषिक बर्ताव किया जा रहा है ।"

"एक अँधेरी रात मे १०-१२ साथियो के साथ मैंने उस पुलिस चौकी पर हमला कर दिया । ८-१० सिपाही और अफसर मारे गए, हमारे भी ३-४ साथी खेत रहे । पत्नी दर्द से कराह रही थी । उसकी हालत देखकर लज्जा और ग्लानि से मन भर गया, परन्तु पास के थानो से कुमुक पहुँचने के अंदेशे से भागकर हमे जगल मे जाना पडा ।"

"मॉ-बाप और पत्नी की दुर्दशा के समाचारो से मै रात-दिन बेचैन रहने लगा । उधर पुलिस की सतर्कता भी बहुत ज्यादा बढ गई । मेरे जिन्दा या मरे पकडा देने पर सरकार द्वारा १० ०००) रुपये-इनाम की घोषणा की गई ।"

"गाँव की एक गरीब बेटी का विवाह, रुपये के बिना अटक रहा था। मेरे पास रुपये की व्यवस्था उस समय थी नही। समय कम था, मैं पशोपेश मे पड गया कि कैसे मदद करूँ? सरकारी-घोषणा की बात याद आ गयी मगर मेरे साथी इसके लिए तैयार नहीं हुए। आखिर, मैं अकेले ही उस ब्राह्मण के पास गया और समझाया कि "मुझे थाने मे हाज़िर करने मे उसे १०,०००) रुपये मिल जायँगे।"

पहले तो वह तैयार नही हुआ; परन्तु बहुत समझाने-बुझाने पर मान गया।

"विभिन्न अपराधो मे मुझे १५ वर्ष की कडी क़ैद की सज़ा हुई, परन्तु मेरे अच्छे चाल-चलन के कारण १० वर्ष मे ही छोड दिया गया।"

"अब उन बातो को प्राय २५-३० वर्ष हो गए है परन्तु मेरे मन में अपने पुराने पापो की याद से अब भी ग्लानि और लज्जा भरी पडी है। कहते है कि परमात्मा के भक्तो की सेवा करने मे जघन्य पाप भी दूर हो जाते है इसलिए कथा-वार्ता मे आने वालो की जूतियो की सम्हाल रखता हूँ। बहिन-बेटियो के बच्चो को बहलाता रहता हूँ।"

काका की बाते सुनकर लोगो के साथ महात्मा जी भी गद्‌गद् हो गए। उन्होने उठकर उसे छाती मे लगा लिया।
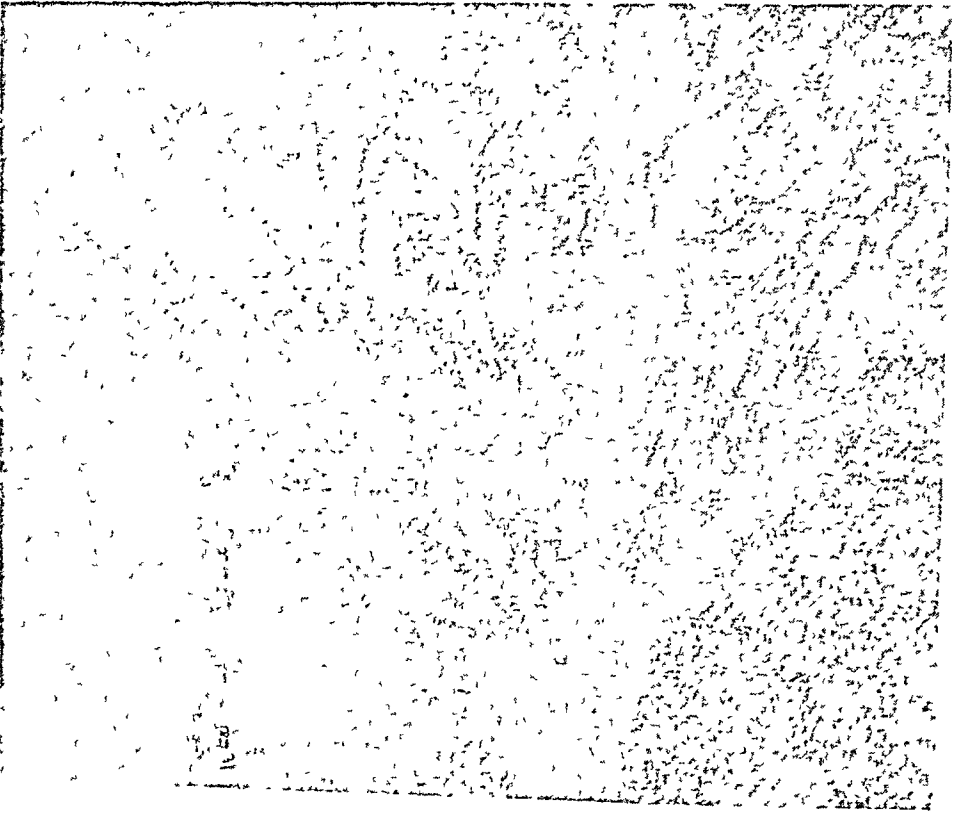
चोर

रात को नौ बजे थे। भोजन करके कुछ पढ रहा था कि मकान के फाटक पर शोरगुल-सा सुनाई दिया। थोडी देर लो ध्यान नही दिया परन्तु जब आवाजे रोने-चिल्लाने मे बदल गई तो नीचे जाना पडा।

देखा, २०-३० व्यक्ति एक १२-१३ वर्ष के दुबले-से लडके को घेरे हुए है, उसकी नाक और मुँह से खून निकल रहा है। लोग बीच-बीच मे उसके दो-एक धौल भी जमा रहे है।

पूछने पर पता चला कि पास के सिनेमा-घर के बाहर मूडी-चनों के खोमचे से दूकानदार की आँख बचा कर मुडी लेकर भागता हुआ यह लडका पकडा गया, फिर तो मोहल्ले के बदमाश लडको को अपना जोर आजमाइश करने का मौका मिल गया और मारते-मारते इसकी यह हालत कर दी।

उस मासूम बच्चे के चेहरे पर करुणा की मार्मिक याचना देखी तो खोमचे वाले को दो रुपये देकर विदा किया और अन्य सब लोगो को समझा बुझाकर वहाँ मे हटा दिया।

दरबान से लडके को भीतर लाने के लिए कहा। लडका उस समय भी भय से काँप रहा था और अन्दर जाने मे झिझक रहा था। शायद डरता था कि और मार न लगे या कोई नई विपत्ति न आ पडे। एक प्रकार से धकेलते हुए ही उसे लाया गया। मैंने प्यार से सिर पर हाथ रख कर पूछा कि उसने ऐसा बुरा काम क्यो किया तो सुबुक-सुबुक कर रोने लगा। थोडी देर तो कुछ बोल ही नही पाया। ऐसा लगता था कि मार और भूख से बहुत ही व्याकुल हो गया है। उसे बेहोशी-सी आ रही थी। खाने के साथ एक गिलास गर्म दूध दिया तब कहीं थोडा सँभल पाया।

मैने उसे दूसरे दिन सुबह तक वही रहने को कहा तो रोकर कहने लगा, "मेरी बीमार मा घर पर अकेली है और कल से भूखी है, वह मेरी राह देख रही होगी। मुझे इतनी रात तक नही पाकर बहुत चिंतित होगी इसलिए अभी घर जाने दीजिए।" कुछ खाने-पीने का सामान देकर दूसरे दिन उसे फिर आने को कह कर भेज दिया।

दो-तीन दिन बीत गए। लडके की भोली सूरत भूल नही सका। दरबान को उसे बुलाने भेजा। देखा कि बालक के सिर एव हाथ पर पट्टी बँधी है और उनके साथ एक युवा किन्तु कृशकाय और बीमार-सी स्त्री भी है। साडी मे जगह-जगह पैबन्द लगे हुए थे, चेहरे पर दैन्य और बीमारी की स्पष्ट छाया। फिर भी उसके नाक-नक्श की सुधराई से लगता था शायद किसी समय बहुत ही रूपवती रही होगी।

कहने लगी कि उस दिन मार से बच्चे को बुखार आ गया था, कही-कही सूजन भी। स्त्र। के बोलने के लहजे से समझ पाया कि पूर्वी बगाल की है। जो आत्मकथा उसने सुनाई वह इतने दिनो बाद भी भूल नही सका हू। कभी-कभी जब दुबले-पतले बच्चो को भीख मागते देखता हूँ तो उस मासूम बच्चे की तस्वीर आँखो के सामने आ जाती है।

खुलना के पास के किसी देहात मे उनकी अच्छी-खासी खेती की जमीन थी। एक छोटा पोखर भी था। सब प्रकार से सुखी गृहस्थी थी। देश के विभाजन के बाद भी वे लोग वही रह गए। यद्यपि नाना प्रकार के कष्ट और अपमान झेलने पडते थे परन्तु एक तो कही अन्यत्र आसरा नही था, दूसरे पूर्वजो के घर और जमीन आदि के प्रति मोह-ममता भी थी जो उन्हे गाँव छोडकर चले जाने से रोकें हुए थी।

सन् १९५८ मे एक दिन अचानक ही गाँव के हिन्दुओ पर हमला बोल दिया गया। जो मुसलमान हो गए, उनके जान-माल बच गये जिन्होने सामना किया वे कत्ल कर दिए गए।

उसका पति वैष्णव, कठीधारी कायस्थ था। किसी समय गाँव का मुखिया भी था और दोनो समय घर के ठाकुरजी की पूजा-अर्चना करता था। वह किसी प्रकार भी धर्म त्याग करने को तैयार नही हुआ। उसे खुदा के बन्दो ने काट कर पास के पोखर मे डाल दिया। पडोसियो के बीच-बचाव से किसी प्रकार बेचारी विधवा अपने ८ वर्ष के बच्चे को साथ लेकर सीमा पार करके भारत के 'बन गाँव' मे आकर रहने लगी। जो कुछ थोडा-बहुत सामान साथ मे था, वह सब रास्ते मे लोगो ने लूट लिया।

उसने देखा कि वहाँ पर पहले से ही पाकिस्तान से आए हुए शरणार्थी बडी सख्या मे है और सरकारी कैम्पो मे किसी प्रकार पेट पाल रहे है। 'परमात्मा की दया' से इनमे से बहुत से अनेक प्रकार की बीमारियो से जल्दी-जल्दी मर कर रोज-रोज की यातनाओ से शीघ्र मुक्ति भी पा रहे है।

२६-२७ वर्ष की आयु, सुगठित अग-प्रत्यग, चेहरे पर लावण्य की स्पष्ट आभा। विपत्ति मे सुन्दरता भी अभिशाप बन जाती है। कैम्प के लिए नाम दर्ज कराने वाला इन्सपेक्टर रात मे उसकी 'सरकी' मे आकर लेट गया। शरणार्थियो के पुनर्वास और उनकी देखभाल के लिए रखे गए लोग इतने बेशर्म और निधडक हो गए थे कि न तो उन्हे किसी की निन्दा का डर था और न मान-मनुहार की आवश्यकता। किसी भी शरणार्थी लडकी या स्त्री के साथ मनचाहा व्यवहार करना ये अपना अबाध अधिकार मानते थे। वह बेचारी विपत्ति की मारी, भूखे पेट और थके तन को लेकर आखिर विरोध कहाँ तक कर पाती? कैम्प मे स्थान और सरकारी सहायता न मिलने पर सन्तान सहित तिल-तिल कर मरना पडता इसीलिए, जीवित रहने के लिए ऐसे अपमान को भी आवश्यक मान लिया गया था।

लेकिन सुरमा उस धातु की नही बनी थी। वह अपना शरीर नही दे सकी और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी। खैर, उस समय तो वह इन्सपेक्टर चुपचाप खिसक गया परन्तु दूसरे दिन तो फिर दरख्वास्त लेकर उसी के पास जाना होता। सुरमा को यह स्वीकार न था अत रजिस्ट्री-ऑफिस मे न जाकर उस ने अपने बच्चे को साथ लिया और रास्ते के अनेक कष्ट झेलते हुए कलकत्ता आ गई। यहाँ उसे एक घर मे दाई का काम मिल गया, रहने को एक छोटी-सी कोठरी भी।

रूपवती विधवा युवती मोहल्ले के युवको के लिए अपने आप मे एक आर्कषण है। वे बिना काम ही उसके घर के आसपास मँडराते। कभी सीटी और कभी गन्दी आवाजे कसते। लिहाजा उसे वह आसरा भी छोड़ देना पडा। सोचा तो यह था कि भारत-भूमि मे सहधर्मी बन्धुओ के बीच जीवन के बाकी दिन किसी प्रकार चैन से बिता पाएगी, अपने बच्चे की जैसे-तैसे परवरिश करेगी किन्तु उसे क्या पता था कि पाकिस्तान की तरह यहाँ भी मनुष्य के रूप मे भूखे भेडियो की कमी नही है।

कई बार मन मे आया कि तेजाब छिडक कर मुँह को बदरग कर ले परन्तु कुछ तो पीडा के भय से और कुछ बच्चे का ख्याल करके वह यह सब नही कर पाई ।

कई जगह भटकते हुए उसे ढाकुरिया लेक के पास एक शरणार्थी-परिवार के यहाँ रहने का सहारा मिल गया परन्तु केवल आवास की व्यवस्था से पेट की भूख नही मिटती । भीख मागने मे पहले-पहल तो झिझक हुई, फिर आदत पड गयी और किसी तरह दो जून खाना मिलने लगा ।

लडका देखने मे सुन्दर और बातचीत मे चतुर था । सुबह-शाम जो सैलानी लेक पर आते, उनकी मोटरो की सफाई और सम्हाल करता रहता । वे दो–चार आने बख्शीश के तौर पर उसे दे देते या कभी धमका कर ऐसे ही भगा देते ।

एक दिन माँ को बुखार आ गया । सीलन भरी जमीन पर बिना चारपाई के सोने से और भूखजनित कमजोरी से यह साधारण और स्वाभाविक बात थी । डाक्टर को दिखाने का प्रश्न ही नही था । पडोस की एक वृद्धा ने उसे दो गोली कुनैन की लाकर दी और लाई खाने को कहा । बच्चा उसे लाने के लिए घर से निकला । दिन भर खडा रहने पर भी उस दिन जब कुछ भी प्राप्ति नही हुई तो माँ की भूख का खयाल करके सडक पर के खोमचे से उसने कुछ लाई चुरा ली परन्तु भागते हुए पकड लिया गया ।

यही कहानी थी जो उसकी माँ की जुबानी मैने उस दिन सुनी ।

लडके की पढाई नही के समान थी इसलिए उसे अपने ऑफिस मे चपरासी के रूप मे रख लिया । यह कई वर्ष की बात है । सुरेन अब बडा हो गया है, कुछ अग्रेजी और हिन्दी भी पढ ली है । मेरे यहाँ जितने कर्मचारी है, उनमे वह सबसे मेहनती और ईमानदार है । गरीब बगालियो मे लडकियो की कमी नही है । सम्भव है, थोडे वर्षो मे उसका विवाह हो जाय तब उसकी दुखिया माँ को भी बहुत वर्षो बाद गृहस्थी का थोडा-सा सुख देखने को मिलेगा ।

आज भी मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि क्या उस दिन सचमुच सुरेन ने चोरी की ? बाद मे तो कभी भी कोई शिकायत नही मिली । मनुष्य स्वभाव से चोर होता है या परिस्थितियाँ उसे मजबूर करती है ?

●

प्रभु का प्यारा*

उत्तराखण्ड केबदरीकेदार की यात्रा का महत्त्व हज़ारो वर्ष से हमारे देश के लोगो के मन और जुवान पर है। जनश्रुति है कि द्वापर मे पाण्डवो ने केदारनाथ की यात्रा की थी और आद्य शकराचार्य केरल से ढाई-हजार मील चलकर बदरीनाथ आये थे। यह भी कहा जाता है कि वर्तमान पीठ उन्ही की स्थापित की हुई है।

अठारहवा शताब्दी के प्रारम्भ को वात है, पूना के श्रीमन्त पशवा के दीवान वृद्धावस्था मे राजकाज छोडकर घर ही पर विश्राम करते थे। उनके मन मे बहुत वर्षो से बदरी-केदार-यात्रा की कामना थी किन्तु कोई-न-कोई कारण उपस्थित हो जाता और वे तीर्थयात्रा पर निकल नही पाते। आखिर एक बार उन्होने सब तैयारिया कर लीं। कौन-कौन से मुसाहिव, नोकर, रसोइये सिपाहियों आदि को साथ रखा जाए और कैसी सवारियाँ, यान-वाहन आदि रहे, इन सबो की सूची वन गयी। यहाँ तक कि रसद के सामान की भी सावधानी से सूची वना डाली गयी।

उनके पडास म हीरू नाम का एक दर्जी रहता था। उसके मन मे भी बदरी-केदार जाने की इच्छा थी किन्तु अच्छा साथ नही मिल पाया इसलिए जा नही सका था।

उसने भी कई अन्य लोगो की तरह दीवान जी से चलने की स्वीकृति ले ली। उन दिनो रास्ते बीहड थे, सडके भी अच्छी न थीं। चोर-डाकुओ का डर बना रहता। इसके अलावा, साँप-विच्छू और जगली हिसक पशुओ के आक्रमण का भय तो था ही। बीमारियाँ भी होती रहती। इन्ही कारणो से लोग ऐसी महा-यात्राओ मे बडे लोगो के किसी दल मे शामिल होने का सुयोग ढूँढते थे।

दीवान जी ने महीनो पहले से ही अपने बेटो और पोतो को काम की सम्हाल देनी शुरू कर दी थी। कारिन्दो और पटवारियो को कहाँ से कितनी अदायगी करनी है और उनके हल्के की जमीन-जायदाद के पट्टे आदि के बारे मे क्या और कैसे करना है, इसकी भी हिदायते देकर आदेश दिया कि पीछे से किसी प्रकार का नुकसान न पहुँचे।

---

* टाल्स्टाय की एक कहानी की प्रेरणा से

हीरू ने चलते समय पत्नी और पुत्र को केवल इतना ही कहा कि भगवान का स्मरण करते रहना, यदि उनकी कृपा रही तो फिर मिलेगे ।

निश्चित मुहूर्त पर यात्री-दल ने प्रस्थान किया । शख बजाए गए, मन्दिरो के घन्टे बजे । विदा देने के लिए लोग उमड पडे । लगभग एक कोस तक स्त्री-पुरुष और बच्चे पहुँचाने के लिए साथ चले । बडी श्रद्धा से सब ने 'पालागन' किया ।

तेरह-सौ मील की लम्बी यात्रा थी । रोज पन्द्रह-बीस मील चलते । रात मे किसी निरापद स्थान पर रुक जाते । भजन-कीर्तन होता रहता । इसी तरह चलते-चलते मालवा के किसी गॉव के पास एक दिन इनका पडाव हुआ । जगह सूनसान-सी लगी । पूछ-ताछ करने पर पता चला कि गॉव मे हैजे का प्रकोप है इसलिए अधिकाश लोग यहॉ से चले गए है । कुछ ग़रीब और हरिजन बच गए है । चिकित्सा के अभाव मे उनमे से भी कई-एक रोजाना भगवान के यहॉ चले जाते है ।

रात घनी हो गई, भजन-कीर्तन समाप्त हो गए और यात्री सो गए । हीरू को नीद नही आई । एक अजीब-सी बेचैनी उसे सता रही थी । वह चुपचाप उठा और पहरेदारो की नज़र बचाकर गॉव की ओर चल पडा । पास पहुँचते-पहुँचते हवा के झोको के साथ सडाध आने लगी । वह तेजी से बढा । एक घर से किसी छोटे बच्चे की रोने की आवाज उसे सुनाई पड़ी । भीतर जाकर देखा कि दो-तीन वर्ष का एक बालक पास मे लेटी हुई अपनी मॉ का आचल खीच-खीच कर रो रहा है । मॉ,विसूचिका-जनित गन्दगी मे लिपटी सिसक रही है । सारी बाते एक क्षण मे उसके मस्तिष्क मे घूम गई । दौडकर उसने आगन मे बँधी बकरी को दूहा और बच्चे को दूध पिलाया । फिर, उसे एक ओर बैठाकर उस महिला को धो-पोछकर साफ किया । उसे ख़्याल आया कि दवाइयो की पोटली तो उसकी पेटी मे है, क्यो न वह ले आए ? इसकी जान बच जाएगी ।

फौरन वह उल्टे पाँव पडाव की ओर भागा । लोग गहरी नींद मे थे । 'पेटी मे खोलने पर खुटका होगा,' 'बिस्तर मे धोती और कपडे है, शायद जरूरत पड जाये'—सोचते हुए उसने चुपचाप बिस्तर और पेटी उठाई और गॉव मे लौट आया । वहॉ आकर देखा कि बच्चा आराम से सोया है और महिला को भी राहत मिली है । उपचार के लिए साथ लाई हुई दवा दी, ईश्वर-कृपा के उसे लाभ हुआ । सुबह होने पर वह दूसरे घरो मे गया । वहॉ भी हैज़े के रोगी कराह रहे थे । वह उन्ही की सेवा मे लग गया ।

उधर तीर्थयात्रियो का पड़ाव उठने लगा । थोडी देर तक लोगो ने हीरू की प्रतीक्षा की, फिर आगे के लिए चल पडे ।

लगभग एक महीने तक हीरू उस गाव मे रहा । यात्रा के लिए जो पूँजी लेकर चला था, समाप्त हो चुकी थी । महामारी के हट जाने पर लोग गॉव मे वापस आने लगे । सभी कृतज्ञ थे, उसका गुणगान करते थे । परन्तु हीरू मौन रहता । उसके मन मे रह-रह कर यही बात उठती कि तीर्थयात्रा न कर शायद उससे कोई अपराध हो गया । एक दिन वह अपने घर के लिए रवाना हुआ । विदा के समय गॉव के लोगो ने अपने घरो से गुड़-चने-चिडवे दिए,गाव की सीमा तक पहुँचाने आए । उन सब की ऑखे गीली थी । श्रद्धा और स्नेहभरी शुभाकाक्षा के अलावा वे गरीब दे भी क्या सकते थे ?

कुछ दिनो बाद, थका-हारा हीरू अपने घर वापस पहुँचा । लोगो को बडा आश्चर्य हुआ कि यात्रा पूरी न कर वह बीच मे क्यो लौटा ?तरह-तरह के प्रश्न पूछे जाते । 'क्यो आए ?' क्या बीमार हो गए ?' 'झगडा तकरार हो गया ?' आदि । वह चुपचाप गर्दन झुकाए रहता । पत्नी से केवल इतना कहा कि तीर्थयात्रा का पुण्य उसके भाग्य मे बदा न था । परनिन्दा और आलोचना मे लोगो को आनन्द आता है किन्तु हीरू ने कोई सफाई नही दी । सिर्फ इतना कह देता, "मेरे-जैसे पापी की पहुँच प्रभु के दरबार मे कहॉ ?"

दो महीने बाद दीवान जी का दल पूना लौट आया। शहर के लोग उनके स्वागत और चरण-रज के लिए आए। हीरू भी दुबका-सा आया और पैर छूकर एक ओर बैठ गया। उन्होंने एक बार उसकी ओर देखा मगर कुछ कहा नही।

यात्रा निर्विघ्न सम्पन्न हुई, इस उपलक्ष्य मे अगले दिन बारह गाव के लोगो का भगवान के प्रसाद के लिए भोज हुआ। सभी दीवानजी का यशोगान और जय-जयकार कर रहे थे।

दस-बारह दिन बाद उनके यहाँ से हीरू का बुलावा आया। उसे लगा दीवान जी बुरा-भला जरूर कहेगे। सहमा-सा वह उनकी कोठी पर पहुँचा और द्वारपाल को खबर दी। दीवान जी खुद ही निकल आए और उसे साथ लेकर अपने निजी कक्ष मे गए। एकान्त मे उन्होंने हीरू से कहा "जब से मैं आया तुमसे एक बात पूछने की मन मे थी किन्तु काम-काज की देखभाल और लोगो की भीडभाड में मौका ही नही लग पाया। तुम्हे भगवान की सौगन्ध है, झूठ मत बोलना। ऐसा लगता है कि उस दिन तुम हम लोगो को उस गॉव के पडाव पर छोडकर अकेले ही आगे चले गए। मैने देखा कि तुम भगवान बदरी विशाल का शृगार कर रहे हो और पास मे बडे पुजारी जी आरती कर रहे है। कई आवाजे देकर तुम्हे बुलाया भी, परन्तु भीड मे तुम न जाने कहाँ समा गए? इसके बाद केदार जी की आरती और शृगार मे भी देखा कि तुम जगमोहन कक्ष मे हो। वहाँ तो केवल प्रमुख पुजारी ही जा सकते है, तुम्हे कैसे जाने दिया? मैंने भगवान की भेट मे सोने के गहने और ज़री की पोशाके दी, फिर भी मुझे चौखट तक ही जाने दिया गया।"

हीरू ने दीवान जी के पैर पकडकर रोते हुए कहा कि बाप जी आप यह क्या कह रहे है? मैं तो उस गॉव मे रोगियो की सेवा के लिए कुछ दिनो तक रुका रहा और फिर वही से घर वापस आ गया। मुझ से बडा अपराध हो गया कि आपसे बिना पूछे दल छोड दिया। आप-जैसे महापुरुषो के साथ का सुयोग पाने पर भी भगवान के दर्शन-लाभ से वचित रह गया।

दीवान जी को असमजस हुआ। कानो-सुनी बात झूठी हो सकती है, पर ऑखो देखी नही। उन्हे हीरू की ऑखो मे अब भी भगवान बदरी-विशाल की मूर्ति दिखाई दे रही थी। "भाई तुम सचमुच ही प्रभु के प्यारे हो," यह कहते हुए उन्होने गद्‌गद् होकर हीरू को गले लगा लिया।

❁

एक मनुष्य : तीन रूप

मेरी जान-पहचान के एक मित्र है, जिनके घर की स्थिति शुरू से ही साधारण थी। मित्रों की सहायता और छात्र-वृत्ति से वे किसी प्रकार पढ-लिख कर राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रो मे काम करने लगे। सन् १६५७ मे उन्हे विधान-सभा का टिकट मिल गया और अपने क्षेत्र मे वे चुन लिए गए। नए मन्त्रि-मण्डल मे उनको भी लिया गया। मैंने उनको बधाई का तार भेजा। उसके बदले मे धन्यवाद-ज्ञापन का जो पत्र उनका आया, उसमे मुझे थोडा-सा अहभाव लिए हुए कुछ औपचारिकता लगी लेकिन उस समय मैंने इस बात पर ध्यान नही दिया।

कुछ महीनो बाद जब मै राजधानी गया तो उनके बँगले पर मिलने गया। फाटक पर वर्दीधारी सिपाही, अच्छी शानदार कोठी, सुन्दर करीने से लगाया हुआ बगीचा और पोर्टिको मे बडी-सी कार। अर्दली से पूछने पर पता चला कि साहब घर पर ही है। उनके निजी सचिव को अपना कार्ड दिया और ड्राइङ्गरूम मे प्रतीक्षा करने लगा। वहाँ और भी पाँच-सात व्यक्ति पहले से ही बैठे थे।

ड्राइङ्गरूम का फर्नीचर ऊँचे दर्जे का था। फर्श पर कीमती गलीचा बिछा था। कमरे मे गाधीजी और नेहरू जी की तसवीरे टँगी थी। तीन-चार उनके अपने स्वागत-समारोहो की भी। बैठा हुआ मैं सोचने लगा कि गाँधी जी ने स्वराज्य मिलने के कुछ ही दिनो पहले कहा था कि यदि स्वराज्य मिल गया तो राष्ट्रपति-भवन और राज्यपाल भवन, अस्पताल, गरीब विद्यार्थियो के लिए आवासगृह तथा स्कूल व कालेजों के काम मे लाए जाएंगे। राष्ट्रपति और राज्यपाल साधारण भवनो मे रहेगे।

आपसी बैठको मे मेरे यह मित्र भी अक्सर कहा करते कि "राष्ट्रपति और राज्यपालो की बात छोड भी दे तो हमारे केन्द्र और राज्यो के मंत्री राज्य-मंत्री, उप-मन्त्री और ससदीय सचिव जिनकी सख्या ३५०० के करीब है-इन सब पर भी करदाताओ की एक बहुत बडी रकम प्रतिवर्ष खर्च होती है। इनके दफ्तरो का काम प्राय सचिव या अफसर देखते है, क्योकि इन लोगो को तो विभिन्न प्रकार के जलसो और उद्घाटनो से ही फुरसत नही मिलती ताकि अन्य कामो मे समय दे सके, यहाँ तक कि कई बार मन्त्री-महोदय किसी पेट्रोल पम्प या बीडी के कारखाने का उद्घाटन करने के लिए भी चले जाते हैं। इन दौरो के लिए मोटरो और अफसरो का खर्च तो सरकारी है ही, इसके अलावा डी० ए० और टी० ए० के रूप मे भत्ता अलग से बनता है।"

यहाँ बैठे-बैठे मैने लक्ष्य किया कि मेरे मित्र को समय का ज्ञान कम रह गया है। बडा खेद हो रहा था कि एक सघर्षशील कार्यकर्ता को मन्त्रित्व के पद ने अकारण ही विलासप्रिय बनाकर जन-समाज से छीन लिया। सोच रहा था कि आखिर पिछले तीन महीनो मे ऐसी

कौन-सी बात हो गयी जिससे इनके और इनके परिवार के रहन-सहन मे इतना फर्क आ गया !

आधे घण्टे की प्रतीक्षा के बाद वे भीतर से आये । कब आया, कहाँ ठहरा आदि उन्होने पूछा । मुझे ऐसा लगा कि उनकी बातो मे बडप्पन का आभास है । हो सकता है कि दूसरे बहुत से लोग वहा बैठे थे इसलिए उनके सामने उन्होने इस ढग से बात करना जरूरी समझा हो ।

थोडे दिनो के बाद वह किसी सरकारी काम से कलकत्ता आये । उनके सचिव का फोन आया कि मन्त्रीजी आए हुए है और मुझे मिलने के लिए बुलाया है । वैसे मै खुशी-खुशी उनके यहाँ जाता, लेकिन उनके सचिव की बात का लहजा कुछ जँचा नही और मैने नम्रतापूर्वक टाल दिया । इससे पहले उनके यहाँ आने की सूचना तार तथा पत्र द्वारा आ चुकी थी और ऐसा पता चला कि यह इत्तिला दूसरे कई लोगो को भी दी गई थी ।

कुछ दिनो बाद, मेरे एक मित्र ने मुझसे कहा कि वे कह रहे थे कि आप कलकत्ता मे न तो उनको लेने के लिए स्टेशन आये और न उनसे मिले ही इसलिए वे आपसे कुछ नाराज़ है ।

जब नया मन्त्रिमण्डल बना तो उनमे वे नही लिए गए । उसके बाद जैसा कि आम-तौर से लोग करते है, उन्होने भी खादी की एक सस्था और सहकारी-समिति की स्थापना कर ली और अपना काम देखने लगे ।

एक दिन अचानक ही वे दिल्ली स्टेशन पर मिल गए । छोटा-सा बिस्तर उनकी बगल मे था और थर्ड क्लास मे जगह खोज रहे थे । वैसे मन्त्री बनने के पहले भी तीसरे दर्जे मे ही यात्रा करते थे पर इस बार मुझे देखकर वे बहुत झेपे ।

मैने तीन वर्षो मे एक मनुष्य के तीन रूप देखे । पहला खादी की ऊँची धोती, बिना इस्त्री किये हुए कपडे, अभावग्रस्त परिवार, लेकिन हर प्रकार का सेवा-कार्य करने के लिए तैयार । दूसरा, बगुले के पख से सफेद कपडे, सजा हुआ शीत-ताप नियन्त्रित बँगला, बडी कार और तौर-तरीको मे अभिमान की स्पष्ट झलक । अब तीसरा रूप था—बिगडी हुई आदतो के कारण बढे हुए खर्चे की पूर्ति के लिए खादी या सहकारी-सस्था के नाम से कुछ कमाना और अगर उसमे भी सफल न हुए तो फिर वही साधारण रहन-सहन, पर अब झेप के साथ !

मन्त्री जी का जन्म-दिन

किसी एक मन्त्री जी के जन्म दिन के उत्सव का निमन्त्रण-पत्र मिला। आयोजको के नामो की तीन पेज की सूची थी। एक आयोजन-कमेटी भी बनी थी जिसमें अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सयोजक, कोषाध्यक्ष के सिवा ३१ व्यक्तियो की कार्यकारिणी थी।

जितनी बडी सूची थी, उसके अनुरूप ही जलसा था। ऐसा लगा कि १५००-२००० निमन्त्रण-पत्र जरूर भेजे गए है क्योकि ७००-८०० दर्शक थे जिनके लिए बडे-से लॉन मे छोलदारी लगाकर कुर्सियाँ सजाई गई थी। विशिष्ट अतिथियो के लिए सुसज्जित ऊँचा मच वनाया गया जिसे नाना-प्रकार के फूलो से सजाया गया था। मच पर गाधी जी, राष्ट्रपति, नेहरू जी के वडे-वडे चित्रो के साथ मन्त्री जी का अपना वडा-सा चित्र भी था।

उत्सव प्राय २-२॥ घण्टे चला। चाय, हल्का नाश्ता और ठढे पेय की सुव्यवस्था थी। मन्त्री जी के वारे मे इतनी वडी-वडी वाते कही गयी जिनका पता शायद स्वय उनको भी नही रहा होगा। गौरव गाथा गाने वालो मे आपस मे होड लगी हुई थी। आमन्तौर पर किसी भी समझदार व्यक्ति को अपने वारे मे अति रजित बडाई सुनकर सकोच-सा होता है परन्तु यहाँ तो मन्त्री-महोदय बडे चाव से मुस्करा रहे थे।

सवसे पहले स्वागताध्यक्ष का भाषण हुआ (वे मन्त्री जी के ही किसी विभाग मे ठेकेदारी काम करते है)। उन्होने कहा कि मुझें मन्त्री जी को बचपन से ही जानने का सौभाग्य रहा है और लोगो को इनकी मेधाशक्ति, वाक्चातुर्य और श्रमशीलता को देखकर पहले से ही यह पता चल गया था कि आगे जाकर ये देश के भाग्य-विधाता होगे। दूसरे व्याख्यानदाता नगर के मेयर थे, उन्होने स्वागताध्यक्ष द्वारा की गयी वडाई की ताईद तो की ही परन्तु साथ मे इतना जोड और दिया कि शुरू से ही ये ऊँचे दर्जे के ईमानदार और सच्चरित्र रहे है। अन्तिम वाक्य सुनकर वहाँ बैठे हुए वहुत से जानकार स्त्री-पुरुषो को मुस्कुराते हुए देखा गया।

इसी प्रकार एक के वाद एक, कई प्रभावशाली व्यक्तियो के भाषण हुए, इन सबका प्रयत्न केवल यह दिखाना था कि वे मन्त्रीजी के अधिक-से-अधिक नजदीकी मित्रो मे है।

सोचने लगा कि पुराने राजा-वादशाहो के बन्दीगणो तथा भाटो मे और इन आयोजको मे क्या फर्क है? उन राजाओ को तो हम आज मूर्ख और खुशामद-पसन्द कहते हैं परन्तु आज के इन राजाओ को स्पष्ट वात कहकर नाराज करने को हिम्मत हमारे मे नहो है।

इतिहास मे पढा था कि रोम मे एक सनकी वादशाह हुआ जिसे कविता करने की धुन सवार हुई। मुशायरो मे वह भी स्वरचित कविताएँ सुनाता था परन्तु उससे ज्यादा दाद (वाह-वाही) दूसरे कुछ वडे कवियो को मिलती। नतीजा यह हुआ कि सारे बड़े-वडे कवि पकड कर जेल भेज दिए गए।

वादशाह ने अपनी कविता सुनाने के लिए ५०० मुसाहिब नौकर रख लिए जिनका काम कविता सुनने के समय वाह-वाह करना और हाथ-ताली देना ही था।

एक प्रकार से हमारे आज के शासको मे भी कुछ उसी प्रकार की खुशामद सुनने की भावना वनती जा रही है जवकि वादशाहो का राज्य तो पैतृक और स्थायी था, पर इनकी वजारत जोड-तोड से मिली हुई और अस्थायी है। ऐसे जलसो मे दूसरे बडे-बडे नेता और मन्त्रीगण काफी सख्या मे आते है क्योकि उनको भी तो कुछ समय वाद अपने जन्मदिन पर इसी प्रकार की भीड और उत्सव की आकाक्षा लगी रहती है।

आज से सौ-दो-सौ वर्ष पहले सम्पन्न व्यक्ति कुएँ, बावडी, धर्मशाला और प्याऊ लगाकर यश और नाम कमाते थे। आज वे वाते पुरानी हो गयी है और उनकी जगह स्कूल, कालेज और अस्पतालो ने ले ली है 'परन्तु ये सब तो वहुत अर्थ-साध्य काम है इसलिए विना हर्रे और फेटकरी लगे चोखा रग लाने का मार्ग भी निकाल लिया गया है। वह है अनेक चित्रो सहित अभिनन्दन-ग्रन्थ तैयार कराके बडे जलसे मे स्वय को समर्पित करवाना।

मेरे एक बुजुर्ग मित्र हिन्दी के मूर्धन्य कवि थे। वे राम के भक्त थे और आमतौर पर दूसरे, किसी की भी प्रशसा मे कविता नही लिखते थे। एक दिन एक प्रभावशाली व्यक्ति का उनके पास किसी अभिनन्दन-ग्रन्थ मे कविता के लिए फोन आया। उन्होने नम्रतापूर्वक अस्वस्थता के कारण लिखने से नाहीं कर दी।

उसके बाद भी हर प्रकार से उन पर दवाव डाला गया फिर भी उन्होने तो कविता नही दी। ग्रन्थ प्रकाशित होने पर देखा गया कि देश के प्रसिद्ध लेखको, कवियो और नेताओ की रचनाएँ तथा सन्देश मन्त्रीजी के यशोगान मे भरे पडे थे। ग्रन्थ की साज-सज्जा तो हर प्रकार से दर्शनीय थी ही!

अभिनन्दन के सिवा अपने नाम के पहले 'डॉक्टर' लिखना भी इन विशिष्ट लोगो के लिए आजकल साधारण प्रथा-सी हो गई है। विश्वविद्यालयो के महत्त्पूर्ण पदो पर पहले से ही अपने आदमियो को सिफारिश-कोशिश कर नियुक्त करवा दिया जाता है। वे जोड-तोड वैठाकर वर्ष-दो-वर्ष मे इन्हे डाक्टरेक्ट दिला देते है।

कई मन्त्रियो और नेताओ के तो हर बडे शहर मे कुछ वैतनिक कार्यकर्ता रहते है, जिनका वेतन उनसे सम्वन्धित किसी सस्था द्वारा दिया जाता है। उनका काम मन्त्रीजी की उस शहर या आस-पास की यात्रा के समय भीड को इकट्ठी करके जय बुलवाना और फूल-मालाएँ पहनाना रहता है। इसके लिए कभी-कभी तो जय बोलने वालो को और माला पहनाने वालो को पैसा भी देना पडता है।

वैसे, विश्व मे उचित मान और बडाई पाने की इच्छा सबकी रहती है परन्तु इसके लिए जिस प्रकार के प्रयत्न आजकल हमारे यहाँ होने लग गए है वे वहुत ही अवाछनीय और लज्जास्पद है।

कितनी जमीन : कितना धन ?*

राजस्थान के किसी गाव मे एक सुखी किसान-परिवार था । पति-पत्नी और एक पुत्र, पचास बीघा जमीन और दो फसली खेती । रहने के लिए अपना छोटा सा मकान था । कड़ी मेहनत कर निर्वाह के लायक पैदा कर लेते । कुछ बच जाता तो वह पास पडोस, अतिथि और साधु-सन्तो के काम आ जाता ।

एक दिन एक रिश्तेदार शहर स आकर किसान के घर ठहरा । उसके बच्चे जरी-गोटे क कपड़े पहने थे और स्त्री आभूषणो से लदी थी । किसान-पत्नी के पूछने पर अतिथि की स्त्री ने बताया कि ये गहने सोने के है और उनमे सच्चे हीरे-जवाहरात जड़े है । यह भी कहा कि वडे आदमियो के लिए यही शोभा है ।

दो-तीन दिन रहकर मेहमान तो चले गए परन्तु कृषक-पत्नी के मन मे एक तीव्र आकांक्षा छोड गए । उसे रात दिन उन गहनो का ख्याल बना रहता । सोती तो सपने मे जडाऊ गहने नजर आते । बच्चा भी गोटे-किनारी के कपड़ो के लिए मचल उठता । पत्नी के बारम्बार कहने पर कुछ दिनो बाद, किसान अपने गाँव के जमीदार के यहाँ गया और उधारी पर पचास बीघे जमीन खरीद ली । दोनो ने डटकर मेहनत करनी शुरू कर दी । सयोग से, वर्षा भी समय पर होती गई । दो-तीन वर्षो मे ही जमीन की कीमत अदा कर दी । आगे चल कर एक-सौ बीघा जमीन और ले ली । अब उसके पास दो-सौ बीघा जमीन हो गई और वह सम्पन्न किसानो मे गिना जाने लगा । किसी समय का परसा किसान अब परसराम जी बन गया । ड्योढी पर चार जोडी अच्छे बैल, एक रथ और दो ऊँट शोभा बढ़ाते । पत्नी के पास सोने के तरह-तरह के जडाऊ गहने हो गए । बच्चा भी बडा होकर स्कूल जाने लगा । घर मे बहुत-से नौकर-चाकर थे ।

खेती-बारी के अलावा, वह वोहरगत (उधार का व्यापार) भी करने लगा । इससे आमदनी के साथ-साथ साख भी बढी । इतना सब होने पर भी परसराम का चित्त अशान्त रहने लगा । पडोसी-गाव के जमीदार की उससे भी ज्यादा जमीन थी । वह सोचता कि उसके दरवाजे पर हाथी किननी मस्ती मे झूमता रहता है जबकि मेरे पास तो केवल ऊँट है । उसे यह धुन सवार हुई कि किसी प्रकार जमीदार से वह अधिक समृद्ध बन सके ? सयोग से, एक दिन खबर मिली कि बीकानेर रियासत के गगानगर इलाके मे नहर आने वाली है और वहाँ बहुत सस्ते दामो मे जमीन मिल रही है जो आगे चलकर सोना उगलेगी । यह बात उसके मन मे बैठ गयी । पत्नी और पुत्र को गगानगर मे जमीन लेने का अपना विचार बताया । उन लोगो ने

* एक विदेशी कहानी की प्रेरणा से

कहा, "सुना है कि वहाँ आबादी नही है। वीरान जगह है, बाघ-भेड़िये घूमते रहते हैं। हमें ईश्वर ने सब कुछ दे रखा है फिर क्या जरूरत है कि इस ढलती उम्र मे आप वहां जाकर खतरा मोल ले ?" परन्तु परसराम को तो ज्यादा से ज्यादा जमीन और धन की चाह लगी थी। कडी मेहनत से वह जीवन मे कभी पीछे हटा नही, उसे उसका फल भी मिला अत: अपने निश्चय पर अटल रहा। साथ मे यथेष्ट रुपये लेकर गगानगर के लिए रवाना हो गया। कई दिनो की यात्रा के बाद वहाँ पहुँचा। काफी थक गया था, कुछ ज्वर भी हो आया। अगले दिन, अधिकारियो से मिला। पता चला कि जमीन की कीमत प्रति मुरब्बा सात-सौ रुपये है। नहर के किनारे चकबन्दी में जितनी चाहे उतनी खरीद सकता है। परन्तु नहर निकल आने पर तीन वर्षो के अन्दर ही जुताई शुरू कर देनी होगी और दस वर्ष तक वह किसी को जमीन बेच नही सकता। परसराम खेती की नस-नस पहचानता था। निजी अनुभव था। नहर के आने पर जमीन क्या-से-क्या हो जायेगी, वह जानता था। पजाब मे बहुत-से समृद्ध किसान भी इसी लिए आए हुए थे। उसने सोचा, ज्यादा-से-ज्यादा ले ली जाय वरना मौका हाथ से निकल जायेगा।

उन दिनो, सवारियो की व्यवस्था वहाँ नही थी। बीमारी के बावजूद वह पैदल ही निकला और उसे अच्छी-से-अच्छी जमीन की जाँच के लिए दूर-दूर तक चलना भी पड़ा। कड़ी मेहनत से उसका बदन टूटने लगा, बुखार तेज हो गया। परन्तु जैसे ही लौटने की सोचता तो सामने और भी अच्छी जमीन नजर आती, बीमारी की परवाह न करके फिर आगे बढ जाता। जब वह डेरे पर वापस पहुँचा, उस समय उसकी हालत बहुत ही खराब हो गई थी।

समाचार पाकर चार-पाच दिन बाद जब उसकी पत्नी और पुत्र गाव से वहां पहुंचे तो उस समय वह सन्निपात मे बडबडा रहा था, "जमीन बहुत है ... खूब पैदा होगी ... अनाज की जगह ... सरसो ... कपास लगायेंगे ..." आदि।

जो भी थोडा-बहुत उपचार वहाँ सम्भव था, सब किया गया किन्तु वह बचाया न जा सका।

वहाँ के लोगो ने परसराम के पुत्र के हाथ मे उसकी दाह-क्रिया करा दी। उसे मिली सिर्फ पाच हाथ जमीन।

सम्राट और साधु

तेइस सौ वर्ष पहले की बात है, यूनानी विजेता सिकन्दर तुर्की, आदि देशो को रौदता हुआ पजाब और सिन्ध प्रान्त में पहुँच गया। उसके साथ साठ हजार फौज थी जिनमे प्रशिक्षित घुडसवार, तीरन्दाज और पैदल सैनिक थे। इनके पास बेहतरीन किस्म के तीर-धनुष, भाले और तरह-तरह के नए हथियार थे। वर्षो पहले यूनान से रवाना हुआ, कही भी पराजय नही देखी, इसीलिए मनोबल ऊँचा था।

पजाब मे उस समय पुरु नाम का पराक्रमी और वीर राजा था। वह औरो की तरह सहज मे ही परास्त न किया जा सका। अनेक प्रकार के छल-कपट और देशद्रोही सैनिक अधिकारियो से भेद लेकर सिकन्दर ने उसके राज्य को जीत लिया। वहाँ की व्यवस्था करने के बाद वह पाटलिपुत्र, मगध और वैशाली की ओर बढना चाहता था जो उन दिनो भारत के समृद्धतम राज्यो मे थे।

इसी बीच, उसने सुना कि रावी के तट पर एक त्रिकालदर्शी महात्मा रहते है। सिकन्दर के मन मे उनसे मिलने की इच्छा हुई। दूसरे दिन अपने कुछ अधिकारियो को उन्हे बुलाने के लिए एक सुसज्जित रथ के साथ भेजा। साधु के आश्रम पर पहुँचकर उन्होने सिकन्दर का सन्देश सुनाया। महात्माजी ने कहा भाई, मैं यहाँ वन मे रहकर जितना हो पाता है परमात्मा के चिन्तन मे लगा रहता हूँ। राजा-महाराजाओ को मुझ जैसे व्यक्तियो से भला क्या काम ? सेना के अधिकारी पशोपेश मे पड गये। सम्राट सिकन्दर महान के निमन्त्रण को आज तक किसी ने अस्वीकार करने का साहस नही किया था। उन्हे चिन्ता हुई कि वे क्या उत्तर देगे। सिकन्दर के चलते समय यह भी कहा था कि सन्यासी से जोर-जबर्दस्ती न की जाय। उन लोगो ने बहुत अनुनय-विनय की, किन्तु महात्मा जी नही गए।

डरते-डरते सैनिक अधिकारी सिकन्दर के शिविर मे आए। सम्राट ने जब सुना कि उसके आदेश की अवज्ञा हुई तो नथुने फडक उठे। महात्मा जी को हाजिर करने के लिए कडक कर आदेश देने को था कि उसे अपने गुरु अरस्तु की बात याद आ गई। विश्व-विजय अभियान के पूर्व उसने कहा था कि भारत विचित्र देश है, धन-धान्य और शौर्य से पूरित, किन्तु वहाँ वैभव माना जाता है त्याग में, भोग मे नही। तुम देखोगे कि वहाँ के लोग अध्यात्म चिन्तन मे अतुलनीय है।

सिकन्दर ने सोचा कि गुरु की बात परखने का अच्छा मौका है। आदेश की प्रतीक्षा मे खडे अधिकारियो से गभीरतापूर्वक इतना ही कहा कि वह खुद ही जायगा।

अगले दिन सैकडो घोडो, हाथी और सैनिको के साथ वह महात्मा जी की पर्णकुटी पर पहुँचा। जाडे के दिन थे, ठड तेज हवा चल रही थी। वैसे भी पजाब की सर्दी कडी होती है। उसने देखा, वे सिर्फ एक लगोटी लगाए ध्यान मे बैठे है। वह आगे बढा और अपने सेनापतियो के साथ उनके बिल्कुल करीब आकर खडा हो गया, फिर भी महात्मा जी का ध्यान न टूटा। उनके मुखमण्डल पर ऐसी आभा दिखाई पडी कि विश्वविजेता सिकन्दर आत्म-विस्मृत-सा देखता रहा। कुछ देर बाद समाधि भग हुई। उनके सामने भेट लाए हुए फल-फूल, शाल-दुशाले, रत्नादि सोने के थालो मे सजा कर रख दिए गए।

महात्मा जी ने कहा "भाई, ईश्वर के दिए ताजे फल मुझे वृक्षो से हमेशा मिल जाते है। माता रावी दूध के समान स्वच्छ जल पीने के लिए दे देती है। दिन मे भगवान सूर्य गरमी पहुँचा देते है और रात मे कुटी मे जाकर वल्कल ओढ लेता हूँ। फिर भला, मुझे इन चीजों की क्या आवश्यकता है ?"

सिकन्दर ने कहा, "इतनी ठड हवा चल रही है और आपके शरीर पर एक भी वस्त्र नही, हम पाँच-पाँच गर्म कपडे पहने हुए है, फिर भी सर्दी लग रही है।" महात्मा जी का उत्तर था, "राजन, यह तो अभ्यास की बात है, जैसे, तुम्हारी नाक और मुँह को ठड सहने का अभ्यास हो गया है, वही बात मेरे सारे शरीर पर लागू होती है।"

सिकन्दर घुटने टेक कर उनके पास बैठ गया। वह कहने लगा, "महाराज, मैंने इतने सारे देश जीते, मेरे पास अपार धन राशि है और असख्य दास-दासियाँ, फिर भी न जाने क्यो मेरे मन मे अशान्ति बनी रहती है और अधिक पाने की लालसा मिटती नही।" महात्मा जी ने उसके ललाट की ओर देखते हुए कहा, "युवक सम्राट, जिसकी तृष्णा मिटी नही, वह चाहे कितना ही धनी हो, मन से भिक्षुक होता है, यह बात तुम्हारे लिए भी है। अपनी महात्वाकाक्षा के आवेश मे तुमने इस छोटी सी आयु मे कितनी महिलाओ को विधवा किया, कितने बच्चो को अनाथ बनाया, कितने गाँव और खेत उजाड दिए, मगर अतृप्त ही रहे! अब भी तुम्हारे मन मे इसी प्रकार की भूल करने की प्रबल इच्छा है। परन्तु यह सब किस लिए ? ये सारे धन दौलत, फौज, हथियार तुम्हारे काम नही आएगे। तुम्हारे जीवन की घडी को एक पल भी नही बढा पाएगे।"

सिकन्दर के साथी आश्चर्य कर रहे थे कि जिसके सामने बडे से बडे पराक्रमी योद्धा, राजा और सम्राट सर झुकाते रहे, वह आज एक मामूली फकीर से हाथ बाँधे कह रहा है कि मेरा भविष्य क्या है, इसे बताने की कृपा करे।

महात्मा जी थोडी देर मौन रहे। फिर उन्होने कहा, "ऐसा लगता है कि जीवन की उपलब्धियो की सीमा पर अब तुम आ गए हो। इस समय तुम्हारी आयु ३३ वर्ष की है। आज से एक सौ बीस दिन बाद तुम्हारा ऐहिक जीवन समाप्त हो जायगा। दुर्योग मे तुम अपने परिवारवालो से भी नही मिल पाओगे। क्योकि तुम्हारी मृत्यु रास्ते मे एक गाव मे होगी। जीवन के इस थोडे से समय को यदि भगवत् भजन और अच्छे कामो मे लगा पाओ तो तुम्हे शान्ति मिलेगी। आज तक जोर जुल्म कर बहुतो से लिया, अब जरूरतमन्दो को, दीन-दुखियो को देने का आयोजन करो। इसी मे तुम्हारा कल्याण है। यह शाश्वत सत्य है कि धन और धरती किसी के साथ जाती नही। मनुष्य जैसे खाली हाथ आता है, वैसे ही ससार से चला जाता है।"

महात्मा जी का कुछ ऐसा प्रभाव पडा कि सिकन्दर महान विजय अभियान के लिए पूर्व की ओर न बढकर वही से वापस लौट गया। महात्मा जी के बताए हुए दिन उसकी मृत्यु हो जायगी, इसका एक भय-सा उसके मन पर छा गया।

कहा जाता है कि आखिरी दिनो मे उसके मनोभावो मे परिवर्तन आ गए। वह पहले जैसा नही रह गया जिसकी भृकुटि मात्र से बडे-बडे सेनापति और राजा आतकित हो उठते थे।

इतिहास प्रसिद्ध है कि बेबीलोन के एक गाव मे मृत्यु के दिन सम्राट ने सभी प्रमुख दरबारियो एव सेनानायको को बुलाया और उन्हे आदेश दिया कि सभी जवाहिरात, आभूषण, हाथी-घोडे, रथ और मेरी निजी तलवार को मृत्यु के बाद मेरे शव के पास सजा देना। ध्यान रहे, दोनो हाथ चादर से बाहर निकले रहे ताकि लोग देख सके कि विश्वविजेता सम्राट सिकन्दर अपना समस्त वैभव पृथ्वी पर छोडकर खाली हाथो जा रहा है।

सती

सन् १६६४ की बात है। ससद के कई मित्र सदस्यो के साथ राजस्थान के दर्शनीय स्थानो का भ्रमण करते हुए जोधपुर मे ठहर गया। पता चला, पास ही मडावर की ऐतिहासिक स्थली है।

अगले दिन, हम इसे देखने गए। वीरान सी जगह, लगता था जैसे अभिशापग्रस्त हो। पत्थर की छोटी-बडी बहुत सी-छतरिया देखने मे आई। मकराने के बेहतरीन पत्थरो की बनी थी, नक्काशी का काम भी इन पर उम्दा था।

एक स्थानीय वयोवृद्ध रामू जी दरोगा हमारे गाइड थे। मेरे एक मित्र ने इन्हे साथ कर दिया था। उन्होने मुझे प्राय सारी छतरियाँ दिखायी। पिछले साठ वर्षो से वे इन छतरियो की देखरेख करते आ रहे है। मृत राजाओ की जन्मतिथि, राज्यकाल मृत्यु तथा उनके जीवन से सम्बन्धित प्रमुख घटनाए उन्हे कठस्थ सी थी।

लगभग चार सौ वर्षो से इस स्थान पर स्थानीय राजाओ की दाहक्रिया सम्पन्न होती रही है। उन्ही की यादगार मे ये छतरियाँ बनी। कई एक, रेत से ढकी सी थी। कुछ पर झाडियाँ उग आई थी। उपेक्षित और बेमरम्मत होने की वजह से ढह भी रही थी।

ऐतिहासिक स्मारक एक बार तो मनुष्य को अपने युग मे ले ही जाते हैं। उन्हे देखकर भावना और कल्पना के पखो पर बैठा सुदूर अतीत की एक झाकी वह कुछ क्षणो के लिए पा जाता है। दिल्ली के लाल किले मे जहाँ सल्तनते मुगलिया की शानोशौकत, के साथ 'बाअदब बामुलाहिजा होशियार' की गूज दीवारो से निकलती है, वही अभागे दाराशिकोह के कटे सिर की अधखुली आखे आज भी कुछ कह ही जाती है।

मडावर का ऐतिहासिक वैभव इस टक्कर का नही है। फिर भी, राजस्थान के रजवाडो का एक ऐसा पृष्ठ यहाँ मेरी आँखो के सामने उभरा जो अब तक अन्यत्र कही मिला नही। एक बडी सी छतरी के पत्थरो पर नागरी मे एक लेख देखा। पढने पर पता चला कि अमुक महाराजा युद्धवीर, धर्मवीर, दानवीर और प्रजावत्सल थे। उनके साथ तीन रानियाँ और बाइस दरोगने सती हुई। एक अन्य छतरी महाराजा अजित सिह की यादगार मे बनी थी। इसके शिलालेख मे सहमरण की रानियो की सख्या थी छ और दरोगनो की बाइस। इस प्रकार विभिन्न छतरियो पर कम या अधिक सख्या का उल्लेख था।

बरबस खो सा गया, उस प्राचीन सामन्त-युग मे। राजपूती आन ने धरती और धर्म के लिए सर भले ही कटा दिया, पर सर झुकाया नही। एक नही अनेको दृष्टान्त है। चित्तौड की साकाओ का चित्र सामने अकित हो आया। मैं सोचने लगा कि रानियो का सहमरण तो पत्नी होने के नाते तत्कालीन प्रथा और परम्पराओ के अनुसार गौरवपूर्ण माना जा सकता है। किन्तु दरोगने स्वेच्छा से सती हुई या इन्हे विवश किया गया?

रामूजी दारोगे के समक्ष मैने अपने प्रश्न रखे और यह भी पूछा कि यदि बाध्यतामूलक सहमरण रहा होगा तो विरोध भी होता था या नही ?

उन्होने कहा—"यह सर्वविदित है कि मुगलो के सम्पर्क मे आने के कारण राजपूत सामन्त एव सरदार ऐय्याश एव आराम-तलब हो गए। कामपिपासा की तृप्ति के लिए ज्यादा से ज्यादा रानिया, उपत्नियाँ और रखैले रख लेते। रनिवास मे ऐसी औरतो की अधिकाधिक सख्या उनके पौरुष और वैभव का प्रतीक मानी जाती थी। यह प्रथा सत्रहवी से लेकर बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक काल तक प्रचलित रही। कहा जाता है कि जयपुर नरेश स्वर्गीय महाराज माधोसिंह की सब मिलाकर सात-आठ सौ रानियाँ और रखैले थी।"

इस प्रथा की शुरुआत के बारे मे एक जनश्रुति उन्होने बतायी—"राजपूतो मे नियम था कि केवल रानियाँ ही पति के शव के साथ चिता मे अपने को भस्म कर सती होने का गौरव प्राप्त करे। एक बार एक बडे माने-जाने महाराजा की मृत्यु हो गई। युवराज को किसी मुसाहिब ने सुझाव दिया कि दिवगत महाराजा पुण्यात्मा थे। इसीलिए, आजीवन उन्होने ऐश्वर्य-भोग किया। अब उनकी मृत्यु के उपरान्त हमारा यह धर्म है कि परलोक मे भी उनकी सेवा के लिए रनिवास की उनकी बादियाँ भी भेज दी जाएं।

"बस, फौरन हुक्म हुआ कि आठ दस बांदियाँ महाराज के शव साथ जला दी जाए परम्परा बन गई। आगे चलकर तो पचास-साठ तक यह सख्या पहुची। जिन औरतो को इस प्रकार जलाने के लिए बाध्य किया जाता, उनके पति और बच्चो का रोना-चीखना स्वाभाविक था। मगर उन दिनो परवाह ही कौन करता इन बातों की ? राज्य अपना, हुकूमत अपनी, सर उठाने की बात तो दूर, उगली तक उठाने की हिम्मत किसी की नही होती थी ?"

कहते-कहते रामू जी की आवाज कापने लगी, वे पास के एक चबूतरे पर बैठ गए। मैने समझा, वृद्ध शरीर है, थक गए होगे। कुछ पूछना चाहता था कि देखा, उनकी आखो से आसू उमड रहे है। कहने लगे, "मेरी अभागिन परदादी की बात याद आ गई। उसे भी जबरन जलाया गया था।"

मेरे विशेष अनुरोध पर उन्होने यह घटना सुनायी।

"सन् १८०४ मे जोधपुर मे महाराजा भीम का राज्य था। उनके पास बडो-छोटी कुल मिलाकर सैकडो रानिया और रखैले थी, जिनमे उनकी अपनी समवयस्का से लेकर ४० वर्ष के अन्तर तक थी। उस समय ऐसा रिवाज था कि जब कभी महाराज का मन हुआ, किसी छोटे-बडे जमीदार की लडकी को माग लेते। वह बेचारा कन्या ऋण से तो मुक्त होता ही, साथ ही लडकी को भी राजरानी देखने का स्वप्न देखता। दरबार मे उसका रुतबा भी बढ जाता। इस प्रकार रानियो की एक बडी फौज महलो मे एकट्ठी हो जाती। इन सबके साथ दरोगा जाति की कुवारी कन्याए भी दहेज मे आती। उन सबका, नाम मात्र का विवाह तो उसी जाति के लडको से कर दिया जाता, परन्तु वे रहती महाराज की रखैल के रूप मे। इनमे से किसी-किसी के पास तो महाराजा दो-चार वर्षो मे भी नही जा पाते थे।

"महाराज की आयु ६० वर्ष की हो गई थी। उनका शरीर अफीम, शराब और औरतो के कारण समय से पहले ही जर्जर हो गया। हकीमो, कविराजो की एक लम्बी कतार उनकी हाजिरी मे रहती, जिनका काम था, उनके लिए ज्यादा से ज्यादा उत्तेजक और स्तभक दवाइया तैयार करते रहना।

"परन्तु जिसकी नीव खोखली हो गई हो, वह मकान भला कितने दिन टिक पाता ? आखिर, उन्हे असाध्य बीमारी ने धर दबोचा। सारे हकीम और वैद्य देखते रह गए। मृत्यु के कुछ दिनो पहले ही उन्होने अपने मुसाहबो से सलाह करनी शुरू कर दी कि कौन-कौन सी रानियाँ और दरोगिने उनकी परलोक सेवा के लिए सहमरण करेगी।

"इधर, रनिवास मे कोहराम मच गया, महाराज की जान से ज्यादा अपनी जान के लिए, जो छोटी सी उम्र की रानियाँ या दरोगने थी, वे और भी ज्यादा डरती थी, क्योकि स्वर्ग मे भी महाराज के लिए उनकी ही जरूरत समझी जाती थी। खैर, मृत्यु के समय महाराज ने श्रीमुख से रानियो के नाम बता दिये और प्रत्येक के साथ चार-चार दरोगने सेवा के लिए।

"मेरी परदादी की आयु उस समय केवल १९ वर्ष की थी। विवाह हुए चार वर्ष हुए थे। केवल दो वर्ष का एक पुत्र था। पति और पुत्र को बहुत प्यार करती थी। महाराज की सेवा से छुट्टी मिलते ही दौड़कर घर आ जाती।

"जब उसे भी महाराज के साथ सहमरण का हुक्म हुआ तो वह सन्न रह गई। परदादा तो एक प्रकार विक्षिप्त से हो गए। दो दिनो तक पुत्र को छाती से लगाए इस क्षीण आशा मे पडी रही कि शायद अन्तिम समय तक कुछ रद्दोबदल हो जाए। परन्तु कछ भी नही हुआ। रावले से १०-१५ व्यक्ति आये, उसे जबरन भाग, धतूरा और अफीम खिला दिया गया। स्नान कराके नए कपडे पहना दिए और सजे हुए रथ पर बैठाकर श्मशान ले जाने की तैयारी करने लगे। कहा जाता है कि किसी बहुत अशुभ घटना की आकाक्षा पशुओ और अबोध बच्चो को भी हो जाती। उस दिन मेरे दादा अपनी मा को किसी प्रकार भी छोडने को तैयार नही हुए। जब देर होने लगी तो दरबार के निर्दयी मुसाहिबो ने उसके जबडो पर जोर का मुक्का मारा, जिसके निशान उसकी मृत्यु पर्यन्त थे।

"श्मशान मे पहले से ही तीस-पैंतीस स्त्रिया सुबुक-सुबुक कर रो रही थी। लोग कह रहे थे कि महाराज के शोक मे रोती है। सबने कूसमल (लाल) रग के नये कपडे पहन रखे थे। हाथ-पैरो पर मेहदी रची थी। सुहागन का बाना सजा हुआ था, क्योकि वे अपने पति देवता से मिलने के लिए स्वर्ग जा रही थी।

"चन्दन काठ की बहुत बडी चिता सजाई गई। पहले बडी महारानी को बैठाकर उनकी गोद मे महाराजा का सिर रख दिया गया। चारो तरफ दूसरी रानिया बैठ गई। इनके पीछे गोलियो को बैठा दिया गया।

"पडितों ने उच्च स्वरो मे मन्त्रोचार आरम्भ किया। चिता मे आग लगा दी गई करुणा- भरी चीख-पुकार सुनाई पडने लगी, परन्तु जोर-जोर से बजते हुए ढोल, नगारो और बाजो के शोर-शराबे मे इनका कुछ भी पता नही चला। कहते है, मेरे परदादा अपने पुत्र को गोद मे लिए वही खडे हुए यह सब देख रहे थे। एक बार तो मेरी परदादी ने चिता से बाहर कूदने का प्रयत्न भी किया, परन्तु हत्यारो ने उसे बासो से ढकेल कर चिता की तरफ कर दिया। धधकती आग मे थोडी देर मे ही सब कुछ स्वाहा हो गया।

"महाराज की जय हो, महाराज बडे प्रतापी और पुण्यवान थे, इन आवाजो के साथ जो रानिया और दरोगने जला दी गई थी, उनके पति, पुत्र और पुत्रियो की सिसकती आहे भी हवा मे फैल गई।"

आसू पोछते हुए रामूजी कहने लगे, इन बातो को दोहराते समय घाव हरे हो जाते है।"

मैने हाथ का सहारा देकर उन्हे उठाया। छतरियो के चबूतरे की सीढियो से हम उतर रहे थे।

दिन ढल चुका था। ऐसा लगा कि अस्ताचल का सूर्य इन घटनाओ को सुनकर तेजी से कही दूर छिपना चाहता है।

●

प्रतिशोध

राजस्थान मे डूगजी जुहारजी नाम के दो धाडैतो का उन्नीसवी शताब्दी मे उत्तरार्ध मे वडा आतक था। उनके नाम से ही लोग थर्राते थे। सैकडो आदमियो की बारात को वे दोनो दो, ही चार साथियो के साथ लूट लेते थे। परन्तु एक बात का उनके नियम था कि ब्राह्मण और अछूतो को कभी नही छेडते। कभी-कभी दूसरी जाति के लोग भी अपने को ब्राह्मण बताकर बच जाते। यह सब जानते हुए भी वे इसलिये उन्हे छोड देते कि कही भूल से भी ब्रह्महत्या का पाप न पडे। इसके अलावा, ससुराल से पीहर जाती हुई लडकी को भी वे कभी ही सताते।

सन् १८५६-६० के आसपास की बात है। एक बार आगरे के पास वे पकडे गये। कडे पहरे मे उन्हे वहाँ के केन्द्रीय कारागार मे रखा गया। उस जेल का सुपरिन्टेन्डेन्ट था एक अग्रेज। नाम था अलवर्ट, भयकर क्रूर और परम दाम्भिक। कैदियो को नाना प्रकार की अमानुषिक यन्त्रणा देकर उन्हे सताने मे उसे वडा मजा आता था।

डूगजी-जुहारजी के बारे मे उसने बहुत कुछ सुन रखा था। अपनी कैद मे उन्हे पाकर उसके मन की पाशविकता भडक उठी। बहादुरी साबित करने के लिए दूसरे कैदियो के सामने उन्हे टूटी-फूटी हिन्दी मे भद्दी और गन्दी गालियाँ दिया करता। कभी-कदाच दो-चार ठोकरे भी मार देता। आँखो से अगारे बरसते मगर वे मन मसोस कर रह जाते, उनके दोनो हाथो और पैरो मे लोहे की मोटी-मोटी भारी बेडिया पडी थी।

कैदियो के साथ रहने के कारण अलबर्ट बहुत सी देशी गालिया सीख गया था। एक दिन बडे ही भद्दे तरीके से उसने जुहारजी को माँ-वहन की गाली दी। अपमान और क्रोध के आवेश मे वे उछल पडे, हाथ-पैरो की जजीरे झनझना उठी। दात पीसते हुए उन्होने कहा, "अगर मैने राजपूतनी का दूध पिया है तो इसका वदला तुझसे लूगा, तेरे वश को मिटाकर।"

अलवर्ट आग बबूला हो उठा। उसने जुहारजी की इतनी बुरी तरह से पिटाई की कि उनका सारा वदन सूज गया। इतना ही नही, उनके घावो पर उसने सबके सामने पेशाब भी किया।

ये खबरे जेल की ऊँची और मोटी दीवारो के बाहर फ़ैली और बढ-चढ कर उनके साथियो के पास पहुँची। उन सबकी एक गुप्त बैठक हुई। चार आदमियो को डूगजी-जुहारजी को जेल से बाहर निकालने का भार दिया गया। योजना बना ली गई और इसकी खबर जेल के अन्दर उन तक पहुँचा दी गयी।

अमावस की अँधेरी रात, घनघोर वर्षा। निश्चित समय पर चारो साथी जेल की दीवार के किनारे पहुँचे। कमन्दे डाल दी गयी। डूगजी-जुहारजी ने अन्य कैदियो के कन्धो पर चढकर छोरे पकड ली। साथियो ने बाहर से रस्से खीचे। दीवार लाघ कर वे दोनो बाहर आ गये।

अगले दिन जब अलबर्ट कों पता चला तो उसके हाथ के तोते उड गए। उसकी कैद से निकल जाना मामूली बात नंही थी। अपनी शान और इज्जत पर पहला प्रहार लगा देख वह तिलमिला उठा, मन मे भय भी हुआ। "इसका बदला लूगा, तेरे वंश को मिटा कर" ये शब्द बार-बार उसके कानो मे गूज उठते। उसने पता लगाने की बहुत कोशिशें की। भेदिये छोडे, इनाम की घोषणा की, गाँव उजाडे, बेगुनाह लोगो को बहुत सताया, मगर डूगजी-जुहारजी पकड मे न आए; उनका कोई भी सुराग न मिल सका। आए दिन सरकारी खजाने लुट जाने लगे। साथ के सिपाहियो मे इतना आतक फैल गया कि वे इनका नाम सुनते ही माल-असबाब छोडकर भाग खडे होते।

जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट के घर के आसपास छाया की तरह उनके आदमी मडराने लगे। वह भी सतर्क रहने लगा। एक रात, पत्नी और बच्चे के साथ वह किसी जलसे मे जा रहा था। बग्घी के आगे-पीछे हथियार-बन्द सिपाही घोडो पर थे। सुनसान सडक, सनसनाती हवा चल रही थी। काफी दूर निकल जाने पर कुछ देहाती आग तापते मिले। गाडी इनके पास से होती हुई थोडी ही आगे बढी होगी कि आँधी के वेग से साहब के सिपाहियो पर देहाती झपट पडे। एक ने बग्घी पर चढ कर अलबर्ट की पिस्तौल छीन ली। सिपाही भाग चुके थे, कोचवान को धक्के देकर नीचे गिरा दिया गया। गाडी लेकर वे बीहड जगल के रास्ते बढने लगे। साहब को अचानक इस हमले के कारण यह पता नही चला कि वे डूगजी-जुहारजी के साथी है। वह चिल्ला-चिल्ला कर गालिया बक रहा था। अगले दिन फाँसी पर लटकाने की धमकी दे रहा था। इधर उसके हाथ-पैर मजबूत रस्सियो से बाँधे जा चुके थे। उसकी पत्नी सिमटी सी एक कोने मे बैठी थी, बच्चा उसकी गोद मे था।

आगरे से थोडी दूर जमुना और चम्बल की कटान के इतने गहरे खड्ड है कि उसमे हाथी भी छिप सकते है। इन्ही के आस-पास की एक सडक के किनारे गाडी खडी हुई। अलबर्ट और उसकी पत्नी की आँखो पर पट्टिया बाँध दी गयी और उन्हे पैदल ले जाने लगे। काफी घुमावदार और ऊँची-नीची जगह थी। कहाँ से जाया जा रहा है, इसका अन्दाज तक लगाना सम्भव न था। एक निर्जन स्थान पर पहुँच कर उनकी पट्टियाँ खोल दी गयी। गुफानुमा एक मकान के अन्दर पहुँच कर अलबर्ट ने देखा, मशालो की रोशनी के बीच एक ऊँची चौकी पर बैठे थे डूगजी-जुहारजी। उनके इर्दगिर्द हाथो मे भाले, तलवारे और बन्दूको से लैस बीस-पच्चीस व्यक्ति आदेश की प्रतीक्षा मे थे।

अलबर्ट को देखकर जुहारजी के ओठो पर मुस्कुराहट खेल गई। उन्होने कहा, "आइये अलबर्ट साहब, बहुत दिनो बाद आपके दर्शन हुए!" फिर गम्भीर गूजती आवाज मे उन्होने कहा, "साहब, हम तुम्हारी कैद मे थे, तुम्हारे कानून के लिहाज से सजा भुगत रहे थे। बेडियो मे भी जकडे थे। फिर भी, तुमने बिना कारण हमारा अपमान किया!" उसकी ओर उगली उठाकर कडकती आवाज मे बोले, "तुमने हमारी माँ-बहनो को गालियाँ दी और हमारे घावो पर सब के सामने पेशाब किया!!"

साहब का कठ तो इन्हें देखते ही सूख चुका था। उनकी आवाज से उसकी घिग्घी बँध गई।

जुहारजी ने हँसकर कहा, "कायर मरने से इतना डरता है? हमने सुना था कि अग्रेजो की कौम बहादुर होती है, वे मरना जानते है। ऐसा लगता है,जरूर तुम उनमे से किसी नीच जाति के हो।"

जुहारजी ने साथियो की तरफ देखा। अभिप्राय समझकर उन्होने राय दी कि अलबर्ट के शरीर को लोहे की गरम सलाखो से दागकर उसे भूखे भेडियो के बीच छोड दिया जाय। इस तरह दो-चार घटो मे इसके लोथडे नुच जायेंगे और धीरे-धीरे प्राण भी निकल जायेंगे। इसकी पत्नी और बच्चे को पहले ही इसके सामने गोली से उडा दिया जाए।

अब जुहारजी ने बडे भाई डूगजी की ओर देखा। उनका निर्देश ही अन्तिम आदेश था। उन्होंने सयत भाव से कहा, "उस दिन तुमने इसके वश को नाश करने का व्रत लिया था। इसलिए इसके पुत्र को मार डालना भी उचित है। किन्तु इस तीन वर्ष के अबोध बालक का कसूर क्या है? अब रही इसकी पत्नी। सो, अब तक हमने किसी स्त्री की हत्या नही की। मेरी राय है कि इसे वापस सकुशल भेज दो। बच्चे को अपने पास रखकर ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जाये कि इस प्रकार के घृणित अग्रेजो से बदला लेने वाले सेनानियो मे हमारे एक विश्वस्त साथी की सख्या बढे। इस प्रकार यह बच्चा इसका उत्तराधिकारी नही रहेगा। इसके गुण-दोष भी नही सीखेगा। वह हमारा होगा, हमारा रहेगा। इसका वश ही मिट जायेगा। जहाँ तक अलबर्ट को मारने का सवाल है, दूसरो मे दहशत पैदा करने के लिए दुश्मन को क्रूरता से मारा जाता है। इसलिए जिस बेरहमी से इसने और इसके तबके के लोगो ने हाल के गदर मे हमारे आजादी के सिपाहियो को मारा है, उसका नमूना जरूर दिखाना चाहिए।"

थोडे दिनो बाद, आगरे के अग्रेज मुहल्ले मे अलबर्ट का क्षत-विक्षत लाश टगी मिली। आखो की जगह दो जले गड्ढे थे और गले मे तख्ती झूल रही थी। इस पर लिखा था, "आगरा सेन्ट्रल जेल का सुपरिन्टेन्डेन्ट अलबर्ट जिसने बहुत से बेकसूरो को सताया और देशभक्तो की आँखो मे गरम सलाखे डलवाई।"

इतिहास के निर्झर

साकूत वाचा

श्रीरामेश्वरजी टॉटिया बडे सहृदय सैलानी, भावुक पर्यटक और जिज्ञासु घुमक्कड है। अपने विस्तृत व्यवसाय की व्यस्त वात्या से उ मुक्त होकर जब वे बाहर निकल पडते है तो सम्पूर्ण भू-प्रकृति, अपना समस्त भव्य वैभव, उनके जिज्ञासु मानस को गुदगुदाती चलती है, समग्र मानव-विभूति अपने समस्त भूत और वर्तमान प्रपच के साथ अपनी मधुर और अमधुर गाथाएँ लेकर उनके मर्मस्थल को झकझोरने लगती है और व्यापक मानव-समाज अपनी विविधता के आडबर मे अपना कल्मष और अकल्मष लेकर उनकी बुद्धि को उद्वेलित करने लगता है। टॉटियाजी की दुर्बलता कहिए या उदारता, वे इस समस्त नैसर्गिक और मानवीय सृष्टि के कूट-अकूट अनुभवो को अपने हृदय मे ही छिपाये रखने की कृपणता नही कर पाते। अपने अनुभवो मे दूसरो को भी साझीदार बनाते चलने के लिए, अपने राग और विराग का रस दूसरो को भी देकर उन्हे भी विभावित कर डालने के लिए, टॉटियाजी का हृदय कुलबुला उठता है, मचल उठता है, व्याकुल और व्यग्र हो उठता है और इस सात्विक आकुलता मे वे पुस्तक के रूप मे अपना समस्त सचित अनुभव समेट कर सबके मनोरजन, ज्ञानवर्द्धन, भावपरिष्कार और मनस्तोष के लिए प्रकाशित कर डालते है।

इस सग्रह मे सकलित कहानियाँ भी ऐसे ही पर्यटनो के अवसर पर अथवा व्यापक ऐतिहासिक अध्ययन के माध्यम से सप्राप्त अनुश्रुतियो, जनश्रुतियो अथवा ऐतिहासिक गाथाओ का ऐसा भूतिमय भडार है जिसमे उन तेजस्वी पुरुषों और मनस्विनी महिलाओ की ज्वलत गाथाएँ है जिनकी उपेक्षा इतिहास-लेखक करना चाहे तो भले ही करे, किंतु कृतज्ञ और भावुक जन-मानस जिन्हे भुला सकने की धृष्टता और कृतघ्नता कभी नही कर पा सका। किसी सामान्य या विशेष अवसर पर, किसी सामान्य या विशेष व्यक्ति द्वारा सहसा कोई ऐसा अकल्पनीय कार्य हो जाता है कि युगो तक ससार भर का मानव-समाज आश्चर्य और श्रद्धा के साथ उसे सुनकर ही चकित रह जाता है कि क्या ऐसा भी सभव है ? कितु हो जाता है यह सत्य है और आगे आनेवाली सारी पीढी परपराक्रम से कथा के रूप मे, कविता के रूप मे, नाटक के रूप मे उस गाथा की आवृत्ति करता हुआ उसके द्वारा कृपण को उदार, कापुरुष को शूर और दुर्बल को पराक्रमी बनने की प्रेरणा देती रहती है।

'सत्य तो कल्पना से कही अधिक विचित्र होता है', इसलिए स्वभावत किसी अकल्पित मार्मिक घटना के लिए कोई निश्चित कारण नही बताये जा सकते कि केवल अमुक परिस्थिति मे ही, केवल अमुक प्रकार का व्यक्ति ही, अमुक प्रकार का व्यवहार कर सकता है। सत्य तो यह है अकस्मात् किसी ऐसे क्षेत्र के, किसी ऐसे सामान्य व्यक्ति के द्वारा कोई ऐसा अद्भुत कार्य हो निकलता है कि सम्पूर्ण मानव-समाज उसके त्याग और वलिदान की, उसके शौर्य और

आत्मोत्सर्ग की गाथा सुनकर ही श्रद्धावनत हो उठता है। हमारा यह देश तो त्याग और तपस्या की उस गोद मे पला है जहाँ स्वार्थ का कोई महत्व रहा ही नही। शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र आदि ने वह साके कर दिखाये कि आज भी हमारा इतिहास उनकी अमर कहानी कह कर फूला नही समाता। किंतु राजस्थान, बुदेलखड, गुजरात और महाराष्ट्र ने तो इस युग मे भी उन ज्वलत गाथाओ को जिलाये रक्खा है जहाँ मृत्यु के भय से न पुरुषो को कभी आतकित किया, न महिलाओ को और न बालक-बालिकाओ को ही। कैसी वह वीर जाति थी जो अपनी आन के लिए अपने प्राणो को कुछ नही समझती थी, जहाँ के वीर-बाँकुरे लडाई मे लडते हुए प्राण-विसर्जन करने के लिए तरसते रहते थे, जहाँ की महिलाएँ अपने पतियो के स्वर्गस्थ हो जाने पर सोलह शृगार करके हँसती हुई चिताओ पर कूद पडती थी। टाँटियाजी ने राजस्थान, गुर्जर प्रदेश, महाराष्ट्र और बुदेलखड की ऐसी ही मर्मस्पर्शिणी गाथाओ का संकलन इस सग्रह मे किया है। विस्मृत प्रेरक कालचक्र न तो मनुष्य की महत्ता को ही चिरजीवित रहने देता, न तो किसी घटना का वर्चस्व ही उसके चक्र से स्थिर रह पाता। इसलिए पुस्तक ही प्रारभ से ऐसा साधन रहा है जिसके माध्यम से ऐसे महापुरुषो और सतियो की समुज्ज्वल गाथाओ को कालकवलित होने से बचाया जा सकता है। टाँटियाजी ने वही लोक-कल्याण का मार्ग अपनाया है और इस प्रयास के लिए वे निश्चय ही साधुवाद के पात्र है।

टाँटियाजी बहुश्रुत भी है, बहुपठ भी। उन्हे पुस्तको से भी बहुत अधिक स्नेह है और सत्सग से भी। प्राय सैलानी लोग नयन-सुख अधिक चाहते है और उसके साथ भोजन-सुख। ऐसे लोग अपने साथ कैमरा भी लिये रहते है और मनोरम दृश्य का चित्र सग्रह करके वे समझते है कि हमने यात्रा का फल पा लिया। किंतु वास्तविक पर्यटक वही है जो प्रत्येक नवीन स्थान, प्राचीन खडहर, किसी देश के मानव-समाज के विषय मे परिचय प्राप्त करने के लिए उत्सुक होकर अपने कान भी खुले रखे, आतुर होकर उनके सबध मे प्रश्न भी करे और जान लेने पर विवेकपूर्वक उसकी वास्तविकता पर विचार भी करे। टाँटियाजी ऐसे ही जिज्ञासु पर्यटक है और इसीलिए इनकी कहानियो मे वह जिज्ञासु-वृत्ति पग-पग पर प्रकट होती चलती है।

टाँटियाजी की भाषा मे किसी प्रकार की बनावट, मिलावट, दिखावट या सजावट नही है। वे अत्यत सीधी, सरल और सर्वबोध्य भाषा मे इस प्रकार अपनी बात समुपस्थित करते चलते है कि किसी दृश्य या घटना से जो मार्मिक प्रतिक्रिया उनके मस्तिष्क और हृदय पर हुई है उस प्रतिक्रिया से पाठक भी अछूता न बचा रह जाए। इसलिए ये कथाएँ अधिक सुगमता से वाचनीय और हृदयगमनीय हो गई है।

मैं हृदय मे टाँटियाजी के इस सत्प्रयास की सराहना करता हूँ और विश्वास करता हूँ कि भारतीय समाज इन ओजस्विनी गाथाओ से विभावित होकर अपने चरित्र का विकास कर सकेगा। मै आशा करता हूँ कि हमारे शिक्षा-विधायकगण ऐसी पुस्तको को छात्रो के हाथ मे देकर उन छात्रो के साथ-साथ देश का भी बहुत अधिक कल्याण करेंगे।

उत्तर बेनिया बाग,
काशी

सीताराम चतुर्वेदी

सती का शाप

पिछले वर्ष सौराष्ट्र की यात्रा के समय वहाँ के ऐतिहासिक शहर और किसी समय की गुर्जर देश की राजधानी अन्हिलवाड़ पाटन भी गया।

आज से १००८-१२०० वर्ष पहले यह बहुत बडा और भव्य शहर रहा होगा। परन्तु इस समय तो टूटे-फूटे खण्डहर, कुछ पुराने मन्दिर और कुएँ-बावडी बच गये है। अधिकाश पाटनवासी रोजगार-धन्धे के लिए अहमदाबाद, सूरत और बडौदा की तरफ चले गये है, इस लिए अब यह एक छोटा-सा कस्बा मात्र रह गया है।

मुन्शी जी के 'पाटन के प्रभुत्व' और 'गुजरात के नाथ' के कोट्यधीश सेठ सज्जन मेहता और मुजाल मेहता के महल भी बड़े-बडे भयावने खडहरो मे बदल गये है।

वहाँ पर जाने वाले पर्यटको को एक विशाल तालाब अवश्य दिखाया जाता है। इसके चारो तरफ पक्का पुश्ता बँधा हुआ है। चार बडी-बडी कलात्मक मकराने पत्थरो की छतरिय है। घाटो की सीढियाँ जैसलमेर के लाल-पीले पत्थरो से मढी हुई है। यद्यपि वर्षा का मौसम था, परन्तु तालाब मे पानी बिल्कुल नही था। कुछ गाय-भैसे चारो तरफ घूम-फिर रही थी

मैंने गाइड से इसके बारे मे पूछा तो वह कुछ उदासी-भरे लहजे में कहने लगा कि यही दिखाने के लिए तो मै आप को यहाँ लाया हूँ।

इस तालाब के चारो तरफ कँकरीला मैदान है, इसलिए वर्षा के दिनो मे इसमे अथाह पानी आता है, परन्तु थोडी देर मे ही सारा विलय हो जाता है। बडे-बडे इजीनियरो ने इसकी जाँच की, पेंदे मे बहुत-सी सीमेट की ढलाई की, मजबूत पत्थर जडे गये, परन्तु फल कुछ भी नही हुआ। हमारे यहाँ इसका नाम 'शापित तालाब' है। इसके पीछे एक ऐतिहासिक कथा है।

आज से ८५० वर्ष पहले गुजरात में एक प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिह का राज्य था। वे अपने शौर्य और दानशीलता के लिए प्रसिद्ध थे। मुजाल मेहता जैसा प्रतापी उनका प्रधानमन्त्री तथा काकभट्ट जैसा प्रसिद्ध योद्धा सेनापति था। एक से लेकर ग्यारह ध्वजा वाले वहाँ कई एक सेठ थे (एक ध्वजा एक करोड रुपये की कीमत की थी)।

जब जयसिह छोटा-सा बच्चा था, तभी उसके पिता कर्णदेव का देहान्त हो गया। माता मीनल देवी अत्यन्त चतुर, विदुषी परन्तु दुर्धर्ष थी। उनके कडे नियंत्रण मे रह कर जयसिह अपने समय का प्रसिद्ध युद्ध-विशारद हुआ। गुजरात के नाथ के सिवाय उसे सिद्धराज भी कहा जाने लगा। पाटन की प्रभुता गुजरात के सिवाय अन्य दूसरे प्रान्तो मे भी फैल गयी। कहा जाता है कि रुके हुए पानी का बाँध टूट जाता है तो फिर वह अत्यन्त वेग से बढ चलता है, किसी भी अवरोध अटक की परवाह नही करता कुछ ऐसा ही मीनल देवी के देहान्त के बाद

हुआ। सिद्धराज जयसिंह के रण-वास मे बहुत ही सुन्दर रानियाँ और दासियाँ थी, परन्तु उसके मुसाहिब नित्य नई सुन्दरियो की खोज मे रहते थे। आयु के साथ-साथ राजा की कामलिप्सा बढती जा रही थी।

जूनागढ का राजा रा-खेगार उस समय का अद्भुत वीर था। उसका किला पश्चिम भारत मे ही नही, बल्कि देश के इने-गिने किलो मे से था। रानी का नाम था राणकदेवी, जो अपनी सुन्दरता और शालीनता के लिए देशभर मे प्रसिद्ध थी, दूर-दूर के लोग उसका दर्शन करने के लिए जूनागढ आते थे।

जयसिंह उससे विवाह करना चाहता था, परन्तु वह हृदय से चाहती थी रा-खेगार को। जयसिंह के कडे अवरोध की बिना परवाह किये रा-खेगार उसके साथ विवाह करके जूनागढ ले गया।

मन्त्रियों, सभासदो और सेनाध्यक्षो के विरोध के बावजूद जयसिंह ने एक बडी फौज लेकर जूनागढ के किले को घेर लिया। जब बहुत दिनो तक सफलता नही मिली और उसकी फौजे थकने लगीं, तब उसने वहाँ के किलेदार को मिलाकर किला फतह कर लिया। रा-खेगार दूसरे साथियो के साथ बहादुरी से जूझता हुआ मारा गया। जिस समय जयसिंह राणकदेवी से मिलने के लिए किले मे पहुँचा तो वहाँ महल के एक कोने मे उस सती के जले हुए शरीर की राख की ढेरी मात्र थी। पैरो मे महावर लगाकर और सोलह शृङ्गार करके सती अपने पति के सिर को गोद मे लेकर भस्म हो गयी थी। उसके पैरो के निशानो को आज तक हजारो-लाखो सधवा और कुमारी कन्याए पूजती है। मैने जूनागढ मे राणकदेवी का महल देखा और वह स्थान भी देखा जहाँ वह सती हुई थी। आज तक गुजरात, सौराष्ट्र और राजस्थान मे उसके नाम के गीत गाये जाते है।

कामी और क्रोधी की विचार-शक्ति नष्ट हो जाती है। बौखलाया हुआ जयसिंह और भी ज्यादा क्रूर और कामुक हो गया। रात-दिन प्रजा की बहू-बेटियो को फुसला-धमका कर महल मे बुलाने लगा। पाटन मे उसने अपने नाम पर एक बहुत बडा तालाब खुदवाना शुरू किया। हजारो मजदूर-मजदूरनी माटी खोदने और ढोने के काम मे लगे थे। राजा बीच-बीच मे स्वय वहाँ चला जाता था। एक दिन उसने देखा कि दो-चार मजदूर स्त्रियाँ मिट्टी की कठौती लिए चुहल करती जा रही है। उनमे से एक अत्यन्त सुन्दरी पर उसकी नजर टिक गई। यद्यपि उसके महल मे देश भर की चुनी हुई सुन्दरियाँ थी जिन्हे नाना प्रकार के उबटन और शृङ्गार से ज्यादा मोहक बनाने के प्रयत्न होते रहते थे, परन्तु उसे मिट्टी से सने चेहरे पर के पवित्र सौन्दर्य और कडी मेहनत से मँजे हुए सुडौल शरीर वाली गरीब युवती के वे सब पासग मे भी ठहरने लायक नही थी। राजा ने पता लगाया कि उसका नाम जस्सो है, और उसका पति टिकू भी तालाब पर ही मजदूरी करता है। वे लोग दूसरे औडो (मिट्टी खोदने वालो की जाति) के साथ पश्चिमी राजस्थान से यहाँ आये है।

दूसरे दिन टिकू को बुलाकर मजदूरो का सरदार बना दिया गया। मजदूरी २ पैसे प्रतिदिन की जगह १० पैसे मिलने लगी (उस समय १ पैसे मे ५ सेर अनाज मिलता था)। काम भी केवल दूसरे मजदूरो की सम्हाल रखना ही था। रहने के लिए तालाब के पास ही एक अलग झोपडा मिल गया।

राजा के मुसाहिब जस्सो के लिए कुछ न कुछ भेट-सौगात लाने लगे।

वे बेचारे देहाती इन सब कुचालो को क्या समझते? उन्हे लगा कि परमात्मा ने उनके कष्ट के दिन दूर कर दिये। अब कमाई मे से बचाकर कुछ देश मे अपने वृद्ध माता-पिता को भेज सकेगे।

एक दिन राजा के यहाँ से एक दासी आई और टिकू से कहने लगी कि महाराजा के महल मे एक दासी की आवश्यकता है। जस्सो को वह काम मिल सकता है। १० पैसे रोजाना मेहनताना के सिवाय रोटी-कपडे भी मिलेगे।

टिकू तो राजी हो गया। सोचा वेचारी सारे दिन कडी मेहनत से थक जाती है। वहाँ आराम से रहेगी, परन्तु न जाने क्यो जस्सो के मन मे कुछ अशुभ का सा आभास हुआ। उसने पति के पास रहकर मिट्टी ढोने का काम ही करना चाहा। पर भला पानी मे रहकर मगरमच्छ से बैर कैसे निभता ?

दो-तीन दिन बाद राजा के सिपाही टिकू और जस्सो को पकडकर महल मे ले गये। पहले तो हर प्रकार से उन दोनो को अलग-अलग समझाया गया। नाना प्रकार के प्रलोभन दिये गये, परन्तु जब वे किसी प्रकार भी राजी नही हुए तो राजा को क्रोध आ गया और टिकू को जस्सो के सामने खडा करके कोडे मारने की आज्ञा दी। कोडो की मार से टिकू लहू-लुहान होकर वेहोशी मे एक तरफ लुढक गया। मुँह से खून आता देखकर जस्सो ने समझा कि वह मर गया है।

घर से आते समय वह अपनी चोली मे एक तेज कटार ले गई थी। उसे छाती मे भोकते हुए उसने कहा—"हे दुष्ट और कामी राजा, यदि मै मन, वचन और कर्म मे पवित्र हूँ तो तुझे श्राप देती हूँ कि तेरे इस बडे तालाब मे एक घडा पानी भी नही ठहरेगा, चाहे कितनी ही वर्षा हो। लोग जब इस सुन्दर और वडे तालाब को सूखा देखेंगे तो तेरे इस दुष्कर्म की याद करके युग-युग तक तुझे शाप देते रहेगे। यही नही, तेरे इस बडे राज्य को भोगने वाला वशधर भी नही पैदा होगा।"

सती के दोनो शाप सत्य हुए। जयसिंह को पुत्र नही हुआ। उसका राज्य उसके प्रतिद्वन्द्वी के पुत्र कुमारपाल को मिला।
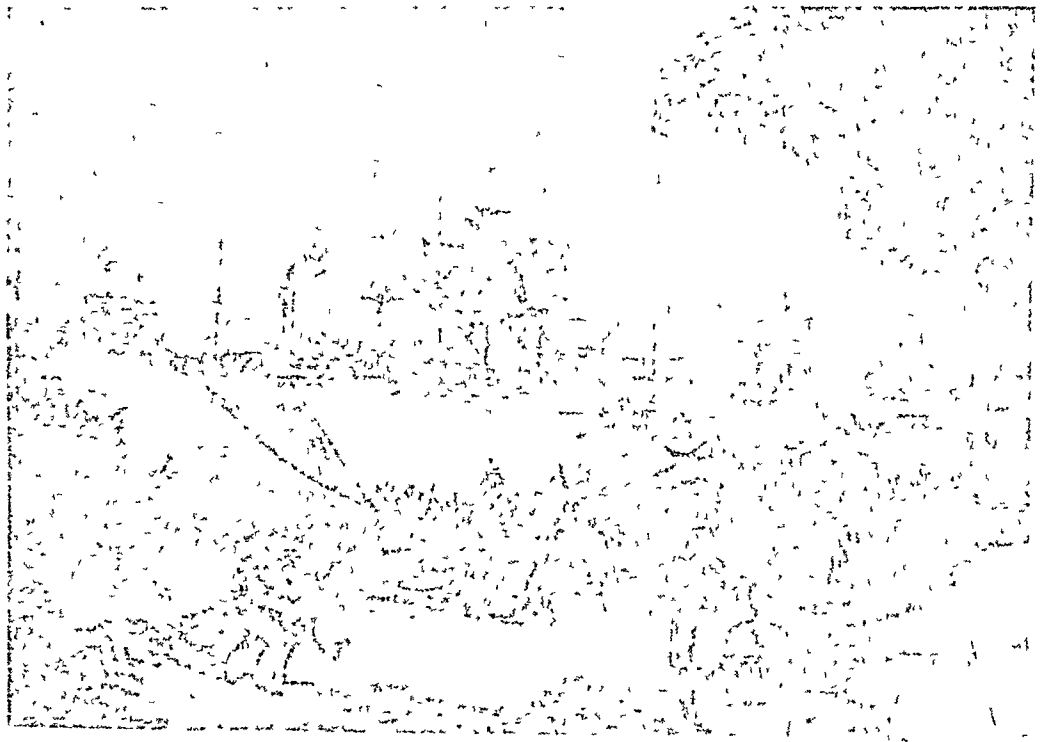
गोगा-बापा

राजस्थान के शौर्य और बलिदानो का इतिहास विश्व मे बेजोड माना जाता है। सम्मान और सतीत्व की रक्षा के लिए बच्चो को गोद में लिए हुए हजारो महिलाओ का धधकती आग मे कूदकर प्राण दे देना, अपने-आप मे एक अद्वितीय दृष्टात है। भारत के सिवा ऐसे उदाहरण शायद ही विश्व मे और कही मिल पायेंगे। रणथभौर और चित्तौड मे इस प्रकार के कई जौहर हुए है। सबसे पहला जौहर बीकानेर के भादरा गाँव के पास गोगामढी मे सन् १०२४ मे हुआ था। इसमे ७०० कुलवधुएँ अपने बच्चो को गोद मे लिए हुए जलकर भस्म हो गई थी। जब गजनी की फौज गोगामढी मे पहुची तो उसे राख की ढेरी, कुछ अधजले मास के लोथडे और उन पर मडराते हुए गिद्ध दिखाई दिए थे।

गोगामढी के चौहान सरदार गोगाजी का अद्भुत इतिहास है। यूरोप के १२ वी शताब्दी के क्रुसेड अभियान के कई एक नेता, भारत के जयमल, फत्ता और वीर चूडावत सरदार के बलिदानो से भी गोगाजी का बलिदान अधिक उज्ज्वल और अनोखा है।

मुहम्मद गजनवी की पचास हजार की सुसज्जित फौज के डर से लोहकोट (लाहौर) और मुलतान के हिन्दू राजा मुँह मे तिनका लेकर अपनी फौज सहित उसके साथ हो गये थे। रास्ते के सामन्तो की बिसात ही क्या थी? मरुभूमि की सीमा पर पहुँचते-पहुँचते उसके पास तीस हजार सवार और पचास हजार पैदल फौज थी।

जहाँ तक सभव हुआ, मुहम्मद रास्ते के सामन्तो से समझौता करता हुआ, सोमनाथ की प्रसिद्ध मूर्ति ध्वस करने के लिए आगे बढ रहा था। उसने गुर्जर देश की समृद्धि के बारे मे सुन रखा था। वहाँ जाकर सिपाहियो को लूट का लालच था और गजनवी को महादेव की मूर्ति तोडकर गाजी बनने का।

उसे भाटी प्रदेश (इस समय का बीकानेर क्षेत्र) होते हुए जालौर मारवाड के मार्ग से गुजरात सौराष्ट्र जाना था। रास्ते मे गोगामढी थी, वहाँ के वृद्ध सरदार गोगाजी की यशोगाथा उसने सुन रखी थी।

गजनवी ने एक देश-धर्मद्रोही तिलक नाम के भारतीय के साथ अपने सेनापति सालार महम्मद को गोगा-बापा के पास हीरे-जवाहरातो का थाल देकर भेजा। उसने कहा कि अमीर गजनवी अपनी फौजो के साथ आपके क्षेत्र से होकर प्रभास-पाटन जा रहा है, उसे आपकी सहायता चाहिए।

नब्बे वर्ष के गोगा-बापा का शरीर क्रोध से काँपने लगा। गम्भीर गर्जन करते हुए उन्होने कहा—"तेरा अमीर भगवान सोमनाथ के विग्रह को तोडने जा रहा है और मुझसे सहायता मागता है! तू हिन्दू होकर उसकी हिमायत के लिए आया है!! जा, अपने मालिक से कह दे

कि गोगा-बापा रास्ता नही देगा ।" यह कह कर उन्होने हीरे-मोतियो के थाल को ठोकर से दूर फेक दिया ।

बापा के इक्कीस पुत्र, चौहत्तर पौत्र और सवा सौ प्रपौत्र थे । इनके सिवा उनके पास नौ सौ-शूरवीरो की छोटी-सी सेना थी । पन्द्रह दिनो तक तैयारी होती रही । गढ की मरम्मत हुई । हथियार सवारे गये । चण्डी का और महारुद्र का पाठ होने लगा । एक दिन देखा कि गजनवी की फौजे एक विशाल अजगर की तरह सरकती हुई गोगामढी से आगे निकल रही है । शायद वह बापा से उलझना नही चाहता था ।

प्रधान पुजारी नन्दीदत्त ने कहा—"बापा सकट टल गया है—यवन फौजे आगे बढती जा रही है ।" बापा की सफेद मूँछे और दाढी फडकने लगी ।

उन्होने कहा—"महाराज, हमारे शरीर मे रक्त की एक बूँद के रहते भगवान शकर के विध्वम के लिए म्लेच्छ कैसे जा सकता है ? हम लोग उनका पीछा करेगे । आप गढी मे रहकर महिलाओ और बच्चो की सद्गति कर दे । ऐसा न हो कि उनके हाथो मे मेरे वश का कोई जीवित व्यक्ति पड जाय ।"

युद्ध की तैयारी के बाजे बजे । घोडे और ऊँट सजाये गये । केसरिया बाना पहने ११०० वीर हाथो मे तलवार, तीर और फरसे लिये हुए गजनवी की सवा लाख फौज को विध्वस करने चले ।

दस वर्ष से छोटे बच्चो और स्त्रियो की एक बडी चिता तैयार करके पुरोहित नन्ददत्त ने उसमे अग्नि प्रज्वलित कर दी । उसका अपना जवान पुत्र तो बापा के साथ जूझने चला गया था । पत्नी, पुत्र-वधू और बच्चे सब जौहर की आग मे कूद गये ।

गढ के नीचे खडी यवन सेना देख रही थी कि तीर की तरह तेजी से केसरिया वस्त्रो मे थोडे से वीर आ रहे है । 'अल्लाह हो अकबर' की गर्जना हुई । हरी पगडी और लाल दाढीवाला अमीर हाथी पर चढा हुआ अपनी फौजो को बढावा देने लगा ।

नब्बे वर्ष के वयोवृद्ध बापा बिजली की तरह कडककर यवन फौजो का नाश कर रहे थे । एक बार तो गज़नवी की फौज मे तहलका मच गया, परन्तु सख्या का और साज-सामान का इतना अन्तर था कि दो घडी मे सारे के सारे चौहान वीरगति को प्राप्त हो गये । दुश्मन के दसगुने आदमी मारे गये । गोगाबापा के वश मे बच गया एक पौत्र सज्जन और उसका पुत्र सामन्त । वे दोनो मुहम्मद के आक्रमण की अग्रिम सूचना देने प्रभास पाटन गए हुए थे । वापस आते समय उन्होने रास्ते मे भागते हुए लोगो से सारी बाते सुनी । एक बार तो दुख से रोने लगे, परन्तु तुरन्त ही सभलकर अपना कर्तव्य निश्चित किया । सामन्त तेज ऊँटनी पर चढकर गुर्जर नरेश भीमदेव के पास चला गया ।

सज्जन चौहान जालौर के रावल से मिलने गये । बहुत समझाने-बुझाने पर भी रावल नही माने । उन्होने कुछ दिन पहले ही गजनवी के दूत को रास्ता देने की स्वीकृति दे दी थी । उनका कहना था कि गुर्जर नरेश भीमदेव इतना अभिमानी हो गया है कि हम लोगो को कुछ गिनता ही नही । अब जब उस पर सकट आया है तो मै क्यो उसकी सहायता करूँ ? सज्जन ने बहुत-कुछ समझाया कि 'महाराज, यह तो भीमदेव और आपके वैमनस्य का प्रश्न नही है । देश-धर्म पर सकट आया है ! इस समय पारस्परिक भेदभाव को भूल कर यवनो का नाश करना चाहिए ।' इस पर भी जब रावल नही माना तो व्यर्थ मे देर न करके सज्जन ने अपनी ऊँटनी गजनवी की फौजो की तरफ बढा दी । तीन-चार दिन तेजी से चलने पर उसे गजनवी का दूत अपने सैनिको की टुकडी के साथ मिला । सात आदमियो सहित उसको मारकर रावल का स्वीकृति-पत्र, दूत की कटार और गुप्त निशान लेकर वह गजनवी की फौजो की तरफ बढा । उस समय तक उसकी फौज मे तीस हजार घुडसवार, पचास हजार तीरदाज और तीन सौ हाथी थे । चार हजार ऊँटो पर केवल रसद और पानी था । इसके पहले इतनी बडी फौज किसी भी सम्राट के पास नही सुनी गयी थी ।

नायक को उसने निशान दिखाया। वह गजनवी के पास ले जाया गया।

एक बडे तख्त पर अमीर बैठा था। चारो तरफ नगी तलवारे लिये तातारी सिपाही खडे थे। सज्जन ने दुभाषिये के माध्यम से बताया कि आपके दूत को रक्षको सहित जालौर के रावल ने मार दिया है। रावल और मारवाड के राजा रणमल्ल की सम्मिलित फौजे लडाई के लिए तैयार है। निशानी के लिए दूत की कटार गजनवी के पैरो के पास रख दी। तीन-चार दिन के थके हुए और भूखे चौहान की बातो पर मुहम्मद को यकीन आ गया।

उसने अपना परिचय जैसलमेर के एक जागीरदार के रूप मे दिया और कहा कि अगर अमीर चाहे तो वह उन्हे सीधे रास्ते से केवल बीस-बाइस दिनो मे सोमनाथ पहुँचा सकता है। उस रास्ते पर किसी प्रकार की रोक-थाम का अदेशा भी नही है। इसके बदले मे उसने अपनी जागीर के पास के एक सौ गाँव चाहे। इतनी अच्छी तरह से उसने रास्ते के गाँव और खेडो का परिचय दिया कि सेनापति तथा अन्य हलकारे उसकी बात को प्रामाणिक मान गये।

दूसरे दिन गजनवी ने अपनी फौजो को रास्ता बदलने का हुक्म दे दिया। अब वे सीधे कोलायत, बाप और जैसलमेर के रेगिस्तान होकर जाने लगे। सज्जन अपनी प्रिय ऊँटनी पर सबके आगे चला। चार दिन की यात्रा के बाद हलकारो ने शोर मचाना शुरू किया कि आगे बीहड रेगिस्तान है जहाँ आदमी तो क्या पक्षी भी नही जा सकते। सेनापति सालार महमूद ने सज्जन को धमकाया, परन्तु वह अपनी बात पर अडिग रहा। वापस जाने मे फिर पाँच दिन लगते, इसलिए हिम्मत करके वे आगे बढे। पाँचवे दिन दोपहर होते ही सामने भयानक अधड आता हुआ दिखाई दिया। जलती हुई गरम रेत मुँह बाए हुए राक्षसी-सी बड़े वेग से बढ रही थी। चौहान की ऊँटनी जान की जोखिम लेकर तेजी से बढने लगी। पीछे-पीछे मुहम्मद की सेना। थोडी देर मे ही प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। गर्म रेत के उमडते हुए ढेर के ढेर पशुओ और मनुष्यो को अधा बनाने लगे। फौज बेतहाशा पीछे लौटी, परन्तु प्रलयकारी तूफान की सी तेजी थके-मादे पशुओ मे कहाँ से आती? दसो हजार ऊँट-हाथी और सिपाही गरम रेत के नीचे दब कर मर गये। जो बचे, उनमे से बहुतों को रात मे बिलो मे से निकले हुए क्रुद्ध काले-पीले साँपो ने डस लिया। ऐसा लगता था कि शिव ने अपने गणो को यवनो की फौज का नाश करने के लिए भेजा है।

वीर चौहान ने भी अपनी ऊँटनी सहित वही मरु-समाधि ली। उसके चेहरे पर उल्लास और आनन्द था कि उसने दुश्मनो को इस प्रकार समाप्त कर दिया।

गोपा-बापा और उसके वशजो की पुण्य कहानी यही समाप्त हो जाती है। उनका यशोगान उत्तर भारत के हर व्यक्ति की जबान पर आज भी है। भाद्र मास मे गोगामढी मे उनकी पुण्य-स्मृति मे एक बडा मेला लगता है। मुहम्मद ने अपनी बची हुई सेना को सँभाल कर किस प्रकार जालौर-मारवाड के रास्ते मे सोमनाथ पर हमला किया, यह कथा देश के इतिहास मे प्रामाणिक रूप से उल्लिखित है।

●

अपूर्व त्याग

भीष्म की प्रतिज्ञा और त्याग सर्वविदित है। १५वी शताब्दी की एक ऐतिहासिक कथा इसी प्रकार की है। मेवाड के राणाओ मे सागा, कुम्भा, प्रताप और राजसिह के नाम वीरता और देशभक्ति मे बडे गौरव से लिए जाते है। उसी तरह राणा लाखा का नाम वीरता के साथ-साथ दानियो मे लिया जाता है। अलाउद्दीन खिलजी के तोडे हुए मन्दिरो का इन्होने पुर्ननिर्माण कराया, बहुत से नए मदिर, कुएँ और बावडियाँ बनवाई। पिछोला झील इन्ही के समय मे बनी थी।

सन् १४१३ की बात है—लाखा को गद्दी पर बैठे ३० वर्ष हो चुके थे। वृद्ध हो गये थे दाढी मूँछे सफेद हो गई थी, चेहरे पर सलवटे पड गई थी। राज्य अपने ज्येष्ठ पुत्र चण्ड को सौपकर पहाडो मे तपस्या के लिए जाने का विचार कर रहे थे।

एक दिन सरदारो से घिरे हुए चितौड के किले के दरबार मे बैठे थे। युवराज चण्ड अभी तक नही आया था।

उसी समय मारवाड का दूत आया और कहने लगा—महाराणाजी, मारवाडपति महाराज रणमल ने अपनी प्रिय बहिन हसा का युवराज चण्ड के साथ विवाह के अभिप्राय से नारियल भेजा है। कृपया स्वीकार करके मारवाड का गौरव बढावे। राजकुमारी रूप और गुणो मे सब प्रकार से युवराज के अनुरूप है।

महाराणा ने सारी बात ध्यान से सुनी फिर अपनी सफेद दाढी पर हाथ फेरते हुए हँसकर कहा कि क्या आपके महाराज हमारे जैसे वृद्धो पर यह कृपा नही करेगे। जब इस प्रकार की हँसी-दिल्लगी हो रही थी, राजकुमार सभा मे आया। राणा की कही हुई बात उन्होने सुनी। इस परिहास की बात को सुनकर वह गम्भीर चिंता मे हो गये। सोचने लगे कि मारवाड की राजकुमारी के लिए स्वय महाराणा ने इच्छा व्यक्त कर दी, अब वह मेरी माता के तुल्य हो गयी है। भला अब मैं उसे अपनी पत्नी के रूप मे कैसे ग्रहण कर सकता हूँ।

राणाजी ने युवराज को बहुत प्रकार से समझाया। कहने लगे कि साधारण हँसी मे कही हुई बात को तुम इतनी गम्भीरता से क्यो लेते हो। भला यह भी कोई अस्वीकृति का कारण है।

परन्तु चण्ड अपने निर्णय पर दृढ रहा। राणा ने क्रुद्ध होकर कहा कि आज तक तुमने मेरी आज्ञा का उल्लघन नही किया, फिर आज क्यो इस प्रकार का हठ कर रहे हो। आज मारवाड हमारा मित्र राज्य है, परन्तु इस अपमान के बाद वे शत्रु हो जायेगे। दोनो राज्यो मे युद्ध होकर हजारो वीरो की मृत्यु अवश्यम्भावी है। पहले से ही तुगलको की हमारे पर नजर है, फिर इस हालत मे हम मारवाड से वैर कैसे ले सकेगे। अगर मै अपने लिए टीका मजूर करता

भी हूँ तो मारवाड-नरेश अपनी प्रिय बहिन का मुझ जैसे वृद्ध के साथ विवाह करके उसे क्या दुखी बनायेंगे ?

पिताजी मेरा निश्चय तो अटल है, अगर वे आपका रिश्ता मजूर नही करते है तो मै युद्ध करके उनकी बहिन को लाकर आपके चरणो पर गिरा दूँगा ।

राणा उद्विग्न होकर कहने लगे—"अगर तुम इसी बात पर अडे हुए हो तो तुम्हे यह राज्य भी त्याग करना होगा । मारवाड की राजकुमारी से जो पुत्र होगा, वही मेवाड का राणा होगा, बोलो यह मजूर है ?"

"हाँ, महाराज मुझे मजूर है ।"

दूत ने मण्डावर जाकर सारी बाते रणमल से कही । १४ वर्ष की राजकुमारी हंसा का विवाह ६० वर्ष के वृद्ध राणा से हो गया । उन दिनो राजाओं मे इस प्रकार ' ' ।चवाह होते भी थे ।

दूसरे वर्ष एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम मोकल रखा गया । उसका लालन-पालन भविष्य के मेवाड के अधिपति की तरह होने लगा । मोकलजी पाँच वर्ष के हुए तब गया तीर्थ पर तुगलको के आक्रमण की सूचना मिली । राणा लाखा ने कुमार चण्ड और सरदारो को अपनी चुनी हुई सेना के साथ इस धर्मयुद्ध मे शामिल होने का निर्णय बताया । कहने लगे—तुर्को की बडी सेना से हम एक प्रकार से केशरिया पहिनकर साका (मरने का निश्चय) करने जा रहे है । मुझे केवल एक ही चिन्ता है कि मेरे पीछे बालक मोकल का क्या होगा ?

राणा को भय था कि सरदार सब चण्ड की तरफ है, वह अपूर्व वीर है, शायद बालक मोकल को मारकर स्वय गद्दी पर बैठ जायेगा । प्रिय पत्नी हसा की भी दुर्गति होगी ।

चण्ड समझ गया कि महाराणा का इशारा उसकी तरफ था । उसने खडे होकर कहा—"महाराज आप मोकल जी की चिन्ता न करे, वे मेवाड के महाराणा होगे । हम सब उनके राज्य और मान के लिए जरूरत पडने पर जीवन की आहुति देंगे । अच्छा होगा, आपके सामने ही उन्हे राजतिलक कर दिया जाय ।"

राणा तो मन से यही चाहते थे । दो-चार दिनो मे तिलक की रस्म बडी धमधाम से हुई । सबसे पहले युवराज चण्ड ने राज्यभक्ति की शपथ खाकर बालक मोकल का अभ्यर्थना की । चण्ड के इस अद्भुत त्याग को पावन कथा आज भी राजस्थान में बडे गर्व से कहा जाती है । मेवाड राज्य का हरा वल उसी के वशधरो के पास रहता है ।

चित्तौड़ का तीसरा साका

सन् १९६४ मे भारत के विभिन्न प्रदेशो के हम पचास संसद-सदस्य चित्तौड गए थे। वैसे तो सारा गढ़ ही अनूठा है, किन्तु सूरजपोल और किले का भीतरी आगन विशेष रूप से पवित्र है, क्योकि यहाँ तीन वार "जौहर" हुआ, इन्हे देखकर मन मे एक सिहरन-सी हो उठती है।

केरल से हिमाचल प्रदेश तक के ससद-सदस्यो के हमारे दल मे महिला सदस्याएँ भी थी। राजस्थान सरकार ने सुचारु व्यवस्था की दी थी। प्रदेश के पर्यटन विभाग के मन्त्री के अतिरिक्त स्थानीय अधिकारी एव सुदक्ष गाइड भी साथ थे।

चित्तौडगढ अपने आपमे गौरवमय इतिहास की परतो को समेटे हुए है। सूरजपोल उसका मुख्य दरवाजा है। पिछले आठ सौ वर्षो मे इसने बहुत सी लडाइयाँ और तीन प्रसिद्ध "साका" देखे। "परिचय-पत्रिका" हमे पहले से दे दी गई थी, फिर भी गाइडो ने जो कुछ भी वताया, वह काफी लोमहर्षक रहा।

मेवाड के इतिहास मे प्रतापी प्रताप का शौर्य स्वर्णाक्षरो मे रहेगा। आश्चर्य है कि राणा उदय सिंह जैसे विलासी और भीरु को प्रताप सा सिंहपुरुष पुत्र के रूप में प्राप्त हुआ। शायद राणा सागा की आत्मा इसे सहन न कर सकी और सिसौदियो की आन अक्षुण्ण रखने के लिए उन्हे प्रताप बन फिर मे आना पडा।

सन् १५४० मे उदयसिंह चित्तौड के सिंहासन पर बैठे। दिल्लीश्वर हुमायूँ उन दिनो दर-दर की ठोकरे खा रहे थे। राजस्थान इसीलिए मुगल आक्रमण से बचा था। उदयसिंह निश्चिन्त थे, भोग-विलास मे भरपूर डूबे हुए।

पानीपत की दूसरी लडाई मे अकबर ने हेमू को पराजित किया। महत्वाकाक्षी अकबर राज्य-विस्तार मे योजनाबद्ध रूप से लग गया। युद्ध और कूटनीति की दुधारी तलवार से वह सफलता की सीढियो को पार करता गया। आमेर के राजा भारमल की कन्या जोधाबाई से विवाह कर राजपूतो के एक बडे वर्ग की सहानुभूति उसे मिली। बाप्पा रावल के वशज महाराणा उदयसिंह ने समय के सकेत को पहचानने की कोशिश नही की। सन् १५६७ तक अकबर ने संपूर्ण राजस्थान पर विजय प्राप्त कर ली, केवल चित्तौड बच रहा। अकबर मेवाडी तलवार के पानी को समझता था। उसने तैयारियाँ शुरू कर दी और स्वय एक बडी फौज लेकर चित्तौड पर चढ आया। उसकी सेना मे तुर्क-पठानो के अलावा बहुत बडी सख्या मे देशद्रोही राजपूत भी थे।

मेवाडी सामन्तो ने महाराणा को सलाह दी कि शाही फौज का मुकाबला उनके नेतृत्व मे किया जाय। चित्तौड की यही परम्परा रही है, किन्तु सब व्यर्थ गया। उदयसिह चुपचाप अपने

रनिवास के साथ दूर अरावली की पहाडियो मे जा छिपे। मेवाड के लिए यह पहला अवसर था जब उसका नेता ही भाग खडा हुआ।

स्वदेश-भक्त राजपूत वीरो ने निर्णय लिया कि वे भागेगे नही, वल्कि मुगलो का मुकावला डटकर करेंगे। आसपास के सामन्त और सरदार अपनी-अपनी फौज की टुकडियो को लेकर चित्तौडगढ मे आ गये। अकबर की अपार सेना के सामने मुट्ठी भर राजपूत ! मृत्यु का साक्षात् वरण ही कहा जायगा। इतिहास मे ऐसे उदाहरण यूरोप के पूर्वमध्यकालीन क्रूसेड (धर्मयुद्ध) के ही मिलते है जिनमे अपने देश, धर्म एव तीर्थ की रक्षा करने के लिए ईसाइयो ने जान-बूझकर मुस्लिम अत्याचारियो से वीरतापूर्वक जूझते हुए मौत को गले लगाया था।

चित्तौड के इस युद्ध मे जूझने वाले सभी राजपूतो की वीरता अद्भुत थी। शायद ही कोई वीर बचा। इसे चित्तौड का तीसरा "साका" कहा जाता है। विदनौर के सरदार जयमल और वेलवाडा के किशोर सरदार पत्ता ने आक्रमणकारियो के छक्के छुडा दिये। वहुत दिनो तक घेरा डालने पर भी अकबर जब गढ मे प्रवेश नही कर पाया तो उसने अपनी सेना के मुख्य भाग को गढ के प्रमुख द्वार सूरजपोल पर भीषण आक्रमण करने का आदेश दिया। यहाँ चन्द्रावत सरदार साहीदास अपने साथियो की एक छोटी-सी टुकडी के साथ रक्षा का दायित्व सम्हाले था। मुगल सेना ने जबर्दस्त हमला वोल दिया। साहीदास के गिने-चुने साथी कब तक टिकते। एक-एक कर सभी वीरगति को प्राप्त हुए। फिर भी मुगल दुर्ग मे प्रवेश नही कर पाये।

इसी तरह भदारिया का रावत दूदा वेदला, कोंठरी और विर्जाली के सरदार तथा सादडी के झाला—सब अपने साथियो के साथ जूझते हुए वलिदान हो गये। ऐसे सकट के समय चूडावत रानी ने अपने किशोर पुत्र पत्ता और पुत्रवधू के साथ वीरवेश मे दुर्ग-द्वार की रक्षा का भार सम्भाला। दोनो वीरागनाएँ कवच पहने हाथो मे नगी तलवार लिए डट गई। मौत सामने मुस्कुरा रही थी, किन्तु रानी एक मात्र पुत्र को रणसचालन के लिए प्रोत्साहित करती रही। उसके साथ ही अपना जीवन उत्सर्ग करना चाहती थी, न कि जौहर की ज्वाला मे। रानी के युद्ध कौशल को देखकर शत्रु भी चकित रह गए। रणचण्डी की तरह जिधर जाती, नरमुण्ड कट-कट कर गिरते। शत्रुदल लहरो की तरह वढता जाता था। पत्ता अपनी माता और पत्नी के साथ लहरो मे खेलता हुआ इन्ही मे समा गया।

रात का समय था और घोर अधेरा। जयमल दुर्ग के प्राचीरो मे टूटे-ढहे स्थान की मरम्मत रोशनी मे करा रहा था। किले पर उसने आग, पत्थर और गोले वरसा कर मुगल सेना पर कहर ढा दिया था। अकवर की तोपो ने जगह-जगह दीवार मे गड्ढे कर दिये थे। कई बार तो उसने कोशिश की कि सुरग लगाकर फाटक और दीवार उडा दिये जायें, किन्तु असफल रहा। मुगल सेना मेवाडी वीरो की वहादुरी देखकर हैरान थी। वे यही ताज्जुव कर रहे थे कि मुकाबले मे इन्सान रहे है या जिन्नात।

उस रात युवक अकबर भी चिन्तित मन से किले की दीवारो का मुआइना कर जानना चाहता था कि अगले दिन किस भाग पर चोट की जाय। मशाल की रोशनी मे जयमल दिखाई पडा। अकबर अचूक निशानेबाज था। उसने अपनी "सग्राम" वदूक उठायी और जयमल पर निशाना दाग दिया। गोली जाघ मे जा धँसी, वह बुरी तरह घायल हो गया। मशालें बुझा दी गयी। अधेरे मे कहाँ, क्या हुआ—कुछ पता नही चला।

सवेरा हुआ। घमासान युद्ध छिडा। मुगलो मे जोश था कि जयमल वादशाह की गोली का शिकार हुआ। किन्तु जब उन्होने देखा कि वह एक राजपूत के कन्धे पर चढा दोनो हाथो से तलवार चलाता उनकी सेना को काटता हुआ चला जा रहा है तो दग रह गए अकवर के मुँह से निकला "काश ! मेरे साथ भी कोई ऐसा बहादुर होता।"

सूरजपोल आखिर टूटा। मुगल सेना टिड्डी की तरह फाटक के भीतर पिल पडी। वाजी जाती देखकर भी राजपूत हिम्मत हारे नही। बचे हुए मेवाडी वीर केसरिया वाना पहने

शत्रुसेना से जूझते हुए मर मिटे। महिलाएँ बच्चो के साथ जौहर की ज्वाला मे कूदकर सती हो गई।

किले के आँगन मे अब भी आग जल रही थी। धुआँ और गर्द का गुबार उठ रहा था। अकबर ने देखा जयमल की मुट्ठियो मे तलवार कसी है, जाघ से खून बह रहा है, अधखुली आँखो मे चिर शाति। वह देखता ही रह गया। सोचने लगा कि इस जीत मे भी शायद मेरी हार हुई है। मौत का चिराचध गंध आँगन मे बच्चो और महिलाओ की जली-अधजली लाशे और राख के ढेर। वह चुपचाप एक ओर हट गया।

जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर राजपूतो के इस "साका" को भूला नही। जयमल और पत्ता उसके दिल-दिमाग में जम चुके थे। आगरे जाकर उसने अपने किले के मुख्य द्वार पर इन दो वीरो की हाथी पर सवार मूर्तियाँ स्थापित कर दी। शाहजहाँ के समय तक ये वहाँ रही। बाद मे सन् १६६३ मे औरगजेब ने इन्हे हटवा दिया।

तीन सौ वर्ष बाद भी उस दिन हमने उस किले के आगन मे ईंटो के बीच भस्मी चिपकी देखी। हममे से कई लोगो ने उन्हे खुरच कर माथे लगाया। महिलाओ ने कुछ अश रूमाल मे बाँधे, शायद घर जाकर बच्चो के मस्तक पर लगाये। शाम हो आई। सूर्य किले की दीवारो के पीछे चला-गया था। हम भारी मन से अपने शिविर की ओर चले आए।

प्यार की समाधि

बादशाह अकवर एक शाम को अपने दीवान-ए-खास मे मुसाहिबो से घिरा हुआ गमगीन बैठा था। किसी की हिम्मत बात करने की नही हो रही थी। दूसरे लोगो के चले जाने पर बीरवल ने पूछा—"हुजूर क्या कारण है कि आप आज उदास-से लग रहे है ?"

लम्बी साँस लेते हुए बादशाह ने कहा कि "कल मालवा से जो दूत आया है, वह कह रहा था कि माडू का युवक सुल्तान बाजबहादुर अद्भुत वीर और अचूक निशानेबाज है, विद्वान और सगीतज्ञ है। उसके दरबार मे बहुत से शायर और कलाविद् रहते है। हमारे दूत ने यह भी कहा है कि उसकी नई रानी रूपमती अपने समय की सर्वगुणसम्पन्न और खूबसूरत है। चित्तौड की पद्मिनी के रूप की कहानी रूपमती के रूप के सामने फीकी हो गयी है। हम इतनी बडी सल्तनत के बादशाह है; परन्तु हमारे हरम मे ऐसी सुन्दरी आज तक नही आयी।"

बीरबल ने कहा—"हुजूर, बन्दे की गुस्ताखी माफ हो। बात यह है कि आप औरतो को हमेशा पैर की जूती समझते रहे है, जब चाहा काम मे लिया फिर सडक पर फेक दिया, जबकि सुलतान बाजबहादुर उनकी इज्जत करता है। रूपमती को उसने बडी तपस्या के बाद पाया है। कई बार भेष बदलकर उसके गाँव सारगपुर जाता रहा, वहाँ रेवाशकर के मन्दिर मे तन्मय होकर उसके भजन सुनता रहा। दो-एक बार तो रूपमती उसे दुत्कार भी दिया परन्तु सुलतान ने धैर्य नही खोया।"

रूपमती और बाजबहादुर के मिलन की भी एक अनोखी घटना है। एक शाम को शिकार मे भटकता हुआ वह सारगपुर मे रेवाशकर के मन्दिर के पास जा पहुँचा। वहाँ सगीत की अद्भुत तान आ रही थी। स्वय कलाबिद् तो था ही, वह भी सुर मे सुर मिलाकर गाने लगा। भजन गायिका तन्मय होकर उसके आलाप "अँखिया हरिदर्शन की प्यासी, प्रभु मिलन की प्यासी' सुनती रही।

आखिर एक दिन किशोरी ने पूछा—"युवक तुम कौन हो ? हमारे गाँव के तो नही हो, फिर हमारी गढी के मन्दिर मे बार-बार क्यो आते हो ? अगर मेरे पिताजी को पता चल जायगा तो तुम्हारी जान की खैर नही है।"

"सुन्दरी, मै एक भटका हुआ इन्सान हूँ, यद्यपि मैं मुसलमान हूँ परन्तु हिन्दू-मुस्लिम दोनो मजहबो का आदर करता हूँ। तुम्हारा यह भजन जब से सुना है, मेरे पैर अपने-आप मुझको यहाँ ले आते है। ठाकुर साहब के गुस्से के बारे मे मैने सुन रखा है, परन्तु प्रेम चाहे सगीत के प्रति हो या, सगीतज्ञा के प्रति, वह बाधा नही मानता। न चाहते हुए भी खतरा उठा लेता है। परवाने को यह परवाह नही रहती कि वह शमा के पास जाकर जल-भन

जायगा।"

रूपमती ने अपने साथ की युवती से कहा कि अजीब वहशी से पाला पडा है। इसे न पिताजी का डर है, न अपने मजहबी मौलवियो का। यहाँ मन्दिर में बैठकर भजन गाता रहता है।

इसके बाद युवक को एक प्रकार से छूट मिल गयी। वह नित्य प्रति नया भजन बनाकर मन्दिर की सीढियो पर बैठकर गाने लगा।

एक बार कई दिनो तक वह युवक नही आया। रूपमती मन्दिर मे उसकी प्रतीक्षा करती रही। पता-ठिकाना नही जानती थी वर्ना किसी को बुलाने के लिए भेजती।

एक शाम को उसके पिता घायल अवस्था मे गढी मे आये। सयोग से साथ मे वही युवक था।

कहने लगे—"बेटी आज इस युवक की बहादुरी के कारण तुम मुझे जिन्दा देख रही हो, वर्ना अब तक मैं बाघ के पेट मे जा चुका होता। इसने एक प्रकार से बिना हथियार के ही उस नरभक्षी को मार गिराया। मेहमान हारा-थका है, इसकी अच्छी तरह से खातिरदारी करो

ठाकुर की परिचर्या के लिए वैद्य-हकीमो ने घेर लिया। रूप और युवक को बात करने के लिए एकान्त मिल गया।

ऐसे मे शिकवा शिकायत तो होता ही है, परन्तु सुलतान भला उस भोली किशोरी को कैसे समझाता कि वह सियासी मामलो में उलझ गया था। बादशाह अकबर के दूत दो-तीन बार आ कर धमकी दे गये थे कि वह आगरे के मातहत मालवे की सूबेदारी मजूर कर ले, वर्ना मुगलिया फौज उसे नेश्त-नाबूद कर देगी।

तीन-चार दिन बाद युवक फिर सारगपुर आया। साथ मे प्रसिद्ध सगीतज्ञ रामचन्द्रजी थे। उन्होंने कहा—"ठाकुर साहब, आपकी पुत्री की बडाई हुजूर सुलतान के यहाँ पहुँची है। वे उसे अपनी महारानी बनाना चाहते है, उसका दर्जा दूसरी सब बगमो से ऊँचा रहेगा। सुलतान की दरियादिली तथा बहादुरी के बारे मे तो आप जानते ही है, वैसे भी आप की तीन पीढी उनके बुजुर्गों के मातहत रहती आयी है। आपकी पुत्री को अपना धर्म नही बदलना होगा, उसकी पूजा-पाठ के लिए वही माडू मे भगवान रेवाशकर का मन्दिर बना दिया जायगा।

उस समय तक कई-एक राजपूत लडकियो का विवाह मुसलमान नवावो और शाहजादो से हो चुका था। आमेर के राजा बिहारीमल की पुत्री जोधा बाई बादशाह अकबर की बडी बेगम थी।

यद्यपि ठाकुर के लिए यह रिश्ता बहुत ऊँचा था। सुलतान के गुणो के बारे मे भी वह जानता था, परन्तु फिर भी मन मे ऊहापोह तो थी ही।

कहने लगा—"यद्यपि हम साधारण जागीरदार है और सुलतान माडू जैसी बडी सल्तनत का मालिक है। फिर भी हम आमेर की तरह डोला नहीं भेजते। यदि सुलतान को मेरी रूप से विवाह करना हो तो उन्हे स्वय आकर याचना करनी होगी, हमारे यहा की यही रीति है। मुझे रूप की भी सम्मति लेनी होगी, यदि वह राजी नही होगी तो यह रिश्ता नही होगा, चाहे जो अजाम हो।"

युवक ने आदाब करते हुए कहा—"वा साहब, स्वय बाजबहादुर ही आप के पास याचना के लिए आया है। आपकी मर्जी है बख्शे या इन्कार कर दे। रूप हिन्दू है—सदा हिन्दू रहेगी। यही नही अगर आप का जिद्द हो तो मै खुद मजहब बदलकर हिन्दू हो जाऊँगा। मगर उस हालत मे मेरी फौजो मे बलवा हो जायगा, मालवा सल्तनत खत्म हो जायगी। आप रूप से पूछ ले, उसकी रजामदी से ही रिश्ता होगा, नही तो हमे वापस चले जायेंगे, किसी प्रकार का जोर-जबर्दस्ती का तो सवाल ही नही है"

पास के कमरे मे बैठी रूपमती सारी बाते सुन रही थी। ठाकुर जब उससे पूछने गये तो गले से लगाकर फफक कर रोने लगी। पिता, पुत्री की मशा समझ गये। रिश्ता मजूर कर लिया।

वहुत धूम-धाम से रूपमती का विवाह माडू के सुलतान के साथ हिन्दू-रीति से हो गया।

माडू के बडे सरोवर के किनारे भगवान शकर का सुन्दर मन्दिर बना और महारानी के रहने के लिए कलापूर्ण विशाल गगनचुम्बी महल।

दोनो प्रेमियो के दिन प्यार और आराम के साथ गुजरने लगे। रानी राजकाज मे भी सलाह देती रहती, शिकार मे तो हमेशा साथ रहती ही। वह स्वय अच्छी शिकारी थी। मन्दिर मे रोज पूजा करने जाती तो कभी-कदाच मस्जिद मे भी जाती रहती। वहाँ फकीरो और भिखारियो को खुले हाथ से दान देती। हिन्दू-मुसलमान दोनो उसकी इज्जत करते थे। सुलतान राजकाज भूलकर रात-दिन उसके महल मे रहने लगा। रानी आगाह करती कि राजा का पहला कर्तव्य है अपने राज्य की देखरेख करना, उसके बाद दूसरी बाते।

इधर अम्मा माहम अगा ने रूपमती के रूप और गुणो का बखान करके बादशाह को माडू पर चढाई करने को तैयार कर लिया। अकबर इसके पहले चितौड से निपट लेना चाहता था, परन्तु माडू की नई महारानी को अपने हरम मे लाने की उस कामुक के मन मे तीव्र लालसा जाग उठी।

आगरे का दूत खत लेकर माडू पहुँचा। इस बार मालवा के साथ रूपमती की भी माँग की गयी थी। सोचने के लिए दो दिनो का समय दिया गया था। आगरे के मातहत मालवे की सूबेदारी बाजबहादुर को देने को लिखा था।

खत की इबादत सुनकर सुलतान का चेहरा गुस्से से लाल हो गया—वजीर और सेनापति की तरफ देखने लगे। वृद्ध वजीर उनके पिता के समय का था, वहुत ऊँची-नीची देख चुका था। आने वाले खतरे से वाकिफ था। कहने लगा—"हुजूर मुगलिया सल्तनत काबुल से लेकर ग्वालियर तक फैली हुई है। वेइन्तहा ताकत है उनके पास। हमारे पन्द्रह हजार सैनिक यद्यपि बहादुरी मे किसी से कम नही है, फिर भी मुगलो की सवा लाख फौज से केवल तीर-कमान और तलवारो से कैसे लड सकेंगे, जबकि उनके पास बडी-बडी तोपे और वेहतरीन बन्दूके है। परन्तु आप महारानी को पूछ ले, खत मे एक शर्त उनके लिए भी है।"

रानी बोली—"मेरे सरताज, अगर मेरी माँग होती तो मै जहर खाकर अपने को खत्म कर लेती, परन्तु यहाँ तो आपको सुलतान मिटाकर सुवेदार बनाने की भी माँग की है। वैसे मालवा और मै दोनो आपके है, जो चाहे सो करे। दूसरे दिन दूतो के सामने खत को जला दिया गया, उन्हे सही सलामत सरहद पर छोड दिया।

आगरे मे मालवा पर चढाई की तैयारी होने लगी। उस बडी फौज का आला सेनापति बनाया गया माहम अगा के नालायक और ऐय्याश बेटे आदम खाँ को। वह राजधानी की मौज-शौक छोडकर मालवी वीरो से लडने का खतरा मोल लेना नही चाहता था, परन्तु अगा ने जब रूपकुमारी की सुदरता का बयान किया तो राजी हो गया।

बादशाह आदम खाँ की कमजोरी जानता था, इसलिए अपने विश्वस्त सेनापति पीर मोहम्मद को उसके साथ भेजा और पोशीदा तौर पर हिदायत कर दी कि बाइज्जत महारानी को आगरे लाया जाय।

मुगलो की बडी फौज मे सैकडो हाथी, हजारो घोडे, बीसियो बडी तोपे तथा ४० हजार सिपाही थे। इधर मालवा की सेना की कुल सख्या पन्द्रह हजार थी। मालवी, पठान और हिन्दू दोनो जी-जान से लडे। तीन दिनो तक दुश्मनो के हजारो आदमियो को मौत के घाट उतार दिया। घायल हो जाने के बावजूद खुद सुलतान चारो तरफ घूम-घूमकर अपने थके माँदे

सिपाहियों को धीरज बँधाता रहा। परन्तु दुश्मनो की फौज सख्या मे तिगुनी थी, बेहतरीन शस्त्रो से लैस थी, नयी कुमुक पहुँचती जा रही थी। अन्त मे सारे मालवी वीर मारे गये या घायल हो गये। माँडू के किले पर आदमखाँ का कब्जा हो गया। सुलतान सारगपुर मे लड रहा था। इधर किले की रक्षा का भार रूपमती पर था। वह घायल अवस्था मे दुश्मनो द्वारा गिरफ्तार कर ली गयी।

कुछ दिनों बाद जब महारानी की बेहोशी मिटी तो उसने अपने को महल के एक सजे हुए कक्ष मे पाया। इर्द-गिर्द तीन-चार अजनबी आदमी बैठे थे। उनमे से एक ने कहा—हकीम साहब, हमारी प्यारी मलका को तन्दुरुस्त होने मे कितने दिन और लगेंगे। इनके बिना हमे करार नही है।

पास के दूसरे आदमी ने कहा कि जनाब आदम खाँ, यह आप क्या कह रहे है ? यह बादशाह सल्तनत की अमानत है। मुझे शाहशाह का हुक्म है कि इन्हे बाइज्जत उनके हरम मे पहुँचा दिया जाय।

मुल्ला पीर माहम्मद ! तुम्हे अपनी औकात समझकर बात करनी चाहिए। आखिर यहाँ तुम हमारे मातहत हो। फौज के सिपहसालार हम है। यहाँ की दौलत पर और हूरो पर पहला हक हमारा है।" आदमखाँ ने कहा।

रूपमती फिर बेहोश हो गयी। वे सब चले गये। दूसरे दिन सुलतान की बड़ी बेगम खुलाजान उसके पास आयीं। वह रूपमती से पहले सुलतान की सबसे चहेती बेगम थी। कहने लगी—"बहिन अब जिद्द करने से कोई फायदा नही है। सुलतान पिछले पाँच दिनो से गायब है। पता नही जिन्दा है या मर गये। हमारे ज्यादातर फौजी मारे गये या कैद हो गये है। मेरी राय मे तुम्हे भी मुगलो के आला सेनापति आदम खाँ की बात मान लेनी चाहिये। फिर हम दोनो साथ रहकर हँसी-खुशी मे वक्त गुजार देंगी, जो बीत गया उसे भुला देना चाहिए।

खुला बेगम—यह मैं क्या सुन रही हूँ जिनके साथ जिन्दगी के बेहतरीन दिन गुजारे, जिनको हम तन-मन का मालिक समझती रही—आज बुरा वक्त आने पर उनको धोखा देकर दुश्मन के हरम मे दाखिल होने को तुम कह रही हो। यह जिस्म मिट्टी से बना है—एक दिन मिट्टी मे मिल जायगा, फिर थोडे दिनो के आराम के लिए इतनी बेइज्जत और छिछलेदारी किसलिए है ?"

रूपमती जब स्वस्थ होकर चलने-फिरने लगी तो एक दिन रेवाशकर के मदिर मे गयी—देखा मूर्ति नदारद है—मन्दिर टूट चुका है, उसकी जगह मस्जिद बन गयी है। फिर भी भगवान को सर्वव्यापी समझकर अपना पुराना भजन "अखियाँ हरि दर्शन की प्यासी" गाने लगी, जिसे बहुत वर्षो पहले युवक सुलतान के साथ सारगपुर के मदिर मे गाती थी।

दूसरे दिन रानी रूपमती ने सेनापति आदमखाँ को अपने महल मे बुलाया था। उसकी खुशी का पारावार नही था। बेहतरीन अत्तर-फुलेल लगाये, हाथ मे फूलो का गजरा लिए पहुँचा, देखा रानी चादर ओढे पलँग पर लेटी हुई है।

साथ की दासियो को विदा करके एक किनारे बैठ गया। कहने लगा— मलका शायद हमसे नाराज है। परन्तु मै अल्लाह की कसम खाकर कहता हूँ कि आपसे निकाह करके दूसरी सब बेगमो को आपकी खिदमत मे रख दूँगा।"

जब उसने चद्दर हटायी तो देखा कि रूपमती का चेहरा जहर से काला पड गया है। सकते मे आ गया, उस कामुक के लिए यह नयी बात थी कि इतनी मौज-शौक का लोभ छोडकर कोई खुदकुशी भी कर सकता है। पास मे एक पत्र पडा था, खोलकर पढने लगा।

आदम खाँ,

कहते है समय बडा बलवान होता है। हम सुखी थे, परमसुखी परन्तु तुमने हमारी जिन्दगी में बूरे ग्रह की तरह आकर हमे नेश्त-नाबूद कर दिया। हम हार गये, हमारा सितारा

डूब गया । परन्तु इसका यह मतलब नही कि मेरे जिस्म पर भी तुम्हारा हक हो गया । मेरी जिन्दगी तो सुलतान के साथ बँधी हुई थी, पता नही वे इस धरती पर है या नही । मै खुला बेगम की तरह उनके साथ दगा नही करूँगी । जहर खाकर मर रही हूँ । परन्तु यदि मै मन-वचन-कर्म से पतिव्रता हूँ तो अन्तिम समय मे श्राप देती हूँ कि तुम भी जल्द ही कुत्ते की मौत मरोगे । (यह ऐतिहासिक तथ्य है कि आगरा लौटने पर जब बादशाह ने सारी बाते सुनी तो आदमखाँ की बदतमीजी पर गुस्सा होकर उसे किले की दीवार से ढकेलकर मार दिया) ।

दूसरे दिन सध्या के समय दो थके हारे घायल मालवी नागरिको ने सारगपुर के रेवाशकर के मदिर मे रात्रि मे विश्राम लिया। थोडी देर बाद उन्हे एक कोने से धीमे स्वर मे एक भजन सुनायी दिया—"अखियाँ हरिदर्शन की प्यासी, प्रभु मिलन की प्यासी ।" आवाज पहचानी हुई सी लगी । चकमक से रोशनी करने पर देखा कि एक घायल व्यक्ति मैले-कुचैले फटे कपडो मे धीरे-धीरे तन्मय होकर भजन गा रहा था—

"हुजूर—सुलतान आज इस हालत मे"

"रायचन्द जी आप अचानक भले मिले, कहिये मेरी रूपमती की क्या खबर है ।

"हजूर महारानी पतिव्रता थी" अन्तिम समय तक उसने अपने फर्ज को निभाया । आदम जब उनके महल मे गया तो उसे महारानी की जगह उनकी लाश मिली । उन्होने तेज जहर खाकर जिन्दगी का खात्मा कर लिया था ।

"रायचन्दजी, जब मेरी रूप मर गयी तब फिर मै किसके लिए जिन्दा रहूँ ?" पास मे पडे एक बडे पत्थर को उठाकर जोर से सर पर दे मारा । लहू की धार बह निकली । थका-हारा शरीर मृत होकर एक तरफ लुढक गया ।

पति-पत्नी दोनो की समाधि आज भी सारगपुर मे मौजूद है । कहते है—वहाँ पर अगर कोई पुकारता है तो "बाज" तो प्रतिध्वनि होती है—"रूप" ।

तानसेन और ताना-रीरी

बहुत से प्रसिद्ध व्यक्तियो के बारे मे तरह-तरह की अटकले लगाई जाती है। सन्त कबीर को हिन्दू कहा जाता है और मुसलमान भी। इसी प्रकार सगीत-सम्राट तानसेन को कुछ लोग मुसलमान बताते है तो कई हिन्दू। परन्तु इतिहास के अनुशीलन पर अब जो तथ्य प्रकाश मे आये है, उनके आधार पर सिद्ध होता है कि तानसेन नागर ब्राह्मण थे। उनके पूर्वज गुजरात से बेहट (ग्वालियर) की ओर आकर बस गये थे।

वे अकबर के नवरत्नो मे थे और अकबर प्यार से उन्हे मिया तानसेन कहा करते। शायद इसी 'मिया' शब्द के कारण पडित तानसेन के सम्बन्ध में भ्रम की शृंखला बढती गयी। वे अद्‌भुत प्रतिभासम्पन्न थे, स्वर मधुर था—हृदय रसपूरित। नागर कुल मे जन्म लेने के कारण सात्विकता के सस्कार जन्मजात थे। घर मे भक्तिभाव, भजन एव कीर्त्तन आदि का वातावरण होने के कारण उनकी प्रतिभा को मुखरित होने का अवसर मिला। पिता के निर्देश से वृन्दावन धाम गये और वही स्वामी हरिदास के पास रहकर संगीत साधना की। उन्ही के आशीर्वाद से तानसेन को दीपक राग के स्वरो के सही सधान का ज्ञान एव अनुभव प्राप्त हुआ।

सगीत में निष्णात होने पर उन्हे बाधवगढ़नरेश राजा रामचन्द्र ने अपने दरबार मे बुला लिया। इन्ही दिनो उन्होने विभिन्न राग-रागिनियो की काव्य-रचना की। कबीर, सूर, तुलसी के भजनो की तरह उनकी रचनाएँ भी शास्त्रीय सगीत के क्षेत्र मे घरो, मदिरो और दरबारो तक प्रसिद्धि पाने लगी।

सम्राट अकबर ने तानसेन के बारे मे सुना। मत्रो से यज्ञाग्नि प्रज्वलित करने की बात हिन्दुओ के लिए भले ही अविश्वनीय न हो, किन्तु मुसलमान के लिए एकाएक काबिले एतबार नही। शाहंशाह को जब दीपक राग की खूबियो का पता चला तो वह तानसेन को अपने दरबार मे रखने के लिए आकुल हो उठे। उन्होने सेनापति मिर्ज़ा अजीज को बाधवगढ भेजकर तानसेन को आगरा बुलवा लिया। राजा रामचन्द्र को मनसबदारी और खिलअते बख्शी गयी।

तानसेन आगरा मे रहने लगे। बादशाह के साथ शिकार या सैर पर जाते, वही उनकी फरमायश पर सगीत सुनाते। धीरे-धीरे दोनो आपस मे एक दूसरे के नजदीक होते गए। इसी बीच दरबारियो ने बादशाह से गुज़ारिश की कि उन्हे भी तानसेन का सगीत सुनने का मौका दिया जाय। बादशाह ने मजूरी दे दी।

दरबार खचाखच भरा था। कुछ तानसेन के हुनर और इल्म की गहराई परखना चाहते थे तो कई ऐसे भी थे जो दोष निकालने के लिए बेताब हो रहे थे। अकबर ने मुस्कुराकर कहा—"मिर्जा आज हम ध्रुपद सुनना चाहेगे।"

तानसेन ने सर झुकाया। साजिन्दो की ओर सकेत किया जिन्हें वे अपने साथ बाधवगढ से ले आये थे। तानपूरे के लहराते राग मे उनका कठस्वर मृदग की ताल पर गूँजने लगा। बादशाह और दरबारी, सभी तन्मय हो उठे। लगभग तीन घटे तक सुधबुध खोये से रहे। गायन की समाप्ति पर सारा दरबार एक स्वर मे कह उठा—"आफरीन, बेहतरीन, लाजवाब!" तानसेन को दरबार के नवरत्नो मे शामिल किया गया और खिलअते बख्शी गई।

चित्तौड पर फतह हासिल हो चुका था। जशन मनाए जा रहे थे। मगर अकबर का दिल हल्दीघाटी पर मचाई गई खूरेज़ी से बेचैन था। उसकी आँखो के सामने चित्तौड के साके के धुएँ के अम्बार उठने लगते, दिल मे अधेरा सा छाया रहता। भयानक सूनापन! अपनी परेशानी किसी से जाहिर भी कर नही पाता। हँसी-दिल्लगी, नाच-गाने, हरम की खूबसूरत बेगमे, अफीम, शराब—सब कुछ नाकाम साबित हुए। एकाएक उसे ख्याल आया, मिया तानसेन! यह खौफनाक अधेरा वही हटा सकते है। फौरन तानसेन को तलब किया गया।

शाम हो रही थी। बादशाह अपने खास-महल मे तकिए के सहारे बैठे क्षितिज पर बढते अधेरे को देख रहे थे। तानसेन हाजिर हुए। बादशाह ने कहा—"मिया तानसेन, माबदौलत को बेहद परेशानी है। आँखो के सामने और दिल मे एक अधेरा महसूस हो रहा है। हमने सुना है, दीपक राग मे अधेरा दूर करने की ताकत है। तुम्हे इसका इल्म और हुनर हासिल है। सुनाओ, ताकि इस मनहूस अधेरे से निजात पा सकूँ। आज इसीलिए शमादानो मे रोशनी की इजाज़त नही दी गयी है। गाओ मिया, ऐसा गाओ कि गम व खौफ का अधेरा काफूर हो और सारा आलम रोशन हो जाये।"

तानसेन स्तब्ध रह गये। दीपक राग छेडने का कितना भयकर परिणाम हो सकता है इसे सोचकर उनका मन काँप उठा किन्तु शाही हुक्म को टालना सभव नही था। सरस्वती और गुरु का स्मरण कर सर्वप्रथम वैदिक मत्रो के उच्चारण से अग्नि का आवाहन कर दीपक राग मे गाना शुरू किया—

"निसदिन सिलगत रहत महान अग्नि
ओकार पृथिवी पाताल आकाश तिनके बसन
दरशन प्रकाश आधार।
सकल ज्योति अग्नि ज्वालामय ओकार
तू विचार आगम निगम
दूरि करौ सकल अधकार।
कहै मिया तानसेन सुन गुनी अकब्बर साहि
धरनि उद्धारकरन मगलदीप मान ज्ञान
ब्रह्मावतार शिव ओकार ॥

मृदग निनाद के साथ ओकार की ध्वनि बारम्बार गूँज उठी। ऐसा लगा मानो दिशाएँ तरगित हो उठी हो। तानसेन स्वय आँखे मूँदे हुए ओकार ध्वनि पर झूम उठते।

एकाएक बिजली सी कौंधी। शमादान जल उठे। खास महल जगमगा उठा। बादशाह ने कहा, "हमने दीपक राग की करामात के बारे मे सिर्फ सुना था, आज चश्मदीद हुआ। तस्कीन के साथ सुकून भी हासिल हुआ। तुम्हारे इस हुनर की कीमत चुकाई नही जा सकती, फिर भी हम तुम्हे दो लाख अशर्फी भेट करते है।"

अनुकूल परिस्थिति न होने पर दीपक राग गाने का वही परिणाम हुआ जिसका अन्देशा था। तानसेन के तनबदन मे जलन होने लगी। मेघमल्हार राग ही इसे शान्त कर सकता था किन्तु गायक के लिए इसका स्वय गाना नही, बल्कि सुनना जरूरी था। तानसेन ने बादशाह

को अपनी समस्या बतायी और उनसे आदेश लेकर सोमनाथ महादेव के दर्शन के लिए सौराष्ट्र चल पडे ।

मार्ग मे वडनगर के शिवमन्दिर मे ठहरे । पूर्वजो की भूमि मे आकर उन्हे मानसिक शान्ति का अनुभव हुआ । भादो बीत रहा था, फिर भी वर्षा नही हुई थी । धरती तप रही थी, अनावृष्टि और अकाल मे त्राहि-त्राहि मची हुई थी ।

परम्परा के अनुसार महिलाएँ भजन-कीर्तन करती हुई भगवान से बर्षा के लिए प्रार्थना कर रही थी । सहसा तानसेन को लगा उनके देह की तपन धीरे-धीरे कम हो रही है मेघ-मल्हार मे उन्होने अपनी ही रचना के शब्द सुने ।

नाचति चपल चचल गति
ध्वनि मृदग घन भेदत जात,
कोकिल अलापत, पपैया आस देत
सुघर सुर मोर ध्यावत,
दादुर तार धार धुनि सुनियतु
रुनझुन धुनि पर नाचत
तानसेन प्रभु शिव सोमनाथ
रस पीयूष सरसावत ॥

अपूर्व माधुर्य था, स्वरो मे । सचमुच मानो कानो मे अमृत रस पडने लगा । शरीर की जलन मिट गयी । वीणा, मृदग और स्वर की दुनिया मे वे आत्म-विस्मृत से हो गये ।

थोडी देर वाद आकाश मे घटाएँ उमंड आई । जोरो की वर्षा होने लगी । तानसेन का तनमन स्निग्ध हो उठा । उधर सूखे तालाव भरने लगे । धरती की प्यास मिटी, जनता मे हर्षोल्लास छा गया ।

तानसेन ने उसी मन्दिर मे रात वितायी । एक ही प्रश्न उनके मन मे वरावर उठ रहा था कि इतने शुद्ध रूप से मेघ-मल्हार गाने वाली वे ललनाएँ कौन थी । पुजारी से पता चला कि स्थानीय जमीदार नीलकण्ठ राय की वे दोनो पुत्रवधुएँ है और भक्त नरसिंह मेहता की पुत्री नानीवाई की दौहित्री । नाम था, ताना और रीरी ।

वडनगर मे वात छिपी नही रही कि मन्दिर मे तानसेन ठहरे हुए है । राय नीलकण्ठ स्वय उनसे मिलने आये । पता चला वे भी सगीत-प्रेमी है और गुरुभाई भी । भजन-कीर्तन का विशेष आयोजन किया गया। तानसेन सहर्ष सम्मिलित हुए। ताना-रीरी के गायन के उपरान्त उन्होने भगवान हाटकेश्वर पर स्वरचित एक भजन सुनाया । लोग भाव-विभोर हो उठे ।

तानसेन आगरा लौटे । इस घटना की चर्चा उन्होने किसी से नही की, क्योकि वे जानते थे ताना-रीरी के सौन्दर्य और गुण की विशेपता की बाते आगरे मे क्या परिणाम उपस्थित कर सकती है । फिर भी, उनके पहुँचने से पहले ही अकबर को पूरी जानकारी मिल चुकी थी । नीलकण्ठ राय के किसी द्वेषी ने ताना-रीरी के सौन्दर्य और गायन कला की बाते वढा-चढ़ा कर वादशाह को लिख भेजी थी । बादशाह को तो ऐसे मौको की तलाश रहती ही थी । फौरन एक वरिष्ठ सरदार को वडनगर भेजा और जैसे भी हो दोनो बहिनो को हाजिर करने का हुक्म दिया ।

वडनगर पहुँचकर सरदार ने नीलकठ राय को शाही हुक्म सुनाया । चारो ओर हाहाकार मच गया । ताना और रीरी ने भी स्थिति की गम्भीरता को समझा कि वादशाह का इरादा केवल मेघ-मल्हार सुनना नही, वल्कि कुछ और भी है ।

गाँव के वडे-बूढे और विशिष्ट जनो की सभा बुलायी गयी । अकबर से टकराने का तो सवाल ही पैदा नही होता था । दोनो वहनो को आगरा भेज दिया जाय या सारे गाँव को

मटियामेट होने दिया जाय। ताना और रीरी ने अपने श्वसुर और दादा को विश्वास दिलाया कि उन्हे आगरा जाने दिया जाय। कुल की मर्यादा और सतीत्व को वे अक्षुण्ण बनाये रखेगी। भगवान हाटकेश्वर उनकी रक्षा करेगे।

चुने हुए दरबारियो और नवरत्नो के साथ दीवानेखास में गाने की महफिल का इन्तजाम किया गया। तानसेन के विशेष आग्रह पर दोनो बहने पर्दे के पीछे बेगम और शहजादियो के बीच बैठी। बादशाह ने मेघ-मल्हार गाने का हुक्म देते हुए मुस्कुरा कर कहा, "हम देखना चाहेगे कि कार्तिक के महीने मे बारिश मुमकिन है या नही।"

इधर साजिन्दो ने सुर सम्हाला, उधर पर्दे के पीछे से उदासी भरी स्वर लहरी फूट निकली। ऐसा लग रहा था जीवन का समस्त रस शतधार होकर चतुर्दिक् फैल रहा है। बारिश कब शुरू हुई, इसका किसी को आभास तक न हो पाया। स्वर लहरी थम चुकी थी। पर्दे के पीछे फर्श पर पानी बढने लगा। बेगम और शहजादियाँ उठकर अपने-अपने महलो मे जाने लगी। उन्होने देखा कि खून के सैलाब मे दोनो बहने एक दूसरे का हाथ पकडे चिरनिद्रा मे शान्त भाव से सो रही है। उनके वक्षस्थल से रक्त की धारा बह रही थी, पास ही दो कटारे पडी थी।
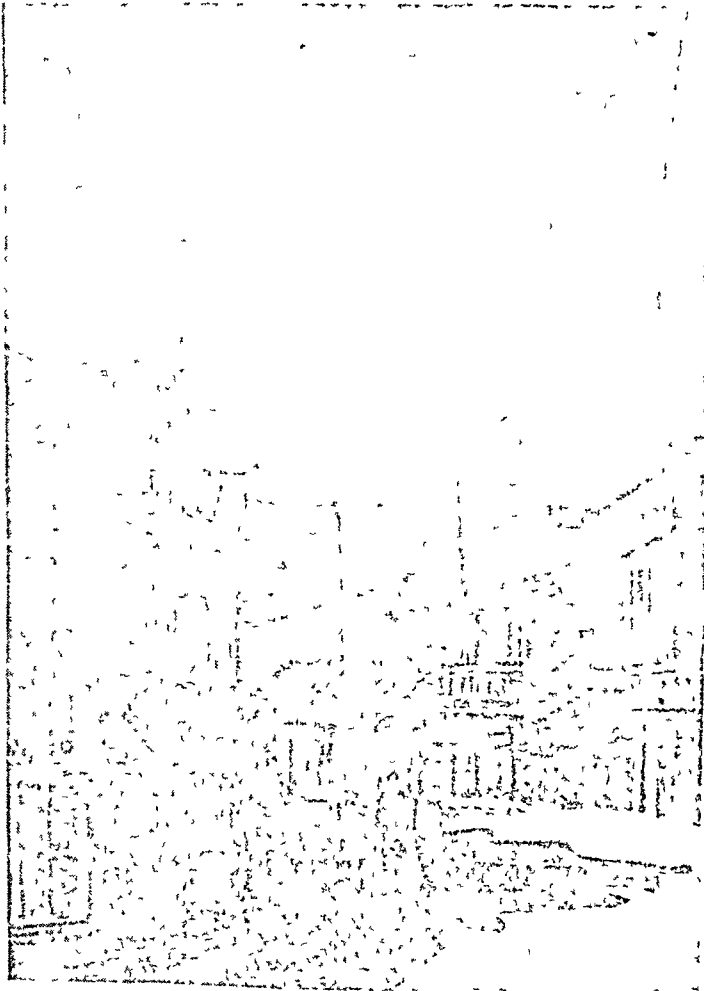
जित्यो जी टोडरमल वीर

लगभग चार सौ वर्ष पहले की बात है। प्रतापी सम्राट अकबर का शासन था। उसके मन्त्रिमण्डल मे नौ मन्त्री थे जिन्हे 'नवरत्न' कहा जाता था। उसमे टोडरमल का विशेष आदरपूर्ण स्थान था। वे वित्त और माल जैसे महत्त्वपूर्ण विभागो को सम्हालते थे। राज्य के काम से उन्हे प्राय ही पजाब, सिंध और काश्मीर यात्राएँ करनी पडती।

आगरा से २०० मील दूर राजस्थान की सीमा पर नारनौल एक कस्बा है, वहाँ अग्रवाल समाज का एक प्रतिष्ठित और धनी परिवार था। टोडरमल का इस परिवार से मैत्री का सम्बन्ध था वे आते-जाते उनके यहाँ एक-दो दिन आराम करने के लिए ठहर जाते थे। ठहर जाते थे।

एक बार, दो-तीन वर्ष तक वे नारनौल नही आए। इस बीच मे उस परिवार पर सकट के बादल छा गए। सेठ का देहान्त हो गया, जो धन-सम्पत्ति थी, वह मुनीमो की बदइन्तजामी से समाप्त हो गई। घर मे रह गई, विधवा सेठानी और १५ वर्ष का किशोर पुत्र।

उन दिनो बहुत छोटी उम्र मे बच्चो के सगाई-विवाह हो जाते थे। पुत्र की सगाई सेठजी के रहते ही पास के कस्बे मे एक सम्पन्न स्वजातीय घराने मे हो गई थी। अब वह विवाह के योग्य हो गया। लडकी वाले उनकी नाजुक हालत को जान चुके थे। परन्तु उन दिनो बिना पर्याप्त कारण के सम्बन्ध नही छोडे जाते थे। कभी-कभी तो सम्बन्ध टूट जाने पर वरपक्ष के लोग अपने भाई-बन्धु और मित्रो के साथ हथियारो से सुसज्जित होकर बारात ले जाते और युद्ध मे जीत करके बहू को ले आते।

कन्या पक्षवालो ने सुपारियो की एक कोथली नारनौल भेजी और लिखा कि विवाह का लगन फाल्गुन मे है। आपके और हमारे घराने की इज्जत का ध्यान रखते हुए आप कम से कम इन सुपारियो जितने प्रतिष्ठित बाराती अवश्य लावे। हमारे यहाँ हमेशा वर हाथी के हौदे पर आता है इसलिए कम से कम दो-तीन हाथी भी बारात मे रहने जरूरी है।

सेठानी समझदार महिला थी, वह उन लोगो की चालाकी समझ गई। सैकडों व्यक्तियो की बारात के लिए उसी अनुपात मे रथ, घोडे और ऊँट चाहिए। आने-जाने के समय उन सबके लिए भोजन और पशुओ के लिए दाना-चारा। वह सब अब उनके बस की बात नही थी। परिवार के स्वजन और मित्रो से सलाह की, परन्तु कोई उपाय नजर नही आया।

सेठानी कई दिनो से इसी चिन्ता मे थी कि अचानक पजाब जाते हुए टोडरमल उनके यहाँ ठहरे। उन दिनो उत्तर भारत मे पर्दाप्रथा थी, परन्तु सेठानी उनकी मुँह-बोली बहिन थी

इसलिए उनसे बोलती और पर्दा नही करती थी। टोडरमल ने महसूस किया कि बहिन बहुत उदास है। कारण पूछने पर वह कुछ बोल नही पायी और सुबक-सुबक कर रोने लगी। थोडी देर मे जब आश्वस्त हुई तब बताया कि लडकी वाले बहुत धनाढ्य है, वे अब सम्बन्ध तोडना चाहते है। सीधे तौर पर कहने से उन्हे अपनी बदनामी का डर है, इसलिए ऐसी शर्ते रख रहे हैं—जिससे हमलोग स्वय सगाई तोड दे। आज हमारी ऐसी दयनीय दशा हो गयी है कि हमे अपनी माँग (वाग्दत्ता) को छोडना पड रहा है।

सारी बाते सुनकर टोडरमल ने कहा कि आप चिन्ता मत करिये—जो कुछ जवाब देना होगा, मैं आपकी तरफ से भिजवा दूँगा। कुछ दिनो बाद कन्या पक्ष वालो के यहाँ मूँगो से भरी हुई एक कोथली लिए कासिद पहुँचा। पत्र मे यथायोग्य के बाद लिखा था कि विवाह की तिथि हमे मजूर है, परन्तु आपकी और हमारी इज्जत का ख्याल करके हम इतने बाराती लाना चाहते है, जितने मूग इस कोथली मे है। स्वर्गीय सेठ जी का जयपुर से लेकर आगरा तक बहुत लोगो से स्नेह-सम्पर्क था, भला इकलौते पुत्र के विवाहोत्सव पर उन सबको हम कैसे भूल सकते है ? आप खातिर जमा रखे, बारात मे बडे से बडे लोग आयेगे। हम लोग बारात लेकर फलॉ दिन पहुँच रहे है, आप सारी तैयारी रखियेगा।

पत्र-पढ़कर उन लोगो ने मूँग गिने, जिनकी सख्या करीब २ हजार थी। वे मन ही मन हँस रहे थे कि अधिक दुख से सेठानी शायद विक्षिप्त हो गयी है। इतने बारातियो के लिए जितने हाथी, घोडे, ऊँट और रथ चाहिए—उन सबकी व्यवस्था तो शायद नगर सेठ भी नही कर सकते। रास्ते मे इन सबके खाने-पीने और आराम के लिए भी लाखो रुपये चाहिये। खैर, उन्होने कासिद के साथ उत्तर दे दिया कि हमे आपकी बात मजूर है। बारातियो की खातिर-तवज्जह के लिए आप बेफिक्र रहे। हम शुभ दिन की प्रतीक्षा मे है।

इधर टोडरमल ने आगरा आकर अपने मित्रो और साथियो से सलाह की। बादशाह से भी अर्ज की कि हुजूर मेरे भानजे की बारात जायगी, इसलिए शाही दरबार से पचास हाथी, पॉच सौ घोडे और एक हजार रथ और ऊँट चाहिए। उस मौके पर शाही बाजे और तोपे भी बारात के साथ जाने की इजाजत बख्शी जाय।

बडे-बडे राजे-रईस, सरदार और आला अफसरो को बारात के लिए न्यौता दिया गया। रास्ते मे भोजन वगैरह की व्यवस्था के लिए पहले से ही सैकडो आदमी सरजाम के लिए भेज दिये गये। नारनौल पहुँचकर राजा टोडरमल ने लाखो रुपयो का भात भरा। बहिन (वर की माता) के लिए मोतियो जडी चुनरी और वर-वधू के लिए कीमती गहनो और कपड़ो का अम्बार लगा दिया। वर पक्ष के लोगो के लिए यथायोग्य भेट और सिरोपाव।

सारे कस्बे मे चर्चा फैल गई कि नरसी मेहता के मुनीम सॉवरिया सेठ जैसा भात सेठजी के यहाँ आया है।

नारनौल से जो बारात रवाना हुई, वैसी इसके पहले देखी-सुनी नही गयी थी, घोडे, रथ, ऊँट, पालकी और सुखपालो की लम्बी कतार मीलो तक जा रही थी। करीब दो हजार तो बाराती थे और उनके साथ एक हजार नौकर, सईस, महावत और रसोइये आदि। इनके सिवाय बाजे वाले गाने वाले और नर्तकियो की भी एक बडी तादाद थी।

कन्या पक्ष वालो ने जब सुना बारात मे जयपुर महाराज मानसिह, अर्थमन्त्री टोडरमल, खानखाना (प्रधानमन्त्री) अब्दुल रहीम और राजा बीरबल आदि देश के बडे से बडे लोग आ रहे है। साथ मे हाथी, घोडे, रथ और ऊँटो का एक बडा काफिला है तो वे घबरा गये—यद्यपि वे नगर सेठ थे, लखपती थे परन्तु फिर भी इतनी बडी बारात की व्यवस्था करनी उनके वश की बात नही थी।

अगवानी के लिए कन्या का पिता कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियो को साथ लेकर गया। टोडरमल के पैरो मे पगडी रखकर कहने लगा कि हमने अपनी तरफ से बहुत भूल की, जो बहाना बनाकर सम्बन्ध तोडना चाहते थे, परन्तु अब हमारी इज्जत आपके हाथ है। इतनी

बडी बारात ठहराने का न तो हमारे गाँव मे स्थान है और न हम इन सबके लिए भोजन और चारे-पानी की व्यवस्था ही कर सकते हैं। सैकडो वर्षो से हमारे परिवार को नगर-सेठ की पदवी है, आपकी दया से आस-पास के गाँवो मे इज्जत है। परन्तु जहाँ हमारे अनेक स्वजन मित्र है, वहाँ ईर्ष्यालु दुश्मनो की संख्या भी कम नही है। उन्हे हमारी बेइज्जती से जग-हँसाई करने का मौका मिल जायगा। कन्यादान मेरे परिवार का भाई कर देगा। मै जिल्लत और बेइज्जती देखने के पहले गाँव छोड कर सदा के लिए चला जाना चाहता हूँ।

राजा टोडरमल ने उसे उठाकर गले लगाते हुए कहा—"जो कुछ हुआ उसे भूल जाइये, अब तो आप हमारे सम्बन्धी है। आपकी मान-बडाई मे ही हमारी शोभा है। आप चिन्ता न करे, किसी को भी पता नही चलेगा। सारी व्यवस्था हमलोगो की तरफ से है। आप केवल प्रवेश के समय शर्बत-पान से बारातियो की अच्छी तरह खातिरदारी कर दीजियेगा।"

बारात की सजावट और आतिशबाजी देखने के लिए आस-पास के गाँवो से हजारो स्त्री-पुरुष और बच्चे आये थे। उन सबके लिए यह एक अभूतपूर्व दृश्य था। मोतियो की झूल पहने हाथी और घोडे झूम रहे थे। चार-पाँच तरह की शाही बाजे थे। आगरा की प्रसिद्ध नर्तकियो का नाच-गाना हो रहा था और तरह-तरह की आतिशबाजियो की रोशनी से आसमान चमक रहा था। सारे विवाह-कार्य आनन्दपूर्वक समाप्त हुए। वधू को बिदा कराकर जब वे नारनौल पहुँचे और द्वारचार हुआ तो वर पक्ष की महिलाओ ने जो गीत गाया वह था—

"अैतो जीत्याजी, जीत्या म्हारा टोडरमल बीर,
केशरियो बनडो जीत्यो म्हारे वीरैजी के पाण।"

आज उस बात को ४०० वर्ष हो गये, अभी तक बहू की अगवानी के समय राजस्थान मे उस उदारमना भाई टोडरमल की पुण्य-स्मृति मे यही गीत गाया जाता है।
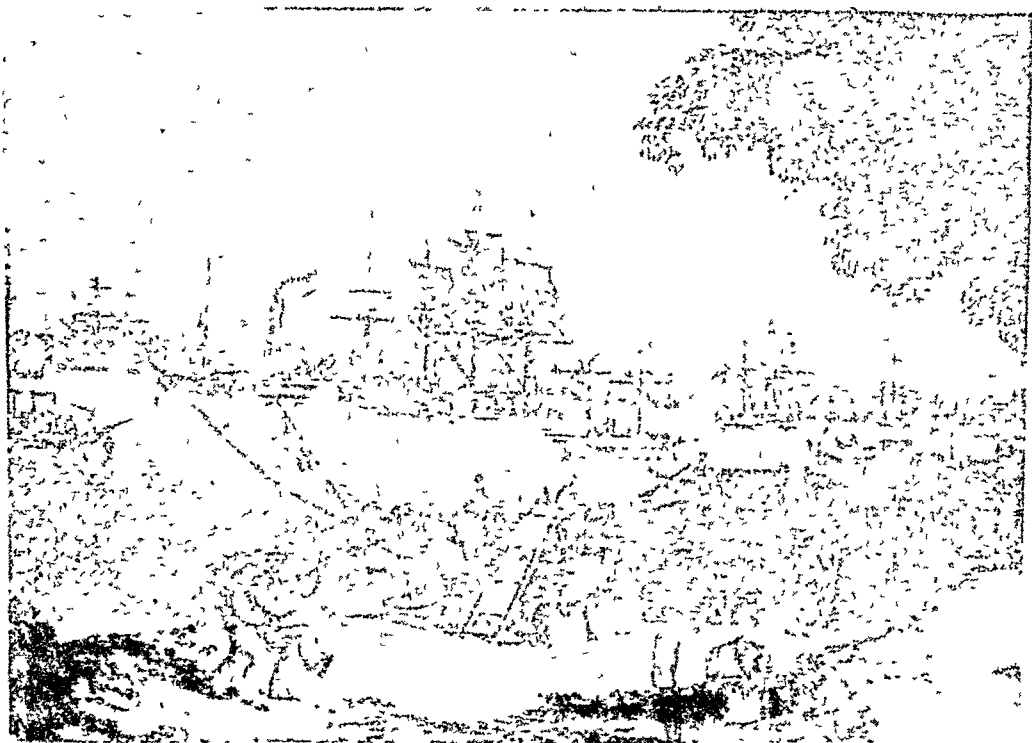
मरण त्योहार

सन् १६०० की बात है। मुग़लो के लगातार हमलो से मेवाड जर्जर हो चुका था, खेती-बाडी सब उजड गयी थी। राणा प्रताप के ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह तीन वर्ष पहले मेवाड की गद्दी पर बैठ चुके थे। आगरे के सिंहासन पर प्रतापी बादशाह अकबर था। चित्तौड, उँटाला, माही और माडल के किले मुग़लो के पास थे। अकबर को हर कीमत पर मेवाड के राणाओ का सिर नीचा करना था। शाहज़ादे सलीम को एक बडी फौज के साथ मेवाड-विजय के लिए भेजा।

दुर्भाग्य से उसी समय मेवाड के दो प्रमुख स्तम्भ चूडावत और शक्तावत घरानो मे हरावल (युद्ध मे सबसे आगे रहने का निशान) को लेकर वाद-विवाद खडा हो गया।

दोनो पक्ष के मुखिया महाराणा के पास आए। चूडावतो ने कहा कि हमारे पूर्वज वीर चूडा के अद्‌भुत बलिदान के कारण हरावल का अधिकार हमे मिला था। इसकी मान-रक्षा के लिए न जाने कितना बलिदान हमे करना पडा है। अब शक्तावत अधिक शक्तिशाली हो गए है, इसलिए हमारा पीढियो से चला आता अधिकार छीन लेना चाहते है। हम न्याय माँगते है महाराज न्याय करे।

शक्तावत सरदार बल्लूजी ने कहा—"महाराज मेरे २१ पुत्रो मे से अधिकाश पिछले युद्ध मे वीर गति को प्राप्त हो चुके है। अब बचे हुए सब युवक और किशोर पौत्र मातृभूमि के लिए जीवन उत्सर्ग करने को तैयार है। चूडावतो ने बहुत वर्षो तक हरावल रखा है। अब वह इज्जत हमे मिलनी चाहिए।"

महाराज सोचते कि दोनो सरदार अद्‌भुत माँग पर अडे हुए है। हरावल-रक्षक की मृत्यु प्राय निश्चित रहती है, क्योकि वह युद्ध मे सबसे आगे—हाथी या घोडे पर रहता हे। इसी की रक्षा के लिए वीर चूडा के वशज बहुत बार मर मिटे। अब चाचा शक्तिसिहजी के पुत्र-पौत्र जान-बूझकर यह ख़तरा उठाने की जिद्द पर अडे है।

राणा अमरसिंह, प्रतापसिंह सरीखे नही थे कि निडरता से छोटे-बडे सरदारो को डॉट देते। लगातार के युद्धो से वे थक भी गए थे। वे निश्चित राय देने मे डरने लगे। माँग तो चूडावतो की वाजिब थी, परन्तु शक्तावत अत्यन्त शक्तिशाली हो गये थे। उन्हे किसी कीमत पर नाराज नही कर सकते थे।

राज्य के सभी सरदारो की सभा जुडी हुई थी। उन्होने अपना मत ऊँची आवाज मे इस प्रकार दिया।

पिताजी के स्वर्गवास के बाद आपलोग इस प्रकार के आपसी झगडो मे उलझ गए है, यह मेवाड के लिए दुर्भाग्य की बात है। मुगलो की फौजे बढी आ रही है। साथ मे आमेर की राजपूती सेना भी है, ऐसे सकट के समय आप यह आपसी विवाद ले बैठे। खैर। मेरा एक सुझाव है। उँटाला का किला बहुत वर्षो से मुगलो के पास है, आप मे से जो पहले उसे सर करके उसपर मेवाड़ी झण्डा फहरा देगा, वही हरावल का अधिकारी होगा।

दोनो पक्षो ने यह बात मान ली, युद्ध की तैयारी करने लगे। दोनो परिवारो के १३ वर्ष से लेकर ६५ वर्ष तक के पुरुषो मे से शायद ही कोई घर मे रहा हो। महिलाएँ अपने पति, पुत्रो और किशोर पौत्रो को कुंकुम का टीका लगाकर शंख-ध्वनि करके उँटाले के लिए विदा कर रही थी। एक प्रकार से यह आख़िरी विदाई थी।

किले मे ये खबरे बढ-चढ कर पहुँची। मुगलो के पास राजपूताने मे उन दिनो तुर्को और राजपूतो की बडी सेना थी। उसमे से चुनी हुई उँटाला के किले मे आकर इकट्ठी हो गई।

शक्तावतो ने किले के मुख्य द्वार पर हमला किया, जबकि चूड़ावत पीछे की दीवार पर सीढ़ी लगाकर चढने की कोशिश करने लगे। ऊपर से तीर, गर्म तेल और अगारो की वर्षा हो रही थी। अनेक राजपूत वीर घायल होकर गिर रहे थे, परन्तु तुरन्त ही उनका स्थान दूसरे ले लेते।

मुगलो ने देखा कि शत्रुओ को तो जैसे मौत की परवाह ही नही है, एक की जगह फिर चार ले लेते हैं। वे थक कर सुस्ताने लगे। इतने मे चूडावत सरदार जेते सिंह किले की दीवार पर पहुँच गया। साथ मे उसके दो पौत्र थे। तुरन्त ही दो-तीन गोली लगी और वह धराशायी हो गया। परन्तु उसके आदेशानुसार उसके पौत्रो ने उसका सिर काटकर किले के भीतर फेक दिया और वहाँ मेवाडी झण्डा लगा दिया। बचे हुए सैनिक भी पहुँच गए, मुगलो ने हथियार डाल दिए।

इधर सशक्त शक्तावतों ने एक बडे हाथी को किले का फाटक तोडने के लिए आगे बढाया, परन्तु दरवाजे के लोहे के तीखे शूलो से घायल होकर हाथी बार-बार पीछे हटता गया। शक्तावत सरदार बल्लूजी हाथी के हौदे से कूदकर किले की शूलो के आगे भिड गये और महावतो को आज्ञा दी कि अब जोर से हाथी को आगे बढाओ।

महावत इस अद्भुत आज्ञा को सुन कर डर-सा गया, परन्तु उन्होने कडकती आवाज मे कहा कि उम्र भर तुम जान की जोखिम उठाकर भी हमारी सेवा करते रहे हो, क्या अब मेरे प्रभु की बेइज्जती कराओगे। देर मत करो,हाथी पर अकुश का प्रहार करके आगे बढ़ाओ।

उनका शरीर शूलो मे क्षत-विक्षत होकर विंध गया, रक्त की धारा बहने लगी, परन्तु मज़बूत दरवाजा चरमरा कर टूट गया। बचे हुए शक्तावत हर-हर महादेव कहते हुए किले मे पहुँचे, परन्तु वहाँ जाकर देखा कि पहले से ही चूडावतो का झण्डा फहरा रहा है।

चूडावतो के पाँच-दस वीरो ने कहा कि हरावल का अधिकार हमेशा हमारा रहा है— हमारा रहेगा। अब व्यर्थ में आपस का वैर-भाव छोडकर हमे मुग़लो की फौज से सम्मिलित रूप मे लडना चाहिए।

महाराणा अमरसिंह के नेतृत्व में मेवाड़ी फौज बादशाही सेना से लडने जा रही थी। हरावल एक चूडावत किशोर के हाथ मे था।

●

दोहरा बलिदान

अजमेर से अठारह मील दूर किशनगढ नाम का एक कस्बा है। तीन सौ वर्ष पहले इसका नाम रूपनगर था। सन् १६६० की बात है। मानसिह राठौर की यह एक छोटी-सी रियासत थी। उनकी बहन राजकुमारी चारुमती अपने रूप और गुणो के कारण सारे राजस्थान मे सुविख्यात थी। इसकी चर्चा बादशाह औरगजेब के कानो तक पहुँची। यद्यपि वह अन्य मुगल सम्राटो की तरह ऐय्याश नही था, फिर भी चारुमती के सौन्दर्य पर रीझकर उसे हरम मे दाखिल करने के लिए बेताब हो उठा। कासिद के जरिये रूपनगर-नरेश को खबर भेज दी कि अमुक दिन जहाँपनाह आलमगीर पहुँच रहे हैं, राजकुमारी के निकाह की सारी तैयारी ठीक रखे।

राजकुमारी चारुमती सुन्दर होने के साथ विदुषी भी थी। उन दिनो मेवाड के महाराणा थे, राजसिह। धीर, वीर, गभीर ३१ वर्षीय राणा की प्रतिष्ठा सर्वत्र थी। उसने राणा के शौर्य की गाथा सुनी थी। मन ही मन पति के रूप मे उनका वरण भी कर रखा था। बादशाह के फरमान को सुन कर वह चिन्तित हो उठी। मुगल सम्राट की शक्ति और सामर्थ्य के आगे रूप नगर की क्या बिसात। उसके कारण कितने प्राण चले जायेगे। यदि वह स्वय बलिदान हो जाए तो कम से कम व्यर्थ का रक्तपात बचेगा और राज्य भी।

राजकुमारी की एक मुँहबोली सखी ने सुझाव दिया कि इस प्रकार स्वय को बलि देने से पहले मेवाड के राणा राजसिह को एक पत्र भेजना चाहिए। राजस्थान मे वे ही केवल एक ऐसे वीर है, जो औरगजेब से लोहा ले सकते है। आखिर उसने अपने राजपुरोहित के हाथ एक पत्र महाराणा को भेजा। सन्देश मे लिखा था कि "मैंने मन ही मन स्वय को आपके अर्पण कर दिया है। आपकी सेवा के सौभाग्य की कामना थी, किन्तु दुराचारी औरगजेब बलात् मुझे अपने हरम मे ले जाना चाहता है। यदि आप एक अबला नारी की मान-मर्यादा और शील की रक्षा करना कर्तव्य समझे तो अमुक दिन के पूर्व ही रूपनगर पधारे। यदि किन्ही कारणो से ऐसा सभव न हुआ तो आत्मघात द्वारा मैं नारीत्व के सम्मान की रक्षा के लिए बाध्य होऊँगी।"

पत्र पढकर महाराणा चिन्तित हो उठे। वे अपने सीमित साधन और मुगल सम्राट की अथाह शक्ति को जानते थे। पहले से ही मेवाड अनवरत युद्धो के कारण थका और शिथिल-सा था। वे नया खतरा उठाना नही चाहते थे, किन्तु यहाँ प्रश्न था एक निरपराध राजपूत रमणी के शील-रक्षा का। उन्होने अपने सामन्तो को बुलाया और परामर्श के लिए सारी स्थिति स्पष्ट रख दी। भला राजपूत युद्ध के खतरो से कब घबराते? महाराणा अमरसिह के बाद लबे अर्से तक उनकी तलवारे म्यान मे सोई पडी थी। इस घटना के पीछे उन्होने उपयुक्त अवसर देखा। केलवाडा के सरदार ने कहा कि 'बादशाह ने जो तारीख दी है, वह अत्यन्त निकट है। कितनी

भी शीघ्रता की जाय, हम उस दिन तक रूपनगर नहीं पहुँच पायेंगे। अतएव, राजकुमारी की रक्षा हम शायद ही कर पाये। सभी सामत और सरदार चिन्तामग्न हो मौन बैठे थे। इसी बीच अठारह वर्ष के चूडावत सरदार ने उठकर कहा—महाराणा, मैंने उसका उपाय सोच लिया। आप तुरन्त रूपनगर जाकर राजकुमारी से विवाह कर उदयपुर आ जायें। मैं चूडावतो की सेना लेकर दिल्ली से रूपनगर के रास्ते को रोक रखूँगा। जबतक आप उदयपुर नही पहुँच जायेंगे, मुगल सेना आगे नही बढ पायेगी, यह हमारी टेक है।
पायेगी, यह हमारी टेक है।

राणा राजसिंह ससैन्य रूपनगर जाने की तैयारी मे लग गये। इधर चूडावत सरदार ने अपने भाई-बन्धुओ को एकत्रित कर स्थिति से परिचित कराया। तीन हजार किशोर, युवा और वृद्ध चूडावतो ने मृत्यु से जूझने के लिए कूँच का धौसा बजा दिया। सयोग से चूडावत सरदार का विवाह हाडी राजकुमारी से दो दिन पूर्व ही हुआ था। अभी कगन-डोरे भी नही खुले थे, बाहर से सगे-सम्बन्धी और अतिथि आए हुए थे। चहल-पहल और उल्लास का वातावरण था, ऐसे में वे रनिवास पहुँचे। उन्होने हाडी रानी को सारी बात बताते हुए कहा कि इस पुण्यदायित्व के निर्वाह मे मेरा वापस आना सभव नही। खेद है, दो-चार दिन का भी दाम्पत्य सुख तुम्हे दे न सका।

हाडी रानी ने सरदार को उदास देखकर कहा—"आप अकारण मन मे अवसाद न लाये। मै आपसे पीछे न रहूँगी। यहाँ नही तो स्वर्ग मे आपसे अवश्य मिलूँगी।" सरदार को प्रोत्साहित करते हुए उसने बिदा किया।

फिर भी युवक चूडावत का मन उन्हे पीछे खीच रहा था। वह यही सोच रहा था कि काश! एक रात वह अपनी नवविवाहिता वधू के साथ बिता पाता। घोडे पर चढते हुए बरबस उनकी निगाहे झरोखे की ओर चली जाती थी। रानी ने यह देखा कि सरदार का चित्त यदि इसी प्रकार दुविधाग्रस्त रहा तो कर्त्तव्य-निर्वाह मे बाधा होगी। उसने फौरन सरदार के पास सूचना भेजी कि आप कुछ क्षण रुके, मै एक सेनाणी भेज रही हूँ।

इसी बीच उसने दासी के हाथ से तलवार लेकर अपनी गर्दन पर झटका दिया। वह सुन्दर सुकुमार मुख धड से अलग हो गया। हाडी रानी के आदेशानुसार सेवको ने एक थाल मे मुण्ड रख फूलो से सजा दिया और सौभाग्य-चिह्नो से सजे उस थाल को चूडावत सरदार को भेट कर दिया।

सरदार एक बार तो सकते मे आ गया, फिर उसने रानी के मुण्ड को डोरी से बाँधकर गले मे लटका लिया और घोडे को एड लगा दी।

बादशाह औरगजेब की सेना रूपनगर की तरफ बढती आ रही थी। ६० हजार की विशाल सेना को रोकने के लिए चूडावत वीरो की तीन हजार की टोली दीवार बनकर खडी हो गई। सात दिन तक बहुत दमखम लगाने पर भी शाही फौज आगे बढ न पायी। बादशाह औरगजेब ने स्वय दूरबीन से देखा किशोर चूडावत सरदार मुण्डमाल पहने काल-भैरव की तरह युद्ध कर रहा है। उसके मुँह से निकला—"अल्लाह, काश, मेरे बेटो-पोतो मे ऐसा कोई जाँबाज़ होता।"

ऊँची लहरो के सामने छोटी दीवार कब तक टिकती। सारे राजपूत वीरगति को प्राप्त हुए। शाही फौज रूपनगर की ओर बढ गयी। किन्तु जब वे वहाँ पहुँचे तब तक चारुमती से विवाह कर महाराणा राजसिंह सकुशल उदयपुर वापस आ गए थे।

अपमान की ज्वाला मे औरगजेब भुन उठा, पर करता भी क्या? मुट्ठी को कसकर उसने अस्फुट शब्दो मे कहा—इंशा अल्लाह इस तौहनी का बदला लेकर रहूँगा।

बुन्देलों की आन

सन् १९६१ की बात है। चिरगाँव से राष्ट्र कवि मैथिलीशरण जी और सियारामशरणजी के साथ इतिहास प्रसिद्ध बुन्देलो की राजधानी ओरछा देखने गया था। वहाँ के दुर्ग मे और महलो मे सैकडों वर्ष पहले के तोपो और गोलो के चिह्न अभी तक दिखाई देते थे।

बेतवा नदी के किनारे अब ओरछा एक साधारण-सा गाँव रह गया है। परन्तु आज से तीन सौ वर्ष पहले यह एक समृद्ध नगर था। सन् १६६३ मे महाराज चम्पतराय यहाँ से चले गये। उसके बाद यह मुगलो के अधीन रहा। यद्यपि उनके पुत्र छत्रसाल इतिहास प्रसिद्ध वीर हुए। परन्तु वे ओरछा को वापस नही ले पाए।

गुप्ताजी ने महल के एक कक्ष मे बैठकर हमे दो कथाएँ सुनाई, जिनको सुनकर मन मे सिहरन और आँखो मे आँसू आ गये।

पहली तो कुँवर हरदौल की थी और दूसरी महाराज चम्पतराय की रानी सारधा की।

उन्होने कहा कि द्विजेन्द्रलाल राय और कर्नल टाड ने सिसोदिया और राठौडो को इतिहास मे अमर कर दिया, वर्ना बुन्देलो की वीरता किसी से कम नही थी।

इस कथा की नायिका सारधा बुन्देलखण्ड के एक साधारण जमीदार की पुत्री थी। अपनी सुन्दरता और साहस के लिए दूर-दूर तक उसकी प्रसिद्धि थी। उन दिनो बुन्देलखण्ड मे मुग़लो और पठानो के आक्रमण बार-बार होते रहते थे, इसलिए स्त्रियाँ भी शस्त्र-सचालन जानती थी।

ओरछा नरेश महाराज चम्पतराय ने उसके सौन्दर्य और शौर्य के बारे मे सुन रखा था। उन्होने सारधा के बडे भाई ठाकुर अनुरुद्धसिंह के पास विवाह का पैगाम भेजा।

ठाकुर फूले नही समाये, कहाँ तो इतने बड़े राज्य के अधिपति और कहाँ वे छोटे से जागीरदार।

फिर भी उन्होने कहलवाया कि महाराज की चार रानियाँ पहले से है। अगर वे मेरी बहिन को पटरानी बनावे और उसका पुत्र ही राज्याधिकारी हो तो रिश्ता हमे मजूर है।

बडी धूमधाम से विवाह होकर वह ओरछा रहने लगी। उसके चार पुत्र हुए, जिनमे एक परम प्रतापी छत्रसाल भी थे।

चम्पतराय, शाहजहाँ के दरबार मे बडे मनसबदार थे। ओरछा के सिवाय कालपी भी उनकी जागीर मे थी। जब औरगजेब तख्त पर बैठा तो उसने उनका दर्जा बढाकर बारह हजारी मनसबदार कर दिया। उस समय हिन्दू राजाओ मे सिवाय जयपुर के मिर्जा राजा

जयसिंह के इतना बडा सम्मान और किसी का नही था ।

रानी सारधा और पुत्रों के साथ चम्पतराय बीच-बीच मे दिल्ली रहते थे । उनके पास एक इराकी घोडा था, जिसका जोडा सल्तनत मे दूसरा नही था । किसी समय यह घोड़ा शाहजहाँ के सेनापति वली बहादुर का था, जिसे चम्पतराय युद्ध मे जीतकर अपने अस्तवल मे ले आया था । अब वली बहादुर औरगजेब का आला सेनापति हो गया था और घोडे को वापस लेने का मौका ढूँढ रहा था ।

एक दिन कुँवर छत्रसाल घोडे पर चढकर सैर को गया था तजवली बहादुर के सिपाहियो ने घोडा छीन लिया ।

छत्रसाल उस समय केवल १४ वर्ष का बालक था । रानी को घर आकर सारी वारदात बताई, उसके चेहरे पर उदासी छायी हुई थी । उस समय चम्पतराय किसी युद्ध पर गए हुए थे । दिल्ली मे रानी अकेली थी । उसने अपने पच्चीस विश्वस्त सिपाहियो को साथ मे लिया और बादशाह के दरबार मे जाकर वली बहादुर को ललकारा ।

"खा साहब ! एक बच्चे पर हाथ उठाते आपको शर्म नही आई, अगर मर्द थे तो घोडे को लडाई मे न छोड आते ।"

बादशाह और मुसाहिबो ने देखा कि एक अत्यन्त तेजस्वी और रूपवती महिला तलवार हाथ मे लिए खा साहब को ललकार रही है ।

बादशाह औरगजेब अपने मुस्लिम सेनापति का भरे दरबार मे अपमान होता देखकर गुस्से से काँपने लगा, परन्तु वह बडा कूटनीतिज्ञ था । राजा चम्पतराय की वीरता और साहस को जानता था । उसने रानी की तरफ मुखातिब होकर कहा—"रानी साहिबा, माँ-बदौलत आपकी बहादुरी से बहुत खुश है, परन्तु अपने एक घोडे के लिए सल्तनत के आला सेनापति को नाराज करना आपके और राजा साहब के हक मे अच्छा नही होगा ।

"बादशाह सलामत, सवाल घोडे का नही है—बल्कि आन का है । हम बुन्देले अपनी इज्जत और मान के लिए सब कुछ छोडने को तैयार है ।

"रानी, अगर राजा यहाँ होते तो हमारे हजूर मे शायद ऐसे अल्फाज कहने की गुस्ताख़ी न करते, खैर ! आप लोग अपने डेरे पर जाइये घोडा आपको मिल जायेगा, परन्तु उसकी बहुत बडी कीमत चुकानी पडेगी ।"

जब राजा चम्पतराय दिल्ली आये और सारी बाते सुनी तो बहुत चिन्तित हुए, परन्तु उन्होने भी अन्त तक रानी और कुँवर का साथ दिया । उनकी मनसबदारी और जागीर छीन ली गई । वे ओरछा में आकर रहने लगे ।

वली अहमद अपमान को भूला नही था । कुछ दिनो बाद उसने एक बडी फौज लेकर ओरछा को घेर लिया । उसकी फौज मे देश-धर्म-द्रोही कुछ राजपूत भी थे ।

यद्यपि बुन्देले बडी बहादुरी से लडे, भला बादशाही फौज के सामने उनकी क्या हस्ती थी ? धीरे-धीरे सारे सिपाही मारे गये, किले मे केवल स्त्रियाँ और बच्चे रह गए, राजा ने घायल होकर खाट पकड ली । रानी रात-दिन पति की सेवा मे रहती, परन्तु उसे बार-बार अपशकुन होने लगे । ऐसा लगा कि अब किले को बचाना मुश्किल है । सोचा, अगर हम स्वय किसी प्रकार बाहर निकलकर दूर स्थान पर चले जायँ तो शायद दूसरे लोगो की जान बच जाएगी ।

केवल मात्र दस सिपाहियो के साथ राजा और रानी अन्धेरी रात मे किले के गुप्त दरवाजे से बाहर निकले । रानी घोडे पर थी, जब कि बीमार राजा पालकी मे ।

दूसरे दिन मुगलो के सिपाहियो ने घेर लिया। दसो सिपाही वीरता से जूझते हुए मारे गए । रानी भी काफी हिम्मत और बहादुरी से लडी, परन्तु बडी फौज के सामने उस अकेली की भला क्या हस्ती थी ? सगीन रूप मे घायल-हो गयी । जल्दी मे वार बचाती हुई महाराज

की पालकी के पास आकर कहने लगी " महाराज अंतिम विदाई लेने आयी हूँ—भूल-चूक क्षमा करेंगे। आपके चरणों की सेवा करने के लिए वहाँ प्रतीक्षा करूँगी।"

महाराज ने कहा—"रानी, बीस वर्षों से सुख-दुख की साथी थी, आज मुझे इन दुश्मनों के हाथ बीमारी हालत में छोडकर जाते हुए तुम्हे कुछ भी चिन्ता नहीं होती है? क्या मुझे उम्रभर मुगलों की कैद में छोड जाओगी?"

"महाराज कल तक मैं ओरछा राज्य की रानी थी, परन्तु आज हर प्रकार से असहाय हूँ—फिर भी मुझे आप जो आज्ञा देंगे, शिरोधार्य करूँगी।"

"सारधा तुमने सदा मेरी बात मानी है। यद्यपि आज मैं बीमार और असहाय हूँ, फिर भी मुझे भरोसा है कि मेरी अन्तिम बात को भी तुम मानोगी। मेरा मन कहता है कि तुम्हारा वीर पुत्र जिन्दा है, वह दुश्मनों से अवश्य बदला लेगा। तुम अपनी यह तलवार पहले मेरी छाती मे चुभो दो और फिर अपनी मे।"

रानी सकते मे आकर रोते हुए कहने लगी—"महाराज, आप यह कैसी आज्ञा दे रहे है? क्या कही आज तक ऐसा हुआ है? मुझे आप क्या सदा के लिए पतिहन्ता बना जाना चाहते है?"

"रानी यह समय निजी जज्बातो का नही है, तुमने मुझे वचन दिया है, उसे पूरा करो।"

बादशाही सिपाही जब वहाँ पहुँचे तो दो तडपती हुई लाशो को देखा! रानी का सिर पति की छाती पर टिका हुआ था।

●
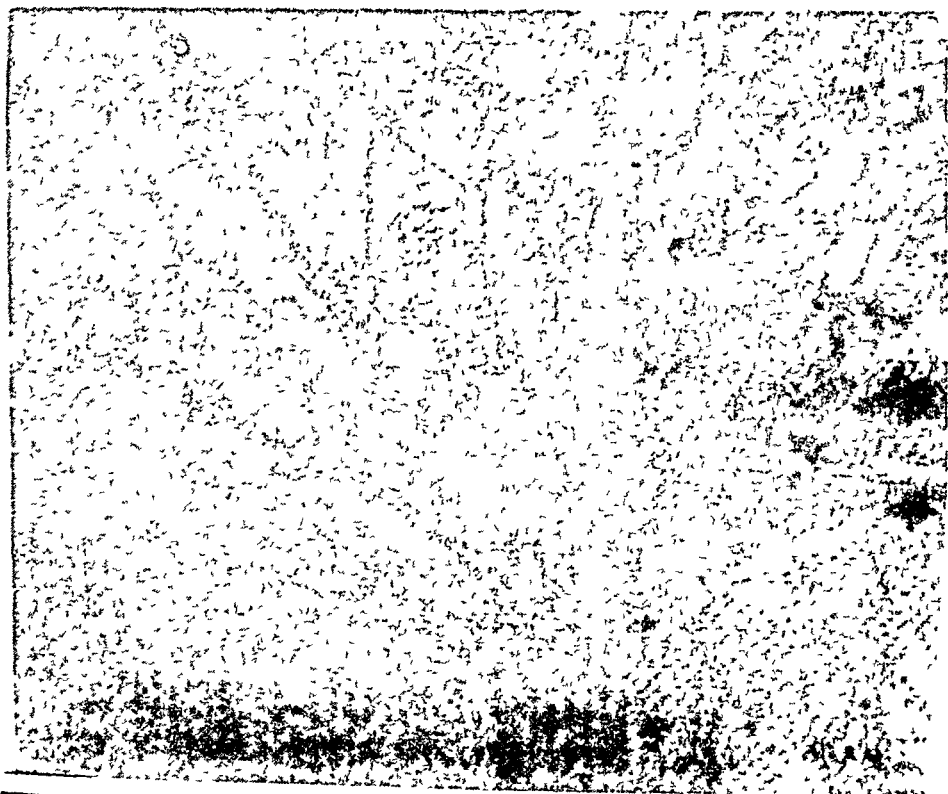
दो शेरों की लड़ाई

१७ वी शताब्दि मे राजस्थान के विभिन्न राज्यो मे कुछ अद्भुत प्रतिभाशाली और वीर राजा हुए हैं—इस सदर्भ मे मेवाड के राणा राजसिंह, जोधपुर के जसवतसिंह और जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह का नाम लिया जा सकता है। जसवत सिंह और जयसिंह तो शाहजहाँ और औरगजेव के आला सेनापतियो मे थे।

सन् १६४० के लगभग की बात है। औरगजेव २२ वर्ष का युवक था। दक्षिण को कई वडी-वडी लडाइयाँ जीत कर आया था।

मुल्ला और मौलवी उसकी बहादुरी और इस्लाम-परस्ती का प्रचार जनता मे करते रहते थे। उन्ही दिनों जोधपुर के युवक राजा जसवत सिंह मुग़ल दरवार मे रहने के लिए आगरा आए। यह एक प्रकार से रिवाज सा था कि रियासतो के राजा या युवराज मे से कोई एक बादशाह की सेवा मे रहे।

महाराज के साथ मे उनकी रानियाँ, मुसाहिब तथा कुछ जागीरदार भी आए। इन्ही जागीरदारो मे आसोप के युवक ठाकुर मुकुन्ददास भी थे। जोधपुर मे ही नही, बल्कि आगरा तक उनकी बहादुरी की बाते बढचढ कर फैल चुकी थी।

वादशाह शाहजहाँ का दरबार लगा हुआ था। सल्तनत के अमीर-उमरा अपनी-अपनी जगह पर बैठे या खडे थे। बादशाह की दाहिनी तरफ युवराज दाराशिकोह बैठा था, बायी तरफ औरगजेब।

महाराज जसवत सिंह अपने सरदारो के साथ नजर करने आए। लोगो ने देखा कि एक दैत्य सा लम्बा-चौडा युवक सिंह की सी मस्तानी चाल सेआ रहा है। चौडी छाती, लम्बे हाथ तथा उन्नत ललाट। सबकी आँखे जसवत सिंह से हटकर इस युवक पर जा टिकी। नया-नया शाही दरबार मे आया था, वहाँ के रीति-रिवाजो को नही जानता था। वादशाह को नजर करके पीठ फिरा कर वापस आ गया, परन्तु वादशाह उसके सौन्दर्य से इतना विमुग्ध हो गया था कि इस घटना पर उनका ध्यान नही गया।

औरगजेब ने उन्ही दिनो एक मस्त बिगडे हाथी को वश मे किया था। वह अपने को अद्वितीय वहादूर समझता था, परन्तु मुकुन्ददास को देखकर उसके मन मे ठेस सी लगी, बिना कारण के ईर्ष्या उमड आयी।

आये दिन बादशाह के कान भरने लगा—"अब्बा हुर्जुर, यह नया राजपूत उजडड तथा मूर्ख है, इसको अपनी ताकत का घमड भी है। कभी न कभी रियासत-को इससे खतरा हो सकता है—समय रहते ही इसे कुचल देना चाहिए।"

कुछ दिनो तक तो बादशाह ने तवज्जह नही दिया, परन्तु उसकी प्यारी बेटी रोशन

आरा ने भी औरगजेव के कहने से पिता के कान भरने शुरू कर दिये ।

एक दिन भरे दरवार मे वादशाह ने महाराज जसवन्त सिह को कहा कि "आपके युवक सरदार मुकुन्ददास की वहादुरी और जिस्मानी ताकत के वारे मे वहुत-कुछ सुना है, मा-वदौलत उसका मुआइना करना चाहते है। हमारी मशा है कि शाही शेर वाजवहादुर से यह कुश्ती लडे।"

महाराज तो सकते मे आ गये, कहने लगे— हुजूर शायद इस युवक की नातजुर्वेकारी से नाराज हो गये है, इस वार इसे माफ किया जाय, आइन्दा शिकायत का मौका नही मिलेगा।"

इतने मे शाहजादा औरगजेव कहने लगा—"महाराज जसवत सिह सुना है इसको किसी हिन्दू देवी का इष्ट है, जिसकी सवारी सिह है, फिर भला आप क्यो डरते है—वह देवी खुद इसकी जान की हमारे सिह से हिफाजत करेगी।"

जसवत सिह सारे षडयत्र को समझ गए। उन्हे यह भी पता लग गया था कि शाहजादा औरगजेव मुकुन्ददास को मार डालना चाहता है।

वचाव का कोई उपाय न देखकर उसने वादशाह की वात को मन्जूर कर लिया। युवक मुकुन्ददास को महारानी महामाया तथा दूसरे लोग वहुत प्यार करते थे। उसके शौर्य पर उन्हे गर्व था। सारे हिन्दुस्तान मे उसके जोड का दूसरा कोई ताकतवर नही था। इधर महाराज स्वीकृति दे चुके थे। अव सिवाय सिह के साथ लडाई का दूसरा उपाय नही था।

आगरे और दिल्ली मे मुनादी कर दी गयी कि फला तारीख को जोधपुर के मुकुन्ददास कुम्पावत के साथ वादशाह के वव्वर शेर की कुश्ती होगी।

कुश्ती के दिन आगरे के किले के चारो तरफ हजारो की सख्या मे स्त्री-पुरुष इकट्ठे हो गए। हिन्दू सहमे हुए और दु खी थे जवकि ज्यादातर मुसलमान खुश थे।

वादशाह और शाहजादे किले के ऊपर के वरामदे मे वैठे थे। झालर के पीछे वेगमे और शाहजादियाँ थी। खाई के चारो तरफ जनता की वहुत वडी भीड थी, जैसी आगरे मे आजतक नही देखी गई थी।

जव मुकुन्ददास कटार-तलवार से लैस होकर किले की खाई मे आया तो लोग उसकी निर्भयता को देखकर चकित रह गए। आसन्न मृत्यु को सामने देखकर भी वह वीर युवक निडर होकर सर ऊँचा किए, मस्त हाथी की चाल से आ रहा था। शेर को कई दिनो से भूखा रखा गया था, उसका पिजरा खाई मे लाया गया। वह जोर-जोर से दहाड रहा था। मुकुन्ददास पिजरे के पास पहुँचा। इतने मे शाहजादे औरगजेव ने कहा कि "हमारा शेर निहत्था है जवकि आपके शेर के पास तलवार-कटार है। यह लडाई के कानून के खिलाफ है। वहादुरी तो इसमे है कि मुकुन्ददास भी विना हथियारो से लडे।"

महाराज ने इशारा किया और कुम्पावत ने अपनी तलवार-कटार अलग फेंक दी। पिजरे का फाटक खोला जा चुका था, लोग भयभीत होकर इस घिनौने दृश्य को देखने की तैयारी मे थे।

मुकुन्ददास ताल ठोक कर पिंजरे के सामने खडा शेर को ललकार रहा था। उसकी आँखो मे अगारो की सी चमक थी। वडे जोर से दहाडता हुआ शेर वाहर आया। लेकिन मुकुन्ददास ने हिम्मत नही हारी। जल्दी से उसके दोनो पजे पकड कर पिंजरे मे फेंक दिया। सयोग से शेर का सर लोहे की मोटी छडो से भिडा और वह थोडी देर के लिए सज्ञाहीन-सा हो गया। इसके वाद तो कई वार मुकुन्ददास ने शेर को वाहर आने के लिए ललकारा, परन्तु वह तो गीदड की तरह एक तरफ दुवककर वैठ गया।

वादशाह को इसमे अपनी तौहीन लगी। उसने अपने आदमियो को शेर को वाहर

निकालने के लिए हुक्म दिया, परन्तु किसी तरह भी वह पिंजरे से नही निकला ।

जनता जोर-जोर से वीर मुकुन्ददास की जय ध्वनि करने लगी । लोगो का रुख देखकर वादशाह ने कुश्ती खत्म करने का हुक्म दिया ।

मुकुन्ददास को पास बुलाकर अपने गले की मोतियो का हार पहनाया । दूसरे दिन दरबार मे घोषणा की कि "महाराज जसवत सिंह, आपका शेर वाकई मे बहुत वहादुर है—सल्तनत को ऐसे जवा मर्दो पर फक्र है । हम इसे 'नाहरसिंह' का खिताब देते है । जसवन्त सिंह को अदेशा हो गया कि यद्यपि इस बार तो बचाव हो गया, परन्तु कभी-न-कभी मुकुन्ददास का औरगजेव धोखे से खून करा देगा ।

थोडे दिनों वाद उसे वापस जोधपुर भेज दिया गया ।
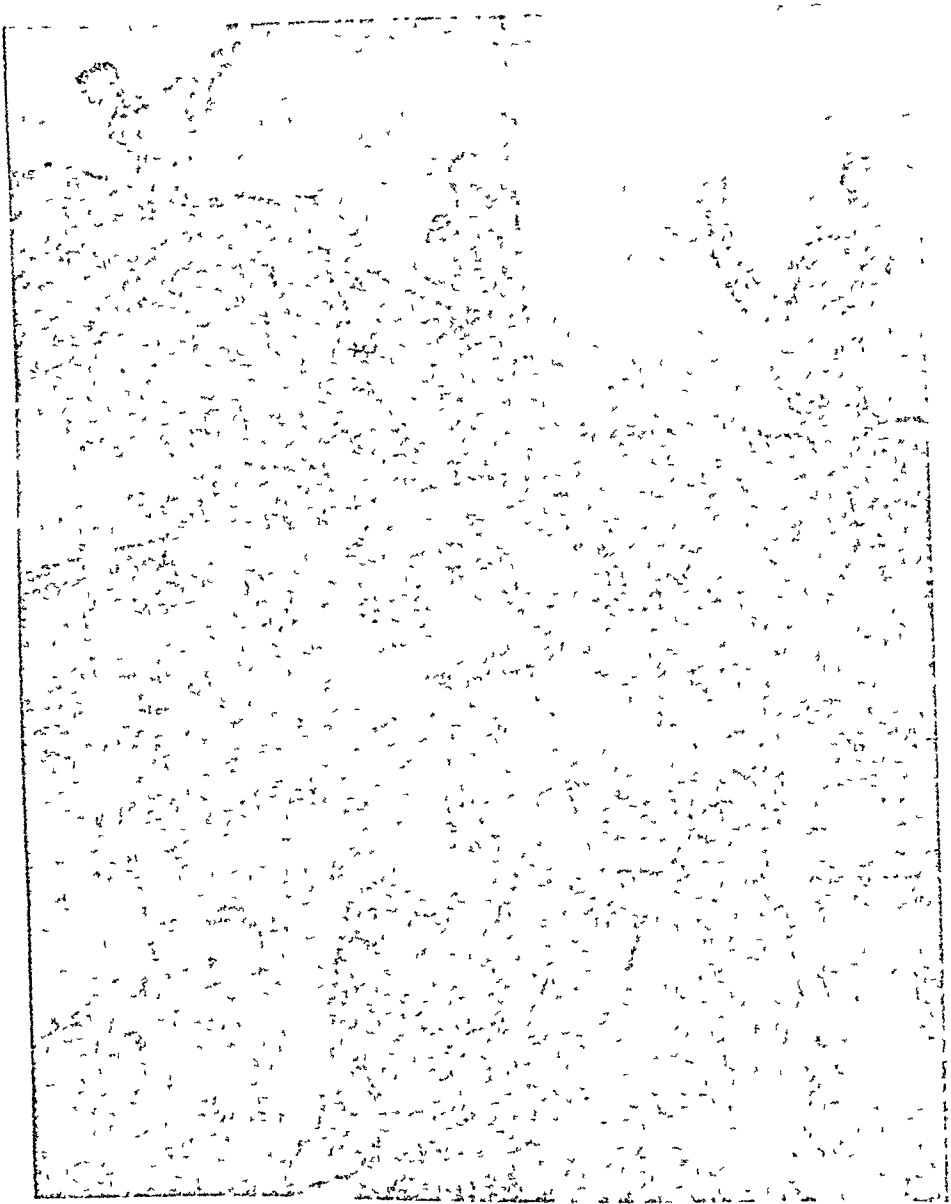
जगतसेठ हीरानन्द

गरीब से करोड़पति

सन् १६५२ की घटना है, नागौर से हीरानन्द नाम का एक ओसवाल युवक वहाँ के जैन यती के पास जाकर परदेश जाने का मुहूर्त्त पूछने गया।

यतीजी ने पचांग देखकर बताया कि तुम इसी समय पूर्व दिशा की ओर चले जाओ, ईश्वर ने चाहा तो तुम्हारी गरीवी मिट जायगी, बहुत बडे व्यक्ति हो जाओगे।

युवक बिना घर वालो को सूचना दिये ही, लम्बी यात्रा पर रवाना हो गया। थोडी दूर जाने पर उसे रास्ते मे एक काला सर्प फण उठाये मिला। डरकर वापस यतीजी के पास आया और सारी घटना बतायी। उन्होने कहा होते तो तुम छत्रपति, परन्तु खैर, अभी भी धनपति बनने का सुयोग तो है ही, भगवान का नाम लेकर तुरन्त रवाना हो जाओ। तुम्हारे घर वालो को मै सूचना दे दूँगा।

बीहड रास्ते, चोर-डाकुओ का डर, पास मे सम्बल नही, फिर भी भगवान की कृपा से पन्द्रह दिनो मे सही-सलामत आगरे पहुँच गया। शाहजहाँ बादशाह का राज्य था। आगरे की उन दिनो विश्व मे सबसे सम्पन्न शहरो मे गिनती थी।

यद्यपि हीरानन्द की बहुत पढाई तो नही हुई थी, परन्तु वह गणित मे होशियार था, मेहनती और ईमानदार था, देखने मे बहुत सुन्दर भी था। उसे एक मोदीखाने की दुकान पर तीन रुपये महीने मे नौकरी मिल गई।

सस्ती का जमाना था। एक रुपये के पाँच मन गेहूँ और पाँच सेर घी मिलता था। एक रुपये मे वहाँ का खर्च चलाकर दो रुपये महीना नागौर भेजने लगा। घर मे खुशहाली हो गई। वहाँ उसकी माता, पिता और पत्नी तथा एक पुत्र था।

उस दुकान के ग्राहको मे कुछ मुसलमान सरकारी अधिकारी भी थे। वे सब हीरानन्द के व्यवहार से बहुत खुश थे। उनमे से मीरजुमला नाम के एक हाकिम की पटने बदली हुई तो वह हीरानन्द को अपने साथ ले गया और वहाँ उसे एक दुकान करा दी। समय पाकर मीरजुमला ऊँचे पद पर पहुँचता गया और उसके साथ ही हीरानन्द साह की दुकानो का कारबार भी बढने लगा।

पटना उन दिनो वाणिज्य-व्यवसाय की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण नगर था। यहाँ से शोरा, शक्कर, लाह, कस्तूरी, अफीम और रगीन छीटे दूसरे मुल्को को जाती थी। दूसरे मुल्को से सब तरह से मसाले तथा अन्य प्रकार की बहुत सी चीजे आयात होती थी। कलकत्ता उस समय बस रहा था। औरगजेब के पोते अजीमुशन ने केवल १४,०००) मे सूतापट्टी गोविन्दपुर और

कलकत्ता अंग्रेजो को बेच दिया था। परन्तु पूर्व के बडे शहरो मे चिनसुरा, हुगली, राजमहल, ढाका और पटना की गिनती होती थी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने पटना मे शाखा खोली और उन्होंने सेठ हीरानन्द को अपना वेनियन नियुक्त किया, उस समय यह कम्पनी साधारण स्थिति मे थी, हीरानद मौके-वेमौके इसे रुपया भी ऊँचे व्याज पर उधार देता था। इस प्रकार सन् १६८५ तक के ३३ वर्षो मे गरीवी मे ऊँचा उठकर वीस-तीस लाख का आदमी हो गया था। चारो तरफ उसकी इज्जत हो गयी—विहार के सिवाय वगाल के राजमहल और ढाका मे भी शाखाए खुल गई। उस समय के वीस-तीस लाख आज के वीस-तीस करोड के वरावर है, क्योकि वस्तुओ के भावो मे एक और सौ का अनुपात था।

मीरजुमला के वाद शाइस्ता खा और औरगजेव का वेटा मोहम्मद आजम नाजिम हुए, परन्तु हीरानन्द उन सवका विश्वासपात्र वना रहा और उसकी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होती रही। अंग्रेजो का कोई काम अटक जाता था, नाजिम मे सिफारिश करानी होती तो वे सेठ हीरानन्द के पास आकर खुशामद करते।

१६८५ से लेकर १७११ तक के २६ वर्षो मे साह घराना करोडपति हो गया। हीरानन्द के सात पुत्र और एक पुत्री हुई। उसने, विहार, वगाल और राजस्थान मे अनेक प्रकार के धर्म-स्थानो का निर्माण कराया। व्यस्त रहते हुए भी जन्मभूमि भूली नही। वरावर वहाँ वे आते-जाते रहते थे। मारवाड से वहुत से युवको को लाकर पटना और राजमहल मे वसाया। उन्हे हर प्रकार की सहायता दी।

६० वर्ष पहले वह २० वर्ष की आयु मे, नागौर से पैदल चलकर आगरा पहुँचा था। रास्ते मे कुछ मजदूरी करके आगे बढता गया था। उसके जीवन मे ही ५० वर्ष राज्य करके औरगजेव मर गया। फिर उसका वडा पुत्र मुअज्जम वहादुर शाह के नाम मे दिल्ली के तख्त पर वैठा। यद्यपि मुगल सल्तनत का सितारा फीका होता जा रहा था, फिर भी आज की कीमत मे ३०० करोड का तख्त ताऊस सिंहासन और अमूल्य कोहिनूर हीरा तो मुग़लो के पास था ही, सालाना आय भी ३० करोड के लगभग थी। हिन्दुओ पर जजिया लगा हुआ था। वगाल, विहार के वहुत से गरीव हिन्दुओ का कर सेठ हीरानन्द की कोठी से दिया जाता रहा।

सन् १६९६ मे उडीसा के अफगानो ने और मेदनीपुर के जमीदार शोभासिंह ने मिलकर वडी वगावत की थी। औरगजेव पिछले १५ वर्षो से दक्षिण मे उलझा हुआ था। उत्तर भारत मे सल्तनत कमजोर हो गयी थी। ऐसे सकट के समय मे सेठ हीरानन्द ने विहार के नाजिम वादशाह के पोते अजीमुशन को वडी मदद दी। दुर्भाग्य से वह दिल्ली के तख्त पर नही वैठ सका, वरना हीरानन्द को जगतसेठ की पदवी मिल जाती, फिर भी लोग उन्हे जगतसेठ कहने लगे थे।

सन् १७११ मे ८७ वर्ष की लम्वी आयु पाकर सेठ हीरानन्द ने इहलीला समाप्त की। उस समय तक उनका घराना वगाल, और विहार प्रात मे प्रसिद्ध हो चुका था। वे स्वय कारवार मे अलग होकर भगवत्-भजन मे लगे थे—विभिन्न शाखाओ का काम उनके ७ लडके सम्हालते थे।

●

राजसंन्यासी दुर्गादास

राठौड दुर्गादास युवावस्था मे बहुत सुन्दर और स्वस्थ था। कुछ वर्षो तक औरंगजेव के दरबार मे था। बादशाह की प्रिय उदयपुरी वेगम ने उसे कई बार वहाँ देखा था। मन-ही-मन चाहने भी लगी थी। बहुत वर्षो बाद अनायास ही एक मौका आ गया।

बागी शाहजादा अकवर को लेकर जव वह पूना मे शम्भाजी के पास गया तो वहाँ कुछ दिनो तक ठहर गया था। लगातार के युद्धो से थका हुआ था, आराम कर रहा था।

जिस दिन मारवाड लौट रहा था, उसके पहले एक दिन रात मे उसे एक स्त्री के चिल्लाने की आवाज सुनायी दी—तलवार लेकर बाहर निकला तो देखा शम्भाजी शराब के नशे मे चूर होकर एक बालिका को निर्वस्त्र कर रहा है और वह चिल्ला रही है।

"शम्भाजी, तुम इस तरह शिवाजी महाराज के उज्ज्वल नाम मे कालिख लगा रहे हो तुम्हे शर्म आनी चाहिए।"

दोनो की बातचीत बढकर झगडे मे बदल गई। युवक शम्भाजी को दुर्गादास ने धर दबोचा, परन्तु जान से नही मारा, चेतावनी देकर छोड दिया। आवाजे सुनकर सिपाही आ गए और शम्भाजी के हुक्म से दुर्गादास को कैद कर लिया।

दूसरे दिन दुर्गादास बेडियो मे जकडा हुआ दिल्ली भेजा जा रहा था, जाते समय उसने शाप दिया कि अगर मैने जीवन मे मन-वचन-कर्म से कोई पाप नही किया है तो यह भविष्यवाणी करता हूँ कि तुम्हारी औरगजेव के हाथ से घिनौनी मौत होगी।

दिल्ली के लाल किले मे हथकडी-बेडियो से लैस दुर्गादास को बादशाह के सामने हाजिर किया गया। औरगजेब उससे नाराज तो बहुत था, परन्तु उसकी स्वामिभक्ति और बहादुरी के कारण मन-ही-मन आदर भी करता था।

"दुर्गादास, तुमने सल्तनत के हुक्कामो को बहुत तग किया है, शाही चौकियो को लूटा है, आग लगा दी है, शाहजादे अकवर को बागी बनाने की कोशिश की, बताओ तुम्हें क्या सजा दी जाय?"

"बादशाह सलामत, मैने जो कुछ भी किया अपने महाराज और वतन की वफादारी के लिए किया। आपके हुक्काम हिन्दुओ को मुसलमान बना रहे थे, मन्दिरो को तोड रहे थे, बहिन-बेटियो की अस्मत लूट रहे थे।"

पहरेदारो को हुक्म हुआ कि उसको किले के नीचे के तहखाने में बन्द कर दिया जाय।

जब बादशाह सलामत महल मे गये तो उनकी पोती (शाहजादे अकबर की लडकी) ने कहा कि "दादाजान, यह आवाज तो मेरे बाबा की सी थी, क्या वे यहाँ आये है?"

"वेटी तेरे सामने ही तो दुर्गादास खडा था, तुम उनके यहाॅ दस वर्ष रही—क्या उसे पहचानती भी नही ?"

"नही दादा हजूर, वे हमेशा मुझे सख्त परदे मे रखते थे—कुरानशरीफ पढाने के लिए एक मुसलमान आलिम फाजिल मामानी को रखा था। अगर कभी बात करनी होती तो उसी के मार्फत करते थे।"

औरगजेब को ताज्जुब हो रहा था कि इतनी परी सी सुन्दर युवती को अपने पास इतने वर्षो तक रखकर न तो कभी उसके मजहब बदलने की सोची और न किसी राजपूत शाहजादे मे शादी करने की। मैंने इसका गाॅव जला दिया, सैकडो मन्दिर तोड दिये, परन्तु ऐसा मौका हाथ मे आने पर भी इसने छोड दिया, कुरान-शरीफ की पढाई करायी। अजब किस्म का इन्सान है यह दुर्गादास। परन्तु औरगजेब इन जज्वातो मे यकीन करने वाला नही था। दुर्गादास का मारवाड मे ही नही, बल्कि सारे राजस्थान मे सुयश फैल रहा था। वह उसे खत्म कर देना चाहता था। अब वह उसकी कैद मे था। ऐसा मौका फिर नही आने का। यह सोचकर अपने सरदारो से दरबारे खास मे उसे कत्ल करने की योजना बना रहा था।

सयोग से उदयपुरी वेगम पर्दे मे बैठी हुई सारी बाते सुन रही थी। सोचा दो एक रोज मे दुर्गादास को फाॅसी होने वाली है, क्यो नही आज रात मे जाकर एक बार उससे मिलूॅ। खूव वन-ठनकर रात के १२ बजे तहखाने की तरफ चली। सयोग मे औरगजेव जग गया, वह अव्वल दर्जे का शक्की तो था ही। थोड़े दिनो पहले ही शाहजादी जेबुन्निसा का वाकया हो चुका था। वह छिपकर बेगम के पीछे चलने लगा।

वेगम कैदखाने के फाटक पर पहुँची। मुगलो के कैदखाने के पहरेदार गूगे व बहरे हब्शी होते थे। बेगम ने पजा दिखाकर चाभी माॅगी और फाटक खोलकर भीतर चली गयी। दुर्गादास को पता लग गया था कि दो-एक दिनो मे उसे कत्ल किया जायगा। उसे किशोर अजीत सिंह को जोधपुर राज्य पर बैठाने की चिन्ता थी। १७ वर्षो से वहाॅ मुगलो की सल्तनत थी, उसपर मुसलमान फौजदार राज्य करता था। उसके कारनामो से प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही थी। हिन्दुओ पर जजिया कर लग चुका था। कुछ राजपूत तथा अन्य जाति वाले मुसलमान बन गये थे।

वेगम ने पुकारा "दुर्गादासजी, जागते है क्या ?"

"मलक एआलम, जिसको जल्द ही फाॅसी होने वाली हो, वह भला निश्चितता की नीद कैसे सो सकता है ? परन्तु आप इस समय यहाॅ कैदखाने मे ?"

"आपको छुडाने आयी हूॅ। आप चाहे तो इसी समय हम दोनो यहाॅ से दूर चले जा सकते है। बादशाह की फिक्र मत करो, वह चाहे कितना ही शक्की हो, मेरे वश मे है। मै दिलोजान से आप पर फिदा हूॅ। पन्द्रह वर्ष पहले आपको देखा था, तभी से मन मे मिलने की तमन्ना लिये हुए हूॅ।"

"नही मलिका, मेरी पत्नी है, पुत्र है, भरापूरा परिवार है। आप मेरी छोटी बहिन या वेटी की तरह है, आप ऐसी वाते न करे।"

वादशाह की बुढौती मे चहेती उदयपुरी बेगम और पैर पटकती फुॅफकारती हुई कहने लगी कि "आप अजीब शख्स है, तभी तो दुश्मन की पोती जवान शाहजादी आपके देहात के गाॅव मे इतने वर्षो तक रहकर अछूती चली आयी और अव जबकि आपको जिन्दगी और मौत के चुनाव का मौका मिल रहा है तो आप जिन्दगी की वहार छोडकर कुत्ते की मौत मरना चाहते है।"

"वेटी ! दुर्गादास पराई स्त्री के बारे मे माॅ-वहिन या वेटी के सिवाय कुछ सोच ही नही सकता। मरना तो एक दिन है ही, चाहे कल मरूॅ या दस-बीस वर्ष बाद।"

औरगजेव ने सारी वाते सुन ली थी। उसके मन मे इस बेगम तथा उसके लडके कामबक्श

के लिए शुरू से कमजोरी थी। फिर भी ऐसी वारदात के बाद उसे दण्ड देना जरूरी हो गया था, मौके की तलाश मे था।

सयोग से दूसरे दिन से ही कुछ ऐसे वारदात हो गये कि दुर्गादास की फाँसी टल गयी।

शम्भाजी को आगरे बुलाकर मार दिया गया।मराठे कुछ समय के लिए ठढे पड गये। शाहजादा अकवर मक्का चला गया। तहव्वर खा अपने आप मर गया। औरगजेब वहुत खुश था कि एक साथ ही इतने सकट टल गये।

सोचा, अव दिखाने के लिए दुर्गादास से मित्रता कर लेनी ठीक रहेगी। उसे दसरे दिन दरबार मे बुलाकर खिल्लत, वख्शी, लूनवा की जागीर वापस दे दी।

वह राजपूताना आकर मेडतिया के ठाकुर श्यामसिह के पास जाकर ठहर गया। इधर औरगजेब ने उसे कत्ल कर देने के लिए एक वडी फौज पीछे लगायी।

दुर्गादास के पास उस समय एक हजार जवान थे, जबकि मुगलो की २० हजार की वडी सेना, परन्तु इन्हे देवारी की घाटी का सहारा मिल गया। मुगल सेना अनजान घाटी मे घुस गई। राजपूतो ने उन्हे चारो तरफ से घेर लिया। पहाडो के ऊपर से विषैले तीर ओर पत्थर आने लगे। मुगल फौज वहुत से सिपाही खोकर दिल्ली की तरफ भाग गई। देवारी से जोधपुर आकर मेवाड के पहाडो से राजा अजीत सिंह को बुला लिया। १८ वर्ष बाद आज उसकी महाराज जसवतसिह के सामने की हुई प्रतीज्ञा पूरी हो रही थी।

मेवाड के राणा जयसिह ने अपनी भतीजी का विवाह अजीतसिह से कर दिया था—नयी रानी भी साथ मे थी।

सन् १६९८ मे जोधपुर मे वडा दरबार हुआ। सारे राजस्थान के राजा और जागीरदार भेट लेकर आये, यहाँ तक कि औरगजेब ने भी एक जडाऊ तलवार और मनसब की सनद भेजी। मरते समय जसवत सिंह ने दुर्गादास को एक डव्बा दिया था—उसे सवके सामने खोला गया। उसमे एक रत्न जडित मुकुट और कटार थी। मुकुट नये महाराज के सर पर रखकर कटार उनकी कमर मे बाँध दी गयी।

"महाराज, आज मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गयी, मेरे हर्ष का पारावार नही है। भगवान ने मेरी तलवार और पगडी की लाज रख ली। अव मै अपना अन्तिम समय सुधारने के लिए आपसे छुट्टी लेता हूँ।" इतना कहकर उसने अपनी राजसी पोशाक उतार दी और साथ की झोली मे से गेरुए कपड़े निकाल कर पहन लिए। सारी सभा ने नारा लगाया—"राजसन्यासी वीर दुर्गादास की जय।'

सभी की आँखे गीली थी। वृद्ध सन्यासी कमडल हाथ मे लिए धीरे-धीरे दरवार से वाहर जा रहा था।

●

कुँवर हरदौल

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि किसी प्रकार के लालच या यंत्रणा के भय से बहुत से समर्थ लोगो ने अपनी बहन-बेटियो का मुगलो के साथ विवाह कर दिया या धर्म-परिवर्तन कर लिया ।

परतु इतिहास मे बहुत से ऐसे उदाहरण भी है जहाँ सब तरह के कष्ट और यातनाओ के बावजूद कुछ महापुरुषो ने अद्भुत बलिदान किया है । इस सदर्भ मे सिखों के गुरु अर्जुन देव और गुरु गोविद सिह के दो बच्चों के बलिदान का उदाहरण दिया जा सकता है । हम यहाँ बुदेलखड की एक ऐतिहासिक घटना का उल्लेख करेगे जो अपने आप मे अनुपम और शायद अकेली है ।

बचपन से ही बुदेलखड के महाराजा छत्रसाल के बारे मे सुनता आ रहा था । महाकवि भूषण का छत्रसाल शतक मध्यमा के कोर्स मे पढा था । छत्रपति शिवाजी और मरहठो के इतिहास मे भी उनका कई स्थानो पर वर्णन है ।

सयोग से राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और मै, दोनो नई दिल्ली मे लम्बे समय तक पडोसी रहे । उन्होने कई बार बुन्देलखण्ड देखने का निमत्रण दिया । ओरछा, झाँसी और बेतवा नदी के बारे मे इतनी कविताएँ सुन चुका था कि उन स्थानो से बिना देखे ही जान-पहिचान हो गयी थी । इसी सदर्भ मे कुँवर हरदौल के बारे मे भी उनसे एक कविता सुनी थी ।

१९६४ के अगस्त मे एक दिन मित्रवर गगाशरणजी सिन्हा (ससद-सदस्य) के साथ चिरगाँव जाकर 'दद्दा' (यह राष्ट्रकवि का बोल-चाल का नाम था) के यहाँ हाजिर हो गया । उनके परिवार के आतिथ्य-सत्कार के बारे मे मित्रो से पहले ही सुन रखा था । हमे दद्दा के साथ-साथ उनके अनुज सियारामशरणजी तथा अन्य घर के लोग घेरे ही रहते ।

मैने कहा—आपकी कविता तो पढते और सुनते ही रहते है, झाँसी भी देखी हुई है । हमे तो आप वीरसिंहदेव की जन्मभूमि ओरछा दिखा दे । वही दो गोते बेतवा मे लाकर कुछ पुण्य अर्जन कर लेगे । अगर अभी तक मौजूद है तो कविवर केशोदास और वीरसिंहदेव की प्रेयसी कवयित्री 'राय प्रवीण' के निवास-स्थान भी देखने का सौभाग्य प्राप्त हो जायेगा ।

यद्यपि दद्दा ७०-७२ वर्ष के थे, परन्तु उनमे बालको की सी सरलता और चपलता थी । दूसरे दिन सुबह का प्रोग्राम रखा गया । झाँसी से अपने मित्र वृन्दावनलालजी वर्मा को ले लिया । वर्माजी का इस भूमि का चप्पा-चप्पा छाना हुआ था । 'झाँसी की रानी', 'गढकुडार' और 'विराटा की पद्मिनी' उन्होने बहुत खोजबीन के बाद लिखी थी ।

हाँ, तो हमलोग छ व्यक्ति दद्दा की कार मे चिरगाँव से रवाना हुए । साथ मे खाने-पीने

का पूरा सामान रख लिया। वर्माजी किसी समय प्रसिद्ध शिकारी थे। वन-जगल मे शायद कोई हिंसक पशु मिल जाय, इसलिए अपनी दोनाली बदूक साथ मे रख ली। दद्दा उन्हे धमका कर कहने लगे कि "दुष्ट, अब बुढ़ापे में तो यह हत्याकाण्ड बद करो।" वर्माजी सरल-भाव मे हँसने लगे। हम जब ओरछा पहुँचे, दोपहर हो गयी थी। सबसे पहले नदी के किनारे एक बडे से खँडहर मे गये, किसी समय यह अठपहलू महल रहा होगा।

कहते है, राय प्रवीण यही बैठकर सगीत-साधना किया करती थी। शायद पास मे ही किसी तख्त पर बैठे हुए वीरसिंहदेव उसकी रूप-सुधा का पान करते हुए राग-रागिनी सुना करते होगे। ऐसी भी किवदती है कि उसकी सुरीली तान को सुनकर अनेक प्रकार के पशु-पक्षी आकर वहाँ इकट्ठे हो जाते थे।

यहाँ से हमलोग महाराज के महल मे गये। इसमे ५२ कक्ष हैं, जो सन् १६०६ मे वीरसिंह देव ने बनवाये थे। अब तो यह एक बडा-सा खँडहर रह गया है, फिर भी बडे-बडे महन कमरे और वीथिकाएँ देखकर मन मे अतीत के इतिहास की परतें उभड आती हैं।

महल के विभिन्न कक्षो को देखते-देखते शाम हो गयी। कुछ थकावट भी आ गयी। भूख तो लग ही गयी थी। हाथ-मुँह धोकर डटकर नाश्ता किया। पास मे ही बेतवा बह रही थी, या ऐसा कहना चाहिए कि वर्षा के कारण उफन रही थी। यद्यपि मैं तैरना अच्छी तरह जानता था। कई बार काशी मे गगा पार कर चुका हूँ, तथापि दद्दा की मनाही और अनजान जगह के कारण नदी मे नही उतरा।

महल देखकर हमलोग फूलबाग मे आ गये। किसी समय यह बहुत ही सुन्दर उद्यान रहा होगा। अब तो एक दु खद स्मृति मात्र रह गया है।

यही हमने कुँवर हरदौल का चबूतरा देखा। दद्दा कुछ पूजा-सामग्री साथ लाए थे। हमने वह सब श्रद्धा से चढाकर चबूतरे की परिक्रमा की।

वही बैठकर वर्माजी ने उस पवित्र प्रेम ओर बलिदान की कहानी को विस्तार से सुनाया। बीच-बीच मे कुछ गीत और कविता भी सुनाते रहे, जिन्हे आज तक बुदेलखड के घरो मे लडकी के विवाह के समय गाया जाता है।

हरदौल का जन्म सन् १६०८ मे ओरछा मे हुआ था। महाराज वीरसिंहदेव के बारह पुत्र थे। जुझार सिंह सबसे बडा था और हरदौल १०वाँ पुत्र था। जब महाराज का देहात हुआ, तब हरदौल केवल सात वर्ष का बालक था। जुझार सिंह का उन्ही दिनो विवाह हुआ था। महारानी ने सती होते समय हरदौल को १४ वर्ष की नव-वधू की गोद मे देते हुए कहा—"आज से तुम्ही इस बालक की मा हो—यह मुझे प्राणो से प्यारा है। अगर इसे किसी तरह का कष्ट होगा तो उसकी पीडा मुझे परलोक मे होगी। अगर कटुवचन या अन्य किसी कारण से इसका जी दुखाया तो तुम्हे मेरे आराध्यदेव श्रीराम की सौगध है।"

उन दिनो शाहजहाँ का शासन था। मुगल बादशाहो मे अकबर को छोडकर सभी ने हिन्दुओ पर नाना प्रकार के कम-बेशी अत्याचार किये। मदिर तोड दिए गए, जजिया कर लगाया गया तथा जबरन या लोभ-लालच देकर लोगो को मुसलमान बनाया गया।

हरदौल यद्यपि १६ वर्ष का युवक था, फिर भी उसके मन मे हिंदुओ पर आए दिन के अत्याचारो का पुरजोर असर पडा। समय आने पर बदला लेने की भावना प्रबल होती गई। उसने कुछ युवको की टोली बनाई। वे नित्य घुडसवारी और शस्त्र-विद्या के साथ-साथ फूलबाग मे कुश्ती-कसरत सीखने लगे। वे सब हफ्ते मे १-२ बार गुप्त मत्रणा भी करते कि किस प्रकार यवनो के अत्याचार मे हिंदू-धर्म की रक्षा की जाय।

शाहजहाँ के दरबार मे ये खबरे बढ-चढकर पहुँची। उसने राजा जुझार सिंह को ओरछा से आगरा बुलाकर अपने पास जमानत के तौर पर रख लिया।

उन दिनो मेहदी हुसेन नाम का एक हिंदू-धर्म द्वेषी और क्रूर पठान बुदेलखड का नाजिम

था। आए दिन वह मदिरो को तोडता और नाना प्रकार के अत्याचार हिन्दुओ पर करता रहता। मनचाहे जिस युवती को जबरन अपने हरम मे बुला लेता।

जब उसके अत्याचार से लोग त्रस्त हो उठे तो एक दिन भाभी के पास जाकर हरदौल कहने लगा—"भाभी, अव ये अत्याचार नही सहे जाते। तुम्हारे चरणो की सौगध खाकर कहता हूँ कि अगर असल बुदेला हूँ तो उस अत्याचारी यवन को मार कर ही तुम्हे मुँह दिखाऊँगा।"

उसकी वात सुनकर माता-समान भाभी डर गई। सोचने लगी—कहाँ तो यह बीस वर्ष का युवक और कहाँ हाथी के समान बलवान और सर्वशक्तिमान पठान सरदार।

हरदौल ने मेहदी हुसेन को उसकी निजामत में जाकर ललकारा। पठान यद्यपि ऐय्याश और अफीमची था तथापि बहादुर और युद्ध-विशारद था। इसके बावजूद वह वीर हरदौल के वार को नही झेल सका: थोडी देर मे ही वह घायल होकर धराशायी हो गया।

अतिरजित होकर ये खवरे आगरा पहुँची। ओरछा से भागकर गए हुए पठानोंने कहा कि वहाँ के लोग हरदौल के वहकावे मे आकर बागी वनते जा रहे हैं। वैसे भी बुंदेले मरने-मारने मे चित्तौड़ के सिसोदियो से कम नही है, इसलिए सीधी चढाई न करके कूटनीति से काम लेना चाहिए।

इधर बुदेलखड मे कुँवर की वीरता के गीत गाए जाने लगे। इससे वहाँ के पुराने सरदारो के मन मे ईर्ष्या-भाव जग गया। ये खवरे भी गुप्तचरो द्वारा आगरे पहुँची। बादशाह ने ओरछा के मत्री बहादुर सिह को आगरे बुलाया। उसे नाना प्रकार के प्रलोभन देकर विश्वासघात करने पर तैयार कर लिया। हरदौल के विरुद्ध एक घृणित योजना बनी। वारी-वारी से कुछ लोग आगरा जाकर राजा जुझार सिह से रानी और कुँवर हरदोल के वारे मे कुत्सित वाते करते।

वडा भाई जुझार सिह भिन्न प्रकार का था। आगरे मे रहकर मौज, शौक और ऐय्याशी मे पड गया। छोटे भाई की वीरता के लगातार वखान से वह मन ही मन ज़लने लगा था। दरवार मे जाकर अर्ज किया कि मुझे ओरछा जाने की मजूरी दी जाय, जैसे भी होगा अमन-चैन कायम कर दूँगा।

एक दिन अचानक विना सूचना दिये वह ओरछा पहुँचा। सीधा महल में गया—देखा, देवर-भाभी आपस मे हँस-हँसकर वाते कर रहे हैं। वैसे दोनो मे माँ-बेटे का सबध था, परन्तु ईर्ष्यालु व्यक्ति को तो बुरा-ही-बुरा दीखता है। रानी और कुँवर हर्षविभोर हो गये, दोनो ने उठकर उसके पाँव छुए। उन्होंने इस प्रकार बिना सूचना दिये आने का कारण पूछा। राजा ने न तो राजी-खुशी का हाल पूछा और न कोई वातचीत की। रानी ने समझा कि शायद बादशाह नाजिम के मरने से नाराज हो गया है। जब वह विस्तार से सारी वाते बताने लगी तो राजा ने हरदौल को वाहर भेज दिया। कहने लगा—"रानी, तुमने मुझे कही मुँह दिखाने लायक नही रखा। सारी दुनिया मे तुम्हारे गुप्त-प्रेम की चर्चा फैली हुई है। दिखाने के लिए माँ-बेटे का सबध रखती रही और छिपकर प्रणय-लीला।"

रानी तो सकते मे आ गयी। रोती हुई कहने लगी—

> **जननी मरी तब सौंप्यो मम गोद लाल,**
> **पाल पाल पलना में कीन्हो जस धौल है।**
> **ईश की दुहाई तुम चरनन सपथ नाथ,**
> **पुत्र के समान मोरे लाला हरदौल है।**

परतु पापी के मन मे परतीत कहाँ। कहने लगा—"यदि तुम वास्तव मे पतिव्रता हो तो कल सुबह कुँवर को बुलाकर अपने हाथ से विष-पान कराओ। अगर यह नही करोगी तो मै माता गणेश कुँवर की सौगध खाकर कहता हूँ कि इस तलवार से अपना शीश काट लूँगा। फिर

भले तुम दोनो उम्र भर काला मुँह करते रहना ।"

रानी ने रोते हुए कहा कि "आपको उस पुण्यात्मा सती की सौगध खाने की आवश्यकता नही पडेगी । अपना और पुत्र-समान देवर का नाम उज्ज्वल रखने के लिए हम दोनो कल सुबह विष-पान करेगे ।"

दूसरे दिन सुबह रानी ने कुँवर को कलेवा के लिए महल मे बुलाया । वहाँ जाकर देखा कि मातृ-समान भाभी विलख-विलखकर विसूर रही है । दूध का कटोरा देती हुई कहने लगी—"बेटा, मै जानती हूँ कि फौज-पल्टन सब तुम्हारे साथ है । किसी की मजाल नही कि तुम्हारा बाल भी बाँका कर सके। परतु मैने सब तरह से सोच-विचार कर देख लिया है कि हमे कुल का नाम उज्ज्वल रखने के लिए आत्मबलिदान करना ही होगा । आज तुम और मैं दोनो एक साथ विष-पान करेगे । यहाँ तो पानी-धरती है, परतु स्वर्ग मे हम माँ-बेटे को कोई अलग नहीं कर सकेगा ।

जौन हाथ रोज लाल गोद मे खिलाया तुम्हे,
आज सोई हाथ दूध गरल का पिलाती हूँ ।

हरदौल को अशुभ का आभास तो पिछले दो दिनो मे हो ही गया था, परतु उसने हिम्मत नही हारी । भाभी को सात्वना देते हुए कहा—

सपथ हमारी है माता जहर खाइयो ना,
खात मै अकेलो तुम परजा समझाइयो ।
ओरछा की भूमि हमें स्वर्ग के समान लागे,
बेतवा किनारे पर चौतरा बनाइयो ।

इतना कहकर कटोरे को मुँह से लगाकर सारा दूध पी लिया ।

थोडी देर मे ही जो स्वस्थ और सुन्दर शरीर था, वह विष से काला पडकर मुरझा गया । सारे ओरछा मे बिजली की तरह खबर फैल गयी । नगरवासी शोक से छाती पीटने लगे । राजा को हत्यारा, कसाई, भ्रातृ-हता कहकर कोसने लगे ।

मनुष्य क्रोध के आवेश मे आकर जघन्य कार्य कर बैठता है । परतु आगे जाकर उसे भय और सताप भी कम नही होता । जुझारसिह ने सुना कि प्रजा विद्रोह करने पर तुली हुई है तव रात मे छिपकर थोडे दिनो के लिए ओरछा से भाग गया ।

आस-पास के गाँवो के हजारो स्त्री-पुरुष अर्थी के साथ श्मशान गये और रोते बिलखते हुए प्रिय कुँवर को श्रद्धाजलि दी ।

जिस स्थान पर दाह-सस्कार हुआ था, वही वह चबूतरा बना हुआ है । आज भी नित्य-प्रति सैकडो स्त्री-पुरुष वहाँ दर्शन करने आते है । थोडे से फूल और दूध चढा जाते हैं । बुदेली भाषा मे एक गीत भी गाते रहते है—

लाला तोरे भले हैं लछारे नाम—
गाँवन गाँवन चौतरा देशन देशन नाम बुदेला देशा के ।

जिस कटोरे मे हरदौल ने विष-पान किया था, वह भी वही एक कक्ष मे रखा हुआ है ।

सिंहगढ़ विजय

खड़े सिंहगढ़ के अजय, ये गर्वित कंगूर ।
शिब्बा बेटा जगत मे, वृथा कहाया शूर ॥

ऊपर एक प्रसिद्ध मराठी दोहे का अनुवाद है जिसे माता जीजाबाई ने शिवाजी से कहा था । अगर कोई दूसरा व्यक्ति ऐसा कहता तो उसकी जीभ खीच ली जाती, परतु यह तो देवीस्वरूपा माँ साहिबा ने स्वय कहा था जो न केवल उनकी पूज्य जननी थी, बल्कि परामर्शदात्री और शिक्षिका थी ।

शिवाजी अभी जजीरा के बडे अभियान से लौटे थे—थके हुए थे । जब माँ को प्रणाम करने गए तब उन्हें यह सुननी पडी । विजय-गर्व जाता रहा और चेहरे पर उदासी छा गई ।

बात ऐसी हुई कि जीजाबाई जब भवानी के मदिर मे पूजा करने जाती तो सामने सिंहगढ़ का ऊँचा किला दिखाई देता । कभी यह उनके पुत्र शिवाजी का था जो पुरदर की सधि के कारण मुगलो को दे देना पडा था, इसलिए पिछले चार वर्षो से उनके मन मे एक दु खभरी टीस उठती रहती थी । बहुत बार शिवाजी के मन मे उस किले को वापस लेने की बात उठती लेकिन वे मौके की ताक मे थे ।

औरगजेब ने किले की रक्षा का भार एक अजेय राजपूत वीर उदयभानु को बडी फौज के साथ दे रखा था । किला इतना सुदृढ और सीधी चढाई का था कि मनुष्य की तो बात ही क्या, साँप और गिलहरी भी उस पर नही चढ सकते थे ।

महाराज की बायी आँख फडक रही थी, अपशकुन भी हो रहे थे, परतु माँ की इच्छा के आगे कोई चारा नही रह गया । उन्होने अपने सर्वोच्च सेनापति और मित्र तानाजी मालसरे के गाँव सूचना भेजी कि वे सब काम छोड़कर तुरत सिंहगढ का किला फतह करके आये ।

उन्ही दिनो तानाजी के इकलौते बेटे का विवाह था । सगे-सबधी सब आये हुए थे, औरते मंगलाचार के गीत गा रही थी, शहनाई बज रही थी, ऐसे मे महाराज का दूत यह समाचार लेकर पहुँचा ।

तानाजी उसी समय अपने एक हजार घुडसवार वीरो को लेकर सिंहगढ जाने की तैयारी करने लगे । घर मे उदासी छा गयी । पत्नी कहने लगी कि "आप विवाह के बाद तुरत चले जाइएगा । दो-चार दिनो की तो बात ही है, अगर बीच मे जाएगे तो आए हुए मेहमान अपना अपमान समझेंगे और विवाह का सारा उत्सव फीका पड जायगा ।"

"बावली, महाराज की सेना की सारी जिम्मेदारी मेरे ऊपर है । जब उन्होने इस काम के लिए मुझे चुना है तो फिर मै एक घडी भी नही ठहर सकता । तुम लोग सब काम सम्हालो । छोटा भैया है ही, मै शीघ्र ही सिंहगढ विजय करके वापस आता हूँ ।"

जब विदा की वेला आई तो छोटा भाई सूर्याजी जिरह-बख्तर पहनकर पहले से ही तैयार था। इतने दिनो तक जिस अजेय किले को वापस लेने की हिम्मत महाराज स्वयं नही कर सके, वह आसानी से जीत लिया जायगा, यह बात उसे जँचती नहीं थी। सोचा—भाई साहब के जान की बहुत बडी कीमत है। वे मराठा फौज के सर्वोच्च सेनापति है। खतरे के समय मुझे उनके साथ रहना ही चाहिए। बहुत समझाने-बुझाने पर पैर पकडकर रोने लगा, आखिर उसे साथ लेना ही पडा।

अँधेरी वर्षा की रात। अपना हाथ भी नहीं दिखाई देता था। परतु रास्ते से चप्पा-चप्पा मराठा फौज का जाना हुआ था। मन मे उत्साह था कि आज अपना गया हुआ किला वापस लेकर अपमान की कालिमा को मिटायेगे।

सभी किले की ऊँची दिवारो के नीचे पहुँच गये, परन्तु भीतर जाने का कोई उपाय नही था। अगर दस-बीस सिपाही भी पहुँच जायँ और किसी तरह किले का फाटक खोल सके तो फिर आमने-सामने युद्ध हो सकता है।

तानाजी के पास 'यशवती' नाम की गोह (एक प्रकार की बडी छिपकली जो जमीन से चिपक जाती है) थी, जो उन्हे बेटी की तरह प्यारी थी, उसे पुचकारकर किले की दिवार पर चढने के लिए फेका। शायद जानवरो को भी शुभ-अशुभ का अदेशा रहता है। आज वह किसी प्रकार भी आगे नही बढ रही थी, बारबार नीचे चली आती। तानाजी ने प्यार से हाथ फेरते हुए कहा—"बेटी, मेरी इज्जत का सवाल है। तुमने आज तक मेरे आदेशो का पालन किया है, मुझे इस सकट के समय धोखा मत देना।"

इस बार गोह किले के ऊपर जाकर चिपक गयी। सबसे पहले ऊपर चढे स्वय तानाजी।

सिपाहियो ने बहुत-कुछ आरजू-मिन्नत की कि ऊपर पहरेदारो का खतरा है, पहले हम जाकर आपको बुला लेगे। परन्तु मराठा सरदारो का यह नियम था कि सकट के समय वे हमेशा आगे रहते थे और यही कारण था कि सैनिक उनके लिए जान देने को तैयार रहते थे।

ऊपर जाकर मजबूती से एक महराब से रस्सा बाँध दिया गया और बहुत से मावले सैनिक बारी-बारी से किले मे पहुँचने लगे।

किले के भीतर पहरे का पूरा बदोबस्त था। बहुत सावधानी बरतने पर भी पहरेदारो को पता लग गया और उसी समय खतरे की घटी बजी। चारो तरफ से राजपूत और मुगल-सैनिको ने थोडे से मराठो को घेर लिया।

दैत्य के समान शरीरवाला दुर्गाध्यक्ष उदयभानु राठौर भी अपनी बहुत बडी तलवार लेकर आ गया। उसके बल-पौरुष की सारे महाराष्ट्र मे चर्चा थी।

तानाजी ने सोचा कि जब महाराज ने अफजल खाँ जैसे लम्बे-चौडे राक्षस को मार गिराया तो क्यो न मै इस धर्मद्रोही को मारकर यश हासिल करूँ।

दोनो वीर तलवारे लेकर भिड गये। बहुत देर तक दोनो लडते हुए थक गए। परन्तु तानाजी तो जान की बाजी लगाकर लड रहा था। आखिर उदयभानु करारी चोट खाकर बेहोश होकर गिर गया।

उसे गिरते देखकर उसके अगरक्षक ने पीछे से तानाजी पर वार करके उनका सिर काट लिया। दोनो एक साथ प्राण-विहीन होकर गिरे। अपने समय के दो अद्वितीय वीर आस-पास लेटे हुए थे। अब उम्र भर का वैर-विरोध समाप्त हो गया था।

सेनापति की मृत्यु की सूचना से बची हुई थोडी-सी मराठा फौज मे भय समा गया। वे हथियार डालकर आत्मसमर्पण की सोच रहे थे कि सूर्याजी ने जोर से चिल्लाते हुए कहा—"वीरो,भैया तो वापस आने से रहे, अगर उनके प्रति तुम्हारी कुछ श्रद्धा रही हो तो आज जैसा मौका फिर नही आयेगा। मरना तो दोनो तरह से है। क्योकि हमारे नायक ने

किले से नीचे उतरने की रस्सियों को काट दिया है, फिर कायर की मौत मरकर महाराज और भैया के नाम पर बट्टा मत लगाओ।"

थके हुए मराठों में नया जोश आ गया। बढ़-बढ़कर वार करने लगे। एक ही धुन थी कि किसी प्रकार किले के फाटक को खोलकर बाहर के बचे हुए सैनिकों को भीतर आने का मौका मिल जाय।

मुगल और राजपूत फौज भी अपने अजेय सेनापति की मौत को सुनकर डर गयी थी। वे मराठों की तलवार और भालों के सामने नहीं ठहर सके। फाटक खुल गया। बचे हुए पाँच सौ मराठा वीर हर-हर महादेव कहते हुए भीतर आ गये। राजपूतों ने हिम्मत हारकर हथियार डाल दिये।

एक तेज घुड़सवार को महाराज को सूचना देने रायगढ़ भेजा गया। वे प्रतीक्षा कर रहे थे। सारा समाचार सुनकर उनकी आँखों में आँसू आ गये। सोचने लगे—'बहुत महँगी पड़ी यह जीत।'

माता के पास जाकर प्रणाम करके कहने लगे—"माँ साहिबा, गढ़ आला पण सिंह गेला।" अर्थात् किला आया, पर सिंह चला गया।

●

शाहजी-शिवाजी मिलन

"शिव्बा वेटा, आजकल शरीर अस्वस्थ रहता है। वैसे तुम्हारे साम्राज्य मे मुझे सब तरह का आराम है। तीनो बहुए रात-दिन सेवा मे रहती है, परतु एक बार तुम्हारे पिताजी को देखने का मन होता है। ३२ वर्ष पहले उन्होने हमारा त्याग किया था, उस समय तुम जन्मे भी नही थे। भवानी की दया से अब ५२ किलो के अधिपति हो, सारे महाराष्ट्र मे तुम्हारी तूती बोलती है। एक बार वे आकर देखे तो सही कि १८ वर्ष पहले एक किशोर को पूने के छोटे से गॉव की जागीर दी थी, अब उसका न केवल बीजापुर बल्कि दिल्ली सल्तनत तक लोहा मानती है। उन्हे यह सब देखकर खुशी ही होगी।"

"मॉ साहिवा, मैंने भी कई बार पिताजी को बुलाने की सोचा। परन्तु जिन्होने हमे एक प्रकार से त्याग दिया, ३२ वर्ष के लम्बे समय से सुध नही ली, १८ वर्ष पहले जब आप मुझे लेकर बगलोर गई तब उस समय भी आपको अपमानित होकर वापस आना पडा, वे सब बाते भुलाई नही जा सकती। बीजापुर से हमारी दुश्मनी है और वे वहाँ के सूबेदार है। इसलिए भी उनका यहाँ आना खतरे से खाली नही है। उनके साथ पठान और तुर्क जासूस भी आ सकते हैं।

'शिव्बा! तुम यह क्यो भूल जाते हो कि वे तुम्हारे पिता और मेरे आराध्य है। तुमने छोटे से जीवन मे बहुत से खतरे उठाए है, फिर तुम्हे डर किस बात का है। दो महीने बाद होली का त्यौहार है, जेजूरा के खडोबा भगवान के उत्सव मे उन्हे बुलाने के लिए निमत्रण देकर सेनापति तानाजी को भेजो। जरूरत समझो तो साथ मे शम्भा को भी भेज दो। मेरा मन कहता है कि वे अवश्य आवेगे।"

फरवरी १६६१ की बात है, रायगढ के किले के फाटक मे चार सुसज्जित आदिलशाही घुडसवार आये। लोग समझ गये कि कई दिनो से जो चर्चा चल रही थी, वह सफल हुई है। शाहजी महाराज जल्द ही राजगढ पधारेंगे। एक व्यक्ति ने कहा—"इन शत्रुओ के आदमियो का क्या भरोसा? यहाँ की सारी जानकारी बीजापुर मे दे देंगे।" दूसरा कहने लगा—"जब मुगल बादशाह औरगजेब का मामा शाइस्ता खॉ और बीजापुर के दैत्य के समान सेनापति अफ़जल खॉ को यहाँ मुँह की खानी पडी तो फिर हमे डर किस बात का है? हमारे महाराज को देवी भवानी का इष्ट है। देख लेना उनका बाल भी बॉका नही होगा।"

थोडी देर बाद किले के फाटको पर तुरही बजने लगी, तोपे छूटने लगी। लोग समझ गये कि महाराज के पिता शाहजी जल्द ही पधारेगे। शिवाजी महाराज के मत्री, सेनापति और सेठ-साहूकार स्वागत के लिए बाजे-गाजे के साथ गये। पिता-पुत्र के मिलने का स्थान जेजूरी मे खडोबा के मदिर मे निश्चित हुआ।

शाहजी सुदूर बंगलोर से सदल-बल आ रहे थे। रास्ते मे जिन गाँवो से गुजरते, तोरन-वदनवार सजे थे। लोग झुक कर जुहार करते। शिवाजी महाराज के साथ उनकी भी जय-जयकार करते।

इस प्रकार १५ दिनो मे वे जेजुरी पहुँचे। वहाँ के सारे घरो में नया रग किया गया, रास्ते मे तोरण बने, स्त्री-पुरुष नये-नये कपडे पहने अगवानी के लिए उमड पडे। मदिर के दरवाजे पर उन्हे हाथी पर से चाँदी की सीढी लगाकर सम्मानपूर्वक प्रधान मत्री नेताजी पालकर ने उतारा। वे मदिर मे गये, वहाँ जीजा माता उपस्थित थी। किसी समय की युवती अब वृद्धा हो चुकी थी, सलवटे पड गई थी, परन्तु चेहरा ओजपूर्ण था। महाराष्ट्र-मडल के अधीश्वर की जननी और प्रजा की पूजनीया माँ साहिबा थी।

३२ वर्षो के लम्बे समय के बाद पति से मिल रही थी, अगर एकात होता तो शिकवा-शिकायत भी करती परतु मदिर में सैकडो विशिष्ट व्यक्ति मौजूद थे। झुककर पति के पैरो मे गिर पडी। पुरानी यादे आ गई —आँसू उमड पडे। आज सम्माननीय माताश्री भूल गई कि उसे इस हालत मे बहुत से लोग देख रहे है, वे मन मे क्या समझेंगे?

दोनो स्वर्णसिहासन पर बैठे, पडितो ने मत्रोच्चार करके भगवान खडोबा की पूजा सम्पन्न की। भोग के बाद आए हुए लोगो को प्रचुर प्रसाद दिया गया। न्यौछावर करके हजारो रुपये वहाँ पर इकट्ठे हुए भिखमगो को बाँटे गए।

शिवाजी महाराज अपने शिविर से पिता से मिलने चले। साथ मे भेट के लिए अनेक प्रकार के चाँदी-सोने के सामान और मोती-हीरो से लदे घोडे और हाथी थे।

एक थाल मे घृत भरा हुआ था। उस समय की रीति के अनुसार दोनो ने उस थाल मे एक-दूसरे की परछाईं देखी, इसके बाद पर्दा हटा दिया। नगारे और दुदुभी बजने लगी। पुत्र पिता के पैरो पर गिर पडा। शाहजी ने उठाकर छाती से लगा लिया। चारो तरफ से जय-जयकार होने लगी। इतने मे सेवक बालक शम्भाजी को ले आये। आज पहली बार दादा अपने पोते को देख रहे थे। प्यार से उसे गोद मे बिठाकर चूमने लगे। जीजा माता पति, पुत्र और पौत्र के मिलन को देखकर आत्मविभोर हो रही थी। आज वह परित्यक्ता विरहिणी नही, बल्कि गौरवशालिनी पत्नी, माता और दादी थी।

महाराज ने पिता से राजगढ पधार कर भोजन और आराम करने की प्रार्थना की।

सोने की पालकी थी, हीरे-मोती जडे थे। शाहजी जूते उतार कर पालकी मे जा बैठे। शिवाजी महाराज उनके जूते अपने हाथो मे लिये पैदल चल रहे थे। प्रजाजन ऐसी पितृभक्ति देखकर धन्य-धन्य कहने लगे। माता के चेहरे का भाव देखकर वे पुरानी बातो को भूल गये थे।

दादा, पुत्र और पोता सोने के थाल मे भोजन कर रहे थे, जीजा बाई परोस रही थी। आज उसका जीवन धन्य हो गया था। भोजन करने के बाद शाहजी पलग पर लेटकर आराम करने लगे। पुत्र शिवाजी बैठकर पैर दबाने लगे।

"पिताजी, इन पैरो मे धर्म-देशद्रोही बाजीराव घोरपडे ने बीजापुर सल्तनत के आदेश से जजीर डाली थी। मैने उसे मारकर उसकी जागीर मे गधो से हल चला दिये है। आज वहाँ के महलो मे नाचरग की जगह चील और कौए बोल रहे हैं।"

"बेटा, मैंने तुम्हारी सारी शौर्यगाथा सुनी थी, परतु तुम दुश्मन की रियासत मे केवल १०० सिपाहियो को लेकर चले गये, यह बात युद्ध-नीति के प्रतिकूल है। हमेशा शत्रु के घर में पूरी तैयारी करके जाना चाहिए।"

रात मे दरबार का आयोजन हुआ। कवि अजानदास के सिवाय जयपुर से युवक कवि भूषण भी आये थे। शिवाजी की जो यश-गाथा गायी गई, उसे सुनकर शाहजी की आँखो मे हर्षाश्रु आ गये। कवि भूषण ने अपनी तेजस्वी आवाज मे यह छद कहा था।

राखी हिन्दुवानी हिंन्दुवान को तिलक राख्यो, अस्मृति पुरान राखे वेद विधी सुनी मे ।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की, धरा मे धरम राख्यो गुन राख्यो गुनी मे ।
भूषण सुकवि जीति हद्द मरहट्ठन की, देस-देस कीरति बखानी तव सुनी मे ।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी, दिल्ली दल दाबि के दिवाल राखी दुनी मे ।

दोनो कवियो को चाँदी के हौदे सहित घोडे और अशर्फी के तोडे भेट मे दिये गये । अन्य सबको सोने की कठी और कपडो के पाँच वस्त्र दिये गये ।

शाहजी महाराज १५ दिनो तक शिवाजी के साम्राज्य मे रहे और उनके विभिन्न किलो का निरीक्षण किया ।

२५ वर्ष पहले का पूना गाँव अब बडा शहर हो गया था । जीजा माता ने ५ वर्ष के शिवा से सर्वप्रथम यहाँ की जमीन मे सोने का हल चलवाया था । आज वह पथरीली जमीन हरीभरी शस्य श्यामला हो गयी थी । शाहजी हर्ष और गर्व से फूले नही समाते थे । सबसे सुखी थी जीजा माता, जो साधारण गृहस्थ स्त्री की तरह पति, पुत्र और पौत्र को हाथ मे नाना प्रकार के व्यजन बनाकर खिला रही थी । विदा-वेला आयी । शिवाजी ने जब पैर छुए तो पिता ने उन्हे अक मे भर लिया—शम्भाजी को छाती से लगाकर सिर सूँघते रहे ।

जीजा माता, जिनके सामने बडे-बडे सरदार और सेनापति कापते रहते थे, आज सब प्रकार के सयम और लाज के बाँध तोडकर सुबक-सुबक कर रोने लगी थी ।

"प्रभु, मेरी विनती है कि आप बगलोर छोडकर काशी बहिन और चिरजीव व्यकोजी सहित यहाँ आकर रहे । वैसे शिव्वा और बहुएँ मेरी हर तरह से सेवा करती है, परन्तु लोग चाहे मुँह से न कहे, मन मे तो मुझे परित्यक्ता पत्नी ही मानते है । मैं आजकल अस्वस्थ रहती हूँ । अतिम दिनो मे आप रायगढ मे रहकर हमे चरण-सेवा का सौभाग्य दे ।

मातृ-दर्शन

सन् १६५७ की अक्टूबर की एक साँझ—सुहावनी सध्या—गुलावी मौसम। शिवाजी देवी भवानी के मदिर मे वाहर आये तो चकित रह गये।

खच्चरो और बैलो का लम्बा सा-कारवाँ—हीरे, पन्नो और जवाहरातो से भरे सोने-चाँदी से दबे पशु धीरे-धीरे किले मे प्रवेश कर रहे थे। पतप्रधान मोरोपत ने जिज्ञासा शात की—"महाराज, अम्बाजी सोनदेव ने कल्याण के सूबे पर आधिपत्य कर लिया है और लूट का सामान लेकर आये है।" शिवाजी ने अम्बाजी को गले से लगाया और बहुमूल्य कठहार से पुरस्कृत किया। वे विस्मित थे कि कल्याण का शक्तिशाली सूबेदार इतनी आसानी से कैसे हार गया।

"शाबाश अम्बाजी, तुम्हारी स्वामिभक्ति और बहादुरी पर हमे गर्व है।" शिवाजी की छाती फूल उठी अपने बहादुर सेनापति को देखकर। पर वे चौके, पूछा—"इस पालकी मे क्या है?"

अम्बाजी ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया—"महाराज, इस पालकी मे कल्याण की सबसे सुदर नाजनीन है—मुल्ला अहमद की पुत्र-वधू सलमा, जिसकी खूबसूरती की शोहरत सारे महाराष्ट्र मे फैली हुई है। इसके क्रूर श्वसुर ने सैकडो हिन्दू ललनाओ की आबरू के साथ खेला है—आज उससे बदला लेने का सुदर अवसर मिला है।"

अम्बाजी अपनी सफलता पर फूले नही समा रहे थे। परतु शिवाजी विचलित हो उठे। उन्होने आँखे मूँद ली—उन्हे अपना बचपन याद आने लगा। पिता शाहजी बीजापुर के सुल्तानो के यहाँ जागीरदार एव फौजी अफसर थे। तीन हजार मराठा घुडसवार और पैदल सिपाहियो की उनकी निजी फौज थी। माता जीजाबाई कर्तव्यनिष्ठ, साहसी एव धर्मपरायणा थी, किन्तु परमात्मा ने उन्हे रूप नही दिया था।

शाहजी ने तीस वर्ष की अवस्था मे तुका बाई नाम की एक युवती से विवाह कर लिया और उसी के साथ बगलौर मे रहने लगे। सन् १६२६ मे उन्होने जीजाबाई को शिवनेर के किले मे भेज दिया। दुखिया जीजाबाई ने अपना सारा प्यार बालक शिवा पर उडेल दिया और धैर्यपूर्वक दिन बिताने लगी।

सौभाग्य से दादाजी कोणदेव जैसे स्वामिभक्त अभिभावक तथा समर्थ गुरु रामदास का मार्गदर्शन मिला। इस कारण बचपन से ही शिवा मे अच्छे संस्कार जमने लगे, साहस और वीरता के साथ धर्म के प्रति आस्था के लक्षण नजर आने लगे।

उन दिनो विवाह बचपन मे हो जाते थे। जब वे चौदह वर्ष के हुए तब जीजाबाई ने पति को पुत्र के विवाह के लिए लिखा। शाहजी ने उन दोनो को बगलौर मे अपने निवास-स्थान पर

बुलाया। वहाँ सौत तुका बाई ने उनका तरह-तरह से अपमान किया। परतु जीजाबाई ने बारह वर्ष की कठिन तपस्या से अपने को बहुत सयत कर लिया था।

उन्होने शाहजी से केवल इतना कहा—"आपके सुख मे ही मेरा सुख है। आपका सारा धन और जागीर तुका बाई और उनके पुत्र व्यकोजी को फूले-फले। शिवा को केवल पूना का गॉव दे दीजिए। यदि उसमे योग्यता होगी तो वह उसे बढा लेगा।

इस प्रकार पद्रह वर्ष की छोटी-सी अवस्था मे शिवाजी पूना के जागीरदार बने। उन्होने घुडसवारो की एक छोटी-सी टुकडी तैयार कर लीं और मौका देखकर आस-पास मे इलाको पर छापे मारने लगे। मुसलमान सूलतानो और अधिकारियो के अत्याचार मे लोग बहुत दु खी थे, इसलिए उनकी विशेप रोकथाम नही हुई। लूट का सामान लाकर माता के सामने रख देते। इसमे से तीसरा हिस्सा सिपाहियो मे बॉट दिया जाता। कुछ अश जीर्ण-शीर्ण मदिरो के पुनरुद्धार मे, कुएँ, बावडियो की मरम्मत या निर्माण मे व्यय किया जाता। बाकी बचा हुआ धन बेहतरीन घोडे और नए-नए अस्त्र-शस्त्र के खरीदने मे लगाया जाता था।

सब प्रकार से साधनसपन्न होते हुए भी वे अपने को स्वामी रामदास का सेवक मात्र मानते थे, इसलिए अपने ध्वज का रग भी भगवा (गेरूआ) रखा। सन् १६५७ मे उनकी अवस्था केवल तीस वर्ष की थी, किन्तु इसी बीच महाराष्ट्र के बहुत से किलो पर उनका कब्जा हो गया। बीस हजार सुसज्जित मराठा वीरो की उनके पास फौज थी। दुश्मनो की बडी से बडी फौज पर बाज की तरह झपटते और लूटकर वापस रायगढ के अपने अभेद्य दुर्ग मे चले आते। पचीस कोस का धावा मारकर मराठा फौज रायगढ बेखटके वापस पहुँच जाती तो लोगो को शुरू-शुरू मे विश्वास नही होता। बाद मे अफगानो और पठानो मे धारणा बन गई कि शिवाजी को जिन्नातो का सहारा मिल गया है। फिर तो वे उनका नाम सुनते ही हथियार छोड कर भाग खडे होते।

दिन-रात युद्ध मे लगे रहने पर भी अपनी माता से उन्हे धार्मिक प्रेरणा मिलती रहती थी। यद्यपि हिंदू-धर्म के प्रति पूरी आस्था थी, यवनो के आए दिन के अत्याचार और मदिरो के विध्वस से उनका चित्त बहुत खिन्न हो उठता, फिर भी दूसरे धर्मो की उन्होने कभी निंदा नही की और न किसी मस्जिद अथवा गिरजे को नष्ट-भ्रष्ट किया। यही नही, उन्होने जीर्ण-शीर्ण मस्जिदो की मरम्मत भी करायी। अपने सेनापतियो को भी आदेश दे रखा था कि किसी भी धार्मिक स्थान को हानि न पहुँचायी जाय और न दुश्मनो की किसी स्त्री की बेइज्जती हो।

शिवाजी ने देखा कि जवाहरातो से सजी हुई एक परम सुन्दरी युवती सहमी और सिमटी सी एक ओर खडी है। कुछ देर तक वे अपलक उसकी ओर देखते रहे। फिर कहने लगे—"बहन, उम्र मे तुम मुझसे छोटी हो पर तुझमे मुझे अपनी माताजी दिखाई देती है। फर्क इतना ही है कि परमात्मा ने तुम्हे अतुलनीय रूप-सम्पत्ति दी है, लगता है, फुर्सत के समय अत्यत साध से तुम्हारी रचना की है। सौभाग्य से इस सौन्दर्य का थोडा सा अश भी अगर मेरी माँ को मिल जाता तो उसे दुहाग का दु ख नहीं सहन करना पडता और मै भी सुन्दर होता। मेरे सेनापति ने तुम्हारा अपमान किया, तुम्हे बिना वजह तकलीफ दी। जिस धारणा से वह तुम्हे यहाँ ले आया, उसे सोचकर लज्जा से मेरा सर झुका जा रहा है। यदि माँ और गुरुजी सुनेगे तो सोचेगे इसके लिए शिवा का सकेत रहा होगा। तुम चिता न करो। तुम्हे इज्जत के साथ तुम्हारे खाविंद के पास पहुँचा दिया जायगा। मेरी बहन नही है, आज से तुम मेरी छोटी बहन हुई और मै तुम्हारा भाई।"

पास खडे सैनिको ने देखा शिवाजी की ऑखे गीली हो गई है। थोडी देर बाद आश्वस्त होकर क्रोध मे कॉपते हुए उन्होने कहा—"अम्बाजी, तुमने अपनी मूर्खता से इतनी बडी जीत को हार मे बदल दिया। लोग जब सुनेगे कि शिवाजी अपने हरम के लिए परायी बहू-बेटियो को लूटता है तो हमारे बारे मे क्या सोचेगे। कहाँ रह जायगी मेरी इज्जत ? फिर तो मराठे

सिपाही और सरदार औरतो को दिन-दहाडे बेआबरू करेगे।पिछले चौदह वर्षो से तुम मेरे साथ हो। क्या कभी इस प्रकार की इच्छा या लालसा का आभास भी तुम्हे दिखाई दिया ? फिर कैसे तुम्हे हिम्मत हुई कि मेरे आदेश की उपेक्षा कर एक अबला दुखी नारी को यहाँ ले आये। अम्बाजी, तुमने मेरी आबरू मे बट्टा लगा दिया। यदि राजा स्वय अपना शील खो बैठेगा तो सैनिको का तो बाँध ही टूट जायगा। क्या यही मेरी हिंदू पद-पादशाही का रूप होगा ? कसूर तो तुम्हारा इतना है कि तुम्हे फाँसी पर लटका दिया जाय। चूँकि इस समय मै, स्वय क्रोध मे हूँ, इसलिए तुम्हारा फैसला मैं प्रधानमत्री मोरोपत पर छोडता हूँ।"

कहाँ तो अम्बाजी विजय की खुशी मे झूमता हुआ आया था और कहाँ सबके सामने उसे यह अपमान सहना पडा। पतप्रधान मोरोपत का अम्बाजी पर स्नेह था। उसने अपनी देख-रेख मे उसे सब प्रकार से योग्य बनाकर इतने बडे ओहदे पर पहुँचाया था। हाथ जोडते हुए शिवाजी से उन्होने प्रार्थना की कि "अम्बाजी अभी युवक है और कुछ अबोध भी, किंतु वीर और सच्चा स्वामिभक्त है। यह इसका पहला अपराध है, इसे क्षमा किया जाय।"

सलमा समझने की कोशिश करने लगी कि शिवाजी इसान है या फरिश्ता। उसके श्वसुर के यहाँ लडाई मे जीती हुई सैकडो स्त्रियाँ लायी जाती। कुछ को तो चुनकर वह अपने लिए रख लेता और बाकी को सिपाहियो मे बाँट देता। उसकी आँखो से अश्रुओ की अविरल धारा फूट पड़ी।

कुछ दिन बाद सलमा बिदा हो रही थी, भाई के यहाँ से अपने ससुराल। शिवाजी ने अपनी मुँहबोली बहन को गले लगाकर विदाई दी। खच्चरो और घोडो पर दहेज का सामान था। सुनहरे-रुपहले पर्दे से ढँकी पालकी, बगल मे सुरक्षा के लिए घोडे पर चढा हुआ जा रहा था सेनापति अम्बाजी सोनदेव। अब वह अपने महाराज की थाती को वापस लौटाने जा रहा था।

पालकी जब आयी थी, तब वह सिसक रही थी—भय, चिंता और आशका के आँसुओ से और जब पालकी जा रही थी तब सिसक रही थी—प्यार, आनन्द और उल्लास भरे आँसुओ से।

●

अफजल खाँ का वध

जव भी समय मिला, घूमता रहा हूँ। पिछले दिनो महाराष्ट्र के ऐतिहासिक स्थलो को देखने की इच्छा हुई। मराठो का इतिहास वहुत-सी जिज्ञासाएँ एव कौतूहल जगाता है। मराठी मे यथेष्ट सामग्री उपलब्ध है, अग्रेजी मे भी, किन्तु आश्चर्य है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी मे इतनी नही है।

जून १९७४ मे महावलेश्वर से प्रतापगढ का ऐतिहासिक दुर्ग देखने गया। यद्यपि अव ऊपर तक पक्की सडक बन गई है, फिर भी रास्ता वहुत ही घुमावदार और उतार-चढाव से भरा है। आज भी इसे दुर्गम कहा जा सकता है। फिर तीन शतक पहले तो अगम ही रहा होगा।

ऊपर चिलचिलाती धूप, पथरीला इलाका। कुछ समय पहले ही मेरी जाँघ की हड्डी टूट चुकी थी, इसलिए किले तक नही जा पाया। नीचे घाटी मे एक समतल चट्टान पर सहारा लेकर वैठ गया। बच्चे दौडते हुए ऊपर किला देखने चले गये। दूर-दूर तक सह्याद्रि की शृखलाएँ जगलो से भरी थी। आँखे उन पर टिक जाती तो मराठो के इतिहास की घटनाएँ मानस पर उभर आती।

इधर-उधर देख ही रहा था कि कुछ दूर समतल जमीन पर बना एक खूबसूरत मकवरा दिखाई पडा। कौतूहल जगा, इस वीरान पहाडियो के वीच घने जगल मे यह मकवरा!

सहसा स्मृति जाग उठी। यही तो वह स्थान है जहाँ शिवाजी ने आदिलशाही फौज को शिकस्त दी थी। धीरे-धीरे मकबरे की ओर बढा। अन्दर जाकर देखा कि दो कवरे है। एक लम्बी और वडी, दूसरी औसत साधारण-सी। पता चला कि पहली है कद्दावर अफजल खाँ और दूसरी उसके अंगरक्षक सैयद बण्डा की।

हुमायूँ, अकवर, शाहजहाँ, औरगजेब और न जाने कितने बादशाहो और पीरो की कवरे देखी, मगर वे इतनी वडी नही थी। वरबस स्मृति के परदे पर इतिहास की परते उभरने लगी।

मुगल बादशाह शाहजहाँ और औरगजेब के पास वहुत वडी शक्ति थी। लगभग सम्पूर्ण भारत पर उनकी सार्वभौम सत्ता की धाक थी।

महाराणा प्रताप के बाद राजस्थान के राजपूत भी मुग़लो के साथ हो गए थे। उनमे मुगलो के विरोध का जोश उतर चुका था। जसवन्त सिंह और मिर्जा राजा जयसिंह जैसे तलवार के धनी और कुशल राजनीतिज्ञ मुगल दरबार की इज्जत तथा शान थे।

एक प्रकार से सारा भारत मुगलों की आधीनता स्वीकार कर चुका था। फिर भी दक्षिण

मे गोलकुण्डा और बीजापुर की दो ऐसी रियासते थी जिन्होंने मुगल सत्ता के आगे घुटने नही टेके। वर्षों तक सघर्ष चलता रहा। शाहजहाँ और औरंगजेब दोनो ने बहुतेरी कोशिश की, मगर तोपो और तलवारो की चोटे इन रियासतो को गिरा न सकी।

शाहजहाँ का जीवन खप गया। खुद के बनाये ताजमहल मे मुमताज महल के कब्र की बगल मे दफना दिया गया। औरगजेब की जिन्दगी का बहुत बडा समय इन दोनों रियासतो को उखाडने मे लगा, किन्तु कामयाबी हासिल न हो पाई। बाद मे छल-कौशल से बीजापुर और गोलकुण्डा को सर कर पाया। दोनो रियासतो को धोखा दे गये—उन्ही के विश्वस्त सरदार और सामन्त।

बीजापुर के पास प्रतिरोध की शक्ति थी। यदि उसके दरबारियो को औरगजेब न फोडता तो बीजापुर की सल्तनत गिरती नही। सुलतान अली आदिलशाह के पास पठान, मराठे और तैलगो की बडी फौज थी। ये कौमे आज भी मशहूर लडाकू मानी जाती है। अफजल खाँ, इखलास खाँ, सिद्दी इब्राहिम जैसे दिलेर और माहिरे जग जवानो के अलावा शिवाजी के पिता शाहजी भोसले, चाचा मालोजी, बीजाराव घोरपडे जैसे वीर और युद्धप्रवीण मराठे बीजापुर की फौज मे थे।

भारत के लिए यह समय अत्यत सकटपूर्ण था। भारतीय सस्कृति और सभ्यता उत्तर भारत मे तुर्कों के आगमन से ही विपन्न थी। तुर्क, पठान और मुगलो ने जिस प्रकार उत्तर भारत मे हिंदू-सस्कृति को नेस्त-नाबूद करने की जिहाद बोल रखा था, उसी प्रकार दक्षिण मे आदिलशाह इस्लामी जोश मे हिन्दू-धर्म पर कठोर प्रहार कर रहा था। दुर्भाग्य यह था कि इस कार्य का विरोध करने वाला कोई नही था।

उन दिनो शिवाजी ३०-३२ वर्ष के युवक थे। छोटी-सी सेना उनके पास थी, साधन अत्यन्त सीमित। माता जीजाबाई और समर्थ गुरु रामदास की शिक्षा-दीक्षा से संस्कारित होने के कारण अपने देश की सस्कृति पर आए दिनो के अत्याचार और प्रहार उनकी सहन-शक्ति को चुनौती दे चुके थे।

अत मे हिंदुओ पर किए जाने वाले अत्याचार का प्रतिरोध करने के लिए उन्होने अपने से कई गुनी बडी शक्ति दिल्ली और बीजापुर से टकराने का निश्चय कर लिया।

दिल्ली दूर थी, पर बीजापुर तो उनके कोकण से सटा हुआ था। शिवाजी ने आए दिन बीजापुर की फौजो पर छापे मारने शुरू कर दिए। आदिलशाह को खबरे मिलने लगी, आज यहाँ शिवाजी ने धावा किया तो कल वहाँ। धीरे-धीरे यह खबरे भी आईं कि किले भी छीने जा रहे है।

आदिलशाह को यह अहसास होने लगा कि यदि शिवाजी को न दबाया जा सका तो उसकी सल्तनत खतरे मे आ सकती है। अकुर को वृक्ष बनने से पहले ही नष्ट कर देना चाहिए अतएव उसने खवास खाँ और बाजीराव घोरपडे को जिम्मेदारी सौपी कि शिवाजी ने जिन इलाको पर दखल कर लिया है, उसे वापस छीन ले। उसे पकडकर बीजापुर लाया जाय। सुल्तान के इरादो की खबर गुप्तचरो ने शिवाजी तक पहुँचायी। बाजीराव घोरपडे भोसला वश का ही था, किन्तु तन और मन से आदिलशाह का खादिम था। इसी ने अफजल खाँ के साथ जाकर मध्य रात्रि मे शिवाजी के पिता शाहजी को अचानक बन्दी बना लिया गया था। अपने ही हाथो से उनके हाथो और पैरो मे लोहे की बेडियाँ डाल दी।

अभी युद्ध की तैयारियाँ हो ही रही थी कि शिवाजी अचानक अपने थोडे से बहादुर घुडसवारो को लेकर घोरपड़े की जागीर मुधेल मे जा पहुँचे। हालाँकि घोरपडे की फौज ज्यादा थी, किन्तु उसके सैनिको के हृदय मे शिवाजी की राष्ट्रभक्ति ने प्रभाव बना लिया था। वे जानते थे कि हिन्दुवानी की रक्षा के लिए यह नौजवान अकेला ही दो बडी ताकतो से जूझ रहा है!

थोडी-सी लडाई के बाद शिवाजी घोरपडे के महल मे जा पहुँचे। वह चकित रह गया। फिर भी हिम्मत हारा नही। वीर था ही, साहसी भी कम नही था, अनेक युद्ध उसने स्वय सचालित किये थे। लपक कर तलवार सम्हाली और शिवाजी से भिड गया। मगर उसकी शकल बता रही थी कि वह इस बार मानो साक्षात् काल से लड रहा हो। समय अधिक नही लगा। शिवाजी की तलवार के एक झटके ने उसका सर धड से अलग कर दिया।

खवास खाँ को जब यह खबर मिली तो वह सकते मे आ गया, हिम्मत पस्त हो गयी। आदिलशाह के पास दरख्वास्त पेश की कि हुजूर, वाकयात कुछ ऐसे हो रहे है कि फौजो मे घबराहट है और मेरी तबीयत इन दिनो नाशाज रहती हे। लिहाज़ा यह अहम् जिम्मेदारी किमी दूसरे सेनापति के सुपुर्द की जाय तो अच्छा रहे।

आदिलशाह भाँप गया कि खाँ शिवाजी से डर गया है। अगर इसे जग के लिए भेजा गया तो शिकस्त खानी पडेगी, इसलिए उसने सबसे बडे सेनापति अफ़ज़ल खाँ को बुलाया।

अफ़जल कद्दावर और हिम्मती था। लडाई और मोर्चेबदी का उसे अच्छा अनुभव था। इसके अलावा वह राजनीतिक चालबाजियो मे भी कुशल माना जाता था। सैनिको के मन मे ऐसा यकीन था कि उसके साथ रहने पर जीत अवश्य होगी। तहेदिल से बीजापुर के सुलतान के प्रति वफादार भी था। औरगजेब ने कई बार कोशिश की बहुत बडे-बडे प्रलोभन दिये, मगर वह बीजापुर छोडने को राज़ी नही किया जा सका।

आदिलशाह ने अफजल से शिवाजी के मसले पर बात की। खाँ ने कहा—हजूर, "आप फिक्र क्यो करते है। उस छोटे से पहाडी चूहे को पकडने के लिए तो मेरे बेटे फाजिल खाँ और मूसे खाँ ही काफी है। अगर आपका यही हुक्म है तो खुद बडी फौज के साथ कूच करता हूँ और दो महीने के दरम्यान उसे लाकर आप के कदमो के डाल दूँगा।"

अफजल खाँ के हरम मे जब रामगढ कूच करने की खबर पहुँची तो कोहराम मच गया। पिछले दस वर्षों मे शिवाजी की कामियाबियो ने दुश्मनो मे कुछ ऐसा आतक फैला दिया था कि बडी से बडी फौज भी उनका मुकाबला करने मे घबराती थी। बेगमो ने रोना-पीटना शुरू कर दिया। बेटे समझाने लगे कि आप आदिलशाही सल्तनत के सबसे आला सिपहसालार है, लिहाजा इस छोटे से काम के लिए आपका जाना वाजिब नही लगता। आपके मातहत इतने सारे हिन्दू-मुसलमान सरदार है, उनके जिम्मे चाहे जितनी बडी फौज देकर भेज दे।

अफजल खाँ मुस्कुराता रहा। उसने बडी बेगम से कहा, "बिला वजह आप परेशान नज़र आती है। मेरे साथ चलिए। खुद देखेगी कि कितनी आसानी से उस बदतमीज शिवा को सुलतान की कदमबोसी के लिए पेश कर देता हूँ। बित्त भर का इन्सान, मामूली-सी बेतरतीब फौज और वह भी जगली मवालियो की। मेरी ताकत के सामने कब तक टिकेगी।"

१६५६ ई० की मई का महीना था। अफजल खाँ बीजापुर से अपनी फौज के साथ रवाना हुआ। ५०० हाथी, १२ हजार घुडसवार, ३० हजार पैदलो की सजी-सजायी फौजो के साथ छोटी-बडी अनेक प्रकार की तोपे भी थी। अफजल के बेटे फजल खाँ और मूसे खाँ, मराठा सरदार प्रतापराव मोरे, नाइकजी पानचडे, कल्याणजी यादव और शिवाजी के सगे चाचा मबाजी भोसले भी साथ थे। इन देश-धर्म-द्रोहियो को शिवाजी के पहाडी क्षेत्र और किलो की पूरी जानकारी थी।

आदिलशाही फौज की व्यवस्था विस्तृत थी। तम्बू, कनाते, शामियाने, दुकाने, नौकर, खिदमतगारो की तायदाद भी बदस्तूर बडी थी। सामान ढोने के लिए बैलगाडियो की कतार साथ चल पडी। फौज के साथ चल रहा था अफजल खाँ का शानदार और रगीन हरम। लिहाजा जहाँ भी डेरा पडता, एक अच्छा-खासा शहर बस जाता।

कहा जाता है कि अफजल खाँ डील-डौल का कुछ इतना बडा था कि घोडे उसका बोझ सम्हाल नही पाते थें, इसलिए वह अपने प्रिय हाथी 'फतहलश्कर' पर सवारी करता था।

दुर्योग से कूच के ठीक एक दिन पहले वह हाथी मर गया। वेगमो ने समझाया कि असगुन के आसार नजर आ रहे है, खुदा जाने क्या होने वाला है।

अफजल खाँ के दिल मे भी शिवाजी से दहशत-सी तो थी ही। उसके अलावा वेगमे, वेटे, रिश्तेदारो और मुसाहिबो की आरजू-मिन्नत के दरम्यान, फतहलश्कर की अचानक मौत ने एक प्रकार भय-सा उत्पन्न कर दिया, परन्तु वह सुलतान से वादा कर चुका था। अव कूच के अलावा और कोई चारा नही था।

शिवाजी के राज्य मे पहुँच कर उसने पूरे जोश और दमखम के साथ प्रजा पर जोर-जुल्म शुरू कर दिए। जिस ओर वढता, मन्दिरो को तोड देता, गाय-वैलो को कत्ल कर देता। उसके सिपाही मराठा स्त्रियों का शीलहरण करते। आत्मरक्षा के लिए वहुत-सी स्त्रियाँ कुएँ और तालावो मे डूबकर प्राण देने लगी।

माता जीजाबाई और शिवाजी के पास समाचार पहुँच रहे थे। वे मन मसोसकर रह जाते। सागर-सी उमडती शाही फौजो से टकराने की वात साधारण न थी। रामगढ़ का दुर्ग तो सुरक्षित था, किन्तु खुले मैदान मे अफजल की विशाल वाहिनी से मोर्चा लेना निश्चित रूप से आत्महत्या कही जाती। अफजल ने देखा कि दुश्मन मैदान मे मुकावले मे नही आ रहे है, उसने जुल्म का कहर ढा दिया। शिवाजी व्याकुल हो उठे, किंतु किसी प्रकार का कदम उठने के पहले पूरी तौर पर हार-जीत के प्रत्येक पक्ष पर गम्भीरता से विचार करना नितात आवश्यक था, इसीलिए वे आगे वढ नही रहे थे।

जव जुल्मोकहर ने भी शिवाजी मैदान मे नही आये तो खान ने एक आखिरी दॉव फेका। शिवाजी की कुलदेवी तुलजा भवानी के मन्दिर को तोडकर उसके ऑगन मे गोहत्या कर दी।

अन्याय की पराकाष्ठा हो चुकी थी। इस समाचार ने शिवाजी को विचलित कर दिया। उन्होने निश्चय किया कि दुश्मन का खात्मा करना नितात आवश्यक है, भले ही प्राणो का वलिदान करना पडे। माता जीजावाई के चरण छूकर उन्होने अत्यन्त हृदयवेधक शब्दो मे निवेदन किया—"माताजी, अब तो यह अत्याचार सारी सीमाओ को तोड चुका है। प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही है। कुल-वधुओ और कुमारी कन्याओ का शीलहरण हो रहा है, विठोवा और कुलदेवी तुलजा भवानी के मन्दिर ध्वस्त और अपवित्र किये जा चुके है। आपके चरणो की सौगंध है मै या तो इस राक्षस का वध करके भवानी के अपमान का प्रतिशोध लूँगा या फिर आपको मुँह नही दिखाऊँगा।"

माता जीजावाई साधारण महिला नही थीं। धर्म, सस्कृति और देश के प्रति श्रद्धा और आदर की भावना उन्होने ही शिवाजी के हृदय मे भरी थी। फिर भी माँ का हृदय था। स्वीकृति देने का स्पष्ट अर्थ था—पुत्र को अग्निकुड मे झोक देना। मन मे विचार आया—'कहाँ महिषासुर के समान अफजल खाँ और कहाँ मेरा दुवला-पतला शिवा! अफजल की सुसज्जित पचास हजार की सेना का सामना करने के लिए केवल सात हजार की सेना!'

फिर भी धर्म, देश और प्रजा की रक्षा की भावना ने उन्हे वल दिया। पुत्र को गले से लगाकर आशीर्वाद दिया और कहा—"वत्स, प्रस्थान करो, विजयश्री तुम्हारा वरण करेगी। मेरी बायी ऑख फडक रही है, भगवती तुलजा तुम्हारी रक्षा करेगी।"

रायगढ के किले से, सह्याद्रि पर्वत के जगलो मे स्थित प्रतापगढ के लिए शिवाजी ने प्रस्थान किया। उन दिनो उनकी वडी रानी सईबाई मरणासन्न थी। पुत्र सम्भाजी केवल दो वर्ष का था। शिवाजी ने रानी से विदा ली, पुत्र को प्यार किया और वे किले से बाहर निकल पडे। सावन का महीना, अँधेरी रात और घनघोर वर्षा!!—मगर उन्हें तो उस महान असुर का वध करना था। रुकते कैसे? स्वप्न मे उन्हे कुलदेवी तुलजा भवानी के दर्शन पिछली रात मे हुए थे। उन्होने आशीर्वाद भी दिया—"शिवा, चिता मत करो। दैत्य का नाश होगा और तुम विजयी वनोगे।"

किसी तरह वे प्रतापगढ जा पहुँचे । एक दिन जब अपने सरदारो के साथ आक्रमण-प्रत्याक्रमण पर वे परामर्श कर रहे थे, उन्हे रानी सई बाई के देहान्त का मर्मभेदी दु सवाद मिला । इस आघात से उनका हृदय विचलित हो उठा, किन्तु कर्तव्य-पालन को उन्होंने पत्नी के मोह और औपचारिकता मे अधिक महत्व दिया । वे रायगढ नही गए ।

अफ़जल खॉ को खबर मिली कि शिवाजी रायगढ से प्रतापगढ चले गए । उसे ताज्जुब हुआ कि इतनी जबर्दस्त घेरेबदी के बावजूद यह सब कैसे मुमकिन हुआ । दिन बीत रहे थे, मगर शिवाजी खुले मैदान मे लडने नही आ रहे थे । इस बार उसने एक नई चाल खेली । वह जानता था कि शिवाजी गौ-ब्राह्मण के भक्त है, इसलिए अपने सरदार कृष्णाजी ब्राह्मण के हाथ एक पत्र शिवाजी के पास भेजा । कृष्णाजी शिवाजी से मिले । उन्होंने समझाया कि अफजल खॉ आपके पिता शाहजी राजा के मित्र है । आयु मे आपसे बडे है और हकीकत तो यह है कि वह आप से मित्रता चाहते है । यह सुनकर शिवाजी ने अफजल खॉ का पत्र पढा । उसमे बेहद धमकी भरी थी और लिखा था कि, तुम्हारी शरारत से हम बेहद नाखुश है । खैरियत इसी मे है कि तुम अपने सारे किले हमारे सुपुर्द करो और सुलतान के हुजूर मे हाजिर होने के लिए मेरे साथ बीजापुर दरबार चलो, वर्ना तुम्हारी इस छोटी-सी बेतरतीब मावली फौज को हम कुचल देंगे और रायगढ और प्रतापगढ के तुम्हारे किले नेश्त-नाबूद कर दिए जाएगे ।

दी । कृष्णाजी को आदर सहित ठहराया । दूसरे दिन अपने एक विश्वस्त साथी पताजी गोपीनाथ के हाथ अफ़जल के नाम एक पत्र लिखा और कृष्णाजी को सम्मानसहित पंताजी के साथ विदा कर दिया। साथ मे खान के लिए उपहार भी भेजे ।

पंताजी धैर्यवान और कुशल राजनीतिज्ञ थे । उन्होने बाअदब कोर्निश करते हुए अफ़जल खॉ से कहा—"शिवाजी महाराज ने आपको सलाम कहा है, उन्हे आप की सारी शर्ते मजूर है । परतु इसके पहले कि वे आपकी और सुलतान की खिदमत मे हाजिर हों, आप से कुछ गुफ्तगूँ करना चाहते है । पर इसमे दिक्कत यह है कि आपकी इस बडी और बेशुमार फौज, तोपो, हाथियो और घोडो की जमात का उनके दिल मे एक खौफ-सा बैठ गया है । लिहाजा हम यह दरख्वास्त करना चाहेगे कि हुजूर प्रतापगढ तशरीफ लाये और हमे इज्जत बख्शें ।"

पताजी की बातो का अफ़जल पर पुरजोर असर पडा । वह तो मौके के ताक मे ही था । सोचा, क्यो न उस पहाडी चूहे को उसके बिल मे ही खत्म कर दिया जाय । अपने सरदारो के विरोध के बावजूद उसने मजूरी दे दी । बिना देर किये वह पूरी सेना सहित जावली घाटी के लिए रवाना हो गया । हरम, खेमे, तम्बू और शमियाने भी साथ चले ।

जावली के क्षेत्र में घनघोर बारिश होती है । घने जगल, पहाडी रास्ते, दर्रे पानी और कीचड से भर जाते हैं । उसमे फँसकर अफजल खॉ के बहुत से हाथी-घोडे मरने लगे, बहुत से बीमार हो गए । काफी सिपाही भी बीमारी से मर गये । आए दिन कई दलदल मे फँसते तो कई फिसल कर मरते । जहरीले कीडे और सॉपो ने तो और भी परेशानी पैदा कर दी । इस प्रकार मुसीबते झेलते हुए आखिरकार अफ़जल खॉ मय फौज के प्रतापगढ के नीचे पहुँच सका ।

पताजी फिर खान से मिलने आये । कहने लगे— "मैने पहले ही हुजूर से अर्ज की थी कि शिवाजी को आप की फौज से बडा खौफ है । परन्तु वे आप से मिलने के लिए बेचैन है । एक सूरत यह है कि आप हमारे प्रतापगढ तशरीफ लाये । आप के साथ दस हथियारबन्द सिपाही रहेंगे और इतने ही महाराज के साथ । वे सब दूर रहेगे, आप दोनो की बातचीत तखलिया मे होगी ।"

अफ़जल खॉ अपने शिकार को नजदीक पाकर उतावला हो रहा था । उसे अपनी जिस्मानी ताकत पर पूरा गुमान था । उसका इरादा था कि शिवाजी को दबोच कर सुलतान

के कदमो मे पटक दूँगा । वह इस कामयाबी से अपनी इज्जत मे चार चॉद लगाना चाहता था । उसनें फौरन मजूरी दे दी । तारीख और वक्त भी मुकर्रर कर दिया ।

प्रतापगढ मे तैयारियॉ शुरू हो गईं। शिवाजी जानते थे कि अफजल परले सिरे का धूर्त और धोखेबाज है । उसकी फौज भी बहुत बडी है । मगर मॉ भवानी पर उनका अखड विश्वास था और सहारा था सह्याद्रि की पेचीली घाटियो और जावली के घने जगलो का । इन स्थानो के कोने-कोने की जानकारी उनके साथियो को थी । उधर अफ़ज़ल खॉ की फौज के लिए उक्त अनजान जगह एक फंदे का काम कर मकती थी ।

उन्होने अपने सेनापतियो के साथ योजना बना ली । अफ़ज़ल खॉ की फौज को चारों तरफ से घेरने की व्यवस्था भी बन गई । उनके पाम सैनिक कम थे, किन्तु सह्याद्रि की पहाडियॉ दीवार बनी और तगघाटियो पर मराठे सरदार अपनी छोटी टुकडियो के साथ डट गए । आदेश था कि प्रतापगढ दुर्ग के तोपो की तीन आवाजे सुनते ही दुश्मन की फौज पर टूट पडा जाए ताकि कोई भागने न पाए । इस प्रकार पूरी फौज ही नष्ट कर देना उनका लक्ष्य था ।

दुर्ग के नीचे की घाटी मे मुलाकात की जगह तय की गई थी । जगल का एक हिस्सा साफ कर बहुत ही शानदार शामियाना ताना गया । मजावट के लिए वदनवार और तोरण बॉधे गये ।

दीपावली के दस दिन बाकी थे । इम त्योहार पर सिपाहियो को बारी-बारी मे अपने घर जाने की छुट्टी मिलती थी ताकि वे अपने बीवी-बच्चो से मिल सके । ऐसे मौके पर सिपाही, मॉ-बाप. पत्नी और बच्चो के लिए कमाई से बचाए रुपयो से कुछ नए कपडे और बच्चो के लिए मिठाइयॉ आदि ले जाते । इम अवसर की प्रतीक्षा हर सिपाही करता है । मगर इस मौके पर छुट्टी नही दी गई ।

११ नवम्बर, १६५६ शिवाजी और अफजल की मुलाकात का दिन । स्नानादि से निवृत्त होकर नित्य की भॉति शिवाजी ने भवानी का पूजन किया । लगभग ८ बजे हल्का-सा जलपान किया । फिर उन्होने कपडे पहनने शुरू किए ।शरीर पर लोहे की महीन जजीरो का बख़्तर और सिर पर लोहे के चादर की टोपी । ऊपर मे सदा की भॉति अगरखा पहना और सिर पर पाग बॉध ली । बाये हाथ की मुट्ठी मे तेज बघनखा दबा लिया । ललाट पर रक्त-कुकुम का तिलक । एक बार फिर भवानी का स्मरण किया और बस वे अफ़ज़ल खॉ से मिलने चल पडे । साथ मे चुने हुए ऐसे दस साथी थे जो शिवाजी महाराज के सकेत पर अनेक बार अपनी जान की बाजी लगा चुके थे ।

अफ़ज़ल का दिल बल्लियो उछल रहा था । उसे पूरा इतमीनान था कि उसके सरदार ऐन वक्त पर उसकी हिदायत को बख़ूबी अजाम देंगे । पहले ही आकर वह ऊँचे मे मच पर बैठ गया । उसके दस हथियारबद अगरक्षक एक तरफ पूरी चौकसी के साथ खडे थे । इनमे सैयद बडा नाम का मशहूर जॉबाज और ख़ूँखार सरदार भी था । इन्ही दसो मे कृष्णाजी ब्राह्मण भी मौजूद थे ।

समय करीब आ गया । अफ़ज़ल ने देखा कि ३२-३४ वर्ष की उम्र का एक सॉवला-सा युवक चला आ रहा है । औसत कद, मगर शेर बब्बर-सी फुर्तीली और शानदार चाल, शक्ल पर दहशत की शिकन तक नही । उसे तो लोगो ने बताया था कि शिवाजी ख़ौफसे परेशान और बीमार-मा रहता है । परन्तु यहॉ तो कुछ और ही नजर आ रहा था । पहले से तय था कि दोनो एक दूसरे मे मिलने के लिए आगे बढेंगे । मगर अफजल बैठा रहा । शिवाजी आगे बढे और बदस्तूर उन्होने ख़ॉन को आदाब किया । ख़ॉन ने बहुत ही गुरूर के साथ धमकाते हुए कहा—"ख़ैरियत है कि तुम आए । मगर हम यह पूछना चाहते है कि आदिलशाही सल्तनत मे तुमने इतनी फसाद क्यो मचा रखी है ? तुम्हारी लूट-खसोट, छापेमारी रोज़मर्रा की बात हो

गई है। मुल्क और रिआया के अमन-चैन को बरबाद करने के लिए तुम जिम्मेदार हो। सुलतान तुम पर बेहद नाराज़ है।"

बलवान शत्रु उन्हे फटकार रहा था, उन्ही के इलाके मे। मगर शिवाजी ने साहस, धैर्य और बुद्धि का सतुलन बिगडने नही दिया। उन्होने कहा—"खाँ साहब, आपको गलत खबरे मिली है। मुल्क मे चारो तरफ डाकू और लुटेरे फैले हुए थे। मैंने तो उन्हे खतम करके उल्टा अमन और चैन क़ायम करने की कोशिश की है।"

खॉन की आवाज कुछ नरम पडी। कहने लगा—"खैर जो कुछ हुआ, उसे गुजरा समझ लेते है। तुम हमारे साथ बीजापुर चलो, सुलतान से मुआफी माँगो। यकीन करो हम खुद तुम्हारी सिफारिश करेगे।"

इतना कहकर वह शिवाजी से मिलने के लिए आगे बढा। करीब आकर उसने उन्हे बाँहो मे कस लिया। दूर से ऐसा लग रहा था मानो खॉन बहुत दिनो से बिछुडे अपने किसी भाई से मिल रहा हो। मगर शिवाजी ने महसूस किया कि अफ़जल की बाँहे अजगर की तरह उन्हे कसती जा रही है। उन्होने ज्योही उस गिरफ्त से अपने को छुडाने की कोशिश की कि उस दैत्य ने शिवाजी के सिर पर एक छोटी, मगर तेज कुल्हाडी से वार किया। यह कुल्हाडी अफजल अपने चोगे मे छिपाये था। पाग के नीचे लगी लोहे की टोपी ने वार सह लिया। महाराज का सिर बच गया, मगर खून छलक आया। शिवाजी ने अद्भुत वेग से तुरत पैतरा बदला और बाये हाथ की मुट्ठी मे दबे बघनखे से अफजल के पेट की अतडियाँ खीच निकाली। "या अल्लाह! मार डाला।" दर्द और घबराहट से खॉन की आँखे बाहर निकल रही थी। एक हाथ से वह बाहर निकलती अँतडियो को सम्हाल रहा था दूसरे हाथ को ऊँचा कर आवाज़े देने की कोशिश कर रहा था। पर उसकी शक्ति क्षीण होने लगी और वह लडखडाने लगा।

सब कुछ मानो मिनटो मे गुजर गया। खॉन के आदमियो ने ऐसी उम्मीद नही की थी कि शिवाजी अफजल की गिरफ्त से निकल सकेगे। उनका अंदाज था कि इनको तो वह अपनी बाँहो मे ही पीस डालेगा। कराहते हुए अफजल की चीख सुनकर कृष्णाजी और सैयद अफजल की रक्षा के लिए दौडे। दोनो ने एक साथ शिवाजी पर आक्रमण किया। मगर महाराज ने एक वार मे ही सैयद का सर काट दिया। ब्राह्मण को मारना धर्मविरुद्ध जानकर कृष्णाजी के वार को केवल बचाते रहे। कुछ देर यह क्रम चलता रहा। आखिर शिवाजी के एक अगरक्षक जीवा महाला ने धर्मद्रोही कृष्णाजी का सर काट गिराया। दोनो ओर के अगरक्षक आपस मे गुँथ चुके थे। शोर-शराबा बढने लगा। अफजल खाँ जमीन पर गिरा, भागने के लिए वह अपने शिथिल शरीर को घसीट रहा था। इसी बीच उसके कुछ आदमी आए और फुर्ती से एक पालकी मे उसे लिटाकर घटनास्थल से ले भागे। किंतु शिवाजी महाराज के एक सरदार काकाजी ने यह देख लिया। लपक कर उन्होने पालकी को गिराया और अफ़जल का सिर काटकर अलग कर दिया। इस प्रकार अपने समय के दुर्दान्त दैत्य का अत हो गया।

पूर्व निश्चित सकेत पाते ही प्रतापगढ दुर्ग से तोपो ने तीन बार गर्जना की। आदिलशाही फौज ने यह समझा कि खान साहब की अगवानी के लिए तोपे छोडी जा रही है। वे निश्चित थे। मौज-मस्ती का दौर चल रहा था। मगर एकाएक "हर-हर महादेव! जय अम्बे भवानी!" कहते हुए तलवार और भालो को साधे मराठे आकर टूट पडे। पहाडियो, घाटियो और जगलो से यही नारा गूँजने लगा। इसी बीच फौज मे खबर फैल गई कि अफजल खाँ मारा गया। इस खबर को सुनते ही सिपाहियो की हिम्मत छूट गई। फौज मे बडी भगदड मची। जो जिधर रास्ता देखता उधर भागता। मगर घाटियो की ऐसी नाकेबन्दी ऐसी थी कि कोई भी बचकर निकल न पाया। आदिलशाह की बहुत बडी फौज मय हथियार और सामान के वही पर बिखर गई। बहुत बडी सख्या मे सैनिक मारे गए। अफजल खाँ के दो लडके और बीजापुर के कई मराठे सरदार भी काम आए।

शिवाजी के इस गौरवपूर्ण विजय की खबर बिजली की तरह फैल गई। सारे प्रदेश मे हर्ष की लहर दौड गई। एक तेज घुडसवार की मार्फत रायगढ मे माता जीजाबाई के पास इस विजय की सूचना भेजी गई। वहाँ भी हर्ष की दुदुभी बज उठी। स्त्रियाँ शखध्वनि करने लगी, प्रजा आश्वस्त हुई और सभी लोगो ने यह महसूस किया कि अब उसे आदिलशाही असुरो के महानायक दुर्दमनीय अफजल के अत्याचारो से निस्तार मिल गया।

इस युद्ध के पूर्व तक शिवाजी मध्यम श्रेणी के जागीरदार गिने जाते थे। किंतु अफ़जल की फौज पर विजय प्राप्त करने पर उनकी शक्ति और बुद्धि का लोहा सभी मानने लगे। कीर्ति और प्रतिष्ठा बढी। हाथी, घोडे, ऊँट, तोपे और तोपो को खीचने वाली बैलगाडियाँ और असख्य हथियार और गोले उनके हाथ लगे। तम्बू, शामियाने, कनाते और रसद भी खूब मिली। हरम के बेशुमार हीरे-जवाहिरात भी प्राप्त हुए। महाराज का नियम था कि शत्रुओ की स्त्रियो पर किसी प्रकार का अत्याचार न होने पाए, इसलिए बेगमो को वापस बीजापुर भेज दिया गया।

इस महत्वपूर्ण युद्ध ने उनकी धाक दक्षिण के गोलकुण्डा से सुदूर उत्तर दिल्ली तक जमा दी। सताए गए हिन्दुओ के मन मे आशा बँधी और उन्हे यह विश्वास हुआ कि अब उनके धर्म, प्राण की रक्षा अवश्य होगी और यही कि शिवाजी के रूप मे हिन्दू धर्म के रक्षार्थ कोई अवतार आया है।

टॉड तथा कई दूसरे अग्रेज इतिहासकारो ने मराठो का जिक्र बडे हेय दृष्टिकोण से किया है। अधिकाश अग्रेज और मुस्लिम इतिहासकारो ने यह साबित करने की कोशिश की है कि शिवाजी ने धोखे से अफ़जल की हत्या की। किंतु आदिलशाही सल्तनत के प्रसिद्ध और प्रामाणिक इतिहासकार नशस्ता ने बीजापुर के इतिहास मे स्पष्ट लिखा है कि "सुलतान ने अफजल और कान्होजी जेदे को हिदायत दी थी कि चाहे जिन्दा या मुर्दा, किसी भी हालत मे शिवाजी को हाजिर किया जाय।"

मुगल और मराठा इतिहास के सुप्रसिद्ध विद्वान आचार्य सर यदुनाथ सरकार ने पुरानी पाडुलिपियो एव अन्यान्य प्राप्त सामग्रियो के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि अफजल खाँ ने ही पहला वार किया। यदि शिवाजी बख्तर और लोहे की टोपी न पहने होते तो कुल्हाडी के वार से उनकी मृत्यु निश्चित थी। अफजल की अजगरी गिरफ्त मे ही उनकी पसलियाँ चूर-चूर हो जाती। परतु बघनखा के सामयिक प्रयोग ने उन्हे बचा लिया, जिसे होने केवल सुरक्षा के लिए ही मुट्ठी मे दबा रखा था।

धोखे और फरेब का सहारा प्राय हर मुस्लिम शासक ने उन दिनो लिया। हिन्दुओ के विरुद्ध इसका प्रयोग तो उनके लिए 'जिहाद' था, शबाब का सीधा रास्ता।

मैं मकबरे मे बैठा रहा। अधेरा हो आया था। बच्चे कब ऊपर दुर्ग देखकर आ गए, पता नही चला। एकाएक मेरी छोटी दौहित्री ने कधे पर हाथ रखकर पूछा, "नानाजी, इन चबूतरो मे क्या है?"

मैंने कहा—"बेटी, तुम बडी होगी तब इतिहास मे पढोगी तब तुम्हे मालूम होगा कि इन मकबरो मे शुम्भ-निशुम्भ नाम के दो राक्षस है जिन्हे शिवाजी ने यहाँ हमेशा के लिए सुला दिया है। चलो चले . ।"

मातृत्व

महाराष्ट्र केशरी शिवाजी ने २० वर्ष की आयु मे ही तोरना, कोडाना और पुरदर के किले जीत लिए थे। उनका यश कोकण से लेकर कल्याण तक फैल गया। उनकी फौजो मे मवालो के सिवाय उच्च जाति के मराठे, पठान और सैयद भी भर्ती होने मेगौरव काअनुभव करते। मुगल बादशाह और बीजापुर के सुलतान दोनो को ही उनकी बढती हुई शक्ति मे खतरा महसूस होने लगा। वे उन्हे नेस्त-नाबूद कर देने का मौका देख रहे थे।

महाराज ने सुरक्षा की दृष्टि से महाबलेश्वर के पास जावली नाम के घने जगल मे सह्याद्रि पर्वत पर प्रतापगढ नाम के एक सुदृढ और अभेद्य किले का निर्माण कराया। किले की दीवारे प्राकृतिक ऊँचे-सीधे पहाडो से बनी थी, उन पर चढना-उतरना मनुष्य की तो औकात ही क्या, साँप-गिलहरी के बस की भी बाते नही थी। देवगिरि, गोलकुण्डा और रणथम्भोर के किले की पक्ति मे इसकी गणना होने लगी।

यही उन्होने तुलजापुर की भवानी की मूर्ति स्थापित की। वे स्वय रायगढ से आकर बीच-बीच मे यहाँ रहने लगे। किले के भीतर फौजियो, कारकूनो तथा अन्य कर्मचारियो का एक छोटा-सा गाँव बस गया था।

एक शाम को एक अहीर युवती किले के फाटक पर दौडती हुई पहुँची। दूध बेच कर आई थी, अब घर जाने की जल्दी मे थी।

वह रोज दो बार जावली गाँव से दूध लेकर कोस भर आती-जाती। इसके सिवाय घर की खेती-बारी, गाय-भैस का भी काम रहता ही, इसलिए स्वस्थ शरीर पर सौदर्य का अद्भुत निखार था।

देश के दूसरे हिस्सो मे, जहाँ मुसलमानो का अमल हो गया था, शायद जवान स्त्रियो की इतनी चुहल-कूद नही चलती थी। परतु शिवाजी महाराज के राज्य मे किसी की हिम्मत नही थी कि स्त्रियो की तरफ बुरी नजर से देख ले।

किले के फाटक पर रात-दिन ८ सशस्त्र सिपाहियो का पहरा रहता। उनका हवलदार एक वृद्ध मराठा सरदार था, जो महाराज का अत्यत विश्वासपात्र था। उन लोगो के रहने की कोठरियाँ भी फाटक के ऊपर की बुर्जियो पर थी।

युवती ने कहा—"बाबाजी, आज आप ने इतनी जल्दी फाटक क्यो बद कर दिया? अभी तो सूरज भी नही छिपा है, जल्दी खोल दीजिए, मुझे घर जाना है। दो घडी पहले बच्चे को पडोसिन के पास छोडकर आई थी वह भुखाया होगा।"

हवलदार ने कहा—"बेटी, अगहन लग गया है, इसलिए आज से फाटक एक घडी पहले

बद हो जायेगा ।"

"बाबाजी, कल से जल्दी आ जाऊँगी—आज तो जाने दे, वहाँ मेरा बच्चा रोता होगा।"

"बावली, गढ का फाटक खोलना-बन्द करना क्या हमारे वश मे है। अब तो तुम कल सुबह ही जा सकोगी।" हवलदार ने जवाब दिया।

युवती ने बहुत आरजू-मिन्नत की, परतु फाटक नही खुला। वही बैठकर कुछ देर तक वह रोती रही, फिर अधेरा होने पर वापस भीतर चली गई।

दूसरे दिन सुबह फाटक खुलने के समय देखा गया कि वही युवती दूध का कलश लिकरए बाहर की तरफ खडी थी। पहरेदारो ने हवलदार को बुलाकर उसे दिखाया, सब अचम्भे मे थे कि रात मे यह किले के भीतर थी, फिर बाहर कैसे गयी।

पूछने पर वह जोर-जोर से हँसने लगी। बाद मे बोली—"बाबाजी, आपने तो नही जाने दिया, पर मै जादू-मतर से चली गई।"

हवलदार डरते हुए उसे दुर्गाध्यक्ष के पास ले गया। उन दिनो दुर्गाध्यक्ष का पद बहुत ऊँचा माना जाता था। लोग उसका अदब करते और भय मानते थे, परतु यह अल्हड युवती तो जैसे एकदम निडर थी। उसने कहा—"बाबाजी, मैने इन लोगो की बहुत आरजू-मिन्नत की, परन्तु इन्होने फाटक नही खोला। मुझे घर जाना जरूरी था, इसलिए किले की दीवार फाँदकर चली गई।"

दुर्गाध्यक्ष की समझ मे बात नही आ रही थी। उसने महाराज को जाकर सारी घटना बताई। युवती को महल मे बुलाया गया।

सुबह का समय था। महाराज भवानी की पूजा करके मदिर से बाहर आए। देखा सीधे-सादे वेश मे एक अपूर्व सुन्दरी युवती सहमी-सी एक तरफ खडी है।

"बेटी, सच-सच बताओ, तुम कौन से फाटक से बाहर गयी ? तुम्हे दण्ड नही मिलेगा। महाराज ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा।

"बापजी, बहुत खुशामद करने पर भी पहरेदारो ने फाटक नही खोले। मुझे भूखे बच्चे की जोर जोर से रोने की आवाज़ सुनाई दी, इसलिए रुक नही सकी और दक्षिण की तरफ की दीवार फाँदकर चली गई। अभी तक मेरी ओढनी वही टँगी है।" युवती ने नम्रतापूर्वक बातें स्पष्ट की।

किसी को भी उसकी असभव बात पर विश्वास नही हुआ। जिस किले की ऊँचाई १२५ फीट हो, उसे भला कोई कैसे फाँद सकता है।

महाराज ने कहा—"हमारे साथ चलकर वह जगह दिखाओ।"

अब तक युवती का डर मिट गया था। लम्बे-लम्बे डग भरती हुई वह आगे बढी। महाराज, सेनापति और दुर्गाध्यक्ष भी साथ-साथ चले।

सुरक्षा की दृष्टि से बात को गोपनीय रखने का प्रयत्न किया गया, परतु ऐसी बाते छिपती नही—बल्कि बढ-चढकर फैल जाती हैं। एक ने कहा— इसे भवानी का इष्ट है।" दूसरे ने कहा—"हमने स्वय देखा है, एक बडा बदर अपने कधे पर चढाकर इसे नीचे उतार रहा था। शायद स्वय हनुमानजी थे।"

घटना स्थल पर आकर देखा गया तो सचमुच ही दक्षिण तरफ की दीवार के एक पत्थर से उसकी ओढनी बँधी हुई थी। उसने बताया—"महाराज, मै इस ओढनी से लटककर नीचे कूद गयी, फिर वहाँ से दौडती हुई घर चली गयी।"

नीचे खाई मे जाकर देखा गया तो वहाँ अभी तक वृक्षो के पत्ते बिखरे और टूटे हुए थे। सयोग से जहाँ वह गिरी थी, वहाँ उन पत्तो का ढेर था, इसलिए चोट नही आयी।

किला तैयार हो जाने के बाद सेनापति और दुर्गाध्यक्ष ने महाराज को विश्वास दिलाया था कि दुर्ग पर से चढना उतरना आदमी तो क्या साँप-गिलहरी के बस की बात ही नही है।

उन्होने स्वय भी निरीक्षण किया था। वे सोचने लगे कि ईश्वर की कृपा से जैसे पगु पहाड लॉघ जाता है, उसी तरह यह युवती इस ८० हाथ ऊँची दीवार पर से कूद कर बच गई।

अन्त मे उन्होने कहा—"तुमने एक तो राज्य का कानून तोडा, दूसरे जान की जोख़िम ली, इसलिए तुम्हे कडा दण्ड मिलना चाहिए। फिर भी तुम्हारी छोटी आयु और हिम्मत देखकर हम क्षमा कर दे रहे है। पर एक बात पर हमे विश्वास नही हो रहा है वह यह कि तुम्हारा गॉव यहॉ से दो मील की दूरी पर है, भला उतनी दूर से तुम्हे बच्चे के रोने की आवाज़ कैसे सुनाई दी ?"

महराज के पैर पकडकर युवती ने रोते हुए कहा—"मेरे माता-पिता बचपन मे ही मर गए थे। आप ही मेरे मॉ-बाप है। आप के यहॉ पिछले दो वर्षो से दूध बेचकर अपने छोटे से परिवार का भरण-पोषण कर रही हूँ। पति थोडी-सी खेती करता है, परन्तु पथरीली जमीन के कारण खाने लायक अनाज भी नही होता। परमेश्वर की सौगन्ध खाकर, आपके पेर छूकर कहती हूँ कि मुझे सचमुच ही मेरे बच्चे के रोने की आवाज़ सुनाई दी थी, तब मैं अपने वश मे नही रही और जो कुछ कसूर हुआ वह आपको बता दिया—आप जो दण्ड देंगे—भुगत लूँगी।"

महाराज ने उसे चॉदी की हँसली, नए कपडे और बच्चे के लिए बहुत प्रकार के खिलौने और मिठाइ लेकर विदा किया।

○

कालजयी शिवाजी

१६५६ मे २६ वर्ष के दुबले-पतले शिवाजी ने अफजलखाँ जैसे दैत्य को मार गिराया था। खाँ के साथ ४० हजार सुसज्जित फौज थी, जबकि शिवाजी के पास केवल १०-१२ हजार मराठो और मावलो की बेतरतीब सेना। इसी प्रकार देशद्रोही बाजीराव घोरपडे को तो उसके किले मे जाकर मारा था। उनके नाम से बीजापुर तथा दिल्ली की फौजो मे डर बैठ गया था।

बीजापुर की राजमाता ने अपने सरदारो को इकट्ठा करके बहुत बुरा-भला कहा। लानत-मलानत की। आखिर उनका आला सरदार सिद्दी जौहर शिवाजी को जिंदा या मुर्दा पकड लाने के लिए तीस हजार फौज लेकर पन्हालगढ किले की ओर चल पडा और चारो तरफ से घेरा डाल दिया। यह सल्तनत का सबसे बडा किला था।

औरगज़ेब तो पहले से ही बौखलाया हुआ था। अच्छा मौका जानकर उसने अपने मामा आला सेनापति शाइस्ता खाँ को एक लाख फौज के साथ शिवाजी को पकडने के लिए भेज दिया। उसकी २० हजार फौजो ने चाकण का किला घेर लिया और ८० हजार फौज के साथ वह स्वय शिवाजी के पूना के लालमहल मे जाकर डट गया। सदा की तरह धर्म-देशद्रोही कुछ राजपूत राजाओ की और कुछ मराठा सरदारो की फौज भी उनके साथ थी। इस प्रकार महाराज चारों तरफ से घिर गये, परन्तु उन्होने धीरज नही खोया।

जब चार महीने पन्हालगढ मे घिरे हुए हो गए और उन्हे चाकण किले की हार तथा पूना के समाचार मिले तब उन्होने सोचा कि अब मुझे जैसे भी हो, यहाँ से निकल जाना चाहिए। परन्तु आखिर इतने मजबूत घेरे को तोडकर जाए भी तो कैसे ?

जुलाई १८६० की एक घनघोर वर्षा की रात, महाराज केवल ६०० सैनिको के साथ किले के गुप्तद्वार से ५० मील पर के विशालगढ किले मे जाने के लिए निकले। अँधेरी रात, झाड-झखाडो का पहाडी रास्ता और हर समय दुश्मनो के हमले का डर, परतु जब तक उन्होने विशालगढ पहुँचकर तोप की आवाज नही की, सेनापति बाजी प्रभु ने अपनी थोडी-सी फौज के साथ सिद्दी की फौजो को रोक रखा। वे सब के सब मराठे वीर अपने से दस गुने दुश्मनो को मारकर स्वय भी जूझते हुए मर गए। ऐसा उदाहरण केवल चित्तौड के सिसोदियो का ही मिलता है। विशालगढ पहुँचकर भी शिवाजी को चैन नही थी। उनके मन मे पूना के लालमहल मे मुगल सेनापति का रहना और वहाँ पर गोवध तथा प्रजा की बहू-बेटियो पर अत्याचार के समाचार सुनकर बडी चिंता लगी रहती थी।

लोग त्राहि-त्राहि कर रहे थे—मराठा सैनिक हतोत्साह होकर रायगढ, विशालगढ और प्रतापगढ के किलो मे बैठे थे। कभी-कदाच बाहर निकलकर मुगलो के और बीजापुर के गांवो

को लूट लेते थे। शिवाजी ने अपने मुख्य सरदारो को मत्रणा के लिए रायगढ बुलाया। मोरोपत पिंगले, चिमणाजी, जेधे आदि सब गमगीन से बैठे थे। किसी की समझ मे नही आ रहा था कि शाइस्ता खाँ को लालमहल से कैसे भगाया जाय।

महाराज ने कहा कि हमारे इन छिटपुट हमलो से विशाल मुगल-सेना का कुछ बनता-बिगडता नही है। यद्यपि खाँ अव्वल दर्जे का ऐयाश और शराबी है, परन्तु उसके साथ बहादुर पठान और सैयद भी तो है। देशद्रोही राजपूतो की फौज भी यथेष्ट मात्रा मे है। इनके सिवा गायकवाड, कोकाट और जाधवराव की मराठा फौजे भी है। कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे वह डर कर पूना छोड कर भाग जाय।

महाराज ने एक योजना प्रस्तुत की। सरदारो ने पक्ष-विपक्ष मे अपने मत व्यक्त किए। उनके यहाँ इस बात की स्वतत्रता थी। आखिर जोखिम भरी बाते होने पर भी केवल महाराज की बात रही और आगे के लिए तैयारी होने लगी।

सन् १६६२ के चैत्र सुदी ६, भगवान राम का पवित्र जन्म-दिन। महाराज ने माँ साहिबा से सारी बाते बताई। वे बहुत बहादुर और सूझ-बूझ वाली महिला थी। शिवाजी की क्षमता और हिम्मत के बारे मे भी यथेष्ट जानती थी, परतु उन्हे एक लाख मुगल-फौज के घेरे मे जाकर खाँ को मार कर वापस सही-सलामत चले आना असम्भव बात-सी लगी।

परतु उन्होने तो तीन वर्ष पहले दैत्य अफजल खाँ के पास पुत्र को भेजकर इससे भी बडी जोखिम ली थी। भारी मन से पुत्र को गले लगाया और उस दुर्गम पथ पर भेज दिया। साथ मे केवल चार सौ सैनिक थे। एक लाख के मुकाबले मे केवल चार सौ—इतिहास मे यह अकेला उदाहरण है। उन दिनो रमजान का महीना था। मुगल सैनिक खूब पेट भर कर खाना और शराब पीकर सोने की तैयारी मे थे, अधिकाश सो गए थे, ऐसे मे शिवाजी अपने चार सौ सैनिको के साथ निधडक होकर मुगल-शिविर से होते हुए लालमहल के लिए रवाना हुए।

चौकीदारो ने पूछताछ की तो विश्वास से उत्तर दिया कि बाहर के पहरे पर से जा रहे हैं। आपने तो मजे मे रोजा खोल लिया, परतु हम तो अभी तक भूखे ही हैं। मुगल फौजो को इस असभव बात पर यकीन भी कैसे होता कि केवल चार सौ व्यक्ति महल पर धावा करने जा रहे हैं।

आला सेनापति और औरगजेब का मामा शाइस्ता खाँ अपने बडे हरम मे शराब पीकर आराम से सो रहा था कि इतने मे शिवाजी खिडकी तोडकर अन्दर चले गए। कुछ पहरेदारो को उनके साथ के मवाले सैनिको ने मौत के घाट उतार दिया। लगातार आती हुई आवाजो से खाँ की नीद टूट गई, अभी होश मे भी नही आ पाया था कि तलवार लिए शिवाजी दिखाई दिये।

परतु उसका नसीब अच्छा था कि बेगमो ने उसी वक्त रोशनी बुझा दी और खाँ पीछे की खिडकी से नीचे कूद गया। उसकी तीन अँगुलियाँ महाराज की तलवार से कट गयी और लालमहल सचमुच ही खाँ के खून से लाल हो गया।

खाँ बच गया। शिवाजी ने सोचा अब यहाँ ठहरना मौत को बुलाना है। उनके सैनिक भी मराठा आए, मालवा आए, चिल्लाते हुए मुख्य-द्वार पर पहुँच गए। वहाँ महाराज के लिए मोरोपत और नेताजी घाडे लेकर तैयार खडे थे। वे तुरत रायगढ के लिए रवाना हो गए।

मुगल सैनिक तो सकते मे आ गए, कहने लगे—"सचमुच ही कम्बख्त शिवाजी के वश में जिन्नात है, नही तो इतने बडे पहरे मे खाँ की अँगुलियाँ तराश कर वापस कैसे चला जाता।"

इधर खाँ घायल होकर गालियाँ बक रहा था। दो बजे रात को बहुत से मुगल-सैनिक शिवाजी को पकडने निकले।

परतु वे तो पहले से ही पूरी योजना बनाकर तैयार होकर आये थे। बहुत से बैलो को इकट्ठा कर रखा था। उनके सीगो पर कपडा लपेट कर तेल मे भिगोकर आग लगा दी। बैल जोर मे भागने लगे। मुगल-सैनिको ने अँधेरी रात मे मशालो की रोशनी देखकर समझा कि मराठे भाग रहे है। उन्होने जोर से पीछा किया। भोर के झुटपुटे मे देखा कि मराठो की जगह बैल और भैसे हैं। वे शर्मिंदा होकर वापस आ गये।

इधर महाराज ने रायगढ पहुँचकर माताजी के चरण स्पर्श किये। कहने लगे—"माँ साहिबा, आपकी दया से हम सब सही-सलामत वापस आ गए है। आपने तो भगवान रामजन्म का व्रत रखा है, परतु मैं तो भूख से बेहाल हूँ; अपने हाथ का प्रसाद देने की कृपा करे।"

जीजा माता शिवाजी को एक छोटे बालक की तरह पास मे बैठाकर खिला रही थी और लालमहल का वाकया सुनकर हँस रही थी। शिवाजी महाराज की वीरता की बाते सुनकर सताए हुए लोगो मे विश्वास पैदा हो रहा था। वे खुश हो रहे थे कि उनका भी कोई रक्षक पैदा हो गया है।

अफजल खाँ और सिद्दी जौहर से भी लालमहल का हमला ज्यादा महत्वपूर्ण था। शाइस्ता खाँ की हिम्मत जवाब दे गयी। अब पूना या महाराष्ट्र मे रहने मे उसे जान की जोखिम लगी। थोडे दिनो मे ही वह पूना छोडकर आगरा चला गया।

●

शिवाजी और धोखेबाज अंग्रेज

"कहते क्या हैं, दारोजी, क्या सचमुच अग्रेज हमारे विरुद्ध सिद्दी जौहर से मिल गए और अपनी बडी-बडी तोपे लडाई मे ले आए ? अभी डेढ महीने पहले ही तो हमने उनके जहाज छोडे है । हमारे पास वे बहुत प्रकार की भेट लाए थे, खुशामद कर रहे थे । उन्होने सधिपत्र पर सौगध खाकर हस्ताक्षर किए थे कि वे बीजापुर के विरुद्ध हमे मदद देगे ।"

"महाराज, आपने तो कहा भी था कि ये अग्रेज बडे धूर्त होते हैं, इनसे सावधान रहना चाहिए । परतु मैंने गलती से इनकी बातो का विश्वास कर लिया । अब जब उन्होने देखा कि सिद्दी की फौजे हमसे तगडी है, शिवाजी किले मे घिर गये है, तो उसकी सहायता पर आ गये ।"

मार्च, १६६० मे सिद्दी ने तीस हजार फौज के साथ पन्हालगढ पर हमला किया था । राजापुर अग्रेजी गोदाम का एजेन्ट बेईमान हेनरी रेविंगटन अपनी अग्रेजी फौजी टुकड़ी के साथ उसमे मिल गया था । किले पर तोपो की मार कर रहा था ।

जुलाई मे किसी प्रकार महाराज किले से निकलकर विशालगढ पहुँच गए । किला सिद्दी के हाथ आया । लूट की सामग्री मे अग्रेजो को भी यथेष्ट हिस्सा मिला । महाराज के मन मे कसक थी, नेताजी पालकर से कहने लगे—"हमने इनकी कोठियो को यह जानकर नही लूटा कि हमारी लडाई तो मुगलो से है, ये बेचारे तो विद्रेशी व्यापारी है । राजापुर मे भी इनके साथ रियायत बरती । उसका बदला उन्होने इस प्रकार विश्वासघात करके लिया ? खैर समय आने पर इनसे बदला लिया जायगा ।"

और सचमुच थोडे दिनो मे ही बदला लेने का समय आ गया । मराठा सेनिको ने राजापुर स्थित अग्रेजो के गोदाम पर धावा बोल दिया । लाखो का सोना-चाँदी और दूसरा सामान मिला । रेविंगटन तथा दूसरे अग्रेजो को महाराज के सामने हाथ-पॉव बॉधकर हाजिर किया गया ।

हेनरी रेविंगटन तथा उसके साथी गिडगिडाकर नतजानु होकर क्षमा मॉगने लगे । यद्यपि महाराज शात स्वभाव के थे, परतु उस दिन तो उन्हे सचमुच बहुत क्रोध हो आया । कहने लगे—"कमबख्तो, मैं समझता था तुम लोग व्यापारी हो, आयात-निर्यात का धधा करते हो, राजनीति से तुम्हे कोई मतलब नही है । यद्यपि मुझे यह सूचना कई बार मिली कि तुम लोगो मे समुद्री डाकू भी है, मेरे समुद्र तट की गरीब प्रजा को तग करते हो, परतु मैंने उन अफवाहो पर ध्यान नही दिया । इस बार केवल एक महीने पहले ही तो तुमने वचन दिया था कि सिद्दी से जब हमारा जग होगा, तुम अपनी तोपो सहित हमारे पास आ जाओगे । परतु जब तुमने देखा कि शिवाजी पन्हालगढ मे घिर गया है तो उस सकट के समय तुम अपनी तोपे

लेकर सिद्दी के साथ चले गए। मेरा मन कहता है कि जिन तोपो से तुमने पन्हालगढ पर गोले छोडे, उन्ही तोपो के मुँह के आगे बाँधकर तुम लोगो को बारूद से उडा दिया जाए। तुम खटमलो की तरह धोखे से काटते हो, इस लिए तुम्हे खटमलो की कोठरी मे रखा जायगा। सूरत को सूचना भेजी गई है। अगर वे हमारे हर्जाने की रकम जुर्माने सहित दे देते है तो तुम्हे छोडने का विचार किया जाएगा।"

एक वर्ष से जेल मे पडे-पडे अग्रेज सड रहे थे। वहाँ न तो शराब थी और न नाच-रग। यद्यपि शारीरिक दड तो उन्हे नही दिया जाता था, परतु खाना-पीना तीसरे दर्जे के कैदियो का सा था।

ज्वार की मोटी रोटी और छिलके सहित चने की दाल। बार-बार सूरत मे अपने बडे साहब को पत्र लिख रहे थे कि "शिवाजी से समझौता करके हमे इस दोज़ख से निकलवाइए। हमारा वजन घटकर आधा रह गया है। हमारे शरीर खटमलो के काटने से सूज गए हैं। हमे बिना सालन के चोकड की मोटी रोटियाँ मिलती है।

सूरत से महाराज के पास कई बार उन्हें छोडने की दरख्वास्त आई। परतु वे हर्जाना देने को तैयार नही थे। उनका कहना था कि जो कुछ राजापुर मे हुआ है। वह बिना सूरत के मजूरी के किया गया है।

इस बीच जेल मे दो अग्रेज मर गये और हेनरी रेविंगटन बीमार रहने लगा।

उसने महाराज को अर्जी भेजी की उसके और साथी तो जेल मे है ही, उसे दो महीनो की पैरोल पर छुट्टी दी जाय, वह सूरत जाकर प्रेसिडेन्ट एन्ड्रूज से मिलकर हर्जाने की शर्तें तय करेगा।

उसे छुट्टी मिल गयी। वह सूरत की बडी कोठी मे गया। गदे कपडे. सूखा चेहरा और सूखा हुआ शरीर। पहले तो पहचानने मे ही नही आया। जब उसने जेल के कष्टो का वर्णन किया तो बडा साहब उस पर बिगड गया। कहने लगा—"बेवकूफ, तुम्हें शिवाजी से लडने को किसने कहा था ? क्यो उस बाघ की माँद मे गये ? हम धीरे-धीरे पैर फैला रहे थे कि इस बीच मे यह झझट मोल लेकर तुमने उन्हे हमारे विरुद्ध कर दिया। वह कई लाख का सामान तो राजापुर के गोदाम से ले गया और अब कई लाख की माँग और करता है। किसके हुक्म से तुमने सिद्दी को तोपे भेजी और लडाई करने गये ? जो किया उसका फल भोगो। यहाँ कुछ नही हो सकता।"

रेविंगटन फिर से शिवाजी के कैदखाने मे किसी भी हालत मे नही जाना चाहता था। थोडे दिनो बाद उसकी मृत्यु हो गयी,और इस प्रकार वह घोर कष्टो से मुक्ति पा गया। बाकी अग्रेज कैदी जेल मे रस्सियाँ बँटते और चक्कियाँ पीसते रहे। धीरे-धीरे उन्हे जेल मे ३३ महीने गुजारने पडे। इन सभी की स्थिति खतरनाक हो गयी। आखिर एक दिन महाराज को इन पर दया आई। उन्होने मुचलके लेकर फरवरी सन् १६६३ ई० को सभी को मुक्त कर दिया।

शिवाजी का ऐतिहासिक पत्र

मामा शाइस्ता खाँ पूना से भागकर दिल्ली आया और औरगजेब को लालमहल पर शिवाजी के हमले की घटना बताई, साथ ही अपने दाहिने कटे हाथ को दिखाया। बहुत गमगीन था आला सेनापति। इतने मे सूरत की लूट की खबर पहुँची। औरगजेब गुस्से से बौखला गया। बीस हजार की बेतरतीब मावलो की भीडवाला शिवाजी मुगल बादशाह की एक लाख बेहतरीन फौज से लोहा ले रहा था। बात यकीन करने की नही थी, परन्तु थी सच।

औरगजेब अद्भुत कूटनीतिज्ञ था। उसने सोचा की इस बार हिदुओ की बडी फौज दक्षिण मे भेजी जाय। दोनो तरफ हिदू मरेगे। आमेर के मिर्जा राजा जयसिह को यह भार सौपा गया। वे मुगलो के बडे सेनापति थे। पाँच पीढी से उनकी गुलामी करते आ रहे थे। सूझ-बूझ और सैनिक-सधान मे वे अद्वितीय गिने जाते थे।

औरगजेब अव्वल दर्जे का धूर्त और वहमी था। सावधानी के लिए उसने एक दूसरे सेनापति दिलेर खाँ को राजा के साथ लगा दिया। फौज अधिकाश हिंदुओ की थी, १६६५ की फरवरी मे मुगल फौज बुरहानपुर पहुँच गयी। यह दक्खिन का दरवाजा गिना जाता था।

राजा जयसिह शिवाजी से मैदान मे लडना चाहता था, परतु शिवाजी उससे भी अधिक बुद्धिमान थे। वे अपनी सीमित शक्ति को जानते थे। बीजापुर का डर भी बना हुआ था। कही दो पाटो के बीच मे नही फँस जायँ, यह चिंता थी।

उन्हे यह भी सूचना मिल गई थी कि इस बार अधिकाश हिंदू फौजे हैं। उनके पास उस समय बीस हजार फौज थी, परतु बेहतरीन हथियारो की कमी थी जबकि मुगल-फौज मे हाथी, घोडे, ऊँट, छोटी-बडी तोपे और बदूके बडे पैमाने पर थी। वे जयसिह को लम्बे अरसे तक सुलझा कर रखना चाहते थे।

यह भी जानते थे कि जयसिह कट्टर धार्मिक है, नित्य पूजा-पाठ करता है और गोविंददेव जी का भक्त है। औरगजेब ने पिछले वर्षो मे मथुरा, काशी तथा खास जयपुर के बहुत मदिर तोडे है, इसलिए मन ही मन दुखी भी है। वे उसकी हिंदुत्व को भावना जागृत करके एक बडा सम्मिलित मोर्चा बनाना चाहते थे। उन्हे यह आकाक्षा नही थी कि वे स्वय नेता बने। मेवाड के राणा जयसिह, राजा जयसिह या जोधपुर के राजा जसवत सिंह मे से किसी को भी नेता बनाने को तैयार थे। उनका एकमात्र लक्ष्य था कि किसी तरह बढती हुई विदेशी मुग़ल-शक्ति को छिन्न-भिन्न किया जाय, जिससे हिंदू-धर्म मजबूत होकर देश मे आर्य-सस्कृति फले-फूले।

शिवाजी ने सोचा क्यो न एक बार राजा जयसिह से मिलकर सारी बाते स्पष्ट कर ली जायँ। आखिर वह भी देश-धर्म की भली-बुरी सोचता ही है, उसके मन मे भी इष्टदेवता के मन्दिर टूटने का भय तो है ही।

आख़िर उन्होने जयसिंह को वह प्रसिद्ध पत्र लिखा, जो इस समय भी राष्ट्रीय सग्रहालय मे मौजूद है। इमे पढने पर पता चलता है कि धर्म के प्रति कितनी श्रद्धा और भक्ति इस महामानव के मन मे थी।

रायगढ, फरवरी १६६५।

"ऐ रामचन्द्र के हृदयाश! तुझसे राजपूतो का सर उन्नत है। बुद्धिमान जयशाह! शिवा का प्रणाम स्वीकार कर। जगत का जनक, तुझको धर्म-न्याय का मार्ग दिखाये।

मैंने सुना है कि तू मुझपर आक्रमण करने एव दक्षिण प्रात को विजय करने आया है। हिंदुओ के हृदय तथा आँखो के रक्त से तू ससार मे यशस्वी हुआ चाहता है। पर तू यह नहीं जानता कि यह तेरे मुख पर कालिख लग रही है। क्योकि इससे देश तथा धर्म आपत्ति मे पड जाएगे। यदि तू स्वयं दक्षिण विजय करने आता तो मेरे सिर और आँख तेरे रास्ते के बिछौने बन जाते। मैं तेरे हमरकाब बडी सेना लेकर चलता और एक सिरे से दूसरे सिरे तक भूमि तुझे विजय करा देता। पर तू तो औरगजेब की ओर से आया है। अब मै नही जानता कि तेरे साथ कोन-सा खेल खेलूँ। यदि मैं तुझसे मिल जाऊँ तो यह पुरुषत्व नहीं है। क्योकि पुरुष लोग समय की सेवा नही करते, सिंह लोमडीपना नही करते और यदि मै तलवार तथा कुठार से काम लेता हूँ तो दोनो ओर हिन्दुओ को ही हानि पहुँचती है। वह न्याय तथा धर्म से वचित पापी जो कि मनुष्य के रूप मे राक्षस है, जब अफ़जल खॉ से कोई श्रेष्ठता न प्रकट हुई, न शाइस्ता खॉ की कोई योग्यता देखी तो तुझको हमारे युद्ध के निमित्त भेजा है। वह स्वय तो हमारे आक्रमण को सहने की योग्यता रखता नही। वह चाहता है कि हिन्दुओ के दल मे कोई बलशाली ससार मे न रह जाय, सिंहगढ़ आपस मे लड-भिडकर घायल तथा शात हो जाय। यह गुप्तभेद तेरे सिर मे क्यो नही बैठता।

तूने ससार मे बहुत भला-बुरा देखा है। तुझे यह नही चाहिए कि हम लोगो मे युद्ध करे और हिन्दुओ के सिरो को धूल मे मिलावे। व्याघ्र मृग आदि पर व्याघ्रता करते है, सिंहो के साथ गृह-युद्ध मे प्रवृत्त नही होते। यदि तेरी काटनेवाली तलवार मे पानी है तो तुझको चाहिए कि धर्म के शत्रु पर आक्रमण कर। तूने जसवत सिंह को धोखा दिया तथा हृदय मे ऊँच-नीच नही सोचा। तू लोमड़ी का खेल खेलकर अभी अघाया नही है, सिंहो से युद्ध के निमित्त ढिठाई करने आया है। तुझको इस दौड-धूप से क्या मिलता है? तू उस नीच की कृपा का क्या अभिमान करता है? तू जानता है कि कुमार छत्रसाल पर वह किस प्रकार मे आपत्ति पहुँचाना चाहता था। तू जानता है कि दूसरे हिंदुओ पर भी उस दुष्ट के हाथ से क्या-क्या विपत्तियॉ नही आई। मैंने माना कि तू ने उसमे सबध जोडा है, पर उस राक्षस के लिए यह बधन इजारबद से अधिक दृढ नही है। वह तो अपने इष्ट-साधन के लिए भाई के रक्त तथा बाप के प्राणो से भी नही डरता।

यदि तू पौरुष तथा बडाई मागता है तो तू अपनी जन्मभूमि के सताप से तलवार को तपा तथा अत्याचार से दुखियो के ऑसू पर पानी दे। यह अवसर हमलोगो के आपस मे लडने का नही है, क्योकि हिंदुओ पर इस समय बडा कठिन कार्य पडा है। हमारे लडके देश, धन, देव, देवालय तथा पवित्र देव-पूजक इन सब पर आपत्ति आ पडी है तथा उनका दुख सीमा तक पहुँच गया है। यदि कुछ दिन उसका काम ऐसा ही चलता रहा तो हम लोगो का कोई चिह्न पृथ्वी पर न रह जायेगा। बड़े आश्चर्य की बात है कि मुट्ठी भर मुसलमान हमारे इतने बड़े देश पर प्रभुता जमावे। यदि तुझको समझ है तो देख कि वह हमारे साथ कैसी धोखे की चाले चलता है तथा हमारे सिरो को हमारी ही तलवारो से काटता है।

हम लोगो को हिंदुस्तान तथा हिंदू-धर्म के निमित्त अत्यधिक प्रयत्न करना चाहिए। यदि तू जसवतसिंह से मिल जाय और राणा से भी एकता का व्यवहार कर ले तो आशा है कि बडा काम निकल जाय। चारो तरफ से धावा करके तुम लोग युद्ध करो। उस सॉप के सिर को पत्थर के नीचे दवा लो। मै इस ओर भाला चलाने वाले वीरो के साथ इन दोनो बादशाहो का

भेजा निकाल डालूँ। मेघो की भाँति गरजनेवाली सेना से मुसलमानो पर तलवार का पानी बरसाऊँ। इसके पश्चात् कार्यदक्ष शूरो के साथ लहरे लेती हुई तथा कोलाहल मचाती हुई नदी की भाँति दक्षिण के पहाडो से निकल कर मैदान मे आऊँ और अत्यत शीघ्र तुम लोगो की सेवा मे उपस्थित होऊँ। हमलोग अपनी सेनाओ की तरगो को दिल्ली मे उस जर्जरीभूत घर मे पहुँचा दे। उसकी न अत्याचारी तलवार रह जाय और न कपट का जाल। यह काम बहुत कठिन नही है, केवल यथोचित हृदय, हाथ तथा आँख की आवश्यकता है। दो हृदय एक हो जायँ तो पहाड को तोड सकते है, समूह के समूह को तितर-बितर कर सकते हैं। जिसको पत्र मे लिखना सम्मत नही है। मै चाहता हूँ कि हम लोग परस्पर बातचीत कर ले जिसमे कि व्यर्थ मे दु ख और श्रम न मिले। यदि तू चाहे तो मै तुझसे साक्षात् बातचीत करने आऊँ और तेरी बातो को श्रवण करूँ।

तलवार की तथा धर्म की शपथ करता हूँ कि इसमे तुझ पर कदापि आपत्ति नही आयेगी। अफजल खाँके परिणाम से तू शकित मत हो, क्योकि उसमे सच्चाई नही थी। वह मेरे लिए घात लगाये हुए था। यदि मै पहले ही उस पर हाथ न फेरता तो इस समय यह पत्र तुझको कौन लिखता ? यदि मै तेरा उत्तर यथेष्ट पाऊँ तो तेरे समक्ष रात्रि को अकेले आऊँ। मै तुझको वे गुप्त पत्र दिखाऊँ जो कि मैने शाइस्ता खाँकी जेब से निकाल लिए थे। यदि यह पत्र तेरे मन के अनुकूल न पडे तो फिर मै हूँ और काटनेवाली तलवार तथा तेरी सेना। कल जिस समय सूर्य अपना मुह सध्या मे छिपा लेगा उस समय मेरा खग म्यान को फेक देगा।''—शिवाजी

शिवाजी का पत्र पढने के बाद जयसिह के मन मे उनके प्रति आदर-भाव बढ गया। वह मन ही मन महसूस करने लगा कि वास्तव मे ही वह अकेला वीर युवक मुगलो की बडी हस्ती से हिदू-धर्म की रक्षा के लिए लड रहा है। परतु जयसिह मे यह हिम्मत नही थी कि औरगजेब से अलग हो जाय।

नयी सधि के अनुसार शिवाजी अपनी फौजो के साथ जयसिह के साथ आ गये थे। परन्तु उसका सहायक सेनापति दिलेर खाँ हमेशा उनकी चुगली खाया करता था, मन मे वैर रखता था और मौका देखकर मार देना चाहता था।

एक दिन बादशाह का पत्र आया कि शिवाजी और उनके पुत्र को आगरा भेज दो, हम उनसे मिलना चाहते है। उनको इज्जत और मनसब भी देगे।

जीजा माता आगरे भेजने के पक्ष मे नही थी, परतु महाराज ने कहा कि भवानी रक्षा करेगी, आप डरे नही। हमे उत्तर के हिन्दू सरदारो के मनोभाव जानने का भी मौका मिलेगा। राजा जयसिह ने अपने इष्टदेव गोविददेवजी की सौगध खाकर उनकी रक्षा का वचन दिया। अपने पुत्र रामसिह को सारी बाते लिखकर भेज दी। ५ मार्च, १६६६ को अपने ३५० साथियो के साथ महाराज और ९ वर्ष का बालक शम्भाजी राजगढ से आगरा के लिए रवाना हुए। ११ मई को वे सब आगरा पहुँच गये। दूसरे दिन बादशाह का ५० वे जन्मदिन का जलसा था। शिवाजी पुत्र के साथ दरबार-ए-आम मे गए। शहर के रास्तो मे लोग उनकी जय-जयकार कर रहे थे। साथ के मुसलमान सिपाहियो को यह बहुत बुरा लग रहा था।

दरबार मे उन्हे तीन हजारी सरदारो की पक्ति मे खडा किया गया। औरगजेब ने आदाब का जवाब भी नही दिया। वे गुस्से से काँपने लगे। पास मे खडे रामसिह को बुरा-भला कहा और जल्दी से बिना सलाम किए दरबार से बाहर निकल कर आ गए।

यह सरासर बादशाह की तौहीन थी। वे अपने डेरे पर आ गए। थोडी देर मे ही चारो तरफ से मुगल सैनिको ने उनके डेरे को घेर लिया। उन्हे जीजा माता की कही हुई चेतावनी याद आ गई, परतु अब क्या हो सकता था ? अब तो वे पिंजरे मे बद थे।

यद्यपि औरगजेब खुद झगडा नही बढाना चाहता था, परतु उसका वजीर जाफर खाँ, जोधपुर के राजा जसवतसिंह और शाहजादी जहानआरा सब शिवाजी को खत्म कर देना

चाहते थे। इसलिए उनकी सलाह मानकर उसने आगरे के कोतवाल अंदाजखाँ के जिम्मे उनको सौप दिया। पाँच हजार पठान सिपाही चारो तरफ रात-दिन पहरे पर रहने लगे।

रामसिह को पता चल गया कि जल्दी ही शिवाजी और शम्भाजी की हत्या की जायगी। उसे अपने पिता के दिये हुए वचनो की याद आयी। उसने अपने कुछ विश्वस्त सैनिक शिवाजी के मकान पर रख दिये।

शायद अब तक वे मार दिये जाते, परतु औरगजेब राजा जयसिह को नाराज नही करना चाहता था। आगरे मे हिंदू फौज के सिपाही भी शिवाजी का आदर करते थे। इसलिए मौके की ताक मे था।

रामसिह शिवाजी से बराबर मिलता रहता। मन मे बहुत दु खी था, परतु कुछ उपाय तो था नही।

एक महीना उन्हे कैद मे हो गया। चारो तरफ कडा फौजी पहरा, कोई रास्ता नज़र नही आ रहा था। परतु वे सकट मे हिम्मत हारने वाले नही थे।

९ जून को उन्होने अपने साथ के ३५० सैनिको को दक्खिन भेजने की अनुमति माँगी। औरगजेब तो यही चाहता था।

सारे मराठा सैनिक दक्खिन न जाकर योजनानुसार आगरे के पास छिपकर इधर-उधर फैल गये। इधर शिवाजी के हत्या की सारी व्यवस्था हो गयी। उन्हे दफनाने का बदोवस्त भी हो गया।

रामसिह को गुप्तचरो द्वारा सारी बातो का पता चल गया। उसने पिता को बादशाह के विश्वासघात के बारे मे ब्यौरेवार समाचार दे दिया। एक दिन शिवाजी ने उसको बुलाकर कहा कि "तुम मेरे छोटे भाई की तरह हो। मै तुम्हे किसी प्रकार के मुगालते मे नही रखना चाहता। बादशाह से तुम मेरी रक्षा की जिम्मेदारी से छुट्टी ले लो, फिर मैं जैसा ठीक समझूँगा, करूँगा।"

वर्षा ऋतु शुरू हो गयी, जेल मे ढाई महीने बीत गये। शिवाजी जान-बूझकर अस्वस्थ रहने लगे, दिन-रात चद्दर ओढे सोये रहते। वैद्य-हकीम आने लगे। बादशाह और उमरा खुश थे कि शायद थोडे दिनो में अपने-आप ही शिवा मर जायगा, हत्या का बखेडा नही करना पडेगा।

भाद्र वदी ८, भगवान श्रीकृष्ण का जन्म-दिन महाराज के स्वास्थ्य-लाभ के लिए हिंदू-मुसलमान सबको प्रचुर अन्न-दान दिया जाने लगा।

शुरू मे तो टोकरो को खोलकर पहरेदारो ने देखा, परतु उनका तो जैसे अत ही नही था, लगातार आते ही जा रहे थे। इसलिए वे थक कर बैठ गये।

इन्ही पिटारो मे से दो मे शिवाजी और शम्भाजी बैठ गये और बात की बात मे मुगलो के पहरे से बाहर निकल गये।

घनघोर वर्षा—अँधेरी रात। वे औरगजेब रूपी कस के जेलखाने से निकल कर अपने सैनिको के पास सही सलामत पहुँच गये।

शिवाजी की जगह उन्ही की शक्ल का हीरोजी फरजदे चद्दर ओढ कर लेट गया।

बाहर आकर टहलुआ मदारी पहरेदारो से कहने लगा कि "भाई, महाराज तो शायद ही आज की रात काटे।"

मुसलमान सरदार और पहरेदार खुश थे कि चलो रोज की बला मिटी।

दूसरे दिन सुबह सदा की तरह फौलादखाँ जब महाराज के कमरे मे गया तो पलग खाली था। नीचे ऊपर चारो-तरफ देखा परतु शिवाजी या शम्भाजी दोनो ही नही मिले।

डरते हुए औरगजेब के पास जाकर सूचना दी। बादशाह ने सर पीटते हुए

कहा—"बेवकूफों, नगकहरामो, तुम लोगो ने यह क्या किया ? क्या वह कम्बख्त जमीन मे धँस गया या आसमान मे उड गया । जब तक उसको पकड कर नही लाते तब तक मुझे अपना काला मुँह मत दिखाना ।"

यद्यपि रामसिह की मनसबदारी तो छिन गयी, परतु वह मन ही मन खुश था कि पिता की बात रह गयी ।

चारो तरफ मुगल-सैनिक घोडे लेकर शिवाजी को पकडने निकले ।

इधर शिवाजी ने दाढी-मूँछे मुडाकर साधु का वेश बना लिया । शम्भाजी को एक विश्वस्त मराठा-परिवार मे मथुरा मे छोड़कर वे काशी की तरफ रवाना हो गए । रास्ते मे बिना आराम किए लगातार चलकर २५ दिनो मे राजगढ पहुँचे । माता जीजाबाई को सूचना भिजवाई कि काशी के कुछ साधु-महात्मा आए है जो माँजी साहिबा से मिलने की जिद्द किए हुए है ।

महल के भीतर आकर उनमे से एक साधु माँजी के पैरो मे गिर पडा । एक बार तो वे बडे धर्मसकट मे पड गई, परतु चाहे किसी भेष मे हो पुत्र तो पहिचान मे आता ही । दोनो तरफ से हर्षाश्रुओ के साथ हिचकियाँ बँध गई । शम्भाजी को भी कुछ दिनो के बाद एक विश्वस्त व्यक्ति के साथ राजगढ बुला लिया गया । औरगजेब के मन मे मरते समय तक इस बात का पछतावा रहा कि शेर पिंजडे से भाग गया ।

●
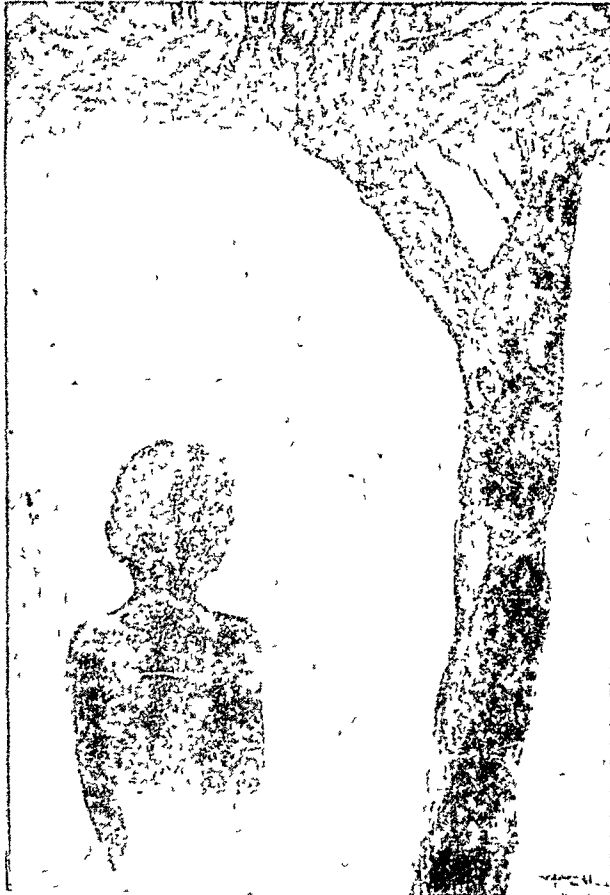
प्यार की कीमत

दिल्ली के लाल किले मे शाहजादी जैबुन्निसा का महल । जनवरी की हृत्कप ठढ और सनसनाती हुई सर्द हवाएँ । यद्यपि सूरज ऊपर चढ आया था, परतु शहजादी अपने महबूब आकिल खॉ की बॉहो मे अलसायी हुई लेटी थी ।

अचानक बॉदी गुलरुख ने दौडते हुए आकर कहा—"शाहजादी साहिबा, गजब हो गया, बादशाह हुजूर इस तरफ आ रहे हैं ।"

शाहजादी घबराई हुई चारो तरफ देखने लगी । सामने के गूसलखाने मे एक बडी देग पानी से भरी हुई रखी थी । जल्दी से आकिल खॉ को उसमे छिपा दिया ।

नगी तलवारो से लैस ८-१० तातारी बादियो और ख्वाजासरो के साथ औरगजेब ने प्रवेश किया । हरम की बॉदियाँ सहमी-सी एक तरफ खडी हो गईं । शाहजादी ने झुककर कोर्निश करते हुए कहा—"अब्बा हुजूर ने इस बेवक्त कैसे तकलीफ़ की ?"

बादशाह ने चारो तरफ नजर दौडाते हुए कुटिल मुस्कान मे कहा, पहरेदारो ने खबर दी है कि सल्तनत का एक बागी इस तरफ आया है ।"

सफेद मोतियो के से दॉतो मे बरबस लाई हुई हँसी मे शाहजादी ने जवाब दिया—"भला इस तरफ आने की जरूरत किस मूजी को हो सकती है ?"

पास मे शाहजादी की मुँहलगी बॉदी गुलरुख खडी थी । बादशाह ने डपटते हुए कहा—"तेरे बच्चे और खाविन्द को कोल्हू मे पिरा दिया जायगा और तेरी बोटी-बोटी जगली कुत्ते से नुचवा दी जाएगी, नही तो बता कि वह बागी कहाँ छिपा हुआ है ?" डर से कॉपती हुई उसने देग की तरफ इशारा कर दिया ।

सूरज इतना ऊपर चढ आया और अभी तक शाहजादी ने गुसल नही किया ?"

अब्बा हुजूर, सर जरा भारी था, इसलिए उठने मे देर हो गई । गुसल करके जल्दी ही आपके हुजूर मे हाजिर होती हूँ ।"

बादशाह ने भट्ठी की तरफ देखते हुए कहा—"अभी तक तो आग ही नही जलाई गयी है । फिर भला कब पानी गर्म होगा और कब शाहजादी गुसल करेगी ।"

बॉदियो को हुक्म हुआ कि देग के नीचे की भट्ठी मे बहुत-सी लकडियाँ जलाओ जिससे जल्द पानी गर्म हो जाय ।

थोडी देर मे ही आग की लपटे उठने लगी । बादशाह पहरे पर तातारी बॉदियो को छोडकर अपने महल मे चला गया ।

गर्म भाप से देग का ढक्कन उठने-गिरने लगा शाहजादी ने देग के पास आकर धीरे से

कहा—"आकिल, मेरी इज्जत तुम्हारे हाथ मे है। तिल-तिल करके जल जाना, मगर ऐसा न हो कि मुँह से आह निकल जाय।"

थोडी देर मे ही शाहजादी जेबुन्निसा मूर्छित होकर एक तरफ गिर पडी। जब होश आया तो देखा कि किसी समय की दी हुई प्यार की निशानी उसका जडाऊ कगन देग के बाहर पडा हुआ है।

पिछले बारह महीनो की बातें चित्रपट की तरह उसके मानस पर उभर आईं। अब्बा हुजूर की तबीयत नासाज थी। वे दिल्ली की खटपट से कही दूर जाकर आराम लेना चाहते थे। जेबुन्निसा उसकी सबसे प्यारी औलाद थी। निगहदारी और बदोबस्त के लिए उसे साथ लिया और एक बडे काफिले के साथ लाहौर आ गये।

हकीमो ने बादशाह को दरिया मे घूमने की सलाह दी, इसलिए शाम होते ही एक बडे बजरे मे रावी मे घूमने जाते। साथ मे रहती उनकी बेगमे और शाहजादी जेबुन्निसा।

कभी-कदाच सल्तनत के कामो से उन्हे रुकना पडता तब शाहजादी अकेली ही चली जाती। उसे रावी की चचल लहरो से प्यार-सा हो गया था।

उसने महसूस किया कि जिस दिन बादशाह नही आते, उसे किले की बुर्ज की तरफ से एक दर्द भरी गजल सुनने को मिलती है। गायक की लय और तान मँजी हुई थी, परतु उसमे उदासी की तडपन-सी रहती। गजल सुनकर उसके मन पर उदासी छा जाती। गजल के बोल कुछ इस प्रकार के होते—

"ऐ आकाश मे उडनें वाले पछी! तू कितना सुन्दर है, मै तुम्हे बहुत प्यार करता हूँ, परतु तू ऊँचे आकाश मे है, मेरी पहुँच से बहुत दूर। ऐसा लगता है जीवन मे कभी तुझे नजदीक से नही देख पाऊँगा, न तेरे सुन्दर मुलायम पखो पर हाथ फेर सकूँगा। इसी तरह घुटन से भरी मेरी जिंदगी जल्द ही खत्म हो जाएगी। मेरी आरजू है कि अगर कभी मौका मिले तो पास के बगीचे से अपनी चोच मे एक फूल लाकर मेरी कब्र पर चढा देना। इससे मेरी तडपती हुई रूह को राहत मिलेगी, यही सबसे बडा सकून होगा।"

कभी-कभी उसके भाव इस प्रकार के होते—"ऐ हवाओं, मेरा प्यारा नजदीक होते हुए भी बहुत दूर है, वह मेरी जुदाई के दर्द को पहचानता नही है। क्या तुम उसके दरबार मे मेरी तडपन और दर्द के बारे मे बयान कर दोगी?"

शाहजादी ने गुलरुख को उस शख्स को ढूँढकर हाजिर करने के लिए कहा, परतु उसका कुछ भी पता नही चला।

आखिर लाहौर के सूबेदार आकिल खाँ की तलबी हुई। वह कोर्निश करके दस्तबस्ता एक तरफ खडा हो गया। २५-२७ का सिन, गठीला बदन, सुन्दर घुँघराले बाल, गोरा रोबदार चेहरा, परतु गमगीन सा दिखाई देता हुआ।

शाहजादी बजरे मे थी और वह पास की नौका मे। पर्दे मे से गुस्सा भरी आवाज आयी, "कौन है वह शख्स जो अपनी दर्द भरी गजले गाकर हमारी तनहाई मे दखल डालता है? हम यहाँ आराम करने आए है न कि मजनुओ का दु ख-दर्द सुनने? उसे कल तक हाजिर किया जाय, यह हमारा हुक्म है।"

"गुस्ताखी माफ हो, शाहजादी हुजूर, वह एक पागल आदमी है। उसे आज रात को ही पकड कर दूर भेज दिया जायगा।"

"हमे लगता है कि हमारे सूबेदार बात को टालने की कोशिश कर रहे है। हम उस अभागे से बात करके उसके रजोगम के बारे मे सुनना चाहेगे, अगर हो सका तो उसकी तकलीफ दूर करने की कोशिश की जायगी।"

आकिल खाँ ने देखा शाहजादी के हुक्म मे एक प्रकार की आरज़ू है। मन को कडा करके

सहमते हुए कहने लगा, " शाहजादी हुजूर, यह खता इस गुलाम से हुई है, यह सर हाजिर है, भले ही कलम करा दिया जाय ।"

शाहजादी को भी कुछ अन्देशा तो था ही, उसका दिल भर आया । कुछ वर्षो पहले ही उसकी मँगनी उसके ताऊ दाराशिकोह के शाहजादे सिपरशिकोह के साथ हो गयी थी । अभी बचपन ही था, फिर भी दोनो प्यार मे सरावोर थे । परतु होता वही है जो मजूरे खुदा होता है ।

दादा बीमार हुए, उन्हे कैद में डालकर अब्बा ने बडे भाई दारा का सर काट लिया और उसके मँगेतर शाहजादे को ग्वालियर के किले मे पोस्त पी-पीकर मरने को कैद कर दिया । इस प्रकार पूरे खानदान को अब्बा ने दुश्मन बना लिया, परतु जेब के लिए सिपर को दुश्मन मानना किसी हालत मे मजूर नही था । कभी-कभी चुपके से ग्वालियर जाकर मिलने का भी मन होता, परतु पिता के डर से मन मसोस कर रह जाती । आज न जाने क्यो बहुत वर्षो से सोई हुई तमन्नाएँ जाग उठी । सोचने लगी, मुगलिया खानदान के बादशाह और शाहजादे दसों बेगमे और सैकडो रखैल रख सकते हैं, जब कि शाहजादियो को उम्र भर कुँवारी रह कर जवानी की उमगो को जबरन दफना देना पडता है । पचास वर्ष की बुआ जहान आरा अभी तक कुँवारी रह कर आगरे के किले मे अपने पिता शाहजहाँ के साथ कैद मे दिन गुजार रही है । इससे तो बेहतर है कि खुदा भले ही गरीब घर मे पैदा कर दे, जिससे ताजिंदगी इस घुटन मे तो न रहना पडे ।

उसे लगा कि आकिल की जगह किशोर सिपर उसके सामने खडा है । कहने लगी—"सच्ची मुहब्बत बेवफा नही होती आकिल ! दिया जलता है तो पतिंगे भी जलते है । हमारी तरफ इस तरह न देखो । हमारा भी दिल दर्द से भरा हुआ है, उसको समझने की कोशिश करो ।"

आकिल को लगा कि उसके भटकते हुए सपने डूबने से बचकर लहरो पर थिरक रहे है । फिर तो दो दिलो का रुका हुआ बाँध टूट गया । रोजाना वे कही न कही मिलते रहे । प्यार मे शाहजादी हुजूर का नाम रह गया केवल 'जेब' और लाहौर के युवक सूबेदार का आकिल'।

औरगजेब के हजारों आँखे भी थीं । पहले दर्जे का शक्की तो था ही वह, उसे शाहजादी के अचानक बदलाव से वहम हो गया । सजीदा आकिल भी चहकता-सा रहने लगा । आखिर उसने किसी प्रकार वाकया का पता लगा ही लिया ।

एक हफ्ते मे ही लाहौर से कूच का हुक्म हुआ । पालकियो और रथो मे बेगमें और शाहजादी जा रही थी । हिफाजत के लिए तातारी बाँदियो और खोजाओ का पहरा था । दूसरी शाम को शाहजादी ने देखा घोडे पर चढा हुआ रज से गमगीन आकिल किसी तरह उसकी पालकी के पास पहुँच आया है । जल्दी से एक जडाऊ कगन उसको देते हुए सिसकियो भरी आवाज मे शाहजादी ने कहा कि "प्यारे, मेरी यह आखरी निशानी अपने पास ताजिंदगी रखना । हमारी यह आखिरी मुलाकात है । अब्बा को सब पता चल गया है । तुम्हे जल्द ही कत्ल कर दिया जाएगा, ऐसी पोशीदा खबर मिली है । अगर हो सके तो हिन्द से भागकर काबुल या अफगानिस्तान चले जाओ । खुदा ने चाहा तो कभी न कभी फिर मिलना हो जायगा, नही तो फिर उस दुनिया मे तो मुलाकात होगी ही जहाँ न शाहंशाह का डर है, न उनकी फौजो का ।"

आकिल खाँ ने सर झुका कर कगन को लेकर चूम लिया और केवल इतना ही कह पाया "बंदा मर मिटेगा, मगर आपकी इज्जत पर आँच नही आने देगा ।" उसका गला भर आया, आवाज काँपने लगी । वह आँखे पोछता हुआ जल्दी से आगे बढ़ गया ।

दिल्ली आकर बादशाह ने अपनी प्यारी बेटी का गम दूर करने की बहुत कोशिश की ।

कई मुल्को के शाहजादो की तस्वीरे मँगायी गयी। उनमे से किसी एक को शादी के लिए चुन लेने का सुझाव दिया।

परतु शाहजादी का एक ही जवाब रहता—"मैं तो ताजिंदगी अब्बा हुजूर की खिदमत मे रहूँगी। अभी तक तो मेरा कुरान-शरीफ का तर्जुमा भी पूरा नही हो पाया है। भला हमारी ऐसी क्या खता हो गयी कि अब्बा हमे आँखो से दूर करना चाहते है।"

हाँ, तखलिया मे वह गुलरुख से कहती—"गुल, अब्बा रियासती मामलो को समझते है, मगर किसी के दर्द की तडपन को नही। वे सारे हिंद के बादशाह जरूर है, पर उन्हे क्या हक है कि प्यार से लगाये हुए किसी मासूम पौधे को कुचल कर फेक दे।"

इतना कहकर, औरगजेब के बाद हिंदुस्तान की सबसे ताकतवर शख्सियत बिलख-बिलख कर रोती हुई बेहोश होकर गुलरुख की बाँहो मे गिर जाती।

एक दिन यह भी सुना गया कि आकिल खाँ की दिल्ली दरबार मे तलबी हुई है, परतु वह भागकर कही चला गया है। उसे ढूँढने के लिए चारो तरफ फौजे भेजी गई है।

इसके एक महीने बाद जब शाहजादी सदा की तरह गमगीन बैठी थी तो गुलरुख दौडती हुई आयी और धीरे से कहने लगी—"शाहजादी हुजूर, खुशखबरी है।" कान मे कही हुई बात सुनकर शाहजादी के बीमार और मुरझाए चेहरे पर चमक-सी आ गई। चहक कर कहने लगी—"कहाँ हैं ? तुझे कैसे पता चला ?"

—"कल रात मे ही तो मेरे गरीबखाने पर आकर ठहरे है। बढी हुई दाढी, मैले कपडे किसी समय के सजीले जवान, दु खो के मारे बीमार से दिखाई दे रहे है।"

उसी रात से एक लम्बी-तगडी बाँदी गुलरुख के साथ शाहजादी के हरम मे आने लगी। पूछने पर उसने अपनी मामू की बेटी बतायी। औरतो के सामने भी वह परदा करती इसलिए कुछ कानाफूसी होने लगी—परतु बेगमो और शाहजादियो के हरम मे इस प्रकार की मामूजाद और फूफीजाद बाँदियाँ प्राय ही आती-रहती थी, इसलिए थोडी-सी चर्चा होकर बात दब जाती।

परतु शाहजादी जेबुन्निसा के महल के लिए यह नई बात थी। वह कट्टर मजहबी थी रोज तरन्नुम के साथ कुरानशरीफ का पाठ करती, हर जुम्मा को मस्जिद मे जाती, दिन मे पाँच बार नमाज पढती। बादशाह हुजूर तक खबर पहुँची। उनको अदेशा तो था ही कि बागी जरूर दिल्ली आएगा, क्योकि इश्क मे मौत का डर नही रहता। आखिर परिंदा जलने के लिए ही तो दीये के पास झूमता हुआ चला आता है।

इधर जब पद्रह दिन हो गए तो एक रात मे आकिल कहने लगा—"जेब, इस प्रकार कितने दिन चलेगा ? हमे यहाँ से कही दूर निकल जाना चाहिए। मैं खुदा की कसम खाकर कहता हूँ कि मुझे केवल मेरी जेब चाहिए न कि उसकी दौलत और रुतबा। कही भी दो पैसे मजदूरी करके पेट भर लेगे।

मुस्कराती हुई जेब ने कहा कि "आकिल कल जरूर फैसला कर लेगे।" और दूसरे दिन अपने आप फैसला हो गया।

●

नंगा फ़कीर सरमद

सवा तीन सौ वर्ष पहले की वात है। वडे भाई दारा को मारकर और पिता शाहजहाँ को कैद करके औरगजेव दिल्ली के सिंहासन पर वैठ चुका था। हिन्दुओ के धर्मस्थानो को तोडता जा रह था, जजिया कर भी लगा दिया था। वादशाह वनने के वाद उसे गाजी वनने की धुन सवार थी।

जामा मस्जिद के सामने हिंदू-मुसलमान और सिखो की भीड इकट्ठी थी। शहर मे वहुचर्चित नगा फ़कीर सरमद वीच मे खडा हँस रहा था।

वादशाह जुम्मा की नमाज पढकर वाहर आया। लोग वा-अदव खडे होकर कोर्निश करने लगे, परंतु सरमद उसी तरह खडा रहा।

वादशाह ने कहा—"सुना जाता है तुम मुसलमान फकीर होने के वावजूद कुफ्र वकते रहते हो ? पाक मस्जिद के सामने वेपर्द रहते हो ?"

फकीर के चेहरे पर पवित्र आभा फैल गयी। कहने लगा—"ऐ वादशाह, अल्लाह सव जगह मौजूद है—मस्जिद, गिरजे, मदिर और गुरुद्वारो मे। मेरी नजर मे सभी धर्म स्थान पाक हैं। कुफ्र तुम्हारे मौलवी वकते हैं, जो खुदा को किसी एक किताव मे या मस्जिद मे वद करके रखते है। तुम जो मुझे नंगा कहते हो, यह तुम्हारी वे-अक्ल की वात है। जव खुदा ने मुझे और तुम्हे इस जमीन पर भेजा था तव हम बिना लिवास के थे, फिर अव उसके दरवार मे क्यों झूठी चिलमन डाली जाय।"

औरगजेव ने देखा सरमद सीना तानकर वेझिझक उसके सामने खडा है, डर-भय का नाम भी नही। परंतु वह वहुत चालाक था, अवाम के जज्वातो को पहचानता था। इतने बडे हुजूम मे अपनी तौहीन को हँसकर गवारा कर लिया और यह कहा कि तुम्हारी निडरता और हाजिरजवावी पर हम वहुत खुश हैं। कभी तुम्हे दरवार मे वुलाकर वात करेगे। हिंदू और सिख तो इस वाकये से वहुत खुश हुए, परंतु कट्टर मुसलमान काजी और मुल्ला वौखला उठे। लेकिन उस समय लोगो का रुख देखकर चुप रहे।

कुछ दिनो वाद वे वादशाह के पास गये। कहने लगे—"हुजूर, सरमद हमेशा कुफ्र वकता रहता है, पाक-कुरान को वेइज्जत करता है, वह दोजखी कीडा है, उसे जल्दी दुनिया से उठा दिया जाय, नही तो दीन-इस्लाम के वदो मे भी कुफ्र फैलने का डर है।"

औरगजेव तो यही चाहता था कि लोगो में सरमद के लिए घृणा फैले, जिससे उसे सजाए मौत दी जा सके। उसे गिरफ्तार करने के लिए सिपाही भेज दिए गए, परतु इस वीच मे वह दिल्ली मे वाहर चला गया था। जहाँ भी जाता, हजारो लोग इकट्ठे हो जाते। वह कहता—"खुदा एक है, दुनिया के सव वच्चे उसे एक-से प्यारे है—चाहे वे किसी भी मजहव के

हो। ये बँटवारे नकली है, खुदा के बदो पर जजिया लगाना उसकी वेइज्जती है।"

ये बाते दिल्ली मे बढ-चढकर पहुँचीं। कही लोगो मे बलवा न फैल जाय इसलिए एक फौजी टुकडी ने उस नगे फकीर को पकडकर रात मे दिल्ली लाकर लाल किले मे बद कर दिया।

यद्यपि बात को पोशीदा रखा गया था, परतु बेगमो और बादशाह की प्यारी बेटी जैबुन्निसा को फकीर की गिरफ्तारी का पता चल गया। वे उसके चमत्कारो के बारे मे बहुत-कुछ सुन चुकी थी। शाहजादी बादशाह के पास जाकर कहने लगी—"अब्बा हजूर, लोग कहते है सरमद पहुँचा हुआ फकीर है, उसे कैद करके आपने अच्छा नही किया। हम लोगो की दरख्वास्त है कि उसे वापस उसके मुल्क ईरान भेज दिया जाय। अगर आपका हुक्म हो तो मैं एक बार उसे समझाना चाहती हूँ, इस पर भी वह न माने तो फिर जो आप तजबीज करे, वह सजा दे।"

औरगजेब को यह बात जँच गयी। उसने सरमद का फैसला मुलतवी कर दिया, सोचा—कुछ दिनो मे मुल्लाओ का जोश भी ठढा हो जायगा।

शाहजादी किले के तहखाने मे सरमद की कोठरी मे गयी। कहने लगी—"बाबा, आप पाक-साफ औलिया मुसलमान है, लोग आपकी इज्जत करते है, आपकी बात मानते है। आपको पाक इस्लाम के प्रचार मे लगना चाहिए, मैं आपकी हर तरह से मदद करूँगी। कट्टर मुल्लाओ से हिफाजत के लिए आपके पास हमेशा दस-बीस सिपाही और खिदमतगार रख दूँगी। अब तक आपके साथ जो सलूक हुआ उसके लिए हम शर्मिदा है।"

सरमद हँसकर कहने लगा—"शाहजादी, जो सर्वशक्तिमान अल्लाह की हिफाजत मे है, उसे भला तुम्हारी फौज और खिदमतगारो की क्या जरूरत है। मैं न मुसलमान हूँ न हिन्दू—बल्कि एक इसान हूँ। शायद तुम्हे मेरी बद्दुआ का डर लगता है। परतु यकीन रखो, सरमद के मन मे किसी के लिए बदगुमान नही है, वह सबका भला चाहता है। तुम इस वक्त मुगलिया सल्तनत की ताकतवर हस्ती हो, बादशाह तुम्हारी बात मानता है। तुम्हारा फर्ज है कि बेकस इसानो की तकलीफे दूर करो। अपने अब्बा से कहकर मदिरो और गुरुद्वारो का तोडना रोको और जजिया कर तुरत बद करो। तुम लोगो ने खुदा को तकसीम करके छोटा बना दिया है। तुम्हारे अब्बा अगर अब भी नही सम्हलेगे तो उनको जिदगी मे कभी अमन-चैन नही मिलेगा। इतनी बडी सल्तनत कुछ वर्षो मे ही नेस्त-नाबूद हो जायगी।"

शाहजादी बाप से भी ज्यादा कट्टर मुसलमान थी। उसे फ़कीर की गुस्ताखी भरी बातो से गुस्सा आ गया। बादशाह के पास जाकर कहने लगी—"अब्बा हुजूर, ऐसा लगता है कि यह फ़कीर पागल नही है बल्कि अव्वल दर्जे का गुस्ताख है और कुफ्र बकता है। मेरी आरज़ू है कि इसको जितनी जल्दी हो सके कत्ल करा दिया जाय।" दूसरे दिन बादशाह ने फ़कीर को दीवान-ए-आम मे बुलाया। हुक्म दिया कि "ऐ फकीर! जरा कलमा पढकर तो सुनाओ।" सरमद ने कहा—"ला इल्लाह।" "यह तो अधूरा है, आगे के अल्फाज भी तो बोलों।" "औरगजेब, सरमद जिस बात पर यकीन नही करता उसे कैसे कहेगा? मै यह नही मानता कि मुहम्मद रसूल अल्लाह है (केवल मुहम्मद ही खुदा का पैगम्बर है) मेरी समझ मे तो बुद्ध, ईसा और नानक भी मुहम्मद की तरह खुदा के पैगम्बर थे।" कुफ्र की हद हो गयी। सरे आम पैगम्बर का दूसरे काफिरो से बराबरी कर रहा है।

बादशाह गुस्से से काँपने लगा। हुक्म दिया कि इस काफिर का सर धड से जुदा कर दो, लाश कुत्तो के लिए दिल्ली की गलियो मे फेक दी जाय। सरे आम पैगम्बर दूसरे काफिरो से बराबरी कर रहा है।

सरमद को वध-स्थल पर ले जाया गया। दिल्ली के हजारो लोग रो रहे थे, छाती पीट रहे थे। सरमद ने मुस्कराते हुए कहा—"दोस्तो, मसूर का किस्सा पुराना हो गया था। मैं

सूली पर चढ कर उसे फिर ताजा कर दूँगा।"

जब जल्लाद तलवार लेकर आया तो प्यार भरी नज़र उस पर डालकर कहने लगा—"मेरे प्यारे, तुम आ गये ? तुम किसी भी शक्ल मे आओ, मै तुम्हे पहचान लूँगा। क्योकि मैं तेरे जर्रे-जर्रे से वाकिफ हूँ।"

जल्लाद एक बार तो झिझका, परतु फिर तलवार का वार हुआ। सरमद का सर धड से जुदा होकर एक तरफ लुढक गया।

सवा तीन सौ वर्ष हो गये, इस बीच बहुत से राजा, बादशाह, अमीर, उमराह आए और चले गए। आज उनको कोई पहचानता भी नही, परतु जामा मस्जिद के नीचे कोने मे सरमद की साधारण-सी कब्र है, उस पर रोजाना सैकडो स्त्री-पुरुष प्यार और इज्जत से फूल-बताशे चढाते है। झुक कर आदाब बजाते है, बच्चो के लिए दुआएँ माँगते है।

माँ की ममता

सन् १७०७ मे बाप की तरह भाइयो की हत्या करके औरगजेब का बडा लडका मुअज्जम ६६ वर्ष की उम्र मे दिल्ली के तख्त पर बैठा ।

५ वर्ष बाद उसके मरने पर उसी तरह दूसरे भाइयो को मारकर अथवा कैद करके मुईजुद्दीन जहाँदारशाह के नाम से बादशाह हुआ । वह अव्वल दर्जे का ऐय्याश और निकम्मा था । सारे दिन अफीम और शराब के नशे मे रहता ।

यद्यपि पिछले पाँच वर्षो मे मुगलिया सल्तनत सिकुडती जा रही थी, सूबेदार मनमानी करने लगे थे, फिर भी दिल्ली के लाल किले मे मयूर सिंहासन और अरबो रुपये की धन-सपत्ति तो थी ही ।

सल्तनत की सारी हुकूमत मलका-ए-आजम लालपरी बेगम करती थी । किसी समय वह आगरा मे साधारण नर्तकी थी । किशोरावस्था मे ही एक बच्चे की माँ बन गयी । एक महीने के बच्चे को सीकरी की जामा मस्जिद के बडे इमाम को सौप कर खुद एक रिश्तेदार के यहाँ दिल्ली चली आई ।

सयोग से वह बडे शाहजादे की नजर पर चढ गई और जब वह जहाँदारशाह के नाम से तख्त पर बैठा तब उसे शादी करके हरम मे रख लिया । समय पाकर अपनी खूबसूरती, होशियारी और दयानतदारी से बडी बेगम बन गई । मुगलिया सल्तनत उसके हाथो मे आ गई, उसे दूसरी नूरजहाँ कहा जाने लगा ।

उस सस्ती के जमाने मे उसे दो करोड रुपये सालाना हाथखर्च के लिए मिलते थे, जिसमे से ज्यादातर वह जरूरतमंद और गरीबो मे बाँट देती थी ।

मलका के अलावा दूसरा शक्तिशाली व्यक्ति था—हिजडा नासिर हुसेन । बिना उसकी मर्जी के बादशाह या मलका से किसी की मुलाकात होनी सभव नही थी । यद्यपि सल्तनत के दूसरे अमीर-उमरा उससे नाराज़ थे तथा उसके व्यवहार से दु खी थे । परन्तु ऊपरी तौर पर उसकी खुशामद करते रहते थे ।

हिजडा होने के कारण वह महलो मे बेरोक-टोक जाता रहता था । बेगमो और शाहजादी, शाहजादो के चारित्रिक दोषो की उसे पूरी जानकारी रहती, इसलिए सब उससे डरते रहते । केवल बडी बेगम ही ऐसी थी, जिसके दामन पर किसी प्रकार का दाग नही था ।

एक शाम को आगरे से फतेहपुर सीकरी की बडी मस्जिद का इमाम एक १० वर्ष के बच्चे को लेकर लाल किले के फाटक पर आया । पहरेदार से ख्वाजासरा से मिलने का सदेश भिजवाया । वे नासिर के सामने हाजिर हुए । बुजुर्ग मौलवी का चेहरा दयानतदार और रोबीला था । साथ का बच्चा भी बहत खूबसूरत था । थोडी देर तक नासिर उनको देखता

रहा फिर रोव से कहने लगा—"आपको पहले मेरे मातहत लोगो से मिलना चाहिए था, फिर अगर वे जरूरी समझते तो मेरे पास ले आते।"

"जनाव, हमारा काम ही कुछ ऐसा था कि आपका कीमती वक्त लेना पडा। हमे वडी मलका से मिलना है—आप इसका इन्तजाम कर दे।"

मौलवी की विना खुशामद की वाते सुनकर खोजा नाराज़ हो गया और कहने लगा—"आपके काम की जानकारी होने के वाद ही मैं तय करूँगा कि आपको मलका से मिलने दिया जाय या नही ?"

"माफ करिए, हमारा राज पोशीदा है, हम मलका के सिवाय किसी को नही वतायेंगे।"

नासिर गुस्सा होकर कहने लगा—"आप वुजुर्ग है, वडी मस्जिद के इमाम है, नहीं तो ऐसी गुस्ताखी भरी वातो को सुनने का मैं आदी नही हूँ। खैर, ऐसा लगता है कि यह राज़ उम्र भर आपके पास ही रहेगा। आप दोनो लाल किले के तहखाने मे कैद रहेगे।"

थोडी देर तक मौलवी कुछ सोच-विचार करता रहा, फिर एक निश्चय पर पहुँचकर कहने लगा—"भाई, आप खामख्वाह नाराज़ हो गये है। खैर, इस मासूम वच्चे के खातिर वह राज मै आपको वता रहा हूँ। खुदा की कसम है, किसी दूसरे को इसका पता न चले।"

सारी वाते सुनकर खोजा के चेहरे पर एक दुष्टताभरी मुस्कान फैल गयी। बहुत कीमती राज उसे मिल गया था। उन्हे वही ठहरने को कहकर वह भीतर महल मे चला आया। थोडी देर वाद वापस आया तो मलका उसके साथ मे थी। मौलवी ने १० वर्ष पहले उसे वुरी हालत मे देखा था। आज तो वह हीरे-पन्ने से लदी थी। चेहरे पर हुकूमत का रोव था।

मौलवी को सलाम करके वच्चे की तरह टकटकी लगाकर देखने लगी। १० वर्ष पहले की सारी घटना याद आ गई। वह वच्चे को गोदी मे वैठाकर सुवक-सुवक कर रोने लगी। आज वह मुगलिया सुल्तनत की मलक-ए- आजम नही थी, वल्कि केवल एक ममताभरी माँ थी। पिछले आठ वर्षो से वह शाही हरम मे थी, परतु उसके कोई वच्चा नही हुआ था।

"वावा, आप लोग वगल के कमरे मे आराम करे, मैं आपको थोडी देर मे वुला लूँगी।"

खोजा से सलाह-मश्विरा होने लगा कि किस प्रकार वादशाह सलामत के हुजूर में वच्चे को पेश किया जाय।

"मलका-ए-आजम वैसे मैं आपका गुलाम हूँ, आपका हुक्म वजाना मेरा फर्ज है। परन्तु जहाँ तक इस राज का सवाल है, मुझे सारी वाते माँ-वदौलत से व्यौरेवार कहनी होगी, नही तो पता लगने पर मेरी जान पर आफत आ सकती है। वैसे हर चीज की कीमत होती है, मैं पिछले दो वर्षो से सल्तनत की वजीरी के लिए आपकी इल्तजा कर रहा हूँ, पर आप न जाने क्यो मुझसे नाराज़ है।"

वेगम खोजे की मक्कारी की वाते समझ गई, परन्तु वह अपने निजी स्वार्थ के लिए सल्तनत को ऐसे आदमी के हाथ मे सौपने को तैयार नही थी।

"यह किसी हालत मे मुझे मंजूर नही है। अगर जरूरत हुई तो मैं अपने वच्चे के साथ फतेहपुर सीकरी की मस्जिद मे रहकर दिन काटने को तैयार हूँ। मुझे मलका-ए-आजम नही रहना है।"

"वेगम साहिवा, अभी तो केवल हम चार आदमी ही जानते है, परतु कल सुवह तक यह वात सारी दिल्ली मे फैल जायगी। जो लोग आपको आज तक पाक-साफ समझते आ रहे है, वे थू-थू करेगे। शायद वादशाह आपको और वच्चे को जिंदा नही रहने देगे। जिस फ़कीर वावा ने वच्चे की हिफाजत की है, वह भी तहखाने में सडेगा।"

हिंदुस्तान की मलका रोती जा रही थी। किसी प्रकार भी उसे आगे का रास्ता दिखाई नही दे रहा था।

नासिर कहने लगा—"मलका-ए-आजम यह समय जजबातो का नही है, आप सारी बाते मुझ पर छोड़ दीजिए। किसी को पता भी नही चलेगा कि मौलवी और बच्चे का क्या हुआ ?"

वेगम रोती हुई भीतर चली गई।

नासिर उस कमरे मे आया जहाँ मौलवी और बच्चा आराम से बैठे हुए भविष्य का सुख-स्वप्न देख रहे थे।

मौलवी कह रहा था—"बेटा, अल्लाह ताला की रहम से तुम अब बहुत अमीर हो गए हो। आगे से तुम यही रहोगे। परन्तु अपने बूढे बाबा को मत भूल जाना। कभी-कभी सीकरी आते रहना।"

नासिर आकर उन्हे अपने साथ लम्बे गलियो मे होते हुए किले के सुरग मे ले गया। वहाँ एक अँधेरा तहखाना था जहाँ गूँगे-बहरे हब्शी पहरा दे रहे थे। ख्वाजासरा के इशारा करने पर चार हब्शियो ने उन्हे पकड़ लिया।

"मौलवी साहब, आखिरी वक्त मे खुदा को याद कर लीजिए। मैंने मलका को बहुत समझाया, परन्तु उनकी मशा है आप दोनो को ख़त्म कर दिया जाय।"

"भाई, मैं तो खैर ८० वर्ष का बूढा हूँ। आज नही तो कल खुदा के घर जाना है, परन्तु इस मासूम बच्चे का क्या कसूर है ? एक बार हमे मलका से फिर मिला दे।"

ख्रोजा ने गुलामो को इशारा किया। इस बीच तहखाने के कुएँ के पटरे खुल चुके थे, उन दोनो को घसीट कर उधर ले जाया जा रहा था। बच्चा जोर-जोर से रोने लगा।

अचानक तहखाने का दरवाज़ा खुला और दौडती हुई मलका बदहवाशी की हालत मे भीतर आयी। हब्शियो को रुकने का इशारा किया।

"बेगम, आप अपने पैरो पर कुल्हाडी मार रही है। यह समय निजी जजबातो का नही है। आज आप मुगलिया सल्तनत की आला हस्ती है। जैसे ही इस बात का पता बादशाह सलामत को चलेगा, आपकी इज्जत खाक मे मिल जायेगी। आप एक धोखेबाज बाजारू औरत साबित होगी।"

"मक्कार हिजडे, तुम्हारी बहुत ज्यादती मैने आज तक सही, इस दु ख के समय भी तुमने अपनी वजीरी की कीमत वसूल करनी चाही। फिर भी तुम्हारा क्या भरोसा कि कब इस बात को नही फैला दोगे ? मौलवी बाबा और बच्चे का मुझे यकीन है, परतु तुम्हारा नही।"

बेगम ने हब्शियो को उन दोनो को छोड देने का और हिजडे को कुएँ मे ढकेलने का इशारा किया।

खोजा बहुत रोया-चिल्लाया, आरजू-मिन्नत करने लगा परन्तु उस जमीदोज तहखाने मे कौन उसकी आवाज सुनता। हब्शियो ने उसे पकड कर कुएँ मे ढकेल दिया। एक जोर की आवाज हुई और अपनी समय का बहुत ताकतवर किन्तु बदनाम बदख्वार शख्स एक मिनट मे जहन्नुम मे चला गया।

"बाबा, आज तक आपने मेरी लाज रखी है, आगे भी मुझे आप दोनो पर भरोसा है। आप बच्चे को लेकर वापस सीकरी चले जायँ। यह ख्याल रहे कि जाहिरा तौर पर न मै इसकी माँ हूँ और न यह मेरा बेटा। कभी-कभी बादशाह सलामत के साथ हमलोग जियारत के लिए वहाँ आते रहेगे, उस समय मैं अपने इस लख्ते जिगर को चुपके से प्यार कर लूँगी। इसकी परवरिश और पढाई के लिए हर महीने दस हजार रुपये आपके पास पहुँचते रहेगे।"

●

सती मस्तानी

बुदेलखंड पर मुगलो की आँखे लगी थी। कई बार चढ़ाई की, परतु बहादुर बुदेलो ने उन्हे पीछे ढकेल दिया। अत मे मुहम्मद खाँ बगश के सेनापतित्व मे फौजे भेजी गयी। वह बडा दुर्धर्ष और कट्टर मुसलमान था। प्रत्येक बार जब महाराज छत्रसाल के राज्य पर चढ आता तो मदिरो का तोडकर मसजिद बनवाता और हिंदुओ पर नाना प्रकार के अत्याचार करता। महाराज उसके आक्रमण को विफल कर देते और फिर से मसजिदो को तुड़वा कर मदिर बनवा देते। पराजय और अपमान की ज्वाला से वह जल-भुन उठा। बादशाह भी अधीर हो उठा।

जबर्दस्त हमले के लिए पूरी योजना बनी। सन् १७२६ मे बहुत बडी फौज लेकर मुहम्मद खाँ छत्रसाल की राजधानी पन्ना तक बढ आया।

विशाल मुगल-साम्राज्य की बडी सेना के मुकाबले मे शुरू से ही अस्त्र-शस्त्र और साधन बुदेलो के पास कम थे। सख्या की दृष्टि से भी वे बहुत थोडे थे। उनका सबल था शौर्य, साहस और देशप्रेम। बार-बार के आक्रमण ने छत्रसाल की सेना को जर्जरित कर दिया। महाराज की अवस्था ७० वर्ष की थी। पहले का सा बल भी शरीर मे नही रहा। सबसे बडा दुर्भाग्य तो यह था कि इस बार के आक्रमण मे बहुत से हिन्दू राजाओ और जागीरदारो ने मुसलमानो का साथ दिया।

महाराज ने देखा कि अतिम दिनो मे शायद तुर्कों का दास होकर रहना पडेगा। बुदेलखड पर उनके ही जीवनकाल मे गैरिक ध्वज के स्थान पर मुसलमानी हरा निशान फहराने की आशका मे वे बेचैन हो उठे। पूना के श्रीमन्त पेशवा बाजीराव की वीरता और साहस की गाथाएँ उन्होने सुन रखी थी। छत्रसाल ने उन्हे एक दोहा लिखकर भेजा—

जो गति भई गजेन्द्र की, सो गति पहुँची आज।
बाजी जात बुदेल की, राखो बाजी लाज॥

पत्र मिलते ही पेशवा ने निर्णय ले लिया। लम्बी यात्रा थी, फिर भी दक्षिण से अपनी अजेय मराठी-सेना लेकर बीस दिन मे ही पन्ना पहुँच गये। मराठे और बुदेलो ने मिलकर घेरा डाले हुए मुगलो पर आक्रमण करना शुरू कर दिया।

उन्होने शत्रुओ पर निर्णायक विजय पाई। अपार युद्ध-सामग्री छोड वे भाग खडे हुए। मोहम्मद खाँ बगश दूर के एक किले मे जा छिपा और रात के अँधेरे मे बुर्का ओढकर भाग निकला।

एक रात बाजीराव को नीद नही आ रही थी। करवटे बदलते आधी रात हो गई। उनका ध्यान बरबस अपनी माता, पत्नी और पूना की ओर चला जाता। परेशान होकर छज्जे पर चले आये। ठडी हवा मे कुछ शाति मिली। सहसा एक मधुर रागिनी सुनाई पडी। स्वरो के उतार-चढाव और तान ने उन्हे मत्रमुग्ध कर दिया। खिचे हुए उसी ओर बिना अगरक्षक के ही बढते गए।

राजप्रासाद की निर्जन बीथियो को पार कर वे एक जगह पहुँचे। देखा, तन्मय होकर एक किशोरी सगीत-साधना कर रही थी। जितना सुरीला कठ उतना ही सुन्दर रूप। गीत की समाप्ति पर उसने वीणा एक ओर रख दी। एकाएक उसकी दृष्टि बाजीराव पर पडी। केवल इतना ही कह सकी—"श्रीमत, आप!"

दोनो की आँखे एक दूसरे मे खो गईं। बाजीराव शौर्य के साथ बुद्धि, सुन्दरता और गुणग्राहकता के लिए विख्यात थे। कुछ क्षणो के लिए दोनो ही निर्वाक् रह गये। उन्होने धीरे से आगे बढकर अपना बहुमूल्य कठहार किशोरी के गले मे डाल दिया। लाजभरी झुकी पलको को लिए सपने की तरह वह ओझल हो गई।

महाराज छत्रसाल ने विजयोत्सव दरबार किया। श्रीमत बाजीराव पेशवा को तृतीय युवराज के पद दिये जाने की घोषणा की एव राज्य के तृतीयाश का अधिकारी बनाया। सोने के थालो मे हीरे-मोती और जवाहरात की भेट देते हुए उनका अभिषेक सपन्न हुआ। ज्येष्ठ युवराज से पाग, पेच और तलवार बदली गई।

विदा के कुछ दिनो पहले अपने निजी कक्ष मे पेशवा के साथ बैठे वार्त्तालाप करते हुए महाराज ने कहा—"तुमने समय पर पहुँच कर इस बुढापे मे मेरी हिंदू-धर्म की लाज रख ली। एक बात और रखनी होगी।"

इतना कहकर उन्होने प्रहरी को सकेत किया। कुछ ही क्षणो मे एक रूपवती किशोरी ने कक्ष मे प्रवेश किया। पेशवा चकित रह गये। उसी रात सपने-सी ओझल हो जाने वाली वही रूपसी।

छत्रसाल ने भरी हुई आवाज मे कहा—"मैने इसे पिता का सा प्यार दिया है। कहने को यह मुसलमान है, किन्तु आचार-विचार और सस्कार मे किसी हिंदू से कम नही। तुम इसे पत्नी के रूप मे अगीकार करो।"

चित्तपावन ब्राह्मण-कुल मे जन्म लेने के कारण पेशवा आचारवान और धर्मनिष्ठ थे। माता राधाबाई भी कट्टर धार्मिक थी। उलझन मे पडे थे कि उनकी दृष्टि किशोरी पर पड गयी। छलछलाती आँखें और कॉपते ओठ न जाने क्या कह गए।

महाराज ने बाजीराव का हाथ पकड लिया, कहने लगे—"तुम-सा कोई पात्र इस रत्न के लिए मिलेगा नही। अब मै अधिक दिनो तक नही बचूँगा, यदि इसे कोई कष्ट हुआ तो मेरी आत्मा को शाति नही मिलेगी।"

पशोपेश मे पडे पेशवा को छत्रसाल के अतिम शब्दो ने मानो जगा दिया। उन्होने स्वीकृति दे दी।

महाराज ने राजसी धूमधाम एव हिंदू-रीति से मस्तानी का कन्यादान किया और उसे भारी दहेज के साथ विदा किया। मराठा फौज मे बाजीराव पेशवा का बड़ा अनुशासन और आदर था। किंतु उन दिनो इस प्रकार के सबध उच्च कुल के ब्राह्मणो के लिए वर्जित थे। मराठा सरदारो मे कानाफूसी होने लगी। पेशवा के पहुँचने के पहले पूना मे बाते बढ-चढकर फैली।

राजधानी मे प्रवेश के समय पेशवा के आगमन पर न तो तोरण सजे और न अगवानी के लिए कोई आया। महल मे डोली के प्रवेश का आदेश भी नही मिला। श्रीमत समझ गये कि माता अत्यत रुष्ट है। भविष्य का आभास उन्हे हो गया। वे चरणस्पर्श के लिए गए परतु माता ने अपने पैर एक ओर हटाते हुए तीखे स्वर मे कहा—"मराठो का श्रीमत पेशवा हिंदूपद-पादशाही का जहाँ गौरव बढाकर आया है, वहो एक मुस्लिम नर्तकी को वधू बनाकर उसने कुल को कलकित किया है। इससे तो अच्छा था बाजी, तू मेरी कोख मे आता ही नही। मुझे यह पाप तो वहन नही करना पडता।"

बाजीराव चुपचाप भूमिपर मस्तक टेक वापस आ गए।

पत्नी काशीबाई पतिपरायणा थी। उस समय तक एकाधिक पत्नी अथवा रक्षिता की प्रथा मराठो मे चल पडी थी, किन्तु विधर्मी स्त्री से सबंध हेय माना जाता था। फिर भी उसने छोटी बहन की तरह मस्तानी को अपने महल मे रखा।

इधर माता की प्रेरणा से पडितो की सभा बैठी। उन्होने निर्णय दिया कि तुर्कनी को पेशवा के महल मे प्रवेश का अधिकार नही मिलना चाहिए। विवश होकर बाजीराव ने शहर के बाहर शनिवार बाडा नाम का एक छोटा-सा महल बनवा दिया। मस्तानी वहाँ शुद्ध हिंदू आचार-विचार से रहने लगी। अध्ययन एव भजन-पूजन मे समय बिताती। बाजीराव के दुखी होने पर केवल एक ही उत्तर देती—"प्रेम सुख का मुखापेक्षी नही, वह स्वय मे आनन्द की अनुभूति है। आप सुखी रहे, इसी मे मेरे जीवन की सार्थकता है।"

यद्यपि बाजीराव ने मराठो की शक्ति और कीर्ति बहुत बढा दी, किंतु उनका व्यक्तिगत जीवन उदासी से भरा था। वे पारिवारिक और धार्मिक अनुष्ठानों मे सम्मिलित नही हो पाते। यहाँ तक कि भाई-भतीजे के विवाह और उपनयन-सस्कार मे भी उनका प्रवेश वर्जित था। राजकाज, युद्ध और सरदारों के पारस्परिक विग्रह से ऊबकर मस्तानी के पास जब कभी जाते तो उन्हें सात्वना मिलती। बच्चो की तरह कहते "सभी चाहते है, मैं श्रीमत पेशवा रहूँ, पर कोई कभी यह नही सोचता कि मुझे बाजीराव रहने का भी अधिकार है।"

हँसकर मस्तानी कहती—"क्यो, मै तो हूँ ?

कठिन से कठिन परिस्थिति मे मस्तानी उनके साथ रहती। कई युद्धस्थलों मे वह पेशवा के साथ गई। बाजीराव को उसके स्नेहिल व्यवहार से बडी शाति मिलती। अगले दस वर्षों मे उन्होने बहुत से विजय-अभियान किये। नए-नए राज्यो पर मराठों के गैरिक ध्वज फहराने लगे। कभी-कभी परिहास मे वे मस्तानी से कहते—"बाजीराव ने बडी-बडी बाजियां जीती, पर अपनी बाजो हार गया।"

वर्षो के कठिन परिश्रम और पारिवारिक क्लेश ने पेशवा के स्वास्थ्य पर असर दिखाना शुरू कर दिया। नर्मदा के तट पर दरवा नामक गाँव मे भग्नहृदय बाजीराव बीमार थे। मराठा गौरव की दीपशिखा धीरे-धीरे मलिन होती जा रही थी। काशीबाई राजवैद्य, सामत और सचिव पास बैठे थे। श्रीमत कुछ कहना चाहते थे। अवरुद्ध कठ से अस्फुट स्वर निकले—"मस्तानी ।"

मस्तानी को खबर मिल चुकी थी, किंतु प्रियतम के अतिम दर्शन के लिए उसके अनुनय-विनय को ठुकरा दिया गया। वह पूना के पास के किसी किले मे राधाबाई की कैद मे थी। उसने सती होने की अनुमति माँगी, वह भी नही मिली। चालीस वर्ष की अल्पायु मे पेशवा का देहात हो गया। पुराने वैर-भाव भूलकर पूना की सारी जनता के साथ कुटुबी, सरदार, सचिव और सामत शवयात्रा मे सम्मिलित हुए। सभी रो रहे थे। अनोखी सूझ-बूझ का योग्यतम नेता और योद्धा अब न रहा।

सुसज्जित चदन की चिता पर शव लिटाया गया। मन्त्रोच्चार के साथ अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी गयी। अपार जनसमूह देख रहा था कितनी निर्ममता से सुदर देह को भस्म करने के लिए आग बढती जा रही है।

उस भीड के बीच से मुख पर अवगुठन डाले, शृगार और आभूषणो से सजी एक युवती चिता की ओर सम्हलते कदम से बढती गयी। स्वर्णथाल मे कपूर, अबीर, कुकुम और पुष्प थे। यह सोचकर कि शायद श्रीमत को अतिम श्रद्धाजलि देना चाहती है लोगो ने हटकर मार्ग दिया। पास पहुँचते ही वह चिता मे कूद गई। ब्राह्मण, सरदार, सामन्त 'रोको'-'रोको' कहते ही रह गए। तेज हवा मे आग की लपटो ने खुद ही घेरा डाल दिया।

लोगो ने देखा, मस्तानी के चेहरे पर एक अपूर्व तेज था और बाजीराव का सर उसकी गोद मे था।

●

सती माता

त्रेता युग की बात है—

सीताहरण हो चुका था। भगवान राम वन-वन मे उन्हे ढूँढते फिर रहे थे। वृक्षो से लताओ से और पक्षियो से सीताजी के बारे मे विह्वल होकर पूछ रहे थे। सयोग से शिवजी और सती उधर से जा रहे थे। सती ने कहा—"प्रभो, आप तो बताते थे कि राम ईश्वर के अवतार है, फिर भला ये पत्नी मे वियोग मे इस तरह विकल क्यो है ?" शिवजी की मनाही के बावजूद श्रीराम की परीक्षा लेने के लिए सीता का रूप धर के सती एक वृक्ष के नीचे बैठ गयी। राम ने उन्हे देखा, पूछा—"सती माता, आप अकेली कैसे बैठी है। भगवान शिव कहाँ हैं ?" सती तो सकते मे आ गयी। शिवजी के पास जाकर उन्होने सारी बाते बतायीं।

शिवजी ने कहा—"सती, तुमसे बड़ा अपराध हो गया है। सीता मेरी माता के समान हैं, तुमने उसका रूप धर लिया। अब मैं तुम्हे अपनी पत्नी के रूप मे स्वीकार नही कर सकूँगा।"

वहुत पश्चात्ताप और विनय करने पर उन्होने बताया कि "तुम्हे यह शरीर त्याग कर नया जन्म लेना पडेगा। उस समय तुम्हारा नाम पार्वती होगा। फिर से मै तुम्हे पत्नी के रूप मे ग्रहण करूँगा।"

वे कैलास पर रहने लगे थे। वहुत दिनो बाद एक दिन सूचना मिली कि सती का पिता दक्ष प्रजापति कनखल मे वहुत बडा यज्ञ कर रहा है। सब देवताओ को निमत्रण दिया गया, परतु शिवजी और सती को नही। वहुत दिनो से सती पिता के घर नही गयी थी। उसका मन माता-पिता से मिलने का हो रहा था। यज्ञ के अवसर पर स्वजन-मित्र तथा सगे-सबधी भी आयेंगे। उसने पति से कनखल जाने की आज्ञा माँगी।

शिवजी ने कहा—"बिना वुलाए जाने मे हमेशा अपमान सहना पडता है। सवध बराबरी का निभता है, हम वल्कलधारी गृहस्थ है, जबकि वे राजा हैं।"

सती ने इस बार फिर जिद्द की और शिवजी को मजूरी देनी पडी। उन्हे अशुभ का आभास तो था ही, साथ मे अपने गणो को भेज दिया। जब सती पितृगृह मे पहुँची तो दक्ष ने न तो कुशल-क्षेम पूछा और न आवभगत ही की।

यज्ञ की तैयारी बडे रूप मे थीं, देश-देशांतर के लोग आये हुए थे। दूसरे सब देवताओ का यज्ञ-भाग निकाला गया, परतु देवाधिदेव शिव का नाम बाद दे दिया गया।

जब यज्ञ के पुरोहित ने याद दिलायी तो दक्ष ने उनके लिए बहुत-सी अपमानजनक बाते कही। सती वही पर मौजूद थी। पति के अपमान से क्षुब्ध होकर वे प्रज्ज्वलित अग्नि मे कूद पडी। शिवजी के गणो ने यज्ञ का विध्वस करके दक्ष का वध कर दिया।

कैलास से आकर शिवजी ने यज्ञ-कुण्ड से सती के आधे जले मृत देह को निकाला। विक्षिप्त अवस्था मे कधे पर लेकर देश-देशातर घूमने लगे। सृष्टि के जन्म-मरण के नियमो मे व्यवधान आ गया। विष्णु की माया से सती के देह के अग विभिन्न स्थानो पर गिरते गए। अत मे शिवजी का मोह भग हुआ और वे फिर कैलास पर जाकर तपस्या करने लगे।

कलियुग मे ऐतिहासिक तौर पर पहली सती राणक देवी ११वी शताब्दी मे जूनागढ में हुई थी।

उस समय गुर्जर-नरेश सिद्धराज जयसिह का राज्य था। जूनागढ का राजा खेगार उसके साम्राज्य मे एक सामन्त था। वह अपने समय का अद्भुत वीर था। उसकी रानी थी राणक देवी, जो अपने सौदर्य और शील के लिए देशभर मे प्रसिद्ध थी। दूर-दूर के लोग उसका दर्शन करने आते थे।

जयसिंह से यह सहन न हुआ। मत्रियो, सभासदो और सेनाध्यक्षो के विरोध करने पर भी उन्होने एक बडी सेना लेकर जूनागढ के किले को घेर लिया। बहुत दिनो तक घेरा डालने के बाद भी जब सफलता न मिली और उनके सैनिक थकने लगे तब वहाँ के दुर्गरक्षक को मिलाकर किले पर विजय प्राप्त कर ली। राजा खेगार दूसरे साथियो के साथ वीरता से जूझता हुआ मारा गया। इधर जब जयसिंह राणक देवी से मिलने के लिए आतुर होकर किले मे पहुँचे तो वहाँ महल के एक कोने मे उन्हे सती के जले हुए शरीर की राख-मात्र ही मिली। पैरो मे महावर लगा कर और सोलहो शृगार करके सती अपने पति के सिर को गोद मे लेकर भस्म हो गई थी। आज तक हजारो-लाखो सधवाएँ और कुमारी कन्याएँ उसके पदचिह्न को पूजती है। मैंने जूनागढ मे राणक देवी का महल देखा और वह स्थान भी देखा जहाँ वह सती हुई थी। आज भी गुजरात, सौराष्ट्र और राजस्थान मे उसके नाम के ही गीत गाये जाते है।

सती ने अतिम समय मे जयसिंह को शाप दिया था कि उसका वश नही चलेगा, उसे कोई पानी देने वाला नही रहेगा। इतिहास साक्षी है कि परम प्रतापी जयसिंहदेव का न तो वंश चला, न साम्राज्य ही रहा। इसके बाद ७०० वर्षो तक बहुत-सी पवित्र गाथाए सती माताओ की मिलती हैं।

हृदय परिर्वतन

सन् १८५७ की वात है, जयरामवाटी के रामचन्द्र मुकर्जी की सुपुत्री शारदा का विवाह केवल ५ वर्ष की अवस्था मे पास के गॉव कामारपुकुर के एक २३ वर्ष के युवक गदाधर के साथ हुआ। उन दिनो कुलीन ब्राह्मणों मे इस प्रकार के वेमेल विवाह आम तौर पर होते थे।

संवधी दोनो गरीब थे, इसलिए विवाह में खास धूम-धाम नही हुई, फिर भी गदाधर की माता चद्रादेवी और वडे भाई रामकुमार ने थोडा-वहुत कर्ज लेकर सारे गॉव के लोगो को वहूभात मे निमत्रित किया। वालिका वहू थोड़े दिन ससुराल रहकर वापस पीहर चली आयी।

उधर गदाधर कामारपुकुर से कलकत्ते चला आया। वहॉ रानी रासमणी के दक्षिणेश्वर के काली मदिर का वह पूजारी हो गया।

१७ वर्ष का लवा समय वीत गया। अव वालिका शारदा २२ वर्ष की पूर्ण यौवना सुन्दरी हो गयी थी। इस बीच मे कई बार सास के पास कामारपुकुर रह आयी, दो बार थोडे दिनो के लिए पति के पास दक्षिणेश्वर भी हो आयी थी, परतु अधिकाशत जयरामवाटी मे ही रही। गदाधर अव रामकृष्ण के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे।

इधर कलकत्ते मे रामकृष्ण को काली की पूजा करते समय समाधि आने लगी। कभी-कभी वे जोर-जोर से हँसने, रोने और नाचने लग जाते।

यह खवर वढ-चढ कर जयरामवाटी पहुँची। गँवई-गॉव के लोगो को एक दूसरे की चर्चा करने मे वडा रस मिलता है। गॉव की औरते शारदा की मॉ के पास आकर कहती—"शारदा वेटी को परमेश्वर ने इतना सारा रूप और गुण दिया, परन्तु दुर्भाग्य से पति पगला मिला। बहू, हमने तो विवाह के समय भी कुछ ऐसा ही सुना था, परन्तु तुम बुरा न मान जाओ इसलिए चुप रहीं।"

शारदा मन मे जानती थी कि उसका पति पागल नही, वल्कि एक पहुँचा हुआ सत है, परन्तु वहस मे न पड़कर मन में दुखी होकर रह जाती। शोक और दुख से वह वीमार रहने लगी।

एक दिन एक यात्री-दल गगा-स्नान के लिए कलकत्ते जा रहा था। शारदा ने अपने माता-पिता से अनुनय-विनय करके उनके साथ दक्षिणेश्वर जाने की तैयारी कर ली।

६० मील के कीचड और कॉटो से भरे रास्ते की पैदल कठिन यात्रा। गॉव से २० मील की दूरी पर तेलोभेलो नामक एक जंगल था, जहॉ एक सेर अन्न या एक कपडे के लिए वाग्दी डाकू मनुष्य की जान ले लेते थे, परतु इन सव वातो की उसने कुछ भी परवाह नही की।

शाम होने के पहले वे तारकेश्वर पहुँच जाना चाहते थे। रास्ते मे ही वह जगल था, इस-

लिए जल्दी-जल्दी चल रहे थे। शारदा बीमारी से उठी थी, कमजोर थी, इसलिए उनका साथ नही दे पा रही थी। दुर्भाग्य से पैर मे मोच भी आ गई।

रात होने मे केवल दो घडी बाकी थी और अभी ८-१० मील का रास्ता तय करना था। शारदा ने कहा—"मेरे लिए आप सब अपनी जान जोखिम मे न डाले। आप तारकेश्वर के मदिर मे जाकर ठहरे, मै धीरे-धीरे पहुँच जाऊँगी।"

थोडी-सी ऊहापोह के बाद डाकुओ के डर के कारण वे उस घनघोर जगल मे उसे अकेली छोडकर चले गये।

जब वह तेलोभेलो वन मे पहूँची तो रात हो गयी थी। घनघोर वर्षा होने लगी। एक वृक्ष के नीचे बैठी वह दुखी होकर सोचने लगी कि इस जीवन मे अब शायद ही दक्षिणेश्वर पहुँचकर पति के दर्शन कर पाऊँगी।

इतने मे तीन-चार डाकुओ ने आकर उसे घेर लिया। कडकती आवाज मे उन्होने पूछा—"तुम्हारे साथ वाले कहाँ गये ?"

उसने सारी बाते सच-सच बता दी और अपने पास मे जो थोडा-बहुत कपडा-पैसा था वह उनके सामने रख दिया।

इस बीच डाकुओ ने मशाल जला ली थी। देखा एक अत्यत रूपसी युवती सर्दी अथवा भय से काँप रही है।

उनके सरदार ने पूछा—"तुम कौन हो, कहाँ से आयी हो और कहाँ जा रही हो ?"

युवती इस बीच आश्वस्त हो गई और न जाने क्यो उसका डर भी कम हो गया। हँसती हुई बडे मधुर स्वर मे वह बोली—"पिताजी, क्या आपने मुझे पहचाना नही ? मै आपकी बेटी शारदा हूँ, जमाई दक्षिणेश्वर के काली-मदिर मे पुजारी है। उनके पास जा रही हूँ।

अचानक डाकू सरदार के चेहरे का भाव बदल गया, कहा—"बेटी, शायद तुम बीमार और थकी हुई हो। पहले मेरे साथ घर चलो, कपडा बदलकर थोडा आराम कर लो।"

घर आकर पत्नी से कहने लगा—"ईश्वर ने हमे आज तक सतान नही दी, पर आज अपने आप अन्नपूर्णा-सी सुन्दर बेटी भेज दी है। थकी-हारी है, जल्दी से इसे सूखे कपडे पहिनाकर इसके भोजन की व्यवस्था करो। बाग्दी पत्नी कहने लगी—"बेटी, हम लोग नीच जाति के है, शायद तुम हमारे हाथ का बना खाना खाओगी नही। मै पास के गाँव से ब्राह्मणी दादी को तुम्हारे भोजन बनाने के लिए बुला लाती हूँ।"

"माँ, तुम्हारे जमाई कैवर्त (एक शूद्र जाति) रानी के मदिर के पुजारी है। वे कहते है कि ईश्वर के घर मे सब बराबर है। फिर मैं तो तुम्हारी बेटी हूँ तब भला मुझे क्या परहेज हो सकता है ?"

इस बीच मे पास-पडोस के ५-६ स्त्री पुरुष आ गए थे। वैसे वे सब खूँखार डाकू थे, परतु वे आज अपने सरदार की दत्तक पुत्री की सेवा मे स्नेह और प्यार से लगे हुए थे।

खा-पीकर थोडा आराम करने के बाद शारदा ने कहा—"बाबा, अगर मै यात्रीदल के साथ कलकत्ते नही पहुँचूँगी तो आपके जमाई को बहुत चिंता हो जायगी, इसलिए आप मुझे अभी तारकेश्वर पहुँचा दे। मैं आपको वचन देती हूँ कि आते समय आपके पास ठहरकर फिर गाँव जाऊँगी।"

चार मजबूत-तेज चलने वाले कहारो की पालकी मँगाई गई। विदा के समय बेटी को उन गरीबो के पास उपहार देने को तो क्या था, फिर भी थोडी-सी हरी मटर, चिडवा और बतासे सगुन के तौर पर साथ मे दिये। रक्षा के लिए स्वय सरदार एव दो साथी पालकी के साथ चले।

मुँह अँधेरे वे तारकेश्वर के पास पहुँच गये। सरदार कहने लगा—"बेटी, अब तुम्हे मदिर तक अकेली जाना पडेगा। मेरे जिंदा या मुर्दा पकडने पर सरकार ने पाँच सौ रुपये इनाम रख

चौधरीजी का मायरा

हिंदुओ में बहन के लडके या लडकी के विवाह पर भाई भात (मायरा) लेकर बहन के यहाँ जाया जाता है। यह प्रथा हजारो वर्षो से चली आ रही है। अगर भाई नही होता तो पीहर के पडोसी गाँव के किसी व्यक्ति अथवा ब्राह्मण द्वारा चुनरी का नेग किया जाता है। भात के नेगचार बिना विवाह के आगे के कार्यक्रम रुके रहते हैं।

तेरहवी शताब्दी की घटना है। जूनागढ के पास अजार नाम का एक कस्बा है। यहाँ नरसी मेहता की पुत्री नान्हीबाई की ससुराल थी। नान्हीबाई की पुत्री का विवाह था। परपरा के अनुसार जूनागढ से मेहताजी भात लेकर आने वाले थे। परतु इसके लिए उनके पास साधन नही थे। भगवद्‌भक्त थे ही, जो कुछ था भी साधु-सतो की सेवा-आवभगत मे खर्च कर दिया और उन्ही की मडली मे रहकर हरिभजन मे मग्न रहते। परिवार के लोगो तथा मित्रो को अजार साथ चलने के लिए उन्होने आमत्रित किया। किंतु भला उनके साथ जाकर कौन अपनी हँसी कराता ? आखिर वे अकेले ही एक टूटी-सी बैलगाडी पर अजार की ओर चल पडे। साथ मे साधु-मडली भी हरिकीर्तन करती जा रही थी।

उधर नान्हीबाई के ससुराल वाले मेहताजी के स्वभाव से परिचित थे। उनकी माली हालत भी उनसे छिपी न थी। बाई को ताने पर ताने देते कि मेहताजी बहुत बडा भात लेकर आ रहे है। बाई के पास चुपचाप सहने के अलावा और कोई उपाय नही था। वह उदास रहने लगी और पिता के आने की राह देखती रहती।

इसी बीच एक दिन लोगो ने जूनागढ की तरफ से गाजे-बाजे और रथो की घटियो की आवाज आती सुनी। उत्सुकतावश सभी जमा हुए। थोडी देर मे सचमुच ही बेशकीमती साजोसामान लिये मेहताजी के मुनीम आ पहुँचे। अपना परिचय साँवरजी के नाम से दिया और बताया कि मेहताजी की ओर से भात का सामान लेकर आये है। बाई के लिए हीरे-मोती जडे गहने, चुनरी, सास-ननद के लिए कीमती वस्त्र, यहाँ तक कि नौकर-चाकर के लिए सोने की कठी और कडे।

ऐसे अवसरो पर ससुरालवाले तरह-तरह की फरमायश मे पीछे नही रहते। अनेक प्रकार की कीमती चीजो की माँग पेश कर नीचा दिखाने की चेष्टा करते है। परतु मुनीमजी तो मानो सारी परिस्थितियो के लिए पहले ही से तैयारी के साथ आए थे। सबकी फरमायशे पूरी कर दी और वापस चले गए।

इसके बाद मेहताजी इकतारे पर राग केदारा मे हरिभजन करते हुए बाई के ससुराल पहुँचे, साथ मे साधुमडली भी थी। समधियाने वालो ने ससम्मान उनका स्वागत किया। बताया कि मुनीमजी के हाथो आपने जो सामान भेजे थे, वे मिल गए। पर वे चले भी गए।

कह रहे थे, जरूरी काम से वापस जाना है।

दूसरी घटना है सोलहवी शताब्दी की। नारनौल के एक सेठ की विधवा के पुत्र की सगाई लड़कीवाले बहाना बनाकर छोड़ना चाहते थे। सेठ अपने जमाने मे काफी धनी और खुशहाल थे। मृत्यु के बाद उनका परिवार गरीब हो गया था। फिर भी संबध और व्यवहार पहले जैसा अब भी था।

सयोग से सेठानी के मुँहबोले भाई आगरा से लाहौर जाते हुए उनके यहाँ ठहरे। वे बादशाह अकबर के मालमन्त्री थे।

बहन ने भाई की आवभगत की। टोडरमल ने कन्यापक्षवालो की सगाई तोडने की बात सुनी तो कहा—"चिन्ता न करो बहन, सारी तैयारी रखना। विवाह के अवसर पर भात लेकर मै आऊँगा।"

वे आये और ऐसा भात लाये कि ऐतिहासिक घटना हो गयी। आज भी वधू की अगवानी के समय 'जीत्योजी टोडरमल वीर' का गीत इस मागलिक अवसर पर गया जाता है।

तीसरी घटना है, १९वीं शताब्दी के पाँचवे दशक की। दिल्ली के उत्तर मे मेरठ, हापुड, मुक्तेशवर, सहारनपुर कस्बो मे उन दिनो गुज्जर पठानो की जागीरदारियाँ थी। यद्यपि मालगुजारी और उसकी वसूली का अधिकार अग्रेजो को ईस्ट इडिया कम्पनी को हो गया था, फिर भी इन जागीरदारो मे से बहुतो के सबध रसूक, कमोवेश दिल्ली के बादशाह से कायम थे। सैकड़ो साल से चले आए आपसी ताल्लुकात बाइज़्ज़त बरकरार थे।

अग्रेज सिक्खो से युद्ध मे उलझे थे। मुगल-शासन पहले से ही शिथिल था। हुकूमत चलती थी कम्पनी सरकार की, मगर युद्ध के कारण वे शासन को सुव्यवस्थित नही कर पा रहे थे। इस वजह से इन जिलो के ताल्लुक और जागीरो मे चोरी, डकैती और राहजनी का जोर था। यहाँ तक कि कुछ बडे जागीरदार खुद प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से डकैतियाँ डलवाते या इन्हे सरक्षण देकर लूट के माल मे हिस्सा लिया करते।

मुक्तेश्वर के जागीरदार थे गुज्जर चौधरी रूपरामजी। हालाँकि उनकी सालाना आमदनी डेढ-दो लाख ही थी, परतु सस्ती का जमाना था, रुपये का ढाई-तीन मन गल्ला मिलता था। दस सेर तेल और तीन सेर घी। अच्छी नस्ल के घोडे की कीमत थी, बीस-पचीस रुपये। चौधरी का रोबदाब था, ठाठ-बाट से रहते थे। दरवाज़े पर दो हाथी झूमते, अस्तबल मे २५ घोडे, २० रथ और पछाहीं बैलो की कई जोडियाँ। सैकडो की तायदाद मे निजी सिपाही भी थे।

उनकी जागीर की खिराज़ पिछले पचास वर्षो से शाही हुक्मनामे के मुताबिक आला शाहजादे के पान-खर्च के लिए लगी हुई थी। अब हालाँकि वे बूढे होकर बादशाह हो गए थे और कम्पनी के साथ हुई शर्तो के मुताबिक ख़िराज़ का हक उनका न रहा, वे महज पेशन के हकदार रहे, फिर भी चौधरी रूपाराम प्रतिवर्ष खिराज की रकम लेकर गाजे-बाजे के साथ मुक्तेश्वर से बादशाह सलामत की खिदमत मे नजर करने खुद अपने साथ ले जाते। साथ में हाथी, घोडे, रथ, तम्बू-कनात और हथियारबद सिपाही रहते। चालीस मील की सफर मे तीन दिन लग जाते। धर्मशालाएँ और सराये कम थी। जहाँ भी ठहरते, तम्बू और छोलदारियाँ लग जाती।

हर साल की तरह वे दिल्ली जा रहे थे। फसल अच्छी हुई थी। किसान और रिआया सुखी थी। चौधरी पूरे हुजूम के साथ दिल्ली के लिए रवाना हुए।

दूसरे दिन का मुकाम शाहदरा के लिए तय था। तीसरे दिन की सुबह तक दिल्ली पहुँचने की खबर भेज दी गयी थी।

सयोग की बात है। जिस दिन चौधरीजी का पडाव शाहदरा मे था, उसी दिन वहाँ के छोटू मेहतर की पुत्री की शादी भी थी। हापुड के मतई आनेवाले थे। बिना भात के आगे के नेगचार रुके हुए थे। जनवासे मे मारे बाराती बुलावे की बाट जोह रहे थे।

शाम का झुटपुटा हो गया। मतई अब तक आये नही। छोटू और उसकी पत्नी की चिंता बढती जा रही थी। अगर भात नही आया तो फिर क्या हाल होगा। इज्जत मिट्टी मे मिल जायगी। क्या मुँह दिखायेंगे ? इसी उधेडबुन मे थे कि हापुड़ की ओर से बाजे की आवाज आती सी सुनाई पडी। छोटू की जान मे जान आयी। जल्दी-जल्दी तैयारी कर वे सब अगवानी के लिए आगे बढे। उतावली मे वे एक-दूसरे को पहिचान न सके। छोटू उन्हे सीधा अपने घर तक ले आया।

चौधरी साहब ने पूछा, "हमारे हरकारे और तम्बू किधर है ? तुम हमे कहाँ ले आये ?" अब तो छोटू को काटो तो खून नही। उसके होश गुम हो गये। डर के मारे काँपने लगा और जमीन पर लोटकर कहने लगा, 'बापजी , गजब हो गया। मेरी लडकी की शादी है, बारात आ चुकी है, हापुड से मतई आनेवाले थे। मैंने समझा परेशानी से मेरा सिर फिरा था। गलती से आपको पहचान न सका। उन्हे समझकर आपको यहाँ ले आया। आपकी परजा हूँ, मालिक ! अनजान हो गया, माफ करे।" उसकी घिग्घी बँधी थी।

चौधरी को सफर को थकान थी। एक बार तो गुस्सा आया, त्यौरियाँ चढ आयी। फिर भी चुप रहे, सोचने लगे—बेचारे का क्या कसूर। भात का समय बीत रहा था, बारात शायद नाराज होकर लौट जाती। ऐसे मे हर बेटी का बाप होश खो देगा। उन्होने यह कहते हुए अपनी खामोशी तोडी—"छोटू, हमने सुना कि रास्ते मे कजरो ने हापुड़ से आये कुछ लोगो को लूटा है, हो सकता है, कही मतई और उनके आदमियो पर मुसीबत पडी हो। खैर तुम फिक्र मत करो। तुम्हारी बेटी, सो मेरी बेटी। सारे नेगचार की तैयारी करो। जनवासे मे खबर भेज दो कि मतई भात ले आये, वे बारात लेकर आ जाये।"

बादशाह की नजर के लिए लायी हुई सारी कीमती चीज़ें भात मे दे दी गयी। छोटू की पत्नी को जब चौधरीजी चुनरी ओढाने लगे तो उस ग़रीब की आँखो से आँसू उमड पडे।

छोटू की बेटी के हाथ मे पचीस अशर्फियाँ रखते हुए चौधरीजी ने सुखी-सौभाग्यवती रहने का आशीर्वाद दिया। दूल्हे को सोने के कडे, पाँचो कपडे और एक सोरठी घोडी दी। वर के पिता को मिरजई और चार अशर्फियाँ। प्रत्येक बाराती को चाँदी की एक-एक कटोरी। सारे कस्बे मे चौधरी के भात की चर्चा बढ-चढकर फैल गई। कोई निंदा करता तो कोई प्रशसा।

दूसरे दिन चौधरी दिल्ली पहुँचे। बादशाह सलामत की तरफ से सारा इतजाम था। अगवानी के लिए शहर का नाज़िम खुद हाज़िर था।

दोपहर के वक्त जब दीवान-ए-खास मे उनके नाम की तलबी हुई तो खिराज की रकम की बाबत चौधरीजी ने अर्ज किया कि "हजूर, हमेशा की तरह गाँव से पूरी रकम लेकर ही चला, मगर सफ़र मे कुछ ऐसे हादसो का इत्तफाक बना दिया कि पास मे कुछ भी न बचा। खैर, हम कुछ दिन फिलहाल यहाँ रुकेगे और इस दरम्यान अपने इलाके से रकम मँगाकर आपकी खिदमत मे पेश करने का फख्र हासिल करेगे।"

बादशाह ने मुस्कुरा कर कहा कि "इलाके के शातिर चोर-डाकू आपका रुतबा मानते हैं, लिहाजा ताज्जुब है डकैती का यह वाकया आपके साथ कैसे मुमकिन हुआ।"

चौधरीजी ने सारी घटना सच-सच बता दी। बादशाह खुश होकर हँसने लगे। यद्यपि अतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह केवल नाममात्र के बादशाह रह गये थे, किंतु वे अपने बाप-दादो से कही ज्यादा दरियादिल थे। स्वय भावुक थे, शायर भी। कहने लगे—"चौधरी रूपराम, आपने जो कुछ भी किया उससे मा-बदौलत बेहद खुश हैं। हम नाजिम को हुक्म फरमाते है कि खिराज की पूरी रकम वसूली के बतौर खजाने की बहियो मे जमा लिख दी जाय। छोटू मेहतर की बेटी को दिया गया भात हमारी तरफ से समझा जाय और मतई—हम और तुम दोनो।"

आत्मकथा

घणी-घणी खम्मा, अन्नदाता !

गणतन्त्र-दिवस को होनेवाली परेड सचमुच अनोखी होती है। अपने देश की स्वतन्त्रता और शक्ति के प्रति वह मन मे गर्व और अभिमान भर देती है। हम ससद-सदस्य नई दिल्ली के राजपथ मे सदस्यो के कक्ष मे बैठे प्रदर्शन देख रहे थे। राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू और प्रधान मंत्री जवाहर लालजी के ओज और तेज के सयोग मे समूचा वातावरण उल्लासमय हो रहा था।

मेरे पास बैठे थे राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, कविवर 'दिनकर' और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष 'श्रीगगाशरणसिह]। याद नही कि इनमे से किसने कहा, "हमारे लिए २६ जनवरी की बड़ी महिमा है।"

एकाएक मुझे ध्यान आ गया—आज मेरा जन्म-दिन है। मैं भी २६ जनवरी को पैदा हुआ था। जी में आया कि सबसे कहूँ, पर सकोच हुआ। इतने महान दिवस के साथ अपने को सम्बन्धित करूँ तो लोग क्या कहेगें ? फिर भी मुझे अपना बचपन, अपने सामने दिखाई पडा

घर वालो के लिए इस तारीख का बडा महत्त्व था। आज से ६० साल पहले २६ जनवरी, १९१० को हमारे घर मे बडी चहल-पहल थी। श्री गिरधारीलाल के पुत्र श्री शिवनारायण की पत्नी सूवादेवी ने पुत्र को जन्म दिया था। मगलगान के बीच ससार की चिता और कष्ट की कल्पना करता हुआ, चीखता-चिल्लाता बच्चा, ससार मे आया—मैंने आँखें खोली।

उस दिन कोई कल्पना नही कर सकता था कि २६ जनवरी हमारे देश का सबसे बड़ा दिवस होगा—राष्ट्रीय-दिवस। सदियो से सोई हुई भारत की आत्मा ने १५ अगस्त को करवट ली थी। २६ जनवरी को वह जाग कर पूरी तरह चैतन्य हो गई। गणतन्त्र की यह अमर तिथि अमिट है, महान है।

हमारे देश का ही नही, यह दिन आस्ट्रेलिया का भी राष्ट्रीय पर्व है। इसी दिन ईसाई कैथोलिक संप्रदाय के बडे पादरी साधु पोलिकार्प शहीद हुए थे।

मैं कैसे कहूँ कि मुझे ऐसे पवित्र दिन जन्म लेने का गौरव प्राप्त हुआ है। ६० साल पहले किसने इस महिमा की कल्पना की थी ? फिर भी ससार के सब महान कार्य किसी एक ही दिन तो होते नही, हर २४ घण्टे मे कितने बडे और अनगिनत छोटे काम होते है। प्रति पल इतनी घटनाएँ घट रही है कि हर दिन की मर्यादा बराबर है। हर एक मिनट मे ६० प्राणी ससार से चल बसते है और ९० नये बच्चे पैदा हो जाते है। सुख-दु ख से लिपटा प्रत्येक क्षण भिन्न परिस्थिति मे भिन्न महत्त्व रखता है। इसलिए २६ जनवरी की महान घटनाओ के बीच एक छोटी-सी घटना थी— मेरा जन्म।

प्रत्येक व्यक्ति अपने को, अपने कार्य को, ससार मे सबसे अधिक महत्त्व देता है। शायद मेरा मोह ही मुझे २६ जनवरी को अनूठापन देने के लिए आग्रह कर रहा है। ससार की वर्तमान साढे-तीन अरब की आबादी मे मैं एक छोटा-सा व्यक्ति हूँ; मेरा एक छोटा-सा कस्बा है, पर मेरा अहकार मुझे अपने गाँव के ही विषय मे लिखने के लिए प्रेरित कर रहा है। शायद मैं अपने विषय मे लिखकर अपने अहभाव की पुष्टि करना चाहता हूँ लेकिन किसी भी व्यक्ति का जीवन निस्सार नही है। धूप-छाँव मे जीवन की पहेलियाँ चलती रहती है। इनसे प्रेरणा न सही, सहानुभूति तो मिलेगी ही। मेरे साधारण-से जीवन के पिछले पृष्ठो मे एक ऐसा इतिहास लिपटा पडा है, जो सुनने-समझनेवालो से कुछ कह सकेगा। इन उलझी हुई तस्वीरो मे कही-कही प्रकाश भी है।

मैं जानता हूँ कि मेरी कहानी लाखो व्यक्तियो के सघर्षमय जीवन की रागिनी मे एक छोटी-सी तान बन कर लय मे मिल जाएगी, फिर भी हो सकता है इन पक्तियो मे किसी को कही कोई उपयोगी बात मिल जाए। मै एक बार अपने से मिलना चाहता हूँ, अपने बचपन के साथ खेलना चाहता हूँ, जवानी के साथ मचलना चाहता हूँ, बुढापे को चेतावनी देना चाहता हूँ।

आँखे खोली बीकानेर-राज्य के एक कस्बे सरदार शहर मे। पुराने राजपूताना के देशी राज्यो मे क्षेत्रफल के हिसाब से बीकानेर का दूसरा स्थान था। रियासत की आबादी उस समय सात-आठ लाख के आस पास थी। अधिकाश भाग मरुभूमि था। राज्य की गद्दी पर एक प्रतिभाशाली नरेश बैठे थे—महाराज गगासिंह। मेरे जन्म के समय उनकी जवानी अपने पहले चरण मे थी, पर प्रतिभा की आभा छिटकने लगी थी। उन्होने मेरे जन्म के इस बारह बर्ष बाद ही 'गगा नहर' की रचना से उस मरुभूमि के उत्तरी हिस्से की काया पलट दी थी। लगभग पचास वर्ष तक राज्य को हर प्रकार से सम्पन्न करने का महाराज ने निरन्तर प्रयत्न किया और फरवरी १९४३ मे प्रजा को शोकाकुल छोड कर वह ससार से चले गए।

वैसे राजपूताना की रियासतो मे प्रजा की पीडा की दर्दनाक कहानियाँ हमने सुनी थी। आसपास के राज्यो मे आए दिन डाके पडते थे। लेकिन गगासिह का कुछ ऐसा आतक था कि उनके राज्य की सीमा मे शायद ही कभी लूटखसोट हुई हो। हालाँकि १९१९-२० मे गाधीजी का स्वराज्य आन्दोलन शुरू हो गया था, फिर भी हममे से अधिकाश राजा के भक्त थे। बचपन से ही मैंने लोगो के कण्ठ से यह आवाज निकली सूनी है, 'घणी-घणी-खम्मा अन्नदाता!'

बीकानेर की रियासत को जन्म लिए सन् १९७० मे पूरे ५०५ वर्ष हुए। सन् १४५६ मे जोधपुर-नरेश राव जोधाजी के पुत्र राव बीकाजी ने इस राज्य की स्थापना की थी, पर वह 'राजा' नही थे, एक स्वतन्त्र सरदार थे। 'राजा' की उपाधि इस घराने के छोटे शासक रायसिह जी को सम्राट अकबर से प्राप्त हुई थी। उन्होने पजाब के बागियो को अकबरी झडे के नीचे सिर झुकाने को मजबूर किया था। राजा रायसिह अकबर के यशस्वी सेना-पतियो मे से थे।

अपने शासन-काल मे रायसिह ने बीकानेर नगर की उन्नति की। प्रसिद्ध पुराना किला उन्ही का बनवाया हुआ है। यह सन् १५९३ मे बन कर तैयार हुआ था।

इस कुल को 'महाराजा' की उपाधि सम्राट औरगजेब ने सन् १६८७ मे प्रदान की थी। राजा अनूपसिह ने औरगजेब के राज्य को सुदृढ बनाने मे बडा पराक्रम दिखाया था। इसके अलावा बीकानेर के राजघराने की बहने और बेटियाँ भी, उस समय तक मुगल-हरम की शोभा बढाने लगी थी।

इस प्रकार यह राज्य दिल्ली-दरबार मे महत्ता प्राप्त करता गया। सन् १८५७ मे भारतीय क्रान्ति को कुचलने मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सैनिक सहायता के एवज मे पजाब के ४१ गाँव इस राज्य को दे दिए गए।

प्रथम महायुद्ध मे महाराजा गगासिह ऊँटो की अपनी पलटन लेकर खुद अरब तक गए। उनकी सेवाओ से प्रसन्न होकर ब्रिटिश-सरकार ने भारत की ओर से उन्हे पेरिस के सन्धि-सम्मेलन मे निमन्त्रित किया। सन् १९१९ के वार्साई ऐतिहासिक सन्धि-पत्र पर गगासिह के भी हस्ताक्षर है। इस सम्मेलन मे गगासिह जी के भाषण और उनकी प्रतिभा की सराहना सभी लोगो ने की थी। वार्साई-सन्धि की पक्षपातपूर्ण शर्तो ने द्वितीय महायुद्ध की भूमिका बना दी।

ब्रिटिश शासन-काल मे भारत की बडी रियासतो मे बीकानेर का छठा स्थान था। सन्

१९४९ मे इसकी आबादी १३ लाख से ऊपर थी। देशी राज्यो के विलयन के बाद राजपूताना 'राजस्थान' हो गया। राजस्थान में २६ जिले है। सबसे बड़ा जिला जैसलमेर का है क्षेत्रफल ३८,४४० किलोमीटर, दूसरा नम्बर बाडमेर का है क्षेत्रफल २७,३७० किलोमीटर और तीसरा है बीकानेर—क्षेत्रफल २७,११८ किलोमीटर।

जिस प्रकार गत ६० वर्षो मे भारत का इतिहास बदल गया, भूगोल बदल गया, मन और भावना बदल गई, उसी प्रकार हमारा राजपूताना भी बदल गया है। राजसत्ता के स्थान पर अब प्रजातन्त्र है। यह कहना भी कुछ कठिन है कि जनता, वर्तमान परिवर्तन से अधिक सुखी व सम्पन्न है या अधिक सतुष्ट है।

एक बात जरूर स्पष्ट है, चाहे राजाओ के शासन-काल मे जनता अधिक दबी हुई, पीडित या सन्तप्त रही हो, पर भारतीय प्ररम्परा की यह विचित्र मर्यादा है कि अपने अधिकाश नरेशो के प्रति उसके मन मे अब भी आदर है, प्रेम है।

विभाजन के पहले अखण्ड भारत के १८,०८,६८० वर्ग मील मे से ७,१२,५०८ वर्ग मील क्षेत्र मे देशी रियासते फैली हुई थी। समूचे देश की आबादी सन् १९४१ मे ३४,२८,३७,८०० थी, जिसमे से ८,१३,१०,८४५ आबादी देशी रियासतो मे रहती थी। इनमे कई तो बहुत छोटी रियासते थी। राजपूताना मे एक रियासत केवल १९ वर्गमील क्षेत्र मे थी, २१ नरेश राजपूत थे, दो जाट थे भरतपुर और धौलपुर के नरेश, दो मुसलमान थे—पालनपुर और टोक के शासक। इन रियासतो की तीन-चौथाई आबादी, केवल खेती पर ही आश्रित थी।

विलयन के समय बीकानेर राज्य का वास्तविक क्षेत्रफल २३,३१७ वर्ग मील और आबादी १२,९२,९३८ थी, बीकानेर शहर की आबादी १,२७,२२६ थी। राज्य मे कोयले की एक छोटी-सी खान थी और कुछ खाने थी नमक की। उद्योग-धन्धो में कम्बल व दरी बनाना, ऊन और चमडे का माल तैयार करना आदि मुख्य काम थे। दस्तकारी मे सोने-चॉदी के आभूषण तथा लकडी के काम प्रसिद्ध थे जो अब भी है। बीकानेर की मिश्री, भुजिया और पापड भी भारत मे प्रसिद्ध है।

बीकानेर ही नही, बल्कि सारा राजस्थान वीरभूमि है। युगो से इसकी वीरागनाएँ अपने नवजात शिशुओ की वीरोचित मृत्यु का उपदेश देती आई है, विलासितापूर्ण जीवन को मातृभूमि के लिए कलक की सज्ञा देती आई है। हमारे राजस्थानी-घरो में माताएँ बच्चो को झूला झुलाती हुई गाती थी

इला न देणी आपणी रण खेतां भिड़ जाय,
पूत सिखावै पालणैं, मरण बड़ाई माय।

अर्थात्—'हे पुत्र, मर जाना, प्राण दे देना, पर अपनी भूमि को दूसरो के हाथ मे न जाने देना।' पालने मे माता अपने पुत्र को यह सीख देती है।

माता अपने बच्चो से कहती है कि विपत्ति के समय 'हाय री, माय!' कहना कलक है। मरते समय कभी माँ को याद न करना, इससे कुल को कलक लगता है। मरना है तो हँसते-हँसते मरो, मरते समय दुर्बलता मत दिखाओ

माणेरा मत रोय, मत कर राती ऑखियॉ,
कुल मे लागै खोय, मरता मॉ नह समरजे।

बालक भी अपनी माता से कहता है

सिंघु सचाणो सापुरुष, ऐ ल्होड़ा न कहाय;
बड़ा जिनावर मार कै, छिण में लेय उठाय।

अर्थात्—सिह, बाज और वीर पुरुष कभी छोटे नही होते। बडे-से-बडे जानवर को मार कर वे क्षण भर मे उसे उठा लाने की सामर्थ्य रखते है।

राजा कुशलसिह बीकानेर से पूछते है

कुशलौ पूछै कोट नै, विलखो किम बीकाण,
म्हा ऊभां तो गाल दै, भलै न ऊगै भाण।

अर्थात्–हे बीकानेर के गढ, तू क्यो विलख रहा है ? मरे रहते तुझे कोई नष्ट कर दे तो फिर सूर्य उदय नही हो सकता ।

ऐसी वीरता की छाया मे उस समय के राजपूत पले थे । उनमे से कई नरेश बडे बहादुर होते थे । इसलिए वे अनायास ही सबकी श्रद्धा के पात्र बन जाते थे । उनकी पुरानी गौरवगाथा के कारण ही आज तक उनके वशजो के प्रति लोगो मे सहानुभूति है ।

मैं राजा गगासिह के जमाने मे पैदा हुआ । बचपन से ही हमे राजभक्ति का वातावरण मिला था । जब कभी वे हमारे कस्बे मे आते, प्रजा मे उत्साह की लहर दौड जाती । आजकल की तरह मिलो के मजदूरो को छुट्टी देकर या स्कूल के बच्चो को इकट्ठा करके स्वागत का स्वाँग नही रचना पडता था । लोग खुद अपना घर-द्वार सजाते, सडको पर पानी का छिडकाव होता, टूटी-फूटी सडको मे भी जान आ जाती ।

२१ तोपो की सलामी दी जाती । लोग, ताल की कोठी के चारो ओर उमड पडते । साहूकार, व्यापारी, जमीदार सभी जाकर 'नजर' करते । जो महाजन, परदेश से अच्छा धन कमा कर लाते वे राजा को चाँदी की चौकी और सोने की गिन्नियाँ भेट करते । चाँदी की चौकी रुपयो से बनती– चौकोर और चौडी, जो दस हजार से लेकर बीस हजार रुपयो तक मे बन कर तैयार होती ।

इसी चौकी पर राजा को बिठा कर उनका तिलक किया जाता है और 'नजर' पेश होती । चौकी राजा की हो जाती । राजा भी धनी महाजनो का उनके धन और नजराने के अनुरूप सम्मान करते । आज तो किसी को भी 'सेठ' कह सकते है और कोई भी पैरो मे सोने के गहने पहन सकता है, पर पचास-साठ साल पहले, बीकानेर मे 'सेठ' वही कहलाता जिसे राजा से यह खिताब मिलता था । सेठो को राज्य की ओर से जकात माफ कर दी जाती । मुफ्त मे या नाम-मात्र पर बहुत-सी जमीन मिल जाती । अन्य राजकीय सुविधाएँ भी प्राप्त होती । सेठ सम्पतराम जी को राज्य की तरफ से ये मुरतब (सम्मान) मिले हुए थे ।

हम राजभक्त थे–यह तो लिख चुका हूँ, पर इतना और लिख दूँ कि गगासिंहजी के जमाने मे प्रजातन्त्र की लहर राजपूताना मे भी फैल रही थी । जयपुर और जोधपुर मे प्रजा-मण्डल जोर पकड रहा था, पर बीकानेर मे राजा की सतर्कता से विशेष कुछ नही हो पाया । उन दिनो गाँधी-टोपी, राजद्रोह की गन्ध देती थी । गाधी-टोपी वालो का राज्य मे प्रवेश करना भी कठिन था । राजसत्ता इतनी सतर्क थी कि गाँधीजी का नाम हमारे गाँवो मे सन् १९१८-१९ तक पहुँच पाया था । लेकिन जो भी हो, उस महापुरुष का नाम हमारे कानो तक पहुँचने से रोकने की शक्ति राजदरबार मे नही थी ।

इस नाम के साथ चमत्कार भी जुडे हुए थे । हमारे शहर के श्री नेमीचन्द आचलिया बम्बई मे रहते थे । उन्होने गाधीजी को देखा था और यह बडे सम्मान की बात थी । लोग उनसे बडे आदर से गाँधीजी के बारे मे पूछते । वह बडे आत्मविश्वास के साथ कहते कि गाँधीजी के चेहरे के चारो ओर प्रकाश का देवसुलभ चक्र रहता है, उनके हाथ का पानी पीने से अनेक बीमारियाँ मिट जाती है ।

ऐसी चमत्कार की बाते हम बच्चो के कानो तक भी पहुँची–गाँधीजी के जेल के भीतर होते ही जेल का फाटक अपने आप खुल जाना, अगरेज-पहरेदारो का सो जाना, गाधीजी को जेल देने वाले हाकिम की पत्नी और बच्चो की एक ही सप्ताह मे मृत्यु हो जाना आदि अनेक बाते । उस महापुरुष के दर्शन, लगभग अट्ठाइस वर्ष के बाद, कलकत्ते के निकट सोदपुर खादी-आश्रम मे हुए ।

उस जमाने मे हमारे कस्बे में एक करोडपति और बीस-पच्चीस लखपति थे । वैसे तीस-चालीस हजार वालो का भी सम्मान था । वे भी रोबदारी से रहते थे । ऐसे लोगो के विषय मे,गाँवो मे आपस मे बाते भी होती । कहा जाता था 'फला बडा हजारीखगारी है ।' वैसे रोबदाब तो हम भोले बालको और सीधे-सादे देहातियो पर उन नवयुवको का भी जम जाता, जो कलकत्ता, बम्बई से पैसा कमा कर गाँव आते । उनके अच्छे विदेशी कपडे, चमकती घडी, विदेशी टार्च आदि हमारे आदर-भरे आश्चर्य व कुतूहल के विषय बन जाते ।

देशी राज्यो के जमाने मे पहले जो होना था, वह आज नही होता—ऐसा मैं नही कह सकता । उस समय कस्बे मे सबसे अधिक तहसीलदार व थानेदार का रोबदाब रहता । वे ही सर्वेसर्वा थे । उनका बहुत आतक था, पर उनसे बढ कर छुटभैए जमीदारो, ठाकुरो और सामन्तो से भय बना रहता था । ग्रामीणो से लेकर छोटे व्यापारी तक इनके सामने सिर उठाने की हिम्मत नही करते थे । उनकी उचित-अनुचित आज्ञा को चुपचाप मानना पडता था । जरा-सी आनाकानी करने पर कडा दण्ड मिलता था । किसी जमीदार के मरने पर उस गाँव के बडे बूढो को भी दाढी-मूँछ साफ करानी पडती थी । किसी शादी-विवाह वाले घर के लोग अगर आनाकानी करते तो उनका जबरन मुडन कर दिया जाता था । जमीदारों के गाँव मे से लोग घोड़े या ऊँट पर चढकर नही जा सकते थे ।

किसी की खडी फसल कटवा ली जाती, किसी की गाय-भैस मँगवा ली जाती । बहू-बेटी को भी जबरन बुलवा लेने मे उन्हे सकोच न होता । मुझे याद है, एक ठाकुर ने गाँव मे एक दरोगा (गोला जाति) की नव विवाहिता पत्नी को बुलवा भेजा । उसने अपनी बहू की दुर्गति कराना अस्वीकार कर दिया । क्रुद्ध होकर ठाकुर ने दरोगा की आँखे निकलवा ली । वह ठाकुर राजा का मुँह लगा मुसाहब था । राजा के पास फरियाद पहुँची, पर ठाकुर साहब का कुछ न बिगडा । इस घटना से उसका आतक और भी बढ गया ।

लेकिन कभी-कभी इन सामन्तो को 'काकी का जाया' भी मिल जाता, जो इनको अपनी हिकमत से परास्त कर देता । एक बार एक नए आए हुए तहसीलदार ने एक नाई को बेगार मे हजामत बनाने के लिए बुलाया । उस्तरे को हाथ मे लेते हुए नाई ने कहा'—"हुजूर थोडी राख मँगवा लीजिए ।"

तहसीलदार ने आश्चर्य से पूछा, "क्यो राख का क्या होगा ?"

सरकार मेरा हाथ काँपता है । जहाँ दाढी छिल कर खून निकलेगा, राख लगाता रहूँगा ।" नाई ने अत्यन्त नम्रता-पूर्वक कहा ।

घबराकर तहसीलदार ने अर्दली से उस निकम्मे नाई को निकाल बाहर करने का हुक्म दिया । कई दिनो तक गाँव मे इस बात की बडी चर्चा रही ।

महाराज गगासिह जहाँ जाते, मौके पर ही दो-चार मुकद्दमे निपटा देते । यदि उन्हे किसी अधिकारी या सामन्त-मुसाहब को निकालना होता तो पहले से ही गाँव के लोगो को कहला देते थे कि जब मैं आऊँ तब उनकी शिकायत करना । लोग ऐसा ही करते । महाराज उसे बुलाकर सबके सामने डाटते और दण्ड देते । इस प्रकार तुरत न्याय का नाटक पूरा हो जाता, प्रजा पर प्रभाव भी अच्छा पडता और अफसरो व सामन्तो मे आतक बना रहता । इतना सब होते हुए कस्बे का जीवन शान्ति से बीतता था । ऊपर बताई हुई कटुताएँ उस समय की साधारण बाते समझी जाती थी । लोगो के लिए अपने खेत, अपना कारबार और छोटे-मोटे मनोरजन के साधन ही सब कुछ थे ।

मेरी पितृभूमि बीकानेर-राज्य का छोटा-सा कस्बा बीदासर है—सुजान-गढ के पास । इसे बीकानेर-राज्य के सस्थापक बीकाजी के भाई बीदाजी ने बसाया था । मेरे पिताजी का जन्म यही हुआ था । इस स्थान का उस समय ताँबे की छोटी-सी खान के कारण महत्त्व था ।

व्यापार के लिए पितामह, सरदार-शहर चले आए थे। महाराजा गगासिह महाराजा डूगरसिंह के दत्तक पुत्र थे। डूगरसिह के पिता सरदारसिंह ने अपने पिता महाराजा सूरतसिह के शासन-काल मे जाटो के हाथ से छीन कर इस स्थान का नाम सरदार-शहर रखा था। बीकानेर राज्य का यह १३५ वर्ष पुराना कस्बा है।

मरुभूमि के बालू के बडे-बडे टीलो के बीच मे 'थली' नामक अञ्चल है। उसी का केन्द्र है सरदार-शहर। किसी बडे शहर या रेलवे-लाइन से यह इतना दूर था कि नई रोशनी के यहाँ तक पहुँचने मे बहुत समय लग गया। बहुत वर्षो तक यह अपनी प्राचीनता से लिपटा रहा। जीवन स्नेहमय और मर्यादापूर्ण था। सादगी के साथ सरलता थी। रेलवे-लाइन ३० मील दूर रतनगढ तक ही आई थी। उस जमाने मे, रेलवे-लाइन राजपूताना मे थी भी बहुत कम।

आज के लोगो के लिए पुराने राजस्थान को समझना भी कठिन होगा। अब हर कोने मे रेलवे-लाइन है। सन् १९६८ से राजस्थान मे दस हजार चार सौ किलोमीटर मे रेल दौड रही है। सरदार-शहर में सन् १९१६ मे रेलवे स्टेशन बना। सन् १९४० मे बिजली आई और सन् १९४२ से यहाँ बस-सेवा भी सुलभ हो गई।

लेकिन उस जमाने मे यातायात के लिए ऊँट, साँडनी (ऊँटनी) या घोडा होता। ऊँटगाडी या थोडे से नागौरी बैलो की जोडी के रथ होते। एक और भी सवारी मुझे याद है—सेठ भैरोदान भंसाली की दो सफेद बकरो की गाड़ी। दो सुन्दर बकरे थे और सुन्दर-सी छोटी फिटन गाडी थी। उसमें बैठकर जब उनके बच्चें बाजार मे निकलते तो लोग उन्हे देखने अपनी दूकानो से नीचे उतर आते। घोडे की सवारी सबके बस की बात नही थी। घोडे पर बैठना बडे आदमी का ही अधिकार था, उच्च पद या मर्यादा की निशानी थी। हमारे यहाँ घोडा नही था, पर मुझे घोडे पर बैठने का शौक था। कुछ जान-पहचान के परिवारो से सवारी के लिए घोडा माँगा जा सकता था, पर पितामह मुझे चढने न देते, चोट लगने के भय से, लेकिन मै एक बार घोडे की सवारी कर ही बैठा। घोडा नासमझ सवार को खूब पहचानता है। उसने मुझे पटक दिया और मुझे चोट आ गई।

पितामह ऊँट पर भी नही बैठने देते थे। जब हम दोनो भाई मेला-तमाशा ऊँट पर चढ कर देखना चाहते तब वह कहते कि हमारी बीस हजार की हवेली ऊँट से ज्यादा कीमती है, उसी पर क्यो न बैठा जाए। हम बच्चे उस समय उनके तर्क के आगे झुक कर हवेली के बरामदे मे बैठे-बैठे गणगौर की सवारी देखते और मन मे सन्तोष कर लेते।

साइकिल भी काफी देर से हमारे यहाँ पहुँची। उस पर चढना भी आसान नही था। यह भी 'नए फैशन' और सम्पन्न लोगो की चीज समझी जाती थी। साइकिल चलाना हमे बडा अच्छा लगता था, पर बचपन मे साइकिल पर बैठने का मैने कभी साहस नही किया। दो-चार बार साइकिल के पीछे की सीट पर जब बैठा और साइकिल तेज गति से दौडने लगी तब एक सिहरन-सी हुई, कुछ डर भी लगा, लेकिन चालक की पीठ को पकड कर बैठा रहा।

हमारे शहर मे पहली मोटरकार १९१८ मे आई—हमारे शहर के सबसे धनी सेठ सपतराम जी के यहाँ। रेल से हम बच्चो का और बडे-बूढो का परिचय हो चुका था। सन् १९१६ मे रतनगढ से सरदार-शहर तक रेलवे-लाइन आ गई थी। हमारे कस्बे से दो-मील दूर साजनसर का रेत का बडा टीला था, उसको काट कर लाइन बिछाई गई थी। गाँव मे कई वर्षो तक इसकी चर्चा रही कि हमारे महाराजा गगासिह कितने प्रतापी है कि साजनसर के दैत्य जैसे टीले को काट दिया। इस टीले को काटना उस समय हमारे लिए उतना ही आश्चर्यजनक था जितना कि कश्मीर मे पूँछ की सुरग का काटना रहा होगा।

हम बच्चे बडे चाव से रेल की पटरी का बिछाना देखा करते। वैसे रतनगढ से सुजानगढ

या चुरू जाते समय आगपानी के इस जादू से हम परिचित हो गए थे। जिस समय पहली बार रेलगाडी हमारे सरदार शहर के प्लेटफार्म पर आई, उस समय का दृश्य मुझे आज तक नही भूलता। आसपास के गॉवो के स्त्री-पुरुष उमड पडे थे। कुछ लोग तो इंजन पर चढाने के लिए चीनी के बताशे और रोलीमोली का चढावा भी ले आए थे। कितने नर-नारियो ने धुआँ उगलते हुए देवता को सादर प्रणाम भी किया था।

आगपानी का मेल तो समझ मे आ गया, इजन का धुआँ भी दिखाई पडता था, पर मोटरकार मे छिपी शक्ति बडे कुतूहल की चीज़ थी। जब मैं आश्चर्यचकित, मुँह फैलाए सपतरामजी की मोटर देख रहा था, तब मैंनें कल्पना भी नही की थी कि एक दिन मेरे पास भी बीसियों मोटरे होगी। एक बार धारीवाल और लाल इमली का सबएजेट हमारे कस्बे मे ऊन खरीदने आया। हम लोग उसके पीछे हजार-दो-हजार के सौदे के लिए घूम रहे थे, उसकी खुशामद मे लगे हुए थे। तब मैंने कल्पना भी नही की थी कि एक दिन मैं इन दोनो मिलो का सचालन करूँगा। भाग्य एक पहेली है।

इन 'पहेली' जैसी चीजो ने हमारे शात जीवन मे हलचल पैदा कर दी थी। मैं नही कह सकता कि १६ अप्रैल १८५३ को, जब भारत मे ३२ किलोमीटर मे पहली ट्रेन दौडी थी, नागरिको को कितना अचम्भा हुआ होगा ! हमे तो अपने बचपन की याद है कि जब पहली ट्रेन धुआँ उगलती, सीटी बजाती आती हुई दिखाई पडी, तब सारा कस्बा उस महान आश्चर्य को देखने के लिए उमड पडा और जो लोग ३० मील दूर जाकर रेलवे-स्टेशन देख आए थे, उनके लिए यह वस्तु भय, आशंका व चमत्कार की कहानी थी।

रेल से भी अधिक आश्चर्य की वस्तु बिना आगपानी से चलने वाली वह फिटन-गाडीनुमा ऊँची मोटरकार थी, जिसे देखने हम बच्चे दौड पडे थे। अनेक बडे-बूढे उसे छूने से डरते थे।

मुझे याद है कि एक ने सहमते हुए अपने साथी से सवाल किया था, "अगर यह रुक गई तो क्या होगा ?"

"अपना ऊँट तो है, खीच ले जाएगा," साथी ने जवाब दिया था।

जब मै बडा हुआ तब लगभग २५ वर्ष पहले की कही हुई उसकी बाते मुझे प्रत्यक्ष दिखाई पडीं—सडक पर बिगड गई मोटर को ऊँट खीच रहा था।

मुझ पर भी एक बार यही बीती थी। एक दिन सूरज डूबते हमारी मोटर खराब हो गई। शहर पहुँचना था। मेरे साथ एक बडे प्रतिष्ठित सेठजी थे। हम पास के गॉव में गये कि किसान की ऊँट-गाडी बॉध कर ले चले, पर किसान ने अस्वीकार कर दिया। उसने कहा, "दिन भर का थका मेरा ऊँट, अब आराम करेगा।"

सेठजी पास ही खडे थे। मैने उनका नाम लेकर कहा, "अरे, भाई सेठजी की मोटर बिगड गई है, बहुत इनाम मिलेगा।"

किसान ने अपने ऊँट को थपथपाया और सादगी से बोला—"मेरा 'सेठजी' तो यही है।"

उसने ऊँट पर प्रेम से हाथ फेरा और वह उसके दानेपानी मे लग गया।

यो १९१६ तक सरदार-शहर, एक प्रकार से कूपमडूक ही था, पर सरदार शहर के सभी लोग अपने दायरे मे बन्द नही थे, सैकडो साहसी व्यक्ति सुदूर असम और कलकत्ता जाकर व्यापार करते थे। और जब वे लौट कर आते तो कस्बे-भर मे हलचल हो जाती। ऐसा लगता जैसे हरेक के घर का बिछुडा हुआ साथी आ गया हो। गॉव के लोग उनके यहॉ जाकर परदेश मे बसे अपने सगे-सम्बन्धियो के सुखदु ख की बाते पूछते। उनके साथ वहॉ रिश्तेदारो द्वारा भेजी हुई अनेक प्रकार की चीजे रहती। उस समय लोग डाक-पार्सल का खर्च नही करते थे। पहले से ही जानकारी रखते कि फला व्यक्ति 'देश' जाने वाला है।

बचपन मे ही मैंने सेठ सपतराम के अभ्युदय की अद्‌भुत गाथा बडे कुतूहल से सुनी थी। उनके पिता चैनरूपजी साधारण मजदूरी करके पेट पालते थे। एक दिन राजमिस्त्री ने उन्हे ढिलाई से काम करते देखकर अपनी 'हथेनी' से उन्हे मारा। चोट सिर पर तो लगी ही, मन पर भी लगी। बस बालक चैनरूप ने सकल्प किया कि वहाँ काम न करेगे। वह कलकत्ता भाग आए और फिर तो अपने परिश्रम व ईमानदारी से करोडपति ही हो गए। लोगो का कहना है कि मिस्त्री ने उन्हे मारा नही, उनके सोते हुए भाग्य को कुरेद कर जगा दिया। हमारे यहाँ इस समय तक भी लोग कहते हुए सुने जाते है कि तुम कहाँ के 'चैनरूप सपराम' आ गए हो!

इस फर्म की एक विशेषता का उल्लेख यहाँ आवश्यक है। यह सभी जानते है कि उन्होने कभी चोरबाजारी नहो की, यहाँ तक कि कठिन बीमारियो मे भी अधिकृत मूल्य मे ज्यादा मे दवा नही खरीदी। मेहमानो को राशन की चीनी खिला कर खुद गुड खाते रहे। कूपन के अतिरिक्त पेट्रोल ऊँचे दामो मे मिलता, इसलिए बहुत-सी मोटरो के रहते हुए भी इस फर्म के मालिको को कभी-कभी पैदल आना-जाना पडता था। बहुत वर्पो के बाद सेठ सपतराम के पौत्र कन्हैयालालजी ने 'गाँधी-विद्या-मदिर' नाम के एक वृहत् शिक्षा-सस्थान की स्थापना की। आज यह प्रतिष्ठान देश मे अपने ढग का अनोखा है। इसके अनेक कार्यो मे गायो और साँडो की नस्ल सुधारने का काम भी है। यहाँ की कुछ गायो से प्रतिदिन २५ से २७ किलो तक दूध निकलता है। कई बार अखिल भारतीय प्रतियोगिता मे इन्हे प्रथम या द्वितीय पुरस्कार मिल चुके है।

कुछ वर्षों से कन्हैयालालजी ने एक प्रकार से वानप्रस्थ ले लिया हैं।

मुझे वृक्षो से स्नेह है-चाहे वे फल वाले हो या साधारण। मैं उन्हे इतिहास का साक्षी मानता हूँ। उनकी छाँह मे गरीब जनता फलती-फूलती रहती है। जमाना बदल गया, लोग बदल गए, मान्यताएँ बदल गईं, लेकिन वृक्ष निर्मोही साधु की तरह मौनव्रती रहे। इतिहास के पन्ने उलटते गए, लेकिन वृक्षो ने अपने पुराने पत्ते गिराकर फिर नई चादर ओढ ली, उनका क्रम नही बदला। इन्ही मे से कुछ वृक्षो ने मेरा बचपन देखा। कभी-कभी जब कलकत्ता से गाँव जाता तो ये पेड मेरे यौवन की झलक के गवाह भी बनते। अब प्रौढावस्था को भी ये देख रहे हैं और जब मै नही रहूँगा तब भी इनकी दृश्य स्मृति मे अमर रहूँगा। किसी पुराने वृक्ष को काटे जाते देख कर मुझे पीडा होती है, जैसे किसी ने युगो के जीवन के एक अध्याय को ही काट डाला हो।

यदि पीपल, वट, नीम, खेजडा, गूँदी या जाल के वृक्ष नही होते, यदि बेर की झाडियाँ नही होती तो हमारे मारवाड या 'थली प्रदेश' का जीवन वास्तव मे ही नीरस होता। कार्तिक मे बेर पक जाते। बडे बेर अपने लाल-पीले रगो से सबका मन मोह लेते। महीनो तक इस रेगिस्तानी चेरी मे गरीब-अमीर सभी को आनन्द मिलता। गाँव के नोहरो, बाडो और खेतो मे बहार आ जाती। जिस तरह खेतो मे जाकर मतीरा, ककडी और बाजरे का सिट्टा खाने की गोठ (पिकनिक) की कीमत किसान नही लेता था, उसी प्रकार साधारण तौर पर बेर खाने मे कोई रोक-टोक नही थी। हम बच्चे पाठशाला के बहाने घर से निकलते, किसी नोहरे या बाडे मे जाकर बेर की झाडियो पर हमला बोल देते। चोरी से फल खाने मे बडा मज़ा आता। कभी कोई माली या रखवाला देख लेता तो झिडकियाँ मिलती या थोडी मरम्मत हो जाती।

शाम को घर जाकर जब भूख न होने का बहाना बनाते तो दादीजी हाथ से पेट दबा कर पूछती—"आज कहाँ क्या खा कर आए हो ?" ज्यादा जानकारी के लिए पडोस के बच्चो से पूछताछ की जाती। ऐसी मान्यता थी कि ज्यादा बेर खाने मे पेट मे वायु होकर पीडा होती है, लेकिन मेरे साथ कभी ऐसा नही हुआ। कहते हैं कि मार के आगे भूत भागता है पर हम

गुरुजी की पिटाई की परवाह न करके दूसरे दिन फिर किसी-न-किसी बहाने बेर खाने निकल पडते। मनोवैज्ञानिक ठीक कहते है कि शायद ही ऐसा कोई बालक पैदा हुआ हो, जिसने फलो के बाग मे माली की आँख बचा कर फल न खाए हो।

बेरो के मौसम के बाद आती जलौटियो की बहार। विशाल 'जाल' वृक्ष, मोतीमणिक नगीनो की चादर ओढे बडे ही लुभावने लगते। ये मोतीमणिक और कुछ नही, इस जाल-वृक्ष की बहुत ही स्वादिष्ट और रसदार लाल और सफेद जलौटियाँ थी, जिन्हे हम बालक बडे चाव से खाते थे। इन वृक्षो पर हमारी टोली टूट पडती, चिडियाँ चीखचीख कर विरोध करती कि हमारा भोजन छीना जा रहा है, पर हम ऊँची टहनियो पर चढ जाते। कभी-कभी धडाम-से नीचे गिर जाते। थोडी-बहुत चोट लग जाती तो सहला लेते, कोयला या राख दबा लेते, लेकिन घर जाकर नही कहते।

हवा मे थोडी-सी ठडक आने पर ये जलौटियाँ खूब पक जाती। मधुमक्खियाँ इनका रस इकट्ठा करने के लिए इन वृक्षो पर छत्ते लगा लेती। कभी-कभी हमसे नाराज होकर हमे काट भी लेती, पर हम अपनी धुन मे मस्त रहते। बेचारे तोते और बुलबुल, जिन्हे यह फल बहुत प्यारा है, हमारा कुछ नही बिगाड पाते, उलटे वे कभी-कभी हमारी पकड मे आ जाते और उन्हे हम अपने घर पर ले जाकर पास-पड़ोसियो को बडे गर्व से दिखाते; दूसरे दिन फूसाराम जी बढई के घर जाकर एक अच्छा-सा पिंजडा बनवा कर उसमे 'श्रीगगाराम' को बिठा देते। महीनो तक उसको 'सीताराम-राधेश्याम' का पाठ पढाते। शायद दादीजी इन बातो को पसन्द नही भी करती थी, पर इस बहाने हम बच्चो को 'राम' का नाम लेते देखकर वे विरोध भी नही करती।

होली के बाद गूँदी, लेसू और ढालू के फल भी बहुतायत से उपलब्ध होते। गूँदी बडा उपयोगी पेड होता है। उसकी जड से अनेक प्रकार की दवाएँ बनती है। छोटे पीले बेर-जैसा फल खाने मे बडा मीठा लगता है। उसमे गोद की तरह का चिपचिपा लसदार पदार्थ रहता है। कहा जाता है कि यह बहुत ही पौष्टिक होता है। गूँदी जाडो मे फलती है, जब कि ढालू और लेसुवा बैसाख-जेठ की गर्मी का फल है।

ढालू मीठा और पाचक होता है, पर लेसुवा कसैला और लसदार होता है। आज-कल यातायात की सुविधाओ के कारण दूसरे प्रान्तो से अनेक प्रकार के फल आने लग गए है, इसीलिए अब ये स्थानीय फल लुप्त होते जा रहे है। राजस्थान के इन विशेष फलो के वृक्ष कटते चले जा रहे है। अगर प्रदेश सरकार ध्यान नही देगी तो राजस्थान की यह उपलब्धि समाप्त हो जाएगी।

जगल मे रोहीडे व खेजड़े को सस्कृत मे शमी-वृक्ष कहते है। खेजडा या 'जाँटी' हमारी मरुभूमि का सदियो से उपयोगी वृक्ष रहा है। इसके पत्ते जिन्हे 'लूँग' कहते है, बकरियो, ऊँटो और गाय-बैलो का प्रिय खाद्य पदार्थ है। खेजडे के लिए पानी की बहुत कम आवश्यकता होती है। वर्ष-भर की सचित तरी का उपयोग यह वृक्ष, चैत्र-वैशाख के सूखे महीनो मे करता है।

प्रकृति की यह लीला है कि जब भारत के अन्य भागो मे पतझड शुरू होता है, हमारे रेगिस्तानी प्रदेश मे वसन्त की सुषमा दिखाई देती है। चारो तरफ हरे खेजडे बालू-प्रदेश को हरे रग मे सराबोर कर देते है। खेजडे के हरे फल को साँगर कहते है। इसका साग बहुत स्वादिष्ट होता है। कैर और साँगर को मिला कर भी साग बनाते हैं, जो न केवल स्वादिष्ट होता है, बल्कि पेट की वायु हरता है और कब्ज दूर करता है। ठडी पूरी के साथ कैर साँगर का आचार एक अनोखा आनन्द देता है। दूर की यात्रा पर जाने वाला शायद ही कोई ऐसा राजस्थानी हो जो आचार को अपने साथ न ले जाता हो। खेजडा बहुत उपयोगी है, पर रोहीड़ा केवल देखने मे ही सुन्दर होता है। इससे लाभ बहुत कम है; इसके फूल बिना सुगन्ध

के होते है, इसलिए हमारे यहाँ मूर्ख के बारे मे कहावत है कि फलाँ व्यक्ति रोहीडे के फूल की तरह है ।

राजस्थान मे इस प्रकार की कहावतो के माध्यम से बहुत-सी उपदेशात्मक सामग्री उपलब्ध हो सकती है ।

पके साँगर को 'खोखा' कहते है । छह सात इन्च लम्बा 'खोखा' बहुत ही स्वादिष्ट होता है । हम बच्चे बडे चाव से इन खोखो को खाते । अधिक खाने से अपच हो जाती । बडे-बूढे हमे सावधान करते रहते कि अधिक मत खाओ ।

मुझे याद है, एक बार खोखा खाने की होड लगी । जिद्द मे आकर कई बच्चे काफी मात्रा मे खोखे खा गए । उनमे से कइयो को हरे पित्त की कै हुई, जिनमे एक मैं भी था । शायद पिताजी मेरी पिटाई भी करते, पर मेरी दादीजी ने कह-सुन कर बचा लिया ।

नीम का वृक्ष भी राजस्थान मे बडा लोकप्रिय है । इसके फूल को मीझर और फल को निबौली कहते है । वैशाख के महीने मे जब सफेद मीझर की महक लिए हवा चलती है, तो सबको मुग्ध कर देती है । इसकी छाँह मे गर्मी के मारे लोग विश्राम करते हैं । लोगो के बैठने के लिए महाजन लोग पेड के तने के चारो ओर गोल पक्का चबूतरा बनवा देते हैं, जिसे गट्टा कहते है । नीम की पतली डालियो से दातौन बनाने, पत्तो और सूखी निबौली का विभिन्न ओषधियो मे उपयोग करने के साथ-साथ लोग इसके हरे पत्तो को उबाल कर बोरिक एसिड की जगह इसके उबले पानी से घावो को धोते और सेक करते हैं, जो बहुत फायदेमन्द होता है ।

नीम की औषधि-शक्ति के बारे मे हमारे यहाँ एक दिलचस्प कथा प्रचलित है । कहते हैं कि एक बार जयपुर के एक वैद्य ने एक व्यक्ति को बीकानेर के एक प्रसिद्ध वैद्य के पास पत्र लिख कर भेजा कि 'एक सज्जन को स्वस्थ रूप मे आपके पास भेज रहा हूँ, कृपया इन्हे इसी प्रकार लौटा देना ।' उस व्यक्ति को वैद्यजी ने हिदायत दे दी कि रास्ते मे बबूल की छाया मे ही सोना और बैठना, बबूल की लकडी से ही खाना पकाना । उसने ऐसा ही किया ।

जिस समय वह बीकानेर के वैद्य के पास पहुँचा उस समय तक उसके शरीर मे अनेक फोडे हो चुके थे । बीकानेरी वैद्य ने जयपुर वाले वैद्यजी के पत्र को पढा, उस व्यक्ति को देखा और समझ गए । उन्होने बदले मे उस आगतुक को वापस जयपुर भेज दिया और निर्देश दिया कि रास्ते मे नीम की छाँव मे ही सोना, बैठना और खाना भी नीम की ही लकडी से पकाना । साथ ही उन्होने जयपुर के वैद्य को लिख दिया कि 'आपके भेजे हुए व्यक्ति को स्वस्थ हालत मे लौटा रहा हूँ,' उस व्यक्ति ने ऐसा ही किया और जयपुर पहुँचते-पहुँचते वह पहले की तरह स्वस्थ हो गया ।

कहने का तात्पर्य यह है कि इन किवदन्तियो और कथाओ द्वारा राजस्थान के लोगो को विभिन्न वृक्षो के गुण-दोषो का ज्ञान करा दिया जाता था ।

उपयोगिता की दृष्टि से नीम और खेजडा हमारे प्रदेश के सबसे महत्त्वपूर्ण वृक्ष है । लेकिन जहाँ तक श्रद्धा-पूजा का सवाल है, पीपल और वट-पेड सबसे मुख्य है । हमारे यहाँ ये बहुतायत से पाए जाते है । यह भी मान्यता है कि रात मे इन विशालकाय वृक्षो मे भूत-प्रेत या जिन्न वास करते है । इस भय से लोग रात के समय उनके नीचे नही जाते और सहज ही इनसे निकलने वाली कार्बन डाई-आक्साइड जैसी हानिकारक गैस के कुप्रभाव से बच जाते है । एक वैज्ञानिक तथ्य को धार्मिक रूप देकर लोगो के गले उतारना शायद अधिक आसान था ।

इन वृक्षो के चारो ओर भी गट्टे बना दिए जाते थे । स्त्रियाँ वट और पीपल की पूजा अखण्ड सौभाग्य की कामना के लिए करती । सर्दी के मौसम मे मेरी दादीजी और अन्य स्त्रियाँ बहुत तडके इनकी परिक्रमा करने जातीं, १०८ फेरियाँ करनी पडती । जिन वृद्धा स्त्रियो से

फेरियाँ नही की जाती, वे अपने स्थान पर हम बच्चो से फेरियाँ लगवाती। दादीजी मुझे बडे तडके जगा देती और साथ ले जाती। मुझे उस सर्दी के मौसम मे इतनी जल्दी उठना बुरा लगता था, पर जाना ही पडता था। एक लालच भी था कि वापस आने पर माखन-मिश्री का प्रसाद मिलेगा। परिक्रमा के समय अनेक स्त्रियाँ और बच्चे रहते और बडे ही मनोहर भजन गाए जाते। इस परिक्रमा से भगवत्-भक्ति के साथ-साथ व्यायाम भी हो जाता, स्वास्थ्य भी ठीक रहता।
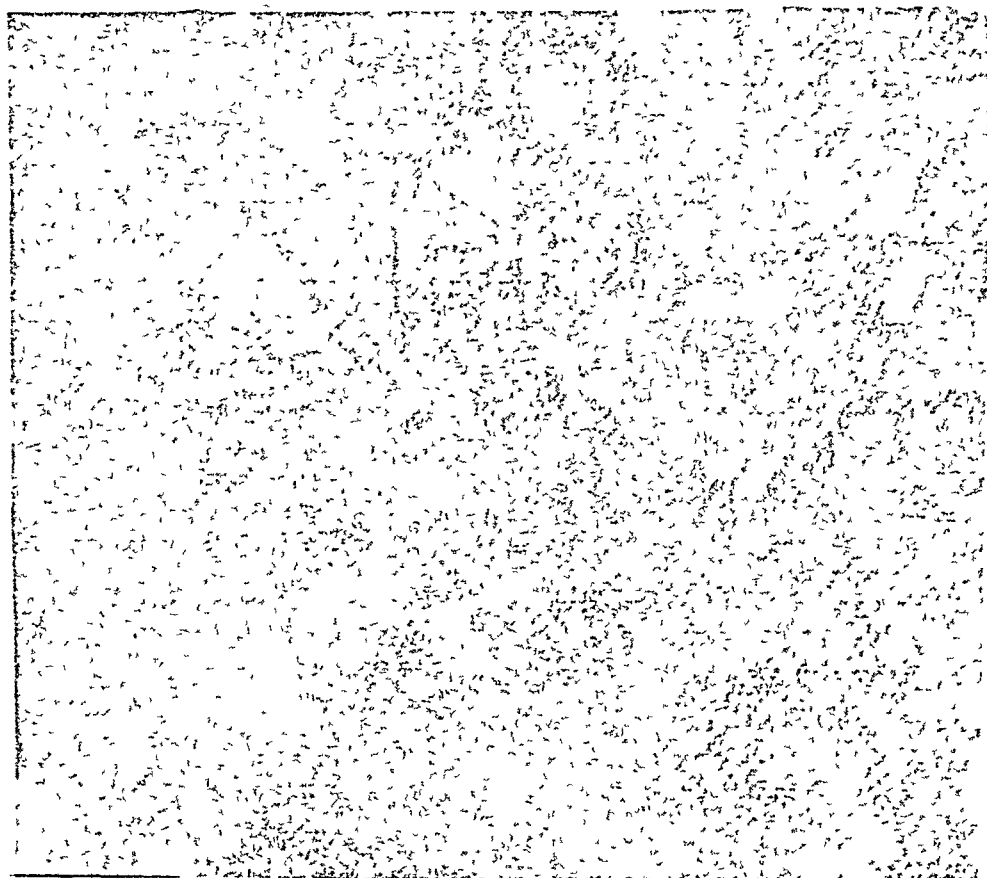
बिना हुक्म भगवान के, पंछी बोले कूण

गॉव की तीन-चौथाई आवादी हिन्दू और एक चौथाई आवादी मुसलमान थी। आपसी भाईचारा जीवन का अग था। एक दूसरे के मकान आपस मे सटे हुए थे। प्राचीन परिपाटी के अनुसार लोग आपस मे ताऊ, चाचा, मामा के नाम से पुकारते थे। इनमे हिन्दू-मुसलमान का कोई भेदभाव नही था। सभी एक दूसरे के सुख-दु ख के साथी थे।

छुआछूत उस समय भी थी, पर किसी को वह आज की तरह खलती नही थी। समाज के विधान और परम्परा से चलने वाले नियम सवको स्वीकार थे। हरिजन अपने को भगवान् की मरजी से अछूत मानते। आज औपचारिकता वढ गई है, आपसी छुआछूत भी कम हो गई है, हरिजनो के लडके स्कूलो मे अन्य सवर्ण-जातियो के बच्चो के साथ पढते भी है, लेकिन पहले जैसा भाईचारा और प्यार नही रहा। उस समय हम घर की बूढी भगिन को रामी दादी कहते थे, पडोसी मुसलमान रँगरेज को मौलाबक्श चाचा। सभ्यता और विकास के साथ परस्पर स्नेह और प्यार की भावना विदा हो गई है।

मुसलमान का छुआ कोई पदार्थ हिन्दू नही खाते थे, लेकिन मुसलमानो को इससे कोई दु ख नही होता था। मैंने देखा है कि हमारी बैठक मे जब नौकर पानी लेकर जाता तो वहॉ बैठे हुए मुसलमान स्वय उठकर बाहर चले जाते। वैसे त्यौहार दोनो जातियो के लोग मिल जुलकर मनाते है। ईद, बकरीद और मोहर्रम मे हम सब भाग लेते। गोटे लगे हुए नए कुरते और सलमेसितारो वाली टोपी पहन कर ताजिया देखने जाते। ताजियो के बारे मे यह धारणा थी कि उनके नीचे से बीमार बच्चो को निकालने से उनकी बीमारी दूर हो जाती है, इसलिए माताएँ और बहने अपने बच्चो को ले कर ताजिएं के दिन रास्तो पर खडी हो जाती। यद्यपि इस अवसर पर मुसलमानो की सख्या अधिक रहती, पर वे सभी हिन्दुओ की बहू-वेटियो की बहुत इज्जत करते और कभी कोई बुरी घटना नही घटी।

हम हाथो मे छोटे-छोटे रगीन डडे भी ले जाते। 'हाय! हुसेन हम नही थे ' का अर्थ तो उस समय नही समझते थे, पर हम भी मुसलमान बच्चो के साथ कण्ठ-से-कण्ठ मिला कर चिल्लाने मे शरीक हो जाते। जोर-जोर से उनको छाती पीटते देखते तो हमे बडा डर लगता। ईद की सेवैया तो हम नही खाते, पर गले मिलना और मुबारकबाद देना उसी उत्साह से होता, जिस उत्साह से मुसलमान लोग हमे दीवाली, होली को 'राम-राम' कहते थे। हमारे पडोस मे ही एक मुसलमान रगरेज का घर था। उसके लडको को हम चिढाते थे कि 'हमारे तो इतने बडे-बडे देवता हैं—हाथी के-से मुँह के और लगूर की सी पूँछ के, जब कि तुम्हारी मसजिद मे कुछ भी नही है।' इसे सुन कर उनके घर वाले नाराज नही होते थे, वे केवल हँस देते थे।

उन दिनो जादूटोनो पर लोगो मे बहुत विश्वास था। हमारे कस्बे के राजकीय मिडिल स्कूल मे श्री आनन्द वर्मा और एक अन्य आर्यसमाजी शिक्षक आए थे। उन्होने इन बातो के विरोध मे बहुत प्रचार किया, पर उनकी बातो का कोई प्रभाव नही पडा। बहुत वर्षो बाद मैंने विदेशो मे देखा कि जादू-टोनो पर न केवल अशिक्षित भारतीय ही विश्वास करते है, बल्कि यूरोप के विकसित देशो मे आज भी अनेक प्रकार के अन्धविश्वास व्याप्त है।

अगरेज व्यक्ति अपने माग मे काली बिल्ली का मिलना बडा शुभ मानते है। अमरीकी यदि भूल से उलटी कमीज पहन ले तो उसका वह दिन बडा अच्छा माना जाता है। रूसी को यदि घोडे की नाल पडी मिल जाए तो वह हर्ष से उछल पडेगा। सचमुच मनुष्य प्रकृति के थपेडो के आगे इतना विवश है कि तिनके का सहारा पकड कर इन देखे-अनदेखे टोटको पर विश्वास कर लेता है।

मुझे इस सदर्भ मे ग्रीस की राजधानी एथेन्स की अपनी यात्रा की बात याद आती है। उन देशो मे ऐसी धारणा है कि प्रत्येक भारतीय को ज्योतिष की कुछ-न-कुछ जानकारी रहती है। वहाँ की हवाई-सर्विस के एक अधिकारी से मेरा परिचय हुआ। उसका एक मात्र तीन वर्षीय पुत्र छह महीने पहले मर गया था। शोकाकुल पत्नी को धैर्य दिलाने के लिए वह मुझे अपने घर ले गया। मैंने उस युवती का हाथ उलट-पलट कर देखा और एक कागज पर कुछ रेखा-सी बनाते हुए भविष्यवाणी की कि एक वर्ष के भीतर ही उसका पुत्र वापस उसकी कोख मे जन्म लेगा। मैंने देखा कि महिला के चेहरे पर एक चमक-सी आ गई थी। सयोग देखिए कि एक वर्ष बाद उसके पति का पत्र मिला कि 'आपके आशीर्वाद से हमारे घर मे पुत्र हुआ है, बडी कृपा होगी अगर आप एक बार हमारे यहाँ पधारे, मेरी पत्नी ने आपके ज्योतिष के चमत्कार के बारे मे सारे मुहल्ले और परिचितो मे चर्चा कर रखी है। वे आपके दर्शन के लिए उत्सुक है।'

सरदार-शहर भी इन मान्यताओ से अलग नही था। मै नही जानता कि शुभ घडी या मुहूर्त की यात्रा सफल ही होती है, पर हमारे यहाँ से कलकत्ता, बम्बई जाने वालो के लिए अच्छा मुहूर्त बहुत ही आवश्यक माना जाता। इसके बारे मे बहुत सी धारणाएँ प्रचलित थी। सामने सिर घुटा हुआ साधु नजर आता या विधवा स्त्री दिखाई पड जाती तो अशुभ माना जाता, जबकि सधवा स्त्री यदि पानी का घडा लिए मिलती या बाई तरफ गधा रेंगता मिलता तो अच्छे सगुन माने जाते। सबसे शुभ सगुन रास्ते मे फन फैलाए हुए बैठे सर्प का होता।

इस सन्दर्भ मे एक घटना बहुचर्चित है। अठारहवी शताब्दी के शुरू मे नागोर का एक ओसवाल युवक एक जतीजी (यति) के पास विदाई का मुहूर्त निकलवाने गया। उन्होने कहा कि वह उसी वक्त प्रस्थान करे। थोडी देर बाद उस युवक ने वापस आकर जती महराज से कहा, "मुझे रास्ते मे एक काला नाग फन फैलाए हुए मिला, इसलिए मैं वापस आपके पास आया हूँ।"

महाराज हँसकर बोले, "तुम छत्रपति होते, पर अभी भी दौड जाओ, जगत्-सेठ तो हो ही जाओगे।"

कहा जाता है कि वही युवक आगे जाकर मुर्शिदाबाद का जगत-सेठ मेहताबचन्द हुआ, जिसकी फर्म का उस सस्ते जमाने मे भी करोडो रुपयों का कारवार था।

इसके अलावा एक और घटना की चर्चा भी बडे-बूढो से सुनी थी। वह घटना इस प्रकार है—"एक बार महात्मा दादू और एक महाजन साथ-साथ यात्रा के लिए रवाना हुए। बडी दूर जाने पर उल्लू की आवाज आई। महाजन ने दादूजी से कहा, "महाराज, अपशकुन हो गया है, मैं तो वापस जा रहा हूँ।"

महात्माजी ने आगे जाकर एक दोहा कहा —

दादू दुनिया बावली, फिर फिर माँगे सूण,
लिखने वाला लिख गया, फिर मेटण वाला कूण।

रात पडने पर साधु महाराज जंगल के किनारे एक तालाब की छतरी मे ठहर गए। थोडी देर बाद तीन चार धाडेती (डकैत) आए और पूछने लगे कि 'ऐ मोडे, वह महाजन कहाँ है?' जब उन्हे पता चला कि वह वापस लौट गया तो वे बडे क्रोधित हुए और साधु-महाराज को धौलधप्पा जमा कर उनके कमण्डल और कमली छीन कर चलते बने। दादूजी ने फिर एक

दोहा कहा –

दादू दुनिया साच है, सच कर माने सूण,
बिना हुक्म भगवान के, पंछी बोले कूण

तात्पर्य यह है कि हमारे यहाँ उस समय शकुनो पर बहुत विश्वास था। कुछ लोग तो इतने बहमी थे कि बाजार सौदा लेने जाते तो भी 'सगुन' देखते। रास्ते मे गधा दाएँ खडा मिलता तो उसे बाये करने के लिए घुमाव देकर जाते। अगर बिल्ली रास्ता काट जाती या कोई छीक देता तो वापस घर आ जाते। हमारे मुहल्ले मे इसी प्रकार के एक वृद्ध थे, जिनकी यह कमजोरी हम बच्चे जान गए थे। उन्हे छकाने मे हमे बडा मजा आता। जब वह बाजार जाने लगते तो कोई बच्चा छीक देता या कुत्ते का कान मरोड कर उसे चीखने पर मजबूर कर दिया जाता। बाबाजी बडबडाते और बिगडते हुए वापस घर चले जाते।

कोई कलकत्ता या बम्बई के लिए प्रस्थान करता तो घर का पण्डित मन्त्र पढता, कुल-देवता की पूजा होती और बहन या माँ तिलक करती। यात्री घर से बाहर निकलने पर मुडकर पीछे नही देखता था। उसे विदा करने के लिए परिवार के और मोहल्ले के लोग गाँव के बाहर तक पहुँचाने जाते। विदा के समय प्रत्येक व्यक्ति एक या दो रुपये विदाई के देता। इस प्रकार उसे रास्ते और परदेश के लिए सहारा मिल जाता। बडो के पैर छूकर और छोटो को आशीर्वाद देकर यात्री ऊँट पर बैठ जाता। रास्ते मे लूट-पाट का डर रहता, इसलिए लोग साथ मिलकर यात्रा करते। अगर जनानी सवारियाँ होती तो एक दो ठाकुर (राजपूत) या कायमखानी बदूक और तलवार लिए साथ-साथ रहते।

मुझे इसी प्रसग मे एक और मजेदार कहानी याद आ रही है, सरदार-शहर के पास ही फोगा नाम का एक गाँव है। वहाँ एक बुढिया अशुभ वाक्य बोलने के लिए प्रसिद्ध थी। एक बार गाँव वालो ने मिल कर एक खेतो की बुआई के लिए जाने से पूर्व उसके पास जाकर कहा, "दादीजी, हम आपका पूरा अनाज भेज देंगे, आज आप अपनी कोठरी मे ही रहिएगा।"

बुढिया ने जवाब दिया, "बात कह कर मुकर मत जाना। तुम्हारे चाहे एक दाना भी न हो, मै तो पूरा हिस्सा लूँगी।"

बुढिया के इस आशीर्वाद के कारण बेचारे गाँवो वालो को बोआई का मुहूर्त दूसरे दिन के लिए स्थगित करना पडा।

आज यातायात के प्रचुर साधनो के युग मे ये बाते बचकानी-सी लगती है, पर इनका अपना मनोवैज्ञानिक प्रभाव था और है। अच्छे शकुन को लेकर आत्मविश्वास जाग उठता है, और आत्मविश्वास सफलता का जनक है।

आज से लगभग ५० वर्ष पहले, जब कुए कम थे और जलकल का नाम भी नही था, लोग बटोही को पानी की जगह दूध पिलाना आसान समझते थे। घरो मे गाय-भैस बहुतायत से रहती, चराई का खर्चा नही के बराबर था, मनो-दूध प्रत्येक घर मे होता था जब कि पानी लाने के लिए कुओ या तालाबो पर जाना पडता। काफी किल्लत के बाद एक-दो घडा पानी मिल पाता। धनवान लोगो के यहाँ तो माली या मालिन पानी भरते, पर आम लोग पानी के लिए बहुत सुबह उठकर पनघट या तालाब पर जाते थे। गरमी मे जब तालाब, बेरी और जोडा (जोहड) सूख जाते तब कुओ पर स्त्री-पुरुषो का बडा मेला-सा लग जाता।

हमारी मरुभूमि मे पनिहारिनोके बारे मे बहुत ही भावपूर्ण और मधुर गीत लिखे गए है। वे खुद भी रास्ते की थकान मिटाने के लिए अपनी उमर के अनुरूप अलग-अलग टोलियो मे जाती और नाना प्रकार के गीत या भजन गाती रहती। पानी लाते समय वे घर के सबसे अच्छे कपडे पहन कर जाती। बचपन मे हमने देखा था कि हजारो रुपये के चाँदी-सोने के गहने पहन कर महिलाए कुओ पर जाती थी। इस प्रकार घर के काम के साथ-साथ उनका

मनोरंजन और व्यायाम भी हो जाता ।

उन दिनो समाचार-पत्न और रेड़ियो नही थे, पर ताजा स्थानीय खबरे कुओ या तालावो पर सुनने को मिल जाती । किसी के लडका हुआ है, किसी की बहू गौने मे क्या लाई है, श्यामा का पति परदेश से परसो आ रहा है—आदि तरह-तरह की वाते सुनने को मिल जाती । सास-वहुओ के झगडो की वाते भी कुछ अतिरंजना लिए चर्चा का विषय रहती ।

सच पूछा जाए तो उस समय कुए सस्था के प्रतीक थे । कुआँ बनवाना बहुत पुण्य का काम समझा जाता था । यहाँ तक देखा गया कि बहुत से लोगो ने तो अपनी उमर-भर की कमाई एक कुआँ या कुई बनवाने मे लगा दी ।

हमारी तरफ कुए की गहराई दो-ढाई सौ फुट तक होती है । जब पानी पहली बार निकलता, तब आस-पास के मुहल्लो मे उसके स्वाद की चर्चा होती और हनुमानजी का जागण (जागरण) होता । मुझे याद है, १९१४-१५ मे हमारा कुआँ बन रहा था । उस समय हमारे दादाजी और पिताजी लगभग नित्य ही निर्माण-कार्य देखने जाते । हम, भाई-बहन भी उनके साथ कभी-कभी चले जाते । कस्बा आज जितना बडा नही था, इसलिए कुएँ की दूरी उस समय हमे बहुत ज्यादा लगती थी, रास्ते मे थक जाते तो साथ का कोई आदमी अपने कन्धे पर बैठा लेता । जब पहली बार पानी निकला तब पास-पडोस के और दूसरे मुहल्लो के लोग भी इकट्ठे हो गए थे । कई दिनो तक पानी के मीठेपन की चर्चा रही ।

बहुत से कुओ के चारो कोनो पर चार छतरियाँ रहती, जिनके बनवाने का उद्देश्य राह चलते पथिको को विश्राम देना था । बैलो का श्रम हलका करने के लिए कुँओ की सारण ढालू बनवाई जाती थी । प्रत्येक कुएँ के पास ही 'बाडी' मे सब्जी की खेती होती जिससे मालियो को अतिरिक्त आमदनी हो जाती । वैसे प्रति घर पानी की लागत के हिसाब से उन्हे वार्षिक 'लाग' मिलती थी । इसके अलावा शादी-विवाह और जन्म-मृत्यु आदि अवसरो पर भी दूसरे 'कारुओ' को घर के कर्मचारियो की तरह पुरस्कार मिलता था । अछूतो को कुएँ की जगत पर चढना मना था । उन्हे नीचे बनी खेलो (नाव, जहाँ पशु पानी पीते थे) या पास बनी गढोइयो (चहवच्चो) से पीने-नहाने का पानी ले जाना पडता था । आजकल बडे कस्बो मे तो जलकल योजना से सवर्ण और अछूत—सभी एक साथ पानी लेते है और जिन गावो मे कल या नलकूप नही है, वहाँ भी कुओ पर हरिजनो के लिए पहले-जैसी रोक नही है ।

बचपन मे मैने कस्बे के पनघट देखे है । वैसे दृश्य दुर्लभ हो गए है । वास्तव मे ये पनघट नही, महिलाओ के क्लब थे । यौवन और सौदर्य बिखेरती हुई या जराजीर्ण काया सँभालती हुई दो-दो, चार-चार स्त्रियो की टोलियाँ बहुत तडके ही अपने चिकने घडे और चमकती हुई कलशियाँ लेकर पानी भरने आ जाती थी । माली भी बडे-बडे बैलो की दो-जोडियाँ लेकर पानी खीचने लग जाते । कहा जाता है कि सगीत और श्रम का बडा मेल है । इससे थकान कम हो जाती है, मन हलका हो जाता है । मालियो के सुरीले भजनो और गीतो की तान सवेरे की शाति और रमणीयता मे एक आह्लादमय मधुरिमा घोल देती है ।

कहते है कि महाकवि केशवदास एक दिन किसी ऐसे ही पनघट बैठे हुए थे कि पनिहारिनो ने उनकी वृद्धावस्था का आदर करते हुए उन्हे 'बाबा जी' कह दिया । यह सम्बोधन उन्हे खटक गया और उसी समय उन्होने यह प्रसिद्ध दोहा कहा —

केशव केसन अस करी, जस अरिहू न कराहिं
चन्द्रवदनि, मृगलोचनी, बाबा कहि-कहि जाँहि !!

हमारे कुएँ से आधा मील दूर पर वशीधरजी चौधरी की धर्मशाला, कुआँ और जोहड था । उस समय वहाँ तक जाना विदेश जाने के समान था । अच्छी वर्षा होकर जब जोहड भर जाता और चारो तरफ हरियाली छा जाती तब कभी-कभी पिकनिक के लिए लोग वहाँ जाते थे । अब तो कस्बा बहुत आगे तक फैल गया है और वहाँ पर 'गाधी-विद्या-मन्दिर' के अध्यापक

और विद्यार्थी रहते है ।

सम्पन्न लोगो के घरो मे बरसाती पानी जमा रखने के लिए पक्के और बद कुड होते थे, जिनमे बारहो महीने सुस्वादु पालर (बरसाती) पानी रहता । पास-पडोस के लोग त्यौहार आदि के अवसरो पर उन महाजनो के यहाँ से घडा-दो-घडा पालर पानी माँग कर ले जाते ।

मुझे ५५ वर्ष बाद भी यह कल की-सी बात लगती है कि सावन-मास लगते ही हम बच्चे छोटी-छोटी झाडू लेकर छत को बुहारने जाते । तावें के बडे-बडे कुण्डे साफ कर लिये जाते । वर्षा होने पर छत का पानी इन कुण्डो के भर जाने पर दूसरे कुण्डे या बरतन रख देते । सुबह उठ कर हम ताल मे यह देखने जाते कि वहाँ जोहड और मोलाणी मे कितने चौपडे (सीढी) पानी आया ? वातावरण उल्लासमय हो जाता लोगो के चेहरे प्रसन्नता से चमक उठते । कुछ साहसी लोग गाँव से दो मील दूर के जोहड देखने जाते । आपस मे वादविवाद छिड जाता कि कितने अगुल पानी हुआ है ?पहली वर्षा होते ही किसान लोग अपने हल-बैल लेकर खेतो पर चले जाते ।

सुरंगी रुत आई म्हारैं देस

अब न तो वे पनघट है और न पनघट की वहार। कुओ की सारनो और खेलो मे मैला भरा रहता है, जिनमे सॉप, बिच्छू और कनखजूरे वास करते है। सॉप व बिच्छू आदि जहरीले जन्तुओ का उस समय भी वाहुल्य था। कई प्रकार के सॉपो की चर्चा रहती थी। एक पीने वाले सॉप का जिक्र भी रहता था, जिसके वारे मे कहा जाता है कि वह सोती हुई महिला के स्तनो से और गाय के थनो से दूंध पी लेता है। हमने कभी इस प्रकार के सॉप तो नही देखे, हॉ, दूसरे कई प्रकार के छोटे बडे सॉप अवश्य देखने मे आते थे।

सॉपो के डर के कारण गोगापीर की पूजा लगभग सभी घरो मे बडी धूमधाम से की जाती थी। इस वारे मे हमारे यहॉ एक लोकोक्ति है, किसी ने पूछा, 'राम बडा, या गोगा ?' जवाब मिला-'बडा तो जो है वही है, पर सॉपों से कौन बैर पाले! बालबच्चो का घर है, न जाने कब कोई पिरडा ठोक जाए (सॉप डस जाए)!' और भी बहुत सी दन्तःकथाएँ सॉपो के बारे मे प्रचलित है। कहा जाता है कि एक व्यक्ति ने सॉप और सॉपिनी को प्रेम-क्रीडा करते हुए देखा। उसने पत्थर मारे, सॉप मर गया और सॉपिनी उस समय बिल मे चली गई। उसके वाद कई दिनो तक उस व्यक्ति को भयानक सपने आते रहे, वह एक प्रकार से विक्षिप्त-सा हो गया। अचानक एक दिन सोते मे उसी सॉपिनी ने आकर उसे डस लिया और थोडी देर बाद ही उसकी मृत्यु हो गई।

वसत-पचमी के बाद कालबेलिए (सॅपेरे) अपनी डोली और पूँगी लेकर हमारे गॉव मे घूमने लगते। बडे और बच्चे सभी इकट्ठे होकर नाना प्रकार के सॉपो के खेल देखते। हम सभी का अच्छा खासा मनोरजन हो जाता। कभी-कदाच यदि कालवेलिया किसी दर्शक के गले मे सॉप डाल देता तो उस व्यक्ति की डर के मारे घिग्घी बॅध जाती। दूसरे सभी दर्शक हॅसते रहते। हम बच्चे आतक से भयभीत हो अपने-अपने घरो मे भाग जाते थे।

कालवेलिए एक प्रकार की जडी बेचते, जिसके लिए उनका दावा था कि इसको सर्पदश की जगह लगा देने से ज़हर उतर जाता है। हर गॉव और कस्बे मे सॉप या विच्छू के काटने पर झाड-फूँक करने वाले सयाने या ओझा भी रहते। पता नही, जहर की कमी से या झाड-फूँक के विश्वास के कारण कुछ लोग सॉप के काटने के बाद भी बच जाते थे, लेकिन अधिकाश व्यक्ति काल के गाल मे चले ही जाते।

सॉपो के खेल मे नेवले और सॉप की लडाई बहुत दिलचस्प होती थी, पर हम बच्चे भयभीत हो जाते। सॉप का फन उठाकर फुंकार मारना और नेवले का झपट कर दॉतो से प्रहार करना बडा ही आतककारी लगता। जब दोनो लहूलुहान हो जाते, तब मदारी खेल

समाप्त कर देता। किसी-किसी के पास बहुत बडा अजगर भी रहता, जिसका वजन सवा मन तक होता था।

सॉपो के अलवा हमारे यहाँ पाटडा-गो, चदन-गो, चितकवरा, गोहीडा आदि भयानक जहरीले जन्तु भी होते थे, जो जगल, खेतो और गॉवो मे रहने वाले को कभी-कभी काट लेते, इनका ज़हर तेज होने के कारण और उपयुक्त औषधि के अभाव मे लोग वेमौत मर जाते लेकिन लोग इन जानवरो से बहुत सावधान रहते थे। यदाकदा इन जानवरो को मार डालने के समाचार रहते मिलते। मारने वाले 'हीरो' की चर्चा कई दिनो तक होती।

पीले, काले, छोटे, बडे कई प्रकार के विच्छू हमारे थली-क्षेत्र मे वहुतायत से थे। इनका ज़हर २४ घटो तक रहता। पहले तीन-चार घण्टे तो रोगी बहुत छटपटाता और रोता-चिल्लाता। इन सबके अलावा कनखजूरा, टॉटिया, मधुमक्खी आदि अन्य छोटे-मोटे जहरीले जन्तु भी थे।

हमारी जाति टॉटिया क्यो हुई, इसके बारे मे वहाँ यह कथा प्रचलित है कि हमारे किसी पूर्वज की हवेली के बाहर टॉटियो का एक बडा छत्ता था, जिसके पास से गुजरने से लोग डरते थे। उस हवेली के नाम 'टॉटियो-वाली' हवेली पड गया और उसमे रहने वाले हमारे पूर्वज टॉटिया कहलाने लगे। अग्रेजी मे, चूँकि टॉटिया और तॉतिया और एक ही प्रकार से लिखा जाता है, इसलिए अब हमे बहुत से व्यक्ति इतिहास प्रसिद्ध तॉतिया टोपे के वशज मान लेते है। एक दिन मेरे पास तन्तु महासभा का भी पत्र आया। उन्होंने मुझे बधाई देते हुए लिखा था कि 'बडे गर्व की बात है कि हमारी जाति का एक व्यक्ति ससद का सदस्य और काग्रेस ससदीय पार्टी का कोषाध्यक्ष चुना गया है।' उन्होने मुझे अपने शहर मे आमन्त्रित भी किया था। मैंने उन्हे जवाब दिया कि 'भाई, अफसोस है, मैं आपकी जातिबिरादरी का नही, बल्कि अग्रवाल वैश्य हूँ।'

अव न तो सॉप-बिच्छू ही इतनी सख्या मे दिखाई पडते है और न झाड-फूँक करने वालो का उतना दबदबा ही है। पक्की सडके हो गई है। झोपडियो की जगह पक्के मकान बनते जा रहे है और धीरे-धीरे जहरीले जतुओ का ह्रास होता जा रहा है।

जैसा कि मैने लिखा है, हमारा कस्बा बहुत बडा नही था। हाँ, हमारे यहाँ धनाढ्य वैश्यो का निवास अवश्य था। ये लोग दिसावरो से धन कमा कर लाते और बड़े-बडे मकान, हवेलियाँ, मन्दिर और धर्मशालाएँ बनवाते थे। उन हवेलियो मे जो पत्थर लगता वह तो सीकर के पास रघुनाथगढ से आता या जोधपुर के खाटू-गॉव से। मकराने का पत्थर यानी सगमरमर बहुत ही कम हवेलियो मे लगता, लेकिन मकराने से भी ज्यादा चमक आती सिमले की घुटाई से। सिंघराज-पत्थर के चूर्ण से यह सिमला तैयार होता था।

बहुत ही सुन्दर और कलात्मक ढग की राजपूत शैली मे लगभग सभी हवेलियो के बाहर और भीतर भित्तिचित्र बने होते थे। रगो का सम्मिश्रण इतना उम्दा होता कि १०० वर्ष पहले के चित्र आज भी चमकदार और सुन्दर लगते है। इन भित्तिचित्रो मे भगवद्भक्ति के अलावा ऐतिहासिक तथ्यो का भी पर्याप्त समावेश होता है।

मुझे बचपन की एक बात अच्छी तरह याद है। हमारे पडोस मे एक हवेली बनी थी। उसकी बाहरी दीवार पर एक बडा चित्र था, जिसमे भीम को राजपूती वेश मे अकित किया गया था। एक बडे वृक्ष को हिला कर वह उस पर चढे कौरवो को को गिरा रहा था। जब मै भी उस चित्र को देखता, डर से ऑखे मीच लेता। आज भी वह चित्र मेरी बाल्यकाल की स्मृति को अपने मे समेटे हुए वही अकित है। मै अब भी जब गॉव जाता हूँ, उसे देखता हूँ भीम की राजपूती दाढी, बडी पाग और लम्बा चौडा घेरदार बागा देखकर हँसी आ जाती है। उस जमाने मे सबसे दर्शनीय मकान था सेठ सपतराम की चौपडे की महफिल, जिसमे सोने का काम किया हुआ था। हमारे यहाँ बाहर से जो बराते आती या अन्य जो भी यात्री आते, वे उस महफिल को अवश्य देखते।

इस सन्दर्भ मे मुझे एक बात याद आती है। हमारी हवेली का ऊपरी हिस्सा बन रहा था; चूना तैयार करने के लिए रात मे छाणो (सरकडे) की आग मे एक विशेष प्रकार के पत्थर रख दिए जाते। दूसरे दिन सुबह हम बच्चे उन सफेद फूले हुए पत्थरो को चिमटो से चुन लेते और पानी के मटको में डालते; उस समय 'बुदबुद' की आवाज आती। हमे इस आवाज से खुशी होती, लेकिन इससे भी अधिक खुशी और सन्तोष होता यह महसूस करके कि हम बच्चे भी निर्माण के काम मे यथासामर्थ्य सहयोग दे रहे हैं। मुझे ५५ वर्ष की वह बात अच्छी तरह याद है कि हमारे चेजारे (राजमिस्तरी) रमजान, कादर, अलाबख्श और रहीम—चारो भाई परिवार के सदस्य की तरह थे। बालियो नाम के एक बहुत परिश्रमी मजदूर की भी याद है, जिसे हम चुपके से अपनी मिठाई का कुछ हिस्सा दे देते।

उस समय चूने की घुटाई इतनी महीन और चमकदार होती कि बहुत समय तक उसमे चेहरा देखा जा सकता था। घुटाई करने वाली महिलाएँ बहुत ही मधुर और भावपूर्ण गीत गाती रहती थी। खेद है, मुझे वे लोकगीत इस समय याद नही है।

मकानो के वर्णन मे एक बात मैं भूल गया। राजस्थान मे मई और जून के महीने मे इतनी भीषण गरमी पडती है कि तापमान ११७-११८ अश तक पहुँच जाता है। इतनी दोपहर मे सॉय-सॉय करके गरम हवा, लू और ऑधी चलती रहती है। ऐसे तपन मे कुछेक धनवान लोगो के कमरे मे झालरदार पखे लगे रहते, जिन्हें रस्सी मे खीचा जाता। कुछ लोग खस और कॉटो की टट्टियॉ खिडकियो पर लगाकर उन पर पानी छिडकते रहते। इसके अलावा कई मकानो के नीचे तहखाने बने रहते, जिनमे बालू और रेत बिछा कर पानी डाल दिया जाता और उस पर पलँग डालकर दिन मे लोग आराम करते या ताश-चौपड खेलते। यह कहने मे अतिशयोक्ति नही होगी कि उस कडी गरमी मे भी वहॉ ठडक का अनुभव होने लगता। आज एयर-कन्डीशनर और एयर-कूलर होने के कारण उन सबका महत्त्व समाप्त हो गया है, पर पानी से भीगी हुई उस बालू व रेत की मधुर सुगंध का तो अपना अलग ही महत्त्व था।

बार-त्यौहार प्रत्येक समाज की लोक-सस्कृति के सजीव प्रतीक है। इन्ही अवसरो पर लोक-मानस स्वच्छन्द होकर झूम उठता है। आज तो अर्थाभाव और अन्य अनेक समस्याओ के कारण पर्व-त्यौहारो का न तो पहले-जैसा आनन्द ही रहा और न उत्साह। अपने बचपन मे इन त्यौहारो का जो सुखद और आनन्ददायक रूप देखा, अनुभव किया, वह अब इतिहास ही रह गया है। तब बच्चे, बड़े-बूढे आदि सभी उन्मुक्त भाव से जात-पॉत का भेद भुलाकर इन पर्वो को मनाते तो एक स्वर्गिक आनन्द का अनुभव होता। एक बार फिर उन मधुर स्मृतियो को इन पृष्ठो पर उतार कर उस आनन्द को प्राप्त करना चाहता हूँ।

राजस्थान मे मुख्यतया हिन्दू, जैन और मुसलमान निवास करते है। पाकिस्तान बन जाने के बाद उत्तरी हिस्सो (जैसे गगानगर आदि) मे थोडे से सिक्ख-परिवार भी आकर बस गए है। इन सब लोगो के अलग-अलग पर्व-त्यौहार होते है। लेकिन उस समय सभी एक दूसरे के त्यौहारो मे बडे प्रेम से शामिल होते व आमोद-प्रमोद मनाते। मुसलमानो मे कायमखानी, मलकानी, मेव, मेणात, आदि ऐसी भी उपजातियॉ थी, जिनमे हिन्दू-रीति-रिवाज प्रचलित है। विवाह के अवसर पर ये लोग निकाह पढने के साथ फेरे (भॉवरे) भी लेते है।

इन तीनो धर्मावलम्बियो के साल-भर मे इतने त्यौहार और पर्व मनाए जाते है कि लगभग प्रत्येक महीने किसी-न-किसी प्रकार का उत्सव होता रहता है। उस समय तक न मुस्लिम-लीग थी, न शुद्धि-आन्दोलन। इसलिए मुसलमानो के पर्वो मे हिन्दू और जैन शामिल होते थे और हिन्दुओ के त्यौहारो मे मुसलमान, और यह सब बिना किसी औपचारिकता या सकोच के पारस्परिक प्रेमभाव से होता था।

उस समय तक हमारे यहाँ आम जनता विक्रम संवत् और देशी महीने ही याद रखती थी। आज कल तो खुद मुझे याद नही रहता कि कौन-सा संवत् चल रहा है, कौन-सा महीना या पक्ष या तिथि है ?

वर्ष का सबसे पहला त्योहार गणगौर रहता। उस समय तक होली की हुल्लडबाजी और सर्दी की ठिठुरन समाप्त हो जाती तथा वसंत अपने यौवन पर रहता। नीम की मींझर की सुगंध-भरी हवा के झोके मन को मुग्ध कर देते।

गणगौर या गौरी-पूजा मुख्य रूप से लडकियो और महिलाओ का त्यौहार है। होलिका-दहन के दूसरे दिन यानी चैत्र बदी प्रतिपदा से गणगौर पर्व की शुरुआत हो जाती। होली की राख के छोटे-छोटे पिण्ड बना कर उन्हे गणगौर, ईसर, कानीराम और रोवाँ की प्रतिमाएँ मानकर कुमारियाँ और नवविवाहिताएँ नित्य बडे सवेरे पूजती। पूजा के लिए दूध और फूल लाने छोटी-छोटी लडकियाँ गीत गाती हुई आनन्दमग्न होकर आस-पास की फुलवारियो मे जाती। हम बच्चे भी कभी-कभी इनके साथ चले जाते। फुलवारियो मे पहुँच कर लडकियाँ यह गीत गाती—

म्हारै माली री बाडी फल रही, म्हारी मालण जायो छः पूत,
जुग जीओ ऐ बधावणा।

और घर आकर दूब और फलो से गौर पूजती हुई कुमारी कन्याएँ सुन्दर और वीर वर की कामना करती तथा विवाहित महिलाएँ अपने सुहाग का वर माँगतीं। सुखी परिवार की कामना का यह गीत कितना मधुर और भावपूर्ण है—

गोर ए गणगौर माता खोल किंवाड़ी,
बाहर ऊभी रोवाँ, पूजणवाली। पूजो ए पूजाओ सैंयो के फल माँगो,
माँगाँ ए म्हें अन, धन, लाछर, लिछमी। जलवल जामी, बाबुल माँगा;
राता देई-सी मायेड। कानकँवर-सो बीरो माँगाँ,
राई-सी भोजाई। ऊँट चढ्यो बहनोई माँगाँ;
चुडलै वाली बनहड। आदि।

विवाहिता कन्या के लिए पहले साल अपने पीहर मे गौर पूजना अनिवार्य माना जाता। इसलिए हर नववधू पहली साल अपने पीहर मे ही गणगौर पूजती।

चैत बदी अष्टमी को कुम्हारिनो के घर जाकर मिट्टी की गौरी की प्रतिमाएँ लाई जाती और फिर इन्ही प्रतिमाओ का पूजन होता। रात को एक दीप थाली मे रखा जाता और उस पर एक छलनी ढक दी जाती। लडकियाँ इसे लेकर बडे-बूढो के पास गीत गाती हुई जाती और पैसे माँगतीं। इस गीत को 'घुडले का गीत' कहते है। हम बच्चे, लडकियो की टोली के साथ-साथ रहते। हमे यह एक मनोरंजक खेल लगता। गीत की पंक्तियाँ हैं—

घुडलो, घूमैलो, जी घूमैलो, घुडलै रै, बांध्यो सूत। घुड़लो.. ..
सुहागण बाहर आव। घुड़लो ..... प्रताप जी रै, जायो पूत। घुड़लो......

इस 'घुडले' से जो पैसा इकट्ठा होता, उसका मिष्ठान्न या मेवा मँगाया जाता। उन दिनो मिठाइयाँ और मेवे बहुत सस्ते थे। शुद्ध घी की मिठाई एक रुपये मे ढाई-तीन सेर आ जाती और एक रुपए मे बादाम व छुहारे भी बहुत-से आ जाते। यह मेवा-मिठाई आपस मे बाँट ली जाती। हम भाइयो को भी, बहने बड़े चाव से खिलातीं।

चैत सुदी तीज या चौथ को गवरजा का विसर्जन होता। इस दिन ईसर, गौरी और रोवाँ (रोहिणी) की बहुत सुन्दर और सजी हुई बडी मूर्तियाँ जुलूस के साथ गाँव के बाजारो और मुख्य मार्गो से निकाली जाती। सच्चे हीरे-मोती के गहनो और गोटे-किनारी के कीमती वस्त्रो से इन मूर्तियो को सजाया जाता। हमारे यहाँ गुलाब चन्द जी छाजेड के यहाँ से गवरजा की सवारी निकलती। कहते है कि सरदार-शहर मे साहूकारो का यह सबसे पुराना घराना था।

गौर की सवारी मे राज्य की तरफ से तहसीलदार, थानेदार और अन्य अहलकार शामिल होते। लोग उस समय इनका इतना मान-सम्मान करते, जितना शायद आज किसी गवर्नर या मत्री का भी नही होता।

सैकडो स्त्री-पुरुष, बडे-बूढे जुलूस के साथ चलते—हिन्दू, जैन, मुसलमान आदि सभी जाति के और धर्म के। गाँव के छत-छज्जो पर मेला-सा लग जाता। जुलूस के अन्त मे सुहागिन स्त्रियाँ गोटे-किनारी की केसरिया, कसूमल ओढनियाँ ओढे, मोडदार घूघट काढे मधुर गीत गाती हुई चलती।

इसी शाम को विभिन्न मोहल्लो की लडकियाँ अपनी-अपनी गौरो को लेकर पास के कुओ पर विदा के करुण गीत गाती हुई उनके विसर्जन के लिए जाती। मुझे अच्छी तरह याद है, जब उन गौर-प्रतिमाओ को कुएँ मे गिराया जाता, तब हम सब सुबक-सुबक कर रोने लगते, जैसे घर का प्रियजन बिछुड गया हो। हमारी बहने रो-रोकर अपनी आँखे लाल कर लेती।

चैत्र सुदी अष्टमी को शीतला-माता का पूजन होता। हमारे यहाँ मान्यता थी कि शीतला देवी की पूजा से चेचक का प्रकोप नही होता। ताल के मैदान मे शीतला का बडा मण्ड है। हम लोग वहाँ पहले दिन की बनाई हुई ठण्डी बासी रसोई लेकर जाते। मण्ड के चारो ओर कान लटकाए, नीचा मुँह किए बहुत से गर्दभराज खडे रहते। महिलाए इन्हे पूज कर बाजरे का चूरमा खिलाती, क्योकि गधा शीतला जी का वाहन है। इस सन्दर्भ मे एक किवदन्ती है कि किसी ने शीतला माता से घोडा माँगा। तभी दूसरे ने कहा 'बड़े मूर्ख हो, अगर इनके पास घोडा होता तो वह स्वय गधे पर क्यो चढती ?' शीतला-पूजा या 'बासीडे' के दिन बासी रसोई ही खाई जाती है। गरम खाने से देवी के रुष्ट होने का डर रहता। पहले दिन की बनाई हुई ठण्डी रसोई हमे अच्छी लगती। राबडी रोटी के साथ काँजी बडा और मीठी लपसी बडे चाव से खाते। दूसरे दिन रामनवमी का पर्व होता। इसी दिन भगवान राम ने जन्म लिया था। हम बच्चो के लिए इस पर्व का कोई आकर्षण नही था। हाँ, बडे-बूढे इस दिन अपने बही-खाते बदलते।

वैसाखी सुदी तीज का त्योहार 'आखातीज' (अक्षय तृतीया) बच्चो के लिए विशेष आमोद-प्रमोद लिए आता। एक महीना पहले से ही बशीधर जी पसारी के यहाँ से डोरे के 'भूणिए' (रीले) लाकर उन्हे सूतने का प्रबन्ध करने लगते। कई प्रकार की डोरे आती थी। 'कृष्ण छाप', 'हाथी छाप', और 'भूत छाप'। सबसे मोटी 'कृष्ण छाप' और सबसे महीन होती 'भूत छाप'। उस समय एक भूणिए का मूल्य छह पैसे या दो आने था और इस पर ३०० सौ गज डोर रहती थी। डोरे को सरेस, मेथी और महीन काँच के साथ मैदे की लेई मे मिला कर सूता जाता था। आकर्षक बनाने के लिए थोडा-सा रग भी मिला देते। हम बच्चो के लिए डोरे की सुताई बहुत आकर्षक आयोजन था। एक लडका चरखी लिए खडा रहता और अन्य दो लडके हाथो पर लेई लिए डोरे पर उसे फिराते हुए चलते रहते। गाँव मे चर्चा रहती कि आज अमुक के यहाँ बहुत अच्छी डोर सूती गई है।

पतगे कई प्रकार की आती थी। 'अधेलिया' से लेकर 'आनल' तक, यानी आधे पैसे से एक आने तक की। जो लडके आनल उड़ाते उनकी बडी धाक रहती। जिन बच्चो के पास अपनी पतंग नही रहती, उनमे से कोई तो उडाने वाले की चरखी पकडे रहता और बाकी चारो तरफ खडे रहकर बढावा देते रहते।

पतगों के पेच लडाना आपसी प्रतिद्वन्द्विता का एक आकर्षक खेल था। शाम के समय आसमान रगबिरगी पतगो से भर जाता। 'वह काटा!' 'वह मारा!' की आवाजो से वायुमण्डल गूजता रहता। कटी पतग के पीछे बच्चो के झुण्ड-के-झुण्ड दौडते। बच्चे ही क्यो, बडो को भी इस तमाशे मे शरीक होते देखा है। एक बार की बात है एक पतग कट कर जा

रही थी कि एक सेठ जी उसे पकडने के लिए लपके। लेकिन इतने मे ही बच्चो ने दीवार पर चढ कर पतग को पकड लिया। बेचारे सेठ जी मुँह ताकते रह गए।

पतग का छोटा सा-रूप था-थोडी सी डोर के सिरे पर पत्थर या लकड़ी का टुकडा बाँध कर कीलिया (लगड) लडाना। गरीब और छोटे बच्चे इसी मे पतंग का सारा आनन्द ले लेते। जो लडका 'कीलिया' लडाने मे तेज या उस्ताद होता, वह मुहल्ले भर मे चुनौती देते हुए ऊँची आवाज मे गाता फिरता 'कीलिया लडाने वाला कोई नही पाया, सारे गाँव मे फिर-फिर आया।' और इस चुनौती का सामना करने वाले भी मिल जाते। कभी-कभी लडन्त के समय हाथ से धागा तोड देते तो आपस मे झगडा हो जाता। थोडा-सा थूक कर 'थू भायला'-दोस्ती तोडने की-धमकी कर लेते, पर थोडी देर बाद ही फिर दोस्त बन जाते।

.आखांतीज के दिन बाजरे के खीचडे के साथ अमलवाणी (इमली का मीठा पानी) लिया जाता। शायद यह गरमी और लू से बचाने के लिए लिया जाता था। अगले साल के 'सुगन' या मुहूर्त मे भी इसी दिन किए जाते। आखातीज का मुहूर्त अणबूझ मुहूर्त मे माना जाता। कहावत थी कि 'अणबूझूया मोहरत भला, कै तेरस के तीज।' बहुत मे विवाह इसी दिन सम्पन्न होते।

विवाह करने वाले पण्डितो की इस दिन अच्छी माँग रहती। इसलिए बिना पढे-लिखे पडितो को भी मौका मिल जाता। मेरी जान-पहचान का देवू महराज नाम का एक ब्राह्मण था। वह आखातीज के दिन गाडिया लुहारो के यहाँ विवाह कराने गया। भूल मे विवाह पद्धति की जगह गरूड-पुराण ले गया। जब उसने गरूडजी का नाम लिया तो लोगो ने पूछा, "महाराज, इस अवसर पर गरूडजी कहाँ से आ गये?" उसने झट जवाब दिया, "जहाँ विवाह मे विष्णु और लक्ष्मी का आना जरूरी है, वहाँ उनके वाहन गरूड भी तो आएँगे ही।" इस बात की कई दिनो तक चर्चा रही।

सावन सुदी तीज का त्योहार मुख्य रूप मे लडकियो का त्योहार था। वर्षा हो जाती। ताल-तलैए भर जाते। खेतो मे दूब और हरी घास की चादर बिछ जाती। लोग नई फसल की खुशी मे प्रसन्न हो जाते। किसान और किसान की पत्नी अपने हल-बैल लेकर खेतो पर चले जाते। पीछे रह जाती नववधुएँ और बालिकाएँ। ऊँचे वृक्षो पर बडे-बडे झूले डाल दिए जाते और उन पर झूलती रगाबिरगी ओढनियाँ पहने किशोरी बालिकाएँ उन्मुक्त हास्य और मधुर गीतो की मादक तान वायुमण्डल मे बिखेरती।

भला ऐसी स्वच्छन्दता ससुराल मे कहाँ! इसलिए इन दिनो लडकियाँ अपने मायके आ जाती और झूला झूलती हुई गाती—

मोटी मोटी छींटा औसरी ए बादली, ओसरी ए बादली !
कोई जोडा (तालाब) ठेलमठेल, सुरगी रूत आई म्हारे देश !
भले री रुत आई म्हारे देश ! ओ कुण बीजे बाजरी ए बादली !
ओ कुण बीजे मोठ, मेवा, मिसरी, सुरगी रूत आई .... !

जिन लडकियो को ससुराल मे रहना पडता, वे पीहर की याद मे इस प्रकार गीत गाती-

आयो आयो, ए माँ, सावणिए रो ए मास,
मन्ने भेजी माँ सासरे जे।
और सहेल्याँ ए माँ खेलण मिलण ने ए जाए,
मन्ने दीन्यो माँ पीसणो जे।

ससुराल के कष्टो का नल्लेख करती हुई, वे कहती—

ओरां न तो माँ मिरियो, मिरियो ए घी,
मन्ने मिरियो माँ तेल को जे ।
आयो-आयो, माँ पीवरिए रो ए काग; वो झमके लेग्यो माँ मॉडियो जे ।
भागी-दौड़ी मा कागलिए रे लार; कांटो लाग्यो माँ कैर रो जे
लेज्या-लेज्या म्हारे पीवरिए रा ए काग !
जांय दिखा जे म्हारी माँय ने जे ।

(ससुराल मे और सदस्यों को तो एक एक चम्मच घी का मिलता है, जब कि मुझे सिर्फ एक चम्मच तेल ही दिया जाता है। ऐसे समय पीहर का जो कौवा आया तो मेरे हाथ का माड (रोटी) ही ले उडा। लाचार मैं उस कौवे के पीछे दौडी कि उसके साथ मैं भी पीहर तक चली जाऊँ। ऐसे मे दौड़ते वक्त पैरो मे कैर का कॉटा चुभ गया। इसलिए, ऐ पीहर के कौवे, पीहर मे ले जाकर इस सूखी रोटी को मेरी माँ को दिखा।)

सावन की ऋतु आकाश मे मेघो की उमड-घमड, अँधेरी रात मे बिजली का बार-बार चमकना और भीषण आवाज के साथ कडकना किसे विचलित नही कर देगा ? ऐसे मे गोरी की यह पुकार स्वाभाविक ही है—

सावण सुरंगो सायबाजी कोई; बरसण लाग्यो मेह, हाँ जी ढोला,
इब घर आज्या गोरी रा बालमा जी !
छप्पर पुराणा पड़ गया जी, कोई तिड़कण लाग्या बाँस,
इब घर आज्या ....
बादल में चिमके ढोला बीजली: जी,
कोई महलाँ में डरपे घर री नार, इब घर आज्या फूल गुलाब रा जी ।
कुओ तो हो तो पिया डाक ल्यूं जी, समन्दर डाक्यो न जाय...
नेड़ीनेड़ी करो पिया चाकरी जी, सांझ पड़्याँ घर आय ।
इब घर आज्या बरसा रुत भली जी, थाने तो प्यारी लागै चाकरी जी !
म्हाने तो प्यारा लागो आप । असी ये टकाँ री चाकरी जी !
कोई लाख मोहर री नार, इब घर आवो मिरगानैणी रा
बालमा जी ।

(हे प्रीतम, सावन का सुहावना महीना आगया है, वर्षा शुरू हो गई है, पानी इतना बरसा है कि छप्पर के पुराने बॉस टूट कर पानी भीतर टपकने लगा है। ऐसे मे आकाश मे बिजुली चमकने से मुझ अकेली को भय लग रहा है, आप घर पधारे। कुआँ हो तो लाघ लूँ, मगर आप तो समुद्र-पार बैठे है, समुद्र को कैसे लाघूँ ! इसलिए विनती है कि आप इतनी दूर नही, कही आसपास ही नौकरी कर ले, ताकि दिन भर चाकरी कर के शाम को मेरे पास घर आ जाएँ। आपको तो ८० रुपए की यह नौकरी अच्छी लगती है, जब कि मुझे आपके सिवा कुछ नही सुझता। पता नही आप लाख मोहरो की नारी को छोड कर ८० रुपयो की नौकरी के मोह मे क्यो पडे है ?)

इसी प्रकार लहरिए, पपइए और कुरजाँ के गीत भी विरहजनित वेदना के होते। कुरजाँ एक पक्षी है, जिसे सबोधित कर कहा जाता

तू छै कुरजाँ म्हारी भायली, तू छै धरम की ए भाण !
एक संदेशो, ए बाई, म्हारी ले उड़ो ए !
कु जॉं, ए म्हारा पीव मिला द्यो ए,
वी लसकरिए ने जाए कही जे-क्यूं परणी छी मोय !
परण पिराछत क्यू लियो जी ?
रह्या क्यूं ना अखन कुंवार !
कुंवारी नै तौ वर घणा छा जी !

(ऐ कुरजॉं, तू मेरी सहेली और धर्म बहन है, मेरा यह सदेश मेरे दूर वसे प्रियतम को दे आ। मेरे पीव को जाकर कह दे कि मुझसे विवाह ही क्यो किया ? क्यो परिणय करके दु ख देने के लिए मुझे यहॉं छोड गए ? ऐसा ही करना था तो उमर भर कुआरे ही रहते, कुमारी कन्या को तो दूसरे वर बहुत मिल जाते।)

सावन की इस तीज के अवसर पर हमारे यहॉं वडा मेला लगता। ताल मे डोलरहीडा, चरखचूडी लग जाती, हलवाइयो और बिसातियो की दूकाने सज जाती। हम वच्चो को उस दिन दो पैसे से लेकर दो आने तक मिलते। उसमे से एक पैसे की मिठाई लेते, एक पैसे का डोलरहीडा हीडते, एक पैसे मे चरखचूडी मे चक्कर लगाते और वाकी पैसे वचते तो कागज के फूल, गुब्वारे आदि ले आते। डोलरहीडे का पलडा जव जोर से ऊपर जाता तो एक सिहरन-सी होती। सन् १६५० मे, जव मैं आल्प्स की १४,००० फीट ऊँची यगफ्राउ चोटी पर चढा तव भी उतना भय नही लगा था। जहॉं कुछ बच्चे एक वार डोलरहीडे पर चढ जाने पर उतरने का नाम नही लेते और उन्हे एक प्रकार से जबरदस्ती उतारा जाता, वही कुछ डरपोक वच्चे चढने से ही घवडाते और चिल्लाने लग जाते। डोलरहीडे से भी ज्यादा आकर्षक थी चरखचूडी। हाथी, घोडे, ऊँट, और कुर्सी की शक्ल की सीटे वनी रहती। हम इन पर वैठ जाते। इन्हे गोल चक्कर मे जोर से घुमाने पर चक्कर-सा आने लगता।

१२ दिन बाद रक्षावधन या राखी का त्योहार आता। जिनके जनेऊ होते, वे इस दिन तालाव, जोहड या कुओ पर स्नान करते। इसी दिन बहन अपने भाइयो के हाथो पर सुदर और कलात्मक गोटे-किनारी की राखियॉं वॉंधती और उनका मुँह मीठा करार्ती। वदले मे भाई उन्हे यथासभव उपहार देते। वैसे तो राखी सपूर्ण भारतवर्ष का त्योहार है। पर राजस्थान मे राखी का बहुत बडा महत्व है। इस पर्व के साथ इतिहास की बड़ी घटनाएँ सम्वन्धित है। अनजान महिला भी विपत्ति के समय अगर किसी को राखी भेज देती तो उस व्यक्ति का कर्तव्य हो जाता हर कीमंत पर अपनी इस धर्मवहन की रक्षा करना। इतिहास साक्षी है कि इन धर्मवहनो की रक्षा के लिए कितने ही राजस्थानी वीरो ने अपने प्राणो की वाजी लगा दी थी।

हमारे अचल की जलवायु बहुत ही शुष्क है, इसलिए जिस साल अच्छी वरसात हो जाती, लोगो के आनद का पार नही रहता। झुण्ड के झुण्ड किसी वडे तालाव या जोहड के किनारे गोठघूघरी का आनद लेते। मौसम सुहावना रहता। भंग और ठडाई छनती। याद है, उन दिनो वादाम की गुली आती थी सवा रुपये की एक सेर। इसलिए लगभग हर गोठ मे वादाम की ठडाई और वादामवर्फी अवश्य होती। कुछ गोठो मे दालवाटी और चूरमे की रसोई वनती। सावन मास मे ताजा घी इतना केमरिया सोंधी गंध लिए रहता कि बाटी मे घी खाने की होड-सी लग जाती। कोई-कोई व्यक्ति तो आधा सेर घी इन वाटियो के साथ खा जाते।

भादवा सुदी चौथ को गणेश चतुर्थी पर्व मनाया जाता। हमारे यहॉं यह पर्व पाठशाला मे

पढने वाले बच्चो और उनके गुरुओ तक ही सीमित था । तीन-चार दिन पहले ही बच्चे नए-नए कपडे और सिर पर मखमल की कामदार टोपी पहने और हाथो मे कागज की ध्वजाएँ लिए निकल पडते । हम सब अपनी-अपनी पाठशालाओ मे इकट्ठे होते । वहाँ जुलूस वना कर अनेक प्रकार के गीत गाते हुए गाँव के वाजार और मुख्य मार्गो पर घूमते । हर जुलूस के आगे-आगे राम, सीता, लक्ष्मण तथा हनुमानजी चलते । राम, सीता, लक्ष्मण और भरत को मखमल के कोट पहनाकर और चाँदी के मुकुट लगाकर बहुत सुन्दर ढग से सजाया जाता । चाँदी के इक्के मे या रथ मे बैठ कर धनुष बाण हाथ मे लिए वे सचमुच बहुत भव्य लगते । रास्तो मे जगह-जगह उनकी आरती उतारी जाती ।

हनुमान वेशधारी का मुखौटा वहुत डरावना होता—लाल लँगोट, लाल कुर्त्ती, पीछे वडी-सी पूँछ, मुँह पर वडी-बडी आँखो वाला मुखौटा और हाथ मे बडा-सा मोटा (गदा) देख कर वहुत ही डर लगता । यदि बच्चे हल्ला करते या जुलूस का अनुशासन बिगाडते तो हनुमानजी पूछ फटकारते और गदा हिलाते हुए उन पर झपट पडते । मै तो एक दिन डर के मारे जोर-जोर से रोने ही लगा था । इन जुलूसो को 'चौक चानणी' कहा जाता ।

हम जो गीत इन जौकचानणियो मे गाते, उनमे से एक है—

उठ, उठ, ए लादू की माँ, तेरे बेटो पढ़बा जाय ।
पढ़ की पढ़ाई देय, एक रुपयो रोक दे ।
गुरुजी पाग वंधा, गुरुआणी ने चूनड़ा उढ़ा ।

उस समय एक रुपये की माँग आज की एक गिन्नी के समान थी । दूसरा गीत था—

चौक चानड़ी भादूड़ो, देदे माई लाड ड़ो ।
लाडूड़े में घी, रामू ऊपर जी घणो ।

इन तीन-चार दिनो मे पाठशाला मे पढाई नही होती । पाठशाला की सजावट और जुलूस की तैयारियो मे हम लोग व्यस्त रहते । शाम को मिठाई भी मिलती । पाठशाला से जी चुराने वाले बच्चे भी इन दिनो खुशी-खुशी वहाँ जाते और शाला मे ही क्यो, घर मे भी हमारी खातिरदारी होती । हाथो मे मेहदी रचाई जाती, मिठाई खिलाई जाती और नए-नए कपडे पहनाए जाते ।

इस प्रकार वास्तव मे गणेश चतुर्थी का पर्व हम बच्चो के लिए आह्लाद, आमोद-प्रमोद और अच्छे मनोरजन का पर्व होता । उस समय सिनेमा, थियेटर आदि की पूर्ति इन्ही पर्वो के माध्यम से होती थी ।

भादवे का एक और त्योहार था—गोगानवमी । हमारे वहाँ साँपो का बाहुल्य होने के कारण गोगा पीर की पूजा का वडा महत्व था । गोगाजी साँपों के देवता थे ।

भादो बदी अष्टमी को श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव मनाया जाता । इस दिन महिलाएँ और पुरुष व्रत रखते । रात को १२ बजे शख-घंडियालो की ध्वनि के बीच श्रीकृष्ण का जन्म होता । नाना प्रकार के भजन गाए जाते । पजीरी का प्रसाद और मिठाइयाँ खा कर व्रत तोडा जाता । हम बच्चे व्रत तो नही रखते । हाँ, मिठाइयाँ खाने और फलाहार मे अवश्य शरीक होते । मन्दिरो मे सुरम्य झाँकियाँ लगती, जिन्हे देखने लगभग सभी लोग जाते । मुसलमान लोग मन्दिरो मे तो नही जाते, बाहर खडे रह कर मन्दिर की सजावट अवश्य देखते रहते । इन्हे इसमे किसी प्रकार से बुरा नही लगता ।

आश्विन मास के पहले पक्ष मे श्राद्ध शुरू हो जाते । परिवार के वडो की मृत्यु की तिथि पर हवन के बाद कौओ, गायो और ब्राह्मणो को भोजन कराया जाता । श्राद्ध मे पचधारी के लड्डूओ का वडा प्रचलन था । बादाम और इलायची मिले हुए लड्डू मुझे आज भी अच्छी तरह याद है । बहुत प्रकार की मिठाइयाँ खाता रहा हूँ, पर वह स्वाद तो अलग ही था । इन

दिनो ब्राह्मणो मे खाने की होड लग जाती । बडे घरो मे पेट भर भोजन के बाद लड्डू खाने वालो को प्रति लड्डू एक आने से आठ आने तक दिया जाता । भूरा महाराज नामक एक युवक था । तन्दुरुस्ती और खुराक अच्छी थी । श्राद्ध मे वह बीसियो रुपये कमा लेता, जो आज के सैकडो के बराबर है । श्राद्ध मे वह बीसियो रुपये कमा लेता, जो आज के सैकडो के बराबर है । श्राद्ध के १५ दिनो मे ब्राह्मणो के शरीर पर चिकनाई आ जाती ।

रामलीला आश्विन सुदी एक से शुरू होती है और आश्विन सुदी १५ को रावण का वध तथा कार्तिक बदी एक को राम के राज्यतिलक के साथ समाप्त हो जाती । हमारे यहाँ कृष्णलीला का प्रचलन कम था, पर रामलीला प्राय हर कस्बे मे होती । हजारो स्त्री-पुरुष और बच्चे इन लीलाओ को देखते । इसके लिए कोई टिकट या शुल्क नही था । भगवान की आरती की थाली फेरी जाती । इसमे लोग अपनी सामर्थ्य के अनुसार पैसा, दो पैसा या एक आना डाल देते । अन्तिम दिन रामलीला वालो को कस्बे के प्रत्येक हिन्दू घर मे चार आने से लेकर एक रुपये तक का चढावा मिलता । इसके अलावा जब तक वे लोग गाँव मे रहते, बारी-बारी सेठ साहूकारो के यहाँ भोजन का निमन्त्रण रहता । राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान आदि अपने-अपने वेशो मे सजकर रथो या ऊँट के इक्के मे आते । उनकी विधिपूर्वक आरती उतारी जाती और फिर चरण धोकर भोजन कराया जाता । हम बच्चे राम और सीता को वास्तविक देवता ही मानते थे । एक दिन 'रामजी' मुझसे बोले भी थे । उस बात को मैंने कई दिनो तक बडे गर्व से अपने साथियो को बताया था । मेरे लिए वह इतनी गौरव की बात थी थी कि जितनी आज प्रधान मन्त्री या राष्ट्रपति से बात करके भी शायद नही होती ।

दशहरे के दिन रावण वध होता । रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाथ भयकर रूप धारण कर मञ्च पर आते । जब वे बन्दर बने हुए छोटे-छोटे बच्चो को उछालते और उन्हे चपत या मुक्के मारते तो हमे बडा डर लगता ।

लक्ष्मण के मूर्छित होने पर राम विलाप करते तो पास बैठी सारी जनता सुबक-सुबक कर रोने लगती । जिस दिन रावण और कुम्भकर्ण का वध होता, हर्ष की लहर दौड जाती । लोग 'भगवान की जय', 'लक्ष्मण की जय' और "पवनसुत हनुमान की जय' के घोष से वायुमण्डल को गुँजा देते ।

सच पूछा जाय तो आज के सिनेमा, थियेटर और सस्ते कला-प्रदर्शनो से वे कही ज्यादा मनोरजक थे, वे धार्मिक और सास्कृतिक आयोजन, जिनमे हिन्दू, जैन, मुसलमान सभी उत्साह से शमिल होते ।

कार्तिक लगते ही खेतो मे बाजरे के सिट्टे, मतीरे और ककडी आदि चीजें पक जाती । इन दिनो घरो मे अक्सर शाम का खाना नही बनता, क्योकि लोग दिन मे मौसम का यह मेवा छक कर खा लेते । कुछ लोग आस-पास के गाँवो या खेतो मे चले जाते । जाट लोग बडे प्रेम से मोरण (बाजरे के भुने दाने), मतीरे और ककडी आदि खिलाते । कीमत का तो उन दिनो प्रश्न ही नही था, बल्कि घर लौटते तो बच्चो के लिए कुछ साथ मे बाँध देते ।

सरदार शहर के मतीरे न केवल हमारे थली प्रदेश मे, बल्कि सम्पूर्ण राजस्थान मे सबसे अधिक मीठे होते थे और आज भी होते है । जमीन पर लम्बी पसरी हुई बेल पर जब मतीरा पकने आ जाता तो कुछ लोग बालू मे गढा खोदकर मतीरे को गाड देते । पन्द्रह-बीस दिन बाद यही मतीरा न केवल आकार मे बडा हो जाता, बल्कि उसकी मिठास मे भी अधिकता आ जाती । ये मतीरे थली प्रदेश और उससे बाहर जयपुर, जोधपुर आदि रियासतो के बडे-बडे कस्बो मे तो जाते ही, इसके अलावा लोग-बाग इन्हे अपने स्नेही जनो, व सम्बन्धियो के पास कलकत्ता, बम्बई, असम आदि दूर-दूर के मुकामो मे भी भेजते ।

राजस्थान का सबसे बडा पर्व दीवाली है । कार्तिक के कृष्ण पक्ष मे दीवाली की तैयारियाँ शुरू हो जाती । सभी अपने-अपने मकानो की सफाई मे लग जाते, वर्ष का पुराना कूडा-करकट रद्दी फेंक कर नया रग लगाया जाता और सजाया जाता ।

हम बच्चे भी छोटे-छोटे झाडूओ से घर ऑगन बुहारते और चीजो को करीने से लगाने मे दादाजी व अम्माजी की मदद करते ।

कहते है कि इसी दिन श्रीराम लका-विजय करके अयोध्या लौटे थे । उनके स्वागत मे अयोध्यावासियो ने जो उत्सव मनाया था। उसी को पॉच हजार वर्षो से उत्तर भारत के हिन्दू मनाते आ रहे है । कालान्तर मे इसे जैन सिख आदि सभी मनाने लगे । लक्ष्मी-पूजन इसी दिन होता है, इसलिए व्यापारी वर्ग का यह सबसे बडा पर्व है ।

इस दिन हम वर्षो के रखे हुए दीपक निकाल कर उन्हे भली प्रकार पोछते, मॉ और दादाजी नई बत्तियॉ बँटकर उनमे रखते जाते । घी और तेल डाल कर शाम होते ही इन्हे जला लिया जाता और हवेली के बाहर, पिछवाडे, ऊपर छत पर, सभी तरफ सजा दिया जाता, गॉव मे सब तरफ रोशनी ही रोशनी नजर आती ।

लक्ष्मी-पूजन के बाद हम लोग बडो को प्रणाम करते और दादाजी या पिताजी के साथ बाजार की रोशनी देखने चले जाते । सारा बाजार दीपको और गैस की लालटेनो की रोशनी से जगमगा उठता । बाजार की मुख्य सडक पर बालू बिछाकर पानी का छिडकाव करा दिया जाता । दूकानदार अपनी-अपनी दूकानो के आगे तख्त या पलग बिछा कर आने-जाने वालो का पानसुपारी से समुचित सत्कार करते । कही-कही ग्रामोफोन पर मधुर गीत चलता तो उसे सुनने के लिए अनेक लोग खडे रहते । स्त्रियॉ भी दीवाली की सजावट देखने के लिए बाजारो मे आती ।

दीवाली के दूसरे दिन 'राम रमी' होती । सभी एक दूसरे से मिलते । छोटे बच्चे बडो के चरण छूते और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते । बराबर की उमर वाले परस्पर अभिवादन करते । वातावरण आपसी मेलजोल और सौहार्द्र का हो जाता ।

तीसरे दिन भैयादूज का पर्व मनाते । इस अवसर पर विवाहित बहने मिठाइयॉ लेकर आती और भाइयो को नाना प्रकार के व्यजन अपने हाथ से खिलाती । वैसे हमारे यहॉ बडा भाई बहन के यहॉ का नही खाता, पर उस दिन इस परम्परा को तोडकर बडा भाई भी छोटी बहन की मिठाइयॉ खा लेते । बहनो को इस भावपूर्ण सत्कार के बदले मे भाई उन्हे यथाशक्ति उपहार देते ।

दीवाली के आठ दिन बाद गोपाष्टमी आ जाती । इसका भी हमारे यहॉ बहुत महत्व था । गायो और सॉडो की पूजा की जाती । उन्हे गुड, दाल और मिठाई खिलाई जाती । गोशाला पर मेला लगता जहॉ गोपूजन के बाद लोग श्रद्धानुसार रुपये चढाते । एक आदमी कहता, "एक लगाओ, लाख पाओ ।" हम बच्चे रोटी या मिठाई लेकर जाते । हमे छोटे-छोटे बछडे बडे प्यारे लगते । उन्ही को बडे चाव से खिलाते ।

इसके बाद पड़ती देवोत्थान एकादशी । राजस्थान मे चौमासे के चार महीने कृषि आदि मे व्यस्त जीवन के होते, इसलिए इन दिनो विवाह-शादी और यात्रा मना थी । इस एकादशी के बाद यह बन्धन दूर हो जाता । विवाह और यात्रा के मुहूर्त निकलते तथा आठ महीने तक अर्थात् आषाढ सुदी ११ तक ये कार्यक्रम चालू रहते । पौष-माघ मे हमारे यहॉ विशेष पर्व नही होते । माघ शुक्ला पचमी यानी बसन्तोत्सव के दिन पीले कपडे पहन कर लोग सरस्वती की पूजा करते और होली के चगो को तैयार कर लेते । फा़ल्गुन वदी तेरस को शिवरात्रि का व्रत रखा जाता था । शिव-पार्वती की पूजा होती । होली का धमाल और ढप्प बजने आरम्भ हो जाते ।

दीपावली के अलावा यहॉ होली का पर्व सबसे बडा होता । फसल घर मे आ जाती और जिस वर्ष अच्छा अनाज हो जाता, किसान प्रसन्नता से नाच उठते । डफ लेकर बच्चे और जवान घरो से निकल पडते । लडकियॉ और बहुएँ भी होली के गीत गाने लगती । सारा वातावरण उल्लासपूर्ण हो जाता । जहॉ अश्लील गीत होते, वही भाव-पूर्ण और अच्छे गीत भी

होते थे–स्त्रियो और पुरुषों के अलग-अलग मनोहर गीत है—

मने पीलोसो पोमचियो रगा दे, मोरी माय लूवर रमवा मै जास्यू।
मनो रामूड़ा रो टेवटियो घडा दे, मोरी माय लूवर रमवा मै जास्यू।
मने राठोड़ांरी बोली प्यारी लागै, मोरी माय लूवर रमवा मै जास्यू।
मने राठोड़ां रे घर परणाज्ये, मोरी माय लूवर रमवा मै जास्यूं।
मने खींच्यां के मत देओ, मोरी माय लूवर रमवा मै जास्यू।
खींची कुटावै मोरी माय, लूवर रमबा मै जास्यू।

(लडकी अपनी माँ से कहती है–ए माँ, मुझे पीली ओढनी रँगा दे, मै लूवर खेलने जाऊँगी। ए माँ मुझे रामजी के नाम का कण्ठहार गढवा दे, मुझे राठौडो की बोली प्यारी लगती है, उन्ही के यहाँ मेरी शादी कर देना। खीची राजपूतो के घर मत देना, क्योकि वह मुझसे खिचडी कुटवाएँगे)।

हमारे यहाँ होली 'हालीधोरो' पर जलाई जाती, जो कस्वे का सबसे ऊँचा स्थान होता। होली की जेर (गोबर के बडकुलो की माला) लेकर घर के जो सदस्य होलीदहन के लिए जाते, हम बच्चे भी उनके साथ ही जाते। अक्सर सारे गाँव के लोग वहाँ इकट्ठे हो जाते। गोवर के कडो और आग की लकडियो का बहुत वडा अवार लग जाता।

होली ल्याई ए फूला की झोली, झिरमिटियो ले।
ओ कुण खेले ए केसरिए वागां, झिरमिटियो ले।
कानीराम खेले ए केसरिए वागा, झिरमिटियो ले।

इन सब के अलावा स्वस्थ दिल्लगी भी चलती। लोग सारे वर्प के परिश्रम और थकावट को भूल जाते। हम बच्चे भी इस परिहास मे सबसे आगे रहने का प्रयत्न करते। हमारे यहाँ एक पुराना कैमरा था। हम सडक के बीच मे एक कुर्सी डाल कर खडे हो जाते। उस कुर्सी पर किसी देहाती को बैठा देते। कैमरे के चारो तरफ काले कपडे का परदा करके फोटो लेने का अभिनय करते। देहाती का पोज लेने के लिए एक वार खडा कर देते। इतने मे पीछे से एक लडका कुर्सी खीच लेता। जब देहाती महाशय बैठते तो धम्म से नीचे गिर जाते। हम सब तालियाँ पीट कर हसते और वह बेचारा खिसिया कर भाग जाता।

दो-तीन लडके छत पर डोरी लटकाए रहते। डोर से एक हुक बँधी रहती। जब कोई राहगीर उधर से निकलता तो पीछे एक लडका आता और चुपके से उसकी पगडी या चादर मे हुक लगाकर भाग जाता। ऊपर वाले बच्चे डोर खीच लेते। पगडी या चादर के साथ ऊपर चली जाती। बेचारा राहगीर ठगा-सा रह जाता। पास-पडोस के लोग बच्चो को दो-चार पैसे दिलाकर उसकी चीजे उसे वापस करा देते। वैसे सभी इस नाटक मे परोक्ष रूप मे शामिल रहते थे। इसी तरह मजाक भी होते। जैसे हम एक रुपये को फिटकरी पिघलाकर जमीन मे चिपका देते। रास्ता चलने वाला रुपया देखकर झुकता और उठाने का विफल प्रयत्न करता, तो आस-पास से आवाजे आती, "कमा के क्यो नही खाते ?" बेचारा शर्मिन्दा होकर चुपचाप चला जाता।

इसी तरह की एक और बात मुझे याद है। टीन के एक पेंदे मे छेद करके सुतली डाल लेते और भीगे हुए कपडे को इस पर जोर से खीचते। कुत्ते की भोकने जैसी आवाज होती। राहगीरो, विशेप कर गाँवो के भोले-भाले लोगो के पीछे इस टीन की आवाज की जाती तो वे अपने वस्त्र फेक कर भाग खडे होते। हम सभी ताली पीट-पीट कर हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते।

होली की अन्तिम चारो रात मे विभिन्न मुहल्लो मे गीदड (डाडिया) नृत्य होता। चौराहे के बीच मे एक खभा रोप कर उस पर गैस की लालटेन लटका दी जाती। नगाडा रख देते, जिसे एक आदमी बजाता। उसके चारो तरफ गोलाकार रूप मे युवक और प्रौढ तरह-तरह के वेश धारण करके, जिनमे वर-वधू का जोडा, सन्यासी, सेठ, डाक्टर और मेम सभी की नकल रहती, डण्डे लेकर नगाडे की ताल पर पीपली, लूर, आदि लोकगीत गाते हुए नाचते रहते। एक अनोखा समा बँध जाता। सैंकडो स्त्री-पुरुष चारो तरफ खडे होकर, आस-पास के छत-छज्जो पर बैठकर इस लोक-नृत्य का आनन्द लेते।

गुरु की चोट, विद्या की पोट

उस समय तक हमारे यहाँ मिडिल स्कूल खुल गया था। लेकिन आठवी कक्षा के तीन-चार लडको से अधिक कभी नही पहुँचे। हम दोनो भाई आठवी क्लास तक पहुँच गए थे। हमारे दो साथी और थे। परीक्षा केद्र बीकानेर था। सन् १६२७ मे हम चारो बीकानेर परीक्षा देने के लिए गए, पर चारो ही फेल हो गए।

राजकीय स्कूल मे उस समय दो मास्टर थे—धनसुखदासजी और बालचन्दजी। बालचन्दजी ढूढाड की तरफ के थे। वह 'यहाँ' को 'ऐडे' कहते थे, इसलिए उनका नाम ऐडे मास्टरजी प्रचलित हो गया था। एक वाणिका गुरु थे भीखारामजी। उसके बाद तो नये-नये मास्टर आते गए। उस समय के मास्टर अपने को आई० ए० पास न कह कर बी० ए० फेल कहते थे। मैट्रिक पास न कह कर आई०ए० फेल कहते थे। हमारे गाँव म सबसे पहले मैट्रिक पास किया था श्री पूनमचन्द आँचलिया ने। जब वह अग्रेजी अखबार पढते तब हम ताज्जुब मे रह जाते। स्कूली पढाई के अलावा अग्रेजी की एक और शिक्षा-प्रणाली थी—ए बी सी डी पढ कर 'तार बाबू' या 'टेलीग्राफ टीचर' पुस्तक याद कर लेना। इसमे दैनिक काम मे आने वाले दो-तीन सौ शब्द रहते। मुझे आज भी वे अधिकाश शब्द क्रमानुसार याद है। जैसे 'गो' माने जाना, 'कम' माने आना, 'बाई' माने खरीदो और 'सेल' माने बेचो। इस सन्दर्भ मे दो मनोरजक घटनाएँ बहुचर्चित है—

किसी व्यकित ने रोमन लिपि मे तार दिया कि 'काका अजमेर गया।' उसके घर वालो ने पढा कि 'काका आज मर गया।' वे लोग रो धो लिए। जब तीसरे दिन काका आए तो असली बात का पता चला।

एक लडका ससुराल गया। उसकी अग्रेजी की जानकारी की ख्याति थी। सयोग से ससुराल मे एक तार तार आया हुआ था, जो उसे पढने को दिया गया। जब तार का अर्थ उसकी समझ मे नही आया तो वह बोला, "यह तार तो कलकत्ते का है, मै तो सिर्फ आगरे तक ही पढा हूँ।" लोगो को भी उसकी बात से सन्तोष हो गया।

तार पढवाने के लिए अधिकाश लोग मास्टर धनसुखदासजी के घर जाते थे।

अग्रेजी पढाई के अलावा ज्यादा प्रचलित थी वाणिका और गणित, जो गुरुओ की पाठशाला मे पढाए जाते थे। उस समय यह धारणा थी कि जो गुरु ज्यादा मारता-पीटता है, वह अच्छा है। मुहावरा भी है 'गुरु की चोट, विद्या की पोट।' उन दिनो लक्ष्मण गुरु और कस्तूरा गुरु नामी थे। ये दोनो लडको को डण्डा लकडी कर देते थे। यानी पैरो मे लकडी देकर उकडू बैठा देते। एक दिन एक लडका कस्तूरे गुरु की मार के डर से कुएँ मे जा कूदा। लक्ष्मण गुरु की पाठशाला हमारी हवेली के नीचे की बैठक मे लगवा दी गई थी। इससे हमे दूर नही

जाना पडता और हमारी पिटाई भी कम होती। शाम के समय पहाडो की 'म्हारणी' (राग लेकर पहाडा दुहराना) होती। एक लड़का बोलता, 'एक ऊँठा, ऊँठा' दूसरे लडके बोलते 'दो ऊँठा सात।' लय और ताल के साथ बच्चो के स्वर उस समय बहुत ही अच्छे लगते थे।

उस समय मुडिया (बिना मात्रा) हरफो का प्रचलन था। गोपीरामजी भरतिया के अक्षर बहुत सुन्दर माने जाते। हम बच्चो की भीड उनकी दूकान पर गत्ते लिखाने के लिए लगी रहती। इन गत्तो के ऊपर महीन कागज रख कर हम हरफ जमाते। आज भी मैं जब कभी मुडिया हरफ लिखता हूँ, गोपीरामजी की याद आ जाती है।

मैं १६२४ मे दिल्ली में मैट्रिक का इम्तहान देने गया। वहाँ एक महीने रहा। मेरे एक साथी स्वर्गीय सुमेरमल बोथरा थे। कुतुबमीनार के सामने एक मकान मे आठ रुपये महीने पर एक कोठरी लेकर हम ठहरे थे। आज भी जब दिल्ली मे उधर से गुजरता हूँ तो ४५ वर्ष पहले की उन बातो की याद ताजा हो जाती है। उस समय वहाँ (दिल्ली मे) मेरे कई दोस्त हो गए थे, जिनमे दो से आज भी पत्र-व्यवहार चालू है। उस बार अग्रेजी और गणित मे फेल हो गया, इसलिए सन् १६२५ मे फिर से परीक्षा देने हिसार जाना पडा।

मैट्रिक पास करने के बाद उसी वर्ष मै पिताजी के साथ धुबडी (असम) चला गया।

उस समय विदेशी खेलो मे हमारे यहाँ सिर्फ फुटबाल ही आया था बालीबाल, क्रिकेट व हाकी कुछ वर्षो के बाद आए। लोगो के पास पैसे का अभाव था, इसलिए आमतौर पर ऐसे खेल खेले जाते जिनमे मनोरजन और व्यायाम तो होता, पर किसी प्रकार का खर्च न होता। ज्यादा लोकप्रिय थे—कबड्डी हरदडा, गुल्ली-डन्डा और सातताली आदि।

चाँदनी रात मे बालू के टीलो मे युवक और बुड्ढे टोलियाँ बनाकर कबड्डी खलते। हमारी उस रेत मे ऐसा आकर्षण रहता कि पोपले मुहँ के बुड्ढे भी खम ठोक कर सामने के पाले मे 'कबड्डी-कबड्डी' बोलते हुए चले जाते और कभी-कभी तो पाँच-छह आदमियो को छूकर वापस आते। उस समय लोग उनका नाम ले लेकर उन्हे बढावा देते रहते। जब अच्छी वर्षा हो जाती तो बालू के उन टीलो से एक ऐसी सोधी महक निकलती, जो छोटे-बडे सबके मन को मुग्ध कर देती।

बालू के ऊँचे-ऊँचे टीले मैने अपने विश्वभ्रमण मे और भी देखे है। बडे-बडे रेगिस्तान भी देखे है। आकाश को छूने वाली रेत की आँधी देखी है और देखी है बालू के बीच मे बिखरी हुई बस्तियाँ। इजराइल, जोर्डन और सीरिया की सरहद पर 'अबूघोष' के इलाके के बालू के टीलो मे बसे हुए लोगो की दर्दनाक कहानियाँ सुनी है। पर उनमे और हमारे 'थली' क्षेत्र के टीलो मे अन्तर है। मध्य एशिया के मरुस्थल को निरपराध प्राणियो के रक्त ने सीचा है। सैंकडो वर्षो तक वहाँ धर्मान्धता ने आग उगली है, राजनीतिक स्वार्थो ने हाहाकार किया है, पर हमारे इन टीलो मे धरती माँ के किसान पूतो के श्रमबिन्दु है, उनके गाय-बैलो के चरण अकित है। इसलिए ये टीले मनको अपनी ओर खीच लेते है। उषा की किरणो मे और गोधूली की ललाई से ये मुस्कुरा ऊठते है। रात्रि मे ये शाति की नीद सुलाते है, जबकि मध्य एशिया के वे टीले उदास है, रोते-से है और भयानक लगते है।

हमारे यहाँ पजाब (जिसमे तब हरियाणा भी शामिल था) के पहलवान जब तब आते रहते, बाएँ पैर मे साकल लटकाए गाँव मे घूमते। कोई साकल रोकने वाला नही मिलता तो गाँव वालो को कुछ नकद रुपया और कपडा उन्हे भेट देना पडता। एक बार एक पहलवान हमारे यहाँ आया और कई दिन घूमता रहा। जब कोई साकल रोकने वाला नही मिला तो लोगो ने एक कयामखानी से जाकर कहा, "काका, गाँव की इज्जत का सवाल है, अगर आप अपने बेटे बन्नू को आज्ञा दे दे तो वह लडने को तैयार है।"

बन्नू की उमर उस समय लगभग बीस वर्ष थी, अभी उसकी मसे भीग रहीं थी। रोज २५० दड और ५०० बैठक के अलावा कुश्ती और मुगदर का अभ्यास करता। घर मे

गाय-भैस थी, इसलिए खाने-पीने की कमी थी नही । दो दिन बाद दोनो की कुश्ती बदी गई । आस-पास के गाँवो के लोग भी दगल देखने आ गए। पहलवान का दैत्याकार शरीर देख कर लोग आतकित थे । थोडी देर मे ही पहलवान ने बन्नू को धरती पर औधा गिरा दिया और गुद्दे जमाने लगा । हम लोगो ने सोचा कि बाजी हाथ से गई । बन्नू की मँगेतर भी दर्शको मे खडी यह सब देख रही थी । उसने चिल्ला कर कहा, "ए बन्नू, ऐसा न हो कि गाँव की हँसी हो जाए ।" देखते क्या है कि बात की बात मे बन्नू एक झपट्टा मार कर उठा और उसने पहलवान को सिर पर उठा लिया और चारो तरफ घुमाकर जोर से एक तरफ फेक दिया । पहलवान को इतनी गहरी चोट आई कि फिर से उठकर सामना करने का साहस नही कर रहा और मुँह वह छिपाकर एक ओर चलता बना ।

गाँव भर मे इस दगल की कई दिनो तक चर्चा रही ।

हमारे यहाँ सबसे पुरानी सस्था है 'पब्लिक लाइब्रेरी', जिसकी स्थापना १९०६ मे हुई थी । यह सस्था इस समय तक सरदारशहर की सर्वागीण शैक्षणिक उन्नति मे प्रशसनीय काम कर रही है । इस समय इसकी पुस्तक सख्या पच्चीस हजार के लगभग है । प्रति वर्ष डेढ लाख पाठक इससे लाभ उठाते है । मेरे विद्यार्थी जीवन के समय यह बहुत ही छोटे रूप मे थी । थोडे दिनो तक मै इसका मन्त्री भी रहा । उस समय हमारे पास पैसो की कमी थी । इसलिए किताबो की जिल्द हाथ से बाँधते रहते । आज भी अपनी बाँधी हुई जिल्दे देखकर एक अनोखा आनन्द महसूस करता हूँ ।

दूसरी सस्था तेरापन्थी जैन श्वेताबर सभा थी । इसमे बहुत सी हस्तलिखित प्राचीन जैन ग्रन्थ थे । आज भी यह सस्था अपने निजी भवन मे मौजूद है ।

इनके अलावा 'मनोरजन नाट्य परिषद' और 'सेवा समिति' नाम की दो सस्थाएँ थी, जो सास्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करती रहती । इन दोनो मे नए-नए नाटक प्रस्तुत करने की होड लगी रहती थी । मुझे उस समय के देखे हुए कुछ नाटको की याद है । जैसे 'श्रवणकुमार', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'भीष्म प्रतिज्ञा', 'भक्त मोरध्वज', 'गणेश जन्म', 'कृष्णार्जुन युद्ध' आदि । 'श्रवणकुमार' नाटक मे राजा दशरथ के बाण से श्रवण की मृत्यु हो जाने पर जब उसकी माँ बिलख-बिलख कर रोई थी तब मुझे बहुत दिनो तक वह दृश्य याद आते ही रुलाई आ जाती । उस समय मैंने समझा था कि सचमुच ही श्रवण की मृत्यु हो गई है ।

एक दिन बडा मजा आया । पात्र की एक तरफ की मूँछ गिर गई । उसे पता नही चला । लोग बहुत जोर से हँसने लगे । इसी प्रकार एक बार हनुमान बने हुए पात्र ने जब एक राक्षस को पीट दिया (शायद पहले से कुछ झगडा था) तब दोनो मे वास्तविक युद्ध छिड गया । राक्षस हनुमान से मजबूत था । उसने हनुमानजी को धर दबोचा और उसका मुखौटा और पूँछ उखाड कर फेक दी, जब कि दृश्य था हनुमानजी द्वारा राक्षस पर विजय पाने का । शर्म के मारे इसके कई दिन बाद तक हनुमानजी घर के बाहर नही निकले ।

इनके अलावा झुझनू शेखावटी की ओर से नौटकी वाले आते रहते । उनका 'ख्याल' सारी रात चलता रहता । जगदेव ककाली, अमरसिंह राठौर, सुल्ताना डाकू, रामू चनणा और डूगजी झुहारजी आदि के ख्याल होते । ठडी रात मे नगाडो की आवाज पर नायक की लावणी की तान इतना जोर से गूँजती कि गाँव के दूसरे छोर तक सुनाई देती । उन दिनो माइक नही थे ।

किसी ढोलन (गाने वाली जाति की स्त्री) की आवाज भी बहुत ही सुरीली ओर दर्दभरी होती थी । एक बार महाराज गगासिह अपनी ताल की कोठी मे ठहरे हुए थे । फाल्गुन का सर्द महीना था, रात के दस बज गए थे । ऐसे मे मौलाबक्श मीरासी की स्त्री ने दर्द-भरी आवाज मे एक गीत गाया । आधा मील पर ठहरे हुए राजा जी ने गीत को सुनकर अपने मुसाहिबो को स्त्री का पता लगाने भेजा । दूसरे दिन मिरासिन को बुलाकर बहुत सा इनाम दिया गया ।

शार्दूल व्यायामशाला की स्थापना १९२२ के लगभग हुई। आरम्भ मे तो यह सस्था बहुत अच्छी चली, पर आगे जाकर केवल स्नान करने वाले लोग ही वहाँ जाने लगे, क्योकि वहाँ ट्यूबवेल का ठडा पानी मिल जाता था।

सनातन धर्म वालो की 'धर्म सभा' नाम की भी एक सस्था चलती थी। यह साधु-महात्माओ की सेवा और उनके प्रवचनो के आयोजन का काम करती थी।

१९२१ के लगभग जयचन्दलालजी मेठिया ने 'नवयुवक मण्डल' की स्थापना की। इसके मुख्य कार्यक्षेत्र थे एक पुस्तकालय और एक औषधालय। पॉच-छह वर्ष वाद यह सस्था बन्द हो गई।

इन सस्थाओ की देखा-देखी हम बच्चो ने भी 'सर्वहितकारिणी' नाम की एक सस्था चालू की। थोडे दिनो बाद वह पब्लिक लाइब्रेरी मे विलय हो गई।

हमारे राजस्थान के कस्बो मे गोशालाएँ सब जगह है। सरदारशहर मे भी १९१८ मे गौशाला की स्थापना हो गई थी। प्रति वर्ष कार्तिक सुदी आठे को गोपाष्टमी का मेला होता है। हम बच्चे घर से मिठाइयाँ ले जाते और यहाँ की गायो, साडो और बछडो को खिलाते। मैने अपना पहला भाषण सन् १९२२ मे इसी गौशाला मे गोपाष्टमी के अवसर पर दिया था। शायद एक-दो मिनट बोला हूँगा। पैर लडखडाने लगे थे और बदन पसीने से भीग भग गया था।

गॉव मे श्यामनारायण व डाक्टर डिगे—दो डाक्टर थे, जो पश्चिमी ढग की चिकित्सा करते थे। उनकी फीस एक रुपया थी, पर इतनी बडी रकम देने की शक्ति धनी लोगो मे ही थी। साधारण जनता वैद्यो से इलाज कराती। वे धनी लोगो से शुरू मे एक रुपया लेते और रोग ठीक हो जाने पर लोग बाद मे सामर्थ्य के अनुसार जो कुछ भी दे देते, वह सहर्ष स्वीकार कर लेते।

वे काष्ठादिक दवाओ के अतिरिक्त कीमती औषधियॉ भी रखते। उनसे विश्वसनीय औषधियॉ प्राप्त हो सकती थी साधारण लोगो से वे कोई फीस न लेते। केवल नारियल की भेट से उनकी चिकित्सा शुरू हो जाती और उस समय नारियल का मूल्य था छह-सात पैसे।

इनके अलावा मे जैन यति भी चिकित्सा करते। वे नाडी के अच्छे पारखी होते थे उनकी चिकित्सा मे मूल्यवान औषधियो का भी उपयोग होता था। पर वे औषधियॉ केवल अपने शिष्य को ही बतलाते थे। उनके कुछ चमत्कार भी सुनने को मिले है।

आम तौर पर यह धारणा थी कि जैन यति अपने चिकित्सा-कौशल से, कीमती औषधियो के बल से या तपस्या के प्रभाव से रोगी को अच्छा कर देते है। इनमे से कौन सा कारण वास्तविक था, यह मै नही कह सकता। आज के जमाने मे ऐसे जैन यति चिकित्सक विरले ही मिलते है। बहुत सी ऐसी बाते मशहूर थी, जिन्हे आज कोरी बकवास ही कहा जाएगा।

उन दिनो एक सिद्ध जैन यति की बडी चर्चा थी। कहते है कि एक गृहस्थ उनसे तिथि पूछने गया। उस दिन अमावस्या, पर यति के मुँह से निकल गया पूर्णमासी। वही पर बैठे हुए एक अन्य व्यक्ति ने उनकी भूल का खण्डन किया, पर यति ने मन मे भूल स्वीकार करते हुए भी, ऊपर से फिर अपनी बात दुहराया, "नही, आज पूनम।"

बदनामी जल्दी फैलती है। गाँव भर मे यतिकी इस नादानी की चर्चा फैल गई। पर रात को पूर्णमासी का पूरा चन्द्रमा आकाश मे मुस्करा रहा था। सारा कस्बा आश्चर्य मे डूब गया।

यह बात सच है या झूठ, मै नही कह सकता। मैंने तो बडे-बूढो के मुँह से चर्चा सुनी थी, पर मेरा ख्याल है कि साधुओ के बात मे बात का बतगड इसी प्रकार से फैलता है। इनके चेला-चाँटी ऐसे मनगढन्त किस्सो को खूब फैलाते थे। हमारे कस्बे मे साधुओ का बड़ा बोलबाला था।

वैद्यो और डाक्टरो के अलावा झाड-फूँक वाले ओझे भी थे, जो मन्त्रो से रोग दूर करने का उपक्रम करते रहते। कभी-कभी मनोवैज्ञानिक कारणो से इन्हे सफलता भी मिल जाती। रोगो के शमन के लिए देवी-देवताओ और पीर-पैगम्बर की मनौतियाँ भी मनाई जाती। अनेक प्रकार के टोटके भी इस्तेमाल किये जाते। पर दवाओ के अन्वेषण की कमी और अन्धविश्वास का कुपरिणाम यह होता कि अनेक व्यक्ति, विशेष कर बच्चे, असमय मे ही मर जाते।

मेरे पडोस मे एक विधवा युवती थी, जिसे अक्सर हिस्टीरिया का दौरा आता था। दौरे के समय उसके घर वाले एक ओझा को बुलाते। वह लाल मिर्च और गन्धक का धुआँ उसके नाक और मुँह के पास देता और मन्त्र पढता रहता। थोडी देर बाद जब उसकी चेतना लौटती तो वह बहुत ही व्याकुल होकर चिल्लाती, छटपटाती और जो कुछ ओझा कहलवाता उसी को दोहराती रहती। जैसे, 'मै अमुक जगह की प्रेतनी हूँ, वहाँ से इसके साथ आ गई, एक बार मुझे छोड दीजिए, फिर कभी नही आऊँगी, आदि। हम बच्चो को यह सब देखकर बडा डर लगता था।

जादू-टोने करने के लिए कुछ महिलाएँ चौरस्ते पर सिदूर, उडद, गुड और कुछ पैसे आदि रख आती। उनकी धारणा थी कि यदि कोई व्यक्ति भूल से भी उन ठोकर मार देगा या उन्हे लाँघ जाएगा तो उनका रोग या पीडा उस व्यक्ति को लग जाएगी।

मै एक ऐसे आदमी को जानता था जो पैसे और गुड वगैरा इन चौराहो से उठा लाता। न तो उसे कभी कोई बीमारी हुई और न किसी भूतप्रेत ने ही उसे सताया।

इन वैद्य-डाक्टरो के सिवाय राजस्थान के प्रत्येक कस्बे मे एक दो नाडी ज्ञान वाले नि शुल्क वैद्य (सयाने) भी होते थे। हमारे यहाँ भी सूरजमल पसारी और हरनारायण बजाज इसी श्रेणी के ऊँचे दर्जे के आयुर्वेद के ज्ञाता थे। कठिन से कठिन बीमारी मे, जब कि दूसरे चिकित्सक निराश हो जाते, इनकी दवा कारगर सिद्ध हो जाती थी। किसी प्रकार की फीस और दवा के दामो का तो प्रश्न ही नही था। पता चलने पर धनी या गरीब सबके घर अपने आप पहुँच जाते। चाहे बैशाख-जेठ की दोपहरी की गरमी हो या पौष-माघ की ठिठुरती रात! उन्हे न कभी खून, कफ और मूत्र की परीक्षा की दरकार रहती और न स्टेथिसकोप और थरमामीटर से रोगी के दिल की धडकन या बुखार देखने की जरूरत महसूस होती। भगवान का नाम लेकर वे नाडी पर हाथ रखते और दो मिनट बाद ही रोग का सही निदान बता देते।

एक बार मुझे भी कुकुरखाँसी हो गई थी। बहुत इलाज कराने के बाद भी लाभ नही हुआ। आखिर हरनारायणजी बजाज के काढो से मै ठीक हुआ। सयोगवश अगर दोनो एक साथ आ जाते तब तो फिर रोगी और घर वालो मे इतना साहस हो जाता कि रोग तो इसी से मिट जाता। बहुत दिनो बाद मैने श्री ताराशकर बनर्जी का 'आरोग्य निकेतन' पढा। उसके 'जीवन महाशय' का चरित्र पढकर मुझे अपने गाँव के इन दोनो महानुभावो की याद आ गई।

एक बात अवश्य उल्लेखनीय है कि उस समय बच्चो की चिकित्सा के बारे मे बहुत कम अन्वेषण हुए थे। पचास प्रतिशत बच्चे एक वर्ष के भीतर ही पीलिया, चेचक और पेट की बीमारी से मर जाते थे। अन्धविश्वास के कारण इनको वैद्य-डाक्टरो की दवा न दिला कर झाड-फूंक और देवी-देवताओ की मनौती के भरोसे छोड दिया जाता।

उस समय लोग आमतौर पर पुराने धार्मिक विचारो के थे, इसलिए साधु-सतो पर उनकी बहुत आस्था थी। विभिन्न धर्मो के साधुओ के प्रवचन होते रहते थे। हरिद्वार, ऋषिकेश, वृन्दावन आदि से साधुओ की टोलियाँ अक्सर ही आती रहती थी। खास कर चौमासे (वर्षा ऋतु) मे तो बडे-बडे नोहरो और धर्मशालाओ मे इनके डेरे लगे रहते। आस-पास के गाँवो से भी लोग इनके प्रवचन सुनने को आ जाते।
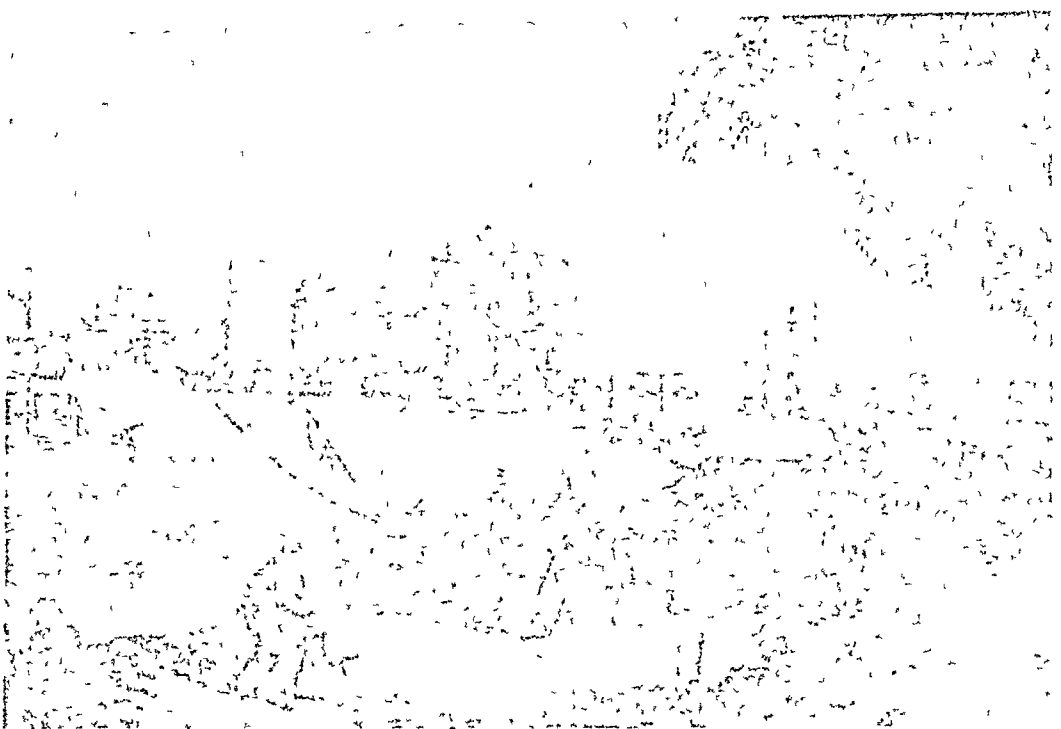
टोडरमल जीत्याजी

कई प्रकार की साधु-संस्थाएँ थी, जैसे जैनियो मे तेरापथी, बाईसपथी, मदिरमार्गी आदि सनातनियो मे दादूपथी, रामसनेही, गोरखपथी। कभी-कभी एक दो अघोरी साधु भी गाँव मे आ जाते, जिनके हाथ मे मनुष्य की खोपडी रहती। उनकी लम्बी-लम्बी जटाएँ लटकती रहती और बदन पर सिन्दूर पुता होता।

ओसवाल जैनियो की सख्या बहुत थी। इनमे अधिकाश जैनी तेरापथी थे। कुछ ओसवाल श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुयायी थे और मदिर-मार्गी भी थे, पर उनकी सख्या बहुत कम थी।

तेरापथी साधुओ का गैरजैनियो मे भी मान था। तेरापथी के आचार्य, जिन्हे पूजजी कहते थे, जब कभी हमारे कस्बे मे आते, बडी धूम-धाम मे उनका स्वागत होता। जैनी और कुछ अजैनी भी स्वागत मे भाग लेते। जितने दिन पूजजी हमारे यहाँ प्रवास करते, बडी चहल-पहल रहती। दूसरे कस्बो और गाँवो मे सैकडो स्त्री-पुरुष दर्शनार्थ आते। इनके ठहरने और खाने-पीने की व्यवस्था रहती सेठ श्रीचन्दजी गधय्या की तरफ से।

मैने बचपन मे ही इनका दीक्षा-संस्कार देखा है। छोटे-छोटे बालक-बालिकाएँ माता-पिता घर-परिवार, धन आदि सब कुछ त्याग कर आचार्य की शरण मे जाकर साधु बनने की दीक्षा लेते।

दीक्षा के पहले दिन विरागी की धूम-धाम से सवारी निकाली जाती। चाँदी के डक्के पर बिठा कर उसे नगर भर मे घुमाया जाता। बडे मान-सम्मान के साथ घरो पर निमन्त्रित किया जाता।

दीक्षा के समय आचार्य एक ऊँचे आसन पर बैठ जाते। बालक या बालिका के मातापिता से जब अनुमति मिल जाती, तब वे जैन मत्रो का सस्वर उच्चारण करते हुए विरागी के केश अपने हाथ से नोचते और उसे दीक्षित घोषित कर देते। उस समय सारा मण्डप 'घणी खम्मा' के घोष से गूंज उठता। उसके मातापिता, स्त्री, पति, बेटा-बेटी, नाती-पोते उसी समय अपना सब सम्बन्ध समाप्त कर, उस विरागी के सामने घुटने टेक कर वदना करते।

दीक्षा-समारोह मे लोगो द्वारा इतनी दिलचस्पी लिए जाने का कारण, कौतूहल के साथ-साथ शायद श्रद्धा की भावना भी थी। हम बालको के मन मे ऐसी कोई भावना नही थी। हम तो ऐसी चहल-पहल, मेला और जमाव अच्छा लगता था। केश नुचवाते देखकर कभी-कभी हम आँखे भी आगे झुका कर अपने केशो को भी खीचकर उस पीडा का अनुभव करते। हममे से अनेक को यह दृश्य देखते हुए डर भी लगता था।

शायद स्त्रियाँ पुरुषो से अधिक श्रद्धालु होती है । धर्म के प्रति अपनी विशेष आस्था अनुरक्ति एव प्रवृत्ति के कारण अथवा समाज तथा परिवार मे अपनी विशिष्ठ स्थिति के कारण स्त्रियाँ पुरुषो की अपेक्षा अधिक सख्या मे साध्वी होती थी और आज भी ऐसी स्त्रियो की सख्या बहुत अधिक है । सबसे पहले मैने सेठ भैरोदान भसाली के बाग मे दीक्षा-समारोह देखा था । इस समारोह मे छोटे-बडे बहुत से लडके-लडकियो ने दीक्षा ली थी । बडा भारी मेला लगा था । उसमे हजारो नर-नारी उपस्थित थे । याद है कि केशो के लुचाते समय कई लोगो के नेत्रो मे आँसू उमड आए थे ।

कम उमर के जो लोग मुनि-धर्म की दीक्षा लेते थे, वे इतनी गहराई तक जैन धर्म को समझ लेते थे या नही, यह मै नही कह सकता । कभी-कभार कोई साधु फिर से गृहस्थ हो जाता था, पर उसे फिर अपने घर में स्थान नही मिलता था । समाज मे उसे अच्छी दृष्टि से भी नही देखा जाता था ।

तेरापथी और बाईस सम्प्रदाय के गृहस्थ दिसावरो मे पाट, कपडे की दलाली, आढत, जूट का व्यापार और सोना-चाँदी और सट्टे मे लाखो रुपया कमा कर 'देश' में ले आते और बडी-बडी हवेलियाँ बनवाते और जैन साधुओ की सेवा करते । तेरापथी सम्प्रदाय की उस समय तक यह मान्यता थी कि कुएँ, धर्मशाला या पाठशाला बनाना धर्म की बात नही है । इस बारे मे यहाँ तक कहा जाता था कि कुएँ और तालाब के पानी मे जीव जन्मते और मरते रहते है उसका पाप लगता है कुआँ बनवाने वालो को । आजकल धारणा बदल गई है और कई प्रकार की सार्वजनिक सस्थाएँ इनके द्वारा सचालित हैं ।

अग्रवाल माहेश्वरी, ठाकुर और अन्य जातियो के लोग वैष्णव या शैव थे । इसलिए गाँव मे हिन्दू साधु-सन्त भी अक्सर आते रहते थे । यह अवश्य है कि हिन्दू साधुओ के स्वागत-सत्कार मे जैनी ज्यादा दिलचस्पी नही दिखाते थे । हिन्दू साधुओं के स्वागत मे भाग लेने वाला वर्ग उतना धनी भी नही था ।

हमारा परिवार रामसनेही था । बडे-बडे महात्मा इस पथ मे हुए है । उस समय उनकी पूरी वशावली हमे याद थी । सरदारशहर मे जब कभी बाहर से सन्त-महात्मा पधारते तो अपने दादाजी और पिताजी के साथ हम बच्चे भी प्रवचनो मे जाते थे । हमारे दादाजी बहुत वृद्ध होने पर भी छह घण्टे प्रतिदिन 'राम नाम' का पाठ करते थे ।

हमारी तरफ नाथ-सम्प्रदाय मे कुछ सिद्ध साधु हुए है । हमारे बडे-बूढे उनकी गाथाएँ सुनाया करते थे । कहते है कि एक बार कलकत्ता मे एक बडे महाजन को 'कीडी नगरा' की बीमारी हो गई । अग्रेजी मे इसे 'गैगरीन' कहते है । शरीर के जिस भाग मे इस रोग के कीटाणु लग जाते है, उसे गला डालते हैं । बाद मे उस अग को काटना पड जाता है । जब हर प्रकार के इलाज मे कलकत्ता मे लाभ नही हुआ तो सेठजी महात्मा अमृतनाथ की शरण मे आए । नाथजी ने घाव देख कर कहा—"कीडियाँ तो पुराना खाती है, इसलिए इस पर पुराने बाजरे का दलिया बाँध कर देखो ।"

जो रोग अनेक डाक्टर-वैद्य अच्छा न कर सके, वह तीन दिन मे समाप्त हो गया । ऐसी ही अद्भुत कथा एक अन्य महात्मा के बारे मे सुनी थी । कुछ लोग उनसे मिलने गये । देखा कि महात्मा जी आसन पर बैठे है । बगल मे काला कम्बल काँप रहा है, हिल रहा है । लोगो ने साश्चर्य पूछा,– "यह क्या है, महाराज ?"

"शरीर का भोग है । दो-तीन दिन से भयानक ज्वर आ रहा है । आप लोग इतनी दूर से मिलने आये, सो इसलिए कुछ देर के लिए यह भोग मैने अपनी कबली को सहेज दिया है ।"

ऐसी अनेक घटनाओ की चर्चा हम सुनते थे, देखी एक भी नही । और,आज तो सोचता हूँ कि ये सब मनगढन्त बाते लोगो को प्रभावित करने और फुसलाने के लिए प्रचारित की जाती थी ।

दादू पंथियो का हमारे कस्बे मे स्थायी डेरा था और आज भी है। इस पन्थ के उस समय के सचालक स्वामी रामदयाल जी समाज और साहित्यसेवी थे। उन्ही के प्रयत्न से वहाँ एक धर्मशाला, हनुमान मन्दिर, पानी का कुण्ड और मनोरजन नाट्य परिषद का रगमञ्च आदि बने। सरदार शहर का बडा ताल (मैदान) भी उन्ही के प्रयत्नो से सुरक्षित रह सका।

शादी विवाह बचपन मे ही हो जाते थे। सगाई तो चार-पाँच वर्ष की उमर मे ही हो जाती। विवाह दस-बारह वर्ष की अवस्था मे होते, पर वधू ससुराल जाती विवाह के तीन या पाँच वर्ष बाद जब गौना होता। राजस्थान के उस अचल का जीवन कठिन और शुष्क होता था, इसलिए शादी-विवाह के अवसरो पर लोगो मे उत्साह और आनन्द छा जाता था। गाँव छोटे थे, इसलिए लडकी को दूसरे गाँव मे देते और अन्य गाँव की लडकी को अपने यहाँ बहू बनाकर लाते। उस समय तक बैठे विवाह (लडकी को लडके वाले के यहाँ लेकर जाना) का रिवाज नही था। इसे लोग अपमानजनक मानते। लडके वाले सैकडो आदमी की बारात लेकर जाते। जहाँ रेल नही होती, वहाँ ऊँटो और रथो की कतार बन जाती। किसी-किसी बडे महाजन, सेठ या ठाकुर की बारात मे हाथी भी रहता।

बरात के पहले वर पक्ष के लोग मित्रो या सम्बन्धियो से चौका कराते, यानी उन्हे बरात मे जाने का आमन्त्रण देते। किसी-किसी बरात मे तो चार-पाँच सौ तक बराती हो जाते। लोगो मे बहुत दिन पहले से ही चर्चा होती कि फलाँ के लडके की बरात अमुक गाँव जाएगी। वे आमन्त्रण यानी 'चौका' की राह देखते रहते।

इस सन्दर्भ मे मुझे एक दिलचस्प बात याद आ जाती है, जिससे पता चलता है कि लोग बरात मे जाने को कितने उत्सुक रहते। एक साधारण गृहस्थ की बरात जाने की थी। पडोस के एक व्यक्ति को आमन्त्रित नही किया गया, लेकिन वह बरात जाना चाहता था। अपने बेटे के साथ वह नये कपडे पहन कर वर-पक्ष के घर के सामने खडे हुए एक ऊँट पर सवार हो गया।

जब वर पक्ष के बरातियो के लिए सवारी नही मिली, तब वर पक्ष के पिता को पता चला और उसने कहा कि 'अच्छा हुआ आप आ गए। मै तो काम के झझटो मे आपका का 'चौका' करना भूल गया था।' पडोसी ने बिना किसी झेप के उत्तर दिया कि 'चौका तो गाँव वालो के लिए होता है, हमारे तो घर के लडके का विवाह है।' उसी समय एक और ऊँट दो बरातियो के लिए मँगाया गया।

इन बरातो का महत्व इसलिए भी अधिक था कि उन दिनो वायु-परिवर्तन के लिए या भ्रमण के लिए पहाडी स्थानो या दूसरे शहरो मे जाना सम्भव नही था, क्योकि लोग बहुत ही कम खर्च मे जीवनयापन करते थे। मित्रो के साथ तीन-चार दिन तक दूसरे कस्बो मे घूमने-फिरने और मौज-मस्ती करने का अवसर मिलता, हँसी और चुहल का उन्मुक्त वातावरण रहता। बरात मे बुड्ढो का मन भी बच्चो और युवको का सा हो जाता था। जनवासे के लोगो के साथ हँसी-दिल्लगी होती रहती। इस सन्दर्भ मे मुझे कई प्रकार की घटनाएँ याद है।

एक बरात मे एक दादा और पोता गए। दोनो की खुराक अच्छी थी। भोजन के बाद रात मे दूध लेकर जनवासे मे लोग आए। बराती थके हुए थे, इसलिए सो गए। उन्होने दूध पीने से इनकार कर दिया। लडकी वालो ने व्यग किया, 'घर मे कभी दूध पिया हो तो पिएँगे।' दादा जग रहे थे। उन्होने जवाब दिया, "पिया हुआ तो नही हे, लेकिन आज पी लेगे।" दस-बारह सेर दूध था। दादा ने जब आठ-नौ सेर दूध पी लिया, तो पोता बोल उठा, "कुछ मेरे लिए भी तो छोडो।" शेष बचा दूध पोते ने समाप्त कर दिया।

अब तो दूसरे बराती भी दूध की माँग कर बैठे। आधी रात को भला और दूध कहाँ से आता। शर्मिन्दा होकर वह पक्ष के लोग वापस चले गए।

एक विवाह मे बराती लोग जीमने बैठे। लड्डू कुछ कडे थे। एक ने लडकी वालो को

बुलाया और ऊँची आवाज में सबको सुना कर कहने लगा, "साह जी, कृपया ५० सिललोढे और ५० आदमी जल्दी मँगाइए।" कारण पूछने पर वह बोला, "सिल ठोडी के नीचे रखेंगे, सिर पर लोढे की चोट लगेगी, कुछ मुँह का जोर लगाएँगे, तब आपके लड्डू फूट पाएँगे।"

सब लोग हँसने लगे लडकी वाले खिसियाकर रह गए।

इसी प्रकार एक विवाह मे बादाम की बरफी बहुत पतली थी और कम परोसी जा रही थी। एक बराती ने पास बैठे एक बालक का चिकौटी काट दी। बच्चा चिल्लाया। लोगो ने रोने का कारण पूछा तो बराती महोदय बोले, "यह बादाम की बर्फी के लिए रो रहा है। शैतान कही का, पूरी-साग नही खाता।" जब बादाम की बर्फी आई तब उस बाराती ने अपने लिए भी बहुत सी ले ली।

इन स्वस्थ हास-परिहासो के साथ-साथ कभी-कभी भोडे मजाक भी हो जाते थे। जनवासे वालो ने उनको सबक सिखाने का निश्चय किया। बरात के डेरे मे से रात को किसी प्रकार उनके दो कुरते मँगा लिए गए। दूसरे दिन दो वेश्याएँ दोनो कुरते लेकर डेरे पहुँची और सब लोगो के सामने कहने लगी कि 'आपके यहाँ से ये दो सेठ कल रात हमारे यहाँ गये थे, इनके पास पैसे कम थे। इसलिए उन्होने ये कुरते गिरवी रख दिये थे। इनसे हमारे पैसे दिला दीजिए।'

दोनो बरातियो की शक्ल पहले ही वेश्याओ को चुपके मे दिखा दी गई थी। बात इतनी प्रत्यक्ष थी कि शका की कोई गुन्जाइश नही रही। वे बेचारे बहुत ही शर्मिन्दा हो गए।

सिर पर लाल पाग और गुलाबी कमरबन्द सहित लाल बागा, मस्तक पर गोटे-किनारे का झूलता सेहरा, यह होती थी वर की पोशाक। मेहदी लगे हाथ मे रहती तलवार। वर घोडी पर चढ कर जुलूस के साथ लडकी वालो के यहाँ जाता और उनके दरवाजे पर लगे तोरण पर तलवार से या बेर की झाडी की हरी छडी मारता। इस जुलूस को 'ढुकाव' कहते। धनी महाजनो और जमीनदारो के ढुकाव सजे हुए हाथी पर निकलते। ढुकाव गाँव या कस्बा के मुख्य मार्गो, बाजारो से निकलता। जनवासे पहुँचते ही गुलाब-जल या केवडा-छिडक कर और इत्र लगा कर बरातियो का स्वागत किया जाता।

भाँवरे या फेरे या आम तौर पर गोधूली या आधी रात की बेला मे होते। लडके-लडकियो का विवाह छोटी अवस्था मे ही कर दिया जाता इसलिए अक्सर देखा जाता कि वर और वधू फेरो मे नीद्र ले रहे है।

बराते प्राय चार-पाँच दिन ठहरती। बराती लोग गाँव कस्बे के दर्शनीय स्थानो को देखते और ताश-चौपड आदि खेलो मे मस्त रहते। रोज दोनो समय नए कपडे पहन कर अपना शौक पूरा करते। घर मे पानी के अभाव मे जहाँ नहाने का नागा करना पडता, वहाँ बरात मे तीन-तीन बार नहाते और वह भी एक बार मे दस-बारह बाल्टी पानी से कम नही। राजस्थान मे और हमारे इलाके मे उन दिनो वैसे ही पानी की कमी थी, बराते आ जाती तो पानी की बडी समस्या हो जाती। लडकी वाले इस सवाल को लेकर बडे चिन्तित रहते। लेकिन समाज और बिरादरी का मेलमिलाप इतना स्नेहपूर्ण था कि सब एक दूसरे की कठिनाई दूर करने को तत्पर रहते।

था, जो आज भी सीमित रूप मे चालू है । इसस जहाँ लडकी वाले का आर्थिक बोझ हल्का होता, वही सामाजिक स्नेह भी पलता-पनपता । सहकारिता का यह एक अनुपम उदाहरण था ।

बराते धर्मशालाओ मे ठहरती । आज भी उनकी दीवारो पर स्याही या कोयले से लिखा हुआ मिल जाता है कि किस गाँव मे किस सवत् मे इतने आदमियो की बरात आई । अपने गाँव की तुलना मे इस गाँव को हल्का बताने की भी चर्चा रहती । बरात की जीमनवार के समय वधू पक्ष की महिलाएँ बरातियो को सुन्दर भावपूर्ण सीठने (गालियाँ) देती रहती । यह प्रथा शायद रामायणकाल से ही चालू है । सीताजी के विवाह के समय भी राजा जनक के यहाँ की स्त्रियो ने अयोध्या के बरातियो को सीठने गाए थे ।

बरात को औपचारिक विदा दी जाती, जिसे 'पहरावणी' कहते । बराती और जनवासे वाले सभी एक जगह बैठ जाते । दहेज का कागज पढा जाता । सभी को तिलक किया जाता । औरते गीत गाती 'पहरावणी सजन मिलावणी ।'

और अत मे होती कन्या की विदाई । छोटी-सी बालिका को जब उनके घर वाले विदा करते, तब न केवल वह सुबक-सुबक कर रोने लगती बल्कि उसकी माँ, बहिनो, भाभियो, पिता, चाचा और भाई सभी की आँखे गीली हो जाती । वे सब उसे गले से लगाकर आशीर्वाद के साथ-साथ कुछ नकद भेट भी देते । उस समय जो हृदयस्पर्शी गीत गाया जाता, वह वास्तव मे इतना करुणाजनक होता कि हर किसी को रुलाई आ जाती ।

परिवार रूपी आम्रकुज की कोयल अपने माता-पिता, चाचा-चाची और भाई-भावज की ममता और प्यार भरी दुनिया छोड कर किसी परदेशी सुग्गे के साथ अन्य प्रदेश को उड रही है । सभी उसमे करुणार्द्र स्वर मे पूछ रहे है, 'ए कोयल, तू माँ-बाप आदि का इतना लाड-प्यार छोड कर कहाँ चल दी ?' 'ओल्यू' अर्थात् यादगीत की ये पक्तियाँ कितनी मार्मिक है

आबा पाक्या ने आबली, ए आबा पाक्या ने आबली,
मऊडो लहरा खाय, कोयलडी सिध चाली ।
इतरो माताजी रो लाड छोडने सिध चाली ।
म्हे थाने पूछा म्हारी लाडली, म्हारी घीवड़ी ऐ ।
इतरो बाबोसा री लाड, इतरो काको सा रो लाड छोडने सिध चाली ।
रमती बाबोसा री पोल, रमती काकोसा री पोल,
आयो परदेशी सूवटियो, आयो बागा से सूवटियो ।
लेग्यो टोली मे स्यूँ टाल सूरजमल ले चाल्यो,
ऐ थाने गायडमल ले चाल्यो ।

कन्या के साथ एक नाइन और उसका छोटा भाई जाते, इसलिए कि नए घर मे पहली बार जा रही है तो उसका मन लगा रहे । ससुराल मे वर-वधू के प्रवेश पर आरती उतारी जाती । उस समय का उसके स्वागत का गीत भी बहुत भावपूर्ण है

ओ तो जीत्या आपरे बावजी रै पाण, केसरियो लाडो जीत्यौ जी ।
ओ तो जीत्योडा रा ढोल गुराय, टोडरमल जीत्या जी ।

(हमारा लाडला दूल्हा अपने दादाजी, पिताजी और बाबाजी आदि परिजनो के बल पर नगाडो की आवाज के साथ वधू को जीत कर ले आया है ।)

यह सामती प्रथा का प्रतीक था, क्योकि मध्ययुग मे कभी-कभी विवाहो के अवसर पर आपसी युद्ध हो जाते थे ।

वधू को दो-तीन दिनो तक बहुत लाड-प्यार मे रखा जाता । उसे गहने और कपडे पहना कर सारे गाँव की बडी-बूढियो के पाँव छूने भेजा जाता । उसकी हम उमर लडकियाँ उसका घूघँट हटा कर मुहँ दिखाती और बहू के रूप की घर-घर चर्चा होती । मुँह दिखाई या पग

पकडाई की एवज मे नकदी या गहने दिए जाते । इस प्रकार उसके पास कुछ धन यानी स्त्री-धन इकट्ठा हो जाता ।

गाँव के देवी-देवताओ के यहाँ वर-वधू गठजोडे से जाकर प्रणाम करते कुछ चढावा चढाते । साथ मे महिलाएँ मगल-गान करती रहती ।

मेरा विवाह सन् १६२० के मार्च महीने मे होली के दूसरे दिन हुआ । मेरी उम्र थी १० वर्ष । शादी के एक महीने पहले से ही गीत और उत्सव शुरू हो गए । मेरे लिए गोद के लड्डू वने । ससुराल और वहन के घर से भी मिठाई आई । दोस्तो को देने के लिए मिश्री, वादाम जेव मे भरे रहते । शादी से पाँच दिन पहले हल्दी हाथ हुआ । परिवार की सुहागिनो ने हाथो और पैरो पर हलदी लगाई, उवटन किया और मामा ने चौकी पर से उतारा । और अब मै 'वीन राजा' (दूल्हा) वन गया । हाथो मे लोहे की पतली छड का गेड़िया (स्टिक) और तन पर हलके गुलावी रग के कपडे वरावर रहते । कानो मे मोती की वालियाँ और चोपडे (कुडल), गले मे गोप (जडाऊ गलपट्टी) और हाथो मे सोने के कडे पहनाएँ गए । मुझे याद है कि हमारे यहाँ ये सव गहने नही थे, इसलिए हमारे पडोसी श्री भैरोदान आँचलिया के यहाँ से मँगाए गए थे ।

वडे बूढे भी मुझसे प्यार और अदव से वात करते थे । मुझे लगता कि मैं वहुत वडा हो गया हूँ । एक प्रकार का गौरव-सा महसूस करता । शादी से पहले दिन 'निकासी' (घुडचढी) हुई और मुझे लाल वागा पहनाया गया, जो वर की अनिवार्य पोशाक थी । गले से घुटनो तक लाल रग के इस चोगानुमे वागे पर ऊपर से नीचे तक जरी की सुनहली धारियाँ थी । मखमल से मढी एक म्यान मे छोटी-सी कटार मेरे कधे मे लटका दी गई । कमर पर गुलावी कपडे मे लपेट कर एक नारियल वाँध दिया गया । माथे पर तारो का तिलक, सिर पर पाग और उस पर सिरपेच और सेहरा । एक अजीव स्वांग-सा लगने लगा । रात मे वहन मनोहरी देवी के घर ठहरा । कमर मे वँधे हुए नारियल से मुझे तकलीफ हो रही थी । मैंने वहन से कहा तो उन्होंने नारियल सहित कमरवद खोल कर अलग रख दिया, जब कि ऐसा करना सगुन की दृष्टि से अशुभ था ।

दूसरे दिन सुवह वरात रतनगढ के लिए रवाना हुई । उन दिनो रेलो मे सवारी डिव्वो की कमी रहती, इसलिए वाराते माल के खुले डिव्वो मे आती-जाती । एक सुविधा भी रहती । दरी विछा कर आराम से वैठ जाते और ताश चौपड खेलते रहते । हमारी वरात मे से भी कुछ लोगो को माल के डिव्वों मे जाना पडा ।

वरात रतनगढ पहुँची, जो हमारे यहाँ से ३० मील दूर है । वरातियो की सख्या करीब १२५ थी । हमे दो-तीन स्थानो मे ठहराया गया । मेरे ससुराल वाले कलकत्ता मे रहते थे । हमारी अपेक्षा वे सम्पन्न भी थे । इसलिए शादी मे उन्होंने जी खोलकर खर्च किया । वहाँ वरात तीन दिन रही । खातिरदारी अच्छी हुई । सव वरातियो को भेंट दी गई । हमारे परिवार के सभी सदस्यो को शालदुशाले ओढाए गए । आज भी कमवेशी रूप मे ये रिवाज चालू है ।

उन दिनो की एक प्रथा थी । किसी गाँव मे जव किसी दूसरे गाँव से वरात आती तव वर पक्ष की ओर से अपने गाँव की सभी व्याहता वहन वेटियो को मिठाई भेजी जाती । साथ मे चार आने से लेकर एक रुपया तक उपहार भी । आवागमन के साधन कम थे । इसलिए इनको पीहर जाने का मौका कम मिलता, पर जव कभी उन्हें यह छोटा सा उपहार मिलता, उन्हे अपने पीहर की याद आ जाती और वे गद्गद् हो जाती ।

जलम जलम गुण गाऊं रे कागा

राजस्थान के हमारे इलाके मे वर्षा पर खेती निर्भर रहती। वर्ष मे केवल एक फसल होती। जिस साल वर्षा समय पर नही होती, उस साल अनाज नही होता। किसान बादलो की तरफ करुणा-भरी दृष्टि से देखते रहते। आषाढ सूखा चला जाता तो चिन्ता की रेखाएँ चेहरो पर उभर आती। इन्द्र देवता को प्रसन्न करने के लिए जगह-जगह यज्ञ किये जाते। पर अधिकाशत लोगो की आशाएँ धूमिल हो जाती और जब आश्विन निकल जाता, तब खेत मे जो कुछ चारा-दाना या थोडा सा अनाज होता, उसे बटोर कर घर ले आते। गाँवो मे मातम छा जाता। लोग आपस मे बाते करते कि भगवान की यही मरजी थी।

अधिकाश खेत ठाकुरो के होते, इसलिए जोतदार किसानो को उन्हे थोडा-बहुत लगान भी देना भारी हो जाता। वैसे कुछ ठाकुर या जमीदार दयावान भी होते थे, पर कही-कही बहुत निर्दयता भी बरती जाती थी। यहाँ तक कि किसानो के ऊँट-बैल और गाय-भैस आदि जब्त कर लिए जाते। घर मे सियापा-सा पड जाता। जिस समय ठाकुर के आदमी इन पशुओ को हाँक कर ले जाते, घर वाले रोने-कलपने लगते, जैसे उनके अपने बच्चो को ही ले जाया जा रहा हो। ये ठाकुर राजा के छुट-भैया होते, इसलिए राज्य मे गरीबो की कोई सुनवाई नही होती थी। कभी-कभी इन्ही दु खित और सताए हुए घरो के युवक बदला लेने की भावना से ठाकुरो के दल मे मिल जाते।

मेरे जन्म के १० वर्ष पहले विक्रम सवत १९५६ मे राजस्थान मे बहुत भीषण अकाल पडा था। इसे 'छप्पनिया' अकाल कहते है। मैने लोगो को गीत गाते हुए सुना था, 'छप्पनिया रे अकाल, फेरूँ मत आजे म्हारे देश।' (अरे छप्पन के अकाल, हमारे देश मे फिर कभी मत आना।) रेल और ट्रको का यातायात था नही, ऊँट और बैल मर गए थे, इसलिए दूसरे प्रान्तो से अनाज और चारा नही पहुँच सका। लोगो की कमर मे रुपयो की 'नाली' बँधी रही और वे अनाज के अभाव मे भूख से तडप-तडप कर मर गए।

मेरी दादी कहा करती कि गाँवो के रास्तो मे गाय-भैस, ऊँट-बैल और आदमियो के ककाल चारो तरफ बिखरे पड़े थे। भयानक दृश्य था। आज तो यदि देश के किसी हिस्से मे भूख से लोगो के मरने की जरा भी रिपोर्ट मिले तो विधान सभा और ससद मे सरकार को जवाब देना मुश्किल हो जाए, पर उस समय कानून-कायदे राजाओ के हाथ मे थे, उनकी मौजशौक अबाध गति से चलती रहती थी।

सवत् १९५६ मे जितना बडा अकाल पडा, १९५७ मे उतना ही अच्छा जमाना (फसल) हुआ। लोगों के पशु मर गए थे, इसलिए स्त्री-पुरुषो ने अपने कधो पर हल जुआ रखा और खेतो की बुआई की। मन मे डर भी था कि इस बार भी वर्षा न हुई तो क्या होगा ? पर सावन मे

मूसलाधार वर्षा हुई। भादा में भी पानी बरसा। जहाँ बुआई नही थी, वहाँ भी अनाज हो गया था। दादीजी कहती थी कि लोग भूखे थे, सब्र था नही, इसीलिए कच्चे अनाज को ही तोड-तोडकर खाने लगे। उस साल अनाज इतना सस्ता हो गया कि बनियो ने अपने कोठे भर लिए।

मेरे दादाजी ने अपने बचपन मे सवत् १६०० और १६०१ के अकालो की कथा सुनी थी। वे ५६ के अकाल की तरह भयकर तो नही थे, किन्तु दो साल लगातार सूखा पडने से उत्तर भारत मे हाहाकार मच गया था। उस समय जनसख्या वैसे ही थोडी थी और इन अकालो के कारण इनमे से अधिकाश लोग मर गए। लोगो ने इन दोनो अकालो का नाम 'सैया' और 'भैया' रख दिया। कहते है, ये अकाल इतने भयावह थे कि १६०१ मे किसी घर मे चक्की की आवाज आती तो १६०१ का दुर्भिक्ष 'भैया' १६०० के दुर्भिक्ष 'सैया' से कहता, 'चाकी चले रे सैया,' तो १६०० का दुर्भिक्ष आश्चर्य प्रकट करता, 'माणस बोले रे भैया!'

किसी-किसी कस्बे के सेठ-साहूकारो ने अकालो के समय राहत के काम शुरू किए और आज भी उस समय के बने हुए जोहड, बावडी, तालाब, मदिर और धर्मशालाएँ आदि देखी जा सकती है। इनके निर्माण की मजदूरी के बदले मे आधा सेर अनाज प्रति व्यक्ति दिया जाता, जिसकी उस समय कीमत थी-दो पैसे।

प्रथम महायुद्ध के बाद कुछ समय तक तो वस्तुओ के भाव महँगे रहे, पर थोडे ही दिनो बाद घटने शुरू हो गए और सन् १६३० तक सारे देश मे मदी का दौर छा गया। उस समय की बहियाँ हमारे यहाँ आज भी सुरक्षित हैं इनमे जो कीमते लिखी है, वे आज की पीढी के लिए आश्चर्य और कुतूहल की बाते लगती है। नीचे मैं दैनिक जरूरत की कुछ वस्तुओ के तत्कालीन भाव दे रहा हूँ। इनमे प्रति वर्ष थोडी सी घटा-बढी होती रहती थी—

गेहूँ ढाई से तीन रुपए मन, चना, मोठ और बाजरा डेढ से दो रुपये मन, मूँग, अरहर और उरद की दाले ढाई से तीन रुपये मन।

चावल का खाद्य उस समय बहुत कीमती समझा जाता था, जो कभी बार-त्योहार पर ही बनता था। पजाब के बासमती चावलो का भाव था आठ रुपये से १० रुपये मन तक।

घी एक रुपया सेर, देशी चीनी : चार पाँच आने सेर; दूध रुपये का १६ सेर, तिल्ली का तेल रुपये का तीन साढे-तीन सेर, बादाम सवा रुपये सेर, काजू १०-१२ आने सेर, पिस्ता दो रुपये सेर, दाख आठ आने सेर, १० गज की धोती (जोडा) सवा रुपये से डेढ रुपये तक, लट्ठा और मारकीन . दो आने से ढाई आने गज तक, अच्छी मलमल ६ आने से आठ गज तक, जापान की रेशमी बोसकी (दो घोडा मार्का) १४ आने गज, अच्छी गाय के दाम २५ रुपये से ४० रुपये तक भैस का मूल्य ४० से ६० रुपये तक, बैल, घोडे, ऊँट आदि उनकी नस्ल और चाल-ढाल पर निर्भर थी।

नागौर (जोधपुर) मे प्रति वर्ष पशुओ का मेला लगता। वहाँ हमारे यहाँ से भी खरीदार जाते। एक बार ५०० रुपये मे सौराष्ट्र की एक घोडी किसी महाजन के यहाँ आई, जिसे देखने के लिए आस-पास के गाँवो से कई दिनो तक लोग आते रहे। उस समय ५०० सौ रुपये की उस घोडी का महत्व रेस के अपने समय के सर्वोत्तम घोड़े 'औरेज विलियम' से कम नही था।

हमे स्कूल जाते समय रोज एक पैसा मिलता था। उससे कभी तो दही मे भीगी हुई दो कचौरियाँ ले लेते, कभी एक कचौरी और चार काँजी बडे। जिस दिन दो पैसे मिलते, उस दिन मीठे और नमकीन दोनो का नाश्ता होता। पर इन सबसे ज्यादा हमारी पसद की चीज थी हनुमाने स्यामी की बर्फ। जब वह अपनी सुरीली आवाज मे 'आम की बर्फ मलाई की बर्फ' बोलता तब हम बच्चे चारो तरफ से उसे घेर लेते। एक छटाँक बर्फ के तीन पैसे होते, जो अगले दिन हम चुकता कर देते। एक दिन वह हमे बर्फ बनाने की मशीन दिखाने अपने घर ले गया। छोटी सी मशीन थी, जिससे दिन भर मे चार पाँच सेर बर्फ जम जाती थी।

गॉव क मोची अच्छे देसी जूते बनाते, जिन पर सलमे-सितारो का काम और हाथ की सुन्दर कारीगरी रहती। बच्चो के जूते १२ आने मे एक रुपया जोडा तक के होते और बडो के डेढ रुपये से दो रुपये तक मिल जाते। मेरे पैर बचपन से ही बडे थे, इसलिए मोची मेरे जूतो के दाम कुछ ज्यादा ही लेता था। इसको लेकर एक बार कही-सुनी भी हो गई। जब उसे बच्चे के जूतो के दाम दिए जाने लगे तब उसने कह दिया- 'सेठ जी, पैर तो बडो से भी बडे है, फिर दाम कम कैसे लूंगा!' इस पर उसे हमारे दादाजी धमकाने लगे कि बच्चे को नजर लगा रहा है।

उस समय कारीगर महाजनो की बहुत इज्जत करते थे, इसलिए वह कमती दाम ही ले गया।

उस समय थोडे से व्यक्ति तो दिसावर (बगाल, असम और बम्बई) की तरफ मे व्यापार-व्यवसाय के लिए चले जाते, पर अधिकाश वही रहकर खेती-वाडी और विभिन्न प्रकार के घरेलू धन्धो तथा लेन-देन के व्यापार मे लगे रहते। गल्ले, किराने और दूसरे प्रकार की वस्तुओ की दुकाने थी। आवागमन के साधनो की कमी के कारण आज जितनी बडी मडी तो नही थी, फिर भी सरदारशहर आस-पास के गॉवो-कस्बो मे अच्छा व्यवसायिक कस्बा माना जाता था। थोडी दूर पर जब गगानगर इलाके मे गगानहर बन गई, तब गेहूँ, चना भी प्रचुर माता मे आने लगा, इससे कस्बे मे व्यवसाय-वाणिज्य बढ गया।

उस समय पान की केवल दुकान थी-मनजी पनवाडी की। पैसे के चार पान सॉची या दो पान मीठे मिलते थे। चाय की दूकान का प्रश्न ही नही था। कभी-कभार किसी को सर्दी-जकाम हो जाता तो विरधीचन्द जी करवा के यहॉ से थोडी चाय की पत्तियॉ मॉग कर ले आते। असम मे उनका कारोबार था। आज सरदारशहर मे चाय और पान की सैकडो दूकाने है।

हलवाइयो की तीन-चार दुकाने थी। मिठाइयॉ शुद्ध घी मे बनती और नमकीन तिल्ली के तेल मे। वनस्पति घी का उस समय तक आविष्कार नही हुआ था। कन्हैयालाल जी कदोई की मिठाई बहुत प्रामाणिक मानी जाती थी। एक रुपये में बूँदी के तीन सेर लड्डुओ व चार आने के सवा सेर भुजियो (सेव) मे १०-१२ आदमियो का नाश्ता मजे मे हो जाता।

पसारियो मे द्वारिकादास जी पसारी की याद आज भी ताजी है। वैसे उनके यहॉ चीजो के दाम दूसरो की अपेक्षा कम होने पर उनके हाथ मे कुछ ऐसा हुनर था कि घर जाकर तोलने पर वस्तुएँ दूसरो के भाव ही ठहरती। एक बार रमजान चेजारा उनके यहॉ तमाखू लाने गया। सेठ जी ने एक सेर तमाखू तौल दी। चेजारे ने कहा- 'हम आपके घर के कारिंदे है, कुछ तो ज्यादा मिलनी चाहिए।' उन्होने उदारतापूर्वक चार बार दोनो हाथ भर कर और देदी। खुशी-खुशी घर आकर जब उसने तमाखू तौली, तब वह पूरी एक सेर ही उतरी।

मुल्तान जी मदोई अपनी मीठी दिल्लगी के लिए प्रसिद्ध था। जान-पहचान के एक आदमी ने उससे एक रुपये की मिठाई ली। उसने तीन सेर तौल दी। खरीदार ने बहुत आग्रह किया कि पीछे एक पाव का बटखरा तो और डालो। उसने हँसकर कहा, "आप कहे तो पीछे पसेरी तक डाल दूँगा। पर बूँदी का एक दाना भी नही।" झल्ला कर ग्राहक ने कहा, "अच्छा काका, एक बडा कागज तो दो। मेरी चद्दर चिकनी हो जायेगी।" मुल्तानचन्द ने जवाब दिया, "मुल्ताने की मिठाई मे चद्दर चिकनी होने का डर नही है, बेफिक्र रहिए।"

उस समय सब्जी बाजार आज जितना बडा नही था। गगानगर और दिल्ली से आज की तरह विभिन्न सब्जियॉ या फल नही आते थे। हॉ, मौसम के फल और तरकारियॉ कुजडिने और मालिने लाती थी। उन्ही को सुखा कर रख लेते और मौसम के बाद भी उनका इस्तेमाल किया जाता। वैसे आमतौर पर भोजन था--रोटी, दाल, मोठ, बाजरे की खिचडी, कढी और मौसम की तरकारी। घरों मे 'घीणा' नहीं होता, वे पास-पडोस से 'छाछ' मॉग कर राबडी या कढी कर लेते। छाछ मॉगने मे किसी प्रकार का सकोच नही था। हमारे यहॉ कहावत भी प्रचलित थी कि 'बेटी और छाछ मॉगने मे लाज क्या!'

उस समय कर्मचारियों, मजदूरो या कारीगरों का वेतन बहुत कम था, पर चीजें सस्ती थीं और लोगों की आकाक्षाएँ सीमित थी, इसलिए वे उसी मे सुखी थे। आज की तरह 'हाय-हाय' या अभाव की खटक नही थी। अच्छे राजमिस्त्री की तनख्वाह थी १० से १२ रुपये प्रति माह। इतना ही बढ़ई कारीगर को मिलता।

पुरुष मजदूरो को प्रतिदिन तीन-चार आने तथा स्त्रियों को आठ-दस पैसे मिलते। घर में काम करने वाले नौकरो का वेतन था रोटी, कपडा और दो रुपये महीना। कपड़ों को लोग बहुत सहेज कर रखते थे। इस सन्दर्भ मे मुझे एक बात याद आती है। हमारे यहाँ बन्ने खाँ नाम का कारिंदा था। उसके पास एक नया साफा था (पगड़ी) और एक पुराना साफा था। पुराना साफा ३५ वर्ष पहले का था, जबकि नया १५ साल पहले का। एक जोड़ा धोती और दो कुरतो को वह डेढ दो वर्ष तक चला लेता।

उस समय थानेदार की तनख्वाह थी ३२ रुपये माहवार। अर्जीनवीस का वेतन था १५ रुपये। तहसीलदार को गाँव और तहसील का सबसे बडा हाकिम माना जाता था। उसके यहाँ बडे-बडे सेठ-साहूकार भी हाजिरी देने जाया करते थे। वह माल और फौजदारी दोनों तरह के मामले निपटाता था। उसका वेतन रहता ५० रुपये महीना। इसके अलावा सरकारी दौरे पर जाते समय उसे घोडे की सवारी भी उपलब्ध थी।

एक दो बार मै भी पिताजी के साथ 'गढ' यानी तहसील-कार्यालय में गया था। तहसीलदार ने हँस कर मेरा नाम पूछा। मै उस समय शायद सातवीं कक्षा में पढ़ता था। उमर थी १०-१२ वर्ष। मैने अग्रेजी मे कहा—"माई नेम इज रामेश्वर।"

पिताजी कई दिनो तक यह बात लोगों से बताते रहे कि किस प्रकार मै हाकिम से अग्रेजी मे बोला। उसके बाद तो जब कभी बाहर के किसी अफसर या स्टेशनमास्टर से बात करनी होती, तब हमारे दादाजी और पिताजी हमें कहते कि अंग्रेजी मे बोलो। उनकी धारणा थी कि अग्रेजी मे बोलने से उन सब पर अच्छा प्रभाव पडेगा।

गॉव मे सबसे ज्यादा तनख्वाह थी हेडमास्टर की—६७ रुपये महीना। लेकिन उनसे भी ज्यादा तनख्वाह पाने वाले एक व्यक्ति हमारे पड़ोस मे थे। ये थे श्री राजरूप जी। वह कलकत्ते की एक फर्म 'थानसिह करमचन्द' के बडे मुनीम थे। उनका मासिक वेतन था २०० रुपये। बाहर के गॉवो के लोग उन्हे देखने आते थे। उस समय यह अचम्भे की बात समझी जाती थी। एक दिन राजरूपजी हमारे घर मिलने आए थे। हम बच्चे उसको बड़ा शुभ दिन माना और सोचने लगे कि क्या हम भी कभी उतने बड़े आदमी हो पाएँगे।

उस समय देशाटन या भ्रमण के लिए तो शायद ही कोई गाँव से बाहर जाने की सोचता था। साधन कम थे, लोग कमखर्ची से रहते थे, इसलिए इन सब कामों को फिजूलखर्ची में गिना जाता था। हाँ, व्यापार-व्यवसाय या नौकरी के सिलसिले में लोग न केवल असम, बंगाल, बल्कि बर्मा तक भी जाते थे। यह यात्रा एक से तीन वर्ष तक की होती। कुछ वर्षों पहले कई व्यक्तियो ने १०-१०, १२-१२ वर्ष की मुसाफिरी भी की थी। हमारे यहाँ के पीथीरामजी पीचा ने जोरहाट (असम) की दो मुसाफिरी २० वर्षों में की थी। विवाह करके वह गए, और उसके १५ वर्ष बाद वापस आए। इससे मिलते-जुलते और भी कई उदाहरण मिल जाएँगे। लेकिन ये सब बातें १६ वी शताब्दी के अन्तिम चरण तक की हैं। उस समय असम की यात्रा में तीन-चार महीने लग जाते थे। ग्वालन्दो (बांगला देश) से असम नौकाओं से जाना पड़ता था। रास्ते में जलदस्युओं का डर रहता, इसलिए १०-२० व्यक्ति साथ मिलकर यात्रा करते।

पति और उसके माता-पिता को धन का लोभ है, गोरी के मन की व्यथा को वे क्या जाने।

थारे बाबो सा ने चाए भँवर जी धन घणोजी,
हाँ, जी, ढोला, कपड़े री लोभण थारी मांय।
सेजां, री, लोभण उड़ी के गोरड़ी जी,
थारी गोरी उड़ावे काग.........

और प्रियतम को अर्थ की चिन्ता से मुक्त करने के लिए वह खुद रोकरुपैया, सोने की मोहर, बनने को तैयार है, किसी प्रकार प्रियतम रुके तो

रोकरुपैया, भँवर जी मै बणुजी, हाँ, जी, ढोला, बण ज्याऊँ पीली
पीली म्होर।
भीड़ पड़े जब भँवरजी, बरत ल्यों जी,
ओ, जी, म्हारी सेजारा सिणगार।

कष्ट पडने पर मुझे वरत लेना, मै नकद रुपया बन जाऊँगी—कितनी दर्द—भरी व्यजना है।

वह घर मे ही कपडा बुनने के उद्योग की योजना प्रस्तुत करती है, ताकि पति-विछोह का दुख देखना न पडे

चरखो तो ले ल्यूँ भँवरजी, रांगलों जी
हाँ, जी, ढ़ोला, पीढो लाल गुलाल, तकवो तो ले ल्यूँ भँवरजी,
बीजलसार को जी,
ओ, जी, म्हारी जोड़ी रा भरतार।
पूणी मँगा ल्यूँ जी के बीकानेर की जी।
म्होरम्होर की भँवरजी, कातूँ कूकड़ी जी।
हाँ, जी, ढोला रोक रुपये रो तार,
मै कातूँ थे बैठ्या विणन ल्यो जी...........

(मै कातूँ और आप कपडा बुन ले। गृहउद्योग के माध्यम से अर्थ की चिन्ता दूर होगी, परदेश जाने की फिर जरूरत ही नही रहेगी।)

लेकिन स्त्री की कमाई पर रहना कोई मर्द बर्दास्त नही करता। साहूकार के वेटे को तो अपनी मेहनत और वुद्धि से कमाना है और इसके लिए परदेश जाना लाजिमी है। लेकिन प्रियतमा का तर्क है कि उजडी जमीन समय पाकर बस्ती बन सकती है, निर्धन लोग धनवान हो सकते है, किन्तु यौवन की यह उमर जो ढल जायेगी वह वापस नही आएगी, यौवन सदा थोडे ही रहता है, आज है कल नही।

उजड़ खेड़ा भँवरजी फिर बसे जी,
हाँ, जी ढोला, निरधनियाँ धनै होए
जोबन गयो, न पीछे बावड़े जी, ओजी थानै लिखूँ मै बारबार।
जोबन सदा न भँवरजी थिर रहे जी,
हाँ, जी, ढोला फिरती घिरती छाँय.........

पीपली का यह गीत लगभग सारे राजस्थान मे अत्यन्त लोकप्रिय है। ठडी रातो मे राजस्थानी युवतियाँ जब समवेत स्वरो मे इस गीत को गाती है तो दर्द स्वय साकार हो उठता है।

विरह-व्यथा के सदेश को काग, कुरजा, मोर, पपीहे आदि पक्षियो के मार्फत प्रियतम तक पहुँचाने के प्रयास को अनेक गीतो मे अभिव्यक्त किया गया है। 'कागा' गीत मे विरहिणी नायिका कौए को अनेक प्रकार के प्रलोभन देती हुई उसे उड कर प्रियतम के पास जाने का आग्रह करती है। उसका विश्वास है कि यदि 'कागा' वहाँ जाकर उसकी व्यथा का वर्णन करेगा तो उसका प्रियतम प्रवास से लौट आयेगा। गीत के बोल है

उड उड रे म्हारा काला कागला, जे म्हारा पिवजी घर आवें।
खीर खाड को थाल परोसूँ, थारी सोने चोच मढ़ाऊँ, रे कागा !
कद म्हारा मारूजी घर आवे, पगल्यां मे बाँधू घूघरा थारै।
गले मे हार पिन्हाऊँ कागा, जे तूँ उड़नै सूण बतावे,
थारो जलम जलम गुण गाऊँ, रे कागा !

इसी प्रकार के और भी भाव-भरे गीत है जिनके माध्यम से राजस्थान की युवतियाँ अपनी पीडा को हलका करती थी। आज न तो उतनी लम्बी अवधि की यात्राएँ होती है और न अधिकाश स्त्रियाँ पतियो से दूर ही रहती है, फिर भी इन लोकगीतो मे कुछ ऐसा रस है, जो कभी फीका नही पडता।

इत्ती कहाणी, गोगा राणीं

व्यावसायिक यात्राओ के अलावा प्रौढ़ और वृद्ध स्त्री-पुरुषो मे तीर्थ-यात्रा बहुप्रचलित थी। चारों धाम की यात्रा तो कोई बिरला ही कर पाता था। द्वारका,पुरी और रामेश्वर के तीन धामो तक रेले चल गयी थी, इसलिए इनकी यात्रा एक बार मे ही हो जाती, किन्तु बदरीनाथ, केदारनाथ की यात्रा बंहुत ही दुर्गम थी। आने-जाने मे तीन-चार महीने लग जाते। रास्ते बीहड थे। कही-कही पहाड भी धसक जाते। डाडी और टट्टुओ की सवारी के लिए पैसो का अभाव रहता, इसलिए लोग अपना सामान कन्धे पर लादे पैदल ही चलते। दस-बारह की टोलियो मे जाते। सारे गाँव मे पहले से ही चर्चा हो जाती कि अमुक टोली उत्तराखण्ड की यात्रा पर जा रही है। गाँव के लोग जाने वाले से गले मिलते कि शायद फिर मिलना न हो। यात्री अपने साथ लौग, इलायची, कुछ मीठा-फीका पकवान, कुछ चूरन-चटनी और दो कम्वल ले लेते।

महीने या बीस दिन मे कभी-कभी उनके घरवालो के पास एकाध पोस्टकार्ड आ जाता, जिसमे किसी न किसी बीमारी का समाचार रहता। यह भी लिखा रहता कि गरुडजी की कृपा से यात्रा सफल हो जाएगी। उनकी मान्यता थी कि उत्तराखण्ड की कठिन यात्रा मे गरुडजी सहायता करेगे। यह यात्रीदल हरिद्वार, ऋषीकेश, बदरीनाथ, केदारनाथ और मथुरा-वृन्दावन होकर वापस आता। गाँव वाले उनकी अगवानी मे जाते। उनसे ऐसे मिलते जैसे कि बहुत वर्षो से बिछडे साथी मिल रहे हो।

इन यात्रियो को बहुल पुण्यात्मा माना जाता, इसलिए बडे-बूढे भी इनके पैर छूते। मै अपने माता-पिता के साथ सन् १९४५ मे बदरीनाथ, केदारनाथ गया था। उस समय तक गुप्तकाशी तक बसे चलने लगी थी। हमारे साथ एक महिला-भूरी की नानी थी, जो सात बार उत्तराखण्ड की यात्रा कर चुकी थी। यात्रा के समय उसकी बहुत कुछ पूछ रहती, क्योकि उसे ठहरने के स्थानो, उतार-चढाव आदि का पूरा ज्ञान था। खाने के अलावा वह कोई वेतन नही लेती। काम करती चार आदमियो के बराबर। बहुत पहले से लोग उससे वचन ले लेते।

मुसलमानो मे एक दो व्यक्ति कभी-कदाच हज के लिए (मक्का मदीना) जाते थे। ऐसे व्यक्तियो को हाजीजी कहा जाता था। हिन्दू और मुसलमान दोनो जातियो मे उनका बडा सम्मान रहता। हज से वापस आने पर कस्बे के छोटे बडे सभी उनसे गले मिलते।

कुछ मुसलमान और हिन्दू अजमेर के ख्वाजा चिश्ती साहब की दरगाह की यात्रा भी करते।

धर्म के नाम पर मनुष्य राजी खुशी कष्ट सह लेता है। चारो धाम देश के चार कानो पर स्थित है। हालाकि उनकी परिक्रमा बहुत ही कष्टप्रद और व्ययसाध्य रहती, फिर भी लोग

उसकी सम्पूर्णता मे अपने जीवन का निस्तार समझते । ऐसा देखा गया है कि लोग जीवन की सारी कमाई इन तीर्थयात्राओ मे खर्च कर देते थे । वैसे इसमे कई लाभ थे । यात्रा के अनुभव प्राप्त करने, जलवायु परिवर्तन, नए लोगो से परिचय और ऐतिहासिक स्थानो के अवलोकन आदि के अलावा सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि थी सारे देशवासियो की भावनात्मक एकता ।

इन दूरगामी तीर्थों के अलावा हमारे यहाँ स्थानीय छोटे बडे कई तीर्थस्थान थे । असम, बगाल और बर्मा तक के प्रवासी राजस्थानी अपने बच्चो के मुण्डन और अपनी मनौतियो की पूर्ति के लिए इनके दर्शनार्थ आते रहते थे । इनमे से विशेष प्रसिद्ध थे—सालासर और पूनरासर के हनुमानजी, बीजबायले की माताजी, देश-नोक की करणीजी, सीकर की जीणमाता, झुझुनू की राणीसती और खाटू के श्यामजी । इनके अलावा कुछ और भी सिद्ध पुरुषो और वीर शहीदो के स्मारक जहाँ-तहाँ थे । इनमे रामदेवजी, पाबूजी, भैरवजी और गोगा आदि प्रमुख है । इनमे सबकी मान्यता किसी न किसी वीरोचित कार्य या जनहितार्थ बलिदान के कारण हुई थी ।

गोगाजी एक ऐतिहासिक वीर हो गये है, जिनकी अद्भुत बलिदानगाथा चिरस्मणीय रहेगी । ११वी शताब्दी की बात है । महमूद गजनवी अपनी सवा लाख फौज के साथ सोमनाथ मन्दिर तोडने जा रहा था । रास्ते मे हिन्दू राजा और सामत उसकी अधीनता स्वीकार करते जा रहे थे । गोगाजी उस समय लगभग ८० वर्ष के वृद्ध थे । उनके बेटो-पोतो और सरदारो की सख्या कई सौ थी । वह बीकानेर के उत्तरी हिस्से मे एक छोटी सी गढी मे रहते थे । आसपास के क्षेत्र मे उनकी छोटी सी जमीदारी थी । जब गजनवी की फौजे उनके क्षेत्र के पास आने लगी, तब उन्होने एक सभा बुलाई और कहा कि 'यह म्लेच्छ भगवान शकर का अपमान करने जा रहा है, हमे इसे रोकना चाहिए ।'

सामतो ने अर्ज किया कि 'महाराज, कहाँ तो सवा लाख की सुसज्जित सेना और कहाँ हम ३०० सरदार ।' गोगा बाबा ने क्रोधपूर्वक कहा, "यह सवाल सवा लाख और ३०० का नही है । अपने जिन्दा रहते किसी प्रकार भी हम उसे सोमनाथ पर नही जाने देगे ।"

अन्त मे एक योजना बनी । गोगा बाबा के ज्येष्ठ पुत्र ने वेश बदल कर गजनवी की फौज मे जाकर उसे जैसलमेर के वीरान रेगिस्तान मे भटका दिया, जिसमे उसके हजारो सिपाही और घोडे गरम लू और प्यास से मर गए । इधर बाबा अपने साथियो सहित केसरिया बाना पहन कर फौज पर पिले पडे । जब तक एक भी सरदार बचा, शत्रुओ मे लडता रहा । कहते है कि इन ३०० वीरो ने उस बडी फौज मे तहलका मचा दिया था । इधर महिलाएँ और बच्चे एक बडी होमाग्नि प्रज्वलित करके उसमे समर्पित हो गये । इस प्रकार के स्वाभिमानी वीर विश्व मे कभी कदाच ही होते है । इसकी पूरी गाथा मैने बहुत बाद मे श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी की पुस्तक 'जय सोमनाथ' मे पढी थी । बीकानेर के भादरा कस्बे के पास गोगामण्डी मे आज वह प्राचीन गढी तो नही है, हाँ गोगाजी का एक मण्डप जरूर है । वहाँ प्रति वर्ष एक बड़ा मेला लगता है ।

रामदेवजी १६वी शताब्दी मे पोकरण-फलौदी (जोधपुर) मे हुए थे । एक बार मुसलमान लोग गाँव की गाये हाँक कर ले जा रहे थे । उनके आतक से किसी मे उनका सामना करने की हिम्मत नही थी । लेकिन वीर रामदेवजी ने अकेले ही घोडे पर चढ कर आततायियो का पीछा किया और गायो के छुडाने मे अपने प्राण गवाँ दिया । उनके सहायको मे गाँव के अन्त्यज ढेढ और चमार ही प्रमुख थे । इसलिए आज भी इनके पुजारी इन्ही जातियो के लोग होते है । हमारे यहाँ कहावत है कि 'रामदेवजी को मिले सो ढेढ ही ढेढ ।'

करणीजी १५वी शताब्दी मे एक चारण बाला हुई थी । इन्होने बीकानेर के सस्थापक राव बीकाजी की सहायता की थी । हमारे समय के बीकानेर-नरेश गगासिह के बारे मे कहा जाता था कि वह जब भी रियासत से बाहर जाते, बीकानेर से २० मील पर देशनोक नामक

गॉव मे स्थापित करणीजी के दर्शन अवश्य करते ।

झुझुनू की राणी सती भी इसी प्रकार की एक और वीर बाला मध्ययुग मे हुई है । जब गौना होकर वह अपने पति के साथ ससुराल आ रही थी, रास्ते मे नबाव के आदमियो ने हमला कर दिया । पति और साथ के आदमी वीरतापूर्वक लडते हुए मारे गये । सद्य विधवा बालिका अपना दु ख भूल कर अपने एक विश्वस्त अनुचर के साथ पति का सिर लेकर झुझुनू तक पहुँच गई और वहाँ आततायियो के पहुँचने के पहले ही सती हो गई । इस समय झुझनू मे उसके स्मारक-स्वरूप बहुत विशाल मन्दिर, धर्मशाला, स्कूल और पुस्तकालय आदि बने हुए है। लाखो यात्री प्रति वर्ष वहाँ दर्शनार्थ जाते है ।

हमारे क्षेत्र मे कहानियो और वार्ताओ के माध्यम से बहुत प्रकार के उपदेश दिए जाते थे। ये कहानियाँ उस समय लिखित पुस्तको मे नही थी । बडो द्वारा छोटो को सुनाई जाती रही थी । लोग गर्मियो मे रात के समय बाहर सहन मे ठडा पानी छिडक कर और सर्दी मे सरकडो और लकडियो की आग जला कर बैठ जाते । बडे लोग बारी-बारी से कहानी कहते और दूसरे 'हूँ' यानी हुँकारा देते जाते । कहानी शुरू करनें के लिए वे हमे इन शब्दो मे सावधान कर देते, 'बात कहता वार लागै, हुँकारे बात मीठी लागै । बात मे हुँकारो, फौज मे नागरो आधाक सोवे, आधाक जागै । सूतेडा की पगडी, जागतोडा ले भागै । जब बातो मे रग आवै ।'

इस प्रकार लोगो को कहानी सुनने को तैयार करके फिर वे शुरू करते । 'बात का चालणा, सयोग का पवणा रामजी भला दिन दे । एक राजा के तीन राणियाँ थी ' और फिर यह कहानी आधी रात तक चलती । कभी-कभी तो दूसरे दिन के लिए स्थगित रह जाती । हम बालको को इन लम्बी कहानियो मे रस नही आता, क्योकि ये हमारी समझ के परे की थी । हमे तो घरेलू बालकथाएँ, जो नानी, दादी या कस्तूरी दादी सुनाती, अच्छी लगती थी ।

शाम होते ही हम दादी जी को घेर कर बैठ जाते और उनसे कहानी सुनने का आग्रह करते । अधिकाश कहानियाँ राजारानी, चोर-साहूकार, रामायण-महाभारत या पौराणिक कथाओ पर आधारित होती । कभी-कभी वह हँसी की छोटी-छोटी कविताएँ भी सुनाती । जैसे 'काणी कवै कागलो, हुँकारो देवे भैया, आँध लिए नै चोर लेग्यो, भाग रे पागलिया ।' कहानी समाप्त करते समय जब वह किसी बच्चे का नाम लेकर कहती, 'ओड कहाणी, मूँगा राणी । मूँग पुराणा, रामू के सासरे का नाई, बामण सै काणा ।' तब जिस बच्चे का नाम लिया जाता वह यह सुन कर रोने लगता, दूसरे सब हँस देते ।

जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है, कहानी ज्यादातर रात के समय घर का काम समाप्त हो जाने के बाद ही सुनी-सुनाई जाती । अगर कभी हम दिन मे कहानी कहने का आग्रह करते, तो यह कह कर टाल दिया जाता कि दिन मे कहानी कहने से मामा रास्ता भूल जाता है ।

दादी और नानी के अलावा हमारे प्रिय कहानीकार थे लछमणा महाराज । वह हमारे यहाँ सुबह शाम पूजा-पाठ करते थे । सर्दी के मौसम मे हम दोनो भाई उनके दोनो तरफ कबली मे बैठ जाते और वे पूजा-पाठ बन्द करके हमे कहानी सुनाने लग जाते । हमारे दादाजी यह सब जानते थे, पर उन पर नाराज नही होते, क्योकि हम बच्चे सर्दी मे इधर-उधर न घूम कर एक जगह बैठे रहते ।

लछमणा महाराज हमे भालू, बन्दर और बिल्लियो की कहानियाँ सुनाते, धार्मिक कहानियाँ सुनाती दादी और नानी । हमे लछमणा महाराज की कहानियाँ ज्यादा पसन्द आती । हम उनसे भूतो और राक्षसो की कहानियाँ सुनाने का भी आग्रह करते, किन्तु वह यह कह कर टाल देते कि इनको सुनने से रात को बुरे सपने आएँगे । उनकी कहानी के साथ दो एक अन्य आकर्षण और भी जुडे थे । एक तो वह हमे भोग के लिए लाए हुए मखाने (चीनी से

लिपटे चने) और बताशे बीच-बीच मे देते रहते और दूसरे हमारे सिरो को धीरे-धीरे सहलाते रहते। कुछ वर्षो बाद हमारी छोटी बहन महादेवी भी इसी आयोजन मे शामिल होने का प्रयत्न करने लगी, लेकिन महाराज की कबली मे तीन बच्चो के लिए जगह नही थी। हम उसे डरा-धमका कर भगा देते। वह रोती हुई दादाजी के पास जाकर शिकायत करती कि महाराज पूजा करके कहानी सुना रहे है। दादाजी उसे साथ लिए हुए आते और महाराज पर झूठ-मूठ का गुस्सा करते। वह इतने मे खुश हो कर चली जाती।

इन कहानियो मे से मुझे दो चार कहानियाँ आज भी याद है।

सोनलबाई सात भाइयो के बीच सुनहरे बालो वाली बडी भाग्यशाली बहन थी। एक दिन मिट्टी लाने के लिए वह अपने भावजो के साथ जगल मे गई। जिस जगह वह खोदती थी, वहाँ सोना और मोती निकलते और और जहाँ उसकी भावजे खोदती, वहाँ मिट्टी निकलती थी। वे सभी अपनी ननद से कहती कि बाईजी अपनी जगह हमे खोदने दो, लेकिन ज्योही वे खोदने लगती, वहाँ भी मिट्टी ही निकलती। भावजो को सोनलबाई से डाह हो गया। जब खोदते-खोदते सोनल थक गई तो उसकी आँख लग गई। सातो भौजाइयाँ उसे वही छोड कर उसके द्वारा खोदे हुए सोने और हीरे-मोतियो को लेकर घर आ गई। जब उसकी आँख खुली तो उसने फिर जमीन पर खोद कर सोना और मोती निकाले। लेकिन उस बोझ को वह अकेली सिर पर उठा नही सकी। थोडी देर मे एक साधु उधर से गुजरा तो सोनलबाई ने विनती की, "बाबाजी, यह बरतन मेरे सिर पर रखवा दीजिए।" साधु लोभी था। उसने सोनल को अपने झोले मे डाल लिया और अपनी गढी मे ले गया। दूसरे दिन उसने सोनल को गाँव से भिक्षा लाने का आदेश दिया और जिधर उसका अपना घर था, उस तरफ न जाने के लिए भी कह दिया। तीन दिन वह अन्य दिशाओ मे ले जाकर भिक्षा ले आई, लेकिन चौथे दिन अपनी छोटी भौजाई के घर पहुँची और बोली

सात भाया बिच एक सोनलबाई,
मोतीडा सा चुगती मनै जोगीड़ो उठाई।
घालो, ए माई, भिक्षा, जोगी मारेलो।

(सात भाइयो के बीच एक सोनलबाई थी, जिसे मोती चुगते समय एक जोगी उठा कर ले गया। हे माई, भिक्षा दे दे, नही तो जोगी मुझे मारेगा।) इस प्रकार भिक्षा माँगते-माँगते वह अपनी सातो भावजो के घर घूम आई। भावजों ने उसे पहचान कर भी नही पहचाना। अन्त मे वह अपनी माँ के घर गई और उसी प्रकार कहा। माँ ने देखा कि यह तो उसी की लाडली बेटी सोनल है। तब उसने उसे अन्दर बुलाया। उसकी झोली वगैरा फेक दी और घर मे छिपा लिया। थोडी देर बाद जोगी धम-धम करता हुआ गाँव मे आया और घर-घर मे पूछने लगा, "बाई म्हारी चेलकी भी देखी के?"

जब जोगी पूछते-पूछते सोनल के घर आया, तब उसकी माँ ने कहा, "बाबाजी, सोनल बाहर गई है। आप बैठो, खाना खाओ, इतने मे आ जाएगी।"

जोगी जीमनें गला तो उसकी माँ ने दालान मे एक गढ्ढा खोदा और उसे घास फूस से भर दिया। फिर उस गढ्ढे मे पलँग डाल दिया और उस पर एक चादर बिछा दी। जोगी आकर पलग पर बैठा तो सोनल की माँ ने चुपके से गढ्ढे मे आग लगा दी। बाबाजी के नितब जलने लगे और वह वहाँ से भाग निकले।

कहानी मे जब सोनलबाई को जोगी द्वारा उठा ले जाने का वर्णन आता, तब हमे रुलाई आ जाती। ऐसा लगता जैसे हमारी प्यारी बहन पर विपदा आई है। अन्त मे जब वह अपनी माँ के पास पहुँच जाती तो हमे प्रसन्नता होती। जोगी को छकाने और जलाने के लिए हम सोनल की माँ का मन ही मन शाबाशी देते।

इसी प्रकार की एक और कहानी थी, जो हमे लछमणा महाराज सुनाते थे।

रोई (जगल) मे एक कमेडी (पक्षी) रहती थी। अपने पति के मना करने पर भी वह जाट के खेत मे ज्वार खाने के लिए हमेशा जाया करती। जाट ने उसे मना किया, पर वह न मानी। तव जाट ने एक दिन ज्वार के बूटो पर गुड चिपका दिया। ज्योही कमेडी आकर उन पर वैठी, उसके पैर चिपक गये। तव जाट ने उसे एक जाँटी (वृक्ष) से लटका दिया। थोडी देर मे उधर गायो का एक झुण्ड गुजरा। कमेडी ने गायो के झुड के रखवाले से प्रार्थना की

गायां का गुवालिया रे बीर, टमरक टूँ,
बँधी कमेड़ी छुड़ाए म्हारा बीर, टमरक टूँ।
रोई मे मेरा बचिया रै बीर टमरक टूँ;
आँधी आयाँ उड़ ज्यासी रै बीर, टमरक टूँ।
मेह आयां गल ज्यासी रै बीर, टमरक टूँ,
बँधी कमेड़ी छुडाय म्हारा बीर, टमरक टूँ।

[हे गायो के ग्वाले, मेरे भाई, इस बँधी कमेडी को छुडा। मेरे वच्चे जगल मे अकेले है, आँधी आएगी तो उड जाएँगे। मेह वरसेगा तो वे गल जाएँगे। मुझे वधन मे छुडाओ।]

कमेडी की विनती सुन कर ग्वाले को दया आ गई उसने जाट से कहा कि 'हे भाई, इस कमेडी को छोड दे और इन गायो मे एक गाय, जो तुम्हे अच्छी लगे, ले ले।'

लेकिन जाट ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। फिर भैमो का झुड आया, वकरियों-भेडो का रेवड आया और ऊँटो का टोला आया। उन सवमे भी कमेडी ने उसी दर्द भरी आवाज मे वही प्रार्थना दोहराई। इन सवके मालिको ने भी कमेडी की प्रार्थना पर जाट मे भैंस, वकरी और ऊँट के वदले मे कमेडी को छोड देने को कहा, पर जाट टस मे मस तक नही हुआ।

सयोग से जिम वृक्ष पर वँधी हुई थी, उमी के नीचे एक चूहे का विल था। चूहा यह मव देख रहा था। उमने कमेडी से कहा, 'कमेडी वहन, मै तुम्हे इस दुष्ट के पजे मे छुडाऊँगा, रो मत।" वह अपने विल मे गया और एक सोने की वहुत सुन्दर माला लाया। उसने जाट को माला दिखा कर कहा, "चौधरी, इस कमेडी को छोड दे तो मै तुझे यह सोने की माला दे दूँगा।"

सोने की माला देख कर जाट का मन ललचा गया और उसने कमेडी को वन्धन-मुक्त कर दिया। जैसे ही कमेडी उडी, चूहा माला लेकर अपने विल मे घुम गया। तव जाट पछताने लगा कि इसमे तो यही अच्छा था कि मै एक गाय या भैस या ऊँट ले लेता पर पछताने से क्या फायदा, जव चिडिया चुग गई खेत।

इसी प्रकार एक और मजेदार कहानी थी वनिए और वन्दर की।

एक वनिया कमाने के लिए दिमावर जा रहा था। रास्ते मे उमे एक वन्दर मिला। दोनो साथी वन गए। एक गाँव मे किमी घर के आँगन मे दही का मटका पडा था। वन्दर मटका उठा लाया। एक जगह कुछ चूहे उछल-कूद रहे थे। वन्दर ने उन्हे भी पकडकर अपनी झोली मे डाल लिया थोडी दूर जाने पर दोनो एक कुएँ पर पहुँचे। वहाँ 'लाव' यानी पानी निकालने की मोटी रस्सी पडी थी। वन्दर ने उमे भी उठा लिया। इन मवको ढोता था वेचारा वनिया। वन्दर महाशय तो उछलते-कूदते आगे-आगे चलते थे। सयोग मे एक रात वे किमी जगल मे एक सूने घर मे जा ठहरे। यह एक राक्षम का घर था। आधी रात को जव राक्षम लौटा तो कहने लगा, "फूँफा, मानपियो गधावै है।"

बनिया तो मारे भय के कॉपने लगा, लेकिन बन्दर ने चिल्लाकर पूछा, "कौन हो तुम ?"
राक्षस गरज कर बोला, "मै राक्षस हूँ । तुम कौन हो ?"
बन्दर ने जोर से कहा, "मै बडा राक्षस हूँ, तुम्हारा लकडदादा ।"
राक्षस ने जब कुछ पहचान बताने को कहा तो बन्दर ने ऊपर से दही की हाडी उडेल दी और बोला, "यह मेरा थूक है ।" चूहे फेंक कर बोला, "ये है मेरी जुएँ ।"

राक्षस ने इतना सारा थूक और इतनी बडी जुएँ देखी तो डर गया । अन्त मे जब बन्दर ने 'लाव' यानी मोटी रस्सी फेंक कर कहा कि "यह है मेरे सिर का बाल," तो राक्षस मारे भय के वहाँ से भाग गया । अब तो बनिया बहुत प्रसन्न हुआ । उस मे राक्षस की लाई हुई बहुत सारी सम्पत्ति रखी थी । सब कुछ बटोर कर बनिया और बन्दर लौट पडे । बन्दर तो जगल मे रह गया और बनिये ने घर आकर उस सम्पत्ति से कारोबार शुरू कर दिया ।
दादीजी द्वारा कही हुई एक कहानी बहुत ही रोचक थी ।

एक झीटिया था—बडे केशो वाला बालक । एक दिन वह अपने ननिहाल के लिए रवाना हुआ । रास्ते मे मिला एक गीदड । उसको देख कर झीटिया डर गया ।
गीदड ने झीटिये का रास्ता रोक लिया और बोला, "झीटिया, झीटिया, कठै चाल्यो ?"
झीटिया बोला, "नानी कै घर ।"
"मैं तनै खास्यू ! मै तनै खास्यू !" गीदड ने कहा ।
झीटिया ने झट कहा, "नानी के मनै जायण दे, दही रोटियॉ खायणदे, मोटो ताजो हो आण दे, पाछै मैने खा लेई ।"

[मुझे नानी के घर जा आने दे और वहाँ की दही रोटी खाकर मोटा ताजा हो आने, दे तब खा लेना ।]
गीदड को बात जच गई और उसने झीटिया का रास्ता छोड दिया ।
झीटिया ननिहाल से लौटने लगा तो उसने नानी से एक ढामकी [ढोलकी] बनवा ली और उसके अन्दर बैठकर रवाना हुआ ।

रास्ते मे फिर उसे वही गीदड मिला ।
ढामकी का लुढकते देखकर गीदड को आश्चर्य हुआ । उसने पूछा, "ढामकी तुमने झीटिये को देखा है ?
झीटिया अन्दर से बोला, "किसका झीटिया किसका तुम ? चल मेरी ढामकी ढमाकढम ।"

और ढामकी चल पडी । गीदडचन्द्रजी जीभ लपलपाते रह गए । होशियार झीटिया अपने घर सही सलामत पहुँच गया । इस कहानी की समाप्ति पर हम बडे हर्ष से ऊपर की कविता दोहराते ।
राजारानी चिडीचिडकलो, चोर-साहूकार और नाई-ब्राह्मण आदि की और भी अनेक कहानियाँ थी, जिन्हे हम बहुत चाव से सुनते । उनके पात्रो के दु ख के साथ दुखी होकर आँसू बहाते । सुख के साथ खुश हो होकर तालियाँ बजाते और इस प्रकार सुखद मनोरजन करते रहते ।

दादाजी कहानी ममाप्त करती तो कहती—

इत्ती कहाणी, गोगा राणी ।
गोगो मन्ने घोड़ो दियो, घोड़ो ले मै बाड़ कुदायो ।
बाड़ मन्ने कॉटो दियो, कॉटो ले मै चूल्हे नै दियो ।
चूल्हा मन्ने राख देई, राख ले मै कुम्हार ने दीन्हीं ।
कुम्हार मन्ने करवो [मिट्टी का गिलास] दियो ।
करवो ले मै.........

इस मन्दर्भ मे एक और भी वात याद है । अपनी छोटी बहन महादेवी को जव हम अपने साथ बैठ कर कहानी नही सुनने देते तो वह रूठ कर दादाजी के पास जा बैठती और वही से आवाज लगा कर कहती, "हम तो सोनलवाई की बहुत अच्छी कहानी सुन रहे है, तुम्हे यहाँ नही आने देगे ।"

लोक जीवन

सन् १९१४ मे जब मै चार वर्ष का था, अपने ममेरे भाई दौलतरामजी के विवाह मे कलकत्ता गया। मुझे आज भी उस यात्रा की और कलकत्ते मे जिस मकान मे हम ठहरे थे उसकी धुँधली-सी याद है। हम तुल्लापट्टी मे ठहरे थे। कलकत्ता उस समय न तो आज जितना बडा ही था और न इतना साफ-सुथरा ही। रहने की सुविधाएँ भी आज जैसी नही थी। उस मकान की टट्टियाँ इतनी बदबूदार और गन्दी थी कि लोग मुँह मे कपडा बाँधकर निबटने जाते थे। पाखाने के बाहर क्यू लगी रहती थी। इसके अलावा इतना और याद है कि मेरी माँ और नानी आदि पुरी की यात्रा पर जा रही थी। उन दिनो परदे का रिवाज था। घर से रवाना हुए तो मै भी साथ था। जिस घोडागाडी मे हम जा रहे थे, उसे चारो ओर से बन्द कर दिया गया था। मेरा दम घुटने लगा था। जी ऐसा घबराया कि मैं रोने लगा। मुझे रास्ते से ही वापस घर भेज दिया गया। उस समय कलकत्ते के बडाबाजार की सडको पर गन्दा पानी जगह-जगह भरा रहता था।

बहुत वर्षो बाद मैने चार्ल्स डिकेंस की पुस्तक 'ऑलीवर ट्विस्ट' और 'डेविड कॉपरफील्ड' पढी। इन पुस्तको मे दो सौ वर्ष पहले के लन्दन की गलियो का जो चित्र है, वह कलकत्ते की तत्कालीन यात्रा की स्मृति को ताजा कर देता है।

सन् १९१६ मे जब हमारे यहाँ रेल आ गई तब मैं अपनी नानी जी के साथ ट्रेन से उनके पीहर चुरू गया। चुरू हमारे कस्बे से रेल-मार्ग द्वारा ६० मील दूर है। यह कस्बा उस समय जनसख्या की दृष्टि से सरदारशहर से दो गुना बडा था। जब मैं अपने मामा के साथ चुरू के बाजार मे जाता तो दूकानो मे रखे हुए तरह-तरह के सामान को देखकर अचम्भित रह जाता। एक दिन मामा ने मुझे सात आने मे गुलाब के शरबत की एक बडी बोतल दिलाई। इसे मैने बडे जतन से रखा और एक महीने तक ठडे पानी के साथ पीता रहा। उन दिनो बर्फ नही आती थी।

१९१८ मे हमारे यहाँ हैजे का प्रकोप हुआ। हम सपरिवार रतनगढ चले आए। गाँव के और भी लोग इधर-उधर अपने सम्बन्धियो के यहाँ दूसरे गाँव कस्बो मे चले गए। रतनगढ मे मेरे दादा जी की बडी बहन राम प्यारी बाई की ससुराल थी। उन्होने मेरे लिए लडकी खोजी और एक दिन उसे हमारे निवास-स्थान पर ले आई। लडकी शायद मुझसे कुछ लम्बी थी, इसलिए जब हम दोनो को एक साथ खडा किया गया तो मेरे पैरो के नीचे एक पाटा रख दिया गया। लडकी आयी थी धोती-कमीज पहन कर और सिर पर सलमे-सितारो की टोपी लगा कर। आठ वर्ष की अवस्था मे वही मेरी सगाई कर दी गई।

उस समय इस तरह लडकी को लडके के घर लाना एक नई बात थी। सगाइयाँ नाई या ब्राह्मण के मारफत हो जाती थी। लडका तो क्या, उसके घर वाले भी लडकी देखने कभी-कदास ही जाते थे। इस अवस्था मे कभी-कभी बडा धोखा हो जाता था। लेकिन पति-पत्नी इसे भाग्य का फल मान कर सतोष कर लेते। वैसे हमारे यहाँ कहा भी जाता था कि स्त्री की तो कोख देखनी चाहिए, रूप नही।

इन यात्राओ के अलावा मुझे एकाध बरात मे भी जाने का मौका मिला। वैसे आम तौर पर बरातो मे छोटे बच्चो को कम ले जाते थे। मुझे याद है कि जब कभी घर के बडे, बरात मे जाने की तैयारी करते तो हम बच्चे मचल जाते। हमे किसी न किसी बहाने टाल दिया जाता।

बस से ज्यादा मजेदार होती थी ऊँट के इक्के पर बैठ कर बशीधरजी चौधरी के जोहड (तालाब) तक की यात्रा। यात्रा के अतिरिक्त वहाँ पर-दालबाटी के सुस्वादु भोजन की भी व्यवस्था रहती। हम लोग सरदारशहर से १२ मील दूर स्थित दूलरासर मे गोराजी साध्वी के यहाँ भी जाते थे। बचपन मे ही गृहत्याग करके वह यहाँ रहने लगी थी। हमारे लिए उनके सुरीले भजनो मे तो आकर्षण कम रहता, पर उनके आश्रम के नीमो की छाया, निबोली, झाडी के मीठे बेर और गूँदी के गूँदिये हमे बहुत लुभाते। आज भी सरदारशहर से रतनगढ जाते समय रास्ते मे दूलरासर पडता है। मेरी माता जी ने आठ-दस वर्ष पहले आश्रम के चारो तरफ दीवार बनवाई थी। उस सदर्भ मे भी वहाँ एक दो बार जाना पडा, पर अब उस स्थान मे पहले जैसा आकर्षण नही रहा।

गोराजी ही नही, उनकी शिष्या भूराजी का भी स्वर्गवास हो गया है। उस समय के जो तरुण वृक्ष थे , वे भी बूढे हो गए। नए पौधे किसी ने लगाए नही। सबसे बडी बात तो यह है कि मेरा वह बचपन भी अब मेरे पास नही रहा, जो प्रकृति के साथ हँसता, खेलता और मचलता था।

कहावते और मुहावरे लोकजीवन का दर्पण है। जाति के रीतिरिवाज, आचार-विचार, सुखदु ख आदि का कहावतो और मुहावरो मे मार्मिक चित्रण मिलता है। इनमे मनुष्य जाति का युगो-युगो का अनुभव तथा व्यावहारिक ज्ञान सचित रहता है। कहावतो का लोक-भाषा और लोक-साहित्य मे वही स्थान है, जो खाने मे नमक का। इनमे कही चुटीला व्यग्य, कही मीठा हास्य और कही तीर जैसी चुभती हुई उक्ति थोडे से शब्दो मे इस प्रकार रहती है कि कहने और सुनने वाले दोनो ही इनका रस लेते है।

राजस्थान के लोकजीवन मे कहावतो और मुहावरो का बहुत प्रचलन है। वैसे तो हजारो कहावते और मुहावरे हमारे यहाँ प्रयुक्त होते रहे है, किन्तु अपने बचपन के दिनो मे जिन विशेष कहावतो और मुहावरो को हम सुनते समझते और कहते रहे, उनमे से ही कुछ का उल्लेख यहाँ कर रहा हूँ।

अकल बड़ी की भैंस ? (भैस से बुद्धि बडी होती है।)
आप स्यामीजी बैंगण खावै, औरॉं ने परमोद सिखावै।
(पर उपदेश कुशल बहुतेरे।)

ऊँट तो कूदै ही कोनी, बोरा पेली ही कूदै।
(सम्बन्धित व्यक्ति की उपस्थिति मे असम्बन्धित व्यक्तियो का पचायत करना।)

एक काचर रो बीच, सौ मण दूध बिगाडे
(छोटी सी चीज से बहुत बडी हानि हो सकती है।)
एक नन्नो सौ दुःख हरै।
(एक इनकार सौ दु ख दूर करता है।)
एक पथ दो काज।

(सट्टा करो और नष्ट हो जाओ ।)
काणी रो काजल ही कोनी सुहावै ।
(साधारण व्यक्ति का मामूली सा बनाव-पहनाव भी नही सुहाता ।)
कात्या ज्यारा सूत, जाया ज्यारा पूत ।
(सूत उनका जिन्होने काता, पुत्र उनका जिन्होने जन्म दिया ।)
काम करै ऊधो दास, जीम ज्याय माधोदास ।
(काम कोई करता है, लाभ कोई उठाता है ।)
कोई गावै होली रा, कोई गावै दीवाली रा ।
(अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग ।)
कोई पूछै न ताछै मै लाडै री भूवा ।
(कोई पूछे न ताछै और कहती है मै दूल्हे की फूफी हूँ ।
खरची खूटी यारी टूटी ।
(साई या ससार मे मतलब को व्यवहार, जब लग पैसा गाँठ मे तब तग ताको यार)
काख मे छोरो गाँव मे ढिंढोरो ।
(दिया तले अँधेरा ।)
गुरू कीजै जान, पाणी पीजै छाण ।
(गुरु समझबुझ कर करना चाहिए, और पानी छान कर पीना चाहिए ।)
गई बांता ने घोड़ा ही को नावडैनी ।
बीती बात लौटाई नही जा मकती ।)
गाय रै भैस काई लागै ।
(जब परस्पर कोई रिश्ता न हो ।)
चालणो रस्ते सर हुवो भला ही फेर ही ।
(नीति की यह अनुपम कहावत है, कि चलो रास्ते से ही, चाहे दूर ही पडे ।)
बैठणो छाया मे हुओ भलां ही कैर हो ।
(बैठो छाया मे ही, चाहे वह कैर की ही हो ।)
रैवणो भाया मे हुओ भलां बैर ही,
(रहो भाइयो के साथ ही, चाहे उनसे मेल न ही हो ।)
जीवणो माँ रै हाथ रो हुओ भला ही जैर ही ।
(खाओ माँ के हाथ से, चाहे वह जहर ही दे ।)
डाकन ही, पर जरख चढ़ेगी ।
(करेला और नीम चढा ।)
डाकन बेटो दे क ले ।
(डायन बेटा दे या ले, अर्थात् अत्याचारी से लाभ नही, हानि ही होती है ।)
तीन बुलाया तेरह आया, भई राम की वाणी ।
राधो चेतन यू कहे ठेल दाल मे पाणी ।
(तीनो को निमत्रण दिया आ गये तेरह । नीति से काम लो, दाल मे पानी ऊडेल कर बढा लो)
थावर कीजै थरपना, बुद्ध कीजे व्यापार ।
(शनिवार को स्थापना और बुधवार को व्यापार करना चाहिए)
दोनू हाथ रलायां धुपै ।
(दोनो हाथ मिलाने पर धुपते है या ताली बजती है । मिलकर काम करो ।)

खांसी काल री मासी ।
(खाँसी बिमारियो की जड है ।)
धन कनै धन आवै ।
(धन से धन वढता है ।)
इस सम्बन्ध मे एक मजेदार कहानी है । एक जाट से किसी ने कहा कि 'धन के पास धन आता है ।' उसने किसी से एक रुपया उधार लिया और एक सेठ की दूकान पर जाकर खडा हो गया । सेठ बहुत सारे रुपए गिन रहा था । जाट अपना रुपया दिखा कर कहने लगा, "धन के पास धन आवे ।" सयोग से उसका रुपया सेठ के वहुत से रुपयो मे गिर गया । जाट ने बहुत ही दीनतापूर्वक सारी कहानी सेठजी को सुनाई । सेठ ने उसका रुपया लौटाते हुए कहा, "उक्ति तो ठीक ही थी, ज्यादा धन के पास धन आ गया ।"
धोती रै मांय सै नागा ।
(कौन बुरा नही ।)
नागो कांई धौवै, कांई निचौवे ।)
(जब पास मे कुछ न हो तो कोई क्या कर सकता है ।)
नौकर मालक रा हां, बैगण रा कोनी ।
(हाँ मे हाँ मिलाना ।) इस पर एक कहानी है ।" एक सेठ ने अपने नौकर से कहा, "बैगन वहुत वुरा होता है । नौकर ने झट कहा, "जी हाँ इसमे क्या शक है । इसका नाम ही वे-गुन है ।" फिर सेठ जी वोले, " यह तो वहुत बढिया सब्जी है ।" नौकर तत्काल बोला, "आप विल्कुल ठीक ही फरमाते है । तभी तो इसके सिर पर मुकुट है ।" सेठ जी ने हँसकर कहा, 'दोनो ही वात ठीक कैसे वता रहे हो ?" नौकर बोला, हुजूर, मै आपका नौकर हूँ, बैगन का नहीं ।"
बीन के मुडे लार पड़ै तो जनैती करै ।
(जब मुखिया मे ही दम नही है, तो सहायक क्या कर सकते है !)
पेट में ऊँदरा कूदै ।
(भूख लगी है ।)
पूतरा पग पालणो में पिछाणी जै ।
(होनहार बिरवान के होत न चीकने पात ।)
पेट में छूरी कतरनी है ।
(मन मे कपट है ।)
बकरी दूध तो देवै पण मींगणी रला रै देवै ।
(दुष्ट आदमी काम तो कर देते है, किन्तु साथ मे कुछ हानि भी कर देते है ।)
बाई कहता रांड आवै ।
(जिसे वोलने का शऊर न हो ।)
बांध्या बलद ही कौ रैवैनी ।
(वाध कर तो बैलो को भी नही रखा जा सकता ।)
बाबो आवै न ताली बाजै ।
(न ऐसा होगा, न यह काम होगा ।)
बैठतो बाणियो, उठती मालण ।
(दूकान खोलते ही बनिया और वाजार से उठते समय मालिन सस्ता सौदा वेचती है ।)
भण्या पण गण्या कोनी ।

(बिना गुण के पढना व्यर्थ है ।)

पण्यो न गुण्यो, नाव विद्याधर ।

(पढे न गुने, नाम विद्याधर ।)

इस सम्बन्ध मे एक मजेदार कवित्त सुना था, वह यो है

नाम तो लक्ष्मीबाई, छाणाबीणै बन मांही,
रूपीबाई नाम, रूप कागथी सवायो है ।
नाम तो जड़ावबाई, पास न तावे रो तार,
स्याणीबाई नाम जन्म राड मे गवायो है ।
नाम तो दयाबाई, जुआलीखा मारै नित,
राजीबाई नाम, राखै थोबडो चढायो है ।

(नाम तो है लक्ष्मी और जगलो मे गोबर चुनती फिरती है । रूपीबाई का रूप कौन से सवाया है । नाम है जडावबाई (आभूषण) और पास मे तावे का तार भी नही है । नाम है सयानी और सारा जन्म बिता दिया लडाई मे । दया नाम है और नित्य कीडे-मकीडे मारती है । इसी प्रकार राजी अर्थात् खुश मिजाज नाम है, लेकिन हमेशा मुँह फुलाए यानी क्रुद्ध रहती है । आदि आदि ।)

बींद मरों, बींदणीं मरो, बामणरो टको त्यार ।

[दूसरे के नुकसान की परवाह अक्सर कही जाती है ।]

सलाम सट्टे मियॉ ने बराजी क्यू कुरणो ।

[केवल सलाम के लिए मियाजी को नाराज नही करना चाहिए]

सस्तो रोवै बारम्बार, मूँधो रोवै एक बार ।

[सस्ती वस्तु टिकाऊ और अच्छी नही होती ।

मॅहगी वस्तु मे एक बार तो अधिक दाम लगता है, पर वह अच्छी और टिकाऊ होती है ।

साप के बचिए रो काई छोटो ।

[दुश्मन को छोटा न समझिए]

जब सुखी रहने वाले परिवार या व्यक्ति पर दु ख पडता है, तब यह उक्ति कही जाती है

समै करै नर क्या करै, समै समै की बात
कैई समै रा दिन बडा, कैई समय री रात ।
समै बडो नर क्या बडो, समै बडो बलवान
का बा लूंटो गोपका वो अरजुण वै बाण ।

[समय बलवान है । समय खराब तो अर्जुन भी अपनी शक्ति खो बैठा और स्त्रियों की रक्षा तक न कर सका ।]

साख एक सुसिए की, अर्थात् गवाही चाहे खरगोश की ही हो । इस पर एक मजेदार कहानी है :

साख एक सुसिए की, अर्थात् गवाही चाहे खरगोश की ही हो । इस पर एक मजेदार कहानी है

एक बनिया धन कमाने परदेश चला । मार्ग मे कई ठग मिले । उनको देख कर बनिया पहले तो घबराया, पर फिर अपनी दरी बिछा कर बैठ गया और रूपयो की थैली खोल ली । ठग भी उसके पास आकर बैठ गये और बोले, 'सेठ जी, हमे रुपयो की जरूरत है उधार दे दीजिए ।' बनिया बोला–'हमारा तो काम यही है । आप किसी गवाह को ले आइये , ताकि लिखा-पढी की रस्म पूरी हो जाए ।' इतने मे एक खरगोश वहाँ से निकला । ठगो ने कहा, 'सेठजी, इसी को साक्षी लिख लीजिए, अब जंगल मे दूसरा गवाह कहाँ से लाएँ !' बनिए ने कहा 'ठीक है ।'

उसने रुपए ठगो को गिन दिए और बही मे उनके नाम-धाम लिख कर नीचे लिख दिया– 'साख एक सुसिए री' फिर वह दुखी मन से घर लौट आया । इसके बाद वह बराबर उन ठगो का ध्यान रखने लगा । एक दिन वे गॉव मे दिखाई दिए । बनिए ने झट पुलिस को सूचना दी और ठग पकड कर राजा के सामने पेश किए गए । मामला चला । ठगो ने कहा, हूजूर, बनिया झूठ बोलता है, यदि रुपये हमने लिए होगे तो कोई साक्षी होगा, क्योकि बिना साक्षी के ये उधार नही देते है ।

बनिए ने कहा, 'हाँ, अन्नदाता, साक्षी है । मेरी बही मे लिखा है—साख एक लूँकडी [लोमडी] की ।'

यह सुनते ही उनमे से एक मूर्ख ठग बोला, 'क्यो झूठ बोलते हो, वह लोमडी कहाँ थी वह तो खरगोश था ।'

बनिया बोला, 'हाँ सरकार, बेशक बोलने मे भूल हो गयी, यह ठग ठीक कहता है । मेरी बही मे खरगोश ही लिखा है ।

राजा सब कुछ समझ गया । बनिए को उसका धन मिला और ठगो को जेल ।

वैसे राजस्थानी भाषा में कहावतो का भण्डार है, पर मै एकाध मजेदार कहावत का उल्लेख कर इस चर्चा को समाप्त करता हूँ ।

जब किसी की इच्छा ससुराल मे अधिक दिन रहने की होती तब उसके साथी कहते 'तीन दिना रा पावणा चौथे दिन अण खावणा ।'

अभिमानी व्यक्ति के लिए कहा जाता है,

हम बड़ा, गली साँकड़ी । होती थोड़ी हलेहल घणी ।

[थोडी बात पर बहुत ही हल्ला करना]

हाड़ रो काई लाड़ ।

[हड्डी का क्या लड्डु]

इसकी भी एक मजेदार गल्प है । एक बूढे मियाँ शादी करके बीबी लाए । मियाँ के दाँत एक था । उन्होने कहा, 'मर्द तो इक दत्ता ही भला ।' उस समय तक बीबी परदे मे थी । अभी तक मियाँ ने देखी नही थी । वह बोली, हड्ड का क्या लड्ड [मुख तो सफासफा ही भला।] मियाँ ने समझ लिया कि बीबी मुझसे ज्यादा बुड्ढी है ।

पुरजन-परिजन

अपने परिवार के लोग किसे प्रिय नही लगते । बच्चो का बुड्ढे लोगो से हेलमेल अधिक होता है । मुझे अपनी दादीजी और दादाजी की याद आज भी है । दादीजी का देहान्त ७० वर्ष की उम्र मे सन् १९३३ मे हो गया ।वह जीवन भर घर के काम मे जुटी रही । सुवह से शाम तक पीसना, रसोई बनाना, गाय को चारापानी देना और भजन ध्यान करना, यही उनकी दिनचर्या थी । मध्यम वर्ग के परिवार की गृहस्थी थी । हम भाई-वहन छोटे थे । हमारी देखभाल करती माताजी । दादी जी के जिम्मे था घर का काम । विना किसी शिक्वे-शिकायत के वे घर का काम करती थी । उनकी अपनी एक छोटी सी कोठरी थी । उसकी चाबी एक निश्चित जगह पर रखी रहती ।

मैं अक्सर ही उनकी कोठरी से दो-चार पैसे चुरा लेता था । उस समय के हिसाव से यह मेरे लिए बडी निधि थी । दादीजी के पास कुल जमा पूँजी सौ दो सौ रुपए थी । कभी-कभी अधिक आवश्यकता पडने पर यह सारी पूँजी वह पिताजी के हाथ मे रख देती । उनकी इच्छा थी कि दादाजी के रहते उनका देहान्त हो । ऐसा ही हुआ भी । उनकी मृत्यु के वाद दादाजी सरदारशहर छोडकर काशीवास करने लगे ।

दादा जी

पिता जी काम मे व्यस्त रहते या कलकत्ता आते जाते रहते इसलिए हमारी देख-भाल दादाजी ने की । वह भजनीक और सात्विक पुरुष थे । सुवह छह बजे से नौ बजे तक और रात मे सात से दस बजे तक राम नाम का जाप करते रहते । जाप के समय वोलते नही थे । कभी-कभी जरूरी काम हुआ तो जोर-जोर से राम नाम लेते । हम उनके पास जाते तो इशारो से बता देते । उनका विश्वास था कि वर्ष मे एक करोड बार राम नाम लेने से मोक्ष हो जाता है । जब तक रहे, उन्होने इस विश्वास को पूरी तरह से निभाया । सन् १९३६ के लगभग वह काशी चले गये और वही रहने लगे । उनके साथ मेरे माता-पिता और सभी घर वाले आ गए ।

हमारी स्थिति साधारण थी । जितना कमाते उसी से कलकत्ता और वनारस का खर्च किसी प्रकार चल पाता । एक दिन दादाजी अस्वस्थ हुए उन्होने माताजी व पिताजी को पास मे वैठाकर कहा, "सूरजमल नागरमल" की तरह अपनी ओर से भी वनारस मे एक डिस्पेसरी, सदाव्रत और विधवाओ के लिये मासिक सहायता की व्यवस्था होनी चाहिए । सरदारशहर मे मदिर, पाठशाला और कुएँ होने चाहिए और इसी प्रकार कलकत्ता मे भी पाठशाला धर्मशाला होनी चाहिए ।"

उनकी वाते सुन कर पिताजी कुछ चिन्तित और कुछ आश्चर्यचकित होकर वोले, "काका जी वह तो वहुत वडे आदमी है, अपने यह सब कैसे वना पाएँगे ?" उन्होने उसी समय आर्शीवाद के रूप मे कहा, "चिता न करो ! योजना वनाओ, एक दिन तुम लोग भी वैसे ही हो जाओगे।"

मेरे पिता जी का देहान्त सन् १९६५ मे हुआ। वह वरावर दादा जी का यह शुभ आर्शीवाद दोहराते थे। वास्तव मे हमारे दादा जी वचन सिद्ध महात्मा थे।

दादी जी

उन दिनो औसत मध्यम श्रेणी के घरो मे काम स्त्रियाँ ही करती थी। वच्चो के लिए भी आज कल की तरह दाई या आया नही रखी जाती थी। हम-वहन भाई छोटे थे। इसलिए घर का सारा काम हमारी दादी जी के जिम्मे रहता। सर्दी हो या गरमी, वे सुवह चार वजे उठ जाती और चार-पॉच सेर आनाज पीस लेती। उसके वाद विलौना करती। हम वच्चे विलौने की आवाज से इतने परिचित हो गए थे कि तुरन्त उठ कर विलौने के चारो तरफ वैठ जाते। दादी जी दही विलोती जाती और थोडा-थोडा चूँटियाँ (मक्खन) हम सवको देती जाती। लीली गाय को भी वे ही दुहती, क्योकि यदि कोई दूसरा दुहता तो लीली दूध कम देती। जैसे उसे दादी जी के हाथ सुहाते हो। उनके मन मे भी लीली के लिए ममता तो थी ही।

रसोई वगैरा से निवृत होकर दादी जी चरखा कातने वैठ जाती। उस समय खादी का प्रचलन नही था। परन्तु वे मितव्ययता के दृष्टिकोण से पुरानी रुई (लूगड) को कातती और उस सूत से विछौने के मोटे कपडे वन जाते। इसके अलावा वे ऊन भी कातती। उनके काते हुए ऊन के कम्बल हमे वहुत अच्छे लगते, क्योकि हम वच्चो का भी उसमे थोड़ा सहयोग रहता। हम उन्हे वताते रहते कि इस लच्छी मे यह कॉटा रह गया और वीच-वीच मे कॉटे निकालते भी रहते।

अपना सारा जीवन उन्होने घर के लोगो के लिए उत्सर्ग कर दिया। सीमित साधन थे, इसलिए अपने लिए उन्होने कभी अच्छी चीजो की कामना नही की। वे अपना सारा स्नेह हम वच्चो पर उडेले रहती।

ऊपर दही विलौने का उल्लेख कर आया हूँ। विलौना प्राय रोज ही होता। वहुत सी छाछ (मट्ठा) हो जाती। सुवह आठ वजे से छाछ लेने वाली पडोस की महिलाएँ और वच्चे हमारे यहाँ आ जाते। ऐसी मान्यता थी कि छाछ और वेटी मॉगने मे क्या सकोच ? उस समय मध्यम श्रेणी के घरो मे प्राय धीणा (गोपालन) रहता और जिनके घर विलौना होता, उनसे पडोस के लोग चाहे वह अच्छे खाते पीते हो या गरीव, छाछ लेने निस्सकोच पहुँच जाते। छाछ देने वाला भी स्नेह से देता और अनुभव करता कि मै पडोसियो के कुछ काम आ रहा हूँ।

दादी जी ७० वर्ष की अवस्था मे चल वसी। उन्हे सन्तोप था कि उनके वेटे-पोते अच्छी तरह खाने कमाने लगे है। वे दादा जी के सामने ही जाना चाहती थी। उनकी यह इच्छा भी पूरी हुई। रघुनाथ जी के एक मन्दिर के निमार्ण का सपना भी जीवित रहते हुए भी साकार हो गया था।

पिता जी

हम वच्चे किसी से डरते थे तो पिता जी से। उनका अनुशासन काफी कडा था, किन्तु हमे यह याद नही कि उन्होने कभी हमे मारा हो। वह जरा जोर मे वोलते तो हम डर जाते। दादा जी के देहान्त के वाद हमारा कारोवार तेजी से वढने लग गया था; पिता जी ने कभी उसमे खास हस्तक्षेप नहीं किया। उनके पूजा-पाठ का समय वढ गया। दादा जी ने मृत्यु से पहले जो इच्छा जाहिर की थी, वह उसी को निभाने एव धार्मिक-सामाजिक कार्यो मे लगे रहे। पिता जी का देहान्त ८२ वर्ष की उम्र मे सन् १९६५ मे हुआ।

घर वाले सभी काशी मे इकट्ठे हुए। मृत्यु के कुछ दिन पहले उन्होंने मेरे और बृजलाल के पुत्रो को गोद मे बैठाया और कहा–"बेटा, तुम तो आये हो और मैं तो जा रहा हूँ। उनको खुशी थी कि उनके सामने हमारे स्कूल, कालिज, धर्मशालाएँ, मन्दिर और कुएँ बन चुके थे और भरा-पूरा सम्पन्न परिवार था। लेकिन वह मन मे कभी दु ख भी करते, क्योकि मेरे बडे बहनोई और छोटी बहन का देहान्त उनके जीवित रहते हो गया था।

माता जी

वैसे तो अपने माता-पिता सभी को अच्छे लगते हे, लेकिन मैं यह कहूँ तो अत्युक्ति न होगी कि मेरी माँ ही दयावान और धर्मनिष्ठ थी। छूआछूत और खाने-पीने का बहुत परहेज रखती। उनका स्वास्थ्य अच्छा था, किन्तु पिता जी के देहान्त के बाद वह जीवन मे उदास रहने लगी थी। ६५ वर्ष का लम्बा वैवाहिक जीवन उन्होंने बिताया था। माता-पिता दीर्घकाल तक एक दूसरे के सुखदु ख के साथी रहे।

वह उदार थी उनसे याचना करके शायद कोई निराश लोटा हो। कभी-कभी तो वह इतना दे देती कि हम लोग उनको समझाते कि आपको ठग लिया गया है। जो बेचारा ले गया, वह निश्चय ही गरीब होगा, नही तो ठगता क्यो! उनकी मृत्यु सन् '१६६८ मे ८१ वर्ष की उम्र मे हुई। उनके पास जितने भी निजी नौकर-चाकर थे, उनके बच्चो की विवाह-शादी में तथा अन्य अवसरों पर वे जी खोल कर देती थी। आज भी वे सब हमारे यहाँ है, एक प्रकार से पेसनयाफ्ता। माता जी के अलावा, कुछ और व्यक्ति भी मुझे अब तक याद है।

साहजी सुखानन्द जी

मेरी बडी बहन के श्वसुर सुखानन्दजी सचमुच अजातशत्रु थे। जीवन मे उन्होंने कभी न किसी का बुरा सोचा, न बुरा किया। उमर मे बडे थे, फिर भी हम बच्चो को अपने परिवार के बच्चो जैसा मानते थे। हम ही क्यो गाँव के सभी बच्चे उनसे हिलेमिले रहते थे। साधारण स्थिति होते हुए भी वह दूसरो के लिए जितना जो कुछ करते थे, उतना बिरले ही कर पाते है। जब मै स्वर्गीय रफी अहमद किदवई के बारे मे कुछ सुनता-पढता हूँ तो मुझे सुखानन्द जी की याद आ जाती है।

भानी बाबा

मैं तीन वर्ष का था। धुँधली सी याद है–भानी बाबा की। वह हमारे यहाँ कारिंदगी और उगाही का काम करते थे। जैसा कि ऊपर लिख चुका हूँ, उस समय चीजो के भाव सस्ते थे। फिर भी लोग खाने-पीने मे मितव्ययता से काम लेते। भानी बाबा को बाजरे की बहुत सी खिचडी और उसके बीच मे थोडा सा घी दिया जाता था। वह खुद रूखी खिचडी खाते और हम दोनो भाइयो को घी खिला देते थे। तकादे के लिए देहात जाते, तो वहाँ से लौटते वक्त ऊँट पर ककड़िएँ-मतीरे लाद लाते। स्वय पैदल आ जाते। उनका वेतन था दो रुपया महीना। हमे गोद मे लिए या अँगुली पकडे बाजार ले जाते। अपने पास से दो-चार पैसे खर्च करके चीजे दिला देते।

कस्तूरी दादी

इसी तरह की याद है कस्तूरी दादी की। वे हमारे यहाँ पीसने-पोने का काम करती थी। पीसते-पीसते भजन गाती रहती। रात मे हमे कहानियाँ सुनाती। जब हम लछमणा महाराज के पास बैठने लगे थे, तब वह मर गई थी।

बंशीधरजी पंसारी

एक और व्यक्तित्व की झलक आज भी आँखो के सामने है। राजा जनक के बारे मे पढा है

कि वह राज्य करते हुए भी ऋषि-तुल्य जीवन जीते थे । इसीलिए उनका दूसरा नाम था विदेह । वशीधर जी वास्तव मे ऐसे ही पुरुष थे । पसारी का काम करते थे । एक पैसे से लेकर रुपये तक का सौदा बेचते । मुँह मे राम का नाम रहता और हाथो से काम करते रहते । बच्चो, बडो और बुड्ढो के साथ समान व्यवहार था । कभी डडी मारने की बात उन्होने सोची नही । साधु महात्मा उन्हे घेरे रहते । किसी को टोपी, किसी को कुरता और किसी को 'सीधा' देते रहते । पता नही कैसे उनके घर के खर्च और दानपुण्य दोनो की पूर्ति होती थी । उनकी छोटी बहन थी भूरी नानी, जिसके बारे मे मैने एक सस्मरण लिखा है । वह अपना तो देती थी दूसरो के पास भी जो अनावश्यक चीजे होती, चुपके से उठा कर जरूरत मन्दो को दे डालती थी । कोई झगडा करता तो कहती—'तुम्हारे पास तो फालतू थी, वे बेचारे क्या पहनते या ओढते !' पता नही उन्होने जैन-धर्म के अपरिग्रह का सिद्धान्त या एजिल्स की थ्योरी कहाँ सीखी थी !

जैसा कि मैने पढाई-लिखाई प्रकरण मे उल्लेख किया है, दादा जी ने हमारे घर में ही लछमणा गुरुजी की पाठशाला लगवा दी थी, हम उन्ही के पास पढते थे । आज भी लछमणा गुरु जीवित है । मै जब जाता हूँ, उनसे मिलता हूँ । अब वह बडे अदब से मिलते है । लेकिन जब मै हँस कर कहता हूँ 'गुरुजी उस समय तो आप हमे बहुत मारते थे, तब वह गौरवान्वित से होकर कहते है—'हाँ, कभी-कभी तो आप पेशाब कर देते थे ।'

लछमणा महाराज की बात ऊपर लिख आया हूँ । दोनो समय वह हमारे यहाँ पूजापाठ करते थे, तनख्वाह थी पाँच रुपया महीना । इसके अलावा वह लोगो के घरो मे जाकर विष्णु-सहस्रनाम और हनुमान चालीसा का पाठ भी करते थे । एक रुपया हरेक घर से लेते । वह शाहपुरा (जयपुर) के थे। सरदारशहर उसके लिए दिसावर के समान था, १२ महीनो की मुसाफिरी करते और 'देश' चले जाते। बडा ही सात्विक व्यक्ति थे। हमे अच्छी-अच्छी कहानियाँ सुनाते। इसलिए हम उनसे बहुत खुश रहते और कभी-कभी नानीजी या माँ से माँग कर धोती या कुरते का कपड़ा ले जाते। लेकिन बगैर घर वालो को पूछे, उन्होने कभी इन चीजो को छुआ तक नही। १९६५ मे उनकी मृत्यु हुई। इसके कुछ समय बाद मैं एक बार उसके गाँव भी गया था। दैन्यता का वातावरण था। टूटा मकान-खण्डहर सा। थोडी देर ठहरा। मेरे बचपन की यादो की परते खुल गई पता नही मन मे क्यो उदास हो गया ।

इन व्यक्तियो के साथ-साथ दो एक और भी चरित्र उल्लेखनीय है, जो मेरे बचपन के अभिन्न साथी रह चुके है । चीलिया ऊँट की स्मृति आज भी ताजा है । चीलिया नाम इसलिए पडा कि वह चील की तरह तेज दौडता था । इस ऊँट पर बैठ कर सरदारशहर के आसपास के टीबो मे और यहाँ की बालू मे बहुत घूमा हूँ । कभी भानी बाबा के साथ तो कभी किसी अन्य के साथ । दुर्योग ऐसा हुआ कि चीलिया जल्दी ही मर गया ।

प्रेम सुख दास करवा

सन् १९०९ मे उस मरुस्थली अचल मे पब्लिक लायब्रेरी के सस्थापक श्री प्रेमसुखदास करवा थे । मेरी छोटी अवस्था मे ही उनका देहान्त हो गया था । किन्तु आज भी मुझे उनकी याद ताजा है । खानपान, कपडे-लत्ते मे वे जितने सयमी थे, उतने ही बोलने मे मितभाषी थे । मेरा जो भी पढना-लिखना हुआ, वह उन्ही के द्वारा सस्थापित उक्त पुस्तकालय मे । उनके केवल एक पुत्री महादेवी बाई थी, जिनका विवाह प्रसिद्ध उद्योगपति श्री घनश्यामदास बिडला से हुआ था । ऐसा कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नही होगी कि सरदारशहर मे हिन्दी के

प्रति रुचि पैदा करने वालो मे श्री करवा अग्रणी थे। वैसे उनका कोई स्मार ; नही है, किन्तु हमारे कस्बे की पब्लिक लाइब्रेरी (जो कि राजस्थान के अच्छे पुस्कालयो मे है) ही उनका सबसे बडा स्मारक है, जिसमे तीन लाख व्यक्ति प्रति वर्ष लाभ उठाते है।

मघराज जालान

८० वर्ष की अवस्था, परन्तु पूर्णरूप मे स्वस्थ शरीर। हर समय श्रेय मन्दिर या गोशाला के लिए धन सग्रह मे लगे रहते। चाहे सुदूर बगाल जाना हो या असम, जालानजी सबसे आगे। कलकत्ता के बडा बाजार अचल की ऊँची-ऊँची कोठियो मे न तब लिफ्ट थी, न अब। हम लोग सीढियाँ चढते हिचकते, किन्तु मघराजजी दनादन बच्चो की तरह सीढियाँ चढते तो हम युवको को भी उनके पीछे-पीछे ही जाना पडता। सार्वजनिक कामो के लिए धन-सग्रह की लगन ऐसी कि दूरी और ऊँचाई उनके सामने किसी प्रकार की बाधा नही थी। कजूस से कजूस व्यक्तियो की भावनाओ को प्रेरित करके उनसे रुपया निकलवाने की कला उनमे थी। किसी से भगवान के भोग के नाम पर तो किसी से गाय की बच्छी के नाम पर रुपया माँग लेते। ८५ वर्ष की आयु मे उनका देहान्त हुआ। आज तक उनके स्थान की पूर्ति हमारे यहाँ नही हो पाई है। सचमुच ही वे अपने आपमे एक सस्था थे।

बाबू शोभाचन्द जम्मड़

जम्मडजी शायद किसी समय गृहस्थी मे रहे होगे। पर पत्नी की अकाल मृत्यु से छोटी उम्र मे ही गृहस्थी के जजाल से मुक्त हो गए। कोई बालबच्चा भी न था। दादू पथी रामरतनजी साधु के ताल के मन्दिर मे रहते। सस्कृत के अद्भुत ज्ञाता थे। मनोरजन नाट्य परिषद के माध्यम से इन्होने हमारे कस्बे मे बहुत से बच्चो और युवको को अभियनकला की शिक्षा दी। इन नाटको से जो आय होती, उसे विभिन्नसस्थानोको दे दी जाती। जम्मडजी ने भजनो की और सगीत की बहुत अच्छी पुस्तके भी लिखीं। इनका लिखा जितना प्रकाशित हुआ, उससे कही ज्यादा अभी तक मित्रो के पास अप्रकाशित पडा हुआ है।

ओसवाल जैन होने पर भी वह परम वैष्णव थे। इनकी स्मृति मे शोभाचन्द हॉल नामक विशाल भवन कस्बे के ताल मे बना हुआ है।

धनराज बियाणी

मेरे बचपन का मित्र। उस समय हम दोनो की हालत खस्ता थी। एक दिन आलू की चाट खाने का मन हुआ। एक पैसे के आलू लिए उबाले, छीले और ऊपर से डाली इमली की मीठी चटनी और दही। खाए तो इतना स्वादिष्ट था कि जबान पर उसका जायका आज भी है। कई वर्ष हम दोनो ने एक साथ खेलकूद कर बिताए। धनराज के पिता मरते समय उसे एक पुरजा दे गए थे। इस पुरजे मे थी कर्जदारो की नामावली और उनसे ली गई रकमो का ब्यौरा।

छोटी उमर मे ही धनराज राजस्थान से कलकत्ते चला गया। वहाँ उसने बडी मेहनत की और कर्जदारो की रकमे ब्याज-सहित चुकाना शुरू किया। कुछ कर्जदार राजस्थान के गाँवो मे थे, उन्हे ढूँढा। कोई तो मर गए थे, उनके बेटे-पोतो को कर्ज की रकमे चुका दी। जब तक पूरी तरह कर्जमुक्त नही हो गया, अपने रहने की जगह नही बनवाई। मेरी एक कहानी है 'पिता का कर्ज', उसका चरित-नायक है मेरा मित्र धनराज बियाणी।

लीली गाय

लीले रंग की यह गाय बहुत ही 'सूधी' थी। डील-डौल में बड़ी थी। हम बच्चे नि:संकोच उसके पास चले जाते। दोनों समय सात-आठ सेर दूध देती थी। शायद हमारी पुरानी गाय की ही बछिया थी। दादी जी उसका सारा काम सँभालती थी।

लेकिन कुछ दिनों बाद, जब दादी जी अस्वस्थ रहने लगीं, गाय के काम के लिए नौकर रखने की जरूरत हुई। इसलिए गाय को बेच देना तय हुआ। दाम तय हुए शायद ६० रुपए, जो उस समय के हिसाब से अच्छी राशि थी। गाय अच्छे सम्पन्न घर में जा रही थी।

विदा का समय आया तो दादी जी और हम बच्चे बिसूर-बिसूर कर रोने लगे। मुझे आज भी याद है कि गाय के भी टपटप आँसू गिर रहे थे। ग्राहक को वापस भेज दिया गया। लीली के लिए एक 'हाली' नौकर रख लिया गया। लीली हमारे घर में ही बुड्ढी होकर मरी। दाह-क्रिया विधि-पूर्वक की गई। दो-तीन दिन सूतक-सा भी मनाया गया।

लोकाचार

जनसख्या के सिद्धान्त से जमीन बहुत थी। इसलिए भरे-पूरे घरो को शुभ माना जाता था। लोग बडे गर्व से कहते थे कि फला व्यक्ति बहुत पुण्यवान है, उनके परिवार मे ३०० सदस्य है।

जब कोई सुहागिनी महिला सास के या बडी स्त्रियों के पैर छूती तब आशीर्वाद मिलता 'सिली हो, सपूती हो, सात पूतो की माँ हो'। हमारे गाँव मे एक महिला के आठ पुत्र थे। इसलिए वह जब भी किसी के पैर छूती, पहले मे ही कह देती कि 'माँजी मेरे आठ पुत्र है'। उसे डर था कि सात पुत्र का आशीर्वाद उसके लिए कही दुराशीष न बन जाए।

परिवार सयुक्त थे। अधिकाश लोग खेती करते थे, जिनमे सब मिलकर अपनी सामर्थ्य के अनुसार काम करते रहते या फिर दूकानदारी या घरेलू उद्योग । बनिए तो उनकी औकात भर लेनदेन करते या दुकाने चलाते और दूसरी जातियो के लोग अपने पेशे के अनुसार धधा करते रहते। इसी धधो मे परिवार के सभी सदस्यो का योग रहता। धधे के प्रति घृणा नही थी। काम को हीन नही माना जाता था। मैंने देखा कि बडे-बडे सेठ, सुनारो के यहा बैठ कर गहना बनवाते या जडवाते रहते। बडे घर की महिलाएँ भी छीपों और मनिहारो के यहा कपडा रगवाने या चूडे बनवाने खुद जाती थी। मुझे याद है कि हम अपने घर की भगिन को भूरी काकी कहते थे और जब वह रोटी लेने आती तो हमारी दादी जी उसको खुद ही रोटी देने जाती। कभी-कभी साथ मे तरकारी भी देती। उसके बच्चो की राजी खुशी का हाल पूछतीं। मैंने इस सदर्भ मे अपनी पुस्तक 'कुछ घटनाएँ, कुछ सस्मरण' मे फतेहपुर (शेखावाटी) के एक सेठ की एक सच्ची घटना लिखी है।

हालाँकि उस समय चीजो के दाम अधेलो या पैसो मे लिए जाने लगे थे, फिर भी कई बार वस्तुओ का विनिमय भी होता रहता था। बरतनो की खरीद पर पुराना गोटाकिनारी दिया जाता था। इसी प्रकार अनाज के बदले सब्जी और अन्य छोटी मोटी चीजे मिल जाती थी। गरीब-अमीर उन दिनो भी थे, पर विवाह शादी और सामाजिक अवसरो पर सब एक दूसरे का आदर मान करते थे। गरीब भाई की लडकी के विवाह के अवसर पर गाँव का बडे से बडा सेठ खुद हाथ मे मिठाई का थाल लिये बारातियो को परोसगारी करता। अगर कोई ऐसे असवर पर नही जाता, तो उसकी निदा होती और लोग भी उसके यहाँ जाना-आना बन्द कर देते। इस सदर्भ मे एक घटना की चर्चा करूँगा।

एक धनी युवक था। बिरादरी मे किसीके यहाँ काम पडता और बुलावा आता तो कह देता कि चाय पीकर आ रहा हूँ और जाता नही। एक दिन उसका पिता मर गया। लोगो ने तो पहले से ही बात कर रखी थी कि उसके यहाँ नही जाना है। जब उसने बुलावा भेजा तब

गव जगह मे एक ही उत्तर आया कि छाछ (मट्ठा) पीकर आते है। आखिर उसके मुनीम ने आकर लोगो से वस्तु-स्थिति जाननी चाही तो जवाब मिला कि वह अमीर आदमी है, इसलिए चाय पीते हैं, उनकी चाय कभी समाप्त हुई नही, इसी तरह हमारी छाछ भी सदा चलती रहेगी। आखिर उसने स्वय आकर हाथ जोडे, माफी मॉगी, तब लोग मुरदनी मे गये।

इसी तरह विवाह-शादी मे परिवार के गरीब व्यक्ति भी जब तक जीमने को नही आ जाते, तब तक सजन-गोठ चालू रहती। वैसे निमत्रण देने नाई या ब्राह्मण जाते, लेकिन भाई-बिरादरी के घर, चाहे गरीब हो या धनवान, लोगो को खुद ही जाना पडता।

आजकल की तरह स्कूल, अस्पताल तो नही थे। पर कुआँ, कुण्ड, प्याऊ, धर्मशाला और मन्दिर बनवाने मे लोग बहुत-पुण्य मानते और जो कोई ऐसा सत्कार्य कर पाता, उसका जन्म सफल माना जाता, गॉव मे वह बहुत पुण्यवान समझा जाता।

उस समय सतानोत्पत्ति देश की समृद्धि के लिए बहुत आवश्यक थी। इसलिए लडकियो के विवाह कराने मे लोग बहुत बडा पुण्य मानते थे। यदि किसी महिला के सतान न होती, तो उसका मुँह देखना या नाम लेना भी अपशकुन माना जाता। ऐसी महिलाएँ शुभ अवसरो पर स्वय ही दूर हो जाती। वे अपने अभिशापित समझती थी।

गरीब घरो की लडकियो की शादियाँ तो लोग गुप्त सहयोग से करवाते, पर ब्राह्मणो की लडकियो का विवाह धनी वैश्य और राजपूत धूमधाम से कराते और खुद कन्यादान करते। उन लडकियो को वह सदा के लिए अपनी पुत्री के समान ही समझते और उन्हे बार-त्याहारो पर घर बुलाते और रीतिरिवाज, नेगाचार आदि करते।

लडकियो का विवाह उस समय भी व्यय-साध्य था। हमारे यहाँ कहावत थी कि 'लहणो भलो न बाप को, बेटी भली न एक, पैडो भलो न कोस को, साहब राखै टेक।' अर्थात कर्ज, कन्या और यात्रा भगवान के भरोसे ही पार होती है।

सवर्ण अर्थात बनियो, ब्राह्मणो और राजपूतो आदि की स्त्रियो मे कडा परदा चलता था यहाँ तक कि बहू सास आदि बडी औरतो से घूँघट रखती थी, पर दूसरी जातियो मे परदा इतना कडा नही था, क्योकि उनकी स्त्रियो को पुरुषो के साथ खेतखलिहान, बाडीकुआँ, आदि पर काम के लिए जाना पडता था।

घर मे आधिपत्य सास का रहता। गहने सभी सास के पास रहते। जिस बहू को अपने पीहर या कही शादी आदि शुभ कार्यो मे जाना होता, वह गहने सास से माँग कर ले जाती। ऐसी परम्परा थी कि बहुओ को सास के कठोर शासन मे रहना पडता था, इसलिए जब वे स्वय सास बनती तब उसी तरह अपने बहुओ पर शासन चलाती। इसी भाँति ननद भी पीहर मे भावजो पर रोबदाब रखती, क्योकि उसे माँ की शह रहती।

जैसा कि लिख चुका हूँ—जादूटोने बडा प्रचार था। हमारे यहाँ एक महिला आती थी। जब उससे बच्चे के रोग के बारे मे पूछा जाता तो कहती, "म्हारो ही है।" अर्थात वह अपने को देवी सिद्ध करती हुई कहती कि यह रोग मेरा ही दिया हुआ है। एक दिन एक नटखट बच्चे ने अपनी झोली मे कुत्ते के तीन-चार पिल्ले रख दिए और बीमारी का बहाना करके सो गया। जब उस औरत को बुला कर पूछा गया, तब उसने वही बात दोहराई। इस पर बच्चे ने वे तीनो पिल्ले उसकी गोद मे फेक दिए और कहा कि 'थारा ही है तो ले ज्याओ।' उसके बाद कई दिनो तक उस बेचारी का झाडफूँक बन्द रहा। सारे गाँव मे खूब हँसी हुई।

नोटो का प्रचलन राजस्थान के उस हिस्से मे उस समय तक नही हुआ था। सौ, दो सौ रुपये भी कही दूर गाँव से लाने होते कपडे की एक लम्बी नौली (थैली) रखते। उसमे रुपये डाल कर कमर मे बाँध लेते। बहुत जरूरत होने पर भी रुपये को नही भुनाते। ज्यादा प्रचलित सिक्का टका, पैसा, अधेला और पाई थे। उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण तक कौडियो का भी प्रचलन था।

रास्ते सुनसान थे। यातायात के साधन धीमे थे। ऊँट, ऊँट की गाडी या रथ चलते थे, इसलिए चोर-डाकूओ का भय बना रहता था। दूसरी रियासतो मे आए दिन इस प्रकार की सुनते रहते थे, पर बीकानेर रियासत मे महाराज गगा सिंह का कडा शासन होने से ऐसी घटनाएँ नही सुनी गई।

इन धाडेतियो मे बलजी-भूरजी की बडी चर्चा सुनते रहते। वह शेखावाटी अचल मे डाका डालते थे। उनके बारे मे कई प्रकार की जनश्रुतियाँ प्रचलित थी, जो शायद उनके अपने आदमियो द्वारा ही फैलाई गई थी। पर इतना अवश्य था उन्होने कभी ब्राह्मण, अछूत और गाँव की बहन बेटियों को नही लूटा। आज कल के भिड मुरैना के डाकुओ की तरह नर हत्या को वह प्रोत्साहन नही देते थे। उनके नाम के आतक से ही लोग आत्मसमर्पण कर देते और जमा पूँजी सौप देते।

उस समय सोने का भाव २० रुपये तोले के लगभग था और चाँदी का आठ आना तोला। अधिकाश महिलाये गले या कान मे सोने का जेवर अवश्य पहनती। ऐसी मान्यता थी कि सोने से छूकर पानी पवित्र हो जाता है। इस सदर्भ मे दो एक बाते आज भी याद है, जब कोई व्यक्ति मातम से लौटकर घर आता, घर की कोई महिला दरवाजे पर आकर अपने सोने के किसी आभूषण से पानी छुआ कर उसके शरीर पर पानी फेकती और तब उसे स्नान के लिए लोटा-बाल्टी दिया जाता। इसी प्रकार कभी भूल से यदि कोई चमार या भगी से छू जाता तो उस पर सोने से छूआ पानी डालकर कहा जाता, 'सोना वाली किलकिटिया।' और इस अभिमन्त्र के साथ ही वह शुद्ध मान लिया जाता। हम बच्चो को इसमे बडा मजा आता। कोई भगी या भगिन राह से गुजरती तो पास खडे किसी साथी को धक्का देकर छूआ देते। फिर सभी बच्चे उसे भगी कहकर चिढाते और उससे दूर भागते। काफी तग करके उसे सोना वाली 'किलकिटिया' मन्त्र से शुद्ध कर देते।

शायद सोने को महत्व देने के लिए ही यह मान्यताएँ थी। विधवा स्त्रिया भी गले मे सोने की 'लड', जिसमे हनुमानजी या पीतरजी की मूरत होती, रखती थी। धनाढ्य घरो की स्त्रियो के तन पर सिर के बोर से लेकर तागडी (करधनी) तक सोने के दो-तीन सेर वजन के विविध प्रकार के गहने लदे रहते। हीरो का प्रचलन कम था, अधिकाश गहनो मे मोती या पुखराज लगे रहते। अधिक धनवान घरो मे हीरे और पन्ने के गहने भी पाये जाते थे। जिन महिलाओ के पास सोने की तागडी होती वे अपने को बडी भाग्यवान समझती थी। किसी लडकी की सगाई मे ससुराल से दूसरे गहनो के साथ सोने की तागडी आती, तो पास पडोस मे चर्चा होती कि फला बडी भाग्यवाली है, सगाई मे सोने की तागडी आई है।

सोने से ज्यादा प्रचलन था चाँदी का। यह सोने से बहुत सस्ती थी, इसलिए मध्यवर्ग और साधारण लोगो के आभूषण इसी से बनते थे। महिलाएँ मोटे-मोटे गहने गले और हाथो मे पहने रहती थी। उस समय चाँदी के बरतन बहुत कम घरो मे पाए जाते थे। हमारे यहाँ चाँदी की एक छन्नी (तश्तरी) थी। ऐसी छन्नियाँ सेठ सपतरामजी के पुत्र बुद्धूमल जी के विवाह मे गाँव भर मे बाँटी गई थी। बाहर से कोई मेहमान आते तो हम इसी छन्नी मे सौप, सुपारी आदि रख कर उनका सम्मान करते।

हम ऐसा सुनते थे कि गाँव मे दो-चार घरो मे ठोस सोने की थाली, गिलास और कटोरियाँ भी थी, पर उस समय मुझे इन सब चीजो को देखने का मौका नही मिला।

स्त्रियो के शरीर पर तागडी और कण्ठी के अलावा दूसरे आभूषण भी रहते। सिर पर बोर, चाँद सूरज, माथे पर सोने की या मोतियो की पट्टी, कानो मे लौग या मुरलिए (झुमके), गले मे गलसरी या गलपटिया और नौसरहार, हाथो मे कडे, बगडी, चुडियाँ, गट्टो की नौगरी, हथसाकले और पूँचा आदि, बाजुओ मे बाजूबन्द चौथ आदि, उँगलियो मे

नाना प्रकार की अँगूठियाँ। अपनी-अपनी आर्थिक अवस्था के अनुरूप गहने रहते। कुछ ऐसी बीमार, नाजुक स्त्रियाँ भी थी, जो वजन तो एक सेर भी नही उठा पाती थी, पर गले, हाथो और पैरो मे सोने-चाँदी के दो तीन सेर वजन के गहने पहने रहती थी। पता नही क्यो, सोने-चाँदी के प्रति युगो से एक मोह चला आया है। धर्मशास्त्रो मे तो सोने मे कलयुग का वास कहा है। लेकिन यह शायद पण्डित महोदय को उक्ति है, जिन्हे सोने मिल नही पाया और खीझ कर वह ऐसा लिख गए।

पैरो मे सोने कडे या पाजेब दो-चार घरो मे पहने जाते, जिन्हे इसकी इजाजत राज्य से मिली होती, अन्यथा बिना राज्य की आज्ञा के पैरो मे कोई भी सोना नही पहन सकता था। जिन्हे राजा द्वारा सोना बख्शा जाता, वे बडे आदमी माने जाते। उन्हे अन्य सुविधाएँ मिलती, इसका जिक्र अन्यत्र हो चुका है। आम लोगो के घरो की स्त्रियाँ पैरो मे चाँदी के कडे या पायजेब पहनती थी। इनका वजन दो-तीन सेर तक होता था और जिनसे कभी-कभी टखनो मे घाव हो जाते थे।

मेरे ससुराल वाले कलकत्ता रहते थे। वहाँ कुछ नया फैशन आ गया था। मेरी पत्नी, जब सन् १९२३ मे गौना लेकर आई, उसने पैरो मे चाँदी के भारी कडो की जगह हलकी छडे पहने ली। सारे मुहल्ले और बिरादरी मे चर्चा हो गई। उसे फिर से वही भारी कपडे पहनने पडे।

सधवा युवती स्त्रियो की पोशाक थी—आँगी, ओढनी और घाघरा। आँगी पौराणिक काल की कचुकी का ही रूप था बडे परदे के उस युग मे वक्ष से नाभि तक का हिस्सा खुला रहने पर भी बुरा नही माना जाता था। किशोरी और युवा स्त्रियाँ इस परिधान मे अपूर्व सुन्दर और आकर्षक लगती थी। कमर से पैर तक रहता घेरदार घाघरा, वक्ष पर आँगी और सिर पर ओढनी। इन सब कपडो पर गोटा-किनारी का काम रहता। विविध प्रकार के रगीन चित्र (छापे) भी मोढी द्वारा इन वस्त्रो पर बनाये हुए रहते थे।

प्रत्येक सुहागन स्त्री के हाथो मे लाख की सात-सात या दस-दस चूडियाँ रहती थी। इन पर सोने या चाँदी के पत्तर जडे रहते थे। ये लोग चूडे का नाप लेने घरो मे भी आते रहते और स्त्रियाँ उनकी दूकानो पर भी नाप देने जाती थी। पर कभी ऐसा नही सुना गया कि किसी के साथ कोई दुर्व्यवहार की घटना हुई हो। उस समय पेशे और गाँव की अक्षुण्ण पवित्रता का ध्यान रखने की यह एक बेजोड मिसाल थी।

अधिक उम्र वाली स्त्रियो की पोशाक थी सादी या लाल ओढनी, बदन पर लम्बी बाहो की सादी फतुई और कम घेर का घाघरा। विधवा स्त्रियो की भी यही पोशाक थी। ओढनी काले या गहरे कत्थई रग की होती थी।

बच्चो की पोशाक थी—सिर पर सलमेसितारो के काम की मखमल की गोल टोपी, बदन पर मलमल या रेशम की कमीज या कुरता और किनारीदार धोतियाँ। गोट लगे हुए कुरते-कोट भी पहने जाते थे। लडकी-लडको, दोनो की यही पोशाक थी। आज की तरह फ्राक या सलवार कुरती का प्रचलन नही था उस समय।

बच्चो को गहने पहनाने का बडा रिवाज था। कानो मे मोती की बाली, मोती चोपडे (कुण्डल), गले मे गोप या कण्ठी, हाथो मे कडे और बाहों मे चौथ। कमर मे करधनी भी किसी-किसी लडकी को पहनाई जाती। ये गहने कमोवेश रूप मे बडे भी पहनते थे। ढलती उम्र मे इनका शौक कम हो जाता।

मारू म्हारा थे चाल्या परदेश

बचपन की हर घडी गाँव के साथ जुडी थी। कल्पना और वास्तव गाँव ही था, सुख-दुख का पैमाना भी। जीवन का अर्थ था, मेरा बचपन, मेरा गाँव।

बचपन मुझे छोडता जा रहा था, अनजाने में। मैं न तो इसे समझता था और न जानने की इच्छा थी। मगर महसूस करने लगा कि कभी-कभी मुझे अपने बडो की तरह गाँव छोडना पडेगा। घर की समस्याएँ, 'कर्ज का बोझ' परदेश गए बिना कमाई का रास्ता बनता नही, इस प्रकार की चर्चा होती रहती।

सन् १९२५ का जुलाई मास। घर मे तय हुआ कि परदेश का सफर करना है। एक दिन पिताजी और बडे भाई शिवप्रताप जी के साथ असम के धुबडी कस्बे के लिए रवाना हुआ। यात्रा के लिए पहले ही से मुहूर्त निकलवा लिया गया था। रात के तीन बजे पूजन करके हम घर से विदा हुए। 'सगुन' अच्छा बने इसलिए एक सधवा स्त्री को पानी से भरा घडा देकर निकासी के रास्ते पर खडा कर दिया गया।

राजस्थान से बाहर की यह मेरी पहली यात्रा थी। पन्द्रह वर्ष की अवस्था, साधारण शिक्षा और जीवन के उतार-चढाव से अनभिज्ञता। बाहर की दुनिया क्या है और मुझे क्या करना है, इस पर गहराई से कभी सोचा न था।

बिना किसी सबल के हम सुदूर परदेश के लिए चल पडे। दादाजी, दादीजी, माताजी, और छोटे भाई-बहनो से भरा-पूरा परिवार था। विदा के समय हमारे और घर वालो के मन मे एक अजीब-सी बेचैनी थी। लम्बी राह, अनजान मंजिल, पूँजी और न कोई जमा-जमाया काम। मेरा किशोर मन नाना प्रकार के तर्क-वितर्क मे उलझ रहा था। कभी परदेश की यात्रा का उत्साह भर आता तो दूसरे ही क्षण आत्मीय-स्वजनो के विछोह की कल्पना से मन भारी हो जाता। सोचता, गाँव ही मे क्यो न कुछ कर ले, आखिर इतनी दूर क्यो? न जाने कब वापिस आयेगे? पर चुप ही रहा, पूछने का साहस नही हुआ। अनुशासन मे पला मन ओठो के बाहर न आ सका। इतना जरूर समझ पाया कि कर्जदारो के रोज-रोज के तकाजो ने हमे घर से बाहर निकलने के लिए विवश कर दिया है।

पत्नी घर पर ही थी। हम दोनो की उम्र छोटी थी। प्रेम या सेक्स के गूढ अर्थ नही जानते थे। फिर भी एक ऐसी अनजानी डोर थी जिससे हमारे मन मे परस्पर बँध गये थे। फ्रायड या युग इसे भले ही अवचेतन मस्तिष्क की 'सैक्सीय' भूख परिभाषित करे, किंतु आज तक मैं केवल इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि सग-साथ से स्नेह उपजना स्वाभाविक है। इसी कारण, बच्चे या किशोर सपर्क मे आए घनिष्ठ व्यक्ति के प्रति विशेष रुझान रखते है, चाहे वह किसी भी उम्र का हो, पुरुष या स्त्री।

ज्यों-ज्यो विदा के दिन नजदीक आते, हम दोनो का मन भारी होता । इस विषय पर उदासी भरे वातावरण मे हमारी आपस मे चर्चा होती परन्तु विरह-विछुडन आदि की गभीरता समझने लायक हमारी भावनाएँ परिपक्व नही थी । हाँ, दोनो यदि वयस्क होते तो शायद राजस्थान के बहु प्रचलित लोकगीत मे वह गुनगुनाती —

मारू म्हारा थे चाल्या परदेश,
घर कद आओला म्हारा राज ।
सासरिये मे जीमै देवर, जेठ, पियाजी चित आवे म्हारा राज ।
मारू म्हारा, तरसैली घर नार, पीहर उठ ज्यावॉलाजी राज ।
महलां मे सूनी-सूनी सेज,
मारू जी चित्त आवे म्हारा राज ।
पिया म्हाने डस ज्योजी कालो नाग,
पिंड तो छूट ज्यावे म्हारा राज ।

—पिया परदेश जा रहे है, न जाने कब लौटेंगे । ससुराल मे जब भी देवर-जेठ को भोजन करते देखूगी, आपकी याद आएगी, मन तरसेगा । ऐसे मे विरह-वेदना उठेगी, इसलिए मै पीहर चली जाऊँगी, परन्तु वहाँ भी शयन-कक्ष मे सूनी शैय्या पीर उभारेगी । इससे तो कही अच्छा कि मुझे काला नाग डस लेता । विरह-वेदना से सदैव के लिये मुक्ति तो मिलेगी ।

आज सोचता हूँ, अच्छा हुआ विरह का अहसास हम दोनो मे से किसी को न हुआ, वरना सघर्षो मे कैसे उतरता, जूझता और पार पाता ?

हमारी सामाजिक व्यवस्था कुछ इस ढग की थी कि दपति को परस्पर मिलने-बोलने का अवसर बहुत ही कम मिल पाता । भोर अँधेरे से घर की बडी-बूढी के साथ रहना और घरेलू कामो मे हाथ बँटाना, यही परिपाटी थी बहुओ के लिए । इसी मे उनकी सामाजिक, धार्मिक और पारिवारिक शिक्षा-दीक्षा चलती रहती । ऐसे वातावरण मे पत्नी तो क्या माँ भी बडे-बूढो के सामने नही आती थी।

माता जी ने कब पिता जी से बाते की, हमे मालूम नही । फिर भी ऐसा लगता है कि उन्होने हमारे लिए चुपके से कहा होगा "टावर छोटा है, सम्हाल राखोगा । मन नही लागे तो फिरती भेज देयो ।"

दादा-दादी और माँ के चरण स्पर्श कर और छोटे बहन-भाइयो को प्यार कर जब हमने विदा ली, सबकी आँखे गीली थी ।

मुहूर्त निकाला था, भोर के चार बजे का और ट्रेन का समय था सुबह नौ बजे । इसलिए घर से प्रस्थान कर हम पाँच घटे के लिए पास के बाबा रामरतन जी के दादू द्वारे मे ठहर गए । स्टेशन पर आत्मीय स्वजन पहुँचाने आए । अधिकाश ने एक-एक रुपया विदाई का दिया । पुराने समय से यही प्रथा थी । सभवत पाथेय अथवा यात्रा के लिए सबल देने की भावना इसमे रही हो, या फिर उसमे अपने हृदय का स्नेह ऊँडेला गया हो !

ट्रेन सुबह नौ बजे चली । केवल उनतीस मील की दूरी तय करने मे तीन घटे लगे । सरदारशहर और रतनगढ के इस छोटे से फासले मे सात स्टेशन थे । दूलरासर मे पानी की एक टकी थी, ईटो की मीनार पर । बीस फुट ऊँची यह टकी उन दिनो हमारे लिए एक अजूबा थी, शायद वैसी ही चमत्कारपूर्ण जैसी आज भिलाई या दुर्गापुर के इस्पात कारखानो की टकी ।

रतनगढ से रात नौ बजे दूसरी ट्रेन पकडनी थी जो हमे दिल्ली पहुँचाती । इसलिए सारे दिन स्टेशन के पास की धर्मशाला मे ठहरे । अच्छे घी की पूरियाँ छह आने और बूँदियाँ आठ आने सेर मिलती थी । पूरियो के साथ लौजी और सब्जी मुफ्त । तीन-चार आने मे अच्छी तरह

पूरी-मिठाई से पेट भर जाता। आज भी वह दुकान वही है और उसी तरह पूरी मिठाइयाँ भी बनती है, पर अब शुद्ध घी की जगह वनस्पति तेल और दाम हो गए है आठ रुपये किलो।

रतनगढ से दिल्ली आने के लिए उन दिनो सीधी ट्रेन नही थी। हिसार मे गाडी बदलनी पडती। इस तरह दो दिन के सफर के बाद कही दिल्ली पहुँचते। हिसार मे धर्मशाला स्टेशन के पास ही थी। हम वही रुके। निकट ही एक ढाबा था जहाँ हमने भोजन किया। प्रसगवश एक रोचक घटना याद आती है। हमारे लछमणा महाराज अपने भतीजे और भाई के साथ यात्रा पर थे और इसी ढाबे मे भोजन के लिए बैठे। ठाकुर ने प्रति-व्यक्ति चार आने पहले ही लिए। अभी आधा पेट ही खाया होगा कि उसने कहा, 'महाराज गाडी ने सीटी दे दी, टाइम हो गया'। बिचारे फौरन खाना छोड ट्रेन की ओर दौडे। ट्रेन मे अभी डेढ घटे की देर थी। किसी दूसरी गाडी की सीटी थी। पर अब क्या हो सकता था? वे इसे भूले नही। दुबारा वापस लौटते समय वही भोजन के लिए आए। इस बार वे गाडी का समय पूछ कर आए थे। खाने के समय ठाकुर ने पहले की तरह फिर दाँव फेका, "महाराज, गाडी की सीटी हो गयी"। लछमणा महाराज ने और भी जमकर बैठते हुए, कहा, "होने दो, पहले खा तो ले। न होगा, कल जायेगे। परसो भी भूखे रह गये थे।" तीनो आदमियो ने डटकर भोजन किया, बीस जनों की खुराक साफ कर गये। ठाकुर देखता ही रह गया।

हिसार से गाडी बदलकर रेवाडी होते हुए दिल्ली पहुँचे। आगे के सफर के लिए रात की गाडी थी। सारे दिन दिल्ली मे रुके रहे। उन दिनो आज की तरह न तो इतने होटल थे और न लोगो मे खर्च करने की प्रवृत्ति। कुली के सिर पर सामान उठवा कर स्टेशन के पास की लक्ष्मीनारायण धर्मशाला मे चले गए। पिछले वर्ष मैट्रिक परीक्षा देने के लिए मै दिल्ली आ चुका था। लाल किला, कुतुबमीनार और हुमायू का मकबरा आदि दर्शनीय स्थल देख लिए थे। नयी दिल्ली उन दिनो राजधानी के लिए चुन ली गयी थी। गाँव खाली कराये जा रहे थे। दैत्याकार बडी-बडी मशीनो से पत्थर तोडे जा रहे थे। रायसिना तो बिल्कुल उजाड जगल सा था। घूमते हुए हम वही से गुजरे। ऊबड-खाबड पथरीली सी जगह, कभी सोचा भी नही जा सकता था कि पैतीस-चालीस वर्ष बाद यह भारत का सबसे सुन्दर और विश्वविख्यात नगर हो जाएगा और छह आने प्रतिगज जमीन की कीमत बढकर हो जायेगी ढाई सौ रुपये।

शाम के समय चाँदनी चौक गए। अलिफ-लैला की किसी एक नगरी की तरह चमत्कारपूर्ण लगा। दूकानो मे रग-बिरगे सामान सजे थे। लोगो की भीड, खरीद-फरोख्त, बाहर पटरियो पर भी छोटी-छोटी दूकाने। हमारे यहाँ गाँव मे तो भूधरजी पसारी की दूकान मे दवाई, स्टेशनरी से लेकर किराने, कपडे तक सब समान एक ही जगह मिलते जबकि यहाँ हरएक वस्तु के लिए अलग-अलग दूकाने थी। मन मे सोचता परदेश मे कमाकर लौटूँगा तो छोटे भाई बहनो के लिए तरह-तरह की पेसिले, कापियाँ और खिलौने जरूर लेता जाऊँगा।

तीसरे दर्जे मे हम दिल्ली से धुबडी के लिए रवाना हुए। उन दिनो तीसरे दर्जे की यात्रा क्या थी और कैसे थी, इसके बारे मे केवल इतना कहा जा सकता है कि जीवट एव सहिष्णुता का काम था। भेड-बकरियो की तरह लोग भरे रहते। ट्रेने बहुत कम थी। बैठने के लिए डिब्बो मे एक सिरे से दूसरे सिरे तक सँकरी बेचो की तीन कतारे। बीच वाली कतार मे एक दूसरे की तरफ पीठ करके लोग बैठते। ऊपर सामान रखने के लिए बर्थे भी सँकरी होती थी। पखो की व्यवस्था थी नही, यात्री पसीने से तर हो जाते। गर्द,गदगी और दुर्गन्ध से भरा लबा सफर, कपार्टमेट के दरवाजे सँकरे और बाहर खुलने वाले थे। डर बना रहता कि कही खुल न जाए और भीतर बैठा यात्री बाहर गिर पडे। खिडकियो पर सीखचे नही। मरम्मत पर ध्यान कम था। टूटी खिडकियो की राह गर्मी मे लू और बरसात मे पानी की बौछारे भीतर आती। पाखाने मे नल नही थे।

रिजर्वेशन या आरक्षण की व्यवस्था भी नही थी। स्टेशन पर कुली चार आने लेता।

मुसाफिर को उकड़ूँ बैठाता और खिडकी की राह डिब्बे के अन्दर ढकेल देता।चाहे किसी को चोट लगे न लगे सब विधि के विधान पर निर्भर था। इसलिए इस मामले मे जोरदार तकरार नही होती हल्की झडप के बाद सब शात। गाडी चली कि आपस मे परिचय का सिलसिला चल पडता। अदर के मुसाफिर डिब्बे का दरवाजा खोलते नही थे। बाहर आने-जाने के लिए खिडकी ही थी,खुदा की राह। इस मार्ग से भीतर पहुँच सके तो भाग्यशाली, वरना स्टेशन पर बैठे-बैठे बारह-चौबीस घटे बाद फिर अगली गाडी के लिए किस्मत आजमायी जाय।

लम्बी यात्रा पर आने वाले रास्ते का खाना प्राय घर से बाँध कर लाते। टीन के डिब्बे मे पराठे, मोठ-बाजरे की रोटियाँ और केर-सागर का अचार, नास्ते के लिए पेठे, लड्डू और मठडी या नमकीन, सुवाली (मठरी)। आज की तरह न 'रिफ्रेशमेट कार' थी और न ही वरदीधारी बेयरे। चाय का प्रचलन नही था। कही-कही बिकती। पान-बीडी वाले जरूर हर स्टेशन पर होते।

बडे-बडे महाजन व्यापारी भी तीसरे दर्जे मे सफर करते। सेकेड या इटर मे अग्रेज। पढ़े लिखे, जमीदार, कपनियो के मुलाजिम और छोटे-बडे सरकारी अफसर-वर्ग के यात्री रहा करते थे। फर्स्ट क्लास मे बहुत ऊँचे तबके के जज़, बैरिस्टर, सिविलसर्जन और मिलेटरी के कर्नल आदि आज भी साफ याद आता है, यूरोपियनो के लिए डिब्बे अलग रहते थे।

हमारे लिए थर्ड क्लास मे बैठने का मौका पा लेना ही बडी नियामत थी। बहुत दूर तक बैठने की जगह नही मिली। खडे-खडे जाना पडा। हमारी तरह और भी बहुत से थे। गरमी का मौसम, पखे थे नही। पानी के लिए स्टेशन पर जा नही सकते, कही कोई अन्य मुसाफिर जगह पर कब्जा न कर ले। शायद ऐसी ही पृष्ठभूमि पर राजस्थान मे कहावत चली —

लहणो भलों न बाप को, बेटी भली न एक।
पैडो भलो न कोस को, साहब राखै टेक॥

कर्ज चाहे पिता का ही हो, बेटी चाहे एक ही हो, घर के बाहर की यात्रा चाहे कोस भर की ही हो, ये सब कष्टदायक है। इनसे भगवान् बचाये।

चार दिन की लबी और कष्टप्रद यात्रा के बाद गोरखपुर, छपरा और कटिहार होते हुए हम धुबडी पहुँचे। रास्ते मे कई जगह ट्रेन बदलनी पडी, खाने-पीने की असुविधाएँ तो थी ही। कलकत्ता होकर जाते तो ये तकलीफे कम रहती, मगर उस हालत मे प्रति-टिकट दो रुपये ज्यादा लगते। इसलिए छ रुपये बचाने के खयाल से हमने उपर्युक्त रास्ता चुना।

बगाल की सीमा पर धुबडी उन दिनो एक साधारण कस्बा था। बाद मे पाट और गल्ले के व्यापार का बडा केन्द्र बन गया। मै पहली बार परदेश आया था। सब कुछ अजीब-सा लगा। टीन के छप्पर की दुकाने थी, इन्हे गोला कहते। इनके पिछवाडे उसी ढग के आवास। कीचड और सीलन भरे आँगन। मुझे सब कुछ अटपटा और दुखदायी लगा। राजस्थान की सूखी हवा, खुला वातावरण, पक्के मकान और सुनहरी बालू को छोडकर कहाँ आ गया! टीन के छाजन के गोलो और कच्चे मकानो को देखकर जो अजीब-सी सिरहन हुई उसे आज भी नही भूला हूँ।

धुबडी मे हमारे चाचा और ताऊ का थोडा बहुत कारोबार था। इसलिए हमे ठहरने की असुविधा नही हुई। राजस्थानी व्यापारी आमतौर पर पाट, कपडे और गल्ले का धधा करते थे। आपसी सलाह-मशविरे के बाद हमने भी पाट और कपडे के व्यापार को चुना। इसके लिए कम-से-कम पन्द्रह-बीस हजार की पूँजी चाहिए थी। हमारे पास तो कुछ भी न था।

वहाँ एक महाजन थे, नेतरामजी बजाज। बाहर से आए हुए व्यापारियो को रुपये उधार देते। इनकी दूकान के सामने से मै कई बार गुजरा। हमेशा इन्हे अपने बही-खातो मे व्यस्त

पाया। ऊँची धोती, मैली-सी गजी पहने वहियो के पन्नो को उलटते-पुलटते। मै सोचता, इनका मन वैठे-वैठे ऊबता क्यो नही। शायद रुपयो का लोभ बहुत है। यह भी सुना कि उनके पास लाखो की सम्पत्ति है।

मेरे जैसे अभाव मे पले किशोर के लिए अचभे की बात थी। सोचता वह कौन सी तरकीब है जिससे इन्होने इतना धन पैदा कर लिया, काश, मै भी सीख पाता।

कभी-कभी विश्लेषण करता कि अपने समस्त सुखो की उपेक्षा कर एक-एक पैसे की कजूसी ने शायद इन्हे धनी बनाया है।

एक दिन उन्होने हनुमानजी का प्रसाद किया। बहुत से लोग आमन्त्रित थे। इस प्रकार के आयोजन हमारे यहाँ की तरह उन सुदूर-प्रान्तो मे भी हुआ करते थे। इससे व्यस्त जीवन मे परस्पर मिलने-जुलने का अवसर मिल जाता था। हम भी नेतरामजी के यहाँ गए। मुझे उन्हे पास से देखने का अवसर मिला। बात-चीत मे सयत और व्यवहार-कुशल लगे।

पिताजी ने उनसे बात की। कारबार के लिए उनकी गद्दी से पच्चीस सौ रुपये उधार मिले। मगर हमे तो ज्यादा की आवश्यकता थी। अतएव, पिताजी और भाई जी की रकम,का बन्दोबस्त करने यहाँ से चार सौ मील पूर्व जोरहाट गये। हमारे फूफाजी वहाँ रहते थे। चार-पाँच दिन वाद वे दोनो दस हजार रुपये लेकर लौटे। हमे जितनी पूँजी चाहिए थी, उसकी आधी ही जुटा पाये फिर भी हिम्मत नही हारी। एक पुरानी कहावत है, मारवाडी लोटा-डोर लेकर घर से निकलता है और शीघ्र ही लखपति हो जाता है। इसका कारण एक ओर जहाँ आत्मविश्वास, अपने अध्यवसाय मे निष्ठा, सादा जीवन और कठोर परिश्रम है, वही दूसरी ओर राजस्थानियो का पारस्परिक सहयोग भी। राजस्थान से सहस्रो मील दूर विभिन्न उद्योगो और व्यवसायो मे आज उन्नति के शिखर पर पहुँचे ये लोग घर से पूँजी लेकर नही चले थे।

हमने पाँच सौ रुपये सालाना किराये पर एक गोदाम लिया और पाट के काम का श्रीगणेश किया। इसके अलावा कपडे की एक छोटी-सी दूकान भी कर ली। रोज सौ सवा-सौ का कपडा बिक जाता। आठ-दस रुपयो की आमदनी हो जाती। पिताजी और भाईजी काम देखते। कभी तो मै दुकान मे बैठता कभी पाट के गोदाम मे। ग्राहको को कपडे दिखाता, धीरे-धीरे दाम बताना भी सीख गया। पाट के गोदाम मे कितना माल है, किस मुकाम का है, क्या क्वालिटी है, देखता और समझने की कोशिश करता। फिर भी, अकेलेपन मे किशोर मन बार-बार गाँव की ओर दौड जाता। वे टीले, हमारी हवेली, लीली गाय, लछमणा महाराज, दादीजी की मनुहार, दोस्तो की चुहले आदि याद आने लगती। कभी-कभी तो आँखे गीली हो जाती। विषाद और कल्पना की ऊँचाइयो और गहराइयो मे खो जाता। अपने आप मे ये भाव अटपटे शब्दो मे फूट पडते।

जन्म भूमि की माटी से, मै खेलूँ गाऊँ,
जीवन की प्रत्येक घड़ी को सुखी बनाऊँ।

मै खुश हो उठता कि कवि बन गया'। परतु दूसरे ही क्षण जब यह सोचता कि मुझे तो किसी तरह धन कमाना है, इसीलिए तो अपने यहाँ की सर्वहितकारिणी सभा, पब्लिक लाइब्रेरी और पढाई छोड कर इतनी दूर आया हूँ।

पाट से लदी नौकाएँ विभिन्न गाँवो से आकर नदी के घाट पर लग जाती। व्यापारियो के गोदामो मे माल चला जाता। मुझे यह जगह बहुत सुहावनी लगती। बरसात का मौसम था, नदी का पाट, कई मील तक चौडा फैल जाता, जिधर देखो लहराता जल। उस पार तुरा की पहाड़ियाँ। सुबह जब सूर्य की पहली किरण पडती तो लगता मानो ऊषा कुकुम बिखेर रही हो। अथाह जल राशि मे उठती लहरे अरुणाभ हो जाती। (वर्षो बाद स्कॉटलैड और स्विट्जरलैड की झीलो और पहाडो पर सूर्योदय की सिंदूरी आभा देखने का सुयोग मिला

किन्तु ब्रह्मपुत्र की यह दिव्य नैसर्गिक छवि आज भी अतुलनीय लगती है ।)

नेतरामजी की तरह और भी कई महाजन थे । जो असम-बंगाल के प्राय हर छोटे-बडे गॉव मे कारोबार मे लगे थे । व्यापार की इच्छा से आए हुए नए लोगो को आर्थिक सहायता देते । यही नही, उन्हे सलाह भी देते कि कौन सा काम अधिक सुविधाजनक या लाभप्रद रहेगा । इनमे प्रमुख थे, बगाल के मुर्शिदाबाद से आए हुए ओसवाल महाजन । इन्ही मे से एक प्रसिद्ध फर्म थी, महासिंह मेघराज । इनकी कोठियाँ पूर्वी असम के प्राय हर शहर और कस्बे मे थी । कोई भी नवागतुक जब तक अपनी व्यवस्था जमा नही लेता, इन्ही के यहाँ ठहरता और इन्ही के ढाबे मे खाना खाता । यह एक आम बात थी । इसमे कोई सकोच नही माना जाता । इनकी कोठियाँ या गोले 'बडा गोला' कहलाते ।

कुछ वर्षो पहले इस फर्म के भागीदार श्री खडगसिंह कोठरी से मेरी बात हुई । उनका कहना था कि सैकडो नए आए हुए भाइयो को फर्म से व्यापार के लिए रुपये उधार दिए गए परतु कभी ऐसा मौका नही आया कि रकम डूबी हो । मालिक ज्यादातर मुर्शिदाबाद मे रहते और दिसावरो का सब कारोबार मुनीम लोग सभॉलते है । मैंने एक बार उनके तेजपुर के गोले मे पुरानी बहियाँ देखी । शायद सन् १८३३-३५ की थी । हेड मैनेजर यानी बडे मुनीम का वेतन दस रुपया महीना । चावलो का भाव था, एक रुपये का सवा मन, दाल पैंतालीस सेर और सरसो का तेल था एक रुपये का आठ सेर । ये बहियाँ इनके यहाँ आज भी सुरक्षित है । मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि उन दिनो न तो आज की तरह उन्नत कृषि थी और न परिवहन के उत्तम साधन, सदियो तक देश मे मुस्लिम प्रशासन की अव्यवस्था और बाद मे अग्रेजो द्वारा शोषण की सुदीर्घ अवधि । फिर भी गल्लो या जिसो की कीमत इतनी कम कैसे थी ? जनसख्या की वृद्धि कुछ अशो मे कारण बन सकती है, पर आज के भाव इसके अनुपात में बहुत ऊँचे है । नि सदेह उन दिनो चीजो का मूल्य सर्वसाधारण की क्रयशक्ति के अतर्गत था ।

श्री कोठरी ने मुझे बताया कि उनके परदादा मुर्शिदाबाद से एक बडी नौका मे ग्वालदो (बागला देश) होते हुएं तीन महीने मे यहाँ पहुँचते थे । रास्ते मे जल दस्युओ का भय रहता, इसलिए साथ मे दस-बारह शस्त्रधारी सिपाही और चार-पॉच मुनीम-गुमास्ते रहते । राजस्थान के और भी व्यक्ति अच्छे साथ के कारण यात्रीदल मे शामिल हो जाते ।

धुबडी मे रहते समय मुझे सबसे ज्यादा ऊबा देने वाली बात थी-स्थानीय बाजारो की गदगी । यूँ मै बिना कहे या पूछे कही बाहर नही निकलता । उम्र मे छोटा था, हमेशा पिताजी या भाईजी किसी को साथ कर देते । एक दिन हमारा कयाल (तुलनदार) कासिम अली मुझे स्थानीय मछली बाजार मे ले गया । चारो ओर घोघे और मछलियाँ, छोटी-बडी टोकरियो मे भरी थी । कुछेक बिना पानी के पूँछ पटक-पटक दम तोड रही थी । नज़र घुमाई तो मांस की दुकाने । चमडी उतारे हुए पूरे के पूरे बकरे-भेड औंधे लटकाए हुए । कटी गर्दने फर्श पर रखी थी, खून से लथपथ । मै कॉप गया , सडाध और बदबू से परेशान हो उठा । पैर लडखडाने लगे । जीवन मे पहली बार ऐसा वीभत्स दृश्य देखा था । हमारे गॉव मे कसाई बकरे काटते थे , परन्तु एकात स्थान पर । हिंदू मुहल्लो मे मास खुले तौर पर नही आता । पडोस मे रगरेजो के घर थे । अपने पर्व त्योहार पर वे मास पकाते, मगर हमसे छुपाकर । इसलिए ऑखों के सामने अँतडियो के ढेर, कटे सिर और मास के लोथडो का दिखाई पडना मेरे सस्कारो ने अगीकार नही किया । पॉच-सात रात मुझे नीद मे कटे भेड-बकरे दिखाई देते रहे । पिताजी कों जब इस बात का पता चला तो उन्होने कासिम को बहुत डॉटा कि ऐसी जगह वह क्यो ले गया ।

लगभग दो महीने धुबडी मे रहा, पर मेरा मन नही लगा । कभी-कभी अकेले मे रोने लग जाता । गॉव के लोग, भाई-बहन, मित्र, पत्नी सभी की याद ताजा हो जाती । सावन का

महीना था, देश मे बहनें वृक्षो की डालो मे झूले डालकर हीड -(झूल) रही होगी । मित्र बरसात के पानी मे नहा रहे होगे । टीलो पर खेल-कूद रहे होगे । मन होता उड़कर वहाँ पहुचूँ । गुल्ली-डन्डा लिये हरदडा और कबड्डी के लिए वे मेरी राह देखते होगे ।

बरसात तो धुबडी मे भी थी । राजस्थान मे वर्षा कम होती है, इसलिए सुहावनी लगती है, जबकि यहाँ अत्यधिक होने के कारण डरावनी । यहाँ तो पानी बरसता है, पीट-पीट कर थमता ही नही । चारो तरफ कीचड और पानी-ही-पानी । इस कस्बे मे तो इतना चढ जाता कि लोग बाजार-हाट भी नावो पर ही करते । जब पानी उतरता तो सब तरफ दल-दल, मच्छरो और साँपो की भरमार । ऐसे मे भला बरसात का आनद क्या लेता '

रात को हम सोते तो गद्दे पर एक बडी मसहरी तान दी जाती । पूरी कनात-सी लगती । इसके भीतर पाँच-छह जने सो जाते । बाहर मच्छर शोर मचाते, भीतर लोगो की नाक बजती । कभी हँसी आती तो कभी गुस्सा । मसहरी के चारो तरफ जुगनुओ की टोली देखते-देखते नीद को बुलाने की कोशिश करता ।

मेरे मन का भारीपन व्यक्त न हो, इसकी पूरी सावधानी रखता । सोचता कि बडा हो रहा हूँ, मेरी भी कुछ जिम्मेदारी है । मुझे काम-काज मे हाथ बँटाना चाहिए, इसीलिए तो पिताजी और भाईजी साथ लाए है ।

पिताजी की अनुभवी आँखो से मेरा अतर्द्वद्व छिपा न रहा । एक दिन पूछा, "कैसी लग रही है यह जगह ?" "जी, ठीक है" मेरा सक्षिप्त-सा उत्तर था । विषय बदलते हुए उन्होने कहा "काम तो कुछ-कुछ सीख रहे हो, यह अच्छी बात है ।"

वे एकटक मेरी ओर देख रहे थे, उनकी आँखो मे प्यार भरा था । मेरा मन भर आया । पुचकारते हुए वे कहने लगे, "देस जाओगे, जाना चाहते हो ?" मैं आँखे नीचे किए था । रुलाई आ गई, अपनी दुर्बलता पर ग्लानि-सी हुई । पिताजी ने पास खीच कर सिर पर हाथ फेरा ।

पाँच-सात दिन बाद देश जाने वाले किसी परिचित के साथ उन्होने मुझे सरदारशहर भेज दिया ।

मत ना सिधारो पूरब री चाकरी जी

परदेस से लौटने वाला पत्नी और भाई बहिनो के लिए कुछ सौगात लाता है। घर वाले भी इसकी आशा लगाए रहते है। परन्तु जब दो-तीन महीने बाद सरदारशहर पहुँचा तो साथ मे टीन की एक छोटी-सी सन्दूक और दरी के बिस्तर के सिवाय कुछ भी नही था। पत्नी अभी बालिका ही थी, परन्तु हमारी आर्थिक स्थिति को समझती थी। उसने कोई शिकवा-शिकायत नही की। दादीजी और माताजी ने यह महसूस किया कि मै कुछ उदास और दुबला हो गया हूँ।

उस समय असम मुझे जरा भी अच्छा नही लगा। बाद मे सैकडो कार्यो से वहाँ गया—अपने चाय बगीचो और कोयले की खानो की सँभाल के लिए या सार्वजनिक उत्सवो-सम्मेलनो के काम से। भारतीय ससद् के प्रतिनिधि-मडल के सदस्य के रूप मे सुदूर अरुणाचल (नेफा) के बोमडीला तक की यात्रा कर चुका हूँ। काजीरगा के प्रसिद्ध राष्ट्रीय वन मे भी दो-तीन बार हो आया। वहाँ जगली हाथियो, खूखार शेरो और गैडो को स्वच्छद विचरते देखा। कभी-कभी तो मुझे ऐसा लगता कि असम मुझे बुला रहा है। ऋषि बकिम की 'शस्यश्यामला मातरम्' यही तो है।

असम सचमुच असम है। प्राकृतिक छटा यहाँ के समान अन्यत्र मिलती नही। वन-प्रातर सम्पदाओ मे भरे पडे है। धरती अपनी गोद से धन बिखेरती है। गारो खसिया और जयन्तिया की पहाडियाँ बगाल की खाडी से आने वाली नम हवाओ को रोककर मानो कहती है—'ये बादल लेकर दूर पार मत जाओ, तुम यही बरस इस धरती को सरसाओ' और बादल सचमुच रुककर असम की धरती को सरसा देते है। तभी यहाँ के अनन्नास, सतरे और मधु मे अनुपम माधुर्य है। अपनी मातृभूमि को असमिया 'अहम' कहते है। चाहे किसी भी ऐतिहासिक अर्थ के साथ यह शब्द सबधित हो, पर यह मानना पडेगा कि इस धरती की कामिनियो की शालीनता और सौदर्य के सन्दर्भ मे 'अहम' का भाव सार्थक ही कहा जायगा।

शायद इसीलिए असम को कामरूप भी कहा जाता है। धनुर्धर अर्जुन का गाडीव धरा रह गया यही चित्रागदा के प्रेम में। यही तो रूपसी उर्वशी हुई थी। कामरूप की रानी मृणावती ने गोरखनाथ के गुरु परम योगी मछिन्दर नाथ को अपने रूप जाल मे ऐसा लपेटा कि उसके बाहु पाश मे गुरुवर ज्ञान-ध्यान, जप-तप सभी कुछ भूल बैठे। कई बार 'जाग मछिन्दर गोरख आया' कहकर बडी मुश्कल से शिष्य ने गुरु को प्रेम पाश से मुक्त किया। कोई आश्चर्य नही कि राजस्थान के अभाव-अकालो से त्रस्त युवक इस प्रदेश मे आकर यहाँ की उर्वरा धरती और चपल कामिनियो के आर्कपण मे अपने परिवार और पत्नी तक को भूल बैठते। प्रसिद्ध था कि कामरूप की स्त्रियाँ 'कामण' जानती है, वे पुरुष को दिन मे भेड और रात मे आदमी बना कर रखती है। उन दिनो मेरा अविकसित मस्तिष्क इसके गूढ अर्थ नही समझ पाया। बाद मे

राज खुला कि मर्द दिन भर भेड की तरह स्त्री के इशारे पर चुपचाप बैठा रहता और रात मे मर्द बन जाता ।

आज यह भी सोचता हूँ कि उस समय इस सुदूर पूर्वांचल मे आत्मीय स्वजनो को छोडकर लोग अनेक कष्टो के बावजूद क्यो आते थे ? क्यो यहाँ के दलदल, मच्छर, साँपो और वन्य पशुओ से त्रस्त रहते हुए भी दस-दस, बारह-बारह वर्ष तक जम कर रहते । कस्बे और गाव भी आज की तरह विकसित नही थे । मलेरिया, कालाज्वर और पेचिश का प्रकोप आए दिन की बात थी । शायद महत्वाकाक्षा और आवश्कता उन्हे इतनी लम्बी अवधि की मुसाफिरी के लिए बाध्य करती, दस-पन्द्रह वर्ष के बाद चार-छह माह के लिये अपने गाँव मे लौट आते और फिर इस बीहड यात्रा पर चल देते । साथ मे रहता लोटा, बिस्तर और हाथ मे लाठी ।

अपने उन पूर्वजो की कष्टभरी यात्रा और सघर्षो के बारे मे सोचता हूँ तो श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते थे, क्योकि वे ही वर्तमान समृद्ध और उन्नत समाज की नीव के पत्थर थे ।

राजस्थान वापस आकर अपने घर की स्थिति देखता तो मन मे एक कसक-सी उठती । उम्र कम होने पर भी मुझे यह तो मालूम था कि निर्वाह के लिए व्यवस्था जरूरी है । आय का साधन नगण्य था । अतएव कर्ज और खर्च के दोनो पाटो के बीच परिवार पड गया था । यह महसूस करता कि मुझे भी घर का बोझा हल्का करने मे हाथ बटाना चाहिए ।

हमारे पडोस मे ओसवाल महाजनो के दो-तीन परिवार थे । उनसे हमारा अच्छा मेल था । असम और कलकत्ता मे उनका व्यापार था । वे राजस्थान लौटते तो महिलाओ और बच्चो के लिए कई बेहतरीन कपडे, गहने और सुगन्धित द्रव्य लाते, घर वाले इन चीजो की बडाई करते रहते । मैं मन-ही-मन दुखी हो जाता । सोचता, परदेश तो मैं भी गया परन्तु छोटे बहन-भाइयो के लिए सौगात लाने की प्रबल इच्छा पूरी न कर सका । शायद माताजी, नानीजी और दादीजी भी सोचती होगी कि उनके लिए भी कुछ लाऊँगा । कुछ भी न हो पाया । उलटे, सौ-पचास रुपये जाने-आने मे खर्च हो गए ।

उन्ही दिनो एक बार दादाजी बीकानेर जाते हुए रास्ते के एक कस्बे मे ठहरे । एक निकट सबधी बीमार थे, उनसे मिलने गए उन्होने कहा —आपको इस समय हम तो कर्ज नही दे सकेगे, वैसे भी बिना आपस मे सलाह किए हम सबधियो को उधार नही देते । दादाजी बहुत ही मितभाषी, स्वाभिमानी और धर्मपरायण थे । यह बात सुनकर वे बहुत दुखी हुए । उन्होने कहा कि "साहजी, मै तो आपकी तबीयत का हाल पूछने आये था । कर्ज लेने का तो मेरे मन मे कोई विचार ही नहीं था ।" लौटकर दादीजी और पिताजी को उन्होने जब यह बतायी तो उन सबकी आँखे गीली हो गई । वहाँ जाने का पश्चाताप उन्हे बहुत दिनो तक रहा ।

इसी बीच मैने कलकत्ते के कई फर्मो मे नौकरी के लिए आवेदन-पत्र भेजे, परन्तु किसी का भी सतोषजनक उत्तर नही आया । पद्रह-सोलह वर्ष के मैट्रिक पास लडके को काम देने की गरज किसे पड़ी थी ?

मेरे श्वसुर हरचदराय जी सराफ का कलकत्ते मे अच्छा कारोबार था । मेरी पत्नी उनकी इकलौती पुत्री थी । हमारे घर की स्थिति का उन्हे पता था । वे हम लोगो के लिए कुछ करना चाहते थे, परतु उनका सम्मिलित परिवार था, इसलिए सयोग नही बैठ रहा था । एक दिन उनका पत्र आया कि कलकत्ते चले आओ । पत्र पाकर मै उलझन मे पड गया । दादीजी और माताजी पहली यात्रा की मेरी उदासी और निराशा से परिचित थी, मुझे अनमना भी देखती । इसलिए इतनी जल्दी परदेश भेजना नही चाहती थी । पत्नी की सलाह का तो सवाल ही उस समय नही था । अपनी पहली यात्रा की असफलता से हताश-सा था । किन्तु मन को कडा कर कलकत्ते के लिए रवाना हो गया ।

ग्यारह वर्ष पहले चार साल की उम्र मे एक बार कलकत्ता आ चुका था । उस वक्त की धुँधली-सी याद थी । समझ आने पर यहाँ आने का पहला मौका था । हवडा स्टेशन पर

उतरा । बडे-बड़े प्लेटफार्म और भीड देखकर भौचक रह गया। हमारे गाँव मे तो बडे-से-वड़े मेले मे भी इतनी वडी भीड नही होती । लाल कमीजे पहने कुलियो की जमात और नाना प्रकार की वेषभूषा वाले मुसाफिरो का शोर। स्टेशन पर मुझे लेने के लिए ममेरे भाई दौलतराम जी आये। हम दोनो एक रिक्शे पर सवार हुए। रिक्शा चला तो मुझे डर लगा कि कही उलट न जाये। पहली वार देखा कि घोड़े या ऊँट की तरह इसान बहुत से समान के साथ दो आदमियो को लाद खुद गाडी मे जुता है। मन मे ग्लानि का भाव आया। रिक्शा पुल की ओर वढा। सामने गगा बह रही थी।

पुल भी अपने ही ढंग का था, लोहे की नावो पर वना हुआ। वडे-वडे जहाज जव आ जाते तो बीच से नावे हटा ली जाती ताकि वे दूसरी ओर निकल जाये। पुल पर से हरीसन रोड़ होते हुए हम मालपाडा आये। रास्ते मे जिधर नजर जाती लोगो का हुजूम उमडता दिखता। ऊँचे मकान, दूकान, दौडती मोटरे, वग्घियाँ-सब कुछ देखकर लगा कि किसी जादुई नगरी मे आ पहुँचा हूँ।

वहुत दिनो वाद मैने फ्राँसीसी उपन्यासकार अलेक्जन्डर ड्यूमा की 'थ्री मस्केटियर्स' पढी। उसमे आर्तेजन के प्रथम वार अपने गाँव छोडते समय की वात पढकर मुझे भी कलकत्ते की अपनी इस याला की याद आ आयी। आर्तेजन के पिता ने अपने वेटे को विदा करते हुए कहा था— 'बेटा, मेरे पास तुम्हे देने के लिए सिवाय इस पुश्तैनी तलवार और मेरे मिल ट्रेभले के नाम लिखे गए परिचय पत्न के और कुछ नही है। मगर मुझे भरोसा है कि पेरिस जाकर तुम अपने खानदान का नाम रोशन करोगे', कुछ ऐसे ही भावपूर्ण वाक्य दादाजी ने गाँव से विदा होते समय मुझसे कहे थे। उनका आशीर्वाद लेकर मै पूरे विश्वास के साथ उस छोटी अवस्था मे, जो आमतौर से खेलने, कूदने और पढने की मानी जाती है, कलकत्ता जैसे महानगरी मे रोजगार के लिए आया।

कुछ ही पहले पिताजी और भाईजी भी असम से यहाँ आ गए थे, क्योकि वहाँ हमारा काम जम नही पाया। उन्होने आरमेनियन स्ट्रीट मे एक जगह किराए पर ले ली। एक कमरे के आधे हिस्से का किराया था पच्चीस रुपया महीना। छोटे रूप मे आढतदारी का काम शुरू कर दिया। मैं भी वही रहने लगा। कुछ दिनो बाद दादाजी की अस्वस्थता का समाचार पाकर, पिताजी को गाँव वापस जाना पडा। हम दोनो भाई वही रह गए। पूँजी के अभाव मे व्यापार बहुत कम कर पाते, अतएव आय भी कम थी।

उन दिनो वगाल-असम मे व्यवसाय, व्यापार अथवा नौकरी पेशे मे लगे अधिकाश मध्यम श्रेणी के राजस्थानियो के स्त्री-बच्चे साथ नही, बल्कि अपने-अपने गाँवो मे रहते थे। मुनीम-गुमाश्ते जहाँ काम करते, उन्ही गद्दियो मे रहते या कई जने मिलकर कोठरियाँ किराए पर लेकर गुजारा करते। ढावे मे भोजन करते और रात को निश्चित स्थान पर सो जाते। आज की अपेक्षा जीवन कष्टमय जरूर था। पर अन्य कोई सुविधाजनक विकल्प नही था। हम भी रात मे अपनी गद्दी मे सोते। वहुत तडके उठकर स्नान कर लेते। वही ऊपर ढावे मे भोजन करते। खर्च था, दस रुपया मासिक। आज की सी मँहगाई थी नही। इसलिए इतने खर्च मे शुद्ध घी से वना भोजन दोनो समय पेट भर मिल जाता था। महीने मे दो वार खीर-पूरी या हलुवा भी वनता जो उन्ही दस रुपयो मे शामिल था। ढावा के नौकर गद्दी की झाडू-बुहारी तथा पानी पिलाने का काम कर देते। जाडो मे गरम पानी की व्यवस्था भी वही हो जाती।

कलकत्ते का वडा-वाजार अचल सदा जनसकुल रहा है। ऊँची-ऊँची विशाल अट्टालिकाएँ बनती जा रही है, आज भी यही क्रम है। एक-एक मकान क्या है गाँव के गाँव समा जाये। उस समय की तुलना मे आज के मकान कुछ सुविधापूर्ण अवश्य वने हुए है। उनकी व्यवस्था भी पुराने ढर्रे की है। बडे वाजार मे न तब आदमी इसान की तरह जिदगी बसर करता और न

आज ही करता है। अधिकाशत एक छोटी सी कोठरी मे पूरा परिवार गुजर करता उसी मे रहना, रसोई पकाना और रात को एक दूसरे पर गिर-पड कर सो जाना। अगर पुत्र का विवाह हो जाता तो कमरे मे पर्दा डालकर एक तरफ माँ-बाप बच्चो को लेकर सोते, दूसरी तरफ पुत्र और उसकी पत्नी। इसी तरह गद्दियो मे जहाँ केवल चार-पाँच व्यक्तियो के लिए जगह होती, वहाँ रहते आठ-दस। कभी-कभी आए-गए इससे भी ज्यादा हो जाते। भीड का यह सिलसिला बराबर चलता रहता। इस वजह से सुबह शौच के लिए पाखानो के सामने लबी कतारे लगती। खडे-खडे गदगी और बदबू से सिर भन्ना उठता। एक ओर सडास की दुर्गन्ध ऊपर से बीडी पीनेवालो का धुआँ उगलते रहना, खाँसी और खँखार का ताँता। जी घबरा उठता, मगर दूसरा उपाय भी न था। मै सोचता, यह कैसी जिदगी है! हमारे गाँव मे गरीबी तो है, मगर जीते है इसान की तरह। ये सब भी तो वही से आए हे फिर शुचिता के इनके सस्कार कहाँ चले गए।

सन् १६६६ मे मडहौरा (बिहार) मे अपनी चीनी मिल देखने गया। पहले यह अग्रेजो की थी। वहाँ उस जमाने के बने आफिसरो के बँगले देखे। प्रत्येक शयन कक्ष के साथ दो-दो बाथरूम। पूछने पर पता चला, पति पत्नी की सुविधा के लिए इन्हे अलग-अलग बनवाया गया था। याद आ गई, सन् १६२७-२८ मे बडा बाजार मे बिताए गए अपने जीवन की बाते। बाथ-रूम की तो बात ही क्या, क्यू लगा कर निबटना और छोटी-सी बाल्टी लेकर अपने ऊपर उडेल लेना पर्याप्त था।

उन दिनो हलवाइयो के यहाँ गरम दूध तीन-चार आने सेर मिलता था। हम दोनो भाई एक-एक पाव दूध लेते। सुबह दस बजे भोजन कर लेते। दिन मे सामने की दुकान से दो आने का जलपान मँगा लेते। फल और सूखे मेवे आज के अनुपात मे बहुत सस्ते थे, परतु हमने शायद ही इनका उपयोग किया हो। आमतौर पर फल रईस और सम्पन्न व्यक्ति ही खाया करते, जनसाधारण के लिए तो ये दुर्लभ थे।

शुरुआत के दिन तो यो ही गुजरते गए। किसी तरह खीचतान कर गुजारा करते, मगर दो-तीन महीने मे हमने यह महसूस किया कि आय बढाए बिना काम नही चलेगा। समस्या थी कि इतनी इतनी थोडी सी आय मे कलकत्ते का और गाव का खर्च किस तरह चलाएँ और कर्ज कैसे उतारे। व्यापार मे तत्काल आमदनी बढाने का साधन पूँजी होती हे। हमारे पास इनका अभाव था। इसलिए तय हुआ कि भाईजी गद्दी का काम सम्हाले और मै कही नौकरी मे लग जाऊँ।

उन दिनो नौकरी कठिनाई मे मिलती थी आज भी। योग्यता, प्रतिभा और अनुभव के आधार पर प्रार्थी की उपयोगिता का मूल्याकन नही होता है। इसके लिए आवश्यकता है परिचय या सिफारिश की। गाँव मे रहते मैने काफी आवेदन-पत्र भेजे, किंतु कोई फल नही निकला, अतएव निराश होकर कभी-कभी सोचता कि मुझे जैसे अल्प-शिक्षित, अनुभव-हीन और अपरचित को कौन नौकरी देगा? किंतु दूसरे ही क्षण अदर से मानो कोई कहता 'हिम्मत मत हारो, परमात्मा मदद करेगा'।

मै कोशिश मे लगा रहा। मेरा मित्र दीपचद चाण्डक कलकत्ते मे था। हम दोनो साथ पढे, साथ खेले थे। स्वभाव और रुचि मे भी साम्य था। वह अपने किसी सबधी की सिफ़ारिश से बिडलाजी की केशोराम काटन मिल मे पचहत्तर रुपये मासिक पर काम कर रहा था। एक दिन मुझे देवीप्रसादजी खेतान के पास ले गया। वे बिडला बधुओ की उक्त मिल का सचालन कर रहे थे। खेतान जी का परिवार मारवाडी-समाज मे सुसस्कृत और शिक्षित माना जाता था। उनका प्रभाव और सम्मान भी बहुत था। उन्हे उस सस्ती के जमाने मे पाँच हजार रुपये मासिक वेतन मिलता था जो आज के करीब पचास हजार के बराबर है। इतनी ऊँची तनख्वाह लाट साहब के अलावा और किसी को नही मिलती थी।

मैं कुछ सहमा-सा श्री खेतान के चेंबर मे गया । उनका व्यक्तित्व और वातावरण मुझ जैसो को अभिभूत करने के लिए काफी था । 'तुम क्या करना चाहोगे ?' उनकी आवाज मे सरलता थी । मुझमे हिम्मत बँधी, मैंने कहा, "जिस प्रकार का काम देंगे सीखने की कोशिश करूगा आपको मेरे परिश्रम से सतोष होगा ।" मैंने उन्हे यह बता दिया कि राजस्थान से पहले-पहल आया हूँ और कभी किसी जगह पर काम नही किया है ।

ऐसा लगा कि मेरी स्पष्टवादिता उन्हे अच्छी लगी । उन्होने प्रारम्भ मे पचास रुपये मासिक वेतन देने को कहा ।

गद्दी वापस आकर भाई जी से बात की, पर उन्होने अन्तिम निर्णय मेरे ऊपर छोड दिया । सोचने लगा, नौकरी तो मिल रही है बडी कम्पनी है बडे लोग है, सब कुछ ठीक है, मगर इन पचास रुपयो मे कितना तो स्वय खर्च कर पाऊँगा और क्या घर वालो को भेज सकूँगा । सोचा, कोई स्वतन्त्र धन्धा क्यो न करूँ । पूँजी न होने पर दलाली करके भी लोग यहाँ आमदनी कर लेते है, नौकरी अच्छी मिली तो कर लूँगा ।

हमारे गाँव के श्री मोतीलाल नाहटा एक ग्रीक फर्म में दलाल थे । उनकी आय थी, हजार-बारह सौ रुपये मासिक । इसी से अनुप्रेरित होकर बिना वेतन के मै उनके साथ पाट की दलाली का काम सीखने लगा । उन दिनो यूरोपियन फ़र्मो मे काम करना या उससे सबधित रहना एक इज्जत की बात समझी जाती थी । दो महीने बाद जब नाहटा जी मे वेतन के लिए कहा तो मुझे कार्यमुक्त कर दिया गया ।

असमजस मे पड गया । अब तक जो भी कदम उठाये, सब असफल रहे । मन को धीरज देता, 'असफलता ही सफलता की कुजी है ।' सोलह वर्ष की अवस्था, पढाई साधारण सी और न सिफ़ारिश का जोर । इधर अभाव और आवश्यकताएँ । हाथ धरे बैठना सुहाता न था । दो महीने तक फिनिक्स नाम की एक ब्रिटिश इश्योरेस कपनी के कागजात के लिए बडा बाजार के आफिसो और गद्दियो के चक्कर लगाता रहा । मगर नए आदमी से बीमा कराता कौन ? इस अर्से मे कमीशन के बने सत्तर रुपये । कुछ उदार सज्जनो ने दूसरे एजेटो मे थोडा-सा कमीशन दिलाना चाहा, किंतु बिना कमायी का रुपया लेना मुझे स्वीकार नही था । हार कर यह काम भी छोड देना पडा ।

मैं सुबह-शाम इडन-गार्डन घूमने जाया करता । अपनी उम्र के स्वस्थ किशोरो को फुटबाल, वालीबाल खेलते, उछलते-कूदते देखकर सोचता, कितने सुखी है ये, कितने भाग्यशाली ? मैं क्यो नही हो पाता ? दादाजी की बाते याद कर मन को समझाता कि भगवान् परीक्षा लेता है । जिसे पहले दुख देता है, बाद मे सुख भी देता है । कभी-कभी नजर गड़ाए यह देखता चलता कि कही कोई कीमती हीरा मिल जाये तो उसे बेचकर देस के खर्च और कर्ज की समस्या मे मुक्त हुआ जाय ।

आज कल के किशोरो को देखता हूँ तो लगता है, उनकी मौज-शौक का अत नहीं । न तो सयम और न तो परिवार के लिए कर्तव्य-बोध । ऊल-जलूल खर्च, लिखाई-पढाई के प्रति उदासीनता, सिनेमा, क्लब या कैबरो के प्रति जबरदस्त रुझान—आज की पीढी इसी को सर्वस्व समझे बैठी है । पहले न तो पढने-पढाने के इतने साधन थे और न खेल-कूद के । परिवार के कठोर अनुशासन मे दायित्व का बोध स्वत होता । किसी-न-किसी प्रकार आय का साधन जुटाया जाय, चाहे पढ-लिख कर या नौकरी-व्यापार करके । बाद मे मैने चार्ल्स डिकेंस की जीवनी पढी । ऐसा लगा कि अपनी ही जीवनी पढ रहा हूँ । एक बालक पर गरीबी और सघर्ष जनित प्रतिक्रियाओ का इतना स्वाभाविक वर्णन डिकेंस की कलम से ही सभव हो सका । सयोग से जिस प्रकार उसे अपनी बूढी दादी का सहारा मिला मुझे भी जे० टामस के श्री मानव मित्र का ।

बीमा का काम छोडने के बाद फिर से पाट की दलाली मे घूमने लगा । मन मे विश्वास

था और हिम्मत भी। उन दिनो अंग्रेजो से आमतौर पर हिन्दुस्तानी मिलने मे झिझकते। मगर मै बडी-बडी फर्मो के साहबो के पास चला जाता। उनमे से किसी-किसी ने दिलचस्पी ली और कुछ सौदा भी दिया। किन्तु भला बेचवाल किसी नये आदमी पर भरोसा क्यो करते ? दूसरे-तीसरे दिन जब पता चला कि मेरा बताया हुआ काम अन्य दलालो की मार्फत हो गया है तो मन मे आक्रोश होता और निराशा भी। चार महीनो मे मेरी कुल दलाली हुई करीब ३०० रुपये।

इस अवधि की स्थिति बहुत ही अखरी। बारबार प्रयास करता, मगर सफलता तो दूर, जरा भी आगे बढ नही पा रहा था। हिम्मत थी और चेष्टा भी, पर लगता जैसे ऊँची-ऊँची लहरे बलात् वापस किनारे ला पटकती है। मैं उदास-सा रहने लगा। गाँव मे पिताजी के पत्र आते। घर की कठिनाइयो का जिक्र रहता। यहाँ आढतदारी का काम भी इतना भर था कि हम किसी प्रकार गुजारा करते।

एक दिन मेरे श्वशुरजी मुझे सूरजमल फर्म के वरिष्ठ भागीदार सेठ बशीधर जालान के पास ले गये। उनमे किसी जूट के फर्म मे दलाली का काम दिलाने की सिफारिश की। उन्होने मुझसे पाट के भाव और कहाँ काम किया है, इसके बारे मे सक्षेप मे कुछ बाते की। जब फिर मिलने को कहा तब मेरे मन मे आशा बँधी। कलकत्ते के चोटी के व्यापारी और उद्योगपतियो मे उनकी गिनती थी। बचपन मे मेरी ही तरह बहुत ही साधारण और कष्टपूर्ण स्थिति मे थे। शायद इसीलिए उन्होने दिलचस्पी ली। दो-तीन बार उनसे मिला। प्रणाम कर गद्दी मे एक ओर बैठ जाता। वे एक बार मेरी ओर देखते फिर आने वाले व्यापारियो से बाते करने लगते। चुपचाप सुनता रहता। घण्टे-आधे घण्टे मुझसे कह देते फिर आना, काम बतायेगे। मै ऊबा नही, उनके पास जाता रहा। कभी-कभी बीच-बीच मे पाट के भावो की जानकारी मुझसे लेते। मैं आश्चर्य करता कि दलालो और व्यापारियो को स्वय भाव बताने वाले, इतने बडे व्यापारी मुझसे पूछते है। मन को समझाता, शायद वे जानना चाहते है कि काम मे रुचि रखता हूँ या नही और मुझे कितनी ज़ानकारी है।

एक दिन उन्होने मुझसे पाट की किस्मो के बारे मे पूछा। ग्रीक फर्म मे की गयी मेरी मेहनत काम आयी। ऐसा लगा, मेरे उत्तर से उन्हे सन्तोष हुआ, क्योकि मेरे श्वशुरजी मे उन्होने कहा कि लडका होनहार मालूम देता है, तरक्की कर जायेगा। जूट की एक बहुत बडी कम्पनी जे० टामस से उनका सबध था। उन्होने मुझे फर्म के बेनियन श्री मानव मित्र के पास दो-सौ रुपये मासिक वेतन पर रखवा दिया।

आज न मेरे श्वशुरजी है, न सेठ बशीधर जालान और न मानव मित्र महोदय। परतु इनके किए गए उपकार ने नि सदेह मेरे जीवन को एक नयी दिशा दी। उसे कैसे भुला सकता हूँ ? उपकारी चला जाता है पर उपकार रह जाता है। आज की पीढी मे ऐसे हमदर्द कहाँ मिलेगे ? इन्ही की याद-मुझे सदैव प्रेरित करती है कि किसी काम की खोज मे आये नवयुवक की कुछ सहायता कर सकूँ। मुझे अपनी वर्षो पहले की सूरत उस युवक मे नजर आती है और तब मानो अतर मे कोई अदृश्य सकेत कह उठता है कि इसे काम दो। बहुतो को काम दिलाया। इनमे से कुछ तो अच्छे ओहदो पर पहुँच गये है।

उन दिनो एक मामूली पढे-लिखे सोलह सत्रह वर्ष के किशोर के लिए दो-सौ की नौकरी बहुत बडी बात थी। जब यह खबर हमारे गाँव पहुँची तो घर वालो को बडी खुशी हुई। हनुमानजी का प्रसाद बाँटा गया। दादीजी ने कहा, "भगवान ने सकट के दिन काट दिए, अब आराम से रहेगे।"

थोडे दिनो बाद पत्नी देस से अपने पीहर (कलकत्ता) आ गयी। भाई दौलतरामजी सूतापट्टी मे रहने लगे थे। हमारी गद्दी के पास ही यह जगह थी। उनके यहाँ एक कोठरी खाली थी। उन्होने यह हमे दे दी। हम वही आकर रहने लगे। चार-छ महीने तक उनके साथ

ही भोजन किया। उनकी कपडे की एक साधारण-सी दूकान थी। पर उनका मन बहुत उदार था। सूता पट्टी के जिस मकान मे हम रहते थे, उसके मालिक विलासरायजी चौधरी हमारे दूर के रिश्तेदार थे। उन्होने पुरानी फिटननुमा मोटर खरीदी। एक दिन मुझे भी उसमे बैठकर कालीघाट जाने का मौका मिला। अब तक इस सवारी की कल्पना ही करता था। इतने दिनो तक जिस चीज को अँगुलियो से छू पाया, उसमे बैठ कर जब चला तो गुदगुदी-सी मालूम हुई।

जे० टामस के काम मे लग गया था। अंग्रेजी फर्म मे काम करना इज्जत की बात थी। उनका जमाना था, पूरा रोबदाबभरी। राजनीति से सरोकार नही था और न उस ओर मेरी रुचि पनप पायी थी। केवल इतना जानता था कार्यकुशल और ईमानदार व्यक्तियो की साहब लोग बहुत कद्र करते है और उन्हे स्नेहपूर्वक आगे बढने का मौका देते है।

कलकत्ते मे आने के बाद इस समय तक मै कमाई ही नही कर पाया, किन्तु बाजार के भाव-माल की आमद-खपत, व्यापारियो की साख, उनके तौर-तरीके, इनका सूक्ष्म अध्ययन करने में प्रयत्नशील रहा। इससे भविष्य मे लाभ पहुँचा। श्री मित्र के निर्देशानुसार दत्तचित्त होकर कार्य करता था। परिश्रम और समय को आडे नही आने देता। सामने एक ही लक्ष्य था, काम करना है, जैसे भी हो। हमेशा इस बात का ख्याल रहता कि मानव बाबू का दिया काम अधूरा न रहे। अगर उन्हे कुछ कहने का मौका मिला तो यह मेरे लिए अत्यन्त ग्लानि की बात होगी। वे बहुत ही उदार और भले थे। लगन से मुझे काम सिखाते। कभी-कदाच गलती भी हो जाती तो नाराज नही होते बल्कि धीरे से समझा देते। इस स्नेह पूर्ण व्यवहार मे मेरा उत्साह और कर्त्तव्य बोध बढ जाता। उमग मे अपनी पिछली असफलताओ को भूलता नही, बल्कि उनके कारण अधिक सजग और सचेत रहता कि कही चूक न जाऊँ, जीवन मे अवसर बार-बार नही आते। सवेरे से शाम हो जाती, रात दस बज जाते फिर भी सौदा पक्का करने के लिए दौडता रहता। उन दिनो न तो टेलीफोन की इतनी सुविधा थी और न मेरे पास कोई सवारी। चितपुर-काशीपुर की पाट की गोदामो से डलहौजी तक के कई चक्कर ट्राम-बस मे रोज लगा लेता। थकान नही महसूस होती। मेरी भाग-दौड पर लोग मजाक करते, फबतियाँ कसते, मगर इन सब का मुझ पर कोई असर नही होता।

बहते मनुष्य को प्रवाह दिखता नही, उसे केवल वेग का अनुभव होता है। किन्तु जब किसी जगह पैर टिकते है तो, रुक कर साँस लेता है, देखता है, कहाँ खडा है, प्रवाह कैसा है और किनारा किधर है। ठीक यही दशा मेरी थी। काम का सिलसिला ज्यो-ज्यो जमता गया अपने परिवेश को देखने समझने लगा। फुरसत के समय जूट एक्सचेज मे बैठ कर समाचार-पत्र पढता रहता, बाजार की घट-बढ या व्यापार की स्थिति पर देश-विदेश की घटनाओ का प्रभाव तेजी से पडता है। अतएव अखबारो से बेखबर रहना व्यापारी के लिए घातक सिद्ध होता है। इसे मैं व्यापार का गुर समझता हूँ।

उन दिनो कलकत्ते मे हिन्दी के दैनिक निकलते थे—'भारतमित्र', 'विश्वमित्र', एव 'लोकमान्य'। 'भारतमित्र' सबसे पुराना था। अब तो इसका और 'लोकमान्य' का प्रकाशन बन्द हो गया है। 'विश्वमित्र' मे बाजार के भाव और थोडी बहुत व्यापारिक समीक्षाएँ कभी-कभी रहती थी। इन्हे गौर से पढता और इसका ख्याल रखता कि समीक्षक का अनुमान सही उतरता है या, मेरा निजी। अंग्रेजी पत्रो मे 'स्टेट्समैन', 'इग्लिसमैन' और 'अमृत बाजार पत्रिका' प्रमुख थे। अंग्रेजी का अभ्यास तब तक काम चलाऊ नही हो पाया था, फिर भी 'स्टेट्समैन' अवश्य पढता। इसमे विदेशी खबरे और व्यापारिक सूचनाएँ अपेक्षाकृत अधिक रहती। चूँकि पाट व्यवसाय से मेरा सम्बन्ध था और इसकी खपत विदेशो मे विशेषत ब्रिटेन व अमेरिका मे होती, अतएव इस अखबार का महत्व मेरे लिए अधिक रहता। धीरे-धीरे अंग्रेजी का अभ्यास बढता गया।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज के प्रति उदासीनता या उपेक्षा अधिक काल के लिए सम्भव नही। सवेदनशील मानम का घटनाओ के घात-प्रतिघात से प्रभावित होना स्वभाविक है। बडाबाजार मे रहता था। फाटका के अधिकाश दलाल और व्यापारी राजस्थानी थे। वही रहते थे। आपस मे सामाजिक और कभी-कभी राजनीतिक गतिविधियो की चर्चाएँ होती। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह पर्दा-प्रथा, अस्पृश्यता और गान्धीजी के आन्दोलनो पर पक्ष-विपक्ष मे टीका-टिप्पणियाँ चलती। इन्ही लोगो के बीच रोज का उठना-बैठना, कभी-कभी तो मुझसे भी पूछ बैठते। मै मुस्करा कर चुप रह जाता। फिर भी, अकेले मे इस पर विचार करता, स्वय मे तर्क-वितर्क भी, मन को समझाता कि ये बाते बडे और समर्थ लोगो की है, मुझे तो काम करना है। पहले घर की समस्या का समाधान कर लूं, फिर समाज और तब देश की।

हाँ, इतना जरूर था कि राजस्थानी समाज मे प्रचलित रूढिवाद और आधुनिक शिक्षा का अभाव अखरता। कभी-कदाच भाईजी से प्रसगवश चर्चा करता, किन्तु उनमे भी इनके प्रति दिलचस्पी नही पाता। शायद इसीलिए इस दिशा मे बढने का साहस नही हुआ और मेरा सघर्ष अपनी आर्थिक अवस्था को सुधारने तक सीमित रहा।

जे० टामस मे काम करते हुए एक वर्ष हो गया। एक दिन मानव बाबू ने मुझसे कहा, "तुम चाहो तो कुछ दिनो के लिए छुट्टी ले सकते हो।" काम से फुरसत! इसकी कल्पना भी मैने नही की थी और न मुझे इसकी आवश्यकता महसूस हुई। श्री मित्र ने समझाया कि रोजमर्रा के काम से कुछ समय के लिए अवकाश लेना तन और मन के लिए स्वास्थ्यकर है। उन्होने मुझे पन्द्रह दिनो की छुट्टी दिला दी। शुरू मे तो तय ही नही कर पाया कि क्या करूँगा, कैसे बिताऊँगा पूरा एक पखवारा। देस आने-जाने और रहने के लिए इतना अल्प समय यथेष्ट नही था। अतएव मै भाई दौलतराम जी के साथ जसीडीह चला गया। कलकत्ते से दो सौ मील दूर बिहार के सन्थाल परगना मे स्वास्थ्य लाभ के लिए यह अच्छी जगह है। उन दिनो मारवाडी आरोग्य भवन बन चुका था, किंतु वह आज की तरह विस्तृत और सुसज्जित नही था। स्वास्थ्य लाभ के लिए यहा काफी लोग आया करते। खाद्य-पदार्थ इतने शुद्ध और सस्ते थे कि आने वालो को अतिरिक्त खर्च नही करना पडता। भवन के फाटक पर ही एक रुपये का सोलह सेर दूध और एक आना सेर ताजी सब्जी मिल जाती थी। चार मील पर ही प्रसिद्ध तीर्थ बैजनाथ धाम होने के कारण स्वास्थ्य लाभ के साथ पुण्य लाभ भी एक आकर्षण था। प्राकृतिक शोभा यहाँ मनोरम है। छोटी-छोटी पहाडियाँ, कन्दराएँ प्राचीन मन्दिर और सीधा-सादा जीवन। शान्त परिवेश मे आकर बडी राहत मिलती।

कुछ महीने पहले कलकत्ते मे साम्प्रदायिक दगा हो चुका था। हरीसन रोड मे दीना मियाँ की मस्जिद के सामने बाजे के प्रश्न को लेकर राजराजेश्वरी के जलूस पर पथराव किया गया, कुछ हिन्दू घायल हुए। दो-तीन दिन बाद जकरिया स्ट्रीट के शिव मदिर को अपवित्र किए जाने पर धैर्य्य का बाँध टूट गया। हिन्दू-मुस्लिम विवाद का भीषण रूप उठ खडा हुआ। सूतापट्टी के जिस मकान मे हम रहते थे, वह हिन्दू मुहल्ले मे होने के कारण सुरक्षित तो था, किन्तु इससे थोडी दूर आरमेनियन स्ट्रीट और लोवर चितपुर के चौराहे के आस-पास मुसलमानो की बहुतायत थी। छूरेबाजी, आगजनी लूट की वारदाते खुलकर होती। मैने इस ढग की घटनाएँ न कभी सुनी और न कभी देखी थी। राजस्थान मे हमारे गाँव मे हिन्दू-मुस्लिम साथ-साथ रहते पर्व-त्योहार मनाते, आपस मे मर्यादा रखते हुए भाई-चारे का सम्बन्ध बनाये रखते थे। वहाँ ऐसी स्थिति के बारे मे सोचा नही जा सकता था। यहाँ पास-पडोस मे आग की लपटे दिखती, धुए के अम्बार के साथ चीख-पुकार। मुस्लिम मुहल्लो में रहने वाले हिन्दुओ के प्राण सकट मे पड गए। ऐसे कठिन समय मे घनश्यामदास जी बिडला दगा पीडितो के लिए आगे बढे। जान की जोखिम उठाकर अपने कुछ कर्मठ साथियो के साथ

दगा क्षेत्रो मे जाते और दगाइयो से घिरे परिवारो को निकालते। दगे के बाद कलकत्ते मे जितने दिन रहा, ये बीभत्स दृश्य याद आते रहे। जसीडीह के बदले हुए वातावरण ने इन सब पर विस्मृति का एक आवरण-सा डाल दिया। जब वहा से लौटा तो निश्चित रूप से ताजगी और प्रसन्नता थी, तन और मन मे।

आढतदारी के व्यवसाय मे लगन, मेहनत और पूँजी के समन्वय की आवश्यकता रहती है। हमारी आढत का काम चलता था पर आगे नही बढ पाता। मन मे बात उठती, हमारी तरह और भी बहुत से लोग राजस्थान से आये, आढतदारी का काम किया। वे तरक्की कर गये, हम क्यो नही ? अनुशीलन और विश्लेषण का क्रम लगा रहता। रात को अक्सर भाई जी के साथ बाते होती। हम तरकीबे सोचते, कम पूँजी मे रुपयो की लौट-फेरी किस तरह ज्यादा से ज्यादा की जाय। कोई सूरत नजर नही आती। हम नए थे और अनुभव भी कम। साख भी इतनी न जमी थी कि व्यापारी हम पर ज्यादा माल छोड दे। फलत पूँजी का अभाव खटकता। लगी हुई पूँजी का एक अश जहाँ कही रुकावट पाता, पहिए को जाम कर देता। सन् १९२८ तक आढत का हमारा कारोबार एक प्रकार से बन्द हो गया। जो थोडी पूँजी लगी थी, देसावरो के आढतियो (व्यापारियो) मे बाकी रह गई।

घूम फिर कर फिर हमारे सामने परिस्थिति लगभग उसी विकट रूप मे आ गई जिसके कारण हम कलकत्ते आए थे। परिवार का खर्च और कर्ज तो मुँह बाए ही थे। अन्तर केवल इतना ही था कि मैं नौकरी मे लग गया। हमने परेशानी महसूस की पर हिम्मत नही हारी। व्यापार न सही, हम दोनो नौकरी कर लेगे। लिहाजा, भाई जी बिडला ब्रदर्स (जूट सेलिंग ब्रोकर्स) मे ढाई सौ रुपये मासिक पर नौकरी करने लगे।

आय का सिलसिला जमा। रोज-रोज की दिक्कत और परेशानियो से बचकर हम कुछ साँस ले सके। पाट की दलाली के काम मे हम दोनो भाई लगे थे प्राय रोज अपने-अपने अनुभव बताते और विवेचना करते। इससे परोक्ष लाभ यह हुआ कि हमारा दृष्टिकोण व्यापारिक बना रहा, नौकरी तक सीमित नही।

थोडे दिनो बाद, सरदारशहर से माता जी, पिता जी और छोटे भाई-बहन सभी कलकत्ता आ गये। उन दिनो कलकत्ते मे आवास की आज जैसी दिक्कत नही थी। कमरे या फ्लैट आसानी से मिल जाते। हमने साठ रुपये मासिक किराये पर तीन कमरो का एक फ्लैट मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट मे ले लिया और वही रहने लगे।

माताजी को कलकत्ते का वातावरण अनुकूल नही लगा। सरदारशहर मे अपने मकान मे खुली जगह थी। सुबह-शाम रघुनाथ जी के मन्दिर आते-जाते हुए नानीजी के यहाँ भी हो आती। यहाँ वह सब कहाँ ? पर्दे की प्रथा कडे रूप मे थी। प्रत्येक परिवार की चेष्टा रहती कि परम्पराओ का पालन हो। कुल की मर्यादा और प्रतिष्ठा का यह भी एक माप-दड था। हम लोग तो दिन भर घर के बाहर रहते, अतएव फ्लैट मे बँधे जीवन की घुटन का अनुभव नही होता था। परन्तु स्त्रियो के लिए स्थिति सर्वथा विपरीत थी बाहर जाएँ तो कहाँ ? जान-पहचान और न आस-पास मे मन्दिर देवालय या बाग-बागीचे। गाँव मे वक्त जरूरत बाहर निकलना होता रहता था, इसलिए तबियत बहल जाती। वैसे तो मारवाडियो की एक बडी सख्या कलकत्ते मे थी और हमारे गाँव के लोग भी थे। किंतु वे दूर और अलग मुहल्लो मे रहते। अपने पास यान-वाहन का साधन भी नही था, इसलिए आपस मे मिलते जुलते रहना आसान नही था।

इन सबके अलावा एक बडी कठिनाई यह भी थी कि माता जी को शुचिता का बडा ध्यान था। युगो से प्रचलित छुआछूत की मान्यताओ को वे निष्ठा से मानती। कई बार जब हम बाहर से आते और एक दूसरे की प्राय झूठी शिकायत करते कि यह भगी या धोबी से छू गया तो बहुत आरजू-मिन्नत करने पर भी हमे बख्शा नही जाता और कडी सरदी मे नहाना

पडता। यहाँ तो छोटा सा फ्लैट था, उसी मे शौच और स्नान की व्यवस्था, मेहतर सामने से गुजरता, माता जी उसके जाने के बाद कई बाल्टी पानी से बारामदा धोती। प्रवास मे रहते हुए छुआछूत तथा ऐसी अन्य रूढियो के प्रति हम पुरुषो की मान्यताएँ शिथिल हो गयी, किन्तु माता जी के सस्कारो की जड बहुत मजबूत थी। वे अपने को बदल न सकी। हम उन्हे इसके लिए बाध्य भी नही कर सकते थे। कभी-कभी तो वे कह देती कि यह भी कोई जगह है जहाँ मिट्टी के दाम लगते है। मेहतर कमरो के सामने से जाता रहता है। हम निरुत्तर रहते।

छोटे भाई-बहनो को भी बहुत प्रकार की असुविधाएँ थी। उन्हे भी फ्लैट मे ही सीमित रहना पडता। गाँव मे वे मुहल्ले के बच्चो के साथ खेलते-कूदते रहते, कभी-कभी अपने गुड्डे-गुड्डियो का व्याह रचाते और कई दिनो तक जलसा मनाते। पर यहाँ बाहर निकलना सम्भव नही, मोटरो और घोडा-गाडियो का खतरा था, पडोसियो की सुविधा के ख्याल से घर मे ज्यादा उछल-कूद सम्भव नही। पढाई भी मँहगी। स्कूल जो भी थे हमारे मोहल्ले से दूर। उन दिनो बच्चो को लाने ले जाने वाली बसो की व्यवस्था हिन्दी स्कूलो मे नही थी। चार महीने ऐसी हालत मे गुजरे। आखिर माताजी और बच्चो को सरदारशहर वापस भेज दिया गया।

अब हमे चोर बगान (मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट) के फ्लैट की जरूरत न रही। साठ रुपए महीने, केवल हम दोनो भाइयो के लिए देते रहना, फिजूल खर्ची थी। हम सुविधाजनक नया आवास ढूँढने लगे। थोडे दिनो बाद २६, ताराचन्द दत्त स्ट्रीट मे दो कमरे तीस रुपये मासिक किराए पर ले लिए। मकान था—श्री वासुदेव धेलिया का। चाँदी के वायदे बाजार के अच्छे व्यवसायी थे। स्वभाव और व्यवहार मधुर। इस मकान मे आने पर धेलिया परिवार तथा आस-पडोस से सम्पर्क बढा। आज भी वह स्नेह उसी प्रकार अक्षुण्ण है।

हमारी आय इस समय तक पहले से बढ गई थी। जे० टामस एण्ड कम्पनी मे मुझे चार सौ रुपये मासिक मिलने लगे। भाईजी भी बिडला ब्रदर्स मे काम कर रहे थे। परन्तु मुझे मानो अन्दर से कोई बराबर कहता कि सफलता को बडा मान बैठना उतना ही खतरनाक है जितना कि असफलता को। लिहाजा, किसी भी सौदे मे कामयाब न रहूँ, इसका पूरा ध्यान रखता। इस प्रकार मेरी कोशिशे बेकार नही जाती। पिछले दो वर्षो की मेहनत से मानव बाबू काफी सन्तुष्ट थे। सारे दिन भाग-दौड करता रहता। अग्रेजी समझने लग गया था, पर सफाई से बोल नही पाता। आफिस के साहब मेरी हडबडी, भाग-दौड और अटपटी अग्रेजी के कारण हँस दिया करते थे। वे मुझे चार्ली कहते। एक प्रकार से यह मेरा उपनाम बन गया था। यह नाम उन्होने क्यो मेरे लिए चुना इसे पहले नही समझ पाया। बाद मे पता चला कि उन दिनो अग्रेजी फिल्मो मे चार्ली चैपलिन अपनी हरकतो की हडबडी, परेशानी और अटपटी भाषा से दर्शको को खूब हँसाता था। मेरा मजाक कुछ दूसरे लोग भी बनाया करते। पाट की किस्मो से अनभिज्ञ था, लोग मुझे सोल ब्रोकर (थोक दलाल) कहते। कुछ झेप सी जरूर महसूस करता, मगर बाद मे हँस देता। इस प्रकार के मजाक, ताने अथवा हँसी से मै विचलित नही होता।

जे० टामस जैसी बडी कम्पनी से सम्बन्धित होने के कारण एक-दो वर्षो मे पाट बाजार के बहुत से प्रतिष्ठित व्यापारियो से जान-पहचान हो गयी। व्यक्तिगत स्नेह-सौहार्द्र भी पाने लगा। हम दोनो भाई फुरसत के समय प्राय अपनी वर्तमान स्थिति पर विचार करते। यद्यपि आय बढ गयी थी, फिर भी परिवार पर कर्ज का भार तो था ही। भाई-बहन बडे हो रहे थे, उनकी शिक्षा-दीक्षा, विवाहादि की चिन्ता भी थी, इसका निदान निकालना आवश्यक था। आपसी विचार के दौरान यह तय पाया कि कुछ निजी काम भी शुरू कर देना चाहिए। अत हम लोगो ने ईस्ट इण्डिया जूट एसोशिएसन (पाट का वायदा बाजार) मे शिवप्रताप

टॉड़िया के नाम से अपनी एक फर्म चालू की। नौकरी के साथ पाट के वायदे के सौदे की दलाली करने लगे। हमारा यह नया काम धीरे-धीरे जमने लगा।

उस समय हरिसन रोड (अब महात्मा गाधी रोड) और चितपुर रोड (रवीन्द्र सरणी) के चौराहे पर बॉगड विल्डिग नाम की वहुत वडी इमारत बन चुकी थी। वडावाजार के मकानो मे यह बेजोड थी। दक्षिण खुला, चौराहे की महत्वपूर्ण स्थिति, नीचे ही ट्राम, बस, वाजार-- सभी करीब सफाई का पूरा इन्तजाम था। शौचालय साफ सुथरे, पानी की व्यवस्था रात-दिन की। हमारे लिए यह और भी सुविधाजनक इसलिए थी कि ताराचन्द दत्त स्ट्रीट का निवास-स्थान इसके नजदीक था। हमने तीस रुपये महीने मे एक कमरा किराए पर ले लिया और आरमेनियन स्ट्रीट की अपनी गद्दी यहाँ ले आए। सन् १९२९ मे हमारी आय लगभग हजार बारह सौ रुपये मासिक हो गई। दोनो भाइयो के वेतन और वायदे के फर्म की दलाली का यह सम्मिलित फल था। आमदनी वढी जरूर पर हमने मितव्ययिता बनाए रखी। बडी सावधानी रखते, कही फिजूलखर्च न हो जाय। एक दिन मानव वावू ने कहा कि पाट के वेचवालो के आफिसो मे पैदल या ट्राम बस मे जाने मे समय अधिक लग जाता है। अतएव दो घटे के लिए इस काम के निमित्त तुम्हे गाडी मिलेगी। बहुत दिनो से मेरे मन मे मोटरकार की साध थी। उसकी आंशिक पूर्ति हुई। शाम को ६ ३० बजे से ८ ३० बजे तक के लिए वेबी आस्टिन गाडी मिली। कभी ऐसे मौका आता कि आफिस का काम जल्द पूरा हो जाता और गाडी रखने का समय हाथ मे रह जाता वहुधा गाडी वापस भेज देता। किन्तु कभी-कभी उसमे पत्नी के साथ बैठकर विक्टोरिया मेमोरियल, कालीघाट या किले के मैदान मे घूमने जाता तो मन प्रफुल्लित हो उठता। कोई जान-पहचान का व्यक्ति दिखाई देता तो यह प्रयत्न रहता कि वह मुझे गाडी मे बैठा देख ले। उन दिनो कलकत्ते मे मोटरो की आज जैसी भरमार नही थी, केवल थोडे से सम्पन्न लोग ही रखते थे। वहादुर नाम का एक नेपाली युवक ड्राइवर था, उससे मैने मोटर चलाना सीख लिया। पत्नी के साथ खुली सडक पर गाडी मे हवा खाते समय कभी-कभी मेरे मन मे हल्का सा गौरव वोध होता। परन्तु पत्नी मुझे सदैव कर्तव्य-वोध कराती रहती। परिवार के प्रति दायित्व का उसे बहुत ख्याल रहता। मै सोचता कि इतनी गम्भीर और गूढ वातो का ज्ञान इसे कैसे हुआ। स्कूल-कालेज मे कभी गई नही, ऐसा लगता था कि कर्तव्य-वोध और दायित्व-ज्ञान, माता-पिता के आचार-विचार से आता है। इसलिए हमारी सस्कृति मे इसके अनुकूल परिवेश बनाने पर अधिक ध्यान दिया गया है। दादाजी का स्वास्थ्य खराब रहने लगा था, हमे देस मे आए कई वर्ष हो गए। वे मुझे देखना चाहती थी इसलिए देस जाने का निश्चय कर लिया।

मरुथर म्हारो देस, म्हाने प्यारा लागे जी

सन् १९२५ मे सरदारशहर छोडा और अब अक्टूबर १९२९ मे छुट्टी पर अपने गाँव जा रहा था। इन चार वर्षों की अवधि कैसे बीती, क्या-क्या तकलीफे आई, यह सब लिखने की बाते नही, अनुभव की है। देस जाने की खुशी मे वह सब मै भूल गया था। आसाम से जैसे खाली हाथ हारा-माँदा लौटा था, वैसा इस बार नही। छोटे भाई-बहनो के लिए थोडी चीजे साथ मे थी। अपनी पहली कमाई से खरीदे उन साधारण से उपहारो मे जो हर्ष हुआ, वह आज बडी-से बडी भेट देकर भी नही होता। पत्नी उन दिनो देस मे थी। उसके लिए एक इत्रदान ले गया। बहुत वर्षो बाद सन् १९७० मे सयोग से एक बार अपने कमरे की आलमारी मे उसे वैसा ही रखा पाया। इत्र था नही। खोलकर शीशियाँ सूँघी। इत्र की सुगन्ध तो एक प्रकार से मिट चुकी थी, परन्तु इसके पीछे मधुर स्मृति का जो सौरभ था, वह मन मे व्याप्त हो गया।

सोलह वर्ष की अवस्था मे गाँव से विदा हुआ, बीस वर्ष का होकर लौट रहा था। ट्रेन जब सरदारशहर के पास पहुँची, अपनी जन्म-भूमि की हवा का स्पर्श कर एक प्रकार का नैसर्गिक आनन्द अनुभव हुआ। कवि के स्वर मे गुनगुना उठा—

मरुथर म्हारो देस, म्हाने प्यारा लागेजी

बालू के सुहावने टीले और बाजरे के लहलहाते खेतो के बीच मे ट्रेन गुजर रही थी धरती का सौन्दर्य, कवि के शब्दो मे सजीव और मुखरित हो उठा—

धोला-धोला टीवडाजी, उजली निरमल रेत,
चमचम, चमके चाँदनी मे, ज्यूँ चाँदी रा खेत,
म्हाने प्यारो लागे जी . ..
काचर बोर मतीरा मीठा फोफलियाँ फलियाँ
घणे चाव सूँ रल मिल खाँवा मिसरी री डलियाँ
म्हाने प्यारा लागे जी. .

स्टेशन पर मुझे लेने के लिए कुछ पुराने मित्र और परिवार वाले आए थे। दोस्तो ने गले लगाया, बुजुर्गो ने प्यार मे पीठ पर थपकिया दी, आशीर्वाद दिया। घर आकर देखा कि दादाजी, माताजी, बहन-भाई सभी खुश थे। एक क्षण के लिए वह दृश्य भी याद आया, जब मैं धुबडी मे खाली हाथ लौटा था, कितनी उदासी और मायूसी थी घर मे, घरवालो मे। आज कितना परिवर्तन हो गया है। बच्चो के चेहरे और कपडो से पता चला कि पहले जैसा अभाव नही रहा। चीजे सस्ती थी--आठ-दस लोगो का परिवार, डेढ सौ रुपये मासिक में आसानी से घर का खर्च चल रहा था। ऐसा लगा, हम भाइयो की मेहनत सार्थक हुई।

पास-पडोस मे मिलने गया। यही परिपाटी थी। ऊँच-नीच, धनी-दरिद्र का भेद-भाव शहरो मे भले ही हो, गाँवो मे नही था। मुझे देखकर सभी प्रसन्न थे--मैं अंग्रेजी कम्पनी मे काम करता हूँ। मोटर की सवारी मिली है। ये बाते पहले ही गाँवो मे पहुँच गई थी। पडोस की एक वृद्धा ने बडी गम्भीरता से पूछा कि कलकत्ते मे रहकर मैंने लाट साहब की बोली-सीखी या नही। मुझे हँसी आ गयी, पर मैंने बडे शाइस्ता ढग से बताया 'थोडी बहुत'। उसने मुझे सलाह दी "जल्दी-जल्दी सीख ले, तेरे बडे काम आयगी।"

कभी-कभी सोचता हूँ, राजस्थान के उस उपेक्षित अचल की अपढ बुढिया की बात राजभाषा मे, राष्ट्रभाषा या अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के पचडो के दॉव-पेच मे जिसका कोई सम्बन्ध नही, कैसे कह गयी यह पते की बात । सचमुच आगे जाकर अग्रेजी की जानकारी मेरे बहुत काम आयी–व्यवसाय के क्षेत्र के अलावा, अध्ययन मे मुझे बहुत बडी सहायता मिली ।

लबी छुट्टी लेकर आया था । दो महीने आश्विन और कार्तिक राजस्थान मे रहा । यहाँ इसे ही सर्वोत्तम मौसम मानते है । न गरमी सताती है, न जाडा । फसल तैयार रहती है । खेतो और गाँवो मे ककडी और मतीरे ढेरो मे दिखाई देते हैं । बाजरे के सिट्टे सर उठाए रहते है किसान अपनी मेहनत फली देखकर फूला नही समाता । लोग टोलिया बॉध कर खेतो या आस-पास के जोहडो–तालाबो मे 'गोठ' (पिकनिक) मनाने जाते है । मैने देखा, कुछ भी तो नही बदला इन चार वर्षो मे । हम जहाँ भी गए, किसानो ने हमारी आव-भगत की । अपने खेत से अच्छे-से-अच्छे मतीरे और सिट्टो (भुट्टा) के ढेर लाकर रख दिए । उन दिनो खेत पर आए लोगो से किसान कुछ भी नही थे । कोई उनके यहाँ आया है, यही क्या कम गौरव की बात थी ? लोग छककर खाते और शाम को घर लौटते । मगर किसान भला कैसे खाली हाथ वापस जाने दे ? साथ मे बहुत से सिट्टे और मतीरे ककडियाँ आदि घर वालो के लिए बॉधकर दे देता । घरो मे भी इन दिनो बडे-बूढे और इन्ही का नाश्ता करती । यह क्रम कार्तिक से पौष तक चलता रहता । इसे हमारे यहाँ 'कातीसरा' कहते है । बहुत दिनो बाद गॉव वापस आ गया था । उपज अच्छी हुई थी । बड-बूढे किसान प्यार से मुझसे कहते–"देख कितना अच्छा जमाना (फसल) तू लेकर आया । हर साल आया कर" कभी कोई कलकत्ते के बारे मे पूछता–"कैसा शहर है ? कोई बगाल के जादू के बारे मे जानकारी चाहता तो पूछता गगासागर कितनी दूर है, वहाँ से जब अपने परिचितो के बारे मे लोग पूछते तो बडी मुसीबत होती । कठिनाई से समझा पाता कि बहुत बडा शहर है, बहुत ही व्यस्त जीवन । मिलना-जुलना आसान नही, फुरसत ही नही मिलती । इस प्रकार के उत्तर से उनके भोले-भाले चेहरो पर आश्चर्य की लकीरे उभर कर आती ।

उन्ही दिनो की एक घटना है । हमारे गॉव के एक बडे सेठ बीमार पडे । झाड-फूँक, दवा-दारू काफी कराई, स्वस्थ नही हो पा रहे थे, सम्पन्न थे ही, कलकत्ते से एक डॉक्टर को बुलाया गया । डॉक्टर साहब भारी भरकम बगाली थे । हिन्दी साफ़ नही बोल पाते थे । राजस्थानी का सवाल ही क्या ? हम अक्सर घूमने-फिरने दूर खेतो की तरफ ऊँटो पर निकल जाया करते । मै बगला बोल लेता था, इसलिए मुझसे उनकी आत्मीयता बढ गई । एक दिन उन्होनें कहा कि वे भी हमारे साथ ऊँट पर सवार होकर खेतो की तरफ जाएगे । मैने समझाया कि ऊँट की सवारी बडी कष्टदायक होती है, इसके लिए अभ्यास चाहिए । वे माने नही । कहने लगे, "बागलाय थेकेओ तुमी बागाली के चिनने ना जे कोतो कष्ट-सहिष्णु ।" अब मै क्या कहता ?

खैर, हम चल पडे । ऊँट वाले को मैने समझा दिया कि सम्हाल रक्खे । डॉक्टर को सावधानी से बैठाया गया । ऊँट के हर हचकोले के साथ डॉक्टर की शक्ल बदलती । मगर हमसे ऑख मिलते ही ऐसे बन जाते कि मानो कोई असुविधा या कष्ट नही । खेत पर पहुँचे ऊँट अगली टॉगो पर बैठने के बाद जब पिछली टॉगो पर बैठा तो डॉक्टर साहब गठरी की तरह लुढक पडे । गनीमत यही थी कि जमीन पर बालू-रेत थी, इसीलिए साधारण सी चोट लगी । धूल भरी शक्ल लिए देखकर कहने लगे–"ओरे बाबा, आमि कि जानि एटा जे दूबार बोसे ?" (अरे बापरे ! मैं क्या जानता था कि यह दो बार बैठता है ।) । गॉव मे इसकी चर्चा बहुत दिनो तक रही । खूब हँसी-कहकहे के साथ डॉक्टर के वाक्यो को दुहराया जाता ।

इन्ही दिनो दालबाटी की गोठे भी होती । यद्यपि दालबाटी आज देश के अन्य भागो मे भी लोकप्रिय हो गई है, पर मूलत यह राजस्थान का अपना विशेष व्यंजन है । वहाँ

बड़ाबाजार-लाइब्रेरी और मारवाडी पुस्तकालय मे बराबर जाता । वहाँ दैनिक, सामयिक पत्रपत्रिकाएँ पढता और अपने पसन्द की पुस्तके घर ले आता। हिन्दी के तीन बडे पुस्तकालय उन दिनो बडाबाजार मे थे। दो उपरोक्त और तीसरा था कुमारसभा पुस्तकालय। उस समय तक इम्पीरियल लाइब्रेरी (नेशनल लाइब्रेरी) से लाभ नही उठा पाया।

बड़ाबाज़ार युवक-सभा मे कसरत के लिए जाता। कुछ वर्षों पहले ही बीमारी से उठा था, इसलिए अधिक व्यायाम नही कर पाता, फिर भी मुझे निश्चित रूप से लाभ पहुँचा। शरीर और मन स्वस्थ बना। आगे जाकर तो मेरे बल और पौरुष की चर्चा स्थानीय राजस्थानी-समाज मे होनी लगी। गरमी के मौसम मे नियमित रूप से कालेज स्क्वायर के तालाब जाता। तैरने का अच्छा अभ्यास हो गया। जब ऊपर से कूदने लगा तो मेरी पत्नी बहुत डर गयी। किसी प्रकार वह अपनी चीख को रोक सकी। घर पहुँचने पर उसने बहुत समझाया। मैं हँसता रहा। आखिरकार पत्नी ने सौगन्ध दिलायी कि ऊपर से भविष्य मे नही कूदूँगा।

उन दिनो खेलकूद मे टेनिस और क्रिकेट आज की तरह जनप्रिय नही थे। सबसे अधिक लोकप्रिय खेल था फुटबाल, इसके बाद नम्बर आता था हॉकी का। फुटबाल के खेल के लिए तो जनता उमड पड़ती। जब कभी फाइनल का चेरिटी शो होता तो पहली रात से ही फुटबाल ग्राउन्ड मे आकर सो जाते या क्यू लगा देते। हम लोग प्राय शनिवार-रविवार को फुटबाल का खेल देखने जाया करते। भारतीय टीमो मे मोहन-बगान और ईस्ट बंगाल अग्रणी मानी जाती थी। इनसे भी ज्यादा नाम था डलहौजी, कलकत्ता, कस्टम और डी० सी० एल० आई० टीमो का। इन टीमो के खिलाडी अधिकाश अंग्रेज होते। कुछेक ऐंग्लोइंडियन भी रहते थे, चौड़े और तगडे। इनके सामने हमारे भारतीय खिलाडी कद मे छोटे और पतले थे। अंग्रेजों के खिलाडी काँटे दार बूटो से खेलते मगर हमारे खिलाडी नंगे पैरो। फिर भी उनमे कुछ ऐसी फुर्ती और दौडने की क्षमता थी कि गेद को प्रतिद्वन्दियो के बीच से निकाल कर गोल कर देते। तालियों की गड़गडाहट और नाना प्रकार की हर्षध्वनि से मैदान गूँज उठता। उस समय के खिलाड़ी आज के खिलाडियो की तरह फाउल नही खेलते थे और न जनता ही बात-की-बात में मारपीट या दगा-फ़साद पर आमदा होती थी। फिर भी कही-कही अपवाद हो जाता था। मोहन-बगान की टीम एक बार दरभगा गई। उनको वहाँ दरभंगा महाराज के टीम से खेलना था। उस टीम मे राजा के नामी-गरामी पहलवान थे इधर दुबले-पतले मगर फुर्तीले खिलाडी। खेल शुरू हुआ। हाफ टाइम तक मोहन बगान चार गोल कर चुका था जबकि दरभगा राज की टीम के खिलाडी पस्त होकर हाँफ रहे थे। महाराज ने अपनी टीम के खिलाड़ियो को बुलाया और धमकाते हुए कहा कि तुम लोगो के खाने-पीने पर पाँच-पाँच रुपये रोज खर्च किए जाते है। देखने में मोटे तगडे लगते हो मगर हार गये इन दुबले-पतले छोकरो से। पहलवान खिलाडियो ने झेपते हुए कहा, "सरकार, रेफ्री मोहन बगान का पक्ष लेता है। वह हमे 'फ़ाउल' मे फँसा देता है।" महाराज ने रेफ्री को बुलाकर डाँटा, 'खबरदार जो फ़ाउल लगाया।' रेफ्री सकपका गया। खेल आरम्भ हुआ। राजा के पहलवानो ने लँगड़ी मारना शुरू कर दिया और लगे कलकतिया खिलाडियों को उठा कर जमीन पर पटकने। वे बिचारे अपने चोट को सहलाने लग गए। इधर दरभगा टीम ने पाँच सात गोल कर दिए और बाजी मार ली।

खिलाडी और दर्शक खेल को खेल मानकर चलते थे। अच्छे खिलाड़ियो की बड़ी इज्जत थी। जब वे मैदान मे उतरते तो दर्शक हर्ष से तालियाँ पीटते, मोहन बगान के बैक के खिलाडी गोष्टोपाल की इज्जत उस समय आज के किसी बडे नेता से कम नही थी।

समाज सेवा, खेलकूद और व्यायाम के अलावा कभी-कभी थियेटर और सिनेमा भी देख लेता। सवाक् चित्र केवल अंग्रेजी मे आया करते थे। ये हँसी-मखौल, मार-धाड और जासूसी

ढंग के होते। हिन्दी में केवल मूक चित्र ही बनते। दर्शको को समझाने के लिए फ़िल्मो के बीच-बीच में संवाद लिखे रहते। पौराणिक कथाएँ, हातिमताई आदि अरेबियन नाइट्स के किस्सो पर फिल्में बनती थीं। सन् १६३० मे 'आलम-आरा' सबसे पहली बोलती फिल्म आई। मैने जब इसे देखा तो बडी खुशी हुई। सन् १६३४ तक हिन्दी के अधिकांश चित्र मूक फिल्मो की तरह पुराने ढंग के कथानकों पर बनते रहे। कुछेक जासूसी ढंग के भी बने जिनमे मार-धाड, तलवारबाजी होती थी। सन् १६३४ मे हिमाशु राय का अछूत कन्या प्रदर्शित हुआ। निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि तकनीक, कथानक और अभिनय की दृष्टि से हिन्दी फ़िल्म में इसने एक नया मोड़ ला दिया। मुझे बहुत अच्छा लगा। मैने अनुभव किया कि यदि स्वस्थ विचार की फिल्में बनाई जाएँ तो समाज मे सुधार की भावना को बडी सरलता से जगाया जा सकता है। उक्त फिल्म मे अशोक कुमार और देविका रानी नायक और नायिका का पार्ट कर रहे थे। इन दोनों का अभिनय इतना स्वाभाविक बन पड़ा था कि आज भी लोग याद करते हैं। राह चलते लोग इस फिल्म के गाने गुनगुनाया करते थे।

मैं बन की चिड़िया बन के बन-बन बोलूँ रे,
मैं बन का पंछी बन के सँग-सँग डोलूँ रे,
तुम डाल-डाल मैं पात-पात बिन पकड़े कभी न छोड़ूँ,
संग-संग डोलूँ रे ....।

बोलती फिल्मो के आने से पहले पारसी थियेटर अधिक आर्कषक थे। कथानक अधिकतर धार्मिक या इश्किया होते जिनकी भाषा रहती उर्दू। इसमे संवाद बड़े जोरदार होते। आठ आने से पाँच रुपये तक की टिकटे रहती। नाटक रात के नौ बजे से आरम्भ होकर दो बजे तक चलते रहते। वे भारतीय, ईरानी और अरब की पुरानी कथाओ पर आधारित होते। बीच-बीच मे कौमिक जरूर रहता, भले ही उसका सम्बन्ध मूल कहानी से हो या नही। हर सवाद के बाद हिन्दी या उर्दू की शायरी रहती। प्रेम या युद्ध, माँ-बेटे की बातचीत या आशिक-माशूक का प्रेमालाप, सबमें तावदार शेर जोर-जोर से कहे जाते। जनता झूम उठती। आज भले ही इन्हे पसन्द न किया जाय, मगर वह जमाना था, इन्ही का। मुझे याद है, कई खेलो मे मास्टर मोहन और मिस कज्जन को बार-बार तालियाँ पीटकर स्टेज पर बुलाया जाता, वे स्वयं भी इसके लिए तैयार रहते, क्योकि संवाद को पूरा किए बिना ही पर्दे के पीछे चले जाते थे। जो नाटक मैने देखे, उनमें से कुछ की याद है जैसे 'असीरे हिर्स', 'खूने नाहक', 'सत्य हरिश्चन्द्र', और 'वीर अभिमन्यु'।

घूमने वाले रगमंच बने नही थे। आज की तरह स्टेज का संलाप जनता तक पहुचाने के लिए माइक की व्यवस्था भी न थी और न साज़-सज्जा का शिल्प ही इतना विकसित था। सीन-सीनरी और चटकीले पर्दो की पृष्ठभूमि पर सारा नाटक अभिनीत होता। बड़ी मशक्कत का काम था, क्योकि एक तो जोर-जोर से संलाप बोलना और दूसरे नायक-नायिका को स्वय गाना पडता था। सन् १६३५ के बाद नाटको में एक नया मोड़ आया। नारायण प्रसाद बेताब, हरिकृष्ण आदि दर्शकों के प्रिय नाटककार थे। रंगमच के लोकप्रिय नाटक थे 'गणेश-जन्म', 'कृष्ण-सुदामा', और 'कृष्णार्जुन युद्ध' आदि। सन् १६३५ मे मैंने कृष्ण-सुदामा नाटक देखा। सुदामा की स्त्री का अभिनय कर रहे मास्टर निसार। उन्होने अपनी फटी चुनरी दिखाते हुए एक गाना गाया –

नहीं यह चुनरी मेरी, मेरे दिल का नमूना है,
फरक इतना ही है कि इस चाक से वह चाक दूना है।

इस गीत को सुन कर वहाँ जितने स्त्री-पुरुष थे, उनकी आँखे गीली हो गई थी। आगा हश्र कश्मीरी और राधेश्याम कथावाचक के नाटको मे पुराने पन के साथ नए पन का सुन्दर

समन्वय था। 'सीता' नाम के बगला नाटक की उन दिनो धूम थी। नटसूर्य शिशिर भादुडी राम का अभिनय करते थे और सीता का सरयूबाला। परित्यक्ता सीता के विलाप को सुनकर दर्शको की आँखे भर आती और कुछ कमजोर दिल महिलाएँ मूर्छित हो जाती। लोग बॉकुडा और पूर्वी बगाल से भी इस नाटक को देखने आते थे।

इन्ही दिनो सार्वजनिक सस्थाओ द्वारा भी नाटको का प्रदर्शन प्रारम्भ हो गया था। इनमे भाग लेने वाले पेशेवर अभिनेता न होकर सस्था के सदस्य हुआ करते। फूल कटरे की हिन्दी नाट्य परिषद और सदासुख कटरे की बजरग परिषद् इस ढग की सस्थाओ मे अग्रणी थी। मेरे कई मित्र सदस्य थे।मैं भी कभी-कभी रिहर्सलो मे जाया करता। मेरे पुष्ट शरीर की बनावट के कारण मुझे मच पर उतरने के लिए कहा जाता, किन्तु ऐसी प्रेरणा मेरे मन मे कभी हुई नही।

ऐसे मनोरजन उन भाग्यशाली लोगो के लिए है जिनके पास पैसा और समय है। फिर भी हम महीने-दो महीने मे एकाधबार आठ आने या एक रुपए के टिकट मे धरमतल्ला के कोरियन्थन थियेटर या हरीसन रोड के आलफ्रेड थियेटर चले जाते। अब तो ये दोनो थियेटर वातानुकूलित सिनेमा हाल हो गए है। वैसे हमारा असली मनोरजन तो अपने पाट वायदे के फर्म मे ज्यादा से ज्यादा दलाली माडने मे था।

पाट का यानी वायदे का सौदा अपने आप मे एक तरह का व्यापार है। बहुत से लोगो का यही धन्धा है। चीजो का लेन-देन न होकर इसमे केवल जुबानी वादा हुआ करता है। शेयर पाट-बोरे, चाँदी-सोने आदि जिन्सो का सट्टा तो होता ही था, साथ ही एक विचित्र प्रकार का सौदा चलता, बरसात के पानी का। इसके जानकारो को 'रगबाज' कहते। तपती दुपहरी मे ये ऊँची छतो पर चढ जाते और आसमान की ओर ताकते रहते। इनमे से कुछ तो इतने माहिर थे कि बता देते कि अमुक बादल कब, कहाँ और कितना बरसेगा। इनका अनुमान बहुधा सही उतरता।

पानी का सट्टा प्राय दो तरह का हुआ करता, नाली का और खाल का। छत की नाली अगर चल जाती तो घोषणा हो जाती, 'नाली चल गयी' और इससे अधिक पानी बरसता तो उसे 'खाल चलना' कहते। उँगलियो के सकेत के भाव चलते। बारिश होने के पक्ष मे रहने वालो को 'लगायीवाल' और विपक्षी को 'खायीवाल' कहते। लाखो की हार-जीत होती। लोग भुगतान करते, भले ही गहने गिरवी रखने पडते। लिखा-पढी का कोई नाम नही। भुगतान से लोग भागते नही, क्योकि एक तो उनकी इज्जत जाने का और दूसरे फिर से सट्टाबाजी मे सौदा न कर पाने का डर रहता। फिर भी धोखाधडी और चालाकियो के कुछ अपवाद होते। एक बार हल्की सी बारिश हुई। नाली चलने ही वाली थी। इससे दो 'खायीवालो' का हजारो का नुकसान हो जाता। दोनो को एक तरकीब सूझी। वे आपस मे लडते-झगडते नाली के पास गये। एक ने दूसरे की पगडी गिरा दी। पगडी ने पानी सोख लिया, नाली चली नही। लगायीवाल चालाकी समझ गए। थोडी झझट के बाद सौदा बराबर मे सलट गया।

एक और घटना याद आती है ठीक इसके विपरीत। बरसात हुई, पर बहुत कम। धीरे-धीरे नाली चलती देख खायीवालो को सन्देह हुआ। दौडकर ऊपर गए तो देखा, कि एक लगाईवाल पेशाब कर रहा था!

जिन्सो और शेयरो के सट्टो मे खरीददार को पोते वाला और बेचने वाले को मत्थेवाला कहते। इनके तैयारी और वायदे (फ्यूचर) दोनों प्रकार के सट्टे चलते। यूँ तो अलसी, सरसो, गुवार आदि के भी सट्टे होते। किन्तु विशेष रूप से पाट-बोरा, चाँदी सोना और रूई के सौदे होते रहते। इनमे बडे-बडे धनी और उद्योगपति सक्रिय भाग लेते। वायदे के सौदो मे कोई लिखा-पढी नही होती। फिर भी पूरी ईमानदारी बरती जाती। लाखो का भुगतान समय पर कर दिया जाता। परन्तु एकाध चालाकी या धोखे-धडी की घटनाएँ यहाँ भी हो जाती।

एक बार एक बड़े व्यापारी ने पाट का खेल किया कुछ व्यापारियो को मिलाकर उसने तेजडियो का 'सिण्डीकेट' वना लिया। उसका अनुमान था कि 'ड्यू डेट' (निश्चित तारीख) पर माल कम मात्रा में डिलेवरी होने से भाव तेज रहेगे। हम लोगो ने भी मत्थेवालों का सिण्डीकेट वनाया और माल डिलेवरी की तैयारी जोरो से करने लगे। सैकडों वोटो (लोहे की नावो) में पाट की गाठें भरकर खरीददारों के साथ हुए कान्ट्रेक्ट के अनुसार चालान कर दिया। ड्यू डेट आई। हम लोग जहाज पर गए तो देखा हमारे बहुत से बोट नही थे। पिछली शाम को हमारे कर्मचारी उन्हें वहाँ छोड़ गए थे और हम निश्चिन्त थे कि समय के भीतर माल जहाज की किताबों में दर्ज हो जाएगा।

वाजार भाव ड्यू डेट वीतने पर कट गया और माल हमारे गले रह गया। वाद मे पता चला कि खरीददारो ने हमारे माझियों को रुपए देकर वोटो को रातोरात जहाजो से दूर हटवा दिया था।

इसी तरह वम्वई के एक नामी सटोरिये का चाँदी की तेजी का वडा सौदा था। जब उसे पता चला कि कलकत्ते से रेल द्वारा उसके अनुमान से कही अधिक चाँदी की सिल्लयाँ वम्बई से जा रही हैं तो उसने अपने विश्वस्त व्यक्ति को मुगलसराय भेजा और वही स्टेशन वालो से मिलकर वैगन को रुकवा दिया। समय पर चाँदी वम्वई पहुँच नही पायी और वह घाटे से वच गया।

होशियार सटोरिये को 'रुखवाज' कहते। ये लोग कभी-कभी धुन मे या तैश मे वडा सट्टा कर वैठते, अथवा सिण्डीकेट वनाकर मार्केट की कार्नरिग कर लेते। मगर पासा पलटता देखते तो तरह-तरह के हथकण्डो से अपने को वचाने की चेष्टा करते। इस सन्दर्भ मे मुझे एक और घटना का स्मरण है। कलकत्ता मे पाट के एक बड़े मिल-मालिक के हैसियन वोरों का पोते (खरीद) का सौदा था। किन्तु मिलों मे माल जोरो से तैयार हो रहा था। भाव गिरने लगे। मिल-मालिक ने एक वड़े लेवर लीडर को वुलाया और मिलो मे हडताल करा दी। वाजार की मन्दी रुक गई और उसे घाटे के वजाय मुनाफा हुआ।

कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि भाग्य ने साथ दे दिया। एक बार एक प्रमुख सटोरिये ने चीन मे चाँदी की लेवाली भेजी। भूल से एक सौ की जगह एक हजार सिल्ली का तार उतर गया। वाजार मे अच्छी तेजी आयी, उसे लाखो का मुनाफा हुआ। उस रूपये से उसने उद्योग स्थापित किये और कुछ वर्ष में ही वडा उद्योगपति वन गया।

एक्सचेन्ज को (जहाँ सट्टा होता) वोलचाल की भाषा मे 'वाडा' कहते। जैसे पाटका बाड़ा, चाँदी-वाड़ा, तीसी-वाड़ा आदि। इन बाड़ो के केन्द्र (गोल) मे इकट्ठे होकर दलाल लोग ऊँची आवाजो या हाथो के सकेतो से सट्टा करते। समस्त लेन-देन का सौदा इन्ही दलालो की मार्फत होता, जिन्हें फाटके की भाषा मे 'मोदी' कहा जाता। प्राय धनी-मानी सटोरिये अपने निजी आदमियो को दलाल या मोदी का फार्म खुलवा देते और उन्ही की मार्फत सौदा करते। कभी-कभी ऐसे भी होता कि वे झगडा झझट पैदा करके वाडा वन्द करवा देते या अपने मोदियो को फेल करवा देते। इस प्रकार की हरकतो को अच्छा नही समझा जाता। वैसे ऐसा होता वहुत कम था।

एक्सचेन्ज के मोदियों को वोट देने, कमेटी के सदस्य वनने और डाइरेक्टर चुनने का अधिकार होता।

बम्वई के एक वहुत वडे सटोरिये ने घाटे से वचने के लिए एक अजीव टेकनीक अपना रखी थी। जव भी उन्हें वडा घाटा लगता, अपने मोदियो को वुलाकर कहते, 'देश से आए तुम लोगो को वहुत दिन हो गए, जाओ घूम आओ' प्रत्येक को दस पन्द्रह हजार रुपये दे देते। वे चुपचाप देश के लिए रवाना हो जाते। इधर वाडे मे भुगतान कौन करे ? भागे हुए मोदी 'फेल घोषित कर दिए जाते और सेठ जी घाटे से बच जाते। कुछ महीने वाद पुन उन्हीं

मोदियो को नए नामो से फर्म खुलवा दिए जाते और फटका पहले की तरह चालू हो जाता।

जिक्र कर चुका हूँ कि हमारे पाट के आँकडे प्राय सही निकला करते थे। किन्तु मैं हमेशा पाट के सौदे मे खोता रहा। कारण था कि मैं इसका गुर नही जानता था। एक बार सट्टे के सफल व्यापारी श्री राधाकृष्ण मोहता ने मुझे उदास देखा। अलग ले जाकर पूछा, "क्या बात है ? उदास क्यो हो ? बड़ा घाटा तो नही है ?" उनका अनुमान ठीक था। मैं घाटे मे भीत (डूबा) हुआ बैठा था। वे कहने लगे, आश्चर्य है, आँकडो की इतनी ज्ञानकारी रखते हुए भी तुम हमेशा सट्टे मे खोते रहते हो"।

बात चीत के सिलसिले मे उन्होने मुझे सट्टे के छहगुर बताये .

१ घाटे मे बाज... होने के समय सौदा बराबर कर घर जाओ। रात वासी घाटा कभी मत रखो।
२ घाटे मे भाव की एक सीमा निर्धारित करो और दलाल से कह रखो कि अमुक भाव आने पर सौदा बराबर कर दिया जाय।
३ अपनी सामर्थ्य से कम सौदा करो
४ अपने सौदे की तादाद कभी किसी से मत कहो।
५. मुनाफे मे धीरे-धीरे सौदा बढाते रहो।
६ अगर बड़ा सौदा हो और सल्टाना हो तो अपने दलालों की मार्फत न सल्टा कर दूसरे नये दलालों से सल्टाना चाहिए। इससे लोग जल्दी से नही भाप पायेगे कि सौदा किसका है।

मैने कारनेगी की किताब मे भी ऐसी बात पढ़ी थी किन्तु उन्हे अमल मे नही ला सका।

साधारण व्यक्ति फाटका को जुआ समझते है, किन्तु सही मानी मे ऐसी बात है नही। यह एक ऐसा व्यापार है, जिसमे जिन्सो पर किसी का भी एकाधिकार होना सहज सम्भव नही। एक ही निश्चित स्थान एक्सचेन्ज हाल मे सौदा होने के कारण इच्छुक व्यक्ति वहाँ इकट्ठे हो जाते है और अपनी-अपनी धारणा के अनुसार लेवा-बेची करते है।

सट्टा या फाटका एक प्रकार से व्यापार है, मगर इसकी लत बहुत बुरी है। बिना परिश्रम के घंटे भर मे हजारो आ जाते है। इससे प्रमाद और लोभ बढता है। स्पष्ट है, बिना मेहनत की कमाई से तरह-तरह के व्यसन भी आते है। आज के कई उद्योगपति चाँदी, रूई और अफीम के सट्टो से सम्पन्न हुए है। किन्तु मैंने यह लक्ष्य किया है कि सब कुछ जानते हुए भी अधिकांश लोग मेरी तरह इस बाजार मे रुपये खो देते है और लाखो घर उजड़ जाते है। तभी तो कहा जाता है कि 'जिसने किया फाटका, घर का रहा न घाट का।'

बढी। फिर भी, वह वर्तमान अवस्था जैसी विश्रृङ्खल नही थी। मेरे कलकत्ते आने के शुरूआत के समय तक व्याज का दर पौने आठ आना (४७) पैसे सैकडा थी। यही दर सारे उत्तर भारत मे लागू थी। बगाल मे नौ आना (५६ पैसे) की दर का प्रचलन हुआ, यह आज भी पुरानी बहियो मे देखा जा सकता है।

सर्राफा के व्यवसाय मे हुण्डी-पुर्जे भी चलते थे। व्यापारिक क्षेत्र मे पूँजी नियोजन मे रुचि लेने वाले जहाँ अधिक होते वहाँ प्रतिस्पर्धा मे व्याज की दर कम हो जाती थी। इसी प्रकार पूँजी की माँग अधिक होने पर दर बढ भी जाती। किन्तु खाते के रुपयो का जो लेन-देन हुआ करता उसमे निर्धारित व्याज ही लगता। इसके अलावा डिस्काउन्ट की भी प्रथा थी। रुपए लगाकर मुद्दती हुण्डी खरीदने वाले सर्राफ मुद्दत से पहले रुपयो की जरूरत पडने पर बाजार भाव मे हुण्डी बेचकर रुपए पा सकते थे। इस प्रकार पूँजी के लिए कठिनाई नही होती। राजस्थान मे आए हुए भाईयो को काम करने के लिए कलकत्ते मे रुपए आसानी से मिल जाते थे। ईमानदारी और मेहनत उनमे थी, पूँजी के सहयोग मे सम्पन्न होने मे उनको अधिक समय नही लगता। कलकत्ते मे उन दिनो इतने बैक नही थे, सर्राफो के फर्म ही बैंकिग का काम करते थे। इनमे ताराचन्द घनश्यामदास, कल्लूबाबू लालचन्द, हरसामल रामचन्द्र, शीतलाप्रसाद खडगप्रसाद बशीलाल अबीरचन्द्र, चैनरूप सम्पतराम, आदि थे। इनके अलावा और भी कई फर्म थे।

अब तो यह अतीत की बात हो गई। राजनीतिक पेचबदी, कानूनी पेशबन्दी आदि ने सर्राफा की स्वस्थ परम्परा को उखाड फेका है। परिणाम यह हुआ कि धनी और अधिक धनी और निर्धन और भी अधिक असहाय होनेजा रहे है। परिणाम भी सामने उभरता आ रहा है। सराफे की तुलना वर्तमान बैंकिग व्यवस्था मे नही हो सकती। बैंकिंग मे मानवता, उदारता और ईमानदारी को परखने-समझने की क्षमता नही है जबकि सराफे की व्यवस्था मे व्यक्ति का महत्व सर्वोपरि था। बैक उसी व्यक्ति या व्यापारी को पूँजी देती है जिनके पास स्थावर सम्पत्ति होती है और बतौर जमानत उसे बैक के हवाले वह कर देता है। जिसके पास चल-अचल सम्पत्ति नही है उसे बैंको से पूँजी आसानी से नही मिल सकती। ईमानदारी, व्यक्तिगत साख आदि कोई मूल्य बैक नही आँकती।

अब तो सरकार ने सराफी के व्यवसाय को अपना लिया है। छोटे कस्बे और शहरो मे बैक खुल रहे है। अफसर रुपए का लेन-देन करते है कागजी कार्यवाई पूरी हो जाती है। रकम डूबे या बचे इससे उन्हे क्या? सराफ सरकार घाटे की पूर्ति व्याज दर टैक्स बढा कर लेती है। अब तो सरकारी सिक्युरिटी, शेयर्स मे पूँजी लगा कर धनी सम्पन्न व्यक्ति विनिमय कर लेते है। इससे जन साधारण तक पूँजी पहुँचने का अवसर नही मिलता समाज को कोई लाभ भी नही पहुँचता है। व्यक्ति, देश और समाज के लिए यह व्यवसाय कहाँ तक उपयोगी है यह विचारणीय है।

आज परमात्मा की कृपा हम पर है। परन्तु मै अपने बीते दिन भूला नही हूँ और यह भी चाहता हूँ कि हमारी वतर्मान पीढी अपने स्थायित्व के लिए केवल आज को न देखे, बीते कल और आने वाले कल पर भी नजर रखे। हमारी पिछली पीढियो मे यह बहुत बडा गुण था। वास्तव मे सन् १९१४-१८ के महायुद्ध तक के तेजी से बदलते समय मे मारवाडी समाज के व्यक्तियो ने विषम परिस्थितियो मे सघर्ष कर कलकत्ते के व्यापारिक क्षेत्र मे अपने को प्रतिष्ठित किया उनका दृष्टान्त अत्यन्त प्रेरणादायक है। उनमे से कुछेक का उल्लेख करना इसलिए आवश्यक समझता हूँ कि इनसे मुझे प्रेरणा मिली और इनका प्रसग शायद आने वाली पीढियो के लिए भी प्रेरक हो।

कलकत्ते मे मारवाडी समाज मे मुझे नाथूराम जी सराफ का स्थान बहुत ऊँचा लगा। इन पर आधारित कहानियाँ भी मैने लिखी है। जिन दिनो अग्रेजी फर्मो मे खत्रियो का रोबदाब

था. नाथूरामजी ने उस गढ मे प्रवेश किया । नाथूरामजी मँडावा के थे । स्वस्थ शरीर प्रभावशाली व्यक्तित्व, खेती करते थे, गुजारे लायक अन्न पैदा कर लेते । बारह-तेरह वर्ष की अवस्था मे माता-पिता की छाया उठ गई । भाभी की देख-रेख थी । एक दिन भाभी ने इनकी छोटी बहन को किसी भूल के कारण पीट दिया । नाथूरामजी ने कारण पूछा तो वे इन पर भी दौडी । वे माता के समान उनका इज्जत करते थे, कुछ बोले नही । घर छोड कर निकल पडे । उस समय उनकी उम्र बीस वर्ष की थी । पेदल ही मिर्जापुर तक आये । सीधे वे सेवाराम रामरिखदास जी की गद्दी मे पहुँचे । कलकत्ते मे इस फर्म का अच्छा काम था । रेल थी नही । नावो मे माल लाद कर भेजा जाता । नाथूराम जी चढनदारी यानी नौकाओ पर माल की चौकसी रखने वाले का काम लेकर कलकत्ता रवाना हो गए । इस काम के लिए उन्हे पॉच रुपए पारिश्रमिक और भोजन गद्दी की तरफ से मिलता । यह सन् १८३७ की बात है । कलकत्ते मे उन दिनो सेवाराम रामरिखदास की गद्दी के मुनीम रामदत्त जी गोयनका थे । नोकाओ के प्रबध और नाथूराम जी की मेहनत से खुश होकर उन्होंने रोटी-कपडा और दो रुपए महीने पर उन्हे नौकरी पर बहाल कर लिया । काम था रामदत्त जी के लिए रसोई बनाना । शरीर से तगडे नाथूराम जी को यह काम जँच गया । महीने के दो रुपए की मटर लेकर वे कबूतरो को चुगा दिया करते ।

रामदत्त जी को कबूतरो वाली बात का पता चलने पर उन्होने दाना चुगाने के लिए हर महीने दो रुपए नाथूराम जी को दिलाने की व्यवस्था कर दी । परन्तु अब नाथूराम जी चार रुपए की मटर चुगाने लगे । यह सिलसिला जारी रहा । रसोई बनाने के बाद काफी समय बचा रहता । नाथूराम जी सूता पट्टी चले जाते और दो एक गॉठ की दलाली कभी-कभी कर लेते । इससे उन्हे बीस-तीस रुपए की आमदनी हो जाती ।

उन दिनो अग्रेजी ऑफिसो मे खत्रियो का बोलबाला था, परन्तु आरामतलब होने के कारण वे अग्रेजो की निगाह से गिरने लगे थे । एक दिन रामदत्त जी ने नाथूराम जी को किसल घोष कम्पनी मे माल की डेलिवरी लिखाने के लिए भेजा । उन्होंने लिख दिया । गर्मी का मौसम था, वही गोदाम मे जाकर ठढे मे बैठ गए । नीद आ गई । थोडी देर बाद किसल साहब आये, अपरिचित लम्बे चोडे आदमी को गोदाम मे सोता देखकर जगाया । परिचय पूछने पर नाथूराम जी ने नाम बताते हुए अपने को कपडे का दलाल बताया । सयोग की बात है कि साहब उन्हे अपने कमरे मे ले आया । माल के कुछ नमूने दिखाकर पूछा कि किस भाव मे वे इन्हे बाजार मे निकाल सकते है । नाथूराम जी ने माल के ऐसे भाव बताए कि साहब प्रभावित हो गया । उसने पूछा कितना माल बेच सकोगे ? नाथूराम जी ने सहज भाव मे कहा जितना देगे, सब निकाल दूगा । साहब ने शर्त रखी तीन दिन मे सारा स्टाक बेच देना होगा । नाथूराम जी ने मजूरी दे दी ।

नमूने लेकर नाथूराम जी बाजार आए । सबमे पहले उन्होने रामदत्त जी को नमूने दिखाये । सेवाराम रामरिख की फर्म पहले किसल घोष का माल बेचती थी परन्तु निक्कामल जी से मतभेद होने के कारण किसल घोष का माल मिलना बद हो गया था । रामदत्त जी ने सुयोग अच्छा देखा और बाजार भाव से कुछ ऊँचा ऑफर दिया । नाथूराम जी और दूसरो का भी भाव लेकर साहब के पास गए । नाथूराम जी के दिए गए भाव मे वह खुश हुआ, परन्तु विश्वास नही हुआ कि अनजान नया दलाल निक्कामल जी से इतनी ऊँची दर कैसे दे रहा है । लिहाजा, उसने अपने ऑफिस के एक कर्मचारी को बाजार मे ऑफर की जॅचाई के लिए भेजा । उसने रिपोर्ट दी की ऑफर सही दिए गए है । साहब बहुत सन्तुष्ट हुआ और उसने उसी दिन पॉच हजार पेचक बेचने के लिए कह दिया । इस घटना के बाद निक्कामल जब ऑफिस आए तो साहब ने उन्हे कहा कि तुम्हे इनदिनो और कामो मे मशगूल रहना है इसलिए तुमको एक असिस्टेन्ट देना तय पाया है । निक्कामल जी को रईसी का नशा आ गया

और उन्होने उखडे शब्दो मे नामजूर कर दिया। साहब ने पलट कर कहा कि तुम्हारी नामजूरी की हालत मे आज से हम नाथूराम जी को कम्पनी का दलाल-बेनियन मुकर्रर करते है। इस घटना के आधार पर मैने मजदूर से मालिक नामक एक कहानी लिखी है।

इधर नाथूराम जी ने सूता पट्टी मे आकर बाजार मे खबर कर दी कि किसल घोष का माल कोई भी मारवाडी बेच सकता है, उसे अपनी आधी दलाली दे दूँगा। इससे जाति भाईयो को बहुत सहारा मिला, धडल्ले मे माल बिकने लगा। नाथूराम जी पर भाग्यलक्ष्मी मुस्कुरा उठी। वे धीरे-धीरे अपने गाव मे अपने कुटुम्बी और रिश्तेदारो को बुलाकर सूतापट्टी मे दूकान खुलवाने लगे। इस प्रकार उनके सहारे कलकत्ते मे कपडे के व्यापार मे मारवाडी भाई काफी जम गए। लगभग तीस वर्ष तक नाथूराम जी ने किसल घोष कम्पनी का काम किया। बाद मे अपने मुनीम गणेशदास जी मुसद्दी को काम सम्हला कर मँडावे वापस चले गए। वे पढे-लिखे नही थे, परन्तु विद्या-प्रेमी थे। अपने गाव मे उन्होने सस्कृत पाठशाला बनवाई जिसमे एक सौ विद्यार्थी पढते थे और उनके भोजन की व्यवस्था थी। नाथूराम जी मे धन का अभिमान कभी नही हुआ। परिचय पूछने पर वे हमेशा नाथिया कहते।

आज अपने समाज मे करोडपतियो की कमी नही, परन्तु नाथूराम जी जैसे जाति हितैषी कम ही मिलेगे। वे खुद बढे, औरो को भी बढाया। कहा जाता है कि मृत्यु के पूर्व उनमे लडको ने पूछा कि शरीर छूटने पर दान-धर्म उनके नाम पर किस ढग का किया जाए। उनका उत्तर था कि दान-धर्म किसी के नाम पर उसकी जीवित अवस्था मे ही करना सार्थक होता है, देह छोडने पर उसके लिए कुछ करने के पीछे दिखावा और ढोग को सिर उठाने का मौका मिलता है।

हमारे अपने ही गाँव सरदारशहर के चैनरूप जी दूगड के जीवन की घटनाऐं बडी प्रेरणादायक है। सूतापट्टी मे इन्होने चैनरूप सम्पतराम के नाम से फर्म खोली। सबसे पहले करोडपतियो मे गिने जाने लगे। कहा जाता है कि चैनरूप जी गाँव मे चेजे पर मजदूरी कर गुजारा करते थे। एक दिन काम पर पहुँचने मे देर हो गयी, जब वे अपनी टोकरी उठाकर काम करने को बढे कि चेजारे ने देर की वजह से फटकारते हुए निकल जाने को कहा। सजोग की बात है कि उसके हाथ से करनी छटक कर चैनरूप जी के माथे पर पर जा लगी और चोट गहरी बैठी। खून फूट निकला। खबर सुनते ही मालिक दौडा आया। दस-पाँच रुपए देकर चैनरूप जी को उनके घर पहुँचा कर मामला रफा-दफा कर दिया। घर पर माता ने मरहम पट्टी कर दी। हफ्ते भर मे घाव भरने लगा मगर चैनरूप जी के मन मे चेजारे की मजदूरी जँची नही। उन्होने सोचा कि दस-पाँच रुपए की पूँजी हो गई, देसावर की सफर कर कमाई करना ठीक रहेगा। माता की स्वीकृति ले ली और पैदल ही कलकत्ते आए। यहाँ एक ओसवाल फर्म मे खाना-कपडे के साथ दो रुपए महीने की नौकरी कर ली। काम यही था कि मालिक के लडको को स्कूल ले जाना और फिर वापस घर ले आना। यह काम करते हुए स्कूल मे उन्होने सामान्य लिखना-पढना सीख लिया। तब मालिको ने दूकान पर माल दिखाने का काम दिया। बडी लगन और मेहनत से काम करते रहे। धीरे-धीरे चार पाँच सौ की पूँजी भी खडी कर ली। बनिये के लडके थे, व्यापार के लिए मन मे आकाक्षा दबी थी, अब उभरने लगी। सूतापट्टी मे एक चबूतरे पर छोटी सी जगह भाडे पर ले ली। दूकानदारो से धोती जोडे लाकर बेचने लगे। मीठी बोली, सच्चा व्यवहार, कम मुनाफा इन गुणो के कारण दूकानदारी चल निकली। कुछ ही वर्षो के बढते-बढते बडे व्यापारी बन गये। चैनरूप जी ही शायद कलकत्ते के पहले व्यापारी थे, जिन्होने मैनचेस्टर से सीधे अपनी फर्म मे माल मँगाना शुरू कर किया। उन दिनो अग्रेजी फर्मो के सिवाय विलायत मे किसी भी हिन्दुस्तानी को सीधे माल नही भेजा जाता था। परन्तु चैनरूप जी ने इस गढ को तोडकर भारतीय व्यापारियो की

मर्यादा बढ़ाई ।

कलकत्ते के मारवाड़ी समाज के इतिहास मे सूरजमलजी का स्थान अद्वितीय है । इनकी प्रेरणा और सहयोग ने राजस्थानी भाइयो को कलकत्ते मे कारोबार जमाने और सामाजिक कार्यो मे रुचि लेने मे बहुत प्रेरणा दी । इनका स्वय का जीवन भी अनुकरणीय दृष्टान्त उपस्थित करता है ।

सूरजमल जी झुनझुनवाला के घर की आर्थिक दशा बहुत साधारण थी, वे अपने गाँव चिड़ावा मे बारह-तेरह वर्ष की कच्ची उम्र मे कमाई करने घर से निकले । सन् १८६० ई० के आस-पास राजस्थान से कलकत्ते की पैदल यात्रा एक किशोर ने तभी की होगी जब उसके पास अदम्य साहस, आत्मविश्वास की पूँजी रही होगी । कलकत्ते मे देश से नए आए हुए राजस्थानियो को आवास का कष्ट पहले नही होता था, हमारे समय तक यही अवस्था थी । गद्दियो मे रहने को जगह मिल जाती थी । सूरजमल यहाँ आकर लालचन्द बलदेवदास की गद्दी मे रहे । उन्ही के यहाँ काम भी करने लगे । बाद मे प्राणकृष्ण लाहा की आफिस से पुर्जा चुकाने का काम पकड़ लिया । व्यापारियो से इस मार्फत जान-पहचान बढ़ने लगी । उन्होने थोड़ा बहुत निजी काम भी इसी बीच शुरू कर दिया । सयोग की बात है कि उन्हे निजी कारबार मे नुकसान लग गया । अपनी इज्जत बचाने के लिए पुर्जो के भुगतान की रकम से उन्होने अपने घाटे की रकम चुका दी । यह बात बाबू दुर्गाचरण लाहा तक पहुँची । उनसे पुर्जो का हिसाब मांगा गया । सूरजमलजी बहुत सकट मे पड़े । कहाँ से रुपये लाए ? देने तो होगे ही । उधेड़बुन मे बासे मे पड़े थे कि इनका एक मित्र आया, इनके उतरे हुए चेहरे को देख कर उसने कारण पूछा और यह जानकर उसके भी होश उड़ गए कि सूरजमलजी ने आत्महत्या करने का निर्णय ले लिया है ।

मित्र के पास पन्द्रह-बीस हजार थे । उसने आड़े वक्त पर सारे रुपये सूर्यमल जी को दे दिए । अगले दिन उन्होने पुर्जो का हिसाब चुका दिया । लाहा बाबू की धारणा बदल गई, सूर्यमल जी के प्रति विश्वास दृढ़ हुआ । वे मन ही मन दुखी हुए कि नाहक एक ईमानदार व्यक्ति के नाम पर उन तक झूठी शिकायत पहुँचाई गई । उन्होने सूरजमलजी को अपनी कम्पनी का दलाल बना दिया । सूरजमलजी के दिन फिरे । ग्राहम कम्पनी का काम भी कुछ दिनो मे उनके हाथ आ गया ।

अच्छे दिन आने पर भी वे अपने मित्र के उपकार को जीवन भर भूले नही । जिस व्यक्ति ने उनके नाम रुपये गबन करने की शिकायत की थी, उसके लिए सौ रुपये मासिक की वृत्ति निर्धारित कर दी । उन दिनो सौ रुपयो की रकम बहुत बड़ी मानी जाती थी । उनकी धारणा थी कि शिकायत सही थी और इसे कहना कोई अपराध नही था । और यह भी कि इसी ठोकर ने उनके सोए भाग्य को जगाया ।

सूरजमलजी प्रारम्भ से ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे । परोपकार एव सेवा को वे सबसे बड़ा धर्म मानते थे । अपनी आय का निश्चित अश उन्होने जन सेवा और धार्मिक कार्यो के लिए प्रारम्भ से ही अलग कर दिया था और मृत्यु के समय ग्राहम कम्पनी की अपनी दलाली की सारी आमदनी धर्मार्थ कर गए । जाति हित के कार्य मे वे हमेशा आगे बढ़े रहते । इसकी अपेक्षा नही करते कि कौन साथ देता है या नही । आफिस के माल के चालू नम्बरो को वे बधे हुए व्यापारियो को हमेशा देते रहे । कभी कोई व्यापारी नुकसान मे पड़ जाता तो उसे सम्हाल लेते ।

उनके समय मे कलकत्ते मे घृत-आन्दोलन चला था । घी मे चर्बी मिलाकर बेचा जाता था । बड़े ही साहस के साथ इसके विरुद्ध आवाज उठाई । उनदिनो समाज मे रूढ़िवादिता बहुत ज्यादा थी । ब्राह्मण-भोजन के समय बहुत से भ्रष्ट ब्राह्मण-ब्राह्मणियो को भी दक्षिणा देने की प्रथा थी । सूरजमलजी ने इसे धर्म एव समाज के विरुद्ध घोषित करते हुए प्रतिवाद किया और इसका बहिष्कार कराया । कलकत्ते मे मल्लिक स्ट्रीट मे उन्होने ही सबसे पहले

धर्मशाला बनवायी और उसी मे चिकित्सालय खोला। श्राद्ध-कार्य की सुविधा के लिए उन्होने पक्का घाट बनवा दिया। उत्तराखण्ड की यात्रा पर जाते हुए ऋषिकेश मे गगा को पार करने के लिए रस्सियो के कच्चे पुल से गुजरना होता था। सूरजमलजी ने तार के मोटे मजबूत रस्सो का पुल बनवा दिया। आज भी प्रतिवर्ष लाखो तीर्थ यात्री इसी लक्ष्मण-झूला मे बदरी, केदार, गगोत्री, यमुनोत्री की यात्रा करते है। ऋषिकेश मे भी इन्होने ही पचायती धर्मशाला एव सदावर्त की स्थापना की। इस प्रकार धन का उपयोग एव उपभोग ऐसे ढग मे किया कि उनका नाम सदा अमर रहेगा।

कलकत्ते का राजस्थानी समाज मेरे देखते-देखते ही पिछले पचास वर्षो मे सम्पन्न-समृद्ध ही नही, बल्कि शिक्षा एव जीवन के विविध क्षेत्रो मे काफी आगे बढ गया है। उद्योग-व्यापार की तरह चिकित्सा-विज्ञान, शरीर-चर्चा, संगीत, साहित्य, कला, शिल्प, राजनीति आदि मे इनका अच्छा नाम है। आज 'मारवाडी' शब्द का तात्पर्य उस रूढिग्रस्त समाज से नही, जिसका एक मात्र लक्ष्य अर्थोपार्जन ही रहा है। समय एव युग की आवश्यकता के अनुरूप राजस्थानी समाज ने परिवर्तन अपनाया है।

इस प्रगति के पीछे पिछली पीढियो के श्रम, सयम और दृढ निश्चय के कृतित्व रहे है। बहुत सघर्ष करना पडा। उस पीढी के बहुत ही थोडे लोग रह गए है। आज भी आदरणीय घनश्यामदासजी बिरला, सीतारामजी सेक्सरिया, भागीरथजी कानोडिया, प्रभुदयालजी हिम्मतसिंह का, ईश्वरदासजी जालान जैसे मनीषी प्रेरणा के स्रोत है। मुझ जैसे कितनो को इन्ही लोगो ने अनुप्रेरित किया और मार्ग-दर्शन कराते रहे। यह कहना अत्युक्ति नही होगी कि इनमे से प्रत्येक मे आज भी अदम्य उत्साह, क्षमता और आत्मविश्वास है।

कलकत्ता आने का मेरा उद्देश्य था अर्थोपार्जन। इसी की सिद्धि मे तन मन से लगा रहता था। किन्तु मनुष्य अपने आसपास के परिवेश एव वातावरण से अछूता नही रह सकता। अनजाने मे मेरे ऊपर समाज की घटनाओ और उथल-पुथल का असर होता रहा। कलकत्ते के विकास, विशेषत राजस्थानियो की पिछली पीढी के लोगो के सघर्षपूर्ण इतिहास जानने के प्रति उत्सुकता मेरे मन मे बढती रही। जब भी अवसर मिलता पुराने लोगो के बीच बैठना, उनकी बाते सुनना। बहुत सी बाते तो याद रही नही, अच्छा होता, यदि उन्हे नोट करता, परन्तु वैसी कोई आवश्यकता उन दिनो महसूस नही की।

अपने कामकाज के सिलसिले मे विभिन्न व्यवसाय और वर्ग के लोगो से मिलने के मौके मिलते थे। इनमें नयी रोशनी के लोग भी थे उत्साही, सुधारवादी, सघर्षशील। उन दिनो राजस्थानी समाज मे सुधार की बात करना एक प्रकार से खतरा मोल लेना था। समाज से बहिष्कृत होने का दण्ड तो मिलता ही, व्यापार-व्यवसाय मे भी असहयोग उपस्थित होने की सम्भावना थी, अतएव सुधारक बनना दुस्साहस था। फिर भी युवक आगे बढते थे। इनके पीछे कुछ बुजुर्गो का सक्रिय सहयोग भी रहता था। पचायत का जोर था, पर धीरे-धीरे उसकी अवमानना होने लगी।

कलकत्ते मे राजस्थानियो की पचायत का सगठन कब हुआ, इसका ठीक-ठीक पता नही चलता। बगाल मे नवाबी शासन के बाद अग्रेजो ने कलकत्ते को जब राजधानी बनायी तो व्यापार-व्यवसाय का यह केन्द्र बन गया। यहाँ बसे मारवाडियो की जब उत्तरोत्तर उन्नति होने लगी और उनकी सख्या भी बढने लगी तब सम्भवत अनुभव होने लगा कि व्यापारिक एव सामाजिक समस्याओ और आपसी मतभेदो पर विचार-विमर्श एव निर्णय के लिए एक सगठन आवश्यक है। इसी आधार पर जातीय पचायत बनायी गयी थी। सन् १८२८ के लगभग कलकत्ते मे पचायत अस्तित्व मे आ चुकी थी। उन दिनो सोजीराम हरदयालजी की गद्दी मे पचायत बैठती थी। राजस्थानी पचायत प्रथा के अनुसार पाँच पच पाँच वर्षो के लिए चुने जाते थे। इनका चुनाव बहुत सोच समझकर किया जाता था। धन अथवा अन्य प्रकार के प्रभुत्व का महत्व नही था, बल्कि निष्पक्ष, निष्ठावान, एव सच्चरित्र व्यक्ति पच बनाए जाते, भले ही वे धनी हो या उनका रोबदाब सरकारी अथवा राजनीतिक क्षेत्र मे न हो।

पचायत जातीय मभा या मस्था अवश्य थी, किन्तु इसका मगठन आजकल की सभा-सोसाइटी की तरह नियमो मे जकडा नही था। नैतिकता, व्यावहारिकता एव जातीय भावनाओ को अधिक मान्यता दी जाती थी। पच मबो की बात मुनते थे। लोगो मे सलाह भी लेते थे। गुटबन्दी या उलझी समस्याओ की तह मे स्वय जाते, जॉच करते और तब पॉचो पच फैसला दिया करते। दोषी को दण्ड देने से पूर्व उसे अवसर भी दिया जाता कि अपनी भूल को समझे और भविष्य मे वैसी गल्ती न करने का वादा कर पचायत को विश्वास दिलाए। यदि जिद्द पर अडा रहता तो दण्ड का निर्णय सुना दिया जाता था। आमतौर पर लोग पचायत की बात मान लेते थे। न मानने वालो का समाजिक बहिष्कार कर दिया जाता था।

सन् १९४७ से १९५७ के बीच मेरे सार्वजनिक जीवन मे परिवर्तन आते गये। रूढिवादिता, छुआछूत, स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह आदि की समस्याएँ पहले जैसी जटिल नही रही। स्वाधीनता के बाद जन-समाज स्वय इतना जाग्रत हो उठा कि स्वत उसने सुधार के मार्ग पर नए जमाने की करवट के अनुसार कदम बढाना शुरू कर दिया। ऐसी अवस्था मे समाज-सुधार का कार्य मेरे लिए स्वत कम होता गया। मै शिक्षा के क्षेत्र मे अधिक रुचि लेने लगा। साथ ही अध्ययन विशेषत हिन्दी, बगला और अग्रेजी साहित्य मे विशेष रुचि जगी। इसी बीच लिखने का अभ्यास बढता गया। पत्र-पत्रिकाओ मे नियमित रूप से लेख भेजने लगा। इन लेखो के विषय सामाजिक और आर्थिक होते थे। पाठक-वर्ग से प्रोत्साहन मिलता, लेखो पर उनके मतामत आते, उनकी मॉग बनी रहती, इससे मुझे बहुत प्रसन्नता होती। सच पूछा जाय तो लिखकर मेरे मन मे एक आशका सी बनी रहती कि मै अपने विचार स्पष्ट कर पाया कि नही। मित्रो और पाठक वर्ग की सराहना से मै मन ही मन उल्लसित हो उठता था, ठीक उसी तरह, जिस तरह परीक्षार्थी अच्छे नम्बर पाकर खुश होता है।

बचपन मे ही अभाव और कष्ट का मैने वातावरण देखा। देशी रियासत का कडा शासन, जागीरदारो के मौज-शौक, मौन रहकर प्रजा का सब कुछ सहते रहना—इन सबो की प्रतिक्रिया मेरे बालक और किशोर मन पर होती रही। एक घटना की याद आती है। हमारे गॉव मे महाराजा साहब पधारे। दरबार लगा। सभी गण्यमान्य उपस्थित हुए। कोई सर उठाकर तन कर खडा नही हो सकता था। मेरा मित्र दीपचन्द चाण्डक भी था-खादी कुर्ता-धोती मे। प्रथा थी दरबार(महाराजा)को झुककर जुहार (सलाम) करने की। उसने हाथ जोडकर प्रणाम किया। दरबार साहब ने सिर्फ इतना ही पूछा—यह कौन है? काफी तेज लगता है, क्या करता है, कहॉ रहता है? गॉव के माने-जाने लोगो ने बडी विनम्रता से कहा—"इसी गॉव का है, पर परदेश मे रहता है—हजूर, इसकी बेअदबी माफ करे, यहॉ का अदब-कायदा जानता नही।" महाराज ने एक नजर दीपचन्द पर डाली और चुप रह गए। मगर गॉव के लोग समझ गए कि क्या हो सकता है। उन्होने उसी समय चुपके से दीपचन्द को बाहर बुलवा लिया। शाम हो रही थी। एक तेज उँटनी पर उसी समय सवार कर रातो रात बीकानेर रियासत से बाहर भिजवा दिया। राजस्थान की अधिकाश रियासतो मे ब्रिटिश विरोधी गतिविधि का बडी सख्ती से दमन किया जाता था। गाधी जी का समर्थन भयकर अपराध माना जाता था। बहुत ही कडी सजा दी जाती थी। फिर भी रियासतो मे प्रजा-परिषद् सक्रिय रही और सामन्त वाद के विरोध मे आन्दोलन करती रही। इसके लिए अनेक आहुतिया चढी, लोग बलिदान हो गये। आज शायद ही कोई विश्वास करेगा कि रियासती शासन की अपेक्षा ब्रिटिश शासन कम कडा था। यहॉ नियम-कानून को बरकरार तो रखा जाता था।

कलकत्ता मे अपने जीवन मे रोजी-रोटी के लिए सघर्ष करते हुए मै अपने गॉव के अनुभव भूला नही था। यहा सयोग से काम-काज के सिलसिले मे मेरा सम्पर्क अग्रेजो से रहा। व्यवसायी-व्यापारी और प्रशासक अग्रेजो मे बडा अन्तर था। व्यापारी अग्रेज हँसमुख और

मिलनसार था—अपवादो की बात और है । प्रशासक अंग्रेज गंभीर और सख्त थे, ड्यूटी के पक्के । कभी-कभी मैं विषमता को देखकर हैरान रह जाता था । इतना अवश्य था कि दोनो मे अपने देश और राष्ट्र के प्रति गहरी निष्ठा थी । वे अनुशासन प्रिय थे । इसका मुझ पर असर पड़ा ।

व्यवसाय-व्यापार जम जाने पर और देनदारी मे मुक्त होने पर मेरी सुप्त भावनाएँ मुझे उसकाने लगी । भाईजी-पिताजी राजनीति मे विरत रहने पर हमेशा जोर देते । उन दिनो की राजनीति त्याग, तपस्या और निष्ठापूर्ण थी । देश बड़ा था, दल नही । 'सीस उतारे भूँई धरे तब पैठे घर माँहि'—मैं अपने मे यह कभी महसूस करता था । मन मे देश के लिए कुछ कर गुजरने का उत्साह और परिस्थितियो का अवरोध मेरे मन मे अन्तर्द्वन्द्व संघर्ष-सा मचाए रखता था । निदान स्वत निकला—मैने निष्कर्ष निकाला, व्यक्ति के विकास मे समाज बनता है और समाज से राष्ट्र । मैं सामाजिक कार्यो मे रुचि लेने लगा, सक्रिय होता गया । मुझे सुख और सन्तोष मिलता रहा । कम विरोधो का सामना नही करना पड़ा । कीचड़ और गालियाँ तो मामूली बात थी, लाछनाएँ भी लगाई गई । विधवा-विवाह और स्त्री-शिक्षा के लिए हमे और हमारे साथियो के प्रयासो को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता । अनावश्यक रूढ़ियो के विरोध मे तो बहुत ही पेचीदी परिस्थिति बन जाती थी—खास तौर पर जब अपने ही रिश्तेदारो के विरोध मे उतरना पड़ता था । एक बार मेरे श्वशुरजी के पिताजी के देहावसान पर उनके यहाँ मृतक-भोज का आयोजन हुआ । हम सुधारवादी ऐसे आयोजनो के विरोध म थे । साथियो ने सलाह की कि इसका विरोध नए ढग से किया जाय । नजदीकी रिश्तेदारी का मामला था, मैं सशय मैं पड गया । मगर राजी होना पड़ा । हम सभी मृतक-भोज मे शामिल होने गए । पगत बैठी, परूसन के ठीक पहले ही हम सदल-बल एक साथ थालियो के सामने से उठकर विरोध मे अलग खड़े हो गए । मेरे श्वशुरजी को मुझसे ऐसी आशा नही थी । मेरा इस प्रकार का विरोध बिरादरी के सामने लिए जाने पर उन्हे बहुत दु ख हुआ । बात घर तक पहुँची । पिताजी और भाईजी को बुरी लगनी थी । उन्होने कहा, विरोध था तो जाते नही । थाली पर से सदल-बल उठना अशिष्ट और अनुचित व्यवहार है । यह बात भूला नही । अपमान करना विरोध नही होता । इसी तरह के विरोध विवाह-शादियो मे भी हम करते थे । सड़क पर गाने की प्रथा पर्दा आदि तो बड़ी तेजी मे कम होते गए, किन्तु दहेज के मामले मे हम अपेक्षित सफलता नही प्राप्त कर सके । फिर भी लेन-देन के मामले मे गहरा दबाव देना कम जरूर कर सके । स्वाधीनता के बाद देश की औद्योगिक उन्नति ज्यो-ज्यो होती गई, दहेज का अभिशाप भी बढता जा रहा है । न जाने इस अभिशाप की ज्वाला मे कितनी बरबादियाँ होगी ।

सामाजिक कार्यो मे रुचि लेते हुए मेरा सम्पर्क मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी से बढता गया । इस सस्था का कार्य बहुत व्यापक रहा है और आज भी है । सन् १९३४ की जनवरी मे जब बिहार मे विनाशकारी भूकम्प आया था, उस समय से ही सोसायटी के प्रति मेरा अनुराग बढता गया । सन् १९४७ मे भारत-विभाजन के कारण पूर्वी बगाल से भारी सख्या मे शरणार्थी आए । इनको राहत पहुँचाने मे आदरणीय भागीरथजी कानोडिया ने बहुत ही बड़ा काम किया ।

सन् १९५१ के नवम्बर मे राजस्थान मे पड़े सूखे और अकाल पर सेवा-कार्य के लिए राजस्थान गया । राजस्थान मे जन्मा जरूर, किन्तु इससे पूर्व अपनी माटी को सही ढग से देखने-समझने का मौका नही मिला था । इस यात्रा मे बहुत कुछ सीख पाया । सदियो से युद्ध और मुगल-आक्रमणो के कारण राजस्थान की धरती का उजाड हो जाना कोई ताज्जुब की बात नही । खेती-बागवानी उपेक्षित रहे । रजवाड़ो ने भी ध्यान नही दिया । छिटपुट कोशिशे होती रही कुछ नरेशो ने की, किन्तु इतने से क्या होना ? लोग परदेश मे जाकर बसने । अपना गाँव, अपना देश सूखा-भूखा-प्यासा ही रहा । पहले इतना तो होता था कि लोग बावड़ी-कुएँ खुदवाते बगीचा लगवाते थे पर धीरे-धीरे यह भी कम होता गया । स्वाधीनता

के बाद मे तो पानी की व्यवस्था की जिम्मेदारी सरकार की समझी जाने लगी। एक बात जरूर समझ मे आई कि कुएँ-जोहड़-बावड़ियो मे स्थानीय तत्कालीन राहत भले ही मिल जाय किन्तु समस्या का निदान सभव न होगा। इसके लिए बड़े पैमाने पर इजरायल के ढग की योजना बनानी होगी। गगा-नहर की तरह और भी योजनाएँ बनानी होगी। चम्बल बहुत सहायता कर सकती है। बरसात के जल-सग्रह के लिए बड़ी-बड़ी झीलें भी बहुत मदद कर सकती हैं।

राजस्थान के प्रवास मे बहुत सारे सामाजिक और राजनीतिक नेताओ के सम्पर्क मे आया। सार्वजनिक सेवा-कार्य मे रहने के कारण वे मेरे नाम से परिचित थे। राधाकृष्णजी बजाज, ब्रह्मदत्तजी और श्री बद्रीनारायणजी सोढाली के व्यक्तिगत सम्पर्क मे आया। जल की व्यवस्था के बारे मे विचार-विमर्श हुए। मैंने अपने विचार रखे कि तात्कालिक और स्थायी दोनो प्रकार की योजना बनानी ठीक होगी। जब इजरायल रेगिस्तान मे हरियाली ला सकता है तो राजस्थान भी हरा-भरा बनाया जा सकता है। इसके लिए प्रकृति भी काफी अशो मे हमारे अनुकूल हे और उद्योग करने पर हमे सहायता सहयोग दे सकती है। निष्क्रिय बैठने से मुझे अशान्ति और कुठा का बोध होता है। पढने-लिखने के अलावा कुछ न कुछ करते रहने मे मुझे बड़ी शान्ति मिलती रही है। व्यापार-व्यवसाय अलग बात है। मुझे लगता था कि सोसाइटी जन-सेवा का श्रेष्ठ माध्यम है। मारवाडी सम्मेलन, रूढिवादी राजस्थानी समाज मे जागृति और चेतना के लिए अच्छा काम कर सकता है। मै दोनो को तौलता। सोचता, कौनसा मेरा पथ है। मुझे लगता कि सम्मेलन के कार्य के लिए कार्यकर्त्ताओ की कमी नही, धन की कमी नही, किन्तु सोसाइटी का कार्यक्षेत्र बहुत बडा है, व्यय सापेक्ष है। अत इस सस्था मे हाथ बँटाना मेरे लिए अधिक उचित नही होगा।

इसी कारण छोटी-बडी अन्यान्य सामाजिक सस्थाओ मे जुडे रहते हुए भी मै ज्यादा समय रिलीफ सोसाइटी के लिए देने लगा। राहत के काम मे विशेष दिलचस्पी मुझे रहती। इसके लिए धन-सग्रह आवश्यक था। अच्छे काम का रूप प्रत्यक्ष होने पर सहानुभूति और सहयोग की कमी नही रहती। मुझे धन-सग्रह मे सफलता मिली। स्नेह भी भरपूर मिला।

राजस्थान मे राहत का काम करते समय अच्छे नेताओ से मेरा परिचय हो गया था। वहाँ भुखमरी और गरीबी का जो रूप देखा उससे बडी ग्लानि होती थी। इसी माटी की हजारो सन्तान देसावरो मे वैभव का सुख भोग रही है। इनकी सूनी हवेलियाँ आँखे फाडे इन्तजार करती है कि कब मालिक की निगाह पडे। इनके भाईबन्द पडोसी जीने के सहारे के लिए सघर्ष करते देखे। परम्परा और प्रथा के अनुसार जडुला उतरवाने (बच्चो का मुडन कराने) कभी-कदाच देसावरो से आते। ब्राह्मण-भोजन, कीर्तन, रतजगा कराना, गाँव मे भोज करा देना—नाम और यादगारी के लिए काफी समझा जाता रहा। कुछ ऐसे भी थे, जिन्होंने कुएँ-मन्दिरो के जीर्णोद्धार कराए, स्कूल, कॉलेज, अस्पताल खुलवाए। किन्तु ऐसे लोग उँगलियों पर गिनती के थे।

राजस्थान मे गरीबी गुजारी, कलकत्ता ने दिया सघर्ष और वैभव। किन्तु शाति और सतोष नही दे पाया। राजस्थान मे चाँदनी रात मे चमकती रेत पर लेटकर दूसरी दुनिया मे पहुँच जाता। मुझे लगता, धरती कहती है—मै पराई हो गई, मेरे लिए तेरा कोई घर नही। मै उलझ जाता—क्या करूँ, कैसे करूँ ? कितना कर सकूँगा ? बचपन मे दादी से सुनी कहानी याद आती। रामचन्द्रजी पुल बनवा रहे थे, गिलहरी पूँछ भिगोकर रेत मे लोटती और पुल पर झाडकर फिर पूँछ भिगोती। मेरे मन मे भावना उठती कि कुछ न कुछ किया जा सकता है। सरकारी सहयोग भी मिल सकता हे, कार्यकर्ता मिल जाएगे, कमी रहेगी नही। ऐसी चर्चाएँ अक्सर राजस्थान के दौरे पर होती। चुनाव मे खडे होने के लिए मुझसे कहा भी जाता। मै टालता रहा। मेरे लिए समस्या थी। राजस्थान एक सिरे पर कलकत्ता दूसरे सिरे पर। एक

जन्मभूमि, दूसरी कर्मभूमि । सेवा सार्वजनिक सेवा के लिए दोनो ही उपयुक्त । किन्तु राजस्थान को अपनाने का अर्थ था, व्यवसाय-व्यापार का त्याग । भगवान् ने कृपा कर दी थी । जितना था, उतना काफी था । भाई योग्य थे, काम देखते थे । फिर भी धनोपार्जन का आकर्षण छोडना सहज सम्भव नही था । पिताजी और भाईजी की सहमति और अनुमति का भी प्रश्न था । उनकी अवज्ञा करने का मुझमे साहस नही था । मन उलझन मे परेशान होता रहा ।

मैने अपना पूरा ध्यान व्यापार-व्यवसाय और लिखने-पढने मे लगा दिया । लेख काफी लिखे, अखबारो मे छपते रहे । राजनीति से सम्पर्कित मेरे मित्र मुझे कहते कि राजस्थानी नेताओ पर मेरा प्रभाव अच्छा पडा है । आगामी चुनाव मे मुझे टिकट देने की चर्चा बढ रही है । इन बातो का प्रभाव मन पर पडे बिना रहता नही । एक कुलबुली-सी महसूस करता । फिर भी मैने दिलचस्पी नही दिखाई । राजस्थान से मिनिस्टर और बडे नेता कलकत्ता आते । मुझे उपस्थित होना पडता था—उनके प्रोग्राम मे । फिर भी मन को बाँधे रखता ।

राजनीति में प्रवेश

जनवरी १९६५ मे जयप्रकाश वाबू का प्रत्र मिला। उनके साथ राजस्थान के दौरे पर जाना है। मैने स्वीकृति दे दी। जे० पी० का झुकाव राजनीति के प्रति कम होता जा रहा था। वे आचार्य विनोवा के विचारो से अधिक प्रभावित हो चुके थे। मेरा दृष्टिकोण पूर्ववत् समाजवादी ही था। उनके साथ राजस्थान के दौरे मे मुझे ऐसा लगा कि देश की समस्या का निदान किसी 'वाद' विशेष के वश की वात नही। जन-साधारण का हित-साधन ही लक्ष्य रहना चहिए।

जयप्रकाश वाबू कि मीटिगे विभिन्न गॉवो, कस्बो और शहरो मे होती रही। जाने-माने लोग और नेता आया करते। जे० पी० प्राय प्रत्येक मीटिंग मे कर्मठता, निष्ठा और दान शीलता के सन्दर्भ मे मेरा उल्लेख करते। मै ठगा-सा रहता। मेरी समझ मे नही आता कि इनका प्रयोजन क्या था।

भाग्य की गति प्रवल होती है। वह वानक वनाती है। उद्यम साथ देता है। इसे अपने जीवन मे देखा। अवसर से चूकना नही चाहिए। मेरे मित्रो से मुझे खबर मिलती, ससदीय चुनाव राजस्थान मे मेरा नाम लिया जा रहा है। कभी जोधपुर, पाली, सीकर, उदयपुर का नाम लिया जाता। मै मन से तटस्थ था। किन्तु कब तक रह पाता। सुखाडियाजी और घनश्यामदास जी विरला मेरे लिए रूचि लेने लगे। अन्ततोगत्वा मुझे सीकर की ससदीय मीट से मुझे काग्रेस के लिए टिकट दी गई।

चुनाव मे उतरा। अनजान शक्ति ने मुझे उतारा। उसी ने मुझे जितांया भी। सीकर क्षेत्र के लिए मैने वैसा कुछ नही किया था। जल-बोर्ड के माध्यम से जन-कल्याण के कुछ काम के सिवा कोई बडी पूजी मेरे हाथ तो रही नही। हॉ, मित्रो का स्नेह था। चुनाव के दौरान भागीरथजी, घनश्यामदासजी, सुखाडियाजी, पुरूषोत्तमजी, केजडीवाल, मातादीन जी खेतान आदि की शुभकामनाएँ और सहयोग वहुत वडा सम्वल रहा। घरवाले तो साथ थे ही।

जीवन का नया अध्याय शुरू हुआ। राजनीति से अनभिज्ञ, इसके प्रति रूचि भी नही रही। घुटन महसूस करता, पर उपाय क्या ? सोचता, सीकर क्षेत्र के लिए कैसे क्या किया जाए। फिर से सम्पूर्ण क्षेत्र का दौरा कर डाला। समस्याओ को नोट कर लिया। पार्लियामेन्ट मे अतुल्य घोष, सत्यनारायण सिन्हा, ए० के० सेन, महाराजा वीकानेर, एल० एम० वर्मा जैसे अनुभवी और अपने हितैषी मित्रो से सलाह लेता। मुझे लगा कि यहाँ करने के लिए वहुत काम है, ढग से किया जाए तो वहुत कुछ हो सकता हैं। किन्तु साथ ही यह जान पडा कि गुटवाजी भी है।

१३ मई को राष्ट्रपति का भाषण हुआ। अच्छा था। भाषण-समाप्ति के वाद महाराजा वीकानेर ने मुझसे कहा कि भाषण पर आप भी कुछ अवश्य कहे। मै आज भी उनके इस स्नेह पूर्ण परामर्श को भूला नही हूँ। मुझमे झिझक थी, किन्तु मैने निश्चय किया कि प्रश्न करूँगा

कुछ बोलूँगा अवश्य । अपने विचार रखने मे सार्थकता है आगे से इस पर ध्यान रखा, प्रश्नोत्तर मे भाग लेता । इससे लाभ हुआ । मै बैक बेचर नही माना जाता । मेरा इम्पॉर्टन्स बढा, मेरा नाम भी लिया जाने लगा । कई कमेटियो और डेलीगेशनो मे मुझे शामिल किया गया । इस माध्यम मे कुछ काम भी कर सका । किन्तु मुझे इतने से सतोष नही रहा । राजनीति को मै राष्ट्रनीति के एक सशक्त साधन या माध्यम के रूप मे देखना चाहता था । वह हो नही पा रहा था । इतना जरूर हुआ कि मेरे क्षेत्र की छोटी-बडी योजनाओ के लिए राज्य की मिनिस्ट्री और उसके लिए केन्द्र से अर्थ की स्वीकृति कराने मे सफलता मिल जाती थी । किन्तु यहीं तो सब कुछ नही ।

सीकर-क्षेत्र मे मेरी लोकप्रियता सन्तोपजनक रही । स्कूल-कॉलेज, अस्पताल, लाइब्रेरियो के लिए जितना बन पडता, करता रहा । इसमे बहुत रूपये खर्च होते रहे । न करता तो भी चलता, किन्तु मै शिक्षा को राष्ट्र की उन्नति का सबसे उपयुक्त साधन मानता रहा हूँ । मैने हाथ खीचा नही, मेहनत से मुँह मोडा नही । सडको की सुधार, जल-व्यवस्था पर भी पूर्ववत जुटा रहता था ।

सन् १९६१ की शुरूआत के महीनो मे ससदीय चुनाव की चर्चा आने लगी मुझमे इसके प्रति विशेष आग्रह नही था । मैने जो सोचा था कर नही पाया । जिसकी कल्पना थी, उसे छू तक नही पाया । व्यापार-व्यवसाय से अलग-थलग रहना पडा । यह भी कॉटे सा विधता था । कलकत्ता छूट नही पाया । यहाँ आने पर जितना भी समय मिलता, पूरे उत्साह से पूर्ववत् बन्धुओ से मिलता, सार्वजनिक कामो में सहयोग देता । फिर भी लगता, कलकत्ता मुझसे कहता है मुझे भूल गए, कहाँ जा फँसे ? मैने एक प्रकार से मानस बना लिया कि अब राजनीति मे पृथक हो जाऊँगा । जयप्रकाश बाबू की तरह लोक-कल्याण के कार्य मे स्वय को नियोजित रखूँगा ।

किन्तु मन की बात मन ही तक रही । 'मेरे मन कुछ और है, कर्ता के कुछ और'—सन् ६१ की मई मे रूस यात्रा पर घनश्यामदासजी बिरला के साथ एक प्रतिनिधि-मण्डल मे गया । २० जून को वापस आ गया । इस बीच अगले चुनाव ने जोर पकड लिया था । स्वतन्त्र पार्टी प्रभावी थी और जनसघ की शक्ति बढ रही थी । मैने प्रत्याशी बनने के लिए रूचि दिखाई नही । पार्लियामेन्ट और अपने क्षेत्र मे अधिक रूचि लेने लगा । अडगे आते थे—सरकारी व्यवस्था की वजह से । फाइले धीरे सरकती, खानापूरी, लालफीताशाही और कर्मचारियो की दीर्घसूत्रता के कारण । फिर भी मोटे तौर पर लोग खुश थे । मेरे प्रयास की प्रशसा करते, स्नेह रखते थे । फिर भी कुछ लोग बुराई करते, जो व्यक्तिगत आर्थिक सहायता की आशा से आते थे । यह मेरे लिए सभव न था, कितनो को कितनी बार कितना देता ? राजनीतिक प्रतिद्वन्दी भी अप्रचार से बाज न रहे । किन्तु सुनते-सुनते आदत सी बन गई है, मुझ पर असर न होता ।

ज्यो-ज्यो चुनाव नजदीक आता गया, मित्रो का दबाव मुझपर बढने लगा—भागीरथजी, सुखाड़ियाजी, कुभारामजी माथुर आदि श्रद्धेय जनो का भी । माता और पत्नी पक्ष मे नही थी । उन्होने मेरे स्वास्थ और अनियमितता की चिन्ता थी । सभी भाई अन्तत विरोधी नही थे । पिताजी व भाईजी का भी विरोधी रूख नही था ।

बार-बार एक बात कही जाए तो उसका असर होना स्वभाविक है । मेरा मन सन्यासी का नही था । नेतृवर्ग से, साहित्यकारो से सम्पर्क और आत्मीयता के प्रभाव| से दुर्बल मन झुकने लगा । सबसे पहले मुझे लगा कि मेरे क्षेत्र मे कुछ काम अधूरे रह गए, उन्हे पूरा करना जरूरी है । मेरी इच्छा थी कि सीकर-अचल मे कोई नहर बना दी जाय । इसी प्रकार सरदारशहर को सीधे रेल-मार्ग से जुडवा दिया जाय तो बडी सेवा होगी । मेरे प्रस्ताव को अनौपचारिक रूप से सुखडियाजी का समर्थन मिला था । इससे मुझमे आशा थी और उत्साह भी ।

आखिर मन के आगे झुक गया और ससदीय चुनाव मे प्रत्याशी बनने पर नए दृष्टिकोण

से विचार करने लगा। पूज्य घनश्यामदासजी प्रसन्न हुए और सुखाडियाजी भी। उन्होने न केवल शुभकामनाएँ दी, ब्रल्कि पूरा सहयोग देने का आश्वासन दिया। सबसे अधिक प्रसन्न थे दद्दा—श्री मैथिलीशरणजी, दिनकरजी और बाबू गगाशरण सिंह। जयप्रकाशजी ने भी प्रोत्साहित किया। उनकी धारणा थी कि मैंने अपने क्षेत्र के लिए जितना किया, उतना अन्य लोग साधारणत नही कर पाते। उन्होने मुझसे कहा कि चाहे किसी भी दल मे रहूँ, कैसी भी परिस्थिति आ जाय, यह न भूलूँ कि दल नही, देश बडा है। सार्वजनिक सेवा क्षेत्र मे प्रवेश करना काजल की कोठरी मे जाना है। कालिख लगेगी, किन्तु उसे रगडते नही रहा चाहिए। एक बात के लिए उन्होने मुझे सावधान किया कि कन्ट्रोवर्सी मे न पडूँ।

बहरहाल, टिकट मिल गया। सीकर ससदीय क्षेत्र से दुबारा प्रत्याशी बना। पिछली बार का अनुभव था। इस बार चुनाव की रणनीति बनाने मे अधिक कठिनाई नही हुई। सहयोगियो मे उत्साह था और विरोधियो मे ज्यादा सरगर्मी थी। पार्टी के कुछ लोग मेरे प्रति असन्तुष्ट थे, क्योकि उनके मनोनीत लोगो को टिकट नही दी गयी थी।

दौरे पर मै बराबर जाता ही था। चुनाव नजदीक आने पर कुछ ज्यादा ही दौरे करने लगा। जनसघ और स्वतन्त्र पार्टी मे समझौता नही हो पाया। यह मेरे लिए सुविधाजनक रहा। फिर भी सघर्ष तगडा था। समझौता होने पर मुसलमानो के वोट कुछ बँटते पर अब ये ज्यादा-से-ज्यादा काग्रेस को मिल सकेगे।

चुनाव की मिटिंगो मे जाता। कही स्वागत होता तो कही तीखी बाते सुनने को मिलती। सीकर मे एक बार लोगो ने शिकायत की कि जितनी आशा थी, मैंने नही की। मैने बताया कि केवल शहर का नही पूरे क्षेत्र का सवाल है। सबके लिए प्रयास करना है। प्रान्त और केन्द्र के मन्त्रालयो से और सरकारी अफसरो से जूझना पडता है। इन सबो मे टाइम लगता है। ज्यादा लोग तो मेरी बात मान जाते, किन्तु विरोधी इन बातो को तूल देकर सीधे-सादे लोगो को भडकाते। जिनकी रुपयो की माँग पूरी नही करता, वे बेतुकी बातो पर उतारू हो जाते।

एक बार रामगढ गया। लोगो ने काले झडे दिखाए। गोलमाल होने की खबर मुझे मिल चुकी थी। धमकी देकर मुझसे रुपए ऐठना चाहते थे। स्थानीय स्कूल को लेकर भ्रम फैलाया गया। किन्तु मैने शान्त भाव से स्थिति स्पष्ट की। लोगो को बात जँच गई। अपने प्रति उनकी गलत धारणा बहुत कुछ दूर कर सका। व्यक्तिगत आक्षेपो मे मन उत्तेजित हो जाता है, पर शान्त रहकर सब कुछ सुनना और सहना पडता है। सार्वजनिक कार्य चाहे सामाजिक हो अथवा राजनैतिक—व्यक्ति की आलोचना—आक्षेप पर मानसिक सतुलन नही खोना चाहिए। किन्तु कभी-कभी ऐसे मौके आ ही जाते थे, जब हमारे कार्यकर्त्ताओ को परेशान किया जाता, हाथापाई कर बैठते।

दूसरी बार के चुनाव मे खर्च अधिक लगते रहे। जातिवाद का अडगा भी बढा हुआ था। कुछ तो यो ही पैसे बनाने के ख्याल से नामाकन पत्र दाखिल कर देते है। चुनाव मे वोट काट ले जाते है। इन्हे बैठाने के लिए भी जोड-तोड लगानी पडती है। मेरे मित्रो को ऐसी स्थिति का भी सामना करना पडा। २८ फरवरी को माधोपुर की गिनती हुई। इस क्षेत्र मे मै आशकित था, किन्तु यहाँ काफी अच्छी जीत रही। मन प्रसन्न हो गया। सीकर के लिए काम करने का मौका फिर मिला। कुल ३७ हजार मतो से जीता। शब्दो मे अपनी भावना कह नही सकता, भावविभोर हो उठा। मित्रो और भाइयो का सहयोग, बडे-बडे नेताओ का सहयोग, पिताजी का आशीर्वाद, नन्दू की भाग दौड सभी का चमत्कार था। सफलता इन्ही की थी।

चुनाव मे कई आश्वासन दे चुका था। इन्हे कैसे पूरा करूँ, इसकी चिन्ता लग गई। स्कूलो-कालिजो, अस्पतालो की आर्थिक सहायता, नए स्कूल, सडकें बनवाना, जल की व्यवस्था और तरह-तरह के कमिटमेन्ट्स्। बडी लम्बी फेहरिस्त हो गई। अपने क्षेत्र के दौरे पर निकलते ही लोगो ने स्मरण दिलाना शुरू कर दिया। महीने भर भी साँस नही ले पाया कि

दौड-भाग शुरू हो गई। पार्लियामेन्ट मे काम वढ गया था। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दे, राष्ट्रीय पेचीदगियाँ। राजस्थान के लिए मै विशेष रूप से कृषि और उद्योग के विकास के लिए प्रयत्न करना चाहता था। मेरी धारणा थी और आज भी है कि केवल सरकार पर निर्भर करने से लक्ष्य की सिद्धि सम्भव नही। मोटे तौर पर सरकार जल, विजली, आवागमन, परिवहन, ऋण आदि की व्यवस्था कर सकती है, किन्तु उत्साह-उद्यम और श्रम तो जनता का ही दायित्व है। वडी योजनाओ के सहारे-भरोसे वैठे रहने पर अनिश्चित काल के लिए वाते टलती जाती है। कलकत्ता जव भी आता मै अपने साधन-सम्पन्न मित्रो मे चर्चा करता और उन्हे अनुप्रेरित भी करता कि अपने-अपने गाँवो के लिए कुछ न कुछ करते रहे। मुझे सन्तोष है कि मेरी वातो पर उन्होने ध्यान दिया और काम भी काफी हुआ।

उन दिनो राजस्थान के मुख्यमत्री थे, श्री मोहन लाल सुखाडिया। राजस्थान का सौभाग्य था कि ऐसा उत्साही और कर्मठ कार्यकर्त्ता मिला। राजस्थान जैसे उपेक्षित, अनुर्वर, उद्योग-धन्धे मे पिछडे विशाल प्रदेश को विकासोन्मुखी बनाने मे उनका अवदान चिरस्मणीय रहेगा। डॉ० विधानचन्द्र राय, प्रतापसिह कैरो को कृषि मे उन्नत पजाव और उद्योग मे उन्नत पश्चिम वगाल मिला था। अतएव उनके समक्ष उतनी जटिलताए न थी, जितनी सुखाडियाजी को सम्भलिनी पडी। राजनीतिक दलबन्दी की पेचीदगियो ने उन्हे वहुत धक्का पहुचाया। वे निष्ठावान और कर्मठ थे। उनकी कल्पनाए यदि पूरी हो जाती, तो सम्भवत हरियाणा से राजस्थान आगे निकल जाता। मै जव भी उनसे मिलता वे जोर देते कि योजना का प्रारूप लेकर मिलूँ और इससे होने वाले लाभ के विस्तृत विवरण और ऑकडे भी। मैने इसका ध्यान रखा। मुझे उनका स्नेह, सहयोग मिलता रहा। सीकर और राजस्थान मे मेरी सफलता के लिए जहाँ मै अपने मित्रो के सुझाव के लिए आभारी हू, वही सुखाडियाजी के सहयोग के लिए भी।

काग्रेस पार्लियामेन्टरी पार्टी मे ट्रेजरर होने के नाते भी काफी काम करना पडता था। ससद का काम तो था ही। यह काफी तनाव-पूर्ण लगता कई ऐसे मसले रहते, जिनके प्रति पार्टी के निर्णय मे मै सहमत न रहता किन्तु विवश था। मुझे सहमति देनी पडती। सबसे दिक्कत यह थी कि कैबिनेट मिनिस्टर तक मसले को कैबिनेट तक ले जाने मे हिचकते, उन्हे नेहरू जी मे भय लगता। पाकिस्तान से सटी राजस्थान की सीमाओ पर वसे मुसलमानो की वडी सख्या खतरे की बात थी। धीरे-धीरे जैसलमेर मे पाकिस्तानी मुसलमान घुसपैठिये बस रहे थे। इसी प्रकार असम के भी काग्रेसी कार्यकर्त्ता पूर्व पाकिस्तान के घुसपैठियो मे आशकित थे। किन्तु समस्याओ का जिक्र उठाना सभव नही रहा। शुरुआत करते ही सम्प्रदायवादी मनोवृति का आरोप सहना पडता था। वागडुग-कॉनफ्रेन्स और पचशील घोषणा के वाद चीन के रुख की जो खवरे आती वे सम्भावित आशकाओ की ओर स्पष्ट सकेत थी। किन्तु हम सिर्फ लाबियो मे चर्चा कर रह जाते। कभी-कदाच पार्टी की मीटिगो मे चर्चा होती, किन्तु हमारी वाते या तो हम ठीक से रख नही पाते, वडो के व्यक्तित्व के आगे हम झुक जाते। कुल मिलाकर निस्सकोच यह स्वीकार करूँगा कि मुझमे भी यही दोष था। राजनीतिक दलीय पोषण-तोषण का हम पर प्रभाव ज्यादा था। राष्ट्रीय भावना और राष्ट्र-हित के लिए अड जाने का साहस कम। इससे धीरे-धीरे काग्रेसी कार्यकर्त्ताओ का नैतिक चरित्र कुठित होता गया।

सरकारी प्रशासक अवसरवादी और सुविधावादी होते जा रहे थे। इसका कारण था कि ऑकडे और सूचनाएँ वे जैसी तैयार कर देते वही आधार मत्रियो का रहता। एक वार मैंने वडे परिश्रम से लाइफ इन्स्योरेन्स कॉरपोरेशन पर ससद मे कहा। अच्छा वोल सका, सदस्यो ने सराहना की, अखवारो ने भी। मैंने स्पष्ट किया कि एल० आई० सी० के फन्ड का नियोजन सही तरीके से नही हो रहा है। ऋण देने के वाद उसका उपयोग और उसकी वसूली पर ध्यान

देना चाहिए। ऐसा होता नही। सरकारी मशीनरी की शिथिलता की मैने आलोचना की। विभागीय प्रशासक मुझसे असन्तुष्ट हो गये।

चीन की गतिविधि देश के लिए खतरनाक हो चुकी थी। हम सभी जानते थे। अखबारो मे भी चर्चा थी। पार्लियामेट मे लद्दाख पर डिबेट था। एथोनी बहुत अच्छा बोले। लॉबी मे चर्चा रही। नेहरू जी के सामने कोई बोले, न बोले, लॉबी मे भडास निकालते ही थे। चाहे राज्य सभा के सदस्य हो अथवा लोक सभा के। लालबहादुर शास्त्री, फिरोज गाधी, मनुभाई, मुरारजी भाई, महावीर त्यागी आदि मुझसे स्नेह रखते थे। किन्तु लॉबी की 'मिनी पार्लियामेन्ट' मे हम भले ही बाते कर ले, ससद मे पडित जी के सामने सरगर्मी ठडी हो जाती।

एक बार मैने बात उठाई, चीन बडी लडाई की तैयारी मे था। हिमालय की बर्फानी ऊँची चोटियो के लिए अधिक साधन की व्यवस्था जरूरी थी। मुरारजी ने मिलिट्रीवालो के लिए अतिरिक्त भत्ते की मजूरी दे दी थी, परन्तु आर्मी ने आधुनिक शस्त्रास्त्रो के लिए पाच-छ अरब रुपयो की जरूरत बताई। उन्होने कहा इस विषय को रक्षामत्री कैबिनेट मे रखे। बात पडित जी तक पहुची। उन्होने कहा, इसकी जरूरत नही, चीन हमला करेगा नही।

वास्तविकता यह थी कि पडित जी सरल और उदार थे। वे दिल मे विश्वास करते थे। उनका मन साफ था। किन्तु राजनीति बडी मायाविनी होती है। इसमे तो विष्णु या कृष्ण का सा खिलाडी सफल होता है। नेहरू जी को उन्ही लोगो ने बरगलाया और भ्रम मे रखा, जिन पर उन्हे पूरा भरोसा था। हम पण्डित जी के व्यक्तित्व, उनके प्रति स्नेह और श्रद्धा मे इतने प्रभावित थे कि हमने भी दबाव देने मे सकोच किया। भूल हमारी भी कम नही।

उन दिनो अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति मे भी काफी गहमा-गहमी थी। चीन की तरफ से गहरी आशका थी ही। सितम्बर '६२ मे सेना ने सातवी बार रक्षा-मत्रालय को हथियार और सामान की कमी के बारे मे चेतावनी दी थी। हम लोगो ने रक्षामत्री कृष्ण मेनन से भी कई बार कहा। किन्तु उन्होने बडी बेरुखी दिखाई। पडितजी को भ्रम मे पूरी तरह डाल रखा। आखिर २० अक्टूबर को खबर आ गयी कि चीन ने नेफा (अरुणाचल) पर जोर से हमला कर दिया है। पडितजी ने गलती महसूस की, उनका भाषण बहुत ही निराशाजनक था। बाजार मे शेयरो के भाव तेजी से गिरे। तरह-तरह की अफवाहे फैलने लगी। विश्व मे एक तरफ अमेरिका और रूस क्यूबा को बलि का बकरा बनाकर जोर अजमाइश कर रहे थे, इधर चीन ने भारत पर प्रहार कर दिया। खास बात यह थी कि रूस और अमेरिका आपस मे नही लड रहे थे। दुनिया मे कमजोर रहना भीषण अपराध है। भारत की सिधाई और कमजोरी का चीन ने नाजायज फायदा उठाया। चीन से लडने को था ही क्या हमारे पास ? हमारे जवान डटे रहे, पर कटते रहे। हमे शर्म आती थी, हम ससद्-सदस्य थे राष्ट्र की जनता के प्रतिनिधि। देश की समृद्धि और सुरक्षा की जो जिम्मेदारी हमे सौपी गई उसका अजाम हमने कैसा दिया ? कायरता चाटुकारिता और भावना ने हमारी जबान पर ताला लगा दिया। आनेवाली पीढी हमारे नाम पर हँसेगी।

हमने वार फड के लिए धन-सग्रह का फैसला किया। रुपए इकट्ठा करने मे कठिनाई नही हुई। मेनन की बडी बदनामी हुई। इस स्थिति मे नेहरूजी भी उन्हे बचा न सके। मैंने इन्ही दिनो कई लेख अखबारो मे लिखे और मित्रो से सहयोग-सहायता के लिये पत्र लिखे। मैंने तय कर लिया था कि नेहरूजी या पार्टी को बुरा भले ही लगे, मै आलोचना और स्पष्टवादिता से हटूँगा नही। आखिर ससद्-सदस्यो और काग्रेसी कार्यकर्ताओ के दबाव के आगे नेहरूजी को झुकना पडा। ७ नवम्बर को पार्टी मीटिंग मे रक्षामत्री श्री कृष्ण मेनन को हटा दिया गया।

चीन नेफा मे तेजी से आगे बढ आया था। भगदड मची थी। मैने निर्णय लिया कि नेफा जाकर जायजा लूँ और जो बन पडे करूँ। मुझे असम के मित्रो के सहयोग का भरोसा था। २१ नवम्बर को अखबारो मे आया कि चीन ने 'सीज फायर' कर दिया। मुझे ऐसा लगा कि

भगवान् की कृपा हुई। मै प्रधानमत्री से मिला उनसे काफी बाते हुई। उन्होंने ध्यान से सुना। मैंने स्पष्ट कह दिया कि चीन जितनी जमीन हथिया चुका है, उसमे हटेगा नही। नेफा से फिलहाल भले ही अपनी सेनाएँ हटा ले, किन्तु क्लेम करेगा, सीमा-विवाद को जिलाये रखेगा। सिक्किम और भूटान को भी हमे चीनी नजर मे मुक्त नही समझना लाहिए। नेहरूजी के चेहरे पर चिन्ता की उभरी रेखाओ मे मुझे बडी करुणा आयी। मेनन ने मथरा वनकर इतिहास के पन्ने पर नेहरूजी की छवि को मलिन कर दिया। क्या मिला, उसे अपने दभ का ?

असम के नौगाँव पहुँचा। चीन की सेनाएँ हट रही थी, किन्तु लोगो मे आशका बनी हुई थी। फिर भी कामकाज ठीक चल रहा था। जोरहाट होते हुए डिब्रूगढ पहुँचा। लोगो मे साहस था। घायल सैनिको की सेवा तन-मन से करने मे लगे थे। सैनिको की एक ही शिकायत रही। हथियार बिना आधुनिक युद्ध कैसे हो ? अस्त्र-शस्त्र होते तो हमे नीचा न देखना पडता। देश की जनता उन्हे क्या समझती होगी। मै सान्त्वना देता। बहुतो की उँगलियाँ ठड से गल गयी थी। नाखून उतर गये थे। मगर चेहरे पर ओज था कि उन्होने कर्तव्य-पालन मे ढिलाई नही की। मैंने भी महसूस किया कि अनुभवहीन कमजोर कमाडर और साधनहीन सैनिक ही हमारी दुर्दशा का प्रमुख कारण बने।

वापसी मे गौहाटी रुका था। कारोबार ठीक चल रहा था। लोगो मे राष्ट्रीय भावना जोरो पर थी। किन्तु सभी ने डिफेन्स को मजबूत वनाने के लिए जोर दिया। पूर्वी पाकिस्तान (बाग्लादेश) मे असम मे आने वालो के बारे मे सरकारी उदासीनता की शिकायत की। इसी प्रकार वहाँ से हिन्दू शरणार्थियो की आनेवाली बाढ पर चर्चा की। उनका कहना ठीक था कि मुसलमान घुसपैठिये आगे चलकर राष्ट्रीय जटिलताएँ खडी करेगे। शरणार्थियो की वजह से आर्थिक समस्याएँ बढेगी, अतएव इनका निदान केन्द्रीय सरकार को जल्द-से-जल्द निकालना चाहिए। मुझे दोनो ही बाते जँची। मैने मुख्यमत्री श्री चालिहा से अनुरोध किया कि चीन के हमले के परिप्रेक्ष्य मे असम राज्य मे सडको और रेल-पथ वढाने का प्रयास करना चाहिए। मैंने यह भी कहा कि शरणार्थियो और घुसपैठियो की समस्या गभीर होती जा रही है। वे गृह-मत्रालय का ध्यान आकर्षित करे। हम ससद्-सदस्य भी रिपोर्ट पेश करेगे। इस दिशा मे असम राज्य को जैसी पहल और पैरवी करनी थी, वैसी हो नही पाई। आज भी समस्या वैसी ही है, बल्कि अब तो राज्य को जैसी पहल और पैरवी करनी थी, वैसी हो नही पाई। आज भी समस्या वैसी ही है, बल्कि अब तो मुस्लिम घुसपैठिये स्थानीय राजनीति को प्रभावित कर अडचने लगाने लगे है।

२७ मई सन् १९६४ को पडितजी का देहान्त हो गया। देश को बहुत सदमा पहुँचा। मुझे ऐसा लगा कि अब देश का क्या होगा। विश्व की राजनीति का इतना प्रभावी व्यक्ति, देश के जन-जन का प्यारा, ऐसे व्यक्ति के चले जाने पर क्या होगा ? कौन सँभालेगा, कौन कर्णधार बनेगा, प्रश्नचिह्न बना। पडितजी का व्यक्तित्व कुछ ऐसा था कि उसके आगे सभी फीके थे। इससे पूर्व नेहरूजी के अस्वस्थ हो जाने पर कई बार अखबारो मे चर्चा आती रही थी। ससद्-सदस्य ओर काग्रेसी कार्यकर्ताओ मे भी बाते होती कि अगला प्रधानमत्री कौन होगा। नेहरूजी के बाद मुरारजी भाई जरूर थे, योग्यतम थे, किन्तु अपनी मान्यता के समक्ष वे समझौता नही करना चाहते थे। हम सभी हतप्रभ-से रह गए। अस्थायी तौर पर श्री गुलजारीलाल नन्दा का नाम सर्वसम्मति से प्रधानमत्री-पद के लिए लिया जाने लगा। इसी बीच स्थायी प्रधानमत्री के चुनाव के लिए कोशिशे होने लगी। अन्त मे लालबहादुर शास्त्री प्रधानमत्री बनाए गए। वे ही ऐसे व्यक्ति थे, जिनका विरोध किसी से न था।

अपने जन्म से पाकिस्तान सदा विवाद करता रहा, आगे भी करेगा किसी न किसी बहाने। कश्मीर मे उलझा, हमने हराया। मैदान मे जीत को कागज पर हार मे उतार दिया। पाकिस्तान फायदे मे रहा। कश्मीर का काँटा सदा गडता रहेगा। मेरी धारणा है कि यह

विवाद चीन, अमेरिका और ब्रिटेन शायद ही सुलझने दे। हमारी नरम नीति भी कम जिम्मेदार नही। कच्छ के मामले को लेकर विवाद खडा हुआ। साफ बहाना था। मगर पाकिस्तान को तो अपनी साख बनानी थी ? भारत पर हमला बोल दिया। साख तो क्या बननी थी ? इतना जरूर हुआ कि प्रेसीडेन्ट अय्यूब खाँ को पाकिस्तान की गिरती अर्थ-व्यवस्था और पूर्वी पाकिस्तान मे बढते असन्तोष पर से ध्यान बँटाने का अवसर कुछ समय के लिए मिला। हमारे प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री ने दृढता का परिचय दिया। जनता का मनोबल बहुत ही ऊँचा था। हमारे सैनिको ने रण-कौशल भी अच्छा दिखाया। सिन्ध मे काफी दूर तक घुस गए। कश्मीर के मोर्चे पर बडा घमासान मुकाबला होता रहा। पाकिस्तान का जोर कम पडता जा रहा था। रूस ने बीच-बचाव करा दिया। बाद मे ताशकन्द मे समझौता हो गया। इस बार भी मैदान की हमारी जीत और सफलताएँ समझौते के कागज पर हम हार गए। इसमे सन्देह नही कि इससे सेना का उत्साह गिरता है। जनता मे भी खेद का वातावरण बन जाता है। मैंने पाकिस्तान से हर्जाने की वसूली पर पार्टी के सहयोगियो से चर्चा की और जीते हुए कुछ स्ट्रेटेजिक इलाको को न छोडने की भी बात उठाई, किन्तु वह आई-गई हो गयी। शास्त्रीजी को भारतीय जनता ने पूरा समर्थन और सहयोग दिया था। उनका नारा 'जय जवान-जय किसान' बहुत ही सफल और प्रभावी रहा। 'गोल्ड बॉन्ड' को भी जनसाधारण ने सहर्ष अपना लिया—यह एक चमत्कार है। आगे चलकर ये बॉन्ड व्यापारिक रूप मे सम्पन्न व्यक्तियो के लिए ज्यादा फायदेमन्द होगे। साधारण जन के हाथ से सोना निकल जायगा। कोई आश्चर्य नही कि सोने-चाँदी का भाव आसमान छूने लगे। किन्तु व्यय के लिए धनराशि चाहिए और 'गोल्ड बॉन्ड' तात्कालिक उपाय के लिए समर्थ रहा। एक बात ध्यान देने की है कि पाकिस्तान से झडपे और लडाइयाँ भविष्य मे होगी, वह बाज नही आएगा। चीन भी समस्या है। ऐसी स्थिति मे अब आगे जनता क्या दे पाएगी ? केवल रक्तदान से अर्थाभाव की पूर्ति कहाँ तक होगी ?

काग्रेस मे अन्दरूनी दलबन्दी शुरू से ही रही है। नेहरूजी और सरदार पटेल के समर्थको के पृथक-पृथक् दल रहे हैं। किन्तु राष्ट्रीय मुद्दो पर सभी एक रहे। पटेलजी की मृत्यु के बाद मुरारजी भाई को पार्टी के सदस्यो का एक भाग समर्थन देने लगा। नेहरू-समर्थक इन्दिराजी को प्रधानमंत्री बनाने के पक्ष मे थे। जो भी हो, वरिष्ठ नेताओ के प्रभाव से शास्त्रीजी प्रधानमंत्री बनाए गए। किन्तु आपसी मतभेद सामने आ गया। इस खीचातानी की स्थिति ने देश को काफी नुकसान पहुँचाया है। मुझे बडी असुविधा रही। मेरे क्षेत्र की बहुत-सी योजनाएँ मै पूरी नही करा पाया। सीकर जाने मे मुझे सकोच होता। एक प्रकार का भय-सा भी रहता कि लोग समझेगे कि कुर्सी पाकर नाम-यश कमाने मे लगा हूँ, अपने क्षेत्र की जनता से किए गए वादे की उपेक्षा कर रहा हूँ।

समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद ही ताशकन्द मे शास्त्रीजी का देहान्त हो गया था। गुलजारीलालजी नन्दा अन्तरिम प्रधानमंत्री बने। शुरू हो गया पार्टी मे प्रधानमंत्री-पद का विवाद। इन्दिराजी और मुरारजी भाई दो ध्रुव थे। कामराजजी के प्रभाव और प्रयास से इन्दिराजी को प्रधानमंत्री बनाया गया, काग्रेस की नीव मे दरार और भी चौडी हो गई।

ग्लानि और मानसिक तनाव से मै परेशान था। सन् १९६७ के ससदीय चुनाव मे खडे न होने का निश्चय मन मे जोर करने लगा। मै अपने मन की बात मित्रो से कहता था, किन्तु वे हँसकर टाल देते। वे तर्क देते कि मै बाधाओ से घबराता हूँ, हिम्मत हारता हूँ। वे मेरे काम और उसके तरीके स सन्तुष्ट थे। मेरे क्षेत्र के लोगो मे भी मेरे प्रति स्नेह था, विरोध नही। जब भी जाता उनसे मिलता, स्पष्ट बाते होती। उन्हे मुझ पर विश्वास था। फिर भी मैने तय-सा कर रखा था कि चुनाव मे खडा नही होना है। मैने अनुभव किया कि भागदौड और

मानसिक तनाव मे मेरा स्वास्थ्य कमजोर होता जा रहा है।

कुछ सयोग ऐसा बना कि उन दिनो पार्लियामेट मे मेरे प्रश्नो की सराहना की गयी। अखबारो मे 'गोल्ड बॉन्ड', अवमूल्यन, बजट विदेश-यात्रा के मेरे सस्मरण और अन्यान्य लेख भी लोक प्रिय रहे। मित्र प्रशसा करते, पाठको के पत्र आते। मेरा उत्साह बढता। मै सारी परेशानियाँ भूल जाता। अवसाद मिट जाता चुनाव मे खडा न होने का मेरा निश्चय डोल उठता। ज्यो-ज्यो ससदीय टिकटो का समय नजदीक आता गया, वरिष्ठ नेता और मित्र चुनाव मे खडे होने के लिए दबाव देने लगे। मै जानता था कि इस बार जनता की भावना बदल चुकी है। काग्रेस की आपसी फूट मे पार्टी भीतर मे टूट गई है। चुनाव पर इसका बुरा असर पड सकता है। किन्तु न जाने किस अनजान शक्ति ने स्वीकार करने के लिए मुझे प्रेरणा दी। सीकर से तीसरी बार लोकसभा के सदस्य के लिए काग्रेस का मनोनीत प्रार्थी बना। सुखाडियाजी का विश्वास और स्नेह बहुत बडा कारण था। मै विवश था।

पिछले दो चुनावो का अनुभव था। किन्तु इस बार परिस्थिति बदली सी थी। विरोधी पार्टियो ने सरकार की कमजोर नीतियो और असफलताओ को बडा बनाकर बहुत पहले से ही प्रचार प्रारम्भ कर दिया था। जनसघ जोर पकड चुका था। काग्रेस की अन्दरूनी फूट, मुस्लिम-तोषण की अनुरक्ति, कश्मीर, नेफा और असम राज्यो मे काग्रेस-दल और सरकार की ढुलमुल नीति पर जनसघ ने जनता का ध्यान विशेष रूप से अखिल भारतीय स्तर पर आकर्षित किया। राजस्थान के लिए कोई उनका कोई तगडा तर्क नही था, फिर भी सीमा पर बसे और बसाए मुस्लिम आबादी का प्रश्न उठाया गया। राजस्थान मे आर्थिक और औद्योगिक विकास की उपेक्षा की गई है, यह भी उन लोगो ने मुद्दा बनाया। मेरे लिए एक ही बात पर जोर दिया कि मै पैसेवाला हूँ, पैसेवालो का हूँ।

चुनावो मे तरह-तरह की आँधियाँ उठती है। मुझे अनुभव था। मैने मित्रो के साथ बैठ कर योजना बना ली थी। कार्यकर्ता जुट पडे। हम सभी दौरे पर निकल पडे। मैने अपने पूरे क्षेत्र का दौरा एक बार पूरा कर लिया। अजातशत्रु तो मै था नही, फिर भी मेरे प्रति उग्र विरोध मुझे नही मिला। किन्तु विरोधियो के प्रचार की खूब जोर पकड रहा था। कॉंग्रेसी कार्यकर्ताओ मे कुछ लोग ऊपर से तो ठीक थे, किन्तु वास्तव मे निष्क्रिय। यही नही, विरोध मे प्रचार भी कर रहे थे। मुस्लिमो का वोट महत्व रखता था। विरोध मे यद्यपि जनसघ के रहने के कारण हमे मुस्लिम वोटो की आशा थी, फिर भी निर्दलीय प्रत्याशियो के कारण इनके वोट हिन्दू वोटो की तरह बँट सकने की सम्भावना थी। जो भी हो मै दौरे करता रहा, स्थिति की जानकारी और जायजा लेकर काम करने के ढग की तालमेल मित्रो की सलाह से बैठाता। लोसल, दाता, सीकर, लक्ष्मणगढ खण्डो मे हमे अपनी स्थिति आशकाजनक महसूस हुई। लोसल मे बदमाशी की गई। मुझ पर धूल फेकी गई। मन मे दुख हुआ। यहाँ फूल फेके गए थे, गजरे पहनाए गए, अब धूल! मैने इनका कुछ बिगाडा नही, जितना बन पडा किया। आज इनकी आँखे बदल गई! फिर भी विश्वास के साथ जुटा रहा। गिनती के पहले तक स्थिति ऐसी थी कि हार की सम्भावना नही थी। भले ही अधिक वोटो से न जीत पाऊँ।

गिनती शुरू हुई। सीकर के मुसलमानो के अच्छे वोट मिले। मुझे ऐसी आशा नही थी। सुजानगढ मे मुझे बडी उम्मीद थी कि अच्छे वोटो से जीतूँगा, वही मै ६००० वोटो से हारा। इसी तरह भरोसे की जगहो पर मेरे अनुमान गलत साबित हुए। कुल मिलाकर १५,००० मतो से पराजित हो गया। हार का दुःख होना स्वाभाविक होता है, मुझे भी हुआ। किन्तु एक पछतावा था कि चुनाव मे खडा न होने का निर्णय करने के बावजूद क्यो खडा हुआ? मित्रो को, स्वजनो को सबको परेशान होना पडा, कष्ट हुआ—मेरे कारण। जीवन मे किशोरावस्था से सघर्ष करता हुआ भगवान की कृपा से सम्पन्न बना। सामाजिक सेवा ने नाम-यश दिया। सघर्षो से मुक्त हो सकता था। क्या जरूरत थी मुझे राजनीति मे पडने की? न चैन, न आराम।

चुनाव ने यह साबित कर दिया कि कांग्रेस की छवि बिगड़ चुकी है। कामराज, अतुल्यघोष, पाटिल, त्यागीजी, मनुभाई आदि बड़े-बड़े दिग्गज हार गए। सीकर में करने के लिए अब क्या रहा ? वहाँ का काम समेटकर दिल्ली आ गया, ताकि बदले वातावरण में मन कुछ हलका हो जाए।

राजस्थान से दिल्ली आ गया। कोई विशेष उद्देश्य था नहीं। मन हल्का करना था, मित्रों, हितैषियों से मिलना था। सोचा, कलकत्ता वापस चला जाऊँगा।

दिल्ली आ गया। मन में अवसाद, तन में थकान। कहीं जाने की इच्छा नहीं हुई, किसी से मिलने का मन नहीं हुआ। बिस्तर पर पड़ा रहा। सोचता रहा कि अब अपने को किससे जुड़ा समझूँ ? कटी पतंग रहा, साथ लगी लम्बी डोर किस काम की ? कलकत्ता से अलग रहा, कामकाज से सम्पर्क छूटा, राजनीति से सम्बन्ध टूटा। इष्ट मित्रों से, अपनों से दूर हो गया। वर्षों पहले ऐसी परिस्थिति बनी थी। असम से निराश होकर गाँव वापस आया था आगे क्या करूँ यह तय नहीं कर पा रहा था। आज इतने वर्षों बाद वैसा ही प्रश्न-चिन्ह सामने खड़ा है। पत्नी साहस दिलाती है, किन्तु झेंप मिटती नहीं, कुण्ठा हटती नहीं थी। जैसे तैसे उठ कर मित्रों से मिलने निकला। दिशाहीन, उदास, किंकर्तव्यविमूढ़ थे। एक ही बात कहते—आपसीफूट ने ही कांग्रेस को डुबाया। भविष्य अन्धकारमय है, पार्टी का। मुझे लगा, यहाँ का निराशाजनक वातावरण मुझ पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगा। कलकत्ता चला आया।

कलकत्ता में मन कुछ बदला और हल्का-सा लगा। कसक कुछ कम हुई। मित्रों से चुनाव के बारे में बात होती तो मैं कतरा जाता या टाल देता। राजनीति का जो रूप दिल्ली में पिछले वर्षों में देखा उससे ऐसा लगा कि हममें राष्ट्रीय भावना नहीं रह गई है। जो कुछ है वह व्यक्तिगत एवं दलगत गुटबन्दी। गांधीजी के समय राजनीति में देश-हित की भावना थी। दलगत मतैक्य न होने पर भी व्यक्तिगत विचार पर विवाद नहीं होता था। किन्तु इन वर्षों में हालत काफी बदल गई।

मुझे ऐसा लगता है कि इसका कारण यह रहा है कि गांधी जी का व्यक्तित्व उनके निर्मल चरित्र के कारण देश पर लम्बे अरसे तक छाया रहा, इसके बाद नेहरू जी प्रभावी रहे। हमारी संस्कृति में बड़ों के प्रति आदर, सम्मान, श्रद्धा, भक्ति की भावना चिरकाल से रही है। इसी ने विकृत रूप में राजनीति के क्षेत्र में व्यक्ति-पूजा को महत्व दिया। उसी की आड़ में स्वार्थसिद्धि को पनपने का मौका मिला। व्यक्ति को लाभ मिला, समष्टि, समाज, देश अथवा राष्ट्र-हित की बातें दबती चली गयी। आम जनता पर गांधी-नेहरू का इतना प्रभाव था कि किसी ने आवाज तक न उठाई।

आज मैं इसे अनुभव करता हूँ कि इस अवस्था में देश को लाने में हम सभी जिम्मेदार हैं। हमने राष्ट्र का अहित देखते हुए भी नहीं देखा। यह एक प्रकार से राष्ट्र-द्रोह कहा जाएगा। आने वाली पीढ़ियाँ हमें माफ नहीं करेंगी।

काम-काज की हालत देखी। दुख हुआ। दोष मेरा था। मैंने बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया था। इतना तो कर ही सकता था कि बीच-बीच में खबर लेता, अपनी राय देता। मगर राजनीति के नशा—भँवरजाल ने वह मौका दिया नहीं। शान्त चित्त से बैठकर जब समाज की अवस्था का विश्लेषण करता तो मन में क्लेश होता। भौतिक उन्नति भले ही हुई, किन्तु नैतिक पतन ही हुआ। जब भी बीच-बीच में कलकत्ता आता रहा, सार्वजनिक संस्थाओं में यथासाध्य सहयोग पूर्ववत् ही करता, किन्तु बदलते संस्कार, गिरते आचरण की हालत देखकर भी कुछ करता नहीं। यही सोचता कि स्वाधीनता के बाद का परिवर्तन-काल है, स्वतः ही आँधी बैठ जायेगी। मगर वह तो बवंडर होती गयी और अब तो उसने छायादार वृक्ष वन-उपवन उखाड़ दिए। स्वस्थ मान्यताएँ सूखी झाड़ियों-सी खड़ी हमें देखकर कहती हैं, "क्या इसलिए दिल्ली गए, क्या राष्ट्र की सेवा, समाजवाद का यही तात्पर्य है ?"

मन स्थिर नहीं था, कभी रहा भी नहीं। बहुत बार अपनी इस कमी को दूर करने की चेष्टा की। ध्यान, आसन, प्राणायाम किए, पर असफल ही रहा। शायद पूर्वजन्म के संस्कार हैं। कलकत्ता में रहते हुए ज्ञान-भारती के स्कूलों के लिए सुयोग्य अध्यापकों की नियुक्ति की चेष्टाएँ काफी अंशों में हो सकीं। सार्वजनिक संस्थाओं में जाता रहा। मित्रों से मिलता रहा। मारवाड़ी सम्मेलन और रिलीफ सोसाइटी में जाता रहा। किन्तु किसी खास काम में अपने को जोड़ न सका। व्यापार-व्यवसाय में भी मन को लगा न सका।

शायद जग जाता, किन्तु दिल्ली, राजस्थान में मित्रों के पत्र आते रहते थे। राजनीति की तरह-तरह की बातें देश की विभिन्न समस्याओं की चर्चा—इन सबों में ध्यान बँट जाना स्वाभाविक था। कांग्रेस पार्टी आपसी खींचातानी में कमजोर होती जा रही थी। दूसरी कोई पार्टी इस हालत में थी नहीं कि देश की बागडोर सँभाल सके। तपस्वी और निस्वार्थ सेवा भावियों ने राजनीति से संन्यास लेकर लोक-कल्याण आदि सामाजिक कार्यों में स्वयं को लगा रखा था। जयप्रकाश बाबू विनोबा की ओर झुके थे। लोहिया जी शासक और शासन की आलोचना में लगे थे। उनके तर्कों में दम था, किन्तु उनकी पार्टी और संगठन बेदम।
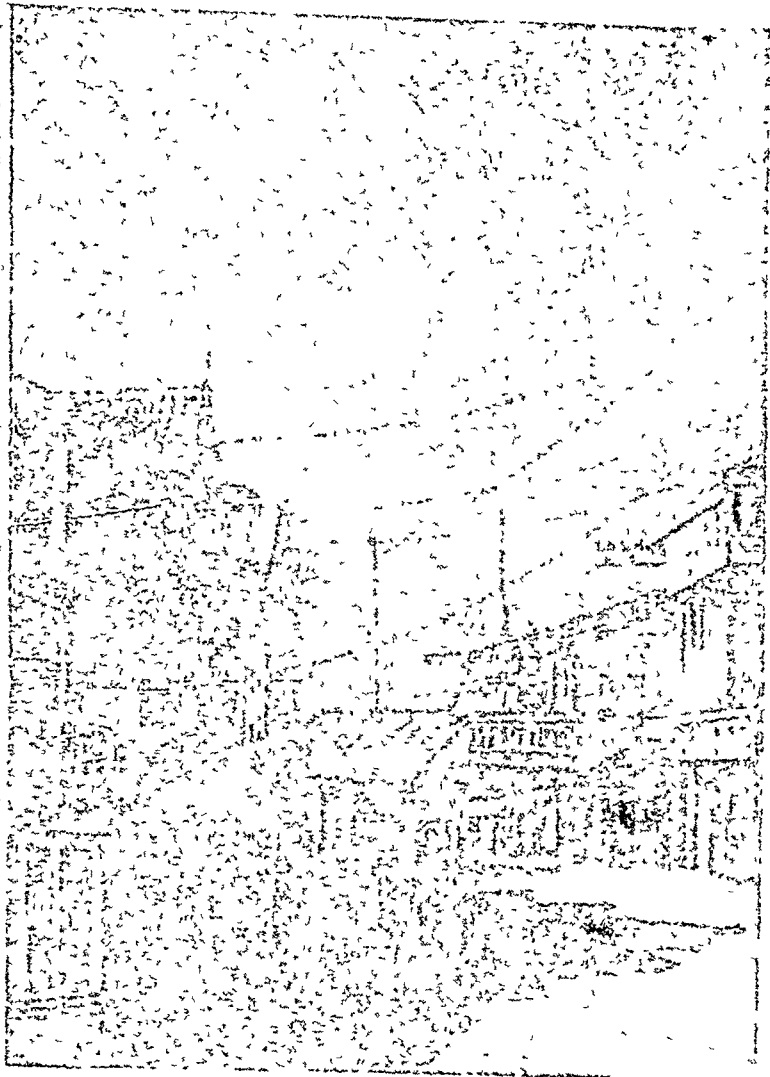
बी. आई. सी. और कानपुर की मेयरशिप

जन्म का साथी रहा है पैरो का चक्कर, एक जगह बैठने देता नही। सार्वजनिक कार्यो मे दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, राजस्थान का चक्कर लगाता रहा। दिल्ली मे मुझे पार्टी के लोग किसी न किसी सूत्र मे बाँधे रखना चाहते थे। मेरे लिए ब्रिटिश इण्डिया कॉरपोरेशन की मैनेजिग डायरेक्टरशिप सँभालने के लिए कहा गया। उत्तर भारत का यह बहुत बडा उद्योग-प्रतिष्ठान है। घाटे मे चल रहा था। समस्याएँ जटिल थी। मैने टाल दिया। दुबारा जब दिल्ली गया तो फिर मेरे सामने प्रपोजल आया। मैने सोचा कि स्वीकार कर लिया जाय। देश की सेवा ही होगी। चीनी, कपडा, चमडा आदि की बहुत सारी मिले और फैक्टरियो मे सुधार लाकर यदि मुनाफा दे सकता तो सरकार की बहुत बडी रकम व्यर्थ जाने मे रोक सकूँगा। इसके अलावा मेरा समय भी कट जायगा। इधर-उधर भटकने मे छुटकारा मिलेगा। इतने पर भी मैने दायित्व संभालने की स्वीकृति नही दी। मेरा मन बार-बार यही कहता था कि फाइनास का बहुत बडा प्राब्लेम है। सरकारी अफसर-तन्त्र और राजनीतिक खीचातानी आडे आ सकती है, जैसा कि सरकार-सचालित अधिकाश प्रतिष्ठानो, निगमो आदि मे हुआ करता है।

साधु कम्बल फेक दे, पर कम्बल साधु को छोडता नही। दबाव के कारण आखिर मुझे बी० आई० सी० की जिम्मेदारी स्वीकार करनी पडी। उन दिनो बम्बई की हमारी मिल की हालत अच्छी नही थी। उसे सुधारने की ओर ध्यान दे रहा था, किन्तु बीच मे ही छोडकर कानपुर आ गया। भाइयो को मेरा यह कार्य-व्यवहार जँचा नही। मै नही जानता कौन सी शक्ति मुझे कानपुर खीच लायी। जीवन मे प्राय ऐसा ही हुआ—अच्छाई और बुराई दोनो मे।

जीवन के लिए नया अध्याय बना। कुछ ही दिन हुए कि जनवरी-फरवरी मे अन्दाज होने लगा कि बहुत पेचीदा मामला है। बी० आई० सी० का अधिग्रहण पूरी तौर पर सरकारी न होने के कारण निर्णय-निश्चय मे बाधाएँ आती है। इसका भाग्य ही खराब है। फिर भी हिम्मत बाँधे रहा। चम्पारण, सरहौरा और बिहार मे स्थित बी० आई० सी० की अन्य चीनी मिलो का दौरा कर अवस्था और व्यवस्था की जानकारी ली। बी० आई० सी० प्रतिष्ठान अग्रेजो के जमाने मे बहुत ही लाभोत्पादक था। भारतीय नियत्रण मे आने के बाद इसे दूहा ही गया। नयी मशीने, नये तरीके समय की माँग के अनुसार नही लगाए गए। पचासो वर्ष पुरानी मशीनो से उत्पादन की आशा करनी ज्यादती थी। मैने निर्णय लिए, इन्हे बदलवाना होगा। अग्रेजो ने अपनी सुख-सुविधा के लिए बडी रईसाना व्यवस्था बना रखी थी। खर्च भी अग्रेज अफसरो और बडे अफसरो पर ज्यादा लगता था। फिर भी उनके जमाने मे घाटा नही रहता था, क्योकि व्यवस्था मे अनुशासन था, मशीनरी की देख-भाल थी। उनके जाने के बाद बीस वर्षो मे मूक-मशीने कराहकर तकलीफे बताती रही, परकिसीका ध्यान गया

नही। लाखो रुपयो का घाटा लगता जा रहा था। सबसे पहले मैने इसके चमडे के कारखाने को सलटाया। इसके लिए पूँजी थी नही, नई मशीनो के विना उत्पादन-क्षमता बढाई जा नही सकती थी। येन-केन प्रकारेण सरकार के जिम्मे इसे लगा दिया। होम करतें हाथ जला। तरह-तरह के दोषारोपण मुझ पर आए। मुझे सन्तोष था कि बी० आई० सी० का एक खर्चीला, व्यर्थ का बोझ उतार सका। आज भी यह बोझ,हर साल सरकार भारी रकम खर्च कर ढोती जा रही है। अफसर और अफसरी की खूबी है कि कोई सुधार या निदान नही निकाल पाए। किसे फिक्र है ? सरकारी कम्पनियो के घाटे की रकम जनता से टैक्स के रूप मे वसूली जाती है। कम्पनी चलनी चाहिए। एलगिन, कानपुर टेक्सटाइल्स मे मैने कुछ सख्ती वरती। अनिमितताओ की रोकथाम की, कुछ बड़े अफसरो को हटाना पडा, अदला-बदली करनी पडी। खर्चे मे कमी लाने के कोशिश की। एक ओर जहाँ मिलो के स्वार्थी अफसर और उन्हे छत्रछाया देने वाले राजनीतिक नेता और भाई-भतीजावादी सरकारी अधिकारी मुझमे भीतर ही भीतर अप्रसन्न हुए, दूसरी ओर स्थानीय लोगो मे और मजदूरो मे मेरी लोकप्रियता वढी।

साहित्यकार और साहित्य के प्रति रुचि के कारण नगर के बुद्धिजीवी वर्ग और पत्रकारों का स्नेह स्वत मुझे मिला। शाम का समय अच्छा बीत जाता था। कुछ राहत महसूस करता था। मगर सर्वथा चिन्ता-मुक्त न हो सका।

मैने प्रारम्भ से ही महसूस किया कि पुरानी मशीने हटाये बिना उत्पादन बढने का नही। हमे सूती कपडे के उत्पादन के साथ-साथ कृत्रिम फाइवर मे भी जाना पडेगा। कोशिशे की, कुछ मशीने नये ढग की ला सका। मगर यह ऊँट के मुँह मे जीरा था। एक ओर फाईबर का इम्पोर्ट लाइसेन्स वन्द हो गया तो दूसरी ओर बाजार मे सूती कपडे की माँग घटती जा रही थी। मुझे दिल्ली-कानपुर के बीच सरकार से पूँजी लगवाने के लिए लगातार भाग-दौड करनी पडती थी। निजी मिल होती तो यह दिक्कत न रहती। सचालन मुझे करना था, जब कि साधन, धन और निर्णय औरो के हाथ—यह सबसे बड़ी विडम्बना थी।

एक शाम मित्रो ने कानपुर नगरपालिका की मेयरशिप स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा। मैने हँसकर टाल दिया। मै दूध का जला था, छाछ तक पीने मे डर लगता था। बात आई-गई हो गयी। इस बीच कई बार दिल्ली, लखनऊ और कानपुर के चक्कर बी० आई० सी० के काम से लगते रहे। एक दिन शाम की गपशप मे मेरे एक मित्र ने कहा कि आपको मेयरशिप के लिए खडा नही होना चाहिए। मै सकते मे आ गया। मैने उन्हे बताया कि मैने अपनी स्वीकृति नही दी और न मेरी इच्छा है इसके लिए। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि मेरे कुछ मित्रो ने मेरे लिए कोशिश कर बात को काफी आगे बडा दिया है और उन्हे अच्छे समर्थक भी मिल रहे है।

भाग्य मेरे साथ मजाक कर रहा था। एलगिन, कानपुर टेक्सटाइल्स्, लाल इमली, धारीवाल और ब्रश वेयर की परेशानियो से जूझ रहा था कि लखनऊ से श्रद्धेय चन्द्रभानुजी गुप्त का बुलावा आया। इससे पूर्व वे कानपुर की विक्टोरिया मिल को सँभालने का प्रस्ताव कई बार रख चुके थे। मैने ना तो नही किया, किन्तु टालता रहा। इस बार मैने उन्हे स्पष्टत अपनी अस्वीकृति वता दी। मैने यह भी कह दिया कि उसकी हालत बहुत ही गई-गुजरी है। टेक्सटाइल मिलो मे ऑटोमेशन लाये विना मुनाफा नही हो सकता। एक ओर अफसरतत्र, यूनियनतत्व बाधक है तो दूसरी ओर यूनियनो का आतक भी। सरकार जब तक इनका निदान नही करती है, तब तक कुछ हासिल होने का नही, सिवा बदनामी के। वे चुप रहे, किन्तु उन्होने कानपुर की मेयरशिप स्वीकार करने के लिए मुझे सकेत दिया।

मै पशोपेश मे पडा कानपुर लौट आया। मिलो का काम देखता रहा। मन मे बार-बार गुप्तजी की मेयरशिपवाली बात उठ रही थी। घर आने पर देखा, जटाधर जी वाजपेयी प्रतीक्षा कर रहे थे। मेयरशिप की चर्चा छेड दी। मुझे ऐसा लगा कि जैसे मेरे चारो ओर का

घेरा सिमटता आ रहा है। कानपुर मे रहना है तो यह भी सहना है। फिर भी मैंने सोचने के लिए समय माँग लिया।

दूसरे दिन बहुत सवेरे वाजपेयी, अग्निहोत्रीजी, कई पत्रकार, साहित्यकार, प्रोफेसर आ गये। मुझे लगा, फन्दा कस रहा है, विधना खेल रही है, हाँ कहकर छुटकारा पा जाऊँगा। इसके लिए दौडधूप खुद करूँगा नही। हार जाऊंगा। मुस्कराकर स्वीकृति दे दी। शान्ति मिली।

दो-चार दिनो बाद मिलने-जुलने का दौरा फिर शुरू हो गया। मिलनेवालो की सख्या बढने लगी। धीरे-धीरे गोष्ठियो मे बुलावे आने लगे। स्पष्ट था, इसी सूत्र मे अधिक-से अधिक लोगो से सम्पर्क करना या कराना। मेरे सकोची स्वभाव के कारण मेयरशिप की दौड मे साथियो और मित्रो ने मुझे खडा कर ही दिया। मै सफल हुआ।

काम बढ गया। सुबह चार बजे से रात ग्यारह बजने मामूली बात हो गयी। बी० आई० सी०, कानपुर नगर-निगम, साहित्यिक-सामाजिक कार्यक्रम, दिल्ली-कलकत्ता-बम्बई के दौरे—सभी के चक्रव्यूह मे पड गया। पार्लियामेन्ट मे दलबन्दी राजनीति थी, यहाँ मेयरशिप मे भी। वहाँ दायरा बडा था, यहाँ का छोटा, मगर रवैया और तरीका एक-सा। काम कम, बहस ज्यादा। नगर-निगम के दफ्तरो की हालत तो बहुत ही शोचनीय थी। शासन, अनुशासन, प्रबन्ध आदि निर्बन्ध। सारे काम-काज कागजो पर। अपना दायित्व-निर्वाह करने की चिन्ता से प्राय सभी मुक्त। सबके अपने-अपने प्रभावी सदस्य थे—मन्त्री से सन्तरी तक। मैंने तय किया कि कहने-सुनने मे लाभ नही। खुद ही करने मे जुट गया। सुबह उठना, बस्तियो-झोपड-पट्टियो मे जाता, पानी, सफाई, चिकित्सा आदि की व्यवस्था का निरीक्षण करता। किसी को ऐसी उम्मीद नही थी। मै अकेला ही निकलता। लोगो से मिलना, उनकी असुविधाओ का कारण जानने की कोशिश करता। झुग्गी-झोपडियाँ सभी बडे शहरो मे है। विदेशो मे भी देखा, हागकाग, रगून की हालत हमारे यहाँ की तरह है। गरीबी, कुसस्कार, पिछडापन, बुरी आदते और बेकारी—सभी अपना-अपना पार्ट अदा करती है। तरह-तरह के अपराध यहाँ पनपते है, वृत्ति और प्रवृत्ति बिगडती है। कानपुर मे तो ऐसी गन्दगी की हालत इन झुग्गियो की है कि यहाँ टी० बी० तपेदिक की बीमारी शायद भारत मे सबसे ज्यादा है। मुझे ऐसा लगा कि कानपुर नगर भारत के अन्य नगरो की तरह बिना योजना के फैलता गया। शहर के कारखानो की वजह से धुएँ और गन्दगी से रोगो की बढोत्तरी होती गई। शहर के बीच मे इसी तरह बिजलीघर से निरन्तर निकलती कोयले की धुल और धूल एक बडा कारण बना है। वायु और जल दोनो का प्रदूषण वर्षो से होता आ रहा है। मैंने लिखा-पढी अधिकारियो से की, पर कोई असर पडा नही। अतएव मैंने तत्कालिक राहत के लिए चिकित्सा-केन्द्र को अधिक उपयोगी बनाने पर ध्यान दिया और लोगो को स्वास्थ्य-रक्षा के प्रति अधिक सचेतन होने के लिए अनुप्रेरित करते रहने का प्रयास किया। कुछ कर सका, किन्तु वह कितना स्थायी हो पाया, यह कह नही सकता।

परेशानियो से नीद मे बाधा पडनी शुरू हो गई। गरीबी, गन्दगी, उपेक्षा, लाछन, काम करने मे अकारण अवरोध—एक अजीब-सी उलझन दिमाग को घेरे रहती। सोचता, जब जीता तो बधाइयो और तार-चिट्ठियो का ताँता लगा, लोगो की भीड उमड आई। आज ताँता है समस्याओ का। चेहरे की मुस्कान माथे की लकीरे बन रही है। फिर भी सोचता यही था कि यदि नगर-निगम के माध्यम से कोई भी सेवा जन-समाज की कर पाया तो समय और श्रम का सार्थक उपयोग होगा। यह आशा थी अथवा दुराशा, उस समय नही समझा।

स्नेही मित्रो का सहयोग मुझे मिलता था। पता चला, नगर-निगम की बहुत-सी जमीने जबरदखल मे है। एन्क्रोचमेन्ट की बीमारी हर बडे शहरो मे है। हालत स्वय देखने के लिए एक दिन तडके ही रावतपुर की ओर निकल गया। इतनी ज्यादा जमीन लोगो ने गैरकानूनी ढग से दबा रख ली थी कि मन मे बहुत क्षोभ हुआ। यही हालत लाल बगला, नहरिया मे भी

पाई । वर्षो से यह सब होता आ रहा था, इसे सुधारना आसान बात नही । मुकदमे, झगडे, खर्च सभी लगेगे । कितना समय लग सकता है । मेयर का कार्यकाल निर्धारित होता है । इसमे सुधार का मौका सीमित होता है । बडा क्लेश हुआ । पुलिस, लोकल सेल्फ विभाग, महापालिका के अफसर अपनी जिम्मेदारी सचाई से निभाते नही । इसलिए हालत बिगडती है । प्रशासन की ओर से भी दोषी अफसरो और कर्मचारियो के विरुद्ध कार्यवाही नही की जाती—नही की जा सकती । राजनीतिक, सामाजिक, प्रशासनिक और यूनियन की समस्याएँ आडे आ जाती है ।

एक नियम-सा बना लिया कि समय मिलते ही विभिन्न मुहल्लो जाया करता । इससे लाभ भी हुआ । लोगो की दिक्कते देखता-समझता । उन्हे उपाय बताता, समझाता । नगरपालिका मे सम्बन्धित अधिकारियो को हिदायते देता । कुछ काम होने लगा । लोगो ने यह महसूस किया कि मैं टलने-टालनेवालो मे हूँ नही । मुझसे अक्सर मेरे सर्वेक्षण या निरीक्षण का प्रोग्राम पूछते । मै क्या बताता ? मुझे खुद ही मालूम नही । जब भी मौका लगता, सबेरे, दोपहर, शाम, यहाँ तक कि रात को निकल जाता । सब कोई सावधान रहने लगे ।

एक दिन सुबह साढे आठ बजे हरबस मुहल्ले की भगियो की बस्ती मे गया । जीवन की जो तस्वीर यहाँ देखी, ग्लानि से जी भर आया । एक ओर ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ, एयरकडिशन्ड कक्ष, बाग-बगीचो के मकान । और यहाँ ? गन्दगी, धूल, दु ख और सकट ! कैसे समस्या सुधरे ? वर्षो-वर्षो से चली आ रही समस्या । शिक्षा, सस्कार, दरिद्रता, अधिक सन्तान, सबकी जटिलताएँ । इस हालत मे रहने के अभ्यस्त हो गए है । याद आयी कवि-सम्राट् रवीन्द्र की पक्तियाँ कि दु ख मे ही जिनका जीवन है , उन्हे दु ख का अहसास नहीं होता । लोगो से बात की । लगा, ये भी पैसे को सबसे बडा मानते है, और कुछ चाहते नही । धन बडा साधन है, सब कुछ खरीद सकता है । जो कुछ कमाते है नशाखोरी मे उडा देते है—जुआ और बदनाम अड्डो पर जाना भी मामूली बात है । इन जगहो पर सामाजिक कार्यकर्ताओ की बडी जरूरत है । मगर सामने आये कौन ? स्वाधीनता के बाद से कौन्सिलर एम० एल० ए०, एम० पी० की दौड मे शामिल हो गए । गाधीजी का जमाना चला गया ।

गोष्ठी, सम्मेलन और तरह-तरह की बैठको मे प्राय जाना पड़ता था । यहाँ तक तो ठीक था । किन्तु धीरे-धीरे मित्रो के आग्रह उद्घाटन के लिए भी होने लगे । एक बार पी० पी० एन० मार्केट की एक दूकान के उद्घाटन के लिए गया । कार्यक्रमो मे जाने मे मन मे ग्लानि होती थी । मैं यह महसूस करता कि शुभारभ का कार्यक्रम तो भारतीय परम्परा के अनुसार आचार्य या पुरोहितो का है । अब पश्चिम की नकल मे यह शुभकार्य बडे-छोटे नेताओ से कराया जाने लगा है । नेता खुश, दूकान की पब्लिसिटी हो जाती है । उद्घाटन के दिन क्रम मुनाफे पर काफी माल बिक जाता है । ग्राहक भी खुश ।

मुझे सबसे ज्यादा सतोष होता था झुग्गी-झोंपडी और बस्तियों के लिये राहत-व्यवस्था करने पर, जितना कुछ कर पाया था, लोगो मे कम नही । कितना कर पाऊँगा, क्या कर पाऊँगा ? समय कहाँ, साधन कितना ? सुविधा कितनी ? फिर भी स्नेह और विश्वास का जैसा निश्छल रूप यहाँ मिलता, वह बार-बार मुझे यहाँ खीच लाता ।

मेयरशिप की जिम्मेदारी सन् १९६९ मे सँभाली थी । इसके लिए जो भाग-दौड, काम का बोझ, चिन्ता-परेशानियाँ रही उसने असर छ महीनो मे ही दिखाना शुरू कर दिया । मैंने उपेक्षा की—करता रहा । अनियमितताओ ने शरीर को तोडना शुरू कर दिया । डॉक्टर सावधान करते रहे, मैं सुनकर भी अनसुनी करता रहा ।

नवम्बर मे मेरे मित्र डॉ० शशिभाल ने सावधान किया कि यदि इस तरह भाग-दौड करूँगा तो बिस्तर पकडनी पडेगी । ब्लड-प्रेशर अनियन्त्रित होता जा रहा है । उस दिन हृदय के बाये भाग मे दर्द महसूस हुआ था । डॉ० अग्निहोत्री ने बताया कि खून का दौरा ठीक से न

होने कारण यह है, विश्राम की जरूरत है। मै चुप रह गया।

बात ठीक थी। व्यक्तिगत कामकाज की अवस्था भी मेरी उपेक्षा के कारण सन्तोषजनक नही थी। बी० आई० सी० की मिलो और कारखानो की चिन्ता, इधर दिल्ली की राजनीति की खीच, कलकत्ते की सार्वजनिक सस्थाओ के लिए भी भाग-दौड और मेयरशिप का बोझ—शायद बूते के बाहर था। सब सम्भव है, यदि साथ मे काम बॉटनेवाले और हाथ बॅटानेवाले भी मिले। मगर क्यों कोई आए? क्या मिलेगा सार्वजनिक काम मे? कलकत्ते मे फिर भी मित्र मिल जाते है। उस ढग के यहाँ कम ही मिले।

मेरे स्वास्थ्य की चिन्ताजनक अवस्था देखकर मुझे मैकरावेट अस्पताल मे भर्ती करा दिया गया। बडी सख्ती बरती गई। मिलने-जुलने वालो का प्रवेश बन्द। डॉक्टर-नर्सों का पहरा लगा दिया गया। दो-एक दिन मे ऐसा लगा कि मुझे जबर्दस्त कैद हो गई। बडी छटपटी रही। जीवन मे कभी ऐसी सजा भुगती नही। मुझे लगा कि यहाँ कुछ दिन रहना पडा तो फिर किसी काम का नही रह पाऊँगा। लिखने-पढने तक पर पाबन्दी! सेवा-देखभाल की कमी नही थी। यही मेरे लिए सबसे बडी मुसीबत लगी। मै अस्पताल से चुपके से निकल आया। घर आकर बडी शान्ति मिली। ऐसा लगा, सारी बीमारी दूर हो गई।

अस्पताल मे खलबली मची। मिल मे भी। सभी चकित, परेशान। मै मिला घर पर चुपचाप लेटा हुआ। कौन मुझसे कुछ कहता? दो-एक मित्रो ने दबी जुबान कुछ कहा। मैने स्पष्ट कह दिया कि अस्पताल मे रहना मेरे रास नही आता। मैने वादा किया कि भाग-दौड कम कर दूँगा।

कुछ दिनो तक इस पर अमल किया। शहर मे व्यवस्था फिर शिथिल होने लगी। शुरू मे तो अफसर और कर्मचारी मेरे भय से ठीक काम करते रहे, पर वे जानते थे कि मेयर की आयु कितनी होती है। और जब बीमारी की बात सुनी तो बेफिक्र होना स्वाभाविक था। कारपोरेशन के सभासद नगर की सेवा कम, किन्तु अपनी अधिक करते है। अधिकाश शहरो मे यही रवैया है, कानपुर कोई अपवाद नही।

जिन्दगी ही भागदौड मे शुरू की। वह कब छूटती? आदत बन गई थी। फिर शुरू हो गया वैसा ही सिलसिला। फर्क यह आया कि चक्कर आने पर बुखार या सर भारी होने पर बरबस विश्राम करना पडता था। कभी-कभी यह भी सोचता, व्यर्थ इन झझटो को बटोर लिया। केवल लिखूँ-पढूँ तो वह स्थायी सेवा होगी। इसी जोश मे लिखता भी था और अखबारो को लेख भेजता। 'विश्व-यात्रा के सस्मरण' इसी तरह लिखे गये। बहुत-सी कहानियाँ, लेख भी मैने लिखे। पाठको के पत्र से उत्साह बढा। साहित्यिक मित्रो की सराहना मे गदगद् हो उठता, प्रेरणा मिलती। साहित्यिक मित्रो और साहित्य-गोष्ठियो मे बिताये समय जीवन की बडी ही मधुर स्मृतियाँ है।

कानपुर मे कितना कर पाया कह नही सकता। जो किया उससे सन्तोष नही, किन्तु तसल्ली इतनी है कि हिम्मत नही हारी, शरीर भले ही टूटा। सबसे बडा सन्तोष इस बात का है कि नगरपालिका की ओर से मैने राजनीतिक नेताओ के स्थान पर विद्वानो और साहित्यकारो का अभिनन्दन किया। राष्ट्रपति वेकट वाराह गिरि और खान अब्दुल गफ्फार खान के अभिनन्दन के पीछे भावना थी, राष्ट्र के और राष्ट्रीय सग्राम के शीर्षस्थ व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा और सम्मान। महादेवी वर्मा, दिनकर और पन्त का अवदान भारतीय वाड्मय मे चिर महत्वपूर्ण है, इसलिए इनका भी सम्मान कर मुझे कृतार्थ होने का सुयोग मिला।

सन् १९७२ से ही मुझे लगा कि शरीर साथ देना नही चाहता। इधर बी० आई० सी० के लिए जो करना चाहता था वह कर नही पा रहा था। मानसिक द्वन्द्व की यातना भोगनी पडती थी। मैने सरकारी अधिकारियो से कहा कि बी० आई० सी० के उद्धार के लिए बडी पूँजी चाहिए। नवीनीकरण आवश्यक है। पुराने ढाँचे को बदलना होगा। प्रबन्ध-व्यवस्था मे भी परिवर्तन जरूरी है। अग्रेजो के जमाने की व्यवस्था की अब कोई जरूरत नही। अफसरो के

लिए बडे-बडे बँगले नौकर-चाकरो की फौज हटानी होगी। बी० आई० सी० एलगिन कानपुर टेक्सटाइल्स् और शुगर मिलो मे इनके पीछे लगी जमीनो का उपयोग आर्थिक लाभ की दृष्टि से होना चाहिए। अफसरो के लिए फ्लैट बन जॉय—कर्मचारियो के लिए भी। इस प्रकार शहर की बहुत बडी जमीने खाली हो जायँगी। इन्हे बेचकर या इन पर आवासीय फ्लैट बनाकर आर्थिक अवस्था को सहारा लगाया जा सकता है। मै यह भी चाहता था कि व्यवस्था का सर पैरो से ज्यादा भारी न रखा जाय। ऊँचे अफ़सरो की ऊँची तनख्वाह और सुख-सुविधा आवश्यकता से अधिक थी। इसमे कटौती करना जरूरी था पर इस सुझाव पर भी ध्यान देने की जरूरत नही समझी गयी। शायद कमजोरी मेरी थी। मै ठीक से बात नही समझा सका। मेयरशिप का अनुभव एक उपलब्धि मानता हूँ। मेरी कार्य-अवधि थोडी थी समस्या बडी, व्यवस्था और नियमादि के परिवर्तन के बिना कानपुर तो क्या, किसी शहर की समस्या का सुधार, महज सम्भव नही।

आज मै मुक्त हूँ। मुझे ऐसा लग रहा है कि सामने शान्ति के पारावार की ओर बढ रहा हूँ। घर-बाहर के झञ्झट तो रहते है रहेगे। काम करने का मन है जितना होता है करता हूँ। मन मे साधता हूँ कि परेशानियाँ दिमाग को मथे नही। किन्तु लगता है कि वे हँसकर चुनौती देती है—तन मे ताकत हो तो आओ, आगे बढो।

कलकत्ता मेरा कर्मस्थल रहा है, यही बडा हुआ, पनपा। दिल्ली के बाहुपाश से छुटकारा मिल सका, सौभाग्य मानता हूँ। कानपुर से चलते समय मित्रो से भगवतीचरण वर्मा की पंक्ति कही थी—

"अब अपना और पराया क्या
आबाद रहें रुकनेवाले
हम स्वयं बँधे थे
और स्वय ही अपने बन्धन तोड चले"।

परिशिष्ट

और वे चले गये

—बालकृष्ण गर्ग

रामेश्वरजी मे उत्साह और साहस की कमी नही थी। लगन भी जबर्दस्त थी। सघर्षो से जूझने मे उन्हे अनिर्वचनीय आनन्द आता था। हार उन्हे स्वीकार न थी।

सन् १९६७ मे, ससद् के निर्वाचन मे सफल न होने के कारण उनके मन मे एक चोट जरूर पहुँची थी। हारने की नही थी, बल्कि दु ख इस बात का था कि राजनीति शुचिता से दूर चली गई थी। पारस्परिक फूट, अवसरवाद और अफसरवाद ने वाछित कार्य करने मे सदा बाधा उपस्थित की। पीडा इस बात की थी कि जिस राजस्थान को उन्होने प्यार किया, जिसके लिए अटूट परिश्रम किया, उसकी सेवा का सही मूल्याकन नही हो पाया। वे पैसेवाले समझे जाते रहे। हर जगह पैसे की माँग पहले। प्रतिद्वन्द्वियो द्वारा उनके क्षेत्र के लोग भ्रमित किए जाते रहे। रामेश्वरजी ने अपनी डायरी (क्या खोया, क्या पाया) मे अन्तर्व्यथा लिखी है—"मेरी हार के पीछे दलबन्दी और कमजोरी है, मैं महसूस कर रहा हूँ।" "इतना दु ख शायद जीवन मे एक बार हुआ ३० वर्ष पहले जब फाटका मे रुपया खो दिया था।" "फाटकाऔर राजनीति दोनो ही मेरे माफिक नही है।"

इस हार ने उन्हें ससद्-भवन से पृथक् भले ही किया किन्तु उनकी सेवा-भावना दबी नही। वे पुन सार्वजनिक सेवा मे पूर्ववत् जुट पडे।

सीकर उनका ससदीय क्षेत्र था। अतएव श्रीकल्याण-आरोग्य सदन, पिपुल्स वेलफेयर सोसाइटी, सरदारशहर की सस्थाएँ—सार्वजनिक पुस्तकालय, गाधी विद्या मन्दिर, गोशाला आदि अनेक सस्थाओ की व्यवस्था एव आर्थिक सहायता के लिए समय देने लगे। कलकत्ता आकर भी इसी प्रकार वे शैक्षणिक और सामाजिक सेवा से पहले की तरह जुट पडे। व्यापार-व्यवसाय मे बहुत कम समय देते। इसे वे अच्छी तरह जमा चुके थे। सँम्हालने वाले योग्य व्यक्ति थे।

राजनीति के प्रति उनमे आन्तरिक रुचि नही थी। साहित्यिक एव समाज-सेवा की प्रवृत्ति थी। यो शुरू से ही जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, मातृकाप्रसाद कोयराला, केदारनाथ चट्टोपाध्याय (मार्डन रिव्यू), मोहनसिंह सेगर (विशाल भारत) के निकट सम्पर्क मे रहे। मारवाडी रिलीफ सोसाइटी की ओर से अकाल और अनावृष्टि मे राहत पहुँचाने के लिए राजस्थान गये। काफी काम किया। इसी सिलसिले मे राजस्थान के राजनीतिक नेता और प्रमुख समाज-सेवियो के सम्पर्क मे आये।

एक नये क्षेत्र की भूमिका उनके लिए अनायास अनजाने मे बनती गयी। राजनीति मे आ गए। सीकर के क्षेत्र से निर्वाचित होकर ससद मे पहुँच गए। प्रारम्भ मे उन्हे लगा कि देश का काम पार्लियामेन्ट के माध्यम से अच्छा हो सकता है।

किन्तु ऐसा हो नही सका। दस वर्षो (१९५७-६७) तक ससद्-सदस्य रहे। तीन बार काग्रेस ससदीय पार्टी के कोषाध्यक्ष। काग्रेस मे सेवाभावी धीरे-धीरे कम होते गए। पद, मान, प्रतिष्ठा के पीछे नेतृत्व दौडने लगा। देश दल के पीछे हुआ, फिर सबसे आगे व्यक्ति। काग्रेस बँटी, टूटी, व्यक्ति के नेतृत्व मे कई दल बने। राजनीति एक दल-दल बन गई।

१९६७ के चुनाव मे असफल होने पर रामेश्वरजी ने अपनी डायरी मे अपने मानस की प्रतिक्रिया लिखी है—"मन करता है-किसी जगह चला जाऊँ। कितना प्यार किया राजस्थान को, कोशिशे की अपने क्षेत्र के लिए। लोगो ने गलत समझा। शायद धन मेरी हार का बहुत बडा कारण हो। सभी जगह रुपयो की मॉग, क्योकि मैं पैसेवाला समझा जाता रहा। गलती मेरी थी, मै देता रहा। धन की भूख बढती है, मिटती नही, नही मिलने पर क्षोभ होता है। परन्तु मुझे सन्तोष है, यहाँ कुँए, तालाब, सडकें, स्कूल, अस्पताल रहेगे। मैं न भी रहूँ तो क्या? . मन्दिर गया। मन के लिए ताकत की प्रार्थना की।" यह रही उनकी राजनीतिक उपलब्धि।

कानपुर से रामेश्वरजी का लगाव बना रहा। मेयरशिप पहले ही छोड चुके थे, बाद मे बी० आई० सी०। दोनो दायित्वो से मुक्त होने पर भी स्नेह के सूत्र ने उन्हे कानपुर से जोड रखा था। साहित्यकार, समाजसेवी और राजनीतिक बन्धुओ की, उनकी गोष्ठी मे मिलने-जुलने वे जाया करते। इसी प्रकार काशी, लखनऊ, दिल्ली, बम्बई भी। राजस्थान से लम्बे समय तक सक्रिय रूप से जुडे रहने के कारण वहाँ भी उनका जाना-आना लगा ही रहता था। सभी जगह समान रूप से स्नेहभरी मुस्कान बिखरते रहते, सहयोग और सेवा का हाथ बढाये रखते थे। ऐसा लगता था कि कानपुर के दायित्व का बोझ उतरने पर उन्हे कुछ राहत-सी मिली।

स्वास्थ्य साथ नही दे रहा था। हार मानने को वे तैयार नही। जीवन में कभी अवरोध स्वीकार नही किया। मन और देह मे सघर्ष चल रहा था, वे समझ रहे थे किन्तु 'चलते रहो' को वे मानो सर्वोपरि मानते रहे। रामेश्वरजी की एक खास खूबी थी, उन्हे पूर्वाभास होता था और वह सही उतरता था। इसे मैंने कई अवसर पर देखा। किन्तु विस्मय इस बात का होता है कि इसके बावजूद वे अक्सर प्रतिकूल दिशा मे बढते। इसका मनोवैज्ञानिक कारण क्या हो सकता है, इसे नही जानता। सभवत मित्रो, बन्धुओ और उपस्थित परिस्थिति के आग्रह के कारण वे निर्णय बदलते रहे हो।

मन के सरल थे। बडी आसानी से लोग इसका फायदा उठाते। कई ऐसे मौके आये जब मैंने उनका ध्यान आकर्षित किया किन्तु वे हँस के कह देते 'रांग (wrong) हो गया'।

कानपुर से चलते समय उन्होने कहा था, "काम-काज की फिक्र नही, भगवान् ने सब कुछ दे दिया है। अब मुझे शान्ति के लिए सन्यास लेना चाहिए।" मैने उन्हे इस बात को कई बार दुहराते सुना था। मै चुप रहता। वे स्वय कहते, "मगर यह शायद ही मेरे लिए सभव हो।"

कलकत्ता से उन्होने मुझे लिखा कि मै एक बार मिल लूँ। मिलने पर उन्होने अपनी बात बताई कि वे १९७४ के मई-जून मे विदेश-यात्रा पर जाएगे और इस बार दक्षिण-पूर्व एशिया के सभी देशो मे भ्रमण करेगे। मुझे भी साथ लें जाएगे।

विधि का विधान। बम्बई मे सन् १९७३ के २६ दिसम्बर के दिन शाम को साढे-पॉच बजे कुर्सी पर चढकर आलमारी से किताबे निकाल रहे थे कि गिर पडे, कूल्हे की हड्डी टूट गयी। २९ दिसम्बर को उन्हे पता चला कि उनके दामाद पुष्पकुमारजी बागला बीमार है। ३ जनवरी, १९७४ को उन्हे खबर लगी कि पुष्पजी का शरीर शान्त हो गया।

मेरे पास कानपुर मे बम्बई अस्पताल से जो पत्र उन्होने लिखा, अत्यन्त मार्मिक था। ऐसा लगता था कि उन्हे ससार से, जीवन से विरक्ति-सी हो गई। यूँ तो सन् १९७० मे अपने अग्रज

श्री शिवप्रतापजी की मृत्यु का आघात उनके मन पर था ही, इस घटना से वे विकल हो उठे थे ।

ऐसा लगता है कि कोई अनजानी शक्ति उन्हे दूसरी ओर खीचती जा रही थी । उन्होने मुझे लिखा कि अव तो विदेश-भ्रमण तो अब शायद ही हो पाए, मै तो भँवर मे पडता जा रहा हूँ ।

बात सही थी । बम्बई स्थित उनकी सीताराम मिल की समस्याएँ काफी उलझी थी । बाजार साथ नही दे रहा था । उनकी हर तरह की कोशिशो के बावजूद अवस्था मे सुधार नही हो रहा था । जिस व्यक्ति के अदम्य साहस, सूझबूझ और परिश्रम से कामयावी मिलती रही, उसके लिए ऐसी परिस्थितियाँ मानसिक आघात पहुँचाने के लिए यथेष्ट है । आश्चर्य है कि ऐसी स्थिति मे भी वे सार्वजनिक कार्यो मे उत्साहपूर्वक सक्रिय रहे । कैसे वे कहानियाँ, गभीर लेख लिखते रहे, यह भी ताज्जुब की बात है ।

मई के महीने मे उनके पत्र से जान पाया कि वैसाखी के सहारे की जरूरत नही रही, वे छडी के बल पर चलने लगे है । मुझे राजेन्द्रबाबू की 'आत्मकथा' पढने के लिए कहा । ३० मई को सूचना मिली कि वे कानपुर आए है, मुझे याद किया है । मै मिला, तेल मालिश करा रहे थे । विनोद मोदी, सम्पत दूगड आदि मित्र भी थे । उन्होने बताया कि पूना, महाबलेश्वर, प्रतापगढ, नासिक, ब्रजेश्वरी आदि का पर्यटन कर बम्बई होते हुए आए है । मै चुपचाप सोचने लगा कि लाठी के सहारे इतना सब कैसे पार पडा । मुझे कहने लगे, "प्रतापगढ तक तो इस बार चढ नही पाया, पहले देख चुका हूँ । तुम जरूर देखना, हो आना ।" सम्पतजी ने कहा, "आप को अभी इस अवस्था मे अधिक विश्राम की जरूरत है ।" उत्तर मिला, "अब यह जीवन का साथी हो गया । हाँ, चाहता हूँ कि लाठी-छडी का साथ छूट जाय ।"

सन् १६७४ मे उनका कहानियो का सग्रह 'जाने-अनजाने' का प्रकाशन हुआ । बहुत खुश थे । उन्होने मुझे लिखा कि इन दिनो कई कहानियाँ लिखी है, इतिहास पर आधारित है । वे ऐसी कहानियो का सकलन एक पृथक् सकलन के रूप मे प्रस्तुत करना चाहते है । मै इस काम मे लग गया । बाद मे प्रकाशनार्थ काशी के विश्वविद्यालय प्रकाशन के श्री पुरुषोत्तमदासजी मोदी के पास भेजवा दिया ।

सन् १६७६ की ५ जनवरी को ऋषिकेश से उनका पत्र आया कि वे घनश्यामदास बिडला के साथ है मन लग गया है । ब्लड-प्रेशर ऊँचा है । एक दिन कफ मे ललाई भी दिखाई पडी । यहाँ से बम्बई भी जाएगे, फिर कलकत्ता । सम्भव हो तो वहाँ मिलने के लिए कहा ।

होली के अवसर पर मै कलकत्ता गया । उनसे मिला । देखा कि पैरो मे सूजन है । वे समझ गए । कहने लगे, "डॉक्टर बताते है खून की कमी, कोई खास बात नही । हाँ, अब तुम कानपुर छोडो और मेरे पास आ जाओ । जल्द निर्णय ले लो ।" बातचीत के सिलसिले मे उन्होने अपनी इच्छा व्यक्त की कि एक प्रकाशन सस्था बनाने चाहते है । ट्रस्ट कर देगे । अच्छे प्रकाशन कम मूल्य पर उपलब्ध करायेगे । उन्होने इसके बारे मे सम्पत जी को लिखा है ।

मुझे उनके स्वास्थ्य की गिरती अवस्था देखकर दु ख हुआ । चेहरे पर पीलापन, झुर्रियाँ हाथो पर भी । कुछ कहता तो हँस देते । कहते "जो बिना बुलाए आए वह बचपन देखा जो आकर चली जाए वह जवानी देखी और जो आकर न जाए, वह बुढापा है । इसका साथ कैसे छूटे ?" वही मुस्कान ताजगी के साथ ।

इतने पर भी उनके पैर चलते रहे । कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, सीकर, सरदारशहर, कहाँ कब चले जाते निश्चय नही । कैसे करते, हैरत की बात थी । कही बस से, कभी प्लेन से, कभी रेल से । खबर मिलती इन्दौर, माण्डू, धार, ओकारेश्वर, पचमढी, जसीडीह और न जाने कहाँ-कहाँ बजारो की तरह जाते । न जाने कौन उन्हे बुलाता, वे किस खोज मे रहते । अचानक ही निकल पडते ।

मई, १९७६ मे उनका पत्र जसीडीह से आया, "कानपुर छोड दो, कलकत्ता चले आओ, तुम्हारे लिए व्यवस्था कर दी है।" मैंने एल्गिन का काम छोड दिया। कलकत्ता आ गया। मिला, रामेश्वरजी ने कुछ कहने से पहले ही शुरू कर दिया अपनी यात्रा सस्मरण सुनाना। कहा इस वार हम-तुम साथ चलेगे। आवू देखते रह जाओगे" . इत्यादि। मैंने उनसे वताया कि एल्गिन छोड़ दी। वे खुश हुए। उन्होने वताया कि वे अव अपने साथ मुझे रखेंगे।

मै प्रतिदिन उनके पास जाया करता। उन्होने अपनी अधूरी आत्मकथा को पूरी करने की कोशिश की थी, किन्तु हो नही पा रही थी। मैंने देखा आँखो पर जोर पडता था। डायरियाँ अक्सर हाथ से गिर जाती, वे आँखे बन्द करके लेटे रहते। बस, कुछ ही लिखा पाते। वे आत्मकथा लिखाते हुए कभी-कभी खो से जाया करते थे। सिलसिला टूट जाता। सामयिक चर्चा, एमरजेन्सी जयप्रकाश वावू के प्रयास, काग्रेसी नेताओ की खीचातानी, विरोधियो की हिचकिचाहट की चर्चा करते। उन्हे अखरता सबसे ज्यादा था—देश के नेतृत्व मे बौद्धिक तत्त्वो का अभाव, चारित्रिक और नैतिक पतन।

मैं सारे दिन उनके पास रहता। उन्होने कभी अपनी बीमारी की हालत नही बतायी। मुझे मालूम था कि उनके दोनो गुर्दे वेकार हो चुके थे। बम्बई अस्पताल मे उनका इलाज कराया गया। जसलोक मे किडनी के लिए उनका ऑपरेशन भी हुआ। हाथ की धमनियो मे रक्त-प्रवाह के लिए ऑपरेशन भी किया गया।

एक दिन मुझसे रहा न गया। मैंने उन्हे कहा कि आपको इतनी दौड-भाग अब नही करनी चाहिए थी। कहने लगे 'अब ठीक हो जाऊँगा, डॉक्टरो ने कहा है कि इलाज हो गया। उन्होने ही मुझे यहाँ आने की छुट्टी दे दी।'

रामेश्वरजी को स्पष्ट आभास सम्भवत हो चुका था कि उनकी क्षीण होती हुई क्षमता का परिणाम क्या हो सकता है। इसके लिए वे प्रस्तुत थे। फिर भी सघर्षशील रहे। सस्थाओ के लिए सक्रियता मे कमी नही आयी। यथासाध्य पढते, लिखते-लिखाते रहे। बस एक बात मुझे अखरती कि मित्रो के आग्रह पर वे हर तरह की चिकित्सा करवा लेते। फायदा तो क्या, नुकसान ही होता। जबर्दस्ती बन्द करवा दिया जाता। वे चुप रह जाते।

दिसम्बर मे उनका स्वास्थ्य गिरने लगा। अचानक बम्बई जाने का प्रोग्राम रामेश्वरजी ने बना लिया। मुझे कई कितावे दे गए कि पढ डालूँ। सारी डायरियाँ पढने के लिए दी। जनवरी मे बम्बई पहुँचने के लिए उन्होने मुझे लिखा। मै शेष सप्ताह मे पहुँच गया। काफी दुर्बल से लगे। हाथ मे सूजन, पैरो मे भी। गैल (वेहोशी-सी) आ जाती थी।

उनकी इच्छा थी कि दिल्ली मे ससदीय जीवन और राजनीति पर वे लिखे। मुझे साथ लेकर वे किताब ले आए। डायरियो मे नोट बनने शुरू हुए। रूपरेखा बनी। आत्मकथा भी चलती रही। स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। इलाज चल रहा था, लाभ कुछ भी नही। भोजन नियन्त्रित, पानी बहुत कम— नाप-तौलकर। तय हुआ, जसलोक मे जॉच करायी जाए। डाक्टरो ने सलाह दी, डायलेसिस करानी होगी। मुझे कैसा लगा। रामेश्वरजी प्रसन्न थे। मुझसे कहा—"चलो अच्छा हुआ जितने दिन बचूँगा कष्ट कम ही भोगना होगा।"

११ फरवरी, १९७७ को डायलेसिस कक्ष मे सुबह १० बजे ले जाए गए। यन्त्रो को देख कर मुझे लगा काफी जटिल प्रक्रिया है। सारे शरीर का रक्त गुर्दे की जगह यान्त्रिक गुर्दो से प्रवाहित होकर शुद्ध किया जाता है। और मरीज भी थे, उन पर डायलेसिस चल रहा था। मैंने देखा, वे शान्त भाव मे लेटे थे। डॉक्टरो ने कहा, पहला अवसर है इसलिए कक्ष मे घरवाले बाहर जायँ। राजूबाबू (रामेश्वरजी के छोटे पुत्र) और मैं रह गया। डायलेसिस शुरू हुआ, रक्त का प्रवाह पारदर्शी प्लास्टिक की नलिकाओ से होना शुरू हुआ। रामेश्वरजी शान्त भाव से लेटे रहे। राजूबाबू को इस प्रक्रिया मे विचलित-सा देख डॉक्टरो ने उन्हे बाहर जाने का सकेत किया। मै रह गया। साथ मे माताजी (रामेश्वरजी की पत्नी) भी। डायलेसिस करीब छ घटे चला। शाम के पाँच बजे अपने कक्ष वापस भेज दिए गए। आते ही कहा, "बहन

आराम मिला, शरीर की जलन मिट-सी गयी।" एक दिन के अन्तर मे डायलेसिस दिया जाना तय हुआ। दूसरा कोई होता तो घबराता, परन्तु रामेश्वरजी प्रसन्न थे। घर आने के वाद उन्होने कई पत्र लिखवाए किताबे पढी मानों कुछ हुआ ही नही।

डॉक्टरो ने अवस्था मे सुधार देखते हुए कहा कि १८ को घर जाने के लिए छोड देंगे। अस्पताल आकर डायलेसिस लेते रहे। रामेश्वरजी वहुत प्रसन्न हुए। धीरे से मुझसे कहा, "चलो कैद से छूटे।" घर आकर उनमे कुछ स्फूर्ति सी दिखाई पडी। उन्होने दूसरे ही दिन सुवह मुझसे कहा, "याद है ? कानपुर मे मैंने तुमसे कहा था, महावलेश्वर-प्रतापगढ देखना। आज ही निकल पडो। नासिक-पूना भी देख लेना।" मैने असहमति व्यक्त की, डॉट पडी। कहने लगे, "यह तो रोज की बात है। आदत बन गयी, कम्प्लिकेशन है नही,जाओ तीन-चार दिन मे वापस आ जाना।" हिदायते दी, यात्रा की व्यवस्था कर दी। यूँ तो वे मेरे प्रति वचपन से स्नेह रखते थे। शायद पूर्व जन्म के सस्कार हो। मेरी असावधानियो के लिए डॉटते भी थे और साथ-साथ अच्छी-सी किताब देकर कहते, "पढ लेना आपस मे चर्चा करेगे।" उस दिन पास बुलाया, सर पर हाथ फेरा, कहा—"जाओ जीम लो और निकल पडो। गोदावरी मे स्नान करना और त्र्यम्बकेश्वर के दर्शन।"

चार-पॉच दिनो मे लौट आया। देखा, विश्राम की उपेक्षा चल रही है। घर पर मीटिंगे होती है। पाश की बैठके भी। मैंने सकेत किया कि ऐसी उपेक्षा और असावधानी नही होनी चाहिए। विश्राम लेना चाहिए। कहने लगे, "श्रम हो तव तो विश्राम। यहॉ श्रम करता कहॉ हूँ ?" बात घुमाने के लिए कहने लगे, अस्पताल मे "जयप्रकाशजी मे मिला। उनमें आत्मविश्वास है, साहस है, बीमारी उन्हे परास्त नही कर सकती। हॉ स्मरण-शक्ति मे लगता है, कुछ फर्क है।"

जनता पार्टी बन चुकी थी। चुनाव की तैयारियॉ चल रही थी। रामेश्वरजी ने काफी मदद पहुँचाई। मना करते रहने पर भी मिलने जाते। एक दिन कहा, "डायलेसिस व्रडा खर्चीला है। मुझे तो भगवान् ने दिया है। नन्दू (नन्दलालजी टाटिया) पानी की तरह रुपये मेरे पीछे खर्च कर रहा है। मैं सोचता हूँ किडनी की बीमारी गरीव को हो होती होगी तो एँडिया रगडकर मरने के अलावा दूसरा उपाये नही। एक मशीन की नन्दू मे वात की है, वह जसलोक मे दान कर देगा। इस तरह और सम्पन्न लोगो से कहूँगा। आज जी० डी० वावू (घनश्यामदासजी) से मिलूँगा। वे जरूर कुछ व्यवस्था कर देंगे।" और, उसी दिन शाम को मुझे तो कुछ देर घूमने के लिए बाहर भेज दिया और स्वय चले गये, जी० डी० वावू से मिलने। वापस आकर कहने लगे, "मैंने कहा था न जी० डी० वावू से तीन डायलेसिस मशीनो की बात हुई।"

मार्च मे एक दिन उन्होने कहा, "कलकत्ता जाने का मन हो रहा है। वहॉ सघर्ष के दिन मैने बिताये, सफल रहा। लगता है, मुझे मेरा कलकत्ता वुला रहा है। मै जाऊँगा। तुम ट्रेन से कलकत्ता जाओ, मै प्लेन से पहुँच रहा हूँ। रास्ते मे वर्धा और नागपुर देख लेना।"

१३ मार्च को कलकत्ता पहुँचे। वहुत प्रसन्न लगे। दूसरे दिन सुवह विक्टोरिया मे अपनी मित्र-मडली से मिले। उस दिन पत्र लिखाये, लेख वगैरह का भी काम हुआ। डायलेसिस की व्यवस्था कलकत्ता अस्पताल मे तय कर ली गई। किन्तु यहॉ उनके अनुकूल नही रही। बेचैनी होती थी। फिर भी पूर्ववत् व्यस्त—मीटिंगे, ताश और घूमना।

चुनाव की गिनतियॉ हो रही थी। रात-रात भर बैठकर चुनाव परिणाम सुना करते। हम सभी मना करते पर वे सुनी-अनसुनी करते और कहते। "ऐसे झटके जरूरी है, इससे गणतन्त्र का स्वास्थ्य बनता है, एक दल हावी नही बन पाता।"

मार्च, १९७७ का शेष सप्ताह था। कलकत्ता अस्पताल मे डायलेसिस पर थे। मै पास बैठा था। एकाएक उन्हे पेट मे दर्द महसूस हुआ। उल्टियॉ हुई। चेहरे पर कष्ट उभर आया। बोले कुछ भी नही। लेटे-लेटे उन्होंने मेरा हाथ पकडकर कहा, "वादा करो मेरा साथ छोडोगे

नही।" मैंने अपने को बहुत सँभालने की कोशिश की, उनका हाथ जोर मे पकड लिया। मेरी आँखे भर आई, उनकी पलके भी। थोडी देर बाद कहा, "अब मुझमे शक्ति रही नही। 'आत्मकथा' मे मेरे बचपन मे लेकर सघर्ष और कानपुर तक की बात लिख पाया हूँ। शेषाश जैसा चाहता था, बना नही पाया। अब और शायद ही लिख पाऊँ, कोशिश करूँगा। तुम एडिट कर देना। " मैंने वादा किया, लगा उन्हे सन्तोष हुआ, शान्ति मिली।

एक दिन डायलेसिस के समय उन्होने नन्दू बाबू से कहा कि पता चला है कि एक व्यक्ति की पत्नी की किडनी बदलना जरूरी है, उसे कोई अपनी एक किडनी बेचने को तैयार है पर रुपयो के अभाव मे सभव नही हो रहा है। नन्दू बाबू ने उन्हे आश्वस्त किया और किडनी खरीदवा दी।

कलकत्ता उनके अनुकूल नही रहा। स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। डायलेसिस मे तकलीफ पाते थे। तय हुआ उन्हे बम्बई ले जाया जाय। बम्बई आने पर उन्हे जसलोक मे भरती किया गया। यहाँ उन पर काफी नियत्रण की सुविधा रही। तकलीफ तो कम हुई पर दुर्बलता धीरे-धीरे बढती जा रही थी। खून चढाने की नौबत आ गयी। कभी-कभी ऑक्सिजन भी दिया जाता। सूई तो प्रत्येक दिन। खाने-खिलाने का शौक रामेश्वरजी को था। सब कुछ बन्द। मिलनेवाले आते रहते। बातचीत करने मे कष्ट होने लगा। जी० डी० बाबू, अश्विनी बाबू (अश्विनीकुमारजी कानोड़िया), बाबू गगाशरणजी आदि आते। वे बहुत ही कम बात करते। एक दिन जी० डी० बाबू आये, रामेश्वरजी से हाल पूछा, "कैसी तबीयत है ?" रामेश्वरजी ने इतना ही कहा, "अब तो थकान लगती है।" जी० डी० बाबू ने समझाया "मन को थकने न दे, परमात्मा का स्मरण रखे।" रामेश्वरजी के चेहरे पर शान्ति के भाव उभर आये।

धीरे-धीरे ऐसा लगा कि उन्हे विरक्ति सी हो रही है। कलकत्ता मे ज्ञान-भारती मे उनका अभिनन्दन किया गया। अभिनन्दन पत्र उन्हे देने के लिए बम्बई मे उनके मित्र आये। रामेश्वरजी मुस्कराये, सिर्फ इतना कहा, "इस लायक मैं हूँ नही।"

रामेश्वरजी दिन मे तो बेहोशी-की हालत मे रहने लगे थे किन्तु रात ८ बजे के बाद न जाने उनकी नीद कहाँ चली जाती। भोजन के प्रति उनकी रुचि नही थी। मै रात मे भी उनके पास रहता। पारी-पारी से माताजी और मैं। रात की नर्स भी थी। उन्हे सन्तोष था कि बेला बाई (नन्दू बाबू की पुत्री) का विवाह अच्छे परिवार मे हो गया। जीवन के शेष भाग मे एक के बाद एक उन पर दैवी चोटे पडी। वे सबसे अधिक विचलित थे अपने बडे भाई शिवप्रतापजी के जाने पर। उनका अभाव अखरता रहा। इसी प्रकार बम्बई मे उनकी सीताराम मिल की चिन्ता ने भी उन्हे घेर रखा था।

ससार से विरक्ति-सी हो गई थी। वे जाना चाहते थे। मोहपाश से मुक्त होने का प्रयास कर रहे थे। धीरे-धीरे उन्होने आने-जानेवालो से बात करना बन्द कर दिया। केवल देखते-मुस्कराते और मुँह फेर लेते। शरीर मे कष्ट होता किन्तु किसीसे न कहते कि हाथ-पैर सीधे कर दो, तकिया का सहारा लगा दो या करवट बदल दो। रात दस बजे के बाद न जाने कैसे उनमे चेतना आती। तकिये को गर्दन के नीचे लगवाकर ऊँचा कर देने के लिये कहते। रामचरितमानस सुनाता रहता, कभी गीता।

एक दिन सुन्दर काड मे हनुमान-सवाद का प्रसग था। दोहे मे था—"प्राण जाँहि केहि बाट।" रामेश्वरजी मुस्कराए कहने लगे, "यही मेरी हालत है। मेरे चाहने पर क्या होगा ? प्राण निकले कैसे, किस राह ? नाक मे नली, आँखो दवा की बूँदे, नसो मे नालियाँ सब द्वार बन्द, पहरे लगे है। प्राण छटपटाता है। कैसा खेल बना है ! जिस रुपये के पीछे भागता रहा, जीवन खपा दिया पा भी लिया। आज पास होने पर वे बदला ले रहे है। उन्ही के बल

पर डॉक्टरो की फौज, नाना तरह के हथियार के जुगाड बैठे है, प्राण निकलने देते नही।"

अन्तिम दिनो की बात है। डायलेसिस पर थे। एक महिला बाहर खडी थी। डॉक्टर से मिलना था। बार-बार आँसू पोछ रही थी। रामेश्वरजी ने देखा। मुझसे कहा, "बाई से पूछो, क्या तकलीफ है।" मैने पता किया। बताया कि उसके पति को देवर किडनी देने के लिए तैयार हो गया है। पैसे नही है ऑपरेशन और दवाइयो के लिए। बेड के लिए भी बकाया पड गया है। आज या अगले दिन अस्पताल छोडना पडेगा। रामेश्वरजी ने डॉक्टर को बुलवाया और हिदायत दी कि मरीज के खर्च की चिन्ता न की जाय। रुपयो की व्यवस्था हो जायगी। नन्दूबाबू के आने पर उन्हे निर्देश दिया। उसी दिन शाम तक व्यवस्था हो गई।

मगलवार की शाम थी। अगले दिन उन्हे डायलेसिस पर जाना था। रात का भोजन आया। कहने लगे, "आज भूख जगी है। तकिये के सहारे बैठा दो। ऐसा लगता है कि इलाज मे काफी फायदा है। अब जल्द ही रोग के बोझ से मुक्त हो जाऊँगा।" और, सचमुच उन्होने भोजन अच्छी तरह किया। माताजी, नर्स और मै, विस्मित ! भोजन के बाद उन्होने मुझसे कहा, "मेरे पास आकर बैठ जाओ, अभी नीद नही आ रही है।" धीरे-धीरे उन्होने कहा, "मै भूल गया था, तुम्हे कहना। जाना सबको है, मुझे भी। मेरे जाने के बाद मेरी आँखे दान करवा देना। मैने नन्दू से कह रखा है। शायद भावुकता मे भूल जाए। याद रखना, भूलना नही।"

अगले दिन प्रसन्न थे। सुबह ९ बजे कहने लगे, "अब चलने का समय हो गया। डायलेसिस है।" कक्ष मे ले जाए गए। डायलेसिस पूरी हो नही पाई कि तबीयत खराब हो गई। रक्तचाप गिर गया, सज्ञाहीन हो गए। डॉक्टर उन्हे एमरजेन्सी मे ले आए। उपचार हुआ, होश पूरी तरह था कि नही, कह नही सकता। आवाज देने पर आँखे अधखुली करते, बस। डॉक्टरो ने कहा, लन्दन मे दवा मँगानी पडेगी, तुरन्त। लन्दन मे दवा दूसरे दिन ही सुबह आ गई। हममे से किसी-को मिलने की इजाजत नही थी। केवल बाहर से शीशे के कक्ष मे देख सकते थे। सुधार की उम्मीद मे पूरा दिन निकल गया। डॉक्टरो ने कोई कसर रखी नही।

दूसरे दिन सुबह डॉक्टर से पूछने पर उसने बताया। कोशिशे बेकाम रही। हम स्तब्ध रह गए। अन्य कक्ष मे लाए गए। डॉक्टरो ने उनके पास जाने की छूट दे दी। रामेश्वरजी की सज्ञा तेजी से क्षीण हो रही थी। मैने गीता सुनानी शुरू की। ग्यारहवाँ अध्याय सुना रहा था—तस्मात् प्रणम्य प्राणिधाय तत्क्षामये त्वामहप्रमेयम् । देखा, शान्त भाव, सर बाई तरफ झुकने लगा। मदनलालजी (रामेश्वरजी की छोटे भाई) की सुपुत्री ने तुलसी, गगा-जल मुख मे दिया।

रामेश्वरजी की बात सही निकली—"अब चलने का समय हो गया।"

विश्वयात्रा के संस्मरण

भूमिका

मित्रवर श्री रामेश्वर टाटिया द्वारा प्रस्तुत 'विश्वयात्रा के सस्मरण' के अश कुछ तो मैंने सरिता में प्रकाशित लेखमाला मे पढ लिए थे, बाकी कलकत्ता प्रवास के समय पढने को मिले।

यात्रा मनुष्य का सहज गुण है, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। मानव सृष्टि के बाद अनेक जातियां एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर आती जाती रही है। नृतत्वशास्त्रियो द्वारा रक्त सम्मिश्रण, एक महाद्वीप के वासियो से दूसरे महाद्वीप के वासियो के साथ होना, सिद्ध हो चुका है, और इतिहास भी इस तथ्य की पुष्टि करता है।

इस अतरिक्ष यात्रा के युग की ही बात नही, मनुष्य के आदि युग मे भी जब यातायात के साधन नही के बराबर थे, आदमी पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक अपनी इसी प्रवृति से प्रेरित होकर पहुंच जाता था। स्थल मार्ग यानी पैदल रास्ते ही नही, अपितु समुद्र की उत्ताल तरगो से जूझते हुए भी मनुष्य की घुमक्कडी प्रवृति ने ही बृहत भूखडो से सुदूर द्वीपो तक मानव आवास बनाया। इस कृति मे प्रशात महासागर स्थित हवाई द्वीप समूह, ईष्टर द्वीप, भारतीय महासागर स्थित मालाग्यासी (म्याडागास्कर) आकर्षक उदाहरण है। हवाई द्वीपसमूह से निकटतम आबादी दो हजार मील से भी अधिक है। इसी प्रकार मालाग्यासी द्वीप, अफ्रीका महाद्वीप के निकट होने के बावजूद उसके आदिवासियो का रक्त एशियाई ही नही भारतीय आर्यो का है। साथ ही सभ्यता भी मिलती जुलती है, यहा तक कि नाम भी। सयुक्त राष्ट्रसघ मे मालाग्यासी के जो स्थायी प्रतिनिधि है, उनका पारिवारिक नाम रक्तमाला (रोकोतोमाला) है। गोधन ही उनकी समृधि का चिन्ह है, जैसा किसी युग मे आर्यवर्त मे प्रचलन था। ईष्टर द्वीप मे प्राप्त हस्तलिखित पुस्तक की लिपि को आज तक पढा नही जा सका है, और उस द्वीप मे वृहत पाषाण मूर्तियो की सृष्टि और खडा किया जाना, अभी कुछ दिन पहले तक आज के वैज्ञानिक युग मे भी आश्चर्य का विषय रहा है। मेरी अपनी राय मे मध्य तथा दक्षिण अमेरिका की प्रसिद्ध सभ्यताए मय, इका तथा आज तक के रहस्य की कुजी यही ईष्टर द्वीप है, जिसके मूल निवासी अपने आप को पश्चिम यानी एशिया की ओर से आया हुआ बताते है।

उत्तरी अमेरिका के आदिवासी अमरीकी भारतीय भी (जिन्हे पहले रेड इडियन्स कहा जाता था) मूलत मगोल है, और मगोलो का स्थान एशिया ही है। नेपाल मे वृहत हिमालय श्रेणी के उस पार एक प्रदेश है मुश्ताग, जहा नेपाल के एक करद उपराजा हुआ करते थे। वह जब काठमाडू आए थे तो एक अमरीकी नागरिक भी काठमाडू मे था दोनो की मुलाकात हो गई। अमरीकी नागरिक ने उक्त राजा से कहा कि उसके अपने देश अमरीका मे एक प्राचीन

घोडे की नस्ल है जिसे मस्ताग (Mustang) कहा जाता है, तो इस पर राजा ने बिना किसी आश्चर्य के उन्हे बताया कि उनके अपने प्रदेश के घोडे भी मशहूर है और उनकी अपनी लोकश्रुति परपरा मे यह उपाख्यान है कि उनके पूर्वजो के कुछ भाईबद समाज से बहिष्कृत होने पर अपने कुछ घोडो सहित उत्तरपूर्व की ओर महाचीन से भी आगे निकल गए थे। उत्तरी अमेरिका के भारतीयो की उत्पत्ति के सबध मे प्रबल धारणा है कि वे बेरिग के रास्ते एशिया से अमरीका मे उस समय प्रविष्ट हुए जब यह जलडमरूमध्य कठिन हिम आवरण मे जमा हुआ था।

इसी प्रकार यूरोपीय जातिया भी पूरब की ओर आई। पन्द्रहवी शताब्दी के दौरान पुर्तगाली, डच, फ्रेंच तथा आग्ल जातियो का एशिया और अफ्रीका मे, उपर्युक्त देश सहित स्पेन वासियो द्वारा मध्य तथा दक्षिण अमेरिका तथा उत्तरी अमेरिका के प्रदेशो मे साम्राज्य और उपनिवेश की स्थापना की बाते तो मानव इतिहास मे कल की सी बात है। लेकिन प्राग ऐतिहासिक काल मे भी ग्रीक, रोमन, पार्थियन तथा अन्य जातिया पश्चिम से पूरब की ओर बढी थी, और हूण, भयावान बर्बर, मूर वगैरह पूरब से पश्चिम की ओर गये थे। आज भी ससार मे बहुत सी भ्रमणशील जातिया है, जो एक स्थान पर टिकी नही रहती। यूरोप के जिप्सी, भारतीय उपमहादेश के बनजारे, नट, क्रोड, गूजर वगैरह इसी के उदाहरण है।

घुमक्कडी प्रवृत्ति मनुष्य की आदि प्रवृत्ति है। जिज्ञासा ही मानवीय सभ्यता की प्रेरक शक्ति है। और,देशातर ज्ञान की खोज मे सामूहिक रूप मे जातियो और कबीलो का एक देश से दूसरे देशो मे आवागमन तो होता ही था, इस के अतिरिक्त व्यक्तिगत रूप मे भी मनुष्य भ्रमण और यात्रा की ओर प्रारभ मे ही प्रवृत होता रहा है। एशिया मे हमारे भ्रमणशील आर्य ऋषि बौद्धभिक्षु चीन के ह्वेनसाग, फाह्यान, जापान के कावागुची, यूरोप के मार्कोपोलो, कोलबस, कुक वगैरह भी इसी प्रवृत्ति की कडी है।

हमारी आर्य या हिंदू परपरा मे तीर्थाटन का, जो यात्रा का ही दूसरा प्रर्याय है, प्रबल धार्मिक महत्व है। हमारे तीर्थ भी आर्यावर्त के चारो खूट बिखरे है। प्रसिद्ध चार धामो को ही ले तो वे हिंदुत्व की चार सीमा रेखाओ को निर्दिष्ट करते है। हिमाच्छादित उत्तरी छोर पर बदरीनाथ, कन्याकुमारी अतरीप का पास दक्षिणी सागर तट पर रामेश्वरम, पूर्वीय समुद्र तट पर जगन्नाथपुरी तथा पश्चिमी सागर तट पर द्वारिकाधाम। इसी प्रकार द्वादश ज्योतिर्लिगो का भी वितरण है। शक्तिपीठो के स्थान भी इसी तरह वितरित है। इन स्थानो के भ्रमण और दर्शन कर के प्रत्येक हिंदू अपने आप को धन्य समझता है।

आज मनुष्य मे जो बाह्य विषमता है उस के मूल मे आर्थिक कारण तो है ही, पर साथ ही आपसी आवागमन का अभाव और एक दूसरी जाति के सामाजिक और व्यावहारिक रीतिरिवाजो का अज्ञान भी है। मैने थोडा बहुत जो ससार के विभिन्न देशो का भ्रमण किया है, उससे मै इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ कि सारे ससार की आधारभूत परपराए एक है। सही है जलवायु जनित वेशभूषा और आहारविहार, राजनीति तथा स्वार्थरूपी क्षार ने मानव आत्मा की अग्नि को ढक रखा है। यदि उस राख को फूँक कर उड़ा दिया जाए तो आत्मा की वह आग सभी जगह समान रूप मे जलती मिलेगी, और आत्मा का यह स्पर्श पारस्परिक मेलजोल और एकदूसरे की भावनाओ को समझने के प्रयास मे ही स्पदित हो सकता है।

अब रही सभ्यता की बात, कौन सी विद्यमान सभ्यता ऊची और विकसित रही है? इतिहास बताता है कि इसके चक्र मे सभ्यताए बनती और मिटती रही है। मिस्र के काहिरा स्थित सग्रहालय को देखने के बाद पाश्चात्य सभ्यता के आधुनिकतम आभूषण, अलकारो तथा परिवेश मे कोई नवीनता नही लगती। अभी-अभी कुछ ही दिन पूर्व एक पाश्चात्य देश के वैज्ञानिक ने शुक्र ग्रह मे मानव आवास होने की धारणा व्यक्त की है उसको सिधु सभ्यता (मोहनजोदरो) के मानव का उपनिवेश होना बताया है। मै किसी पूर्वाग्रह के कारण नही

अपितु सहज ज्ञान के आधार पर यह कहना चाहूँगा कि हमारी अपनी सस्कृति के पुरातन वाड्मय का वैज्ञानिक विवेचन'के साथ अध्ययन और अनुसधान होना आवश्यक है। अभी तक इस काम को पाश्चात्य जगत के विद्वान ही करते आए थे, जो हमारी मान्यताओ और मूल्यमान से अपरिचित थे। इतना ही नही, वे हमारे नाम और शब्दो का सही उच्चारण या हिज्जे भी नही कर सकते थे। अत हमारी अपनी ही सस्कृति का ज्ञान पाश्चात्य जगत की खोज मे बासी हो चुका है और उस पर भी उधार लिया हुआ है। आज इसी लिए और आवश्यक है कि हम अपने ही पूर्वजो के ज्ञान का नए सदर्भ और नए प्रकरणो मे अध्ययन और अनुसधान करे।

ससार आज सिमटता जा रहा है। यात्रा के नए साधनो और उपकरणो द्वारा जो यात्रा कल असभव तथा असाध्य सी लगती थी, आज साध्य हो गई है। स्थल मार्ग द्वारा ही आज बस और मोटरे एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप पहुचती है। जेट वायुयानो की तो बात ही क्या! मेरे अपने घर विराटनगर से धनकुटा पहुँचने के लिए पैदल तीन दिन लग जाते है, जब कि फासला लगभग ५४ मील का ही है, लेकिन विराटनगर से न्यूयार्क दूसरे दिन चार बजे अपराह्न मे ही पहुच गया। दिशा, दिन की रोशनी और जेट यान ने मिलकर यह सभव किया।

अब तो कुछ ही दिनो मे ध्वनि की गति से तीव्रतर यान साधारण सवारी का रूप लेगे, फिर तो समय का अतर और भी कम होता चला जाएगा। कालातर मे जितने बजे चलेगे उतने ही बजे दूसरी जगह पहुच सकेगे। अलबत्ता खर्चे तो ज्यादा लगेगे ही, पर विशेष यानो का, जो तीन चार सौ यात्रियो तक वहन कर सकेगे, अभी परीक्षण काल चल रहा है, जो कुछ ही दिनो मे तिजारती रूप ले लेगा, तो खर्चे भी अपेक्षाकृत कम पडने लगेगे। पर साहसी घुमक्कड पदयात्रा, साइकिल अथवा 'रुको और चलो' (हिच हाइक) पद्धति से काम चला लेते है। आज भारत और नेपाल मे जो हिप्पियो तथा बीटनिको की बाढ सी आ चली है वे ज्यादातर अतिम पद्धति ही व्यवहार मे लाते है।

प्रस्तुत पुस्तक की शैली मनोरजक है तथा भाषा परिमार्जित। मेरी मित्रता श्री रामेश्वर टाटिया से बहुत पुरानी है, जब न मुझे ही लोग जानते थे और न श्री टाटिया ही प्रसिद्ध थे। किंतु इतने दिनो के सबध के बावजूद मै कभी यह भाप नही पाया था कि व्यावसायिक क्षेत्र मे सफलता प्राप्त करने वाले मेरे मित्र के अन्दर एक अच्छा साहित्य सृजक भी विराजता है। मेरे अज्ञान का निरावरण तो सकलित लेखमाला ने कर दिया है। जो लोग देशविदेश घूम नही पाए, वे घर बैठे ही पर्यटन का आनद उठा पाएगे, यही इस पुस्तक की देन है और यह देन कम महत्व की नही। हिंदी साहित्य मे पर्यटन सबधी कम ही ग्रथ प्रकाशित हुए है, और उनमे यह अर्वाचीनतम ही नही प्रत्युत साहित्यिक रूप से भी उपादेय सिद्ध होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

—मातृकाप्रसाद कोइराला

'मानीड'
विराटनगर, मोरग (नेपाल)
विजयादशमी, स २०२४ वि

अपनी ओर से

बचपन मे जब मैं हाई स्कूल मे था, पाठ्य पुस्तको मे देशविदेश सबधी वर्णन पढने को मिला। विदेशो मे लोगो की भाषा, रीतिनीति, रहनसहन आदि के बारे मे जानने की रुचि होती थी। चाव बढता गया और मैं यात्रा सबधी जो भी पुस्तकें मिली, पढने लगा। ह्वेनसांग और इब्नबतूता की यात्राए मुझे बहुत अच्छी लगी। ऐसा लगता, मैं भी उन के साथसाथ ही भ्रमण कर रहा हूँ। इस के बाद स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजक और राहुलजी की यात्रा पुस्तके पढने को मिली, दुनिया को समझने-परखने का एक नया दृष्टिकोण आया। स्वदेश तथा विदेश के तुलनात्मक विवेचन की प्रेरणा भी मिली। साथ ही स्वदेश के अलावा दूसरे देशो की यात्रा की प्रबल इच्छा होने लगी।

जिज्ञासा मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है। जानने की प्यास बुझती नही। जब बुझ जाती है तो मनुष्य जडवत् हो जाता है। उस की चेष्टाए और प्रवृत्तिया कूपमडूकी हो जाती है। भारतीय सस्कृति मे इसी कारण जिज्ञासा और जिज्ञासु दोनो को महत्व दिया गया है। ज्ञान की प्राप्ति के लिए यात्रा पर अपेक्षित बल भी दिया गया है।

भारतीय जीवन की पूर्णता वानप्रस्थ और सन्यास से मानी जाती थी। इन्ही दोनो आश्रमो मे तीर्थाटन द्वारा सत्य को खोजने और पहचानने का निर्देश था। इसीलिए हमारे मुख्य तीर्थ—बदरीनाथ, रामेश्वरम, द्वारिका और जगन्नाथपुरी—देश के चार कोनो पर थे इन तीर्थो में जाना हमारे सामाजिक एव राष्ट्रीय धर्म का एक अग माना गया है, यहा तक मान्यता रही है कि बिना चारो धामो की यात्रा के मनुष्य को मोक्ष नही मिलता।

भ्रमण और देशाटन के प्रति प्रेम, प्रेरणा और रुचि के फलस्वरूप ससार की भिन्नभिन्न सस्कृति और सभ्यता की विभिन्न सामग्री को मथ कर सास्कृतिक नवनीत बनाने का जितना व्यापक प्रयोग हमारे इतिहास मे मिलता है उतना विश्व के किसी भी देश मे नही।

आज से ढाई हजार वर्ष पहले जब न तो यातायात के सुगम साधन ही थे और न सुरक्षा की उचित व्यवस्था ही थी, उस समय भी सम्राट अशोक की पुत्री सुदूर देशो तक मे गई। आज भी वही परपरा है, भले ही क्षीण और अन्य रूप मे हो।

हजारो वर्ष की दासता के फलस्वरूप भारत को इस समय किसी बात की आवश्यकता है तो वह यह है कि स्वय को जीवित रखने के लिए इस पृथ्वी पर अपने आपको प्रतिष्ठित करना है। यह तभी सभव है जब अन्य राष्ट्रो का उत्कर्ष, उस के कारण और गतिविधियो को समझे और इसे कसौटी मान कर अपने कदम आगे बढाए ताकि हमारी भूमि और हमारी सस्कृति परिमार्जित हो और उस मे नया निखार आए।

पहली बार सन् १९५० में पश्चिमी देशो मे जाने का अवसर मिला । इस यात्रा का उद्देश्य था केवल पर्यटन । अतएव जिन देशो मे गया उन के दर्शनीय स्थानो को ही विशेष रूप से देखा । प्रस्तुत पुस्तक मे पहले १३ लेख उसी समय के हैं । अपनी यात्रा मे मैंने जो कुछ देखा और समझा उन की टिप्पणिया लिखता रहा हूं । बाद मे लेख के रूप मे इन का प्रकाशन सरिता में हुआ । पुस्तक के लिए इन्हे नए सिरे से नही लिखा गया । हा, यत्किंचित अपेक्षित परिवर्तन अवश्य करना पडा है ।

सन् १९६१ मे मेरी दूसरी यात्रा रूस की थी । श्री घनश्यामदास बिड़ला को सोवियत सरकार द्वारा निमत्रण मिला । अन्य कतिपय मित्रो के अतिरिक्त श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका भी इस यात्रा मे हमारे साथ थे । देखनेघूमने की तथा अन्य सुविधाए थी अवश्य, किंतु साम्यवादी देशो की प्रणाली के अनुसार हमारी गतिविधि पर कुछ नियत्रण सा था । पर्यटन अथवा यात्रा मे ऐसी व्यवस्था से उत्साह का कुठित हो जाना स्वाभाविक हैं, क्योकि जनजीवन से सीधा और मुक्त सपर्क नही हो पाता, इसलिए आनद की उपलब्धि पूरे तौर पर नही होती । चित्रशाला मे सजाए गए प्राकृतिक दृश्यो के सुदरतम चित्रो को देख कर उस नैसर्गिक आनद की अनुभूति नही होती जो उन्मुक्त गगन के नीचे झरने के किनारे उस की हलकी फुहारो और मिट्टी की सोधी महक से मिलती है ।

सन् १९६४ मे श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका और श्री रामकुमार भुवालका के साथ तीसरी यात्रा का मौका मिला । इस बार हम नई दुनिया देखने निकले । भारत सरकार ने उस वर्ष एक योजना बनाई थी कि ससद सदस्य साठ दिनो तक किसी विशेष विषय के अध्ययन के लिए विदेश भ्रमण कर सकते है । खर्च निजी रहेगा, विदेशी मुद्रा की स्वीकृति सरकार देगी । हम ने यात्रा के पूर्व अपना कार्य-क्रम बना लिया और अपने विदेश मत्रालय को निर्दिष्ट स्थानो के साथ प्रोग्राम भी दे दिया । तदनुसार मत्रालय ने विदेशो मे अपने दूतावासो को हमारी उचित सहायता और व्यवस्था के लिए पूर्व निर्देश भेज दिया । इससे बडी सुविधा रही । हम जहा भी गए हमे मार्गदर्शन मिला, अन्यथा इतनी अल्प अवधि मे हम जिन देशो मे गए उनकी आर्थिक व्यवस्था और औद्योगिक विकास की जानकरी प्राप्त करना सभव न था ।

इस तीसरी यात्रा मे हमे कुल ५२ दिन लगे । हम ने परिक्रमा प्रारभ की पूर्व से यानी बरमा, सिंगापुर, हागकाग होते हुए जापान पहुचे और वहा से होनोलूलू होते हुए अमरीका । स्वदेश लौटने के लिए अमरीका से हम पूर्व की ओर उडे और यूरोप होते हुए लेबनान गए । यहा से मैं पाकिस्तान चला गया और मेरे दोनो साथी सीधे भारत आए । अमरीका मे हम ने देखा, उस का इतिहास अभी बन रहा है, एक नई संस्कृति पनप रही है जो पुरानी दुनिया एशिया और यूरोप से बहुत अशो मे भिन्न है । यूरोप मे इस बार देखा, युद्धजर्जरित राष्ट्र अवसाद और अनिश्चय के अधकार से उठ खडे हुए है । यह भी देखा कि उन की सस्कृति ने जहा नई दुनिया को कभी प्रभावित किया था, आज उन पर उलटा अमरीका का प्रभाव पड रहा है । इन यात्रा लेखो मे सस्कृति और इतिहास के साथ-साथ आर्थिक विषयो की भी चर्चा है ।

पर्यटन अथवा देशाटन समय सापेक्ष है । विश्व के बडे-बडे शहरो को अच्छी तरह देख पाना और वहा के जनजीवन की गतिविधियो से पूर्ण परिचित होना, थोडे से समय मे सभव नही । ऐसी स्थिति मे यात्रा से पहले, लक्ष्य, उद्देश्य और स्थान निश्चित कर लेने से समय और पैसे—दोनो की बचत होती है ।

देशाटन मे रुचि रखने वाले मेरे मित्र अकसर विदेशो के यात्रा सबधी सभावित खर्च के बारे मे मुझसे पूछते है । मेरा अनुभव है, व्यय की न तो निर्धारित सीमा है और न कोई मापदड । यह तो सपूर्ण रूप से अपने मन और साधन पर निर्भर करता है । अतएव मेरी राय मे मध्यम वर्ग मार्ग ही सबसे अच्छा है ।

विदेशो मे होटलो के चार्जो मे बहुत अन्तर है। डीलक्स होटलो मे दैनिक १०० मे ४०० रुपए तक तो केवल रहने का ही चार्ज है, भोजन और नाश्ते के खर्च अलग। हमारे देश की तरह वहाँ धर्मशालाए नही है इसलिए आवास की व्यवस्था नितात आवश्यक है। विदेशो मे यदि मध्यम श्रेणी के होटलो मे ठहरा जाय और बिना खास जरूरत के टैक्सी की सवारी न की जाय तो कुल मिलाकर औसतन ६० रुपए प्रतिदिन मे आसानी से काम चल सकता है। इकानामिक होटल अथवा यूथ होस्टलो मे आवास लेने पर दैनिक खर्च मे २० रुपये की बचत हो सकती है। वैसे अलग-अलग शहरो मे थोडा बहुत अन्तर रहता ही है।

यह कोई जरूरी नही कि विदेशो मे शराब पीनी ही पडेगी या आमिष भोजन के बगैरह चल नही सकता। निरामिष भोजन प्राय हर जगह मिलते है। थोडी सी सावधानी बरतने की जरूरत है, क्योकि वहा अडे या चरबी को निरामिष भोजन मे ही शामिल कर लेते है, बल्कि कही-कही दूध को सामिष आहार मानते है। जो भी हो, बडे-बडे शहरो मे ऐसे बहुत से रेस्तोरा है, जहा केवल निरामिष भोजन मिलता है।

वर्णभेद का जिक्र भी कई मित्रो ने किया है। मेरा ख्याल है कि यह एक स्थानीय समस्या है जो कम होती जा रही है। मैने भी सुना था कि अमरीका मे यह काफी जटिल समस्या है, पर मै वहा पश्चिम से पूर्व तक जहा कही भी गया, रगभेद के कारण कोई कठिनाई मेरे सामने नही आई। हा मैने यह अवश्य देखा कि नीग्रो और श्वेत अमरीकियो के बीच रगभेद को लेकर कुछ तनाव सा रहता है, जिसके आर्थिक के सिवा दूसरे अन्य कारण भी है जिनका वर्णन मेरे कई लेखो मे मिलेगा। पर विदेशी पर्यटको को इससे कोई असुविधा नही होती।

विदेशो की यात्रा पर जाने वाले पर्यटको का ध्यान एक विशेष बात पर आकर्षित करना चाहूगा। प्रत्येक भारतीय को ख्याल रहे कि वह विदेशो मे अपने देश का सास्कृतिक दूत अथवा प्रतिनिधि है, एक पर्यटक मात्र नही। हमारे देश के प्रति विदेशो मे, खास तौर पर अमरीका और यूरोप मे, विशेष जिज्ञासा रहती है। इसका कारण यह है कि हमारी सभ्यता और सस्कृति के प्रति इन महादेशो मे आकर्षण है। वहा पादरियो द्वारा फैलाए हुए अनेक प्रकार की भ्रातिया है। अतएव, हमे सभावित प्रश्नो के सही उत्तर के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए।

इसलिए मेरा अनुरोध है कि यात्रा से पूर्व हमे भारतीय धर्म, समाज, राजनीति व अर्थव्यवस्था के बारे मे अध्ययन कर लेना चाहिए ताकि प्रश्न के उत्तर ऐसे हो जिससे विदेशो मे हम अपने देश का सही रूप प्रस्तुत कर सके। बहुधा बडप्पन और आधुनिकता के प्रति रुचि और प्रदर्शन के कारण भारतीय यात्री स्वदेश की महिमा और गरिमा को छोटा कर देते है। इसकी प्रतिक्रिया अच्छी नही होती।

व्यक्तिगत आचारविचार और व्यवहार का सयत और मधुर रखना नितात आवश्यक है। पश्चिमी समाज की व्यवस्था हमारे यहा से भिन्न है जरूर, पर इसका यह अर्थ नही कि हम उच्छृखल हो जाए अथवा अपनी मर्यादाए छोड बैठे। कई जगह हमे यह सुनकर बडी ग्लानि हुई कि भारतीयो ने साधारण शिष्टाचार और मर्यादा की न केवल उपेक्षा की बल्कि अपने आचरण से हमारे देश के स्वरूप को विदेशो मे पकिल कर दिया।

अगरेजी की साधारण जानकारी मे सब जगह काम चल जाता है क्योकि एक प्रकार से यह अन्तर्राष्ट्रीय भाषा बन चुकी है। इस का एक कारण यह है कि अमरीकी सबसे अधिक घुमक्कड है और इनकी भाषा अगरेजी है। लिहाजा, पर्यटन व्यवसाय के प्रसार से अगरेजी की जानकारी सभी देशो मे थोडी बहुत जरूरी हो गई है। फिर भी जिस किसी देश मे जाए, वहा की शब्दावली की एक छोटी सी पुस्तिका साथ रखने से सुविधा हो जाती है। इसके लिए छोटी-छोटी गाइड बुक्स बडी सहायक होती है, क्योकि उनमे उस देश की आवश्यक नियमावली, वहा के दर्शनीय स्थान, होटल, यातायात, भोजन आदि की व्यय सबधी सूचनाए तथा साथ ही स्थानीय शब्द एव प्रयोजनीय वाक्य भी रहते है।

सामान सिर्फ जरूरत का रखे । सफर मे जितनी चीजे कम होगी उतनी ही सुविधा रहेगी । विदेशो मे,खासतौर पर अमरीका और यूरोप मे पोर्टर (भारवाही) सब जगह नही मिलते, यदि मिले भी तो उनकी मजदूरी बहुत ज्यादा है । हमने देखा कि वृद्धाए तक अपना सामान स्वय ले जाती है ।

पासपोर्ट और वीसा पर्यटक को बहुत सावधानी से रखना चाहिए, इसके बिना बहुत बडी दिक्कत आ जाती है । टामस कुक, 'अमेरिकन एक्सप्रेस' और भारतीय बैको के ट्रेवलर्स चैक नगदी रकम के एवज मे साथ रखने चाहिए । ऐसे चेको के चोरी जाने का भय नही रहता । हर शहर मे ये भुनाए जा सकते है इसलिए स्थानीय मुद्रा आसानी से मिल जाती है ।

ठग और चोर उचक्के यूरोप को छोड कर सभी देशो मे है । इनसे सावधान रहने की अत्यत आवश्यकता है । हलके दर्जे के नाइट क्लब, रेस्तोरा और बार मे स्त्रियो के रोमास की ओट मे ये शिकार खेलते है । तरह-तरह के जुए और शराब की उत्तेजना मे मानसिक सतुलन बिगाड कर जाल मे फसा लेना इनके लिए साधारण बात है ।

इन लेखो के प्रकाशन के साथ समय-समय पर मुझे पाठको के पत्र मिलते रहे है । इन मे आलोचनाए रही है और सुझाव भी । अधिकाश पाठको ने प्रसशा के पत्र लिखे है, किन्तु इन्ही मे कइयो ने उलाहना भी दिया है कि साम्यवाद के प्रति मैने अनुदार दृष्टिकोण रखा है । वस्तुत बात ऐसी है नही ।

साम्यवाद का सबध मानव समाज की विकसित सभ्यता और सस्कृति से रहा है, युगो से । समय-समय पर ससार की महान विभूतियो ने इस भावना का प्रचार किया है । इस की उपलब्धि के लिए जनसमाज को अनुप्राणित किया है । वेद और उपनिषदो का उल्लेख इस सबध मे हो सकता है अतिरजित माना जाए । फिर भी, यह तो सभी स्वीकार करेगे कि बुद्ध, मूसा, ईसा, मुहम्मद, नानक, विवेकानन्द और विनोबा ने अपरिग्रह और समता का ही प्रतिपादन किया है । पिछली शताब्दी के अतिम चरण मे, यूरोप मे औद्योगीकरण की कल्पनातीत प्रगति के साथ मानव समाज का दृष्टिकोण भौतिकवादी हो उठा । पार्थिव सुख और साधन की उपलब्धि को जीवन का लक्ष्य माना जाने लगा । फलत भोग प्रधान सस्कृति त्याग की भावना पर छा गई । स्वार्थ की प्रवृत्ति बढी और शोषण एक साधन बन गया । सघर्ष होना स्वाभाविक था । इसी परिपेक्ष्य मे साम्यवाद का प्रतिपादन कार्ल-मार्क्स ने जिस रूप मे किया है, वह सर्वथा नवीन ही कहा जाएगा ।

मार्क्स ने साम्यवाद की प्रतिष्ठा के लिए जिस सामाजिक व्यवस्था को निदान माना है, उस मे सहिष्णुता के स्थान पर बल प्रयोग और सघर्ष को प्रधानता दी गई है । प्राचीन मान्यता रही है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति स्वय का शोधन करे और 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के तत्त्व को समझे, जब कि मार्क्स के नए विधान के अनुसार साम्यवाद की सिद्धि के लिए व्यक्ति का कोई महत्त्व नही । यह नई विचारधारा, साम्यवाद को बलात् समाज और देश पर लादना आवश्यक मानती है । इसी को मार्क्सवादी 'क्राति' की सज्ञा देते है । इतिहास बताएगा, कौन सा मार्ग सही है साम्यवाद की प्रतिष्ठा के लिए—नया अथवा पुराना ।

अमरिका और रूस—दोनो ही देशो मे जाने का सुयोग मुझे मिला । भारतीय दूतावासो के सहयोग से, वहा के विशेष अर्थशास्त्रियो से भी विचारविमर्श का अवसर मिला । इन दोनो देशो मे व्यक्ति और समाज का जैसा रूप मेरे सामने आया, उसे मैने अविकल प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । हो सकता है, मेरे मानस की प्रतिक्रिया पाठको को प्रत्यक्ष या परोक्ष आलोचना सी लगे, इसे मै अस्वीकार नही करता ।

मै साहित्यिक नही हू, हा साहित्यानुरागी अवश्य हू । इस युग के शीर्ष साहित्यकारो के निकट रहने का सौभाग्य रहा है, इसी कारण, अपने विचारो को लिपिबद्ध करने की प्रेरणा मिली है ।

मेरा यह प्रयास कैसा बन पाया है, यह पाठकवर्ग की सम्मति पर निर्भर करता है। इतना भर कहना चाहूगा कि इन लेखों के लिखने मे काफी परिश्रम करना पडा है। टिप्पणियो को तरतीब से जोड कर लेख तैयार करने मे कभी-कभी तो पाच-सात दिन तक लगे। फिर, इन्हे हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकार एव विद्वान श्री मैथिलीशरण गुप्त, डाक्टर नगेद्र, श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी आदि को दिखाता रहा और उनसे परामर्श भी लेता रहा। देश के विशिष्ट नेता, ससद सदस्य श्री गगाशरण, सरिता के सपादक श्री विश्वनाथ और श्री बालकृष्ण गर्ग के प्रति यदि आभार प्रकट करता हू तो यह एक औपचारिकता का निर्वाह मात्र होगा, क्योकि ये मेरे अनन्य मित्रो मे हैं। मगर यह भी सही है कि इन के प्रोत्साहन के बिना इतने लेख शायद ही लिख पाता। अन्य कार्यो मे व्यस्त रहने पर भी मुझे इनके तकाजे के सामने झुकना ही पडता था।

देश मे सरिता का एक बडा पाठक वर्ग है, विशेषत शिक्षित महिलाओ मे। इन्होंने भी मेरा उत्साह बढाया है।

जहा तक बन पाया है, विवरण और आकडे सही रूप मे प्रस्तुत करने की चेष्टा रही है, फिर भी सभव है कि गलतिया रह गई हो। इसके लिए आपके सुझावो का उपयोग अगले सस्करण मे करूगा।

जनभारती के अक्षय और विशाल कोष मे पर्यटन साहित्य का यह अर्घ्य यदि स्थान पा सका तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूगा।
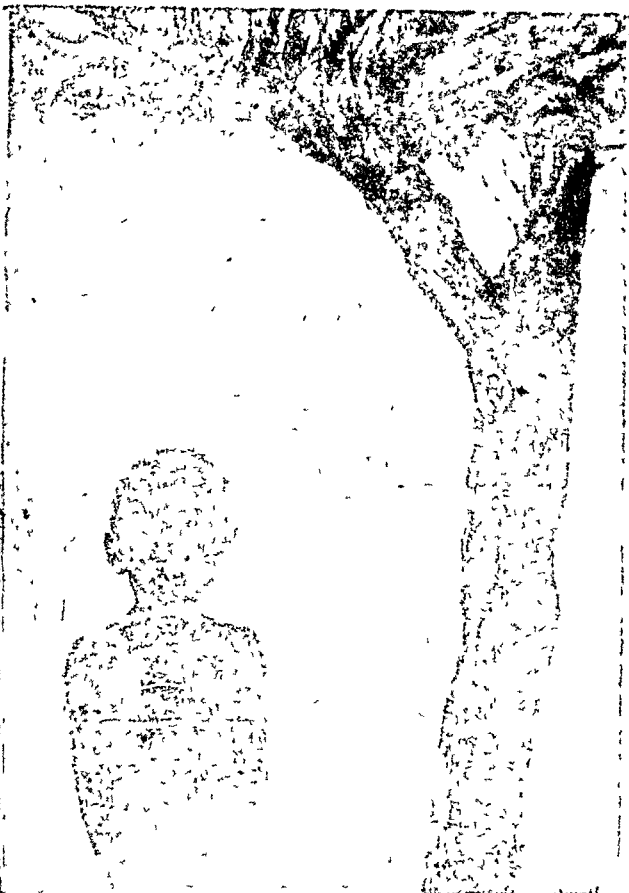
रामेश्वर टांटिय

चीनी कम्युनिज्म के चक्रव्यूह में

बर्मा

बात कुछ अजीब सी है, पर है सच। जो जहाँ रहता है, वहाँ की या पासपडोस की चीजो के लिए उसमे आकर्षण कम रहता है। मुझे दिल्ली मे रहते दस वर्ष हो गए। मेरे यहाँ मेहमान आते है, कुतुबमीनार, लालकिला, बुद्ध मदिर, हुमायू का मकबरा, ससदभवन तथा अन्यान्य ऐतिहासिक स्थलो को दोतीन दिनो मे देख लेते है, मुझ से इनके बारे मे बातचीत करते है। सब तरह के साधन मेरे पास हैं, पर मैं अभी तक दिल्ली की ऐतिहासिक इमारतो को नही देख पाया हू। मेरे मित्र और मेहमानो को सहसा विश्वास नही होता, मगर बात सच है। इस की वजह है, मैं हमेशा सोचता रहा कि यही तो हू, कभी देख लूगा। दो बार विदेशो का चक्कर लगा चुका हू। सुदूर उत्तरी ध्रुवाचल में मध्यरात्रि का सूर्य देखने नारविक चला गया, स्विट्जरलैण्ड में आल्प्स की हिमानी शैल मालाओ पर चढ आया, पर बर्मा अभी तक छूटा हुआ था।

मगर इसका यह अर्थ नही कि बर्मा देखने की इच्छा नही थी। बचपन मे इसके बारे मे बहुत कुछ सुना करता था। रगूनी हीरे, बर्मी सोना, बर्मी टीक (सागवान) की बडी तारीफ और कद्र थी। सन १६३७ तक तो वह भारत का ही अग था। भारतीयो का अबाध आवागमन और व्यापार यहाँ था। हमारे कई सगेसबधी यहा स्थायी रूप से रहते थे। स्कूलो मे भारत का नक्शा बनाने पर बर्मा भी उसमे रहता था। बचपन मे जिस विचार अथवा बात का रेखांकन मानस मे हो जाता है, वह सहज मे मिटती नही। यही वजह है कि आज भी पाकिस्तान, श्रीलंका और बर्मा हमारे लिए राजनीतिक कारणो से विदेश भले ही हो गए हो, पर मन तो अब भी इन्हे स्वदेश का ही अभिन्न अग समझता है। खैर, वह वक्त भी आया जब सन १६६४ की जुलाई मे हमारी विश्व यात्रा का प्रथम चरण बर्मा था।

कलकत्ते से रगून केवल डेढ घंटे की उडान है। मानसूनी मौसम के कारण दमदम अड्डे पर हवाई जहाज को रुक जाना पडा। मै एयरपोर्ट मे बैठाबैठा ऊब रहा था, सोच रहा था कि विज्ञान का दावा है प्रकृति पर विजय पाने का, लेकिन जरा बादल घिर आए, जोरो की वर्षा हुई, और वायुयान की उडान बद! विज्ञान असहाय! खुद ही अपने उतावलेपन पर हसी आ गई। एक वह भी समय था जब कलकत्ते और मद्रास से रगून के लिए जहाजो मे बैठकर आठदस दिनो का समुद्रीसफर करते हुए लोग नही थकते थे। राजस्थान से हमारे ही पूर्वज रगून जाया करते थे जिन्हे कुल मिला कर तीनचार महीने लग जाते थे। ज्यादा नही, सिर्फ सौ वर्ष पहले की ही तो बात है।

मन बहलाने की कोशिश करने लगा। भारत और बर्मा के पारस्परिक सबध की मधुर स्मृतियो के पन्ने आखो के सामने से गुजरने लगे। कैसी विडबना है ! मनुष्य राजनीति को जन्म देता है, फिर उसी की पैनी धार मे अपनी गरदन नपवा लेता है। ३० वर्षो मे इसी राजनीति के कुटिल हास्य ने भारत को खडित करके बर्मा, पाकिस्तान और श्रीलका बना दिया। कल तक ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जो भारतीय कदम मिला कर सघर्ष करते थे आज वे बर्मी, पाकिस्तानी और सिहली कहलाते है। भारत से उनका असहयोग है और भारतीयो से मनमुटाव !

बैठे-बैठे मन बोझिल हो रहा था। बर्मावासी बहुत से भारतीयो की चिट्ठिया हमे मिली थी। वे सकट मे थे। बर्मा सरकार उनके प्रति उचित न्याय नही कर रही थी, यह उनकी शिकायत थी। इसीलिए हमने अपनी यात्रा की पहली मजिल के रूप मे रगून को चुना था। सूचना मिली, वायुयान छूटने वाला है। मन का भार कम हुआ। तेजी से कदम बढाता हुआ अपनी सीट पर बैठ गया। चद मिनटो मे ही दमदम हवाई अड्डा पीछे छूट गया था। रगून पहुच कर देखा, हवाई अड्डे पर बडी सख्या मे भारतीय हमारे लिए प्रतीक्षा मे खडे है। इनमे राजस्थानी स्त्री-पुरुष अधिक थे। रामकुमारजी ने धीरे से कहा, ये लोग कितनी आशा और भरोसा लिए आए है। हम यदि इनके लिए कुछ भी कर पाए तो बहुत बडी सेवा होगी। मैने कहा, नई दिल्ली मे इन के लिए हमने जो थोडा सा प्रयत्न किया उस के लिए इतना स्नेह और विश्वास इन का हम पाएगे, इसकी आशा मुझे नही थी। कुछ दिनो पहले हम ने बर्मा के प्रवासियो के प्रतिनिधियो की स्वर्गीय प्रधान मत्री श्री शास्त्री और विदेश मत्री से मुलाकात करा दी थी। इन की कठिनाइयो का समाधान कुछ अशो तक हो सका था।

रगून एयर पोर्ट काफी अच्छा और बडा है पर दमदम जैसा नही, उतना व्यस्त भी नही। यहा हम ने लक्ष्य किया कि लोग प्रेम से जरूर मिले लेकिन सब के चेहरे पर भय और उदासी की छाया थी। वे बात करते भी डरते थे, इधरउधर देख लेते थे कि कही कोई गुप्तचर तो नही है। बर्मा मे पिछले दो वर्षो मे जनरल नेविन का शासन है, जो कम्युनिज्म के बहुत ही निकट है। बैक और बीमा व्यवसाय के साथसाथ उद्योगधधे और दुकाने भी सरकार ने ले ली है। बर्मा मे सदैव से विदेशी श्रम और पूजी, उद्योग-धधे और शिल्प मे लगाई जाती रही है। आधुनिक बर्मा को तो भारतीय श्रम और पूजी का ही अवदान कहना चाहिए।

आम तौर पर बर्मी मस्तमौजी जीव है। जिदगी के उतारचढाव को वहा की औरते सभालती है, मर्द तो मुह मे चुरुट दबाए दीवारो के सहारे ऊघते है। प्रकृति ने देश का शृगार कर दिया है। धरती अन्नपूर्णा और रत्नगर्भा है। विश्व के चावल निर्यात करने वाले देशो मे बर्मा प्रमुख है। यहा के लाल, नीलम, पन्ने और जेड ससार मे बेजोड है। रबर और सागवान के जगल धन बरसाते है। यहा की खानो मे पेट्रोल, टीन और चादी प्रचुर मात्रा मे है। आबादी करीब दो करोड है और क्षेत्रफल २,६१,८०० वर्ग मील।

इतने नैसर्गिक साधन होने हुए भी बर्मा विश्व के इतिहास मे कभी स्थान नही बना पाया। चिरकाल से ही विदेशियो ने इसे लूटा और शोषित किया। कुछ वहा बस भी गए। बर्मा के रक्त मे मगोलीय धारा प्रमुख है। इन के यहाँ का इतिहास बताता है कि हजारो वर्ष पूर्व तिब्बती, अरुणाचल (नेफा) के मार्ग से यहा के उत्तरी भाग मे आ बसे थे। इस के बाद उत्तरी सीमा से चीनी बराबर घुसपैठ करते रहे, आज भी उन का यह क्रम जारी है। इन्ही कारणो से उत्तरी बर्मा मे करेन, काचिन, काया आदि अनेक उपजातिया है। भाषा और सस्कार की दृष्टि से इन मे भेद है। इन मे पारस्परिक समन्वय की स्वस्थ प्रक्रिया धीरे-धीरे हो रही थी, पर अब शायद यह सिलसिला कम्युनिस्ट विचारधारा के कारण शिथिल हो जाएगा।

जो भी हो, भारतीयो के पूर्व यहा बसने वाली जातियो ने बर्मा के राष्ट्रीय और आर्थिक

विकास के प्रति रुचि नही रखी। परन्तु भारतीयो ने ऐसा नही किया। वे यहा यह समझ कर नही बसे कि वे विदेश में है अथवा प्रवासी है। इसीलिए भारतीय श्रम और धन की तेज धारा से बर्मा मे वैभव का स्रोत फूट पडा था। पर, आज वहा पर जो भारतीय है, बर्मी उन्हे सदेह की नजर से देखते है और उन्हे बर्मा से हटा देना चाहते है। अब स्थिति यह है कि बहुत से भारतीय बर्मा से चले गये है। कुछ अब भी रह गए है, मगर विशेष कारणो से किसी के सबधी जेलो मे है, किसी को क्लियरेस लाइसेस नही दिया जा रहा है। कामधंधा है नही। जो कुछ पुराना बचा है, उसे बेच कर खर्च चला रहे है। आर्थिक दशा यह है कि बर्मा के रुपए का मूल्य भारतीय अनुपात से तिहाई रह गया है। चीजो के बेचने वाले तो बहुत से है पर खरीदने वाले नही मिलते।

मैंने अपने एक मित्र को एक रॉलेक्स घडी और फ्रास मे बनी गुलाब की रूह खरीदने को कहा। विश्व मे सर्वोत्तम आटोमेटिक क्रोनोमीटर रालेक्स घडी, जो बहुत ही कम बरती गई थी, मुझे डेढ हजार बर्मी रुपयो मे यानी भारतीय मुद्रा के चार सौ पचास रुपए मे मिली। भारत मे इस का मूल्य है बारह सौ से चौदह सौ तक। जिस सज्जन की घडी थी वह कभी लाखो की सपत्ति के मालिक थे। मिल, कारखाने जमीन, मकान सब कुछ था उन का। कम्युनिस्ट शासन की दृष्टि पडी और बिना मुआवजे के सब कुछ सरकारी हो गया। अब तो उन के रोजमर्रा के खर्च के लाले पडे है। मै ने उन से पूछा, "कम्युनिष्ट सरकार ने सभी विदेशियो मे समता रखी होगी।" धीरे से उन्होने कहा, "नही, चीनी अधिक भाग्यवान है, अगरेज व अमरीकी अपनी-अपनी सरकार की मजबूती के कारण निरापद है क्योकि उनके प्रति बर्मी सरकार का जोर जुल्म नही चला, लेकिन दुर्भाग्य है कि हमारा तो खूटा ही कमजोर निकला।"

चलते वक्त उन्होने गुलाब की एक औस रूह मेरे हाथो मे दी। मै इनकार करने लगा तो उन्होने कहा, "अब हम किस बूते और किन कपडो पर इतना कीमती इत्र लगाएगे। फिर यह भी तो है कि कही इस की सुगध किसी गुप्तचर को लगी तो हमें जेल मे ही बद कर दे।" भारतीय यात्री को बर्मा मे ठहरने के लिए सिर्फ २४ घटे का समय मिलता है। इसलिए इच्छा रहते हुए भी मौलमीन, माडले, पेगू आदि स्थानो पर हम नही जा सके और सरसरी तौर पर केवल रगून ही देख पाए। रगून बर्मा की राजधानी है इसलिए सरकारी दफ्तर और विदेशी दूतावास यहीं हैं। बदरगाह होने के नाते यह आयातनिर्यात और उद्योगव्यापार का केद्र है। आबादी है इस की लगभग ८,००,००० । मकान और सडकें व मार्ग बहुत कुछ हमारे मद्रास शहर मे मिलते-जुलते है।

जुलाई का महीना था, गरमी कलकत्ते जैसी ही लग रही थी। दर्शनीय स्थान बहुत से थे पर समय की कमी के कारण सब देखना सभव न था। इस के अलावा यहा एक दिन ठहरने का हमारा उद्देश्य भारतीयो की समस्याओ का प्रत्यक्ष अध्ययन और उन्हे सात्वना देना था। शहर घूमने के कार्यक्रम मे सब से पहले हम श्वेडागन पगोडा (सुवर्ण मदिर) देखने गए। एक पहाडी पर यह बुद्ध मदिर लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व बनाया गया था। समय-समय पर इस मे परिवर्तन होते रहे हैं। कई राजाओ ने इस के विभिन्न अशो को बनवाया है। मदिर मे भगवान बुद्ध के कुछ अवशेष सुरक्षित है। इसलिए विश्व के कोने-कोने से बौद्ध इन के दर्शन के लिए आते है। मदिर के बाहर सैकडो बर्मी लडकिया नाना प्रकार के फूल और पुष्प मालाए पूजन के लिए बेच रही थी। हम ने भी तथागत के पूजन के लिए फूल खरीदे।

मदिर का प्रागण विस्तृत और विशाल है जिस मे हजारो व्यक्ति एक साथ बैठ कर पूजन कर सकते है। शिखर ३२५ फुट ऊचा है, जो काफी दूर से दिखाई देने लगता है। खिलती हुई धूप मे मदिर के शिखर का सोना चमक रहा था। हमारे यहा अमृतसर के स्वर्ण मदिर और काशी के विश्वनाथ मदिर मे भी सोने के कलश और शिखर है, लेकिन श्वेडागन के बुद्ध मदिर मे इन का कोई मुकाबला नही है। यहा के सोने की कीमत करोड़ो रुपयो की है। यह भी सुनने

मे आया कि सैकड़ो टन चादी इस के स्तभो के नीचे है। मदिर की कारीगरी देखता जा रहा था। मेरे एक राजस्थानी मित्र बताते जा रहे थे कि मदिर के प्रति लोगो मे इतनी श्रद्धा है कि यहा कभी चोरी या डकैती नही होती करेनी लूटेरो ने इसे कभी नही लूटा और न जापानी सैनिको ने अपने तीन वर्ष के शासन मे कभी इस के सोने-चादी या रत्नराशि पर नजर डाली। बल्कि वे यहा आकर श्रद्धानत होकर पूजन किया करते थे।

मैं ने कहा, "अब तो कम्युनिस्ट सरकार है। चीन ने गिरजो, मसजिदो और मदिरो को नही छोडा। कही पार्टी के दफ्तर बने तो कही होटल। श्वेडागन के इस वैभव का आकर्षण वे कब तक रोक सकेंगे ?" धीरे से उन्होने मेरी कलाई पर हाथ रख कर चुप रहने का सकेत किया। हम से थोडी ही दूर पर एक बर्मी खभो की नक्काशी देख रहा था या हमारी बाते सुन रहा था, समझ नही सका। हमने मदिर के कक्ष मे प्रवेश करते समय देखा कि वह धीरे-धीरे दूसरी ओर चला जा रहा है।

हम तथागत की मूर्ति के सामने थे। विशाल मूर्ति, भव्य आकृति और उस पर छाया सौम्य भाव एक शात वातावरण की सृष्टि कर रहा था, जिस के परिवेश मे मन खो गया। बर्मा आने पर जो कुछ भी देखा और समझा इस से मन बडा खिन्न था। पर इस मूर्ति के सामने आते ही चित्त हलका हो गया, अवसाद दूर हो गया। सभवत हिंदू होने के नाते मेरे सस्कारो के कारण हो लेकिन प्रसिद्ध लेखक नार्मन लेविस ने भी अपनी पुस्तक 'स्वर्ण देश' मे स्वीकार किया है कि यहा बुद्ध की प्रतिमा के सम्मुख जाने पर वह भावविभोर हो गए और आधे घटे आत्मविस्मृत से रहे, आखो से आसुओ की धार बह निकली।

मदिर मे बौद्ध, श्रमण, सन्यासी और भिक्षु काफी सख्या मे रहते है। अध्ययन और चिंतन ही इन का प्रमुख कार्य है। बर्मा मे ईसाई और इसलाम धर्म का भी प्रचारप्रसार है, फिर भी यहा बौद्ध धर्म प्रमुख है। बर्मा का वर्तमान कम्युनिस्ट शासन धर्म और दान के आधार पर जीवन बिताने वालो को भविष्य मे कितना प्रश्रय देगा, यह तो समय बताएगा।

पगोडा देखने के बाद हम रामकृष्ण हाल मे गए। यहा का पुस्तकालय प्रसिद्ध है। अध्यात्म, दर्शन एव भारत के सबध मे यहा का सग्रह काफी अच्छा है। एक प्रकार से यह पुस्तकालय प्रवासियो के मिलने का स्थान है। रामकृष्ण मिशन की ओर से बर्मा मे बडा ठोस काम हुआ है। अब भी जो कुछ हो रहा है, प्रशसनीय है। लाइब्रेरी देखने के बाद मिशन के स्वामीजी के साथ रामकृष्ण अस्पताल भी देखा। अच्छा बडा भवन है, अस्पताल मे १२२ शैयाए है। बिना भेदभाव के चिकित्सा व शुश्रूषा की व्यवस्था है। देखा, रोगी प्राय बर्मी थे।

स्वामीजी ने अपनी कठिनाइया बताई कि पहले तो भारत से काफी सहायता आती थी, स्थानीय व्यवसायी और सरकार भी खर्च मे मदद पहुचाती थी, पर अब वे सुविधाए नही रही है। मुझे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि स्वामीजी को बर्मा छोडने के लिए कहा जा रहा है। मैं सोचने लगा, सुदूर बग भूमि मे अपनी माबहन और स्वजनो को छोड कर त्यागी और व्रती साधुसन्यासियो पर भी सदेह रखना क्या कम्युनिस्ट प्रथा है ? समता और बधुत्व का बुलद नारा लगाने वाला कम्युनिज्म, क्या इसी प्रकार मानवता की सेवा करेगा ? अस्पताल देख कर हम भारतीय दूतावास पहुचे। साथ साथ बर्मी सरकार के अफसर भी लगे रहे। हम चाहते हुए भी आवश्यक जानकारी नही पा सके।

दोपहर के भोजन का कार्यक्रम कलकत्ते के हमारे मित्र बाबूलाल मुरारका के यहा था। कुछ वर्षो पहले वडे उत्साह से इन्होने यहा नाइलोन की एक बडी फैक्टरी लगाई थी। अब उसे सरकार ने ले लिया है। मुरारकाजी मैनेजर की हैसियत से सरकारी निर्देशानुसार काम देखते है। मुझे जानकारी मिली कि फैक्टरी की उत्पादन क्षमता घट गई है और मुनाफा भी कम हो गया है। भोजन पर रगून के प्रमुख व्यवसायी भी आमत्रित थे। भारत की तरह यहाँ भी उद्योगव्यवसाय मे राजस्थानी ही आगे बढे हुए थे। यहा खास बात देखने मे आई कि कृषि को

भी उद्योग के रूप मे भारतीयो ने सगठित किया है यहा विशेष रूप मे राजस्थानियो के हाथ मे लकडी और चावल की बडीबडी मिले थी, कपडे और गल्ले का व्यवसाय था। पिछले वर्षो मे आयातनिर्यात के क्षेत्र मे भी इनका अच्छा दखल हो गया था। आज हालत यह है कि सब कुछ बर्मी सरकार ने ले लिया हैं। इन मे से कुछ तो जेलो मे है और जो बाहर है वे आतंकित है। मुझे बताया गया कि इनके सामने सब से बडी समस्या है, कि ये अगर स्वदेश लौटे भी तो वहाँ करेगे क्या ? इनकी हजारो की इमारते है, जिन मे से बहुत सी सरकार ने ले ली है। जो बची है उन पर सरकार का नियत्रण है, मुआवजा मिलने का तो सवाल ही नही उठता। सरकारी कानून है कि सपति बेच नही सकते। न जाते बनता है और न छोडते।

मैं ने लक्ष्य किया कि यहा के बहुत से भारतीय इतनी दयनीय अवस्था मे होने पर भी बर्मा छोडना नही चाहते है। बर्मा उन की मातृभूमि बन गई है। भारत उन्होने कभी देखा तक नही। वैधानिक रूप से वहाँ के नागरिक बन भी चुके है। साधारणत राजस्थानी अपनी सस्कृति और परपरा नही छोडते, क्योकि इस के प्रति इन्हे बडा मोह होता हैं। लेकिन यहा देखा कि अन्य भारतीयो की तरह इन मे से कइयो ने बर्मी तौरतरीके अपना लिए है, भाषा और वेशभूषा भी इनकी यही की है, दोचार ने बर्मी औरतो से विवाह कर लिए है।

इतने पर भी सरकार का विश्वास इन पर नही है। मैं हैरान था कि आखिर बात क्या है ? खासकर भारतीयो से इस विद्वेष का मूल कारण क्या है ? यह निश्चित था कि बर्मा के वाणिज्यउद्योग मे भारतीयो का प्रभाव और प्रभुत्व था। सन १९५१ की जनगणना के अनुसार बर्मा की २,००,००,००० की आबादी मे लगभग १०,००,००० भारतीय थे, जो इस समय केवल ३,००,००० रह गये है जिन मे अधिकतर मजदूर है। दूसरी तरफ चीनियो की सख्या इन वर्षो मे दुगनी-तिगुनी हो गई है। आध्र, उत्तर प्रदेश और बिहार से मोटी मजदूरी करने के लिए लोग यहा आए। पजाब के लोग सुदक्ष कारीगर थे और ठेकेदारी करते थे। कुछ व्यापार भी करते थे। राजस्थानी यहा प्रमुख रूप से उद्योगव्यापार के क्षेत्र मे थे। बगाली अधिकतर सरकारी नौकरियो मे और वकीलडाक्टर थे। मद्रास के चेट्टियरो की बडी सख्या यहा थी, जिन का लेनदेन का कारोबार था।

बर्मी भारतीयो की इज्जत करते थे। बर्मी औरते तो विशेष रूप से सचेष्ट रहती थी कि भारतीय उन्हे रख ले या विवाह कर ले, और ऐसा हुआ भी खूब खूल कर। मैने सडको पर घूमते हुए चटगाव के मुसलमानो के साथ सुकुमार बर्मी स्त्रियो को देखा। बर्मा के अराकान प्रदेश मे यह चटगावी मुसलमान भारी सख्या मे बस गए और इन से उत्पन्न सतानो की तादाद भी तेजी से बढी। कुछ वर्ष पूर्व इन मुसलमानो ने अराकान को पाकिस्तान मे मिला देने की माग भी उठाई थी। तब बर्मी सरकार की नीद टूटी और तभी से रोकथाम और चौकसी की जाने लगी है।

बर्मी औरतें अपने मर्द का बडा खयाल रखती हैं। मर्द कमाता है या नही इसकी उन्हे चिता नही, उस का स्वास्थ्य ठीक रहे, यह ज्यादा जरूरी है। खुद बडी मेहनत और बच्चो का लालनपालन करते हुए उसे यह शिकायत नही होती कि उस की कमाई पर मर्द घर बैठा अफीम, चडू के नशे मे है या गप्पबाजीमे मस्त है। बर्मी रीतिरिवाज मे औरतो को तलाक देने की पूरी छूट है। फिर भी बच्चे हो जाने पर वे मातृत्व के कारण जल्दी तलाक नही देती। ऐसी स्थिति मे बर्मी आलसी और निकम्मे हो गए। नशा करना और समय गुजारने के लिए जुआ खेलना उनका धधा बन गया। इन का फ़ायदा मद्रास के चेट्टियरो ने उठाया। ऊँचे सूद की दर पर उन को रूपया देना, फिर उनकी जमीन और सपत्ति बिकवा देना या हडप लेना इनके लिए साधारण सी बात थी। बगाल के लोगो ने भी उन के साथ अच्छा व्यवहार नही किया। शरत बाबू के उपन्यासो मे इस का उल्लेख है। ये बर्मी औरतो से विवाहकर के मौज

उडाते थे। बच्चे बढने लगते तो छोडछाड कर चल देते। भारतीयो के ऐसे आचरण की स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी, वर्मी लोगो के हृदय मे विद्वेष का जग उठना। मन १९३७ मे भारत से वर्मा के पृथक होने से पहले इम मवध मे कोई भी आवाज नही उठती थी। लेकिन बाद मे यह एक जातीय प्रश्न बन गया है और भारतीयो के विरुद्ध भावनामूलक आदोलन बढता गया। पिछले महायुद्ध के बाद बर्मा के स्वतत्र होने पर आदोलन को ज्यादा बल मिला। इसमे विदेशियो का हाथ था, विशेषत इन वर्षो मे चीनियो का।

चीन मे साम्यवादी व्यवस्था कायम होने पर वहा की सरकार ने वर्मा की स्थिति का अच्छा अध्ययन किया जब कि हमारी सरकार ने उदासीनता का रुख अपनाया। चीनियो ने यहा अपने प्रभाव का विस्तार करने के लिए भारतीयो के विरुद्ध आग भडकाई। भारत पचशील के गीत ही अलापता रहा। भारत को जो काम करना चाहिए था चीन ने किया। उस की स्थिति मजबूत बनी। उन के तैयार माल के लिए बाजार मिला और वहा के निवासियो को रोजगार।

आज दस लाख चीनी बर्मा मे है। भारत की तरह पाकिस्तान को भी परेशानी होनी चाहिए थी, पर पाकिस्तान की सरकार सजग रही और उसने चीनियो की नीति का अनुकरण किया। आज उनके प्रति वहा विद्वेष नही है, बल्कि उत्तरी बर्मा मे वे बडी सख्या मे बस गये है। यह सख्या इतनी तेजी से बढने लगी कि बर्मा सरकार को प्रतिबन्ध लगाना पडा। मगर बर्मा का सबध पाकिस्तान से अच्छा ही रहा, जब कि हमारे साथ उतना अच्छा नही कहा जा सकता। इतना सब कुछ होने पर भी भारत सरकार ने सन् १९५९ मे बर्मा को तीस करोड रुपए का ऋण दिया, यू० एन० ओ० मे भी उनके साथ बराबर सुहानुभूति रखी। फिर भी बर्मा सरकार भारतीयो के प्रति अनुचित व्यवहार करने के लिए तैयार है।

भोजन के उपरात श्री गोयनका के साथ हम रगून के अमरीकी अस्पताल को देखने गए। करोडो की लागत से इसे बनाया गया है। मै देख रहा था और सोच रहा था कि यदि वर्तमान कम्युनिष्ट शासन का कुछ आभास भी अमरीका को हो जाता तो शायद वहा की सरकार इसमे इतना धन न लगाती। श्री गोयनका ने बर्मी महिला से शादी की और वेशभूषा भी वह बर्मी ही रखते है। मैने उनसे पूछा, "आप बर्मी हो गए, पर यह तो बताइए कि बर्मी भोजन अपना पाए या नही ?" उन्होने हसकर कहा, "भोजन के मामले मे मै अब भी भारतीय हूँ, क्योकि बर्मी ज्यादातर मासाहारी होते है और चीनियो की तरह मेढक, साप और कीडे भी इनके सुस्वादु व्यजन है।" श्री गोयनका से मैने जानना चाहा कि क्या सभी बर्मी भारतीयो से असतुष्ट है या कम्युनिष्ट विचार धारा के ही ? उन्होने बताया कि भारतीयो के प्रति दुर्भावना का इतना अधिक प्रचार यहा किया गया है कि वह व्यापक हो उठा है, परतु उनकी धारणा है कि यदि भारतीय सरकार प्रयत्नशील हो तो काफी अशो मे स्थिति सुधर सकती है।

ऐसी बात नही कि सारे के सारे बर्मी भारतीयो से घृणा करते है और कम्युनिष्ट शासन और सिद्धान्तो मे विश्वास रखते है। शासन यद्यपि वामपथियो का है फिर भी बहुत से विचारशील व्यक्ति बर्मियो मे से ऐसे है जो अपने देश की वर्तमान व्यवस्था से सतुष्ट नही है। लेकिन न तो वह किसी मच से बोल सकते है और न वहा जनता की भावना को व्यक्त करने के लिए प्रेस को ही स्वतत्रता है। प्राय सभी कम्युनिष्ट देशो का यही तरीका है। बातचीत मे काफी समय लग गया। मगर हमे यथेष्ट निष्पक्ष जानकारी मिली। शाम को चार बजे हमारे जलपान का आयोजन शहर के माडवाडी स्कूल मे था। सब प्रकार की राजस्थानी मिठाइया थी और सैकडो राजस्थानी स्त्री-पुरुष एकत्र थे। रामकुमार जी ने मुझसे कहा कि इन्हे हमसे बहुत बडी आशा है। पता नही हम कहा तक अपनी सरकार के जरिए इनके लिए कुछ कर सकेगे !

रूवी जनरल इश्योरेंस के श्री भट्टर ने हमारे होटल मे ही रात्रि का भोजन आयोजित किया था। दरअसल रंगून मे यही सर्वश्रेष्ठ होटल है। पहले तो यहा कई अच्छेअच्छे होटल थे पर अव दो एक ही बचे है, क्योकि इस समय चीनियो के सिवा अन्य विदेशी यहा बहुत कम ही आते है। भोजन मे विभिन्न क्षेत्र के सौ सवा सौ भारतीय आए थे, कुछ वर्मी भी थे। चहलपहल अच्छी थी, मगर उन्मुक्त वातावरण नही था। सिवा कुशल समाचार और अन्य औपचारिक वातो के दूसरी कोई चर्चा करने का साहस किसी ने नही किया, क्योकि कुछ जासूस होटल के वेयरो के रूप मे ही आसपास टहल रहे थे। वे अग्रेजी के अलावा हिंदी भी समझते थे।

दूसरे दिन एक वजे दोपहर को सिंगापुर जाना निश्चित था। सुबह नाश्ते पर हम श्री सूग के घर गए। वहा आठदस विशिष्ट भारतीय भी निमत्रित थे इनमे से कइयो की जानकारी बर्मी राजनीति के बारे मे अच्छी थी। श्री सूग की किसी समय वकालत की अच्छी प्रैक्टिस थी। सैकडो भारतीय इनके मुवक्किल थे। भारत और बर्मा के पारस्परिक सबध और चीन की गतिविधि पर वाते हुई। मुझे तो ऐसा लगा कि सभवत भारत की उदार अथवा दुर्बल विदेश नीति के कारण बर्मा पर चीन का प्रभाव अधिक पडा। जापानियो के बर्मा से जाने के वाद ऊ आगसान के नेतृत्व मे वहा नई सरकार की स्थापना हुई थी। लेकिन इनके मत्रिमडल के सात सदस्यो की राजनीतिक आततायियो ने एक साथ गोली मारकर हत्या कर दी। सन् १९४८ की ४ जनवरी को बर्मा अग्रेजो द्वारा स्वतत्र घोषित हुआ। प्रथम प्रधान मत्री वने ऊ नू। स्वाधीन बर्मा को जितनी कठिनाइया उठानी पडी शायद ही अन्य किसी राष्ट्र के सामने इतनी समस्याए रही हो। ऊ नू की कार्यकुशलता, निष्ठा और सूझबूझ के कारण धीरे-धीरे समस्याए सुलझ रही थी। वह स्वय समाजवादी विचारधारा के थे, पर उनका विरोध न तो निजी क्षेत्र के व्यापार उद्योग से था और न वह कम्युनिज्म के अध भक्त थे। भारत के पचशील सिद्धात मे उनका अटूट विश्वास था और वह हमारे स्वर्गीय प्रधान मत्री पडित नेहरू के अच्छे मित्रो मे थे।

चीन की राष्ट्रीय सरकार की पराजय के वाद वहा कम्युनिस्ट सरकार का गठन हुआ तो विश्व की राजनीति मे एक नया दौर शुरू हुआ। दक्षिणपूर्व एशिया के सभी राष्ट्रो पर इस का सीधा प्रभाव पडा। चीन के पजे वढने लगे। कम्युनिस्ट चीन ने बर्मा की राजनीति मे अपने चिरपरिचित तरीके को अपनाया। च्याग की हारी हुई सेना के भेस मे पचमागियो की घुसपैठ हुई। केरेन लुटेरों को उकसाया गया, सरकारी खजानो की लूट, रेल, तार व टेलीफोन को अव्यवस्थित करना और हडताले कराना नित्य का क्रम हो गया। भारतीयो के प्रति विद्वेष की आग भडकाई गई। इस तरह शात वातावरण भग हो गया। उद्योगव्यापार ठप्प होने लगे।

इन सब कठिनाइयो के अलावा सन १९५३ मे चावल के भावो मे बहुत बडी मदी आ गई। चावल वर्मा के लिए सोना है। बहुत परिमाण मे इस के निर्यात से विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है मंदी के कारण वर्मा की आर्थिक स्थित डावाडोल हो गई। बर्मी रुपये की साख वाजार मे घट गई। लाल चीन ऐसे ही मौके की ताक मे था। उस ने दवाव डालना शुरू किया। फलत परेशानी की हालत मे अन्य उपाय न देखकर दिसवर १९५६ मे चीन के साथ वर्मा का समझौता हुआ। चीन की कम्युनिस्ट कूटनीति की यह महत्वपूर्ण विजय थी। चीन को वर्मा मे प्रत्यक्ष रूप से इडोनेशिया की तरह हाथपैर फैलाने का अवसर मिल गया स्थिति धीरेधीरे ऊ नू के नियत्रण से वाहर होती जा रही थी। ऊ नू ऊव गए थे। सन १९५८ मे उन्हे जनरल ने विन के पक्ष मे त्यागपत्र देना पडा। फिर भी वह इतने लोकप्रिय थे कि फरवरी १९६० के आम चुनावो मे उन के दल की भारी बहुमत से जीत हुई।

कम्युनिज्म का चुनाव मे विश्वास कभी नही रहा। लाल चीन प्रवल होता जा रहा था।

बर्मा मे उस के एजेंट क्रियाशील थे। २ मार्च, १९६२ को जनरल ने विन ने फौजी ताकत से बर्मी विधान सभा पर कब्जा कर लिया। इस तरह वामपथी फौजी शासन कायम हो गया। पहले तो जनता शासन के दोषो के विरुद्ध आवाज उठा सकती थी। अब वह भी बद हो गया। मौन हो कर जुल्म और अनाचार को सहते रहने के सिवा उनके सामने दूसरा रास्ता नही है। श्री सूग ने बताया कि राष्ट्रपिता ऊ नू को जेल मे डाल दिया गया, और आज तक वह वही है।

उन्होने बताया कि भारत की तरह बर्मा भी त्योहारो का देश है। खूब शौक से यहा के स्त्रीपुरुष उत्सव मनाते है—विशेषत होली का त्योहार (टेवुला) कई दिनो की तैयारी से मनाया जाता है। स्त्रियो और पुरुषो की टोलिया मोटर, व ट्रक पर या पैदल सुगधित जल के छोटेबडे बरतन ले कर निकलती है। मित्रो के घर पहुच कर एकदूसरे को सराबोर कर देते है। दूसरे दिन नाचगाने और जलूसो का आयोजन कर के एकदूसरे से मिलते है। दस बज रहे थे। हमे बाजार से कुछ सामान भी खरीदना था। श्री सूग से विदा मागी। उन्होंने अनुरोध किया कि बर्मा मे इन बातो की चर्चा कही भी न करें। श्री भट्टर हमारे साथ थे। उन्होने हमे हाथी दात और आबनूस की लकडी पर नक्काशी की हुई चीजे दिलाई। हमे जापान और अमरीका के अपने मित्रो को उपहार देना था। करीब १२ बजे हम एयर पोर्ट पहुचे। मै सोच रहा था कि बर्मा सरकार के दिए हुए एक दिन मे भले ही बर्मा घूम न पाया, लेकिन जितना देखा और जाना उतने मे कम्युनिस्ट देश और सरकार का यथेष्ट परिचय मिल गया। एयर पोर्ट पर हमारे स्वागत के लिए जितने लोग आए थे उस से भी अधिक सख्या विदा करने वालो की थी। सब की आँखो मे निराशा थी, सब की आखे नम थी। इन मे से कइयो से तो महज एक दिन की पहचान हो पाई थी। दुःख मे घनिष्ठता बढ जाती है, सुख मे औपचारिकता रहती है। मेरी भी आखो मे न जाने क्यो और कैसे दो बूदे आ गई।

विदा होने से पूर्व ही हमने अपने पुनर्वास मत्री (श्री महावीर त्यागी) को वहा के भारतीयो के कष्टो के बारे मे लिख दिया था। उनका उत्तर भी हमे बाद मे जापान मे मिला कि उन्होने प्रधान मत्री (श्री शास्त्री) से इस पर बात की है और जल्दी ही किसी मत्री को बर्मा भेजा जाएगा तथा बर्मा के प्रधान मत्री श्री नेविन की भारत यात्रा के अवसर पर प्रवासी भारतीयो के बारे मे चर्चा कर उनकी समस्याओ का समाधान किया जाएगा। हम ने यह समाचार बर्मा के भारतीय मित्रो को भेज दिया। एक बजे हमारा विमान सिंगापुर के लिए उडा। मन भारी हो गया। ऐसा लग रहा था जैसे बर्मा की यह प्रथम और अंतिम यात्रा है। खिड़की से नीचे देखा कि नारियल और ताड की झुरमुट से बर्मा की धरती झाक रही है। धीरे-धीरे वह भी आखो से ओझल हो गई।

●

जो एशिया में ही नहीं, विश्व में नया प्रयोग कर रहा है...

मलयेशिया

रगून से चलने के बाद घटा भर मे सिगापुर आ गया । उत्सुकतावश यान की खिडकी से नीचे देखा । सागर तट सोने की पट्टी की तरह लग रहा था । किनारे से सटेसटे पेड हमारे यहां के केरल या कोचीन का सा दृश्य उपस्थित कर रहे थे । मलाया प्रायद्वीप के दक्षिणी छोर पर सिंगापुर का द्वीप है । ऊपर से देखने पर ही अदाजा होता है कि घनी बस्ती है और बडा बंदरगाह है ।

एयरपोर्ट बडा अच्छा है । होना स्वाभाविक भी है क्योकि सिंगापुर दक्षिण-पूर्व एशिया का सगम स्थल है।वायुयान से उतरते हुए हम नेदेखा हमारे मित्र श्री सराफ और श्री माहेश्वरी मुसकराते हुए हमारी ओर आ रहे है । कलकत्ता मे चौरगी पर 'सराफ्स कारपेटस्' इन का प्रतिष्ठान है । यहां भी गलीचो का कारोबार काफी बड़ा है।आयातनिर्यात के अच्छे व्यापारी होने के कारण व्यवसाय के क्षेत्र मे इन की ऊची साख है ।

ट्रैवेल एजेट ने पहले ही से हमारे आवास की व्यवस्था होटल मे कर रखी थी । परतु सराफजी के आग्रह को हम टाल न सके, उन्ही के मेहमान बने । हमने उन्हे बताया कि यद्यपि हमारी यात्रा का उद्देश्य विदेशो की आर्थिक व्यवस्था और स्थिति का अध्ययन करना है, किंतु व्यक्तिगत रूप से यहा के जनजीवन को जाननेसमझने के प्रति भी हमारी रुचि है । मै जानता था कि जितना समय हमारे पास है, उस मे मलाया के जनजीवन की पूरी जानकारी पाना सभव नही । सिंगापुर तो मलयेशिया सघ का एक राज्य मात्र है । अतएव इस सघ के अन्य राज़्यो को देखने के लिए पर्याप्त समय चाहिए । श्री माहेश्वरी ने हमे बताया कि सपुट मे यहा मलयेशिया के बारे मे जाना जा सकता है क्योकि कलकत्ता की तरह सिंगापुर एक ऐसा नगर है जहा मलयेशिया के सभी राज्यो के निवासी है ।

हवाई अड्डे से जाते हुए शहर देखता जा रहा था । जुलाई का महीना था । तीसरे पहर की धूप मे जैसी परेशानी कलकत्ता मे रहती है, वैसी यहा नही थी । शायद द्वीप होने के कारण हवा नम थी । शहर अच्छा लगा, रगून से कही अच्छा । सडकों पर कहीकही लबेचौडे सिख पुलिस की वरदी मे बडे आकर्षक लगे । गुरखे सिपाही और भारतीय तो इतने दिखाई पडे कि कभीकभी तो यह नही लगता था कि हम मलयेशिया के किसी शहर मे गुजर रहे है ।

सिंगापुर का क्षेत्रफल सिर्फ २६२ वर्ग मील है । इसे एक अगरेज, सर रैफेल्स ने १८१६ ई० मे बसाया था । इस के पहले यह छोटा सा द्वीप, दलदल और जगलो से भरा था । समुद्री डाकुओ का अड्डा था जो मलक्का से गुजरते हुए जहाजो पर छापा मारते थे । इन मे चीनी

डाकुओ के गिरोह तो बडे ही खतरनाक माने जाते थे। मेरा ख्याल है, सिंगापुर का इतिहास निश्चय ही इस से पुराना रहा होगा, क्योंकि दक्षिण मे जावा, सुमात्रा बाली आदि द्वीप और उत्तर मे जोहोर, पेनाग आदि के सिवा स्याम, कबोडिया—इन सबो मे भारतीय सस्कृति और सस्कार थे—अब भी हैं। स्वय सिंगापुर का नाम भी बताता है कि यह सिंहपुर रहा होगा।

शहर घना बसा है। प्राय सभी पूर्वी देशो मे इसी ढग की घनी आबादी होती है, अपने देश मे भी ऐसा ही है। फिर भी सिंगापुर को देखने पर यह लगता है कि शहर योजनाबद्ध रूप से बसाया गया है। सडके साफसुथरी और चौडी, दोनो किनारो पर छायादार वृक्षो की कतारे और उन के पीछे मकान। यू तू आधुनिक सभी बडे, शहर एक से लगते है। ट्राम बस. ट्रेन, म्युजियम, सिनमा, थियेटर, होटल,रेस्तरा, बाजार या ताप नियत्रित ऊचे बडे मकान, यूरोप. एशिया या अमरीका के सभी शहरो में प्राय एक से ही है। अतएव, शहर का आकर्षण हमारे लिए कोई खास नही था।

मै कुछ और ही जानना चाहता था। मलयेशिया एशिया से ही नही, बल्कि विश्व मे एक अभिनव प्रयोग कर रहा है चीनी, मलायी और भारतीय—इन तीन विभिन्न राष्ट्रो या जातियो का समन्वय। स्विट्जरलैड मे जरमन, फ्रैंच और इतालियनो का सफल समन्वय हुआ है। वह सहज था, क्योंकि तीनो ही पडोसी राष्ट्र रहे है, ईसाई है और इन मे सदियों से पारस्परिक रक्त सम्मिश्रण भी होता रहा है। मलयेशिया की प्रयोगशाला मे ठीक इस के विपरीत तत्त्व हैं क्योकि भाषा, सस्कृति, इतिहास, धर्म और रक्त एकदूसरे से पृथक है। देखना यही था कि अनेक को एक बनाने मे इन्हे कहा तक सफलता मिली है।

अपने मेजमानो के घर पहुचा। हाथमुह धो कर ताजा हो लिया। चाय-नाश्ता करते हुए मैं ने शहर के दर्शनीय स्थानो के बारे मे पूछा। अन्य लोग भी हमारे आने का समाचार पा कर आ गए थे। टाइगरबाम गार्डन, रैफेल्स प्लेस, चेगी समुद्रतट, म्युजियम, जामा मसजिद, बदरगाह, फोर्ट कैनिंग हिल आदि नाम आए। सलाह यह भी दी गई कि मलाया के अन्य राज्य, विशेष रूप से पेनाग, केडा और जोहोर देख लिए जाए, और कही नही तो मलयेशिया की राजधानी क्वालालपुर तो जरूर। एक मित्र ने कहा कि जब आप मलयेशिया आए है तो यहा के घने दलदली जगल अवश्य देख कर जाइए, आप को अनेक तरह के साप और बडेबडे अजगर देखने को मिलेगे। उडने वाले साप भी शायद देख पाए।

स्नेहपूर्ण वातावरण था। हम समझ नही पा रहे थे कि क्या देखे और क्या नही। समय सीमित था। इसके अलावा आर्थिक परिस्थिति के अध्ययन के लिए भी लोगो से मिलनाजुलना जरूरी था। श्रीमती सराफ ने कार्यक्रम बनाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते हुए कहा, "पुरुषो को अपने कामकाज से फुरसत कम रहती है, अतएव इन सब बातो मे इन का निर्णय सही नही रहता। इन्हे क्या पता कि जितना समय है, उस मे किन स्थानो को प्राथमिकता देनी चाहिए या सिगापुर मे किन चीजो की खरीददारी हो। यह सब काम तो हम महिलाओ का है।" उन्होने हमारे लिए कार्यक्रम बना दिया। दूसरे दिन सुबह से निकलना तय हुआ। अब दूसरे साथी विश्राम चाहते थे, पर मेरे लिए विदेश मे आकर घर मे बैठे रहना कैद था। शाम हो रही थी। रात्रि के भोजन के पूर्व वापस आना था। चारपाच घटे का समय मिल गया। निकल पडा खुद ही शहर घूमने। आवागमन के लिए नएपुराने सभी तरह के साधन सिगापुर मे है। यूरोप के बडे शहरो की तरह ये महगे नही है, बल्कि कलकत्ता की तरह यहा भी सवारिया सस्ती है। साइकिलरिक्शा और टैक्सी भी बहुत है यात्री चाहे तो अपनी गाडी खुद ला सकते है, किसी प्रकार का प्रतिबध नही है। वैसे तीस पैंतीस रुपये प्रति दिन मे गाडिया किराए पर मिल जाती है।

पैदल ही घूमता हुआ एक चौराहे पर आ गया। भाषा के कारण यहा कठिनाई नही होती। कुलीमजदूर तक चाहे भारतीय, मलायी या चीनी हो, अग्रेजी समझ और बोल लेते

है। चौराहे पर एक टैक्सी मे जा बैठा। "दी माह ना ? (कहा)" मलायी भाषा मे टैक्सी ड्राइवर ने कहा। मैं ने उसे अंग्रेजी मे बताया कि भारतीय हू। डिनर टाइम के पहले सिंगापुर का जो हिस्सा चाहो दिखा दो।बेचारा कुछ चकित सा हो गया। अपनी घडी देखते हुए उस ने कहा, "रैफेल म्युजियम साढे पाच बजे बद हो जाता है, इसी प्रकार दूसरे दर्शनीय स्थान भी। हमारा बदरगाह बहुत बडा है और अच्छा भी, चलेगे ?" मेरी रुचि उस ओर न समझ कर उस ने कहा, "चलिए आप को चेगी का समुद्रतट दिखा लाऊ। कुछ दूर तो जरूर है करीब चालीसपैतालिस मिनट लगते है जाने मे।" मै ने स्वीकृति दे दी। टैक्सी नार्थ ब्रिज रोड से पूर्व की ओर बढने लगी। ड्राइवर तमीजदार था। बातचीत से पता चला कि पढालिखा है और आगे पढने की भी इच्छा है। बूढा बीमार बाप है, घर के खर्च का बोझ है, इसी लिए टैक्सी चला रहा है। रास्ते मे एक देहात सा दिखाई पडा। यहा का रहनसहन देखना चाहता था। टैक्सी रुकवा दी। बस्ती सडक से सटी हुई थी, भारतीय गाव जैसी। मगर सफाई ज्यादा लगी। बास की चौडी पट्टियो की दीवारो पर फूस के छाजन। मलाया मे मकान जमीन की सतह से कुछ ऊचे बनाए जाते है। प्राय सभी घरो के पास फूल पौधे लगे थे। नारियल के पेड तो बहुत थे। मै ने एक हरा नारियल लाने के लिए अहमद (ड्राइवर) से कहा। इस बीच, गाव के लडकेलडकियो ने मेरे इर्दगिर्द घेरा डाल दिया। गाव वालो मे कुछ दक्षिण भारत के भी थे, दोएक चीनी परिवार भी। मुखिया भी आ गया। अच्छी आवभगत की। अगरेजी थोडी बहुत समझ लेता था। फिर भी अहमद ने दुभाषिए का काम किया।

उन की आपसी बातचीत मे भाषा और शब्दो पर मैं गौर कर रहा था। युग, अनेक राजा, रस, पुस्तक आदि अनेक शब्द बता रहे थे कि पिछले ५००वर्षो के इसलामी प्रभाव मे भी मलाया की धरती से भारतीय सस्कृति मिटी नही। यदि हमारी ओर से, विशेषत हमारे धार्मिक नेतृवर्ग की ओर से जरा भी चेष्टा रहती तो दक्षिणपूर्वी एशियाई देशो से न केवल हमारा अविच्छिन्न सपर्क रहता, बल्कि इन्हे हम अपने अभिन्न बधु के रूप मे पाते। दुर्भाग्य यह रहा है कि हमारे जिन पुराणकार या शास्त्रकारो ने पुराण और शास्त्रो मे यह बताया कि भारतीय जलयान द्वीपद्वीपातरो में व्यपार के लिए जाते थे, चक्रवर्ती सम्राट और व्यापारियो का शखनाद वहा गूजा करता था उन्ही पुराणकारो के उत्तराधिकारी पडितो और पुरोहितो ने विदेश यात्रा और समुद्र यात्रा को निषिद्ध करार दिया और वह भी इस हद तक कि जातिच्युत करने का विधान कर दिया। परिणाम यह हुआ कि हमारी प्रेरणा कुठित हो गई और उत्साह ठडा पड गया। इन देशो से हमारा व्यापारिक सपर्क टूटा, रक्त सबध क्षीण हुआ और वहा हमारी सस्कृति की छाया तक धूमिल होती गई। मुखिया से बाते करने पर पता चला कि मलयेशिया के मलायियो का धर्म इस्लाम है, चीनी बौद्ध है और भारतीय हिदू। धर्म को ले कर इन मे आपस मे कभी झगडा नही होता। उस ने यह भी बताया कि उन के यहा रामायण और महाभारत के नृत्य रूपक भी लोकरजन के लिए होते रहते है।

मैं हैरान था। हिदुस्तान के मुसलमान तो रामायणमहाभारत का नाम तक नही लेते। वे अपने को खास अरब, तुर्क, ईरान और मुगलो की औलाद समझते है और सुदूरपूर्व के इस मुसलमानी कौम और देश मे रामलीला, कर्ण, भीष्म, युधिष्ठिर के चरित्र ! इन के नाम भी परमेश्वरी, देवी, कर्ण, सुमित्र आदि ! ! नारियल के दाम चुकाने के लिए पैसे निकाले, लेकिन गाव वालो ने लिए नही। समुद्रतट देखने नही गया, क्योकि वहा मेरे लिए कोई नवीनता नही थी फिर रात भी हो रही थी। अतएव शहर के विभिन्न अचलो का चक्कर लगाता हुआ घर वापस आ गया।

रात्रि के भोजन पर वहा के कई विशिष्ट भारतीय नागरिक आए। उन से पता चला कि मलयेशिया सघ मे व्यपार की सुविधा समान रूप से सभी को है। सिंगापुर मे तो बहुत ही अधिक सुविधा उपलब्ध है, क्योकि हागकाग और जिब्राल्टर की तरह यह भी एक मुक्त

बदरगाह (फ्री पोर्ट) है। आयातनिर्यात पर यहा टैक्स नही और न विक्रय पर ही कर है। आयकर बहुत ही कम है। सब से बडी बात तो यह कि सरकार सब प्रकार से सहयोग देने को तत्पर रहती है। लेकिन उन लोगो को लग रहा था कि चीनियो के बहुसंख्यक होने के कारण सिंगापुर अदूर भविष्य मे मलाया सघ से सभवत पृथक हो जाएगा। बाद मे हुआ भी यही।

दूसरे दिन सुबह साढे नौ बजे ससद भवन देखने जाना था। मै खूब सवेरे उठा। अकेला ही घूमता हुआ टाइगर बाम गार्डन जा पहुचा। टाइगर बाम सिरदर्द की मशहूर दवा है। उसी के नाम पर मालिको ने यह सुरम्य और विशाल उद्यान बनाया है। बाग मे प्लास्टर की बनी सुदर झाकिया है। गुफाए और फूलो के कुजो से सजावट निखर आई है। टाइगर बाम का एक बगीचा हागकाग मे भी हम ने बाद मे देखा। शहर मे एक रमणीय स्थान बन जाने के साथसाथ उनकी दवा का बडे रूप मे विज्ञापन भी हो जाता है।

साढे नौ बजे हम संसद भवन पहुच गए। उन दिनो सत्र चालू नही था लेकिन स्पीकर ने दोचार सदस्यो को हमसे मिलाने के लिए बुलवा लिया था। इन का व्यवहार बहुत सौजन्यपूर्ण था। मैं लक्ष्य कर रहा था कि बर्मा और मलयेशिया मे कितना अतर है। यहा के प्रधान मत्री, तुकु अब्दुल रहमान का स्नेह हमारे देश के प्रति प्रारभ से ही रहा है। उन के साथियो और देशवासियो को भी हम ने इसी भावना से ओतप्रोत पाया। औपचारिक परिचय और चायपान के उपरान्त माननीय स्पीकर महोदय से मलयेशिया की राजनीति, अर्थनीति एव इतिहास इत्यादि पर चर्चा हुई। स्नेहपूर्ण नि सकोच वातावरण कुछ ऐसे ढंग का था कि यह नही मालूम हुआ कि हम विदेश मे बैठे है और विदेशियो से बाते कर रहे हैं।

मलयेशिया अथवा मलाया सघ का इतिहास हमारे यहा से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। भारत की तरह यहा भी राजाओ और सुलतानो का शासन रहा है और पृथकपृथक राज्य रहे हैं। इन मे आपस मे बराबर झगडे तथा युद्ध होते रहे है। अपने प्रभुत्व के लिए राष्ट्रीयता की उपेक्षा कर विदेशियो का सहारा लेने की प्रवृति यहा के सुलतानो मे भी थी। फलत विदेशियो का प्रभाव यहा बढता गया। पहले पुर्तगाली आए, बाद मे डच और सब के अत मे अग्रेज। अग्रेजो की कुशल कूटनीति के सामने पुर्तगाली और डच टिक नही पाए। सपूर्ण मलाया मे एक सार्वभौम शासन न रहने के कारण अग्रेजो को अपने पैर जमाने मे सुविधा हुई। व्यापारी अग्रेज शासक बने और जैसे कि गुलाम राष्ट्रो के प्रति होता है, वही हुआ। ब्रिटेन ने शोषण किया। टिन, रबर, नारियल और मसाले के व्यापार से ब्रिटेन को अपरिमित लाभ हुआ।

एशिया की राजनीति के मच पर जापान प्रथम महायुद्ध के बाद आया। अपने बढते हुए उद्योगो के लिए उसे कच्चे माल की जरूरत पडने लगी और माल बेचने के लिए बाजार चाहिए था। जापान की दृष्टि दक्षिणी एशिया के देशो पर पडी। परतु यहा ब्रिटिश माल के आयात के लिए दूसरे देशो से आयात कर कम था और दूसरी अनेक प्रकार की सुविधाए भी थी, इसलिए जापान के पैर पूरी तौर से नही जम सके। द्वितीय महायुद्ध छिडने पर सन १९४२ मे जापान ने मलाया पर भी हमला किया। जिस मलाया से अरबों का लाभ उठाया, देश को लूटा और चूसा उसे ब्रिटेन ने बिलकुल असहाय छोड दिया। जापानियो का अधिकार यहा तीन, साढे तीन वर्षो तक ही रहा। किंतु इतने ही दिनो मे उन्होंने जो कुछ किया वह वर्णनातीत है। अपने कारखानो के लिए टिन, रबर और कच्चे माल ले जाते रहे। उस के सैनिक अपने तनमन की पाशविक भूख मलाया मे मिटाते रहे। साम्राज्यवादी सभी एक से है चाहे यूरोप के हो या एशिया के।

जापानियो की हार के बाद अग्रेज फिर आ गए। मगर जीत के बाद भी अब विश्व मे इन की साख घट चुकी थी। इन की गिनती द्वितीय श्रेणी की शक्तियो मे हो गई थी। स्वय अग्रेज भी अपने जर्जर देश की समस्याओ मे उलझे थे। चीन मे च्याग काई शेक की सरकार को हटा

कर कम्युनिस्टो ने उसे लाल बना लिया था। प्रथम महायुद्ध के बाद एशिया के देशो का नेता बना था जापान। द्वितीय महायुद्ध के बाद एशिया और अमरीका के देशो का नेता बनना चाहता था लाल चीन।

लाल चीन के पचगामी सर्वत्र क्रियाशील थे। उत्तरी वियतनाम, बर्मा, मलाया और इंडोनेशिया मे विशेष रूप से। युद्ध जर्जरित ब्रिटेन के लिए साम्राज्य को कायम रखना बोझिल हो रहा था। भारत, बर्मा और लका को स्वतत्रता मिल चुकी थी। परतु अभी भी मलाया इन के अधीन ही था। मलाया मे कम्युनिस्टो ने गुरिल्ला तरीका अपनाया। तोडफोड, हत्या, डकैती करने वालो ने अपने को मुक्ति सेना बतलाया। इसी दौरान मे अक्तूबर १९५१ के दिन ब्रिटिश हाई कमिश्नर सर हेनरी की हत्या कर दी गई। अंग्रेजो की आखे खुली, उन्होने सुरक्षा के साधन मजबूत किए। मलाया को स्वाधीनता देने का वादा किया। सन १९५५ मे आम चुनाव हुआ। तुकु अब्दुल रहमान प्रधान मत्री बने। विभिन्न राज्यो पर फिर भी ब्रिटेन का फौजी शासन रहा। पर साम्यवादी चीन को चैन कहा ? मलाया मे चीनी काफी सख्या मे हैं। किसी न किसी बहाने वे यहा बसने के लिए बडी सख्या मे प्रति वर्ष आते ही रहते है। इसलिए यहां की राजनीति और उद्योगव्यापार पर उन का बहुत प्रभाव है। हालत यहा तक है कि मलायी अपने ही देश मे विदेशियो की तरह बनते रहे है। सिंगापुर मे तो यह स्थिति विशेष रूप से देखने मे आई। हमारे देश मे कश्मीर मे छद्मवेशी पाकिस्तानियो के कारण हमे भी बहुत कुछ ऐसी स्थिति का सामना करना पड रहा है। लाल चीन के षड्यत्रो से लोग तग आ गए थे और उन के आए दिन के कुकृत्यो से मलाया निवासियो के मन मे उन के प्रति घृणा हो गई थी।

सन १९५६ मे साम्यवादी दल के मुख्य सचिव की हत्या यहा के किसी नागरिक ने कर दी। यहा के चीनियो ने बडा शोरशराबा मचाया। अगरेज चीन के साथ विवाद मे नही पडना चाहते थे। हागकाग उन के हाथ से निकल जाने का भय था। इसलिए सन १९५७ मे मलाया को पूर्ण स्वाधीन घोषित कर इन्होने अपना पिंड छुडा लिया। त्रेंगानु, कलातन, पेनाग, सेलोगोर, जोहोर और सिंगापुर आदि बारह राज्यो को मिलाकर मलयेशिया बना। स्वाधीनता के साथसाथ अगरेजो से विरासत में मिली अशाति और अव्यवस्था। देश की आर्थिक व्यवस्था जीर्ण और जर्जर थी। सौभाग्य की बात थी कि इस नए राष्ट्र को तुकु अब्दुल रहमान जैसा व्यवहार-कुशल, राजनीतिज्ञ और निपुण शासक मिला।

स्वाधीनता के बाद तुकु ने विश्व के राष्ट्रो से मैत्री और सद्भावना की नीति अपनाई। देश मे फैली अराजकता का दमन किया एव मलाया मे राष्ट्रीय भावना की चेतना जाग्रत की। लाल चीन समझ गया, उस की दाल मलेशिया मे नही गलेगी। मलयेशिया मे उस की मुक्ति सेना का नकाब उतर चुका था। पडोस के इंडोनेशिया की राजनीति मे अपना प्रभाव बढा कर वह उसी के ज़रिए धमकिया देने लगा। उत्पात भी शुरू हुए। ठीक पाकिस्तानियो की तरह इंडोनेशिया कही घुसपैठिए भेजता तो कही सेना उतार देता। कभी चीनियो को भडकाता तो कभी मलायियो को। इन सबके बावजूद तुकु अब्दुल रहमान ने चीनियो के साथ अपने देश मे भेदभाव नही रखा। उन्हे समान राष्ट्रीय अधिकार दिए। इस मुलाकात के बाद हमे हागकाग बैक के मैनेजर से मिलना था। श्री सराफ के साथ हम उन के यहा गए। अपने कार्यालय मे वे हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। इन से हमे मलयेशिया की आर्थिक स्थित और उसके क्रमिक विकास पर चर्चा करनी थी।सन १९५७ मे मलाया स्वाधीन हुआ एव १९६३ में मलयेशिया सघ बना। इस छोटी सी अवधि मे मलयेशिया ने तुकु के नेतृत्व मे जितनी प्रगति की है वह प्रशंसनीय है। टिन, रबर, नारियल, चावल, चाय और मसाले उस की सपदा है। इसी कारण मलयेशिया की आर्थिक अवस्था सुदृढ बन सकी है, अन्यथा एक करोड की आबादी का यह छोटा सा देश इंडोनेशिया के सामने कैसे टिकता ? इंडोनेशिया इस से दस गुना बडा है और उसके पीछे शक्ति रही है दुर्धर्ष लाल चीन की।

मलयेशिया १,७०० करोड रुपयो का निर्यात करता है और १,६२० करोड रुपयो का आयात। इस प्रकार उसे प्रति वर्ष २२० करोड रुपयो की विदेशी मुद्रा अधिक खर्च करनी पडती है। फिर भी जिस तेजी से वहा औद्योगिकरण हो रहा है, आशा है शीघ्र आत्मनिर्भर हो जाएगा। कृषि और खनिज उद्योगो मे इस की प्रगति उत्साहवर्धक रही है।

आयात-निर्यात और विक्रय पर मलयेशिया मे टैक्स नही है। आयात कम है, इसलिए विदेशो के व्यवसायी और उद्योगपति यहा पूजी लगाने के लिए आकर्षित होते है। नए उद्योगो के लिए सरकारी आयोगो और बैको से तरहतरह की सुविधा दी जाती है, उचित ब्याज पर ऋण भी सरलता से मिल जाते है। इस प्रकार विदेशी मुद्रा का स्रोत धीरेधीरे बढ रहा है और इस के साथसाथ देश मे उद्योग भी बढते जा रहे है। सन् १९६३ मे अकेले सिंगापुर के बदरगाह मे ८३० लाख टन का आवागमन हुआ और यहा ३८ हजार सातसौ जहाज आए। इनकी तुलना मे हमारे देश के प्रमुख बदरगाह कलकत्ता और बबई के आकडे विचारणीय है। हमारे इन दोनो बदरगाहो की क्षमता काफी अधिक है और ये बडे भी बहुत है फिर भी पिछले वर्ष मे इन दोनो मे केवल चार हजार जहाज ही खाली हुए है।

हमारे यहा आएदिन हडताल और 'काम कम करो' की नीति से अंतर्राष्ट्रीय जहाजरानी मे हमारी प्रतिष्ठा को काफी नीचा देखना पडा है। विदेशी कपनिया अपने जहाज भेजने मे हिचकती है। हमे हर साल करोडो रुपए डेमरेज के भरने पडते है और किराया ज्यादा लगता है, वह अलग। मलयेशिया हम से ४५ गुना छोटा देश है लेकिन इस का निर्यात हम से कही ज्यादा है। अब तक जितने देश देख आया, उन मे पाकिस्तान को छोडकर अन्य सब की स्थिति हम से कही अच्छी है।

दोपहर का एक बज रहा था। हम घर वापस आए, भोजन के उपरात तीन बजे तक विश्राम कर शहर घूमने निकले। रेफेल्स प्लेस वहा का कनाट प्लेस या चौरगी है। दुनिया के हर कोने की चीजे यहा के स्टोर्स मे भरी पडी थी। कीमती जवाहरात, उम्दा कपडे, टाइपराइटर, कैमरे और घडिया। हमारे देश की तुलना मे काफी सस्ती और अच्छी थी। यहा के बाजार मे अधिकतर दुकानदार चीनी और मुसलमान है। हम ने यहा की बडी मसज़िद देखी। यह दिल्ली की जामा मसजिद की तरह भव्य नही है। चीनी मदिरो मे बुद्ध की बडी सुदर प्रतिमाए है। शिव और हनुमान के मदिर भी देखे। सुनने मे आया कि इसी प्रकार छोटेछोटे और भी कई मन्दिर है। लेकिन ऐसा लगा कि हिंदू विदेशो मे अपने सस्कार और सस्कृति के प्रति उदासीन से रहते है। वैसे आज भी विश्व मे भारतीय अथवा हिंदू दर्शन और विचारधारा के प्रति श्रद्धा है। यहा काफी सख्या मे भारतीय स्थायी रूप से है, सपन्न है और प्रतिष्ठित भी। सामूहिक प्रयास से भव्य गिरजे और मसजिदे यदि बन सके तो क्या मलाया के भारतीयो की श्रद्धा और चेष्टा से विशाल मदिर नही बन सकता था!

रात्रि के भोजन पर सिंगापुर के पुलिस कमिश्नर श्री सरदारसिंह, नगर निगम के मेयर तथा सामाजिक कार्यकर्त्ताओ से भेट हुई। सरदारसिंह खुशमिजाज लगे। वह भारतीय सिख है पर अब यहा के नागरिक हो गए है। यह जानकर ताज्जुब हुआ कि मलयेशिया की सेना मे भारत के गुँरखे, नेपाली और सिख भी है। इससे पता चलता है कि भारतीयो के प्रति यहा कितना विश्वास है।

सिंगापुर की शाम के बारे मे चर्चा चली। पुलिस की निगरानी कडी है, फिर भी हर बडे शहर और बदरगाहो की वारदाते यहा भी होती रहती है। चीन से काफी सख्या मे कम उमर की लडकिया आ कर बिकती है। इस के अधिकाश व्यापारी भी चीनी है। ये लडकिया चकलो या वेश्यालयो मे घृणित जीवन बिताती है। मुसलमानी आदत और रिवाज के कारण इन मे से कुछ हरमो मे दाखिल हो जाती है। सुनेने मे आया कि इडोनेशिया के बाली द्वीप से भी लडकिया यहाँ भगा कर लाई जाती है। इन लडकियो से नाचगाने का काम लिया जाता है। होटलो मे विदेशियो के तथा विशेष रूप से नाविको के पास लडकिया पहुचाई जाती है।

कलकत्ता की तरह अवैध व्यापार मे यहा भी चीनी और पाकिस्तानी तत्त्व अधिक क्रियाशील है।

हमे अगले दिन दो बजे हागकाग के लिए रवाना होना था। मेहमानो के साथ अन्य आमत्रित लोगो ने भी आग्रह किया कि मलाया के रबर की बागवानी और जगलो की सैर के लिए रुक जाएं। हम रबर की बागवानी मद्रास मे देख चुके थे, अतएव विशेष रुचि इस ओर नही थी। प्रभुदयालजी ने कहा कि हमारे असम के काजीरगा के जगल को देखने के बाद यहा के जगलो की विशेषता रह नही जाती। हमे आर्थिक अवस्था और उद्योग विकास की जानकारी लेनी थी, वह मिल गई। ऊपर से मिला यहा के लोगो का स्नेह। अब जगलो मे और दलदलो मे भटकने की इच्छा नही है।

श्री महेश्वरी क्वालालपुर जा रहे थे। उन्होने आग्रह करते हुए कहा, "सिंगापुर तो कलकत्ता, बबई की तरह है, लेकिन जब तक वाराणसी या दिल्ली न देख ले तब तक भारत देखना नही कहा जा सकता। इसी प्रकार यहा के क्वालालपुर और मलक्का को न देखने पर मलयेशिया का भ्रमण अधूरा माना जाएगा।" हम ने उन्हे चार्ट दिखा जिस मे अगली यात्रा की सीट तिथिवार सुरक्षित थी। फिर भी वादा करना पडा कि अगली यात्रा मे मलाया भ्रमण का कार्यक्रम अधिक दिनो का अवश्य रखेंगे।

दो बजे दिन को एयरपोर्ट पहुचे। विदा करने के लिए कुछ लोग आए। उल्लास पूर्ण वातावरण मे विदा लेने मे जिस आनद का अनुभव हुआ, वह रगून से सर्वथा भिन्न था। स्वस्थ एव प्रसन्न मुद्रा मे लोग हाथ हिला कर विदाई दे रहे थे और हम धीरेधीरे वायुयान की सीढियो पर चढ रहे थे।

आबादी में कलकत्ता से आधा, पर व्यापार में ?

हांगकांग

बहुत दिनो पहले फोर्ड मोटर का एक विज्ञापन देखा था, 'जब तक फोर्ड न देख लो, अपने पैसे जेब मे रखो, हो सकता है उस विज्ञापन मे अत्युक्ति हो। पर एक बात मैं निश्चयपूर्वक कहूगा कि यदि आप की यात्रा मे हागकाग शामिल हो तो आप अन्य कही भी किसी भी प्रकार की वस्तु न खरीदे, जब तक हागकाग ने पहुच जाए। हमारा विश्व भ्रमण पूर्व मे हुआ था, इसलिए सिंगापुर के बाद सीधे हागकाग गए। रगून और मलाया मे, सयोग से हमे कुछ खर्च नही करना पडा क्योकि इन स्थानो पर हम अपने भारतीय मित्रो के अतिथि थे। हागकांग मे भी ऐसा ही अवसर मिल गया।

हम तीनो के पास १३ हजार रुपये के चेक थे और आखो के सामने हागकाग और कौलून की बडीबडी दुकाने थी, जिन मे सभी देशो की सब तरह की छोटीबडी चीजे भरी पडी थी। सस्ती और अच्छी इतनी कि मन यही होता था कि सारे पैसे यही खर्च कर दे और सभी चीजो को बटोर कर देश ले चले, पर अभी तो बहुत से देशो की यात्रा बाकी थी और चालीस दिन बिताने थे।

मन को समझाया। सतोष कर कुछ फाउटेन पेन, एक दूरबीन, अलार्म वाली एक हाथ घडी और दोचार फुटकर चीजे खरीदी। तेरहचौदह रुपए मे माउटब्लेक, पार्कर और शेफर्स के पेन मिले जो अपने देश मे तो साठसत्तर मे किसी भी हालत मे कम नही मिलते है। विश्व प्रसिद्ध निर्माता जेराड पेरागुआ की अलार्म हाथ घडी की कीमत लगी १६० रुपए, बाद मे स्विट्जरलैड मे, जहा यह बनती है वहा कपनी की अपनी दुकान मे इस की कीमत बताई गई २३० रूपए। हम ने हागकाग मे इस के मूल्य का उल्लेख किया तो उन्होंने बताया विदेशो मे हम निर्यात कम दाम पर करते है ताकि देश को विदेशी मुद्रा अधिक से अधिक मिले। हागकाग की तो बात ही और है। वहा न तो आयातनिर्यात पर कर है और न अन्य किसी प्रकार का प्रतिबध। आयकार भी बहुत कम है, इसलिए अन्य कोई भी देश इस से कम दाम मे माल नही बेच सकता।

यहा कर्मचारियो के लिए काम का समय निर्धारित नही है। दुकाने सुबह नौ बजे खुल जाती है और रात मे बारहएक बजे तक खुली रहती है। बाजार घूमते हुए हम ने देखा कि एक मोहल्ले मे लगभग सौ दुकाने तो केवल जवाहरात की है जिन मे खूबसूरत और कीमती भातिभाति के जडाऊ जेवर सजे है। इसी प्रकार कपडे, बिजली के समान और नाना प्रकार की शौक की और रोजमर्रे की चीजे, जो शायद भारत, ब्रिटेन, फ्रास या अमेरिका मे भले ही न

मिले, हागकाग मे जरूर और आसानी से मिलेगी। बेईमानी और ठगी यहा भी है। जापान के सिवा प्राय सभी पूर्वीय देशो मे यह रोग व्याप्त है। हमे बताया गया कि यहा के बहुत से चीनी दुकानदार प्रसिद्ध वस्तुओ के नाम और डिजाइन की नकल कर उन्हे बेचा करते है। हांगकाग मे हमारे आवास की व्यवस्था थी इपीरियल होटल मे। इस के मालिक भारतीय करोडपति श्री हीरालाल सिंधी है जो यहा बस गए है। उन के यहा कई बडेबडे स्टोर्स है। इन्ही मे हम तीनो ने अपने सूट सिलाए। पूरा सूट ६ घटो मे तैयार टेरेलीन का कपडा और सिलाई, कुल मिला कर केवल १८० प्रति सूट।

ग्राहक और दुकानदार मे मोलभाव इटली से ही शुरू हो जाते है। ज्योज्यो हम पूरब की ओर बढते है, मोलभाव भी बढता जाता है। अपने देश मे भी हमे इस का अनुभव है। चीनी दुकानदारो मे भी कलकत्ता मे चीजे खरीदने का अवसर बहुतो को मिला होगा। ये इस कला मे बहुत प्रवीण होते है। हागकाग मे अधिकाश दुकानदार चीनी है। इन से मोलभाव करने मे बड़ा मजा आता है। १०० रूपए की चीज का दाम आप ४० रूपए से शुरू कर सकते है। कई बार वह कान पर हथेलियो को रख कर सिर हिलाएगा, सामान अदर रख देगा। आप भी कई बार दुकान की सीढियो से उतरेगे। अत मे वह महज इसलिए आप के हाथ समान बेच देगा कि आप को चीज की पहचान है, आप विदेशी है, कही आप को दूसरा विक्रेता कोई खराब चीज न बेच दे।

हागकांग का क्षेत्रफल है करीब ३६१ वर्ग मील। यानी हावडा से डायमड हार्बर और सियालदह से श्रीरामपुर तक का विस्तार। आबादी है ३३ लाख, कलकत्ता मे लगभग आधी जिन मे ३२,५०,००० चीनी है और शेष ५०,००० दूसरे देशो के है। भारतीय कम सख्या मे जरूर है, पर व्यापार और अन्यान्य क्षेत्रो मे इन का अच्छा प्रभाव है। सडको पर सिख और गुरखा पुलिस भी दिख जाती है। व्यवसाय के क्षेत्र मे सिंधी अधिक है। उस के बाद क्रमश पजाबी, गुजराती और राजस्थानी। बदरगाह और व्यवसायी नगर होने के कारण यहा का जीवन बहुत व्यस्त रहता है।

आज के युग की विचित्र नगरी है हागकाग। चीन मे है पर चीन की नही। आबादी चीनियो की है पर शासन चीनी नही, ब्रिटेन का है। इस का एक भाग कौलून चीनी महादेश से सटा हुआ है और दूसरा अश विक्टोरिया सागर के बीच है। चीन का प्रसिद्ध बदरगाह कैटन यहा से ६० मील है और चीन की सीमा केवल ३० मील। आज चीन बाहर वालो के लिए लौह दीवार है फिर भी हागकाग वह खिडकी है जिस से चीन की झाकी मिल जाती है। पेकिंग की तरह हागकाग ऐतिहासिक नगरी कभी नही रही। इस के बारे मे केवल इतना उल्लेख मिलता है कि समुद्री डाकुओ का यह अड्डा था और वे इस की पहाडियो मे बेखटके बसेरा बनाए रखते थे। सन १८४१ के अफीम युद्ध के बाद इस उजाड पहाडी क्षेत्र को ब्रिटेन ने सन १९९९ तक के लिए पट्टे पर चीन से लिया। चीनियो ने समझा चलो, विदेशियो का पैर अपने यहा से उखाड दिया। पर वास्तविकता यह रही कि घर की ड्योढी पर ब्रिटेन का अधिकार जम गया। ब्रिटेन को प्राकृतिक बदरगाह मिला और सामरिक महत्वपूर्ण स्थान। यही कारण था कि जब तक ब्रिटेन की प्रथम या द्वितीय शक्ति रही, उसने चीन सागर और इस के सपूर्ण क्षेत्र पर अपना नियत्रण रखा। यहा शुरू से ही एक ब्रिटिश गर्वनर के द्वारा शासन सचालित होता रहा है।

जो भी हो, आज ब्रिटेन के पजे ढीले है। प्रशात और भारत महासागर के उस के उपनिवेश स्वाधीन हो चुके हैं। लाल चीन रक्त चक्षुओ से चारों ओर देख रहा है और अपने नखो को बढा रहा है। उस की शक्ति का परिचय भी तिब्बत, कोरिया और वियतनाम मे मिल चुका है, पर हांगकांग आज भी अछूता है। आश्चर्य तो जरूर होता है कि मगरमच्छ की दाढो मे आखिर छोटी चिरैया कैसे बैठी है! स्वार्थ दोनो का है। मगरमच्छ दात साफ कराता है। चिडिया के लिए सुरक्षित स्थान है। चीन को इस पर कब्जा करने मे शायद दो घटे ही

लगे। पर उन्हे भी अपने इतने विशाल देश के आयातनिर्यात का एक सधा हुआ माध्यम चाहिए। आज विश्व मे प्रभाव है रूस और अमेरिका का। चीन साम्यवादी है पर रूसी गुट मे नही है। विश्व के व्यापार पर प्रभाव है अमेरिका का, जो चीनी साम्यवाद का जानी दुश्मन है। सयुक्तराज्य परिषद भी फारमोसा के चीन को मान्यता देता है, लाल चीन को नही। इसलिए अमेरिका या उसके साथ व्यापार करने का तो कोई सवाल ही नही रहता।

दूसरी तरफ ब्रिटेन सदियो से ही व्यापारी पहले रहा है—दूसरा कुछ पीछे। उस का व्यापार बढ़ता है तो सब सिद्धान्तो को ताक पर रख देता है। हागकाग का यह ब्रिटिश उपनिवेश चीन के लिए सारे प्रतिबधो का बधन खोल देता है। हागकाग की आढत दोनो के स्वार्थ की पूर्ति करती है। चीन मे विदेशियो के प्रवेश पर बडी बदिशे है। वहा जाना नामुमकिन है पर हागकाग के चीनी इच्छानुसार जब चाहे वहा आतेजाते रहते है।

हागकाग ऐतिहासिक नगरी तो नही है, पर इसके विकास की पृष्ठभूमि मे अपनी एक कहानी है जो आज नही तो कल के इतिहास मे जरूर शामिल की जाएगी। प्रारभ मे यह चीन को अफीम भेजने का एक अड्डा था। डाकू, चोरउचक्को का बसेरा भी था। आस्ट्रेलिया और कैलिफोर्निया मे सोने का पता लगते ही वहा की खानो के लिए चीनी कुलियो के निर्यात का कारोबार यहाँ खुल गया। भारत मे भी तो उस समय अगरेजो ने और फ्रासीसियो ने फीजी, मारिशस,गायनाऔर पूर्वी अफ्रीका मे परमिट पर लाखो भारतीयो को भेजा था। सन १९४१ मे जापान ने जब इस पर अधिकार जमाया उस समय तक विश्व के बडे बदरगाह और व्यापार के केन्द्र के रूप मे यह प्रतिष्ठित हो चुका था। उन दिनो यहा प्रति वर्ष चार करोड टन माल केवल समुद्री मार्ग से आता था। हालैंड और बबई की तरह यहा भी समुद्र से जमीन ली गई है। हमारा विमान जिस केटेक हवाई अड्डे पर उतरा वह समुद्र से ली गई एक सकरी पट्टी पर बना था।

हम ने बर्मा और मलाया मे सुना था कि पिछले महायुद्ध मे जापानी जहा भी गए, खूब लूट मचाई और जब हारने लगे तो बरबादी की। यही कारण था कि इन देशो की जनता ने भी बाद मे जापानियो का विरोध कर उन्हे खूब परेशान किया। लेकिन हागकाग इसका अपवाद है। जापानियो के अधिकार मे यह करीब पौने चार वर्ष तक रहा है। वे चाहते तो हागकाग को भी अन्य स्थानो की तरह तहसनहस कर सकते थे पर वहा की मौज मस्ती और ऐयाशी ने इसको बचा लिया। जापानी सैनिको और अफसरो को यहा सुदरियो की बाहे और शराब से छलकते प्याले मिले। अपने को वे इन्ही मे डुबो बैठे और हागकाग नष्ट होने से बच गया।

चीन मे जब साम्यवादी शासन हुआ तो वहा से दस लाख से भी अधिक नागरिक शरणार्थी के रूप मे हागकाग आ गए। जहा भी जगह मिली बस गए। आज हालत यह है कि इस का विकास योजनाबद्ध न हो पाया। एक ओर विक्टोरियन शैली की इमारतें हैं तो दूसरी ओर पहाड की ढाल पर झोपडी और झुग्गिया है। उन मे कही गत्तो की छत है तो कही जग लगे टूटे टनस्तरो की दीवाल और छाजन है। चीटिया की तरह भरे है चीनी इन मे। गरीबी, तगी और बीमारी इन के जीवन के साथ है जैसे सब कुछ इन्हे बरदाश्त हो गया हो। न पानी की व्यवस्था है, न सफाई की। झोपडिया ऐसी आडी ढलान पर है कि दग रह जाना पडता है, जरा सा पैर फिसले तो जान पर आफत। हागकाग तूफान के क्षेत्र मे है, जब बड़ा तूफान आता है तब इन मे रहने वालो की जान की शामत आ जाती है। इस की झाकी दी वर्ल्ड आफ सूजीवाग नाम की फिल्म मे देखने को मिली थी। हम अपने देश की आर्थिक विषमता अत्यधिक समझते थे, पर यहा जो रूप देखा उस से यही कहूगा कि विश्व मे शायद ही किसी

चीन को मान्यता देने के पहले इस विवरण को लिखा गया था।

च्यागकाई शेक की सरकार पर ही उन्हे विश्वास था। चीन से भाग कर वे आए, फिर भी प्राय आतेजाते है, क्योकि उनके सगेसबधी अभी भी वहा हैं और उनके व्यापारिक सबध भी बडी तादाद मे है। वैसे चीन की लाल सरकार पर भी उनका भरोसा नही है, इसलिए संपत्ति सब यही जमा रखते है। ब्रिटिश सरकार अच्छी तरह जानती है कि लाल आखे देखने पर उन्हे अपनी चादर समेटने मे देर नही लगेगी। यह भी सही है कि उन की प्रतिक्रिया से शायद विश्वयुद्ध की चिनगारी धधक उठे, पर ब्रिटेन यह मौका आने नही देना चाहता, क्योकि तब उसे यहा के बहुत बडे व्यापार से हाथ धोना पडेगा। लाल चीन नाराज न हो जाये, इसलिए यहा की अगरेज सरकार च्याग के झडे, जासूस और प्रचार को प्रोत्साहन नही देती।

च्यागकाई शेक के कमजोर शासन ने लोगो को इतना परेशान कर दिया था कि उस पर से चीनियो का विश्वास उठ गया था। पर साम्यवादी शासन के बाद सपन्न जमीदार और व्यापारी कम्युनिस्टो की लूटखसोट से खत्म हो गए और साधारण जनता भी इसलिए परेशान है कि वहा जबरदस्ती काम लिया जाता है। पार्टी के अधिकारियो को तो खाना मिल जाता हे, पर दूसरे लोगो को नानाप्रकार का बहाने बता कर या कम काम करने की सजा के बतौर खाना कम दिया जाता है। व्यक्ति स्वाधीनता है नही, इसलिए अपनी इच्छानुसार जीवन बिताना सभव नही, उन्नति और विकास की बात तो दूर रही, जन्म, जीवन और मृत्यु तक पर सरकार का नियत्रण है। चीन मे सपन्न से दरिद्र तो बनाया जाता है, पर दरिद्र से सपन्न नही, सुखी भी नही। उस की छूट हागकाग मे है। इसलिए बहुत बडी सख्या मे लोग यहा आ कर बस गए। सब तरह की सुविधाओ के बावजूद वहा के सभ्रात चीनी ब्रिटिश शासन से प्रसन्न नही दिखाई दिए।

मैं ने वहा उपस्थित एक चीनी व्यवसायी से इस के बारे मे पूछा तो उस का उत्तर था कि च्यागकाई शेक के शासन मे ऊपर से नीचे तक भ्रष्टाचार फैल गया था। जनता अभाव से कराह रही थी, जब कि शासक वर्ग और उसके सबधी अनापशनाप खर्च करने के बावजूद विदेशो मे करोडो रुपए जमा करा रहे थे। उस के बाद आया माऊत्से तुग का साम्यवादी शासन। शुरूशुरू मे तो लोगो ने इस रद्दोबदल का स्वागत किया। पर जब वैयक्तिक स्वतत्रता नाम मात्र की भी नही रही और सदियो से चली आती सस्कृति को सपूर्ण रूप से नष्ट किया जाने लगा तो जनता ने विरोध करना शुरू किया। नतीजा यह हुआ कि लाखो व्यक्ति गोली से उडा दिए गए, क्योकि उन सब को जेलो मे रखकर खाना कपडा देना सभव नही था। लाखो परिवार सब कुछ वही छोड कर हागकाग भाग आए। जिन के पास सपत्ति थी, उन्होने यहा आ कर कारबार शुरू कर दिया और बाकी पहाडो की ढलान की गदी बस्तियो मे रहकर मजदूरी करने लगे। फिर भी यहा के चीनी समझते है कि वे पराधीन तो है ही। अपनी भूमि पर विदेशी अधिकार से आत्मसम्मान को धक्का पहुँचता है। मैं ने पूछा, "क्या चाग की कुओमिगताग का शासन चीन भूखड पर पुन स्थापित होने की आशा हे ?" उत्तर मिला, "कहा नही जा सकता पर इतना जरूर है कि च्याग स्वय तो वहा शायद ही कभी जा पाएगा।" उस की बातो से प्रवासी चीनियो के मन की कुछ झाकी मिली।

हागकाग मे एक बात हमे अखरी कि यहा पाकिस्तानी नागरिक जितने सगठित है, उतने भारतीय नही। भाषा और प्रादेशिकता का असर जिस रूप मे वहा अपने लोगो मे है, उसे स्वस्थ नही कहा जा सकता। विदेशो मे चीनी इतने अधिक संगठित रहते है कि वहा उनका प्रभाव रहता है। सिगापुर इसका स्पष्ट प्रमाण है। मलाया मे रहते हुए उन्होने अपनी सरकार बना ली और अब वह एक पृथक राज्य है। हम हे कि मारिशश, फिजी, त्रिनिदाद और गायना मे अधिक होते हुए भी उपेक्षित है।

सुना था कि कैटन का आधा शहर पानी पर है। कैटन जाना सभव नही था। चीन के प्रतिबध की ऊची दीवार थी, पर इस की झाकी हागकाग मे मिल गई। यहा के राजस्थानी

बधुओ ने हमे एक स्टीमर पार्टी मे रात के समय आमंत्रित किया था। पार्टी अच्छी रही, काफी स्त्रीपुरुष आए थे। भारतीय राजदूत भी शामिल हुए थे। कार्यक्रम एक बजे रात को समाप्त हुआ। स्टीमर से ही हम यहा की नौका नगरी गए। मै निकल पडा इसे देखने। छोटेवडे बोट और सैमपान बंदरगाह के किनारे समुद्र पर काफी दूर तक थे।

लगभग दो लाख की आबादी इन्ही नौकाओ और बोटो मे रहती है। मकान, दुकान, स्कूल, अस्पताल, रेस्तरा सब कुछ यहा हैं। वीनिस और श्रीनगर मे भी लोग नावो पर रहते हे, पर वहा उन का उद्देश्य स्थायी आवास नही केवल विहार मात्र है। यहा तो शहर ही लहरो पर नाच रहा हे। पहुचते ही शोर मचा। चीनी, अगरेजी, "कम हियर, बैस्ट ड्रिक, फाइन गर्ल, यग गर्ल।" अदाज हो गया कि नावो पर फ्रेच रिवेरा और बदरगाहो के बदनाम मोहल्ले भी है। धीरेधीरे थिरकती नावो पर एकदूसरी को पार करता हुआ अपने चीनी साथी ली के साथ नौका नगरी का चक्कर लगा आया। टिमटिमाती रोशनी मे गरीबी की लहरो से जूझते हुए चीनियो के पीले चेहरे पर स्पष्ट अवसाद की छाया दिख रही थी। एक छोटा सा चीनी बालक बडे गौर से बत्ती के चारो ओर चक्कर लगाते पतगे को देख रहा था। बादामी आखो की काली पुतलिया हलकी रोशनी मे चमक रही थी। उस की आखो मे जिज्ञासा थी मेरे मन मे बारबार एक ही प्रश्न था, नया चीन कैसा बनेगा ?

ली ने कहा, "क्यो, बच्चा बहुत अच्छा लगा ? ले जाइए, यहा तो बिकते भी है, पर चोरीचुपके। कम उमर की लडकियो का तो यहा से अब भी चालान होता है, मलाया और इदोनेशिया मे।" श्री ली नौका स्कूल के अध्यापक थे। अपनी नौका के घर ले जाते हुए उन्होने कहा, "गरीबी और जरूरत इनसानियत के तकाजे को नही मानती।" उन की आवाज मे करुणा थी।

हम सब जिस समय कौलून के मुख्य घाट पर पहुचे, रात के दो बज रहे थे। होटल पहुच कर बिस्तर पर लेट गया। शरीर और मन, दोनो थके से थे। बार-बार नौका नगरी के मुख्य दृश्य याद आते थे। सोचने लगा कि कुछ वर्षो पूर्व ये भी तो चीन महादेश के नागरिक थे, साम्यवाद के थपेडो से घबरा कर उन्होने स्वय ही देश निकाला स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन सुबह नो बजे टेलीफोन की घटी ने जगाया। हमारे मेजबान रिशेप्शन रूम मे प्रतीक्षा कर रहे थे। जल्दी ही तैयार हो कर उनके साथ कार से ओसाका जाने के लिए एयर पोर्ट के लिए रवाना हुए।

●

एशिया का सब से उन्नत देश

जापान—१

बचपन मे सुनते थे 'छोटे' मे देश जापान ने अपने से सो गुने बडे रूस को पछाड दिया। जापान एशियाई राष्ट्र था। इसलिए यह सुन कर हमारे मन मे एक प्रकार का हर्ष ओर गर्व होता था। बाजारो मे या बडेबूढो मे जापान की चर्चा हम बडे चाव मे सुना करते थे। यह देश लगभग १६०० वर्ष तक दुनिया मे अलग ही रहा। १६वी शताब्दी के पूर्वार्ध मे यह दूसरे देशो के सपर्क मे आया। इस की कुशाग्र बुद्धि ने उन देशो के कोशल को पहचाना, परखा और अपनाया। बीसवी शताब्दी के प्रथम दशक मे रूस की पराजय को देख कर दुनिया को पता चला कि जापान कितना सबल और प्रबल हे। ससार के राष्ट्रो की प्रथम पक्ति मे जापान को जगह मिली। प्रथम महायुद्ध मे जापान मित्र राष्ट्रो के गुट मे शामिल हुआ और बटवारे मे उसे भी हिस्सा मिला। यही से जापान के साम्राज्य का विस्तार हुआ ओर प्रभाव क्षेत्र भी बढ गया।

इस के बाद जापान अपनी औद्योगिक उन्नति मे लग गया। ओद्योगिक विकास के इतिहास मे उस की सफलता अद्वितीय और अनुकरणीय है। सन १६३०-३२ मे सारा ससार मदी की चपेट मे तबाह हो रहा था। ब्रिटेन, फ्रास ओर अमरीका उत्पादन घटाने के लिए बाध्य हो रहे थे। उन के कलकारखानो के बद होने तक की नोबत आ गई थी, उस समय भी जापानी माल विश्व के कोने-कोने मे बिक रहा था। उस की डबल घोडे छाप की बोस्की (सिल्क का कपडा) नौ आने गज मे भारत के बाजारो मे बिक रही थी। आज भी उसके टिकाऊपन और मुलायमी की प्रशसा करते हुए लोग याद करते हे। आश्चर्य की बात यह है कि इन दामो मे जहाज भाडा, आयात शुल्क, आढतदारी आदि सभी खर्च शामिल थे। बहुतो को याद होगा कि ऐसी पेसिले जापान से आती थी जिन मे लकडी नही होती थी। कागज की पतली पट्टियो की परते होती थी। न चाकू से छीलने की जरूरत न साचे से बनाने की। बस परते उतारी, पेसिल तैयार। गाढे काले रग की लेड, खूब लिखते बनता था। दाम सिर्फ दो पैसे।

जापान की औद्योगिक सफलता ने पश्चिमी राष्ट्रो को चौकन्ना कर दिया। उन की यह चेष्टा रहने लगी कि उन के देश और साम्राज्य के बाजारो मे जापानी माल के प्रवेश को यथासाध्य बाधा पहुचाई जाए। प्रतियोगिता मे जापान टिक न पाए इसलिए नाना प्रकार के बधन, जापानी माल पर लगाए गए। भारत मे मैनचेस्टर के कपडो के पर दस प्रतिशत आयात कर था, जापानी कपडो पर २० से २५ प्रतिशत। फिर भी जापान के मुकाबले मे इन्हे हार खानी पडी।

औद्योगिक विजय और वैभव ने सभवत जापान की लालसा बढा दी । जापान का उत्पादन बढ रहा था, उन्हे माल खपाने के लिए नई मडियो की खोज थी । पास ही विशाल चीन था, जो आलस, प्रमाद और आपसी लडाई के कारण असगठित और पिछडा हुआ था । जापान उस पर झपट पडा । युद्ध लवा चला।जीत जापान के लिए महगी पडी, वह खुद भी जर्जर हो गया । अपनी साम्राज्य-वादी हरकतो के कारण उस ने पश्चिमी देशो के सिवाय एशिया की सहानुभूति भी खो दी ।

सन १९४१ मे जापान जरमनी और इटली के धुरी राष्ट्र गुट मे जा मिला और अमरीका तथा मित्र राष्ट्रो के विरूद्ध युद्ध मे उतर पडा । अमरीका के वहुत बडे और सुसज्जित पर्ल हार्वर मे जगी जहाजो के वेडे पर अचानक हमला कर जापानी हवावाजो ने जिस साहस और कौशल का परिचय दिया वह अपूर्व रहा है । गोलावारूद लिए हुए जापानी छतरीवाज जहाजो के मस्तूलो मे कूद पडे । स्वय वीरगति को प्राप्त हुए लेकिन प्रशात महासागर की महान अमरीकी सामरिक नौ शक्ति को उन्होने पगु कर दिया । इस तरह की देशभक्ति और वीरता हाल के भारतपाक सघर्ष मे हमारे जवान ही प्रस्तुत कर सके है । सीने पर वम वाध कर शत्रु के दैत्याकार पैटन टैंको के नीचे लेट जाना, छोटेछोटे नेट प्लेनो सहित विश्व मे वेजोड गिने जाने वाले सेवर जेट विमानो से टकरा जाना, वलिदान, साहस और शौर्य की पराकाष्ठा है ।

पर्ल हार्वर मे जापान की सफलता ने मित्र राष्ट्रो मे आतक पैदा कर दिया । एशिया मे उन के साम्राज्यो के वहुत से देशो मे जापान के प्रति आदर का भाव जग उठा । जापान ने अवसर का पूरा लाभ उठाया । उमडते वादल की तरह उसके सैनिक हिंद चीन, स्याम, हिंदेशिया, सिंगापुर, मलाया और वर्मा मे छा गए । सिगापुर मे जापानी हवावाजो ने इगलैड के 'प्रिस आफ वेल्स' और रिपल्स जैसे प्रसिद्ध जगी जहाजो के मस्तूलो मे वम सहित घुस कर उन्हे उडा दिया । कलकत्ते पर आये दिन उन के हवाई जहाज मडराने लगे । जापान अकेला ही पूर्व मे मित्र शक्ति मे मुकावला कर रहा था ।

सन १९४३ मे जरमनी और इटली लवे युद्ध के कारण थकने लगे । उन का वल शेष हो गया और उन्होने सन् १९४५ मे घुटने टेक दिए । अव मित्र राष्ट्रो ने पश्चिम से निश्चित हो कर जापान के विरूद्ध पूरी शक्ति लगा दी । इस समय तक अमरीका अणुवम तैयार कर चुका था । ६ अगस्त, १९४५ को उस ने हिरोशिमा मे अणुवम गिराया । तीन दिन वाद, ९ अगस्त को नागासाकी पर दूसरा अणुवम गिराया गया । असख्य धनजन की हानि हुई । जापान के विचारको और सम्राट ने राष्ट्र को विनाश से वचाने के लिए सधि का प्रस्ताव रखा ।

इस के वाद सात वर्षो तक जापान पर अमरीका का नियत्रण रहा । जापान सम्राट कायम रहे लेकिन शासन अमरीका का रहा । जनरल मैकआर्थर वने सर्वोच्च अधिकारी एव शासक । जापान की मूल भूमि को छोड कर उस के साम्राज्य के सारे देश छीन लिए गए । इन सात वर्षो मे अमरीकी सैनिको ने जापान मे जो व्यवहार और आचरण किया वह किसी भी सभ्य देश के लिए लज्जा और ग्लानि की वात है । जापानियो ने सव कुछ धैर्य और अनुशासन के साथ सहा । उत्तेजित हो कर कभी भी ऐसा मौका नही दिया कि शासक को अत्याचार का वहाना मिल जाए । परिणाम यह हुआ कि अमरीका का जनमत स्वत प्रभावित हुआ । जापान के प्रति मैत्री और उदारता का दवाव वढने लगा । १९५१ मे सेनफ्रासिस्को मे जापान और अमरीका के वीच शाति सधि हुई । वह फिर से पूर्णत स्वतत्र हुआ । जापान के राष्ट्र प्रेम, निष्ठा और अनुशासन की ऐसी सफलता विश्व मे वेजोड कही जा सकती है ।

वमवाजी से उस के शहर ध्वस्त हो चुके थे । व्यापारवाणिज्य और उद्योग नष्ट हो चुके थे । युद्ध के वावत ५५ अरव रुपयो का उसे हरजाना देना पडा । साम्राज्य छीना जा चुका था । दूरदूर से भाग कर जापानी अपनी मूल भूमि मे लाखो की सख्या मे आ रहे थे ।

अमरीकी सैनिक शासन ने नाना प्रकार की सामाजिक बुराइया पैदा कर दी थी। खाद्य समस्या सुरसा की तरह मुह बाए खडी थी। हिरोशिमा और नागासाकी के अणु पीडित विकलाग नागरिक और उनकी भावी सतति की भयावह समस्या थी ही। विश्व में उस की प्रतिष्ठा नाम मात्र को रह गई थी। राजनीति के नाम पर दलबदी का घुन घर कर चुका था। पडोस मे चीन साम्यवादी बन कर पुराना बदला लेने की ताक लगाए था। यह हालत थी आज से १४ वर्ष पूर्व जापान की, जब वह स्वतत्र हुआ।

और आज ? आज वह विश्व के अग्रणी राष्ट्रो मे से एक है। उद्योगव्यापार में पहले से कही अधिक सपन्न ओर समृद्ध। विश्व के पिछडे राष्ट्रो को आर्थिक सहायता दे रहा है। अमरीका और इगलैड मे उस के माल निर्यात हो रहे है। विदेशो मे उसकी मदद से उद्योग स्थापित किए जा रहे है। जापान मुस्करा रहा है।

हम हैरत मे है। १८ वर्ष हो गए, हमे स्वतत्र हुए। हमारे पास खनिज पदार्थ और कच्चा माल की कमी नही। जगह की कमी नही। फिर भी हम क्यो नही आगे बढ पा रहे है ? इन्ही सब बातो को समझने के लिऐ मेरे मन मे जापान को देखने की प्रबल इच्छा थी।

कार्यक्रम के अनुसार पूर्वी देशों मे बर्मा, मलाया, सिगापुर, हागकाग और जापान की यात्रा और तब अमरीका होते हुए यूरोप के रास्ते वापसी। मेरे मित्र श्री रामकुमार भुवालका घुमक्कड वृत्ति के है। वह कई बार यूरोप और अमरीका हो आये थे। इस बार उन्होने विश्व भ्रमण का कार्यक्रम श्री हिम्मतसिहका और मेरे साथ बनाया।

हम ने बर्मा, मलाया, सिगापुर और हागकाग की यात्रा पूरी कर ली। हमारे पास टूरिस्ट क्लास का टिकट था। जापान एयरलाइस के अधिकारियो को कही से पता चला कि हम भारतीय ससद के सदस्य है और उनके देश मे वाणिज्य और उद्योग के विकास की जानकारी के लिए जा रहे है, वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने बिना किसी अतिरिक्त व्यय के 'डीलक्स' क्लास मे हमे जगह दी। हम मना करते रहे लेकिन उन का एक ही अनुरोध था, 'हमारा इतना सा आतिथ्य स्वीकार कर हमे अनुग्रहित करे।' स्नेह और शालीनता के सामने हम विवश हो गए।

डीलक्स क्लास की सीटे बहुत आरामदेह होती है। चौडी होने कारण यात्रियो को काफी सुविधा रहती है। इस क्लास की एक और विशेषता है कि शराब पीने की मनचाही छूट रहती है। हम तीनो दूधलस्सी पीने वाले विशुद्ध निरामिष यात्री, इस का फायदा न उठा सके। हा, एयर होस्टेस के व्यवहार मे जापानी नारी की सुन्दरता और सौजन्य की झाकी हमे जापान पहुचने के पूर्व ही मिल गई। जेट हागकाग एयर पोर्ट से उठा। मै बेहद खुश था। वर्षो से पली हुई अभिलाषा पूरी होगी। 'सूर्योदय का देश निपोन' देख सकूगा। सोचने लगा, 'चीनी और जापानी एक ही शक्लसूरत के है। सस्कृति मे भी साम्य है। दोनो का लक्ष्य है, राष्ट्र की उन्नति और समृद्धि। गत महायुद्ध के बाद दोनो के जीवन मे नवीन अध्याय शुरू हुआ। दोनो जर्जरित थे, बल्कि जापान पर तो अमरीकी शासन रहा है। फिर भी छोटा सा जापान विश्व के व्यापार, उद्योग और राजनीति मे चीन से अधिक सफल और प्रतिष्ठासपन्न है। लेकिन राष्ट्र की, राष्ट्र के नागरिको की समृद्धि और सुख के लिए सर्वाधिक हितो का दम भरने वाला साम्यवादी सिद्धातो वाला विशाल चीन सुखी और स्वाबलबी नही बन पाया। क्या राष्ट्र की उन्नति के लिए व्यक्ति और व्यक्तित्व का उन्मुक्त विकास ही अधिक महत्वपूर्ण है ?

हमे सूचना मिली कि हम जापान पहुच रहे हैं। मेरी उत्सुकता बढी। मै ने नीचे की ओर खिडकी से झाक कर देखा। जापान के द्वीपपुज एशिया महाद्वीप के पूर्व मे अर्धवृत भाग मे धुधले दिखाई पडे। एयर होस्टेस ने मुस्करा कर अपनी दूरबीन मुझे दे दी। मैने देखा फूलो से सजी, धानी रग की चुनरी ओढे जापान की धरती के चरण सागर छू रहा है।

ओसाका के एयर पोर्ट पर भारतीय दूतावास के सचिव हमे लेने आए। उनके साथ

मलाया और हागकांग के हमारे मेजमानों के मैनेजर श्री खेमका और श्री सोढानी भी थे। एयर पोर्ट पश्चिमी देशो की तरह व्यस्त और साफसुथरा देखा। विदेशियो को, विशेषत यात्रियो को, किसी भी देश के निवासियो के आचार या व्यवहार का परिचय कस्टम से गुजरने पर सहज ही में मिल जाता है। ओसाका एयर पोर्ट मे कस्टम के अधिकारियो की तत्परता और भद्रता ने हमे बहुत ही प्रभावित किया। हमारे ठहरने की व्यवस्था होटल ओसाका मे थी। रास्ते मे हम ने जापानियो की स्वच्छता और परिमार्जित रुचि को लक्ष्य किया। सडके साफ, सडको पर चलने वाले स्वच्छ। सब कुछ जैसे स्वभाविक अनुशासन मे हो।

हम होटल पहुचे। हलका नाश्ता करते हुए आपस मे ओसाका के कार्यक्रम पर विचार करने लगे। होटल पश्चिमी ढग का था। श्री खेमका ने हमे बताया कि इस ढग के होटल जापानी ढग के होटलो से महगे जरूर पडते है लेकिन हम लोगो के लिए अधिक आरामदायक हैं। आमतौर से पश्चिमी ढग के होटलो मे दो आदमियो के आवास के कमरे पचासपचपन रुपए प्रति दिन पर मिल जाते है। लच पर लगभग आठ और भोजन पर दस रुपए प्रति व्यक्ति लग जाता है। जापानी ढग के होटल जिन्हे 'इस' (सराय) कहते है काफी सस्ते होते है। आवास और भोजन पर प्रति व्यक्ति अधिक से अधिक बारह पदरह रुपए का खर्च आता हैं। लेकिन शाकाहारियो के लिए निरामिष भोजन वहा ठीक से नही मिलता। एक कठिनाई भाषा की भी है। इन के कर्मचारियो का अगरेजी न जानना हमारे लिए तो बडी समस्या है। पश्चिमी होटलो मे अगरेजी के माध्यम से हम काम चला सकते है। एक और भी विचित्र बात इसके बारे मे हमारे जानने मे आई। जापानी तरीके के अनुसार इसमे स्नान गृह अलग-अलग नही है। स्त्रीपुरूष सभी एक साथ एक ही गुसलखाने मे नहाते है। हम ऐसी रीति के अभ्यस्त नही, हमारे यहा तो नदियो मे भी स्त्री और पुरूष के घाट अलग-अलग है।

टोकियो के बाद जापान का दूसरा बडा नगर ओसाका है। इसे नगर नही महानगर कहना अधिक उचित होगा। यह शहर योदो नदी के मुहाने पर बसा हुआ है और टोकियो से लगभग तीन सौ पच्चीस मील की दूरी पर है। आबादी बहुत ही घनी है, करीब तीस लाख। फिर भी न तो गदगी है और न जगह की तगी दिखाई देती है। ओसाका जापान का वेनिस सा लगा। शहर नदी के दोनो किनारो पर है और नदी के बीच टापू पर भी। वेन्निस की तरह यहा भी शहर के बीच नहरो का जाल सा बिछा है। लगभग एक हजार पूलो से इस के विभिन्न भाग एकदूसरे से सबद्ध है। ओसाका जापान के व्यापार, वाणिज्य और उद्योग का सबसे बडा केंद्र है। यहा विभिन्न प्रकार के धातुओ एव रासायनिक पदार्थो के कारखाने तथा रेशम, कपडे और चीनी इत्यादि की बडीबडी मीले है। सपूर्ण जापान के कुल २१०० अरब येन के निर्यात का आधे से अधिक का श्रेय ओसाका को है। यहा समुद्री जहाज बनाने के कारखाने है। पहले ओसाका का बदरगाह बहुत उन्नत नही था युद्ध के बाद जापान ने जब नए सिरे से अपने उद्योग एव वाणिज्य का पुनर्गठन किया तब इसके बदरगाह का नवनिर्माण शुरू हुआ। समुद्र से लगभग बारह सौ एकड जमीन निकाली गई। बडेबडे जहाजो की मरम्मत एव ठहरने के लिए आधुनिक साधनो से सपन्न डेक बनाए गए।

जापानी उद्योग क्षेत्र मे एक विशेष बात देखने को आई कि यहा भी हमारे देश की तरह बडेबडे उद्योग कुछ परिवारो के नियत्रण मे है। जिस तरह हमारे यहा टाटा, बिरला, मफतलाल, बाजोरिया आदि के प्रतिष्ठान है, उसी प्रकार उद्योग वाणिज्य मे वहा भी मित्सुबिशी, मित्सुई, नीशी, मात्सु आदि के समृद्ध और सगठित प्रतिष्ठान हैं। हम जहाज बनाने का एक बडा कारखाना देखने गए। हम ने देखा कि दो विशाल समुद्री जहाज निर्मित हो रहे हैं। कारखाने के मैनेजर ने हमे बडी चाव से सारी बाते समझाई। बड़ा आश्चर्य हुआ हमे, जब यह पता चला कि इगलैड की किसी एक कपनी के लिए भी जहाज बन रहा है। कभी

इगलैड विश्व मे सबसे बडा जहाज निर्माता माना जाता था। उसी इगलैड के लिए जापान जहाज बना रहा है। आज विश्व मे जहाज निर्माण मे जापान सबसे आगे है। उसका व्यापारिक वेडा अमेरिका, ब्रिटेन दोनो से टक्कर ले रहा है। हमारे लिए यह भी ध्यान देने की बात थी कि ओसाका का केवल एक जहाज निर्माता प्रतिष्ठान जितना काम करता है उसका आधा भी हम आज तक अपने विशाखापत्तनम मे नही कर पाए। सूती कपडे की मील भी हमने देखी। करघो पर औरते ही थी। हमारे यहा भी पाट, सूती या रेशम के करघो पर औरते मीलो मे काम करती है। लेकिन दोनो के काम मे कितना अतर है। २४ करघो पर एक औरत को तेजी से काम करते देख चकित हो जाना पडा।

ओसाका के बारे मे कहा जाता है कि जापान के शहरो मे पर्यटको के लिए आकर्षण की वस्तुए यहा सब से कम है। सभवत यह बात अमरीकन पर्यटको के लिए सही हो लेकिन हमारे जैसो के लिए तो यहा दर्शनीय स्थलो की कमी नही है। दोपहर का खाना खाने के बाद हम शहर मे घूमने निकले। जुलाई का महीना था लेकिन समुद्र के किनारे होने के कारण गरमी बहुत नही थी। जापान का मौसम समशीतोष्ण है। ओसाका मे बहुत ऊँचे और बडेबडे मकान अधिक नही है। भूकप के प्रकोपो के कारण लकडियो के मकान बनाने की परम्परा रही है। अब आधुनिक ढग के भी तेजी से बन रहे है।

शहर मे कमर्शियल म्यूज़ियम, कला और विज्ञान के संग्रहालय, चिडियाखाना और बोटेनिकल गार्डेन भी है। लेकिन पेरिस के लूव्रे और लदन के म्यूजियम देखने के बाद इन को देखने के लिए हमारे मन मे कोई उत्साह नही था। यो तो यहा के सभी पार्क अच्छे है क्योकि जापानी प्रकृति के पुजारी और फूलो के शौकीन होते है, फिर भी तेन्नोजी पार्क सबसे अधिक सुदर लगा।

शहर की एक नहर से गुजरते हुए हम वहा के बुद्ध मदिर मे गए। बुद्ध की प्रतिमा के सामने धूपवत्तिया जल रही थी। तथागत के सौम्य, शात, तेजोमय मुखमडल को देख चित्त प्रसन्न हो गया। मदिर छठवी शताब्दी का है। जापानी वास्तुकला का शुद्ध निखार इस मे मिला। शात वातावरण और स्वच्छता देखकर एक बार मन मे प्रश्न उठा, हमारा देश भी तो मदिरो का देश है लेकिन कितना अतर है दोनो मे ? भिखारियो और पुजारियो का शोरगुल! साथ ही मितली लाने वाली गदगी! एक भाग मे हम ने हिदोयोशी का दुर्ग देखा। खडहर सा हो रहा है। फिर भी है रोबदार। जापान की १६वी शताब्दी की सामतशाही की यादगार है। गाइड ने हमे बताया कि किस प्रकार अपनी देशभक्ति और वीरता के कारण हिदोयोशी ने जापान के अधिकाश भाग को जीत कर एक सूत्र मे बाधा। उस समय जापान मे भी विदेशी पादरी लोगो को क्रिस्तान बना रहे थे उस ने जैसुइट पादरियो को अपने जीवन काल मे किसी भी तरह जमने नही दिया। उस का विश्वास था कि विदेशी धर्म के साथसाथ विदेशी सस्कृति कुसस्कार के रूप मे घर कर लेती है। हिदोयोशी के कारण ही औसाका का महत्व बढा। पहले तो यह एक गॉव सा था और इसका नाम था नानीवारा (लहरो के प्रेयसी)।

दूसरे दिन शाम को हम ओसाका के बदरगाह पर घूमने गए। ससार के विभिन्न भागो के जहाज माल लादने उतारने मे लगे थे। भारत का भी एक जहाज देखा। रद्दी लोहा (स्क्रेप आयरन) उतारा जा रहा था। जिसे हम रद्दी के भाव बेचते है, जापान उसे काम मे ले कर और उसकी स्टेनलेस स्टील की चद्दरे बना कर ससार के बाजारो मे धन बटोरता है।

लौटते समय हम ने रात का खाना ओसाका के एक गुजराती रेस्तरा मे खाया। एक गुजराती दंपत्ति इस होटल को खुद चलाते है। पत्नी रसोई बना देती है और पति खाना परोसते है तथा अन्य कामकाज सभालते है। ओसाका मे कुछ भारतीय स्थायी तौर पर रहते है। व्यापार का केद्र होने के कारण आतेजाते भी है। इस से इनकी अच्छी आय है। हमे भोजन

खूब रुचा। आत्मीयता के वातावरण से थकान मिट गई और मन तृप्त हो गया।

ओसाका मे सिनेमा, थियेटर और नाइट क्लब काफी सख्या मे है। लेकिन ओसाका का 'बुनराकू' कठपुतली का नाटक सबसे अधिक विख्यात है। यो तो सारे जापान मे बुनराकू के कई रगमच है फिर भी यहा की बुनराकू नाट्यशाला प्रतिष्ठित मानी जाती है। हमारे मेजबान हमे यहा ले आए। मेरी धारणा थी कि सभवत हमारे राजस्थान के कठपुतली के नाच की तरह कुछ होगा। लेकिन हमने इसे भिन्न पाया। कठपुतलिया बडे आकार की थी, अत्यत कलापूर्ण। इन का आकार औसत मानव शरीर से आधा था। और इनका सचालन तीन कठपुतली बालक कर रहे थे। पार्श्व सगीत के साथसाथ घटनाओ का उतारचढाव काफी प्रभावशाली लगा। भाषा न समझने के कारण पूरा आनद तो न ले सका पर इतना समझ पाया कि मध्ययुगीन किसी घटना पर कथावस्तु है। यहा देखा कि दर्शक आनद विभोर होकर न तो शोर मचाते है और न अनुशासन भग करते है।

ओसाका मे हम कोबे गए। यह एक प्रकार से ओसाका का पूरक अग कहा जा सकता है। यह करीब बीस मील दूर है और समुद्र के किनारे है। जलवायु ओसाका से अच्छी है इसलिए साधनसपन्न लोग यही रहते है और कारबार या दफ्तर के लिए ओसाका जाते है।

यहा करीब तीन साढेतीन सौ घर भारतीयो के है।जापान मे सब मे अधिक वे यही है, जिन मे गुजरातियो की सख्या अधिक है। ये मोतियो का तथा अन्य जापानी वस्तुओ के निर्यात का काम करते है। हमारे साथी श्री दुर्गाप्रसाद के बहनोई और बहन यहा रहते है। इस से हमारी यात्रा और भी सुविधाजनक हो गई। हमे उनके यहा भारतीय भोजन तो दोतीन बार मिला ही, साथ ही ताश भी खेला। उन के साथ हम 'फेनिकूलर' के पास की एक पहाडी पर गए। मोटे रस्से के सहारे लटकते हुए बक्सनुमा पिंजरे मे बैठ कर यात्री आयाजाया करते है। यहा से कोबे का दृश्य बडा सुन्दर लगा। ओसाका की अपेक्षा कलकारखाने कम होने के कारण यहा की प्राकृतिक शोभा अधिक आकर्षक लगी।

ओसाका मे जहा व्यस्त जीवन का वातावरण है वही कोबे मे कुछ रईसी और मौजमस्ती देखने मे आई। हम ने यहा ठेठ जापानी ढग के मकान देखे। जापान मे भूकप प्राय आया करते है। इसलिए यहा अन्य देशो की भाति विशाल मकान या भवन बनाने की परिपाटी नही रही है। जापानी मकानो की अपनी मौलिक विशेषता है कि ये हल्के होते है और कम से कम स्थान पर लकडियो के बनते है। प्रत्येक मकान मे एक छोटा सा बाग होता है। काफी सुन्दर और सुरुचिपूर्ण। कमरो मे दिवारे चिकों की या बास की पतली खपचियो पर कागज लगा कर बनती है, जो आवश्यकतानुसार हटाई जा सकती है। फर्नीचर अथवा सामान वे सिर्फ जरूरत भर के लिए रखते है और वह भी हल्के और छोटे। मैं एक जापानी घर मे गया। अपने यहा हम जिस तरह घर के अन्दर जूते नही ले जाते उसी तरह जापानी घरो मे जूते बाहर ही खोलने पडते है। जूते उतार कर केनवास की चप्पले पहन हम अन्दर गए। साफ फर्श, दीवारो पर चित्रकारी, खिडकियो पर परदे और गुलदस्ते। सजावट मे भडकीलापन नही बल्कि सादगी और सुरुचि देखी। गृहपत्नी और उनके बच्चो ने जापानी तरीके से प्रणाम किया। अभिवादन का उन का तरीका बहुत कुछ भारतीयो जैसा है पर वे हाथ जोड कर झुके हुए पीछे हटते है।

जापानी कमरे के बीच एक नीची सी टेबल रहती है। इसी के चारो ओर बैठ कर लोग भोजन करते है। हमारे घरो की तरह जापान मे भी पारिवारिक जीवन मे बडेछोटो के बीच मानमर्यादा का बहुत ध्यान रखा जाता है। लौटते समय हम फलो के बाजार से गुजरे। अच्छे से अच्छे फल हम ने देखे। दाम हमारे यहा से कम। खरबूजे भी देखने मे आए। हम ने खरीदा। बहुत ही स्वादिष्ट था। हमे पता चला कि सिवाए आम के प्राय सभी फल जापान मे होते है।

जापानी अपने स्वास्थ्य के प्रति बहुत सजग रहते है और विदेशो से ऐसे फल या खाद्य सामग्री नही आने देते जिससे उनके स्वास्थ पर बुरा प्रभाव पडे । आम इस वर्ग मे कैसे आया इसका आश्चर्य है । शाम को शहर घुमने निकले । होटल, रेस्तराँ, नाइट क्लब, थियेटर और सिनेमा बहुत से है ।

कोबे बिजली के प्रकाश मे मानो सारी रात झूमतानाचता है । एक मोहल्ले से हम गुजर रहे थे, देखा कि लदन के सोहो और पेरिस के मोमार्त की तरह यहा भी लडकिया मेकअप किये गलियो मे चक्कर लगा रही है । राह चलते को अर्थ भरी नजरो से देख रही है । समझने मे देर न लगी कि कोबे भी आखिर बदरगाह है । महीनो समुद्र गुजार देने का साधन हर बदरगाह पर होता है । चाहे वह पश्चिम का हामवुर्ग और मार्सलीज हो या पूर्व का सिगापुर और हागकाग ।

संसार का बेजोड़ शहर

टोकियो

ओसाका से टोकियो जा रहा था। ट्रेन का सफर था पर अनुभव नया हो रहा था। ट्रेन की रफ्तार १०० मील प्रति घटे की थी। जापान की ट्रेनो के अनुसार यह बहुत तेज नही थी, क्योकि वहा तो अव १३० मील की गति से चलने वाली ट्रेने भी है। ट्रेन मे काच के वने कक्ष थे और यात्रियो के वैठने के लिए आरामदेह सोफे लगे हुए थे। चारो ओर के दृश्य इसमे बैठकर आसानी से देखे जा सकते हैं। स्वीडन, स्विट्जरलैड और ब्रिटेन की ट्रेनो की तरह जापान मे भी यात्रियो के आराम का वहुत ख्याल रखा जाता है। खानेपीने के साधन, दवा चिकित्सा की व्यवस्था आदि रहती है। हम जिस कक्ष मे यात्रा कर रहे थे उसे 'आवजरवेटरी कार' कहा जाता है। इस के साथ एक और डव्वा रहता है जो चारो ओर से खुला रहता है, केवल ऊपर छत रहती है। एक बरामदा भी इस मे रहता है। मैं बरामदे मे जा कर खडा हो गया। नदी नाले, पहाड, गाव सभी मानो क्षण मात्र के लिए सामने आते और मुस्करा कर ओझल हो जाते थे। देख रहा था चप्पा-चप्पा जमीन काम मे लाई गई है। धान की सुनहरी वालिया जापानी जीवन मे सोना विखेरने के लिऐ झूम रही है। जापान छोटा सा देश है, इस का तीन चौथाई भाग पहाडी है। जगह कम है और आवादी घनी। फिर भी खाद्यान्न मे जापानी स्वावलवी है। आएदिन जलूस निकाल कर शासन की व्यवस्था को बिगाडते नही।

यह वात नही कि जापान में दलवदी नही है। है, और खूब जोरो, पर उन मे वह उत्तेजना नही है जो हमारे यहा है। दक्षिण पथी और वाम पथी हमारे देश की तरह वहा भी हैं। कम्युनिस्टो ने वडे जोडतोड लगाए, तोडफोड की कोशिशें की, पर जनता ने जव उन्हे पहचाना तो वे कही के न रहे। जापानी ससद मे उनका प्रतिनिधित्व करने वाला अव केवल एक व्यक्ति रह गया है। दक्षिण पथी परंपरावादी है, ब्रिटेन की कजर्वेटिव पार्टी की तरह। वाम पथी मे समाजवादी है। इन के अलावा एक दल जनतत्री समाजवादी विचारो का है जिन्हे मध्यममार्गी कह सकते है वे अतिवादी विचारो के विरूद्ध है चाहे वह दक्षिण पथी हो या वाम पथी। सरकार की नीति को अपनी तरफ मोड देने लिए हरेक का दवाव रहता है। लेकिन सभी शातिपूर्ण तौरतरीके मे विश्वास करते हैं। सभी की मान्यता है कि शिल्पोद्योग की उन्नति हो, निर्यात वढे, विदेशो से अच्छे सवध रहे, राष्ट्र की प्रतिष्ठा और शक्ति वढे तो अन्न और आबादी की ममस्या अपनेआप हल हो जाएगी।

दूर से फूजी यामा दिखाई पडा। वर्फ की चादर ओढे मानो कोई व्यक्ति मौन तपस्या मे लीन है। यह जापान का सुप्त ज्वालामुखी है, करीब २५० वर्षो से शात है। इस की उचाई

करीब १२,२५० फुट है। जापान मे इतनी ऊची चोटी और किसी पर्वत की नही है। हमारे यहा के पर्वतो की तुलना मे जापान के पहाड बहुत छोटे है फिर भी फूजी जापान का नगराज है और उस का प्रतीक भी। इसे देखने के लिए दूरदूर मे लोग आया करते है।

टोकियो पास आता जा रहा था। ट्रेन राजमार्गों को आडेतिरछे पार करती जा रही थी। पक्के, ऊचे मकान और कारखाने मिलने लगे। ट्रेन शहर के बीच मे गुजरती हुई सेंट्रल स्टेशन जा पहुची। किसी भी पाश्चात्य रेलवे स्टेशन की तुलना मे यह कम नही लगा। यह जापान का मव से बडा और अत्यत व्यम्त रेलवे स्टेशन है। यहा मे भी प्रति दिन जापान के विभिन्न भागो के लिए दूर मफर की लगभग १५० ट्रेनें छूटती हे। स्टेशन देख कर मै बडा प्रभावित हुआ। पूछने पर पता चला कि १३० मील प्रति घटे की गति वाली १८ ट्रेने ओमाका और टोकियो के बीच शीघ्र ही चलेगी।

हमे लेने के लिए स्टेशन पर दूतावाम के प्रतिनिधि आए थे। आम तोर से जापानी मझोले कद के होते हैं, भारतीयो मे छोटे और हलके। इमलिए स्टेशन पर काफी भीड रहते हुए भी हम ने उन्हे देख लिया। उनकी लम्बाई काफी अच्छी थी। मिर पर माफा और बडीबडी डाढीमूछो वाली शानदार शक्ल को पहचानने मे दिक्कत नही हुई।

दूतावास ने हमारे लिए गिजा होटल की व्यवस्था कर दी थी। कार्यक्रम भी उन्ही के सलाहसे तय था यहा भी कलकारखाने देखने थे पर उतने अधिक नही जितने ओमाका मे। उद्योगव्यापार के मचिवालय और विभिन्न मम्थानो मे मिल कर आवश्यक जानकारी भी लेनी थी।

मेरा खयाल है कि टोकियो अपनेआप मे ममार का बेजोड शहर हे। हो मकता हे न्यूयार्क और लदन विस्तार मे टोकियो से बडे हों, लेकिन जनमख्या और जीवन की मुसकान जो टोकियो मे है, वह दूसरी जगह नही। लदन मे राम्ते चलने वालो या ट्रेन, बम मे बैठे लोगो के मजीदे चेहरो को देख कर ऐसा लगता है कि या तो गूगे हैं या किमी से लड कर आए है।

टोकियो बहुत ही व्यस्त नगर हे। राजधानी भी हे व्यापारउद्योग का प्रमुख केन्द्र भी। एक करोड से अधिक अबादी वाले इम शहर की मफाई और सुव्यवस्था देख कर हम चकित रह गये। न्यूयार्क, मास्को और लदन की बात होती तो हमें आश्चर्य नही होता। कारण, कि वे पाश्चात्य शहर है। पर टोकियो? यह तो एशियाई हे, हमारा पडोमी हे। कलकत्ता, दिल्ली और बम्बई मे इस से आधी आबादी ही हे यहा हमारी व्यवस्था अनियत्रित हो जाती हे। कही पानी है तो बिजली नही, बिजली आई तो गैम गायब। सडको पर कूडे के ढेर। रात मे पटरियो पर सोते हुए लोगो की कतारे। टोकियो मे यह नही दिखता। हमारे यहा के नगरनिगम के सदस्य और कर्मचारी आपस मे आएदिन के झगडो को छोड कर नगर की सुगम व्यवस्था की जानकारी के लिए यदि टोकियो, ओसाका और सेनफ्रांसिस्को जा कर देखे तो अधिक लाभ होगा।

शहर घूमने के लिए टोकियो मे हमारे राजदूत श्री लालजी मेहरोत्रा ने हमारी सब प्रकार की व्यवम्था कर दी, इसी लिए हम थोडे ममय मे बहुत कुछ देख मके। भारतीय पर्यटकों चाहिए कि जहा कही भी जाए, अपने देश के दूतावाम मे जा कर उन की सलाह ले ले इस प्रकार वे अनावश्यक धन और समय के खर्च से बच मकते है।

दूसरे बडे शहरो की तरह टोकियो घूमने के लिए यात्री सब से उत्तम साधन है। यह आरामदेह है और खर्च भी कम पडता है। गाइड से सब जगहों का और जापानी जीवन का परिचय भी मिलता रहता है। अब तो अपने यहां भी बडेबडे शहरो मे इस प्रकार की व्यवस्था पर्यटक विभाग की ओर से की गई है। शहर के विभिन्न स्थानो से हमारी बस गुजर रही थी। हम पाच साथी थे। प्रभुदयालजी और रामकुमारजी तो साथ ही दिल्ली से चले थे और

दुर्गाप्रसादजी व प्यारेलालजी हागकाग से साथ हुए। ओसाका मे ये हमारे मेजवान थे। बाहर जुलाई की गरमी थी पर बस ताप नियन्त्रित थी, इसलिए परेशानी नही रही।

गाइड एक महिला थी। बडी विनम्र और मृदुभाषी। अगरेजी मे समझाती जा रही थी। मै ने देखा कि उस का यह प्रयास था कि जापान के बारे मे विदेशी अच्छी जानकारी पा सके। इसलिए जापानी समाज, राजनीति, इतिहास, सस्कृति और उद्योगधधो के बारे मे बताती जा रही थी। इस प्रसग मे मै यह बताना चाहूगा कि हमारे देश के गाइडो को अभी बहुत कुछ सीखना है। मै ने स्वय इस बात को कलकत्ता और बनारस मे देखा है कि हमारे गाइड विदेशियो को कुछ ऐसे स्थानो पर भी ले जाते है जो हमारी सरकार, समाज और देश के लिए शोभनीय नही है। दशाश्वमेध घाट पर मै ने विदेशियो को वहा के भूखेनगो का फोटो लेते देखा है। वे अपने देश मे इन का प्रचार करते है। हमारी सरकार को इस दिशा मे विशेष ध्यान रखना चाहिए।

टोकियो २३ भागो मे विभक्त है। शहर के बीच मे शुनिदा गावा नदी बहती है और कई नहरे है जिन पर खूबसूरत पूल बने हुए है। शहर का क्षेत्रफल लगभग ८०० वर्ग मील है। दक्षिण की ओर खाडी मे सात छोटेछोटे द्वीप भी है।

जापान मे प्रति वर्ष लगभग ५० बार भूकम्प के धक्के आता है, लेकिन यहाँ का आधुनिक और शानदार इमारतो को देख कर इसका आभास नही होता। गत महायुद्ध मै बमबारी और अग्निकाड से शहर के करीब ६ लाख घर जले या नष्ट हुए। आज उसका चिन्ह तक नही मिलता। जो नए घर बने है वे पहले से मजबूत और सुन्दर है। गाइड बता रही थी कि यद्यपि हम परिवार नियोजन पर पूरा ध्यान रखते है फिर भी हर चौथे मिनट मे एक बच्चा पैदा होता है और बारहवे मिनट पर एक व्यक्ति मरता है, वर्ष मे तीन साढेतीन लाख की आबादी बढती जाती है।

टोकियो दिल्ली, रोम और लदन की तरह प्राचीन नही है फिर भी जापान के गौरवमय इतिहास से सबध्रित है। प्राचीन काल मे इसका नाम ईदो था। तोकुगावा शोगुनो (राज्यपाल) ने इसे १६०३ ई० मे अपनी राजधानी बनाया। तभी से ईदो का महत्व बढा और एक नई सस्कृति का विकास हुआ जो पुरानी राजधानी क्योतो से भिन्न थी। मेइजी शासनकाल मे १८६४ मे ईदो मे स्थायी रूप से जापान की राजधानी प्रतिष्ठित हुई।

शहर के बीच मे राजप्रासाद है। नहरो से घिरे करीब २५० एकड के क्षेत्रफल पर नाना प्रकार के सुन्दर बाग बगीचो के बीच कई महल और भवन हे। इतने व्यस्त व्यावसायिक और औद्योगिक केन्द्र के बीच होते हुए भी यहाँ का वातावरण अत्यन्त शात और सौम्य है। घनी आबादी और जगह की कमी के बावजूद शहर के बीच इतने बडे क्षेत्र को महज एक परिवार के लिए छोड रखना सिद्ध करता है कि जापानी अपने सम्राट को व्यक्ति नही देवता मानते है और उसके प्रति आतरिक स्नेह और श्रद्धा रखते है। परपरा के अनुसार वे अपने सम्राट को मिकाडो कहते है और उसे सूर्य का पुत्र समझते है। विश्व मे शायद ही कोई सम्राट आज के युग मे अपनी प्रजा द्वारा इतना समादृत है।

जापानी तौरतरीको से हमे प्रत्यक्ष परिचित कराने कि उद्देश्य से हमारी गाइड ने एक जापानी परिवार मे हमारा भोजन का कार्यक्रम बनाया। हम सभी यात्री वहाँ गए। जापानी तरीके से भोजन बनते और परोसते देखा। शिष्टाचार मे भारतीय सस्कृति की छाप निश्चित रूप से लगी है। पता नहीं तेल था कि चर्बी जिस मे मछली तली जा रही थी। उसकी गध से हम पाचो शाकाहारी बधु घबरा गए। हमारे अलावा दूसरे अमरीकन और यूरोपियन बडे गौर से पाक कला की बारीकियो को समझने लगे। चावल के साथ कुछ घोघे की तरकारी और छोटी कच्ची मछलियो का समन्वय हमारी रुचि के अनुकूल नही था।

हम ने कोकाडेन का ज्यूडो हाल देखा। ऊचा और बडा सा कमरा था साजसामान कुछ भी नही। देखा, जमीन पर तातामी (चटाइया) बिछी हुई हैं। जूदो के छात्र एकदूसरे से गुथे हुए हैं, जैसे अखाडे मे पहलवान भिडते हैं। जूदो को ज्युज्युत्सु भी कहते है। यह जापान की अपनी विद्या है। अब तो विश्व के विभिन्न देशो मे इसके प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा रही है क्योकि बिना हथियार के केवल दाव के इशारे से अपने से कही बलवान प्रतिपक्षी पर काबू पा लेना बहुत बडी बात है। इस मे शारीरिक बल का महत्त्व नही, बल्कि दावपेच, स्फूर्ति और बुद्धिमानी की जरूरत पडती है।

हम यहाँ का विश्वविद्यालय भी देखने गए। सौ एकड जमीन पर स्थित है। अनुशासन, शिष्टता और शिक्षा जापान की राष्ट्रीय विशेषता रही है। किसी समय हमारे यहा भी यह बाते थीं, इसी लिए जीवन संयम और परिश्रम के कारण आनंदमय था। आज हमारी शिक्षा पद्धति लडखडा रही है और हमारे छात्रो मे नैतिकता और अनुशासन का अभाव हो गया है। जापान ने अपनी शिक्षा पद्धति मे पाश्चात्य तरीको को इस ढग से अपनाया है कि राष्ट्र की मौलिकता जरा भी प्रभावित नही हुई है। विश्व मे जापान सर्वाधिक शिक्षित देश है। साक्षर नही, बल्कि ९८ प्रति शत शिक्षित वहा मिलेगे। जापानी शिक्षा की आधारभूत विधि मे लिखा है "हम व्यक्ति की गरिमा का आदर करेगे। सत्य और शाति से प्रेम रखने वाले नागरिक तैयार करेगे। जापान मे स्त्रीपुरुष सब को सामान रूप से शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है।"

टोकियो के विश्वविद्यालय मे इजीनियरिंग, कानून, अर्थशास्त्र, समाज विज्ञान, कृषि, डाक्टरी एव विज्ञान की ऊची से ऊची पढाई होती है। विश्वविद्यालय का फाटक लकडी का बना है। पुराना तो जरूर है, पर लगता है सुन्दर। अहाते मे खेलने का मैदान, जिम्नाशियम, तैरने का तालाब और क्लब भी है। टोकियो मे विद्यार्थी बहुत बडी सख्या मे रहते है। सरकारी विश्वविद्यालय के अलावा सरकारी और अर्ध सरकारी शिक्षा के अन्य केद्र भी हैं।

कलकत्ता के बडाबाजार अचल की तरह यहा का व्यावसायिक और अन्य व्यापारिक केद्र मारूनोची है। टोकियो का मुख्य रेलवे स्टेशन, बैंक, इश्योरेस एव व्यावसायिक सस्थाओ के बडेबडे भवन इसी अचल मे है। शहर घूमते हुए हम ने देखा कि लदन की तरह यहा भी भूगर्भ ट्रेने है जो शहर के विभिन्न भागों को एकदूसरे से मिलाती है। टैक्सियो की कतार तो सडको पर चलती ही रहती है। हम ने तीन तरह की टैक्सिया यहा देखी—बडी, मझोली और छोटी। इनके किराए की दर भी अलगअलग है। पता चला कि इन टैक्सी चालको का व्यवहार बहुत ही शिष्ट होता है। मिस्र, रोम या भारत के टैक्सी वालो से बिल्कुल अलग।

यात्रीबस टोकियो के युइनो पार्क मे रुकी। यो तो टोकियो मे बहुत से पार्क है। अधिकाश स्मारक और मदिरो के साथ छोटेछोटे उद्यान है। लेकिन युइनो पार्क इन सबसे भिन्न है। यह बाग करीब २०० एकड जमीन पर बनाया गया है। इस मे सग्रहालय, पुस्तकालय, साइस, म्यूजियम और चित्रशाला है। टोकियो का प्रसिद्ध चिडियाघर भी यही है। इन के अलावा तोशुगू का सुन्दर पैगोडा भी यही है।

शाम हो चुकी थी। हमारी बस हमे गिंजा ले आई। पेरिस का साएलेजा, लदन की पिकाडिली और न्यूयार्क के फिफ्थ एवेन्यू की तरह टोकियो के गिंजा की शाम और शान मशहूर है। आधुनिक शैली की ऊचीऊची इमारतो को देख कर सहसा भ्रम हो जाता है कि अमेरिका के किसी शहर मे आ गए हो। प्रकाश मे नहाती हुई सजी दुकाने और सडके, मुसकराते नागरिक, मकानो पर बिजली के तरहतरह के निओन साइन के बडेबडे विज्ञापन सभी एक समा बाध देते है। तरहतरह की रोशनियो से लगता है कि कोई जादूगर छिप कर इद्रधनुष के खेल दिखा रहा है।

जापानियो ने यात्रियो के आकर्षण के लिए पेरिस और हवाई द्वीप की तरह गिंजा को सजाया है। विदेशियो के लिए जापान की गीशा विशेष सम्मोहन रखती है लेकिन केवल इन पर भरोसा न कर यात्रियो के लिए नाइटक्लब और कैबरे आदि भी बडेबडे शहरो में खोल दिए गए हैं। हम यात्रीबस के गाइड के साथ थे, इसलिए यह पता नही चल पाया कि यहा भी पेरिस और रोम की तरह ठगे जाने का डर है या नही।

दूसरी शाम को हमने यात्रीबस से ही टोकियो की रात्रि का कार्यक्रम निश्चित किया। एक साथ बीसपचीस प्रर्यटक, यात्रीबस से सैर कर सकते है। प्रति व्यक्ति ५० रुपए लगे, जिस मे रात्रि का भोजन भी शामिल था। बस हमे सर्वप्रथम एक जापानी परिवार मे ले गई जहा विशुद्ध जापानी तरीके से चाय बना कर दी गई। जापान मे अदबकायदे से चाय बनाकर पिलाना बडा महत्व रखता है। इससे परिवार की कुलीनता की परख होती है। चाय की रस्म को चानोयू कहते है। इस रस्म और कला की शिक्षा के लिए कई शिक्षण केंद्र सारे जापान मे है। चाहे घर हो या बाग, शात वातावरण हो, चाव से चाय बनाई जाए, पी जाए और पिलाई जाए, फिर आनद क्यो न आए, यही इस रस्म की मूल भावना है। फिर हम एक कमरे मे गए। आधुनिक ढग का वातावरण था। पाश्चात्य ढग का नृत्य चल रहा था। हम पाच भारतीय साथियो को छोड बाकी सभी विदेशी साथी अपनेअपने लिए जोडी चुन कर नाच मे शामिल हो गए। हम करते भी क्या ? नाचना तो हमे आता नही था।

हमारे गाइड ने बताया, "निपोन (जापान) सूर्य का देश है, यहा रात होती ही नही। रात उनके लिए है जो सोना चाहते है।" हस कर उसने कहा, "और जो सोता है वो खोता है। दो हजार से भी अधिक नाइटक्लबो मे एक लाख से ऊपर सुदरियो के मजमे मे आप स्वर्ग को पा सकते है।" प्रभुदयालजी ने हस कर गाइड से कहा, "हा भाई, मेरा ख्याल है बहुत जल्द ही।" हम पाचो हस पडे पर दूसरे यात्री इसे शायद समझ ही न पाए।

तीसरा कार्यक्रम था नाइटक्लब का। यहा प्रत्येक के लिए एक सुन्दरी पास आकर बैठ गई। उमडता यौवन, आखो मे मादकता और प्याले मे छलकती मदिरा ! सुगध से पूर्ण वातावरण ! हम लोगो के लिए पेचीदा मामला था। सुन रखा था कि गीशाए सभ्य और शालीन मनोरजन परपरा मे पटु होती है। पर यहां तो कुछ और ही दिखाई पडा। कुछ देर तो हम मौन रहे। लडकिया थोडीबहुत अंग्रेजी जानती थी। फिर प्रभुदयाल ने इधरउधर की चर्चा छेड दी। बेचारी लडकिया हैरान थी। उन से पिता का सा व्यवहार पा कर लडकिया झेप सी गई, क्योकि वे तो अतिथियो को किसी दूसरे ही तरीके से खुश करने की अभ्यस्त थी और इसी के लिए उन की नौकरी थी। हम ने यह विशेष रूप से पाया कि सभी देशो मे नाइटक्लबो मे रोशनी बहुत धीमी रहती है ताकि थोडी दूर पर बैठे हुए लोग एकदूसरे को पूरी तरह न देख सके और पहचान भी न पाए कि वे कौन है। गाइड ने हमे बताया कि पिछले महायुद्ध के बाद अमरीकनो के प्रभाव से यहा नाइटक्लबो की बाढ सी आ गई। कभीकदास एकदो अशोभनीय घटनाए भी होती रहती है, हालाकि सरकार की ओर से काफी नियन्त्रण रखा जाता है।

नाइटक्लब की लडकियो को देख कर हमारे मन मे गीशाओ के प्रति जो भावना थी उस मे कुछ शका सी होने लगी। हम ने गाइड से अपनी बात कही। पता चला कि ये लडकिया गीशाओ की मूल परपरा मे नही आती है। अतर क्या है ? गीशा गृह मे जाने पर स्वय अनुभव हो जाएगा।

गीशाओ के बारे मे हमने बहुत कुछ सुना और पढा भी था। जापानी सामाजिक जीवन मे प्राचीन काल से इन का महत्व पूरी तरह रहा है। कला, सस्कृति और सभ्यता के विकास मे ये सदैव प्रेरक शक्ति रही है। हमारे इतिहास मे गुप्तकालीन नगरवधू की तरह उन्हे राज्य और जनता दोनो के द्वारा सम्मान मिलता रहा है। सपन्न और कुलीन परिवारो की कन्याए

भी सगीत एव कला सीखने के लिए इन्ही के पास भेजी जाती थीं। शिष्टाचार और बातचीत के तौरतरीके की बारीकिया गीशाए सिखाती थी।

आज भी यह परपरा जारी है। सामुराई (सामत) युग गीशाओ के प्रभाव और समृद्धि का समय था। आधुनिक काल मे भी जापान के धनिक व्यापारी, व्यवसायी एव उद्योगपति गीशाओ से सबध रखते है। समाज मे इसे बुरा नही माना जाता और न उन की पत्नियों को ही इस मे आपत्ति रहती है। वास्तविकता यह है कि गीशा को स्वस्थ मनोरजन का सजीव साधन माना जाता है। हम गीशा गृह पहुचे। किमोनो मे सजी गीशाए गुडियो जैसी लग रही थी। हम बीसपच्चीस यात्री थे और वे थी सातआठ। सभी किशोरावस्था की युवतिया थी। केवल एक प्रौढा थी जो गृह सचालिका थी। रात के बारह बज रहे थे। हवा मे ठंडक थी। नाइटक्लब के वातावरण से जो घुटन महसूस हुई थी यहा आ कर दूर हो गई थी। मखमल की सी मुलायम चटाइयो पर तीनचार की टोली मे बैठ गए। गीशाए हमारे पास बैठी। हम ने देखा गृह सचालिका का अनुशासन बहुत ही सधा हुआ था। लडकिया बडे उत्साह और प्रसन्नता के साथ हमारी खातिरदारी करने मे लगी हुई थी। चाय नाश्ता के साथ तरह-तरह की चर्चा हुई। माध्यम टूटी फूटी अग्रेजी ही थी। प्रत्येक गीशा जापानी के अलावा एक दो विदेशी भाषा जानती है। हमने जानबूझ कर सवाल किया, "हिंदी नही बोल पाती ?" बडी ही नम्रता से उत्तर मिला, "नमस्तै-जयहिंद।" शायद उनकी हिंदी की जानकारी इन्ही दो शब्दो की थी।

गीशा गृह मे ही मुझे पता चला कि जापान मे कई लिपियाँ है जिनमे हीराकानी और काटाकानी अधिक प्रचलित है। फिर भी भाषा की अभिव्यजना के लिए जापानी लिपियाँ यथेष्ट नही है। मै सोचने लगा कि हिंदी की देवनागरी लिपि मे भी कई प्रकार के सुधारो की आवश्यकता है। जितनी सामग्री अगरेजी लिपि मे टाइप की जाती है उतनी अगर हिंदी मे की जाए तो ज्यादा देर लगती है। यदि इसके लिए हिंदी प्रेमी कुछ सुधार कर सकें तो एक महत्वपूर्ण सेवा होगी।

नाश्ते के बाद आधा घटा जापानी और अगरेजी गाने हुए। शिष्टता के नाते हम सिर हिला-हिलाकर दाद तो दे रहे थे, पर समझ मे कुछ भी नही आ रहा था। भारतीय गायन की तुलना मे ये मुझे हल्के ही लगे। गायन के बाद नृत्य शुरू हुआ। गीशाए हाथ मे पख लेकर दाए बाए थोडा झुकती थी और ताल के साथसाथ मुड जाती थी। इसके बाद एक और नाच हुआ जो हमारे यहाँ के घूमर से बहुत कुछ मिलता जुलता लगा। रात के दो बजे यात्रीबस से हम अपने होटल गिजा लौटे।

कमरे मे आकर हाथमुह धोए। पाच घटे के सफर से थकावट होनी स्वाभाविक थी। टोकियो की खाडी से आती हुई हवा ताजगी दे रही थी। खिडकी से बाहर गिजा उस समय भी नियोन साइन की अनेक रगो की रोशनी में जगमगा रहा था।

क्या कोई एशियाई देश जापान को पछाड़ सकता है ?

जापान—२

एक बार लदन मे मेरे एक मित्र ने पाश्चात्य पार्थिव सफलता की चर्चा करते हुए कहा था, 'पूर्व और पश्चिम, दोनों का सगम कभी नही हो सकता ।' वात जची नही थी किंतु मेरे पास उस समय ठोस उत्तर नही था । जापान के पर्यटन ने मेरी इस समस्या का समाधान कर दिया । जापानी जन-जीवन का गहराई से अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि पाश्चात्य भौतिकवाद और प्राच्य के आध्यात्मवाद का सतुलन-समन्वय यहा है ।

अव तक ओसाका, कोवे और टोकियो देख पाया था । टोकियो का हमारा निश्चित कार्यक्रम तो अव तक पूरा भी नही हो पाया था । ज्यो-ज्यो जापानी जीवन के विभिन्न पक्षो को समझ रहा था । त्यो-त्यो इच्छा होती थी कि और अधिक जानकारी प्राप्त करू ताकि स्वदेश जाकर इस सवध मे अपने विचार रख सकू । हमारे भारतीय दूतावास ने इस दृष्टि से जो कार्यक्रम हमारे पर्यटन के लिए वनाया उससे काफ़ी सुविधा रही ।

टोकियो मे हम ओसाका से अधिक व्यस्त रहे । जापानी समय के वडे पावद होते है । न खुद का समय नष्ट करते है और न औरो का, इसलिए हमारा समय कही भी व्यर्थ नही गया । हमारे दूतावास ने ससद देखने का कार्यक्रम वना दिया था । सुवह ही हम प्रथम सचिव के साथ भवन देखने गए । हालाकि उन दिनो जापान की ससद की वैठके नही हो रही थी फिर भी, वहा के स्पीकर और कई सदस्य जो हमारे लिए पहले ही से भवन मे उपस्थिति थे, वडे स्नेह पूर्वक मिले ।

ससद को जापान मे 'डायेट' कहते है । ससद भवन अच्छा था, पर हमारे ससद की तरह विशाल और भव्य नही । वाशिंगटन मे अमरीकी ससद को छोडकर विश्व का कोई भी ससद भवन हमारे टक्कर का नही देखने मे आया । स्पीकर ने हमारा सत्कार किया और चायजलपान पर वैठे हमने परस्पर सविधान सवधी जानकारी प्राप्त की ।

जापानी सविधान का इतिहास हमारे देश की तरह प्राचीन नही है । हमारे यहा वैदिक काल से राज्य शासन और नागरिक के अधिकार और आचार के नियम मिलते है । मनु और कौटिल्य तो इस सवध मे बहुत ही ठोस और स्पष्ट है । हमारे देश मे धीरे-धीरे इसे धार्मिक जामा पहना दिया गया, इसलिए नागरिक जीवन मे यह न तो स्पष्ट हो पाया और न लोगो की रुचि ही इसके प्रति हुई । देश के स्वाधीन होने के वावजूद आज औसत भारतीय स्वदेश के सविधान के प्रति पूर्ववत उदासीन मिलते है, परतु जापान मे ऐसी वात नही है । जापानी सविधान के मनु है—सम्राट मेइजी । सन् १८६८ मे उन्होने जापान के सविधान को सपादित

कराया और उसे मौलिक रूप दिया। गत् महायुद्ध (१६३६-४५) के बाद सम्राट हिरोहितो की प्रेरणा से इसमे महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। इस प्रकार सामन्तशाही से इसका रूप जनतान्त्रिक हो गया।

संविधान के आमुख मे लिखा है कि "हम जापानी, चिरस्थायी शाति की कामना करते है। स्थितिशील शाति की प्रतिष्ठा के हेतु एव अत्याचार, दासता, दमन तथा असहिष्णुता को विश्व से सदैव के लिए उन्मूलित करने के निमित्त हम अतरराष्ट्रीय समाज मे प्रतिष्ठित स्थान चाहते है।" नए सविधान के अनुसार सम्राट को राष्ट्र और जनता का प्रतीक माना गया है। भारतीय मान्यता की तरह उसमे भी हमने देखा कि 'मौलिक मानव अधिकार सार्वकालिक और अपरिहार्य है।'

जापानी ससद मे प्रतिनिधि सदन ओर सलाहकार परिषद हमारी लोक सभा एव राज्य सभा की तरह है। शासनाधिकार मन्त्रिमडल के हाथो मे है और इसके लिए वह संपूर्ण रूप से 'डायेट' के प्रति उत्तरदायी है। जापान में सम्राट की इज्जत तो बहुत है, पर शासन सबधी अधिकार उसे हमारे राष्ट्रपति से कम है। प्रधान मत्री डायेट के द्वारा और सर्वोच्च न्यायाधीश मन्त्रिमडल द्वारा मनोनीत किया जाता है। सम्राट केवल नियम ओर सधियो पर अपनी स्वीकृति देता है, ससद को आवाहन करने तथा मन्त्रियो की नियुक्ति की ओपचारिकता का निर्वाह करता है।

स्पीकर तथा सदस्यो से बाते कर हमे वडी प्रसन्नता हुई। वे देश के प्रतिनिधि थे, इसलिए उनसे बाते करने पर जनसाधारण की प्रकृति एव रुचि का भी आभास हमे मिल सका। मैंने यह लक्ष्य किया कि जापानी भले ही पाश्चात्य पोशाक अथवा परिवेश मे हो, अपनी मौलिकता, सस्कृति और भाषा को वे भूलते नही और न छोडते है। हमारे यहा ऐसा है कि पाश्चात्य पोशाक और परिवेश मे आते ही औसत व्यक्ति तो क्या अच्छे शिक्षित राजनीतिक व्यक्ति भी भारतीय सस्कार और अपनी भाषा के प्रति उदासीन रहते है।

ससद देखकर हम अपने होटल नही आए समय कम था अतएव बाहर ही कही भोजन कर लेना तय पाया। यूरोप के अन्यान्य देशो की तरह यहा शाकाहारी रेस्तरा सरलता से नही मिलते। हमने सुना था कि टोकियो मे एक भारतीय रेस्तरा है। हम वही गए। रेस्तरा साधारण और साफ था। वातावरण मे भारतीयता थी भारतीयो के सिवाय कुछ विदेशी भी चाव से इडली, दोसे ओर साँभर का स्वाद ले रहे थे। रेस्तरा के मालिक श्री नायर वयोवृद्ध है और अच्छे व्योहार कुशल भी। उन्होने बताया कि भारतीय मेनू को अपने रेस्तरा मे इसलिए रखा है कि टोकियो मे रहने वाले भारतीय व्यवसायियो और पर्यटको को सुविधा रहे। वैसे, विदेशी भी अच्छी सख्या मे उनके यहा आते रहते है। रेस्तरा मे हिंदी फिल्मी रेकार्ड बज रहा था। अपने देश की धुन सुनकर और अपनी रुचि का भोजन पाकर तबीयत मे ताजगी आ गई। विदेशो मे स्वदेश ज्यादा प्यारा लगता है।

भारत की तरह जापान मे भी कुछ बडे-बडे परिवारो के नियत्रण मे उद्योग व्यवसाय हैं। अतर यह है कि ये परिवार सामतशाही व्यवस्था के कारण पहले ही से प्रभावशाली रहे है और उस व्यवस्था के अवसान के बाद उन्होने व्यवसाय और उद्योग क्षेत्र को अपना लिया था। हमारे यहा मुख्यत व्यवसायी परिवार ही उद्योग व्यपार का सचालन करते है। सामतशाही परिवार के लोग रजवाडो के अन्त के बाद अब भले ही व्यापार व्यवसाय मे दो एक आये हो।

टोकियो मे हम सुप्रसिद्ध मित्सु परिवार द्वारा सचालित रेडियो का कारखाना देखने गए। यही विश्वविख्यात नेशनल रेडियो और ट्राजिस्टर बनते है। कारखाना अत्यत ही व्यवस्थित था। काम स्फूर्ति से हो रहा था और शोरगुल बिलकुल ही नही। चेहरे पर ताजगी और मुस्कुराहट लिए आठ हजार लडकियो को हमने दत्तचित्त काम करते देखा। एक बहुत बडे हाल मे टेबिल की ऊँचाई पर सरकती पटरियो (कनवेयर बेल्ट) पर ट्राजिस्टर एक सिरे से

दूसरे सिरे तक बढ़ते जा रहे थे। पहले सिरे पर सिर्फ ट्राजिस्टर के ढाचे रखे जा रहे थे। लडकिया कतारों मे बैठी थी। उनके सामने ट्राजिस्टर ज्यो ही आता वे पुरजे बैठा देती थी। इस प्रकार एक के बाद दूसरे पुर्जे और सूक्ष्म यंत्र बैठाये जाते थे। दूसरे सिरे पर ट्राजिस्टर जब पहुचता था तब पूरा तैयार हो जाता था। श्रम और समय का मितव्ययिता के साथ उपयोग और उनकी कार्य दक्षता हमारे लिए नि.सन्देह अनुकरणीय है। हमारे दूतावास के साथी ने बताया कि जापान मे मजदूरी सस्ती है और कारीगरो की कार्यक्षमता अनुपातत बहुत ही अधिक है। इसलिये अन्य देशो की अपेक्षा जापान मे काफी कम लागत मे चीजे तैयार होती है। रेडियो की तरह दूरबीन, माइक्रोस्कोप और कैमरे जैसे आवश्यक सूक्ष्म यन्त्रादि भी अन्य देशो की अपेक्षा जापान मे काफी सस्ते बनते है। जरमनी प्रसिद्ध 'लाइका' कैमरे को जापानी 'केनोन' की प्रतियोगिता का सामना करना पड रहा है। केनोन गुण मे लाइका से कम नही है और दाम उसके आधे से भी कम। हाथ घडिया भी जापान ने बड़े पैमाने पर बनानी शुरू की है, पर इस क्षेत्र मे स्विस का मुकाबला अब तक कोई भी देश नही कर पाया है।

हमने प्रश्न किया, "क्या अब भी जापानी माल दूसरे देशो की अपेक्षा हलका बनता है ?" उत्तर मिला, "युद्ध के पहिले हमारी नीति दूसरी ही थी पर अब हमे अपनी साख की फिकर है। यही कारण है कि अमरीका जैसे देशो मे जहा केवल सस्तेपन का महत्व नही के बराबर है, जापानी माल की खपत बढती जा रही है।

टोकियो के उत्तर मे करीब ९० मील की दूरी पर निक्को और चूजनजी झील जापान का विशेष आर्कषण है। जापान मे यह बहुत ही रम्य स्थल माने जाते है। अपने यहा एक कहावत है, 'गढ तो चित्तौडगढ और सब गढैया।' कुछ इसी प्रकार जापानी कहावत है, 'केक्को (सुदर) मत कहो जब तक नेक्को न देखो।' मतलब यह कि सुदर क्या है इसका पता तो नेक्को देखने पर ही हो सकता है। पर स्विट्जरलैड की लेक जिनेवा या काश्मीर की डल झील से नेक्को का मुकाबला नही है।

जापान मे आवागमन के अच्छे से अच्छे साधन है। अत. ९० मील की दूरी हमे अखरी नही। ६० मील की रफ्तार से ट्रेन हमे ग्राम्याचल के बीच से लिए जा रही थी। ओसाका से टोकियो तक के सफर मे देखा कि खेती पर जापानी विशेष ध्यान देते है। और अपनी जमीन को जरा भी परती नही छोडते। इस यात्रा मे देखा कि खेती के साथ सब्जी और फलो की बागवानी को भी जापानी किसानो ने उद्योग के रूप मे अपना लिया है। हमारा देश कृषि प्रधान रहा है किन्तु खेती को उद्योग के रूप मे आज भी हमारे यहा गभीरतापूर्वक नही अपनाया गया है। इसलिए हमे विदेशो के अनाज और खाद पर निर्भर रहना पड़ता है।

नेक्को का मदिर दो सौ एकड के एक सुरम्य उद्यान के बीच है। जापान मे हम ने कई मदिर देखे पर अपने यहा के मदिरो की तरह प्रभावपूर्ण नही लगे। किंतु नेक्को का मदिर वहा के मदिरों मे सचमुच सुंदर लगा। यह लगभग ५०० वर्ष पुराना है। पता चला कि इयोयासु की स्मृति मे उन के पुत्र ने यह बुद्ध मदिर बनवाया था। इयोयासु का नाम जापान मे बडी श्रद्धा से लिया जाता है। नेक्को की मदिर की ऊचाई ज्यादा नही है। किंतु कलापूर्ण कारीगरी और दीवारो के आकर्षक रगो की चित्रकारी दर्शनीय है। परतु रोम के सेटपीटर और वेटिकेन के सिस्टन चेपल आदि देख लेने के बाद इसमे दर्शकोको खास आकर्पण नही रहता। हा, चेरी के फूलो से झूके वृक्षो को हरियाली के बीच झूमते देख हृदय नैसर्गिक सौदर्य से विभोर हो जाता है।

यहा से बहुत पास ही चूजन की बडी झील है। टोकियो से लोग यहा छुट्टिया मनाने आया करते है। मोटर बोट, नाव और डोगियो की दौडे भी यहा खूब होती है। हम भी एक मोटर बोट मे बैठे। झील के पानी को चीरती हुई हमारी बोट लहरो पर उछलती हुई इतनी

तेजी से आगे वढने लगी कि मुझे ऐसा लगा कि कही कोई दुर्घटना न हो जाए। किंतु यहा के बोट चालक इतने प्रवीण होते हे कि शायद ही इस प्रकार के मौके आते हो।

झील के पास ही हम मे वेगन का जल प्रपात देखा। इसे नीचे मे देखने के लिए पहाड मे करीब चार सौ फीट की सुरग काट कर रास्ता बनाया गया है। लिफ्ट मे उतरना पडता हे। एक वडा चबूतरा वना है, जहा से ऊचाई से गिरते हुए जल प्रपात को वखूबी देखा जा सकता है।यही से पास ही एक पहाडी की चोटी तक रोपवे लगाया गया है। लोग इसी रोपवे मे चोटी पर जाकर दूर से प्रपात के सुन्दर दृश्य को देखते है। हम भी वहा गए। सध्या का समय था। ढलते सूर्य के प्रकाश मे लग रहा था प्रकृति केसरिया रग प्रपात मे घोल कर सूर्य को विदाई की अजलि दे रही है।

हमारे राजदूत श्री लालजी मेहरोत्रा ने दूतावास भवन मे रात्रिभोज का आयोजन किया था। दूतावास मे आवास के पीछे की ओर एक सुदर वाग भी हे। आमत्रित लोगो मे स्थानीय कई एक प्रमुख व्यक्ति थे। भारतीय वातावरण मे अपनी रूचि के भोजन को पाकर भूख खुली। लालजी से वातचीत मे आनद आया। उन्हे जापान के व्यापारी पक्ष का वहुत अच्छा अनुभव है। राजदूत नियुक्त किए जाने के पूर्व वे भारतीय वाणिज्य परिपद के अध्यक्ष भी रह चुके थे। उन के सहयोग से भारतीयो को व्यापार मे वहा काफी सहूलियते मिलती रही हैं।

भोजन के दौरान मे जापान के शिल्पोद्योग के विस्तार की चर्चा के प्रसग मे श्री मेहरोत्रा ने बताया कि वडेवडे उद्योगो के साथसाथ कुटीर शिल्प एव दस्तकारी को भी जापान मे प्रोत्साहन दिया जाता है। इसी कारण यहा वेकारी की समस्या नही हे। ग्राम्याचलो मे भी कुटीर शिल्प और उद्योगो के कारण कृपक परिवारो को खाली नही वैठना पडता हे। जीवन का स्तर हमारे यहा से काफी उन्नत है और अपराध भी कम होते हैं। देहातो मे भी मकानो मे टेलीविजन सेट है। किसानो के घर के अहाते मे मोटरसाइकिल ओर कपडे धोने की मशीने भी है।

जापान और भारत दोनो की तुलना करते हुए मै यह सोच रहा था कि हम कहते तो हैं, 'सही विश्वास, ज्ञान और चरित्र मोक्ष मार्ग है' पर इस के अनुसार आचरण नही करते। आज के युग के साथ सही दिशा मे यदि हम वढे तो प्रकृति ने जितना हमे दिया हे, उस का उपयोग कर हम भी विश्व मे जापान की भाति प्रतिष्ठित हो सकते है। भोजन के उपरांत हम होटल लौटे-रात हो चुकी थी। गिंजा रगविरगी वत्तियो के प्रकाश मे अभी अपनी शाम की शुरूआत की तैयारी कर रहा था। सडको पर झूमते हुए लोग हसतेमुसकराते चले जा रहे थे। लगता था सभी पर एक ही रग है 'आसू आरि तोइयु नाकारे'-कल की वात मत करो।

दूसरे दिन हवाई द्वीप के लिए रवाना हो गए। वहुत इच्छा होने पर भी नेताजी सुभाप बोस की समाधि और नगराज फ्यूजियामा को नही देख सके। फिर भी ७ दिनो की दौडधूप मे जापान को जितना देख और समझ सके, उस से स्वदेश के लिए हमे एक अनमोल सदेश मिला कि 'श्रम ही जीवन है और आलस्य मृत्यु।'

दुनिया की बहुर्चाचित अमेरिकन स्टेट
हवाई

हमे जापान क़ी राजधानी टोकियो से अमरीका के प्रसिद्ध प्रात कैलिफोर्निया जाना था। रास्ते मे प्रशात महासागर के वीच वहुर्चचित हवाई द्वीप समूह पडते थे। इस द्वीप समूह के वारे मे वहुत दिनो से वहुत कुछ सुन रखा था। जापान के टूरिस्ट ऑफिसो मे इस के आकर्पण विज्ञापन भी देखने मे आए। कौतूहल था ही, एक जिज्ञासा भी उठी कि शील और सकोच की मर्यादा को चुनौती देने वाले प्रचार और इन विज्ञापनो का आधार क्या वास्तविक है ? तय हुआ कि होनोलूलू होते हुए कैलिफोर्निया पहुचा जाए। इस प्रकार हमे अतिरिक्त व्यय भी नही करना होगा और हम इस विचित्र स्थान को भी देख लेगे।

हवाई द्वीप समूह विश्व के सवसे वडे महासागर प्रशात के वीच टोकियो से लगभग तीन हजार मील और लौस एंजिल्स से तेईस सौ मील की दूरी पर स्थित है। नई दिल्ली से पश्चिम की ओर चौदह हजार किलोमीटर और पूर्वी रास्ते से जापान हो कर लगभग आठ हजार मील पडता है। महाभारत के युग मे यक्ष, गधर्व और किन्नरो की चर्चा आती है। सौदर्य, धन, वैभव और विलास मानो इन्ही के हिस्से मे पडा था। पिछले वर्पो मे इसी प्रकार की चर्चाए हवाई द्वीप के वारे मे भी प्रचलित रही है।

टोकियो से विमान हमे प्रशात महासागर के ऊपर से ले जा रहा था। नीचे अपार नील जलराशि, सामने अनंत नीलाभ। कभीकभी सफेद वादल के एकदो हलके टुकडे महासागर पर तैरते दिखाई पड जाते थे। विमान हवाई द्वीप के करीव पहुच रहा था। प्रशात की अशात लहरो के वीच इन टापुओ को आज मे डेढ सौ वर्ष पहले शायद ही कोई जानता हो। यहा के आग उलगते ज्वालामुखियो के दहकते लावे और ऊवडखावड जमीन के प्रति आकर्पण के वजाय आतक होना स्वाभाविक ही था। जव ज्वालामुखी शात हो चुके तव भी घने जगल थे। मूल निवासी आदिम अवस्था मे ही रह रहे थे। जगली फल, मछलिया और पशुओ का मास खाना, पेडो के खोखले तनो से वनी छोटीछोटी डोगियो को सागर की लहरो पर नचाते हुए मछलिया पकडना और घर लौट कर तारो की मुसकराती टोलियो की छाया मे ताल पर थिरकथिरक कर नाचना और गाना ही उन का जीवन था।

उन की दुनिया अपनी ही थी। न वे ससार को जानते थे और न ससार उन्हे ही। हो सकता है, कभीकभार कोई जहाज उधर से गुजर जाता हो पर घने जगल और सूखे पहाडो के प्रति आकर्षण ही क्या होता कि जहाज चालक लगर डालते। यदि कभी कोई उन तक पहुच भी गया तो फिर वह उन्ही का हो गया, लौट कर स्वेदेश नही पहुचा।

जो भी हो, कैप्टेन कुक की परिक्रमा के पूर्व तक आधुनिक ससार हवाई द्वीप से परिचित नही था। इन की लोक कथाओ मे इन की उत्पत्ति का इतिहास हमारे यहा के वनवासियो—सथाल, भील और मुडा—से साम्य रखता है। इनकी सस्कृति और सभ्यता भी बहुत कुछ मिलतीजुलती है। हा, रूपरग और शारीरिक गठन मे अतर अवश्य है। रहनसहन और जीवनस्तर मे तो कोई समता ही नही है। यह जान कर तो आश्चर्य चकित हो जाना पड़ता है कि ६,४०० वर्ग मील के क्षेत्रफल का यह छोटा सा द्वीपसमूह, जो हमारे यहा के मणिपुर प्रदेश का केवल दो तिहाई ही होगा, आज विश्व के सब से समृद्ध और सपन्न अचलो मे से एक है। दुनिया से दूर गहरे प्रशात की ऊंची लहरो के बीच बसे इन टापुओ मे प्रति व्यक्ति की औसत आय ससार मे सर्वाधिक है—कैलिफोर्निया से भी अधिक।

विमान की खिडकी से झाक कर नीचे देखा—बादलो की एक बड़ी चादर के ऊपर से वह उड रहा था। हम हवाई द्वीप के करीब पहुच रहे थे। दूर पर नीले सागर की गोद मे भूरीभूरी धुधली सी छाया स्पष्ट होती जा रही थी। यही हवाई द्वीप समूह का एकमात्र शहर—होनोलूलू। नीले सागर की गोद में हरी सी चादर ओढे वह मुस्करा रहा था।

टोकियो से होनेलूलू की तीन हजार मील की यात्रा मे जेट से पाच घटे लगते हैं। लेकिन हम जिस दिन चले थे, उस के एक दिन पहले ही पहुच गए, यानी ३० जुलाई को चले और पहुचे २६ जुलाई को। बात अटपटी सी जरूर लगती होगी, पर है सही। शायद विद्यार्थी जीवन मे आप ने भी पढा होगा कि पश्चिम से पूर्व की ओर मध्यांतर रेखा पार करने पर २४ घटे का बचाव हो जाता है। मन ही मन सोचने लगा कि काल के चक्र से अपनी आयु मे एक दिन बढवा लिया। स्वय अपनी ही कल्पना पर मुस्करा उठा। इसी बीच विमान जमीन छू चुका था।

वायुयान की सीढियो से उतरते हुए देखा सामने सुदरियो की टोलिया स्वागत के लिए खडी हैं। गले मे ताजे, लाललाल फूलो की माला और होठो की लाली मानो आपस मे ही होड कर रही हो। हाथ के गिलासो मे छलकता अनन्नास का रस, आखो मे तैरती मादकता और स्नेह भरा अभिवादन लगा कि प्रशांत की लहरो पर से नाचती हुई हवा की एक लहर कानों मे कह गई, 'हवाई है, हवा नहीं लग जाए, ध्यान रखना!'

नाना रूपरगो की युवतिया थी—गौर वर्णा, ताम्र वर्णा और कृष्ण वर्णा। मगोली आखे हैं तो आर्य नाक और रग ताबे का है। बडीबडी आंखे हैं, गौर वर्ण है तो होठ उभरे हुए और मोटे हैं। मतलब यह कि साचे मे ढले अग है—स्वस्थ, सुदर और सुडौल, आधे दिखाई देते उभरे उरोज और पुष्ट शरीर। हो भी क्यो न! कहा जाता है कि यहा ३६ जातियो की मिश्रित संताने है दारासिह से लगते पुरषो की भी यहा कमी नही। इन का चौडा सीना और हवाई कमीजो से कसरती बाहो की झाकती मछलिया बरबस इन की ओर ध्यान खीच लेती थी लेकिन महिला यात्रियो को घेरे हुए थे युवक और महिला यात्रियो की सख्या पुरुषो से कम नही थी।

सुन रखा था कि हवाई द्वीप मे एयरपोर्ट से ही लोग साथी चुन लेते है। वही के 'हटर्ज़ मोटर्स' के गरेज से, जिस की शाखाए सारे अमरीका और यूरोप में है, एक कार लेकर पूर्व निश्चित होटल या मोटल मे पहुँच जाते है। लेकिन हम तीनो साथी इठलाती, मौन निमत्रण देती हुई लडकियो के बीच से शिष्टाचार के नाते मुसकराते हुए बाहर निकल गए। टैक्सी ले कर बी ओ ए स। द्वारा पूर्व आरक्षित होटल 'टोपीकाना' मे चले गए।

यद्यपि यहा बडी सख्या मे एक से एक अच्छे होटल हे, फिर भी जगह मिलनी मुश्किल रहती है। हफ्तो नही, महीनो पहले से ससार के विभिन्न देशो के यात्री बुकिंग करा लेते हैं। शायद चार्ज भी दूसरे देशो से अधिक है क्योकि हमारे बजट के अनुसार जिस होटल की

व्यवस्था की गई थी, वह हमे अब तक के होटलो की तुलना मे हलका लगा। हमने कुछ विश्राम किया। खिडकी से ताजी हवा आ रही थी। बडा अच्छा लगा। यहा का मौसम सदाबहार है। चारो ओर विस्तृत समुद्र होने के कारण न तो यहा कभी ज्यादा गरमी पडती है और न सर्दी। ऋतुराज का साम्राज्य वर्ष भर अखड रहता है, इसी लिए ताप नियत्रण की आवश्यकता रहती ही नही।

सुबह का नाश्ता कर हम अपने अगले कार्यक्रम पर विचार कर रहे थे। भारतीय विदेश मत्रालय ने हमारी प्रस्तावित यात्रा की सूचना पहले से ही दे रखी थी। इसी बीच वहा की भारतीय अवैतनिक काउंसिलर श्रीमती वाटूमल का फोन आया कि वह आ रही है। थोडी देर मे वह पहुच गई। श्रीमती वाटूमल अमरीकन है। उन्होने प्रसिद्ध धनकुवेर श्री वाटूमल के छोटे भाई, जिनका देहान्त हो चुका है, से विवाह किया था। अपनी शानदार बडी शेव कार को स्वय ड्राइव कर रही थी और होनोलूलू के बारे मे बताती भी जा रही थी। हमे वहा के सबसे बडे बैंक के अर्थशास्त्री श्री जानसन से मिलना था।

उन से बातचीत के दौरान मालूम हुआ कि हवाई द्वीप की आमदनी का सब से बडा जरिया गन्ने की खेती है। इस के बाद क्रम है यात्री व्यवसाय और विदेशी प्रतिष्ठानो के विज्ञापनो का और तब अनन्नास की खेती का। अमेरिका के जल और स्थल सेना के प्रशिक्षण केन्द्र भी यहा है और ये भी इनके आय के अच्छे स्रोत है। इस प्रकार आठ लाख की आबादी के इस द्वीप समूह की प्रति व्यक्ति औसत आय विश्व मे सर्वाधिक है।

श्री जानसन से बात करने के बाद हम होनोलूलू के 'डौल' कारखाने मे गए। अनन्नास का यह विश्व मे सबसे बडा कारखाना है। इस मे करीब आठ हजार लडकिया काम करती हैं। अनन्नास के इस के अपने खेत है। यहा वैज्ञानिक तरीके से फसल होती है। प्रवेश शुल्क बहुत साधारण लगा। हमने कारखाने के विभागो को गाइड के साथ देखा। जहा कही भी जाते, अनन्नास का रस गिलासो मे भर कर दिया जाता था। हम ने जितना शुल्क दिया था उस से कही अधिक का तो रस ही पी गए। कारखाने की व्यवस्था का सचालन भी एक महिला करती हैं। उन से उत्पादन और सगठन सबधी जानकारी प्राप्त की। बातचीत के दौरान उन्हे जब पता चला कि हम अपने देश के ससद सदस्य हैं तो उन्होने बहुत मना करने के बावजूद प्रवेश शुल्क वापस लौटा दिया।

यहां के कारखाने की व्यवस्था और सगठन ने हमे बहुत ही प्रभावित किया। बाहर आकर हमने एक मजे की बात देखी कि कारखाने के ऊपर अनन्नास का एक बहुत बडा मॉडल है जिसकी ऊचाई ५० फीट और घेरा भी प्राय उतना ही है। दिन भर घूमने के बाद शाम को हम अपने होटल पहुचे। आपस मे विचार-विनिमय करने लगे कि आठ लाख की आबादी वाले इस देश मे केवल विदेशी यात्रियो से उन्हे सौ करोड रुपए प्राप्त होते हैं। मोटे तौर पर प्रति व्यक्ति की औसत आय यात्री व्यवसाय से ही तेरह सौ रुपए वार्षिक है, जबकि हमारे देश मे, जहां ऐतिहासिक वैभवो से पूर्ण आकर्षण के स्थल है, इस व्यवसाय से प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय केवल आठ आने ही है। कारण स्पष्ट है कि यात्रियो के लिए जो सुख और साधन यहा उपलब्ध है, वे हमारे देश मे कल्पनातीत है। हमारी सभ्यता, सस्कृति और आचारविचार की कसौटी पर इन की चर्चा तक करना सभव नही है। जो भी हो, विदेशो से, खास कर जापान, अमेरिका और यूरोप से यात्रियो का ताता यहा वर्ष भर बधा रहता है।

अरब के धनकुबेर शेख भी होनोलूलू की शोखियो पर करोडो रुपए न्योछावर करते रहते हैं। अमरीकनो की सख्या सब से अधिक है। कारण भी है इसके पीछे। आज अमरिका का जीवन इतना अधिक यात्रिक हो गया है कि अमरीकनो को न तो अपने देश मे अवसर है, न अवकाश। प्रकृति से दूर, अस्वाभाविक जीवन, व्यस्त भागदौड, इसकी प्रतिक्रिया का प्रभाव शरीर और मन पर पडना स्वाभाविक है। उन मे से अधिकाश के पास साधन है, इसलिए वे

कुछ समय के लिए भाग निकलते हैं और हवाई के मौज तथा बेफिक्री के वातावरण मे आ कर कुछ दिनो मे ही देह और मन को पा जाते है। यहा पर हर कोम् को हर काम की छूट है। लोग अपने पद, मानसम्मान, मर्यादा, सभी का बधन तोड़ कर विल्कुल वजारा जीवन विताने लगते है। हम ने देखा कि समुद्रतट के अलावा वाजार और दुकानो तक मे अमरीकन तरुणिया विकनी (केवल छोटा सा कटिवस्त्र और चोली) पहने निस्सकोच घूम रही हे।

होनोलूलू मे प्रकृति का आकर्षण है तो देह का उस से भी ज्यादा। पेरिस ओर वेनिस दोनो यहा मिलते है। धनी पुरुष आते हैं, नारी के सुडौल शरीर और रूप पर मोहित हो कर और ससार के धनकुबेरो की पत्निया, तरुणिया और प्रौढा विधवाए आती हे, पुरुष के सुगठित, मासल, वलिष्ठ और भीमकाय देह के आकर्षण पर। यही कारण हे कि यहा जातियो का अपूर्व मिश्रण हुआ है। आश्चर्य तो यह है कि इस के वावजूद हवाई की परिवार व्यवस्था, जीवन प्रवाह और वहा के लोगो की शारीरिक क्षमता मे विशेष अतर नही आया है।

इस का कारण यह लगता है कि सेक्स को जीवन की अनिवार्य आवश्यकता मान कर वहा के स्त्रीपुरुष दोनो ने ही उसे सहज भाव से ग्रहण कर लिया है। दूसरा कारण शायद यह भी है कि आज के कृत्रिम जीवन से ऊवे हुए लोगो की थकी देह और मुरझाए मन को यहा वाले केवल अतिरिक्त आय के साधन और थोडे समय के मनोरजन के रूप मे लेते है। सेलानियो के साथ उनका कोई भावात्मक या स्थाई सवध नही वन पाता। अरवो ओर हवशियो के अलावा दूसरे औसत व्यक्ति इनके पौरुष और वल के मुकावले मे वहुत ही हल्के ठहरते है। शाम को विश्व प्रसिद्ध वाइकिकी समुद्रतट पर टहलने गए। वहा हजारो जोडे विविध प्रकार के आमोदप्रमोद मे सलग्न थे। इन मे से अधिकाश तो हमारी सभ्यता की लक्ष्मण रेखा से वहुत दूर निकल गए थे। अगर आपको सकोच हो तो आप वहा से भले ही हट जाए, उन को तो आप की उपस्थिति का ध्यान शायद ही हो पाता हो।

होनोलूलू की वडी आमदनी यात्रिक व्यवसाय से है, इसलिए इस के अनुरूप ही इसको सजाया गया है। एक जगह सात तल्ला जलपानगृह देखा जिस के ऊपर का तल्ला घूम रहा था। आप एक जगह वैठ कर नाश्ता करते हुए चारो तरफ का दृश्य देख सकते है। साफसुथरी चौडी सडके, करीने से लगाए हुए वाग, वडेवडे स्टोर्स, होटल, मोटरबोट, नाइट क्लव आदि यही तो होनोलूलू है। अमरिका और यूरोप के वडे से वडे उद्योगपतियो को यहा मशालो की मद रोशनी मे होलू नाच करते देखा जा सकता है।

दूसरे दिन हम श्री वाटूमल से मिलने गए। सतहत्तर वर्ष की उमर मे भी उन मे युवको का सा उत्साह है और अपने २६ स्टोरो की वह स्वय देखभाल करते है। पद्रह वर्ष की अल्पावस्था मे वह भारत से साधारण नौकरी पर फिलीपाइन आए थे। कुछ वर्षो वाद यहा आ कर उन्होने अपना छोटा सा स्टोर कर लिया। आज विश्व के प्रमुख धनियो मे उनकी गणना है। उन की व्यापारिक शाखाए दूसरे अनेक देशो मे है और भारत के सैकडो युवक उनके स्टोरो और शाखाओ मे काम करते हैं। विश्व प्रसिद्ध 'वाटूमल ट्रस्ट' के वह सस्थापक है। इस ट्रस्ट के द्वारा अनेक विद्यार्थियो को विभिन्न देशो मे उच्च शिक्षा मिलती है। उन्होने वडे प्रेम से हमारा स्वागत किया और भारत की विभिन्न समस्याओ के बारे मे चर्चा करते रहे। वह अपने घर भोजन का लिए आग्रह करते रहे पर हमारे पास समय का आभाव था इसलिए नही जा सके।

वडेवडे होटलो, क्लवो और विद्युत प्रकाश के रहते हुए भी कृत्रिम स्वभाविकता की तलाश मे यहा लकडी और पत्तो के झोपडे बना कर उन मे तेल की मशालो की धीमी रोशनी मे लोग खाते और नाचते रहते है। एक जगह देखा कि लोग समूचे सूअर को लवी लोहे की सीक मे पिरो कर भून रहे थे। हमे तो यह दृश्य वहुत ही वीभत्स लगा पर दूसरे यात्री चाव के साथ उसके चारो तरफ खडे थे। इन सब बातो को देख कर ऐसा लगा कि सभ्यता की चोटी पर पहुच कर भी मनुष्य अपने आदिम स्वभाव को नही भूल पाता है।

तीसरे दिन हमे वहां से कौलफोर्निया के प्रसिद्ध शहर लौस ऐंजेल्स जाना था। हवाई अड्डे पर आते हुए पर्ल हारबर को भी देखने गए। जापान, चीन और पूर्व एशिया पर नियत्रण रखने के लिए अमरीका ने इसे बहुत से बडेबडे युद्धपोतो से सुसज्जित किया था और विश्व मे यह अजेय माना जाता था, पर १६४१ मे एक दिन अचानक ही जापानी हवाई जहाजो ने इस पर हमला कर के बहुत से जहाजो को डुबो दिया। बची हुई कुछ सामग्री आज भी वहा के म्यूजियम में रखी हुई है। इस समय फिर से अमरीका ने यहा बडा नौशिक्षण केद्र स्थापित किया है जहा हजारो नाविक शिक्षा पा रहे है।

तीन दिन मे होनोलूलू मे जो कुछ देखासुना, उस की मन पर विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाए होनी स्वाभाविक ही थी। ऐसा लगा कि हमारे देश की ब्रह्मचर्य, सयम, त्याग और तपस्या की मान्यताओ को ये लोग अनियत्रण, भोग और विलास मे लीन रह कर एक प्रकार से चुनौती सी दे रहे है।

इनके व्यक्तिगत सामाजिक जीवन को निकट से देखने और समझने की बडी इच्छा थी पर उस के लिए हमारे पास साधन और सुविधा का अभाव था। हवाई जहाज मे बैठा हुआ सोचने लगा कि क्या वास्तव मे ये सुखी है? सब प्रकार से साधन सपन्न होने के बावजूद न तो ये कोई विवेकानद या रवीद्र ही दे पाए है, न आइस्टाइन या रसल ही।

हालीवुड की चमचमाहट : डिजनीलैंड का बचपन

कैलिफोर्निया

होनोलूलू से जेट विमान हमे लौस एजेल्स लिए जा रहा था। २३०० मील की यात्रा थी। पान अमरीकी एयरवेज के हवाई जहाज यो ही काफी आरामदायक होते हैं, फिर हवाई द्वीप आने-जाने वाले तो ओर भी आकर्षण लगते हैं क्योकि छुट्टिया मनाने वाले यात्री ही अधिकाशत इन मे सफर करते है।

साथ के प्राय सभी यात्री होनोलूलू मे छुट्टिया बिताकर तरोताजा और प्रसन्न थे। मुझे भी बडी प्रसन्नता थी कि इस बार की विश्व यात्रा में अभिनव देशो और सस्कृतियो को देखने का सुअवसर मिल पाया। नीचे प्रशात की लहरो की तरह मन आनद मे हिलोरे ले रहा था। जेट विमान हमे कैलिफोर्निया लें जा रहा है। यह विश्व के समृद्धतम देश सयुक्त राज्य अमरीका का सर्वाधिक विकसित और उन्नत अचल है। सुना और पढा भी था कि इस वीरान मरुस्थल और पहाडी अचल को श्रम से संवार कर नदन वन बना दिया गया है। मैं सोच रहा था, क्या हमारा राजस्थान भी श्रम और लगन से दूसरा कैलिफोर्निया नही वन पाएगा ? इसका प्रचलित व लोकप्रिय नाम स्वर्ण प्रदेश (गोल्डन स्टेट) है। आज से करीव १५० वर्ष पूर्व रेगिस्तान, पत्थर, काटो के जगल और दलदल की इस भूमि को कौन जानता था कि वह हिरण्यगर्भा है।

कहते हैं जब भगवान देता है तो दोनों हाथो से देता है। कैलिफोर्निया के लिए यह बात सही रूप से लागू हुई। भटकते हुए राहगीरो को एक दिन यहा पीले चमकते पत्थर बडी सख्या में दिखाई पडे। कनक को पहचानने मे देर न लगी और इस की खनक प्रशात से सुदूर अटलाटिक महासागर के किनारो तक पहुची। फिर तो अमरीका और यूरोप के कोनेकोने से स्वर्ण सचय के लोभ मे कैलिफोर्निया की वीरान काटेदार मरूभूमि मे लोगो के आने का ताता बध गया। जिधर देखो, लाग ज़मीन खरीद रहे है और फावडे व कुदाड़ी चला रहे हे। कुछ ही समय के अदर वहा की जमीन का मूल्य दस डालर प्रति एकड से बढकर १००० डालर प्रति एकड हो गया। इतिहास मे यह घटना गोल्ड रश 'सोने की दौड' के नाम से विख्यात है।

प्रकृति उसे ही देती है जो पाने का अधिकारी है। नाना प्रकार के कष्ट, बाधाए और विपदाए सह कर लोगो ने कैलिफोर्निया को आबाद किया और शायद थोडे समय मे ही यह अच्छाखासा व्यवसाय और वाणिज्य केन्द्र बन गया। शायद प्रकृति इन्हे और भी पारितोषिक देना चाहती थी। एक दिन अनायास ही उस ने अपने भूगर्भ तेल का सधान बता दिया। फिर

तो तेजी से बडेबडे उद्योगपति और व्यवसायी देशविदेश से कैलिफोर्निया मे आ जुटे। दिन दूने और रात चौगुने तेल के कुए खोदे जाने लगे। प्रचुर मात्रा मे अशेप तैलस्रोत मिले। फिर एक बार जमीन खरीदने की होड लग गई और दाम फिर १०० गुने बढ गए। सुदूर प्रातो से लोग अपना घरद्वार, मकानव्यवसाय, सब बेचखोचकर पूंजी के लिए कैलिफोर्निया मे जमीन और तेल के कुए खरीदने दौड पडे।

अमरीकी इतिहास और साहित्य मे इस घटना के मनोरजक वर्णन भरे पडे है। उस समय कैलिफोर्निया के प्रति लोगो के झुकाव का सहज अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि कुछ समय मे ही १०० रूपये की जमीन १० लाख मे बिकने लगी। प्रसिद्ध अमरीकी उपन्यासकार अप्टन सिकलेयर ने अपनी 'तेल' रचना मे इसका बडा ही रोचक वर्णन किया है।

मेरे बगल मे एक भारीभरकमअमरीकी बैठे थे। होनोलूलू का खुमार अब भी उन पर था। हवाई पोशाक पहने हवाई सुदरियो के चित्रो से मन बहला रहे थे। एकाएक उन्होने झाक कर खिडकी के बाहर देखा और मुस्करा कर कहने लगे 'स्वप्न लोक गया, अब तो अपना देश कहते हुए एक हवाई लडकी के चित्र को बडी हिफाजत से एक किताब के जैकेट मे रखा और उसी किताब से अपनी बीवी की तसवीर निकाल कर वालेट मे लगा ली।

मै मुस्करा उठा, कहने लगा, "भाई स्वप्नलोक की बाते वही रहने दे क्योकि अगर हमारी और आप की बीविया उन्हे जान पाए तो नीद हराम कर देगी।" हम दोनो हस पडे।

उतरने के पहले हम दोनो ने एकदूसरे को अपनेअपने घर आने का निमत्रण दिया। मिस्टर वीवर ने कहा, "आप का न्योता स्वीकार है मगर समय का वादा नही कर सकता, लेकिन आप मे वादा ले सकता हूँ क्योकि आप तो हमारे शहर ही जा रहे है।" मैने वचन दिया और वायुयान के दरवाजे से बाहर निकले।

मै ससार के कई आधुनिक देशो मे जा चुका था यूरोप और जापान के विभिन्न शहरो मे स्वचालित सीढियो पर तो कई बार चढनेउतरने का मौका लगा था पर लौस ऐंजेल्स मे तो हवाई जहाज से बाहर पैर रखा तो देखा कि यहा सीढी नही, रास्ता ही चल रहा है, मै खुद क्या चलू ? यही व्यवस्था अमरीका के बडेबडे हवाईअड्डो पर मिली। यहा हवाई जहाज एयर टर्मिनल के बराबर लग जाते है और यात्री स्वचालित रास्ते द्वारा कार तक अनायास ही पहुच जाते है।

लौस ऐंजेल्स कैलिफोर्नियो के पश्चिमी छोर पर बसा हुआ यहा का सब से बडा शहर है। इस के एक ओर प्रशात महासागर की लहरे टकराती है और दूसरी ओर राकी पर्वतमाला की शृखला है शुरू मे यह शहर लौस ऐंजेल्स नदी के किनारे प्यूबलो नाम के चौक के आसपास बसा। धीरेधीरे इस का विकास चोतरफा होता गया और इस प्रकार कई उपनगर बसते गए जिन मे पासातेना सब से बडा है अब तो कलकत्ते की तरह यह कई नगरो का समूह है फर्क यह है कि कलकत्ता के सूतानटी, गोविंदपुर, चितपुर और चिगरीहट्टा इत्यादि एक होकर इस तरह घुलमिल गए है कि इन का नाम मुहेल्लो के बतौर रह गया है जब कि लौस ऐंजेल्स के हालीवुड, वेलिंगटन, लागबीच, सेट मोनिका और बेवरली आदि एक होने पर भी अपना अलग अस्तित्व रखते है। इस प्रकार यहा के नगरनिगम की कुल जनसख्या लगभग ३० लाख है।

होनोलूलू से ही लौस ऐंजेल्स मे अपने आवास के लिए हम ने व्यवस्था कर ली थी। अतएव एयरपोर्ट से उतरते ही सीधे पूर्वनिश्चित होटल के लिए रवाना हुए। होटल लगभग १३ मील की दूरी पर था। एक खास बात यह देखने मे आई कि यहा आवागमन के लिए दो प्रकार की सडकें है। एक थोडी दूर के सफर की और दूसरी लबे सफर की, जिस पर साठसत्तर मील प्रति घटे की रफ्तार से कम गाडी नही चला सकते। सडको पर मोटरो का जमघट और विभिन्न प्रकार की बनावटे देख कर चकित और मोहित सा हो जाना पडा। हमारे देश मे आम

तोर पर तीनचार तरह की ही कारे है लेकिन यहा तो सैकडो तरह की छोटीवडी विभिन्न आकारप्रकार की मोटरे वहुत वडी सख्या मे देखने मे आई । साधारणतया अमरीका मे सर्भ चीजे अन्य देशो की तुलना मे महगी है लेकिन जहा तक मोटरो और पेट्रोल का सवाल है, ये चीजे ओर देशो से मस्ती, भारत की अपेक्षा तो कही अधिक मस्ती है । हमारे देश मे नई इपाला कार १० लाख रूपये मे मुश्किल से ही मिलेगी जव कि अमरीका में इस मजवूत तेज और आकर्पक गाडी का मूल्य केवल १३००० के करीब है। दो वर्प की चली हुई गाडी तो बडी आसानी से ढाईतीन हजार तक अच्छी हालत मे मिल जाती है । यही कारण है कि औसतन यहा प्रति २ ५ व्यक्ति पर एक कार है, जव कि हमारे देश मे प्रति ३५०० व्यक्ति पर । एक बात ओर ध्यान देने की है कि अमरीका मे धनी व्यक्ति ड्राइवर नही रखते क्योकि ड्राइवरो के काम के घटे निर्धारित होते हे और वेतन है कम से कम २००० रुपये प्रति मास ।

इस वार अव तक यात्रा मे विदेशी मुद्रा की कमी के कारण हम द्वितीय श्रेणी के होटलो मे ठहरते आए । लेकिन अमरीका मे निजी सपर्क के कारण हम ने प्रथम श्रेणी के होटलो मे ही अपने आवास सुरक्षित कराए । लोस ऐंजेल्स मे हम सुविख्यात शेरेटन होटल मे ठहरे । होटल क्या था, सु ख और आराम का प्रतीक । दरवाजे के अदर पैर रखते ही मुलायम गलीचे का फर्श, हर कदम पर जेसे धसे जाते हो । सपूर्ण होटल मे इसी प्रकार मुलायम रोगदार गलीचे का फर्श विछा था । कमरे मे उत्तम कोटि के फर्नीचर, टेलीफोन के अलावा टेलीविजन सेट भी थे । कर्मचारियो की शालीनता, विनयशीलता ओर तत्परता के कारण यात्रियो को इस वात का अनुभव ही नही हो पाता कि वे विदेश मे हे । सुख-सुविधा ओर साधनो की प्रचुरता के कारण ऊचा खर्च अखरता भी नही । हम ने यहा यह भी देखा कि दो होटलो किंग हिल्टन और शेरेटन मे इस वात की होड रहती हे कि यात्रियो को अधिक से अधिक सुविधा कौन दे सकता है ।

स्नान के लिए गुसलखाने मे गया । आदमकद शीशा, मोटे रोगदार वडेवडे तोलिए दूध से सफेद । साथ ही देखा, वजन का एक छोटा सा यत्र भी रखा था । मैं मुस्करा उठा, भला इस इद्रपुरी मे वजन किसका घटेगा ? शायद अमरीकी अपने स्वास्थ्य के प्रति इतने चोकस होते हैं कि शरीर के घटते या वढते वजन पर नियत्रण रखना आवश्यक समझते है । नहा कर मन प्रफुल्लित हो गया । खिडकी के पास खडा हो कर धीरेधीरे काफी पी रहा था कि टेबल पर रखे होटल के सस्थापक मिस्टर शेरेटन की जीवनी पर नजर पड़ी । उस से पता चला कि अत्यत साधारण से व्यक्ति शेरेटन ने किस प्रकार ४० करोड रूपये कमाये, इतने विशाल होटल के मालिक वने और नाना प्रकार के सामाजिक कार्यो में सहायता दी ।

इस प्रकार के उदाहरण यहा एक नही अनेक मिलते हैं । मैं मन मे सोचने लगा कि साम्यवादी देशो मे वहा के विधान के अनुसार इन्सान चाहे कितना ही योग्य और परिश्रमी हो, धनवान और सपन्न तो नही वन पाता । लेकिन जव कि वहां की सरकार स्वय प्रत्येक व्यक्ति की सुखसमृद्धि की जिम्मेदारी लेती है तव भी उनका जीवन स्तर यहा के औसत से इतना नीचा क्यो है ? क्या वास्तव मे व्यक्ति का स्वतत्र अस्तित्व उस के विचारो और सर्वांगीण उन्नति के लिए अधिक प्रेरक है ?दूसरे दिन शहर घूमने का कार्यक्रम था । खूब तडके उठा । जुलाई का महीना था । वहा जेसा मौसम इन दिनो हुआ करता है, उस की अपेक्षा अधिक गरमी महसूस हुई । जल्द तेयार होकर मैं ने सुवह का नाश्ता किया ओर यात्री बस पर जा वैठा ।

अमरीका नया देश है इसीलिए ससार के अन्य देशो की तरह प्राचीन ऐतिहासिक वस्तुए और वास्तुकला की विविधता यहा नही के वरावर है, फिर भी पर्यटको के लिए यहा का रहनसहन और शिल्पोद्योग के स्थल बहुत आकर्षक है । लौस ऐंजेल्स के म्यूजियमो का वर्णन विशुद्ध रूप से देने की आवश्यकता नही क्योकि पेरिस के लुव्रे, लदन के ब्रिटिश म्यूजियम और

लेनिनग्राद के म्यूजियम जैसे ये नही है। रेस्तरा, दुकाने और क्लब दूसरे अन्य देशों की तरह ही सजेसजाए। इन्हे देख कर यह धारणा सहज ही मे बन जाती है कि अमरीका और अमरीकन आम तौर से चरम भोगवादी है।

शहर मे एक खास बाजार देखा। इसे 'किसानो का बाजार' कहते है। वहा दैनिक आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु एक ही जगह मिल जाती है। कैलिफोर्निया प्रदेश मे अच्छे किस्म के फल बहुतायत से पैदा होते है। कुछ तो जलवायु अनुकूल है और कुछ बडे पैमाने पर नाना प्रकार के प्रयोग कर के फलो की उपज और किस्म बढा ली जाती है। लौस ऐंजेल्स तो फलो के व्यवसाय का केन्द्र ही है। अखरोट, अगूर, बादाम, खुबानी, सतरे, अजीर इत्यादि नाना प्रकार के फल यहा से बाहर भेजे जाते है। फलो के बागवानो ने यहा एक सहकारी समिति गठित कर रखी है जिस के कारण बाजार का सतुलन बना रहता है। यहा हमारे साथी श्री भुवालकाजी ने एक खजूर का डब्बा खरीदा जिस मे तीन इच लबे खजूर थे। उन के स्वाद का तो कहना ही क्या ?

लौस ऐंजेल्स मे घूमते समय कलकत्ता और लदन की झाकी मिल जाती है। यहा भी एशियाई एव अफ्रीकी प्रवासी है। आम तौर पर इनके मुहल्ले भी अलगअलग है। अपने होटल और रेस्तरा है। घर पर रहनसहन का ढग इन्होने अपना मौलिक ही रखा है। प्रवासियो मे सबसे ज्यादा सख्या चीनियो की है जो पीढियो से यहा रहते आ रहे है। अपने घर पर अपनी निजी भाषा, सस्कृति और आचारविचार रखते है लेकिन बाहर वालो से अगरेजी भाषा और तौरतरीके से मिलते है। जापानी इनसे कुछ भिन्न है। इन्होने अपने को पाश्चात्य सभ्यता के अनुरूप बना लिया है इसलिए ये अमरीकी समाज मे अपेक्षाकृत अधिक घुलेमिले पाए जाते है।

अमरीका मे मेरा प्रथम चरण लौस ऐंजेल्स था। मै ने यहां प्रत्यक्ष रूप से नीग्रो समस्या का अनुभव किया। इससे पहले पक्षविपक्ष मे काफी पढने और सुनने को मिल चुका था फिर भी यहा तथा अमरीका के अन्य शहरो मे जो भी रूप इस समस्या का देखने मे आया, उसे मै जटिल ही कहूगा।

यद्यपि राज्य और सरकार की ओर से उन्हे समान अधिकार दिए गए है लेकिन स्पष्टत व्यवहार मे ऐसा नही होता। गोरे और काले का वर्ण भेद आज भी है। हमारे देश की वर्ण व्यवस्था से इसकी तुलना नही हो सकेगी क्योकि भारत में शरीर के रग को ले कर छुआछूत की भावना नही रही बल्कि समाज के वर्ग और कर्म का आधार ही बाधक रहा है। इसलिए, रूढिवाद को उखाड कर फेकने के साथ ही हमारे यहा से हमारे यहा का छुआछूत का भेद स्वत हटता जा रहा है। आश्चर्य है कि आधुनिक सभ्यता, समता और भ्रातृत्व का आवहन करने वाले अमरीका मे वर्णभेद आज भी पारस्परिक द्वेषाग्नि को धधकाता जा रहा है और इसी कारण मानवप्रेमी राष्ट्रपति केनेडी की निर्मम हत्या भी हुई।

'निगर,' 'नीग्रो' शब्द वहा एक प्रकार से अपमानजनक समझा जाता है। इस मे सदेह नहीं कि नीग्रो शिक्षा और आचारविचार मे पिछडे है और इसके प्रति कुछ अशो मे इन मे रुचि का भी अभाव है। साधारणतया ये मोटी मजदूरी का ही काम करते है। शरीर से तगडे होने के कारण इस ढग के काम के लिए हिचकते नही। नई चेतना की लहर ने उन्हे जगाया है और अब इन मे भी शिक्षा का प्रसार हो रहा है। नीग्रो समाज ने अच्छे चिन्तक और कलाकार दिए है। पाल राबसन के सगीत ने पश्चिम को जहा मोह लिया है वही मार्टिन लूथर किंग श्रेष्ठ विचारको मे गिने जाते है। प्रसिद्ध मुक्केबाज लुई और केसियस तो विश्व मे बेजोड माने जाते है।

हालीवुड लौस ऐंजेल्स का ही उपनगर है। सरसरी तौर पर वह भी देखा। सिनेमा देखने मे जितना आकर्षक लगता है उतना स्टूडियो नही। वैसे कलकत्ता और बबई मे स्टूडियो देखे थे। यहा स्टूडियो देखने के लिए पहले से मजूरी लेनी पडती है लेकिन इस तरफ हम तीनो

साथियो की खास रुचि नही थी इसलिए हम यहा किसी स्टूडियो को नही देख पाए । हमे बताया गया कि अमरीकी कलाकार और टेकनीशियन हमारे यहा से अधिक परिश्रमी और अनुशासन मानने वाले है । कहा जाता है कि चोटी के अभिनेता ग्रेगरी पेक, अभिनेत्री आवा गार्डनर या एलिजाबेथ टेलर की वार्षिक आय दोतीन करोड तक है । वैसे हमारे यहा भी राजकपूर, दिलीपकुमार और बैजयतीमाला की वार्षिक आय पदरहबीस लाख की बताई जाती है ।

हालीवुड के बाद डिजनीलैड देखा । एक नई दुनिया मे ही पहुच गया था मैं । वाल्टर डिजनी की कल्पना और सर्जनाशक्ति अद्भुत थी । मिकी माउस की कल्पना के साथ एक अभिनवनगरी को बना देना साधारण सी बात नही । हजारो की सख्या मे बच्चे, बूढे और जवान सभी डिजनीलैड जाते है । इस स्थान से बच्चो को विशेष लगाव है ।

डिजनीलैड पहुच कर कही आप १०० वर्ष पुराने महल्ले मे घूमते नजर आएगे तो कही ऐसी जगह पहुचेगे जहा भविष्य की दुनिया बनेगी । यही पर आल्प्स की बर्फानी चोटी का आनद लीजिए तो समुद्र के गर्भ मे पहुच कर वहा के दानवी जीवो को देख लीजिए । यहा छुट्टियो मे बडी भीड रहती है । हम भी डिजनीलैड मे जा कर अपने को बिल्कुल भूल गए । बच्चो के कहकहो के बीच एक बार तो मेरा बचपन मुझे मिल गया यह क्या कम सौभाग्य रहा !

अमरीका का पश्चिमी स्वर्ण द्वार

सानफ्रांसिस्को

तीन दिन लौस ऐंजेल्स मे रह कर हम चौथे दिन हवाई जहाज से सानफ्रासिस्को पहुचे। अमरीका मे ट्रेन और बसो की यात्रा बडी सुखद रहती है। हम लोगो की इच्छा भी हो रही थी कि भूमि का मार्ग ही अपनाया जाए ताकि ग्राम्य अचल की झाकी देखने को मिले। मगर यह सभव न था क्योकि हम ने समय और खर्च की वचत के लिए हवाई जहाज की टिकट पहले ही से बुक करा ली थी।

सानफ्रासिस्को अमरीका के स्वर्ण प्रदेश का 'स्वर्णद्वार' के नाम से विख्यात है। वास्तव मे है भी। अमरीका विश्व का सर्वाधिक धनी, समृद्ध और उन्नतिशील राष्ट्र है, जिस मे कैलिफोर्निया का अचल सर्वोपरि है। इस महानगर की महत्ता का एक और भी कारण है। विश्व का सर्वोत्तम वदरगाह होने के कारण अमरीका के पश्चिमी तट पर यह आयात और निर्यात का वहुत वडा केन्द्र है। समुद्रगामी सैकडो जहाज यहा एक कतार मे आसानी से महीनो तक रुक सकते है। इसलिए जहाज निर्माण का उद्योग भी यहा काफी उन्नत और विकसित है।

लौस ऐंजेल्स की तरह यह जगह भी पहले वीरान थी। आदिवासियो की बस्तिया कहीकही थी। प्रसिद्ध भूपर्यटक सर फ्रासिस ड्रेक १५७६ ई० मे यहा आए थे। उन के जहाज ने यहा से जरा और उत्तर की ओर लगर डाला था। आज भी वह स्थान ड्रेक की खाडी कहलाती है। उन के नाविको ने जिस स्थान पर नए देश की खोज मे खुशी मनाई थी और प्रकृति का आभार माना था, वह शहर की एक पहाडी पर है और वडा ही रमणीय स्थल है। यहा पर ४० फीट का एक क्रास उस घटना की यादगार मे वनाया गया है। इसी क्रास के नीचे से दोनो तरफ वहते झरने वहुत मनोरम लगते है।

पाश्चात्य देशो मे यात्रियो की सुविधा और आराम का हर प्रकार ध्यान रखा जाता है। औसत अमरीकी की यह इच्छा रहती है कि उस के देश को विदेशी यात्री जानने और समझने की कोशीश करे। इसलिए जव भी जरूरत पडती है वह आगे वढ कर सहयोग देने को प्रस्तुत रहता है। अमरीका जान के पूर्व हमारे लिए बिरला प्रतिष्ठान ने आकलैड के विश्व प्रसिद्ध कैजर फर्म को सूचना भेज दी थी। कैजर विश्व मे अल्युमिनियम किग माने जाते है। भारत मे बिरला प्रतिष्ठान के साझे मे इन्होने रेणुकूट मे अल्युमिनियम का एक वहुत वडा कारखाना स्थापित किया है।

लौस ऐंजेल्स की तरह सानफ्रासिस्को भी कई द्वीप और पहाडियो का नगर है। शहर

प्रमुख रूप से आकलैड और सेनफ्रासिस्को की वस्ती मे अर्धचद्राकार रूप मे वसा है। इस महानगर का क्षेत्रफल लगभग ४६ वर्ग मील है। पहाडियां, खाडी, झील, झरने, कुंज और वागबगीचे की प्राकृतिक शोभा ने इसे संसार के वडेवडे शहरो से निराला वना दिया है।

मुसीवतो से मजवूती मिलती है और जिंदगी मे ताजगी रहती है। सानफ्रासिस्को मे कई वार अग्निकाड, भूकप, लूटमार और आक्रमण हुए। एक के वाद एक आपदा आती ही रही, जिन्हे इस नगर ने झेला, मगर विचलित न हुआ। आज इसके चौडे राजमार्गो पर गगनस्पर्शी प्रासाद इस की दृढता, वैभव और शान का परिचय दे रहे है। नागरिको पर भी इन घटनाओ का प्रभाव रहा है। इसलिए वे भी साहसी, उद्यमी और प्रसन्न है। यहा का वातावरण लदन, लिवरपूल, हेग, हामवुर्ग और पेरिस से अधिक आकर्षक और सर्वथा भिन्न लगता है।

हमारा सवसे पहला कार्यक्रम केजर प्रतिष्ठान देखने का था। हिम्मतसिहका, भुवालका और मैं—तीनो वहा गए। कार्यालय आकलेड मे ३२ मजिल के विशाल भवन मे है। लेकिन वहा हमे वहुत ही थोडे कर्मचारी काम करते दिखाई पडे। मिस्टर कैजर उस दिन कहीं वाहर गए थे इसलिए हम उनके सीनियर वाइस प्रेसिडेट से मिले। उन्होने हमारा सहर्ष स्वागत किया और जलपान कराया। हमारे देश के वारे मे पूछते रहे। वे दो वार भारत आ चुके थे। रेणुकूट मे कारखाने की स्थापना के अवसर पर उन्हे यहा के ग्राम्य अचलो को देखने का भी मौका मिला था।

दूसरे दिन निश्चित कार्यक्रम क अनुसार कैजर प्रतिष्ठान के मिस्टर विलियम की कार से हम घूमने निकले। उन्होंने हमे आकलेड, सानफ्रासिस्को का उद्योग-क्षेत्र वडी अच्छी तरह समझाते हुए दिखाया। यो तो यहा प्राय. सभी प्रकार क उद्योग ह, कलकारखाने भी वहुत है। कलकत्ते, ववई, कानपुर या हमारे देश के अन्य वडे शहरो की तरह कारखाने आवासक्षेत्र मे नही वल्कि शहर से हट कर है। यहा के प्रमुख उद्योगो मे पेट्रोल रिफाइनिग, सूखे फल, डब्वे वद सब्जिया, फल और मास, रोटीविस्कुट, टिन और उस के डव्वे, लोहेइस्पात, रगरोगन, प्रेस और प्रेस मशीन, शराब तथा जहाज निर्माण उल्लेखनीय हैं।

इस के वाद हमने प्रमुख शिक्षण केद्रो को देखा। शिल्पोद्योग का केद्र और प्रचुर साधन उपलब्ध होने के कारण यहा नाना प्रकार की शिक्षण सस्थाए है। आधुनिक ज्ञानविज्ञान के अध्ययन के लिए कलकत्ता, ववई, वनारस और दिल्ली की तरह यह महानगर अमरीका मे प्रसिद्ध है। यहा के कालिज, सेनफ्रासिस्को विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है, जिन मे कई मेडिकल कालिज, लॉ कालिज और अध्यापको के कालिज है। शहर के शोरगुल और भीड से दूर सागर तट पर वर्कले हिल्स की गोद मे सानफ्रासिस्को का विश्वविद्यालय अत्यत मनोहर परिवेश मे है। महामना मालवीयजी के काशी हिंदु विश्वविद्यालय मे गोधूलि के वाद जेसा शात और सौम्य वातावरण यहाँ मिला। माइनिग के शिक्षण और अपने पुस्तकालय के ग्रथ सग्रह के लिए यह विश्वविद्यालय वेजोड समझा जाता है। यहा का स्टेडियम भी कम आकर्पण नही रखता। प्राचीन रोमन परपरा का आधुनिकीकरण इस की वास्तुकला मे वडी सफलता से किया गया है। स्टेडियम मे लगभग ७२,००० लोग आसानी से वैठ सकते है। कार्यक्रम खत्म होने पर दसबारह मिनट मे ही स्टेडियम खाली हो सकता है। अतरराष्ट्रीय महानगर होने के कारण विश्वविद्यालय मे विदेशो के छात्र भी अच्छी सख्या मे है।

इस प्रकार आकलेण्ड की पहाडी पर मिल्स कालिज है, यहाँ केवल महिलाएँ विविध विषयो की शिक्षा प्राप्त करती है, पावोआल्टो मे स्टानफोर्ड विश्वविद्यालय तथा आकलेड के पास सेट मेरी विश्वविद्यालय है, सानफ्रासिस्को का गोल्डन गेट व्रिज विश्वविख्यात है. आकलैड से सानफ्रासिस्को को यह पुल जोडता है। लगभग ४,२०० फुट लवा है। इसी के नीचे से बड़े-वडे जहाज गुजरते है। पुल के ऊपर से शहर वडा सुन्दर और सजीला लगता है।

शहर में आवागमन के अच्छे साधन है फिर भी पुराने ढग की ट्रामो को चलती देख हमे बडा आश्चर्य हुआ, हमारे यहाँ इन्हे दिल्ली और बम्बई मे हटा दिया गया लेकिन यहा के नागरिक अपने पुराने टामो मे बडे शौक से सवारी करते है। पर्यटक तो इन में बैठकर शहर घूमना अधिक पसन्द करते है क्योकि इस प्रकार वे नगर का काफी हिस्सा कम खर्च मे आसानी से देख पाते है। हमे बताया गया कि ससार मे सबसे पहले ट्राम यही चली थी। अतएव पुरानी होने पर भी इन्हे वे 'सुवेनियर' के बतौर कायम रखना चाहते है।

हम घूमते हुए कैथे महल्ले मे पहुँचे यह यहाँ का चाइना टाउन है। कलकत्ते के चाइना टाउन से कही अधिक बसा हुआ और साफ है। इन के अपने स्कूल, चर्च, दुकाने रेस्तरां और होटल है। चीनी ढग के भोजन और मनोरजन मे रुचि रखने वाले लोग यहाँ आते है। यह पूछने पर पता चला कि पीढी दर पीढी ये यहाँ बस गये है। अब चीन से इनका कोई सबध नही। यह भी पता चला कि मादाम सूग जो तायवान के मार्शल च्याग काइ शेक की पत्नी है यही की है। लगभग १५० वर्ष पहले जब सेनफ्रासिस्को मे युरोपियन बसना प्रारम्भ कर रहे थे, इन चीनियो के पूर्वज खेतीमजदूरी के लिए ठेके पर लाए गए थे। शुरु के दिनो मे इनकी पुरानी आदत और सस्कार के अनुसार जुए, अफीम तस्कर-व्यापार मारपीट की वारदाते इन महल्लो मे होती रहती थी। अब तो यह घटनाएँ नही के बराबर है। अच्छे डाक्टर होटलो के मालिक, व्यापारी और शिक्षक इन मे से है। कलकत्ता और यहाँ के चीनियो मे अतर लगा। यहाँ के चीनी अमरीकी राष्ट्र और समाज के अग जिस रूप मे बन गए है, हमारे यहाँ के उतने नही बन पाए है। कलकत्ता के चीनी न हिंदी अच्छी तरह बोल पाते है और न बगला ही। वे स्थानीय जीवन और समाज से अलग से रहते है।

अमरीकी जनसख्या मे नीग्रो लोगो का अनुपात अच्छाखासा है। इन का महल्ला अलग होता है। पूर्वी लदन के स्लम्स सा अथवा बहुत कुछ कलकते के वेलेजली अचल मे इनके महल्ले लगे। इन के जीवन स्तर और सामाजिक दशा के अपेक्षाकृत अतर के सबध मे हम ने अपने मित्र मिस्टर विलियम से प्रश्न किया। उन्होने बताया कि ये भी हमारी ही तरह अमरीकी है। गुलामी प्रथा के अनुसार तीनचार सदी तक अमरीका के विभिन्न प्रदेशो से नीग्रो आते रहे। उन्ही की ये सतान है। गुलामी प्रथा का दमन और अत हमारे यहा इस शताब्दी के आरम्भ तक कर दिया गया था। हम चाहते है कि ये हमारी ही तरह उन्नत हो। फिर भी ऐसा हो नही पा रहा है। सस्कारगत इन की प्रवृत्तिया कुछ विचित्र और रूखी है। आपस मे लडनाझगडना तो मामूली बात है। बलात्कार की इन की प्रवृत्ति ही इन्हे हमारे समाज से दूर रखती है। किसी भी गोरी महिला को हम अकेले इन के साथ निरापद नहीं समझते।

लौस ऐंजेल्स मे हमने सुना था कि कुछ चोटी की अमरीकी अभिनेत्रिया अपने साथी के रूप मे बलिष्ठ नीग्रो रखती हैं। शराब के नशे मे वे कभी-कभी इन्हे पीटते भी हैं। फिर भी इनका साथ नही छोडतीं। लाखो रूपये इन की सुखसुविधा के लिए खर्च करती हैं। अमरीकी नीग्रो मे कई जातिया है। विशालकाय, बलिष्ठ और मोटे-मोटे होठो के नीग्रो को देखने पर एक प्रकार का आतक सा अनुभव हो उठता है। आम तौर मे नीग्रो का रग अफ्रीका के नीग्रो से काफी हलका होता है। इन मे कई तो ऐसे भी होते है कि लगता है कि भारत के है।

तीसरे दिन सानफ्रासिस्को के इडियन ट्रेड कौसिल मे हम गए। बहुत दिनो बाद हमारे देश के विभिन्न समाचारपत्र यहा देखने को मिले। ट्रेड कौसिल हमारे देश के वाणिज्यव्यापार के हित एव सवर्धन के निमित्त विदेशो के बडेबडे व्यापार केन्द्रो मे स्थापित किए गए है। यहा के कौसिल ने हमे समुद्रतट के एक प्रसिद्ध रेस्तरा मे लच दिया। रेस्तरा एक बडे बोट पर था। बातचीत के सिलसिले मे भारतीय निर्यात की अमरीका मे स्थिति और भारत के प्रति अमरीका सरकार के रूख इत्यादि की चर्चा हुई। इस मे कोई सदेह नही कि हम शिल्पोद्योग मे अभी अमरीका से वर्षो पीछे है। फिर भी यहा के बाजारो मे हमारी दस्तकारी की काफी इज्जत

ओर माग है। इसलिए हमारी चीजो के लिए अच्छा बाजार है लेकिन जो शिकायत हम ने अन्य स्थानो मे सुनी वही यहा भी कि हम स्तर ठीक नही रखते, पेकिंग भी हमारा दोषपूर्ण होता है जिस से माल खराब हो जाते है या टूट जाते है ।

लच मे हमारे सामने जब कतरे फलो के साथ उबले अडे को दो फाको पर मजाकर पेश किये गये तो भुवालकाजी और हिम्मतसिंहकाजीने अर्थभरी दृष्टि से देखा । मैं स्वय इसी सकट मे था कि कैसे बताऊ कि अडे के स्पर्श से ही ये सुस्वादु सब्जी अब हमारे लिए ग्रहणीय नहीं रही । ऐसी ही घटना पेरिस मे हुई थी । उसकी याद आ गई । मै ने हसते हुए कहा कि अब हमारे जयपुर के सरकारी दूध वितरण केन्द्रो मे भी निरामिष अडे मिल रहे है लेकिन हम तीनो अभी तक उस स्तर के निरामिष भोजी नही हो पाए है । पश्चिम मे अडे को दूध के स्तर का निरामिष समझते है। सही है, लेकिन अभी तक हम इस बात को नही अपना सके हैं । मेरी अटपटी सी बात पर सब हस पडे और हमारे लिए दूसरी सब्जिया फौरन मंगाई गई ।

भारतीय व्यापार सचिव से हम ने स्थानीय भारतीय प्रवासियो के बारे मे जानकारी प्राप्त की । इस शताब्दी के शुरू मे पजाब से कुछ सिख पश्चिमी अमरीका मे कनाडा तथा कैलिफोर्निया के अचल मे आकर बस गए थे । बढईगीरी और खेती के मजदूरी के काम ये करते रहे और अपने मितव्ययी स्वभाव और मेहनत के कारण इन के पास कुछ पूजी भी जमा हो गई । अब तो इन मे से कई सपन्न और धनाढ्य है । कितने के पास तो सैकडों एकड जमीन है, जहा यान्त्रिक खेती होती है। बच्चे और इन की सतान अब अमरीकी नागरिक है । इन्ही प्रवासियो मे एक तो अमरीकी सीनेट मे भी है । लेकिन अब भारतीयो के आगमन पर पहले जैसी छूट नही है । उनके लिए एक कोटे के अनुसार नए आने वालो की सख्या निश्चित कर दी गई है । आम तौर से वैवाहिक सबध इन मे आपस मे ही होते है लेकिन कभीकभी अमरीकियो से भी हो जाते है हमारी इच्छा थी कि हम इन के बीच जा कर नजदीक से इन से परिचित हो लेकिन शहर के बाहर देहातो मे जाना पडता और कार्यक्रम के अनुसार इस के लिए समय नही था ।

भारत से प्रति वर्ष काफी संख्या मे विद्यार्थी सयुक्त राज्य अमरीका के विभिन्न शहरो मे अध्ययन के लिए जाया करते है । सानफ्रासिस्को मे हम ने ऐसे विद्यार्थियो को देखा । इन मे लडकिया भी हैं । हमे यह जानकर बडी खुशी हुई कि ये पढते है और फुरसत के समय काम भी करते है । शहर के ताज आफ इडिया मे भारतीय ढग के भोजन के लिए गए थे । यहा एक भारतीय महिला को काम करते देखा । साडी पहने हुए थी । मै ने पूछा कि आप किस प्रान्त से आई है ? अपनी भाषा सुनकर लगा कि वह प्रसन्न हुई । अधिकारी से चद मिनटो की छुट्टी ले कर पास आ गई । उसने बताया कि उत्तर प्रदेश की है और अपने पति के साथ यहा आई है, पति माईनिंग पढ रहे है और वह स्नातकोत्तर समाज विज्ञान । पति पत्नी दोनो काम भी करते है । इस प्रकार प्रत्येक को प्रति दिन ६० रुपए की आमदनी हो जाती है । कई भारतीय छात्रछात्राए इस तरह पढती और काम करती हैं । आश्चर्य हुआ कि अपने देश के ही है ये । फिर कलकत्ता, बबई, दिल्ली और मद्रास मे ऐसा नही दिखाई देता, क्यो ? शायद हमारे यहा का वातावरण अभी श्रम की मर्यादा के अनुकूल बन नही पाया है ।

सेनफ्रासिस्को का विकास योजना के अनुसार हुआ है इसलिए सड़के और मकान करीने से बने है । पेरिस की तरह यहा भी चौडी सडके हैं । दोनो ओर की चौडी पट्टियो पर लगे ऊचेऊचे पेड, अपने पीछे आकाश को छूते हुए भवन को देख कर, पत्तिया हिला कर पूछते से लगते है कि हमे प्रकृति ने इतना ऊचा बनाया पर तुम्हे किस ने ? सडक के बीचोबीच चौडी सीधी पट्टी एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाती है । इनमे हरी दूब के गलीचे पर रगबिरगे मौसमी फूलो के पोधे तो मानो सौदर्य की छटा बिखेरते है ।

यह शहर मुझे लौस ऐंजल्स से ज्यादा शानदार लगा । यहा प्रकृति हसती है, लोग हसते

मोटर की तरह दौड़ता मोटर सिटी
शिकागो

लौस ऐंजेल्स और सानफ्रासिस्को के अनुभव ने स्पष्ट कर दिया था कि अमरीका वास्तव मे नई दुनिया है। प्राच्य, मध्यपूर्व अथवा पाश्चात्य देशो की तरह अमरीका मे ऐतिहासिक एव सास्कृतिक पृष्ठिभूमि और गहराई नही के बराबर है। इतिहास यहा बन रहा है, सस्कृति पनप रही है, साहित्य मज रहा है। अमरीका इन तीनो की एक विशाल प्रयोगशाला है। आने वाला समय इस के बारे मे बता सकेगा। अभी कुछ कहना या निर्णय पर पहुचना कठिन है।

इसी भावना से मैने अमरीका को देखा। वैसे हमारी इस यात्रा का उद्देश्य था, वहा के औद्योगिक विकास का अध्ययन। हमारा वायुयान तेजी से पश्चिम से पूर्व की ओर बढ रहा था। प्लेन मे बैठा मै अमरीका का साहित्य पढ रहा था। तेल, अल्युमीनियम और सिने उद्योग मे अग्रणी कैलिफोर्निया की यात्रिक व्यवस्था के सिवा केमिकल उद्योग मे बढाचढा नियाग्रा, डेट्रियोट मोटर निर्माण मे माहिर, वाशिगटन विश्व की राजनीति का सचालक, न्यूयार्क विश्व की शाति और सुरक्षा के लिए सयुक्त राष्ट्र सघ के रूप मे राष्ट्रो की सम्मिलित चेष्टा का केद्र और शिकागो ? शिकागो सभी प्रकार के उद्योगव्यापार के लिए प्रसिद्ध है। वैसे अडे, मास, गल्ले और पशुओ की तो विश्व मे सबसे बडी मडी है।

हम यहा के ओडहियर हवाई अड्डे पर उतरे। हमारे लिए तो लौस ऐंजेल्स और सानफ्रासिस्को के मकान ही काफी ऊचे थे। यहा तो कुछ और ही नजारा नजर आया। ऐसा लगा कि मानो ऊचाई की होड लगा कर मकान बनाए गए हैं। सडको पर गाडिया इतनी बेशुमार है कि समय बचाने के लिए लोग आम तौर पर हेलिकाप्टर से एयर पोर्ट पर आतेजाते है।

शिकागो मे हमारे व्यावसायिक सबध थे। इसलिए ठहरने की और घूमने की अच्छी व्यवस्था हो गई। हम तीनो साथी कोनार्ड हिल्टन होटल मे ठहरे। यह विश्व का सबसे बडा होटल है। होटल क्या है, एक अच्छाखासा शहर कहिए। हमारे यहा के अशोक, ग्राड, ग्रेट ईस्टर्न की इससे तुलना ही नही की जा सकती। १७ मजिलो का विशाल और प्रशस्त प्रासाद, प्रत्येक मजिल पर दो सौ कक्ष। कुल मिला कर तीन हजार कमरे और कक्ष है जिन मे सुखसुविधा के सभी साधन सहज उपलब्ध थे। कही दावते हो रही है, तो कही देशविदेशो की एक नही अनेक काफ्रेसे चल रही है। फिर भी व्यवस्था और प्रबध मे कही भी शिथिलता नहीं। हम ने देखा कि अस्थि विशेषज्ञो की एक काफ्रेस चल रही है। विभिन्न देशो के चिकित्सक आमत्रित थे। उन का विषय हमारी समझ के बाहर था लेकिन उनकी लगाई गई

प्रदर्शनी ने हमे अवश्य आकृष्ट किया। कृत्रिम हाथपैर और अगुलिया लगा कर विकलाग मनुष्य को काफी हद तक सुविधा हो जाती है। 'पगु गिरि लघे' आश्चर्य की बात नही लगती।

साधारण व्यक्ति के लिए हमारा होटल एक प्रकार से आधुनिक भूलभुलैया ही था। अलगअलग हिस्सो के लिए अलगअलग लिफ्टे थी। मै एक बार यो ही कौतूहलवश एक लिफ्ट पर चढ गया। पड़ गया चक्कर मे। कही दूसरी ओर ही जा पहुचा। वहा से काफी देर बाद अपने कमरे मे आ सका। परेशानी की हालत मे चद्रकाता उपन्यास के अय्यारी महलो की याद आ गई।

यो तो पश्चिम मे होटल व्यवसाय काफी उन्नत है लेकिन अमरीका मे इसे चरमोन्नत कहना अत्युक्ति नही होगा। यहा होटलो मे विभिन्न प्रकार की दुकाने है। हजामत बना लीजिए, हमाम मे गुसल कर लीजिए, चाहे तो बैले, सिनेमा देख लीजिए, नाचने की इच्छा हो तो नाच लीजिए। नभ, जल, थल किसी भी यात्रा के लिए टिकटे मिल जाएगी। विश्व के किसी भी कोने से टेलिफोन से बात कर लीजिए। सारी सुविधाए है। रेडियो तो पुरानी बात है, टेलीविजन हर कमरे मे उपलब्ध है। अगर कुछ चाहिए तो अगुली से बटन छू दीजिए, पल भर मे आप की ख्वाहिश पूरी।

शहर घूमने निकला। मकानो की ऊचाई इतनी है कि देखने से गरदन दुखने लगेगी। बीसपचीस मजिलो की मकान तो यहा आम तौर पर है ही। पचाससाठ मजिल के भी कुछ है। हम ने पूछा कि आखिर यह ऊचाई की होड क्यो? उत्तर मिला कि शहर मे विस्तार की गुंजाइश कम है। जमीन की कीमत बहुत है। आबादी तेजी से बढ रही है। उस अनुपात मे आवास की आवश्यकता है। इसी लिए आसमान की ओर बढने के सिवा दूसरा रास्ता नही है। मैं ने मन ही मन सोचा कि यही रोग तो हमारे कलकत्ते को लगा है और शौकिया छूत दिल्ली को भी।

हमने मिशिगन एवेन्यू पर पायोनियर भवन को बनते देखा। १७ करोड रुपए की लागत से बन रहा था। काम इतनी तेजी से चल रहा था कि देख कर दंग रह जाना पड़ा। सोचने लगा कि अमरीकन जीवन मे गति का महत्त्व बहुत है। यूनाइटेड अमरीका और प्रुडेशियल बिल्डिग को देखने के बाद हम मेरीना सिटी नाम के दो भवनो को देखने गए। ६५ मजिलो के इन वृत्ताकार भवनो मे प्रत्येक मजिल पर मोटरो के लिए गैरेजे भी बनी है। आप ने ६५वी मजिल पर अपने कमरे से घटी बजाई, गाडी आप के कक्ष के सामने हाजिर। आप बैठ जाइए, गाड़ी लिफ्ट से सड़क पर आ जाएगी और इसी प्रकार ऊपर भी चली जाएगी। सच मानिए अमरीका तन्त्र मन्त्र का नही, यन्त्र का बडा भक्त है।

राह चलते हुए मैंने देखा कि कहीकही किसी भवन मे गाड़ियो का आवागमन बहुत अधिक हो रहा है। कारण पूछने पर पता चला कि शहर मे पदरहबीस मजिलो के गैरेज न हो तो सडको पर गाडियो के पार्किग के लिए जगह कहा मिलेगी? कलकत्ते मे भी मुझे एक भरी दोपहर में क्लाईवस्ट्रीट मे पार्किग के लिए कई फेरे लगाने पडे थे। फिर यह तो अमरीका का प्रसिद्ध शहर शिकागो है।

शहर मे कोई खास पुरानी चीज नही देखेंगे। एक पानी की टकी जरूर देखी जो ६० वर्ष पहले पूरे शहर को पानी देने के लिए बनाई गई थी। उस समय से शिकागो की आबादी कितनी तेजी से बढी है, इस का अनुमान इस टकी के आकार को देखने से लग जाता है।

शिकागो, मिशिगन झील की देन है, क्योकि इसी के कारण यहा कृषि का अच्छा विकास हुआ। फलस्वरूप पशुपालन का व्यवसाय बढ चला। आज तो शिकागो गल्ले, मांस, मुर्गी और अंडो के व्यवसाय का विश्व मे सबसे बड़ा केंद्र है। अमरीका मे सबसे बडे और सबसे आगे बढने की होड है। यहा के हाईकोर्ट ने एक मुकदमे मे एक कपनी पर १४ करोड रुपया जुर्माना

किया था। जो अब तक की जुर्माने की राशि मे सब मे अधिक मानी जाती है। सारी रकम की अदायगी समय पर कर दी गई। इस बात का भी शिकागो वाले बडप्पन के साथ उल्लेख करते है।

होनोलूलू की तरह यहा भी विभिन्न जातियो का अपूर्व मिश्रण हुआ है। स्पेन, पुर्तगाल, इगलैड, इटली, जरमनी, यहा तक कि रूस मे भी लोग व्यवसाय के लिए शिकागो मे आकर बस गए। आज यहा का नागरिक अपने मे यूरोप की किस जाति का रक्त कितने अश मे है, यह शायद ही बता पाएगा।

एक ऐसा भी जमाना शिकागो का था जब कि उस की शोहरत अपराध के केंद्र के रूप मे थी। दिनदहाडे राहजनी, खूनखराबी, जुए और नशाखोरी के डर मे शिकागो के बहुत से महल्लो मे भला आदमी जाने का साहस नही करता था। लेकिन वह सब अतीत की बाते है। आज वे दृश्य केवल सिनेमा मे देखने मे आते है या किताबो मे।

नीग्रोबस्ती यहा भी है। शायद समस्या भी उतनी ही जटिल है जितनी की कैलिफोर्निया मे। बल्कि इस अचल के नीग्रो जहा अधिक जाग्रत लगे, वहा उग्र भी। इन के अलग महल्ले है और रात्रि मे आमतौर पर गोरे लोग खासतौर मे औरते, वहा नही जाती।

कच्चे माल की सहज उपलब्धि शिकागो के औद्योगिक विकास की पृष्ठभूमि रही है। सस्ती मजदूरी पर नीग्रो श्रम भी प्रचुर मात्रा मे यहा मिलता रहा है। इस के अलावा मिशिगन झील के कारण देशविदेश के विभिन्न अचलो मे माल के आवागमन मे सुविधा रही है। आज यहा प्राय सभी प्रकार के कलकारखाने है। इन मे से कई का उत्पादन तो हमारे देश के सपूर्ण उत्पादन से कही अधिक है। यहा की एमस्टडन नाम की फर्म का अकेले का जितना उत्पादन इस्पात ढलाई मे है, उस का आधा भी सारे भारत वर्ष मे नही होता। इस ढग के विभिन्न वस्तुओ के कारखाने यहा एक नही अनेक है।

अब तक हमने भारत मे, पश्चिमी देशो मे, जापान मे जो म्यूजियम देखे थे उन मे यहा के भिन्न लगे। नेचुरल हिस्ट्री म्यूजियम और इडस्ट्री एड साइस म्यूजियम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नेचुरल हिस्ट्री म्यूजियम जीव के विकासक्रम पर है। आदि काल से अब तक विभिन्न प्रकार के जीव अपनेअपने समय के वातावरण मे कैसे रहते थे, वे किस प्रकार के थे इन सबो के माडल बडे ही स्वाभाविक ढग से बना कर दिखाए गए है। प्रागैतिहासिक युग के विशालकाय, दैत्याकार, दिनोसरो की प्राप्त अस्थियो पर मूल आकारप्रकार मे उन के माडल जहा आकर्षक और भयानक है वहां ज्ञानवर्धन के लिए अत्यन्त सहायक भी।

उद्योग विज्ञान सग्रहालय भी अन्य देशो मे भिन्न देखा। कोयले की खान कैसे होती है उस से कोयला कैसे निकलता है, जानने के लिए दर्शक को बनाई गई खान मे उतार कर भूगर्भ मे ले जाते है। आल्प्स की चोटियो के वायुमडल का दबाव और वहा के शीत का अनुभव कागजो और माडलो से नही, स्वय कर लीजिए। मोटर, रेल और हवाई जहाज कैसे चलाए जाते है यह आपको उन मे बैठा कर समझाया जाता है। इसी प्रकार सागर के गर्भ मे रहने वाले यूबोट के कलपुरजो का परिचय प्राप्त कीजिए और राकेट के सिद्धात का भी। अमरीका मे गाइड बहुत महगे है, यहा के गाइड मशीन होते है। आपको जो बाते जाननी हो, उन के लिए निर्देशक बटन दबा दीजिए। मशीन सारी बाते समझा देगी।

टोकियो मे हमने डिपार्टमेटल स्टोर देखा था। मेरा अनुमान था कि यहा भी बहुत कुछ उसी ढग के होगे या उससे कुछ बडे। लेकिन यहा तो सब कुछ कल्पनातीत है। हम 'मार्शल फील्ड' स्टोर देखने गए। तीन सडको तक इसका विस्तार है। इन का दावा है कि सूई से ले कर हाथी तक इन के यहा मिल सकता है। अनगिनत प्रकार की वस्तुए विभागश काउटरो पर सजी है। सचमुच, पशुपक्षी भी है। मुझे यहा हाथी नही दिखा उस समय तो मै पूछना भूल गया मगर मेरा विश्वास है कि दुकान पर भले ही हाथी न हो पर इस की उपलब्धि

की व्यवस्था जरूर होगी । केवल पशुपक्षी विभाग मे वेचने वाले थे, शेष अन्य विभागो मे शायद ही कोई हो । कई मजिलो का स्टोर, करोडो का माल, जो जी मे आए उठाते चलो और झोले मे डालते चलो । दाम सव का लिखा है । दरवाजे पर आ कर झोला रख दीजिए । दाम देख कर मशीन पर अपनेआप जोड लग कर बिल वन जाएगे ।

इस का मतलब यह नही कि अमरीका मे चोरी या अपराध नही है । चोरिया होती है । छोटी नही, वहुत वडी । जेव नही कटती, वैको पर डाके पडते है, थप्पड मार कर घडी या गले की सिकडी नही छीनते बल्कि किसी करोडपति के लडके को छिपा कर मावाप से बडी रकम ऐंठते है । स्टोर देख कर निकलते समय मुझे अपने यहा के एक मित्र की याद आ गई जिन्होने कलकत्ते मे इसी ढग का एक स्टोर खोला था । कुछ ही दिनो बाद वडा नुकसान उठा कर उसे वद कर देना पडा । क्योकि ज्यादातर माल बिना दाम दिए ही लोग ले गए ।

मै सोचने लगा कि हमारी सस्कृति प्राचीन है और त्यागप्रधान भी । अमरीकी सस्कृति आधुनिक और भोगप्रधान है । फिर क्या कारण है कि हमारा नैतिक स्तर उन के मुकावले मे काफी नीचा है । मुझे लगा कि इस की जड मे अभाव, गरीबी और अशिक्षा प्रधान रूप से है । आज राष्ट्र को एक बार फिर से आर्थिक दशा और शिक्षा पर सोचने की जरूरत है ।

शिकागो विश्व मे मास का सवसे बडा वाजार है । यहा का कसाईखाना बेजोड है । कतार की कतार मे खडे किए हजारो पशुओ के सिर वटन दवाते ही अलग हो जाते है । यह दैनिक क्रम कम मे कम पिछले ५०-६० वर्षो से चला आ रहा है । फिर भी पशु वहा घटते नही, बढते ही जा रहे है । वहा पुष्ट, स्वस्थ और मासल गाए मनो दूध देती है । और हमारे यहा मातृवत पूज्या गायो की दशा कैसी दशा है, यह बताने की आवश्यकता नही है ।

मै वहा अपने व्यापारिक सवध के फर्म के बडे साहब से मिलने गया । बडे प्रेमपूर्वक मिले । शहर से २५ मील दूर रहते थे इसलिए उन के भोजन का निमत्रण स्वीकार न कर सका लेकिन कारखाना देखना मजूर कर लिया । अगले दिन दो बजे उनके आफिस मे मिला, वह प्रतिक्षा कर रहे थे । सचिव को वुला कर उन्होने आवश्यक निर्देश दिए और कहा कि वे दिन भर के लिए बाहर जा रहे है, दूसरे दिन आएगे । अमरीकन बडे बेतकल्लुफ होते है इसलिए उन मे मिलने पर सकोच या झिझक नही रहती । हम दोनो आधे मील चल कर हर्टज गैरेज मे गए और एक वडी कार ली । बातचीत मे मुझे यह जान कर बडा ताज्जुव हुआ कि इतनी वडी फर्म के मालिक प्रतिदिन घर से २५ मील शिकागो का सफर रेल से करते है । मिस्टर लेगी ने वताया कि सडको पर गाडियो की भीड के कारण देर बहुत लगती है, दूसरे, शहर मे पार्किंग की जगह नही मिलती । विश्व के सपन्न उद्योगपति साधारण क्लर्को के साथ ट्रेन मे रोज मुसाफिरी करने मे सकोच नही करते । हमारे यहा के उद्योगपतियो के लिए यहां एक अच्छा दृष्टात है ।

जब हम कारखाने पहुचे तो उस समय चार वज चुके थे । पहली पाली के मजदूर जा रहे थे । मै ने लक्ष्य किया कि साफ सुथरे इस्तरी किए हुए कपडे, तरोताजा शकले, स्वास्थ्य और मौज का वातावरण । मजदूर अपनीअपनी कारो मे वैठे हुए 'हलो, लेगी,' 'ओ, हाउ,' इत्यादि 'अभिनदन करते हुए बेफिक्री से जा रहे थे । पहले तो गाडियो की कतार देख कर मैने सोचा था कि कोई कांफ्रेस समाप्त हुई है और प्रतिनिधि अपनीअपनी कारो मे वापस जा रहे है । मुझे आश्चर्य हुआ कि मिस्टर लेगी के इतने दोस्त उन के आते ही केवल 'हलो लेगी' कह कर चले गए । मै ने उनसे कहा, "आप बडे खुश किस्मत है, आप के इतने सारे दोस्त है । वे शायद जल्दी मे है ।" उन्होने उत्तर दिया, "हां भाई, बात यह है कि दिन भर कारखाने मे काम करने के बाद दोस्तो को घर की दोस्ती भी तो निभानी पडती है ।

वात समझ मे आ गई । कारखाने के अदर गया । अभी भी कुछ मजदूर फव्वारो के नीचे

महा रहे थे। कुछ नहाधो कर काफी पी रहे थे। यहा भी 'हैलो लेगी' का जोर। मिस्टर लेगी भी कभी किसी से हैलो कह देते या मुस्करा कर आगे बढ जाते।

मैं यह सारे नजारे देख कर हैरत मे था कि 'वसुधैव कुटुवकम्' का मन्त्रोच्चार करने वाले हमारे देश के उद्योगपति और सरकारी अफसर अपने कारखानो के मजदूरो को तथा आफिसो के क्लर्को को कुटुवी का पद देना तो दूर रहा, उनके साथ थोडी सी सहानुभूति का भी वरताव करने लगे तो वडी बात होगी। आए दिन की हडताले और तोडफोड कम हो कर देश में उत्पादन की वृद्धि हो जाए।

कारखाने के मैनेजर ने मजदूरो के विषय मे जानकारी दी कि वे प्रति दिन आठ घटे और सप्ताह मे पाच दिन काम करते है। प्रति घटे की मजदूरी कम से कम दस रुपए और दक्षता के अनुसार २२ रुपए तक है। यानी कम से कम २००० से लेकर ४००० रुपए तक प्रति मजदूर की प्रति मास की आय हे। प्राय सव के पास अपना मकान, कार और टेलीविजन है। पतिपत्नी दोनो काम करते है। पति कारखाने का मजदूर है तो पत्नी आफिस क्लर्क, टाइपिस्ट या स्कूल मे अध्यापिका है। परिवार नियोजन के महत्व को ये समझते हैं इसलिए वच्चे कम है। यही कारण है कि स्वास्थ्य उनका अच्छा हे।

सब कुछ देख रहा था और सुन रहा था। मेरा मन बारवार अपने देश के कारखानो और कोयले की खानो मे काम करनें वाले पीले चेहरो को देख रहा था। मैंले चियडो मे लिपटे वीमार वच्चो को छाती से चिपटाए हुए, टूटे छप्पर के नीचे वैठी हुई शकलें भी सामने आ जाती थी।

उसी शाम को मिस्टर लेगी ने हमे शिकागो के प्रसिद्ध पामर्स हाउस रेस्तरा मे डिनर का निमत्रण दे रखा था। पामर्स हाउस शिकागो का सब से महगा रेस्तरा हे। एक वार के भोजन मे कम से कम तीनचार घटे लग जाते है और चार्ज भी सत्तरअस्सी रूपए प्रति व्यक्ति, क्योकि भोजन के साथ चोटी के कलाकारो के नृत्य, सगीत, वाद्य आदि के कार्यक्रम चलते रहते हैं। मुझे उन के गाने बजाने मे कोई विशेष आनद नही आया पर वैले की भावमुद्राए अच्छी तरह समझ सका—पश्चिम के अन्य देशो की तरह वही निराश प्रेमियो का नृत्य या फिर मिलन नृत्य।

इन देशो मे वडीवडी राजनीतिक या व्यापारिक उलझी समस्याए भोजन के टेवलो पर खातेपीते सुलझा ली जाती है। शायद हमारे लिए पहले से ही निरामिष भोजन की तैयारी के लिए सूचित कर दिया गया था। इसलिए, हमारे सामने भातिभाति की मिठाइया, फल और आइसक्रीम की तश्तरिया रखी जाने लगी। खाने का ढेर सा सामान जब आने लगा तो श्री हिम्मतसिंहका ने धीरे से मिस्टर लेगी से कहा, "इन्हे वहुत कम करा दीजिए।" उन्होने मुस्करा कर कहा, "जितना चाहे, खा ले वाकी को नष्ट कर दिया जाएगा। आधिक्य हमारी समस्या है।" मै ने कहा, "एक ओर तो आप करोडो मन गल्ला और रूई जला देते है दूसरी ओर इन के विना वहुत से लोग भूखे और नगे है। फिर क्यो नही आप यह वचा हुआ सामान उन देशो को दे देते है ?"

मिस्टर लेगी कुछ सजीदगी से कहने लगे, "वैसे तो अमरीका प्राय सभी अभावग्रस्त देशो को किसी न किसी रूप मे सहायता या उधार देता रहता है पर इन के साथ ही हमारा एक कटु अनुभव भी हमें कुछ सोचने के लिए वाध्य कर देता है। जब भी हम ने किसी देश को वहुत ज्यादा दिया कि वह हमारे विरोधी विचार वालो के हाथ मे चला गया। जैसे चीन, इडोनेशिया और बर्मा आदि। हमारे देश मे इस की प्रतिक्रिया हुई। इसलिए हमारी सरकार को जनता तथा समाचार पत्रो की राय को मान कर ही चलना पडता है। विश्व के वाजार का सतुलन रखने के लिए चीजों को कभीकभी नष्ट कर देना पडता है।"

राजनीति या अर्थशास्त्र के आज के सिद्धातो के आधार पर सभव है उन की बाते सही हो, पर मुझे जची नही। क्योकि चिरकाल से अपने धर्मग्रथो और सतो की वाणी मे पढ़ता आ रहा हूँ कि मानवता की सेवा ही सब से बडा धर्म है। 'सर्वेन सुखिन सतु, सर्वे सतु निरामया' आदि। रात्रि के १२ बज चुके थे, नीद आ रही थी। इसलिए ज्यादा बहस मे न पड कर होटल को रवाना हुए।
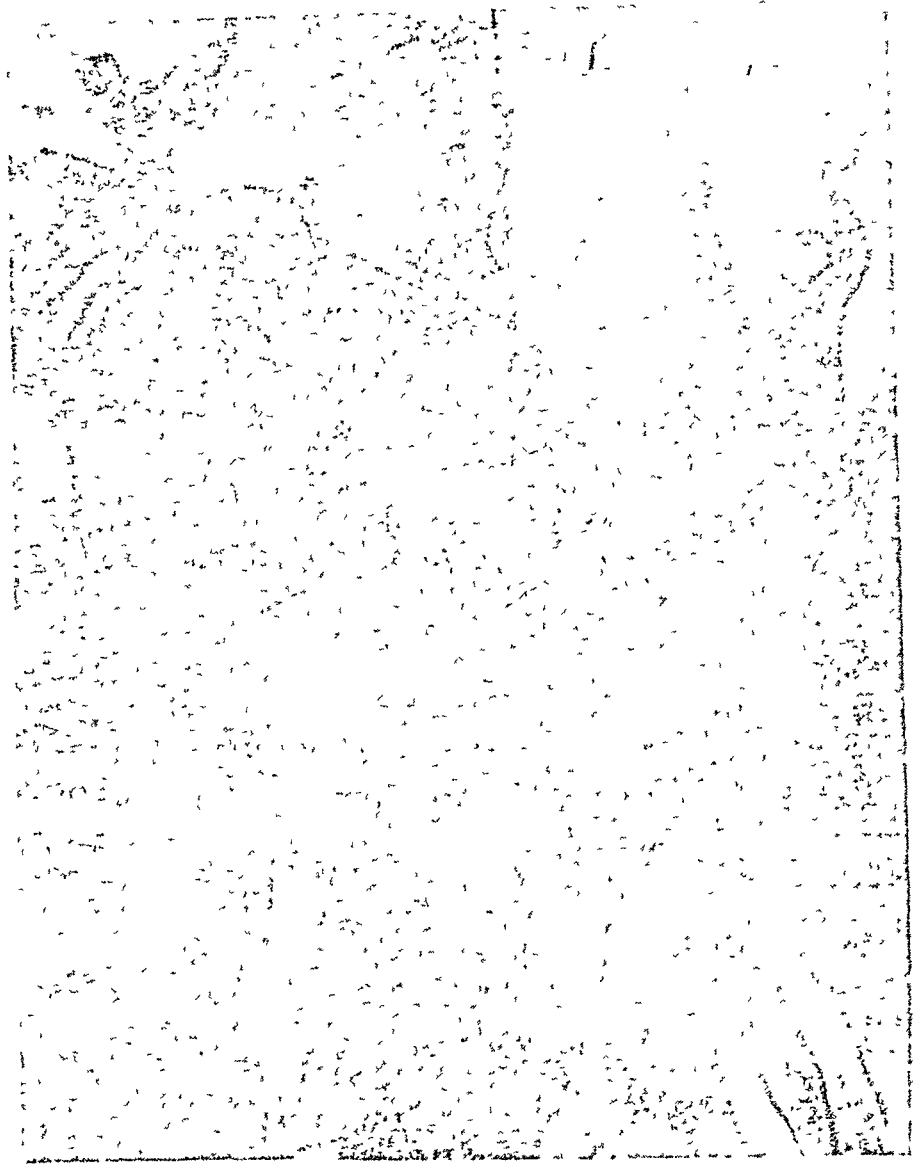
मानव के पौरुष को चुनौती ?

नियाग्रा

अमरीका क्षेत्रफल मे भारत से तिगुना वडा हे, जव कि जनसख्या मे ४० प्रतिशत। इस के विपरीत वहा का औद्योगिक उत्पादन हमारे यहा से वहुत ज्यादा है, इसलिए वहा मजदूर बहुत महगे है और ज्यादातर काम मशीनो द्वारा होता हे। शिकागो के एक कारखाने मे हम ने देखा कि एक वडेवडे हाथो वाली मशीन छोटीवडी चीजो को चुन कर अलगअलग रख रही थी। सुदक्ष कारीगरो से गलती होनी सभव है, पर इन मशीनो से नही। रेलवे, थियेटर और सिनेमा के टिकट बेचना, अगर आप के पास खुले पैसे नही हे तो वाकी चेज वापस देना आदि सव काम मशीनो के ही जिम्मे हें।

शिकागो विश्व का प्रसिद्ध ओद्योगिक शहर हे ओर इसे दखने को वहुत समय चाहिए था। परतु ५० दिनो मे पृथ्वी प्रदिक्षण करने के सकल्प से हम रवाना हुए थे। इसलिए तीन दिनो मे जो कुछ भी सभव था, सरसरी तौर पर देख लिया। वहा के गगनचुवी भवन, हजारो कारखानो की हुकार ओर जनजीवन की व्यस्तता से हम प्रभावित तो वहुत हुए लेकिन मन अव और कही चलने को मचल रहा था।

नियाग्रा प्रपात का नाम वहुत दिनो से सुन रखा था। कई वार राची के गौतमधारा और शिलाग के एलीफेटा झरनो के नीचे स्नान भी कर चुका था। सुना था कि नियाग्रा इन सव मे वडा है, इसलिए मन मे उत्सुकता थी कि उस के नीचे स्नान करने मे शायद और भी ज्यादा आनद आता होगा। वहा जाने का प्रोग्राम पहले से वना हुआ था ही और वफैलो मे रासायनिक कारखाने और स्टील प्लाट देखने का भी।

शिकागो से हवाई जहाज द्वारा हम वफैलो पहुचे। वहा कारखानो को देखा, उन की उत्पादन क्षमता और कार्यप्रणाली के वारे मे आवश्यक जानकारी ली। वहा के अधिकाश कारखाने नियाग्रा मे प्राप्त की गई सस्ती विजली से चलते हे उन मे से कई कारखानो का उत्पादन तो हमारे देश के कुल उत्पादन मे भी ज्यादा है।

हम एक खाद के कारखाने मे गए। वहा महाकाय मशीने तो वहुत सी थी, पर मजदूर वहुत कम दिखाई दिए। हमे लगा कि शायद कारखाना वद हैं और सफाई आदि हो रही है। पूछने पर पता चला कि कारखाना पूरी क्षमता से चालू है ओर आधुनिकतम यत्रो से सुमज्जित है। वहा २,०० ००,००,००० रुपए का वार्षिक उत्पादन होने पर भी मजदूर सिर्फ २,२०० ही हैं। हमारे यहा इतने वडे कारखाने मे वीसपचीस हजार से कम मजदूर नही होते, इसीलिए वहा मजदूरो को ज्यादा मजदूरी दी जाती है वैसे वहा भी मजदूरी भिन्नभिन्न उद्योगो मे

कमज्यादा है, रासायनिक और लोहे के कारखाने मे दूसरो की अपेक्षा अधिक है। जिस कारखाने में हम गए थे वहा न्यूनतम ३००० रुपए और अधिकतम ४,५०० रुपए वेतन २२ दिनो के काम पर था। आठ घटे प्रति दिन से ज्यादा या शनिवार के काम पर वहा मजदूरो को दोगुनी मजदूरी देनी पडती हे। हाल मे दो वर्षो मे मजदूरी की दरो मे दस मे १५ प्रतिशत वृद्धि और हो गई है।

बफैलो वैसे एक आधुनिक शहर है लेकिन घूमने की हम लोगो की कोई इच्छा नही थी। दरअसल बफैलो का खास महत्व बहुत अशो मे नियाग्रा के कारण ही है। प्रपात यहा से केवल ११ मील की दूरी पर है। साधारणत व्यस्त पर्यटक बफैलो मे ही ठहरते है। हवाई जहाज मे आए, कार से नियाग्रा पहुंचे शाम तक प्रपात देखा, रात को लौटे और हवाई जहाज से दूसरे दिन वापस। हम नियाग्रा को इस तूफानी तरीके से नही देखना चाहते थे। हमे पता चला कि नियाग्रा मे रहने के लिए अच्छे होटल है। यात्रियो के लिए उन मे सुखसुविधा की व्यवस्था भी है। अत हम तीनो साथियो ने वही ठहरने का निश्चय किया।

कार द्वारा नियाग्रा के लिए रवाना हो गए। पास पहुचने पर प्रपात का गर्जन स्पष्ट होता जा रहा था। सागर और प्रपात की आवाज मे अतर होता है। सागर के घोष मे एक प्रकार का ताल और स्वर सा रहता है, जिस मे उतार और चढाव होता है, लेकिन प्रपात मानो अनवरत हर हर हर के रव से वदना करता हुआ सा लगता है।

प्रपात के पास ही हम लोग एक होटल मे ठहर गए। हम ने सामान रखा और हलकी काफी पी। शाम हो चुकी थी। दिन भर की थकान के बाद हम विश्राम भी चाहते थे। पर शिकारी और पर्यटक दोनो का नशा अजीब होता है। उन्हे चैन और आराम कहा ? थोडी देर बाद ही हम होटल से बाहर निकल पडे। बाहर की ताजी हवा ने हमारी थकान मिटा दी। हम टहलते हुए पुल पर पहुचे। प्रपात यहा से करीब दोतीन फर्लाग की दूरी पर है। प्रथम दर्शन ने ही हमे वहा विमुग्ध और आत्मविभोर कर दिया। एक समतल छोटे गहरे गर्त मे पठार से अपार जलराशि नीचे गिर रही थी। जल के अगणित सूक्ष्म कण हवा मे उड कर कुहासे की सृष्टि कर रहे थे। रात के अधकार मे बिजली का प्रकाश सतरगी इद्रधनुप बना रहा था।

देशविदेश घूमता रहा हू। धरती की मुस्कान प्रकृति का विविध शृगार भारत, यूरोप और अफ्रीका मे देखने का सयोग मुझे कई बार मिला। विभिन्न देशो के भ्रमण मे मै ने यह भी लक्ष्य किया कि मनुष्य की चेष्टा चिरकाल से नैसर्गिक वैभव से होडलेने की रही हैभारत का ताज, मिस्र के पिरामिड, पेरिस का लुव्रे, वरसाई और लेनिनग्राद के राजप्रासाद, वेटिकन मे पोप की राजधानी, न्यूयार्क मे मनहटन के गगनचुबी भवन—ये सभी मनुष्य के ज्ञानविज्ञान के विकास के पुष्ट प्रमाण है। फिर भी ये वैभव नैसर्गिक सौदर्य की तुलना मे अत्यत नगण्य है।

ध्रुवाचल मे मध्य रात्रि का सूर्य और अमरनाथ के पथ पर शेपनाग के ब्रह्मा, विष्णु, महेश नामक हिमालय के हिमशिखरो की तरह नियाग्रा को देख कर मनुष्य प्रकृति की शोभा और शक्ति का साक्षात परिचय पाता है। मुझे याद आती है एक घटना

अमरनाथ के रास्ते मे शेपनाग मे ११,००० फुट की ऊचाई पर कडाके की सर्दी भूल कर हिमशिखरो को मत्रमुग्ध की तरह बहुत रात हो जाने पर भी मै देखता ही रह गया था। ऐसा लगता था कि हिमालय के वे धवल पुत्र मुझे जादू से सम्मोहित कर के अपने पास बुला रहे है। इसी प्रकार नार्वे में मध्य रात्रि के सूर्य को देख कर चकित सा रह गया था कि परम रहस्यमय प्रकृति की कैसी माया है कि प्रचड मार्तड प्रखर किरणे न बिखेर कर पूनम का चाद बन कर मुसकरा रहा है। मै सोचने लगा था कि उसे दिवाकर कहू निशाकर कहू या प्रभाकर।

नियाग्रा प्रपात का अपना बेजोड आकर्षण है। सैलानी और पर्यटक वर्ष भर यहा आते

रहते है। इसी कारण नियाग्रा मे काफी भीड रहती है। ऊचाई से गिरती हुई अजस्र जलधारा मानव के समर्थ पौरुष को चुनौती देती जान पडती है। सैकडो व्यक्तियो ने मौत की परवा न कर के प्रपात की जलधारा के साथ ऊचाई से कूदने का दुस्साहस किया है।

यह कहना गलत होगा कि ऐसे प्रयासो के पीछे शत प्रति शत नाम कमाने की भावना ही रही होगी। पाश्चात्य लोगो मे इस प्रकार की धुन के अगणित उदाहरण देखने मे आते हे। हिमालय के दुर्गम शिखरो पर चढना, आल्प्स् की बर्फानी चोटियो को लाघ जाना ओर सहारा की आग उगलती मरूभूमि को पैदल ही पार करने के ऐसे अनेक दृष्टान्त है। हमारे यहा पाडवो के महाप्रस्थान और अशोक की पुत्री सघमित्रा की धर्मयात्रा मनुष्य की आतरिक सात्विक प्रवृत्ति और साहस के उदाहरण है।

नियाग्रा प्रपात अपने ही नाम की नदी से बना है। यह नदी कुछ ही दूरी पर ३२५ फुट नीचे आ जाती है। इसलिए जहा झरना है वहा अत्यत वेग से नीचे गिरती हे। नियाग्रा की विशेपता उस की ऊचाई नही है, क्योकि इस से भी अधिक ऊचाई से गिरने वाले प्रपातो की सख्या विश्व मे बहुत है। इसकी विशेषता तो इस के विस्तार, दीर्घता ओर जल के घनत्व मे है। अनुमान है कि अमरीका की ओर ६०,००,००० गेलन प्रति मिनट और कनाडा की ओर ११,५०,००,००० गैलन प्रति मिनट पानी गिरता है—यानी एक घटे मे ८०,००,००,००० मन पानी।

नियाग्रा के इस प्रपात की शक्ति को व्यर्थ नही जाने दिया गया है। इस से बिजली पैदा करके आसपास के अचल के नाना प्रकार के उद्योगधधो को चलाया जाता है। इस प्रकार रासायनिक, इस्पात, अल्युमिनियम, कपडे, मशीनरी आदि के करीब १,४०० कलकारखाने इस प्रपात की शक्ति से चलते है। इन कारखानो मे २,५०,००० से अधिक व्यक्ति काम करते है।

अमरीका ही नही, सभी पाश्चात्य देशो का एक ही लक्ष्य है कि उन की सुरम्यस्थली या महत्वपूर्ण स्थानो पर अधिक से अधिक सैलानी और पर्यटक भ्रमण के लिए आए। इसलिए वहा यात्रियो की सुखसुविधा और स्थान को ज्यादा से ज्यादा आकर्षक बनाने का ध्यान रखा जाता है। नियाग्रा को भी यात्रियो के लिए पूरे तौर पर सजाया गया है। रात मे विभिन्न रगो के प्रकाश मे झरने की सुदरता मे चार चाद लग जाते है। बिजली के २४ विशाल प्लाट इस के लिए रोशनी फेकते है, जिन मे १,३२,००,००,००० दीपालोक (कैडल पावर) की क्षमता है। आप स्वय अनुमान करे, २०० दीपालोक के एक बल्ब से साधारणतया हमारी आखो मे चकाचौध पैदा हो जाती है। फिर यहा तो रगबिरगे १,३२,००,००,००० दीपालोक झरने की दुग्ध जेमी धवल जलधार पर नाचते हुऐ कितना सुन्दर दृश्य उपस्थित करते होगे।

नियाग्रा का प्रपात सयुक्त राज्य अमरीका और कनाडा को विभाजित करता है। कनाडा की ओर इस की शक्ल बहुत कुछ घोडे की नाल की तरह है। यहा इस की लबाई २,५०० फुट है। नियाग्रा से लगातार गिरने वाली पानी की तेज धार के कारण नीचे की कठोर चट्टान ३० फुट घिस गई है। प्रपात के दोनो ओर अत्यत मनोरम उद्यान है। सैलानियो की भीड लगी ही रहती है। अमरीका मोटरो का देश है। इसलिए यहा एक साथ २०,००० कारो की पार्किंग की व्यवस्था रखी गई है। सेकडो प्रकार की कारो के अलावा यहां सजी हुई फिटन गाडिया भी काफी देखने मे आई। इन का किराया मोटरो से चौगुना है, क्योकि हमेशा मोटरो मे चढने वालो को इस सवारी मे एक नए मजे का अनुभव होता है। हमे पता चला, नियाग्रा के प्रपात के देखने के लिए प्रति वर्ष लगभग २०,००,००० यात्री आते है। यदि प्रति व्यक्ति का औसत खर्च ३०० रुपए भी आका जाए तो अकेले नियाग्रा की वार्षिक आय यात्रियो से ६०,००,००,००० से कम न होगी, जो सपूर्ण भारत के यात्रिक व्यवसाय से दोगुनि है।

यहा प्राय सभी प्रकार के और रुचि के यात्री अमरीका तथा विश्व के विभिन्न भागो से

आते रहते हैं, लेकिन नवविवाहितो के लिए तो यह मानो तीर्थस्थली है। मधुमय दापत्य जीवन की कामना से मधुयामिनी (हनीमून) बिताने के लिए सैकडो युगल प्रेमालाप करते यहा नजर आते है। उन की उद्दाम लालसायुक्त गरम निश्वासो को नियाग्रा अपने प्रपात के जलकण विखेर कर रगीन शीतलता देता रहता है।

नियाग्रा नदी की धार झरने के नीचे वडी तेज है और वहा खतरा भी जवर्दस्त है, फिर भी लोग उस के पास जाते है। उन की साहसिक अभिलापा की पूर्ति के लिए यहा दो शक्तिशाली मोटरवोट है जिन का नाम 'कुहासे की किन्नरी' है। ये किन्नरिया यात्रियो को बड़ी सफाई से झरने के पास तक ले जाती है। ऊचाई से करोडो मन पानी मोटी धारो मे गिरता है और असख्य जलकण हवा मे कुहासे की तरह विखर जाते है।

यात्रियो के लिए यहा एक और भी आकर्षण है दो वडीवडी लिफ्टे उन्हे झरने के नीचे के उस भाग मे ले जाती है जहा से वे अपने ही ऊपर से झरने की अपार जलराशि को गिरता हुआ देखते हैं। हम भी पाच रुपए प्रति व्यक्ति का शुल्क दे कर, मोटे रवर के वस्त्र पहन कर लिफ्ट से नीचे गए।

यह देख कर ताज्जुव होता है कि कितनी जोखिम ले कर उस स्थान को वनाया गया है। ऊपर और अगलवगल पानी की तेज अनवरत धाराए मोटे शीशे की दिवार पर पडती रहती है। यात्री उसी के बीच से मायामयी प्रकृति के इद्रजाल से अभिभूत हो उठते है।

हमे वताया गया कि पिछले १२० वर्षो मे कई प्रकार की साजसज्जा से लैस हो कर अनेक व्यक्तियो ने झरने की ऊचाई से कूदने का दुस्साहस किया है। कोई लोहे के ड्रम मे बैठ कर कूदा तो कोई मोटे रवर के थैले मे या कार्क की वनी पेटी मे। इन मे वहुतो की जाने गई, हाथपैर टूटने की वात तो साधारण सी है। नियाग्रा के म्यूजियम मे इन के चित्र और सामान को देख कर विचार उठा कि जानवूझ कर मौत से खेलना एक सनक है या दुस्साहस!

एक घटना हम ने यहा भी सुनी कि एक सात वर्प का लडका नियाग्रा नदी मे पाचछ मील ऊपर एक छोटी सी नाव मे जा रहा था। अचानक तेज धार की चपेट मे आ गया। उस ने लाख हाथपैर पटके मगर धार से नाव निकल न पाई। नियाग्रा के दोनो किनारो पर खडे हजारो लोगो की आखो के सामने तीर की तरह सनसनाती हुई उस की नाव प्रपात के किनारे की ओर बढी। अगले ही क्षण मे लोगो ने देखा कि किश्ती पानी की धार के साथ नीचे गिरी। वचाने का उपाय भी क्या था? लेकिन लोगो ने देखा कि लडका सहीसलामत झरने के दायरे से वाहर नदी की धार मे अपनी नाव पर बैठा है। कोई युक्तिसगत तर्क इस रहस्य को आज तक सुलझा नही पाया है।

एक फ्रांसीसी मोशिए फ्लाडिन के वारे मे सुना कि उन्होने सन १८६० मे नियाग्रा के दोनो किनारो पर मोटे तार का रस्सा वाध कर हाथ मे एक लवी लग्गी लिए उस तार पर चल कर प्रपात को पार किया। पहली सफलता से उत्साहित हो कर दूसरी बार वह फिर कधे पर अपने मैनेजर को बैठा कर नियाग्रा पार हुए।

गाइड से इन घटनाओ को सुन कर मैं ने प्रश्न किया, "इस प्रकार के दुस्साहसिक कृत्यो मे मृत्यु निश्चित जान कर भी जान पर खेल जाना क्या अर्थ रखता है?" गाइड वोला, "जनाव, मृत्यु ध्रुव है और सत्य है, फिर क्यो न यश पा कर ही दुनिया से विदा हो।"

मुझे चित्तौड के गोरा और वादल की याद आ गई। वे भी तो केसरिया वाना पहन कर शत्रुओ की तूफानी लहरो मे मौत के साथ खेलने ही गए थे। हाड़ो रानी की भी मुझे याद आ गई, जिस ने विवाह के दिन ही अपने पति चूडावत सरदार को शीश की भेट दे कर रणक्षेत्र मे मृत्यु वरण के लिए भेज दिया था।

हम दिन भर खूब घूमे, शाम को काफी थक चुके थे इसलिए सीधे होटल लौटे। मैं भोजन के वाद विश्राम करना चाहता था। विस्तर पर जाने की तैयारी ही थी कि प्रभदयालजी ने

कहा, "चलिए, कुहासे की किन्नरिया हमे बुला रही है. कल तो जाना ही है इसलिए आज जी भर इन का सान्निध्य प्राप्त कर ले।" हम होटल से निकले और प्रपात के पास एक बाग मे जा बैठे। सतरगी रोशनी पानी से खेलती हुई इद्रधनुष सजा रही थी, ऊपर आकाश मे तारे मुस्करा रहे थे।

एकाएक मै ने नजर घुमाई तो जरा झेप सा गया। लदन के हाइड पार्क, होनोलूलू के समुद्री किनारे या वेनिस के गोदोला का नजारा बाग मे जगहजगह पर था। प्रथम पहर बीतने पर होटल लौटते समय ऐसा लगा जैसे सचमुच नियाग्रा मुझे 'हर हर हर' कह कर फिर से बुला रहा है।

अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र

वाशिंगटन

अगरेजी मे एक कहावत है कि 'सभी सडके रोम को जाती ह'। रोमन साम्राज्य की प्रसिद्धि से सभी परिचित है। यूरोप, अफ्रीका और अरब पर उनका शासन सदियो तक रहा। साहित्य, कला, राजनीति और यहा तक कि इन देशो की संस्कृति पर भी रोमन प्रभाव पड़ा है। साम्राज्य का केंद्र था रोम। यहां सभी को आना ही पडता था। इसी सदर्भ मे उक्त कहावत चल पडी।

जमाना करवटे बदलता है। रोम मे पहले बेबीलोन, मिस्र और भारतीय साम्राज्य और सभ्यता के उत्कर्ष इतिहास के पृष्ठो मे पढने मे आते ह और देखने मे आते ह खडहरो मे। अभी पिछले महायुद्ध तक विश्व की राजनीति का सचालन ब्रिटेन मे होता था। अब वह स्थान अमरीका का है।

आज विश्व राजनीति के सूत्र लदन, पेरिस या बर्लिन के हाथो मे नही मास्को और वाशिगटन के हाथो मे है। वास्तव मे अब ससार की राजनीति के ये दो सूत्रधार ह।

सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र मे मेरी रुचि होने के कारण अमरीका के अभ्युदय को समझने की बहुत इच्छा थी। लास ऐजेल्स और शिकागो मे अमरीका के वैभव उस के उन्नत शिल्पोद्योग और व्यापारिक सगठनो का अदाज मिला। वहा के जनजीवन की विविध धाराओ का भी परिचय मिला। परतु दिल्ली और कलकत्ता देखे बिना जैसे भारत की जानकारी अधूरी रह जाती है उसी तरह वाशिगटन और न्यूयार्क के बिना अमरीका को जानना सभव नही।

नियाग्रा मे हमे सूचना मिली कि हमारे राजदूत बी० के० नेहरू आवश्यक कार्य से दौरे पर जाने वाले है इसलिए उन्होने पहले हमे वाशिगटन बुलाया है। अतएव न्यूयार्क के लिए रिजर्वेशन रद्द करा कर हम सीधे वाशिगटन पहुचे। दूतावास ने हमारे लिए होटल मेफ्लावर मे आवास की व्यवस्था कर दी थी।

भारत यदि मदिरो का देश और इटली व बेलजियम गिरजो का देश कहा जाता है तो अमरीका को होटलो का देश कहना चाहिए। वहा एक से एक बढ कर होटल और मोटल है और अब तो टोटल भी है। भारत मे होटल तो है पर मोटल और टोटल शायद ही हो। मोटल मे यात्रियो के लिए आवास और भोजन की व्यवस्था के अलावा मोटर रखने एव उसकी आवश्यक मरम्मत की भी सुविधा रहती है। आजकल मोटरो मे पर्यटन करने वाले मोटलो मे ही ठहरते है। टोटल एक नई व्यवस्था है। इन्हे चलताफिरता होटल कहना चाहिए। बडे बडे

ट्रेलर शक्तिशाली मोटरो से जुडे रहते है। इनमे खाने, पीने, सोने की व्यवस्था रहती है। अच्छे सुसज्जित बाथरूम भी इनमे होते है . सफर का सफर, रहने का रहना, साथ ही समय और खर्च मे 'बचत'। लोगो ने इसे खूब पसद किया है।

अमरीकी होटलो और रेस्तराओ मे विदेशियो को भाषा के कारण कठिनाई नही होती। अधिकाश कर्मचारी द्विभाषी होते है। मैनेजर और क्लर्क वगैरह तो चार या पाच भाषाए आसानी से बोल लेते है। फ्रेच, इटालियन, स्पेनिश, जरमन, रूसी इत्यादि किसी भी यूरोपीय भाषाभाषी को वहा दिक्कत नही होती। एशियाई भाषाओ मे अरबी, तुर्की और जापानी भाषाओ को जानने वाले भी मिल जाते है। हिंदी या अन्य भारतीय भाषा की जानकारी शायद ही किसी को हो। यह उन की उपेक्षा नही बल्कि हमारी कमजोरी है, क्योकि विदेशो मे हम आपस मे भी अगरेजी बोलते है। यही नही, स्वदेश मे भी हिंदी जानने वाले आपसी व्यवहार मे, सफर मे या ससद मे अगरेजी मे ही बोलना पसद करते है। नतीजा यह होता है कि विश्व की एक बडी और इतने बडे देश की राजभाषा होते हुए भी हिंदी का महत्व बाहर वाले नही समझते और इसी लिए मानते नही।

होटलो के सचालको मे आपस मे होड सी रहती रहै कि कौन कितनी सुविधा यात्रियों को देता है। जहा किसी होटल या मोटल की लोकप्रियता बढी कि फौरन पता कराते है कि इस के पीछे कारण क्या है। इस के बाद वे भी अपने प्रतिष्ठानो को उन से भी अधिक सुविधाजनक और सुसज्जित करने मे प्रयत्नशील हो जाते है। वहा खर्च की किसी को तो परवाह ही नही है।

जिस समय हम होटल मे पहुचे, रात के दस बज चुके थे। सामान रख कर खिडकी के पास खडे होकर देखा, दूर दिखाई दे रहे गुबदो पर चादनी फिसल रही है। वाशिंगटन की सडके बिजली की रगबिरगी रोशनी मे नहा रही है। कुबेरो का देश है अमरीका। यहा की हर रात दिवाली है।

वाशिंगटन के प्रति तरह-तरह की कल्पनाए और भावनाए मेरे घुम्मकड मन मे थीं। सोचा, 'इस समय के लिए निश्चित कार्यक्रम न भी हो, बारहएक बजे तक शहर घूम कर तो आ ही सकता हू।' जल्दीजल्दी हाथमुह धो कर हल्की चाय ली। प्रभुदयाल जी कहते ही रह गए कि थकान बढेगी, आराम करना चाहिए। मैं कोट ले कर कमरे के बाहर निकल पडा।

कमरे से निकल कर सब से पहले मै ने अपने होटल का मुआयना किया। लास ऐंजेल्स से नियाग्रा तक हम जिन होटलो मे ठहरे थे, उन से यह भिन्न था। इस की कलात्मक सजावट बेजोड मानी जाती है। अमरीका के कई राष्ट्रपति और राजनीतिज्ञ इस मे ठहरते रहे है। विदेशो से आए कई सम्मानीय एव उच्च पदस्थ राजन्य और राजनीतिज्ञो को अपने यहा ठहराने का गौरव मेफ्लावर को अनेक बार मिला है।

वाशिंगटन विस्तृत है और योजनानुसार बना है। फिर भी अमरीका के अन्य शहरो से भिन्न लगा। कई मजिलो के ऊंचे मकान यहा है पर सॉनफ्रासिस्को और शिकागो की तरह आसमान को छूने की होड करने वाले नही। मौजमस्ती और तडकभडक भी उतनी नही दिखाई पडी। राजधानी होने के कारण यहा का मुख्य उद्योग है सरकार और प्रशासन। फैक्टरी, मिल या व्यापार से वाशिंगटन का इतना ही सरोकार है कि उन के मालक या प्रतिनिधि यहा अपनेअपने काम से आते हैं। २०,००,००० की आबादी की इस महानगरी मे ७,००,००० व्यक्ति ऐसे है जो स्थानीय सरकारी दफ्तरो मे काम करते है। ससार के प्राय सभी राष्ट्रो के दूतावास यहा है। प्रत्येक के अपनेअपने स्टाफ है। इस प्रकार विदेशियो की भी सख्या यहा कम नही है। इस के अलावा अमरीका के ५० प्रदेशो से निर्वाचित एव मनोनीत ससद सदस्य तथा उन के सहकारी भी यहा रहते है। तात्पर्य यह है कि उद्योगव्यापार

जैसा व्यस्त और भागदौड का वातावरण बन जाता है, वाशिंगटन मे ऐसा देखने में नही आया।

भूख लगी थी। एक रेस्त्रा मे गया, दूधरोटी ली। इतालियन रेस्त्रा था। दो लडकिया चुटकी बजावजा कर गा रही थीं और झुक कर पास बैठे लोगो के कानो तक स्वर खीच कर हट जाती थी। कभीकभी थोडी देर के लिए दर्शको की गोद मे बैठ जाती थी। सैक्सोफोन जोरजोर से बज रहा था। वहा अमरीकी अधिक थे, कुछ नीग्रो थे, इन के अलावा अन्य देशो के लोग भी। साज और आवाज का मजा लेते हुए लोग सिर हिला रहे थे। लेकिन गानाबजाना मेरी समझ मे आ नही रहा था। बीचबीच मे सामने बैठे अरब के एक शेख साहब को देख कर आनद ले रहा था। लडकी कमर लचकाती हुई जिधरजिधर जाती थी, शेख साहब की दाढी की नोक चुबक की सूई की तरह उधर ही घूम जाती थी। उन्हे देख कर मुझे जोश मलीहाबादी की एक कविता की पक्तिया 'हिलने लगी शयूख के सीने पै दाढिया, नजरे नमाजियो की उसी ओर फिर गईं' याद आई। लड़की लाल रग का रूमाल हिलाती हुई शेख साहब के पास आई और दाढी को दाएबाए हिला कर चूमने लगी। उन का शराब का गिलास उठा कर उस मे से एक सिप ले कर शेख के मुह से लगा दिया। जूठी शराब वह विभोर हो कर पीने लगे, जैसे बच्चा बोतल से दूध पीने लगता है। दूसरे लोगो के साथसाथ मुझे भी हसी आ गई। पल भर मे लडकी मेरे सामने हाजिर और गातेगाते सिसकारी भरते मेरे दूध के गिलास को उठा कर ऐसा कुछ कह गई कि सभी हसने लगे।

बाहर निकला और बस पकड़ी। मेरा खयाल था कि यूरोप तथा अमरीका के अन्य शहरो की तरह यहा भी नाइट क्लब होगे। पर वाशिंगटन मे न नाइटक्लब है और न जुए के साथ कैबरे ही। एक खास बात यह भी देखने मे आई कि अन्य आधुनिक शहरो की तरह लडकिया या महिलाए यहा रात मे अकेली घूमती नही मिली। कारण बाद मे मालूम हुआ कि आम तौर से रात को दस बजे तक लडकिया अपने घरो मे वापस आ जाती है। मन बहलाने के लिए टेलीविजन और पुस्तके है। यहा का जीवन अमरीका के अन्य शहरो की अपेक्षा शिष्ट और सयत है।

बस से घूम कर शहर का जितना भी हिस्सा देखा, अच्छा लगा। फ्रास के वरसाई की तरह यहा चौडी और सीधी सडके है, जो एक वृत्त के पास आ कर मिलती है और फिर वृत्त के चारो ओर सडके निकलती जाती है। नई दिल्ली का भी नक्शा कुछ इसी प्रकार है। यहा की सडको के बीच हरियाली की पट्टी है, जिन मे फूलो की क्यारिया है। सडको के दोनो किनारो पर ऊचे वृक्षो की कतारे है।

बस मे बगल मे एक नीग्रो बैठा था। मेरी आखे खिडकी के बाहर भागते दृश्यो को पकड रही थी। वह शायद समझ गया कि शहर घूमने निकला हूँ। सजीदगी से उस ने पूछा, "कैसा लग रहा है ?" मै ने उत्तर दिया, "अभी तो शुरू ही किया है," ढलती उमर के उस नीग्रो ने बताया कि अभी तो वाशिंगटन बन कर तैयार ही नही हो पाया है। नित्य नए मकान बन रहे है, पुराने गिराए जा रहे है। फिर उस ने पूछा, "आप भारत के है, या मिस्र के ?

मै ने उत्तर दिया, "भारत का हूँ।" अपने प्रधानमत्री के स्वास्थ्य के बारे मे उस के प्रश्न से मुझे प्रतीत हुआ कि अमेरिकन नीग्रो भी गाधीजी और नेहरूजी से स्नेह रखते है।

हमारे होटल के करीब बस आ गई थी। घडी देखी, सवा १२ बज रहे थे। जल्दीजल्दी बस से उतर कर मै कमरे मे पहुचा। देखा, प्रभुदयालजी जाग रहे थे। नई जगह और आधी रात हो गई थी, इसलिए उन को चिता होनी स्वाभाविक ही थी। "परेशानी तो नही रही ?" उन के स्नेह भरे शब्दो से मै झेप गया। इस के बाद बिस्तर पर लेटते ही सो गया।

दूसरे दिन सुबह श्री बी० के० नेहरू ने हमे चायनाश्ते पर आमत्रित किया था। श्री नेहरू

का निवास बहुत ही करीने से सजा हुआ था। उन के बगीचे को देख कर सुरुचि का परिचय मिलता है। नई दिल्ली की तरह अमरीका मे भी दूतावासो को सुविधापूर्ण शर्तो पर काफी जमीनें वहा की सरकार द्वारा दी जाती है।

श्री नेहरू बडी ही आत्मीयता से मिले। भारत और अमरीका के उद्योगव्यापार और राजनीति के पहलुओ पर बातचीत हुई। वह अमरीका के अच्छे मित्रो मे माने जाते हैं और उन की जानकारी भी काफी है। उन के व्यक्तिगत विचार थे कि हमारे यहा कुछ नेता और अखबारो को जिम्मेदारी की गहराई मे जाना चाहिए और सोचसमझ कर अमरीका की आलोचना करनी चाहिए। खेद है कि ऐसा नही हो पा रहा है अन्यथा अन्य देशो की अपेक्षा हमे कही अधिक मदद अमरीका से मिल सकती है। अमरीकी सरकार और जनता दोनो भारत के प्रति स्नेह रखती है, पर हमारी अप्रासगिक आलोचना से भ्रम फैलता है और उन की भावनाओ को ठेस पहुचती है।

अमरीका मे ड्राइवर, नौकर या रसोइया रखना बहुत ही महगा पडता है। यही नही, हमारे यहा की तरह ३० दिन और १५ घटे की ड्यूटी बजाने की तो वहा कोई कल्पना भी नही कर सकता। साधारण लोगो की बात ही क्या, अच्छे सपन्न व्यक्ति भी नौकर नही रखते। फिर भी दूतावासो को उन्हे रखना ही पडता है क्योकि उन के यहा आये दिन मेहमान आते रहते है, जिन की आवभगत करनी पडती है। हमारे दूतावास मे भी अमरीकन खानसामा और ड्राइवर थे लेकिन श्रीमती नेहरू ने स्नेहपूर्वक हमे स्वय ही भारतीय नाश्ता कराया। हलवे के साथ मटर की कचौडिया बडी ही स्वादिष्ट बनी थी। बहुत दिनो बाद इस ढग की चीजे सामने आई। मै ने तो निस्सकोच तीसरी बार माग कर खाया। मेरा विश्वास है कि खाने के मामले मे तकल्लुफ बरत कर भूखा रहना किसी प्रकार से भी उचित नहीं है।

श्री नेहरू को अगले दिन वाशिंगटन से बाहर जाना था। अतएव हमारे लिए उन्होने प्रयोजनीय व्यवस्था का निर्देश अपने सचिव को दे दिया। कम समय मे शहर को अच्छे ढग से देखने के लिए अपने सुझाव भी उन्होने हमें बताए।

शहर देखने के लिए टूरिस्ट बसे है। इन के साथ अनुभवी गाइड रहते है। चीजो के समझने मे आसानी रहती है और समय की बचत भी होती है।

वैसे टैक्सिया काफी है, पर उन का किराया बहत अधिक है और ऊपर से उन पर टिप कितना लगेगा! यह एक और समस्या है! टिप का अखड एकाधिपत्य आप को यूरोप और अमरीका मे मिलेगा। रेस्त्रा, होटल, टैक्सी जहा कही भी बिल चुकाया कि टिप साथ लगी रहती है। दस प्रति शत से २५ प्रति शत तक टिप लग जाता है। बिलो मे टिप जोड दिया जाता है, फिर भी कुछ न कुछ अलग से देना पडता है। हमारे देश मे चूकि टिप (बख्शीश) देना जरूरी नही है, इसलिए हमे अजीब सा लगता।

हम ने टूरिस्ट बस का टिकट खरीद लिया। गाइड को अपने विषय की अच्छी जानकारी थी और वह खुशमिजाज भी था। शहर के बारे मे वह जानकारी देता जा रहा था। वाशिंगटन का निर्माण योजनानुसार हुआ है। उत्तरपश्चिम, दक्षिणपश्चिम, उत्तरपूर्व और दक्षिणपूर्व—ये चार अचल हैं। सभी मे सीधी चौडी सडके है। दिल्ली, रोम, एथेस की तरह यहा प्राचीन खडहर नही मिलेगे। लदन, पेरिस और वेनिस की तरह मध्ययुगीन अवशेष भी आप यहा नही पाएंगे। हस कर उस ने कहा, "हम अतीत के वैभव और गौरव का दावा नही कर सकते, क्योकि हमारा इतिहास ही लेदे कर कुल ३०० वर्ष का है। फिर भी हमारी करुण कहानी आप लाइब्रेरी ऑफ काग्रेस मे पढ सकते है या शहर की अगणित आर्ट गैलरियो और म्यूजियमो मे देख सकते है।"

हम जानते थे कि गाइड अपना पाडित्य प्रदर्शन करने मे चूकते नही। सभी देशो मे ऐसा होता है। ऐसा न हो तो पर्यटक ऊब जाएं और थकान भी महसूस करने लगे।

प्रसग बदलने के खयाल से मैं ने पूछा, "वाशिंगटन को ही क्यो राजधानी के लिए चुना, जब कि बोस्टन, फिलाडेल्फिया, न्यूयार्क आदि शहर इस से पहले ही बस गए थे। इन में से किसी को भी राजधानी बनाया जा सकता था ?"

गाइड ने मुस्कराते हुए कहा, "आप जानते हैं, पुरानी दुनिया को छोड कर हमारे पूर्वज नई दुनिया मे नई जिंदगी की खोज मे आये थे। इसलिए नयापन के प्रति हमारे स्वभाव में रुचि है। मगर इतिहास बताता है कि जब अमरीकन गणराज्य सगठित हो गया तो सभी शहर राजधानी के लिए अपनाअपना दावा पेश करने लगे। आपसी मतभेद न बढे, इस खयाल से प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने सुझाव दिया कि राजधानी नई जगह बने। सब ने इसे मजूर किया।

गाइड ने बताया कि आज से लगभग २०० वर्ष पहले यहा दलदल थी। जगली घास की झाडियों और ऊबडखाबड जमीन को देखकर कौन कल्पना कर सकता था कि विश्व की सबसे बडी राजधानी इसी दलदली जमीन पर बनेगी।

मार्च १७९१ मे प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने इस जगह शहर बसाने का काम प्रसिद्ध फ्रेंच वास्तुशिल्पी पीयरे को सौपा। उस की देखरेख मे शहर का एक हिस्सा बन गया। कुछ राजनीतिक कारणो से लोग उस से नाराज हो गए और बाकी काम पूरा करने का भार अमरीकन इजीनियर एलकोट को दे दिया।

आज वाशिंगटन की बनावट दो प्रकार की देखने को मिलती है। मेजर पियरे का हिस्सा वरसाई की तरह है, जिस मे बागबगीचे, चौडी सडकें और मध्ययुगीन यूरोपीय भवन हैं जब कि एलकोट के वाशिंगटन मे ससद भवन, काग्रेस पुस्तकालय, उच्चन्यायलय और पेंटागन जैसी विशालकाय इमारतें है।

हम ससद भवन देखने गए। ससद सदस्य होने के कारण अमेरिकी ससद के प्रति हमारी विशेष रुचि थी। वास्तुशिल्प, सौंदर्य और सौष्ठव की दृष्टि से हमारे ससद भवन का अपना विशिष्ट स्थान है। लेकिन जहा तक विशालता का सवाल है, अमरीकी ससद विश्व मे अद्वितीय है। ६० एकड के क्षेत्रफल मे सुसज्जित उद्यान और कुजो के बीच ससद भवन बडा ही शानदार लगता है। इस के विशाल गुबद के ऊपर स्वतत्रता की मूर्ति खडी है। गुबद का वृत्त १३५ फुट और ऊचाई २८५ फुट है।

अमरीकियो की भाषा अगरेजी है। पर वे शब्दो मे खीचखीच कर अनुनासिक स्वर लगा देते है और जल्दीजल्दी बोलते है इसलिए दिक्कत हो जाती है। हमारे गाइड ने हमेशा इस बात का खयाल रखा कि वह अमरीकी अगरेजी नही, सही अगरेजी बोले।

उस ने ससद भवन के इतिहास की चर्चा करते हुए बताया कि यह स्थान एक पहाडी पर है और पास की पोटेमिक नदी से यहा की ऊचाई लगभग १०० फुट है। मेरी ओर देखते हुए उस ने कहा, "सज्जनो, विश्व मे ताजमहल बेजोड और लाजवाब है तो हमारा यह कैपिटोल भी आज के युग मे अद्वितीय है। उसे बनाया मुगल सम्राट शाहजहा ने अपनी प्रेयसी की स्मृति मे तो इसे बनाया अमरीकी जनता ने स्वाधीनता और जनतन्त्र की मर्यादा के लिए।"

सभी यात्री मेरी ओर देखने लगे कि भारत का नाम आया है, शायद मै कुछ बोलू, पर मै गाइड का मीठा व्यग्य समझ गया। मै ने कहा, 'ताजमहल और कैपिटोल दोनो ही अपनीअपनी जगह महान है। वह है प्रेयसी के प्रति प्रेम का प्रतीक और यह है जनमानस की राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति। भावना दोनो मे है, दोनो ही अपनीअपनी दृष्टि से पवित्र है।"

ससद भवन अमरीकी विधानमडल का केन्द्र है। राष्ट्र के विधान और कानून यही बनते है। सन १८०० मे ससद मे ३२ सिनेटर एव १०५ प्रतिनिधि थे। जब कि आज १०० सिनेटर

और ४३५ प्रतिनिधि अमरीका के ५० प्रदेशो और १६,००,००,००० की जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते है ।

अमरीका विभिन्न प्रदेशो का सयुक्त सघ राज्य है । शासन की क्षमता प्रेसिडेंट, काग्रेस के दोनो सदनो और सुप्रीम कोर्ट मे इस ढग से विभाजित है कि सतुलन न विगडे फिर भी यह मानना पडेगा कि अमरीका के राष्ट्रपति को शासन सबधी जितने अधिकार दिए गए है, विश्व मे शायद ही किसी जनतात्रिक राष्ट्रपति के हाथ मे इतने अधिकार हो । अमरीका के प्रत्येक स्थानीय मामलो मे स्वतत्र व्यवस्था रखते है किन्तु वाशिगटन के इस गुबद के नीचे जो भी नीति निर्धारित होती है उसी को सार्वदेशिक रूप में मानना पडता है । सेना एव परराष्ट्र नीति पर केद्र का नियत्रण है, पर हमारे देश की तरह वहा भी पुलिस, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि प्रादेशिक शासन के नियत्रण मे है । हमारी दिल्ली की तरह वाशिगटन भी किसी प्रदेश के अन्तर्गत नही है । इस के शासन सचालन का अधिकार राष्ट्रपति के हाथ मे है । प्रत्येक चौथे वर्ष जनता द्वारा उस का निर्वाचन होता है । इस प्रकार अमरीका का सर्वोच्च शासक जनता के प्रत्यक्ष समर्थन से शासन करता है । अमरीकी जनता अपने प्रेसीडेंट के प्रति जो आदरभाव रखती है, वह हमारे लिए तो निस्सदेह अनुकरणीय है । विदेशो मे मैने देखा कि स्थानीय नागरिक विदेशियो से वातचीत मे बहुत ही सावधान रहते है । शासन और शासक की आलोचना को सफाई से टाल देते है ।

ससद के गुवद की भीतरी दीवारो पर विश्व के शीर्ष कलाकारो ने जो चित्र बनाए है वे देखते बनते है । अमरीकी इतिहास से सबधित ये चित्र इतने सजीव है कि देखने वाले सैकडो वर्ष पीछे चले जाते है । अधिकाश चित्र इतावली कलाकार कोन्स्तानिनो के बनाए हुए है । ७० वर्ष की उम्र मे ३०० फुट की वृताकार नौ फुट ऊची दीवार पर अकित ये चित्र उस की प्रतिभा एव दक्षता का परिचय देते है ।

कोलबस द्वारा अमरीका की खोज से ले कर स्वतत्रता के युद्ध तक के सारे दृश्य देखते समय अमरीका का इतिहास चलचित्र की तरह आखो के सामने आ जाता है । यही अमरीका के राष्ट्रपतियों की प्रस्तर मूर्तिया भी हमने देखी । वाशिगटन लिकन विल्सन रूजवेल्ट जेफर्सन आदि की मूर्तिया बडी स्वाभाविक मुद्रा मे है ।

हम ने सिनेट और प्रतिनिधि कक्ष (हाउस आफ रिप्रेजेटेटिव्ज) देखा । हमारे ससद की राज्य सभा और लोक सभा के कक्ष की तरह इन मे अर्धवृत्ताकार रूप मे सदस्यो के बैठने के लिए व्यवस्था की गई है । अमरीकी ससद सदस्यो को, चाहे वे सरकारी दल के हो या विरोधी दल, सरकार की ओर से बडी सुविधाए दी जाती है ।

प्रत्येक सदस्य को करीब २,३२,५०० रुपए सलाना भत्ते के मिलते है । अन्य आवश्यक खर्चो के लिए पृथक रूप से सभी प्रकार की व्यवस्था है । हमारे यहा ससद सदस्यो को मिलते है सिर्फ १०,००० रुपए । वहा के प्रत्येक ससद सदस्य के पास निजी सचिव स्टेनो और सहकारी होते है । अपने निर्वाचन क्षेत्र के दौरे के लिए किसीकिसी के पास तो हैलिकोप्टर भी रहते है ।

ससद भवन के पास ही हमने प्रसिद्ध काग्रेस पुस्तकालय देखा । यह विश्व का सबसे बडा पुस्तकालय है । यहा ४,२५,००,००० से भी अधिक पुस्तके है । दुर्लभ ग्रथ और हस्तलिखित पुस्तको का विभाग अलग है । अमरीका के ऐतिहासिक दस्तावेजो को वहुत ही सभाल कर रखा गया है । यो तो इस पुस्तकालय से छात्र, ससद सदस्य, अध्यापक, वैज्ञानिक सभी लाभ उठाते है लेकिन यह जान कर आश्चर्य हुआ कि अधे भी यहा पुस्तके पढते है । उन के लिए उभरे अक्षरो की पुस्तके यहा उपलब्ध है । यही नही, विभिन्न विषयो पर भी लिखी अच्छी से अच्छी पुस्तको की टेप रिकार्डिंग करा ली गई है । कहते है कि इस पुस्तकालय की अलमारियो को एक लाइन मे खडा किया जाए तो ४०० मील लम्बी कतार हो जाएगी ।

घूमतेघूमते हम थक गए। आराम करने की जरूरत थी। भूख भी लग रही थी। हमे रेस्त्रा खोजने में कठिनाई नही हुई। ससद मे सभी कुछ है। हमने रेस्त्रा मे जा कर पहले पेट की माग पूर्ति करने की व्यवस्था की और तव आगे का कार्यक्रम निश्चित करने लगे। निश्चित यह किया गया कि वाशिगटन मे हमारा अगला कदम व्हाइट हाउस (राष्ट्रपति भवन) और पैटागन (सुरक्षा भवन) का होगा।

लाइब्रेरी मे शीर्ष कलाकारो की सगीत की रिकार्डिंग कर उन्हे भी सग्रहीत किया गया है। महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय एव अतरराष्ट्रीय घटनाओ के फोटो भी सग्रहीत है।

लाइब्रेरी के कूलिज आडिटोरियम मे ५२५ सीटें है। अत. देशविदेशो के चोटी के साहित्यकारो एव वैज्ञानिको के कार्यक्रम यहा समयसमय पर होते रहते है।

आप अपने मनचाहे कलाकार का सगीत सुनना चाहते हे ? अपने प्रिय कवि की कविता उस से ही सुनना पसद करेगे ? अपने श्रद्धेय वैज्ञानिक की गवेषणा उन्ही की जवानी सुनेंगे ? एक पत्र डाल दीजिए, उत्तर मिल जाएगा कि प्रोग्राम कव है। सीट रिजर्व करा लीजिए, केवल २५ सेट का खर्च। अमीरो के मुल्क मे किफायत मे इतनी सुविधा मेरी कल्पना के वाहर की वात थी। हमारी राष्ट्रीय सरकार भी इस प्रकार की सुविधा कर दे तो शिक्षा मे पिछडे और गरीव देश के जन साधारण का वडा उपकार हो सकता है।

अन्य कई विदेशी पर्यटक भी वहा थे। एक भारतीय दपति को भी रेस्त्रा मे देखा। वे दोनो भी हमारी तरफ देख रहे थे। हमने परस्पर का परिचय प्राप्त किया। युवक दिल्ली का था। हमारे विदेश मत्रालय की ओर से फॉरेन सर्विस की शिक्षा पाने के लिए यहा आया था। साथ मे पत्नी को भी ले आया था। एक वात ध्यान देने की है कि अपने देश मे हम उत्तर, दक्षिण, महाराष्ट्र, वगाल और पजाव की भले ही सोचते हो, पर विदेशो मे स्वत. ही हमारी ये भावनाए मिट जाती है। पतिपत्नी दोनो हम से मिल कर वहुत खुश हुए। देश के वारे मे जानकारी दी। हमे अपने घर भोजन पर आमत्रित किया। कमातेखाते सुखी भारतीय दपति को देख कर वडा सतोष हुआ।

वाशिगटन की जिंदगी मे गभीरता की छाप है। ससार के सवसे अधिक सपन्न और शक्तिशाली राष्ट्र की राजधानी होने के कारण सडको, होटलो और सरकारी दफ्तरो मे विदेशियो को अपनी राष्ट्रीय पोशाक मे देख पाना साधारण सी वात लगती है। यो तो दिल्ली की चाणक्यपुरी मे भी विदेशियो को देखा जा सकता है, पर उतने नही जितने कि यहा।

अमरीकी सैलानी तवीयत के होते है। मौजवहार और जिंदादिला उन की विशेषता है। होनोलूलू, नियाग्रा, मियामी और फ्लोरिडा मे जो उन्हे मिल सकता हे वह वाशिगटन मे नही, फिर भी अपनी राजधानी के प्रति उन्हे एक प्रकार का मोह है। वे अपन पर्यटन के प्रोग्राम मे वाशिगटन घूमना जरूर शामिल कर लेते है। हमने अमरीकी ससद भवन देखते हुए इसे लक्ष्य किया कि देश के विभिन्न भागो से आए हुए अमरीकी नागरिक भी चाव से घूम रहे थे।

नवीन राष्ट्र होने के वावजूद जीवन की गहराइयो के प्रति आम तौर मे अमरीकी भी हमारी तरह सोचते है, पर वातचीत मे वे गभीर कम दिखते है। यह उनकी विशेपता है।

दूसरे दिन हम पैटागन देखने गए। यह अमरीकी सुरक्षा का केंद्रीय दफ्तर हे। इस की विशालता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि विश्व के सवसे वडे अमरीकी ससद भवन जैसे पाचछ तो इसमे आसानी मे समा जाएगे, तव भी जगह वचेगी। न्यूयार्क की एपायर स्टेट विल्डिग विश्व की सवसे वडी इमारत है। उस मे जितने कमरे हे उस के तिगुने पैटागन मे हे। लगभग तीस हजार सैनिक और नागरिक कर्मचारी प्रति दिन यहा काम करने

आते ह । ६०० कर्मचारी तो केवल इसकी सफाई के लिए नियुक्त है ।

शहर के अन्दर पेंटागन की अलग ही दुनिया है । यहा हेलीकाप्टर के उतरने का ग्राउन्ड है और रेलवे स्टेशन भी है । बसे लगभग ६०० बार आवागमन करती है । पार्किंग की जगह इतनी काफी है जिस मे यहा के कर्मचारियो की ८३०० मोटरे एक साथ ठहर सकती है । पर्यटको की गाडियो के लिए स्थान अलग ह ।

हम यहा के सूचना विभाग मे गए, वहा हमे पेंटागन का नक्शा मिला और गाइड भी । यदि ये नही मिले तो यहा के गोरख धधे मे फस जाना मामूली सी बात ह । इस के बारे मे बडे मजेदार किस्से प्रचलित ह । किसी सर्कस से एक शेर भाग निकला । रात के अधेरे मे उस ने यहा पनाह ली । बडी खोज हुई उस की पर वह मिला ही नही । कई महीने बाद कही से भागा हुआ एक दूसरा शेर भी पैंटागन के दफ्तरो मे पहुचा । पुराने शेर ने उस का स्वागत किया । नए शेर ने पूछा 'कहो भाई भोजनपानी का यहा कैसा इतजाम ह, कही भूखे दिन न गुजारने पडते हो ?' पुराने शेर ने कहा अरे नही रे दोस्त मुझे देखो न, कैसा मोटाताजा हू । बडा आराम है जब भी भूख लगी किसी कर्नल या जनरल को दबोच लिया । इतने है यहा कि कोई इन की गिनती ही नही करता ।

इसी तरह एक दूसरा किस्सा भी है । एक पत्नी अपने पतिदेव को ढूढने यहा आई । उसे यही बच्चा हो गया । लोगो ने कहा, "आप ऐसी दशा मे यहा क्यो आई ?" युवती ने बताया कि मै इस हालत मे नही थी । तीन महीनो से ढूढ रही ह लेकिन मेरे पति नही मिले, तब तक प्रसव का समय पूरा हो गया । मेरी लाचारी थी ।

सत्य है अजीब भूलभुलैया है पेंटागन । भीतर ही भीतर मीलो का चक्कर दफ्तरो का है । लिफ्ट सीढियां एस्केलेटर दालान कमरे दरवाजे सभी मायापुरी से ह । इन्हे पार करते हुए हम तीसरी मजिल पर रक्षा सचिव के दफ्तर के सामने से गुजरे । बडा ही शानदार लगा । इस के पास ही एस्केलेटर से हम चौथी मजिल पर पहुचे । वहा स्थल सेना के अचल मे विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्र टैंक इत्यादि के माडल देखे । युद्ध सबधी विविध चित्र भी थे । इसी प्रकार नौसेना और वायु सेना के अचलो मे हमने विभिन्न प्रकार के जहाजो और वायुयानो के माडल देखे जो प्राचीनकाल से अब तक युद्धो मे काम आते रहे ह । पेंटागन से ही अमरीकी सुरक्षा विभाग का सचालन होता है जिसका वार्षिक बजट ३४००० करोड रुपए है अर्थात प्रति व्यक्ति औसत १८०० रुपए जबकि हमारे भारत का वार्षिक सुरक्षा बजट ८५० करोड है जो करीब १८ रुपए प्रति व्यक्ति होता है ।

युद्ध हमारी रुचि का विषय नही ह । इसलिए इस की बारीकिया समझ मे नही आई । मगर इतना जरूर लगा कि इस विषय के विद्यार्थियो के लिए यह स्थान ज्ञानपीठ है ।

पैंटागन का सैनिक दफ्तर देखने से हो सकता है कि हमारे जैसो का जी उचटने लगे । अमरीकी सैनिक विभाग शायद अपनी इस कमी को समझता है । यहा छ काफेटेरिया ह जिन मे प्रति दिन ३० ००० लोग भोजन करते ह । दो बडे रेस्तरा ह और नौ बार है, जहा थके दिमाग और सूखते कठ को तर करने की सुविधा है । इस के अलावा हजामत बनवाने और कपडे धुलवाने से ले कर आप की साज सज्जा के लिए जवाहरात की दुकाने भी ह । पुस्तके फूल तथा अन्य हर प्रकार की, अपनी पसद की दुकाने यहा मिल जाएगी । यही नही, रेलवे और हवाई जहाज की बुकिंग भी यहा करा सकते ह । पोस्ट आफिस बैंक बीमा कपनियो के दफ्तर आदि तो मामूली बात है ।

चौथाई पैंटागन देखने मे ही हमे बहुत समय लग गया । थक भी गए, पर साथियो की राय थी कि धनकुबेरो के देश की टकसाल को तो देख ही लिया जाए । एक बज चुका था दो बजे तक खुली रहती ह । अतएव ब्यूरो आफ एग्रेविंग एड प्रिटेज जा पहुंचे । अमरीका बृहद

देश है। सब कुछ यहा वृहद पैमाने पर होता है। दुकान, मकान, दान, मान, शान सभी वृहद ! ब्यूरो मे हम ने अमरीकी नोटो के छपने का जो सिलसिला देखा तो चकित रह गए। हफ्ते मे पाच दिन काम होता है। रोजाना तीन करोड डालर (चौदह करोड रुपए) के नोट तैयार होकर निकलते है। इन मे दो तिहाई तो एक डालर वाले नोट होते है। शेष अन्य जिन मे १०,००० डालर वाले नोट भी है। दक्षता इतनी है कि छपे हुए नोटो मे मुश्किल से एक प्रति शत रद्द किए जाते है। इस मे एक म्युजियम भी है जहा हम ने १८६१ से अब तक के सरकारी बांड और स्टैंप देखे। सन १९३५ का छपा एक लाख डालर का एक नोट भी देखा।

नेचुरल हिस्ट्री म्यूजियम देखने की मेरी बडी इच्छा थी। इसे नेशनल म्युजियम भी कहते है। कला और उद्योग सबधी नाना प्रकार की चीजे यहा रखी हुई ह। शिकागो मे हम इस प्रकार का म्युजियम देख चुके थे, लेकिन वाशिंगटन का म्युजियम उस से बहुत बडा है।

इस सग्रहालय मे लगभग दो करोड नमूने है। नाना प्रकार के पशुओ पक्षियो और जलचरो की खालो मे भूसे भर कर स्वाभाविक वातावरण मे रखा गया है। प्रागैतिहासिक युग के जीव भी स्वाभाविक आकार मे रखे हुए है। दैत्याकार दिनासूर के माडलो को देख कर भय और कपकपी सी आ जाती है। बहुत दिनो पहले राहुलजी की पुस्तक 'विस्मृति के गर्भ मे' इन के बारे मे पढा था—उस समय ऐसा लगा था कि यह केवल किवदती ह। लेकिन आज बहुत वर्षो बाद इन का सभावित आकार और रूप प्रत्यक्ष देखने का मौका मिला। हमारे यहा के हाथी और ऊंट तो इन के सामने बहुत छोटे है। जीव या प्राणी का विकास विभिन्न स्तरो पर किस प्रकार होता है, उस के क्रम का बडा अच्छा दिग्दर्शन यहा होता है।

खनिज और जवाहरातो का कक्ष भी हमने देखा। फ्रासीसी राजघराने की शान विश्व प्रसिद्ध हीरा 'ब्लूहोप' रखा हुआ है। नाना प्रकार के नीलम, पन्ने, पुखराज और हीरे छोटेबडे सभी आकारप्रकार के रखे थे। ये कहा से मिले, कैसे मिले, क्या वजन है, कितनी कीमत लगी और क्या इतिहास है, सभी विवरण लिखे हुए है।

अमरीकी आदिवासियो के कक्ष में हम ने अमरीका के इतिहास की लगभग १० ००० वर्ष पुरानी झाकी देखी। अमरीका के इन आदिवासियो को आज भी कोलबस के भ्रम के कारण भारतीय कहा जाता है। जो भी हो इन के जीवन के तौरतरीको मे भारतीय छाया मुझे लगी। यह एक गवेषणा का विषय है। कोलबस ने अमरीका की धरती पर पैर रखा और लाल 'भारतीय' जब उस से मिलने आए उस समय का दृश्य माडल के रूप मे यहा रखा है। इसी प्रकार उस समय ये कैसे रहते थे, उन की सामाजिक व्यवस्था और रीतिया कैसी थी, इस के भी माडल वहा है।

इन्हे देख कर यह लगता है कि यूरोप के विभिन्न देशो से शाति के दूत महात्मा ईसा का पवित्र सदेश पहुचाने के नाम पर धर्म प्रचारको ने पिछली तीन शताब्दियो मे जो कुछ भी यहा किया वह बहुत ही जघन्य और घृणित था। इस सिलसिले मे मुझे अपने देश का प्राचीन इतिहास याद आया। हमारे यहा भी भील और किरात रहे है। अगस्त्य और राम ने सभ्यता और संस्कृति के नाम पर उन्हे लूटा नही था, उन्हे उखाड नही फेका था। वानर भालू जटायु आदि वनवासी जातियों का सहयोग उन्हे तलवार की नोक से नही हृदय की विशालता और उदारता से ही मिला था। आज भी हमारे देश मे नागा, मिजो और मथालो मे जिस रूप मे मिशनरियो द्वारा धर्मप्रचार हो रहा है उसे केवल परोपकार की भावना नही कहा जा सकता।

लदन, पेरिस और वाशिंगटन ... के बड़े म्यूजियम और आर्ट गैलेरीज है कि अगर उन को ध्यान से देखा जाए तो ... गे। हम ने वहा यह भी देखा कि किसीकिसी तसवीर या मूर्ति को तन्मय हो ... रहते है। लेकिन, ये क... की

वाते है। हमारे जैसे पर्यटक तो एक साधारण सा चक्कर सव कमरो का लगा लेते है। यहा तक कि विश्व प्रसिद्ध कृति 'मोनालीसा' या 'अतिम भोज' को भी कुछ समय तक इसलिए देखते रहे कि उन का मूल्य एकडेढ करोड सुन रखा था। वाशिंगटन की नेशनल आर्ट गैलेरी भी विश्व के गिनेचुने सग्रहालयो मे है। आप इस की विशालता का अनुमान इस से ही लगा सकते है कि यह डेढ लाख फुट के क्षेत्रफल मे है और इस मे २७,००० तसवीरे या मूर्तिया है, जिन मे से कुछ तो दुष्प्राप्य और इतनी कीमती है कि सिवा राज्य सरकारो के सर्वसाधारण उन को खरीदने की सोच भी नही सकते। हम ने वहा नाना प्रकार के पत्थर और व्रोज की पुरानी भारतीय मूर्तियो के अलावा १७वी और १८वी शताब्दी के मुगल और राजपूत कला के चित्र भी काफी तादाद मे देखे।

यो तो वाशिंगटन मे वहुत से स्मारक हैं, लेकिन जार्ज वाशिंगटन एव अब्राहम लिंकन के स्मारक सवसे अधिक जनप्रिय एव प्रसिद्ध है। वाशिंगटन स्मारक सुवह नौ वजे से शाम को पाच वजे तक और लिंकन स्मारक रात को नौ बजे तक खुला रहता है। हम लिंकन का स्मारक देखने गए।

शहर के दक्षिण मे वहती हुई पोटीमेक नदी के किनारे लिंकन का स्मारक वहुत ही सौम्य है। यहा की अन्य इमारतो की तरह यह वहुत वडा नही है। ३६ खभो पर इस की छत है। स्मारक के चारो ओर सुदर उद्यान है। मुख्य कक्ष मे पहुचने के लिए ५६ सीढिया है। लिंकन के समय मे सयुक्त राज्य अमेरिका मे ३६ राज्य थे, इसलिए इस के ३६ खभे है। इसी प्रकार लिंकन की ५६ वर्ष की आयु के प्रत्येक वर्ष के लिए सीढी का एकएक कदम है।

हम सीढियो पर से स्मारक के अन्दर कक्ष में गए। लिंकन की तसवीरे पहले भी देखी थी। लेकिन उन की मूर्ति इतनी सजीव होगी इस की आशा न थी। मानवता के कलक दास प्रथा को अमरीका से मिटा देने का प्रयास ही उन का काल वन गया। गोली मार कर उन की हत्या कर दी गई। हमारे यहा गाधी जी हत्या भी तो ऐसे ही एक कारण से हुई थी।अमरीकन नीग्रो को समान अधिकार दिलाने के प्रयास मे अभी हाल ही मे राष्ट्रपति कैनेडी को भी अपने प्राणो की आहुति देनी पडी। मै सीढियो से उतरता हुआ सोच रहा था, 'मानवता को सही मार्ग दिखाने के लिए अभी और कितने लिंकन, गाधी और कैनेडी की आहुतिया देनी होगी।'

वाशिंगटन के अखबारो मे संसद की जितनी, जैसी चर्चा होती है उसे देख कर लगता है कि यहा की आम जनता का आकर्षण राजनीति के प्रति अधिक नही है।

दैनिक समाचार पत्र वडे साइज के १६ से १०० पेज के होते है, जिन मे तीन चोथाई मे तो विज्ञापन और सिनेमाथिएटर आदि के प्रोग्राम रहते है—वाकी चोथाई मे स्थानीय समाचार तथा अन्य आवश्यक बाते। भारत के वारे मे चर्चा तो वहुत ही कम देखने को मिलती है।

यहा के गिरजो मे जैसी भीड हुआ करती है, उसे देख कर ताज्जुब होता है कि मौजवहारो मे विश्वास करने वाले अमरीकन धर्मप्राण भी होते हैं। राजधानी मे ५०० से भी अधिक गिरजे है, जिन मे ६० विभिन्न पथो के ईसाई नियमित रूप से आते रहते हैं। इन के अलावा यहूदियो के उपासना गृह भी कई है। इन गिरजो मे से कई के पास वहुत वडी सपत्ति है, जिस मे से अरवो रुपए सालाना विश्व के विभिन्न भागो मे ईसाई धर्म के प्रचारप्रसार के लिए खर्च होते है।

यहा एक मसजिद भी है। इस की तारीफ हम ने सुन रखी थी। अतएव, देखने गए। हमारे यहा की मसजिदो से यह विलकुल ही दूसरे ढग की है। न मेहराबदार बुलद दरवाजे है और न गुवद। हा, एक मीनार जरूर है। राजधानी की यह मसजिद तमाम अमरीकन मुस्लिमो का उपासना गृह है। मुसलमानी धर्म और सस्कृति का अध्ययन केंद्र भी।

विदेशो के वारे मे भ्रात धारणाए तभी टूटती है जब वहा जा कर वस्तुस्थिति से

साक्षात्कार हो। विदेशी, सिवा अगरेजो के, हमारे देश के बारे मे यह धारणा किए बैठे है कि भारत मे केवल हिंदू ही है, मुसलमान स्वय चले गए और जो थे, उन्हे हटा दिया गया है। ठीक इसी तरह हम भी साधारणत यह समझते है कि यूरोप और अमरीका मे केवल ईसाई है, अन्य मतावलबी शायद ही हो। मगर बात ऐसी नही है। यूरोप मे खास तौर से वलगारिया, अलबानिया, यूनान, यूगोस्लाविया आदि बलकान राज्यो मे तुर्की और दक्षिणी रूस मे मुस्लिम काफी-सख्या मे है। अमरीका मे भी इस्लाम का प्रसार बढ रहा है। काले अमरीकन विशेष रूप से इस्लाम की ओर आकर्षित हो रहे है।

एक नीग्रो अमरीकन ने मुझे शायद मिस्र का समझ लिया। बड़े शाइस्ता ढग से अभिवादन किया, 'अस्लाम अलैकुम'। बडी साफ जुबान और आवाज थी।

'वालैकुम अस्लाम,' कह कर मै मुसकारया। उस ने मुझे मिस्र का समझा था, पर मै ने बता दिया कि भारत से आया हू। आगे न उस ने पूछा और न मुझे बताने का मौका ही मिला कि मै किस धर्म को मानता हू। युवक ने बडे स्नेह और जिज्ञासा से भारतीय मुस्लिमो के प्रति सहानुभूति प्रकट की। उस की बातचीत से पता चला कि या तो पाकिस्तानी प्रचार के कारण या हमारी सरकार के प्रचार विभाग की शिथिलता के कारण हमारे देश की धर्मनिरपेक्ष नीति और मुसलमानो की सही स्थिति का परिचय साधारण अमरीकी जनता तक नही पहुच पाया है।

लास ऐंजेल्स और शिकागो मे मैं ने ब्लैक मुस्लिम आदोलन के बारे मे सुना था। यहा मेरा कौतूहल जाग उठा। मै ने पूछा "यहा आप लोगो की कितनी सख्या होगी ?" उस ने बड़े गौर से मुझे देखते हुए कहा, "ठीक नही बता सकता, पर यह जानता हू कि हमारी जमायत बढ रही है और अब रगीन (नीग्रो) अमरीकन यह महसूस कर रहे है कि पाक रसूल के दामन के सहारे ही हम अमरीका मे हक और इज्जत पा सकते है। अगर इसराइल और पाकिस्तान बन सकते हैं तो क्या करोडो की तादाद मे यहा बसने वाली हमारी कौम अपने लिए अलग एक मुल्क नही कायम कर सकेगी ?"

उस की आखे चमक उठी। मै स्तब्ध था। हिंदुस्तान को भी इसी मनोवृत्ति ने गहरी चोट पहचाई है। सोचने लगा, एक जमाना था, जब नीग्रो को गोरे जरा सी गलती पर जीतेजी जला देते थे, सूली पर चढा देते थे, नाना प्रकार की यातनाए देते थे। कही उसी कु क्लक्स क्लान आदोलन की प्रतिक्रिया 'ब्लैक मुस्लिम' सप्रदाय तो नही है।

उस ने मुझे मसजिद का भीतरी हिस्सा बडे चाव से दिखाया। भारतीय मसजिदो मे जो बारीक कारीगरी है, वह यहा नही है, मगर तुर्की, ईरानी शैली काफी सफाई से उभरी नजर आती है। ससार के विभिन्न मुस्लिम देशो से भेजी गई खूबसूरत, नायाब चीजे बडे करीने से रखी हुई थी। छतो से लटकते ईरानी झाडफानूस, मिस्र से भेजे गए गलीचे और ईरानी कालीन, दीवालो पर बैठाए गए तुर्की टाइल बडे आकर्षक लग रहे थे।

नमाज का वक्त था। अजान सुनाई पडी, पर मुअज्जिन नजर नही आया। टेप रिकार्ड से यह काम चला लिया जाता है। कुछ ताज्जुब सा हुआ कि खुदा की राह पर चलने के लिए इनसान नही, मशीन आवाज लगाती है।

सुना था कि यहा एक बौद्ध विहार भी है। पता नही चला, गाइड बुक मे या नक्शे मे इस का कोई उल्लेख नही मिला। एक बात पर विचार गया कि बातबात मे धर्म की चर्चा करने वाले हिंदुओ का एक छोटा सा मदिर तक यहा नही है। लदन मे बिडला परिवार के प्रयास से यह कमी दूर हो गई है। आज वहा शाति और स्वच्छन्दता से हिंदू अपने ढग से उपासना कर सकते है। ताज्जुब इस बात का है कि हमारे देश मे टीकाचदन या रेशमी गेरूवाधारी बडेबडे मठाधीश-महत यह नही सोचते कि उन्हे उत्तराधिकार मे अतुल धनारशि इसलिए नही मिली है कि वे केवल अपनी मौजशौक मे ही उसे खर्च करे, बल्कि उनका तो वास्तविक दायित्व है

उस शिक्षा और सम्कृति के प्रचारप्रसार का जिसे भारत के ऋषि-मुनि, या मनीषियो ओर आचार्यो ने मानव कल्याण के लिए रूपायित किया था। हम स्वामी विवेकानद का सिर्फ हवाला देते है खुद उस मार्ग पर चलते तो शायद विश्व के कोनेकोने मे भारतीय सस्कृति के प्रतीक के रूप मे अनेको मदिर बन जाते ओर ये हमारे सास्कृतिक केन्द्र होते।

हमारी यह कमी वाशिगटन मे बहुत खटकी। मुझे बडी ग्लानि हुई कि म्लेच्छ समझे जाने वाले अमरीकनो के धन से बेलूर मे रामकृष्ण का मदिर बना। भक्ष्याभक्ष्य का विचार न रखने वाले जापानियो ने काशी मे बोद्ध विहार ओर मदिर बनवा दिए, पर धर्म के नाम पर ध्वजा उठाने वालो का एक भी मदिर न टोकियो मे मिला न वाशिगटन मे। सेकडो की सख्या मे भारतीय इन जगहो पर जाते है, व्यापार-व्यवसाय बढाते है, पर किसी ने यह नही सोचा कि उपासना का एक स्थान तो बने यहा।

सगमरमर के बने तीन स्मारको के लिए वाशिगटन विख्यात है। तीनो ही अमरीका के तीन महान राष्ट्रपतियो वाशिगटन लिकन और जैफर्सन की स्मृति मे बनाए गए है। लिकन स्मारक के पूर्व की ओर वाशिगटन मोनूमेट है। दिल्ली के लिए लाल किला, जामा मस्जिद, कुतुब मीनार और बनारस के लिए घाट प्रतीक है उसी प्रकार यह स्मारक राजधानी का प्रतीक है।

वाशिगटन मोनूमेट मीनार जेसा है, पर इस मे कुतुब की तरह मजिलो के बरामदे बाहर निकले नही है। सिरे पर यह तिकोना नुकीला सा है। दूर से बहुत कुछ चौकोर चिकनी पेसिल जैसी शक्ल का लगता है। हरियाली के बीच सगमरमर का बना यह मीनार बहुत सुदर लगता है। इस की ऊचाई ५५५ फीट है। सिरे पर खिडकिया है। ऊपर चढने के लिए ८०० सीढियाँ है और एलीवेटर भी है। नीचे दीवार १५ फुट मोटी है और ज्योज्यो ऊपर उठती है, पतली होती जाती है। बिलकुल ऊपर तो केवल १५ इच ही की रह जाती है। मीनार के ऊपर खिडकियो से राजधानी का दृश्य बडा मनोरम लगता है।

सुबह का समय था। वाशिगटन पर धूप खेल रही थी। शहर को देखता हुआ मै बारबार यही सोचता था कि यदि वाशिगटन न होता तो आज का अमरीका कहा होता। स्वय ही उत्तर मिला कि वाशिगटन केवल व्यक्ति विशेष नही था, बल्कि वीरता, कर्मठता और धैर्य का प्रतीक था।

अरब खरब की नगरी

न्यूयार्क

वाशिंगटन अमरीका की नई दिल्ली है तो न्यूयार्क को कलकत्ता या बबई कहा जा सकता है। जनसख्या की दृष्टि से आज से कुछ ही वर्ष पहले तक यह विश्व का सब से बडा नगर कहलाता था, पर अब टोकियो को यह गौरव प्राप्त है। फिर भी वैभवविलास और व्यापारव्यवसाय मे यह बेजोड है। हमारे यहा लदन को विश्व व्यापार की एक बडी मडी मानते है लेकिन न्यूयार्क के व्यापारिक महत्त्व का अदाज इसी से लग जाता है कि जहा केवल वाल स्ट्रीट मे लेनदेन का जितना सौदा होता है उतना सारे विश्व के बाजारो में जोड कर भी नही हो पाता। सौ दोसौ करोड के सौदे तो यहा कई बार हो जाया करते है।

न्यूयार्क का इतिहास केवल ३०० वर्ष का ही है। १७वी शताब्दी मे जब लदन, पेरिस, वियना पेट्रोग्राड विश्व की राजनीति के सूत्रधार थे उस समय न्यूयार्क, नई दुनिया मे छोटेछोटे टापुओ पर बसी हुई बस्तियो का, हडसन नदी के मुहाने पर एक छोटा सा बदरगाह था। यूरोप से तैयार माल आता था और यहा से कच्चा माल जाता था। माल के साथ रोजी की खोज मे यूरोप मे विभिन्न देशो के लोग भी यही उतरते थे। इन मे बहुत से ऐसे भी थे जो किसी न किसी कारण से स्वदेश छोड यहा भाग आए थे। सन १७५० मे इस की आबादी १०,००० थी, जो सन १८७० मे बढ कर १५ लाख हो गई और आज तो इस की जनसंख्या ८० लाख है। इस मे ११ लाख नीग्रो है और साढे छ लाख दक्षिणी अमरीका के लोग है। विभिन्न देशो मे यहा बसे हुए लोगो की सख्या भी काफी है। एशियाई लोगो मे कुछ चीनी तो जरूर दिखाई पडे जो स्थाई रूप से यहा बस गए है, पर अन्य जातिया देखने मे कम आई।

आम तौर से अमरीका भ्रमण करने के लिए यात्री यूरोप से न्यूयार्क जाते है, वहा से न्यूयार्क शिकागो देखते हुए सुदूर पश्चिम की ओर बढते हुए कैलिफोर्निया। हम ने ठीक इस के विपरीत ढग से यात्रा की थी। हम भारत से पूर्व की ओर बढे। हागकाग, जापान, हवाई द्वीपपुज होते हुए अमरीका के पश्चिमी प्रदेश कैलिफोर्निया पहुचे और वहा से नियाग्रा, शिकागो और न्यूयार्क देखते हुए अत मे न्यूयार्क। इस से एक लाभ तो यह हुआ कि न्यूयार्क के वैभव और वातावरण ने हमे अभिभूत नही किया, क्योकि अब तक यात्रा मे हम अमरीकन जीवन के कई पहलुओ मे बहुत कुछ परिचित हो चुके थे। फिर भी यह मानना पडता है कि न्यूयार्क अपने मे बेजोड है, हर माने मे, हर बात मे, चाहे वह अच्छी हो या बुरी।

जिन दिनो हम न्यूयार्क पहुचे, वहा विश्व मेला लगा हुआ था। दुनिया के हर कोने से

देखने के लिए लोग आ रहे थे । वहुत बडी सख्या मे वडेवडे होटल मोटल होते हुए भी स्थान मिलने मे दिक्कत हो रही थी । वाशिगटन मे हमे इस की पूर्व सूचना मिल चुकी थी ।

अमरीका मे अब तक हमारी यात्रा हवाई जहाज से ही हुई थी । किन्तु इस से हमें संतोष नही था । अमरीकन शहरो के वाहर देहात कैसे लगते है ? वहा का जनजीवन कैसा है ? जमीन परती है या आबाद ? ये सब देखने की वडी इच्छा थी । इसी लिए हम ने वाशिगटन से न्यूयार्क की यात्रा 'ग्रेहाउड वस' से की ।

ग्रेहाउड विश्व की सब से वड़ी सगठित ट्रासपोर्ट कपनी हे । हमे बताया गया कि इस कपनी के पास २५० करोड रुपये की तो केवल वसे ही हैं । वार्षिक आय ३० करोड रुपये है । समय की पावदी ऐसी है कि इन की पहुच या रवानगी को देख कर लोग अपनी घडी मिला लेते है । निश्चित समय पर स्टापेजो पर पहुचना ओर छूटना यन्त्रवत चराता है । अमरीका मे हवाई जहाज, हेलीकाप्टर, ट्रेने और निजी मोटरे अनगिनत है, फिर भी लवे सफर के लिए प्रति १५ मिनट पर 'ग्रेहाउड' की सर्विस हे । इस से पता चलता है कि ग्रेहाउड कितनी लोकप्रिय है ।

हमारे देश के अधिकाश राज्यो मे वस सेवा स्थानीय सरकारो के हाथ में है, जिन मे बडीवडी पूजी लगी हुई है । विदेशो के लोग जब इन मे बैठ कर सफर करते होंगे तो हमारे प्रति और हमारी सरकार के प्रति कैसी धारणा ले कर अपने देश लोटते होंगे ! मुझे एक घटना याद आती है । सन १९६२ की वात है । मैं दिल्ली से वस द्वारा हिसार जा रहा था । निश्चित सख्या से भी अधिक यात्री वस मे थे । छत पर भी सवारियो को बैठाया गया था । सीटो के नीचे मालअसवाव, वोरेथैले ! अजीब घुटन महसूस हो रही थी । ड्राइवर और कडक्टर समय का ध्यान न रख और सवारी लादने के फेर मे वीड़ी फूक रहे थे । शोरशरावा मचा, गाडी खुली । रोहतक मे एक सवारी के साथ तीन बकरिया भी चढी । रास्ते भर वे बस को गदा करती रहीं ओर मेमे की रट लगाती रहीं । न कही चेकर का पता, न इंसपेक्टर का । पुलिस वाले आम तोर पर इन सब से मिले हुए होते हैं ।

वाशिगटन से कोई दस वारह मील पहुचे होगे कि हम ने एक जगह हजारो पुरानी मोटरकारो को एकदूसरे के ऊपर रखी हुई देखा । मोटरे टूटीफूटी हो... तो समझ जाता कि कबाडखाना है, पर देखने मे यह आया कि गाडिया साधारणतया अ... थी । कुछ तो केवल तीनचार वर्ष पुरानी । पूछने पर पता चला कि यह मोटरों का कब्रिस्त... । आज तक तो हम यही जानते थे कि मुर्दो का कब्रिस्तान हुआ करता है । कौतूहल वढा । ...छा तो पता चला कि मामूली खरावी की वजह से या माडल पुराना होने पर यहा ला ... ोग अपनी गाडियो को छोड देते हैं । मजदूरी इतनी ज्यादा लगती हे कि तीनचार वर्ष पुरानी मोटर को मरम्मत करने के वजाए नई खरीद लेते है । मोटरनिर्माता या लोहे के कारखाने वाले वडेवडे ट्रको या ट्रेलरो मे उन्हे एकदूसरे पर लाद अपने कारखानो मे ले जा कर गला देते हैं । मैंने प्रभुदयालजी से कहा कि यदि हमे यहा से एकएक मोटर भारत ले जाने की इजाजत अपनी सरकार से मिल जाती है तो सारे विश्वभ्रमण का खर्च आसानी से निकल जाता । वाशिगटन से जिस बस में हम रवाना हुए उस मे रामकुमारजी को जगह नही मिल पाई थी । इसलिए न्यूयार्क के बस पडाव पर हम उन की प्रतीक्षा मे रुके रहे । ठीक १५ मिनट बाद वे दूसरी वस से उतरे । इन १५ मिनटो मे हम ने जो हुजूम वहा देखा, वह हमारे लिए एक नया अनुभव था ।

इसके पहले विश्व के प्राय सभी देशो की यात्रा कर चुका था । लदन, पेरिस, वियना, स्टॉकहोम, बर्लिन, रोम, मास्को, टोकियो आदि देख चुका था । अमरीका के वडे शहरो मे

लॉस एंजिल्स,सानफ्रासिस्को और शिकागो भी इस यात्रा मे मैं ने देख लिया था । लेकिन यहा आ कर ऐसा लगा कि जनसमुद्र मे मानो हम खो गए हो । अमरीका के हर हिस्से से वसे आ रही थी और जा रही थी । इन के ठहरने के लिए तीन मजिलो का एक विशाल स्टेशन था । हम ने अपना कुछ सामान तो स्वय ही उठा लिया और कुछ एक गोरे मजदूर को दे दिया । सामान टैक्सी मे रखे जाने के वाद उसे जव एक डालर (साढे सात रुपये) दिया तो वह वड़वडाने लगा । आधा डालर और दे कर हम ने अपना पिंड छुडाया । हमारे यहा तो इतने सामान के वारह आने देने पर मजदूर खुश हो जाते है । हमे पता चला कि यहा स्टेशनो के मजदूर जिन्हे अपने यहां कुली कहते है, प्रति दिन लगभग सौ सवासौ की आमदनी कर लेते है । मजदूरी इतनी ज्यादा है कि लोग सफर मे सामान कम रखते है ।

वाशिंगटन से ही हमारे लिए न्यूयार्क के हिल्टन होटल मे आवास की व्यवस्था करा दी गई थी । हिल्टन को विश्व का होटल किंग कहते है । उचित खर्च मे इन होटलो मे सब तरह की सुविधाए मिल जाती है । भारत सरकार भी इन के साझे मे कलकत्ता, ववई और दिल्ली में होटल खोलने की बात कर रही है ।

न्यूयार्क मे हमारा कार्यक्रम छ. दिन तक ठहरने का था । इसी बीच वहा विश्व मेला भी देख लेना था । गाइड वुक देखने पर ऐसा लगा कि यदि हम रात-दिन मोटर मे घूमते रहे तो भी इस महानगर को पूरी तरह से इन छ दिनो मे नही देख सकेगे । मुझे उन अमरीकन यात्रियों की याद आ गई जो हवाई जहाज से ववई उतरते है, रात मे ताज होटल मे खाना खाते हैं, दूसरे दिन सुबह हवाई जहाज से दिल्ली पहुचते है । कुतुबमीनार, हुमायू का मकवरा, राजघाट और चादनी चौक घूम कर उसी दिन शाम को आगरा जा कर ताजमहल को चादनी रात मे देखते है और सुवह हवाई जहाज से ही वाराणसी के घाट देख कर उसी दिन दूसरे जहाज से कलकत्ता पहुंच जाते हैं । कलकत्ता मे कालीघाट और नीमतल्ला के स्मशान के फोटो ले कर सारे भारत की यात्रा पूरी कर लेते है । अमरीका की हमारी यात्रा अब तक वहुत कुछ इसी तरीके की रही । भारत सरकार ने जितनी विदेशी मुद्रा हमे दी थी उस से अधिक पाना संभव भी न था । फिर भी हम जहा कही भी गए, हमे अपने व्यापारिक सबधो के कारण उन के देश से परिचित होने में काफी मदद मिली । भारतीय दूतावास का भी सहयोग हमे हर प्रकार से मिला जिस से हम अमरीका में उद्योगधधो के विकास के अलावा वहा के जनजीवन की जानकारी प्राप्त कर सके ।

न्यूयार्क मे भारतीय टी वोर्ड की एक शाखा है । हमारे दूतावास के अतर्गत वाणिज्यव्यापार विभाग के सचिव भी यहा रहते है । शहर देखने और उद्योगव्यापार सबधी विविध वातो को जानने की हर तरह की सुविधा इन से हमे मिली । इस के अलावा कलकत्ता के हमारे मित्र वी० पी० खेतान से भी यहा भेट हो गई । उन के सुपुत्र भी उन दिनो किसी स्थानीय व्यापारी फर्म मे काम कर रहे थे एव सपत्नीक रहते थे । उन की पत्नी मेरे मित्र की पुत्री है । उन्होने हमे कई प्रकार की भारतीय मिठाइया और अचारमुरव्वे भेजे । सुदूर विदेश मे स्नेह और श्रद्धा भरा 'ताऊजी' शव्द सुनने मे अच्छा लगा ।

न्यूयार्क के भारतीय वाणिज्य कौंसिल के सचिव ने बैक आफ अमरीका के लिए कार्यक्रम निश्चित कर रखा था । यह विश्व का सवसे वडा वैक है । इस की कुल कार्यवाहक पूजी ११,००० करोड़ है जो हमारे स्टेट वैक तथा सारे निजी वैको की कुल पूजी से चौगुनी है । वयालीस मजिल के निजी शानदार भवन मे वैक का प्रधान कार्यालय है । जिस फुरती के साथ काम हो रहा था उसे देख कर आश्चर्य हुआ । अपने देश के वडे से वडे वैको मे भुगतान के लिए रुकना पडता है । लोग बेंचों पर सोते रहते हैं या हथेली पर अगूठे से खैनी को मसलमसल कर समय विताने की चेष्टा करते है । इस वैक के विभिन्न भागो को देखा, सभी जगह शाति, स्वच्छता और यत्नवत कार्य ।

हमे अमरीका की अर्थव्यवस्था के बारे मे समझना था। बैंक के प्रेसिडेंट ने अपने यहा के ऊचे अफसरो के साथ हमे कॉफी पिलाई और इस विषय पर चर्चा होती रही। इस के बाद वे हमे बैंक के एक पृथक कक्ष मे ले गए। यह उनका रिसर्च चैम्बर था। यहा न केवल अमरीका, बल्कि विश्व के सब छोटेबडे देशो की वित्तीय सस्थाओ, वाणिज्यव्यापार आदि के सबध मे सारे आंकडे उपलब्ध थे। उनके अलगअलग साराश पट थे, जो पृष्ठो की तरह खम्भे पर लगे थे। जिस तरह हम पुस्तक के पृष्ठो को उलटते है, ठीक उसी तरह आवश्यकतानुसार उन्हे उलट कर अपने विषय को ढूढ निकालने मे कठिनाई नही होती। बैको ने इसी विभाग के लिए कई विशेषज्ञ रखे है जो वित्तीय गवेषणा मे लगे रहते है और इस विभाग के जरिए आधुनिकतम जानकारी देते रहते है। रिसर्च कक्ष मे हमे करीब डेढ घटा लगा। अनेक प्रश्न किए जिनके उत्तर हमे विभाग से सतोषजनक मिले।

उनके रिकार्ड विभाग से हमे जो सूचनाए मिली वे जनसाधारण को तो यूटोपिया के बजट अथवा अलीबाबा का 'खुलजासमसम' लगेगा, पर वास्तविकता यह है कि ये प्रामाणिक और तथ्यपूर्ण है। यहा के दो जीवन बीमा निगम मेट्रोपोलिटन और प्रूडेंशियल की कार्यवाहक पूजी क्रमश १६,००० ओर १५,५०० करोड रुपयो की है जब कि हमारे देश की सारे बीमा कपनियो को मिला कर राष्ट्रीयकरण करने पर जो जीवन बीमा निगम बना है उस की केवल ६५० करोड की है।

हमारे देश की तरह अमरीका मे टेलीफोन ओर रेले सरकारी क्षेत्र की नही, बल्कि निजी क्षेत्र मे है। इन मे आपस मे होड रहती है कि कौन कितनी अधिक सुविधा अपने ग्राहको को देती है। इन कपनियो की आर्थिक दशा के बारे मे जानकर चकित हो जाना पडता है। अकेली अमरीकन टेलीफोन कपनी की पूजी लगभग ८,००० करोड रुपए की है। उन के वार्षिक बिल दो खरब ३० अरब रुपए (२३,००० करोड रुपए) के बनते है। इन का शुद्ध लाभ १,२०० करोड रुपए है। केवल न्यूयार्क शहर की जो पेसिफिक गेस कपनी है, उसे गैस के बिलो से २,५०० करोड रुपए वार्षिक मिलते हैं ओर ७५ करोड का वार्षिक लाभ होता है। इस मे अदाज लगाया जा सकता है कि वहा ओसतन प्रति व्यक्ति २५० रुपए मासिक तो केवल गैस पर खर्च करता है।

जनरल मोटर्स कारपोरेशन जिन की शेवरलेट गाड़िया भारत मे पहले आयात होती रही हैं, इस की सालाना बिक्री १२७ अरब ५० करोड की ओर मुनाफा १,३०० करोड का है। इन के बाद का स्थान है—स्टेंडर्ड आयल (राकफेलर प्रतिष्ठानो) की चार शाखाओ का, जिन की बिक्री ११६ अरब और मुनाफा १२ अरब का है। इन मे से प्रत्येक की बिक्री हमारे देश की सरकारी और निजी सारे उद्योगो की चौगुनी से भी अधिक है।

इन आकडो को देख कर मैं दग था। अपने देश के बारे मे सोचता भी जा रहा था। हमारे यहा यदि किसी प्रतिष्ठान का कुल उत्पादन बीसपचीस करोड का भी हो जाता है तो फोरन वामपथियो के नारे उसे मुनाफाखोरी ओर एकाधिकारी करार दे देते है। राष्ट्रीयकरण करने के लिए दबाव डाले जाते है। सरकार भी एकाधिकरण की रोकथाम के लिए जाच समिति बैठा देती है। फलाफल कुछ भी हो, पर इतना जरूर है कि उद्योगपति या व्यापारी का होसला बैठ जाता है। और, उन मे से अधिकाश को नए कारखाने लगा कर उत्पादन बढाने मे उत्साह नही रह जाता। राष्ट्र के विकास मे ऐसी मनोवृत्ति कितनी घातक हो सकती है इसे बताने की आवश्यकता नही।

हमने न्यूयार्क शहर की वार्षिक आय के बारे मे पूछा तो रिसर्च चैम्बर के एक अधिकारी ने वृत्ताकार लगे बोर्डो मे से एक बोर्ड के पास ले जा कर उस की आकडे दिखाए। हम ने देखा कि शहर के वार्षिक खर्च का बजट ३,००० करोड रुपए का है हम इस की तुलना कलकत्ता से करने लगे जो न्यूयार्क का लगभग तीन चौथाई है और बजट केवल दसग्यारह करोड रुपए

का। न्यूयार्क के मेयर और चीफ एग्जीक्यूटिव अफसर का मासिक भत्ता २५,००० रुपए और कौसिलरो का ६,००० रुपए हैं। नगर निगम शिक्षा पर ६०० करोड़ एव स्वास्थ्य औा सफाई पर ३०० करोड रुपए व्यय करता है। शहर के मकानो से निगम को ८०० करोड टैक्स के रूप मे मिल जाते है। सन १९६२ मे यहा के मकानों की कीमत २०,००० करोड कूती गई थी। मकानो के टैक्स के अलावा अन्य करो से निगम को लगभग २,२०० करोड की वार्षिक आय हो जाती है। हमारे सपूर्ण देश की बजट से अकेले न्यूयार्क शहर का बजट कही ज्यादा है। वास्तव मे ही अरबखरब की नगरी है न्यूयार्क।

आर्थिक या वित्तीय जानकारी के अलावा अमरीका की कृषि सबधी आवश्यक बातो की जानकारी हमे लेनी थी। एक दूसरी ओर सजे बोर्डो के पास हमे ले जाया गया। वहा हमे सारे आकडे मिलते गए।

कृषि मे भी अमरीका विश्व मे सब से आगे है। यहा के किसान सपन्न और सुखी है। इन की कृषि सपत्ति करीब १५ खरब रुपयो की है। अमरीकन उद्योगपतियो की तरह वहा के कृषक भी धनीमानी है। विश्व के सब से बडे धनी राकफेलर के एक पुत्र केवल कृषि कार्य करते है।

अमरीका की एक विशेषता रही है कि औद्योगिकीकरण की होड मे वहा के लोगो ने और शासन ने कृषि की उपेक्षा नही की है। यही कारण है कि अमरीका आज विश्व का अन्न भडार है। अन्य देश कृषि के महत्व को बाद मे समझ पाए और हम तो बहुत ही देर से। ४० वर्ष पूर्व अमरीकन किसान जितना उपजाता था उस से आज पाच गुना अधिक अनाज पैदा करता है और प्रति एकड कृषि उत्पादन ६० से ७० प्रति शत बढ गया है। आकडो को देख कर आश्चर्य हुआ कि यहा कृषक प्रति वर्ष २,३५०-करोड रुपए खेती के लिए ट्रैक्टर ओर अन्यान्य औजारो के खरीदने मे लगाते हैं, १,१०० करोड रुपए की डीजल और ८०० करोड रुपए की खाद खरीदते हैं। पिछले वर्ष वहा गेहू, मकई तथा अन्य अनाजो की उपज बीस करोड टन के लगभग थी, जो अमरीका की जनसख्या की छ वर्षो की आवश्यकता के लिए पर्याप्त थी। पशुओ के लिए सूखा घास भी १२ करोड टन पैदा हुआ। यहा घास की खेती भी अनाजो की तरह यत्नपूर्वक की जाती है, जिस के लिए अलग ही जमीन रखते है और अनेक प्रकार के प्रयोगो द्वारा इस की पैदावार और किस्म को उन्नत करते हैं। अमरीका घूमते समय हम ने यह लक्ष्य किया था कि उत्पादन, और अधिक उत्पादन अमरीकी उद्योगो का उद्देश्य रहता है। अमरीकी सरकार इसे कृषि के क्षेत्र मे प्रोत्साहन नही देती, क्योकि इस से कृषि उत्पादन इतना अधिक हो जाता है कि कीमतो को कायम रखने के लिए अतिरिक्त उत्पादन सरकार को खरीदना पडता है और कभीकभी तो इसे खरीद कर नष्ट कर देना पडता है।

इन आकडो को देखसुन रहा था और मेरी आखो के सामने से उत्तरी बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश और उडीसा के किसानो के भूख से पीडित बच्चे, बूढे तथा स्त्रियो की शक्ले गुजरती जा रही थी।

लच का समय हो गया था। हम ने बैक के प्रेसिडेट एव अन्य कार्यकर्ताओ का अभिवादन कर उन से विदा ली। भुवालकाजी की सलाह के अनुसार हम एक सेल्फ सर्विस रेस्तरा मे भोजन के लिए गए। ऐसे रेस्तरा मे खानसामे या बेयरे नही रहते। स्वय अपनी पसन्द के अनुसार रकाबियो मे चीजे ले ली जाती है और काउटर पर बैठी लडकियो को दाम चुका कर वही सजी मेजो पर बैठ कर भोजन करते है। हम ने देखा, हमारी तरह ही सैकडो अमरीकन भी वहा लच ले रहे थे। अमरीका मे मजदूरी बहुत है, इसलिए ऐसे रेस्तरा मे दूसरे बडे भोजनालयो की अपेक्षा चार्ज बहुत कम लगता है। जहा तक मुझे याद है, हम तीनो का बिल केवल तीस रुपए के लगभग हुआ था।

लच के बाद हम विश्व के सब से बडे डिपार्टमेटल स्टोर 'मैकी' मे गए। यो तो टोकियो

और शिकागो मे हम ने बडेबडे स्टोर्स देखे थे, लेकिन वे इस के मुकाबले मे खिलौने से थे। हम ने यहा चीजे तो केवल डेढदो सौ रुपए की खरीदी, लेकिन स्टोर्स की सभी मजिलो पर स्वचल सीढियो मे जा कर विभिन्न कक्षो को देखा। कही फलो का बाजार लगा था तो किसी ओर चिडिया और छोटे पालतू जानवर थे। एक कक्ष मे नाना प्रकार की रगविरगी मछलिया आकर्षक शीशे के हौजों मे खेल रही थी। दूसरी मजिल पर पुरुषो, स्त्रियों और बच्चो की पोशाके सजी हुई थी। हमे आश्चर्य हुआ कि यहा बनारसी कलाबत्तू की साड़िया भी थी। सुनने मे आया कि आधुनिक अमरीकन महिलाए इन के गाउन पहनती है और फैसी ड्रेस के प्रोग्रामो मे तो भारतीय पोशाके भी पहनी जाती है।

शाम के छ बज गए, पर मैकी का स्टोर्स आधा भी नही देख पाए। यहा के विभिन्न विभागो और वस्तुओ के वर्णन मे समय नही लेना चाहता, केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस की दैनिक बिक्री डेढ करोड रुपए की है। सेल्स गर्ल्स बहुत कम है। प्रत्येक वस्तु का मूल्य लिखा रहता है, चीजे लेते जाइए, काउटर पर एक साथ दाम जोड लिया जाता है।

न्यूयार्क अमरीका का ऐसा शहर है जहा कि विभिन्न प्रकार की जनसख्या सयुक्त राष्ट्र के पूरे देश का प्रतिनिधित्व करती है। इस बात मे यह कलकत्ते से बहुत कुछ मिलताजुलता है। न्यूयार्क का वैभव, व्यस्त जीवन, और अमीरीगरीबी देख कर हैरत होती है।

हम तय नही कर पा रहे थे कि न्यूयार्क मे क्या देखे और क्या छोडे। टी बोर्ड के श्री अहमद ने प्रोग्राम बना दिया। समय की बचत के साथसाथ समस्या का हल निकल आया। हम घूमने निकल पडे। सर्वप्रथम स्वाधीनता की प्रतिमा देखने गए।

बदरगाह के प्रवेश पथ पर एक छोटा सा द्वीप है। उसी पर स्वाधीनता की मूर्ति प्रतिष्ठित है। सयुक्त राज्य का जन्म ही साम्राज्यवाद के विरोध मे हुआ था। यही कारण है कि साधारण अमरीकी भले ही देशविदेश की राजधानियो मे कम रुचि रखे लेकिन दूसरे देशो की स्वाधीनता की रक्षा करना और कम्युनिज्म के प्रसार की रोकथाम मे मदद देना वे अपना कर्तव्य समझते है—चाहे वह पडोसी क्यूबा हो या सुदूर पूर्व का वियतनाम या कोरिया। स्वाधीनता की यह प्रतिमा उन की आतरिक भावना को स्पष्ट रूप से प्रतिबिबित करती है।

अब तक इतनी बडी मूर्ति मैं ने कही नही देखी। मिस्र के स्फिक्स देखने पर अनुमान था कि शायद इस से बडी मूर्ति अन्यत्र न होगी। लेकिन इस के मुकाबले मे तो वह आधी ही है। इस प्रतिमा को देख कर मेरी धारणा कुछ ऐसी बनी कि भविष्य मे शायद ही इस ढग की मूर्ति बनाई जा सके, क्योकि आज के ससार मे व्यक्ति का महत्व भावना से अधिक बढ रहा है। अतएव, नेताओ की बडी बडी मूर्तिया भले ही बन जाए लेकिन स्वाधीनता, मुक्ति, शाति, शक्ति आदि के प्रतीक बनाने के प्रति इस भौतिकवादी युग मे प्रेरणा मुश्किल से ही मिलेगी।

वैसे दूर से भी यह मूर्ति बहुत ही आकर्षक लग रही थी, पर ज्योज्यो हम इस के पास आ रहे थे त्योत्यो इसकी विशेषताए स्पष्ट होती गईं। १५१ फीट ऊची स्वतत्रता की देवी गुलामी की जजीरो को तोड कर हाथ मे जलती मशाल ले कर स्वाधीनता का सदेश दे रही है। १४२ फीट ऊचे मच पर इस को रखा गया है। दाहिने हाथ मे जलती मशाल ऊची किए है। और बाए हाथ मे स्वाधीनता का घोषणापत्र है। उस पर खुदा है '४ जुलाई, १७७६'।

प्रतिमा ताबे के चादरो से बनी है, जिन्हे लोहे के ढाचे पर मढा गया है। इस का कुल वजन ५,५०० मन है। दाहिना हाथ, जिस मे वह मशाल लिए हुए है, समुद्र की सतह से करीब ३०० फीट की ऊचाई पर है। हाथ की लबाई ४२ फीट और घेरा १२ फीट है। सिर दस फीट चौड़ा है, जिस पर काटे का ताज है। ताज इतना बडा है कि ४० आदमी आसानी से उस पर खडे हो सकते है। दोनो आखो के बीच का फासला है ढाई फीट और नाक साढे चार फीट लबी

है ओठ कुछ खुले से हैं, मानो कुछ कह रहे हो। ओठों की आपसी दूरी तीन फीट है। मशाल मे १२ आदमी खडे हो सकते हैं। इस विशालकाय मूर्ति के अन्दर घुमावदार १६८ सीढियां हैं। दर्शक इन पर से सिर तक चढ़ते है।

यह मूर्ति फ्रास की जनता द्वारा भेट मे दी गई थी। इस के लिए १८७६ मे दस लाख फ्रैंक का चदा फ्रासीसी जनता ने इकट्ठा किया था। ४ जुलाई, १८८४ को उन्ही के द्वारा पेरिस मे इसे अमरीकी जनता को भेट किया गया।

फ्रास भ्रमण के समय मैं ने यह लक्ष्य किया कि विलासिता और मौजमस्ती में यद्यपि फ्रेंच सदियो से डूबे रहे लेकिन स्वतत्नता के प्रति उन के हृदय मे सदैव श्रद्धा रही है। विदेशो मे जहां कही सकट काल मे उन की सहायता मागी गई, फ्रांसीसी जनता ने स्वेच्छापूर्वक अपनी सेवाए अर्पित की है। इस मूर्ति की स्थापना मे करीव एक वर्ष का समय लगा, क्योकि अमरीका के पास उन दिनो इतना भी धन नही था कि इस के लिए मच बना सकता। अतएव, जव तक धन एकत्न नही किया जा सका, यह पेरिस मे ही पडी रही। आज यह जान कर कुछ आश्चर्य तो जरूर होता होगा कि कुवेरो की नगरी न्यूयार्क के नागरिक आज से अस्सीबयासी वर्ष पहले इतने निर्धन थे कि उन दिनो न्यूयार्क के समाचारपत्नो मे धनसग्रह के लिए अपीले निकला करती थी। अत मे १८८५ को यह मूर्ति २१४ पेटियो मे वद कर अमरीका भेजी गई और २ अक्टूवर, १८८६ मे अमरीकी राष्ट्रपति क्लीवलैड ने इस स्मारक की प्रतिष्ठा की।

हम मूर्ति के ऊपर नही गए, क्योकि हमे राष्ट्र सघ जाना था।

रोम मे वैटिकन नगर का जो स्थान है उसी तरह सयुक्त राष्ट्र सघ का न्यूयार्क मे है। शहर के पास वहती हुई ईस्ट नदी के किनारे इसका भवन है। ३६ मजिलो का यह भवन न्यूयार्क की अन्य इमारतो से वास्तुशिल्प के दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न है। विभिन्न राष्ट्रो ने जिस लगन और उत्साह से इस भवन के निर्माण मे सहयोग दिया, काश, वही भावना विश्व की शाति, स्वाधीनता और सुरक्षा के लिए बनी रहती तो ससार को स्वर्ग बनाया जा सकता था।

राष्ट्र सघ का यह भवन ५४४ फीट ऊचा, २८७ फीट चौडा है। १८ एकड की हरियाली के वीच आसमान को छूती हुई इस इमारत को देख कर मन मे तरह-तरह की भावनाए उठने लगती हैं। भवन के ऊपर राष्ट्र सघ का नीले रग का झडा फहरा रहा था और उस पर अकित भूमडल मानो नाच रहा था। मैं ने प्रभुदयालजी से कहा, "देखिए, नीले आसमान के वीच सफेद भूमडल कितना सुहावना लग रहा है।"

हम भवन के अंदर दाखिल हुए। भीतर की साजसज्जा मे सौष्ठव था। यह भी देखने मे आया कि यहा पाच राजभाषाओ को मान्यता दी गई है। अग्रेजी, फ्रासीसी, स्पेनी, चीनी और रूसी। आश्चर्य तो नही पर खेद अवश्य हुआ कि यहा स्पेन जैसे साधारण राष्ट्र की भाषा को तो मान्यता दी गई है लेकिन ५० करोड के देश की भाषा हिंदी का कोई स्थान नही है। मेरी धारणा है कि हमारी सरकार की ओर से समुचित प्रयास किया जाए तो ससार की इतनी वडी आवादी की राजभाषा को राष्ट्र सघ मे स्थान अवश्य मिल सकता है।

इस भवन मे सम्मेलन सदन, बृहद परिषद, सचिवालय, पुस्तकालय आदि सभी दर्शनीय हैं। राष्ट्र सघ की वैठके तो विश्व मे कही भी हो सकती है, लेकिन कौसिल (सुरक्षा परिषद), जनरल असेवली (वृहद परिषद), कमेटियो और आयोगो की वैठके यही होती है। राष्ट्र सघ का अतरराष्ट्रीय न्यायालय हालैड के हेग नगर मे है। स्विट्जरलैड में इस का एक कार्यालय है, जहा पहले लीग आफ नेशन्स था।

राष्ट्र सघ के सचिवालय मे महामंत्री के कार्यालय के अतिरिक्त सात अन्य विभाग हैं। वृहद परिपद को छोडकर राष्ट्र संघ के अतर्गत पाच और सस्थान है। राष्ट्र सघ के चार उद्देश्य है अतरराष्ट्रीय शातिऔर सुरक्षा को वनाए रखना, राष्ट्रो मे पारस्परिक सम्मान, स्वाधीनता की भावना और मैत्नी को प्रोत्साहन देना, विभिन्न समस्याओ को पारस्परिक

सहयोग से हल करना और मानव अधिकार व स्वतत्रता के लिए प्रयत्नशील होना। ममान लक्ष्य एव उद्देश्यो की प्रतिष्ठा ओर सघठन।

राष्ट्र सघ की स्थापना २४ अक्टूबर, १६४५ को हुई और तभो से यह दिन ममार के सभी राष्ट्रो द्वारा सयुक्त राष्ट्र दिवस के रूप मे मनाया जाता हे।

राष्ट्र सघ को आज भले ही उतनी सफलता नही मिल पाई जितनी कि आशा की जाती थी, फिर भी यह तथ्य है कि इस के प्रयास ने भीषण रक्तपात और विनाश से विश्व को कई बार सभाला है। अरब, इसराइल, उत्तरदक्षिण कोरिया, कागो आदि की उलझनो को बढने न देने के कारण राष्ट्र सघ युद्ध जर्जरित विश्व मे बधाई का पात्र है।

उन दिनो अधिवेशन नही था, इसलिए हम किसी बैठक की काररवाई नही देख पाए। गाइड ने हमे बताया कि वक्ता चाहे किसी भाषा मे बोलते हो, श्रोता उन के भापण को अपनी ही भापा मे सुन लेते है, क्योकि भाषण का अनुवाद साथ-साथ होता रहता है। जिस भाषा मे अनुवाद सुनना हो, उस का बटन दबा दिया जाता है, कान मे रिसीवर से वही भाषा सुनी जा सकती है। हमारे यहा नई दिल्ली के विज्ञान भवन और ससद के दोनो सदनो मे भी इस प्रकार की व्यवस्था है।

राष्ट्र सघ का भवन १८ एकड के क्षेत्रफल मे है। वह जमीन हागकाग की हालीवुड स्ट्रीट को छोड कर ससार मे सब से कीमती है। इसे अमरीका के प्रसिद्ध धनकुबेर राकफेलर (जूनियर) ने ६५ करोड रूपये मे खरीद कर भेट मे दी थी। न्यूयार्क मे रहते हुए भी यह क्षेत्र अमरीकी कानून और नियमो मे नही है। वेटिकन की तरह यहा भी अपने कानूनकायदे हैं। यहा पैर रखते ही व्यक्ति अतरराष्ट्रीय धरती पर आ जाता है। यहा के डाक घर मे राष्ट्र सघ की टिकट लगा कर आप विश्व मे कही भी पत्र भेज सकते है।

लच का समय हो रहा था। खेतानजी के अमरीकन व्यापारी मित्र केरलैडर ने हमे टाइम एण्ड लाइफ भवन के बहुत महगे रेस्तरा मे भोजन का निमत्रण दिया था। हम ने सुना था कि यह रेस्तरा महगा तो जरूर है पर है नायाब।

जैसे ही रेस्तरा के दरवाजे पर पहुचे, अपनेआप खुल गया। फिर भीतर जाते ही स्वय बद हो गया। ४२ तल्ले के विशाल भवन की सब से ऊची मजिल पर रेस्तरा है। भोजन करने मे कम से कम डेढदो घटे लग जाना मामूली बात है। ऊचे दरजे के नृत्य और सगीत का क्रम चलता रहता है। अमरीकी सार्वजनिक एव सामाजिक जीवन मे रेस्तराओ का बहुत महत्त्व है। मैत्री, व्यापार, राजनीति, गीत, सगीत और भोजन साथसाथ चलते रहते है। लास एजिल्स सानफ्रासिस्को वाशिगटन, शिकागो सभी जगह ऐसी प्रथा देखने मे आई। ऐसे रेस्तराओ मे आम तोर पर नकद भुगतान नही किए जाते क्योकि खाने वाले डाइनर्स क्लब या अमरीकन एक्सप्रेस के सदस्य होते है। वे सिर्फ बिल पर अपने सदस्यता कार्ड का नबर लिख कर हस्ताक्षर कर देते है।

भोजन के समय केरलैडर ने हमारा बहुत ही ध्यान रखा। उन्हे हमारे शाकाहारी होने की जानकारी थी। बातचीत के दौरान अमरीकी उद्योगो के बारे मे कुछ ऐसी बाते जानने मे आई जिन की चर्चा अब तक हम ने नही सुनी थी। सयुक्त राज्य मे लगभग ६०,००,००० शेयरहोल्डरो मे से आधी से अधिक सख्या महिलाओ की है। हमारी यह धारणा थी कि अमरीकन कपनियो के शेयरहोल्डर धनाढ्य ही होते होगे, पर यहा सुना कि अमरीका मे १० लाख ऐसे शेयरहोल्डर है, जिन की औसत वार्षिक आय ४०,००० रूपये से भी कम है। इस के अलावा १२ करोड व्यक्ति जीवन बीमा, यूनिट ट्रस्टो या पेशन निधि के जरिए अप्रत्यक्ष रूप से कपनियो के शेयरहोल्डर है। स्थानस्थान पर पूजीनिवेशक क्लब है। इन के जरिए छोटे खरीददार उन मे पैसे जमा कर नियमित रूप से शेयर खरीदते है। इस तरह की अनेक योजनाए चल रही है। कर्मचारी शेयर खरीद योजनाओ के अतर्गत कर्मचारियो को भी अपनी कपनियो के शेयर खरीदने की सुविधा है। अमरीकन टेलीफोन एड टेलीग्राफ कपनी के करीब

ढाई लाख कर्मचारियो के पास और सोकोनी मोबिल कपनी के ६० प्रति शत कर्मचारियो के पास अपनीअपनी कपनियो के शेयर है। हम लोगो ने भी अपने देश मे १६६४ से यूनिट ट्रस्ट की स्थापना की है। इस का सचालन सरकार द्वारा होता है और उद्देश्य है जनसाधारण बचत कर इस के हिस्सो मे रुपए लगाए।

चर्चा के बीच मे मैं ने प्रश्न किया कि यदि कर्मचारी ही कपनी के मालिक बन गए तो क्या होगा? सहज उत्तर मिला, "तब तो सारा झगडा ही खत्म हो जायेगा। हडतालो का डर नही रहेगा, क्योकि कपनी के मालिक हडताल करेगे कैसे?"

शिकागो और न्यूयार्क मे मै ने यह लक्ष्य किया कि अमरीकन प्रणाली मे उद्योगो के राष्ट्रीयकरण द्वारा राजनीति और अर्थनीति को मिलाने की प्रवृत्ति नही है, बल्कि यह प्रयत्न रहता है कि उन का स्वामित्व अधिक से अधिक व्यक्तियो के हाथ मे बांट दिया जाए ताकि राष्ट्रीयकरण के बजाय उन का लोकतत्रीकरण हो जाए। हम जब जुलाई १६६४ मे वहां थे तब सुना था कि जनरल मोटर्स के एक बड़े हिस्सेदार डू पौट के शेयर सरकारी आदेश से बिकवा दिए गए थे। अमरीकन शेयर बाजारो की स्थिरता और दृढता से छोटी पूजी लगाने वाले को बहुत प्रोत्साहन मिला है। उन्हे नियमित रूप से लाभाश मिलते रहे हैं और उन्होंने यह अनुभव किया कि गत ३० वर्षो मे जहा पैसे की क्रय शक्ति घट कर करीब आधी हो गई, शेयरो की कीमत दोगुनी तिगुनी हो गई है। मै सोचने लगा कि हमारे यहा रुपए की क्रय शक्ति इन ३८ वर्षो मे दशमाश ही रह गई, पर अधिकतर शेयरो के दाम उसी अनुपात मे वढने की बजाय आधे रह गए है। हमारे देश के अर्थशास्त्रियो के लिए यह गभीर अनुशीलन का विषय है, क्योकि इस से शेयरो मे पूजी का नियोजन होना बद हो गया और देश की मुद्रा स्फीति बढ गई। वहां इन छोटेछोटे निवेशको की बूदबद कर लगाई पूजी ने बडेबडे उद्योगपतियो के प्रभाव को कम कर दिया है। यह भी पता चला कि आज यहा के बडेबडे औद्योगिक प्रतिष्ठान वाल स्ट्रीट के पूंजीपतियों के पास बिना गए स्वय ही आवश्यक पूजी का प्रबन्ध कर लेते है।

इस डेढ घटे के दौरान अमरीका की वर्तमान आर्थिक अवस्था और व्यवस्था के बारे मे बहुत सी तथ्यपूर्ण बातो की जानकारी हुई।

हाथ धोने के बाद बेसिन से स्वत निकलती सुगधित गरम हवा ने गीलापन मिटा दिया, तौलिए की जरूरत न रही। वेटर जब बिल ले कर हमारे मेजवान की सही लेने आया तो मैं ने झाक कर देखा कि हम छ व्यक्तियो का खाने का चार्ज सात सौ था। दो दिन पहले हम ने सेल्फ सर्विस रेस्तरा मे लच लिया था, वहा लगा था दस रुपए प्रति व्यक्ति। मेनू और साजसज्जा मे अन्तर अवश्य था, पर चार्ज के अनुपात मे नही।

भोजन के बाद चार बजे मुझे टी बोर्ड के आफिस मे जाना था। हम सभी विश्राम के लिए होटल वापस आ गए। शहर मे आवागमन के नाना प्रकार के साधन है, बसे, टैक्सी और भूगर्भ ट्रेने। केवल इतना ही नही आधुनिकतम हेलिकाप्टर सर्विस है तो स्टीमबोट भी। ये सारे इतने ज्यादा और सुविधाजनक है कि समय की बचत हो जाती है। कलकत्ता, बबई और दिल्ली की तरह कतार लगा कर घटो खड़े रहने का दृश्य कही भी नही दिखाई पडा। अरबपति मालिक और उसके कारखाने के मजदूर को एक ही बस या ट्रेन मे अगलबगल बैठे देखना यहा साधारण सी बात है।

यहां को बड़ीछोटी सडके नामो की जगह नबरो से हैं। जैसे, ५वी एवेन्यू की ४५वी सडक का १३४ वां मकान। लबी और चौडी सडकें एवेन्यू कहलाती है, इन्हें काटती हुई जो सडके है उनकी सख्या करीब सौ सवा सौ है। इसलिए शहर मे से नए व्यक्ति के भी खो जाने का डर नही रहता और बारबार पुलिस वालो से पूछने की जरूरत भी नही रहती है। टी बोर्ड का आफिस छठवी एवेन्यू की ५२ वी सडक के १०६ नबर के मकान मे था। मैं ने होटल से निकल

कर सोचा कि पैदल ही चलू । शहर को भी अच्छी तरह देख लूगा और विभिन्न प्रकार के लोगो को भी देखनेसुनने का मौका मिल जाएगा ।

छठवी एवेन्यू की नौवी सडक के ५२वी सडक पहुचा, वहा मकानो के नवर देखता हुआ टी बोर्ड के दफ्तर मे जब मै ने टी बोर्ड के श्री अहमद को अपनी इस शहरी पद यात्रा का हाल बताया तो बहुत हसे, क्योकि होटल से वहा तक पैदल जाने मे डेढ़दो घटे का समय लग जाना स्वाभाविक था । धनकुबेरो की नगरी मे इतना फालतू समय किस के पास रहता है ?

श्री अहमद जलपाईगुडी के नवाव के पुत्र है । बहुत ही मिलनसार और मेहनती । अपनी फ्रेंच पत्नी के साथ करीव तीन साल से यहा है । उन के घर भोजन का निमत्रण समयाभाव के कारण स्वीकार न कर सका, पर उन के सौजन्य की याद आज भी ताजी है । न्यूयार्क के हमारे छोटे से प्रवास काल मे उन्होने गाइड के रूप मे हमारी बडी मदद की । उन्होंने मुझे उपहार मे चाय के डिब्बे दिये, जो मैं ने अमरीका के विशिष्ट व्यक्तियो को भेट कर दिए । मैं ने भी उन को देश से लाए हुए अचार और चिउडे दिए, जिस के स्वाद की चर्चा वे मिलने पर जरूर कर देते थे, मानो मैं ने उन्हे कोई अमूल्य वस्तु भेट कर दी थी ।

टी बोर्ड का काम निपटा कर वस से होटल वापस आ गया । शाम हो रही थी । हम राकफेलर सेटर दखने गए । कहते है, एपायर स्टेट विल्डिग न्यूयार्क का प्रथम आकर्षक है तो राकफेलर दूसरा । उसे रेडियो सिटी भी कहते है या शहर मे शहर कहा जा सकता है । इस केद्र के अतर्गत इतनी इमारते है कि यहा पहुच कर दर्शक खो जाता है । इद्रधनुप कक्ष मे बैठे भोजन-पान करते हुए मैनहट्टन के दमकते आलोक को अपने चारो ओर देख कर एक विचित्र आनद का अनुभव होता है ।

हम रेडियो सिटी के सगीत भवन मे गए । यह ससार का सब से बडा कला केंद्र है । यहा ६,५०० सीटे है । शो चलते ही रहते हैं । सिनेमा, सगीत, नृत्य, नाटक आदि कार्यक्रम एक ही मच पर होते है । एक के बाद दूसरे मच इस प्रकार उठते आते हैं मानो जमीन के अंदर से कलाकार ऊपर धरती पर आ रहे हो । दर्शक किसी भी कार्यक्रम मे जा कर बैठ सकते हैं ।

रेडियो सिटी की गगनचुबी अट्टालिकाओ की नगरी कहना अत्युक्ति नही होगा । न्यूयार्क की जमीन बहुत महगी है । व्यापार और उद्योग का केद्र है, इसलिए दफ्तर और आबादी बहुत ज्यादा है । यही कारण है कि यहा ऊचेऊचे मकान वना कर जमीन की या स्थान की समस्या का समाधान किया गया है ।

यही टेलीविजन और रेडियो विभाग है । रेडियो की तरह टेलीविजन के स्टूडियो और मच है । इन पर अलगअलग कार्यक्रम होते रहते हैं और अमरीका के विभिन्न भागो मे प्रसारित किए जाते है । रेडियो सिटी भवन के नीचे इतनी दुकाने है कि रेस्तरा और दुकानो की निराली नगरी कहा जा सकता है । यहा भूगर्भ रेल का स्टेशन भी है । जहा से न्यूयार्क के विभिन्न भागो मे राकफेलर प्लाजा देखने के बाद जाया जा सकता है ।

इस की शोहरत हम ने पेरिस और रोम मे सुनी थीं । सचमुच लबीचौड़ी सडक के दोनो ओर के ऊचे मकानों ने इसे विश्व मे बेजोड और शानदार महल्ला बना दिया है । यहा विश्व की मशहूर दुकाने है पर जो शानशौकत और मौजमस्ती पेरिस की साए लेजा मे हम ने देखी वैसी कही भी दिखाई नही दी । कहा जाता है, फैशन पैदा होना है फिफ्थ एवेन्यू मे, पनपता है न्यूयार्क मे और इठलाता है पेरिस मे । यही प्रसिद्ध पुस्तक विक्रेता स्क्राइबनर मे गया । अगरेजी, फ्रेंच, जरमन, स्पेनिश आदि यूरोपीय भाषाओ की पुस्तके देखने मे आई । जापानी और कुछ चीनी पुस्तके भी देखी । मै ने सहज भाव से पूछा, "भारतीय भाषा की कोई पुस्तक मिलगी ?" उस ने रवीन्द्र पर अगरेजी की पाचसात किताबे दिखाई । मैं ने बताया कि यह तो अगरेजी है, मै तो भारतीय भाषा की चाहता हू । बेचारी लडकी हैरान थी । बडी नम्रता और कौतूहल से उस ने कहा, "क्या अगरेजी भारत की भाषा नही है ? भारतीय तो हमेशा

अगरेजी ही बोलते देखे गए, अगरेजी किताबे ही खरीदते हैं।" मैं ने कहा, "अगरेजी मारतीय भाषा नही है, हमारी राजभाषा हिंदी है।" धन्यवाद कह कर मै दुकान के वाहर आ गया। पास ही से, दो जापानी गुजरे, आपस मे अपनी भाषा मे बोलते जा रहे थे।

न्यूयार्क के आसमान पर रात की अधेरी चादर थी, पर धरती पर रगबिरगी चादनी। निओन और मर्करी के प्रकाश मे सडके नहा रही थी, पर राहगीर की चाल मे पेरिस और होनोलूलू की मृस्ती नजर नही आई। सुना भी था कि यहा ऐश्वर्य है, पर शायद सुख नही।

प्रोग्राम था हारलेम देखने का। न्यूयार्क का यह एक प्रसिद्ध बदनाम महल्ला है। इस के भी तीन भाग है, नीग्रो, स्पेनिश और इटालियन। नीग्रो भाग सब से बडा है और बहुचर्चित भी। इस महल्ले मे जहा करूणा.उमडती है वही वासना की गदी नालियो की सडांध से घृणा फूट निकलती है।

हमे बताया गया था कि रात मे हारमेल की नीग्रो बस्ती मे जाना निरापाद नही। लुच्चेउचक्के, खूनखराबी का भय रहता ही है, शरीफ आदमी का इस वस्ती मे आनाजाना चर्चा का विषय बन जाता है। लास एजल्स और शिकागो मे मै ने नीग्रो लोगो के बारे मे सुना था और देखा था उस ने मेरे कौतूहल को और भी बढा दिया। मैं चाहता था कि सयुक्त राज्य के नीग्रो लोगो की सब से बडी जमात की इस बस्ती मे जाऊ ताकि उन के जीवन को देखनेसमझने का मौका मिले। मित्रो की मनाही के बावजूत थोडी जोखिम उठा कर हारलेम चला ही गया।

सडको पर चहलपहल थी। न्यूयार्क की अन्य सडको से भिन्नता यही लगी कि यहा के मकान इतने ऊचे नही जितने कि मैनहट्टन, फिफ्थ एवेन्यू आदि के। यहा का वातावरण बहुत कुछ कलकत्ते की फ्री स्ट्रीट, वेलेजली और रिपन स्ट्रीट का सा लगा।

हम १५५वी सडक से जा रहे थे। दोनो तरफ बडेबडे मैंशनो को देख कर मै यही सोच रहा था कि क्या ये वस्ती के मकान है? कलकत्ते. बम्बई और दिल्ली क़ी बस्तियो के मकान इन के मुकाबले शायद झोपडिया भी कहलाने लायक नही है। मुझे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि न्यूयार्क के अन्य महल्लो से यहा किराया खास कम नही है। न्यूयार्क मे और जगह नीग्रो लोगो के रहने पर कही भी प्रतिबध नही, फिर भी वे यही रहना पसद करते है।

इस रुचि के पीछे यह तर्क जचा कि कलकत्ते मे जैसे मद्रासी, गुजराती और अन्य गैर बंगाली अपनेअपने ही टोले में रहना पसंद करते है, शायद वही भावना इन में भी हो।

सडक पर हम ने देखा रगीन (नीग्रो) ज्यादा थे, गोरे कम। इस का यह अर्थ नही कि हारलेम में श्वेत (गोरे) नही रहते। वे रहते है और इन मे कभीकभार अतरवर्णीय विवाह भी हुआ करते है।

हारलेम एक दूसरी दुनिया ही है। न्यूयार्क की इस बस्ती मे रात की मस्ती मे मन और तन का स्वाद बदलने के लिए न्यूयार्क तो क्या दूरदूर के श्वेत स्त्रीपुरूष आया करते है। शराब, जुआ, नाचघर, कॉफी हाउस और रेस्तरा सभी मे अपनी एक नियमित जिंदगी है। फिफ्थ एवेन्यू की आडबरपूर्ण तडकभडक यहा नही है। मगर जो है वह वास्तव है कृत्रिम नही। हम ने देखा दो श्वेताग युवतिया एक वलिष्ठ नीग्रो से चिपटी सडक पर बेखवर चली जा रही है। ताज्जुव हुआ, हम ने अपने अमरीकन साथी से पूछा तो पता चला कि मस्त नीग्रो का बल शारीरिक पिपासा को शात करने मे जितना सक्षम होता है उतना किसी भी श्वेत का नही। नीग्रो संपन्न भले ही न हो लेकिन गोरो की तरह उन के जीवन मे चिंता, विषाद और भागदौड नही है। उन्हे निद्रा के लिए नित्य प्रति गोलिया भी नही खानी पड़ती है। इसी कारण स्नायविक शक्ति उन मे कही अधिक है। विश्व प्रसिद्ध कलाकार और सिने तारिकाओ को इन

दैत्याकार नीग्रो के साथ खुलेआम रेस्तरा और शराब घरो मे देखा जा सकता है। मुझे वेनिस, मियामी और होनोलूलू की याद आ गई, वहा भी यही बात देखी थी।

हमारे अमरीकन मित्र हमे हारलेम के प्रसिद्ध नाचघर सेवाय मे ले गए। यह बहुत ही जनप्रिय है। कहा जाता है कि यही से ट्विस्ट' विश्व के हर कोने मे फैल गया। नाचगाना मुझे आता नही और न उस की बारीकिया ही समझता हू, मगर जाज की स्वर लहरी जो यहा सुनने मे आई वैसी कही भी मैं ने नही सुनी थी। जाज का जन्म और विकास अमरीका मे हुआ। मूलत यह लोक सगीत है जिस मे अफ्रीकी और यूरोपीय सगीत परपरा का मिश्रण है। इन दोनो से मिल कर जाज एक अभिनव वातावरण की सृष्टि करता हे। अपने मूल रूप मे यह नीग्रो सगीत है। अमरीका मे लाए गए अफ्रीकी गुलाम खेतो मे कडी मेहनत करते हुए या प्रार्थना करते हुए जो स्वर लहरी अपने अत करण से निकालते थे उस का परिमार्जित रूप है आज का जाज।

हारलेम स्वय मे एक आकर्षण है। क्योकि यहा के जीवन मे वह भागदौड नही है जो ऊचे लोगो मे है। औसत नीग्रो का पारिवारिक जीवन श्वेतो से अधिक सुखी और सफल होता है।

आज अमरीका की सरकार और नेता वर्ग इस बात का अनुभव कर रहे हे कि समता, भ्रातृत्व और मुक्ति मे विश्वास करने वाले अमरीका के लिए उनके अपने रगीन नागरिको की दशा एक कलक है। वे यह अनुभव करते हे कि लिकन और कनेडी जैसे महान व्यक्तियो के बलिदान के बावजूद अमरीकन समाज मे नीग्रो लोगो को समान अवसर नही मिल पाया है।

मैं एक नीग्रो परिवार मे गया। यह कार्यक्रम पहले से ही तय था। गृहस्वामी मिस्टर बेकर एक डाक्टर है। हमारे लिए वह प्रतिक्षा मे थे। जाते ही बड़े स्नेह से उन्होने बैठाया। अपनी पत्नी से परिचय कराया। श्रीमती बेकर औसत श्वेताग स्त्रियो से कही ज्यादा सुन्दर और आकर्षक थी। उन के गेहुए रग मे वह रूखापन नही था जो आम तौर से उत्तरी यूरोपीय या अमरीकन स्त्रियो मे होता है।

मुझे उन्होने बताया कि भारतीय दर्शन मे उन की विशेष रुचि है, विशेष रूप से वे विवेकानद का साहित्य पढते है। उस मे उन्हे ज्ञान और कर्ममय जीवन के प्रति प्रेरणा मिलती है।

मैं ने उससे पूछा कि गाधीजी के अहिसात्मक सिद्धात के आधार पर मार्टिन लूथर किंग के नेतृत्व मे रगीन अमरीकन जब अपने अधिकार प्राप्त करने मे सफल हो रहे है तो फिर क्या कारण है कि मालकम एक्स के नेतृत्व मे वहा के नीग्रो, मुसलमान बन कर हिसात्मक आदोलन करते जा रहे है।

मिस बेकर ने बताया कि मुस्लिम सप्रदाय के पीछे द्वेष और विद्रोह की भावना है। सदियो से नीग्रो रौदे गए, गुलाम के रूप मे उन से पशुवत आचरण किया गया। सभ्य कहलाने वाले श्वेतागो ने असभ्य अफ्रीकी गुलामो के प्रति जिस बर्बरता का परिचय दिया वह कल्पनातीत है। लिकन के मुक्ति सदेश का आदर नही किया गया, बल्कि कूक्लूक्सक्लान जैसे दल कायम कर अमानुषिक उत्पीडन और अत्याचार प्रारभ किये गये। प्रत्येक क्रिया की एक प्रतिक्रिया होती है। द्वेष बढता है, वही हुआ।

हमारे देश मे भी सवर्णो के अत्याचार से लाखो अछूत मुसलमान और ईसाई हो गए थे।

मुझे यह सुन कर ताज्जुब हुआ कि कम्युनिस्ट और कुछ मुसलमान राष्ट्रो की रुचि 'ब्लैक मुस्लिम' आदोलन मे है और वे उसके प्रचारप्रसार मे परोक्ष सहायता पहुचाते है। देखना है अमरीकी जनता और सरकार इस चुनौती का क्या हल निकालती है।

आर्थिक स्थिति अमेरिकन नीग्रो की सुधरी है। पहले वे केवल मजदूर थे। अब उन मे

सुदक्ष कारीगरो की सख्या बढ रही है। न्यूनतम मजदूरी अमरीका मे निर्धारित है, इस कारण से उन की आर्थिक स्थिति दृढतर होती जा रही है। सारे सोवियत रूस मे जीतनी मोटरे है उस से कही अधिक केवल अमरीकन नीग्रों के पास हैं। सेना मे भी अब नीग्रो और श्वेतो मे कोई भेदभाव नही है। रात्रि के ११ बजे हम मिस्टर वेकर के यहा से होटल के लिए रवाना हुए हमारे मना करने पर भी वह हमे हारलेम के अचल से वाहर तक पहुचाने आए।

दूसरे दिन सुवह हमारे मित्र सुरेश देसाई मिलने आए। वे सपत्नीक अपने किसी मित्र के खाली फ्लैट मे ठहरे हुए थे। न्यूयार्क की महगाई की बात चली तो यह जान करे बडा ताज्जुब हुआ कि उन का भोजन पर खर्च न्यूयार्क मे भी उतना ही आता है जितना बबई या दिल्ली मे। उन्होने बताया कि चावल, चीनी, आटा और दूध भारत के ही दामो मे यहा मिल जाता है, फल और सब्जी तो और भी सस्ते है इसलिए यदि स्वय खाना बना लिया जाय तो तीन साढेतीन रुपए मे तृप्ति के साथ भोजन हो जाता है। हम ने भी दूसरे दिन इस का प्रयोग कर के देखा। भारत से लाए हुए चिउडे गरम दूध मे भिगो कर स्वादिष्ट खीर बनाई और उसे पावरोटी, आचार, मुरब्बे के साथ खाया।

रात्रि के खाने पर दूतावास के ट्रेड कौंसिल ने अपने घर पर हमे आमन्त्रित किया। कुछ अमरीकन तथा भारतीय और हम तीनो मित्रो को मिला कर आठदस व्यक्ति थे। वहा हमने एक अधेड नीग्रो महिला को काम करते देखा।

मुझे मालूम था कि नौकर या दाई रखने का रिवाज वहा साधारणतया नही है, क्योकि यह वहुत महगा पडता है। उस के बारे मे पूछने पर पता चला कि पाच घटे के लिए दस डालर यानी ७५ रुपए लेगी। अपनी कार मे आई है।

बातचीत मे मजे की वात यह सुनने मे आई कि कारखानो मे कम से कम १२५ रुपए से १५० रुपए तक की प्रति दिन की मजदूरी है, इसलिए घरेलू नौकर मुश्किल से मिलते हैं। अगर कोई नौकर काम छोड कर चला जाता है तो मालिक उस से सर्टिफिकेट लेते है कि उस से बडा अच्छा व्यवहार किया गया, उसे किसी प्रकार से तकलीफ नही दी और काम भी इन के यहा ज्यादा नही है। यदि सर्टिफिकेट न रहे तो दूसरे नौकर मिलने मे कठिनाई होती है। मैं अपने देश की वात सोचने लगा, जहा आज भी हट्टेकट्टे जवान, दरवान के काम के लिए सत्तरअस्सी रुपए मासिक पर मिल जाते है।

मेहमानो मे एक अमरीकी पत्रकार भी थे। उन से यहा के समाचारपत्रो के बारे मे यथेष्ट जानकारी मिली। उन्होने बताया कि यहा समाचारपत्रो की सरकार और जनता दोनो पर ही वडी धाक है। एक तरह से देश की नीति निर्धारित करने मे उन का प्रमुख हाथ रहता है।

उन मे से कई पत्रो के पाचछ सस्करण प्रतिदिन निकलते है। पृष्ठ सख्या होती है ३२ से १०० तक। और, रविवार के दिन तो यह ४०० तक पहुच जाती है। आधे से ज्यादा तो विज्ञापन ही रहते है और यही इन की आमदनी का खास जरिया है।

वडे पत्रो के तीसपैतीस विभागीय सपादक होते हैं। सवाददाताओ की सख्या तो सैकड़ो तक पहुच जाती है, जो विश्व के हर कोने मे फैले हुए रहते है। इन मे से किसीकिसी के पास हवाईजहाज और हेलीकाप्टर भी होते है, जिस से मौके पर जा कर खबरे जल्दी भेजने मे सुविधा हो।

विश्व प्रसिद्ध टाइम एड लाइफ की तो अपनी कागज की मिले है, जिन के बने हुए विशेष कागजो पर ये पत्र छपते है।

ज्यादातर पत्र सनसनीखेज समाचारो से भरे रहते हैं। मैं ने यहा के समाचारपत्रो के भारत के प्रति सहानुभूतिहीन रवैये का उल्लेख किया तो उन का उत्तर था कि इस के लिए आप की सरकार की जिम्मेदारी भी कम नही है। क्योकि पिछले वर्षो तक प्रति वर्ष यू० एन० ओ० की वैठको मे जिस व्यक्ति (कृष्ण मेनन) को नेता वना कर भेजा जाता रहा, वह यहा

आ कर अमरीकी सरकार की बुराई और साम्यवादी देशो का समर्थन करता रहा। यही नहीं, एक बार तो उस ने पत्र सवाददाताओ का किसी भोज मे अपमान भी कर दिया। वियतनाम और क्यूबा के बारे मे तो आप ने निंदा प्रस्ताव किए, पर हगरी मे जिस प्रकार की नृशसता की गई उसके लिए एक शब्द भी नही कहा।

बातचीत और भोजन मे रात्रि के ११ बज गए थे। इसलिए हम पूर्वनिश्चित कार्यक्रम के अनुसार विश्व की सर्वोच्च इमारत एपायर स्टेट बिल्डिग देखने गए।

एक युग था जब २३४ फुट ऊची हमारी कुतुबमीनार दुनिया मे सर्वोच्च मानी जाती थी। उस के बाद विगत महायुद्ध तक पेरिस का एफिल टावर इस कीर्ति का अधिकारी बना। एफिल की ऊचाई १०४३ फुट थी। भला जापान पीछे क्यो रहता ? उस ने टोकियो मे १०८२ फुट ऊची टेलीविजन टावर बनाया। अमरीका नई दुनिया है, यहा नया इतिहास बन रहा है, नई सस्कृति पनप रही है। यह केवल विश्व का सब से धनी देश ही नही, बल्कि यहा हर क्षेत्र मे एक सर्वोच्चता प्राप्त करने कि प्रतिस्पर्धा भी रहती है। इसी के परिणामस्वरूप न्यूयार्क की एपायर स्टेट बिल्डिग बनी। १०२ मजिला और १,२५० फुट ऊचा भवन। इस के टेलीविजन टावर को भी शामिल कर दे तो कुल ऊचाई १,४५० फुट हो जाएगी।

दर्शको के लिए यह सुबह दस बजे से रात्रि के एक बजे तक खुला रहता है। प्रवेश शुल्क आठ रुपए है। इसे भवन कहा जाए या अच्छाखासा कसबा ? यहा बडेबडे दफ्तरो के अलावा होटल, रेस्तरा, बीमा कपनी, बैक, दुकाने, स्टोर्स आदि सब कुछ एक जगह पर है, जहा प्रति दिन २५,००० व्यक्ति काम करने आते है। इस के विभिन्न भागों तथा मजिलो तक पहुचने के लिए ६७ लिफ्टे है, जिन मे से कुछ की गति प्रति मिनट १,२०० फुट है।

मै सोच रहा था कि मैनहट्टन वही तो है, जिसे आदिवासियो से सन १६२६ मे केवल २४ डालर के काच की मणिया, टीन के डब्बे और कुछ कपडे दे कर डचो ने खरीदा था। आज इस द्वीप मे एक इच जमीन मिलनी कठिन है। मुझे मेरे एक मित्र की याद आ गई। जिन्होने नई दिल्ली की पृथ्वीराज रोड की १२,००० वर्ग गज जमीन ४,५०० रुपए मे ली थी, जिस की कीमत आज करीब २४ लाख है।

अपने ही विचारो पर मन ही मन मुस्करा उठा। ससार के सब से धनी देश की सब से ऊची इमारत की सब से ऊची मजिल पर इन्ही सब बातो को सोच रहा था।

"जी, एक बज रहा है," गाइड ने धीरे से कहा। वह मुस्करा रह था। एलिवेटर ने हमे कब नीचे उतार दिया, इस का अदाजा भी नही लगा।

●

चकाचौंध कर देने वाली वैज्ञानिक प्रगति

न्यूयार्क विश्वमेला

जिन दिनो हम न्यूयार्क मे थे, वहा मेला चल रहा था। हम ने केवल मेला देखने के लिए दो दिन का समय रखा। वैसे तो इसे पूरी तौर से देखने के लिए एक महीने का समय भी कम था। हम ने मेले के वारे मे जानकारी ली और तय किया कि केवल खासखास कक्ष देख लिए जाए। हमारे दूतावास के सचिव हमारे साथ थे, इसलिए चीजो के देखनेसमझने मे सुविधा रही और समय कम लगा। वडे एव मशहूर स्टालो को देखने के लिए लवी कतारे थी, मगर हमे हर जगह प्राथमिकता मिलती रही।

यो तो मेले दुनिया मे और जगहो पर भी होते रहते हैं, जिन मे जरमनी और मिलान के मेले प्रसिद्ध हैं। अपने देश मे १९४८ मे कलकत्ते की और १९६१ की दिल्ली प्रदर्शनी को भी काफी शोहरत मिली थी।

सयुक्त राज्य अमरीका मे विश्व मेला सर्वप्रथम न्यूयार्क मे १९३९ में आयोजित किया गया था। यह इतना लोकप्रिय रहा कि इस मे लगभग साढे चार करोड दर्शक आए। इस प्रकार की प्रदर्शनियो का आयोजन उन्नत राष्ट्रों के लिए आवश्यक है, क्योकि इन से देश के औद्योगिक विकास तथा ज्ञानविज्ञान की प्रगति का परिचय मिल जाता है। १९३९ की मेले का और इस का तुलनात्मक विवरण दिया गया था, जिस से पता चलता था कि इन २५ वर्षो में अमरीका ने हर दिशा में कितनी उन्नति की है।

वह डकोटा का युग था, जव कि आज हम सुपर सोनिक जेट के युग से गुजर रहे है। उन दिनों, हालांकि रेडियो वन चुके थे, लेकिन लोग टेलीविजन का अदाज भी नही कर पाए थे और चद्रमा की यात्रा तो स्वप्नलोक की वात थी।

न्यूयार्क के विश्व मेले की तैयारी मे ढाई वर्ष लगे। अमरीका के पसिद्ध वास्तुकार रावर्ट मोजेज को इस के निमार्ण और सजावट का भार दिया गया। विश्व मेले का आयोजन था, देशविदेश से दुनिया के हर कोने से व्यापारी, उद्योगपति एव पर्यटको का आलम उमड़ेगा अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के नेता एव वैज्ञानिक भी प्रदर्शनी मे आएगे। स्वाभाविक वात थी न्यूयार्क नही, वल्कि अमरीका की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। श्री मोजेज ने ६५,००० रुपए मासिक वेतन पर काम करना स्वीकार कर लिया।

वास्तव मे विश्व के सभी राष्ट्रों ने वड़े उत्साह से न्यूयार्क के इस वृहद आयोजन मे भाग लिया ओर अपनेअपने कक्ष वनवाए। केवल कुछ वैधानिक कारणो से रूस, व्रिटेन और कम्युनिस्ट देशो ने इस का वायकाट किया। दुनिया के प्राय सभी राष्ट्रों के उद्योग एव

व्यापारी प्रतिष्ठानो ने इतने बडे पैमाने पर स्थान सुरक्षित कराया कि आयोजको को दिल खोल कर खर्च करने की सुविधा हो गई। विश्व मेला कमेटी ने केवल ७५० करोड़ रुपए का बजट खर्च के लिए बनाया था, पर अन्यान्य देशो और प्रतिष्ठानो ने जो खर्च किया उस का अनुमान इसी से लग सकता है कि अमरीका के जनरल मोटर्स, फोर्ड, ड्यूपोट और जनरल इलेक्ट्रिक कपनी के केवल चार कक्षो मे ३७० करोड़ रुपए लगे। भारतीय कक्ष मे तीन करोड और पाकिस्तानी कक्ष मे ८० लाख रुपए ।

विश्व मेले का बहुत बडा विस्तार था। पैदल घूमना सभव न था। मगर इच्छा थी कि कम से कम एक चक्कर लगा कर के सतोष कर लिया जाए। हम ने मेले की ट्रेन मे बैठ कर सारे मेले का एक चक्कर लगा लिया। इस के बाद फोर्ड मोटर कपनी के पेवीलियन मे गए। विद्युत चालित पटरियों पर पचासो बडीबडी नई मोटरे धीमी चाल से चल रही थी। एक गाडी मे हम लोग भी बैठ गए। मोटर हमे एक अधेरी गुफा मे ले गई।

यहा प्रागैतिहासिक युग के महाकाय दिनासुर और ब्राटासुर जानवर अपने सहज भाव से विचर रहे थे, जिन की लबाई सत्तरअस्सी फुट की थी हमारे यहा के हाथी और गैडो को तो इन के मुकाबले मे बच्चो के खिलौने कहा जा सकता हैं। २०वी शताब्दी के जानवरो से सर्वथा भिन्न इन दैत्याकार जीवो की लपलपाती जीभ, लाल अगारे जैसी आखे और बडेबडे चमकते दातो को देख कर रोमाचित हो जाना स्वाभाविक था। अगर यह पता न रहे कि ये जतु वाल्ट डिजनी द्वारा बनाऐ गए प्लास्टिककेहै तो कमजोर दिल वालो की तो शामत ही समझिए।

लाखो वर्ष पूर्व के आदि मानव को देखा। गिरि कदराओ मे रहने वाला, सुपुष्ट लंबी भुजाए, कधो के नीचे तक झूलती केश राशि चौडे सीने पर खेल रही थी। किसी प्रकार के परिधान का तो उस समय तक आविष्कार ही नही हुआ था। मैं आश्चर्य से देखने लगा। मुझे उस की आखो मे ऐसा लगा कि मानो मुझ से पूछ रहा है कि मुझे पहचानते नही ? मै तुम्हारा पूर्वज हू। तुम जेट युग मे भले ही हो,पर दुख है कि तुम खुद बहुत कमजोर हो। तुम्हारा मन और साहस तुम से भी कमजोर है। इतने मे ही मोटर सरकती हुई आगे बढ गई। दूसरे कक्षो मे दिखाया गया था कि सभ्यता का विकास गुफाओ से एपायर स्टेट बिल्डिग के ताप नियन्त्रित कक्षो तक किस प्रकार क्रमानुसार हुआ है। इतने सजीव माडल बने थे कि स्वाभाविकता मे सदेह की गुजाइश नही थी। पत्थर के चक्को की गाडियो से ले कर हवा से होड लेने वाली आज की मोटरो के निर्माण का क्रम बडी कुशलता से दिखाया गया था।

फोर्ड ने पुरानी बाते दिखाई और हमे युगो पहले ले गया तो जनरल मोटर्स कारपोरेशन ने आज से ४० या ५० वर्ष की झाकी दिखाई।

यहा हम विशेष प्रकार के यान मे बैठे और हजारो फुट नीचे समुद्रतल मे पहुचे। हम ने देखा, वहा एक खूबसूरत रेस्तरा है। लोग खापी रहे है, गप्पें लडा रहे है। कभीकभी खिडकियो से शार्क या ह्वेल झाक कर चली जा रही है। झुड की झुड मछलिया, रगबिरगी किरणे बिखेरती चली जा रही है। बडा सुहावना लगा। इतने मे देखा एक ह्वेल मुह खोले खडी है। लगा, टेबलकुरसियो समेत हमे निगल जाएगी। गनीमत थी कि खिर्डकियो पर मोटे शीशे थे।

समुद्रतल से बाहर आकर हम एक जगह और ले जाए गए। हरियाली की लहरे खेतो मे दौड रही थी। चारो तरफ फलो और फूलो के बगीचे थे। मै ने पूछा, "यह कौन सी जगह है ?" उत्तर मिला, "पचास वर्ष पहले आप जिसे सहारा का रेगिस्तान कहते थे।"

यहा यह लिख देना जरूरी है कि हम न जिन चीजो को देखा, वे असली नही थीं। आने वाले ५० वर्षो मे विज्ञान के बल पर मनुष्य कितना साधन सपन्न हो जाएगा इस की कल्पना मात्र थी। पर इस प्रकार की व्यवस्था की गई थी, जैसे कि वास्तव मे ही हम समुद्र की गहराई मे उतर रहे है। आज एक देश से दूसरे देश मे जिस आसानी से हम जातेआते है उसी प्रकार

ग्रहउपग्रहो को यात्रा सभव हो जाएगी। आज की तरह हमे सडको पर ट्रेफिक की दिक्कत न होगी। मोटरें मकान की छतो पर से ही उडेंगी।

ये सारी बाते कल्पना भले ही हो, पर इतना स्वाभाविक वातावरण बना दिया गया था और इस ढग से प्रस्तुत किया गया था कि वास्तविकता का बोध होता था मैं ने प्रभुदयालजी से कहा, "काश, हम चालीसपचास वर्ष बाद जन्म लेते और इन सुविधाओ का उपभोग कर पाते!"

"ऐसी भी क्या बात है," उन्होने हस कर कहा। "विज्ञान जिस गति से बढ रहा है, पद्रहबीस वर्षो मे भी ये बाते सभव हो सकती है और तब हम भी चद्रमा की सैर कर लेगे।"

इन दोनो कक्षो को देखने के बाद हम तीसरे मे गए। यह ड्यूपोट कारपोरेशन का था। ड्यूपोंट विश्व के प्रथम १५ प्रतिष्ठानो मे है, जिन का वार्षिक उत्पादन ५,००० करोड का है—अर्थात सारे भारत के कारखानो से ज्यादा। नाइलन आदि रासायनिक रेशों के आविष्कारक होने का उन्हे गौरव प्राप्त है। इन के पेवीलियन मे हम ने विभिन्न प्रकार की आवश्यक वस्तुओ की निर्माण विधि और क्रियाए देखीं। इस के अलावा एक कौमिक ड्रामा भी देखा। अभिनेताओ या अभिनेत्रियो मे कौन वास्तविक है और कौन प्लास्टिक का माडल है, पहचानना मुश्किल था। इस ढग से हावभाव का प्रदर्शन और बाते करते थे कि जब तक यह बताया न गया कि अमुक पात्र प्लास्टिक का बना है, हम उसे असली ही समझ बैठे थे। पिछले दोनो कक्षो के अद्भुत और भयावह दृश्यो के कारण ड्यूपोट के इस चमत्कारिक कलात्मक प्रदर्शन ने मन को मोह लिया। वास्तव मे उन का उद्देश्य भी यही था कि दर्शको के मन से बहुत दिनो तक उन का नाम न हटे। विज्ञापन और प्रचार की यही सफलता है।

जनरल इलेक्ट्रिक कपनी के पेवीलियन मे बिजली के आविष्कार से शुरू कर आज तक इस के कितने विभिन्न ढग के उपयोग होते रहे है, इस का प्रदर्शन बडे आकर्षक तरीके से किया गया था। बिजली क्या है, उस की शक्ति कितनी है——यह सब बहुत ही सुदर तरीके से दिखाया गया था। एक अधेरा कमरा था, वहा जाने पर ऐसा लगता था कि सारा कक्ष जोरो से हिल रहा हो, आसमान मे बिजली की चमक और कडक—साथ ही जोरो की वर्षा। एक दूसरे कक्ष मे दिखाया गया था, जब बिजली न थी, मनुष्य भोजन कैसे बनाता था। बेचारी गृहिणी की आखे चूल्हा फूकतेफूकते लाल हो गई थी। शायद लकडिया गीली थीं और आग नही जल रही थी, उधर पति को शिकार मे जाने की जल्दी थी। उस का शिकारी कुत्ता पास मे खडा पूछ हिला रहा था। प्लास्टिक के सारे माडल आदमकद थे और बडे ही स्वाभाविक बनाए गए थे।

इन चारों कक्षो को देखने मे दोढाई घटे लग गए। और अभी भी सैकडो बाकी थे। इसलिए कुछ और देख लेना तय किया। जनरल सिगरेट कारपोरेशन के कक्ष मे गए। इन के प्रचार का तरीका भी कम मजेदार नही था। बच्चे, बूढे, जवान, औरत, मर्द सभी आनद ले रहे थे। एक प्रकार का मैजिक शो था—भारतीय रस्सी की जादुई करामात पर एक महिला खडी रस्सी के सहारे ऊपर चढती जाती है और वहा गायब हो जाती है। वह तो फिर दिखाई नही देती, मगर अधेरे मे कुछ पक्षी सिगरेट पीते दिखाई देते है। इस दृश्य को ऐसे ढग से प्रस्तुत किया गया था कि सभी हस रहे थे। बच्चे तो बेहद खुश, हटने का नाम नही लेते थे।

डेढ बज चुके थे। भूख जोर से लग रही थी। शहर जा कर मेले वापस आने के बजाए यही भारतीय गेलार्ड रेस्तरा मे खाने का निश्चय हुआ। विभिन्न देशो के रेस्तरा अपनेअपने राष्ट्रीय व्यजनो की विशेषताओ के साथ मेले मे खोले गये थे। भारतीय रेस्तरा काफी जनप्रिय साबित हुआ। शमी कबाब, मुर्ग मुसल्लम, मुर्ग तदूरी, आदि नाना प्रकार के भारतीय व्यजन मासाहारियो के लिए थे। हम तीनो साथी शाकाहारी थे। जलेबिया और खीर बनी थी।

हमारे लिए यह भारतीय मीनू बहुत अच्छा रहा, स्वादिष्ट था, डट कर खाया। बिल आया तो कुछ अखरा जरूर। चार व्यक्तियो के लिए करीब १८० रुपए लगे; २० रुपए बक्शीश के अलग। केशरिया खीर और जलेबी बहुत महगी पडी।

खुले लान मे कुछ आराम करने के बाद तीन बजे से हम ने घूमना शुरू किया। भारतीय पेवीलियन मे आए। अपने देश की बनी चीजे बडे आकर्षक ढग से सजी देख चित्त प्रसन्न हो उठा। भारतीय वेशभूषा मे दसबारह युवतिया दर्शको को हर चीज की जानकारी दे रही थी। इन मे से एक तो आसाम के ससद सदस्य हमारे मित्र पी० सी० बरुआ की पुत्रवधू थी। हम अपने देश की महिलाओ के व्यवहार से बहुत प्रभावित हुए। बातचीत और हावभाव मे भारतीय शालीनता और विनय पाश्चात्य के आडबरपूर्ण वातावरण मे बडा मधुर लगा। उन सब से बात कर प्रसन्नता हुई। उन्होने बताया कि वे सब २५ है और किराए के एक फ्लैट मे दूतावास की देखरेख मे है। वे बहुत खुश थी ओर मन लगा कर खूब मेहनत करती थी।

भारत के बारे मे बहुत से चित्र हमारे कक्ष मे थे। विभिन्न प्रदेशो की दस्तकारी के सामान सजे थे, जिस मे राजस्थान ओर मैसूर के हाथीदात के खिलोने, बनारसी जरी के काम की साडिया और पल्ले, कागडा, पहाडी, मुगल और राजपूत शैली के चित्र थे।

भारतीय कक्ष का उदघाटन श्रीमती इदिरा गाधी कर गई थी। प्रचार के दृष्टिकोण से इस का भी महत्व था क्योकि उन्हे देखने के लिए भारतीय पेवीलियन मे काफी लोग आए थे।

आगरे के एक मशहूर जौहरी ने एक गलीचा भेजा था। जवाहिरात से जडे १८ फुट के इस गलीचे की कीमत शायद साढे चार लाख रूपए। हमे पता नही, प्रदर्शनी की समाप्ति पर वह बिक गया था या वापस आया।

इस के बाद हम अपने पडोसी पाकिस्तान के कक्ष मे गए। भारतीय कक्ष से यह काफी छोटा था। पाट के बने बोरे और चटो के अलावा पाकिस्तान के नए बनते हुए उद्योगधधो की झाकी थी। जेसा कि उन का कायदा हे भारत के विरूद्ध अनर्गल प्रचार भी था। हम ने दूसरे जितने देशो के कक्ष देखे, उन सब मे हमे यह घटिया और उबा देने वाला लगा। दूसरे लोग भी इस मे से बहुत जल्दी बाहर आ जाते थे। यहा हम ने मोहनजोदडो तक्षशिला के माडल रखे देखे। पाकिस्तान का प्रचार है कि वह विश्व की इस प्राचीनतम सस्कृति का अधिकारी है। अरब के सस्कार और सस्कृति को जिन्होंने अपनाया और अपनी सस्कृति को ठुकराया, तोडा और नष्ट किया आज वह मौलिक भारतीय सस्कृति को अपना कहने का दावा करते है, यह स्वय मे एक बहुत बडा व्यग्य है। पर यात्री व्यवसाय को बढाने के लिए इन विश्व प्रसिद्ध पुरातन आर्य अवशेषो के सिवा उन के पास और है ही क्या ?

इस के बाद बारीबारी से हम ने न्यूयार्क, अलास्का, वैकाक, जापान, मलेशिया , तैवान, हवाई, जोरडन और मैक्सिको के कक्षो को सरसरी तौर पर देखा।

न्यूयार्क के कक्ष मे शहर का एक माडल देखा, जिस मे उस की सारी सडके और ८८,००० मकान थे। केवल इस माडल के बनाने का खर्च लगा था ६० लाख रुपया। तैवान (राष्ट्रवादी चीन) के कक्ष मे चीनी सभ्यता, वास्तु शिल्प और इतिहास की झांकी थी और था इन १४ वर्षो का उन का इतिहास। किस प्रकार से मातृभूमि से भाग कर आए हुए कुछ लाख व्यक्तियो ने अपने कठिन परिश्रम और सूझबूझ से फारमोसा को हराभरा और उपजाऊ बना कर न केवल आत्मनिर्भर, बल्कि निर्यात करने वाला देश बना लिया है, आकडो और चित्रो द्वारा यह सब यहा दिखाया गया था।

इन कक्षो मे घूमतेघूमते पैर जवाब देने लगे। रात भी हो आई थी। विश्राम आवश्यक हो गया। अतएव, लिफ्ट से आवजरवेशन टावर पर चढ कर मेले का एक विहगम दृश्य देखना अतिम कार्यक्रम बना।

इस मीनार की ऊचाई, लगभग २२६ फीट थी, (हमारे कुतुब के समान) ऊपर एक बडा

मच बनाया गया था, जिस पर से मेले का पूरा दृश्य दिखता था ।

हम ने ऊपर से देखा, रगबिरगे आलोक मे २०वी सदी दीवाली मना रही है । न्यूयार्क के थाल मे वैभव और समृद्धि सजा कर विश्व मुसकरा रहा है । रात के दस बजे होटल लौटे और खापी कर सो गए । विचित्र प्रकार के स्वप्न आते रहे, दिन मे कुछ इस प्रकार की भयावह चीजो को देखा था जिन की छाप मस्तिष्क पर अकित होनी स्वाभाविक थी ।

दूसरे दिन, आठ बजे नाश्ता कर हम मेले के लिए फिर निकल पडे । पहले दिन वहा से कुछ परिपत्र ले आए थे, उन्हे पढने पर पता चला कि ६,००० कारीगरो ने दो वर्ष के परिश्रम से मेले को तैयार किया । इस के अतिरिक्त ३०,००० मजदूर और कारीगर विभिन्न कक्षो के बनाने मे लगे । जिस देश मे कारीगरो की दैनिक मजदूरी १२५ से १५० रुपए है, वहा इस पर कितना खर्च लगा होगा ! ढाई लाख टन लोहा तो केवल ढाचे की तैयारी मे ही लगा । पीने के पानी के लिए ८० लाख गैलन की टकी बनी । ३०० औद्योगिक प्रतिष्ठान और ६६ राष्ट्रो के अलावा ईसाई धर्म के विभिन्न सप्रदाओ की ओर से भी प्रचार के लिए मेले मे कक्ष लिए गए थे । प्रति दिन लाख दर्शक मेले मे आते थे । सुदूर विदेशो से भी इसे देखने के लिए लोगो के आने का ताता बधा हुआ था ।

समय अब एक दिन का था । इसलिए मेले मे जाने के पूर्व ही हम ने तय कर लिया कि हमे आज क्याक्या देखना है।

सब से पहले हम पेप्सीकोला के कक्ष मे गए । इस का पेय मशहूर है । इन की वार्षिक बिक्री २०० करोड रुपए की है । इन के कक्ष मे भी डिजनी द्वारा बनाई गई ३५ बडीबड़ी गुडियो को देखा, पानी मे नाव चला रही है, गाना गा रही है, ईरान की कालीन पर बैठे आसमान की सैर कर रही है । बच्चो की भीड जमी थी । कौतूहल भरी सरल आखे हसते चेहरो मे हम भी अपना बुढापा भूल गए ।

बेलजियम के कक्ष मे हम ने देखा, आज से २०० वर्ष-पूर्व का एक गाव मकान, दुकान, रहनसहन, पहनावा सभी उस जमाने का । वातावरण बिलकुल ऐसा लगा कि मानो कही हम १८वी सदी मे हो । दुकानदार, खरीदार और वस्तुए सभी उस जमाने की । सडको पर चूल्हे रख कर तेल मे पकौडिए तली जा रही थी तो कही सडक के किनारे ही बैठ कर लोग ताश और शतरज खेल रहे थे ।

विश्व विख्यात क्राइसलर मोटर के कक्ष मे दस मजिला एक राकेट दिखाया गया था और हरेक मजिल पर मशीनो से बना आदमी । इस के अलावा एक क्राइसलर कार भी थी, जो दुनिया की सब से बडी मोटर बताई गई थी ।

स्पेन और वेटिकन (पोप) के कक्ष मे वे अमूल्य चित्र देखने मे आए, जिन्हे कभी भी अपने स्थान से अलग नही हटाया गया था । माइकल एजेलो, गोया, पिकासो, एलग्रेबो आदि की सर्वोत्तम कृतिया एक ही स्थान पर देखने को मिली । 'अतिम भोज,' 'माता और शिशु' तथा 'ईशु और सत पीटर' के अनेक चित्र यहा सजे थे, जिन मे कइयो की कीमत ५० लाख से दो करोड तक की थी ।

विश्व विख्यात पेय कोकाकोला का पेवीलियन भी हम ने देखा । पेप्सीकोला की वार्षिक बिक्री २०० करोड की है तो इन की ६६० करोड रुपए अर्थात हमारे यहा के टाटा और बिडला दोनो के सारे कारखानो से भी अधिक । इन के स्टाल मे हम ने एक प्रकार का रेडियो देखा । इसे ट्रासफार्मर और रिसीवर का सम्मिलित रूप कहा जा सकता है । इस के द्वारा दुनिया के किसी भी कोने से आपस मे बात की जा सकती है, बशर्ते कि दोनो के पास इसी प्रकार के सेट हो । यह यत्र जनसाधारण के व्यवहार के लिए नही है । केवल सरकारी तौर पर

इस का उपयोग सीमित रखा गया है और अभी प्रारभिक अवस्था मे है ।

कोडक ने अपने कक्ष मे एक रगीन तसवीर दिखाई थी । आकार था, ३६ × ३० फुट । उन का दावा था कि इस आकार का फोटोग्राफ अब तक बन नही पाया है । इन के कक्ष मे ससार के सर्वोत्तम फोटोग्राफ देखने को मिले ।

सभी देशो ने अपनेअपने राष्ट्रीय जीवन और उद्योगधधो का प्रदर्शन किया था । अफ्रीका के देशो के कक्षो मे उन की सस्कृति, कला, प्राकृतिक दृश्य ओर वन्य पशु कम आकर्षक नही लगे । उन्हे अच्छी तरह देखने से एक प्रकार से विश्व भ्रमण हो जाता है ।

अफ्रीकी देशो मे हमे सयुक्त अरब राज्य (मिस्र) का कक्ष अधिक आकर्षक लगा । हमारी तरह इन की भी सस्कृति प्राचीन है । पाश्चात्य के विद्वानो की तो मान्यता रही है कि मानव सभ्यता का विकास नील घाटी से प्रारभ हुआ, पर हमारे मनीपी लोकमान्य तिलक ने अपनी 'वैदिक सभ्यता' मे ऐसी धारणाओ को भ्रमपूर्ण सिद्ध करते हुए बताया है कि वैदिक सभ्यता ही प्राचीनतम है ।

ईसा पूर्व ५००० वर्ष से ईसा पूर्व, २००० वर्षो तक विभिन्न काल में प्रयोग मे आने वाले लोहे, सोने और चादी के गहने, पोशाके, बरतन आदि इस कक्ष मे देखने मे आए । सम्राट् तूतनखामेन का सुवर्ण मडित शव भी वहा देखा । मिस्र की अपनी पिछली यात्रा मे इन वस्तुओं को काहिरा के म्यूजियम मे देखने का अवसर मिला था ।

इस के बाद हम ने इसराइल का कक्ष देखा । इस ने हमे बहुत प्रभावित किया । यहा १६ वर्ष के इसराइल के निर्माण का इतिहास चित्रो के माध्यम से दिखाया गया था । यह यहूदियो का एक मात्र नया राज्य है । हिटलर ने यहूदियो पर अमानुषिक अत्याचार किए जिस से विश्व की सहानुभूति उन के प्रति हो गई ।

द्वितीय महायुद्ध मे यहूदियो ने मित्र राज्यो को तनमनधन से सहायता भी पहुचाई । इसी कारण ब्रिटेन को बाध्य हो कर फिलस्तीन मे यहूदियो के राज्य की माग स्वीकार करनी पड़ी । राज्य बना, पर मिली बजर भूमि और साथसाथ पडोसी अरब राज्यो से भी युद्ध छिडा । बीचबचाव के कारण सधि हो गई, पर मनमुटाव और तनाव अब भी है । सीमात पर मिस्र, सीरिया, ईराक और जोरडन के अरब राज्य पैतरे कसे हुए है । इसराइली किसान कधे पर बदूक लादे खेती और बागवानी करते जा रहे है । इन पंदरहसोलह वर्षो मे इसराइल ने हर क्षेत्र मे विकास और उन्नति की है । जिन वीरान जगहो मे धरती फटी थी और रेत की आधिया चलती थी, आज वहा नाशपाती, अगूर और माल्टा के बागबगीचे है । ससार के सभी देशो मे इसराइल अपने माल्टा और अगूर का निर्यात कर विदेशी धन कमा रहा है । इसराइल की इन्ही झाकियो को देख कर हमे अपने देश के राजस्थान का खयाल हो आया । हम भी तो राजस्थान की मरूभूमि को उपजाऊ बना सकते है । यदि हमारी सरकार इसराइल मे अपने विशेषज्ञ भेज कर आवश्यक जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करे तो निश्चय ही हमे भी सफलता मिलेगी ।

इसराइल का कक्ष बहुत बडा तो नही था, फिर भी था करीने से लगाया हुआ । फिलस्तीन मे ईसामसीह का आज से लगभग दो हजार वर्ष पहले जन्म हुआ था । उस समय की सडके, गाव, रहनसहन के तौरतरीके इतने स्वाभाविक ढग से प्रदर्शित थे कि हम उसी युग मे पहुच गए ।

स्विट्जरलैड के कक्ष मे देखा आल्पस पहाड की गोद मे बसा हुआ एक छोटा सा सुदर गाव । यहा घडियो के पुर्जे बन रहे थे ।स्विट्जरलैड घडियो का देश है और दुनिया मे इस के लिए उस की साख बेजोड है । अमरीका और रूस भले ही अतरीक्ष यान को बनाने मे सफल हुए हो पर जहा घडियो का सवाल है, स्विस स्तर के बारीक पुर्जे वे अब तक नही बना पाए । स्विट्जरलैड मे यह उद्योग इतना अधिक उन्नत है कि विश्व प्रसिद्ध ओमेगा और रोलेक्स के

अलगअलग पुर्जे गृहउद्योग के रूप मे घरो मे वनते है। कारीगर निर्भर योग्य है और मेहनती भी। खुशहाल स्विस गावो को देख कर मन मे यह स्वाभाविक जिज्ञासा उठती है कि हम कव ऐसे सुखी हो पाएगे।

यू० एस० रवर कपनी ने ८० फुट के घेरे का एक विशाल टायर वनाया था, इस मे कुरसियो पर वैठा कर लोगो को चक्कर लगाते देखा। एक तो नौ रुपए शुल्क था, दूसरे चक्कर आने का भय। हम ने तो दूसरो को घूमते हुए देख कर ही सतोष कर लिया।

अत मे लिंकन कक्ष को देख कर हम ने मेले का कार्यक्रम समाप्त किया। हमारे देश मे महात्मा गाधी का जो स्थान है, वह अमरीका मे जार्ज वाशिंगटन का है और अब्राहम लिंकन के प्रति वहा की जनता मे हमारे स्वर्गीय नेहरूजी की तरह श्रद्धा है।

लिंकन वकालत करते हुए राजनीति मे आए और अमरीका के प्रेसिडेट निर्वाचित हुए। अमरीकन नीग्रो के हित एव अधिकार के समर्थन के कारण एक गोरे आततायी ने उन्हे गोली मार दी थी।

लिंकन कक्ष मे उस समय की साजसज्जा के साथ ह्वाइट् हाउस का लिंकन का कमरा दिखाया गया था। हम ने देखा, लिंकन अपने दैनिक काम मे व्यस्त है, विदेशो के प्रतिनिधि इकट्ठे है और उन के वीच लिंकन वह घोषणापत्र पढ कर सुना रहे है, जिस मे नीग्रो नागरिको को दासत्व से मुक्ति दे कर स्वाधीनता का अधिकार दिया था। वाल्टर डिजनी द्वारा प्लास्टर या मोम की बनी लिंकन की प्रतिमा देख कर कृत्रिम होने का आभास तक न होता था। विलकुल स्वाभाविक रूप मे लिंकन का अग सचालन एव होठो का हिलना कम आश्चर्य जनक नही था। सव से बडी बात तो यह थी कि यह प्रतिमा लिखती थी और वोलती भी थी।

कौतूहल हम दबा न सके और हम ने कक्ष के प्रवधक से इस के वारे मे पूछा। पता चला कि इस वात की गहरी गवेषणा की गई कि इस आकृति के मानव की आवाज कैसी होगी, जिस प्रदेश के और जिस समय के लिंकन थे उस स्थान और समय की भाषा कैसी थी? इसी प्रकार वैज्ञानिक आधारो पर टेप रेकार्डिंग कर यत्र को प्रतिमा के अदर वैठा दिया गया है। अग सचालन का नियत्रण अलग से किया जा रहा है। विज्ञान जो न करे!

विश्व मेले देख कर हम लौट रहे थे। मै यही सोच रहा था कि आज के युग मे उद्योग व्यापार और राष्ट्र की गतिविधि के लिए प्रचार कितना अनिवार्य हो उठा है। इसी प्रकार के मेलो से विश्व के विभिन्न देशो के नागरिक जीवन, शिल्पउद्योग की स्थिति और प्रगति के वारे मे अच्छी तरह से जानकारी हो जाती है। भारत आ कर अपने मित्रो एव परिवार वालो को मैं ने केवल न्यूयार्क के विश्व मेले को देखने के लिए ही अमरीका जाने की सलाह दी। मेला इतना लोकप्रिय एव सफल रहा कि इसे सन १९६५ मे भी चालू रखा गया।

●

दुनिया की समस्या सुलझाने वाला, खुद उलझा हुआ
ग्रेट ब्रिटेन

अगरेज अपने छोटे से देश को सिर्फ ब्रिटेन ही नही कहते बल्कि ग्रेट ब्रिटेन भी कहते हैं।

ब्रिटेन अब भले ही ग्रेट न रह गया हो पर था एक जमाना इस का भी। सपूर्ण पृथ्वी पर जगहजगह फैले हुए इस के विस्तृत साम्राज्य मे सूर्य अस्त नही होता था। इस की सेना पृथ्वी के पाचो महाद्वीपो मे सीना फुलाए, सगीने ताने खडी रहती थी। इस के जगी जहाजो के बेडे सागर की लहरो पर शान से बेरोक-टोक घूमते थे। इस के व्यापारी जहाज देशविदेशो से सोनाचादी, जवाहरात, धातु और कच्चा माल ला कर ब्रिटेन को दोलतमद बनाते थे। वास्तव मे ब्रिटेन महान था, ग्रेट था। उस का लोहा सभी मानते थे।

सन १९३० तक ओसत भारतीय अगरेज को देख कर भयभीत सा हो जाता था। यही कारण था कि तैतीस करोड भारतीयो पर अगरेजो ने अपनी एक लाख ब्रिटिश फोजो से लबे समय तक शासन किया।

मैकाले के समय से ही शिक्षा के पाठ्यक्रमो मे अगरेजी की बडाई, उन के धर्म और सस्कृति की श्रेष्ठता आदि का इस ढग से समावेश किया गया कि भारतीय विद्यार्थी अगरेज, अगरेजी और अगरेजियत के अधभक्त बनते गए। लोगो मे यह धारणा बन गई कि रेल, डाकतार, पक्की सडकें, नहरे, बिजली आदि अपने देश मे अगरेजो के बदोलत ही हम देख पाए। स्मिथ ओर मार्सडन का इतिहास पढ कर हम टीपू सुलतान, मिराजुद्दोला, चेतसिह, महराज नदकुमार आदि सब को कुचक्री, विलासी ओर डरपोक मानने लगे जब कि क्लाइव, वारेन हेस्टिग्स और डलहौजी का असली रूप हमारे सामने कभी भी नही आ पाया।

जो भी हो, सन १९२० से १९४७ तक गाधीजी के नेतृत्व मे जो स्वराज्य आदोलन चला, उस से देश मे राजनीतिक चेतना जाग उठी। जनसाधारण यह समझने लगा कि अगरेजो की मशा भारत की सेवा करना नही बल्कि शासन और शोपण करने की हे।

दो महायुद्धो के कारण ब्रिटेन कमजोर हो गया ओर उस का खोखलापन सामने आ गया। इसी कारण अपनी रक्षा के लिए अगरेजो को सिमटने के लिए बाध्य होना पड़ा। एकएक कर के भारत, लका, बर्मा मलाया आदि सब अधीन देशो को उसे स्वतत्रता देनी पडी। ग्रेट ब्रिटेन नाममात्र को ग्रेट रह गया।

बचपन से ही जिज्ञासा थी कि अगरेज इतने बढे कैसे? महाभारत की कथाओ मे हम ने पढा था कि भारत भी कभी ससार मे श्रेष्ठ माना जाता था। अश्वमेध यज्ञ मे हस्तिनापुर और इन्द्रप्रस्थ मे विश्व के कोनेकोने से प्रतिनिधि आए थे, साथ मे भेट उपहार भी लाए थे। उस

समय के बाद हमारा पतन हमारी आपसी लडाई के कारण हुआ। उस के बहुत बाद भी छोटीछोटी बातो को ले कर कभी राठौर और बुदेलो मे, तो कभी सिसोदियो और तवरो मे, लडाइया होती रहती। इतना ही नही बल्कि वे एकदूसरे को नीचा दिखाने के लिए मुगलो और पठानो से भी मिल जाते। लेकिन ठीक इस के विपरीत अगरेज अपने देश मे स्काट, नार्मन, डेन, रोमन आदि को मिलाते गए और वे सब ब्रिटिश बन गए जब कि हम एक रक्त तो क्या, एक स्वर भी नही हो सके। इसी के चलते ब्रिटेन की सर्वांगीण उन्नति और हमारी गुलामी का इतिहास बना।

ब्रिटेन के भूगोल को पढने से बता चलता है कि इस की धरती की कोख मे खनिज पदार्थो का प्राचुर्य तो है—पर अन्न कम है। खाद्यानो के लिए इसे सदैव विदेशो पर निर्भर रहना पडता है। छोटा सा द्वीपपुज है, चारो ओर सागर की जलराशि से घिरा हुआ है। खाद्यान्न लाने के लिए जहाजो की जरूरत इसे हमेशा से रही है। स्वरक्षा और सुरक्षा के लिए भी जहाजी बेडे को तैयार रखना पड़ता है। इन्ही कारणो से, यह अपनी नौसेना को हर तरह से साधन-सपन्न और सुसज्जित रखता आया है।

ब्रिटेन द्वारा साम्राज्य का विस्तार भी उस की एक आवश्यकता की प्रतिक्रिया थी। अपनी दलदली जमीन, बढती हुई आबादी और खाद्यान्नो की कमी के कारण इस का विदेशो मे फैलना स्वाभाविक था। यूरोप मे यह सहज और सभव नही था क्योकि वहा पहले से ही फ्रास, आस्ट्रिया, जरमनी, स्पेन आदि पासपडोस मे थे जिन की ताकत इस से कम नही थी। इसलिए अगरेजो ने दूर के देशो मे पैर फैलाने शुरू किए। यो तो फ्रास, हालैड, स्पेन और पुर्तगाल भी इस के प्रतिद्वद्वी हो कर पहले से ही वहा जमे हुए थे मगर अगरेजो की कूटनीति और धूर्तता के कारण वे पिछड गए। अगरेजो का शासन यथार्थ रूप से सागर की लहरो पर हो गया। अगरेज बडे गर्व से लिखते और कहते कि बरतानिया लहरो पर राज्य करता है।

भारत मे आए थे व्यापारी बन कर। जहागीर के दरबार मे सर टामस रो ने घुटने टेक कर, दस्तबस्ता हो कर व्यापार के लिए कुछ सुविधाओ के लिए अर्जी मजूर करवाई थी, पर थोडे समय बाद ही जब पैर जमने लगे तो भारतीयो को आपस मे एकदूसरे से भिडा कर हेस्टिग्स की रवानगी तक देश के बहुत से हिस्सो पर इन्होने अपना आधिपत्य जमा लिया।

१७८२ मे इन्हे अमरीका मे जार्ज वाशिगटन से करारी हार खानी पडी। तब से इन का सारा ध्यान भारत की ओर हो गया, क्योकि कच्चा माल यहा से यथेष्ट मिल सकता था। यहा का धनवैभव आखो मे चमक पैदा कर रहा था। अमरीका मे योजना विफल हो गई थी। कनाडा और अफरीका के देश उस समय तक अविकसित थे। भारत पारस्परिक फूट मे बिखर रहा था इसलिए भारत ने ब्रिटेन को सर्वाधिक आकर्षित किया।

मुगल साम्राज्य लडखडा रहा था। उस के प्रातीय गवर्नर या सूबेदार अथवा निजाम स्वतत्र थे, जो आपस मे लडतेभिडते और सधि करते थे। राजस्व मिल नही रहा था। केद्रीय शासन चलता कैसे? शहशाहे हिंदुस्तान शाहआलम का शासन लालकिले से पालम तक रह गया था। अगरेज मौकेबेमौके किसी न किसी बहाने, कभी एक का और कभी दूसरे का पक्ष ले कर राजेनवाबो को आपस मे लडाते रहते थे। इस प्रकार भारतीय राजनीति मे इन का प्रवेश हो गया। पलासी के युद्ध मे इसी तरह की कूटनीति से इन को आशातीत सफलता मिली। मराठो के साथ भी इन्होने यही नीति अपनाई। परिणामस्वरूप इन्हे अपार धनराशि हाथ लगने लगी। अगरेजी जहाज सोनाचादी और जवाहरात के सदूको को लादलाद कर लदन पहुचाने लगे।

राबर्ट क्लाइव और वारेन हेस्टिग्स ने तो भारत मे ऐसे अत्याचार किए और लूट मचाई कि शरीफ अगरेज आज भी इन का नाम सुन कर शर्मिन्दा हो जाता है। इसी प्रकार अगरेजो

ने एशिया और अफ्रीका के पिछडे देशो चीन, स्याम, मलाया, ईरान, ईराक व मिस्र को भी न छोडा, यहा तक कि चीन को जबरन अफीम खिलाने के लिए युद्ध छेड दिया। इस तरह फटेहाल ब्रिटेन खुशहाल बन गया।

सन १९१४ के प्रथम महायुद्ध तक ब्रिटेन का दबदबा विश्व के सभी देश मानते थे। आज जिस प्रकार अतर्राष्ट्रीय व्यापार मे डालर को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त है और लेनदेन भी ज्यादातर इसी के माध्यम से होता है, उसी प्रकार प्रथम महायुद्ध तक ब्रिटिश पाउड को विश्व के बाजारो में मान्यता मिली हुई थी। उन दिनो अमरीका को अपने खनिज पदार्थो के अपार वैभव का पता तो चल गया था पर सैनिक शक्ति मे वह ब्रिटेन, जरमनी और फ्रास से पिछडा हुआ था इसलिए विश्व के रगमच पर प्रथम श्रेणी मे नही था।

युद्ध साढे चार साल तक चला। ब्रिटेन की भोगोलिक स्थिति और ब्रिटिश जनता के त्याग, बलिदान, साहस और देशप्रेम ने जरमनो की बडी शकित को धैर्यपूर्वक रोका। बहुत बडी सख्या मे भारत के बहादुर जवान युद्ध मे शहीद हुए। युद्धऋण और सहायता के नाम पर खरबो रुपए का सामान और सोना भारत से जबरन ब्रिटेन ले जाया गया। अजेय जरमनो को केवल भारतीय सेना ओर अमरीकी साधन ही रोक सके थे, वरना यूरोपीय फौजे तो घुटने टेक चुकी थी। ब्रिटेन ने वादा किया कि युद्ध समाप्त होने पर वह भारत को ओपनिवेशिक स्वराज्य देगा।

युद्ध समाप्त हुआ। भारत को पुरस्कार मिला—जलियावाला बाग का हत्याकाड और रौलट ऐक्ट। शोषण और दमन की चक्की जोरो से चल पडी।

भारतीय जनता अपमान, दुख और क्षोभ से विकल हो उठी। दरअसल, यही से अगरेजो की राजनीति और कूटनीति के कारण उन के प्रति भारतीयो के मन मे सदेह बढता गया और पारस्परिक सबध बिगडते गए।

जो भी हो, अगरेजो मे एक सब से बडा गुण रहा है, उन का स्वदेश प्रेम। दूसरे देशो के प्रति जहा अवसरवादिता और वादाखिलाफी की नीति उन्होने बरती, वही अपने देश के प्रति ऊची वफादारी और त्याग की भावना उन मे सदैव रही हे। ब्रिटिश, चाहे स्काट हो या इगलिश, रोमन कैथोलिक हो या प्रोटेस्टेट, हमारी तरह भाषा, प्रदेश या धर्म के कारण कभी भी बिखरे नही। यही वजह है कि विश्व मे प्रजातत्र की व्यवस्था यहा सर्वाधिक सफल रही है। ब्रिटिश ससद के प्रति इन की श्रद्धा ओर अनुशासन को दूसरे देशो मे उदाहरणस्वरूप माना जाता है।

अगरेजो से मेरा १९२५ से ही घनिष्ठ सबध रहा है। मै ने यह महसूस किया कि राजनीतिक दावपेच मे वे भले ही दूसरे देशो के प्रति कुटिल हो, पर व्यापारिक व्यवहार मे वे अन्य देशो की अपेक्षा कही अधिक निर्भर योग्य हे। घटिया माल दे कर ग्राहक को धोखा देने की बात शायद ही कोई ब्रिटिश फर्म सोचेगी। इस ढग के व्यवहार से राष्ट्र की प्रतिष्ठा मे बट्टा लगता है, इस का उन्हे बडा ध्यान रहता है।

सन् १९३५ तक हमारे यहा महीन कपडे ज्यादातर ब्रिटेन के मेनचेस्टर से या लकाशायर से आते थे। इनके अर्ज, माप और किस्म मे किसी प्रकार की शिकायत का मौका नही आया। भारत मे जो अग्रेजी फर्मे आयात का व्यापार करती थी, वे अपने लाभ मे से वैनियन, दलाल, मुकादम और दुकानदार को भी हिस्सा देती थी इसलिए इनके प्रतिष्ठानो के प्रति सैकडो व्यक्तियो की शुभकामनाए रहती थी और उनको हर प्रकार का सहयोग उनसे मिलता था। जब से भारतीयो के हाथ मे कारोबार आया, उन्होने सबको हटाकर सब काम स्वय करना शुरूकर दिया।

मैं ऐसे कई अग्रेजो को नजदीक से जानता हू जिन्होने अवकाश ग्रहण कर भारत से स्वदेश जाते समय कारोबार का अपना हिस्सा अपने भारतीय सहयोगियो को अत्यत उदार शर्तो पर

बेच दिया। एक लबी अवधि तक ब्रिटिश फर्म मे काम करने के कारण बहुत से अग्रेज मेरे मित्र हो गए थे। वे बराबर लदन आने के लिए मुझे निमत्रण देते। अपने देश का वर्णन करते समय उनके चेहरे पर एक प्रकार की चमक आ जाती थी। उनके स्वर मे गर्व की मधुर गूज भी रहती थी।

मेरी घुमक्कडी प्रवृति शुरू से ही रही है, इसलिए इच्छा होती थी कि यूरोप देख लू पर सन् १९३८ तक यह सभव न हो सका। इसके बाद द्वितीय महायुद्ध छिड गया और सारी सभावनाए समाप्त हो गई।

इस समय तक ब्रिटेन और हमारे पारस्परिक सबध न केवल बिगडते ही गए बल्कि उनमे कटुता भी बढती गई। अपनी इच्छा के खिलाफ हमे ब्रिटेन के पक्ष मे द्वितीय महायुद्ध के दौरान अपनी फौज और प्रचुर युद्ध सामग्री भेजनी पडी। दिल से हम ब्रिटेन की हार की मनौतिया मानते थे। प्रत्येक रात्रि हम लोग बर्लिन रेडियो पर ब्रिटेन की हार और जर्मनो की जीत की खबरे सुनते और अपने मित्रो और परिवार मे उसकी चर्चा बडे उत्साह से करते थे। देश के अधिकाश लोग हिटलर को भारत का हितैषी, चरित्रवान और बहादुर समझते थे। शत्रु का शत्रु सदैव मित्र हो जाता है।

अग्रेजो की कूटनीति और हिटलर के दभ के कारण इस बार भी अमरीका व रूस ब्रिटेन के पक्ष मे युद्ध मे उतर पडे। अमरीका के पास अटूट साधन और सामान था, उसकी फौजे भी ताजादम थीं। उधर जरमनी थक गया था। इसलिए लम्बे समय तक जरमन टिक न पाए। सन् १९४५ मे उनकी फौजो ने हथियार डाल दिए। मित्रशक्तियो की जीत हुई, ब्रिटेन विजयी हुआ। पर जीत उसे महगी पडी। वह जर्जर हो गया। जीत कर भी हार गया। विश्व राजनीति मे प्रथम शक्ति का पद अब मिला अमरीका व रूस को। महाजन ब्रिटेन, अमरीका और भारत का कर्जदार बन गया। सन् १९४७ मे उस पर हमारा चौदह अरब रुपयो का कर्ज था।

सन् १९४६ से १९५० तक सकट और आभाव मे रहकर ब्रिटेन ने जिस प्रकार अपना पुनर्गठन किया, वह सभी देशो के लिए और खासतौर मे हमारे लिए अनुकरणीय है। स्वय अपने को अभाव मे रखकर विदेशो मे माल निर्यात कर उन्होने न केवल कर्ज चुकाया बल्कि आज बहुत से देश उनके कर्जदार है। अपने 'अधीन' भारत से उन्होने कर्ज लिया, स्वाधीन भारत का कर्ज चुकाया और उसे फिर कर्ज दिया।

उन्होने महीने मे चार औस मक्खन, छ औस चीनी, १५ अडे और अपेक्षित खुराक से कम चावल और आटे के राशन पर शाति और धैर्य्य से वर्षो गुजार दिए। किसी ने सरकार से न शिकवाशिकायत की और न इस कठोर व्यवस्था की आलोचना ही। अनुशासन और समता की भावना का इसी से अन्दाजा लग जाता है कि किसी धनी व्यक्ति ने अधिक मूल्य देकर दूसरे के हिस्से को हथियाने की कोशिश नही की। यही वजह है कि यूरोप के सभी देशो मे जब काले बाजार की कालिमा छाई हुई थी, ब्रिटेन मे उसका नामोनिशान तक न था।

मुझे सन् १९५० मे पहली बार लदन जाने का मौका मिला। उस समय मैंने देखा कि लदन के अधिकाश हिस्से खडहर हो रहे थे। जरमनो की बमबारी से मकान, अस्पताल, गिरजे सभी ध्वस्त हो गये थे। अगरेज गभीर था पर उसके चेहरे पर उदासी के साथ दृढता भी थी। उन दिनो वहा विदेशियो को तो पूरी खुराक मिलती थी पर अगरेज नागरिक आशिक खुराक पर ही सतुष्ट थे। मकान, गिरजे और दुकाने अभी भी टूटी फूटी थी। पाच वर्षो के लबे समय मे भी इनकी मरम्मत नही हो सकी, यह मेरे लिए आश्चर्य का विषय था। पूछने पर उत्तर मिला "इन पर बाद मे ध्यान दिया जाएगा। सबसे पहले निर्यात को हम सगठित करना चाहते है इसलिए कारखानो और जहाजो पर ध्यान दिया जा रहा है।"

उन दिनो लदन की सडको पर स्वस्थ और जवान अगरेज बहुत ही कम दिखाई पडते थे।

ज्यादातर युद्ध मे काम आ चुके थे या घायल होकर बेकाम हो गए थे । पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो की सख्या काफी अधिक थी ।

पेट और शरीर की भूख मिटाने के लिए माताए अपनी जवान बेटियो के लिए साथियो की तलाश मे रहती थी । कभी-कभी तो समाचार पत्रो मे इस ढग के विज्ञापन भी पढने को मिलते थे कि सुदरी युवती को धनी विदेशी यात्रियो की सेवा के लिए गाइड अथवा निजी सचिव के रूप मे काम चाहिए, जो उनके साथ विदेशो की यात्रा के लिए भी राजी है । पर यह सब कुछ था व्यक्तिगत सीमा तक । राष्ट्रीय मर्यादा और सघर्ष मे सब एक से थे । कही भी चूके नही थे ।

विदेश यात्रा का पहला मौका था । स्विट्जरलैड से सीधे लदन गया । स्विट्जरलैड का जीवन व्यवस्थित और शात देखा । युद्ध से वह बिगडा नही था, बल्कि दूसरे देशो को ऊँचे दामो मे वस्तुए बेच कर समृद्ध हुआ था । जब लदन पहुचा तो वहा का वातावरण ही बदला हुआ नजर आया । लगा, लोग चलते नही बल्कि दौडते थे । किसी को बात करने या सुनने का समय नही । सबसे ज्यादा मुझे वहा की यातायात ओर परिवहन की व्यवस्था ने प्रभावित किया । हजारो दो तल्ले की बसो के अतिरिक्त शहर मे भूगर्भ ट्रेनो का जाल सा बिछा है । कार्यकाल के समय प्रतिमिनट ट्रेनो का आवागमन, सवारियो का अनुशासन और समय की पाबन्दी ने मुझे विस्मय मे डाल दिया । अस्सी लाख की आबादी के घने बसे शहर मे लोगो को अपनी व्यक्तिगत सुविधा के लिए कही भी अनुशासन भग करते नही देखा । सभी कुछ मानो यत्रवत चल रहा हो ।

अभाव से स्वभाव बिगडता है, सभी देशो और व्यक्तियो पर यह बात लागू होती है, मात्रा मे कमी बेसी का अतर भले ही हो । रूस मे पिछले पचास वर्षो से साम्यवादी व्यवस्था होने के बावजूद अभी तक काला बाजार है । इसी तरह किसी देश मे वेश्यावृत्ति, कही पाकटमारी और गुडागर्दी है तो कही ठगी । यूरोप मे स्कैंडिनेविया के देशो—डेनमार्ग, फिनलैड, स्वीडन, नार्वे और स्विट्जरलैड को छोडकर बाकी सभी देशो मे समाजविरोधी तत्व न्यूनाधिक मात्रा मे है । ब्रिटेन भी इससे मुक्त नही । गुडागर्दी और पाकेटमारी यहा है पर और देशो से कम । दक्षिणी यूरोप मे, जहा विदेशियो को बेहिसाब ठगा जाता है वहा ब्रिटेन मे अगरेज विदेशियो के प्रति सदैव सतर्क रहते है ताकि उनके राष्ट्र का चित्र दागी न हो जाए ।

लदन के पुलिस वालो को देखकर पता चलता है कि इनके पुलिस वाले दडधारी यमदूत नही बल्कि नागरिको के सच्चे साथी है । हमारे यहा के पुलिस वालो मे और उनमे जमीनआसमान का अतर है । अपने यहा के कानून के रक्षक किस ढग से और किस हद तक गैरकानूनी कार्यवाही करते है, इसका परिचय हमे प्रेमचद से लेकर अब तक के साहित्य मे मिलता है ।

लदन मे कास्टेबिल दिखाई पडे । सबल और स्वस्थ छ फुटे जवान, जो बडे ही विनम्र, प्रशिक्षित और कर्तव्यनिष्ठ लगे । विदेशियो को हर तरह की सहायता देने को वे हमेशा तत्पर रहते है । बच्चो के तो वे खास दोस्त कहे जा सकते है । सडक, मुहल्ले, प्रसिद्ध मकान और व्यक्तियो की जानकारी के लिए वे चलती फिरती डायरेक्टरी है ।

मै किसी सडक को खोजता इधरउधर जा रहा था । पास आकर भद्रतापूर्वक एक कास्टेबिल ने अभिवादन किया और कहा, "क्या मै आपकी कुछ सहायता करू ?"

मैने सडक का नाम और मकान का नम्बर बताया । उसने बडे शाइस्ता ढग से मुझे सही और आसान रास्ता बता दिया ।

चूकि यह मेरी पहली विदेशयात्रा थी, अत व्यक्तिगत अनुभव तो कुछ था नही । देश से चलते समय मित्रो ने सलाह दी थी कि कम कपडे साथ रखे जाए ताकि सफर हल्का रहे । सलाह ठीक थी पर व्यावहारिक नही हो सकी, क्योकि लदन का मौसम दिन मे कई बार

बदलता है और हल्की बूदाबादी होती ही रहती है ।

कुछ कमीजे और हैट खरीदने के लिए मै सेल्फिज के प्रसिद्ध स्टोर मे गया । यह आक्सफोर्ड स्ट्रीट पर स्थित है । सुई से ले कर हाथी तक बेचनेवाली दुकानो मे इस की गिनती है । खानेपीने, विश्राम, किताब, पढने, रेडियो और टेलीविजनसुननेदेखने की सारी सुविधाए यहा सहज उपलब्ध है । हजारो आदमी इस स्टोर के विभिन्न भागो मे घूमते रहते है । स्टोर कई मजिलो का है । मै ने सभी मजिलो मे घूम कर पूरी दुकान का चक्कर लगा दिया । रेडिमेड कपडो के दाम हमारे यहा से अधिक नही थे । ब्रिटेन मे चीजो पर सेलटैक्स अवश्य बहुत ज्यादा है पर पासपोर्ट दिखाने पर विदेशियो को इस की छूट है ।

भूख लग आई थी इसलिए वही रेस्तरा मे नाश्ता कर लिया । ऐसे डिपार्टमेंटल स्टोरो मे रेस्तरा के चार्ज अपेक्षाकृत कम रहते है इसलिए बहुत से लोग केवल जलपान करने के लिए यहा आ जाते है । यहा पहली बार स्वचालित सीढियो पर चढने का मुझे मौका मिला । मेरे लिए यह एक नया अनुभव था । अब तो हमारे देश मे भी दिल्ली के रेलवे स्टेशन और कलकत्ता के रिर्जव बैंक के भवन मे ऐसी व्यवस्था हो गई है ।

मुझे एक अगरेज मित्र से मिलना था, कलकत्ता से ही उन से पुराना परिचय था । वह रिटायर होकर कई वर्षो से लदन मे काम कर रहे थे । वह बडे प्रेम से मिले । भारत मे जो अभिमान की झलक उन मे पायी थी, उसका यहा सर्वथा अभाव था । भारत के पुराने मित्रो के बारे मे वह विस्तारपूर्वक पूछने लगे । मनुष्य को अतीत की स्मृतियो की परते खोलने मे बडा ही रस आता है दूसरे दिन उन्होने नाश्ते पर मुझे अपने घर आमत्रित किया ।

शहर से लगभग आठ मील दूर उन का छोटा सा फ्लैट था । उन के पास न कोई नौकर था, न आया । सब काम पतिपत्नी स्वय अपने हाथो कर रहे थे । कलकत्ता मे कई बार उन के यहा जाने का मौका मिला था । वहा उन के पास पाचछ नौकर थे । यहा घरेलू काम सब हाथ से करने पडते है । दूसरे कई परिचित अगरेजो के बारे मे पूछने पर पता चला कि कोई सूअरो व अडो का काम कर रहे है तो कोई ट्रक चला रहा है ।

पता ले कर दूसरे दिन सुबह ट्रेन से मिस्टर जॉन के गाव पहुचा । पतिपत्नी दोनो मजदूरो से मैले कपडे पहने मुर्गियो के बाडे को साफ कर रहे थे, अडे सहेज कर बिक्री के लिए टोकरो मे रख रहे थे । मुझे अप्रत्याशित रूप मे देख कर बडे ही प्रसन्न हुए । पास मे ही छोटा सा साफसुथरा घर था । वे मुझे वहा ले गए और बहुत अच्छा खाना खिलाया । शाम को उन्होने अपनी मोटर से स्टेशन पहुचा कर मुझे छोडा । मैं जॉन के साथ बहुत दिनो तक कलकत्ता मे काम कर चुका था पर इस समय वह जॉन नही था जो गुस्सा होने पर मुझे धमका देता था ।

शिष्टता के नाते यहा बड़ेबडे दुकानदार, होटल वाले या पुलिस वाले विदेशियो को 'सर' कह कर संबोधित करते है । जब अगरेजो के द्वारा मुझे 'सर' कह कर सबोधित किया गया तो मेरे अदर गुदगुदी सी होने लगी । पराधीन भारत मे हम अगरेजों को बातबात में 'सर' कहने के आदी हो गये थे । हालत यहां तक थी कि मेरे कई भारतीय मित्र अपने जूट के काम की देखभाल के लिए नियुक्त अगरेज कर्मचारियो को भी स्वाभाववश 'सर' कह कर सबोधित करते थे ।

दूसरे दिन सुबह नाश्ते के बाद शहर का नक्शा और गाइडबुक जेब मे रख घूमने निकल पडा ।

लदन का सेट पाल कैथेड्रल विश्वप्रसिद्ध है । यो तो इसे लगभग सन ६०० मे बनाया गया था पर कई बार आग लग जाने के कारण इस का पुर्ननिर्माण होता रहा है । प्रोटेस्टेंट ईसाइयो का यह सब से बडा केंद्र माना जाता है । ईसाइयो के इस सप्रदाय की स्थापना प्रसिद्ध जरमन चितक मार्टिन लूथर ने की । प्राचीन-पथी कैथोलिको के गुरुडम और आडबर के विरोध मे

उस ने नवीन विचारों और सस्कारो को प्रस्तुत किया था। जरमनो के लिए यह भाग्य की बात है। मगर युद्ध की ज्वाला मे धार्मिक या ऐतिहासिक मान्यताओ को पूछता कौन! प्रोटेस्टेंट जरमनो की बमबारी मे सन १९४१ मे इस विशाल गिरजे का बहुत सा भाग ध्वस्त हो गया था।

ब्रिटेन मे राष्ट्रीय मान के लोगो को यहा समाधिस्थ कर गौरव प्रदान किया जाता है। यहा कई सम्राट, मनीषी, साहित्यकार और राजनीतिज्ञो की समाधिया हैं। ऊपर के गुबद से लदन का बहुत बडा भाग साफ दिखाई देता है। इस की ऊचाई ३६५ फुट है, अर्थात कुतुबमीनार से १०० फुट अधिक।

रविवार के कारण हजारो स्त्रीपुरुष प्रार्थना के लिए आ रहे थे। मुझे ऐसा लगा कि हमारे यहा भी महज दिखावे के लिए व्यक्तिगत मेलमिलाप के लिए जिस प्रकार आज कल लोग मदिरो मे जाते है, वैसा ही कुछ ढग यहा का भी है। महिलाओ के साथ उन की जवान बेटिया भी थी, जिन्हे शायद इसलिए सजा कर साथ लाया गया था कि ईसा मसीह की दया से किसी युवक की निगाह पड जाए तो कन्याभार से मुक्ति हो। मेरी भी इच्छा हुई कि मै भी गिर्जे की प्रार्थना मे शामिल हो जाऊ। उपासना के सभी स्थान तो एक से ही है। पर पता नही क्यो झेप सा गया। शायद लदन मे नयानया आया था इसलिए या फिर मेरे भारतीय सस्कारो ने मुझे रोक दिया। धीरेधीरे उस मेले से मै हट गया।
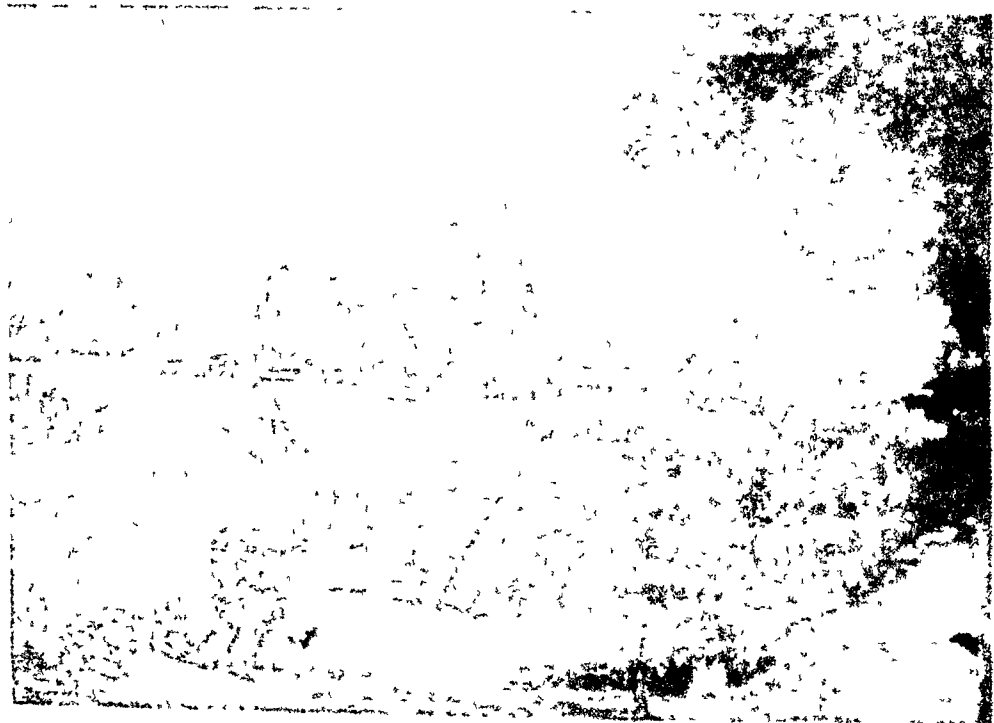
सर्वाधिक सम्मान केवल सम्राटों को ?

लंदन—१

ससार के सभी बड़े शहरो की अपनीअपनी विशेषता होती है । कोई ऐतिहासिक है तो कोइ आधुनिक । किसी का धार्मिक महत्व है तो कही चहल-पहल और चुहल है । लदन मे इन सभी बातो का समावेश है । मुझे ऐसा लगा, मानो इस का अपना एक निजी सौष्ठव है जो न मास्को मे देखने मे आया न पेरिस मे । सेट पाल्स केथेड्रल कल देख चुका था । आज ब्रिटेन का दूसरा वडा गिरजा और मठ वेस्टमिंस्टर एबे देखने गया । हजारो वर्ष पहले मठ या विहार के रूप मे यह बना था । बाद मे इस मे परिवर्तन होते गए । फिर भी लदन की सब से पुरानी इमारतो मे यह है ।

ईसाइयो मे अपने एबे के प्रति बडी श्रद्धा रहती है । दरअसल, हमारे यहा के मठ या बौद्ध विहारो की ही तरह यह भी साधुओ का आवास है । अतर केवल इतना है कि हमारे मठ या विहार ईसाइयो के एबे की तरह भव्य नही होते । एबे के बडेबडे ऊचे कक्ष और यहा के ईसाई संन्यासियो या साधुओ के पहनावे और चाल मे हमे सहज और सरल भाव नही लगा जिस का होना वैरागियो या त्यागियो के लिए अपेक्षित है। फिर भी लगन, निष्ठा और कठोर अनुशासनप्रियता के कारण इन की मान्यता इस वैज्ञानिक युग के जनसमाज मे भी है।

वेस्टमिनिस्टर एबे का प्रभुत्व इगलैड के इतिहास और उस की राजनीति पर मध्य युग तक रहा है । शासको को सदैव यहा के प्रधान धर्मयाजक की स्वीकृति ले कर शासन अथवा सविधान मे परिवर्तन करना पडता था । उन के व्यक्तिगत जीवन और वैवाहिक सबधों पर भी यदि एबे कें कार्डिनल की सहमति नही मिलती थी तो स्थिति बडी समस्यापूर्ण हो जाती थी । जनता की दृष्टि मे कार्डिनल देश के सर्वोच्च धर्माधिकारी थे । उधर सम्राट देश के शासक थे । सत्ता के लिए आपस मे इन के सघर्ष होते रहते थे । हेनरी अष्टम के राज्यकाल मे दोनो के आपसी सबध बहुत कटु हो गए थे पर उस ने तलवार के सहारे समस्या सुलझा ली । कार्डिनल बैकेट की गर्दन उतरवा दी गई थी ।

यूरोप मे गाइड बहुत महगे पडते हैं इसलिए टोलियो मे यात्री दर्शनीय स्थानो को देखने जाते है । मैं अकेला था इसलिए गाइड साथ नही लिया । फिर भी मुझे असुविधा नही हुई क्योकि वहा के सहायक पादरी सब प्रकार की जानकारी दे रहे थे । प्राचीन गोथिक शैली पर वना हुआ यह भवन बहुत ही भव्य है । इस के प्रति ब्रिटेन के लोगो मे इतनी श्रद्धा है कि सेंट पाल गिरजे की तरह यहा भी राष्ट्र के प्रमुख व्यक्तियो को समाधि दे कर उन की स्मृति को गौरवान्वित किया जाता है । पिछले ६०० वर्षो मे सैकडो की सख्या मे ब्रिटेन के सम्राट

सेनापति, वैज्ञानिक यहा दफनाए गए है। यही मैं ने हार्डी, लिटन, थेकरे, विलियम स्काट आदि प्रसिद्ध लेखको की कब्रे देखी। कवियो मे किपलिग, ब्राउनिग, टेनिसन भी चिरनिद्रा मे यहा सोए हुए है। मुझे पढने का शौक वर्षो से रहा है। जिन प्रिय लेखको को इतने समय से पढतासुनता आ रहा था, उन सबों की समाधि एक ही स्थान पर देख कर मन नाना प्रकार की भावनाओ से भर गया। श्रद्धानत हो कर उन की समाधियो पर अपने साथ लाए फूल चढाए।

मेरा खयाल था कि ब्रिटेन मे सर्वाधिक मान सम्राटो के बाद राजनीतिज्ञो को मिलता रहा है। वेस्टमिंस्टर एबे देखने पर इस भ्रम का निवारण हुआ। राजनीतिज्ञ नेताओ से भी कही अधिक प्यार ओर इज्जत ब्रिटेन मे लेखको, कवियो और सैनिको को दी जाती रही है। यही कारण है कि वहा की धरती ने जहा शेक्सपीयर, बर्नार्ड शा जैसे साहित्यिक पदा किए वहीं वेलिग्टन और नेलसन जैसे रणबाकुरे भी।

पार्लियामेट हाउस वेस्टमिंस्टर के पास ही है। उन दिनो सत्र चल नही रहा था इसलिए यहा बैठक देखने की इच्छा दबी रह गई। बहरहाल, इस पर लगी विश्वविख्यात विशाल घडी 'बिगबेन' को देख कर ही सतोष कर लेना पडा। पार्लियामेट भवन भी गोथिक वास्तु शैली पर बना है। आकर्षक और प्रभावपूर्ण लगता है पर हमारे भारतीय ससद भवन की तरह बडा और शानदार नही।

दोपहर हो आई थी। लच के लिए इडिया हाउस चला गया। यो तो लदन मे भारतीय ढग का निरामिष भोजन कई जगह मिल जाता है, पर सस्ते और बढिया भोजन की व्यवस्था इडिया हाऊस (भारतीय दूतावास) मे ही है। लच के समय भारतीय यहा काफी सख्या मे मिल जाते है। इन की सख्या इतनी अधिक है कि मिलने पर एकदूसरे के प्रति उतने आकृष्ट नही होते जितने कि विदेशो मे दूसरी जगह।

इन दिनो उत्तर भारत मे जिस तरह इडली, डोसे के प्रति लोगो की रुचि बढती जा रही है उसी तरह यहा भी दक्षिण भारतीय इडली, डोसे को मैं ने प्रचलित पाया। भारतीयो के अलावा यूरोपीय भी स्वाद बदलने के लिए यहां आते है। मिरचो के झाल से उन का 'शीशी' करना देखते ही बनता है। साभर और रसम के साथ मै ने कई दिनो बाद पेट भर खाया। बिल बना लगभग दस रुपए का। स्वदेश के हिसाब से यह ऊचा जरूर था मगर यहा के कोहेनूर, ताज आदि रेस्टोरेटो के मुकाबले बहुत कम था।

लदन मे तीन दिन रहने का प्रोग्राम था। अतएव इस छोटी सी अवधि मे इस महानगरी के दर्शनीय स्थान देखना चाहता था। खाना खा कर टेम्स के किनारे ७०० वर्ष पहले बने हुए टावर आफ लदन को देखने गया। टेम्स का नाम स्कूली जीवन से ही सुनता आ रहा था। अगरेज मित्रो से भी इस की चर्चा सुनी थी। गगा, गोदावरी या यमुना के प्रति हमारी जो भक्ति भावना है, भले ही उस प्रकार की भक्ति टेम्स के प्रति अगरेजो मे न हो फिर भी उन मे पंजाबियो के दिल जैसा वही प्यार है जो झेलम के जल मे मुसकराता है। यू, औसत भारतीय इसे देख कर जरूर कह देगा, 'नाम बडे दर्शन छोटे!' हमारी गगा से इस की लबाई तो बहुत कम है ही, चौडाई भी चौथाई से अधिक न होगी। शायद गहराई ज्यादा है क्योकि सैकडो छोटेबडे जहाज इस मे चल रहे थे।

टावर आफ लदन के बारे मे ब्रिटिश इतिहास तथा उपन्यासो मे इतनी बार जिक्र आ चुका था कि देखने पर कुछ नयापन नही लगा। फिर भी टेढे-मेढे पत्थरो की बनी मोटी दीवारे, जग खाए लोहे से जडे लकडी के बडेबडे फाटको से अदर गुजरते समय ऐसा लगता है कि बीते इतिहास की कहानी कहने के लिए ये दोनो ओर खडे है। अदर के सीलनभरे कमरो से आती हुई हवा कानो मे न जाने कितनी आह, चीखपुकार भरने लग जाती है। इसी एक स्थान पर ब्रिटेन के सैकडो बडेबडे सामतो के सिर काटे गए। सर टामस मूर, सम्राट अष्टम हेनरी

की दो रानिया, महारानी एलिजावेथ के प्रेमी एसेक्स के अर्ल, न जाने और भी कितने ही। राजद्रोह और देशद्रोह के अपराधी दडित हो तो कारण समझ मे आ सकता है पर आज जो राजारानी का कृपाभाजन है वही कल कोपभाजन वन कर सूली पर चढा दिया जाए तो उन की कृपा से दूर रहने मे ही कल्याण है। शाही मुहब्बत की कीमत वहुत ही महगी पडी है, हर देश और हर समय मे। जनता की निंदा की विना परवा किए जिस सिर को गोद मे रख कर न जाने कितनी राते महारानी एलिजावेथ ने गुजारी थी, उसी लार्ड एसेक्स के सिर को प्रेयसी रानी ने कुल्हाड़ी से कटवा दिया। वही कुल्हाडी और सिर रखने की अर्ध चद्राकार लकडी की वेदी कितनी जाने ले कर भी वहा निर्जीव पडी है। न जाने क्यो मुझे भय और कपकपी सी हो आई। मैं उस स्थान से हट आया।

यहा दूसरे वहुत सारे तरहतरह के औजार भी देखे जिन से अपराधियो को दड दिया जाता था। बहुत सी कालकोठरिया भी देखी, जिन मे कैदी न तो बैठ सकता है और न लेट ही सकता है। यहा तक कि सीधे खडा होना भी सभव नही। इन्हे देख कर रोमाच हो आता है। मैं यही सोचने लगा कि संसार के सामने आखिर किस बूते पर अगरेज अपने को सभ्य कहते रहे हैं। वडा ताज्जुव इस वात पर होता है कि अपने आराध्य ईसा मसीह को वे सूली पर विंधा हुआ पूजते रहे है। शारीरिक यातना देना बहुत वडा पाप है, इस का वडीबडी तसवीरो, साहित्य और रगमच द्वारा हजारो वर्षो से ये प्रचार करते आ रहे है। फिर क्रास से भी कही अधिक यत्रणादायक इन अस्त्रो का वे भला किस प्रकार प्रयोग करते होंगे!

उन अधेरी, सडी कोठरियो से बाहर आया। पास ही एक स्टाल पर जल्दी से जा कर एक लमनेड लिया। यही के एक बुर्जनुमा कक्ष मे ब्रिटेन के सम्राटो के राजमुकुट, आभूषण और जवाहरात सग्रहीत हैं। इन्हें देख कर अदाजा लगाया जा सकता है कि सदियो तक ब्रिटेन किस तरह भारत, एशिया और अफ्रीका से बेशुमार धनदौलत लूटता रहा है। जिस ग्रेट ब्रिटेन की जमीन अपने बेटो के मुह मे भरपेट दाना तक देने मे असमर्थ है, वहा यह बेशुमार दौलत कैसे आई होगी ? इस का अदाज तो भारत, बर्मा और अफ्रीका के देशो की कराहती जर्जर काया से ही लग सकता है।

ब्रिटिश ताज मे लगाया गया विश्व का सब से बड़ा और वजनी हीरा 'स्टार आफ अफ्रीका' देखा। इस का वजन ५१६ कैरेट है। इस के पास ही हमारा चिरपरिचित कोहनूर भी दमक रहा था जिस की चमक के सामने दूसरे हीरो की आवरू फीकी पड रह थी। वहा तरहतरह के छोटेवडे मुकुट रखे थे जिन मे नाना प्रकार के अनमोल रत्न लगे थे। मगर कोहेनूर देखते ही मेरा मन अपने देश की १५० वर्ष पहले की बातो पर चला गया।

पजावकेसरी महाराजा रणजीतसिंह की सद्य विधवा रानी झिंदा और उस के मासूम वच्चे दिलीपसिंह की तसवीर आखो के सामने आ गई। वेबसी की हालत मे इन से जबरन कोहनूर छीना गया था। महाराजा रणजीतसिंह ने ईस्ट इडिया कपनी को उसके बुरे दिनो मे सहायता की थी। इस उपकार का उत्तर दिया गया उन का राज्य हडप कर, कोहेनूर लूट कर और उन के अवोध बच्चे को लदन ले जाकर शिक्षित करने के वहाने ईसाई वना कर।

वाहर निकल आया और टावर ब्रिज पर खडा हो कर टेम्स का दृश्य देखने लगा। पुल के नीचे मालवाही छोटेछोटे वोट खडे थे। इन मे मैले कपडे पहने हुए मल्लाह शोरवे, मछलिया और मांस के वडेवडे टुकडो के साथ मोटीमोटी रोटिया खा रहे थे। मैं मन ही मन इस विडवना पर मुसकरा उठा कि पास ही टावर आफ लदन मे वेशुमार दौलत को कैद कर अगरेज अपने गौरव को बढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं जबकि करीव मे उन्ही के देशवासी इस अभावपूर्ण जिंदगी के लिए मजबूर है। विषमता सारे ससार मे है, भ्रातृत्व और समता का दम तो जमाने के फैशन के मुताविक भरा जाता है। इस के झूठे प्रचार की होड मे जो जीतता है वही सवसे अधिक सभ्य, उदार या समाजवादी समझा जाता है।

दिन भर पैदल घूमता रहा। पैर दुखने लगे। टावर देखने पर मन कुछ खिन्न हो गया।

सोचा, 'भारत मे अगरेजी फिल्मे तो आती रहती है, क्यो न यहा का रगमच देख लिया जाए'। गाइड बुक मे देख कर एक थियेटर के साढे छ बजे वाले शो मे जा बैठा।

कामिक ड्रामा था। काफी चुहलबाजी थी, जिसे हमारी भारतीय दृष्टि से अश्लील कहा जाएगा। दर्शक मजा ले रहे थे, तालिया वज रही थी, पहले अक का दृश्य सामने आया। पत्नी के प्रेमी को पति ने सदूक मे छिपा पकडा है और उसे पीट रहा है। पत्नी पास मे सहमी सी खडी है। अधिकाश दर्शक महिलाए उस प्रेमी के पक्ष मे आहे भरने लगी। उनमे से कुछ के पति उनके पास ही बैठे चुपचाप देख रहे थे। मै लक्ष्य कर रहा था कि आज के यूरोपीय समाज मे स्वच्छदता किस हद तक जा पहुची है। अभिनय रगमच की सज्जा और आरकेस्ट्रा का स्तर अच्छा था, इसमे सदेह नही।

दूसरा दिन लदन के म्यूजियम देखने के लिए सुरक्षित रखा। यहा बहुत से सग्रहालय है। इसलिए सुबह जल्दी ही नाश्ता कर सबसे पहिले ब्रिटिश म्यूजियम गया। यह विश्व के चार बडे सग्रहालयो मे माना जाता है। प्राचीन काल से अब तक के इतिहास के नाना प्रकार के साक्षी यहा बहुत ही करीने से रखे गए है। सर हैस सैलोने नाम के एक करोडपति डाक्टर का सन् १७५३ मे देहान्त हुआ। मृत्यु से पूर्व उसने अपनी सारी चल अचल सपत्ति, ऐतिहासिक सग्रह ओर पचास हजार पुस्तको को, देश को इस शर्त पर दे दिया कि एक वडा म्यूजियम स्थापित किया जाए।

अपनी सतान के भरण पोषण के लिए उसने केवल दो लाख रुपए सरकार से लिए। यही से ब्रिटिश म्यूजियम की नीव पडी है। आगे चल कर यह विश्व का सर्व मान्य सग्रहालय वन गया। यहा हजारो व्यक्ति प्रतिदिन शिक्षा और ज्ञानवर्धन के लिए आते रहते है। पृथ्वी के प्रागैतिहासिक युग से आज तक मानव ने किस प्रकार अपना विकास किया है, इसका सिलसिलेवार दिग्दर्शन मूर्तियो और यत्रो के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

जिज्ञासुओ व अन्वेषको की तो यह एक प्रकार से तीर्थ स्थली है। दिन के साढे ग्यारह बजे से तीन वजे तक विद्वान प्रोफेसरो द्वारा विभिन्न विषयो पर प्रतिदिन व्याख्यान होते है। इसे अच्छी तरह देखने के लिए महीनो का समय चाहिए। मेरे पास कम समय था, फिर भी दो एक घटे मे जो कुछ देख पाया उससे मुझे कुछ जानकारी मिली।

प्राकृतिक इतिहास सग्रहालय (नेचुरल हिस्ट्री म्यूजियम) मे कीटपतग, पशुपक्षी आदि को उनके आकार का बनाकर स्वभाविक परिवेश मे रखा गया है। प्रागैतिहासिक युग के विशालकाय डिनो सोरस, ब्राटोसोरस नाना प्रकार के प्राणी यहा देखने मे आए। उसी काल के वृक्ष और पौधे भी देखे। कितना परिश्रम और धैर्य इनके अन्वेषण मे लगा होगा। इसमे सदेह नही कि परिश्रम अग्रेजो का जातीय गुण है। आज अमरीका या रूस अथवा विश्व के अन्य देश भले ही ब्रिटेन से शक्ति और क्षमता मे आगे बढ जाए, फिर भी यह मानना पडेगा कि ज्ञानवर्धन की प्रेरणा उन्हे बहुत अशो मे अगरेजो से ही मिली है। पृथ्वी के प्रागैतिहासिक युग का, गिरिकदराओ का आदिमानव किस प्रकार आत्मरक्षा और सघर्ष करता हुआ आज टेलीविजन सैट के सामने बैठ सका है, इस का सिलसिलेवार दिग्दर्शन यत्रो और मूर्तियो के माध्यम से कराया गया है। राहुलजी की 'विस्मृति के गर्भ मे' पुस्तक मे दैत्याकार डिनोसोरसो के बारे में पढा था, आज उन के ककालो को यहा प्रत्यक्ष देखा।

विक्टोरिया अलवर्ट म्यूजियम मे विश्व के सारे देशो की तरहतरह की पोशाके, बरतन, गहने आदि रखे है। यहा मै ने भारतीय मुगल बादशाहों, नवाबो और बेगमो की शाही पोशाके व आभूषण देखे। औरगजेब के हाथो से स्वर्णाक्षरो मे लिखी कुरान देखी। कहना न होगा ये सब यहा कैसे पहुचे होगे, कीमत तो इगलैड ने शायद ही अदा की होगी। वारेन हेस्टिग्स और क्लाइव की लूट ऐतिहासिक प्रमाण है। रहीसही कसर लार्ड कर्जन ने पूरी कर दी।

भूगर्भ ट्रेन से डाटी स्ट्रीट पर आया। मुझे प्रसिद्ध उपान्यासकार चार्ल्स डिकेस का मकान

देखना था। इसे उसकी स्मृति मे सग्रहालय बना दिया गया है। अब तक जिन बडेबडे म्यूजियमो को देख कर आ रहा था, उन की तुलना मे यह बहुत ही छोटा है। फिर भी इस का अपना आकर्षण और महत्व है। इस महान लेखक ने अपनी कलम से लोगो के दिल को छुआ था। उस के पाठको मे अगरेज ही नही बल्कि विभिन्न देशो के लोग है। आज भी शरत और प्रेमचद की तरह चार्ल्स डिकेस यूरोपीय जनसमाज की श्रद्धा और स्नेह का पात्र है। इसी लिए यह छोटा सा भवन साहित्यको का तीर्थ बन गया है। शेक्सपीयर के स्टाफर्ड एवेन के स्मारक के बाद विदेशी पर्यटक और साहित्यिक इसे निश्चित रूप से देखते है। यहा डिकेस कुछ काल तक रहा था। उस के उपन्यासो की पाडुलिपिया भी यहा रखी है।

मुझे ख्याल आ गया 'डेविड कापरफील्ड' पढते समय मेरी आखे भीग गई थी। किसी मित्र ने कहा कि ऐसी किताबे क्यो पढी जाए जिन से मन मे दुख हो। पर आज भी जब दूसरे कामों मे मन नही लगता तो शरत की 'शेष प्रश्न' अथवा डिकेस की 'डेविड कापरफील्ड' पढने लग जाता हू। वे मुझे हमेशा नई लगती है। दिल की गहराई को वे छू लेती है। गजब का जादू है डिकेस की कलम मे। खडा हुआ उस की पाडुलिपि देख रहा था, एकएक कर के डेविड, मर्डस्टोन, एमिली, मिकावर आदि चरित्र जैसे सामने आ कर मेरे परिचित वाक्य बोलते से लगे।

सोचने लगा, हमारे यहा भी तो वाल्मीकि, कालिदास, तुलसी, भूषण आदि महान कवि हो गए हैं। हम ने उन के स्मारक क्यो नही बनाए? शायद पठनपाठन से ही उन की स्मृति बनाए रखने की परपरा हमारे यहा रही हो या नश्वरता के प्रति हम सदैव उदासीन रहे है। इसी कारण से ब्रिटिश काल के पूर्व तक के व्यक्तियो के स्मारक नही बनाए गए। मुगल बादशाहो या नवाबो और फकीरपीरो की कब्रो या किलो के रूप मे जरूर कुछ स्मारक मिल जाते है। जो भी हो, स्मारको का भी अपना महत्व कम नही है।

दोपहर का भोजन किया भारतीय विद्यार्थी क्लब मे। ब्रिटेन मे हजारो की सख्या मे भारतीय विद्यार्थी पढ रहे है। अपनी सुविधा के लिए इन्होंने लदन मे कोआपरेटिव के तौर पर यह कैटीन चला रखी है। चीजे अच्छी मिलती है और दाम बहुत ही कम। भीड इतनी रहती है कि बैठने की जगह आसानी से नही मिलती।

भोजन के बाद ट्राफल्गर स्क्वायर की नेशनल आर्ट गैलरी देखने गया। बहुत विशाल भवन है। इस मे पिछले ५०० वर्षो के बडेछोटे चित्रो का सुदर सग्रह है। ये चित्र विश्व के प्रसिद्ध चित्रकारो के बनाए हुए है। चित्रो के सकलन का शौक सभी देशो को है। इस के लिए बडीबडी धनराशिया खर्च की जाती है। रोम के वेटिकन और फ्रास के लुव्रे के सग्रह के बाद बाकी बचे हुए नामी चित्रो के लिए विश्व के देशो मे होड सी लगी रहती है। इस दिशा मे अमरीका से टक्कर लेना कठिन है।

फिर भी, ब्रिटेन के धनी और सपन्न व्यक्ति उदारतापूर्वक अलभ्य चित्रो को खरीदते रहते हैं।और अपने अमूल्य सग्रह इस गैलरी को भेट कर देते है। यही कारण है कि यह विश्व की चुनी हुई आर्ट गैलरियो मे मानी जाती है।

ब्रिटेन मे मृत्यु कर की दर बहुत अधिक है, पर कला की वस्तुओ पर छूट है। इसलिए यहा के धनी मरने से पहले अपनी सपत्ति से दुर्लभ चित्रो को खरीद लेते है। समय पाकर उन के उत्तराधिकारियो द्वारा वे चित्र इस गैलरी को भेट कर दिए जाते है। इस से उन की स्मृति बनी रहती है और राष्ट्र का गौरव भी बढता है।

इस गैलरी के एक कक्ष मे भारत के कागडा, किशनगढ, राजपूत, मुगल और पटना शैली के अलभ्य चित्र देखे। मै चित्रकला का पारखी तो नही हू, पर देखने मे ये मुझे बहुत ही बेहतरीन लगे। अन्य देशो से इन मे बारीकी और रगो के सन्तुलन का सम्मिश्रण अधिक स्पष्ट लगा। अधिकाश चित्र कृष्ण और राधा की पौराणिक कथाओ पर आधारित है। ऋतु और

रागमालाओ के चित्रो का भी अच्छा सग्रह है। क्यूरेटर से बाते करने पर पता चला कि भारतीय तूलिका के सबध मे उनको यथेष्ट ज्ञान है। उनसे यह भी पता चला कि बहुत से चित्र भारत से खरीद कर मगाए गए है कुछ भेट स्वरूप भी आए है।

मैं ने सुना था कि बहुत से चित्र तो हमारे राजेमहाराजो ने बहुत सस्ते दामो पर बेच दिए थे या फिर अगरेजो को खुश करने के लिए भेट मे दिए थे। अपने देश के गौरव की वृद्धि के प्रति हमारे यहा की उदासीन मनोवृति का परिचय पा कर ग्लानि भी हुई। आज भी बहुत से चित्र मदिरो मे पडे है या रईसो, राजेरजवाडो के पास बेकार पडे है। उन्हे यदि काशी विश्वविद्यालय के भारत कला भवन या दिल्ली की नेशनल गैलरी को दे दिया जाए तो भारतीय चित्रकला के प्रति बहुत बडा उपकार हो सकता है।

गैलरी देख कर फाटक के बाहर आया। सामने ही एडमिरल लार्ड नेलसन की बहुत ही बडी मूर्ति ऊचे चबूतरे पर खडी है। सन १७६२ से १८०५ ईसवी तक सारा यूरोप नेपोलियन के युद्धो से आतकित हो उठा था। उस की सेनाए यूरोप के प्राय सभी देशो को रौद चुकी थीं। केवल ब्रिटेन अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण बचा हुआ था। नेपोलियन ने बडी जबरदस्त तैयारी से ब्रिटेन की चौतरफा नाकेबदी की। सन १८०५ मे एक बहुत बडे जहाजी बेडे को ले कर उस ने ट्राफल्गर की खाडी मे ब्रिटेन की नौशक्ति को खत्म करने के लिए हमला कर दिया। ब्रिटेन का जहाजी बेडा छोटा था, पर नेलसन की निपुण रणचातुरी के कारण फ्रास की अजेय सेना को हार खानी पडी। उस की हिम्मत पूरी तौर से पस्त हो गई।

इतिहासकारो का कहना है कि इतनी बडी समुद्री लडाई पहले कभी नही हुई थी। इस युद्ध मे ब्रिटेन जीता जरूर मगर उसे नेलसन को खोना पडा। नेलसन के मुह से मृत्यु के समय निकले ये शब्द अमर हो गए, 'हे प्रभु, तुम्हारी कृपा से अपने कर्तव्य का पालन पूरी तौर पर कर सका।' इसी युद्ध का परिणाम था कि पिछले महायुद्ध तक ब्रिटेन की नौशक्ति का लोहा दुनिया मे सभी मानते थे।

कलकत्ता की तरह लदन मे टैक्सियो की कमी नहीं है। फिर भी यहा आम तौर पर लोग बसो या भूगर्भ ट्रेनो से यात्रा करते है। यहा के टैक्सी ड्राइवर मुझे रूखे से लगे। किराए के अलावा टिप देने की परिपाटी यहा है। इस वजह से विदेशियो को बडी परेशानी होती है क्योकि उन्हे मालूम नही रहता कि किस हिसाब से देना चाहिए। अधिकाश टैक्सी वाले ऐसी स्थिति मे रूखा सा व्यवहार करते है, खास तौर से उनके साथ जो गोरे रग के नही होते। मुझे एक बार इस प्रकार का व्यक्तिगत अनुभव हो चुका था। इसलिए मै ने लदन मे दोबारा टैक्सी नही की।

शाम हो रही थी। मै लदन का प्रसिद्ध बाग हाइड पार्क देखने निकल गया। बीच मे सरपेटाइन झील है। पृथ्वी के दूसरे किसी भी शहर मे इतना बडा मैदान शहर के बीच मे नही होगा। कलकत्ते के किले का मैदान काफी विस्तृत माना जाता है पर वह भी इस के मुकाबले मे छोटा है। वैसे तो लदन मे रीजेट, सेट जेम्स, केसिगटन आदि अन्यान्य पार्क भी है पर हाइड पार्क की तो बात ही न्यारी है। शाम के समय बीसियो सिरफिरे स्टूल पर खडे हो कर व्याख्यान देते यहा मिल जाएगे। श्रोता भी जुट जाते है। मनोरजन के सिवा कुछ ध्यान दे कर सुनने वाले भी रहते है। बीचबीच मे हसीमजाक कर लेते है। वक्ता जिस विषय पर चाहे बोल सकता है, कोई रोकटोक या कानूनी पाबदी नही है। एक जगह मै भी खडा हो कर सुनने लगा। श्रोताओ की सख्या लगभग साठसत्तर रही होगी। वक्ता कह रहा था स्त्रिया बदतमीज होती जा रही है। इन को यदि समय रहते नही सभाला गया तो ब्रिटिश जाति का पतन हो जाएगा। आप मुझे जैसा फटेहाल देख रहे है, उस का कारण है स्त्रियो की स्वच्छदता। मेरी एक प्रेयसी है, खूबसूरत है, लाजवाब है।"

'मुसीबत आ पडी है कि उस की बुढिया चाची मेरे ऊपर डोरे डाल रही है। बुढिया

दौलतमद है। नाना प्रकार के उपहार रोज मेरे पास भेज देती है। नतीजा क्या हो सकता है, इसे आप खुद समझ सकते है। यानी मै वदनसीबी का मारा उस खूसट बुढिया के चगुल मे फस गया हू। इधर मेरी प्रेयसी मुझ से रूठ गई है। अब आप ही बताए मैं क्या करू।"

मै ने देखा वहा खडी औरते उस की बातो मे हसहस कर रस ले रही थी। दोएक ने उस से कहा, "महाशय, आप उन दोनो का पता बताए। हम बुढिया को समझा कर आप की प्रेमिका को मना लेगी।"

कुछ दूर आगे बढ कर देखा, एक व्यक्ति भारत के विरोध मे अनर्गल प्रचार कर रहे है। वडा आश्चर्य हुआ औरं खेद भी। बाद मे पता चला कि पाकिस्तान ने अपने कई विद्यार्थियो तथा अन्य व्यक्तियो को नियमित रूप से इस ढग के प्रचार के लिए लगा रखा है।

कही एक कोने मे अणुबम विरोधी भाषण सुनने मे आया तो कही इगलैड की विदेश नीति की कटु आलोचना। भाषण सुनतेसुनते लगभग आठ बज गए। लौटने लगा तो देखा पिंप (औरतो के दलाल) चक्कर लगा रहे है। इन की चाल और हावभाव से पता चल जाता है कि वे दलाल है। इन के इर्दगिर्द दोएक लडकिया घूमतीफिरती या बैठी रहती है। यो तो लदन मे कानूनन वेश्यावृत्ति बद है पर ग्राहक को अपने साथ घर ले जाने की छूट है।

पार्क मे एक जगह वैच पर जा कर बैठ गया। आसपास की वैचो पर पुरुषो और लडकियो की उपस्थिति का अर्थ स्पष्ट हो गया। सोचने लगा, हमारे यहा अत्यधिक गरीबी से अधिकतर स्त्रिया मजबूर हो कर अपने तन का मौदा करती है, मगर इस प्रकार सार्वजनिक पार्कों मे ऐसी हरकते नही होती। ब्रिटेन के लोग अपनी सभ्यता और शालीनता की डीग एशियाई मुल्को मे हाकते रहते है पर उनकी असलियत की कलई तो हाइड पार्क मे ही खुलती है। चुबन और आलिगन मे आगे के दृश्य भी यहा देखने मे आए। रूस को छोड कर यूरोप के प्राय सभी देशो मे यह है।

थोडी देर वहा विश्राम कर अपने होटल वापस आया। दिन भर की थकान का बोझ था। नीद नही आ रही थी। तरहतरह के विचार मन मे आते गए। हमारे देश मे विदेशी यात्री कम क्यो आते है? इस का एक बडा कारण शायद यह भी हो सकता है कि विदेशियो को मौजवहार की वह छूट हमारे यहा नही मिलती जो अन्यान्य देशो मे है। पर हम खुश है कि पेरिस, वेनिस और लदन की तरहतरह अनैतिक और कामोत्तेजक मनोरजनो द्वारा पैसे वटोरना हम ने या हमारी मरकार ने अच्छा नही माना है।

मैं जिम होटल मे ठहरा था वह साधारण ढग का था। यहा नाश्ते के लिए क्यू मे खडा होना पडता है। वैसे तो लदन मे रेस्तरा बहुत है। पर होटल के किराए मे नाश्ता भी शामिल था इसलिए पेट भर नाश्ता कर सारे दिन के लिए छुट्टी पा जाता था। विदेशो मे पैसो की वचत का यदि विशेष ध्यान रखा जाए तो बहुत कम खर्च मे काम चल सकता है।

नाश्ते के वाद सब मे पहले बकिघम महल देखने गया। महल के प्रति मेरा कोई विशेप आकर्षण नही था पर यहा प्रहरिया के पाली वदली का दृश्य बडा शानदार रहता है, उसे देखना था। मेरी तरह वहा बहुत से लोग उस विशेप ममय की प्रतिक्षा मे खडे थे।

ब्रिटेन की विशेपता यह रही है कि वहा अपनी परपरा के प्रति श्रद्धा है। अगरेजो ने समाज के ढाचे को वहुत कुछ बदल दिया है पर ऐतिहासिक परपरा को आज भी सावधानी से सजोए हुए है। मैकडो वर्प पहले जिस ढग की पोशाक मे राजा के महलो मे प्रहरी तैनात रहते थे, आज भी उसी प्रकार तैनात रहते है। रात के पहरेदार सुबह जब बदलते है तो एक खास कवायद के साथ। वडा प्रभावपूर्ण दृश्य लगता है। सब की पोशाक एक सी, एक से अस्त्रशस्त्र मे लैस, एक.मे घोडे, एक मी चाल, चेहरे पर गभीर निर्विकार भाव। वच्चो को देखा, वडी उत्सुकता से मगर आखो मे कुछ डर लिए, पहरेदारो की वदली देख रहे थे।

यहा से थोडी दूरी पर इगलैड के प्रधान मत्री का १०, डाउनिग स्ट्रीट नाम का सरकारी निवास है। तीन मजिलो का छोटा सा पुराने ढग का मकान है। इस मे न बाग है, न लान है। वर्षो से यहा इगलैड के प्रधान मत्री रहते आए है। देख कर आश्चर्य होता है कि इतने सपन्न और विशाल ब्रिटिश साम्राज्य के प्रधान मत्री का घर भी यही और दफ्तर भी। और हमारे यहा ? हम गरीब है, दुनिया के सामने हाथ भी पसारते है। मगर हमारे मत्रियो के सरकारी निवास ! वे तो कही शानदार और सजीले है। वैसे, हम गाधीजी के आदर्शों की दुहाई देते रहते है !

मैडम तुसान के सग्रहो का उल्लेख स्वर्गीय राहुलजी ने एक बार मुझ से किया था। लदन पर लिखी गई अन्य पुस्तको मे भी इस का जिक्र पढा था। वास्तव मे अपने ढग का यह एक नायाब सग्रह है। मोम की बनी ३०० आदमकम प्रतिमाए यहा है। इतनी स्वाभाविक है कि मानो जीवित व्यक्ति के सामने हम खडे है और ऐसा लगता है कि अब ये कुछ बोलेंगे। विश्व के प्राय सभी देशो के शीर्ष लेखक, कलाकार, वैज्ञानिक, राजारानी और राजनीतिक नेताओ की मूर्तिया यहा देखी।

महात्मा गाधी और नेहरूजी की मूर्तियो को देख कर लगा कि चलो, अगरेजो ने इसे माना तो सही कि विश्व को दिशादान देने मे भारत का भी योग रहा है।

टावर आफ लदन मे जिन दडशालाओ और दड देने के औजारो का जिक्र आया है, उन की झाकी यहा देखने मे आई। कही जीवित व्यक्तियो को जलाया जा रहा है तो कही लाल तपी सलाखो से उन की आखे फोडी जा रही है। कही सिर तोडा जा रहा है तो कही काटे गडाए जा रहे है। बडे भयकर और बीभत्स दृश्य देखने मे आए।

मध्यकालीन यूरोप के इतिहास मे पढने मे आता है कि उन दिनो बडे अमानुषिक तरीको से वध किया जाता था और लोग इसे देखने के लिए इकट्ठे होते थे। पेरिस और रोम मे तो वध के स्थान पर हजारो की भीड लग जाती थी। स्त्रीपुरुष सजधज कर देखने आते थे। बैठने के स्थानो के आरक्षण का चार्ज रहता था। ड्यूमा के 'काउट आफ माटेक्रिस्टो' मे इस का अच्छा वर्णन है। भारत मे मुगलकाल मे क्रूरता के साथ वध करने के दृष्टात है, पर जनता की रुचि मनोरजन के लिए ऐसे नजारे देखने की रही है, यह कही भी नही मिलता, पता नही सभ्य यूरोप और हमारे यहा यह अतर कैसे रह गया ?

मादक संगीत, धुनें, नाचती नंगी लड़कियां......

लंदन—२

सन १९६४ मे मुझे तीसरी बार लंदन जाने का मौका मिला। भारतीय दूतावास के सहयोग के कारण पहले की यात्राओ की अपेक्षा इस बार देखनेसुनने की ज्यादा सुविधाए मिली। लोगो के रहनसहन और दुकानो की सजावट देख कर अदाज होता था कि पिछले पदरह वर्षों मे ब्रिटेन ने महायुद्ध के भीषण धक्के से अपने को कितना अधिक सभाल लिया है। यहा के होटलो की हफ्तो की नही; महीनो की अग्रिम बुकिंग वताती थी कि पिछले वर्षो मे युद्ध जर्जरित ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति कितनी अधिक मजवूत हो उठी है।

सब से पहले मैं भारतीय राजदूत श्री जीवराज मेहता से मिलने गया। उन का निवासस्थान बहुत ही सुदर उद्यान के वीच है। भारत और ब्रिटेन के लबे अर्से तक पारस्परिक सवध रहे है। उन के अनुरूप ही हमारे दूतावास का भवन है।

जीवराज भाई और श्रीमती हसा मेहता से मेरा पूर्व परिचय था। ८० वर्ष की आयु मे भी वह स्वस्थ और फुरतीले है। इस कारण उन के व्यक्तित्व मे सहज आकर्षण है। वह बड़ी आत्मीयता से मिले। गुजराती ढग के कलाकद, डोसा और चिवडे का सुस्वादु जलपान कराया। भारत की राजनीतिक गतिविधियो के विषय मे भी उन्होने चर्चा की।

उसी दिन १२ बजे दोपहर को उन्होने एक प्रेस कान्फ्रेस बुलाई थी। ब्रिटेन की प्रेस चर्चा के सिलसिले में उन्होने मुझे सावधान कर दिया कि यहा के पत्रकार वडे चतुर होते हैं, शब्द और वाक्यो पर मनचाहे रग की कलई चढाने मे पटु होते है, इसलिए इन के प्रश्नो का उत्तर वहुत सावधानी से देना चाहिए।

निर्धारित समय पर प्रेस कान्फ्रेस हुई। दसवारह पत्रकार थे। सभी वहा के प्रमुख समाचारपत्रो या न्यूज एजेसियो से सबधित थे। मेहता जी की सलाह सचमुच अच्छी रही। मैं ने लक्ष्य किया कि अगरेजो की वाक्चातुरी भी एक कला है। इस के लिए अनुभव ओर अभ्यास दोनो आवश्यक है। हम ने अपनी ओर प्रभुदयालजी को प्रधान बना लिया था। सभी प्रश्नो का उत्तर वे बहुत ही सक्षेप मे किंतु स्पष्ट दे रहे थे।

हम ने महसूस किया कि कश्मीर के मामले मे अगरेजो के दिमाग मे एक विशेष दृष्टिकोण बैठा गया है। अन्य वातो मे तो उन्हे हम सतोष दिलाने मे सफल हुए, किंतु जहां तक कश्मीर का सवाल था, वे हमारी युक्ति और तर्क को स्वीकार करने को ही तैयार नहीं थे। उन की सहानुभूति पाकिस्तान के साथ थी। उन का यह तर्क था कि जब श्री नेहरू ने कश्मीर मे जनमत संग्रह स्वीकार किया और उसे पूरा आश्वासन दिया था तो इसे भारत क्यो

नही मानता ? दोनो देशो के बीच आपसी समझौते और अमन कायम रखने के लिए यह निहायत जरूरी है ।

प्रभुदयालजी उन्हे बराबर समझा रहे थे कि इन वर्षो मे पाकिस्तान और भारत के आपसी सबधो मे काफी कटुता आ गई है । कश्मीर और भारत युगो से एकदूसरे से भाषा, सस्कृति और भोगोलिक दृष्टि से बधे रहे है, अत अब जनमत का प्रश्न ही नही रह जाता । पाकिस्तान कुछ धर्मान्धो को उभार कर वहा अशाति पैदा करता रहता है । भारतीय व्यवस्था के अतर्गत प्रत्येक कश्मीरी सुखी है, उस की आर्थिक दशा भी सुधरी है । दूसरी ओर पाकिस्तानी व्यवस्था के नीचे, कशमीरी जनता पीडित है, उस का दमन भी किया जाता है ।

इस के अलावा जब तक पाकिस्तान कश्मीर के उस अचल से हट नही जाता जिस पर उस ने जबरदस्ती कब्जा जमा रखा हे, तब तक वहा जनमत सग्रह का कोई-अर्थ नही ।

पता नही क्यो ब्रिटिश पत्रकार इसे मानने से इनकार करते रहे । भारत के विकास ओर आर्थिक उन्नति के सबध मे उनलोगो की धारणा थी कि इन वर्षो मे हमारे देश ने प्रगति की है अवश्य, फिर भी यदि हम अपनी बढती हुई जनसख्या की बढोतरी को नही रोक पाएगे तो हमारी योजनाए निष्फल सिद्ध होगी । उन का ख्याल था कि इस दिशा मे भारत का प्रयास शिथिल रहा है ।

दोपहर के बाद जूट एक्सचेज देखने गया । मैं लबे समय तक पटसन का व्यवसायी रहा हू—आकर्षण स्वाभाविक था । जूट के क्रयविक्रय के लिए यह एक्चेज विश्व मे सबसे बडा केंद्र माना जाता है । प्राय सभी देशो को अपना कच्चा पाट यहा के नियमो से खरीदना पडता है । यहा मेरे मित्र बाबूलाल सेठिया मिल गए । १६३५ मे साधारण स्थिति मे लदन आए थे ओर यही बस गए । अब तो करोडो रुपए कमा लिए है और यहा के बडे व्यापारियो मे गिनती है । विदेशो मे पुराने साथियो के मिलने पर बडी खुशी होती है । अगले दिन उन के घर भोजन का निमंत्रण मिला । बेसन की रोटी और काचरी के साग मे पकवानो से कही अधिक स्वाद मिला ।

शाम के बाद पिकाडिली सर्कस पहुचा, यह फैशन, रोशनी और रईसी की जगह हे । लदन सज उठता है । रगबिरगे नियोन के प्रकाश इद्रधनुष से खेलते रहते है । कलकत्ता का पार्क स्ट्रीट और दिल्ली का कनाट प्लेस इस की थोडी सी झाकी पेश करते है । यहा नियोन के तरहतरह के विज्ञापनो के बीच ओवलटीन और बोवरील की विशेपताए देखी । ओवलटीन मे अडे और बोवरील मे गोमास का रस रहता है । हमारे यहा सनातनी घरो मे भी इन दोनो का प्रयोग होता है ।

सोहो का महल्ला पिकाडिली के पास ही है । बदनाम जगह है । दुनिया के हर शहर मे इस प्रकार के स्थान होते है, लदन कोई अपवाद नही । इनसान मे कमजोरिया होती है । गम को खुद बुलाता है और इसे गलत करने के लिए गलतिया करता जाता है । हमारे यहा समाज के भय से लोग लुकछिप कर करते है, जबकि यूरोप मे इसे जीवन की आवश्यकता मान कर बिना झिझक के । लबेचौडे पुलिसमैनो को चक्कर लगाते देखा । निर्विकार से घूम रहे थे । शायद उन्हे हिदायत थी कि आनेजाने मे दखल न दे । बस इतना ध्यान रखे कि दगाफसाद, राहजनी और गुडागर्दी न हो । खास तौर से किसी विदेशी को ऐसी परेशानी मे न पडना पडे । सोहो मे सब कुछ चलता है । वैधअवैध सभी तरह की नशीली चीजो के अड्डे है, जिन के सचालक ज्यादातर चीनी है । चकलो की भी कमी नही । कानून से बचने के लिए इन्हे क्लबो के नाम पर चलाया जाता है । ग्राहक के पहुचते ही उसे सदस्य बना लेते है और कार्ड दे दिया जाता है ।

इसी ढग के एक क्लव मे जा पहुचा, दस रुपए दे कर सदस्य वना। शराव और जुए का दौर चल रहा था। काउटर पर एक मोटी सी औरत बैठी थी। ग्राहको मे अधिकाश पिए हुए थे। एक वृत के चारो ओर टेवले लगी थी और उन के इर्दगिर्द कुरसिया। युवतिया शराव ला कर ग्राहकों को दे रही थी। कारबार बिलकुल रोकडी था, यानी नगद। जो लडकी जितना पिलाती थी, कमीशन भी उसी मुताबिक वनता था। रोशनी धीमी थी। कौन आया और कौन गया, आसानी से जाना नही जा सकता था। इस पर सिगरेट के धुए का कुहरा।

बाजे की धुन पर एक नगी लडकी नाच रही थी। अगरेजो के अलावा अन्य देशो के लोग भी थे, कुछेक भारतीय भी। दोतीन टेवल हट कर दो सिख युवक पी कर धुत हो चुके थे। दोनो के सामने लड़किया प्यालिया भर कर लातीं, वे उन की कमर मे हाथ डाल कर पास खीचते और गोद मे वैठा लेते थे। लडकिया प्यालिया होठो से लगा देती थीं और बढावा देती जा रही थी।

मैं हेरत से यह सव देख रहा था, न जाने कब एक लडकी मेरे बगल मे आई, मुझे पता भी न चला।

"क्या पसद करेगे, हल्की या कडी," वडी मधुरता से उस ने पूछा। मै ने देखा उन्नीसवीस साल की युवती है, छरहरा बदन, खूबसूरत नाकनक्शा।

"पीना नही, देखना है" मेरे मुह से निकल गया। फिर जगह का ख्याल हो आया, मैं ने कहा मुझे सिर्फ कोल्ड ड्रिंक मे दिलचस्पी है।

उस ने बडी मायूसी से मेरी ओर देखा और दूसरे ग्राहक के पास चली गई। मैंने देखा—काउटर पर वैठी मोटी मालकिन गोलगोल आखो के नीचे होठ विचकाए मुझे देख रही है। थोडी देर वाद लडकी ने लैमनेड ला कर मेरे सामने रख दिया। और कहने लगी, "शायद आप गलत जगह आ गए है।"

लैमनेड खतम कर मैं उठा। देखा दोनो सिख चित्त हो चुके है। लडखडाते हुए वे लडकियो को ले कर पास के कमरो मे जा रहे थे।

क्लव से वाहर फाटक पर आ गया। देखा, लडकी भी पीछेपीछे आ रही है। मै ने उस से कहा, "तुम्हारा समय नष्ट होगा कोई फायदा नही।"

वडे दर्द से उस ने कहा, "आप मुझे जैसा सोचते है मैं वैसी नही हू। आखिर छात्रा हूं। उस ने बताया कि सोहो मे थोड़ी सी देर के लिए आने से उस की अच्छी आमदनी हो जाती है। इस से उस का और उस की मा का रहनेखाने का खर्च चल जाता है और कुछ पैसे बचा भी लेती है। आगे चल कर वह सम्मानपूर्वक अच्छी जिंदगी बिताएगी, पढाई पूरी कर आस्ट्रेलिया जा कर जीवन का नया अध्याय शुरू करेगी।

एक से एक नीचे स्तर का मनोरजन सोहो के क्लवो मे है। सोचने लगा, 'पता नही अगरेज किस आधार पर भारतीयो को असभ्य कहते थे।'

सोहो का एक दूसरा रूप भी है। यहा के सस्ते रेस्तराओ मे बैठ कर लेखक और विचारको ने नई विश्व प्रसिद्ध कृतियो का सृजन किया है। इस युग का विख्यात चिंतक और क्रातिकारी कार्ल मांर्क्स यही के एक गदे मकान मे रहता था। यही उस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दास कैपिटल' लिखी थी, जिस ने विश्व की आधुनिक अर्थनीति और राजनीति की धारा मे एक ऐसी उथलपुथल की सृष्टि की है, जिस का परिणाम अततोगत्वा क्या होगा, यह कहना कठिन है। जिस अधेरी कोठरी मे वह रहता था और जिस रेस्तरा मे चाय पिया करता था, उसे मैं ने देखा। आज तो यह स्थान ससार के कम्युनिस्टो के लिए मक्कामदीना है।

सोहो की चहलपहल रात के दस बजे से तीन बजे तक रहती है। ब्रुशेल्ज और पेरिस मे भी रात्रि क्लव और इस ढग के महल्ले है, पर यहा के नजारे उन से कही भद्दे और वीभत्स है।

बारह बज रहे थे, होटल के लिए लौट पडा। तीन दिन बाद हमे स्विट्जरलेड जाना था। समय कम था। अतएव, घूमने का प्रोग्राम भी सीमित रखा। दूसरे दिन पेटिकोट स्ट्रीट, फ्लीट स्ट्रीट और फॉयल्ज की दुकान देखने का निश्चय किया।

पेटिकोट स्ट्रीट कलकत्ता के चोरबाजार की तरह है। वैसे न तो चोरबाजार मे ही चोरी की चीजे बिकती हैं न यहा। फिर भी यहा अजीबोगरीब पुरानी चीजे बेशुमार इकट्ठी हैं। कभीकभी तो बडी अमूल्य ओर दुर्लभ वस्तुए बहुत सस्ते दामो मे हाथ लग जाती हैं।

हर रविवार की सुबह यह बाजार खुलता हे। पुराने कपडे, छाते, जूते, फर्नीचर, हथियार, तसवीरे, छडिया, घरेलू सामान यहा के फुटपाथो की दुकानो मे मिलेगे।

कुछ लोगो को शोक रहता है इन दुकानो के चक्कर लगाने का, क्योकि मोकेबेमौके उन के पसद की नायाब चीज सस्ते दामो मे मिल जाती है।

यहा के दुकानदार बडे बातूनी और चतुर हे। कहते है कि एक बार विश्वप्रसिद्ध साहित्यकार बर्नाड शा ने पुरानी पुस्तको की एक दुकान मे रखी अपने ही एक नाटक की प्रति का दाम पूछा। दुकानदार ने कहा, "यू तो यह पुस्तक एक बहुत बडे आदमी की कृति हे लेकिन किसी बेवकूफ ने इस के पृष्ठो पर टिप्पणिया कई जगह लिख दी है, इसलिए महज चार शिलिंग मे आपको दे दूगा।" शा ने किताब खोल कर देखी तो अचभे मे रह गए। किताब की यह प्रति उन्होने अपने हस्ताक्षर कर के एक मित्र को भेट की थी। विशेष रूप से अध्ययन के लिए पृष्ठो के हाशिए पर खुद टिप्पणिया लिखी थी। शा ने चार शिलिंग दे कर वह किताब खरीद ली। आज वह शायद पचास हजार तक मे बिक जाए तो कोई ताज्जुब नही।

चेयरिंग क्रास की नुक्कड पर फॉयल्ज की बहुत बडी दुकान है। पुस्तको की ऐसी दुकान शायद ही विश्व मे कही हो। इस की विशेषता यह है कि कोई जरूरी नही कि आप किताब खरीदे। कुरसिया लगी है, सुबह से शाम तक यहा बेठ कर मनचाही पुस्तक बिना शुल्क दिए पढ सकते हैं। इस के लिए हर तरह की सुविधा है। सैकडो वर्षो से यह दुकान यहा है। ब्रिटेन के बडेबडे कवि ओर लेखको ने यहा बैठ कर अपनी पुस्तके लिखी है। किताबो का शोक मुझे भी है। बड़ेबडे शहरो मे बहुत सी दुकाने भी देखी है। मगर, ऐसी दुकान ओर विभिन्न विषयो पर इतनी तरह की पुस्तके मैं ने एक ही जगह उपलब्ध कही नही देखी थी। इसलिए किताबो के देखने मे काफी समय लग गया। यहा से प्राकृतिक चिकित्सा की कुछ पुस्तके जसीडीह के अपने मित्र महावीरप्रसाद पोद्दार के लिए खरीदी।

दोपहर का भोजन लायज कारनर मे किया। लायज की सैकडो रेस्तरा लदन मे हैं। इन मे आमिष और निरामिष दोनो प्रकार के भोजन बहुत कम खर्च मे मिल जाते है। इस के अलावा, केक, पेस्ट्री, चाकलेट आदि की भी बहुत बडी बिक्री है। इन जलपानगृहो के मुनाफे के कारण लायज के मालिक की गिनती ब्रिटेन के प्रमुख धनिको मे है।

भोजन कर के फ्लीट स्ट्रीट गया। अखबारो का महल्ला है, पत्रकारो की दुनिया है। ब्रिटेन मे प्रति व्यक्ति ससार के अन्य देशो से ओसतन ज्यादा अखबार पढे जाते हे यहा भी अधिकाश समाचारपत्रो पर हमारे देश की तरह, कुछ धनी व्यक्तियो का अधिकार है। सैकडो अखबार तो केवल लदन से ही प्रकाशित होते है। इन मे से किसीकिसी की चालीसपचास लाख प्रतिया छपती है। रविवार अथवा छुट्टी के दिनो मे दैनिक पत्रो की पृष्ठ सख्या पचाससाठ तक पहुच जाती हैं। यदि रद्दी के भाव भी इन अखबारो को बेचा जाए तो इन के दाम वसूल हो जाते है।

दैनिको के अलावा, अलगअलग विषयो पर साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक पत्र भी बहुत बडी सख्या मे निकलते है। बालक, किशोर, युवक, वृद्ध ओर इसी तरह भिन्नभिन्न आयु की महिलाओ के लिए अलगअलग पत्र प्रकाशित होते है। टाइम्स, गार्जियन और न्यू

स्टेट्समैन जैसे गभीर पत्र तो दसबीस ही होगे । अधिकाश पत्र बडेबडें हैडिंग दे कर सनसनीखेज समाचार देते है । जैसे मिस कीलर के मुकद्दमे का प्रमुख गवाह आज दोपहर में हालवोर्न की बस से ईस्ट चीप की तरफ जा रहा था, बकरी के बच्चे ने कुत्ते की पिल्ले का कान चबा लिया, आदि ।

इन हैडलाइनो को मोटेमोटे अक्षरो मे कार्ड बोर्डो पर छपवा कर अखबार के एजेंटो को अपनीअपनी दुकानो या स्टालो पर टागने के लिए देते हैं । लोगो की निगाह पडी कि दौडे खबर पढने । मेरी समझ मे नही आ रहा कि कीलर का गवाह किस बस से कहां गया और कुत्ते के पिल्ले का कान बकरी के बच्चे ने काट लिया तो इस मे पाठको के काम की कौन सी बात है । मगर यहा ऐसे ही पत्र ज्यादा बिकते है । नगी तसवीरो के तथा कामोद्दीपक विषयो के मासिक या साप्ताहिक पत्रो के ग्राहक बहुत बडी सख्या मे है ।

प्रमुख पत्रो के सवाददाताओ की बडी इज्जत है और वे मेहनत भी खूब करते है । समाचारपत्र अपने संवाददाताओ को खतरे की जगहो पर भी भेजते है, ताकि आखो देखा सच्चा हाल पाठको तक पहुचाया जा सके । पत्रकार भी बडे साहसिक होते है । युद्ध के मोर्चो पर जा कर वहा की गतिविधि का विवरण भेजना कम खतरे का काम नही । कभीकभी कइयों को जान से हाथ धोने पडे है । विशिष्ट संवाददाताओ के पास तो अपने निजी हेलिकोप्टर या छोटे हवाई जहाज रहते है, जिस से घटनास्थल पर शीघ्र ही पहुंचने मे सुविधा रहे ।

यहा परिवार के सदस्य अपनीअपनी रुचि के अनुसार अखबार खरीदते हे । यदि घर मे छ व्यक्ति है तो छ पत्र रोज़ाना आएंगे ही, कई अखबारो के तो दिन में छ-सात संस्करण तक निकलते हैं । इन मे से किसीकिसी की करोड़ों रूपए की वार्षिक आय केवल विज्ञापनों से होती है ।

आज हालाकि ब्रिटेन दुनिया में पहली श्रेणी का राष्ट्र नहीं रहा, फिर भी अखबारी दुनिया मे फ्लीट स्ट्रीट और उसके सवाददाता प्रथम श्रेणी मे आते है । भाषा की चटक, कार्टून और पत्रकारिता मे अब भी ब्रिटेन से फ्रांस, अमेरिका और मास्को को बहुत कुछ सीखना है और हमे भी ।

फ्लीट स्ट्रीट से हम ब्रिटिश पार्लियामेंट (ससद भवन) देखने गए । हम अपने देश के ससद सदस्य थे, इसलिए वहां के अधिकारियो ने हमारी अच्छी खातिर की; बैठने के लिए विशेष स्थान दिया । पार्लियामेंट आज जिस जगह पर है, वहां पहले वेस्टमिंस्टर पैलेस नामक प्रासाद था । वर्तमान ससद भवन १५वीं शताब्दी के अत मे बना था । बीचबीच मे कई बार इस में आग लगी । फलत कुछ न कुछ रद्दोबदल होते रहे । अगरेज जमाने के साथ बदलते जरूर हैं, मगर अपनी सस्कृति के कट्टर प्रेमी होते हैं । अपने संसद भवन की मरम्मत और सुधार मे उन्होने इस बात का खयाल रखा कि उस की मौलिकता नष्ट न हो । इसलिए आज भी ससद भवन पहले के रगढग में है ।

यो तो हम ने पुस्तको मे ब्रिटिश पार्लियामेंट भवन के चित्र पहले ही देखे थे, किंतु यहां इसे प्रत्यक्ष देख कर बीते हुए जमाने की बाते एक बार दिमाग में घूम गई । इन्ही मे से किसी एक कुरसी पर राबर्ट क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स ने बैठकर भारत में अपने किए गए कुकृत्यो पर बहस सुनी होगी । सन १८५८ मे इसी भवन मे कानून बना कर भारत को ब्रिटेन की रानी विक्टोरिया की पूर्ण अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया था । भारत के शिल्पोद्योग को कुठित करने के लिए नाना प्रकार के कानूनकायदे इसी ससद ने बनाए और अगरेजी व्यापार को भारत मे अनेक तरह से सरक्षण मिले ।

जो भी हो, ब्रिटिश पार्लियामेंट का इतिहास अपने मे अनोखा है । फ्रांस में इस से भी पहले ससद की स्थापना हो चुकी थी, किंतु वहा के राजाओ ने उस की सत्ता को सर्वोच्च नही माना । ब्रिटेन मे राजाओ ने समयसमय पर ससद के अधिकारो का अतिक्रमण करने के प्रयत्न

किए थे, लेकिन जनमत के सामने उन्हे भी सिर झुकाना पडा ।

१६४६ मे अपने सम्राट चार्ल्स प्रथम के शिरच्छेद का आदेश ससद ने दिया। सन १६३६ मे एक वर्ष के अदर ही सम्राट अष्टम एडवर्ड को राजमुकुट त्यागने के लिए बाध्य किया गया। एडवर्ड साधारण घराने की तलाकशुदा महिला से विवाह करना चाहते थे । ब्रिटिश पार्लियामेट ने स्वीकृति नही दी । एडवर्ड के सामने सिंपसन या सिंहासन दोनो मे से एक चुनना था ।

यद्यपि विधानत ब्रिटिश सम्राट ही सार्वभौम सत्ता का अधिकारी है, फिर भी परपरा का पालन ब्रिटेन के शासक करते आए है। ससद के बनाए कानूनकायदे और उस के निर्णय को वे सदैव मानते आए है ।

हम जिन दिनो वहा थे, उन दिनो अनुदार दल की सरकार थी । प्रधान मत्री थे लार्ड मैकमिलन । ब्रिटेन में हमारे यहा की तरह अनेक राजनीतिक दल नही हे । अनुदार दल और श्रमिक दल ये दो ही मुख्य है । श्रमिक दल है जरूर, पर यह साम्यवादी या मार्क्सवादी नही है । विदेशो से निर्देश और प्रेरणा प्राप्त करने वाले व्यक्ति या दल को यहा जनता प्रश्रय नही देती, भले ही वह क्यो न भूलोक मे स्वर्ग उतार लाने का पट्टा लिख दे ।

विरोधी दल को भी शासक दल और जनता, दोनो के द्वारा मान्यता और प्रतिष्ठा मिलती है, क्योकि उन के द्वारा स्वस्थ विरोध एव आलोचना होती है ।

हम जिस दिन ससद गए, वहा प्रोफ्यूमो काड पर बहस हो रही थी । स्तर काफी ऊचा था । ऐसा लगता था कि प्रत्येक सदस्य पूरी जानकारी कर के आता है । विरोधी सदस्य इस काड की सारी जिम्मेदारी पूरे मत्रीमडल पर थोपना चाहते थे, जब कि सरकारी दल के नेता मत्रीमडल को इस से मुक्त रखना चाहते थे । उन का कहना था कि एक व्यक्ति की कमजोरी के लिए सारे के सारे दोषी क्यो ठहराए जाए ?

ससद भवन देख कर हम लोग बस से लदन के उस अचल को देखने गए, जो 'ईस्ट एड' के नाम से मशहूर है । यह गरीबो की बस्ती है । इस के बारे मे पहले भी सुन चुका था, किंतु प्रत्यक्ष जो कुछ भी देखा वह उस से कही ज्यादा था और विचारोत्तेजक भी । यहा से करीब पौन मील की दूरी पर ही डोर्र चेस्टर और पार्कलेन जैसे महगे होटल, बकिंघम पैलेस, रिजेट स्ट्रीट व बोड स्ट्रीट की महँगी दुकाने हैं। लगता है जैसे ईस्ट एड कोई अभिशप्त स्थान है । लदन बदला पर यह नही बदल सका ।

यहा है कीचड और गदगी भरे रास्ते, मैलेफटे वस्त्र पहने मुरझाए पीले चेहरे और जिंदगी के बोझ ढोते हुए स्त्रीपुरूप, बच्चे, पुरानी सस्ती चीजो की दुकाने, तन का सौदा करती चलतीफिरती स्त्रिया । खूबसूरत मासूम बच्चे और किशोर अपनी माबहनो के लिए ग्राहक ढूढने को तैयार, गाजा, अफीम, चडू, चरस आदि अवेध नशो की पुडिया पहुचाने को तत्पर । महज इसलिए कि पैसे मिलेगे । पैसे चाहिए जीने के लिए ।

अजीब सी घुटन थी विचित्र दृश्य था । इस से तो सोहो कही बेहतर था । यहा की एक दुकान मे देखा, कुछ लोग अपने सामान बधक रख कर रुपए ले रहे थे । सामान मे पुराने कोट, पतलून और कमीजे तक थी ।

ईस्ट एड बदरगाह के नजदीक है । यही इस का सब से बडा अभिशाप है । सभी बदरगाहों के आसपास ऐसी बस्तिया होती है । महीनो घर से दूर समुद्र मे बिताने के बाद मल्लाह और नाविक हर जगह जुटते है । हमारे देश कलकत्ता मे भी खिदिरपुर इसी प्रकार का मुहल्ला है, किंतु वहा ऐसी छूट और सुविधा नही है । यहा देखा विदेशी मल्लाह और नाविक भातिभाति की पोशाको मे चक्कर लगा रहे है । शराब की दुकानो मे लडकियो को लिए बैठे है और चिल्ला रहे है । नशे मे यहा झगडे और मारपीट होते रहना मामूली बात है, दैनिक वारदाते है ।

ऐसी जगह पर चीनियो की बन आती है। कलकत्ता के चीनी महल्ले के बारे मे हम ने सुना था यहा भी देखा। चीनी चोरी के कारबार मे दक्ष होते है। चडू और चरस के अड्डे यहा भी उन्ही के चलते है। सैकडो वर्षो से हर देश मे उन का यही धधा रहा है। हमे पहले ही से सावधान कर दिया गया था, इसलिए इन अड्डो पर मैं नही गया। इच्छा तो बहुत थी कि खुद जा कर नजारा देखू मगर सूत्र न था और अकेले जाने मे खतरा, इसलिए मन की मन मे रह गई।

रात दस बजे हम होटल वापस लौटे। अतिम दोतीन घटो मे जो कुछ देखा, उस से बहुत आश्चर्य नही हुआ। ब्रिटेन मे कही ज्यादा सपन्न देश है अमरीका। वहा न्यूयार्क के हारलेम महल्ले का भी नजारा ईस्ट एड जैसा था। फर्क केवल यही था कि इतनी गरीबी और गदगी वहा नही थी।

हमे सूचना मिली कि श्री घनश्याम दास बिडला अमरीका मे लौट आए है। दूसरे दिन सुबह ग्रोसवेनर होटल मे उन से मिलने गए। लदन के सब से महगे होटलो मे यह माना जाता है। उन के साथ बोड स्ट्रीट की चमडे के सामान की एक दुकान मे गया। कई तरह के बक्स, हैड बैग और पोर्टफोलियो देखे। कीमत डेढ से तीन हजार तक। अधिक कीमत का कारण पूछा तो सेल्समैन ने शाइस्ता ढग से मुसकरा कर बताया हमारी यह दुकान लगभग २५० वर्षो से आप लोगो की खिदमत करती आ रही है। डिजरैली ग्लैडस्टोन जर्मन सम्राट कैसर विलियम जार्ज बर्नार्ड शा तथा विस्टन चर्चिल जैसे मूर्धन्य महानुभावो की सेवा कर उनकी प्रशसाए अर्जित करने का हमे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हमारे यहा बने माल मे शिकायत का मौका शायद ही मिले। हम बेहतरीन चीजे खरीदते है और सुदक्ष कारीगरो को अच्छी मजदूरी दे कर तैयार कराते है। इसलिए हमे आप को सतोष देने का पूरा विश्वास है।

बिडलाजी ने करीब दो हजार रुपए मे एक पोर्टफोलियो बैग खरीदा। मुझे लगा कि मोलभाव करने मे शायद कीमत कुछ कम हो सकती थी पर खरीददार भी बडा और दुकान भी ऊची दोनो ही इसे अच्छा नही समझते होगे।

दूसरे दिन अकेला ही वूल्र्थवर्थ के चेन स्टोर्स मे गया यहा उसी तरह की पोर्टफोलियो के दाम १०० व १२५ रुपए थे। शायद क्वालिटी मे कुछ फरक था जरूर, पर कीमत के अनुपात से नही के बराबर। यहा कीमत है दुकान की साख पर। बडीबडी दुकानो मे जो फल तीन या चार रुपए पौड मे मिलते है बाहर सडको पर ठेले वालो से रुपए सवा रुपये मे मिल जाएगे। हम ने देखा वर्षा और ठड की परवा किए बिना वे रात के दसग्यारह बजे तक ठेलो मे फल, सूखे मेवे इत्यादि बेचते रहते है।

आज प्रभुदयालजी साथ नही थे, इसलिए घूमनेफिरने मे स्वतत्रता थी। चेयरिंग क्रास मे बेरी ब्रदर्स की दुकान पर क्यू सी लगी देखी, मै भी खडा हो गया। यह शराब की प्रसिद्ध दुकान है जो पिछले ३६५ वर्षो से लदन मे इसी जगह पर है। इस के ग्राहको मे अनेक देशो के राजे, महाराजे शेख, सुलतान, मिनिस्टर राजनीतिज्ञ और सेनाधिकारी रहे है। इन लोगो के निजी हस्ताक्षर से युक्त तसवीरे दुकान के मालिक ने सजा रखी है। इन का दावा है कि महारानी विक्टोरिया के परदादा के समय की शराब इन के यहा मिल जाएगी।

लगभग उसी जमाने का एक बेडौल सा तराजू भी वहा देखा। इस पर किसी समय अगूर जौ और गुड तौले जाते थे, आजकल ग्राहको को इस पर नि शुल्क अपना वजन लेने की छूट है। इस काटे के बारे मे बताया गया कि ३५० वर्षो के इस पुराने काटे का वजन तोले तक सही उतरता है। एक ओर पुराने जमाने के बटखरे रखे थे और दूसरी ओर लोहे की साकलो से झूलते हुए पलडे पर स्त्रीपुरुष बारीबारी से बैठ कर अपना वजन कर रहे थे। हसी और चुहल का वातावरण था। मैं भी क्यू मे अपनी बारी आने पर पलडे पर बैठ गया। नीचे उतरते

ही वहा की सेल्स गर्ल ने मुस्करा कर वजन का सुदर कार्ड दिया और वेहतरीन किस्म की शराव का एक पेग भी। शराव से हमे हमेशा परहेज रहा है, पर वहा 'ना' नही कर सका। वहरहाल, पीने के वाद उर्दू का एक शेर जरूर याद आया।

"जाहिद शराव पीने से काफिर वना मैं क्यो,
क्या एक चुल्लू पानी मे ईमान वह गया ?"

हालाकि इस व्यवस्था से प्रति दिन इन का वहुत खर्च होता होगा लेकिन मेरा ख्याल है, प्रचार की दृष्टि से यह निस्सदेह लाभदायक है। पश्चिमी देशो मे विज्ञापन का वडा महत्त्व है। आदम के जमाने के काटे पर नि शुल्क वजन करने के वाद इस 'एक पेग' के मुफ्त वाँटने पर उन की बिक्री वहुत वढ जाती है। हमारे यहा चाय का प्रचार भी इसी तरह से हुआ था। मै ने देखा, वहा जाने वाले सभी कुछ न कुछ खरीद करते ही है। मेरी तरह खाली हाथ तो एकआध ही आता होगा।

अगले दिन भी व्रजमोहन विडला से मिलने डारचेस्टर होटल गए। वडी चहलपहल थी। लवे चोगे पहने अरव काफी सख्या मे इधरउधर आजा रहे थे। पता चला, कुवैत के कोई शेख वहा ठहरे है। उन्होने इस महगे होटल का एक पूरा तल्ला ले रखा है, क्योकि इन के मुसाहिवो और वेगमो की एक पूरी टोली इन के साथ आई है। मुझे पचीस वर्ष पहले के भारतीय राजाओ की याद आ गई। वे भी तो यहा आ कर इस तरह वेशुमार दौलत लुटाते थे। ऐश और मौज मे गरीव भारत के करोडो रुपए खर्च कर डालते थे। कभीकभी तो लाखो रुपए के कुत्ते ही खरीद लेते थे और इन की सभाल के नाम पर सुदर लडकिया भी ले जाते थे। सोचने लगा, 'विना मेहनत की कमाई पर मोह कैसा ? चाहे वह गरीब प्रजा से ली गई हो या तेल की रायल्टी मे मिली हो।

रविवार का दिन था। श्री व्रजमोहन विडला ने समुद्र तट के सुदर शहर व्राइटन मे पिकनिक का आयोजन कर रखा था। हम आठदस व्यक्ति रहे होगे। तीन वडी हवर सिडली मोटरे थी। उन मे से दो की ड्राइवर स्वस्थ और सुदर युवतिया थी। लदन मे वाहर आते ही सडक के दोनो वाजुओ पर करीने से वने सैकडो एक सरीखे मकान दिखाई पडे। वीचवीच मे हरियाली। लदन की घुटन मे मानो राहत मिली।

विडलाजी के लदन आफिस के मैनेजर श्री गम्वे ने वताया कि ये सारे मकान पिछले पदरह वर्षो मे वने है जिन मे अधिकाश मध्यम वर्ग के लोगो के है। आवास की समस्या को हल करने के लिए सरकार अत्यत उदार शर्तो पर ऋण देती है।

आवादी धीरेधीरे पीछे छूटती गई और हम खुली जगह पर आ गए। हमारी कारो मे तेज रफ्तार की होड लग गई। लडकिया भला क्यो हार मानती। सुई ८० मील पर जा पहुची। प्रभुदयालजी ने वहुतेरा समझाने का प्रयत्न किया पर हमारी ड्राइवर केवल मुसकराती रही और गाडी की चाल तेज करती गई। आखिर, हम लोगो ने आखे वद कर ली। किसी तरह व्राइटन पहुचे। यहा के एक प्रसिद्ध होटल मे लच लिया। निरामिष भोजन के लिए उन्हे लदन से पूर्व सूचना दी जा चुकी थी। शायद विडलाजी की टिप के वारे मे होटल के कर्मचारियो को पहले से पता था, इसी लिए खातिरदारी भी उसी तरह जम कर हुई।

लच ले कर जव हम समुद्र के किनारे आए तो ऐसा लगा कि लदन उठ कर यहा आ गया हो। किनारे पर तीनचार लवे डेक वने हुए थे जिन पर दुकानो के सिवा कार्निवल सा लगा था। तरहतरह के खेल और जुए चल रहे थे। हम लोगो ने भी किस्मत की आजमाइश करनी चाही। मै ने दस रुपए की गेंद खरीदी। इन्हे सामने खडे राक्षस के मुह मे डालना था। मुह काफी खुला था होठो का फासला भी वहुत था, पर एक भी गेद भीतर न जा सकी। शायद वनावट की खूवी हो, वैसे निशाने अच्छे साधे थे। प्रभुदयालजी तथा अन्य साथियो ने भी कुछ

न कुछ अलगअलग खेलो पर खर्च किया। लगभग एक सौ रुपए खर्च करके इनाम मे मिली दो कागज की टोपियां और अन्य दोतीन मामूली चीजे। स्टालो मे बहुत सी कीमती चीजें सजा कर रखी गई थी, लेकिन वे सब दिखावे के लिए ही थी, क्योकि दूसरे लोग भी हमारी तरह अपने इनाम देखदेख कर हस रहे थे। एक वृद्धा तो बुरी तरह चिढ गई। वह दुकानदारो को ठग बता कर बुराभला कह रही थी।

शाम हो रही थी। हम समुद्र के किनारे-घूमने निकले। कई मील लबा समुद्र तट है। जूहू, गोपालपुर या पुरी मे कही अधिक विस्तार है। सैलानी शनिवार को ही मनपसद जगह रोक लेते है। खानेपीने का सामान साथ ले आते है। यहा आ कर अपनी व्यावसायिक अथवा नौकरी की सारी परेशानियां और दिक्कत भूल जाते है। किसी के साथ उस की स्त्री और बच्चे है, तो कोई प्रेयसी के साथ है। सभी जोडे मे मिलेगे।

यूरोप मे स्त्रियो के समक्ष पुरुषो को पूरे कपडों मे रहना ही शिष्टता है। पर इन स्थानो पर इस की छूट है। इसलिए पुरुष केवल जाधिया पहने मिलेगे और बिकनी पहने स्त्रिया। सभी बालू पर धूप सेक कर बदन को सावला बनाने की कोशिश करते रहते है। होनोलूलू की तरह तो यहा नजारे नहीं दिखाई दिए, पर जितना भी देखा वह भारतीय मर्यादा की लक्ष्मण रेखा से कही बाहर था।

एक जगह बहुत शोर शराबा हो रहा था। काफी भीड लगी थी और पुलिस वाले भी इकट्ठे हो गए थे। पूछने पर पता चला कि छात्रो के दो दलो मे मारपीट हो गई। अनेक के सिर फटे है, किसी की कलाई टूटी है तो किसी की टाग। आश्चर्य की बात यह थी कि लडने वालो मे लडकिया भी थी। खूब जम कर हाकीस्टिक चला रही थी। हमे बताया गया कि यहा 'राकेट' और 'माड' नाम के दो दल विद्यार्थियो के है, जो एकदूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश मे रहते है। इसलिए यहा कही ये इकट्ठे हुए कि झगडा और मारपीट हो जाती है।

मै तो समझता था कि हमारे देश मे ही उच्छृखलता का रोग छात्र समाज मे है, पर यहा आ कर देखा कि इस की हवा यहा कही अधिक है।

वापस जब लदन आए, रात हो चुकी थी। दिन मे इतनी ज्यादा आइस्क्रीम खा चुका था कि डिनर लेने की तबीयत नही थी। इस के अलावा, ऐसे मौको पर प्रभुदयालजी याद दिला देते थे कि 'खाए कि न खाए तो न खाए भला,' अर्थात कम भूखा रहने पर नही खाना ही अच्छा रहता है, इस से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव नही पडता।

लदन मे हमारे इतने परिचित मित्र थे कि होटल या रेस्तरा मे खाने का कम ही मौका लगा। दूसरे दिन दोपहर मे श्री जी० डी० बिन्नानी के लदन कार्यालय के व्यवस्थापक श्री बागडी के यहा गए। वे यहा एक फ्लैट ले कर सपत्नी रहते है। बहुत ही सुस्वादु भारतीय भोजन मिला। हलुवे के साथ बीकानेरी भुजिए भी थे। बहुत दिनो बाद लता मगेशकर और मुकेश की सुरीली आवाज मे रिकार्डो पर हिंदी गाने भी सुनने को मिले।

रात के भोजन का निमत्रण था—रामकुमारजी के मित्र श्री हून के यहा। बहुत ही सभ्रात महल्ले मे श्री हून का अपना मकान है। १५ वर्ष पहले साधारण स्थिति मे यहा आए थे। अब तो यहा के विशिष्ट व्यापारियो मे इन की गणना है। टर्नर मोरिसन नामक प्रसिद्ध फर्म के अध्यक्ष है। उन्होने हमारे सिवा और भी दसपदरह मित्रो को बुलाया था। भोजन के साथसाथ विविध चर्चाए—विशेषत भारतीय अर्थनीति और राजनीति पर चलती रही। पता ही नहीं चला कि रात के बारह बज गए है। बहुत मना करने पर भी श्रीमती हून हमे अपनी कार से होटल तक पहुचा ही गई।

दो दिन बाद हमे लदन से विएना जाना था। नाश्ता कर सुबह की चेयरिंग क्रास से ट्रेन मे बैठ कर लदन से लगभग तीन मील दूर अपने एक पुराने मित्र से मिलने चला गया। १५

वर्षो के लंबे अर्से के बाद हमारी मुलाकात हुई। मै ने महसूस किया कि मुझे देख कर वह कुछ झेप सा रहा था। मैं कारण ठीक समझ नही पाया। प्राविजन स्टोर्म की अपनी छोटी सी दुकान पर बैठा था। कुशलमगल पूछने के बाद भीतर से आती हुई एक प्रौढा से परिचय कराया—वह इस की पत्नी थी। भारत से आने के बाद मित्र ने इस से विवाह कर लिया था। पति की मृत्यु के बाद महिला को दुकान और खेती सभालने के लिए एक साथी की जरूरत थी। मेरे मित्र को लदन के व्यस्त जीवन और नौकरी की झझटो से कही अच्छा यह काम और स्थान जच गया। एक परिचित के माध्यम से परस्पर जानपहचान हो गई और दोनो विवाह सूत्र मे बध गए। अब मुझे उस की झेप का कारण समझ मे आ गया।

पत्नी उमर मे मेरे मित्र से करीब दसबारह साल बडी थी। फिर भी मै ने उसे हर काम को तत्परता और उत्साह से करते हुए पाया। उस दिन की दोपहर का भोजन मुझे आज तक याद है। थोडी ही देर मे खीर, रोटी, फलो के मुरब्बे और न जाने कितने तरह के सुस्वादु व्यजन बने थे। मै ने यह भी लक्ष्य किया कि इतनी खातिरखिदमत और मेहनत करने पर भी वह अपने पति का काफी अदब करती थी, शायद डरती भी थी। आम तौर पर पश्चिमी देशो की पत्नियो मे ऐसा कम ही होता है। मुझे अपने यहा के वृद्ध पतियो की याद आई जो जवान बीवियो से झिडकिया खा कर भी दात निपोरते रहते है। शायद आयु के अधिक अतर से मन मे हीनता की भावना का सचार होना स्वाभाविक है।

पूरे दिन उन्होने मुझे अपने यहा रोके रखा। मुझे भी यहा बडी शाति मिली। लदन की भीड और व्यस्त जीवन ने दिमाग को बोझिल बना दिया था। पुराने दिनो की याद कर हम दोनो कभी खूब हसते तो कभी उन्ही मे डूब जाते थे। हम दोनो ने ढाका, नारायणगज और खुलना आदि पटसन के केद्रो की बहुत बार एक साथ यात्रा की थी। बडी आरजू के बाद पतिपत्नी दोनो ने छ बजे शाम को नाश्ता कराने के बाद लदन वापस आने दिया। स्टेशन तक अपनी कार मे पहुचाने आए।

लदन पहुचा, उस समय आठ बज चुके थे जोरो की बारिश हो रही थी। अपने एक भारतीय मित्र के पुत्र के विशेष आग्रह पर आठ बजे उसके घर पर भोजन करना स्वीकार कर लिया था। वह यहा पढने के लिए भारत से आया था किंतु एक स्पेनिश विधवा से विवाह कर यही बस गया था। उस का घर स्टेशन से करीब बारहचौदह मील पर था। जोरो की वर्षा, और मेरे पास छाता नही। दूसरे ही दिन मुझे लदन छोड देना था। अतएव, एक दुकान मे बरसाती और बच्चो के लिए कुछ उपहार खरीद कर जब उस के घर पहुचा तो रात के नौ बज चुके थे। मै ने देखा पतिपत्नी दोनो उस वर्षा और ठड मे मेरी प्रतिक्षा मे सडक पर खडे थे। उन्हे भय था कि मुझे शायद उन का फ्लेट खोजने मे दिक्कत हो। देर के कारण अपने ऊपर झल्लाहट सी हो रही थी, उन्हे इस हालत मे देख कर झेप सा गया। यदि न आता तो न जाने कितनी देर तक भीगते रहते।

दोनो बडे खुश हुए। छोटा सा दो कमरो का फ्लेट था। पत्नी की मा और पहले पति द्वारा एक बच्ची भी साथ रहती थी। पतिपत्नी दोनो काम कर जीवन निर्वाह कर रहे थे। रहनसहन का स्तर बुरा नही था। लडके की इच्छा देश जा कर पिता से मिलने की थी पर सुयोग नही बन पा रहा था।

लडके ने बताया कि इस महल्ले मे और भी सैकडो भारतीय परिवार है, जिन मे पजाबी अधिक है। सिक्खो की सख्या भी काफी है। ये नौकरी, दुकानदारी और मजदूरी करते है। इन मे से बहुतो ने तो भारत से अपने स्त्रीबच्चो को भी यहा बुला लिया है और स्थायी रूप से बसते जा रहे है। इन मे शादी विवाह, रीतिरस्म अभी तक भारतीय है। कभीकभी तो इन अवसरो पर ढोलक पर गीत वगैरह भी होते रहते है।

मौसम बहुत खराब था और रात भी ज्यादा हो गई थी। इच्छा होते हुए भी यहा के

भारतीयो से मिल नही सका। उन्हे मेरे आने की सूचना पहले ही दे दी थी, उन मे से कुछ मिलना चाहते थे। भागरा नृत्य और गीत का प्रोग्राम भी रखना चाहते थे पर पहले से प्रोग्राम तय नही हो सका था।

रात बारह बजे होटल पहुचा। दबे पाव कमरे मे घुस रहा था, देखा कि प्रभुदयालजी जाग रहे है। सनसनाती ठडी हवा और जोरो की वर्षा मे मुझे बाहर से लौटा न देख कर परेशान हो रहे थे और मेरी राह देख रहे थे। सुबह आठ बजे ही उन के पास मे चला गया था।

बिस्तर पर पडते ही नीद आ गई।

दूसरे दिन सुबह हमे विएना के लिए रवाना होना था। जल्दी ही उठ कर नाश्ता इत्यादि कर तैयार हो गए। नौ बजे कमरे के दरवाजे पर दस्तक हुई। देखा श्री हून ने अपने पुत्र को एयरपोर्ट तक पहुचाने के लिए भेजा था। हमारे मना करने पर भी स्वय ड्राइव कर हमे अपनी गाडी से उस ने एयरपोर्ट पर पहुचा दिया। एक डब्बा हाथ मे देते हुए उस ने कहा आप लोगो के लिए माताजी ने मिठाइया भेजी है।"

बहुत वर्षो से श्रीमतीहून भारत नही जा सकी थी। शायद, इसी लिए अपने देश के लोगो के प्रति स्नेह और ममता उडेल कर उस की पूर्ति कर रही थी। वैसे इतने व्यस्त नगर मे इतनी फुरसत कहा और किसे है ? जब कि साधारण सी औपचारिकता निबाहनी मुश्किल हो उठती है।

मुझे लगा श्रीमती हून की मिठाइयो ने भारतीय तरीके से विदाई को मधुर बना दिया।

इंगलैंड से कितना अलग ?

स्काटलैंड

स्काटलैड, ब्रिटेन का उत्तरी भाग है। सरसरी तोर पर वेल्स, आयरलैड, इगलैड और स्काटलैड मे विशेष अतर नही दिखाई देता। फिर भी, गोर से देखा जाए तो इन राज्यो की सस्कृति और यहा के निवासियो के रहनसहन, चालढाल, पहनावे, यहा तक कि बोली मे भी स्पष्ट अतर दिखेगा। इगलेड और स्काटलेड के प्राकृतिक दृश्यो और भोगोलिक बनावट मे भी काफी अतर है। स्काट ओर अगरेजो के शारीरिक गठन मे भी भिन्नता है। स्काट लबे कद और चौडी हड्डी वाले तथा अपेक्षाकृत कष्टसहिष्णु होते है।

ब्रिटेन का इतिहास बताता है कि इगलेड ओर स्काटलेड मे एक अरसे तक लडाइया होती रही है। दोनो पृथकपृथक राज्यो के रूप मे थे। कभी इगलैड का अधिकार स्काटलेड पर हो जाता था तो कभी स्काट शासक इगलेड पर आधिपत्य जमा लेते। दोनो राज्यो की जनता मे आपस मे विवाह होते थे पर ये बहुप्रचलित नही थे। आखिर सन १७०७ मे दोनो राज्य एक होकर ग्रेट ब्रिटेन बने। लेकिन आज भी दोनो के बीच भावानात्मक एकता पूर्ण रूप से पैदा नही हो पाई है। स्काट लोगों की शिकायत है कि ब्रिटिश पार्लियामेट मे उन का प्रतिनिधित्व कम है और अगरेज उन पर प्रभुत्व जमाए रखना चाहते है। जो भी हो, यह उन का पारस्परिक या घरेलू विवाद है। विदेशो मे जहा कही भी वे गए, ब्रिटिश बने रहे। दोनो के दृष्टिकोण मे कोई अतर नही आया। निस्सदेह यह एक स्वस्थ राष्ट्रीय गुण है। भारत मे हम इन्हे अगरेज नाम से ही जानते थे ओर इसी नाम से इनका उल्लेख सब जगह होता था।

कलकत्ता मे जूट की जिस व्यापारी फर्म मे मैं लबे अरसे तक काम करता रहा वहा स्काटिश लोगो की ही प्रधानता थी। उन दिनो वे पटसन के काम मे विश्व मे सब से अधिक जानकार माने जाते थे। यहा काम करने वाले अंगरेजो को हर तीन वर्ष बाद एक साथ छ महीने की छुट्टी अपने देश जाने के लिए दी जाती। छुट्टी की अवधि ज्योज्यो नजदीक आती वे 'होम स्वीट होम' (घर प्यारा घर) अलापने लगते। अपने देश के पर्वतो, नदियो, खेतो, चरागाहो की तारीफ करते समय उन के चेहरो पर एक उल्लासपूर्ण आभा सी दिखाई देती थी। अपने काम के दौरान मेरी उन मे घनिष्टता हो गई थी। मैं उन मे पूछता, "आप स्वीट होम' कहते है, उसी तरह हमेभी अपना घर प्यारा लगता है। फिर क्यो 'वदेमातरम्' या 'भारत प्यारा देश हमारा' कहने पर आप लोग इसे गुनाह मानते है ?"

उत्तर में वे या तो चुप रहते या कह देते कि यह राजनीतिक विवाद का प्रश्न है, हमे इस मे नही पडना है।

जो भी हो, अगरेजो से और खास तौर से स्काट लोगो से, उन के देश का जो वर्णन सुनने को मिला, उस से उसे जानने की और देखने की इच्छा पैदा हो गई। अगरेजी साहित्य मे भी हमारे यहा की तरह वीर गाथाए ज्यादातर स्काटलैड के वीरो पर ही लिखी गई है। बचपन में राबर्ट ब्रूस की कहानी पढी थी। उस के बाद स्काट की रचनाए पढ कर इच्छा होती थी कि देखूं हमारे राजस्थान से स्काटलेड की क्या समता है, इगलैड पहुचने पर अपनी उस इच्छा की पूर्ति का अवसर मिला।

एक दिन अचानक ही लदन मे ट्रेन मे बैठ कर स्काटलैड के औद्योगिक नगर डडी जा पहुचा। रात थी इसलिए सफर मे रास्ते के दृश्य देख नही पाया। सवेरे जब नीद खुली, खिडकी से देखने मे आया कि बरफ की चादर मे ऊचीनीची जमीन ढकी हुई है। वृक्ष और मकानो की छते भी बरफ से ढकी पडी थी।

ट्रेन के डब्बे से बाहर निकलते ही बरफानी तूफान और बौछारो ने कपकपी पैदा कर दी। कडाके की सर्दी थी। उस समय तक मै उत्तरी ध्रुवाचलीय देशो की यात्रा नही कर पाया था इसलिए यहा की सर्दी असह्य मालूम पडी। अपनी आदत के कारण किसी को पूर्व सूचना नही दी थी। कडाके की सर्दी, और एकदम नई जगह। अनजान अपरिचित मै अपने इस स्वभाव पर खुद ही पछता उठा। बहरहाल, एक टैक्सी वाले से किसी होटल मे ले चलने को कहा।

उन दिनो वहा बरफ के खेलो के कई एक टूर्नामेंट चल रहे थे, ठहरने के लिए स्थान का अभाव था खैर, तीनचार होटलो के चक्कर लगाने के बाद एक मे जगह मिल ही गई। नाश्ता करने के बाद टेलीफोन डायरेक्टरी उठा कर अपने मित्र मिस्टर बैक का पता ढूढ निकाला और उन्हे फोन किया। वह अपनी खेती देखने गए थे। एक दूसरे मित्र जोन स्मिथ का नाम ढूंढने लगा तो आश्चर्य मे पड गया। हमारे यहा के राम, श्याम और गोपाल की तरह वहा स्मिथ बहुप्रचलित नाम है। एक बार तो सोचा कि जितने जोन स्मिथ है, सब को फोन करू पर अपने इस खयाल पर खुद हसी आ गई। सोचा कि रविवार का दिन है लोगो को अकारण ही परेशान करने से क्या लाभ ?

आखिर तीनचार गरम कपडे पहन, छाता ले, होटल से बाहर निकला और ड्यूटी पर खडे पुलिस सार्जेट की सहायता ली। वह बडी तत्परता से पास की एक पुलिस चौकी पर मुझे ले गया। अपनी जगह उस ने एक अन्य सार्जेट को ड्यूटी पर भेज दिया। वहा से उस ने दोतीन जॉन 'स्मिथो' को फोन भी किए पर काम बना नही। मेरे पास अपने मित्र स्मिथ का पता था लेकिन यह तो रविवार का दिन था। सारे दफ्तर बद थे। सार्जेट ने अनुमान लगाया कि केयरटेकर आफिस के ऊपर की मजिल मे रहता होगा।

उस ने विचार प्रकट किया कि आफिस चल कर केयरटेकर से मिला जाए और मिस्टर स्मिथ के घर का पता मालूम किया जाए। मैं हिचकिचा रहा था कि इसे नाहक परेशानी होगी पर सार्जेट कब रुकने वाला था। बरफीली हवा और बौछार मे मेरे साथ हो लिया। लगभग एक मील पैदल चल कर हम स्मिथ के दफ्तर पहुचे। केयरटेकर बाजार गया हुआ था पर उस की पत्नी घर पर थी।

मिस्टर स्मिथ का फोन नबर मिल गया। केयरटेकर की पत्नी ने आफिस का कमरा भी खोल दिया। हम ने फोन किया, स्मिथ घर पर ही था। उस का घर वहाँ से सातआठ मील दूर रहा होगा। उसे मेरे लदन आने का समाचार तो मिल चुका था। पर डडी आने के प्रोग्राम का पता नही था। होता भी कैसे, प्रोग्राम अचानक ही तो बना था। बडा प्रसन्न हुआ और खुद ही चद मिनटो मे बडी सी हबर कार ले कर आ पहुचा। सार्जेट विदा लेते समय मुझे धन्यवाद देने लगा कि इतने समय तक मेरा साथ रहा। मैं उस के सहज, शिष्टतापूर्ण व्यवहार पर चकित

था । मन ही मन सोचता रहा अपने यहा के पुलिस विभाग के सभी अफसरो के बारे मे ।

बारह वर्ष की लबी अवधि के बाद अपने मित्र से मिल रहा था । मै ने देखा, वह पहले से भी अधिक स्वस्थ और प्रसन्न था, सिर्फ उस के बालो मे कुछ सफेदी आ गई थी ।

उस का बगला एक छोटी सी पहाडी की टेकरी पर था । बहुत ही सुदर और सुरम्य स्थान लगा । चारो तरफ हरियाली और बीचबीच मे फूल खिले थे । थोडीबहुत बरफ अब भी थी मगर उस से प्राकृतिक सोदर्य मे और भी निखार आ गया था । हम जैसे ही घर पहुचे, एक निहायत खूबसूरत युवती ने मुस्कराते हुए स्वागत किया । स्मिथ ने परिचय कराया, 'मेरी पत्नी डोरा ''

डोरा ने बताया, "मेरे पति अकसर आप की चर्चा करते रहे है ।"

खाने की व्यवस्था इतनी देर मे हो चुकी थी । भूख मुझे भी लग आई थी । बहुत ही जायकेदार निरामिष भोजन मिला । मिसेज स्मिथ ने बडे स्नेह और आग्रह के साथ भोजन कराया । उस का व्यव्हार कुछ ऐसे ढग का था मानो वर्षो का परिचय हो । मै भोजन कर रहा था और सोचता जाता था कि इन दोनो की उमर मे लगभग पचीस वर्ष का फर्क है । द्वितीय पत्नी और वह भी सुदरी, फिर भी परस्पर इतना स्नेह और विश्वास ! हमारे देश मे गरीब माबाप की बेटिया ही वृद्धो को दी जाती है । पर ऐसी स्थिति मे पत्निया पति पर शासन करती है और उन पर सदेह भी ।

स्मिथ ने मुझे मौन देख कर पूछा, "क्या सोचने लगे ?"

मै ने मुसकरा कर कहा, "अब मालूम हुआ कि आप जवान कैसे बन गए !" दोनो की जिज्ञासाभरी दृष्टि मुझ पर थी । मैं कहने लगा, "हमारे यहा कामशास्त्र के आचार्य महर्षि वात्स्यायन ने लिखा है कि युवा, स्वस्थ, मधुरभाषिणी और सुदरी स्त्री के साथ अच्छा भोजन और सेवा मिले तो वृद्ध भी जवान हो जाता है । अब समझ जाइए कि आप पर उमर का असर क्यो नही हुआ ।"

दोनो हसने लगे ।

स्त्रियो को अपनी प्रशसा अच्छी लगती है, चाहे वे किसी भी देश की हो । मेरी बात से डोरा बहुत खुश हुई । खातिरदारी और अधिक हो गई । उस ने विशेष अनुरोध किया कि वात्स्यायन के कामविज्ञान का अग्रेजी अनुवाद अवश्य भेज दे । मै ने वादा किया कि भेज दूगा ।

यूरोप के विद्वानो मे भारतीय सस्कृति और दर्शन के प्रति बडा आदर है पर जनसाधारण भारतीय ज्योतिष मे विश्वास रखते है । मै इस बात को पहले से जानता था इसलिए विदेश यात्रा के पूर्व मै ने हस्तरेखा के सबध मे दोचार पुस्तके पढ कर हलकी सी जानकारी ले ली थी। किताबे साथ रखता था । अकसर मित्रमडली या परिचितो मे लोग अपनीअपनी किस्मत के राज पूछ बैठते थे । मै ने कछ गोलमोल बाते याद कर ली । दस मे सातआठ तो सब पर सही बैठ ही जाती थी । भविष्य जानने कीइच्छा मत्री से चपरासी और राजा से रक तक सब मे रहती है । मेरे नुसखे से मुझे बडी मदद मिल जाती । ट्रेन, बस, रेस्तरा और क्लबो मे रग जम जाता ।

डोरा का हाथ भी मै ने देखा, बताया, "बचपन सघर्षमय वातावरण से गुजरा है, पर जवानी और बुढापा आनद से कटेगा । प्रसिद्धि भी है भाग्य मे । समाजसेवा के प्रति रुचि होनी चाहिए क्योकि दया और करुणा के लक्षण है । सतान दो होनी चाहिए ।"

इतनी ही देर मे डोरा के चेहरे पर लाली आ गई थी । वह खुश नजर आई कहने लगी "देखा, जोन, मिस्टर टाटिया कहते है कि हमे दो बच्चे होगे । मै ने तो तुम से पहले ही कह दिया था ।"

मै सोचने लगा, चाहे पूरब की हो या पश्चिम की, नारी मातृत्व का गौरव पाए बिना अपने को पूर्ण नही मानती । प्रकृति का यह विधान चिरकाल से सर्वत्र एक सा रहा है ।

दोनो ने वादा किया कि पहला बच्चा होने के बाद वे भारत आएगे और मेरे साथ ताजमहल और कश्मीर देखने जाएगे ।

थोडी देर विश्राम करने के बाद स्मिथ दपति मुझे आसपास के गावो मे घुमाने ले गए । डोरा कार चला रही थी । मै उस के पास बैठा था, स्मिथ पीछे की सीट पर । उस दिन हम ने शायद सौ-सवासौमील का चक्कर लगाया होगा । वर्षा कम हो गई थी और हलकी धूप निकल आई थी । खेतो मे अनाज की बालिया झूम रही थी । कहीकही खेत कट भी चुके थे । काफी बडे पैमाने पर यान्त्रिक खेती यहा होती है । जगहजगह अनाज के ढेर लगे हुए थे । मोटी-मोटी गायो, भेडो और सुअरो को चरते देखा । बातचीत मे पता चला कि गायो से औसतन दैनिक तीसपैतीस सेर दूध मिलता है । साढो की कीमत यहा पचास हजार से पाच लाख तक है । यहा से ब्राजील और मेक्सिको तक साढ भेजे जाते हैं ।

एक किसान के बगले पर गए । वह स्मिथ का परिचित था ।

ताप-नियन्त्रित छोटा सा मकान, टेलिविजन, टेलीफोन, लाइब्रेरी और सारी आधुनिक सुविधाए । करीब आधा सेर ताजी क्रीम के साथ चेरी का नाश्ता हम सभी के सामने रख दिया गया । बहुत कहने पर भी वह किसान नाश्ता कम करने पर राजी न हुआ । हमारे गावो की तरह यहा भी जबरन परोसने का रिवाज है ।

देहातो को देख कर जब हम घर लौटे तो रात के नौ बज गए थे । देखा, चारपाच स्त्रीपुरूप हमारी राह देख रहे है । शायद उन्हे किसी ने बता दिया था कि भारत से एक अच्छे ज्योतिषी आए है ।वे सब अपनाअपना भाग्य जानने की उत्सुकता ले कर तीनचार घटो से धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा मे बैठे थे । थकावट का बहाना करना उचित नही लगा । एकएक कर सब की हस्तरेखाओ को एक कागज पर उतारा और सब को अलगअलग ढग से अलगअलग बाते बताई । कुल मिला कर साराश था उपकार का बदला अपकार से मिलता है, घरवालो से सहयोग और प्रेरणा कम मिलती है, बचपन मे दोतीन बार बीमारी ने घेरा, तीनचार वर्ष बाद अच्छे दिन आ रहे है आदि । मै ने सदा ध्यान मे रखा है कि निराशाजनक बाते न कहना ही अच्छा रहता है । कभीकभी इस से मानसिक धक्का पहुचने का अदेशा रहता है । आश्चर्य है, मेरी भविष्यवाणी से सबो को सतोष हुआ और धन्यवाद देते हुए चले गए । रह गई केवल एक किशोरी । वह एकात मे कुछ बाते करना चाहती थी । मै ने उसे अगले दिन सुबह आने के लिए कहा ।

स्मिथ दपति के साथ भोजन की टेबल पर बैठा । गाव मे किसान के घर क्रीम और चेरी बहुत खा चुका था इसलिए भूख थी नही । फिर भी आग्रहवश कुछ ले लिया । डोरा से मालूम हुआ कि लडकी का नाम जेन है । एक लडके से प्रेम हो गया और लडके ने विवाह का वादा किया था । पिछले साल लडका न्यूजीलैड चला गया और वहा शायद किसी दूसरी लडकी के प्यार मे फस गया ।यह है जो उस की प्रतीक्षा मे बैठी है, नही तो बीसियो युवक इस से शादी करने को तैयार है । धनवान पिता की इकलौती बेटी है, कालिज तक की शिक्षा पाई है ।

यही सब बाते तो मैं जानना चाहता था । भोजन कर के जब मै अपने कमरे मे गया, रात के १२ बज रहे थे । मिसेज स्मिथ एक बार कमरे मे फिर आई और मेरे लिए की गई व्यवस्था खुद देख कर चली गई । शायद कुछ देर और बाते करती पर मुझ पर जोरो की नीद आ रही थी ।

दूसरे दिन सुबह डोरा बहुत ही प्रसन्न दिखाई दी । वही फुर्तीलापन और चुहल । कहने लगी, "यदि आप भी जवानी का नुसखा आजमाना चाहते है तो जेन या किसी दूसरी लडकी से बात चलाऊ । स्काट लडकिया अच्छी पत्निया साबित होती है । हमारे यहा एक

भारतीय डाक्टर है, वह अपनी स्काट पत्नी से बहुत खुश है। सुस्वादु भोजन बनाने की कला और खुशमिजाजी जितनी हम मे आप पाएगे उस की चौथाई भी अगरेज स्त्रियो मे नही।"

मै ने हसते हुए धन्यवाद दिया और कहा, "क्षमा करे, मेरी स्वस्थ और सुदर पत्नी भारत मे मौजूद है।"

इसी बीच जेन पहुंच गई। बहुत ही सुदर कपडो मे, सुमधुर सुगध लगाए हुए। उपहारस्वरूप एक गुलदस्ता और फल उसके साथ थे। मै उसे एक एकात कमरे मे ले गया। चारपाच मिनट तक हाथ उलटपलट कर देखे, फिर वताया, "सच्चा प्यार धैर्य मागता है। प्रेमी पूर्व दिशा मे कही है, वह जल्द ही आएगा। परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए।"

जेन के चेहरे पर खुशी की लहरें नाच उठी। उस की पलके भीग गई थी। पूछने लगी, "महोदय, कितने दिन मे मेरा रोवी आ जाएगा? उस का स्वास्थ्य तो ठीक है?"

वह मुझे अपनी शादी मे आमत्रित करना चाहती थी। मै ने उसे अपना कार्ड दे दिया।

डडी की जूट मिले और डॉक्स देखने मे मेरी दिलचस्पी नही थी इसलिए हम लोगो ने ५० मील दूर स्काटलैड की राजधानी और बडा शहर एडिनबरा देखने का प्रोग्राम बनाया। दोपहर के खाने के लिए वहा के होटल मे सूचना दे दी।

एडिनबरा की आबादी करीब पाच लाख है। इसे उत्तर पश्चिमी यूरोप का एथेस भी कहते है क्योंकि शहर का एक भाग पुराना हे और दूसरा नया। बाजार, दुकाने, होटल और क्लब यूरोप के सभी शहरो मे लगभग एक जैसे है। फिर भी मै शहर या देश विशेप की कोई खास कलात्मक अथवा कारीगरी की चीज अवश्य सग्रह कर लेता था। एडिनबरा की ऊनी ट्वीड मशहूर है। गरम कपडो मे आज भी इस का मुकाबला नही। कलकत्ते मे डी० सी० एल० आई० या हाइलैडर्स टीम के फुटवाल खिलाडियो को या ईडन गार्डन के वैड बजाने वालो को मोटी धारीदार ऊनी ट्वीड के ऊचे घाघरे पहन कई बार देखा था। एक स्टोर से मैं ने कुछ कपडे खरीदे। वहुत मना करने पर भी स्मिथ ने खुद ही दाम दे दिए। इच्छा थी, कुछ और भी चीजे खरीदू, पर फिर सकोचवश विचार बदलना पडा।

होटल मे निरामिष भोजन के लिए हिदायत दी गई थी पर खाना खाने कें बाद पता चला कि आलू चर्वी मे तले गए थे। मन मे बडी ग्लानि हुई, पर कहता क्या! होटल वाला यह सुन कर चकित रह गया कि निरामिष भोजन मे चर्वी का उपयोग करना भी हमारे यहा वर्जित है।

लच के बाद हम एडिनबरा कैसल देखने गए। यह ऐतिहासिक दुर्ग ४५० फीट ऊची पहाडी पर है। प्राचीन काल मे सुरक्षा की दृष्टि से किले पहाडियो पर ही बनाए जाते थे। ऊपर से तीर और गोलो के अलावा शत्रुओ पर पत्थर और गरम तेल भी फेके जाते थे। इस का वास्तविक इतिहास सातवी शताब्दी से मिलता है। बताते है, राजा एडविन ने इसे बनवाया। अट्ठारहवी शताब्दी तक, यानि पिछले ११०० वर्षो मे इस की यूरोप के महत्त्वपूर्ण दुर्गो मे गिनती की जाती थी। इस की चर्चा और उल्लेख इतिहास और साहित्य मे भी मिलता है।

शेक्सपीयर के मैकवेथ का मालकम ग्यारहवी शताब्दी मे यहा रहता था। ब्रिटेन के इतिहास मे प्रसिद्ध मेरी क्वीन आफ स्काट्स भी कुछ दिन तक इस मे रही थी। २० इच के मुह की १५० मन वजनदार पदरहवी शताब्दी की एक तोप भी यहा रखी है। शायद यह अपने जमाने मे यूरोप की सब से बडी तोप थी। इस कैसल ने बडीबडी लडाइया देखी है। सर वाल्टर स्काट ने इस की पृष्ठभूमि पर अपने कई प्रसिद्ध उपन्यास लिखे है।

किले को देख कर मुझे चित्तौड और रणथभौर के गढो की याद आ गई। शौर्य और

साहस का परिचय यहा भी रहा है पर त्याग, बलिदान और मान के लिए मर मिटने का अद्वितीय जौहरव्रत भारत के सिवा और किस देश के इतिहास मे देखने को मिलता है ? सिर पर केसरिया पगडी बाधे शत्रुओ के उमडते सागर मे नगी तलवार लिए वीरो का कूद पडना, स्वय चिता बना कर सतीत्व रक्षा के लिए हजारो रमणियो द्वारा बच्चो को गोद मे लिए मृत्यु का आलिंगन कर लेने का गौरवपूर्ण अध्याय हमारे अलावा किस देश के इतिहास मे है ? मै ने डोरा को यह सब बताया तो वह सन्न रह गई। कहने लगी, "भला अबोध बच्चो को भारतीय नारिया किस प्रकार जला देती थी ?"

मेरा जवाब था, "यह बात आप लोगो की समझ मे आने की नही है।"

किले के विभिन्न कक्षों मे बादशाहो के हथियार, पोशाक और गहने रखे थे। डोरा सब के बारे मे बता रही थी। इस ढग के सग्रह इगलैड और यूरोप के विभिन्न नगरो मे इतनी बार देख चुका था कि अब उन के प्रति विशेष आकर्षण नही रह गया था।

मेरी क्वीन आफ स्काट्स के बारे में इगलैंड के इतिहास मे पढ चुका था। स्काटो की यह रानी इगलैड की प्रसिद्ध एलिजाबेथ प्रथम की समकालीन थी। इस ढग की महिलाएं सदियो मे एकाध ही हुआ करती है। भारत मे भी लगभग १५० वर्ष पहले सरधना की बेगम समरू मे अत्यधिक का-्र प्रवृत्ति के साथसाथ राजनीतिक षड्यन्त्र और साहस का परिचय मेरी की तरह ही मिलता है।

रानी मेरी का महल होलीरूड देखने गया। यह ८०० वर्ष पुराना है। ऊबडखाबड पत्थरों के बेडौल कमरो, पुराने राजाओ की दिनरात के काम मे आने वाली चीजो को देख कर ऐसा लगता था कि वास्तव मे ३०० वर्ष पहले तक ब्रिटेन हमारे मुकाबले मे असभ्य और जगली देश रहा होगा, जहा या तो समुद्री लुटेरो की या फिर स्काट के उपन्यासो मे वर्णित ड्यूक अथवा लार्ड नामक सामत जमीदारो की प्रधानता रही होगी। इन की क्रूरता और शोषण के तरीको को पढ कर रोए खडे हो जाते है।

जिस कक्ष मे मेरी रहती थी, उसे आज भी पूर्ववत रखा गया है। यहा तक कि ४०० वर्ष पहले के फर्नीचर, बरतन, कपडे और अन्य वस्तुएं भी पहले की तरह रखी है। रानी मेरी के प्रेमी रोजियो की, उस के द्वितीय पति डार्नले ने जिस कमरे मे हत्या की थी, वहा पीतल की एक तख्ती भी लगी देखी। समझ मे नही आया कि कौन सी बहादुरी, त्याग या बलिदान के स्मारक के रूप में इसे लगाया गया है।

यहा दो प्रसिद्ध गिरजे भी देखे। एक रोमन कैथोलिक है, दूसरा प्रोटेस्टेंट। दोनो ही ईसाई धर्म के दो अलगअलग पथो के हैं। धर्मांधता के कारण दोनो के अनुयायियो ने एकदूसरे के गिरजे को कई बार नष्ट किया और आग लगाई। मैं ने डोरा से कहा, "यदि असभ्य और बर्बर लोग ऐसा जघन्य काम करते तो बात समझ मे आ सकती थी पर ब्रिटेन तो ससार में सभ्य कहलाने का दावा करता था। दया, क्षमा, प्रेम की अमर वाणी के प्रचारक यीशू के मदिरो को ईसाइयो द्वारा नष्ट किया जाना, अन्य धर्म वालो या अल्प विकसित लोगो के सामने ब्रिटेन का क्या स्वरूप उपस्थित करता होगा ?"

डोरा चुप थी मगर स्मिथ ने कहा, "पाशविकता मनुष्य की सब से बडी कमजोरी है। वह किसी भी आड़ मे उभर सकती है। उसके लिए धर्म को दोषी नही ठहराया जा सकता। भारत मे भी तो उस के उदाहरण है।"

डोरा ने प्रश्न भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा। मै ने कहा, "ठीक है, भारत मे उदाहरण हैं पर वह भारतीयो के नही। भारत मे अरब, तुर्क और ईरानी आए, अपने साथ इसलाम लाए। उसी परपरा मे धर्मांधता ने तोडफोड मचाई, मदिरो और पुस्तकालयो को नष्ट किया गया। लेकिन मुसलमानो ने एकदूसरे की मसजिदो को कभी नही तोडा।"

शाम हो रही थी। अभी तक हम सर वाल्टर स्काट का निवासस्थान नही देख सके थे।

स्काट की कलम मे गजब का जादू था। इस एक कवि और उपन्यासकार ने स्काटलैड जैसे छोटे से प्रदेश को दुनिया मे मशहूर कर दिया। अगरेजी पढा हुआ शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा जिस ने स्काट को नही पढा होगा। स्काट ने जितना लिखा है, उतना विश्व के दस पाँच ही लेखक लिख पाए होगे। हमारे यहा रवीद्र की तुलना उससे की जा सकती है।

स्काटलैड के रमणीक स्थानो का वर्णन, उस के वीरो की गाथाए, स्काट ने अपनी रचनाओ मे लिपिबद्ध की है। उस के उपन्यासो मे 'दि एबोट एड केविलवर्थ' नामक रचना मै ने दो-दो बार पढी थी, इसलिए जब होलीरूड महल देखा तो कुछ नवीनता नही लगी। एडिनबरा की प्रिसेस स्ट्रीट मे उसकी स्मृति मे गोथिक शैली का एक भव्य स्मारक बना कर स्काटलैड की जनता ने वाल्टर स्काट के प्रति स्नेह और कृतज्ञता व्यक्त की है। यहा स्काट और उसके प्रिय कुत्ते की बडी सजीव मूर्ति प्रसिद्ध मूर्तिकार सर जान स्टील द्वारा निर्मित है।

डडी वापस पहुचतेपहुचते रात के दस बज गए। थकान कुछ इतनी हो गई थी कि अपने कमरे मे लौटते ही मुझे गहरी नीद आ गई।

स्काटलैड तीस हजार वर्ग मील का छोटा सा देश है। हमारे यहा के राजस्थान राज्य की जनसख्या की चौथाई आबादी है, केवल बावन लाख। इस का उत्तरी भाग पहाडी है और वहा आबादी भी बहुत कम है। शिल्प, उद्योगधधे आदि ज्यादातर दक्षिणी भाग मे ही केन्द्रित है। यहा का सब से बडा उद्योग है, जहाज निर्माण। कोनार्ड लाइन्स के विश्व विख्यात जहाज 'क्वीन मेरी' और 'क्वीन एलिजाबेथ' इस अचल के ग्लासगो नगर मे बने थे। पटसन की बहुत सी मिले और कारखाने भी स्काटलैड मे है। शीशे और स्टील के कारखाने भी इस प्रदेश मे काफी है। स्काटलैड की सबसे बडी खूबी है इस की बेहतरीन व्हिस्की। यह फ्रेच और इतालियन शराबो को मात देती है। वे दोनो उम्दा किस्म के अगूरो के देश होने पर भी, लाख कोशिशो के बावजूद स्काच व्हिस्की की क्वालिटी नही बना पाए।

स्काटलैड का सब से बडा शहर है ग्लासगो। बडे शहरो मे हर जगह एक सा वातावरण रहता है। एक जैसे होटलक्लब, म्यूजियम, नाइट क्लब आदि। इनमे मुझ जैसो के लिए न तो कोई नवीनता थी और न आर्कषण। इसलिए हमारे कुल्लू या मनाली की तरह के उत्तरी स्काटलैड, जिसे हाइलैड कहते है, देख कर स्काटलैड की यात्रा समाप्त करने का स्मिथ से अनुरोध किया। उसे दफ्तर मे जरूरी काम भी था। शायद डायरेक्टरो की मीटिंग बुलाई गई थी। उसकी फर्म काफी बडी थी और वह उस का अध्यक्ष था। इसलिए मीटिंग मे उसकी उपस्थिति आवश्यक थी। अपनी विवशता के लिए वह बडा सकोच अनुभव कर रहा था। बडे प्यार भरे शब्दो मे डोरा से उस ने मेरा साथ देने के लिए अनुरोध किया। मै सोच रहा था कि इतना सपन्न व्यक्ति है, पर जरा भी अभिमान नही। अपनी सुदर युवती पत्नी को मेरे साथ ऐसी बीहड यात्रा पर दो दिनो के लिए अकेले छोड दे रहा है। हमारे यहा शायद कोई साधारण व्यक्ति भी ऐसा न करे, धनिको की बात तो दूर रही। इनको एक दूसरे पर कितना गहरा विश्वास है।

डोरा खुशीखुशी राजी हो गई। जेनी भी वही बैठी थी, वह भी साथ चलने को तैयार थी। हम तीनो नाश्ता कर मिस्टर स्मिथ की बडी हबर कार मे पश्चिम उत्तर के पर्वतीय अचल को देखने निकल पडे। रात मे वही एक होटल मे ठहरने की व्यवस्था की।

यात्रा लबी थी। रास्ता भी बहुत उतारचढाव वाला था। इसलिए शोफर को साथ ले लिया। लेकिन कार बारी-बारी से वे दोनो चला रही थी। शायद इतनी मेहनत न भी करती पर मैने डोरा के दो बच्चे और जेनी को उसका मनचाहा पति जो दे दिया था।

स्काटलैड के जिस हिस्से से हम जा रहे थे, वह पहाडो, नदियो और झीलो का प्रदेश है। यद्यपि रास्ता चढाव उतार वाला है, फिर भी खेती सभी जगह दिखाई दी। हमारे यहा के

पहाड़ी प्रदेशो की तरह कटावदार खेत बने हुए थे ।

लच हमे इवरनेस मे लेना था । यह स्काटलैंड के पर्वतीय उत्तरी अंचल की राजधानी है । १२५ मील लवा सफर था मगर हसी, दिल्लगी और बातचीत मे रास्ता आसानी से कट गया । समय और थकान का अनुभव भी न हुआ । चाकलेट, बिस्कुट के अलावा फ्लास्क मे काफी भी रख ली गई थी ।

रास्ते मे थोडी देर के लिए माधुहेराग नाम के एक पहाडी कस्बे के क्लब मे कुछ देर के लिए ठहरे । चारो ओर पहाड और हरियाली थी।इन की ऊचाई हमारे यहा के पहाडो की सी नही थी, फिर भी उत्तरी ध्रुवाचल के निकट होने के कारण यहा सर्दी बहुत थी ।

माधुहेराग अच्छा रमणीक स्थान है,। देवप्रयाग केदारनाथ के मार्ग मे भी ऐसे पहाड़ है, पर यहा के पर्वत सीधे दीवार की भाति खडे हैं । इन्हे अगरेजी मे 'क्लिफ' कहते है । इन ऊचे कगारो से नीचे, बहुत नीचे रुपहली नागन सी बहती नदी, कुडली मारे सर्प की तरह घुमावदार सडकें और घनी हरियाली, आखो को कही और देखने नही देती ।

हम जहा चाय पी रहे थे, वह स्थान एक ऊचे स्थान पर था । नीचे गहराई इतनी कि देखते ही कपकपी आ जाए । डोरा ने बताया कि इस से भी कहीं अधिक ऊचे और भयावह 'क्लिफ' देखने के लिए हम लोग चल रहे है ।

इवरनेस पहुचे । दिन के एक बजे का समय था।देखा, हम दोनो के लिए निरामिष भोजन की व्यवस्था की गई है । मैं ने डोरा से उस की असुविधा की चर्चा की तो उस ने हस कर कहा, "मेहमान जब निरामिष मे रुचि रखे तो मेजवान को वही करना चाहिए । यो कभीकभी जायका बदलने के लिए भी यह जरूरी है ।"

मै ने भी हसते हुए तुरत कहा, "वर्ष मे छ महीने घूमता रहता हू, सब जगह आप सरीखे मेजवान तो मिलते नही, खाना तो होटलो मे ही पडता है । कोशिश रहती है कि निरामिष रहू पर कहीकही अपवाद हा जाता है । आपने देखा, कल एडिनबरा मे चर्बी मे तले आलू खा लिए।"

वेटर कहने पर भी बिल नही ला रहा था । मैं ने कारण जानना चाहा । डोरा ने बताया कि स्मिथ चूकि डाइनर्स क्लब का सदस्य है इसलिए बिल क्लब की मारफत बाद मे भेज दिया जायगा ।

इवरनेस तीस हजार की आबादी वाला पुराना शहर है । समुद्र से थोडा हट कर मोरे नदी के किनारे बसा हुआ है पर बडेबडे जहाज यहा साल भर आया करते है । ऊनी कपडे, मशीने, लोहे का सामान और जहाज बनाने के काखाने भी यहा है । कलकत्ता की जूट मिलो के केलेडोनियन, चिवियट और फोर्ट विलियम आदि परिचित नाम यहा सुनने मे आए । हमारे यहा की मिलो के नाम हिंद, बगाल या कलकत्ता पर नही दे कर विदेशी नामकरण करना उचित तो नही था पर गुलामी हमारी थी और राज्य इन का, इसलिए इन की मरजी को कौन चुनौती देता ।

स्थानीय बाजार और नदी किनारे का चक्कर लगा कर हम आगे जाने की तैयारी करने लगे । जेनी ने कहा, "यहा से लगभग एक मील पर नेस नाम का एक छोटा सा द्वीप है । वहा के मनोरम प्राकृतिक दृश्यो को देख कर मनुष्य अपनी सारी परेशानिया भूल जाता है । मधुयामिनी मनाने के लिए यहां सैकडो जोडे आया करते है।क्या आप वहा जाना पसद करेंगे ?"

हसते हुए मैं ने उत्तर दिया, "रोबी के विदेश से आ जाने के बाद तुम उस स्थान को अपने लिए सुरक्षित रखो । जब मेरी शादी हुई, उस समय तक न तो हमारे यहा मधुयामिनी की प्रथा चली थी और न इस की सुविधा ही थी । वैसे इस के लिए हमारे यहा भी एक से एक रमणीक स्थल है ।"

करीब पाच बजे हम इवरनेस से सिलमेन के लिए रवाना हुए । यह स्काटलैड के सब से उत्तरी छोर पर है । रास्ता बीहड और सुनसान होता जा रहा था । शाम होने के कारण हवा मे ठडक आ गई थी । डोरा और जेनी बीचबीच मे थोडी सी व्हिस्की ले कर आदत के अनुसार शरीर को गरम रखने की कोशिश कर रही थीं । मुझ से भी उन्होने बहुतेरा कहा पर मैं अलर्जी का बहाना बता कर टाल गया । पश्चिमी देशो मे यदि कोई महिला साथ पीने या नाचने के लिए अनुरोध करे तो उसे धन्यवाद दे कर मजूर कर लेने का रिवाज है । इनकार करने पर वे बुरा मान जाती है ।

इवरनेस से सिलमेन की दूरी लगभग सो मील है । इस रास्ते मे मैं ने जो दृश्य देखे उन्हे आज भी नही भूल पाया हू । हमारे यहा नदिया पहाडों से निकलती है और समुद्र मे गिरती है पर इन उत्तर यूरोपीयादेशो मे उलटी बात है । समुद्र से पानी रास्ता काट कर बडे जोरो से भूभाग मे सैकडो मील बढ जाता है । यहा इन्हे फियर्ड, फर्थ या लोच कहते है । पानी के कटाव से रास्ते मे कच्ची चट्टाने टूट या कट जाती है, पक्के पत्थर बच जाते हैं । इस प्रकार फर्थ या फियर्ड के दोनो ओर के पहाड ऊची दीवार या कगार से बन जाते है जिन्हे यहा क्लिफ कहते है । ऐसे दृश्य हमारे यहा देखने को नही मिलते । सैकड़ो फीट नीचे सागर का जल धरती की गोद मे लोटने के लिए बढता जाता हे । किनारो पर के ऊचे कगारो से देखने पर रोमाच हो आता है ।

एक जगह देखा, शायद एक हजार फीट से भी ऊचा क्लिफ होगा । वहा खूंटी गाड कर रस्से के सहारे कुछ युवक उतर रहे थे । जरा भी पैर फिसला कि मृत्यु निश्चित । दोनो ओर की पहाडियो पर एक मजबूत मोटा रस्सा बांध रखा था । वे लोग इस के सहारे लटकते हुए पार जा रहे थे । मैं सोच रहा था कि खेल या कौतुक जरूर है पर है बडा दुस्साहसिक । डोरा से पूछा, "आखिर अकारण इस तरह का खतरा मोल लेने से क्या लाभ ? कही चक्कर आ गया, मामूली चूक हो गई तो हजारो फीट नीचे गहरे पानी मे गिर कर मौत की लपेट मे आ जाना निश्चित है ।"

डोरा का जवाब था, "अगर आप ही की बात मान ली जाए तो फिर न तो उत्तरी ध्रुव मे स्काट जाता और न तेनसिंह और हिलेरी ही एवरेस्ट पर चढते ।"

सिलमेन पहुचे तो रात के नौ बज गए थे । हलकी वर्षा हो रही थी । सर्द हवा कपा देने वाली थी । जोरो से 'सायसाय' की आवाज आ रही थी मानो कोई अजगर फुफकार रहा हो ।

होटल की बुकिंग पहले से करा रखी थी । इसलिए कार से उतरते ही दौड कर भीतर चले गए । ताप नियन्त्रित हाल मे पहुच कर बडी राहत मिली । रास्ते भर कुछ न कुछ खाते हुए आए थे । पर इन उत्तरी ठडे देशों में भूख जोरो की लगती है।ओट्स का दलिया, क्रीम मिला दूध और कई तरह की मिठाइया परोसी गई । भोजन कर के उठे, तब दस बजे थे ।

डोरा ने अनुरोध किया, "बाहर निकल कर जरा प्रकृति के दृश्य देखे जाए । इस ढग की हवा और मौसम उत्तरी अचल की अपनी विशेपता है, इस का अनुभव आप को जरूर कर लेना चाहिए ।"

उस झझावात मे बाहर जाने का मन तो कतई नही था । मगर डोरा के अनुनयविनय को टाल न सका । मतवाले हाथी की तरह वेग से चलते प्रभजन की चाल देखने हम निकल पडे ।

इस अचल मे अमरीका तथा अन्य यूरोपीय देशो से यात्री काफी सख्या मे आया करते है । इसलिए रात के एकडेढ बजे नाचगाने, ताश और तरह-तरह के खेल होते रहते है । पर्वतीय स्काटलैड का जीवन बहुत ही अबाध रहा है । जलवायु और प्रकृति ने यहा के लोगो को सदियो से कष्टसहिष्णु और परिश्रमी बनाया है । इसी लिए उन्मुक्त जीवन और अबाध गति इन के स्वभाव की विशेषता है ।

नाच और गाने का समा बंधा था। लोक नृत्य की ताल पर सभी मस्त थे। सब ने पी रखी थी, इतनी कि मतवाले से हो रहे थे। फिर भी देखा, अभद्रता ओर अशिष्टता कही भी नही है। डोरा और जेनी, दोनो ने मुझे नाच मे साथ देने के लिए कहा। भला मै उस हाइलेंडरी उछलकूद मे कहा साथ देता! थकावट आदि का बहाना बना कर टालमटोल कर ही रहा था कि उन्हे दो साथी खीच ले गए। दोनो खूब नाची। अच्छी लग रही थी। नाचतेनाचते जब थक जाती तो आ कर दो घूट गले के नीचे उतार लेती।

डेढ़ बज रहे थे। मैं ने उन्हे इशारे से बुला कर कहा कि कल हमे २०० मील का सफर करना है, अब सोना चाहिए। दोनो मुसकराने लगी और नाच के गोल मे निकल आई।

उस दिन की याद आज भी आ जाती है। शरत बाबू के 'शेष प्रश्न' के कमल की उक्ति भी इस तरह की है कि जीवन के कुछ क्षणो मे सुख का भी यथेष्ट मूल्य है।

दूसरे दिन वापस डडी के लिए रवाना हुए। रास्ते भर दोनो ज्योतिष, दर्शन, साहित्य भारतीय स्त्रियो, वैवाहिक जीवन आदि पर तरहतरह के प्रश्न करती रही। शाम को डडी पहुच गए। स्मिथ राह देख रहा था। इन लोगो ने इस ढग की यात्रा न जाने कितनी बार की होगी, फिर भी मुझे खुश करने के लिए कहने लगी कि इस बार की तरह आनद शायद ही कभी मिला हो। हमारी बातचीत स्मिथ को सुनाने लगी। स्मिथ कह रहा था, "साथ न जा सका।" अतिथि सत्कार की यह मधुरता बरबस स्नेह मे बाध देती है।

अगले दिन सुबह उन सब को भारत आने का निमत्रण दे कर लदन के लिए रवाना हो गया। स्टेशन पर स्मिथ, डोरा और जेन के अलावा और कई परिचित आए थे। ट्रेन बहुत दूर निकल गई। तब भी दूर, बहुत दूर डोरा और जेनी के हिलते हुए रुमाल स्नेह बिखेर रहे थे।
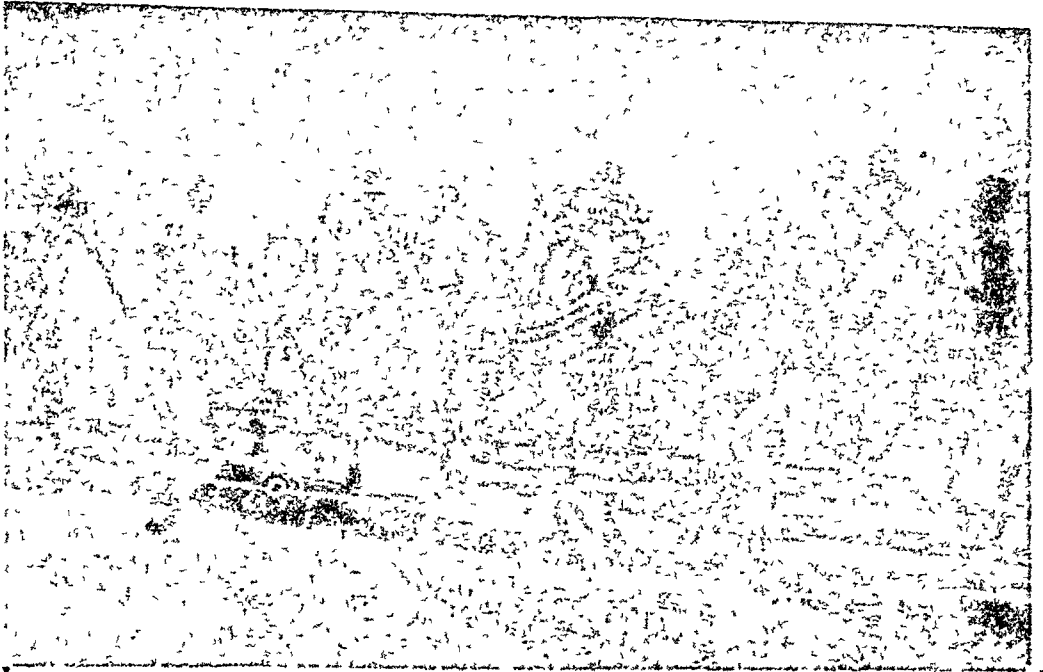
राजनीति, शासक बदलते रहे, लेकिन पेरिस की परियां ?

पेरिस में एक रात

लदन से पेरिस वायुयान द्वारा सिर्फ घटे भर का मफर है। दृष्टि खिडकी मे बाहर थी कहीकही रूई जैसे वादलो के ढेर दिखलाई पड रहे थे। लेकिन मन की दृष्टि पेरिस पर थी।

पेरिस ! फ्रास की राजधानी ! फ्रास ! वह देश जो आधुनिक पाश्चात्य विचार धारा का प्रवर्त्तक है। वाल्तेयर, विक्टर ह्यूगो, अनातोले फ्रास, रोमा रोला और वाल्जाक का देश फ्रांस ! पश्चिम को समता, बधुत्व और स्वाधीनता का पाठ पढा कर माहित्य, सस्कृति और राजनीति को एक नई दिशा देने वाला फ्रास ! और पेरिस ! फ्रासीसी लोग उसे 'पारी' कहते है लेकिन पारी नही, वह परी है—सजीली, छवीली, चिरयौवना ! सीन नदी के दर्पण मे वह अपना सौंदर्य देखती है, मुसकराती है और इठलाती है। राजनीति बदलती रही, सत्ता हस्तातरित होती रही, पर परी मुसकराती ही रही।

सोचने लगा, 'रोम और एथेस का वैभव काल को विजित न कर सका, लेकिन पेरिस ? इस को तो निराली ही जन्मघुट्टी मिली है। तीनतीन बार जर्मन तोपे गरजी, इस के सीने मे टकराईं, पर इस की मुसकान बद न कर सकी। यह हंसती ही रही और आज भी हस रही है; इठला रही है।'

पेरिस की मीनारे दिखलाई देने लगीं। वायुयान की परिचारिका की आवाज आई, "हम पेरिस पहुच रहे है।" और कुछ ही क्षणो मे वायुयान पख तोलता हुआ पेरिस की धरती चूमने लगा। कौतूहल बल्लियो उछल रहा था। वायुयान एक हलकी सी उछाल के बाद स्थिर हो गया।

सीढियो से उतरने लगा। शाम की ठडी हवा के एक झोके ने कहा, 'यह पेरिस है ! कदम जरा सभाल कर रखना।'

पूर्वनिश्चित होटल मे पहुच कर यात्रा की क्लाति दूर की। इस यात्रा मे मेरे पास पेरिस घूमने के लिए समय कम था। लदन मे ही तय हो गया था कि सब से पहले पेरिस की रात देखी जाए। भोजन आदि से निवृत्त हो कर घूमने निकला। चौडी सडके, दोनो ओर वृक्षो की कतारो के पीछे बादलो को छेडती हुई मीनारे, गुवदो की चोटिया विजली के प्रकाश मे मानो परी सी सजी आखे चौधिया रही थी। स्त्रीपुरुष मौज मे चले जा रहे थे। दुकाने तो मानो सजी हुई प्रदर्शनी ही हो। चीजे इस कदर आकर्षक ढग से सजी थी कि आखे देखती ही रह जाती। द्वारपाल सामत युग के प्रहरी से लगते थे। भडकीली पोशाके, ऊचे कालर, उठी हुई गरदनें और तना सीना. कोई ताज्जुब नही यदि इन दुकानो मे गुजरते हुए आदमी को अपनी

उम्दा से उम्दा पोशाक मे भी कुछ नुक्स दिखलाई पड जाए । 'साए लेजा' नाम की विश्वविख्यात सडक की दुकानो को देखता हुआ आगे बढ रहा था । ससार की सब से प्रसिद्ध दुकाने और सब से चतुर तथा व्यवहारकुशल दुकानदार यही देखने मे आते है ।

रात के दस बज रहे थे । पर पेरिस की शाम की अभी शुरुआत ही हुई थी । पेरिस की शाम मशहूर है।जहा कही जाओ मौज के सभी साधन मौजूद है । कानून की मानो कोई पाबदी नही । ऑपेरा, थियेटर, सिनेमा तो सभी शहरो मे है । लेकिन 'रात्रि क्लब' और 'केसेनो' इस इद्रपुरी की अपनी विशेषताए है । ऐसे क्लबो की सख्या काफी है । आप की जेब भारी होनी चाहिए, फिर जैसी इच्छा हो वैसा क्लब चुन लीजिए । रात हसतेखेलते —आमोदप्रमोद मे गुजर जाएगी ।

मै इसी तरह का एक रात्रि क्लब देखने जा रहा था कि अचानक किसी ने पीछे से आ कर पूछा, "महाशय, कैसा लगा पेरिस ?"

"अभी तो देख रहा हू " मै ने उत्तर दिया ।

उस ने तुरत ही कहा, "क्या आप पेरिस की कलात्मक चीजे भी देखना पसद करेगे ?"

"अवश्य, लेकिन, मुझे जोरो की प्यास लगी है ।"

उस भले आदमी ने एक भेदभरी मुसकान के साथ मेरी ओर देखा और पास ही के रेस्तरा मे ले गया । मुझ से पूछा, "कौन सी शराब पसद करेगे ?"

मैं ने उसे बताया, "मै शराब नही पीता, अलबत्ता दूध या चाय पी लूगा ।"

पेरिस के उस देवदूत ने बडे तपाक से मेरे लिए दूध का आदेश देते हुए अपने लिए शराब की फरामाइश कर दी । कहना नही होगा कि मुझे ही दोनो का बिल चुका कर अपनी जेब कुछ हलकी करनी पडी । शराब पीते हुए, उस ने अपनी जेब से कई तरह की अश्लील तसवीरो का लिफाफा निकाला । लेकिन मेरी बेरुखी देख कर बेचारा चुप रह गया । पर उस ने हिम्मत नही हारी । कहने लगा, "महाशय, पैरिस है यहा जीवन है । दुनिया के किसी भी कोने के आनद प्राप्ति के दुर्लभ साधन भी यहा मनुष्य को सहज प्राप्त हैं । लोग पेरिस आते ही इसी लिए है । यहां मनुष्य तो क्या, पत्थर की प्रतिमाए भी बोलती है ।"

इसी दौरान उस लिफाफे से एक मस्ती भरी नवयौवना की तसवीर निकाल कर दिखाते हुए वह कहने लगा, "इसे देखिए । यह मेरी भतीजी है । इस का भारत तथा उस के निवासियो के प्रति बडा रुझान है । बहुत अच्छा रहे कि जब तक आप पेरिस मे है, इस के साथ कुछ समय बिताए ।'

परतु मै पेरिस के ऐसे बिना पहचाने हुए मित्रो से पहले से ही सावधान था, इसी लिए, मोशिए को धन्यवाद देता हुआ रात्रि क्लब के लिए आगे बढ गया ।

पेरिस की रात्रि क्लबो मे लोग लुकछिप कर नही जाते । एक ही क्लब मे भाईबहन, पितापुत्र और मावेटी निस्सकोच भाव से पीते या नाचते हुए मिल जाते है । वहा बडेबडे राजनीतिज्ञो, कलाकारो, लेखको और विचारको को देख कर भी आप को आश्चर्य नही होना चाहिए । पतिपत्नी को भी आप वहा पाएगे, लेकिन अलगअलग जोडो मे नाचते हुए ।

मध्यम स्तर के एक क्लब के फाटक पर पहुचा । सुसज्जित द्वारपाल वरदी पहने खडा था । मुझे देख कर, उस ने बडे अदब के साथ दरवाजा खोला और जरा झुका । मैं अदर चला गया । पास ही काउटर पर बैठी एक षोडशी ने मदभरी मुस्कान के साथ ओवरकोट और टोपी रख देने के लिए कहा । ओवरकोट की जरूरत थी भी नही । कारण, बाहर जैसी सर्दी अदर न थी । इमारत ताप नियत्रित थी ।

क्लब का प्रवेश शुल्क भारतीय मुद्रा के हिसाब से सोलह रुपए चुका कर ऊपर हाल मे गया । फर्श पर मोटे रोएदार नरम गलीचे । छतो से लटकती हुई बेनिस के कीमती बिल्लोरी

शीशो की बडीबडी फानूसे तथा दीवारो पर कीमती चित्रो और आदमकद आईनो वाला हॉल ऐसा लगता था मानो मध्य युग का कोई भव्य राजप्रासाद हो। फर्क केवल इतना ही था कि जहा उस समय के राजप्रासादो में केवल एक ही देश के लोग दिखलाई पड सकते थे, वहा बीसवी सदी के इस राजप्रासाद मे विभिन्न देशो के लोग आनद ले रहे थे।

सामने से एक वेटर आया। उस ने झुक कर सलाम करने के बाद एक खाली कुरसी की ओर बैठने का सकेत किया। मेरे मस्तिष्क मे नाना प्रकार के प्रश्न चक्कर काट रहे थे। रात का सूर्य देखा लेपलैड मे, नदन कानन की छटा देखी स्विट्जरलैड मे और अब साक्षात इद्र का दरबार देख रहा हू पेरिस मे। सब के सामने टेबल पर मदिरा के प्याले थे और आखो मे थी खुमारी, मानो सारा वातावरण ही मदिरामय हो। सामने ही एक बडा मंच था जिस पर सगीत की हर तान पर पूर्ण और अर्धनग्न युवतिया थिरकती हुई नाच रही थी। लखनऊ के अतिम नवाब वाजिदअली शाह की विलासिता का हाल पढा था। वह इद्रसभा रचाता था। पर जो मै यहा देख रहा हू, इस के सामने वह इद्रसभा एक खिलवाड ही रही होगी।

विचारो मे गोते लगा रहा था कि दो सुदरिया बगल मे आ बैठी, ऐसे निस्सकोच भाव से जैसे मेरी और उन की वर्षो पुरानी जानपहचान रही हो। वेटर ने भी बडे तपाक से शराबो की एक लबी फेहरिस्त पेश की। ऊपर से नीचे तक कई तरह की शराबो के नाम और दाम लिखे हुए थे। कीमत बाजार से छ गुना अधिक थी।

जब मै ने वेटर से कहा कि मै शराब नही पीता तो उस ने बडे आश्चर्य से मुझे देखा और तुरत ही हेडवेटर को बुला लाया।

उस ने बडे ही नम्र भाव से कहा, "कोई बात नही। सुरा न सही, सुदरिया तो है। सुरापान वे करेगी, मनोरजन आप का होगा।"

लेकिन इस बात पर भी मेरे राजी न होने पर उस ने अपने निचले होठ को जरा विचका कर दोनो कधो को ऊपर की ओर सिकोड लिया। फिर उसी सकोच और विनम्रता के साथ कहा, "महाशय, सुरापान न करने वालो के लिए वह सामने की गैलरी है जहा से खडे हो कर नाच देखा जा सकता है।" पच मकार के भैरवी चक्र से बचे रहने के लिए मैं ने गैलरी मे खडे रहने मे ही अपनी और अपने बटुए की भलाई समझी।

प्राय घटे भर गैलरी मे रहा। एक लैमनेड पिया। दाम चुकाए दस रुपए। यहा से सारे हाल की रगरेलियो का दृश्य बखूबी देखा जा सकता था। सभी यौवन और मदिरा के नशे मे झूमते हुए आनद ले रहे थे। सभी जिंदगी के इस पार की ही फिक्र मे थे। उस पार की बात सोचने की फुरसत भला किसे थी।

चित्त एकाएक ऊब गया और होटल की ओर लौट पडा। मध्य रात्रि का समय था। सडको पर भीड नही थी, पर लोग चलफिर रहे थे। रास्ते मे भी कई महिलाओ ने अभिवादन किया। क्यो ? मन मे आया कि यह प्रश्न पूछे, पर फ्रेंच नही जानता था। मै ने एक स्त्री को तो अगरेजी मे जवाब भी दिया। "मेरे पास पैसे नही है, आप को निराशा होगी।"

उस का जवाब था। "कितने है ?"

मै तेजी से कदम बढाता हुआ आगे निकल गया।

होटल पहुच कर कपडे बदले और बिस्तर पर लेट गया। बडी शाति अनुभव की। इतने अल्प समय मे परियो के पेरिस का जो दृश्य सामने आया, उस ने मस्तिष्क को सोचने के लिए काफी सामग्री दी। यही वह नगरी पेरिस है जहा सऊदी अरब के अमीर और ईरान के पाशा तेल की रायल्टी से प्राप्त धन को पानी की तरह बहाने के लिए आते रहते है। अपने देश की बाते याद आ गई। राजेमहाराजे, रईस और जमीदार भी कभी इस पेरिस मे गरीब प्रजा की गाढी कमाई को दोनो हाथ लुटाते थे। कभीकभी तो पेरिस के किसी विख्यात क्लब मे एक ही रात्रि का उन का बिल लाखो रुपयो तक पहुच जाता था।

यही कारण है कि आज भी भारतीयो के पीछे पेरिस की सुदरिया दौडती रहती है। उन बेचारियो को क्या मालूम कि अब न वे राजेमहाराजे रहे और न रजवाडे। सामतशाही के अवसान से नरेशो को तो खेद हुआ ही पर यहा की परियो और दुकानदारो को भी कम दुख न हुआ होगा।
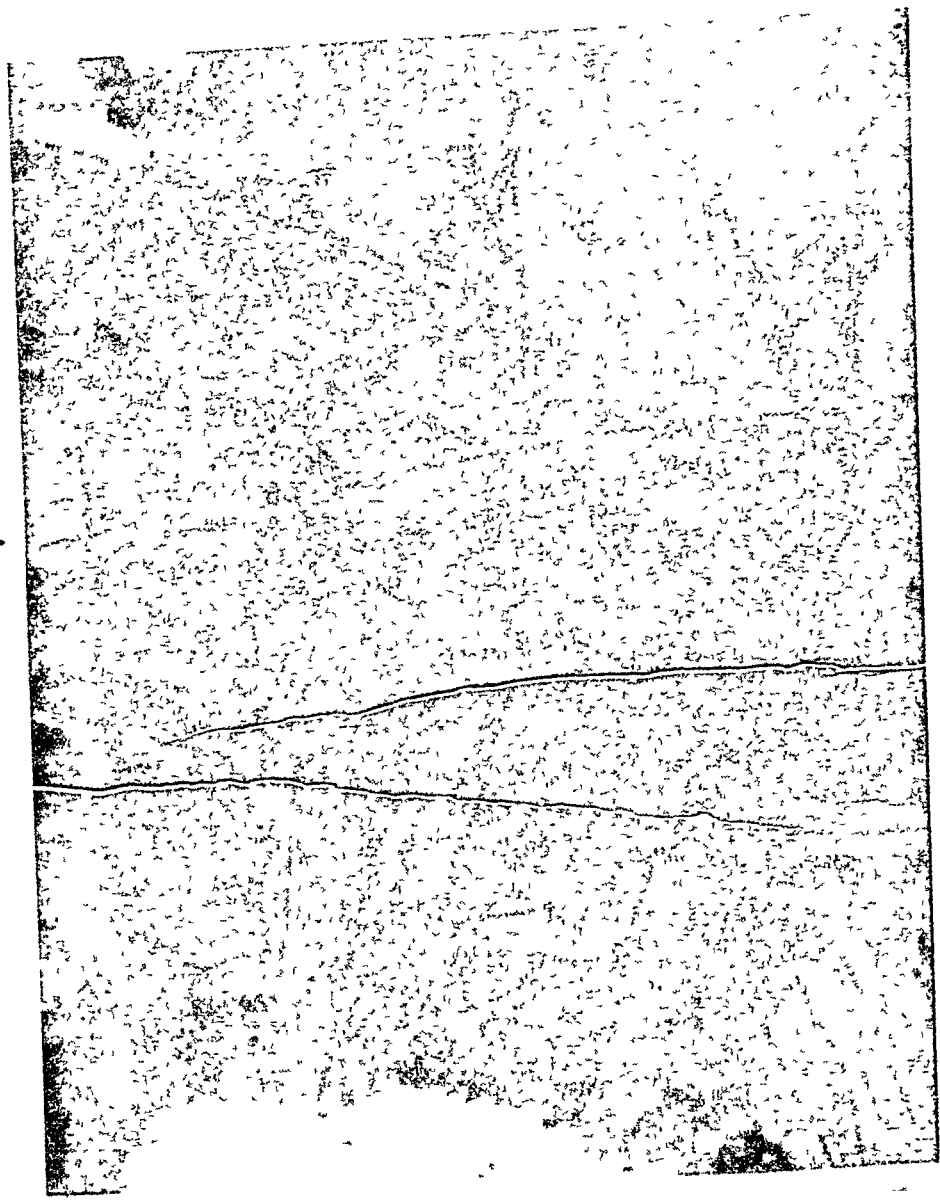
कला और संस्कृति का केंद्र
पेरिस

रात्रि क्लबो का माहौल पेरिस का इकतरफा पहलू है। फ्रास और पेरिस को केवल ऐय्याशी, मौज और शौक की जगह समझना भारी भूल होगी।

पेरिस मे दूसरा दिन। तडके ही उठा। नाश्तापानी किया। आज पेरिस का एक और रूप देखना था। यह नगरी सिर्फ परी ही नही है वल्कि फ्रासीसी सस्कृति, सभ्यता और चेतना का उद्गम है। आज उस पेरिस को देखना था जिस ने बडेवडे विचारक, कलाकार, लेखक और शिल्पी पैदा किए है, जिस के विश्वविद्यालय मे दीक्षित होने वाले आज भी हजारो विद्यार्थी विदेशो से आते रहते है, जिस ने नेपोलियन और फ्रास जैसे वीर, जोन ऑफ आर्क जैसी वीरागना, राब्सपिअर जैसे राजनीतिज्ञ ससार को दिए है।

इस उद्देश्य से टामस कुक की पैसेजर वस का एक टिकट २५ रुपए मे लिया। इस मे सब से बडी सुविधा यह थी कि अगरेजी मे सब बाते समझने वाला एक गाइड भी साथ था। इस वस मे चालीसपचास यात्री आराम से बैठ सकते है। सुवह नौ से वारह बजे दोपहर तक, और फिर दो से छ बजे शाम तक बस पेरिस के मुख्यमुख्य दर्शनीय स्थानो को दिखा देती है। इस मे स्थानो को अपनी इच्छानुसार देखने का सिलसिला तो नही बन पाता और न किसी स्थान विशेष को अधिक समय तक देखने का अवसर ही मिल पाता है, फिर भी बहुत कम खर्च मे इतने सारे स्थान एक ही बार मे देख लेने की बडी सहूलियत हो जाती है। इस के अलावा कई यात्रियो से परिचय लाभ का भी अच्छा अवसर मिल जाता है। हा, यदि किसी स्थान को विशेष रूप से देखने की इच्छा हो तो उसे दूसरी बार अलग से जा कर देखा जा सकता है।

सब से पहले इतोले पहुचा। यहा से १२ सडके निकलती है। ठीक वीचोवीच साए लेजों का एक वृत्ताकार उद्यान है। इसी उद्यान के केंद्र मे विजयतोरण है जिसे सम्राट नेपोलियन ने अपनी विजय के स्मारक स्वरूप बनवाया था। १६४ फुट ऊचा फ्रास का यह स्मारक अपने देश के गौरवमय इतिहास के उस पृष्ठ की याद दिलाता है जब साधारण परिवार मे उत्पन्न होने वाले एक असाधारण वीर ने यूरोप के बडेबडे सम्राटो का दर्प चूर कर दिया था। फ्रास के लोग विलासप्रिय है लेकिन वे तलवार के धनी भी है। वे अपने देश के लिए, भारत के राजपूतो की तरह, जान हथेली पर रख कर मृत्यु से खेलना भी जानते है। इस विजयतोरण के चारो कोनो पर चमकीली धातु से बनी चार भव्य मूर्तिया है जिन मे कलाकारो ने रण प्रयाण, विजय, शाति और प्रतिरोध की भावनाओ को अपनी कल्पना के अनुसार मूर्त रूप दिया है।

इन मूर्तियो की कारीगरी और कला को देख कर फ्रास की १८वी शती की कला का उत्कर्ष प्रत्यक्ष सामने आ जाता है।

ससार प्रसिद्ध साए लेजा नाम की सडक यही से निकलती है, जो ससार भर मे अपनी सुदरता के लिए प्रसिद्ध है। मैं ने यूरोप के प्राय सभी देशो का भ्रमण किया है। ज्यूरिच, स्टाकहोम, कोपेनहेगन, हेग और ब्रूशेल्स आदि सुदर से सुदर शहरो को देखा, लेकिन इतनी सुदर सुविस्तृत सडक कही भी देखने मे नही आई। बीच मे सवारियो के लिए बहुत चौडा रास्ता दोनो तरफ वृक्षो की कतारे उस के बाद पैदल चलने वालो के लिए रास्ते, और फिर बडीबडी दुकाने जिन मे सुई से ले कर हीरेजवाहरात तक खरीदे जा सकते है। सडक की सफाई और चमक तो इतनी ज्यादा है कि बहुत से विदेशियो को तो इस के रबर की बनी हुई होने का भ्रम हो जाता है। हमारे देश मे तो यह मशहूर भी है कि पेरिस मे रबड की सडके है।

इसके बाद प्लेस द ला ककर्ड देखा। फ्रेच सम्राट लुई १५वे ने इस स्मारक को अपनी विजय के उपलक्ष्य मे बनवाया था। लेकिन इसी स्मारक के नीचे जनता ने उसके उत्तराधिकारी १६वे लुई की गर्दन फरसे से काट दी थी। वास्तुशिल्प और कला की दृष्टि से नि सदेह १५वे लुई का यह स्मारक ससार मे एक विशिष्ट स्थान रखता है। मिस्र की विजय के बाद नेपोलियन वहा मे ७५११ फुट ऊचा एक स्तम्भ लाया था। २३० टन के पत्थर का यह स्तभ अनुमानत ३,३०० वर्ष पुराना है और इस पर प्राचीन मिस्री लिपि मे कुछ लेख खुदे हुए है। इस स्तम्भ को स्मारक के ऊपर खडा किया गया है।

इसके बाद हम विश्व का सबसे विशाल और प्रशस्त राजप्रासाद देखने गए जिसे लूव्रे कहते है। इसका निर्माण १२०० ई० मे प्रारम्भ हुआ और १८७० ई० मे यह बनकर तैयार हुआ था। इसके बनाने मे लगभग ७०० वर्ष लगे थे। पहले यह एक किला था, बाद मे फ्रास के राजाओ ने इसे महल के रूप मे परिवर्तित कर दिया। अब इसके एक भाग मे फ्रास का वित्तमत्रालय है और शेष भागो मे सात बडे-बडे सग्रहालय जिनमे विश्व की बहुमूल्य कलात्मक वस्तुओ का सग्रह है। मोना लिसा का प्रख्यात चित्र मै देखता ही रह गया। उसके मुख की रहस्यमयी मुस्कान आज भी स्मृति मे ताजा है। इस चित्र को बेचा जाय तो वाशिगटन तथा ब्रिटिश म्यूजियम कई करोड रुपये तक दे सकते है।

फ्रास के विभिन्न नरेशो के जवाहरात यहा देखे। राजाओ के पतन के कारण प्राय सभी देशो मे एक से ही रहे है--सत्ता का दुरुपयोग और विलासिता। हमारे यहा मुगल सम्राट और लखनऊ के नवाब भी इसी कारण गए लेकिन फ्रास के राजाओ की अपेक्षा उनकी किस्मत अच्छी रही क्योकि जनता ने उन्हे केवल तख्त से ही ढकेला, फरसे से उनकी गर्दन नही उडाई।

लूव्रे के बाद विश्वविख्यात नात्रेदम का प्राचीन गिरजा देखने गया। छोटी सी पहाडी पर बना यह गिरजा दूर मे भी प्रभावशाली लगता है। पेरिस के इतिहास मे इसका स्थान बडा महत्वपूर्ण है। नेपोलियन का राज्याभिषेक इसी गिरजे मे हुआ था। इस गिरजे की वेदी फ्रास के अनेको राजाओ और राजकुमारो के विवाहो की साक्षी है। नात्रेदम फ्रास की सात्विक भावना का जीवित प्रतीक लगता है।

इस गिरजे की दीवारो पर माता मरियम, ईसा और अनेक सतो के चित्र अकित है। खिडकियो मे रगबिरगे पारदर्शी शीशो के टुकडो से अत्यत सुदर चित्र बनाए गए है। यह यूरोप की एक अनूठी कला है, इस गिरजे मे उसके बहुत सुदर नमूने है।

नेपोलियन की कब्र देखकर उसकी स्मृति ताजी हो उठी। फ्रास का यह साधारण व्यक्ति अपने अदम्य उत्साह, साहस और वीरता से यूरोप की राजनीति का श्रेष्ठ नायक बन गया। उसने फ्रास की नालियो मे लुढकते हुए राजमुकुट को तलवार की नोक से उठाकर, अपने सिर

पर रख लिया।

एक समय ऐसा भी था जब इगलैड मे माताए अपने बच्चो को नेपोलियन के नाम से डराकर सुलाती थी, फिर एक जमाना ऐसा भी आया जब वह अगरेजो का कैदी बन गया। अपने देश से बहुत दूर, सेंट हेलेना के निर्जन टापू पर कैद मे उसकी मृत्यु रहस्यमय ढग से हुई। अपनी मृत्यु के पूर्व उसने इच्छा प्रकट की थी, कि 'मेरी लाश सीन नदी के किनारे फ्रासीसियो के बीच दफनाई जाए, जिन्हे मै ने आजीवन प्यार किया है।'

यह स्पष्ट है कि नेपोलियन के विजय अभियानो से फ्रास का गौरव बढा था। उसके प्रताप के आगे सारा यूरोप झुक गया था। फ्रासीसियो ने अपने इस राष्ट्रीय वीर की कब्र को जी भर कर सजाया है और इसके प्रति श्रद्धा और स्नेह प्रदर्शित किया है। जिस जगह नेपोलियन की कब्र है वहा एक बडा सग्रहालय भी है। प्रसिद्ध बादशाह लुई १४वे ने घायल सिपाहियो के रहने के लिए इसे बनवाया था। इसी कारण इसका नाम 'घायलो का स्थान' है। यही 'चर्च आफ इनवालिड्स' है जिसके गुम्बद मे सोने के ३,५०,००० पत्र लगे है।

दिल्ली की कुतुबमीनार, कलकत्ते का विक्टोरिया मेमोरियल, लदन का टावर आफ लदन रोम का सट पीटर का गिरजा, जिस तरह अपने-अपने नगर के प्रतीक हो गए है, उसी तरह पेरिस का प्रतीक है—एफिल टावर। १५,००० टन लोहे की मीनार के इस ढाचे को खडा करने मे दो वर्ष का समय लगा था। इसकी ऊचाई ६८४ फुट है। इस पर चढकर सारा पेरिस बखूबी देखा जा सकता है।

लिफ्ट से ऊपर चढा। ऊपर एक छोटा सा रेस्तरा है। ऊपर से देखने पर पेरिस खिलौने सी लगी। पिछले महायुद्ध मे विजेता जर्मनो ने इसके लोहे को युद्ध के कार्यो मे लगाने की बात एक बार सोची थी लेकिन आने वाली पीढिया उनका नाम किस प्रकार स्मरण करेगी, यह सोच कर उन्होने अपना विचार त्याग दिया था।

जैसे लदन का केद्रस्थल पिकाडली सर्कस है, इसी तरह पेरिस के सामाजिक जीवन का केद्र ओपेरा है। यहा कई तरफ से प्रधान सडके आकर मिलती है। बीचोबीच मे विश्वविख्यात ओपेरा है। यह ससार का सबसे बडा थियेटर है, जिसको बनाने मे उस समय भी ढाई करोड रुपए लगे थे।

इसके साथ ही कलाकारो की ज्ञानवृद्धि के लिए एक उत्तम सग्रहालय भी है जिसमे नाट्यशाला सबधी चालीस हजार पुस्तके और साठ हजार चित्र है।सम्पूर्ण भवन सगमरमर से बना है। इस मे २,२०० आदमियो के बैठने की जगह है। विश्व के बडे से बडे कलाकार की भी यह इच्छा रहती है कि उसे इसके रगमच पर एक बार अभिनय करने का अवसर प्राप्त हो।

—

वरसाई पेरिस से बारह मील दूर है। इतिहास ने यहा कई करवटे बदली है। यहा का राजमहल ससार के प्रसिद्ध राजमहलो मे से एक है, बल्कि यो कहिए कि यह अपने ढग का निराला ही है। लुई १३वे ने इसे सन् १६२६ ई० मे बनवाना प्रारभ किया था। इसके बाद उसके जितने भी उत्तराधिकारी हुए, सभी ने इसके निर्माण मे अरबो रुपए लगाए। लाखो लोगो से बेगार ली गई।

राजप्रासाद तैयार हुआ। फ्रास का सरकारी केद्र पेरिस से हट कर वरसाई के महलो मे आ गया जिस मे राजकाज के उत्तरदायी दस हजार अमीरउमरावो के रहने की व्यवस्था थी। उस समय वरसाई के राजप्रासाद के उद्यान विश्व मे अपनी सुदरता का सानी नही रखते थे। इन की हरियाली कायम रखने के लिए सीन नदी से नहर लाने मे करोडो रुपए खर्च हो गए थे।

इस महल के पश्चिमी भाग की लबाई १,८०० फुट है। ३७५ खिडकिया महल के कक्षो को सूर्य के प्रकाश से आलोकित करने के लिए बनाई गई है। महल मे देखने लायक जगह है—लुई १४वे का शयनागार और उस से लगा हुआ शीशमहल।

यह सम्राट लुई १६वे की प्रियतमा महारानी मेरी अंतोनिता का नृत्यकक्ष था। ससार के इतिहास में इस की बहुत चर्चा हुई है। शीशमहल सचमुच अपूर्व कल्पना और रुचि का द्योतक है। बहुमूल्य शीशो के झाड टगे है, बिल्लौरी कटाई के अगणित शीशे कमरो की दीवारो मे ऊपर से नीचे तक जडे हुए है। जहा प्रकाश की एक ही किरण लाखो मे बदल जाए, वहा रोशनी जलाने पर कैसी अपूर्व छटा होती होगी, इस का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इस को देख कर यही अनुभव होता है कि लुई १६वे और मेरी अतोनिता ने वैभव, विलासिता और ऐश्वर्य की हद पार कर दी थी। तभी तो नगीभूखी प्रजा ने उन को महलो से बाहर निकाल कर पेरिस की सडको पर खडा कर, उन के सिर धड से अलग कर दिए थे।

कलकत्ते मे जैसे चाइना टाउन, बनारस मे ठठेरी बाजार और दिल्ली मे दरीबा के आसपास की गलिया हैं, पेरिस मे इसी से मिलताजुलता है लेतिन क्वार्टर। यहा पर आज से १,७०० वर्ष पहले रोमन विजेता रहते थे। उस के बाद पेरिस का रूप बदलता गया। लेकिन यह जगह आज भी उसी रूप मे है। रूस के महान शासक लेनिन ने यहा की छोटीछोटी चाय की दुकानो मे बैठ कर अपने निष्कासन के दिन बिताए थे। उस ने यही पर रूसी क्राति की योजना तैयार की थी। पेरिस के वैभव के साथसाथ इस को भी देखना जरूरी है।

पेरिस कई सदियो से शिक्षा का केन्द्र रहा है और आज भी यहा दुनिया के हर कोने मे हजारो की संख्या मे विद्यार्थी आ कर शिक्षा ग्रहण करते है।

वैसे तो इस इद्रपुरी मे जितना भी खर्च किया जाए, कम है, लेकिन साधारण ढग से एक व्यक्ति का निवास और भोजनादि का खर्च चालीस-पैतालिस रुपए प्रति दिन पड जाता है।

फ्रास मे पेरिस और वरसाई के अलावा और भी अनेक दर्शनीय स्थान है, लेकिन केवल उन विदेशियो के लिए, जिन की जेब मे पर्याप्त धन है और मन मे अतृप्त आकाक्षाए है। समुद्र के किनारे बसे हुए माते कार्लो, नीस और केन आदि प्रसिद्ध शहरो मे कचन और कामिनी के आकर्षण की होड़ सी लगी रहती है। शराब के प्याले होठो से लगा कर जुए के एकाएक दाव पर करोडो का वारान्यारा होता रहता है। माते कार्लो की तो सारी आय ही उस जुएखाने मे है। स्वर्गीय आगा खा का स्थायी निवास स्थान यही पर था।

फ्रास और विशेषत पेरिस को देखने पर सिर्फ एक ही प्रश्न उठता है, 'क्या यहा के लोग सचमुच सुखी है ?'

शारीरिक तृप्ति की तो कोई सीमा नही। इस के साथ तो सदा 'अत पर'—इस के बाद क्या ?—लगा ही रहता है। क्या उन के भी मन मे यह प्रश्न उठा करता है

'तुम दे कर मदिरा के प्याले,
मेरा मन बहला देती हो,
उस पार मुझे बहलाने का,
उपचार न जाने क्या होगा ?'

विदेशी आक्रमण के बाद भी संपन्न

गिरजों का देश बेलजियम

लदन मे रहते कई दिन हो गए थे। मन कुछ ऊब सा गया था। सोचा, 'पश्चिमी यूरोपीय देशो को क्यो न देख लिया जाए !' इन देशो के लिए विसा लेने मे दोतीन दिन लग गए। यह काम जरूरी था, क्योकि विदेशो मे विसा और पासपोर्ट का दुरुस्त रहना आवश्यक है।

बेलजियम यूरोप के उत्तरपश्चिम मे हालैड, फ्रास और जर्मनी से घिरा हुआ एक छोटा सा देश है जिस का क्षेत्रफल केवल ११,७०० वर्ग मील है। यह भारत से ११० गुना छोटा है और यहा की आबादी ११० लाख है। दुनिया के घने बसे हुए देशो मे इस की गणना है। जितनी विपदाए इस राष्ट्र पर आई है, उतनी शायद ही अन्य किसी पर। कभी पडोसी देश हालैड इसे उदरस्थ कर लेता था तो कभी फ्रास, आस्ट्रिया ओर जर्मनी छीनाझपटी मे इस के हिस्से दबा लेते थे। ताज्जुब यह है कि सुदूर दक्षिण का स्पेन भी इस होड मे शामिल था। फिर भी बेलजियम जीवित रहा। पिछले दो महायुद्धो के भयकर जर्मन आक्रमण ओर बमबारी मे इस की काफी बरबादी हुई। लेकिन जिस धैर्य और परिश्रम से इस ने अपने को सभाला वह अनुकरणीय है।

यूरोप आया था वायुयान से। समुद्रयात्रा का अवसर मिला न था, इसलिए निश्चय किया कि बेलजियम जल मार्ग से जाऊगा। लदन के विक्टोरिया स्टेशन से ट्रेन मे बैठ कर डोवर पहुचा। यहा एक छोटे से यात्रीवाही जहाज मे बैठ कर बेलजियम के बदरगाह ऑस्टेंड के लिए रवाना हुआ। डोवर से इसकी दूरी ६५ मील है। जहाज से करीब तीनसाढेतीन घटे लगते है। यात्रा लबी न सही, पर है तो समुद्र यात्रा, यह सोच कर मन मे प्रसन्नता हो रही थी। कभी पढा था कि प्रथम बार समुद्र यात्रा मे सिर चक्कर खाता है मिचली आती है इत्यादि। लेकिन मुझे ऐसा कोई कष्ट नही हुआ। वैसे यह तो महज इगलिश चैनल की यात्रा थी प्रशात या अटलाटिक सागर की नही।

जहाज मे बहुत से यात्री थे। कुछ आपस मे बाते कर रहे थे, कुछ पत्रपत्रिकाए पढ रहे थे और कुछ चुपचाप दृश्य देख रहे थे। शोरगुल का नाम नही, सभी प्रसन्न थे। जहाज मे साफसुथरा रेस्तरा था और साधारण घरेलू खेल के लिए अलग कमरे भी थे। यात्री खानेपीने और खेलने मे लगे थे। अपने यहा कलकत्ता से गगासागर जाने वाले जहाज और यात्रियो का दृश्य याद आ गया। कितनी गदगी और बेसब्री का वातावरण रहता है उन मे !

जहाज के डेक पर आ कर रेलिंग के सहारे खडा हो गया। यूरोप का किनारा दिखाई देने लगा। मछली पकडने की आधुनिक नावे भी समुद्र मे दिखाई पडी। पास के लाइट हाउसो के

पीछे से गिरजो की ऊची मीनारे बहुत अच्छी लग रही थी।

लगभग ढाई बजे जहाज ऑस्टेड बदरगाह पर पहुचा। बेलजियम का यह तीसरा प्रमुख बदरगाह है। युद्ध के बाद इस की और भी उन्नत्ति हुई है। यहा से ब्रुसेल्स, कोलोन और बर्लिन को सीधी ट्रेने जाती है। ब्रूजे और घेट तक नहरे भी गई है, जिन से माल के परिवहन मे सुविधा रहती है।

यहा की मछली का व्यवसाय अच्छा बढाचढा है। पता चला कि बेलजियम मे मत्स्य उद्योग का यह केन्द्र माना जाता है। शहर घूम कर देखा, अच्छा लगा। बदरगाहो मे आम तौर से गदगी रहती है पर यहा वैसा वातावरण नही था। यहा का समुद्रतट सुदर और मनोरम है। इस लिए बेलजियम के अलावा यूरोप के अन्य भागो से भी लोग यहा छुट्टिया मनाने आते है। शहर मे मत्स्य उद्योग प्रशिक्षण केन्द्र तथा नौविद्यालय देखा। इन उद्योगो के कारण ऑस्टेड की शोभा बढ गई है। यहा का अधिकाश व्यापार इगलैड से होता है, अतएव अगरेजी समझने वाले मिल जाते है।

यहा से बेलजियम के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर ब्रुज गया। ब्रूजे का अर्थ फ्लैमिश मे होता है—पुल अथवा वह स्थान जहा पुल हो। यह नहरो का नगर है। यहा सडको की तरह नहरे है। इन पर ८२ पुल है। शायद इसी लिए इस का नाम ब्रुजे पडा। मध्य युग मे यह उत्तर यूरोप का पेरिस था। आज से पाच सौ वर्ष पहले इसके किनारे तक समुद्र था। ससार के बडेबडे जहाज देशदेशातर से माल ले कर इस के बदरगाह मे पहुचते थे। व्यापार का बडा केन्द्र होने के कारण जहाजो की भीड लगी रहती थी। यहा के भाव से यूरोप के भाव घटतेबढते थे। सभी देशो के प्रतिनिधि तथा व्यापारी यहा रहते थे।

लेकिन सब दिन एक से नही होते। ब्रुजे से समुद्र दूर हटने लगा और बदरगाह मे रेत भरने लगी। इसलिए जहाजो का आना भी बद हो गया। धीरेधीरे समुद्र यहा से छ मील दूर हट गया। बाहरी दुनिया से इस का सम्पर्क टूट सा गया। अब, यह केवल १५वी शताब्दी का एक श्रीहीन नगर मात्र रह गया है।

शहर देखने से ऐसा लगता था कि मध्ययुगीन यूरोप मे पहुच गया हू। जिधर दृष्टि जाती थी, चिमनी लगे, ढलुवा छतो वाले दोमजिले तिमजिले मकान, शीशेदार लबी खिडकिया, दीवारो से निकली छडो के सहारे लटकते वर्गाकार झडे, जिन पर धार्मिक कथानक तथा 'क्रूसेड' के रगबिरगे चित्र कढे हुए थे। नहरो मे झाकते हुए ये मकान हलके प्रकाश मे बडे सुन्दर लग रहे थे।

पेरिस की तरह यहा भी सडको की पटरियो पर काफे और रेस्तरा है। नागरिक यहा बैठे गप्पें लडाते है, शतरज खेलते है। मैं एक रेस्तरा मे गया। शाकाहारी भोजन यहा आसानी से मिल गया। भोजन अच्छा बना था। इगलैड से यहा पैसे भी कम लगे।

शहर के अतिम छोर पर 'प्रेम सरोवर' देखने गया। कलकत्ता की लेक की तरह लोग यहा टहलने आते है। मनोरजन के लिए क्लब भी है। जगह साफ और खुली है। नावो की दौड, तैराकी और अन्यान्य खेलकूद भी होते रहते है। विश्राम के लिए एक बेच पर बैठ गया। थोडी देर बाद मुझ से पूछ कर एक प्रौढ सज्जन बेच की दूसरी ओर बैठ गए। आपसी परिचय के बाद बात ही बात मे मैं ने पूछा, "ब्रुजे के जीवन मे आधुनिकता है पर मकानो मे नही। ऐसा क्यो ?"

उन्होंने बताया कि यहा के पौरनिगम की ओर से शहर की विशेषता बनाये रखने के लिए मकानो मे मध्ययुगीन परपरा के कायम रखने की हिदायत है।

दूसरे दिन घूमते हुए देखा कि मध्ययुगीन पोशाक मे बडीबडी प्रतिमाए एक जुलूस मे निकाली जा रही है। छोटे बच्चे इन्हे देख कर बहुत खुश हो रहे थे। अपने यहा दशहरे मे कुभकर्ण तथा रावण की कागज और कमचियो की प्रतिमाओ का खयाल आ गया। पूछने पर

पता चला कि इन प्रतिमाओ को पास ही किसी मेले मे ले जाया जा रहा है ।

ब्रुजे के गिरजो मे 'पवित्र रक्त', सेट साव्यूर और नात्रेदाम प्रसिद्ध है । यहा का नात्रेदाम १४वी शताब्दी का है । यह उतना वडा नही है जितना कि पेरिस का । माइकेल एजेलो की एक उत्तम कलाकृति 'माता और शिशु' ब्रुजे के नात्रेदाम मे देखी । यह एक पत्थर की मूर्ति है । माता मरियम की गोद मे बालक यीशु है । सरलता और वात्सल्य की वडी स्वाभाविक अभिव्यजना इस मे दिखाई पडी ।

सेट साव्यूर का गिरजा १३वी या १४वी शताब्दी का है । इस की दीवारों और खिडकियो पर वने चित्र देख रहा था कि तभी एक वृद्ध पादरी आए । पूछने पर उन्होने चित्रो के भाव समझाए । चित्र बाइविल की विभिन्न कथाओ से सवधित थे ।

मेरे मन मे एक प्रश्न बारवार उठता था । वेलजियम के लोग उद्यमी और धार्मिक प्रवृत्ति के हैं और हर प्रकार से साधन सपन्न भी । अफ्रीका मे इन का उपनिवेश, बेलजियम कागो, इन के अपने देश से ८० गुना वडा था । हीरा, तावा, लोहा ओर रेडियम वहा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे । फिर भी वेलजियम की उतनी उन्नति नही हुई जितनी होनी चाहिए ।

वृद्ध पादरी महोदय से मै ने पूछा, "बारवार वेलजियम मे ही युद्ध, अग्निकाड आदि क्यों होते है जिस मे देश की प्रगति रुक जाती है ?"

"महाशय, शोषण और अत्याचार पाप है । इस का फल हमारा देश भोगता है ।"

"लेकिन मैं ने कभी इसे दूसरे राष्ट्र पर हमला करते नही सुना, बल्कि इस के विपरीत दूसरे राष्ट्र ही इस की स्वाधीनता का हरण करते रहे हैं," आश्चर्य से मैं ने कहा ।

"यह तो ठीक है और आप जहा कही भी जाएगे, वेलजियम सभ्य, शिष्ट और स्नेहशील मिलेगे, लेकिन इन्हे वेलजियम कागो मे आप क्रूर और अशिष्ट पाएगे और हमारी सरकार भी इस विषय मे चुप रह कर शोषण को वढावा देती रही है," पादरी ने कहा ।

"इस का कारण !"

"हीन मनोवृति के लोग उपनिवेश मे प्रारभ से ही जाते रहे है । सामाजिक अपराध, चोरी, व्यभिचार, हत्या आदि के मामले मे दडित होने पर सरकार इन्हे वहा भेजती रही है । इस प्रकार ऐसे लोग वहा इकट्ठे होते गए । वे ही शोषण और गदगी का वातावरण फैला रहे हैं हमे प्रभु ईसा ने क्षमा, दया और प्रेम की सीख दी है । कयामत के दिन भगवान प्रत्येक से हिसाब लेगे । और प्रभु की कृपा से हम बच भी जाएगे पर यीशु की बात माने तव तो ! कयामत तक के लिए ईश्वर दड को टाल थोडे ही देंगे ।"

इसे सुन कर मुझे अपने देश मे डलहौजी, क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्ज के कुकृत्य तथा गोरो के अत्याचार की बाते याद आ गई ।

'पवित्र रक्त' का गिरजा, ब्रुजे मे सब से अधिक प्रतिष्ठित है । यह बहुत बडा नही है पर महात्मा ईसा के रक्त की कुछ बूदे यहा सुरक्षित हैं, इसलिए इस गिरजे के प्रति विश्व मे बड़ी श्रद्धा है । गिरजा दोमजिला है और १२वी शताब्दी का बना हुआ है । पवित्र रक्त कैसे प्राप्त हुआ किस प्रकार यहा पहुचा, यह मेरे लिए कौतूहल का विषय था । पूछने पर पता चला कि सन ११५० मे फ्लेडर्स के कांउट मुसलमानो से येरूशलम को बचाने के लिए क्रूसेड (धर्मयुद्ध) मे शामिल हुए । उन की अपूर्व वीरता और साहस के कारण ईसा मसीह का जन्मस्थान बच गया । इसलिए येरूशलम के राजा ने प्रसन्न हो कर महात्मा ईसा के रक्त की ये बूदे एक बद तावीज मे काउट को भेट दी । महातमा ईसा को जब सूली पर चढाया गया तो रक्त की बूदे उन के एक शिष्य ने इकट्ठी कर ली थी । अब आठ सौ वर्षो से यह तावीज बडी सावधानी से इस गिरजे मे सुरक्षित है । १४वी शताब्दी से यह परपरा है कि वर्ष मे एक बार पवित्र रक्त को वडी धूमधाम से जुलूस मे ले कर सारे शहर मे घुमाया जाता है । जुलूस मे सरकारी अफसर और नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति मध्ययुगीन पोशाको मे सम्मिलित होते है ।

सन १६३८ मे यहा के एक पादरी ने पवित्र रक्त के इतिहास के आधार पर नाटक लिखा था। शहर के घंटाघर के खुले स्थान पर यह अभिनीत हुआ। लगभग २,५०० व्यक्तियो ने इस मे भाग लिया, जिस मे बच्चे-बूढे, मर्दऔरत सभी नागरिक शामिल थे। यह नाटक इतना सफल रहा कि बाद मे कई बार खेला गया। लाखो लोगो ने इसे देखा, जिस मे यूरोप के अन्यान्य देशो के अलावा अमरीका से भी दर्शक आए थे। इसे आज भी हर पाचवे साल खेला जाता है।

ब्रुजे का सब से प्रसिद्ध स्थान है मार्केट स्क्वायर। पास ही १३वी शताब्दी का बना घंटाघर है। पहले इस के सब से नीचे के भाग मे गोदाम थे जिन मे जहाजो से उतार कर माल रखा जाता था।

आवश्यक अनुमति ले कर इस की वर्गाकार मीनार की ऊपरी मजिल मे पहुचा जहा छोटेबडे ४७ घटे लगे हुए हैं। ये प्रत्येक १५ मिनट पर, निश्चित राग मे, बजाए जाते हैं। मीनार के सब से ऊचे हिस्से मे एक विशाल घटा था। मध्य युग मे इसी मीनार पर खडे हो कर पहरेदार चारो ओर नजर रखते थे। आग लगने पर अथवा शत्रुओ के आक्रमण के समय घटे बजा कर लोगो को सावधान करते थे। मध्ययुगीन यूरोप मे नगरो को स्वायत्तशासन के अधिकार प्राप्त थे। ब्रुजे के इन अधिकारो के कागजात बडी सावधानी से आज भी यहा सुरक्षित है।

ब्रुजे से ट्रेन मे बैठ कर एक घटे मे घेट पहुचा। शहर पुराना जरूर है, पर ब्रुजे जैसा नही है। दो छोटीछोटी नदियां घेट के बीच से होकर बहती है और कई नहरे भी है जिन से यहा के महल्ले छोटेछोटे द्वीपो जैसे लगते है। पहले यह एक प्रसिद्ध बदरगाह था लेकिन एटवर्प की उन्नति के कारण इस का महत्त्व अब कम हो गया है। यहा दसवी शताब्दी मे बना सेट बेवो का गिरजा देखा। वैसे सेट निकोलस का गिरजा यहा सब से पुराना है। शहर के बीच एक घटाघर है। इस की वर्गाकार मीनार ३०० फीट ऊची है।

यहा एक विश्वविद्यालय है जिस मे शिल्पोद्योग, इजीनियरिंग और कला की शिक्षा दी जाती है। इस के पुस्तकालय मे तीन लाख से अधिक पुस्तके और दो हजार से अधिक हस्तलिखित ग्रथ है।

व्यापार की दृष्टि से बेलजियम के प्रमुख शहरो मे यह एक है। यहा रुई और पटसन ओ सूती कपडो की रगाई के तथा चमडे और चीनी के कारखाने हैं। इन के अलावा लोहे और तावे की ढलाई के तथा मशीनें, कलपुर्जे और शराब बनाने के कारखाने भी है।

घेट को पिछले दो महायुद्धो से बहुत नुकसान उठाना पडा था। उद्योग धधे बरबाद हो गए थे। लेकिन अब यह प्रगति कर रहा है।

आधुनिक व प्राचीन योरुप की मिलीजुली झलक

हीरों के देश बेलजियम में

घेट से ब्रुशल्स पहुचा। ट्रेन मे एक अमरीकन यात्री ने बताया था कि आधुनिक और प्राचीन यूरोप को बेलजियम मे पा सकते है और बेलजियम को ब्रुशल्स मे। बात कुछ उलझी सी लगी थी पर निकली सही। ब्रुशल्स यूरोप मे अपने ढग का एक ही शहर है। यहा, जहा शताब्दियो पुराने मकान है वहा आधुनिक ढग के बने भव्य भवन भी है। बेलजियम यो गिरजो का देश है। इसी से ब्रुजे और घेट की तरह यहा भी विशाल और ऊचे गिरजे देखने को मिले।

बेलजियम के इतिहास मे ब्रुशल्स का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इसी की सडको पर डच सेनाओ को परास्त कर स्वाधीन बेलजियम की नीव पड़ी। सन १८३० मे यह शहर बेल्जियम की राजधानी बना। आज भी ब्रुशल्स के नागरिक बडी शान से इसे 'ला कपिताल' कहते है।

उद्योगधधो मे ब्रुशल्स सदियो से बढाचढा रहा है। यूरोप के अन्य उन्नत देशो मे ज्यो-ज्यो औद्योगिक विकास होता गया, ब्रुशल्स भी इस दौड मे उनसे पीछे नही रहा। हीरो के लिए एटवर्प प्रसिद्ध है तो शीशे के सामान के लिए ब्रुशल्स। यूरोप के प्राय सभी बडे शहरो से रेलो और सडको द्वारा सीधा सबध जुडा होने के कारण यह एक बडा व्यापारिक केद्र है। यही कारण है कि यहाँ की सडको पर प्राय सभी देशो की बोली सुनने को मिल जाती है।

ब्रुशल्स को दूसरा पेरिस भी कहते है। बडेबडे होटल, नाइट क्लब, रेस्तरा और कांफे। आधुनिक जीवन के प्राय सभी आकर्षण यहा मौजूद है, लेकिन फिर भी पेरिस की सी उच्छृखलता और नग्नता का प्रदर्शन यहा आपेक्षाकृत कम है।

शहर देखने के लिए ट्राम अच्छा साधन लगा। अन्य सवारियो के मुकाबले ट्राम कही अधिक सस्ती और सुविधाजनक है। पाच फ्रेक यानी आठ आने के टिकट से एक यात्रा कर सकते है। दो बार मे यदि ट्राम बदलनी है तो सात फ्रेक का एक टिकट मिलता है। ६० फ्रेक के टिकट से बीस बार यात्रा की जा सकती है। नवागतुक को यहां कठिनाई नही होती क्योकि स्टेशनरी और पुस्तको की दुकानो पर शहर का नक्शा मिल जाता है। ट्रामो पर सडकों के नबर लिखे रहते है इसी से नक्शा देखकर सही स्थान पर आसानी से पहुचा जा सकता है।

शहर घूमते हुए मैंने देखा कि यहा का ग्राड पैलेस अपने शहरो के चौक जैसा है। बेलजियम के अन्य शहरो मे भी इसी प्रकार के ग्राड पैलेस है। ब्रुशल्स का टाउनहाल भी यही

है। इसके मुकाबले की इमारत बेलजियम मे दूसरी नही। इसके बीच की मीनार ३६० फुट ऊची है जो दिल्ली की कुतुबमीनार से भी १२० फुट अधिक ऊची है। टाउनहाल भवन मे सुप्रसिद्ध चित्रकारो तथा मूर्तिकारो की कलाकृतिया है।

ग्राड पैलेस के चारो ओर पुराने ढग के मकान है जिनमे व्यापारिक कोठिया है। चौक मे प्रात. बाजार लगता है जहा शहर के आसपास से किसान आदि अपनाअपना माल थोक व्यापार के लिए ले जाते है। बडी जल्दी क्रयविक्रय समाप्त हो जाता है। दिन निकल आने पर जरा भी अनुमान नही होता कि यहा बाजार लगा था।

रविवार की सुबह यहा तरहतरह की चिडिया बिकती है। मुझे पता चला कि बेलजियम मे कबूतरबाजी का बडा शौक है। इनकी उडानें स्पेन और उत्तरी अफ्रीका तक होती है। रेडियो मे प्रति रविवार को प्रसिद्ध उडानो की सूचनाए प्रसारित की जाती है। यहा के लोगो को मुर्गे लडाने का शौक भी है, पर इसे रुचि सपन्न लोग कम पसद करते है।

ब्रुशल्स भी दिल्ली और नई दिल्ली की तरह दो भागो मे बटा हुआ है। शहर के पुराने भाग से नए मे जाते हुए सेट गुडले का गिरजा बहुत आकर्षक लगा। प्लेस रायल पर शहर के नए भाग की प्राय सभी बड़ी सडके आकर मिलती है। पास 'पार्क ब्रुशल्स' है, जहा सन १८३० मे बेलजियनो ने डच सेना को पराजित किया था।

यहां के न्यायालय का विशाल और शानदार भवन खुली चौकोर जगह मे बना हुआ है। पास ही ब्रुशल्स का प्रसिद्ध पुस्तकालय विब्लियोथिक रायल देखा। यहा की पुस्तको का सग्रह न केवल बेलजियम मे बल्कि सारे यूरोप मे महत्वपूर्ण माना जाता है। हस्तलिखित ग्रथो के आधार पर यूरोप की मध्ययुगीन सस्कृति, कला, धर्म तथा इतिहास का अध्ययन करने के लिए बहुत से विद्यार्थी दूरदूर से यहा आया करते है।

एक जमाना था जब ब्रुशल्स के चारो ओर दिल्ली की तरह दीवारे थी, इसका परिचय 'पोर्ट द हाल' से मिलता है। यहा प्रवेश द्वार पर किले के अनुरूप एक इमारत है। आजकल यहा प्राचीन अस्त्र-शस्त्रो का एक सग्रहालय है।

बेलजियम मे उत्सव खूब मनाए जाते है मेले यहा अकसर होते रहते है। शहर के अनेक पार्को मे कोई न कोई कार्निवल या मेला लगा ही रहता है। यहा प्रतिवर्ष जुलाई और अगस्त मास मे एक बड़ा मेला लगता है। इस मेले मे देश के विभिन्न स्थानो के निवासी परस्पर मिलकर उत्सव मनाते है।

ब्रुशल्स बेलजियम की दिल्ली है तो एटवर्प कलकत्ता या बंबई। कला एव सस्कृति के साथ ही यह व्यापार का एक प्रमुख केद्र है, इसलिए यहा के नागरिक इसे 'ला मेत्रोपाले' कह कर फूले नही समाते।

एटवर्प मे पटसन के हमारे एक बडे एजेट मिस्टर विलियम रहते थे। यद्यपि अब तक उन से साक्षात्कार नही हुआ था, फिर भी व्यापारिक सबध होने के कारण हम आपस मे अच्छी तरह परिचित थे। मै इन के आफिस पहुचा। मै ने अपना विजिटिग कार्ड भेजा, कुछ क्षण बाद ही एक वयोवृद्ध किंतु स्वस्थ और प्रसन्न व्यक्ति कमरे से बाहर आए। उन्होंने बडे स्नेह और आत्मीयता के साथ हाथ मिला कर पूछा, "कब आए ? आपके आने की सूचना हमे नही मिली।"

मैं ने उन्हे बताया कि मै ब्रुशल्स से सीधा यहा आ रहा हू। दोएक दिन आप के शहर को देख कर फिर राटरडम जाऊगा।

"ठहरे कहा है ?"

"क्वीस होटल मे।"

मिस्टर विलियम ने हसते हुए कहा, "आप बेलजियम घूमने आए है तो हमारे देश के घरेलू जीवन की झाकी भी आप को देखनी चाहिए। होटलो मे भला यह सब कहा मिलेगी।"

अपने कमरे मे बैठाते हुए उन्होने कहा, "होटल से सामान लाने के लिए फोन कर दीजिए।"

मेरे बहुत समझाने पर भी वह न माने। मुझे होटल फोन करना ही पड़ा। वह घर साथ ले जाने लगे, पर मैंने कहा, "पता दे दीजिए, मैं शाम को पहुच जाऊगा, तब तक शहर घूम लू।" उन्होंने पता देने के बदले अपनी मोटर दे दी।

ड्राइवर होशियार था। शहर देखने मे सुविधा रही। बेलजियम के अन्य शहरो की अपेक्षा यहा पुराने ढग के मकान कम है। ब्रुजे के बदरगाह मे रेत भर जाने के कारण एटवर्प ने पिछले दो सौ वर्षो मे बहुत उन्नति की है। यहा १५वी शताब्दी तक के गिरजे और इमारते है जो पहले सरकारी दफ्तर, सैनिक कार्यालय, ड्यूको अथवा काउटो के आवास थे। नात्रेदाम का गिरजा यहा भी देखा। यहा के म्यूजियम और गिरजो मे बेलजियम की कला और सस्कृति की महत्त्वपूर्ण निधिया सुरक्षित हैं। चित्रों के समृद्ध सकलन मे फ्लेमिश, डच, जर्मन तथा फ्रेंच शैली के अतिरिक्त आधुनिक ढग की यूरोपीय कृतिया भी देखने को मिली।

बागबगीचे ब्रुशल्स की भाति यहा भी काफी सख्या मे हैं। शहर की १८ लाख जनसख्या है, फिर भी शहर खुला और साफ है। यहा के चिडियाघर की बहुत तारीफ सुनी थी। यहा पशुपक्षियो को स्वाभाविक वातावरण मे रखा जाता है। दर्शक भी इन्हें छेडते नही, इसलिए यहा के पशुपक्षी परेशान नही लगे।

शाम हो रही थी। बाजार मे रगबिरगे फूल बिक रहे थे। डचो की तरह बेलजियन भी फूल बहुत पसद करते है। आपसी व्यवहार मे अपना स्नेह और सोजन्य प्रदर्शित करने के लिए उपहारस्वरूप फूलो का गुच्छा देते है। श्रीमती विलियम को भेंट देने के लिए मैं ने भी कुछ फूल लिए। मिस्टर विलियम के घर पहुचा। उन्होने अपनी पत्नी और पुत्र से मेरा परिचय कराया। लुई अपने पिता के साथ ही व्यापार की देखभाल करता है। उन्होने अपनी पत्नी से कहा, "ये शाकाहारी है, भोजन निरामिष बनाना।"

नौकर के होते हुए भी अतिथि के लिए खाना स्वय घर की मालकिन ही बनाती है। यूरोप मे कई जगह यह बात देखी।

श्रीमती विलियम भोजन की तैयारी के लिए चली गई, हम तीनो मे बातो का सिलसिला जारी हुआ। इसी सिलसिले मे मुझे ज्ञात हुआ कि पिछले महायुद्ध मे एटवर्प को भीषण क्षति उठानी पडी। बमो की मार से शहर के २० हजार मकान बरबाद हुए और तीन हजार नागरिको के प्राण गए। मैं आश्चर्यचकित था कि युद्ध की समाप्ति के बाद बेलजियम ने कितनी उन्नति कर ली है। तभी लुई ने प्रश्न किया, "कैसा लगा हमारा देश ?"

मै ने कहा, "सरसरी तौर पर देखने से हम पूर्व के लोगो के लिए पश्चिम के सभी देशो की सभ्यता और सस्कृति एक सी जान पडती है। इन देशो मे लोग रूढियो को उखाडते है पर स्वस्थ परपरा को भी सजो कर रखते है। इस से सस्कृति निखर उठती है। मुझे आप की बाते विशेष पसद आईं।

भोजन तैयार हो कर आ गया था। हम चारो भोजन करने बैठ गए। तभी मिस्टर विलियम ने अपनी पत्नी की ओर देखते हुए कहा, "लुई को जूट की पूरी जानकारी के लिए भारत भेजना चाहता हू, पर ये जाने नही देती।"

मैं ने पूछा, "क्यो ?"

महिला ने सिर हिला कर कहा, "ना .ना मैं ने सुना है और अखबारो में पढ़ा है कि हिंदुस्तान मे लोग दिनदहाडे एकदूसरे को छुरा भोक देते हैं।"

मैं यह सुन कर मन मे झेपा। लेकिन बात को सभालते हुए मैं ने कहा, "देश के विभाजन के बाद राजनीति के विषैले प्रभाव और धर्मांधता की वजह से कुछ इस तरह की दुर्घटनाए हो जाती हैं। आप विश्वास करे आम तौर पर ऐसी वारदाते नही होती।"

मिस्टर विलियम ने बात जारी रखते हुए कहा, "ये भूल जाती हैं कि मध्ययुगीन यूरोप में कैथोलिक और प्रोटेस्टेट एकदूसरे की जान के किस कदर दुश्मन हो गए थे ।"

मै ने मुसकराते हुए कहा, "मिस्टर विलियम, यह मा का दिल है ।"

भोजन बहुत स्वादिष्ट लगा पर मिस्टर विलियम को सतोष न था, कहने लगे, "मैं बडाई तो नही करता । लेकिन भोजन के मामले मे हम लोग इटालियनो की तरह बनाने, खाने और खिलाने के लिए प्रसिद्ध है । भ्रमण और भोजन के आनद के लिए विदेशी यहा आते हैं. क्या बताऊ, आप शाकाहारी हैं ।

मैं ने कहा, "इस मे यह और जोड दीजिए कि बेलजियन निरामिष भोजन भी अत्यत स्वादिष्ट बनाते है ।"

हम लोग हस पडे । भोजन के बाद कॉफी पीते हुए अगले दिन का कार्यक्रम बना । मेरे बारबार मना करने पर भी लुई को आफिस से छुट्टी दे कर उन्होने मेरा गाइड बना दिया ।

सुबह नाश्ता कर घूमने निकले । पिछले दिन क्याक्या देख लिया था, वह लुई को बता दिया । हम एटवर्प के चौक ग्राड पैलेस पहुचे । यहा का टाउनहाल ब्रुशल्स जैसा पुराना नही है । आसपास के मकान भी नए ढग के हैं । लुई ने चौक के बीच का फव्वारा दिखाते हुए कहा, "यह ब्रेवी का फव्वारा है ।"

पास जा कर देखा कि विजय गर्व से खडे एक पुरूष के पास झुकी हुई असुर की सी आकृति की कटी बाह मे से पानी की धार निकल रही है । लुई ने बताया, "इस मूर्ति मे शहर के नाम का रहस्य है । लोक कथा है कि रोमन शासनकाल मे ड्रुआन एतिगान नाम का एक असुर यहा रहता था।पास बहती शेल्ड नदी से गुजरने वाली नावो से वह कर वसूल करता था । कर न अदा करने पर मल्लाहो का दाहिना हाथ काट कर नदी मे फेक देता था । हाथ काटकर फेकने को हमारी फ्लेमिश भाषा मे हेडवर्पन कहते है, जो कालातर मे एटवर्प हो गया ।"

वीर पुरुष की आकृति की ओर इगित कर उस ने बताया, "इन का नाम सेल्वियस ब्रेवी है । इन्होंने असुर को पराजित किया और उस के हाथ काट दिए ।"

प्रोटेस्टेट होने पर भी भारत और ग्रीस की तरह बेलजियम मे भी पौराणिक कथाओ पर विश्वास किया जाता है, इन्ही के आधार पर प्रतिमाए बनाने मे इन की रुचि है । यहा के गिरजो मे भी पौराणिक कथाओ के चित्र और प्रतिमाए बहुत है ।

एटवर्प को हीरो की नगरी भी कहते है । विश्व मे राटरडाम और एटवर्प हीरे की उम्दा तराशी के लिए प्रसिद्ध हैं ।

यहा के इस उद्योग ने बेलजियम की आर्थिक उन्नति मे बहुत महत्त्वपूर्ण योग दिया है । पिछले महायुद्ध मे इस क्षेत्र को बहुत क्षति पहुची, लेकिन मेहनतकश कारीगरों और व्यवसायियो ने बिगडी हुई स्थिति को फिर से सभाल लिया । बेलजियम को इस व्यापार से विदेशो से अच्छी आय हो जाती है । पेलिकान स्ट्रीट हीरे का प्रमुख बाजार है ।

लुई मुझे अपने एक परिचित व्यापारी के यहां ले गया । तराशी की सफाई और कारीगरी को देख कर तबियत खुश हो गई । छोटेबडे सभी आकार के हीरे थे । लाल, नीली, पीली और हरी आभाओ के हीरे पहलेपहल यहा देखे । दाम भी सस्ते थे, भारत से आधे बल्कि उस से भी कम ।

व्यापारी ने आग्रह किया, "अपनी पसद के चुन लीजिए ।"

मैं ने बताया, "हमारी सरकार ने इस के आयात पर प्रतिबध लगा रखा है ।"

उस ने हस कर कहा, "इस बाजार मे प्रति दिन विश्व के कोनेकोने से न जाने कितने हीरे किस राह आते है और चले जाते है । भारत से तो कई व्यापारी साल मे कई बार आ कर

काफी माल उठा ले जाते है।"

मै ने कहा, "यह सभव है, क्योकि तस्कर व्यापार की रोकथाम बडी मुश्किल से हो पाती है। फिर भी हमारी सरकार इस दिशा मे काफी प्रयत्नशील है।"

पता चला है कि बेलजियम की सरकार भी अब इस दिशा में सख्ती करने जा रही है ताकि आनेजाने वाले समस्त रत्नो का ब्योरा व्यापारियो से ले कर वसूल करने मे सुविधा रहे।

वैसे तो शहर मे कई अच्छे बाजार है किंतु इन मे मेईर अपनी सजावट और विविधता के लिए लोकप्रिय है। लखनऊ की तरह यहा भी चिकन की जेसी क़ढाई होती है। बहुत ही आकर्षक बेलबूटे यहा की महिलाए हाथ से काढती हे। मुझे यह बहुत पसद आए, कुछ मैं ने भी खरीदे। एक सिरे पर २४ मजिली इमारत दिखाते हुए लुई ने कहा, "तोरेन जे बो पर से आप को सारा शहर एक नजर मे दिखा दू।"

कलकत्ते मे १५ मजिली इमारतो पर तो चढा था पर इतनी ऊची इमारत पर अब तक चढ कर नही देखा था। शहर के बाहर हरेभरे खेतो की हरियाली के बीच शेल्ड नदी का जल हीरो की पक्ति की तरह चमक रहा था। गिरजो के ऊचे बुर्जों पर तथा क्रासो पर सूर्य की सुनहली किरणे फिसल रही थी।

वहा से उतर कर नदी के किनारे स्टीन देखने गए। पहले यह एक दुर्ग था लेकिन अब यहा एक नौसग्रहालय है। यहा समुद्र और जहाजरानी की सभी आवश्यक वस्तुओ का अच्छा सग्रह है। मुझे इस सबध मे थोडीबहुत जानकारी मिली। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि कितना छोटा सा देश है बेलजियम, सिर्फ ४० मील का समद्रतट इस के पास हे, फिर भी हालेड और नार्वे की तरह इस ने कितनी प्रगति इस दिशा मे कर ली है। हम हजारो वर्षों से वरुण देव की पूजा जरूर करते रहे है, पर इतना विस्तृत समुद्रतट होते हुए भी इस दिशा मे हम कितने पिछडे हुए है।

लुई का साथ मेरे लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ। बेलजियम जीवन की बहुत सी बाते उस ने बताई। एक मजे की बात यह भी सुनी कि हमारी तरह उन के यहा भी घरो की दीवार, ज़मीन या चूल्हो के पीछे से वक्त जरूरत खासी रकम निकल आती हे। डेनमार्क की तरह साइकिल दौड यहा का प्रमुख राष्ट्रीय खेल है। भारतीयो की तरह फुटबाल के खेल मे भी इन्हे बहुत दिलचस्पी है।

स्टीन के पास से ही एटवर्प का बदरगाह शुरू हो जाता है। यह यूरोप के बडे बदरगाहो मे से एक है। विदेशो से कई जहाज यहा माल लेने और उतारने आते है क्योकि हेमबर्ग की तरह मध्य यूरोप के देशो के माल का आवागमन इसी मार्ग से होता है। जहाजो की मरम्मत की व्यवस्था भी यहा अच्छी है। माल की लदाई और निकासी इतनी तत्परता और कुशलता से की जाती है कि आए हुए जहाजो को ज्यादा प्रतीक्षा नही करनी पडती।

एटवर्प का पटसन उद्योग डडी की तरह काफी उन्नत है। भारत और पाकिस्तान से पाट यहा की मिलो के लिए आता है। यहा की जूट मिले देखना चाहता था, लुई ने टेलीफोन से पहले ही प्रबध कर लिया था। जूट मिले बडी तो नही है, मगर बहुत साफ ओर यान्त्रिक दृष्टि से हमारे यहा से काफी उन्नत। इन मे केवल बोरे और टाट ही नही बनाए जाते बल्कि तरहतरह की अन्य वस्तुए, जैसे गलीचे, कबल, दरिया आदि भी बनती हैं।

मजदूरी हमारे यहा से छ गुनी अधिक है लेकिन प्रति मजदूर उत्पादन भी इसी अनुपात मे अधिक है। यही कारण है कि जूट पैदा करने वाले देश भारत की टक्कर मे विश्व के बाजारो मे यह टिका हुआ है।

शहर देख कर हम शाम को घर लौटे। मिस्टर विलियम पहले ही आ गए थे। हम ने साथ ही भोजन किया।

रोटरडम जाने के लिए विदा लेते समय मैं ने श्रीमती विलियम से कहा, "लुई को अकेला

आप नही छोडना चाहती तो आप चारो भारत आइए ।"

श्रीमती विलियम ने आश्चर्य से पूछा, "चौथा कौन ?"

मैं ने कहा, "आप की होने वाली पुत्रवधू !"

सभी हसने लगे ।

हाथ मे फूलो का गुच्छा देते हुए उन्होने दो छोटेछोटे पैकेट दिए । एक मे हाथ की बुनी सूत की जालिया थी और दूसरे मे रोटरडम तक के लिए केक और बिस्कुटो का नाश्ता था ।
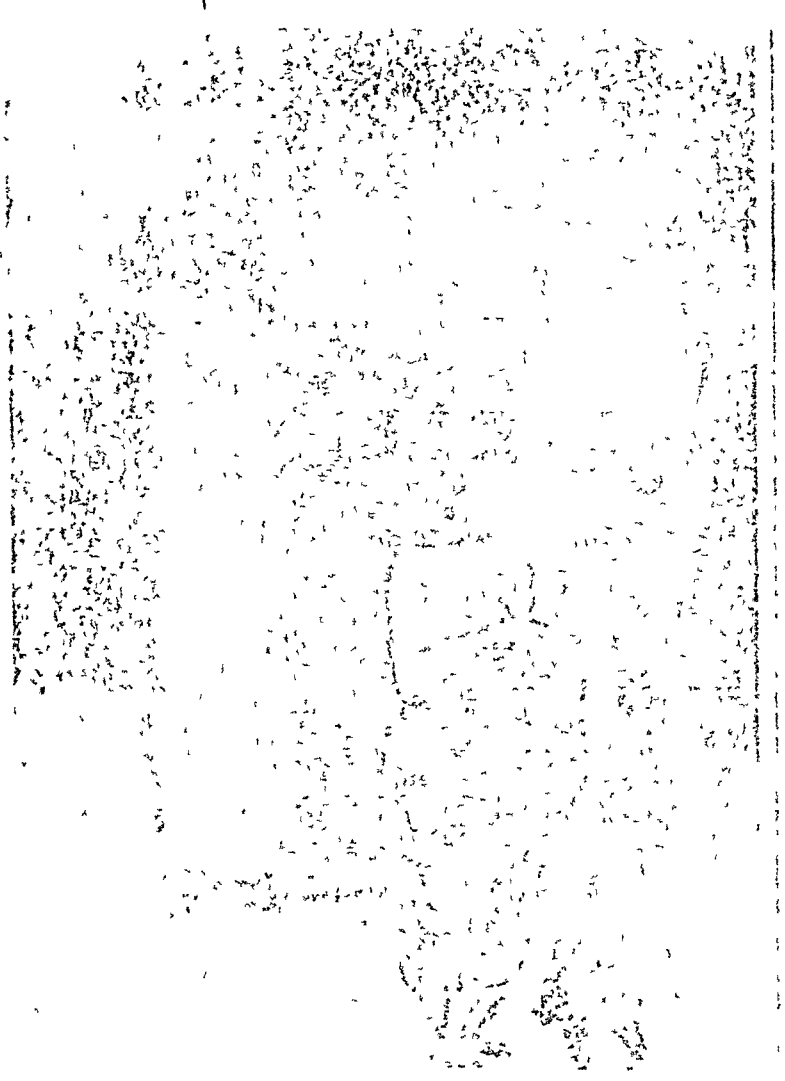
भूलोक का एकमात्र नंदनकानन ?

स्विट्जरलैंड

भूलोक का नदनकानन कहने से भारतीयो को सहज ही कश्मीर का ध्यान आता है लेकिन ससार का कोई देश यदि वास्तव मे इस नाम का अधिकारी है तो वह स्विट्जरलेड है। प्रकृति का सौदर्य कश्मीर मे भी अनुपम है और निस्सदेह प्रकृति अपना रूप वहा पलपल सवारती रहती है, लेकिन मानव के हाथ उसे नही सवारते। इसलिए स्वच्छता की कमी उस के रूप को निखरने नही देती।

इस के विपरीत स्विस लोगो ने अपने देश मे जहा भी कही सुरम्य स्थल पाया, उस की शोभा बढाई है, उसे सजाया और सवारा है। उन्होने विज्ञान की उन्नति के दभ मे अपनी आवश्यकताए पूरी करने के खयाल से प्रकृति के रूप को वैज्ञानिक अस्त्रो से बिगाडा नही, बल्कि विज्ञान की सहायता से अपने देश के सुदर स्थानो को पर्यटको के लिए सुगम, सुविधापूर्ण और सुरक्षित बना लिया है।

वैसे तो हमारे देश में भी सुदर स्थानो और प्राकृतिक छटा का अभाव नही है पर इसे दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि हम ने उसे सजाने-सवारने की कभी कोशिश नही की। आज स्वाधीन होने के बाद भी इस ओर हमारा ध्यान बहुत कम ही गया है।

स्विट्जरलैड मे मैं ने ऊचीऊची दुर्गम पहाडियो की चोटियो पर लोगो को तार की मजबूत रस्सियो के सहारे झूलते हुए देखा है। कही कोई पहाडी नदी उर्वशी की भाति धरती पर उतर रही है तो कही कोई पहाडी नदी हजारो फीट ऊचे पर्वतो की घनी बनाली के बीच लुकछिप कर मुसकान बिखेरती भाग रही है। ऐसे अवसरो पर मन मे बराबर यही बात आई कि स्वदेश लौटने पर प्रकृति को कुरूप बनाने की चेष्टाओ मे यदि कुछ भी रोकथाम करा सका तो अपने को धन्य मानूगा।

डेवोस के पहाडो के पास एक सुदर झरने के किनारे नाश्ता करने बैठा तो मुझे अपनी बद्रीनाथ यात्रा का स्मरण हो आया। मैं ने वहा भी हनुमान चट्टी से आगे कलकल करते एक झरने के किनारे सुस्ता कर कुछ चनाचबैना करने का विचार किया था, लेकिन कही से दुर्गंध का एक झोका आया और मैं ने सिर घुमा कर जो दृश्य देखा, उस से भूख का भाग जाना स्वाभाविक ही था।

मन मे बडी ग्लानि हुई। कुछ तीर्थ यात्री झरने के किनारे बैठे शौच कर रहे थे। मैं ने दो गेरुआ वस्त्रधारी साधुओ को रोका तो वे झगडे पर उतारू हो गए। दूसरे भक्तो ने भी मुझे ही बुराभला कहा। मुझे चुप हो जाना पडा।

दूसरी ओर स्विट्जरलैंड के लोगों को सफाई का इतना अधिक ध्यान रहता है कि यदि कहीं कूड़े का टब न हो तो वे छिलके वगैरह अपनी जेबों मे डाल लेगे और स्थान को गदा करने का विचार तक भी मन मे नही लाएगे।

स्विट्जरलैंड की प्राकृतिक छवि मे अपनी अलग विलक्षणता है। सारा देश ही सुदर है, पर मुझे यगफ्राऊ की छटा ने सब से अधिक प्रभावित किया। आज भी वे दृश्य मानसपटल पर ज्यों के त्यों अकित हैं। यगफ्राऊ का अर्थ है नवयुवती। मैं ने स्विट्जरलैड मे सभी के मुह से इस स्थान के अप्रतिम सौदर्य की चर्चा सुनी थी। इसी लिए मै यगफ्राऊ के आकर्षण मे बंधा हुआ इंतरलाकेन जा पहुचा।

इतरलाकेन का अर्थ है, दो झीलो के बीच की भूमि। नाम सार्थक है। यह ब्रायज और थून नामक दो झीलो के बीच बसा छोटा सा कस्बा है। चारो ओर के पहाड झीलो के जलदर्पण मे अपनी शोभा देख कर झूमने मे लगते है। कभीकभी लगता है कि बादल अपना रूप निरखने के लिए झीलो की सतह पर झुकते चले आ रहे है।

इस की अपनी आबादी करीब तीनचार हजार ही होगी। लेकिन गरमियो मे बर्फ पिघलने और शीत का प्रकोप कम होने पर यहा पर्यटकों का अच्छाखासा जमाव हो जाता है। इसी कारण इतना छोटा सा कस्बा होने पर भी यहा चौसठ होटल है, जिन मे पाच हजार यात्री ठहर सकते है।

यहा के कस्बो और बाजारो मे पर्वतारोहण तथा अन्य कई प्रकार के खेलकूद की सारी सामग्री मिल जाती है। पर्यटक लोग अपने साथ अनुभवी तथा कुशल गाइड ले कर पर्वतारोहण के लिए निकल पडते है।

स्विट्जरलैड के गाइड और दुकानदार पर्यटको से अधिक पैसा लेने के चक्कर मे नही रहते। वे उतना ही मागते है जितना उचित होता है। साथ ही ग्राहक को शिष्टाचार और स्नेह भी देते है। यही वजह है कि यहा खर्च करना खलता नही।

यहा जर्मन भाषा बोली जाती है। भावताव मे दुकानदारो को अपनी बात समझाने मे असमर्थ होने पर मै उन के सामने पैसे रख देता और वे खुद ही अपने वाजिब दाम उठा लेते थे। ऐसा कभी नही लगा कि मै ठगा गया हू। दुकानो मे सामान बेचने वाली प्राय: सुदर और स्वस्थ युवतिया ही होती है, जो सामान दिखाने के साथ ही साथ शिष्ट मुसकान भी बिखेरती रहती है।

मै ने एक बार एक दुकान मे कई चीज देखने पर भी कुछ नही खरीदा, फिर भी वहा की सेल्स गर्ल मुझे फाटक तक पहुचाने आई और वापस जाते हुए कहती गई, "थैंक्यू सर !" मुझे बरबस ही कलकत्ता की एक घटना याद आ गई। मै एक दुकान मे पेन खरीदने गया था। दोतीन मिनट तक तो दुकानदार ने बात ही नही की, फिर जब मै ने खुद ही पेन के चुनाव करने की सोची तो उस ने इस तरह घूरना शुरू किया जैसे मै पेन उठा कर भागने वाला हू। मै ने जब उस से वाटरमैन या स्वान पेन दिखाने को कहा तो वह झल्ला कर बोला, "क्यो शोर मचाता ! हमारा भी टाइम वेस्ट करता और अपना भी। तुम को पेनवेन कुछ नही खरीदना, जाओ !" जरा देखिए, कितना अतर है दोनो मे।

पश्चिम के लोगो मे मैं ने एक विशेषता पाई कि उन के खेलकूद और मनोरजन मे साहस और सजीवता का पुट रहता है। वहा प्रत्येक सबल, स्वस्थ और समर्थ नागरिक जिस ढग से अपने अवकाश का उपभोग करता है, वैसा साधारणतया हमारे यहा नही पाया जाता

के साथ अपने अवकाश का लाभ उठा रहे थे। कोई स्केटिंग की तैयारी कर रहा था तो कोई स्की की और कोई रस्सियो के सहारे दुर्गम पहाडियो पर चढ कर उन के शिखर को चूमने के प्रयास मे लगा था।

स्की भी कितने जीवट का खेल है। दोनो पैरो के तलवो मे आगे की ओर उठी हुई लकडी की दो चिकनी पटरिया बाध कर बर्फ पर फिसलना। मैं ने भी पाच सवारो मे अपना नाम लिखाना चाहा, पर बिल्कुल निकम्मा साबित हुआ। दसबीस फीट फिसलने पर ही या तो आसमान देखता या जमीन सूघने लगता। कई बार कोशिश की पर सब बेकार रहा। लिहाजा स्की को दंडवत् प्रणाम किया और अन्य लोगो को स्की करते देख कर ही दिल का अरमान पूरा कर लिया। स्की की पटरिया बाधे हजारो फुट की ऊचाई से बर्फ पर तेजी से फिसलते हुए और छलागें भरते लोगो को देख कर दातो तले उगली दबानी पडती है।

स्विट्जरलेड का यह राष्ट्रीय खेल है। इसके अलावा विदेशो से प्रति वर्ष हजारो खिलाडी यहा अपने करतब दिखाने आते है। स्की के लिए वास्तव मे अभ्यास के साथ ही बल और एकाग्रता भी चाहिए। मेरे पास उत्साह, बल और कुशल गाइड, सब थे। लेकिन मेरा बल स्की के मामले में बल खा गया क्योकि प्रिंस अलीखा की तरह अपना पैर तुडवाना मुझे ठीक नही जचा।

इतरलाकेन और उस के आसपास खूब घूमा। दृश्य बडे ही सुन्दर थे। उन को देख कर जब मुझ जैसे साधारण मनुष्य का हृदय भी खुशी से भर उठा तो पश्चिम के बडेबडे कलाकारो और साहित्यकारो का भावविभोर हो जाना स्वाभाविक ही है। महाकवि गेटे, शेली कीट्स और महान विचारक तथा साहित्यकार थैकरे, रस्किन, लागफेलो मार्कट्वेन आदि कीकृतियो मे इतरलाकेन के मनोरम दृश्यो की नैसर्गिक, छाया स्पष्ट दिखाई देती है। अंगरेजी के रोमाटिक कवि बायरन ने अपनी विश्व प्रसिद्ध कृति 'मैनफ्रेड बेजनेज' यही लिखी थी।

लेकिन इतरलाकेन मुझे रोक न सका। यगफ्राऊ का आकर्षण अपनी ओर खीच रहा था। मैं उसी ओर बढ चला। कई पर्यटक साथ थे। उन मे से अधिकाश विदेशी थे और बडे हसमुख थे। यूरोप मे, इगलेड को छोड कर साधारणतया यात्रा नीरस नही होती। वहा के लोग विदेशियो और विशेष कर हम भारतवासियो से तो जानपहचान कर ही लेते हैं।

मैं ट्रेन मे बैठा बाहर के दृश्य देख रहा था। पास ही दो युवतिया बैठी थी। वे अपनी भाषा मे बातचीत कर रही थी। कभीकभी नजर बचा कर मेरी ओर भी देख लेती थी। लगा जैसे वे मेरे ही बारे मे बाते कर रही है। मैं ने उन की ओर मुड कर देखा तो उन मे से एक अगरेजी मे पूछ ही बैठी, "क्षमा कीजिएगा, क्या आप भारतीय है ?"

"जी, हा, आप का अनुमान सही है," मैं ने कहा।

"देखिए न, मेरी बहन कहती है कि आप भारतीय नही हो सकते। वे इतने स्वस्थ नही होते।"

मुझे हसी आ गई। मैं ने कहा, "दुबलेमोटे और लबेनाटे मनुष्य तो हर देश मे होते है।"

दोनो हस पडी। परिचय होने पर पता चला कि वे रईस घर की है और छुट्टिया मनाने निकली है। विचारविनिमय का सिलसिला चला। गाधी, नेहरू और रवीद्र से ले कर हमारी सास्कृतिक तथा सामाजिक व्यवस्था ही नही, स्त्रियो के अधिकार, विवाह, भारत की बढती हुई जनसख्या और यहा तक कि परिवार नियोजन आदि पर चर्चा हुई। उन के साथ जिस तरह बिना किसी झिझक के खुल कर बाते हुई, उस तरह बाते करना हमारे देश मे सभव नही। मै शुरू मे कुछ हिचक रहा था। स्वाभाविक भी था क्योकि महिलाओ के साथ इन विषयो पर विचारविनिमय करने का पहले कभी मौका नही पडा था। लेकिन उन यूरोपीय बहनो के सहज, मुक्त भाव ने मेरी हिचक मिटा दी।

उस घटना की याद आते ही मन मे विचार उठता है कि हम अपने यहा यथार्थ पर जो परदा डालते है, उसे पश्चिम मे बुरा माना जाता है। वैसे यह बात काफी हद तक सही भी है क्योकि हमारी वर्तमान सस्कृति मे शिष्टाचार के नाम पर दकियानूसी खयालो का समावेश हो गया है और आचारभ्रष्ट होते हुए भी सदाचार का दिखावा किया जाता है।

विद्युत चालित हमारी ट्रेन पहाड की ऊचाई पर क्रमश बढती जा रही थी। स्विट्जरलैड में सभी ट्रेने बिजली से चलती है। लेकिन हमारी यह यात्रा पूरी तरह से भिन्न थी। हमारे देश के दार्जिलिग और शिमला की भाति यहा यग्रफ्राऊ की चोटी पर चढने के लिए पहाड की ढलान को काटछाट कर रास्ता नही बनाया गया है। स्विस इजीनियरो ने पहाड के भीतर ही सुरंगे काट दी है। ट्रेन उन मे से गुजरती हुई चोटी की ओर बढती जाती है। यात्रियो को पता तक नही चलता कि वे प्रति पल समतल भूमि से कितने ऊपर उठते जा रहे है। जहा पहाड काट कर बाहर का दृश्य देखने के लिए जगह बनाई गई है, वहा ट्रेन बीचबीच मे कुछ देर के लिए रुकती भी है। यात्री वहा उतर कर पहाड की ऊचाई से शोर मचा कर गिरते हुए झरने इठलाती हुई पहाडी नदिया और स्वच्छ बर्फ पर तैरते हुए बादल देखते है।

हमारी ट्रेन बेनजेन मे कुछ देर रुकी। सुन रखा था कि वहा से सूर्यास्त का बडा ही अनुपम दृश्य दिखाई देता है। लौटते समय बेनजेन पंहुचा तो सूर्यास्त का ही समय था। अवसर हाथ से जाने नही देना चाहता था। बाहर की ओर आया। देखा कि सूर्य पश्चिम की पहाडियो के पीछे जा रहा है और सध्या बर्फीले शिखरो तथा घाटियो पर केसरिया रग बिखेर कर सूर्य को विदा दे रही है।

बेनजेन के बाद हमारी ट्रेन फिर सुरगो मे खो गई। ट्रेन के प्रकाश मे पहाडी चट्टानो के अलावा कुछ नही सूझता था। हम कुछ ही देर मे शेईदेग पहुच गए। यहा से यगफ्राऊ के लिए ट्रेन बदलनी पडती है। यगफ्राऊ की खास यात्रा यही से शुरू होती है। ट्रेन फिर पर्वत के गर्भ मे समा गई और चक्कर काटती हुई आइजमीयर (हिम सागर) पहुची। यह स्थान १०,३६८ फुट की ऊचाई पर पर्वत की विशाल ठोस चट्टानो को काट कर बनाया गया है और स्विस इजीनियरिंग कौशल का एक उत्तम नमूना है। आइजमीयर जैसा नाम है, वैसा ही उसे पाया। गरम कपडे पहन रखे थे, फिर भी ठड महसूस होने लगी। यहा से हमारी यात्रा का अतिम चरण आरभ हुआ।

आखिर ट्रेन यगफ्राऊ पहुच ही गई। यह ससार का सबसे ऊचा रेलवे स्टेशन है। मै ने यही पर यूरोप के सबसे ऊचे होटल 'बर्ग हाऊस' मे नाश्ता किया। इस होटल मे यात्रियो के लिए सभी सुविधाए उपलब्ध है। स्की से हाथपैर टूटने पर प्राथमिक चिकित्सा की भी व्यवस्था है। रहने के लिए गरमऔर आरामदेह जगह तथा भोजन की सुव्यवस्था देखकर मन खुश हो गया।

लिफ्ट के सहारे यगफ्राऊ की ऊची चोटी पर जा पहुचा। इस चोटी पर एक विशालकाय दूरबीन लगी हुई है जिस से समीपवर्ती देश देखे जा सकते है। यह सब देख कर चारो ओर बचपन मे पढी परियो की कहानी जैसी विचित्रता नजर आई। यहा बर्फ का एक मकान है जिस मे बर्फ की ही मेजे, कुरसिया और मोटर मौजूद है। पैसठ वर्षो से यह मकान और इस की सभी वस्तुए आज भी ज्यो की त्यो बनी हुई है। सर्दी की वजह से यहा बर्फ पिघल नही पाती।

यगफ्राऊ १२,००० फुट ऊचा है। यद्यपि इस की ऊचाई हिमालय की चोटियो से कम है, फिर भी इस की अपनी एक विशेषता है और अपना एक आकर्षण है। इस के पार्श्व मे पहुचना उतना कठिन नही। विज्ञान ने सब कुछ सुलभ बना दिया है। यहा प्रकृति की मुक्त छवि के विभिन्न रूपरगो का आनद जिस सरलता से लिया जा सकता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

यह देख कर तो दातो तले उगली दबानी पड़ी कि इतनी खतरनाक ऊचाई पर भी लोग स्की करते हैं। जरा भी चूके कि जान गई। हालैडवासी जिस प्रकार समुद्र के चप्पेचप्पे की पूरी जानकारी रखते हैं, उसी प्रकार स्विस लोगो को अपने पर्वतो की जानकारी है। उन का साहस और उत्साह असीम है। यहां तक पहुचना कभी असभव रहा होगा, लेकिन स्विस इंजीनियरिंग कौशल ने यगफ्राऊ का प्राकृतिक सौदर्य संसार के लिए सुलभ बना दिया है।

मैं जिस समय यगफ्राऊ के शिखर पर पहुचा, वहा दोपहर थी। सूर्य के प्रकाश मे बर्फ चादी की तरह चमक रही थी। चारो ओर कुहासा था। उस शात वातावरण मे मानस पटल पर स्विट्जरलैड की सारी यात्रा के चित्र एकएक कर उभर आए। सोचा, 'आखिर यह भी मर्त्यलोक है, यहा भी कभी अभाव और आवश्यकता रही होगी। लेकिन अब यहा गरीबी का दानव क्यो नही दिखलाई पडता ?' मुझे लगा, मेरा स्विस गाइड मुझे देख कर मुस्करा रहा है। मुझे वहीं अनुभव हुआ कि श्रम का सही अर्थ समझने पर मनुष्य देवत्व पा सकता है।

गाइड ने पूछा, "सर्दी अधिक तो नही लग रही है ? नीचे उतरेगे ?"

"स्वर्ग से नीचे उतरने को क्यो कहते है !" मैं ने उत्तर दिया।

हम दोनो हस पडे।

स्विट्जरलैड जैसे एक छोटे से देश के जिन कुशल इजीनियरो को विश्व की सब से ऊची रेलवे लाइन बिछाने का यश प्राप्त है, उन्ही को यूरोप के हिमालय आल्प्स को काट कर भूतल की सब से लबी सुरग बनाने का भी श्रेय है।

वैसे तो उन्होने १७७८ मे ही मोटकेनिस नामक आठ मील लबी सुरग बना ली थी लेकिन सिपलन सुरग का तो अपना अलग ही महत्त्व है। इस सुरग के बनाने का काम १८६८ मे शुरू हुआ था और १६०५ मे पूरा हुआ।

इस कठिन कार्य को १,००० मजदूरो ने रातदिन तीन पाली मे काम करके साढेछ वर्षो मे पूरा किया। सवाबारह मील लबी इस सुरग को कहीकही तो सात हजार फुट ऊचे पहाडो का बोझ सहना पडता है। अधिक चौडी सुरग बनाने से ऊपर के पहाडो के धसकने का भय था इसलिए ५६ फीट की दूरी पर दो समानातर सुरगे बनाई गई हे। और हर छ सौ फुट के बाद दोनो के बीच आनेजाने का मार्ग बना दिया गया है। इस तरकीब से काम भी शीघ्र समाप्त हो गया और सुरगो के भीतर हवा के प्रवेश मे भी आसानी हो गई।

ढाई मील तक सुरग बन जाने पर एकदम ठडे बर्फीले जल की धारा प्रबल वेग से निकल आई, जिस का बहाव प्रति मिनट साढेदस हजार गैलन और दबाव प्रति इच छ सौ पौड था। इस आकस्मिक विपत्ति से वे घबराए तो, लेकिन उन्होने साहस नही छोडा। काम चलता रहा। प्रकृति का कमाल देखिए, कुछ ही आगे बढने पर गरम पानी की धारा निकल आई। दोनो के मिलने से तापमान सतुलित हो गया। सिंपलन सुरग बन कर तैयार हो गई। इस सुरग को देखने आज भी दुनिया के हर कोने से लाखो पर्यटक आते है और मनुष्य की इस रचना को देख कर विस्मित हो उठते है।

विश्व विजयी वीर नेपोलियन को आल्प्स के ऊपर अपनी सेना ले जाने मे हजारो सैनिको तथा अपरिमित युद्ध सामग्री से हाथ धोना पडा था। उसी आल्प्स पर अब मुट्ठी भर इजीनियरो ने काबू पा लिया है अब इस समय लोग रात मे जेनेवा से चल कर ट्रेन मे आराम से सोते हुए सुबह ईटली के मिलान नगर पहुच जाते है।

●

पश्चिमी योरुपियन संस्कृतियों का मेल ?

आल्प्स की गोद में

मै दो तीन बार स्विट्जरलैड हो आया हू—पहले १६५० और फिर १६६२ और १६६४ मे। पहली बार मुझे दो महीने रहने का अवसर मिला था। सारा देश घूमने के लिए पर्याप्त अवकाश था। प्राकृतिक सौंदर्य देखने के साथसाथ मुझे स्विस जनता के निकट सम्पर्क मे आने और उस का जीवन देखनेसमझने का भी मौका मिला। प्राकृतिक छवि तो आकर्षक थी ही परतु मैं वहा के सामाजिक जीवन से कही अधिक प्रभावित हुआ। कर्मठ जीवन उस देश की बहुमुखी उन्नति का एकमात्र कारण है। कशमीर मे केवल प्रकृति मुसकराती है पर स्विट्जरलैड मे प्रकृति और स्विस जनता दोनो ही मुसकराते मिलते हैं।

आल्प्स की गोद मे बसा हुआ वह एक छोटा सा देश है। उस की आबादी केवल ५६ लाख है, लेकिन वहा इतनी सी आबादी के लिए भी न पर्याप्त अन्न पैदा हो पाता है और न उस के पास खनिज पदार्थो का कोई भडार ही है जिस से वहा की जनता अपने लिए खाद्य सामग्री तथा जीवन के अन्य आवश्यक साधन जुटा सके।

वहा परिवार नियोजन द्वारा जनसख्या की वृद्धि पर नियंत्रण रखा जाता है। इसी का फल है कि पिछले कुछ वर्षों के दौरान ससार के दूसरे देशो की जनसख्या मे साठसत्तर प्रतिशत तक वृद्धि हो गई है और स्विट्जरलैड की जनसख्या उस अनुपात मे नही बढ पाई।

खाद्य सामग्री तथा जीवन के दूसरे आवश्यक साधन जुटाने के लिए स्विट्जरलैड के निवासियो ने निर्यात का मार्ग अपनाया है। उन्होंने अपने सभी शिल्पोद्योगो का यही एक उद्देश्य बना रखा है। वे विदेशो से कच्चा माल, जैसे लोहा, कोयला तथा अन्य आवश्यक खनिज पदार्थ मगा कर अपने यहा तैयार किया हुआ माल, मशीने, घडिया, दवाए, बिजली का सामान आदि विदेशो को भेजते हैं। शिल्पोद्योगो की इस नीति के कारण स्विट्जरलैड को विदेशो से काफी धन मिल जाता है। इस धन का कुछ भाग खाद्य सामग्री जुटाने मे, कुछ कच्चे माल के आयात में और शेष राष्ट्र की उन्नति के लिए व्यय किया जाता है।

स्विस सामाजिक जीवन की रीढ शिल्पोद्योग ही है। इसी लिए वहा की जनसख्या का ४२ प्रतिशत भाग किसी न किसी रूप मे शिल्प से सबधित है। हर व्यक्ति की कार्यकुशलता तथा उस की क्षमता का वहा ध्यान रखा जाता है। स्विसो को सदा इस बात की चिंता बनी रहती है कि उन की वस्तुए दूसरे देशो की वस्तुओ के मुकाबले ऊंची किस्म की और टिकाऊ सिद्ध हों। यही कारण है कि ससार भर मे स्विट्जरलैड मे बने डीजल और मैरीन के बडेबडे इजनो से ले कर छोटीछोटी घड़ियों तक की माग सब से अधिक रहती है। अमरीका, फ्रास

और जर्मनी जैसे औद्योगिक राष्ट्रो के बीच भी स्विट्जरलैंड का अपना एक विशिष्ट तथा गौरवपूर्ण स्थान है ।

इसका एक दूसरा कारण यह है कि उन्होने अपने उद्योगधधो को अन्य देशो की भाति पूरी तरह मशीनो के हवाले नही किया है । इसीलिए उनकी बारीकी और उनके टिकाऊपन का मुकावला करना कठिन होता है । यहा कुटीर, शिल्प और बृहद् उद्योग मे बडा सुन्दर समन्वय हुआ है । उदाहरण के लिए, एक घडी मे १२६ से २०० तक पुरजे लगते है और सामान्यत हम समझते है कि इनके लिए वहा बडेबडे कारखाने खड़े होगे । लेकिन मैने ज्यूरा अचल मे हजारो कारीगरो को अपनेअपने घरो मे ही इन पुरजो को तैयार करते देखा है । हर कारीगर घडी का एक न एक पुरजा तैयार करने मे सिद्धहस्त होता है । इसीलिए अमरीका और ब्रिटेन की घडिया लाख कोशिश के बावजूद स्विट्जरलैड की ओमेगा और रोलेक्स के आगे ठहर नही पाती ।

शिल्पोद्योग की यह नीति इतनी सफल हुई है कि आज स्विट्जरलैड की आर्थिक स्थिति काफी सुदृढ हो गई है । पिछले वर्षो के दौरान बडेबडे राष्ट्रो के सिक्को की क़ीमतो मे काफी उतारचढाव आए, लेकिन स्विस सिक्के की कीमत स्थिर ही रही । इतना ही नही, स्विस सरकार को अपनी अर्थ व्यवस्था की दृढता पर इतना भरोसा है कि वहा आप बैको मे किसी भी देश की मुद्रा बदल सकते है । उनको इस बात का भय नही कि उनकी मुद्रा बाहर चली जाएगी ।

द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप सन १९५० मे सारा यूरोप महगाई के बोझ से दिनोदिन दबता जा रह था, लेकिन स्विट्जरलैड मे महगाई अपना पैर ज्यादा नही पसार पाई । उन दिनो वहा अधिक आवश्यक वस्तुओ के दाम भी सामान्य थे—दूध आठ आने सेर था, दही बारह आने सेर, आटा एक रुपए सेर और सेब तीन आने का एक था ।

चौदह वर्ष बाद यानी सन १९६४ मे जब मै तीसरी बार वहा गया तो मूल्यो मे पचास प्रतिशत वृद्धि तो अवश्य हो गई थी लेकिन औसत आय के हिसाब से वे मूल्य भारत के मुकाबले बहुत कम थे ।

वहा मजदूरी के काम की इतनी अधिक गुजाइश है कि पडोस के देशो से भी लोग आकर मजे मे जीविकोपार्जन करते है । इटली और ग्रीस के लोग काफी सख्या मे आते है । कही कही तो भारतीय डाक्टर भी बसे हुए है । उनकी प्रैक्टिस भी अच्छी चलती है ।

एक स्विस परिवार मे आम तौर से चार व्यक्ति होते है । प्रति व्यक्ति हजारबारह सौ रुपये मासिक आय के हिसाब से पूरे परिवार की औसत आय तीनचार हजार रुपए तक बेठती है । हमारे देश जैसी आर्थिक असमानता भी वहा नही दिखाई देती है कि एक ओर तो असख्य परिवारो को एक वक्त खाना भी मुअस्सर नही और दूसरी ओर ऐसे लोग भी है जिनकी मासिक आय कई लाख रुपए तक पहुचती है । सपन्न से सपन्न स्विस परिवार की मासिक आय, आयकर देने के बाद, पचीस तीस हजार रुपए से अधिक नही बैठती । यही वजह है कि अधिक असमानता न होने के कारण जनजीवन मे विषमता नही दिखाई पडती ।

उनका आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोण भी इतना स्पष्ट और स्वस्थ है कि आज वे साम्यवाद को खुली चुनौती दे रहे है । उनका मत है कि राष्ट्र की उन्नति के लिए यह आवश्यक नही कि व्यक्ति के श्रम का जबरन राष्ट्रीयकरण करके उसे मनुष्य से मशीन का पुरजा बना दिया जाए । स्विट्जरलैड के सारे उद्योगधधे गैर सरकारी क्षेत्र मे है । केवल डाकतार, टेलीफोन और रेलवे सरकारी क्षेत्र मे है ।

उन्होने इसी तरह अपनी राजनीतिक समस्या भी हल कर ली है । सारा देश २२ छोटेछोटे कैटनो (स्वतत्र राज्य सरकारो) का एक सघ है । प्रत्येक कैटन स्वतत्र है । उसके अपने अलग नियम और कानून बने हुए है । ये कैटन कभी भी एकदूसरे के मामलो मे हस्तक्षेप

नही करते । यहा तक कि केंद्र भी इनके मामलो मे दखल नही देता ।

स्विट्जरलैड की सीमा जर्मनी, फ्रास और इटली से मिली हुई है । इन देशो के लोग सदियो पहले वहा जाकर बस गए थे । इसलिए वहा आज भी इन तीनो देशो की भाषाए बोली जाती हैं । इन तीनो राष्ट्रो मे अनेक बार भयानक युद्ध हो चुके है, रक्तपात हो चुका है पर स्विस राष्ट्रीयता के सगम पर जर्मन, फ्रेच और इतालियन सास्कृतिक धाराए अपना वैमनस्य भुलाकर त्रिवेणी बन गई है ।

उत्तरपूर्व मे जर्मनभाषी, पश्चिम मे फ्रेंचभाषी और दक्षिण मे इतालियनभाषी स्विस नागरिको के शरीर मे जर्मन, फ्रेच और इतालियन पूर्वजो का रक्त भले ही बहता हो, अपने व्यक्तिगत जीवन मे उनको अपनी भाषा और सस्कृति पर कितना ही नाज क्यो न हो, लेकिन राष्ट्र का सवाल उठने पर वे सभी एक हो जाते है । वे केवल इतना जानते हैं कि वे स्विस है और स्विट्जरलैड उनका अपना देश है । काश, हम भारतीयो मे भी यह भावना इतनी गहरी होती ।

स्विट्जरलैड मे जहा भी जाइए, सभी जगह कर्त्तव्य और नैतिकता की भावना दिखाई पडती है । लोग शातिप्रिय है । 'जियो और जीने दो', के सिद्धात का प्रभाव उनके जीवन और उनकी विचारधारा मे स्पष्ट झलकता है । चोरी और उचक्केपन का कही नाम नही है । पेरिस और काहिरा की तरह वहा परदेसियो, बच्चे, बूढो और स्त्रियो के ठगे जाने का भय भी नही है । पुलिस का काम शाति बनाए रखना और लोगो की सहायता करना है । विदेशियो के निरतर आवागमन के कारण उनकी सहायता के लिए पुलिस विभाग का रहना जरूरी है ।

मैंने इसका प्रत्यक्ष अनुभव भी किया है । एक बार मेरा पासपोर्ट खो गया था । चित्त उदास और परेशान था क्योकि उसके बिना विदेशो मे बडी कठिनाइया उठानी पडती हैं । पासपोर्ट के साथ ही कुछ रुपए और कुछ जरूरी कागजात भी थे । चिंता मे था, लेकिन दूसरे दिन सुबह की डाक से पासपोर्ट आ पहुचा । सारे कागजात और रुपए ज्यो के त्यो थे । दूसरा कोई देश होता तो कागजात और पासपोर्ट भले ही मिल जाते पर रुपए शायद ही मिलते । दरअसल जिन सज्जन को वह पासपोर्ट मिला था, उन्होने भारतीय नाम देख कर उसे एयर इडिया के जेनेवा कार्यालय को भेज दिया और वहा से मेरे पास भेज दिया गया ।

मै एक बार जेनेवा के एक कैफे मे खूटी पर फैल्ट हैट लटका कर टेबल पर चला गया था । काफी पीकर पैसे चुकाने के बाद जब चलने लगा तो देखा हैट नदारद । आश्चर्य तो हुआ, पर चुपचाप अपने होटल लौट आया। दूसरे दिन जब फिर पहुचा तो देखा हैट उसी खूटी पर ज्यो का त्यों टगा था और साथ मे एक पुर्जा था —'भूल के लिए खेद है ।'

स्विस लोगो मे अनुचित लाभ उठाने की प्रवृति भी नही दिखाई दी । इसका भी मुझे प्रत्यक्ष अनुभव है । मेरे छोटे भाई तपेदिक की चिकित्सा के लिए लेजा मे रहते थे । लेजा पहाडी पर बसा हुआ एक छोटा सा कस्बा है और अपनी खास जलवायु के कारण तपेदिक की चिकित्सा के एक केन्द्र के रूप मे भी प्रसिद्ध है । वही भाई की चिकित्सा के सिलसिले में मुझे विश्वविख्यात चिकित्सक और शल्यशास्त्री डाक्टर जेनेर से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्हाने मेरे भाई का आपरेशन किया। यद्यपि आपरेशन काफी बडा था, लेकिन पारिश्रमिक के रूप मे उन्होने केवल बारह सौ रुपए ही लिए । वे आपरेशन के बाद भी १५ दिन तक प्रति दिन जाकर रोगी को देख आते थे । उसकी अलग से कोई फीस उन्होने नही ली । सहज ही मेरा ध्यान अपने गरीब देश के चिकित्सको की बढी हुई फीस की ओर चला गया ।

स्विट्जरलैंड सदा से शातिप्रिय और निरपेक्ष राष्ट्र रहा है । उस के सीमावर्ती देश सदियो से आपस मे लडतेझगडते और मारपीट करते रहे है, पर उस ने स्वय कभी किसी का पक्ष नहीं लिया । जर्मनी, इटली और फ्रास जैसे शक्तिशाली राष्ट्र यदि चाहते तो दो महायुद्धो के दौरान कभी भी अपने इस छोटे से पडोसी को कुचल सकते थे, पर उन को भी इस की

निरपेक्षता का लिहाज करना पडा। उन्होंने एक ऐसे राष्ट्र की आवश्यकता महसूस की जहा बैठ कर वे समझौते की बातचीत कर सके। ऐसी स्थितियो मे स्विट्जरलैंड ने सदेशवाहक का काम कर के विपक्षियो को एकदूसरे के निकट आने का अवसर दिया। इस के अतिरिक्त, जब युद्ध से जर्जर यूरोप के नागरिक अन्नवस्त्र के अभाव मे त्राहित्राहि करने लगे, तब इस छोटे मे राष्ट्र ने उन को अन्नवस्त्र दिया और असहाय तथा अनाथ बच्चो का पालनपोषण भी किया।

इस छोटे से राष्ट्र ने सेना का सगठन अपनी शातिप्रिय नीति के अनुकूल ही किया है। स्विसवासी न तो किसी दूसरे देश पर अधिकार करने की इच्छा रखते है। और न ही किसी दूसरे राष्ट्र का अधिकार अपनी धरती पर सहन करने को तैयार है। उन का समूचा सैनिक सगठन सुरक्षा की दृष्टि से ही किया गया है।

१६ वर्ष से ऊपर के प्रत्येक स्विस नागरिक के लिए चार महीने की सैनिक शिक्षा अनिवार्य है। इस के अतिरिक्त उन को अभ्यास के लिए प्रति वर्ष एक निश्चित अवधि तक सैनिक दस्तो मे रहना पडता है। इस प्रकार प्रत्येक नागरिक एक समर्थ सैनिक भी होता है। आवश्यकता पडने पर स्विस सेना बात की बात मे आधुनिकतम अस्त्रो से लैस हो कर मातृभूमि की रक्षा के लिए डट सकती है, लेकिन स्विस सरकार एक विशाल सेना रखने के व्यय भार से हमेशा ही मुक्त रहती है। राष्ट्र का धन सेना और अस्त्रशस्त्रो पर खर्च न कर के अन्य उपयोगी तथा उत्पादन कार्यों मे लगाया जाता है।

स्विस लोगो का घरेलू जीवन भी यूरोप के अन्य देशो से थोडा भिन्न है। उन मे फ्रास के लोगों जैसी स्वच्छंदता नही। उन की बातचीत, व्यवहार और काम के तरीको मे एक सयमित गति रहती है। जीवन मे स्वतंत्रता है, पर पेरिस और वेनिस जैसी नही। स्वच्छन्दता का अर्थ यह नही कि वह नैतिकता की सीमा पार कर जाए। स्विट्जरलैड मे जहा भी किसी स्त्री या पुरुष ने सीमारेखा को पार किया, वही वह लोगों की निगाह से गिर जाता है। वहा समाज मे स्त्रियो का दरजा बहुत कुछ भारत जैसा है। हा, हमारे यहा स्त्रियो को मताधिकार प्राप्त है और वे राजनीति मे भी दखल रखती है लेकिन स्विस स्त्रियो इन दोनो अधिकारो से वचित हैं।

स्विस लोगो को देशविदेश के पर्यटको से करोडो रुपए की आमदनी होती है। ससार के सभी देशो से लाखो की सख्या मे पर्यटक यहा आ कर प्रकृति की अनुपम छटा देख कर व्यस्त और थके हुए जीवन से कुछ समय के लिए छुटकारा पाते है। इन पर्यटको का आदरसत्कार भी एक बडा अच्छा व्यवसाय हो गया है, जिस मे जनसख्या का काफी बडा भाग लगा हुआ है। स्विस लोगो ने अपने अन्य धधों की भाति इसे भी एक सुव्यवस्थित रूप दे दिया है।

सभी रमणीय स्थानो मे गाइड और होटल मौजूद है। उन के कारण पर्यटकों को यह नही लगता कि वे किसी अपरिचित और अनजान देश मे आ गए है। सभी जगह स्वाभाविक मुसकान के साथ उन का स्वागत किया जाता है। वे अपनी जेब के मुताबिक होटल चुन सकते हैं। १० से ७० रुपए प्रति दिन तक के होटल मिलते है। इस किराए मे रहने के साथसाथ सुबह का नाश्ता भी शामिल रहता है।

सरकार भी पर्यटको के लिए हर प्रकार की सुविधाए जुटाती है। प्रत्येक स्टेशन पर स्टेट बूफे हैं, जहा सस्ते दामो मे अच्छा भोजन मिल जाता है। रेलवे की ओर से भी सस्ते दर पर पद्रह दिन तक इच्छानुसार यात्रा के टिकट मिलते है, जिन्हे ले कर आप कही भी जा सकते हैं।

यो तो स्विट्जरलैड के सभी शहरो और कस्बो को स्विस जनता ने आकर्षक ढग से सजायासवारा है, उन की सफाई का पूरा खयाल रखा है, लेकिन मुझे जेनेवा, बर्न बेजल ज्यूरिख और ल्यूजर्न विशेष सुदर लगे।

जेनेवा अपने ही नाम की झील के दक्षिणी किनारे पर बसा हुआ है। शहर की आबादी तो डेढ लाख ही है, पर इस का महत्त्व अतरराष्ट्रीय है। प्रथम महायुद्ध के वाद 'लीग आफ नेशस' का प्रधान कार्यालय यही स्थित था। आज भी ससार की वडीबडी राजनीतिक समस्याए हल करने के लिए विभिन्न राष्ट्रो के प्रतिनिधि और राजदूत यहा अधिवेशनो और सम्मेलनो मे एक साथ बैठ कर विचार करते है। ऐसे अधिवेशनो से ससार मे स्विट्जरलैड का यश बढ़ता है और उसे अच्छाखासा आर्थिक लाभ भी होता है।

बर्न के भारतीय दूतावास मे मै ने अपने देश के प्रमुख नेताओ के चित्र देखे। यूरोप मे काफी लबे अरसे के वाद मुझे यही के वातावरण मे अपने देश की सहज आत्मीयता मिली। दूतावास यहा मे एक वुलेटिन के रूपमे भारतीय समाचार प्रकाशित करता है। स्विट्जरलैड की राजधानी होने के अलावा वर्न एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर भी है।

वेजल उत्तरपश्चिमी कोने पर बसा हुआ है और व्यापार की दृष्टि से राइन नदी का प्रमुख वदरगाह और व्यापारिक केद्र है। अतरराष्ट्रीय लेनदेन के कारोबार मे यह अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। स्विट्जरलैड के रासायनिक उत्पादनो के मामले में यह सबसे बढाचढा है। विश्व प्रसिद्ध औषधि निर्माता सीवा कम्पनी का कारखाना यही है। बेजल मे ही ससार की प्रसिद्ध आयात-निर्यात कपनियो के कार्यालय है। यहा प्रति वर्ष अप्रैल मे एक औद्योगिक प्रदर्शनी आयोजित की जाती है जिस मे ससार के विभिन्न देशो से लाखो ग्राहक पहुचते है।

ज्यूरिख यहा का सब से वडा शहर है। इस की आबादी लगभग चार लाख है। इसकी गणना विश्व के सव मे सुदर और वडे शहरो मे की जाती है। यह ससार भर मे घडियो और मशीनो के निर्माण का एक प्रमुख केद्र माना जाता है। सभी कल कारखाने प्राय बिजली से चलाए जाते है। इसी लिए ज्यूरिख के आसपास कलकारखानो की भरमार होते हुए भी गर्द और धुए का नाम नही है। उन की वनावट भी स्कूलो जैसी है। इस शहर की एक विशेषता यह है कि अन्य शहरो की भाति यहा लोग रात मे काफी देर एक क्लबो और रेस्टोरेटो मे नही रहते। सारा वातावरण रात के १२ बजे तक शात हो जाता है।

इस के आसपास प्राकृतिक दृश्यो का भी काफी आकर्षण है। पहाडिया, झीले और वन बरबस ही आकर्षित कर लेते है। ज्यूरिख यो भी झील के किनारे वसा हुआ है और फिर शहर के बीचोबीच लिम्मत नदी की धारा इस की छटा को और भी कई गुनी वढा देती है। विश्वप्रसिद्ध होटल दोल देयर यही पर है। इस होटल मे प्रायः अमरीकन और भारतीय ही ठहरते है।

छोटे कस्वो मे मोत्रो, भेभे, लूजा, न्यू सेटल आदि बडे ही सुदर कस्बे है। लूजा और न्यू सेटल विद्या के केद्र भी है। यहा विदेशो से हजारो छात्र पढनेलिखने के लिए आते है।

●

जहां असंभव भी संभव हो गया

हालैंड

राम ने समुद्र को मानव के पराक्रम और पौरुप की एक सीमा के रूप मे स्वीकार नही किया था। रामेश्वरम् का पुल इस का साक्षी है। यह बात त्रेता युग की है और एक किंवदंती मालूम पडती है। लेकिन चौकिए नही! इस ससार मे एक ऐसा देश भी मौजूद है जिस ने महासागर को अपने पराक्रम की सीमा मानने पर विवश कर दिया है। उस ने महासागर को बाधा ही नही, उसे मीलो पीछे धकेल दिया है, उस से अपने उपयोग के लिए लाखो एकड भूमि छीन ली है और अपनी लगातार मेहनत के बल पर उसे उपजाऊ बना लिया है। इसी लिए इस सवध मे एक कहावत प्रसिद्ध है विश्व को परमात्मा ने बनाया लेकिन हालेड को डचो ने।

हालैड समुद्र से नीचा है, इसलिए उसे नीदरलैड यानी निचली भूमि वाला प्रदेश भी कहा जाता है। हालैडवासी डच कहलाते है।

महाभारत मे एक कथा है कि किसी नगर के समीप एक दानव रहता था। उस की भूख मिटाने के लिए नगर के परिवारो को बारीबारी से प्रति दिन एक व्यक्ति भेजना पडता था। हालैडवासियो कोभीअपनेपडोसी दानव समुद्र से जूझने के लिए लगातार ८०० वर्षो तक अपने हर परिवार से सवल स्त्रीपुरुषो को हाथो मे बेलचे थमा कर निश्चित समय के लिए मौत और जिंदगी की लडाई पर बारीबारी से भेजना पडता था। अत मे वे विजयी हुए।

लेकिन हमेशा से पराक्रमी समुद्र भला इतनी जल्दी अपनी हार क्यो मानता! एक बारतो वह क्रोध से कापता हुआ, प्रलयकारी गर्जनतर्जन करता हूआ बाध तोड कर आगे बढ गया। सारा का सारा हालैड जलमग्न हो गया था। चारो तरफ विनाश ही विनाश दिखाई देने लगा था। धनजन की इतनी क्षति हुई कि अनुमान लगाना सभव नही।

यह घटना आज से लगभग ५०० वर्ष पहले की है। तब न आज जैसे साधन थे और न सुविधाए उपलब्ध थी। केवल कुछ पनचक्कियो द्वारा अथाह जलराशि को उलीचना तो टिटहरी का समुद्र सोखने का प्रयास जैसा ही था। उस आपत्तिकाल मे पडोसी राष्ट्रो ने अन्नवस्त्र आदि से हालैड को सहायता तो दी पर ताने भी कम नही दिए, 'चले थे कुदरत को बदलने! अरे, भला कभी समुद्र को भी बाधा जा सकता है!'

हालैडवासियो के क्षोभ का अत नही था। लेकिन संकट के समय वे हिम्मत न हारे और अपने पुरुपार्थ द्वारा उन तीखे व्यग्य वचनो का करारा जवाब-देने को कटिबद्ध हो गए। सारे

देश मे समुद्र के खिलाफ युद्ध पर जुट जाने का ढिंढोरा पिटवा दिया गया। बचे हुए बच्चे, नौजवान, बूढ़े और युवतिया सभी ने मिल कर दृढ प्रतिज्ञा की—कार्यं वा साधयामि, शरीर वा पातयामि अर्थात या तो समुद्र बाध कर रहेगे या मौत का आलिंगन करेगे।

सदियो तक हालैडवासियो का एकमात्र लक्ष्य समुद्र पर विजय प्राप्त करना ही था। दिनरात के अथक परिश्रम तथा अनेक बलिदानो के बाद एक दिन उन की मनोकामना पूरी भी हुई। उन्होने अपनी खोई हुई जमीन को समुद्र से छीन कर एक बडा ही सुदृढ बाध (डाइक) का निर्माण किया, जिस का कुछ हिस्सा आज भी मौजूद है।

इस अभूतपूर्व विजय ने हालैडवासियो को ससार के दूसरे राष्ट्रो की नजरों मे बहुत ऊचा उठा दिया और वे स्वय भी अपनेआप को पराक्रमी, सहनशील और धैर्यवान अनुभव करने लगे। इन सैकडो वर्षो के युद्ध मे वे समुद्र के स्वभाव को इतनी अच्छी तरह पहचान गए कि उन की नौकाए बिना रोकटोक विश्व के कोनेकोने की यात्रा करने लगीं। उन की गणना प्रथम कोटि के नाविको मे होने लगी।

उस समय ब्रिटेन की नौशक्ति काफी बढीचढी थी। भला डचो को इस क्षेत्र मे बढते हुए वे कैसे देख सकते थे? एक दिन अकारण ही उन्होने इस गरीब थके हुए देश पर धावा बोल दिया। परतु जिस वीर जाति ने समुद्र के छक्के छुडा दिये थे वह मनुष्यो से कहा हार मानने वाली थी? उन्होने अतिम सास तक शत्रुओ का वीरता के साथ मुकाबला किया। नतीजा यह हुआ कि सन १६७४ ई० मे अगरेजो को सधि करने पर बाध्य होना पडा।

अठारहवी सदी के अत मे नेपोलियन बोनापार्ट की आधी सारे यूरोप पर छा गई थी। दूसरे देशो की तरह, छोटे से हालैड को भी उस के सामने घुटने टेक देने पडे थे, पर कुछ वर्षो बाद ही वह पुन स्वतत्र हो गया।

स्वाधीनता की इस नवीन अवधि के १५० वर्षो मे डचो ने अपने देश को हर तरह उन्नत बनाया। बडेबडे जहाज बनाने के कारखाने खुल गए, बिजली के सामानों, मशीनो और रेडियो का तो यह प्रमुख निर्माता बन गया। हेग मे विश्व का उच्चतम न्यायालय स्थापित हुआ। एमस्टर्डम दुनिया के बहुमूल्य हीरो के क्रयविक्रय का प्रमुख केद्र बना और रोटरडम लदन के बाद यूरोप का सब से बडा बदरगाह।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, डच कष्ट सहने के अभ्यासी होते है, पर वे बडे सैलानी, कलाप्रेमी, खानेपीने के शौकीन और फूलो के अनुरागी भी कम नही होते। प्रत्येक घर मे फूलो का एक छोटा सा बगीचा और कुछ हाथ की बनी तस्वीरे मिलेगी, चे चाहे वे सुप्रसिद्ध चित्रकारो की हो अथवा उन की स्वय की बनाई हुई।

वहा वर्ष मे कई बार फूलो की प्रदर्शनिया होती है, जिन में अच्छे फूलो पर इनाम दिए जाते है। इस तरह हालैड को फूलो के व्यापार से भी बडी आमदनी हो जाती है। प्रदर्शनी मे आए हुए फूलो के पौधो मे से किसीकिसी के तो बीस हजार रुपयो तक दाम लग जाते है।

हालैड और डेनमार्क मे साइकिलो का प्रचलन है। छुट्टी के दिन यदि हल्की सी धूप निकल आती है तो हजारो की सख्या मे वे लोग बालबच्चो के साथ साइकिलो पर सवार हो कर दूर समुद्र तट या डाइक पर सैर के लिए चले जाते हैं। एक साइकिल पर पतिपत्नी और दो बच्चो का बैठना तो साधारण बात है। इस दृश्य का अदाज नई दिल्ली की उन सडको से लगाया जा सकता है जहा दफ्तरो की छुट्टी के समय सडक अनगिनत साइकिल सवारो से भर जाती है।

हालैड मे गोपालन भी एक मुख्य धधा है। एकएक गाय से प्रति दिन मन सवामन दूध पाना तो साधारण बात है। वहा की गाये हमारे यहा की भैसो से भी बडी होती है। दक्षिण व उत्तरी अमरीका वाले अच्छी नस्ल के बछडे पैदा करने के लिए यहा से एकएक साड

पचासपचास हजार रुपयों तक मूल्य दे कर खरीदते है। अपने यहा पिलानी (राजस्थान) मे भी हालैंड का साड है जिस से उत्पन्न गायो के ४५ पौड तक दूध प्रति दिन होता है।

यहा खेलकूद भी जीवन का प्रमुख अग है।वैसे तो सभी तरह के खेल होते हे, परतु शीतकाल मे जब नहरे जम जाती हैं, तब बर्फ पर स्की का खेल शुरू हो जाता है। इसी तरह गरमी मे इन्ही नहरो मे नावो की दौड और तैरने की प्रतियोगिताए भी होती रहती है।

हालैड के सभी शहर समुद्र के किनारे पर बसे हुए है। इसलिए यहा समुद्रस्नान और तैरना जीवन का आवश्यक अग हो गया है। हर जगह स्नान की उचित व्यवस्था है। अन्य यूरोपीय देशो की तरह यहा हजारो की सख्या मे लोग समुद्रस्नान करते रहते है, परतु यहा वेनिस और मोतेकार्लो की तरह स्त्रीपुरुषों को अर्द्धनग्नावस्था मे नही देखा जा सकता। जनजीवन सुखी प्रतीत होता है, क्योकि वस्तुओ के मूल्य, अन्य यूरोपीय देशो की अपेक्षा कम हैं। खास कर दूध, दही, पनीर, मक्खन और फल बहुत ही सस्ते है।

इस छोटे से देश मे २५० सग्रहालय (म्यूजियम) है, जिन मे से हेग, एमस्टर्डम और रोटरडम के सग्रहालय तो विश्वविख्यात है।

यद्यपि इगलैड की तरह हालैड भी एक साम्राज्यवादी देश है, पर दोनो के वर्तमान शासको के सहनसहन और शानशौकत मे बहुत बडा अतर है। ब्रिटेन की महारानी का निजी खर्च प्रति वर्ष लाखो रुपए होता है, जब कि हालैड की महारानी जुलियाना बहुत ही साधारण ढग से अपने पति और बच्चो के साथ हेग के एक देहाती अचल मे रहती हे। उन की तीन लडकिया पब्लिक स्कूल मे आम बच्चो के साथ ही पढती है।

मैं सर्वप्रथम एटसर्व से ट्रेन द्वारा रोटरडम गया। रास्ते मे एक सीमा चौकी पर पासपोर्ट की जाच की गई। हमारे देश की चोकियो की तरह यहा मालअसवाव उलटपलट और अव्यवस्थित नही किया गया और न वस्त्र खुलवा कर तलाशी ही ली गई।इस का कारण यह है कि इन देशो के आपसी सबध अच्छे हैं और लोगो का नैतिक स्तर भी ऊचा है। यहा पूर्वी देशो जैसा तस्कर व्यापार नही होता।

रोटरडम की आबादी करीब दस लाख है। द्वितीय महायुद्ध मे जर्मनो ने बमवारी से कुछ दिनो मे ही इस के दस हजार मकान और तेरह सौ कारखाने नष्ट कर दिए थे। इस से जो हानि हुई उस का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। तेजी से रोटरडम का पुनर्निर्माण हुआ और थोडे समय मे ही वह पहले से अधिक सुदर और समृद्ध बन गया। यह डचो के परपरागत मेहनती होने का सबूत है।

समुद्र के किनारे, राइन तथा माज नदियो के मुहाने पर स्थित होने के कारण, रोटरडम विश्व के सर्वोत्तम बदरगाहो मे गिना जाता है। उत्तरी जर्मनी और स्विट्जरलैड के आयातनिर्यात के लिए यह एक बडा बदरगाह है, और इसे भी उन देशो के विकास का लाभ मिल रहा है।

रोटरडम बदरगाह के गोदामो मे आठ करोड मन माल रखने की जगह है। प्रति दिन यहा तीस लाख मन माल चढाया और उतारा जाता है। इस काम के लिए ३५० छोटीबडी मशीने लगी हुई है। बदरगाह के अनुरूप ही, यहा विशाल रेलवे स्टेशन है, जहा केवल मालअसबाब उतारनेचढाने के लिए साइडिग की लबाई १२५ मील है।

दर्शनीय इमारतो मे प्रथम स्थान यहा के नवनिर्मित वाणिज्य भवन का है, जिस के निर्माण मे पाच करोड रुपए खर्च हुए है। उस मे सब प्रकार के व्यावसायिक और औद्योगिक कार्यालय है। साथ मे माल रखने के गोदाम भी है। इस से आपसी विनिमय मे समय, शक्ति और व्यय तीनो की बचत हो जाती है। अगर भारत के कलकत्ता, बबई और मद्रास आदि बडेबडे औद्योगिक केद्रो मे भी इसी तरह के वाणिज्यभवनो का निर्माण हो जाए, तो लोगो के

श्रम की बडी बचत हो और कितनी ही अनावश्यक कठिनाइया दूर हो जाएं।

अन्य दर्शनीय स्थानो मे, यहा नदी के नीचे बनाई हुई सुरग की सडक भी है। पहले इस नदी के ऊपर बने हुए पुल द्वारा आवागमन होता था, परतु ज्योज्यो रोटरडम का महत्व बढ़ता गया, उन्हे इस सुरग की अधिकाधिक आवश्यकता महसूस होती गई।

रोटरडम से ट्रेन द्वारा शाम को विश्वविख्यात नगर व हालैड की राजधानी हेग पहुचा। हेग न केवल हालैड की राजधानी है, बल्कि यहा विश्व का उच्चतम न्यायालय भी है, जिस के अधिवेशन ससार के प्रसिद्ध पीस पैलेस (शाति भवन) मे होते है। सर्वप्रथम इस भवन के निर्माण के लिए सन १९०० ई० मे अमरीका के उदार, मानवता प्रेमी अरबपति एड्रयू कारनेगी ने ६० लाख रुपए दिए थे। उस के बाद अन्य देशो ने भी इसे बनाने में काफी सहयोग दिया था। सन १९१३ ई० मे यह भव्य भवन बन कर तैयार हो गया था। इस मे अतरराष्ट्रीय न्यायालय के अलावा कानूनी पुस्तको का भी विशाल सग्रह है।

सुदरता व भव्यता की दृष्टि से हेग मुझे यूरोप के अन्य सभी नगरो से अधिक आकर्षक और मनोरम प्रतीत हुआ। डचो को अपने इस नगर पर नाज है। वे उसे यूरोप का सब से सुदर नगर कहते है। यहा विश्व की विविध समस्याओ के समाधान के लिए वर्ष मे पचासो सम्मेलन होते रहते है, जिन मे सम्मिलित होने के लिए ससार के विभिन्न भागो से हजारो की सख्या मे बडेबडे राजनीतिज्ञ और विधिवेत्ता आते है। इस से हालैंड को राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के साथसाथ विदेशी मुद्रा भी कम नही प्राप्त होती।

हेग के सेवेननिगेम समुद्रतट की स्मृति मेरे मन मे आज भी ताजी है। यह यूरोप के प्रसिद्ध समुद्री तटो मे से एक है। मीलो तक पक्की सडक है। एक तरफ बडेबडे होटलो की कतारें है, दूसरी तरफ समुद्री रेत पर नहाने वालो के लिए काठ के छोटेछोटे केबिन बने हुए है।

काफी घूमने व देखने के बाद थकावट महसूस हुई और भूख भी जोरो से लग आई। इसलिए निकट के 'विक्टोरिया' नामक होटल मे पहुचा। इस का विशाल और सुसज्जित डाइनिग हाल देख कर मैं दग रह गया। फर्श पर कीमती कालीन बिछे हुए थे और ऊपर वेनिस के बिल्लौरी काच के बडेबडे फानूस लटक रहे थे। इस होटल की गणना यूरोप के सर्वश्रेष्ठ होटलो मे है। कहते है कि महारानी विक्टोरिया भी कभीकभी राजकाज से अवकाश निकाल कर यहा आ कर ठहरती थी।

परिचारिका को मै ने दूध, मक्खन और रोटी लाने के लिए कहा। यूरोप के इन उत्तरी देशो मे चाय और काफी की अपेक्षा दूध बहुत ही सस्ता है। यहा एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि इन देशो मे दूध के लिए केवल गाय का ही उपयोग होता है, भैसो या बकरियो का नही।

मेरी मेज पर पहली बार जितनी खाद्यसामग्री आई, उस से क्षुधा शात नही हुई तो परिचारिका को बुला कर एक बार और लाने को कहा। यूरोप के इन बडेबडे होटलो मे जो परिचारिकाए रखी जाती है, वे बहुत ही स्वस्थ और सुदर युवतिया होती है। स्त्रियो मे मातृभावना प्राय सर्वत्र समान रूप से मिलती है, चाहे वे किसी भी आयु अथवा देश की क्यो न हो।

परिचारिका ने मुझे एक ग्राहक मात्र ही न समझ कर विदेशी अतिथि के रूप मे देखा और दूसरी बार बहुत सा मक्खन, रोटी और दूध ले आई। खा-पी कर तृप्त होने के बाद बिल आया तो केवल सवा चार रुपए का। इतनी ही सामग्री का बबई, कलकत्ता या नई दिल्ली के होटलो मे पाचछ रुपयो से कम नही लगता। हालैड के इस होटल की खाद्यसामग्री से अपने यहा के होटलो की कोई तुलना ही नही हो सकती।

हेग और सेवेननिगेम के बीच मे छोटे बच्चो के लिए मदुरोडेम नाम का एक बौना आदर्श

शहर बसा हुआ है। इस का क्षेत्रफल तो कुल साढे चार एकड है, परतु इतनी सी जगह मे ट्रेन, बस एयरपोर्ट, होटल, मकान, कारखाने, बाजार, रेस्तरा, टाउनहाल आदि सभी कुछ हैं। इस के निर्माण का भी अपना एक अनोखा इतिहास है। हालैड के एक धनी व्यापारी का किशोर पुत्र युद्धकाल मे जर्मनो की कैद मे भीषण यातनाओ से मार डाला गया था। उसी की यादगार मे बच्चो का यह शहर बसाया गया है। इस आधुनिक लिलिपुटियन शहर (बौने नगर) को देखने के लिए लाखो की सख्या मे यात्री आते है जिन से साधारण शुल्क लिया जाता है और वह सारी निधि टी० बी० सेनीटोरियम को दे दी जाती है। इस प्रकार लोगो के मनोरजन के साथ एक उपयोगी सस्था के सचालन मे भी बडी सहायता मिल जाती है।

ऊपर हम उल्लेख कर आए है कि डच फूलो के बडे शोकीन होते है। उन्होने सुदर तरीके से इस शौक को देश की आमदनी का भी एक जरिया बना दिया है। कोकनहाफ शहर मे सिर्फ फूलो के ही बाग है, जहा सैकडो तरह से प्रयोग और परीक्षण उन पर होते रहते है।

विभिन्न नस्लो के पशुओ की मिश्रित जातिया जेसे तैयार की जाती है वेसे ही भिन्नभिन्न जाति के पौधो की कलमो के चश्मे चढा कर नाना प्रकार के रगो और आकृतियो के फूल उपजाए जाते है, जिन्हे देखने के लिए विदेशो से लाखो की सख्या मे यात्री आतेजाते रहते है। कोकनहाफ के समीप ही आल्ससीर नामक शहर मे इन फूलो का नीलाम प्रति सप्ताह होता है। इस शहर का अस्तित्व ही यदि फूलो के इस व्यापार पर आधारित कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नही होगी। फूलो के निर्यात से हालैड को बीस करोड रुपए की वार्षिक आमदनी हो जाती है।

एमस्टर्डम हालैड की व्यापारिक राजधानी तथा सब से बडा शहर है। ५०० वर्ष पहले जहा दलदली जमीन और छिछले पानी का जमाव था, वहा डचो ने इतना सुदर और विशाल नगर बना लिया है कि इस को यूरोप का दूसरा वेनिस कहा जाता है। स्वच्छता, मकानो की सुदरता और सडको की चौडाई मे तो यह वेनिस से भी बढाचढा है। वेनिस को यदि हम भारत का वाराणसी कहे, तो इसे सहज ही बगलौर की उपमा दी जा सकती है।

नौ बजे ही जलपान से निवृत्त हो कर शहर देखने निकला। होटल के सामने की नहर में एक मोटर बोट खडा देखा, जिस मे लोग सवार हो रहे थे। मैं ने समझा कि यह भी कोई किराए का बोट है, अत मै भी उस मे जा सवार हुआ। कोई पदरह मिनट बाद करीब ५० यात्रियो को ले कर बोट कई नहरो से गुजरता हुआ खुले समुद्र मे पहुच गया। मैं ने साथ के यात्रियो से पूछने की चेष्टा भी की कि हम जा कहां रहे है, परतु अगरेजी यूरोप के खासखास होटलो व बडीबडी दुकानो के अलावा और कही काम नही देती। फ्रेंच मैं जानता नही था। लाचार हो कर चुपचाप बैठा रहा।

कुछ देर बाद मोटर बोट अथाह जलराशि के बीच एक टापू के पास जा कर रुका। वहा एक जहाज बनाने का बडा कारखाना था। सब यात्री बोट से उतर पडे, केवल मैं ही रह गया। समझ मे नही आया कि वास्तविकता क्या है? सकेत की भाषा मे बोट चालको को समझाया कि मुझे तो वापस शहर जाना है, परतु सफलता नही मिली। सौभाग्य से, वही पर कारखाने मे अगरेजी जानने वाला एक कर्मचारी मिल गया। उस ने बताया कि यह बोट तो इस जहाजी कारखाने के कर्मचारियो को शहर से लाने और ले जाने के लिए है, यह इन्हे ले कर शाम को ही वापस लौटेगा।

अब मेरी समझ मे बात आई कि मुझे भी कारखाने मे जाने वाला समझ कर न तो किराया ही मागा गया और न जाने की जगह का नाम ही पूछा गया। बडे असमजस मे पडा। शहर से मीलो दूर, समुद्र के बीच, भूख काफी महसूस हो रही थी। कोई एक घटे बाद सामने से एक बडा बोट आया। सयोग से यह यात्रीबोट था। डेढ़ रुपया दे कर उस से करीब दो बजे

वापस एमस्टर्डम पहुचा । इस के बाद तो यात्री सहायक केंद्र पर जा कर सारी बातो की जानकारी कर ली और वही से शहर का एक नकशा भी ले लिया ।

एमस्टर्डम की एक छोटी सी घटना मैं आज भी नही भूल पाता । एक महिला से मैं ने किसी रास्ते का पता पूछा जो उस ने सकेत से बता दिया । थोडी दूर जाने के बाद पीछे से एक आदमी दौडता हुआ आया और टूटीफूटी अगरेजी मे बताया कि मेरा रास्ता उस तरफ न हो कर दूसरी तरफ से है । वह महिला भी उतनी देर तक वही खडी हुई मेरी तरफ देखती रही । जब मैं सही रास्ते की तरफ मुड गया तब वह अभिवादन कर के लौटी । सभवत जो रास्ता बताया था उस मे भूल हो गई थी और इसी लिए उस ने वह आदमी दौडा कर मुझे परेशानी से बचा लिया । इस घटना से मेरा ध्यान अपने देश के ऐसे लोगो की तरफ चला गया जो अपरिचित राहगीरो को रास्ता पूंछने पर या तो झिडक देंगे या जानबूझ कर गलत रास्ता बता देंगे ।

हालैड मे जा कर यदि जाइडरजी का बाध, सीफोल का हवाई अड्डा न देखा जाए, तो यात्रा अधूरी ही समझी जाएगी । जाइडरजी का बाध १९२० मे बनना शुरू हुआ और १९३२ मे बन कर तैयार हुआ था । यह २७ मील लबा है । एक तरफ अथाह खारा समुद्र है, तो दूसरी तरफ मनुष्य निर्मित मीठे पानी की झीले व हरीभरी कृषि योग्य उपजाऊ जमीन । बाध की दीवार इतनी चौड़ी बनाई गई है कि उस पर एक साथ मोटर, साइकिल, पैदल चलने वालो के लिए अलगअलग सडके है । छुटटी के दिन इस बाध पर हालैड के युवक और युवतियो व बच्चो का मेला लगा रहता है ।

इसी तरह सीफोल के हवाई अड्डे को भी दुनिया का आठवा आश्चर्य कहा जाए तो अनुचित नही होगा । सौ वर्ष पहले जहा समुद्र लहरा रहा था, वहा विश्व का सब सेबडा हवाई अड्डा बन जाना, कम आश्चर्य की बात नही । प्रति दिन सैकडो वायुयान यहा आतेजाते है । उड्डयन के क्षेत्र मे आज भी 'के० एल० एम०' के हवाई जहाज और उन के डच चालक ससार में अपना सानी नही रखते ।

अत मे यहा के विश्व प्रसिद्ध फिलिप्स के कारखाने के बारे मे दो शब्द लिखना अप्रासगिक नही होगा । जहा फिलिप्स का कारखाना है, वहा जमशेदपुर की तरह आइडहोवेन नाम का एक नगर ही बस गया है । पैसठ वर्ष पहले बहुत छोटे पैमाने पर इस कारखाने की नीव पडी थी । आज दुनिया मे उस की पचहत्तर शाखाए है, जिन मे एक लाख से भी अधिक आदमी काम करते है । फिलिप्स के रेडियो, माइक्रोस्कोप एव बिजली के अन्य उपकरणो का वार्षिक उत्पादन करीब दो सौ करोड रुपए के मूल्य का होता है ।

आक्रमणकारियों का शिकार

गिरजों गोंदोलों के बीच

विश्व के नदनकानन मे घूमते समय मन मे विचार उठे कि पेरिस, वर्लिन, मास्को, हेग, लदन आदि यूरोपीय शहरो मे विविधता और वैचित्र्य की कमी नही। सभी यूरोपीय शहरो का अपनाअपना रूप है, अपनीअपनी विशिष्टताएहै। मन पर इन सभी शहरो और देशो की अलगअलग तरह की छापे पडती हैं, अनेकता का पता चलता है। लेकिन इस अनेकता मे एकता का आभास भी स्पष्ट है।

जीवन और उस की मूल समस्याओ के प्रति पश्चिमी देशो के लोगो के दृष्टिकोण, उन की सहज प्रतिक्रियाओं और उन के तौरतरीको मे काफी हद तक समानता है। लगता है कि उन के सस्कारो की बुनियाद एक ही है। पश्चिमी सभ्यता की विभिन्न बेले रोमन और यूनानी सस्कृतियो की मिट्टी और खाद से पनपी और फलीफूली है।

इसी लिए इच्छा हुई कि इटली और यूनान को भी अवश्य देखना चाहिए। उस से पश्चिमी ससार को समझने मे और अधिक सहायता मिलेगी। स्विट्जरलैड से फिर मै रोमन सस्कृति का केद्र इटली देखने उड चला। हमारा विमान अपने पख पसारे आल्प्स की ऊची, बरफानी चोटिया लाघ कर मिलान के हवाई अड्डे पर मडराने लगा। इटली पहुचना आज कितना आसान हो गया है!

अभी पिछली शताब्दी तक तो इटली पहुचने का सब से आसान साधन समुद्री मार्ग ही था क्योकि इस के उत्तर मे हिमालय की तरह आल्प्स् की ऊचीऊची चोटिया खडी है। उन को पार करने मे कई विदेशी आक्राता प्राणो की बलि दे चुके थे। समुद्री मार्ग आसान था। इटली के तीन ओर समुद्र है। मानचित्र देखने से लगता है जैसे वह भूमध्य सागर के जल मे अपने पैर बढ़ाये बैठा हो।

अब विज्ञान ने वायु मार्ग के अतिरिक्त स्थल मार्ग भी सुलभ बना दिया है। आल्प्स् का पेट चीर कर सुरगे बना दी गई है। ससार की सब से लबी बारह मील की सुरग—सिंपलन, के जरिए हम चद ही घटो मे पेरिस से मिलान पहुच जाते है।

मिलान के हवाई अड्डे से अपने पहले से तय किए हुए होटल मे पहुचा। शहर का नक्शा पेरिस से बहुत कुछ मिलताजुलता है लेकिन पेरिस की भव्यता और सजीवता तो उस की अपनी ही है। इस मे मध्य भाग को केद्र बना कर परिधि की तरह दो सडके एकदूसरे के समानातर चली गई है जिन को सीधी सडके आपस मे जोडती है। लगभग सभी बडी सडको पर छायादार वृक्षो की कतारे करीने से लगी हुई है।

मध्य भाग को ऐतिहासिक मिलान कहना ही ठीक रहेगा। यहीं अधिकाश प्राचीन इमारते और भग्नावशेष है। समय की कमी के कारण मैं उन खडहरो के वैभव को सरसरी निगाह से ही देख पाया। फिर भी उन को देखते समय मुझे बारबार यही लगा कि इतिहास ने हमारे देश की तरह यहा भी कई वार करवटे बदली है।

जैसे भारत पर शक, हूण, तुर्क, पठान और मुगलो के आक्रमण गगायमुना की शस्यश्यामला भूमि के कारण होते रहे हैं, उसी तरह इटली के लोबार्डी के हरेभरे मैदानो ने अपने धनवैभव के कारण यूरोप के आक्रमणकारियो को अपनी ओर आकर्षित किया। नुकीले भालो और चमचमाती तलवारो की टक्करे देखने के अनगिनत अवसर दिल्ली की तरह मिलान को भी प्राप्त हुए है।

मिलान उत्तरी इटली का एक प्रमुख धार्मिक केंद्र रहा है। शहर के मध्य भाग मे स्थित प्राचीन गिरजे, सन्यासियो के मठ और संकरी गलिया सदियो की घटनाओ पर प्रकाश डालती हैं। शहर के इस भाग मे वातावरण बिल्कुल बदला हुआ सा मिलता है। कुछ देर के लिए उन मे खो जाना पड़ता है, तब खयाल तक नही आता कि हम २०वी सदी के किसी आधुनिक शहर मे है।

वास्तुकला और विशिष्ट मतो के कारण प्रत्येक गिरजा अपना अलग महत्त्व रखता है। मुझे संत अब्रोजियो का गिरजा तथा ड्यूमा कैथेड्रल बड़े भव्य और आकर्षक लगे। विगत महायुद्ध की विभीषिका के परिणामस्वरूप सत अब्रोजियो के गिरजे को बडी क्षति पहुची है। १६४३ की बमबारी से कई अश ध्वस्त हो गए थे।

इस गिरजे का धार्मिक तथा ऐतिहासिक महत्त्व भी है। इस का निर्माण चौथी शताब्दी में शुरू हुआ था। फिर बारहवी शताब्दी मे इस का पुनर्निर्माण हुआ और कुछ नए अश जोडे गए। इस की वेदी पर अनेक नरेशो को राजमुकुट पहनाया गया है। भित्ति चित्र काफी प्राचीन है। मैं ने सत अब्रोजियो के विविध चित्र देखे जो नवी शताब्दी के आसपास के है। इन से उस काल के रहनसहन, पोशाक और आचारविचार का परिचय मिला है।

ड्यूमा कैथेड्रेल की गणना ससार के विशाल गिरजो मे की जाती है। कहते है कि इस के निर्माण मे लगभग ५०० वर्ष लगे थे। दूसरे महायुद्ध की बमबारी ने इसे भी बहुत हानि पहुचाई। गनीमत है कि यह पूरी तरह से समाप्त हो जाने से बच गया, वरना आने वाली पीढिया विश्व की एक बहुत सुंदर कलाकृति से वंचित रह जाती। मैं ने सुप्रसिद्ध चित्रकार ल्योनार्दो की श्रेष्ठतम कृति 'अतिम भोज' भी यही देखी। सचमुच यह चित्र बेहद आकर्षक है।

चित्र मे महात्मा ईसा अपने शिष्यो के साथ अतिम भोज पर बैठे है। उन्हे दूसरे ही दिन सूली पर चढाया जाने वाला था। भोज मे वह व्यक्ति भी शामिल है जिस ने महात्मा ईसा के साथ विश्वासघात किया था। ल्योनार्दो की तूलिका ने प्रत्येक व्यक्ति के मनोभावो को बड़ी सफाई और खूबसूरती से व्यक्त किया है। महात्मा ईसा के चेहरे पर शाति, दया, क्षमा और सात्त्विकता के भाव स्पष्ट झलकते है। भक्तो की आखो मे श्रद्धा, भक्ति और विश्वास है।

ल्योनार्दो के अलावा विश्व के अन्य बडेबडे चित्रकारो ने भी 'अतिम भोज' को चित्रित करने की कोशिश की, पर वह सूरत, वह सीरत, किसी से न बनी। इस चित्र मे महात्मा ईसा को अतिम उपदेश देते हुए देख कर लगा कि स्वय करुणा की मूर्ति साकार हो।

मैं ने पेरिस पहुच कर लूव्रे मे ल्योनार्दो की 'मोनालिसा' भी देखी। मेरी समझ मे नही आया कि क्यो कला पारखी 'मोनालिसा' को पहला और 'अतिम भोज' को दूसरा स्थान देते हैं।

अन्य दर्शनीय स्थानो मे स्काला थियेटर, आर्क आफ पीस और रायल विला प्रमुख हैं। स्काला अपने परिमार्जित और कलापूर्ण सगीत, नृत्य तथा नाटको के लिए केवल इटली मे ही

नही, सारे विश्व मे अनुकरणीय माना जाता है। शहर मे कई अजायबघर भी है, जहा इतिहास, कला, समाजशास्त्र और धार्मिक महत्त्व के अध्ययन की वहुत सी सामग्री है।

इटली के अन्य शहरो और मिलान मे एक उल्लेखनीय भेद यह है कि यहा के स्थानीय लोग अधिक परिश्रमी और व्यवहारकुशल है। दक्षिणी इटली में कुछ गरम जलवायु होने के कारण लोगो मे परिश्रमशीलता कम देखने मे आई।

मिलान इटली का औद्योगिक और व्यापारिक केद्र है। मैं ने शहर मे शेयर वाजार भी देखा। व्यापारी वडे जोरो से हाथ फटकारते हुए भावताव मे व्यस्त थे। मैं सोचने लगा कि अकेले कलकत्ता और बबई मे ही यह रोग नही, यह तो सारे विश्व मे फैला हुआ है। एक गोलमटोल सज्जन मुसकरा कर अभिवादन करते हुए बोले, 'क्या मैं आप की कुछ सेवा कर सकता हू ?"

मै ने बताया कि यह दृश्य मुझे अपने देश की याद दिलाता है। मैं यहा केवल दर्शक हू, सौदा करने नही आया।

वह हस कर बोले, "सिन्योर, मनुष्य और पैसे का सबध सब देशो मे एक सा है। भेद है तो सिर्फ नाम का।"

हम दोनो हसने लगे।

मिलान के बाद मै वेनिस गया।

वेनिस मिलान से करीव ७० मील पूर्व की ओर एड्रियाटिक सागर के उत्तरी छोर पर वसा है। दरअसल यह शहर कई छोटेछोटे द्वीपो का पुज है। वेनिस की सुदरता के बारे मे बहुत दिनो से सुनता आ रहा था। आखो के सामने देख कर लगा कि इस के लिए जो भी कहा गया है, उस मे कुछ भी गलत नही।

इस की स्थिति सामुद्रिक व्यापार की दृष्टि से वहुत अच्छी है। आधुनिक युग मे यूरोप के बाजार पर लदन का जो नियत्रण है, प्राचीन काल मे वह सौभाग्य वेनिस को प्राप्त था। स्वेज मार्ग बनने पर इस का महत्त्व धीरेधीरे घटता गया। जो भी हो, यह अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण वाणिज्यव्यापार के क्षेत्र मे शुरू से ही आगे रहा है। इन्ही कारणो से यह लगातार समृद्ध होता गया।

यहा के निवासी सुदूर अतीत से पश्चिम और पूर्व के सपर्क मे बरावर रहते आ रहे हैं। यही कारण है कि यहा के कलाकौशल का भी अपना एक अनोखा रूप है जो शेष इटली से भिन्न है। बेलबूटे, कढाईसिलाई और कटाईछटाई का इस का अपना निराला ढग है जो सदा से ही आकर्षक रहा है।

आज भी वेनिस की बनी काच की वस्तुए अपनी नक्काशी और तराशी के कारण दुनिया मे अद्वितीय है। सजावट के लिहाज से यहा के झाडफानूस विश्व के सभी देशो मे वडे लोकप्रिय है। ये सामान यहा लाखो लोगो की रोजी का बहुत अच्छा साधन बन गए है।

वैसे इटली के सभी देशो मे मोलभाव चलते है पर वेनिस के वाजारो के क्रयविक्रय के दृश्य तो देखने ही लायक होते है। यहा यो भी चीजे महगी है, फिर नफीस चीजो का तो कहना ही क्या! यहा विदेशो से आने वाले यात्रियो को फसाने वालो की कमी नही है। मुझे भी एक ऐसा मौका पडा।

चाय का एक सेट खरीदना चाहता था। सन मारको के विश्वप्रसिद्ध बाजार मे गया, एक दुकान पर पहुचा। दाम अनापशनाप। मुह फेर कर लौटने लगा तो दाम तीनचौथाई। दुकान के बाहर पैर रखा कि दाम आधा।

इस चमत्कार से पुराने समय के जयपुर की दुकाने याद आ गई। मै ने जिस दुकान से सेट खरीदा उस ने तो कई गुना दाम बता दिया था। मैं ने भी सोचसमझ कर अपना दाम बताया। पैर बाहर रखा पर सिन्योर कुछ बोले नही। मुझे कुछ आश्चर्य तो हुआ पर इस से अधिक आश्चर्य तब हुआ जब दुकान छोड कर चार कदम आगे बढ गया।

सिन्योर दुकान से उतर आए और एहसान जता कर कहने लगे, "आप विदेशी है, वरना .क्या कहू, आप ने तो कौड़ियो का भाव बताया है।" फिर आसमान की ओर देख और अपनी गोलमटोल आखे नचाते हुए वोले, "क्या कहू, सिन्योर, लोग वेनिस की चीजे विदेश न ले जाए, यह मुझे गवारा नही। चलिए, ले जाइए!"

आखिर इटालियन मुद्रा में कीमत (भारतीय ३७० रुपए) दे कर वह सेट खरीद ही लिया। आज भी जब विशिष्ट अतिथियो को उन कपो मे चाय पिलाता हू तो वे उस की नक्काशी ओर सुनहरे काम की सराहना किए विना नही रहते।

वेनिस शहर की वनावट निराली है। छोटेछोटे द्वीपो पर वसा होने के कारण आज भी यातायात के प्रमुख साधन नावे और मोटरवोटे है। हालाकि पुलो द्वारा द्वीप कहीकही पर जुडे हुए है और इन पुलों पर मोटरें और बसे भी दौडती है। लेकिन फिर भी खासखास रास्ते नहरों के ही है। वास्तुशिल्प की दृष्टि से इटली के अन्य शहरो की तुलना मे यहा विशेष अतर नही। एक वात अवश्य है कि यहा गिरजो के अलावा बहुत-सी ऐसी पुरानी भव्य इमारते भी है जिन्हे मध्य युग मे रईसो या सामतो ने बनवाया था। हा, आज मरम्मत के अभाव मे वे जीर्णशीर्ण पडी है।

वेनिस मे सिनेमाघर, थियेटर, म्यूजियम और आपेरा हाउस भी है। आकर्षण के सभी प्राचीन और आधुनिक साधन वहां उपलब्ध है। लेकिन इतना सब होते हुए भी वहा का विशेष आकर्षण है गोंदोला।

हसिनी की भाति सुदर सजीली इन नौकाओ को वेनिस की नहरो के शात जल मे मस्ती के साथ चलते देख कर सम्मोहित हो जाना स्वाभाविक है।

गोंदोलो मे सजावट के साथसाथ आराम का भी पूरा ध्यान रखा जाता है। इन मे साफ और नरम विस्तरे, शीशे जडे शृगार टेवल, आईने और कामदार परदे लगे होते है। विलास के इन सारे साधनो का आकर्षण सजावट और सफाई के कारण और भी अधिक बढ जाता है।

बनारस के वजरे और काश्मीर के शिकारे गोंदोलों के सामने कुछ नही है, क्योकि इन मे सुख और विलास के उतने साधन नही होते। यही कारण है कि आज मोटरबोट के युग मे भी वेनिस मे गोंदोला मस्ती और शान से झूमता है।

गोंदोला खुद ही वहुत आकर्षक होता है लेकिन उस के प्रति आकर्षित होने का कारण है उस का एकाकी मल्लाह, उस का स्वस्थ और सुगठित शरीर तथा उस का मस्ती भरा प्रेम सगीत। यही कारण है कि ससार के दूरदूर के इलाको से आ कर विलासप्रिय स्त्रिया गोंदोलो में हफ्तो गुजार देती है। मल्लाहो पर धन और तन निछावर करती है। गोंदोला उन के लिए शारीरिक सुख प्राप्त करने का प्रतीक वन गया है।

नहर के किनारे खडा मैं इन्ही वातो पर विचार कर रहा था कि रात ढलने लगी। मै होटल की ओर चल पडा।

सुवह देर से उठा। उस वक्त वेनिस धूप मे नहा रहा था। आज वेनिस से विदाई लेनी थी। सोचा, 'यहा का विश्व प्रसिद्ध समुद्र तट लिडी अवश्य देख लेना चाहिए'। मै ग्राड कैनाल (वडी नहर) से होता हुआ समुद्र तट पर पहुचा।

●

क्या अभी भी विश्व की सारी सड़कें रोम तक पहुंचती है ?

योरुप की अमरपुरी रोम

वेनिस से रोम के लिए ट्रेन मे बैठा। उत्तरी इटली की यात्रा मिलान और वेनिस देख कर समाप्त कर चुका था। अब रोम और नेपल्स देख कर दक्षिणी भाग की यात्रा पूरी करना चाहता था। सुदरता की रानी फ्लोरेस और जेनेवा को देखने की इच्छा मन मे ही रह गई। समय बहुत कम था।

रोम पहुचने की खुशी मे रोमरोम पुलकित हो रहा था। ट्रेन अपनी रफ्तार से भाग रही थी। स्वीडन और स्विट्जरलैड की ट्रेनो मे बहुत घूम चुका था इसलिए इटली की ट्रेन यात्रा उन के मुकाबले अच्छी नही लगी।

बचपन मे पढा था कि रोम एक दिन मे नही बना, विश्व की सारी सडके रोम पहुचती है इत्यादि। अब प्रौढ़ मस्तिष्क उन्ही बातो पर विचार कर रहा था। अवश्य ही रोम का निर्माण एक दिन मे नही हुआ होगा। उसे बनने मे सदिया लगी होगी। नईनई विचारधाराओ ने उसे प्रभावित किया होगा। धर्म और सस्कृति का केद्र रहा है रोम। आज भी है।

ईसाई धर्म के कैथोलिक मत का तो यह तीर्थ है। सारा पाश्चात्य जगत ही ईसाई है। इसी लिए श्रद्धा, भक्ति और प्रेम ने उन्हे रोम की ओर आकृष्ट किया। बाधाए, विपत्तियां पार कर इस तीर्थ स्थली के दर्शन मात्र से अपनी आखो को तृप्त कर अपने को और अपने जीवन को वे आज भी धन्य मानते है। सोचने लगा, 'वैभवशाली इतिहास के रोम का रूप आज जाने कैसा होगा ! शायद हमारी दिल्ली की तरह या काशी की तरह। मकानो की बनावट मे भिन्नता भले ही हो, वातावरण एक सा ही होगा।

रोम पहुचा। देखा, बिलकुल आधुनिक वातावरण था वहा। स्टेशन पर अन्य यूरोपीय देशो की अपेक्षा कुछ शोरगुल अधिक था—बहुत कुछ हमारे देश का सा। सामान उठाकर होटल की ओर जाते हुए सोचने लगा कि ससार के प्राचीनतम समझे जाने वाले इस नगर मे तो लदन, पेरिस, स्टाकहोम, ब्रुशेल्स नजर आते है। पर प्राचीन रोम की झाकी नही मिलती। कही भी नही मिलती, न पोशाक मे और न लोगो के ढग मे।

मेरा आर्कषण आधुनिक रोम से अधिक प्राचीन रोम की ओर था। अत मैने पहले इसे ही देख लेना ज्यादा ठीक समझा।

रोम की पहली बस्ती ईसा पूर्व आठवी सदी मे बसी थी। आज तक स्थिर नही हो पाया है कि इस अमरपुरी के आदिवासी कौन थे और कहा से आकर बसे थे। बहुत से लोगो की धारणा है कि ट्राय के युद्ध से बच कर भागे हुए कुछ लोग एशिया माइनर से आकर पहले-पहल यहा बस गए थे।

रोम के खडहरो को देखकर ध्यान बरबस सुदूर अतीत की ओर चला जाता है। राजवश और जनतत्रो के उत्थानपतन, रोमन प्रभुत्व का उदय और अवसान-मानो सभी एक साथ मस्तिष्क मे घूम जाते है। यहा इतने ऐतिहासिक खडहर और भवन है कि प्रत्येक का वर्णन कर सकना सभव नही। इस पर सदियो तक आक्रमणकारियो के प्रहार होते रहे है। नएनए प्रासाद बने, पिछले कुछ तोडे गए, कुछ स्वय ही देखरेख के अभाव मे पुराने पड गये।

इन्ही खडहरो मे रोम के प्रसिद्ध कोलीसियम (एफी थियेटर) को देखा। चार तल्ले के इस विशाल वृत्ताकार भवन के चारो ओर दर्शको के बैठने का स्थान है। एक ओर वह स्थान भी है जहा सम्राट खुद बैठकर प्रदर्शन देखते थे। सामत अपने पदानुसार बैठते थे। ठीक बीच के हिस्से मे एक वृत्ताकार बडासा आंगन है यही वे प्रदर्शन हुआ करते थे। प्रदर्शन क्या थे—नृशसता का नग्नतम रूप था। हमारे देश मे तो शायद ही इस प्रकार के प्रदर्शनो का विवरण मिले।

एफी थियेटर के विशाल आगन मे मनुष्य और पशु मे युद्ध कराया जाता था। कभी जगली सुअर तो कभी भूखे सिह के सामने मनुष्य को छोड दिया जाता था। दृश्य कितना वीभत्स हो उठता होगा।

याद आया कि कही तो क्रूर सम्राट नीरो ने ईसा मतावलबियो को एक जगह इकट्ठा कर, उन पर भूखे सिंह छोड दिए थे। रोमाच हो आया। आश्चर्य हुआ कि क्या यही जूलियस सीजर के सुरम्य देश की सस्कृति और सभ्यता थी ? क्या इसी रोमन सस्कृति और सभ्यता ने पश्चिम को कानून का बोध कराया था ? क्या यह वही रोमन सस्कृति थी जो आज भी यूरोप ही नही बल्कि सारी पाश्चात्य सभ्यता की आधारशिला है ? किस प्रकार एफी थियेटर मे बैठे पचास हजार दर्शक मनुष्य के चिथडे उडते देखते और बरदाश्त करते थे ? परतु मनुष्य भी तो मूलत पशु ही है। पश्चिम का महान जीवशास्त्री डारबिन यही तो कहता था।

रोम के खडहरो और प्राचीन भवनो को देखकर बीती हुई शताब्दियो के इतिहास की परते एकएक कर खोलने मे कठिनाई नही होती क्योकि उन मे अपने अपने समय की छाप अकित मिलती है। लोगो के रहन-सहन और रुचि का परिचय मिल जाता है। यह निस्सदेह इटली और खासतौर पर रोम की सभ्यता के लिए सौभाग्य की बात है कि विदेशियो के आक्रमण तो उनपर हुए पर वहा के सास्कृतिक चिह्नो को हमारे देश की तरह मटियामेट नही किया गया।

यही नही, रोम का यह भी सौभाग्य रहा है कि प्राचीन भवनो और जीर्णप्राय ऐतिहासिक स्थलो का पुर्ननिर्माण भी समय-समय पर होता रहा है। इस दृष्टि से वहा के पोप (धर्मगुरु) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। १५वी शताब्दी से तो समय-समय पर विभिन्न पोपो की चेष्टा यही रही है कि रोम का गौरव बढे और सास्कृतिक केंद्र कहलाने का उसका अधिकार कायम रहे।

यही कारण है कि आज भी रोम मे ऐतिहासिक शृखला की कडिया टूटी नही हैं नेपोलियन के साथ युद्ध होने के बाद, इटली मे प्रादेशिकता की भावना धीरेधीरे घटने लगी और एकता की भावना बढने लगी। रोम का महत्व बढा और एक बार फिर रोम यूरोप की सस्कृति का नियत्रण करने लगा। बाद मे भी सम्राट विक्टर एमेन्युएल ने इसे सजाने सँवारने मे कोई कसर न रखी। यूरोप और सुदूर अमरीका से लोग वहा के जीवन का आनन्द लेने के लिए आने लगे। आज का रोम अपने उस गौरव को अभी तक सफल उत्तराधिकारी के रूप मे सुरक्षित रखता आया है।

पियाजा द स्पाना के महल्ले मे टहलते हुए मैंने ग्रीक, अमरीकी, फ्रेच, जर्मन, रूसी आदि तमाम लोग देखे। पिछले महायुद्ध से पहले इटली के तानाशाह बेनिटो मुसोलिनी ने भी इटली

की राजधानी को खूब सवारा था।

चौडे रास्तो, बागबगीचो, नए ढग के बडेबडे भवनो और बिजली की सुविधा के कारण रोम यूरोप के अच्छे से अच्छे शहरोसे टक्कर लेने लगा।आज रोम की आबादी बीस लाख से भी ऊपर है, जब कि इसी शताब्दी के प्रारम्भ मे वह सिर्फ चार लाख थी। शहर की सबसे बडी समस्या है यातायात की भीड। ठीक यही समस्या तो हमारे यहा बबई, कलकत्ता और दिल्ली मे भी है।

शाम का समय था। मैं काफे ग्रेको मे बैठा काफी पी रहा था। काफे ग्रेको रोम का एक प्रसिद्ध कैफे है जहा लेखक, कलाकार, पत्रकार और कुछ छात्र एकत्र हो जाते है। मेरे पास की टेबल पर इटालियन, अगरेज और अमरीकी युवक बैठे हुए थे। वे आपस मे बाते कर रहे थे। इटालियन भी साफ अगरेजी बोल रहा था। कभीकभी तीनो ही मेरी ओर देख लेते थे। मेरी दृष्टि इटालियन से मिली तो उसने मुस्कराकर अभिवादन किया और तुरत आकर पूछा, "अगरेजी, फ्रेंच, इटालियन कौन सी भाषा मे बात करने मे आपको सुविधा होगी? शायद आप भारतीय है!"

मैने अगरेजी मे कहा, "आपका अनुमान सही है। मै भारतीय हू।"

हम चारो एक टेबल को घेर कर बैठ गए। अब मैं वक्ता बना और शेष तीनो श्रोता। उन्होने भारत और भारतीय सस्कृति के सबध मे प्रश्नो की झडी लगा दी। मैंने समझाने की कोशिश की कि दुर्भाग्य से पिछले दो सौ वर्षो से हम ऐसे देश के आधीन रहे जिसने हमारी सस्कृति और इतिहास को सही तौर पर दुनिया के सामने नही रखा।

जिस प्रकार काशी की यात्रा सारनाथ के बिना और मथुरा की वृन्दावन के बिना पूरी नही होती, उसी प्रकार रोम जाकर वेटिकन न देखना रोम न देखने के बराबर ही है। रोम का महत्व केवल ऐतिहासिक ही नही है, बल्कि उसके साथ ईसाई धर्म का गौरव भी जुडा हुआ है। उसका केन्द्र स्थल है वेटिकन—पोप का प्रासाद।

वेटिकन रोम के अतर्गत एक छोटा साराज्य है।इस की अपनी सरकार है, अपनी डाकतार व्यवस्था है और साथ ही अपनी पुलिस और रेडियो स्टेशन है। इस राज्य का सर्वोच्च शासक है धर्मगुरु पोप। पोप का अधिकार, उस की श्रद्धा का साम्राज्य इतना विस्तृत और असीम है कि वहा सूर्यास्त होता ही नही। पोप का सारा समय अध्ययन और धर्म चिंतन मे ही बीतता है। विश्व मे उनका प्रभाव तथा आदर कम नहीं है। ईसाई चाहे कैथोलिक हो या प्रोटेस्टेट, पोप को दोनो ही आदर की दृष्टि से देखते है।

ससार के सभी देशो के कैथोलिक ईसाई पोप के वाक्य को वेदवाक्य मानते हैं। ससार के सभी राष्ट्र वेटिकन राज्य की सुरक्षा का ध्यान रखते है। पिछले महायुद्ध के दौरान रोम पर सैकडो बार बमबारी हुई लेकिन बमवर्षको नें हमेशा इस बात का ध्यान रखा कि कही वेटिकन राज्य को कोई हानि न पहुचे।

बेटिकन का निर्माण वास्तव मे पाचवी शताब्दी के शुरू मे हुआ था। पिछली पदरह शताब्दियो मे ससार के कोनेकोने से श्रद्धालुओं ने श्रेष्ठतम वस्तुए यहा भेट मे ला कर अपने को धन्य माना। लोगो ने अपने जीवन भर की कमाई पोप के चरणो मे अर्पित कर दी। यही कारण है कि आज यहा जैसी बहुमूल्य सामग्री सग्रहीत हैं, वैसी न ब्रिटिश म्यूजियम मे है और न वार्शिगटन या लूब्रे मे ही।

विश्व की दुर्लभ वस्तुए, महत्त्वपूर्ण पुस्तके और चित्र यहा देखने को मिलते है। विश्व के महान कलाकारो ने बेटिकन गिरजो और मठो को सजाने मेंअपने कोधन्यमाना और इसी मे सारा जीवन लगा दिया।

इतना वैभव, आदर और असीम अधिकार किसी भी व्यक्ति का चित्त डावाडोल कर सकता है लेकिन मौजूदा पोप को देख कर मानना पडता है कि सात्विकता के आगे मानसिक

वेकार ठहर नही पाते । यों पिछली दोतीन सदियो से पोप के चुनाव में बहुत सतर्कता और सावधानी बरती जाती है ।

वेटिकन को अच्छी तरह से देखने के लिए काफी समय चाहिए । मैं ने तो सरसरी निगाह से दीवारो पर टगे चित्र देखे । ज्यादातर जिहाद के चित्र थे । इसके अलावा ईसाई धर्म से सबधित और बहुत से सुन्दर तथा चित्ताकर्षक चित्र भी थे । ये चित्र विश्व के सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाशाली कलाकारो द्वारा बनाए गए हैं । कुछ तो इतने बहुमूल्य हैं कि प्रत्येक का मूल्य पचास लाख रुपए तक आका गया है । यदि पोप के संग्रहालय का मूल्य आका जाए तो अरबो तक पहुंचेगा । मैं ने यही पर सिस्टाइन के गिरजे मे विश्व के दो प्रसिद्ध कलाकारों, माइकेल एजिलो और रेफियल के सर्वोत्तम चित्र देखे ।

वेटिकन मे बहुत से गिरजे और मठ है । मठो में ईसाई साधु रहते है । वहा किशोर साधुओ को भी देखा जिन्हे ईसाई धर्म तथा धार्मिक आंचारव्यवहार मे पारगत बना कर पूर्ण रूप से योग्य साधु बना दिया जाता है । इटली की पहाडियो में साधुओ के कुछ ऐसे सप्रदाय भी हैं जो अपने मठों में ही तपस्या करते-करते सारा जीवन व्यतीत कर देते है और वहां से कभी नीचे नही उतरते ।

वेटिकन मे ही विश्व प्रसिद्ध सत पीटर का गिरजा है । यह महात्मा ईसा के मुख्य शिष्य संत पीटर के स्मारकस्वरूप बनाया गया है । ईसाई मत वास्तव मे संत पीटर का बडा ऋणी है । फिलस्तीन के मरुस्थल मे महात्मा ईसा ने करुणा और क्षमा का मत्र बर्बर गिरोहो को सुनाया पर वह सूली पर चढा दिए गए थे ।

ईसा की मृत्यु के बाद, सत पीटर उन का सदेश पश्चिम की ओर पहुचाते हुए रोम पहुचे । रोमन शासकों के अत्याचारो से पीडित जनता मे इन के प्रेम और शाति के सदेश से आशा, धैर्य और जीवन के प्रति विश्वास का संचार हुआ ।

ईसा को मानने वालों की सख्या बढने लगी । ईसा के जन्म को ६७ वर्ष हो चुके थे । रोमन साम्राज्य का गौरव नष्ट होने की राह पर था । नीरो जैसा विवेकहीन सम्राट गद्दी पर था । उस ने ईसाइयो को हजारो की सख्या मे या तो पहाड़ों की चोटी से गिरवा दिया या आग मे भुनवा दिया । सत पीटर भी जीवित ही जला दिए गए । ईसाइयो पर भूखे सिंह छोडे गए । सब कुछ होते हुए भी अत में सच की ही जीत हुई । नीरो पागल हो कर मर गया ।

ईसाई धर्म रोमनो में और फिर रोमनो के द्वारा उन के साम्राज्य के कोनेकोने मे फैला । थोडे ही दिनों में सारा यूरोप तथा उत्तरी अफ्रीका ईसा की वाणी मे दीक्षित हो गया । यूरोप के प्रभुत्व के साथसाथ विश्व के कोनेकोने मे ईसाई धर्म का प्रचार हो गया ।

सत पीटर का गिरजा विश्व की सब से बडी इमारत तो है ही, साथ ही कलापूर्ण भी कम नही है । इस की ऊंचाई के सामने दिल्ली की जामा मस्जिद बहुत छोटी है । इस की वास्तुकला तो अचभे मे डाल देती है किंतु निर्माण कौशल भी कम आश्चर्य नही पैदा करता । इस के अंदर ६० हजार व्यक्ति बडी आसानी से प्रार्थना कर सकते है । अदर चारो ओर दीवारों और मेहराबो पर धार्मिक चित्र बने हुए है ।

इस गिरजे मे अनगिनत स्मारक और समाधिया है। सब से महत्त्वपूर्ण है सत पीटर की विशाल कास्य मूर्ति । सत पीटर एक कुरसी पर बैठे है और उन का शरीर वस्त्र से ढका हुआ है। एक हाथ में कुंजिया है और एक हाथ की तर्जनी तथा बीच की उगली किसी विशेष भाव को बता रही है । चेहरे पर घनी दाढ़ी है । सिर के घुघराले वालो के पीछे एक चक्र सा है जो सहज ही श्रद्धा और आदर की भावना जगाता है । सत पीटर का एक पैर कपड़ो मे ढका हुआ है और दूसरा बाहर की ओर बढा है । भक्तो के स्पर्श से चरण का यह अश घिस गया है ।

दिन भर घूमते रहने के कारण मैं काफी थक गया था। इसलिए अपने होटल जल्दी लौट आया और आराम करने लगा। खिडकी के सामने टाइबर नदी दिखाई दे रही थी। उसी को एकटक देखने लगा। देख कर बडी शाति मिली। लगा कि सिकदर ने जो एक साम्राज्य फैलाया था, सो ढह गया। रोमन भी तलवार की नोक पर साम्राज्य पर साम्राज्य स्थापित करते गए पर वे भी टिक न सके। आश्चर्य है कि निहत्थे गौतम और ईसा का साम्राज्य काल के गाल मे क्यो नही समाया !

टाइबर से आती हुई हवा के एक झोके ने फुसफुसा कर कान मे कहा, "तलवार की नोक शरीर ही छेद सकती है पर क्षमा और प्रेम तो हृदय मे घर बना लेते है।" तुरत ही ख्याल आया स्तालिन, मुसोलिनी, हिटलर का और उन की तुलना मे अपने बापू का।

संस्कृति व सभ्यता ज्वालामुखी को भेंट

पांपियाई की भस्म समाधि पर.........

सुबह के आठ बज चुके थे। बादलो के टुकडे आसमान मे धीरेधीरे तैर रहे थे। समुद्र की लहरो से अठखेलिया करती हुई हवा पास से कुछ फुसफुसा कर चली जाती थी। जाडा बीत चुका था, फिर भी रहरह कर एक सिहरन हो उठती थी।

हमारी बस नेपल्स से पापियाई का रास्ता तय कर रही थी। बस काफी आरामदेह थी। सामने ड्राइवर की बगल मे गाइड हाथ मे एक छोटा सा माइक्रोफोन लिए बीचबीच मे हमे आसपास के स्थानो की विशेषताए बताता जा रहा था।

नेपल्स से पापियाई का फासला केवल १४ मील है। अलकतरे की साफ सडक पर बस दौड रही थी। दोनो ओर के खेत, अगूर, सेव और दूसरी किस्म के फलो के बाग बडे ही मोहक लग रहे थे। बीचबीच मे किसानो के साफसुथरे मकान वातावरण की शोभा और भी आकर्षक बना रहे थे। इन्हे देख कर मेरा ध्यान अनायास ही अपने देहातो के घरो की ओर चला गया। मुझे लगा कि विदेशी जब हमारे यहा देहात के घरो को देखते होगे तो सोचते होगे कि हम भारतीयो को रहने का ढग नही आता। स्वच्छता और सौदर्य के प्रति हमारा आकर्षण कम है। इटली की आर्थिक अवस्था साधारण है। वहा के रहनसहन का स्तर भी अन्य यूरोपीय देशो से कही अधिक गिरा हुआ है। फिर भी, यहा के किसानों के घर गरीबी को जाहिर भले ही करे, पर उन मे फूहडपन हरगिज नही मिलेगा।

दाहिनी ओर नजर गई। समुद्र गर्जन कर रहा था। कुछ दूरी पर देखा, विसुवियस खडा था। एकटक देखता रहा उस ज्वालामुखी को। बादलो की चादर से उस का सिर ढका हुआ था और शरीर कुहासे के झीने आवरण मे घिरा हुआ था। लगा कि विसुवियस प्रगाढ निद्रा मे मग्न है।

गाइड की आवाज आई, "ये कालेकाले पत्थर जो आप लोग देख रहे है, विसुवियस के लावा से बने है। रागरग के इस सुदरतम नगर के साथ विसुवियस ने आग की फाग खेली थी और कुछ ही देर मे वह भस्मसमाधि मे लीन हो गया था।"

सामने विसुवियस था और उस के पैरो पर पापियाई। पापियाई नही, बल्कि उस के खडहर और राख की ढेरिया।

"इस नगर का भी अपना एक जमाना था। कितनी ही शताब्दियो की मजी हुई, अपनी संस्कृति और सभ्यता की गरिमा मे डूबी हुई पापियाई सुदरता मे अद्वितीय थी। नगरवासी ऐश्वर्य सपन्न थे। इस की रीतिनीति और सस्कार के अनुकरण मे देश-देशान्तर अपने को धन्य

मानते थे। लेकिन कराल काल की गति इतनी न्यारी है कि उस के एक ही इशारे पर विसुवियस ने हुंकार भरी और उसके एक ही विकट उच्छवास मे सदियो की सभ्यता और सस्कृति राख की ढेरी के नीचे दब गई। जिदगी की मुसकान पर मृत्यु की यवनिका गिर पडी। मिट गया पापियाई का अस्तित्व और बच रहे ये खडहर "

एक झटका लगा। हमारी बस रुक गई। सभी यात्री बस से उतर पडे। पापियाई मे प्रवेश किया।

गाइड परिचय देने लगा, "इस नगर की उत्पत्ति के बारे मे विद्वान आज भी एकमत नही हो पाए है कि यह सर्वप्रथम कब बसा था। लेकिन इतना सभी मानते है कि ईसा के जन्म से कई सौ वर्ष पूर्व इस नगर का यश और ऐश्वर्य विश्व प्रसिद्ध हो चुका था।' उस ने मुसकरा कहा, "महानुभावो, किसी सुदरी के लिए तलवारो का खटकना कोई आश्चर्य नहीं। कई साम्राज्यो ने पापियाई को अपनाने के लिए आपस मे अपनीअपनी शक्ति आजमाई और खून की नदियां वह गई। अत मे ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी मे इस पर रोम का अधिकार हुआ। इस के बाद से इस जनपद के ऐश्वर्य का विकास निरतर होता ही गया। रोम के धनिक सामत, व्यापारी तथा नागरिको के आवास यहा तभी से बनने शुरू हुए। समुद्र के सान्निध्य ने इसे वाणिज्य मे प्रतिष्ठा दी और कृषि ने इसे उन्नतिशील बनाया। इस की जनसख्या क्रमश. बढ़ती गई।"

पापियाई का इतिहास बताता है कि सन ६३ ईसवी में एक भीषण भूकप ने नगरी को बुरी तरह से झकझोरा था और काफी नुकसान पहुचाया था। वर्षो तक पुनर्निर्माण का कार्य नागरिको ने साहस और उत्साह के साथ चलाया। लेकिन उसे कहा पूरा होना था!

सन ७९ ईसवी की बात है, रात हो चुकी थी। दिन भर के परिश्रम से निपट कर लोग घरो मे निश्चित बैठे थे। कुछ आमोदप्रमोद मे लीन थे। विसुवियस अपने चरणो के पास बैठी सुदरी पापियाई पर एक विकट अट्टहास कर उठा। फूट निकले धुए के बादल, राख के गुबार और दहकते शोलो के फव्वारे। जलते हुए लावा की सहस्र धाराए फूट पडी।

काल की इन लपलपाती जीभों के बीच पांपियाई घिर गई। लोगो को भागने का मौका तक नही मिला। जहरीले धुएं और राख की आधी और अगारो की वर्षा। जो जहा था, वही रह गया। समुद्र के रास्ते भी बच निकलना असभव था। समुद्र मे भी लावा अनेक धाराओ मे बह रहा था। मीलो तक समुद्र का पानी खौल उठा। ध्वस इतना व्यापक हुआ कि फिर इसे सिर उठाने का मौका नही मिला। पुनर्निर्माण असभव था। करता कौन? किस मे इतना साहस था कि विसुवियस के पराक्रम को चुनौती दे?

प्रलय-ताडव के शात होने पर बच कर भागे हुए कुछ लोग अपनीअपनी धनसपत्ति के उद्धार के लिए लौटे, लेकिन सफल न हो सके। अब तो सब कुछ राख पत्थर और लावा के नीचे दबा पडा था। लावा जम कर चट्टान बन गया था। कहीकही तो ३० फुट मोटी परत जम गई थी। खोद कर कुछ निकालना व्यर्थ था। प्रकृति के सामने मनुष्य को पराजय स्वीकार करनी पडी।

मध्य युग मे पापियाई की ओर किसी का विशेष ध्यान नही गया। इस की कहानी विस्मृति के गर्भ मे पडी रही। १६वी शताब्दी के अतिम चरण मे लोगो का ध्यान इस की तरफ गया। उद्धार का कार्य प्रारभ किया गया लेकिन प्रगति वहुत ही सुस्त और सीमित रही। १९वीं शताब्दी के प्रारभ मे फ्रासीसी सरकार ने यह कार्य अपने हाथो मे लिया और तब से लगातार इस दिशा मे प्रगति होती रही है। धीरेधीरे इटली सरकार का भी ध्यान पापियाई की ओर गया और उस ने १८६१ मे खुदाई का काम अपने जिम्मे ले लिया।

गाइड के साथ घूमता हुआ सब कुछ देख रहा था। दो हजार वर्ष पूर्व यही एक जनपद था। इस की निर्माणव्यवस्था, कानूनकायदे और यहा के रहनसहन के तरीके को देख

कर ऐसा अनुमान होता है कि आधुनिक ढंग के शहरो का सूत्र हमारे यहा के मोहनजोदडो और हडप्पा की तरह यहा भी रहा होगा। नगर के चारो ओर दीवारे थी। उन दिनो रक्षा और सुरक्षा के लिए ऐसी व्यवस्था का रहना आवश्यक माना जाता था। रास्ते अच्छे बने थे। बारहचौदह फुट से अधिक चौडे तो नही थे, मगर विशेषता यह थी कि इन पर फुटपाथ बने थे। सड़कें नगर के महत्त्वपूर्ण अंचलो मे अपेक्षाकृत प्रशस्त बनाई गई थी। इन पर चौडीचौड़ी पटरिया भी थीं। ये पटरिया अथवा फुटपाथ प्राय सभी सडको से ऊचे रखे गए थे। उस से गाडियों के आनेजाने मे दिक्कत होने की सभावना नही थी।

मकान और रास्ते जल निस्सारण सुविधा को ध्यान मे रख कर बनाए गए थे। कई स्नानागारो के ध्वसावशेष स्पष्ट बताते हैं कि एक साथ ही गरम और ठडे पानी के भरे जाने का प्रबध था।

एक स्थान बहुत कुछ चौक जैसा लगा। शायद यही पापियाई का व्यवसाय केंद्र रहा होगा, क्योकि इसी के चारो ओर नगर का विस्तार है। केंद्रस्थल मे बाजार हाट और न्यायालय भी था। इन्हे देख कर पता चलता हे कि पापियाई का वाणिज्यव्यापार कितना उन्नतिशील रहा होगा। नागरिको के मनोरजन की भी व्यवस्था थी। नाट्यशालाओ के खडहरो को देख कर ताज्जुब होता है। उन मे पाच हजार व्यक्तियो तक के बैठने की व्यवस्था थी। इन नाट्यशालाओ पर यूनानी वास्तुशैली का प्रभाव है।

इटली की सरकार ने पापियाई मे एक म्यूजियम बना दिया हे। म्यूजियम छोटा लेकिन अच्छा है। यहा सग्रहीत नमूनो से पापियाई की कहानी स्पष्ट हो जाती हे। लेकिन व्यवहार मे आने वाली विभिन्न वस्तुओ को देख कर नागरिकों के जीवन स्तर का सहज अनुमान हो जाता है। केशविन्यास के काटे, गले के हार, चूडिया तथा इसी तरह के नाना प्रकार के वस्त्राभूषण स्त्रियो के शृगार और रुचि का परिचय देते हे।

तरहतरह के बरतनो के साथ सुरापात्र भी है, जो बताते है कि जीवन मे विलास का प्रवेश कहा तक था। विभिन्न प्रकार की प्रतिमाएं भी वहा देखने मे आईं। ये सभी, अधिकाश लोहे और तावे की बनी थी। यहा रखे छुरीकाटे, तराजू और तमाम वस्तुओ से उन के सामाजिक जीवन का भी परिचय मिला।

म्यूजियम के एक भाग मे प्लास्टर किए गए शरीर देखने मे आए। एक स्त्री का शरीर देखा। वह एक हाथ की कोहनी मे अपना मुह छिपाए है और दूसरे हाथ की मुद्रा उस की घबराहट बताती है। ज्वालामुखी से निकलते विषैले धुए से बेचारी का दम घुटा होगा। एक कुत्ते का शरीर देखा, विष के प्रभाव से उस का शरीर बिल्कुल धनुष की तरह ऐंठ गया था।

म्यूजियम मे जो भी सग्रहीत हे, वह वास्तव मे उद्धार से प्राप्त वस्तुओ का एक अश मात्र है। बहुत सी वस्तुए यूरोप के अन्य देशो मे ले जाई गई है, जिस मे सब से अधिक फ्रास के लूव्रे म्यूजियम मे सग्रहीत हैं। अमरीका के न्यूयार्क सग्रहालय मे भी पापियाई के कुछ ध्वसावशेष ले जाए गए है।

अब भी हल्का धुआ उगल रहा था।

मैं सोचने लगा कि इस का धुआ बताता है कि यह सुप्त नही है और न शांत ही है। पर अब यह किस पापियाई को ग्रसने के लिए भीतर ही भीतर उबल रहा है ?

सहसा लगा कि हल्के से वाष्प ने मेरी दृष्टि को धुधला कर दिया और कान मे कोई कह गया, 'यह नफरत भरी निगाहे मुझ पर है या प्रकृति पर ? खुद पर क्यो नही ! हिरोशिमा और नागासाकी को किस ने ग्रसा ? मैं ने, फ्युजियामा (जापान का ज्वालामुखी) ने या तुम ने ?'

मैं चौक उठा। देखा गरम काफी की भाप ने चश्मा धुधला कर दिया है। उतार कर चश्मे को साफ किया जल्दीजल्दी काफी पीने की कोशिश करने लगा।
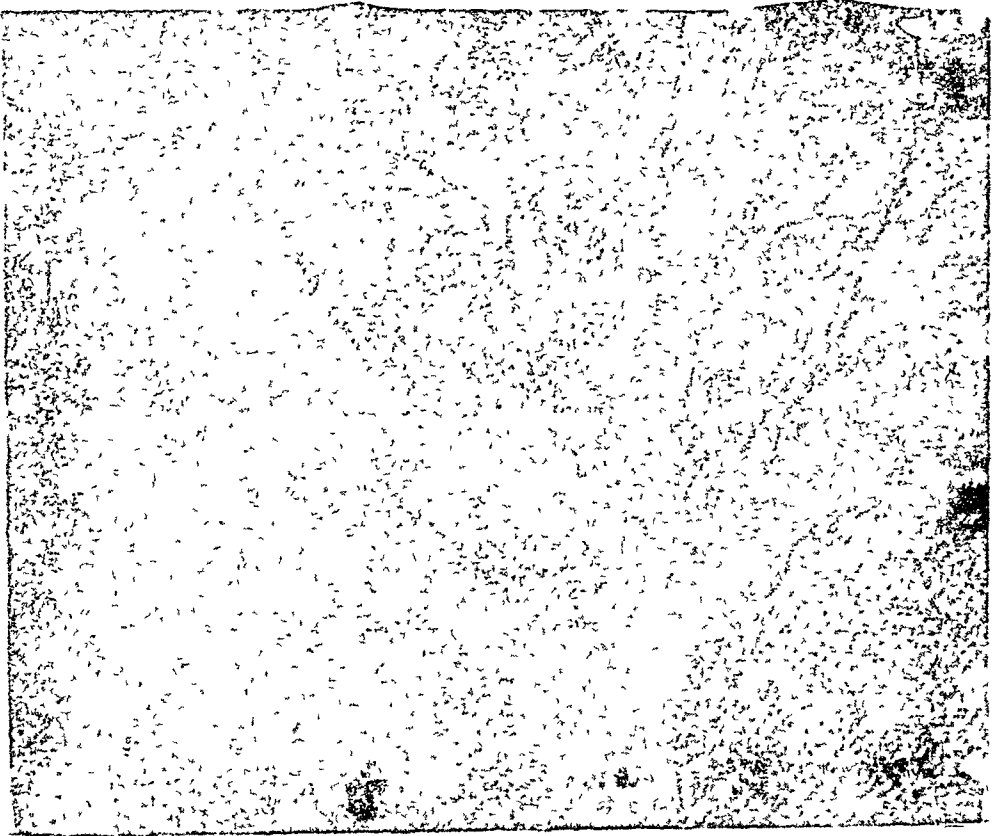
जो योरोपियन सभ्यता की जन्मभूमि थी
ग्रीस

रोम से वायुयान द्वारा एथेस आ रहा था, पाश्चात्य सभ्यता के दूसरे मूल स्रोत यूनान की राजधानी एथेस। जहाज जब यूनान की भूमि पर मडराया तो ऊबडखाबड, बजर पर्वतीय भूमि देख कर राजस्थान के चित्तौड क्षेत्र की याद आ गई। मन मे प्रश्न उठा, क्या इस प्रकार की शुष्क भूमि मे ही ऐसे वीर उत्पन्न होते है, जिन की गौरवगाथा वर्णन कर के होमर और चदवरदाई अमर हो गए ?

फ्रास और स्विट्जरलैड मे मित्रो ने पूछा था कि आप विश्व के सुदरतम स्थानो को देखने के बाद यूनान जैसे नीरस और निर्जन देश मे क्यो जा रहे है ? परतु प्राचीन सभ्यता के अवशेषो, विश्वविख्यात आर्कोपोलिस पर्वत और देवी एथीना का मदिर देखने के मोह ने विवश कर दिया।

विश्व के इतिहास मे भारत एव मिस्र के समान यूनान का भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिस समय अन्य यूरोपीय देशो के निवासी गुफाओ मे रहते और वल्कल पहनते थे, उस समय यूनान अपनी सभ्यता के चरमोत्कर्ष पर था। यद्यपि भारत और मिस्र जैसा पुराना इतिहास तो यूनान का नही है, परन्तु जितनी सामग्री उस के इतिहास के बारे मे उपलब्ध है, वह इन दोनो देशो की अपेक्षा कही अधिक है। यदि किसी को केवल आमोदप्रमोद के लिए रात्रिक्लब ओर बडेबडे ऐय्याशी के साधन ही चाहिए, तो यह उपयुक्त स्थान नही, किंतु जो मानव की सतत विकासोन्मुख प्रवृत्तियो का अध्ययन करने के अभिलाषी हो, उन्हे यूनान अवश्य जाना चाहिए। भारत से लदन जाने वाले यात्रियो को यूनान जाने के लिए कोई अतिरिक्त व्यय नही करना पडता। कुछ हवाई कपनियो के जहज एथेस मे भी उतरते है। वे यात्रियो को इस बात की सुविधा देते है कि वे कुछ दिन वहा बिता सके।

एथेस को यूनान की दिल्ली कहना उपयुक्त होगा। यूनान के इतिहास मे इस नगर का वैसा ही स्थान है, जैसा भारत के इतिहास मे दिल्ली का। एजियन समुद्र के किनारे बारह लाख की जनसख्या का यह नगर राजधानी होने के साथसाथ एक बडा बदरगाह और व्यापार केंद्र भी है।

ग्रीस बहुत धनी देश नही है और उस के साधन भी सीमित है, इसलिए एथेस मे नई दिल्ली की तरह बडेबडे भव्य भवन देखने को नही मिलते। परतु वहा के निवासियो का आतिथ्य सत्कार और नगर की सुदरता व स्वच्छता यह कमी पूरी कर देती है।

मैं नाश्ता कर के पैदल घूमने निकल गया। सब से पहले आर्कोपोलिस पर्वत पर गया जो शहर से थोडी दूर पर ही है। इस पर्वत ने अनेक उतारचढाव देखे है। यही पर सत्यान्वेषी सुकरात को जहर का प्याला पिलाया गया था। यही वीर सिकन्दर ने अपनी विश्वविजय का अभियान आरभ किया था। जिस समय सिकदर की वीर जननी अपने पुत्र को विश्वविजय के लिए लाखो सैनिको के साथ आशा भरी विदाई दे रही थी, उस समय यह निर्मोही पर्वत मन ही मन सोच कर हस रहा होगा कि यह विदाई ही अतिम विदाई है।

उस बात को आज ढाई हजार वर्ष हो चुके है। अन्य देशो की तरह यूनान मे भी परिवर्तन चक्र निरतर चला। कभी तो यहा के वीर अनेक देशो से लूट की सामग्री और दासदासियो को ले कर विजयी हो कर आए और कभी ऐसा समय भी आया कि रोमन और तुर्की सेना के आक्रमण से इन्हे एथेस खाली कर के भाग जाना पडा।

वैसे तो आर्कोपोलिस पर्वत पर कई इमारतो के खडहर दृष्टिगोचर होते है, पर सब से पहले मै पार्थेनान के खडहरो मे सगमरमर से बने देवी एथीना के मदिर मे गया।

विश्व की कला कृतियो मे इस मदिर का अनुपम स्थान है। आज यहा चारो तरफ बिखरे हुए सगमरमर के पत्थरो और खडित मूर्तियो के सिवाय और कुछ दिखाई नही देता, पर २,००० वर्ष पहले एक ऐसा भी समय था, जब इसी मदिर के प्रागण मे बैठ कर सम्राट लीरो अपने सरदारो के साथ विश्वविजय की रूपरेखा बनाया करते थे और विजय अभियान के पूर्व देवी एथीना से वरदान मागते थे।

एक कोने मे कब्र के एक पत्थर पर बैठे हुए मैं ने सोचा—मनुष्य कितना विस्मरणशील है। शायद इस कब्र मे ही कोई ऐसा प्रतापी सरदार सोया होगा, जिस ने किसी समय अपनी तलवार से हजारो बच्चो और स्त्रियो को अनाथ कर दिया होगा और आज उस के अवशेष कुछ मिट्टी के कणो मे बदल गए है। उस समय मुझे कवि की यह वाणी याद आ गई

जहा शाह जमशेद विभव था, बही जहा मदिरा लहरी,
बने आज उन राजगृहो के सिंह श्रृगालादिक प्रहरी।
करते थे जो यहावहा की व्याख्या रातरात भर जाग,
सब धकियाए गए अत मे, भूल गए सब रागविराग।

करीब तीन हजार वर्ष पूर्व एथेस का नाम केक्रोपिया था। यहा के एक वीर सरदार थेसस ने देवी एथीना के नाम पर नगर का यह नाम रखा था। उस के बाद की छ शताब्दियो मे तो इसी जगह से यूनानी साम्राज्य का शासन सचालित होता रहा।

ईसा पूर्व पाचवी शताब्दी मे ग्रीस मे पैरीक्लीज नाम का एक महापुरुष हुआ, जिस की वक्तृत्वशक्ति और कार्यकौशल से ही आर्कोपोलिस की इमारते बनी। इन्हे बनाने मे मिस्र के पिरामिडो की तरह गुलामो से जबरन मेहनत नही कराई गई थी। ग्रीसवासियो ने स्वेच्छा से श्रमदान द्वारा लगातार चौदह वर्ष मे इसे पूरा किया था। ऐसा कहा जाता है कि उस समय ऐसी इमारत विश्व के किसी भी देश मे नही थी। अग्रेजी मे एक कहावत भी है कि दुनिया मे आ कर यदि एथेस नही देखा तो जीवन वृथा है।

प्रथम ईसवी शताब्दी मे रोमनो ने यूनान को विजित कर लिया और एथीना के मदिर मे माता मरियम की मूर्ति स्थापित कर दी गई। इस के बाद पद्रहवी शताब्दी मे तुर्को ने एथेस पर कब्जा कर लिया और एथीना का मदिर, माता मरियम का गिरजा कुछ शताब्दियो के लिए मसजिद के रूप मे बदल गया। तीन सौ वर्षो के तुर्की शासन मे यूनान को जो सास्कृतिक और जन हानि उठानी पडी, वह कभी पूरी न हो सकी।

आर्कोपोलिस के खडहर देखतेदेखते शाम हो गई। गरमी महसूस हो रही थी, क्योकि अन्य यूरोपीय देशो की अपेक्षा यूनान अधिक गरम देश है। तो भी इन खडहरो मे कुछ ऐसा

आकर्षण था कि वहा से वापस आने को जी नही करता था। एक वडे खडहर मे वैठ कर थकावट मिटा रहा था कि नीद सी आ गई। हठात् रवि बाबू की 'क्षुधित पाषाण' कहानी के नायक की तरह मैं भी दो हजार वर्ष पहले के यूनान मे पहुच गया, जहा विचित्र वेशभूषा मे लोग अनेक प्रकार के रागरग कर रहे थे। थोडी देर वाद एक सिहरन सी महसूस हुई और आखें खुलने फ्र परियो की जगह विशाल सगमरमर के खभे दिखलाई दिए। आखिर, जी कडा कर के पर्वत से नीचे उतर वास्तविक जगत मे आ गया।

सध्या समय एथेस का राष्ट्रीय सग्रहालय देखने गया। २,७०० वर्षो के लवे व्यवधान की जितनी यादगारे, मूर्तियां और वस्तुएं इस मे सग्रहीत हैं, उतनी शायद ही अन्यत्र कही हो। वैसे तो लदन, मास्को, पेरिस और वाशिंगटन के सग्रहालय ससार मे वडे अद्‌भुत माने जाते है, पर एथेस मे अन्य प्राचीन दर्शनीय वस्तुओ की भी कमी नही। इन में प्रमुख है नायक का मदिर, एपागस और एगस के गिरजे, क्रेमिसिर्स की कब्रगाह, डिनोश का थियेटर हाल और स्टेडियम। परतु एथीना के मदिर और पार्थेनान के खडहरों का वर्णन ही यहा पर्याप्त होगा।

इस प्राचीन एथेंस के साथ एक नया एथेस भी है, जिसे हम इद्रप्रस्थ के मुकाबिले मे नई दिल्ली कह सकते है। यह नगर आज से १२५ वर्ष पूर्व बसाया गया था। अन्य यूरोपीय नगरो की तरह यहा भी विश्वविद्यालय, क्लब, बाजार, दुकानें, सड़के, पुस्तकालय, सरकारी दफ्तर, सिनेमा, नाटक गृह आदि सब कुछ है। परतु फ्रास और बेलजियम से लौटे पर्यटक के लिए इन मे कुछ आकर्षण नही रह जाता। एक वात मुझे अवश्य अनुभव हुई कि यहा के निवासियो मे पूर्व और पश्चिम का सम्मिश्रण है, इसलिए यूरोप के पश्चिमी देशो की अपेक्षा वे सुदर और गोलाकार मुखाकृति वाले है। वेशभूषा मे भी पश्चिमी यूरोपीय देशो से कुछ अतर मालूम देता है। कई जगह लबी दाढी वाले, चोगे और लबी टोपी पहने पादरी भी दिखाई दिए। इस के सिवाय, गलियो और सड़को पर भी हमारे यहा की तरह मिठाइया और अन्य वस्तुए बेचने वालो के खोमचे दिखलाई पड जाते है। कुछ बाजार तो भारत के वाजारो जैसे हैं।

यूनान बहुत बडा देश नही है। इस का क्षेत्रफल ५० हजार वर्गमील और आवादी करीब ७५ लाख है। न तो यहा बडेबड़े कारखाने है और न खनिज सपत्ति ही अधिक है। इसलिए अमेरिका व यूरोप के सपन्न देशो की तरह यह देश धनी नही है, तो भी इस की अपनी सभ्यता है, अपना इतिहास है। आज भी जव कोई विदेशी यूनानियों से बाते करता है तो उसे उन के गौरवपूर्ण अतीत की झलक मिलती है।

१९४० के अंत मे जर्मनो और इटालियनो ने इस देश पर अधिकार कर लिया था जो तीन वर्षों तक कायम रहा। इस अवधि मे इसे बहुत हानि उठानी पडी। १९४४ मे मित्र राष्ट्रो की सहायता से वह फिर स्वतंत्र हुआ और वहा के लोग इन २० वर्षो मे अपने देश को आगे वढाने मे कुछ अशो तक सफल भी हुए है।

एथेस और आर्कोपोलिस के अतिरिक्त और भी वहुत से स्थान देखने योग्य है, जैसे क्रीट और स्पार्टा। परतु मेरे पास समय कम था और स्वदेश लौटने की जल्दी थी, इसलिए उन्हे देख न सका और वायुयान से काहिरा आ गया।

यद्यपि थोडे समय ही ठहर सका, परतु जो भी देखा, उस की स्मृति जीवन भर वनी रहेगी। यहा की एक घटना आज भी हृदय पर अकित है। उस का उल्लेख कर यह लेख समाप्त करूगा।

एथेस प्रवास के समय 'टी० डब्लू० ए०' (एक अमरीकी वायुयान कपनी) के युवक अफसर श्री कोर्नोपोलिस से मेरी मित्रता हो गई थी। उन्होने मुझ से कहा कि वे एक वार मुझे अपनी पत्नी से मिलाना चाहते है। चार महीने पहले उन का ढाई वर्ष का इकलौता बच्चा काल कवलित हो गया था। उस दिन के बाद से प्रत्येक दिन उन की स्त्री तीनचार घटे उस की

ताशकन्द

१९६५ के ताशकन्द समझौते के बाद हमारे देश के साधारण से साधारण व्यक्ति की जबान पर यह नाम आ गया । किन्तु सन १९६१ मे जब हम ताशकन्द गए थे, उन दिनो भारत कें बहुत कम लोग इस के नाम से परिचित थे । इनमे बहुतो की जानकारी इतनी सी थी कि ताशकन्द रूस के विशाल सोवियत सघ के एक राज्य का प्रमुख शहर है । कुछ लोगो का यह ख्याल था कि ताशक़न्द हिमालय के उस पार मध्य एशिया मे इस्लामी सभ्यता और सस्कृति का प्रमुख केद्र है ।

बचपन मे पढा था कि हिमालय पर शिवपार्वती विचरण करते है । बालबुद्धि इन सब बातो को सत्य मानती थी । महाभारत की कथा मे भी सुनते थे कि सम्राट युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ मे चीन, अफगानिस्तान और गाधार तथा हिमालय के उस पार के देशों से बहुमूल्य उपहार भेजे गए थे । वैसे ये पडोसी देश भी है इसलिए इन्हे देखने की बहुत दिनो से इच्छा थी ।

कुछ वर्षो वाद प्रसिद्ध पर्यटक स्वर्गीय राहुल साकृत्यायन के सम्पर्क मे आया । वे तन्मय हो कर सोवियत रूस की सर्वागीण उन्नति के बारे मे सुनाते थे । उनकी 'वोलगा से गगा' ने भी जिज्ञासा के वीज को अकुरित किया । परतु उन दिनो रूस देखने की अनुमति साम्यवादी विचारधारा के लोगो के अलावा किसी अन्य को नही मिलती थी । हिमालय का लघन सभव था परतु लौह प्राचीर के भीतर जाना दुष्कर । उधर झाकना तक खतरे से खाली नही था ।

मई सन् १९६१ को एक दिन श्री जी० डी० बिडला ने कहा—"रूस सरकार का निमत्रण है, तुम चलोगे क्या ?" भला, मेरी इन्कारी का सवाल ही कहा था ? ऐसे मौके के ताक मे तो था ही । दूसरे ही दिन उन्हे अपनी स्वीकृति दे दी ।

यात्रा कीतैयारी कर ली गयी । श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिहका को भी साथ जाने के लिए राजी कर लिया । वे ७५ वर्ष के है परतु उनमे शारीरिक शक्ति और जोश युवको से भी ज्यादा है । यात्रा के लिए तो हमेशा तैयार रहते है, चाहे उत्तरी ध्रुव की हो या टिम्बकटू की । यात्रा मे हमारे अलावा विडलाजी के दो निजी सचिव और तीनचार अन्य मित्र थे ।

मई का महीना था । दिल्ली मे इन दिनो नौ बजे सुबह से ही आसमान से आग बरसती है और राजस्थान से उडी धूल की आधिया चलती है । मगर हम ऊनी गरम कपडे पहने, हाथो मे ओवरकोट लिए रूस की यात्रा पर चल पडे । लोगो की निगाह मे भले ही कुछ लगे हो पर बात यह थी कि रूस मे इस समय भी जोरो की सर्दी पड रही थी । मोटे गरम कपडे और ओवरकोट सन्दूक मे रखते तो सामान के वतौर उनका भी किराया लग जाता ।

अबतक हमने अधिकतर अपने ही देश के एयर इण्डिया या अन्य आरामदेह हवाई जहाजो से यात्रा की थी। इनमे सब प्रकार की सुविधा रहती है। इस यात्रा मे जिस रूसी यान 'एयरो फ्लोट' मे बैठे, वह बडा और तेज तो जरूर था मगर साज-सज्जा मे मामूली सा था। इसके अलावा जो तहजीब, खातिरदारी और स्नेहपूर्ण व्यवहार-भारतीय या अन्य यूरोपीय एयर होस्टेसो से मिलती रही है, उसका इसमे सर्वथा अभाव मिला। सच पूछा जाय तो हवाई जहाज की लम्बी और उबा देने वाली यात्रा मे आधी थकावट तो इनकी सुन्दरी परिचारिकाओ के मधुर व्यवहार और बातचीत से ही मिट जाती है। यह रूसी यान १२० यात्रियो का था, एयर होस्टेस की जगह थे कद्दावर रूसी जवान। अपनी तरफ से तो ये बिचारे हर तरह की सहायता करने को तैयार रहते परन्तु वह स्नेहपूर्ण मुस्कान और सुमधुर सुगन्ध इनके पास कहा से आती ? इनकी भाषा भी साफ समझ मे नही आती थी। कुर्सियो के गद्दे और कमर की पट्टिया सेना के प्लेनो जैसी थी। ऐसा लगा मानो रूस का सबसे पहला काम सैनिक तैयारी के बारे मे सोचना है फिर और कुछ। हमे बताया गया कि इसी ढग के दोतल्ले हवाई जहाज भी रूस मे बनाए जा रहे हैं जिनमे ढाई सौ यात्री बैठ सकेगे।

यान की गति सभवत ६०० मील प्रति घटे की थी इसलिए हम दो ही घटो मे नगराज हिमालय की ऊची चोटियो पर से उड रहे थे।

हमारे प्लेन की ऊचाई ३५-४० हजार फुट थी परतु बर्फानी चोटिया भी बीस पचीस हजार फुट ऊची थी। इसलिए वे काफी नजदीक दिखाई पड रही थी और ऐसा लग रहा था कि हिमसागर की ऊची लहरो पर से हम उड रहे है। बर्फ ही बर्फ. न हरियाली और न नदी नाले या सडके। चमकीली बर्फ पर धूप पड रही थी। मानो चादी का सागर लहरा रहा हो। दुर्गम हिमालय चादी की चादर ओढे मुझे बुलाता सा लगा। सोचनेलगा—यात्रियोने ठीक ही लिखा है कि कैलाश और मानसरोवर के दृश्यो को देखकर मनुष्य आत्म विस्मृत हो जाता है वहा से वापस आने को जी नही चाहता। कठोर शीत मे मृत्यु की आशका रहती है फिर भी वह खिचा ही रह जाता है। अमरनाथ की यात्रा की मेरी अपनी ही घटना का स्मरण आया। मै भी तो वहा पर बर्फानी चोटियो के शात और सौम्य दृश्य को आधी रात तक देखता ही रह गया था।

इन्ही ऊचे हिम शिखरो को पार कर कितनी जातिया हमारे देश मे आयी। हमारे यहा से कितने ही लोग इन्ही घाटियो से गुजरे। बल्ख बदख्शा समरकद और बुखारा ताशकद भी तो इन्ही मे है हिमालय के उस पार। कल्पना मे ऐसा लगा मानव गैरिक वस्त्र पहने बौद्ध भिक्षुओ की कतार धीरेधीरे इन्ही बर्फानी घाटियो से आगे बढ रही है।

भारी सी आवाज सुनाई पडी। वेटर ने नाश्ते के लिए पूछा था। इच्छा नही थी मैने इकार कर दिया। विचारो का तार टूट गया। मन मे सोचा, कल्पना से यथार्थ कितना भिन्न होता है।

यदि हम किसी दूसरी कम्पनी के हवाई जहाज मे जाते तो उसी किराये मे काबुल को देखने का सुयोग मिल जाता। मगर ये बडे जहाज दिल्ली से उड कर सीधे ताशकद आकर रुकते है। हम तीन साढे तीन घटो मे ताशकद के हवाई अड्डे पर पहुच गए। मन मे प्रसन्नता सी हुई। आखिर पहुच ही गया हिमालय के उस पार और लौह प्राचीर के भीतर।

यद्यपि यूरोप के कई देशो की यात्रा पहले कर चुका था परतु रूस की यह मेरी प्रथम यात्रा थी। ताशकद सोवियत सघ के उजबेकिस्तान की राजधानी है। यो भी रूस अन्य यूरोपीय देशो से भिन्न सा लगता है और यहा का वातावरण तो रूस से भी काफी अलग ढग का है। हमारी अगवानी के लिए मास्को से रूसी सरकार के विदेश मत्रालय के दो अधिकारी आये थे. वे अग्रेजी अच्छी तरह समझते और बोलते थे। अत्यत सौजन्य से उन्होने

अपना परिचय देते हुए सोवियत सरकार की ओर से हमारा स्वागत किया। अन्य तीन-चार व्यक्ति जो वहा खड़े थे, उनसे परिचय कराया। नगर के मेयर के अलावा यहा के व्यापार चेम्बर की प्रधान श्रीमती हमीदा भी थी। ये अग्रेजी नही जानती थी अतएव, परिवाचक के माध्यम से वातचीत हुई। परिचय से अदाज मिला कि श्रीमती हमीदा न केवल सुशिक्षिता है वल्कि अपने विषय और दायित्व की काफी जानकारी रखती है।

ताशकद का एयरपोर्ट कोई खास अच्छा नही लगा। साधारण सा था, हमारे यहां के पटना या वाराणसी के जैसा कहा जा सकता है। कई प्रकार के छोटे-वड़े हवाई जहाज वहुत वड़ी सख्या मे खडे थे। विश्व मे अमेरिका के सिवाय रूस के पास सवसे ज्यादा हवाई जहाज हैं, जिन्हे देश के भिन्न-भिन्न हिस्सो मे वाट रखा हैं।

हमारे स्वागत के लिए एयरपोर्ट के रेस्तरा मे नाश्ते का आयोजन किया गया था। दरअसल, वात यह थी कि हमारे पासपोर्ट और वीसा की जाच की जा रही थी। इसमे कुछ देर लगनी सभव थी। चूकि, हम सरकार द्वारा आमन्त्रित थे, इसलिए वे इन वातो का हमे आभास नही होने देना चाहते थे। रूस मे विदेशियो के विसा वगैरह की जाच वडी सतर्कता और कडाई से की जाती है। यो, हमारे वारे मे पूरी जानकारी भारत मे रूसी राजदूत श्री वेनेडिक्टोव द्वारा वहा दी जा चुकी थी। साथ ही यह भी वता दिया गया था कि हम निरामिष भोजी है और वोदका की जगह पानी पीते हैं। पानी का खास हवाला देना भी जरूरी था क्योकि यूरोप मे आम तौर से पानी की जगह लोग वियर पीते है। खैर, रेस्तरा मे हमारे सामने रोटी, मक्खन और फलो की तश्तरिया रखी गयी। ये सव तो साधारणतया अच्छी थी, मगर काफी जो हमे दी गयी थी, वह काली और कुछ वदवूदार थी, दूध चीनी भी उसमे नही था। थोडी सी ही गले की नीचे उतार पाए, उवकाई सी आने लगी।

मि० मिरकाव, जो हमे मास्को मे लेने आए थे, आग्रह करने लगे कि थोडी ही सही, मेजवानो की स्वास्थ्यकामना के लिए हमे वोदका जरूर पीनी चाहिए वरना वे अपना अपमान समझेंगे। वोदका की तेजी की शोहरत हम सुन चुके थे, इसलिए उनकी शुभकामनाए हमने पानी के गिलास दिखाकर ही की। हमारे एक साथी ने कुछ वोदका पी, वे इससे पूर्व कई वार रूस आ चुके थे।

एयरपोर्ट से हमारा होटल करीव आठ दस मील था। सडक अच्छी थी, दोनो तरफ हरे वृक्षो की लम्वी कतार थी, मगर मकान वहुत ही साधारण तरीके के थे। यूरोप के अन्य देशो की सी उनमे भव्यता नही थी। इन्हे देखकर रूसी जनजीवन की समृद्धि का परिचय भी नही मिलता। हमने रूस के विदेशी प्रचार विभाग द्वारा प्रसारित पत्र-पत्रिकाओ मे पढा था कि सोवियत सघ मे पिछडे इलाको को भी खुशहाल वना दिया गया है।

सोवियत सघ का यह अचल मध्य एशिया के तुर्किस्तान का अश है। उजवेक, कज्जाक किरगिज आदि जातिया यहा रहती हैं। इनके रक्त मे मगोल मिश्रण है। अधिकाश इस्लाम के अनुयायी हैं। मुल्ले और मौलवियो का चूडान्त प्रभाव यहा के जनसमाज पर सदियो से रहा है। छोटे-छोटे स्वतन्त्र जनपद के रूप मे ये विखरे हुए थे। लगभग एक सौ वर्ष पूर्व रूस ने इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था। पिछले पैतालिस वर्षो मे यहा साम्यवादी शासन है। फिर भी, वही इस्लामी शक्लें दिखाई पडीं। लोग लम्वे चोगे अमामे की जगह घटिया पुराने कोटपतलून पहने हुए थे—जैसे हमारे कलकत्ते की हरिसन रोड की दुकानो मे मिलते हैं। कपडे की गोल और छोटी टोपी। हमारे यहा वेढगे या नासमझ को उजवक कहते हैं। क्यो कहते है पता नही। वैसे उजवेक वहादुर और लडाकू भी होते हैं। इन्हे जो वात जच गई, उसमे तर्क की गुजाइश नही। यह इनकी खूवी है। सभव है, अभी तक साम्यवाद इनके मन मे जचा वैठा है वरना कुछ न कुछ ये कर ही वैठते।

हम जिस होटल मे ठहराए गए थे वह छः मजिला था। आधुनिक साजसज्जा से सम्पन्न

भी था फिर भी फर्नीचर और गलीचों को देखकर ऐसा आभास हुआ कि हमारे देश के कलकत्ते, बंबई या दिल्ली के बडे होटलो से यहा का स्तर काफी नीचा है।

अभी शाम के भोजन मे तीनचार घटे का समय था। अपनी घुमक्कड आदत के अनुसार मै बिना किसी को सूचना दिए शहर देखने निकल पडा। ताशकद भी दुनिया के पुराने शहरो की तरह दो हिस्सो (नये और पुराने) मे बँटा हुआ है। शहर के पुराने भाग को देखने के प्रति मेरी रुचि अधिक रहती है, क्योकि इन जगहो मे वहा की प्राचीन सस्कृति का परिचय मिलता है। साथ ही, देश और जाति के इतिहास की परत भी सामने आ जाती है। आधुनिक भाग के प्रति आकर्षण न रहने का कारण है कि यहा लन्दन, पेरिस, ब्रूशेल्स, बर्लिन आदि शहरो की नकल दिखाई देती है।

ताशकद मध्य एशिया के बुखारा, समरकद, बल्ख या बदख्शा की तरह प्राचीन तो नही है फिर भी अरब मे फैली इस्लामी सभ्यता और सस्कार के पिछले १४०० वर्षो का इतिहास यहा मिलता है। पुराने गदे मकान, तग गलिया, फटे गदे और पुराने कपडे पहने आदमी और बच्चे, पीठ पर चमडे के थैले लिए आवाजे लगाकर शर्बत बेचते फेरी वाले—ये सारे दृश्य हमे सदियो पहिले के बगदाद और बसरा मे ले जाते हैं। मैं घूमता हुआ यह सब देख रहा था। दिमाग मे ख्याल उठ रहे थे अरबो रुपए प्रतिवर्ष प्रचार मे खर्च कर सोवियत रूस दुनिया को यह दिखाने का प्रयत्न करता है कि साम्यवादी विशाल साम्राज्य के हर क्षेत्र मे अमनचैन है, खुशहाली है, गरीबी, गदगी और जहालत नही है।

सूखा जलवायु है। प्यास लग आयी परतु पानी पीने को मन नही हुआ। दिक्कत भी थी हिन्दी की तो बात ही क्या अगरेजी जानने वाला भी कोई नही मिला। थोडे से सिके हुए तरबूज के बीज लिए और पानी की जगह लेना पडा घटिए दर्जे का एक लेमन। अवसाद और थकान का मारा किसी तरह होटल वापस आया।

पहुचते ही प्रश्नो की झडी बरस पडी। "कहा गए," "कब गए," "कैसे गए," "किससे मिले," "क्या कहा" और न जाने क्या क्या। झुझलाहट खुद पर आगयी, क्योकि मै भूल गया कि लौह दीवार के अदर आया हू। परन्तु भूल तो मुझसे हो चुकी थी, पछतावा भी हुआ। कुछ झमेला उठता परन्तु दिल्ली से रूसी दूतावास ने शायद हमारे बारे मे अच्छी सिफारिश की थी, इसलिए बात वही खत्म हो गई। हमारे सरकारी रूसी सहायक कहने लगे "बात कुछ नही, हम नही चाहते कि अनजान जगह हमारे मेहमान परेशान हो। उस पर भाषा की भी तो दिक्कत है और बिनावजह आप का समय बर्बाद होने का अदेशा रहता है। आप जहा भी जाना चाहे हम मे से किसी को साथ ले ले। इस से आप को जाने और समझने मे सुविधा रहेगी। मै मुस्करा उठा। शायद हम दोनो एक दूसरे का आशय समझ गए।

थकावट थी ही, मन मे ग्लानि भी थी। न भूख लगी न प्यास, फिर भी औपचारिकता के नाते भोजन की टेबुल पर बैठना पडा। क्राकरी बहुत साधारण सी और नेपकिन घटिया कपडो की। मक्खन, रोटी और फल बेशक बडी मात्रा में थे। अपनी टेबुल से नजर हटा कर दूसरी टेबुलो को देखा—बहुत सी मोटी रोटिया और काली काफी थी, नेपकिन कागज के। कहना न होगा कि हमारे लिए विशेष प्रबध किया गया था।

भोजन के उपरात होटल की छत पर के रेस्तरा मे हम गए। और जाते ही कहा ? व्यक्तिगत स्वतत्रता थी नही। रेस्तरा मे सगीत का कार्यक्रम चल रहा था। समझ मे नही आया, उजबेकी धुने है या रूसी। पेरिस के फौली बर्जे और सेवाय के सगीत तथा नृत्य की तुलना मे ये बहुत ही हलके लगे।

रात दस बजे सोने के कमरे मे चला आया। जी चाहता था जरा घूम आऊ। हवा मे ठडक हो गयी थी, मगर मन की घुटन से परेशान था। ख्याल आ गया कि दिन मे थोडी देर के लिए गया, उस की इतनी जाच पडताल हुई तो फिर रात मे जाना तो और भी सन्देहास्पद हो

सकता है। सोने की चेष्टा करने लगा. कमरा तापनियन्त्रित नही था। बिस्तर वगैरह भी साधारण से थे किंतु दिन भर की थकान के कारण आखे लग गयी। दुस्वप्न आते रहे—मुझे गिरफ्तार कर लिया गया है, साईबेरिया चालान कर दिया गया है, चारों ओर बर्फ ही बर्फ है। कही रेनडियर दीखते है तो कही भालू। सुबह उठने पर सपनो की छाप का असर दिमाग में था। यह थी रूस मे मेरी पहली रात।

दूसरे दिन सुबह नाश्ता कर यहा के व्यापारिक चेम्बर मे गए। यद्यपि यहा के सारे कारखाने और उद्योग सरकारी नियत्रण मे है फिर भी चेम्बर वगैरह हमारे यहा की तरह ही है। अध्यक्षा ने हमे वहा के व्यापार उद्योग की जानकारी सक्षेप मे दी और अग्रेजी मे छपे हुए कुछ विवरणपत्र दिए। उन्होंने वताया कि १९१७ के पहले यह इलाका पिछडा हुआ था। न तो यहा कारखाने थे और न पर्याप्त रूप मे खेती ही थी। सोवियत सघ मे यह १९२५ मे आया। उस के बाद यहा नाना प्रकार के कारखाने खुले है। पास की पहाडियो मे तेल, तावा तथा अन्य खनिज पदार्थ भी मिले है—वेहतरीन किस्म की रूई, फल और सूखे मेवे उत्पन्न करते है। विदा के समय हमे उजवेकी काली टोपी दी जिसे पहना कर फोटो लिया गया। यहा चायपान के दौरान मे हमारे दल के नेता श्री बिडला का सक्षिप्त भाषण भी हुआ।

इस के बाद हमे कपडे की एक मिल दिखाने ले गए। यह काफी बडी थी किंतु मशीने हमारे यहा की आधुनिक मिलो से कही घटिया थी। किसी देश विशेष की समृद्धि का अनुमान वहा के पहनावे और खानपान से लग जाता है। यहा हमारे देखने मे आया कि बहुत हल्के दरजे का और मोटा कपडा बनाया जा रहा है। मजदूरो के बारे मे पता चला कि ३५०) ४००) रु मासिक प्रति व्यक्ति है। जनरल मैनेजर और अन्य आफिसरो को १५००) रु.से २०००) रु तक का वेतन मिलता है अर्थात मजदूर और आफिसरो का वेतनमान का अतर अधिक से अधिक १ और ५ का है। हम ने महसूस किया कि इस बात में साम्यवादी विचारधारा को अवश्य सफलता मिली है। हमारे यहा बडे साहबो का मासिक वेतन किसीकिसी प्रतिष्ठानो मे सब मिला कर २०-२२ हजार तक है, जबकि उनके साथ काम करने वाले मजदूरो को १२५-१५० रु० ही मिलता है।

मिल देखने के बाद हम दोपहर के भोजन के लिए होटल वापस आ गए। भोजन की टेबुल पर कई प्रकार के फलो को देख कर मै ने पूछा कि क्या ये विविध प्रकार के फल यही होते है? पता चला कि सोवियत सघ के इस अचल मे कुछ फल तो होते है मगर बाकी बाहर से मगाये गए है।

भोजन के बाद हमे शहर के नए हिस्से को और वहा की सस्थाओ को दिखाने के लिए ले जाया गया। रास्ते मे हमने लक्ष्य किया कि लोग बेकाम बैठे बातचीत कर रहे है। उन की शक्ल, उन का पहनावा, उन की चाल बता रही थी कि जिदगी का बोझ वे ढो रहे है। इस के पूर्व हमने भारत मे सोवियत पत्रो मे पढा था कि साम्यवादी रूस मे बेकारी की समस्या का हल निकाल लिया गया है।

हम एक स्टोर मे गए। चीजे अधिक नही थी। जो भी थी घटिया किस्म की। हमे खरीदारी करनी नही थी फिर भी जिज्ञासावश दाम पूछे। प्रत्येक के लगभग इस प्रकार थे

महिलाओ के लिए रेक्सिन हैण्डबैग	—	१००) से	१५०) रु,
टेबल क्लाथ	—	१२५) से	१५०) रु
चाकलेट (एक पाउण्ड)	—	२०) से	३०) रु
नैकटाई	—	४०) से	६०) रु
सूती कमीजे	—	१२०) से	२००) रु
ऊनी सूट (साधारण)	—	१०००) से	१५००) रु

सूती सूट (साधारण)	—	४००) से	६००) रु
सिगरेट केस(साधारण धातु का)	—	२००) से	३००) रु.
जूते	—	३५) से	१६०) रु

चीजो का दाम जानकर चकित होना स्वाभाविक था। हमने यह भी सुना कि कोई-कोई विदेशी पर्यटक चुपके से यहा कुछ चीजे बेच भी देते है। मगर इससे क्रेता और विक्रेता दोनो को ही खतरा रहता है। सोवियत सरकार इस ढग के कानून उल्लघन पर कड़ा दण्ड देती है। हमने साथ के सरकारी अधिकारी से इन ऊचे दामो के बारे मे पूछा तो वै विचारे सतोषजनक उत्तर नहीं दे पाए। दूकाने सब सरकारी थी इसलिए लागत और पडता का तो सवाल ही नहीं था।

कार्यक्रम कुछ अरुचिकर सा लग रहा था। हमने लक्ष्य किया कि हमें पहले से निर्धारित की हुई जगहे दिखाई जा रही है, जहा हमारे लिए पूर्व निश्चित तेयारी है। उपाय भी नहीं था। तन के साथ मन को भी चलाने का असफल प्रयोग साम्यवादी कहा तक करते रहेगे कुछ समझ मे नहीं आया। प्रभुदयाल जी ने शहर के पुराने हिस्से को देखने की इच्छा प्रगट की तो सरकारी आफिसर बहाने बनाकर उसे टाल गये। हम लोगो ने भी अधिक आग्रह करना उचित नहीं समझा। मैने धीरे से उन्हें कहा, "कोई बात नहीं, कल मै अकेले ही बहुत कुछ देख आया हू आपको पूरी जानकारी दे दूगा।"

हम चाहते थे कि यहा की आर्थिक अवस्था और व्यवस्था की कुछ जानकारी पा सके। श्री मिरकोव से पूछने के अलावा कोई चारा नहीं था। रीडर्स डाइजेस्ट मे एक लेख पढा था कि साम्यवादी देश कुछ समय पहले तक तो अभेद्य, लौह प्राचीर के अन्दर थे। वहा से किसी प्रकार के आकडे मिलने सम्भव नही। हालाकि, अब कुछ शिथिलता अवश्य की गयी है परन्तु वहा दूसरे देशों की तरह जानने या जाचने की सुविधा कतई उपलब्ध नहीं है। फिर भी मेरा अनुमान है जो बाते हमने पूछी—उनका जबाब गलत मानने का हमारे पास कोई कारण नही है। १८६५ तक उजबेकिस्तान तुर्किस्तान का एक अंचल था। ज्यादातर जमीन रेतीली और रेगिस्तानी है, पहाड भी है। नदियो मे आमू और सायर भी है। जिनके किनारे रूई और फलो की खेती और बागवानी की जाती है। रेगिस्तानी हिस्सो मे वैज्ञानिक साधनो के द्वारा खेती करने का प्रयास प्रारम्भ किया गया है जिससे अच्छी किस्म की रूई यहा बडी मात्रा मे पेदा होने लग गयी है। फिर भी अन्न के लिए इस अचल को सोवियत सघ के अन्य प्रदेशो पर निर्भर रहना पडता है। साम्यवादी क्रान्ति के पूर्व यहा की साक्षरता थी तीन प्रतिशत किन्तु इस समय यह बढ कर अस्सी प्रतिशत हो गयी है। महिलाओ को पुरुषो के समान ही अधिकार प्राप्त हैं। कुछ कट्टर मुल्ला और मौलवियो ने इसका विरोध किया और उत्पात—उपद्रव की चेष्टा की किन्तु उनका कठोरता के साथ दमन कर दिया गया। यद्यपि सोवियत सघ के केन्द्रीय भाग की तरह यहा उन्नत वैज्ञानिक प्रयोगशालाए और अनुसधान केन्द्र नहीं हैं फिर भी कपडे की मिल, रासायनिक और लकडी चिराई के कारखाने है। हम जानना चाहते थे कि यहा के मिल और कारखानो की उत्पादन क्षमता कितनी है पर पूछने पर हमे जानकारी नही मिली। वे लोग विवश थे, शायद उन्हे पहले ही हिदायत दी जा चुकी थी कि क्या दिखाना और कितना बताना है।

दूसरे दिन जब हम मास्को के लिए रवाना होने लगे तो ताशकन्द के अपने मेजबानो को भारत से आए छोटेछोटे उपहार भेट दिये। शुरू मे तो वे इन्हे स्वीकारने मे कुछ हिचके परन्तु आफिसरो के रुख को देखकर खुशीखुशी सबो ने ले लिया। हमारे लिए तो वे कुछ ही रुपयो के थे किन्तु वहां के दामो में ये दुर्लभ जरूर थे और शायद उनका खरीदना उनके बस की बात भी नहीं थी।

प्लेन मे बैठा सोचने लगा कि जीवन मे इस प्रकार के अवसर कई बार आते हैं। हम नयी जगह जाते हैं—वहा के लोगो से मिलते है—कभीकभी उनमे से किसी से मेलजोल भी हो जाता है। परन्तु फिर शायद ही कभी उनसे मिलना होता है। यात्री यदि इन यादो को मन मे सजोए रखे तो उसके लिए शान्ति से जीवनयापन कठिन हो जाता है। इसलिए ही शायद हमारे धर्म ग्रन्थो में लिखा है कि किसी भी वस्तु या घटना से लगाव मत रखो।

रूस के उतारचढ़ाव से संबंधित प्रसिद्ध शहर

मास्को—१

बीसवी शताब्दी के प्रथम दशक मे रूस व जापान के युद्ध के कारण भारतीय राजनीति के विद्यार्थी यूरोप मे ब्रिटिश और जरमनी के अतिरिक्त रूस का नाम भी जानने लगे थे। १९१९ मे जलियावाला बाग का हत्याकाड हुआ और इसके वाद १९४२ तक भारतीय स्वतत्रता के सेनानियो पर विदेशी नौकरशाही के साथसाथ देशी रियासतो के राजेमहाराजे और नवावो के अत्याचार इस कद्र बढ रहे थे कि उनकी स्वेच्छाचारिता, नृशसता और बर्वरता कोजारशाही कहा जाता था अर्थात रूस के सम्राट जार के द्वारा किये गए अत्याचारो मे तुलना की जाती थी।रूस मे जारो का शासन १९१७ तक रहा। उसके वाद वहा लेनिन के नेतृत्व मे जनता ने विद्रोह किया। अतिम जार सम्राट प्रजा द्वारा परिवार सहित मार डाला गया। इससे पूर्व भी कई बार जनता ने जारशाही का अत करने के लिए विद्रोह किया था।कितु कज्जाक सिपाहियो के द्वारा उसे कुचल दिया गया। इन घटनाओ को पढ सुन कर रोगटे खडे हो जाते हैं।

१९१७ के वाद से रूस मे जनतंत्र का अत कर साम्यवादी शासन की स्थापना हुई। पूर्व मे प्रशात महासागर, उत्तर मे उत्तरी ध्रुव सागर, पश्चिम मे वाल्टिक सागर तथा दक्षिण मे हिमालय की हिंदूकुश की श्रेणिया तथा पामीर का पठार। इस विशाल भूखड मे फैले रूस साम्राज्य को सोवियत समाजवादी सघ की सज्ञा दी गई। साम्यवादी सरकार का शासन यहा १९३९ ई० तक निर्विघ्न चलता रहा।

इस समय तक यूरोप के राजनीतिक मच पर हिटलर का सिक्का जम चुका था।

हिटलर भी अपने को समाजवादी कहता था और उसने अपने दल का नाम भी रखा राष्ट्रीय समाजवादी दल (नेशनल सोशलिस्ट पार्टी—नात्सी)। प्रथम महायुद्ध के वाद दो धाराए यूरोप मे पनपी—एक साम्यवाद के रूप मे रूस मे, दूसरी उस के कुछ वर्ष वाद, नात्सीवाद या फासिस्टवाद के रूप मे जरमनी, इटली और स्पेन मे। हिटलर के अधिनायकत्व मे जरमनी ने आशातीत प्रगति की। वह अपने देश मे पूजा जाने लगा। विदेशो के लोग विस्मय से उसे देखने लगे। रूस की प्रगति तव तक धीमी ही रही।

जो भी हो, ये दोनो धाराए एक दूसरे से दूर हटती गई। स्थिति यहा तक वनी कि एक दूसरे को साम्राज्यवादी, विस्तारवादी आदि कहने लगे। हिटलर के प्रताप और प्रभुत्व से सारे यूरोप के देश, विशेषत ब्रिटेन और फ्रास आतकित हो उठे। हिटलर दहाड उठा।

साम्राज्यवादी ब्रिटेन और फ्रास के विरुद्ध उत्कट राष्ट्रवाद और जातिवाद ने जिहाद बोल दिया। १९३९ मे युद्ध छिड़ गया। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि नए युग के यूरोप की एक विशेष धारा का सघर्ष साम्राज्यवाद से छिडा, किंतु आश्चर्य की बात यह हुई कि एक वर्ष के अन्दर ही समाजवादी रूस और जरमनी की आपसी टक्कर कमजोर पोलैंड के बटवारे को लेकर हो गई। रूस भी ब्रिटेन व फ्रास की मित्र-शक्ति मे सम्मिलित हो गया।

सन १९४१ से १९४५ तक चार वर्षो मे मित्र राष्ट्रो ने रूस को अपरिमित युद्ध सामग्री दी। इसी सिलसिले मे इन देशो के लोगो का आवागमन भी वहा सभव हुआ, अन्यथा रूस मे दूसरे देशो की भाति प्रवेश पाना सहज और सरल नही था। इस प्रकार बाहरी दुनिया को रूस के साम्यवादी शासन एव उसकी प्रगति का अनुमान हो सका। पर ज्यो ही युद्ध समाप्त हुआ, मित्रो की मैत्री ढीली पड गई। सोवियत रूस और अन्य जनतत्री राष्ट्रो मे सदेह की खाई बढती गई। ऐसा होना स्वाभाविक था, क्योकि दोनो के शासनतत्र के सिद्धातो मे मूलभूत अतर तो था ही।

स्वाधीनता के बाद भारत ने प्रारभ से ही विश्व की राजनीति मे अपने को गुटबंदी से पृथक रखने की तथा सबसे मैत्री की नीति अपनाई। इसलिए स्टालिन के शासनकाल मे भी रूस से हमारा व्यवहार मैत्रीपूर्ण रहा। फिर भी साम्यवादी शासन ने रूस को लौह प्राचीर के अन्तर्गत ही रखा। जो समाचार रूसी सरकार के मुखपत्र पर 'प्रावदा' मे प्रकाशित होते थे उनसे ही थोड़ी बहुत जानकारी वहा की मिलती थी।

१९५५ मे रूसी प्रधानमत्री बुल्गानिन और वहा के साम्यवादी दल के मुख्य नेता श्री ख्रुश्चेव भारत आए। आज भी हमे याद है कि भारतीय जनता ने उनका अपूर्व स्वागत किया था। उसके बाद जब हमारे प्रधानमत्री श्री नेहरू रूस गए तो रूसी जनता ने उनका हार्दिक अभिनन्दन किया। रूस के इतिहास मे शायद ही इतना विशाल जन-समूह किसी विदेशी राजनयिक अथवा नेता के लिए एकत्र हुआ होगा। रूसी जनता भारत की गुटनिरपेक्ष नीति से प्रभावित थी और उसे एशियाई देशो मे अग्रणी समझती थी। उन्हे विश्वास था कि श्री नेहरू विश्वशाति के लिए अटूट प्रयत्न और परिश्रम कर रहे है।

निकिता ख्रुश्चेव के प्रधानमत्री बनने के बाद रूस के बधनो मे कुछ ढिलाई हुई। भारतीयो के लिए विसा (प्रवेश पत्र) मिलने मे भी कुछ सुविधा होने लगी। वहा स्टालिन की दमन नीति की खुले तौर पर आलोचना होने लगी। विदेशो से बहुत से यात्री जाने लगे तथा रूसी कलाकार और इजीनियरो को भी दूसरे देशो मे जाने की अनुमति मिलने लगी।

इस से पूर्व हमारे देश से कुछ पर्यटक विद्वान रूस हो आए थे, जिन मे राहुल साकृत्यायन तथा यशपाल उल्लेखनीय है। इन दोनो ने वहा के बारे मे लिखा भी है किंतु ऐसी धारणा है कि ये साम्यवादी विचारधारा के पोषक थे, इसलिए इनकी बाते पूर्णत निरपेक्ष नही है।

ताशकद मे दो दिन ठहर कर हम मई की एक दोपहर मे मास्को पहुचे। एयरपोर्ट पर कई रूसी अधिकारी थे, इसलिए जाच पडताल मे देर नही लगी। इस समय तक मै अमरीका नही गया था। इसलिए एयरपोर्ट का भव्य रूप देख कर चकित रह गया। हजारो छोटे बडे वायुयान खडे थे।

वहा से मास्को शहर लगभग पचास किलामीटर होगा। रास्ते मे हरे भरे खेत और बस्तिया दिखाई पडी। फिर एक बहुत ही शानदार गुबज दिखने लगा। हमे बताया गया यह मास्को विश्वविद्यालय का गुबज है। इस के बाद एक अच्छी चौडी सडक पर पहुचे। दोनो ओर एक सरीके बने सात मजिले मकान थे। इन की सख्या हजारो की रही हो तो आश्चर्य नही। हमे श्री मिरकोव ने बताया कि साम्यवादी सरकार ने पहला काम लोगो के आवास की

व्यवस्था का किया है और उसी उद्देश्य से ये मकान बनाये गये है। पहले के बने सारे मकान जो व्यक्तिगत सपत्ति के रूप मे थे, उन का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया है। इसलिए व्यक्ति विशेष द्वारा कानूनी अड़चन उठाने का सवाल नही रहा।

हमे वहा के प्रसिद्ध होटल 'लेनिनग्राद' मे ठहराया गया। सारा होटल वातानुकूलित था। सर्दी इतनी अधिक थी कि बिना इस के कमरे मे रहना या काम करना सभव नही था। एयरपोर्ट से चलते समय सनसनाती सर्द हवा ने हमे आगाह कर दिया था कि हम उस मास्को मे है जहा की ठडक मे नेपोलियन और हिटलर की फौजे जम गई थी। पूछने पर पता चला कि इन महीनो मे जब कि भारत मे गरमी के मारे आदमी पसीने से नहा उठता है और धरती तवा हो जाती है, यहा तापमान शून्य तक रहता है तथा जाडे मे तो शून्य से भी कही नीचे चला जाता है।

होटल पहुचते शाम हो गई थी परतु लगता था दिन ढला नही। यहा मई जून मे १०, ११ बजे तक प्रकाश रहता है। खाना खा कर बाहर जाने का मन था, किंतु मिरकोव और उस के साथी किसी काम से बाहर गए थे। शायद हमारी अब तक की यात्रा का हवाला देने और आगे के लिए हिदायत लेने। ताशकद के अनुभव ने हमे सिखा दिया था कि पूर्व सूचना और सरकारी साथी के बिना सोवियत देश में घूमना परेशानी को न्योता देना है। अतएव, होटल के ही इर्दगिर्द टहलने लगे।

होटल के स्वागत कक्ष मे काफी सख्या में विदेशी दिखे। इच्छा तो हुई कि बातचीत कर जानकारी प्राप्त की जाए, पर प्रभुदयालजी के सकेत से सभल गया। अगरेजी के कुछ समाचारपत्र वहाँ दिखाई पड़े। देखा, मास्को से ही प्रकाशित थे और समाचारपत्र की अपेक्षा प्रचारपत्र अधिक लगे। बाद मे पता चला कि यहा विदेशी समाचारपत्रो के प्रसार को सरकार प्रश्रय नही देती।

होटल के सामने एक बहुत बडा मैदान था। घुटन सी हो रही थी। अत मैं और प्रभुदयालजी वहा आ कर एक बेच पर बैठ गए। आसपास रूसी नागरिक भी घूमफिर रहे थे। इन का स्वास्थ्य अच्छा था। कद लबा, चौडी हड्डिया और चेहरे पर चमक थी। स्त्रिया अपेक्षाकृत स्थूल और ठिगनी लगी। शरीर पर इन के गरम कपडे तो जरूर थे, पर थे घटिया दरजे के। जूते भी फटे से। वातावरण स्वच्छद और उन्मुक्त था, पर यूरोप के अन्य शहरो जैसा उच्छृखल नही। पेरिस, लदन और रोम के पार्को के रात्रिकालीन दृश्य तो यहा कतई न दिखे।

हमारे पास कुछ स्त्रीपुरूष आ कर खडे हो गए। पूछने लगे, 'तुर्की या इदिस्की (भारतीय)?' रूसी हमे आती नही थी, अगरेजी बेकार थी, हिंदी का सवाल नही। हम ने मुसकराते हुए कहा, 'इदिस्की' और नमस्कार किया। पडित नेहरू ने रूस मे नमस्कार को लोकप्रिय बना दिया था। हमारे नमस्कार से सभी प्रसन्न हुए। दो एक ने तो मुस्करा कर हाथ भी जोडे। मैं ने लक्ष्य किया कि हमारे गरम मोटे ओवरकोट, कलाइयो पर दस्ताने और जूतो को वे निगाह बचा कर बारबार देख रहे थे। स्वाभाविक ही था, क्योकि वहा के स्तर के अनुसार ये चीजे बेशकीमती थी।

सर्दी बढने लगी। लोगबाग जाने लगे। हम भी ग्यारह बजे अपने कमरे मे आ गए और सो गए। होटल की ग्यारहवी मजिल पर हमे कमरा दिया गया था।

दूसरे दिन सुबह उठ कर खिडकी के पास आया। हलका कुहरा था, फिर भी पास के मकान और सडके साफ दिखाई पड रही थी। नीचे झुक कर देखा, पुराने मकान थे। जर्जर। रहनसहन का स्तर भी काफी नीचा लगा।

इन उत्तरी देशो मे सर्दी इतनी अधिक पडती है कि पसीना आता ही नही। इसलिए लोग स्नान की आवश्यकता महसूस नही करते। यो अरब मे भी, जहा गरमी काफी पडती है, स्नान के प्रति लोगो मे उदासीनता ही है, शायद पानी की कमी के कारण। पर हम तो भारतीय

सस्कारो में पले है। इसलिए रूसी सर्दी का हमारी दिनचर्या पर असर नही पडा। हम ने स्नान किया और नाश्ते के लिए तैयार हो गए।

आठ बजे हम नाश्ते के लिए भोजन कक्ष (डाइनिंग रूम) मे आए। हमारे लिए अलग मे एक बडी सी मेज सजा कर रखी गई थी। उस पर गुलदस्ते रखे थे, सभी तश्तरियो मे अनेक प्रकार के फल, फलो के रस, दूध के बडेबडे कैटर आदि। कई प्रकार की मिठाइया भी थी। हम ने लक्ष्य किया, ताशकद की भाति यहा भी अन्य व्यक्तियो की मेजो पर मोटी रोटियां, भुना हुआ रसदार मास और काली कॉफी रखी हुई है। मै ने धीरे से प्रभुदयालजी से कहा, "रूस की जलवायु अच्छी है, वरना ऐसे आहार पर इन का स्वास्थ्य कैसे बना रहता!"

हमारा एक अन्य साथी फुसफुसाया, "साम्यवाद तो सव के लिए वरावरी का दावा करता है, फिर भोजन में इतना अतर क्यों?"

श्री भट्टाचार्य ने इस का जवाब दिया, "हमारे यहा भी तो विदेशी मेहमानो के लिए ट्रेनो मे नई बोगिया लगती है, स्पेशल ट्रेने दौडा दी जाती है, वरना आम जनता तो तीसरे दरजे मे खडेखडे भी चली जाए तो गनीमत है।"

नाश्ता कर के सव से पहले हम लेनिन और स्टालिन की समाधिया देखने गए। ये क्रेमलिन की दीवार के बाहर रेड स्क्वायर मे है। इस जगह के बारे मे हम ने बहुत कुछ पढ रखा था। राजतत्न के विरुद्ध क्राति के सेनानी वीरो की खून की होली—जार के कज्जाक सैनिको द्वारा यहा अनेको बार खेली गई थी। अतिम युद्ध भी इसी लाल चौक मे सन १९१७ मे लडा गया, जब कि जार सरकार के सशस्त्र सैनिको ने भूखीनगी निरीह जनता पर गोली चलाने और उन्हे घोडो के पैरो के नीचे रौदने से इनकार कर दिया था। उस समय के शहीदो की पाच सौ समाधिया क्रेमलिन की दीवार से सटी हुई है।

लेनिन और स्टालिन का समाधि स्थल भी क्रेमलिन की दीवार के पास रेड स्क्वायर के कोने मे है। वाहर से काले और लाल सगमरमर की वनी यह इमारत विशेष आकर्षक नही लगती। फिर भी देशविदेश के दर्शनार्थियो की लवी कतारे यहा लगी ही रहती हैं। हमारे साथ के अधिकारी ने वहा खडे प्रहरियो को कुछ सकेत किया, हमे क्यू मे खडा नही होना पडा। हम ने यह भी लक्ष्य किया कि रूसी नागरिक जो वहा खडे थे, उन्हे बुरा नही लगा, अपितु हमे विदेशी जान प्राथमिकता देने पर वे प्रसन्न थे।

प्रवेश द्वार से लगी कुछ सीढिया उतरने पर हम ने देखा, दो ऊची टेबल शीशे मे ढकी कक्ष मे रखी हैं। एक पर लेनिन और दूसरी पर स्टालिन फौजी वरदी मे सोए हुए है। चेहरे की भावभगिमा, कपडो की ताजगी और सफाई देख कर यह अनुभव ही नही होता कि वे शव है। लेनिन की शक्ल पर कुछ शिकनें जरूर है ऐसा शायद इसलिए कि लेनिन अतिम वर्षो मे अस्वस्थ रहा। पर स्टालिन तो ऐसा लगता है जैसे अभी सोया है। जो भी हो रूस के इन दो भाग्य-विधायको को देख कर वहुत सी वाते मेरे दिमाग मे घूमने लगी।

साम्यवाद ईश्वर को अथवा दैवी शक्ति को नही मानता। धर्म उस के लिए मानसिक विकृति अथवा दुर्वलता का द्योतक है। किंतु मनुष्य के शव की पूजा! इसलाम मे भी तो मूर्तिपूजा का निषेध है, पर कावा के पत्थर को सभी चूमते है। हजरत मुहम्मद साहव के बाल को शीशे की नली मे हिफाजत से रखा गया है। हजारो सिर उसे देखते ही झुक जाते है। फिर क्यो मुसलमानो ने नालदा और राजगृह के बौद्धविहार उजाडे, सोमनाथ को खडहर वनाया? इसाइयो ने भी यही किया। क्रुसेड के नाम पर दानव वन मानवता को तलवार के घाट उतार कर अपने लिए स्वर्ग द्वार खुलवाए। साम्यवाद ने उसे दुहराया। गिरजो और मसजिदो को म्यूजियम बना दिया। हजारो पादरियो और मुल्लाओ को साइवेरिया भिजवा दिया। साम्यवाद के नशे मे या उस के आतक से रूसी जनता ने सव कुछ सहा।

मैं देख रहा था, कितना सुंदर और आकर्षक व्यक्तित्व था स्टालिन का। फिर भी यह

व्यक्ति कितना क्रूर और दुर्धर्ष आजीवन रहा। इस के सामने जाने और बोलने की हिम्मत नही होती थी। आज वह निर्जीव और असमर्थ पडा है। शीशे से ढका न रहता और प्रहरी भी नही रहते तो शायद मैं उस की उस तर्जनी को अवश्य छूता, जिसके इशारे से लाखो के जीवन का ही नही, अनेक देशो के भाग्य का वारान्यारा होता था।

हम जिन दिनो रूस मे थे, स्टालिन की नीति की खुली आलोचना वहा होने लगी थी। उस की तस्वीरे राजकीय भवनो से हटा दी गई थी। कहा जाता था कि वह मार्क्सवादी की जगह व्यक्तिवादी था।

स्वदेश आने के कुछ दिनो बाद पता चला कि स्टालिन का शव क्रेमलिन की उस समाधि से हटा दिया गया है और कही दूर अनजान जगह भेज दिया गया है। आश्चर्य हुआ। जीवित व्यक्तियो से तो वैर भुगताने की बात सुनने और समझने मे आती है। मरने के बाद तो बडे से बडे शत्रु के प्रति भी वैर की भावना समाप्त हो जाती है, फिर स्टालिन तो थोडे वर्ष पूर्व रूस के वर्तमान नेता और अधिकारियो का सर्वोच्च कामरेड था। पर यहा शव को भी प्रायश्चित्त करना पडा। स्टालिन ने भी अपने जीवन मे लाखो को मौत के घाट उतारा। बेघरबार किया। अपने साथियो मे से बहुतो को साइबेरिया की सर्दी मे ठिठुर कर मरने को भेज दिया या षड्यत्र कर उन की हत्या करा दी। ट्राटस्की को, जिस ने साम्यवाद की स्थापना मे उस से कम सेवा नही की, स्टालिन के आतक से स्वदेश छोडना पडा। फिर भी सुदूर मेक्सिको मे जिस नृशसता से उस की हत्या हुई, वह किसी से छिपी हुई बात नही है। हमारे देश मे ऐसी घोर नृशसता का केवल एक ही उदाहरण मिलता है औरगजेब का, जिस ने दारा के कटे सिर को धूल मे लपेट, बूढे हाथी पर रख सारे शहर मे घुमाया था। सभी कट्टरताओ का रूप एक सा होता है।

समाधि स्थल देख कर हम क्रेमलिन गए। क्रेमलिन के साथ रूस का इतिहास कुछ इस कदर जुड गया है कि इसे एकदूसरे से अलग नही किया जा सकता। इस का निर्माण १२ वी शताब्दी मे हुआ। इन दिनो मगोल और तातारो के हमले अकसर हुआ करते थे। इसलिए सुरक्षा की दृष्टि से क्रेमलिन के चारो ओर प्राचीर बना दी गई। शुरू मे यह लकडी की बनी थी, जो हमलावरो को रोकने मे असफल रही, बाद मे इसे ईंटो और पत्थरो की बना कर पक्का कर दिया गया। प्राचीर खडी करने के बाद धीरेधीरे इस मे गिरजे, गुबज और महल बनते गए। सब से विशाल मीनार की ऊचाई २२१ फुट है, हमारे कुतुब मीनार के बराबर।

मास्कोवा नदी क्रेमलिन से सट कर बहती है। यही लगभग १२५ वर्ष पूर्व जार ने अपना प्रसिद्ध महल बनवाया जिस मे आजकल साम्यवादी पार्टी के बडेबडे जलसे हुआ करते है। यही क्रेमलिन का म्यूजियम भी है जिस की गणना ससार के बडे सग्रहालयो मे होती है। यह तीन विशाल भवनो मे है पहले मे जारो की निजी वस्तुए सग्रहीत हैं, राजमुकुट, सिंहासन, वस्त्र, पोशाक आदि। विदेशो से उन्हे जो बहुमूल्य उपहार भेट किए जाते थे, वे सब यहा सजा कर रखे गए है। यो तो ब्रिटेन तथा अन्य कई देशो मे म्यूजियम है, जिन मे अच्छे और कीमती सग्रह है, किंतु जैसा कि हम ने पेरिस के लूव्रे और मास्को के क्रेमलिन मे देखा, अन्यत्र कही भी इतनी दुर्लभ और अमूल्य वस्तुए देखने मे नही आई।

दूसरे भवन मे हथियारो का अद्वितीय सग्रह है। नाना प्रकार के हथियार विभिन्न समय के है। फ्रास के सम्राट नेपोलियन से छीनी गई अनेक प्रकार की तोपे भी रखी है। तीसरे भवन मे जार की सरकार का सचिवालय था। राजतत्र के अवसान के बाद यह लेनिन का आवास बना। हम ने उस का अध्ययन कक्ष देखा। दावात,कलम, पेड आदि सारी चीजे इस प्रकार सजीसजाई रखी है, मानो थोडी देर पहले ही लेनिन वहा से लिख कर गया हो।

इन सामग्रियो के बारे मे जानकारी देने के लिए कुशल एव प्रशिक्षित गाइड रहते है। इन

के अलावा विभिन्न भाषाओं मे पुस्तके भी है। किंतु वे तो रिसर्च स्कालरो के काम की है जो महीनो यहा बैठ कर साम्यवाद के विकास और उस के गूढ तत्त्वो का अध्ययन करते है। हमे तो दो-तीन घटों मे यहा सब कुछ देख लेना था।

क्रेमलिन मे तीन प्राचीन गिरजे भी है। एक मे जहा जारो का राजतिलक होता था, वहा अब साम्यवादी नेताओ की समाधिया है। यहा हम ने विश्व का सब से बडा घटा देखा। २३० वर्ष पूर्व इसे जार ने बनवाया था। वजन है ५,६०० मन, ऊचाई और घेरा है क्रमश १८ फुट और ९० फुट।

दोपहर हो आई थी। यद्यपि सुबह डट कर नाश्ता किया था, ठडा देश है, घूमे भी बहुत, भूख लग आई। फाटक के बाहर रेड स्क्वायर मे आ गए। छुट्टी का दिन था हजारो दर्शक इधरउधर घूम रहे थे। हम ने १ मई की फौजी परेड की तसवीरे देखी थी, यह चौक हमे अपरिचित नही लगा।

एक बजे होटल आ कर भोजन कक्ष मे गए। हम शाकाहारियो के लिए रोटी, मुरब्बे, मक्खन, केक और फलो के रस की व्यवस्था थी। हमारे साथियो मे जो आमिषाहारी थे, उन के लिए एक बेशकीमती और दुष्प्राप्य सामग्री मगाई गई थी मछली के अडे। रूसी भाषा मे इसे 'केवेयर' कहते है। चिरमी के आकार के काले मटमैले से। इन्हे चख कर हमारे साथी स्वाद की बडी प्रशसा कर रहे थे। भोजन के बाद प्रथानुसार वोदका पी कर स्वास्थ्य के लिए शुभकामना की गई। हम ने फलो के रस के गिलास ऊचे उठा कर प्रथा का निर्वाह किया।

मास्को मे हमारा प्रवास छ दिन का था। इसी के अनुसार सरकार ने प्रोग्राम बना दिया था। मै इस आशा मे रहा कि अन्य देशो की भाति यहा भी सरकारी मेहमानो के लिए एक दिन अपनी मर्जी मे घूमोफिरो की छूट मिलेगी, पर मेरा अनुमान गलत निकला। दिन के तीन बजे श्री मिरकोव के साथ उद्योग और कृषि सबधी यहा की स्थायी प्रदर्शनी देखने गए। वैसे हमारे देश मे भी प्रदर्शनियो के आयोजन होते रहते है। पर यहा जो कुछ देखा, अद्‌भुत और कल्पनातीत था। ५०० एकड के मैदान मे सैकडो विशाल भवन बने थे। बीचबीच मे दूब के लान और फूलो के बगीचे थे, जिन मे फव्वारे चल रहे थे।

प्रवेश द्वार देखते ही प्रदर्शनी की भव्यता का अनुमान हो जाता है। द्वार के ऊपर रूसी कृषक दपति की विशाल धातु मूर्ति है जो वहा के मूर्धन्य शिल्पियो द्वारा बनाई गई है। हाथों मे जौ की बालिया लिए हुए वे कदम बढा रहे है। मिरकोव ने बताया कि इस मे ३०० से अधिक मडप सोवियत सघ के प्रत्येक जिलो के है। जिन मे वहा के उद्योग और कृषि के उत्पादन का प्रदर्शन किया गया है। लाखो व्यक्ति इसे देखने के लिए प्रति वर्ष आते है। विद्यार्थियो के लिए तो यहा इतनी सामग्री एकत्रित है कि उन्हे बहुत कुछ सीखने और समझने की सुविधा सहज ही मिल जाती है। अनेक विदेशी यात्री और विद्यार्थी भी यहा आते रहते है। श्री मिरकोव ने बताया कि इसे अच्छी प्रकार देखने के लिए महीनो का समय चाहिए। हमे तो उसे समयाभाव के कारण सरसरी तौर पर देखना था इसलिए मोटरो से ही प्रमुख मडपो को देखा।

केंद्रीय मडप सब से बडा है। यहा जारो के समय की खेती की स्थिति, उस के आकडे, भूमि की उर्वरा शक्ति, उत्पादन और कृषि के औजार आदि दिखाए गए है। साथ ही साम्यवादी शासन के इन ४५ वर्षो मे कृषि की कितनी उन्नति हुई है और वैज्ञानिक उपकरणो के प्रयोग से कितना अधिक विकास हो सका है, इस के आकडे एव विवरण चित्रो तथा प्रत्यक्ष यत्रो द्वारा प्रदर्शित है। सब प्रकार के शस्यादि अन्न एव फल शीशे की मेजो पर बडे ही कलापूर्ण ढग से सजे है।

अन्य मडपो मे अपनेअपने अचल की विशेष जानकारी दी गई है। किसी मे भेडबकरियो एव मधुमक्खियो की नसलसुधार की दिशा मे प्रगति, तो किसी मे मुर्गी पालन की, कही मछली

तो कही सूअर, गाय, घोडे की । कही जगली पेडो की नसल सुधार कर उन्हे मोटा और लबा बनाने की दिशा मे प्रगति दिखाई गई है तो कही सब्जियो और फलो के विकास और उत्पादन का नवीनतम परिचय दिया गया हे । जार्जिया के चाय के उत्पादन प्रयास पर भी प्रकाश डाला गया है । सभी मडपो मे गाइडो के अलावा सभी भाषाओ के आवश्यक विवरण उपलब्ध हैं। अगरेजी और फ्रेंच की तो वात ही क्या, अरबी, फारसी, चीनी और जापानी में भी हैं । पर भारतीय भाषाओ मे कोई भी परिचय देखने मे नही आया, हिंदी मे भी नही । भारत मे सोवियत प्रचार विभाग द्वारा प्रसारित रूस के हिंदी प्रेम की यह असलियत जान कर आश्चर्य हुआ ।

दर्शको मे विद्यार्थी काफी सख्या मे थे । तीनचार कक्षो को सरसरी तोर पर देखने मे दो घटे लग गए । अभी हमारी रुचि के विषय—उद्योग ओर विज्ञान के मडप नही देखे जा सके थे । इसलिए कार मे बेठ कर उस हिस्से मे गए ।

यहा जो कुछ देखा, उस से अदाजा हुआ कि द्वितीय महायुद्ध के समाप्त होने तक रूस औद्योगिक यत्रो के निर्माण ओर कौशल मे ब्रिटेन, फास, जर्मनी ओर अमरीका से काफी पिछडा हुआ था, क्योकि उस ने अपनी सारी शक्ति कृषि के विकास मे नियोजित कर दी थी। युद्ध के वाद के इन १५ वर्षो मे शिल्प ओर उद्योग की ओर ध्यान दिया गया ओर विभिन्न प्रकार की छोटीवडी मशीनो का उत्पादन किया जाने लगा है । फिर भी जो निपुणता ओर कारीगरी पश्चिमी जरमनी, स्विट्जरलैड और ब्रिटेन की मशीनो मे दिखाई पडती है, वह यहा नही है । हा, खेती के ट्रैक्टरो के उत्पादन मे ये सव से आगे है । वे सस्ते है तथा छोटेवडे कई प्रकार के है । विज्ञान मडप मे राकेट ओर स्पूतनिक के माडल देखने को मिले । प्रथम स्पूतनिक, जो अतरिक्ष मे भूमडल की कई परिक्रमा कर चुका था, हम ने यहा देखा । गाइड ने गर्व से कहा, "इस दिशा मे हम अमरीका से वहुत आगे वढ चुके हे ।"

यह सही था, क्योकि कुछ दिनो पूर्व ही रूसी युवक यूरी गागारिन अतरिक्ष की सफल यात्रा कर आया था । हम ने मिरकोव से पूछा, "क्या सोवियत सघ ऐसे भी राकेट वना रहा है जो वटन दबाते ही निर्दिष्ट लक्ष्य पर विस्फोट कर देंगे ?"

उस ने कुछ भी उत्तर नही दिया । सभवत उसे पता न हो या इन विषयो पर न वोलने की सरकारी निर्देश हो । जो भी हो, किंतु आज यह किसी से छिपा नही कि अमरीका ओर रूस दोनो ने हीं ऐसे सहारक प्रक्षेपास्त्र बना लिए है ।

उस समय तक हाइड्रोजन वम वन चुका था । किंतु प्रदर्शनी मे एटम ओर हाइड्रोजन दोनो ही प्रकार के वम नही रखे गए थे ।

३०० मडपो मे से हम केवल सातआठ ही देख पाए थे कि रात होने लगी । ठडक होने के बावजूद थकावट आ गई । वही एक कक्ष मे बैठ कर गरम काफी ली और रवाना हुए । देखा, करोडो पावर की तेज रोशनी के रगीन बल्ब ओर नियोन जगमगा रहे है । यदि आधुनिक रूस का सही परिचय इस प्रदर्शनी से मिलता है तो यह मानना पडेगा कि साम्यवादी प्रयोग को सफलता मिली है, किंतु निर्णय पर तो तभी पहुचा जा सकता है जव जनसाधारण से मिल कर, गावो मे जा कर वास्तविक स्थिति का अध्ययन स्वतत्र एव वेरोकटोक करने दिया जाय । यो तो हम भी विदेशियो को भाखडानगल और चडीगढ दिखा कर अपने देश की प्रगति का परिचय करा देते है । हम इतनी ईमानदारी अवश्य रखते है कि विदेशियो पर आवागमन के और जनसाधारण से मिलने के मामले मे कोई प्रतिवध नही रखते । हमारे यहा जिस प्रकार महात्मा गाधी को राष्ट्रपिता मानते है, आधुनिक रूस मे लेनिन के प्रति उसी प्रकार की श्रद्धा है । रूस भी भारत की तरह सदियो तक ऐयाश और क्रूर शासको द्वारा शोषित और त्रस्त रहा । दोनो ही देशो मे आम लोग भूखो मरते रहे है । अन्न उपजाने वाले किसानो के वच्चे अभावो मे दम तोडते रहे हैं । नवावो और वादशाहो ने तीतर, बटेर और कुत्तों की फौज पर

लाखो रुपए बर्बाद किए, पर रियाया की राहत के लिए अस्पताल और स्कूल की आवश्यकता नही समझी। किसी ने आवाज उठाई तो कोड़े बरसे। भारत मे गाधीजी ने अहिंसात्मक आदोलन चला कर राष्ट्र को नया जीवन दिया। रूस मे लेनिन ने हिंसात्मक क्राति से राजतत्र को समाप्त किया। यह विवाद अभी अनावश्यक है कि सही रास्ता कौन सा था। समय इस का निर्णय करेगा।

दूसरे दिन हम लेनिन की स्मृति मे बने स्मारकभवन को देखने गए। सर्वप्रथम हमे क्राति चौक के सग्रहालय मे ले जाया गया। इस विशाल भवन मे १६१७ मे जार के समर्थको ने भाग कर शरण ली थी, किंतु क्रातिकारी सैनिको ने उन को बाहर ला कर गोली से उडा दिया था। इसलिए इस का नाम क्राति चौक पडा।

सग्रहालय मे रूस के गत १०० वर्षो का पूरा इतिहास है। क्रातिकारियो को कैसी यातनाए दी गई, किन सघर्षो से गुजर कर साम्यवादी शासन की स्थापना की जा सकी आदि सब बाते चित्रो और चार्टो के माध्यम से दिखाई गई है। लेनिन द्वारा बरती गई सभी वस्तुए यहा सजा कर रखी गई है। उस के अतिम काल मे पहने गए ओवरकोट को भी देखा, जिसे छेद कर गोली निकल गई थी।

मास्को स २० मील दूर गोर्की नाम का गाव है, जहा लेनिन ने अपने जीवन के अतिम छ वर्ष बिताए थे। जीवन की विषमताओ से और देश की उथलपुथल की चिंताओ से जूझते हुए, विदेशो मे दीर्घ काल तक अभावग्रस्त मे रहने के कारण उस का स्वास्थ्य टूट चुका था। इसलिए स्वतत्रता के बाद १६१८ मे वह मास्को से यहा आ कर रहने लगा। १६२४ तक यही रहा। आसपास गरीब किसानो के छोटेछोटे घर है। एक प्रकार से यह देहात ही है। लेनिन के इस स्मारक मे उसे लिखे गए अगणित पत्र तथा उपहारो का सग्रह है। लिखने की मेज, पहनने के कपडे और पलग आदि सभी सुरक्षित है। इन्हे देखते हुए मुझे लेनिन के जीवन की एक घटना याद आ गई। हमारे क्रातिकारी नेता राजा महेद्रप्रताप एक बार लेनिन से मिलने यहा आए थे। उन का सामान एक मजदूर ढो कर लाया था। लेनिन ने पहले उस मजदूर से हाथ मिलाया फिर राजा साहब से।

रूस के महान लेखक मैक्सिम गोर्की से लेनिन की गहरी मित्रता थी। कहना चाहिए कि वह गोर्की का अनन्य भक्त था। इसलिए इस गाव का नाम गोर्की रखा गया। रूस मे आज भी लेनिन के बाद यदि किसी का नाम है तो वह है गोर्की और तालस्ताय का।

मास्को से गोर्की जाते समय किसानो के घर दिखाई दिए। इन से सटे हुए छोटेछोटे खेत और फलो के बगीचे थे। पूछने पर पता चला कि ख्रुश्चेव की सरकार ने सहकारी खेती (कलखोज) के साथसाथ अन्य लोगो को छोटे पैमाने पर निजी खेती करने की भी छूट दी है। इस की उपज को वे खुद काम मे ले सकते है अथवा बाजार मे बेच भी सकते है। हमे अन्य सूत्रो से यह जानकारी भी मिली कि निजी खेती की प्रति एकड उपज सहकारी खेती की उपज से दुगनी से भी अधिक है। उन के द्वारा बहु प्रचारित सहकारी खेती की वास्तविकता की पोल न खुल जाए, इसलिए रूसी सरकार इस तथ्य को छिपाती है। किसानो का स्वास्थ्य साधारणत अच्छा दिखा। हम उन के घरो मे जा कर उन के रहनसहन को देखना चाहते थे पर यह सभव न था। दूर से ही देख कर सतोष कर लिया। छोटे खेतो मे ट्रैक्टर के उपयोग का प्रश्न नही उठता। हा, इन मे छोटे मोटरचालित यत्रो को देखा। जमीन की खुदाई वगैरह का काम किसान नरनारी अपने हाथो से ही कर रहे थे।

दोपहर बाद हमे विदेश व्यापार मत्री से मिलने जाना था। नई दिल्ली की तरह यहा भी विभिन्न मत्रालयो के अलगअलग भवन है। शान्त वातावरण, सफाई और अपने काम के प्रति

रुचि ने हमे वहा के अनुशासन का अच्छा एव प्रभावशाली परिचय दिया। मन्त्री महोदय से औपचारिक बातो के बाद रूस के आयातनिर्यात से सबधित चर्चा हुई। भारत से रूस मे किस प्रकार आयात बढाया जाए, चायनाण्ता के साथ इस पर भी चर्चा हुई।

हमने लक्ष्य किया कि यद्यपि उन मे बहुत से अगरेजी जानते थे फिर भी बातचीत दुभाषिए के माध्यम से कर रहे थे। इस प्रकार उन्हे सोचने और समझने का मौका मिल जाता था। शायद यह भी उद्देश्य हो कि एकदूसरे की बातो पर निगरानी भी रख सके।

उन की बातचीत से ऐसा आभास हुआ कि सारी बातो का खाका पहले ही तैयार कर लिया गया था। विदा करते समय उन्होने हमे रूस के व्यापार के सबध मे बहुत सी सचित्र पुस्तके भेट की।

धर्म के साथसाथ मानवता से भी चिढ़ ?

मास्को—२

मास्को मे रहते दो दिन हो गए थे। इस छोटे से अर्से मे कभीकदास अकेले ही घूम लेने के वाद कुछ हिम्मत बढी।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की निजी सचिव श्रीमती ज्ञान दरवार के भाई श्री परमात्मा प्रकाश वहा के रेडियो के हिंदी विभाग मे थे। दिल्ली से रवाना होते समय श्रीमती दरवार ने उन का एक परिचय पत्र मुझे दे दिया था। रूस के वारे मे निष्पक्ष जानकारी भी लेनी थी इसलिए अगले दिन उनसे मिलने का प्रोग्राम तय किया।

सुवह चार वजे उठा। प्रभुदयालजी सो रहे थे। चुपके से विस्तर छोड तेयार हो गया। खिडकी से वाहर झाककर देखा—कुहासे की हलकी सी चादर मे मास्को अलसाया सा करवटे ले रहा था। किसी को कुछ कहे बिना होटल से वाहर निकल गया।

उजाला हो गया था पर सडको पर इक्केदुक्के ही आदमी दिखाई पड रहे थे। ओरते लम्वे व्रश से सडके साफ कर रही थी। स्वास्थ्य इन का अच्छा था पर इन मे से कुछ काफी वृद्धा थी। वे इस काम के लायक नही थी। भारत मे इस उम्र की ओरतें शायद ही काम करती हो। आम तौर से अपने यहा इन की परवरिश परिवार वाले ही करते है। जो निहायत अभागन होती हे, उन्हे पेट पालने के लिए भीख मिल जाती है। धीरेधीरे सडक पर वढता हुआ सोचने लगा साम्यवादी व्यवस्था मे सयुकत परिवार का तो सवाल ही नही रहता। फिर इन बूढेवूढियो के पालनपोषण की जिम्मेदारी सरकार की है। जीवन की सध्या के बोझ ढोते हुए इन के लिए यदि आश्रम वना कर विश्राम करने की व्यवस्था होती तो कहा जा सकता था कि सामाजिक दायित्व का निर्वाह सरकार स्वय कर देती है। कम से कम मानवता के नाते यह अपेक्षित भी है। भले ही धर्म के नाम से साम्यवादी चिढते हो पर मानवता का तो वे दावा रखते है। हम ने अन्य यूरोपीय देशो मे देखा था वृद्धो के लिए आवासगृह और खानेपीने की व्यवस्था सरकार द्वारा समुचित रूप से है।

कदम वढाता हुआ भूगर्भ ट्रेन के स्टेशन पर पहुचा। नक्शा जेव मे था ही। एक व्रार फिर से उसे देख लिया। यूनिवर्सिटी क्षेत्र मे जाना था। मास्को की खूवी हे भूगर्भ ट्रेनो की। लन्दन पेरिस, वर्लिन अथवा पृथ्वी के किसी भी देश मे इस का मुकावला नही। भूगर्भ स्टेशने क्या है मानो वास्तुशिल्प ओर कलाकारीगरी के अद्भुत नमूने है। सफाई वेमिसाल और वेजोड़। मुझे ऐसा लगा कि साम्यवादी सरकार विशेष रूप से इन की व्यवस्था पर ध्यान रखती हे। प्रकाश की सुदर व्यवस्था ओर जगहजगह साम्यवादी प्रतीक, विचारक और नेतृवर्ग की मूर्तिया करीने से लगी है। रूस के सर्वोत्तम रगीन मारवल का प्रयोग यहा किया गया है।

कुछ ही मिनटो मे ट्रेन आ गयी। कम ही यात्री थे। बहुत धीरेधीरे आपस मे बोल रहे थे। कुछ बची नजर से मुझे देख भी लेते थे। कुछ मुस्कराते भी थे देख कर। मुझे पिछले ५-६ दिनो मे पता चल गया था कि रूस वालो के लिए विदेशियो से मिलनाजुलना खतरे से खाली नही और बिला वजह न्योता देने का साम्यवादी शासन मे शायद ही कोई साहस करे। इगलैड के लोग साधारणतया अपरिचितो से खिचे से रहते है किंतु यहा वालो की तरह बधेबधे नही। फ्रास, जर्मनी, इटली या यूरोप और अमेरिका के सभी देशो मे जनता को विदेशियो से बोलने या मिलने जुलने की पूरी छूट है। यांत्रिक व्यवसाय की वृद्धि के लिए वे विदेशियो से बातचीत ओर मित्रता करने को उत्सुक रहते है। किंतु मानव समाज मे पारस्परिक मिलन को नियत्रण मे रख कर आज के साम्यवादी देश किस प्रकार विश्व को अनुप्रेरित करने की सोच रहे है—समझ मे आया नही।

बात की बात मे गतव्य स्टेशन पर ट्रेन पहुच गयी। स्टेशन से निकल कर ऊपर सडक पर आया। देखा, सैकडो मकान एक सरीखे चारो तरफ बने हुए है, और बहुत से बन रहे हैं। हमारे यहा भी कलकत्ते मे साल्टलेक अचल मे स्व० विधानचन्द्र राय की प्रेरणा से पश्चिम बग सरकार ने जनता के आवास के लिए कुछ मकान बनाए है। परन्तु कलकत्ते की बढती हुई आबादी के लिए अब तक यह प्रयत्न अपर्याप्त सा ही रहा है। मास्को मे पश्चिम जर्मनी या हालैड की तरह सब के लिए तो मकान नही बन पाए फिर भी प्रयत्न जोरो से चालू है। सडक का नाम खोजने लगा। दिक्कत हुई, कारण कि रूसी लिपि समझ मे आती नही थी। लोगो से बातचीत करने मे भाषा की समस्या बाधक थी। आखिरकार, सभ्यता के आदिम युग की भाषा का प्रयोग किया यानी हाथ और मुह से सकेत। काम कुछ बना. रूसी अग्रेजी सहायक पुस्तक भी सहायक बनी।

करीब तीस मिनट लगे। चक्कर लगाता हुआ उन के मकान पर पहुचा। स्वचालित लिफ्ट से सातवी मजिल पर पहुच कर उन के फ्लैट मे लगी घन्टी की बटन दबाई। कुछ ही देर बाद रात के लिबास मे ही पतिपत्नी ने दरवाजा खोला। उन की शक्ल के तनाव से जाहिर हो रहा था कि इतनी सुबह को अप्रत्याशित रूप से मीठी नीद मे विघ्न पहुचाने वाले का स्वागत करने को वे दरवाजा नही खोल रहे है। किंतु ज्यो ही उन्होने मुझे देखा, पहचान लिया, "अरे रामेश्वर जी, आइए। नमस्ते   हम तो आप की प्रतीक्षा मे परसो से ही थे   दिल्ली से आप के बारे से हमे हेडाजी ने लिखा है।" श्रीमती हेडा, श्रीमती प्रकाश की बडी बहन है और दिल्ली मे मेरे पडोसी। इसलिए, एक प्रकार से बिना पूर्व मिलन के ही पतिपत्नी दोनो का ही मैं परिचित था। पारस्परिक झिझक क्षणो मे मिट गयी। मुझे ड्राइग रूम मे बैठा दोनो कपडे बदल कर आ गए। उन्हे ताज्जुब हो रहा था कि इतने सवेरे होटल से चल कर इतनी दूर अकेला ही आया हू। मैने हसते हुए कहा, "घुमक्कडो के लिए अकेलापन या अजनबीपन बाधक नही, प्रेरक होता है। मै ने तो सुदूर उत्तर के वीरान लैपलैन्ड मे भी अकेले ही भ्रमण किया है।" श्री प्रकाश कहने लगे, "भाई वह तो स्वीडेन है, वहा की बात और है। क्या यहा आप से किसी सिपाही ने पूछताछ नही की ? आप ने हिम्मत के साथसाथ जोखिम का काम किया, टाटिया जी। यह न भूले यह मास्को है, साम्यवादी रूस की राजधानी। यहां के नियम मानने मे शिथिलता न लाये। आप ने खुफिया पुलिस के सर्वोच्च अधिकारी बेरिया के बारे मे तो पढा ही है। भविष्य मे सतर्क रह कर घूमाफिरा करे।"

करीब घटे भर तक बातचीत होती रही। अपने परिचित और रिश्तेदारो की खोजखबर, दिल्ली की गतिविधि, देश के बारे मे नाना प्रकार की जिज्ञासा, सभी पर जी भर कर उन्होने बाते की। छोडना ही नही चाहते थे क्योकि स्वदेश के लोग वहा बहुत कम मिलते है। कुछ भारतीय है जरूर पर वे या तो दूतावास मे या इजीनियरिंग कालेजो मे। कहने लगे, "मास्को रेडियो पिछले चार दिनो से आप लोगो की खबरे प्रसारित कर रहा है। मुझे तो आश्चर्य हो

रहा है कि भारतीय पूंजीपतियो के सिरमौर श्री बिडला को यह साम्यवादी सरकार इतना महत्त्व किस कारण से दे रही है । शायद रूसी प्रधान मन्त्री ख्रुश्चेव की नीति कुछ मौलिक परिवर्तन की दिशा मे बढ़ रही है ।"

मैं ने उन का फ्लैट देखा । तापनियन्त्रित दो कमरो का है, स्वय सम्पूर्ण यानी गुसलखाना रसोई पानी वगैरह सब कुछ है । किराया यहा मासिक वेतन और परिवार के सदस्यो की सख्या पर धार्य है । यदि केवल पतिपत्नी है और मासिक आय १५०० रु० है तो फ्लैट का किराया लगेगा २०० रु० किन्तु यदि साथ मे दो बच्चे है और वेतन ५०० रु० है तो उसी फ्लैट का किराया होगा ३५ रु० । मुझे यह व्यवस्था और अनुपात बहुत जचा । भारत मे भी इस पद्धति को अपनाना अपेक्षित है । रूस मे सारे मकान सरकारी है । हजारो की तादाद मे हर साल मकान बनाए जा रहे है फिर भी आवास का अभाव अभी बना हुआ है । मजदूरो के कमरो मे रेल के कम्पार्टमेट की तरह सोने के लिए नीचे ऊपर खाटे बनी है । यानी १० × १२ फुट के कमरे मे आठ व्यक्ति रहते है । वे बारीबारी से सोते है । पहली पारी के मजदूर जब आते है तो दूसरी पारी के कारखाने चले जाते है । इन के सामान रखने की सन्दूके खाट मे ही बनी है । एक प्रकार से, इस ढग के आवास को छोटी डॉरमेटरी कहा जा सकता है ।

खाने की चीजो के बारे मे उन्होने बताया कि मोटी रोटी और सुअर का मास तो सस्ता मिल जाता है । इन के अलावा, दूसरी चीजे काफी महगी है । दूध-मक्खन और फलो की बहुतायत नही है । चिकनाई की पूर्ति सुअर की चर्बी से हो जाती है । आम तौर से यहा के लोगो की खुराक अधिक है यानी ३०००-३२०० कैलोरी प्रति व्यक्ति का औसत है । सर्द मुल्क के लिए इतना शायद जरूरी है भी । निरामिषो के लिए काफी दिक्कत है ।

काम करना सब के लिए जरूरी है, चाहे स्त्री हो या पुरुष । जब महिलाए काम पर जाती है तो अपने शिशुओ को सरकारी 'क्रीजो' मे छोड जाती है । यहा उन की देखभाल नर्से करती है, काम से वापसी पर अपनेअपने बच्चे लेकर घर चली जाती है । इन क्रीजो का सचालन और सगठन सरकार स्वय करती है ।

उन की बातो से काफी जानकारी मिली, जो रूस मे दूसरी जगह मिलनी सभव नही थी । रूस के बारे मे पक्ष विपक्ष मे अतिरजित चित्रण ही मिलते है । इसी कारण साम्यवादी पद्धति के प्रयोग का यथार्थ परिणाम सामने आ नही पाता ।

बहुत दिलचस्प बाते हो रही थी, मगर मेरी लाचारी थी कि नाश्ते के पहले ही मुझे अपने होटल पहुच जाना चाहिए था । अतएव, उन्हे दूसरे दिन सुबह अपने यहा आने का निमत्रण देकर विदा ली ।

होटल वापस आकर देखा मि० भट्टाचार्य ढूढ रहे थे । कुछ चिन्तित भी थे । मै ने अपना भ्रमण वृतान्त सुनाया तो वे चकित रह गये । उन्हे विश्वास ही नही हुआ कि इतनी जल्दी और अकेले दस मील जा कर, भेट मुलाकात कर कैसे ८ बजे तक वापस आ गया । मै ने धीरे से कहा—"भट्टाचार्य जी, घुमक्कड लोगो के पैरो मे चक्कर होता है । वे एक जगह जमकर बैठ ही नही सकते । रही खतरे और झझट की बात सो वह उत्तरी दक्षिणी ध्रुवो और अफ्रीका के भयावह जगली देशो से तो यहा कम ही है ।"

साढे आठ बजे मिरकोव वगैरह आ पहुचे । उन से मैने अपनी सुबह की सैर के बारे मे कोई जिक्र नही किया ।

यहा भी चेन सिस्टम यानी शृखला पद्धति थी। एक ओर से चल कर घूमती हुई जजीरो पर इजन के पुर्जे लगते जाते थे, फिर चेसिस वैठाई जाती थी और इस प्रकार अन्त मे दूसरी ओर मे ट्रक तैयार होकर निकलती थी। यहा के एक ट्रक पर लागत वैठती है लगभग १०,००० रु० देखने मे काफी मजबूत लगती भी। हमारे यहा एक ट्रक पर लागत वैठती हे लगभग २२,००० रु० इस के अलावा सरकारी टैक्स हे। १५,००० रु० अर्थात ग्राहक को ३७,००० रु० मे एक ट्रक पड जाती है। कारखाने की व्यवस्था अच्छी थी और मजदूर अनुशासन मानते हैं। काम के समय बातचीत और चुहलबाजी जो आमतौर से हमारे यहा साधारणसी बात हे, यहा के मजदूरो मे नही देखने मे आयी। मुझे वताया गया कि व्यक्ति की कार्यक्षमता पर पदोन्नति और सुखसुविधा का ध्यान रखा जाता है। अनुशासन का स्तर सैनिक कठोरता की तरह है। कारखानो के अन्दर दलवन्दी या विरोध प्रदर्शन की गुजाइश नही हे और न इन हरकतो को सरकार ही प्रोत्साहन देती हे। मजदूर स्वस्थ और प्रसन्न लगे। इन मे स्त्रियो की भी काफी सख्या थी जो भारी काम भी वडी दक्षता से कर रही थी। हडताल के वारे मे मैं ने पूछा तो वताया गया, मजदूर कारखानो को अपना समझते हे क्योकि सव राष्ट्र की सम्पत्ति हे और देश की समृद्धि मे ही उन का जीवन और सुखसुविधा सम्पूर्ण रूप से आधारित है। सरकार की व्यवस्था और नियत्रण रहने के कारण सव के साथ एक सा व्यवहार रहता है। अनुशासन भग के लिए कडा दड है। यह भी सुना गया वडेवडे खुफिया अफसर साधारण मजदूरो के साथ मिल कर काम करते है और उन की गतिविधियो पर नजर रखते हे। इस स्थिति मे हडताल की कल्पना मे ही जान पर जोखिम हे। मै सोचने लगा कि भारतीय साम्यवादी दल के नेतागण तो आये दिन कारखानो की तोडफोड, दगे और हडतालो को प्रोत्साहन देते रहते हैं। शायद मार्क्स के सिद्धान्तो के अनुसार उन के लिए सबसे जरूरी और पहला काम है साम्यवाद प्रचार। इस के लिए अगर देश का औद्योगिक उत्पादन घटे या वेकारी हो तो भी उन्हे कोई परवाह नही। सच पूछा जाय तो वे तो चाहते ही है कि पूरी तौर से अव्यवस्था हो जिससे पडोसी साम्यवादी देशो को हस्तक्षेप का मौका मिले।

इसमे कोई सदेह नही कि राष्ट्र के निर्माण या पुनर्गठन मे अनुशासन और कठोर नियत्रण परमावश्यक है। रूस ने पूरी तौर से इस का प्रयोग किया। जनता का सहयोग भी उसे मिला। कारण कि उस के सामने राष्ट्र का और उन के स्वय के जीवनमरण का प्रश्न था। १९४२ मे जर्मनी की नाजी फौजे पोलेड आदि देशो को रोदती हुई मास्को के भीतर पहुच गयी थी। वहा के कारखाने ध्वस्त किये जा चुके थे या रूसियो ने स्वय नष्ट कर दिये थे ताकि जर्मनो को फायदा उठाने का मौका न मिले। अधिकाश मकान भी वमो की मार से ढह चुके थे। उसी रूस मे अव एक दूसरा ही नजारा देखने मे आता है। नाजियो की पराजय के वाद जिस द्रुतगति मे देश का पुनर्निर्माण और पुनर्गठन हुआ वह अनुकरणीय हे। मास्को के पुनर्निर्माण को तो अद्भुत और अभूतपूर्व कहना चाहिए। यहा के स्वस्थ और प्रसन्न नागरिकों के चेहरे पर इस सफलता का गर्व परिलक्षित होता हे।

मोटर ट्रको का कारखाना देखने के वाद हम शहर के अन्य स्थानो को देखने के लिए निकले। तीन एक सरीखी वडीवडी कारो का एक साथ होना वहा वालो के लिए कुछ ताज्जुव की वात थी। क्योकि, एक तो वहा कारे कम है और दूसरे जो हे भी वे आमतौर से मझोली या छोटी है। 'पोवेदा' कार के दाम १२,००० रु० थे जब कि जिन कारो मे हम सेर कर रहे थे। उन की उन दिनो कीमत ५५,००० रु० थी। टैक्सिया सवकीसव सरकारी थी ही—कारे भी अधिकतर मत्री, अफसर या विदेशी दूतावासो की थी। किसीकिसी प्रोफेसर या कलाकार के पास अपनी कार भी थी।

मास्को आधुनिक रूस की सर्वोत्तम कृति है। इसे वे वडे गर्व से विदेशियो को दिखाते है। बडीबडी चोडी सडके, दोनो तरफ एक सरीके बने नएनए मकान, थोडीथोडी दूर पर

बागबगीचे और विभिन्न विषय और रुचि के सग्रहालय। दुनियावालो के सामने इन सब को साम्यवादी सरकार अपनी सफलताओ के प्रमाण के रूप मे प्रस्तुत करती है।

यहा का लेनिन पुस्तकालय वाशिंगटन के काग्रेस पुस्तकालय के बाद विश्व का सब से बडा पुस्तकालय माना जाता है। इस मे १५० भाषाओ की दो करोड बीस लाख पुस्तके है। १८-२० बडेबडे पाठागार है जहा २५०० व्यक्ति बैठ कर आराम से पढ सकते हैं। अलग-अलग भाषाओ के सूचीपत्र है। मै ने हिंदी सूचीपत्र देखा। मुझे ऐसा लगा अन्य देशो की तरह या तो इन्होंने हिन्दी के प्रति उपेक्षा बरती है या उन्हे सही जानकारी नही मिली है। इस दिशा मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन एव काशी नागरी प्रचारिणी सभा को चाहिए कि विदेशो को वे हिन्दी के प्रकाशन के सबध मे आवश्यक सूचनाए दे और उनसे सम्पर्क स्थापित कर सहयोग दे। हमारी सरकार से यह आशा हम नही रख सकते। कारण, हिंदी के प्रति अभी तक सरकारी नीति दुविधाग्रस्त है। वहा हम ने, तुलसी, प्रेमचद और मैथलीशरण आदि की कृतिया देखी।

मास्को मे दूसरा बडा आकर्षण है त्रेत्याकोव आर्ट गैलरी। इस में पिछली नौ शताब्दियो मे उच्चकोटि के कलाकारो द्वारा बनाये गए पचास हजार चित्र है। इन मे एक दो तो इतने कीमती हैं कि उन का मूल्य आका नही जा सका है। रूसी क्राति के उत्तर काल की घटनाओ के चित्र काफी सख्या मे है। किंतु पूर्व क्रातिकाल के चित्रो मे कला की बारीकिया ज्यादा खिलती सी लगी। यद्यपि मै कला पारखी तो नही हू परतु मुझे विश्व के बडेबडे कला सग्रहालयो मे जा कर वहा के चित्रो के सामने देर तक बैठ कर देखने का शौक है। मुझे ऐसा लगा कि शाश्वत मानव भावनाओ की अभिव्यजना भौतिक विचारो की तुलना मे कही अधिक स्पष्ट और पुष्ट निखरती है। ईसा मसीह सबधी धार्मिक चित्र तो हृदय मे सहज भाव से करुणा का उद्रेक करा देते है। रूसी कलाकारो द्वारा बनाये गये चित्र कहीकही तो रेफेल, ल्योनार्दो अथवा यूरोप के मध्ययुगीन प्रसिद्ध कलाकारो की टक्कर के है। इन्हे देखते हुए दर्शक आत्मविस्मृत से हो जाते है। मृत ईसा के चित्र को देखते समय ऐसा लगा मानो सचमुच ही उस करुणामूर्ति ने अभी कुछ ही क्षण पहले देह त्यागी हो। तूलिका की सफाई देखते ही बनती है। सूलो से उतार कर ईसा को नीचे सुलाया गया है। आखे अधखुली है, अगो से खून बह रहा है। आखो मे अपूर्व प्रेम, दया और क्षमा है। मुखमडल पर शाति के साथ नैसर्गिक तेज है। चारो ओर उन्हे घेर कर उन के भक्त शोकाकुल है।

साम्यवादी क्राति से सबधित कुछ चित्र ही मार्मिक लगे। इन मे से एक मे दिखाया गया है कि जार सरकार के विरोधी क्राति के सेनानियो को साइबेरिया निष्कासन किया जा रहा है, जहा से वापस आना सर्वथा असभव है। बल्कि वर्ष दोवर्ष मे उन की मृत्यु अधिक निश्चित है। उन के निर्विकार चेहरो मे एक दृढता झलकती है किन्तु इन के आत्मीय, पितामाता, पत्नीपुत्रो के विलाप के दृश्य देख कर चित्त आर्द्र हो उठता है। दूसरा एक चित्र देखा, कज्जाक फौजियो के घोडो की टापो के नीचे रौदे गये एक युवक की लाश का। पत्नी उस के पास अर्द्ध विक्षिप्त सी बैठी है, वेदना और विलाप का यह चित्र स्वत ही अत्याचारी जारो के प्रति क्षोभ उत्पन्न कर देता है। मैं ने पेरिस और लूव्रे मे देखा था कि सैकडो स्त्रीपुरुष गैलरी के सामने रखी बैचों पर बैठे हुए तन्मय हो कर वहा के चित्रो को देखते रहते है। बहुतो की तो यह दैनिक दिनचर्या है। भावुक लेखक, कलाकार और वास्तुशिल्पी इन चित्रो से प्रेरणा ग्रहण करते रहते है। ऐसी बात मास्को मे नही दिखाई पडी।

आज का रूस साम्यवादी है, इसलिए उस का विश्वास द्वद्वात्मक भौतिकवाद मे है। इसी का प्रचार और प्रसार वहा निरतर चलता रहता है। फिर भी मैं ने यह लक्ष्य किया कि ईसाई धर्म से सबधित चित्रो के सामने स्त्रीपुरुष मौन हो कर प्रार्थना करते है। ऐसा लगता है कि युगों से चले आये धार्मिक सस्कारो को कानून और प्रचार के धक्के से मानव मन से निकाल

फेकना किसी प्रकार भी सभव नही।

मास्को की दुकाने अन्य देशो से भिन्न लगती है। यहा आमतौर से चीजो की विविधता बहुत कम दिखाई पडती है और वह चहलपहल या उत्साह खरीददारो मे नही मिलता जो अन्य देशो मे है। सभवत साधारण जनता की क्षीण क्रयशक्ति इस का कारण है।

दोपहर के बाद हम मास्को के सब से बडे डिपार्टमेंट स्टोर्स 'गुम' मे गये। यह स्टोर एक अच्छा खासा बाजार ही है। चार मजिला विशाल भवन है जिस मे बडेबडे कमरे है। इन मे विभिन्न प्रकार की चीजे सजा कर रखी गयी थी। दैनिक जीवन की उपयोगी वस्तुओ के दाम तो हमारे यहा से लगभग दुगुने थे परतु शोक की नायाब चीजो के दाम लगभग दस या पदरह गुने अधिक। इस के बारे मे हमे पहले ही से जानकारी थी कि साम्यवादी रूस मे यदि किसी कलाकार, साहित्यकार या शिक्षाविद को बहुत अधिक वेतन दिया जाता है तो दूसरे हाथ से इन्ही स्टोर्स के माध्यम से सरकार उन से पैसे वापिस वसूल भी कर लेती है। यादगार के बतौर मै ने यहा के दोतीन पोस्टकार्ड खरीदे जिन मे एक था महाकाश के प्रथम सफल यात्री युरी गागारीन का और दूसरा था महाकाश को चीरता हुआ उस के राकेट यान का।

फ्रास मे राज्यक्राति लाने का श्रेय वहा के साहित्यकारो का रहा है। इगलेड की जनता को भी औलिवर क्रॉमवेल के जमाने मे मिल्टन के काव्यग्रथो ने बडा प्रभावित किया था। भारत के साहित्यकार और कवि भी जनता के हृदय के सोये हुए भावो को जगा कर समाज और देश की विचारधारा को बराबर दिशादान देते रहे है। इसी प्रकार रूस मे क्राति का प्रचार और प्रसार वहा के साहित्यकारो के कारण ही सभव हुआ। आज भी वहा की साम्यवादी सरकार उन्हे भूली नही है बल्कि उन्हे देवता की भाति पूजा जाता है। उन की स्मृति मे सग्रहालय, पार्क, सडके और नगर तक के नाम रखे गए है। जिस आदर और श्रद्धा से हम गीता, रामायण और भागवत को देखते है उसी प्रकार रूस मे कार्लमार्क्स के कैपिटल के बाद तालस्ताय और गोर्की की रचनाए पढी जाती है। तालस्ताय की अन्ना करनीना, युद्ध और शाति तथा गोर्की की मा और मेरे विश्वविद्यालय को केवल साहित्यिक महत्व ही वहा नही मिला है बल्कि उन का स्थान सैद्धातिक दृष्टि से भी काफी ऊंचा है।

उसी दिन शाम को भारतीय राजदूत श्री के पी एस मेनन ने हमे दूतावास मे भोजन के लिए आमन्त्रित किया था। प्राय सो-सवा-सोभारतीय जो उन दिनो मास्को मे थे, शामिल हुए। भारतीय सगीत और वाद्य का कार्यक्रम भी था। भोजन अपने ही देश का था। ताजगी आ गयी। पारस्परिक परिचय हुआ। दूतावास के लोगो के सिवाय भिलाई कारखाने से बहुत भारतीय युवक शिक्षा लेने के लिए यहा आए हुए थे। बातचीत करने पर पता चला कि वे वहा के अनुशासन और शिक्षा पद्धति से प्रभावित हैं। आम तौर से रूसियो का व्यंवहार भी उन के प्रति स्नेहपूर्ण है किंतु एक कसक सब के मन मे थी कि मुक्त परिवेश और स्वच्छदता का वहा अभाव है। हर जगह एक परदा सा रहता है।

इन दो घटो मे हसी और कहकहे के बीच मन का बोझ हल्का हुआ। ऐसा लगा कि हम दिल्ली या कलकत्ते के किसी उत्सव मे शामिल है। रात दस बजे होटल वापस आये। मास्को की सडके रोशनी मे मुसकरा रही थी। ट्राफिक की लाल, पीली, हरी बत्तिया खिडकियो से देख रहा था। सामने के मकान के कमरे की खिडकी पर पर्दा नही था। बरबस नजर उधर चली गयी। वहा देखा आदम का बेटा हौवा की बेटी की मानमनुहार कर रहा था।

धीरे से अपने कमरे की खिडकी बद कर के सोने का प्रयत्न कर ने लगा।

●

मशीनवाद के घेरे में......

मास्को–३

सुबह नाश्ते पर परमात्माप्रकाशजी सपत्नीक आए। किसी खास मीनू का इतजाम उन के लिए किया जाना सभव नही था। जैसा कि आम तौर पर मास्को मे हम प्रति दिन के नाश्ते मे लेते रहे, उसी ढग की चीजे थी। हा, चिवडे और बादाम की बरफी जो हम अपने साथ भारत से ले आए थे, तश्तरियो मे रखे गये। हम यह जानते थे कि स्वदेश से दूर रहने पर अपने देश की हर चीज प्यारी लगती है। प्रकाश दंपति तो हमारे विशुद्ध देशी चिवडे और बरफी के टुकडो को चख कर बडे प्रसन्न हुए, कहने लगे कि एक लबे अरसे के बाद ये चीजे मिली है, इन से अपूर्व तृप्ति मिली। मैं ने एक डब्बे मे वे दोनो चीजे रख कर उन्हे भेट देते हुए कहा, साथ रख लीजिए तृप्ति का खजाना। दोनो हस पडे।

इन लोगो को रूस आए करीब साल भर हो चुका था। नाश्ते के दौरान मैं ने अपने दिवगत मित्र राहुल साकृत्यायन की पत्नी के बारे मे जानना चाहा। सुना था कि वे मास्को मे ही रहती है। अत• उन्हे व उन के पुत्र को एक बार देखने और उन से बातचीत करने की इच्छा थी। प्रकाशजी ने कहा, होगी तो सभवत यही, पर हमं नें कभी उन के बारे मे रुचि रखी नही और न जानने का प्रयास ही किया।

कुछ मुसकरा कर वह कहने लगे, "राहुलजी यदि स्वदेश जा कर दूसरी पत्नी अपना सकते हैं तो क्या उन की रूसी पत्नी दूसरा पति अपने देश मे नही चुन लेगी? भारतीय पत्नी की तरह आजीवन पति के नाम की माला जपने की प्रथा यहा नही है। रूस मे अन्य यूरोपीय देशो की तरह व्यक्तिगत जीवन मे उच्छृखलता नही है, लेकिन तलाक दे कर पुर्नविवाह के लिए तो छूट है।

यहां स्त्रीपुरुष तभी बधते है जब उन्हे परस्पर की आवश्यकता का नितात अनुभव होता है। अवैध प्रणय का कोई प्रश्न नही। अतएव, अवैध संतान का सवाल नही। न किसी को विश्वामित्र की तरह तपोभग की ग्लानि होती है न कोई शकुतला की तरह त्याज्या ही। सरकार सतति की परवरिश करती है। नई पीढी मे बहुतो को अपने जनक का परिचय न मालूम हो तो कोई बात नही।

फिर भी यहा उद्दाम उच्छृखलता नही है, जो पश्चिम के अन्य देशो मे देखने में आती है। रूस मे 'बीटल कट' लडकेलडकियो को प्रोत्साहन नही मिलता। हमारे देश मे विशेषत बगाल मे 'भूखी पीढी' की एक नई परपरा चली है। इस ढंग के विचार और आचार यहा देखने मे नही आए। स्वच्छदता है जरूर, पर उस मे एक शिष्टता है और आचार भी। यही कारण है

कि आम तौर से यहा के युवकयुवतियो का स्वास्थ्य अच्छा है।

स्पष्ट है कि ऐसे वातावरण मे तालाक की सुविधा और असुविधा का सवाल महत्त्व नही रखता। फिर भी तलाक होते है और पुनर्विवाह भी। किंतु तभी जब कि पतिपत्नी के स्वभाव और स्वार्थ टकराते है। लोग इन मामलो पर ध्यान नही देते है।

परिवार नियोजन को सोवियत सरकार प्रोत्साहन नही देती, बल्कि जो महिला जितने अधिक बच्चो की जननी होती है, उस की प्रतिष्ठा उतनी ही अधिक होती है। १२ बच्चो की माता को 'नगरमाता' का गौरव दिया जाता है। एक महिला के १७ बच्चे जीवित थे, उसे 'देशमाता' की उपाधि से विभूषित किया गया और उस का सार्वजनिक अभिनदन हुआ। मुझे इन बातो को सुन कर याद आया, हमारे यहा भी 'दूधो नहाओ, पूतो फूलो' का आशीर्वाद बडेबूढे देते थे, क्योकि जमीन बहुत थी और जनसख्या कम।

रूस मे परिवार नियोजन की आवश्यकता है भी नही, क्योकि विशाल सोवियत भूमि की जनसख्या सिर्फ बीस करोड है। खनिज बहुत है। उन्हे तो जन चाहिए अधिक से अधिक, जिन की मेहनत मे साइबेरिया जैसे उजडे प्रदेश को आबाद कर सके।

मै ने प्रसगवश पूछा, "क्या साइबेरिया के मरुस्थल को खलिहान या औद्योगिक अचल बनाना सभव हो सकता है ?" उन्होने बताया कि सोवियत वैज्ञानिक प्रकृति से टकराने से डरते नही। उत्तरी ध्रुव के बर्फ के समुद्र मे यदि नौमार्ग बना लेना सभव हो सका तो साइबेरिया की धरती मे भी वे लहराते खेत एक न एक दिन बना ही लेगे। जहा तक उद्योगो का सवाल है, वे तो थोडी मात्रा मे इस अचल मे स्थापित हो चुके हैं।

प्रकाश दपति विदा हो ही रहे थे कि सरकारी गाइड हाजिर हो गए। हमे ससद देखना था। गाइड बारबार घडी देखने लगे। समय की पाबदी के औचित्य पर हमे आपत्ति नही है, पर समय को सेकड की सुई पर बाधना मन मे एक बोझ सा पैदा करता है। खैर, हम निकल पडे।

भारत की तरह सोवियत रूस की धरती की कोख भी खनिज से भरी हुई है। शायद ही ऐसा कोई खनिज पदार्थ हो जो यहा न पाया जाता हो। कोयला, क्रोमाइट, पेट्रोल, सोना, मैंगनीज, ताबा इत्यादि सभी कुछ प्रचुर मात्रा मे यहा उपलब्ध है। रूस इन के उत्पादन मे ससार के अग्रणी देशो मे माना जाता है।

आम तौर से हम जिसे रूस कहते है वह इस विशाल राष्ट्र का केवल एक भाग है, जो यूरोप मे है। सही माने मे तो सारे देश को सोवियत भूमि कहना चाहिए। इस मे रूस, यूक्रेन, बाइलोरूस, अजरबईजन, जार्जिया, आर्मेनिया, कज्जाकिस्तान, तुर्कमनिस्तान, किरगिजस्तान, ताजिकस्तान, उजबेकिस्तान, लातिविया, इस्टोनिया, लिथुआनिया और मोलडाविया के गणराज्य है। पृथ्वी का यह सब से अधिक विस्तृत राष्ट्र है। एक ओर प्रशात महासागर की लहरे इस की पूर्वी तटो से टकराती है, दूसरी ओर फिनलैड की खाडी इस के पश्चिमी सागर तट की सीमा रेखा है। पृथ्वी की भूमि का छठवा भाग सोवियत शासन के अन्तर्गत है। केवल विषुवत् रेखा की भीषण गरमी को छोड कर सब प्रकार की जलवायु इस विशाल भूखड पर कही न कही मिलेगी ही।

मन मे बडी इच्छा थी कि मार्क्स के सिद्धातो पर आधारित कम्युनिज्म के प्रयोग के परिणाम निकट से देखू। सोवियत भूमि मे आने के पूर्व भारत मे इस के बारे मे काफी प्रचार सामग्री पढने को मिली थी। अपने देश मे कम्युनिस्टो द्वारा समयसमय पर सोवियत रूस और चीन भ्रमण के अनुभव पर सस्मरण पढ कर जिज्ञासा बढ़ती थी कि शाश्वत और स्वाभाविक मानव प्रवृतियो की उपेक्षा अथवा दमन कर के समाज मे साम्य प्रतिष्ठित करने मे आखिर ये देश किस सीमा तक सफल हो सके है।

ट्राटस्की से ले कर बेरिया तक बडेछोटे लाखो व्यक्तियो का जीवन के मच से नेपथ्य मे

लापता हो जाना सर्वविदित है। मित्र देश हगरी मे १६५६ मे जो कुछ रूसियो ने किया उस की तुलना मे नाजी फौजो के फ्रास और नार्वे के अमानुषिक अत्याचार बहुत हल्के ठहरते है, और फिर वे तो युद्ध के दौरान किए गए थे।

उन दिनो रूसी ससद का सत्र चालू नही था। फिर भी दोचार व्यक्ति जो शायद ससद सदस्य थे वहा के पुस्तकालय मे मिल गए। मुझे आशा थी कि वे दिलचस्पी के साथ हम से मिलेगे। मेरा ख्याल गलत निकला। प्रतिबध यहा भी था। हमे दोएक ने देखा जरूर, मगर अनदेखा कर दिया।

सोवियत ससद भवन काफी बडा है और भव्य भी। लेकिन हमारे ससद भवन को तो बात ही न्यारी है। यहा ३,००० दर्शको के बैठने की जगह है। सदस्यो की सख्या ७७५ है जिसमे १६० महिलाए है, दोतिहाई मजदूर और किसानो के प्रतिनिधि है और शेष बुद्धिजीवी वर्ग के डाक्टर, वैज्ञानिक, इजीनियर, प्रोफेसर, लेखक आदि है। गणतत्र का दावा साम्यवादी सोवियत जरूर करता है पर वहा दूसरी पार्टी है ही नही। साम्यवाद के सिवा दूसरी किसी विचारधारा का पोषण करना देशद्रोह समझा जाता है। अतएव यहा जो चुनाव होते है वे मुख्यत व्यक्तियो के चयन के लिए। निर्वाचन का सारा व्यय सरकार वहन करती है। इसलिए गरीब से गरीब भी ससद सदस्य या मत्री बन सकता है। यद्यपि एक ही पार्टी है फिर भी अपनेअपने क्षेत्र की समस्याओ को ले कर काफी जोरदार बहस हो जाया करती है, व्यग्य और हसी का वातावरण भी हमारे देश की ही तरह रहता है।

रात्रि मे हम बहुचर्चित बोलशाय थियेटर देखने गए। विश्व मे सिवा अमरीका के शायद ही इतना बडा थियेटर हाल कही हो। रगमच बहुत ही विशाल था। पर साजसज्जा साधारण दर्जे की थी। यहा अभिनेताओ की सख्या सैकडो रहती है। हमारे साथ एक द्विभाषी महिला कर दी गई थी जो हमे अगरेजी मे वहा की विशेषताए समझाती जाती थी। मै ने चुपके से प्रभुदयालजी से कहा कि प्रेमचद और राहुल का नाम लेले कर सोवियत प्रचार यत्र भारत मे हिंदी प्रेम का जो रूप प्रदर्शित करता है उस का वास्तविक रूप यहा देखने मे आता है कि हमारे लिए एक हिंदी दुभाषिए की व्यवस्था न की जा सकी।

द्विभाषी का स्वभाव मधुर था पर उस की अगरेजी का रूसी ढग थोडा बाधक था। शायद उस ने महसूस भी किया और इसलिए वाणी और सकेत दोनो से वह हमे समझाती रही।

भारत से रूसी राजदूत श्री बेनेडिक्टोव उन दिनो किसी कार्यवश मास्को आए हुए थे। वह हमसे मिलने होटल मे आए। हम ने विभिन्न विषयो पर उन से कई सवाल पूछे। हमे लगा कि उन के उत्तर स्पष्ट थे, घुमावदार कम। मकानो के बारे मे उन्होने बताया कि व्यक्तिगत सपत्ति का तो अत कर दिया गया है, अतएव मकान सारे सरकारी है। प्रति वर्ष लाखो की सख्या मे नए मकान बन रहे है, फिर भी आवास की कमी है। हा, लोग सडको के फुटपाथो पर नही सोते। सरकार आवास तो दे ही देती है, भले ही पालीपाली से एक ही बिस्तर पर सोना पडे।

सोवियत रूस साम्यवादी है जरूर, पर इस का अर्थ यह नही कि यहा सभी की आय, वेतन या मजदूरी समान है। सब से अधिक आय कलाकार, लेखक और वैज्ञानिको की है। अधिकतम २०,००० रुपए मासिक तक, जब कि मजदूर और क्लर्को को केवल छ सात सौ रुपए तक मिलते है। कम आमदनी वालो के लिए सरकार सुलभ दर मे प्रयोजनीय वस्तुओ की व्यवस्था कर देती है। जब कि शौक की चीजो की कीमते इतनी अधिक है कि इन्हे खरीदने मे काफी पैसे निकल जाते है। सर्दी या भूख से मरने का सवाल उठता नही, क्योकि भोजन और वस्त्र की जिम्मेदारी सरकार की है। हम सोचने लगे कि जब १ और ३० का यहा अतर है

तो फिर किस बूते पर ये समता का ढिढोरा पीटते है, स्वीडन या स्विट्जरलैड मे ज्यादा से ज्यादा १ और १५ का अतर है जब कि वे देश साम्यवादी विचारधारा से बहुत दूर हैं।

हम ने एक खास उद्देश्य से एक पेचीदा सवाल उन से किया कि सोवियत भूमि मे विदेशी यात्री अन्य देशो की अपेक्षा कम क्यो आते है ? उत्तर बहुत ही बुद्धिमानी का था, सपूर्ण रूप से मानने योग्य तो नही पर कुछ अशों मे युक्तपूर्ण तो कहना पडेगा। उन्होने बताया, "सोवियत सरकार अपने देश मे यूरोपीय देशो की तरह हर प्रकार के कामोत्तेजक मनोरजन ओर साधनो को प्रोत्साहन नही देती। रात्रि क्लब और जुए से पैसे कमाना हम अनुचित मानते है, इसलिए वह मौजबहार यहा कहा ? यही वजह है कि विदेशी यात्री कम ही आते है।" मुस्कराते हुए उन्होने आगे कहा, "आपके देश मे भी तो इन्ही आदर्शो की प्रातष्ठा है।"

लच के पहले लेनिन हिल पर बने मास्को विद्यालय देखने गए। सचमुच, रूस की यह अनुपम कृति है। इसे एक प्रकार से अलग शहर कहा जा सकता है। इस के बीच के गुम्बज की ऊचाई ७८७ फुट है, जो यूरोप मे सब से ऊची है। १६४८ से १६५३ तक लगभग ५५० करोड रुपये की लागत से यह विश्वविद्यालय बन कर तैयार हुआ। इसमे १५,००० कमरे, १,६०० प्रयोगकक्ष, ११३ लिफ्ट है। वार्षिक बजट लगभग पैतालिस करोड का है। इसके सिवा वहुत बडी राशि नए भवन बनाने मे खर्च की जाती है। यहां लगभग ३० हजार विद्यार्थी विभिन्न विषयो का अध्ययन करते है। रूस को विज्ञान के क्षेत्र मे जो सफलता मिली है, उसका श्रेय एक प्रकार से मास्को विश्वविद्यालय को है। विद्यार्थियो के आवास सादगीपूर्ण हैं। हमे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि हमारे दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रो के रहन सहन का स्तर इन के मुकाबले कही महगा ओर फैशनेबल कहा जा सकता है। इन से मिलकर बडी खुशी हुई। सभी अपने अपने पाठ्य विषय मे रुचि रखते मिले।

विश्वविद्यालय से वापस आते समय हमने कारे छोड दी ओर मेत्रो (भूगर्भ ट्रेन) से आए। मेत्रो मे इसके पहले सफर कर चुका था पर उस समय वहुत सवेरा था अत लोगो की चहल पहल कम थी। इस समय काफी भीड थी। मेत्रो की सजावट और शान देखते ही बनती है। वडे लोगो मे किसी न किसी तरह का शौक होता है। प्रियदर्शी अशोक को बौद्ध धर्म के प्रचार का शौक था तो मुहम्मद तुगलक को बेकसूरो को फासी चढा देने का। जहागीर को न्याय की धुन थी तो शाहजहा को इमारत बनवाने की और औरगजेब को मदिरो को ध्वस करने की। इसी शताब्दी मे सम्राट विलियम कैसेर को अनेक प्रकार के घोडे रखने का ओर पचम जार्ज को पुराने स्टाम्प इकट्ठा करने का शौक था।

कभीकभी शासको का शौक राष्ट्र की काया कल्प करा देता है। स्टालिन जब रूस के राष्ट्र नायक थे, उनके एक शौक ने मास्को को अनोखा बना दिया। वह था, मेत्रो को ज्यादा खूबसूरत बनाना। वह इस के प्रत्येक स्टेशन की प्लान, इस के निर्माण, इसकी सजावट मे व्यक्तिगत रुचि रखता था। कहा कौन सी मूर्ति बैठाई जाय और किस रग का सगमरमर लगे और उस पर विशेष कोण से प्रकाश डाला जाए, इतनी बारीकियो का वह स्वय ध्यान रखता था। यहा रूस के जनजीवन, इतिहास और सस्कृति के सजीव चित्र सजे है। किराया वाजिब और गाडियो की गति काफी तेज है।

ट्रेन मे हमारे इर्दगिर्द रूसी स्त्रीपुरुष आकर बैठ गए। कुछ बाते करने का प्रयत्न करने लगे। हमे आश्चर्य हो रहा था, क्योकि रूस की अब तक की यात्रा मे लोग हमारी ओर खिचते तो जरूर थे मगर पास कम आते थे। यहा बीचबीच मे गाधी, नेहरू और राजकपूर के नाम सुनने मे आये। कुछ ने रूसी मे कुछ पूछा भी पर हमारे कुछ पल्ले नही पडा। कामराद, तवारीश, गास्पुदीना कहकर हम दोनो हाथ जोडते जाते थे। दोनो ओर से मुस्कराकर हाथ जोडने का क्रम चलता रहा।

शायद यूनिवर्सिटी के कालेजो की पहली पारी की छुट्टी हुई थी, इसलिए ट्रेन मे बहुत से विद्यार्थी थे। उन्होने हमे बहुत प्रभावित किया। उनका सयम, अनुशासन और व्यवहार हमारे यहा के उच्छृंखल छात्र समाज की तुलना मे एक आश्चर्य की सृष्टि करता है। हमे आदरपूर्वक उन्होंने जगह दी। आपस मे इतने धीरेधीरे बातचीत कर रहे थे कि पता नही चला था कि छात्रों का झुड ट्रेन मे है। हमारे यहा तो छात्रो का दल ट्रेन मे सवार हुआ कि इंजन ड्राइवर मे लेकर गार्ड तक की शामत आ गई। टिकट चेकर तो बेचारे चुपके से चल देते है.। महिला यात्रियो के साथ अशोभनीय बाते रोज की चर्चा हो गई है। लदन मे भी छात्रो मे खुले आम गुंडागर्दी है। रूस के छात्र इस मुकाबले मे देहाती भले ही लगते हो, पर है सभ्य। हमे सबसे ज्यादा प्रभावित किया बच्चो ने। स्वस्थ चेहरे, चमकती आखे, मुस्कराते होठ, कोई कोट के पल्ले पकड़ता, कोई हमारे हाथ घिस कर देखता कि हमारे रग का उस पर कुछ असर हुआ या नही। इसमे सदेह नही कि रूसी सरकार इन का बडा ख्याल रखती है।

एक शाम हम मास्को की दुकानो मे घूमते हुए किसी एक मे जा पहुंचे। कहना न होगा कि यहा दुकाने सरकारी होती है। बहुत तरह की चीजें थी, पर घटिया दर्जे की। हमे कुछ खरीदारी तो करनी थी नही, महज दामो के बारे मे जानकारी लेनी थी, दो चार रुपयो की कुछ चाकलेट लेकर बाहर आए। कीमते हमारे यहा से काफी ऊची थी—खासकर बढिया चीजो की कीमते तो दस गुनी तक। मैं ताज्जुब कर रहा था कि सोवियत जनता के मनोभावो को शायद कठोर शासन और बेरिया के आतक ने कुचल दिया है। यहा सरकार पर यह दबाव नही दिया जाता कि वाजिब दामो मे बढिया चीजो को उनके लिए क्यो नही मगाया जाता।

हमारे देश मे यदि ऐसा हो तो जुलूस और नारो मे शासन का सिंहासन हिल उठे और सरकार को अपनी आयात नीति के बारे में रद्दोबदल करने के लिए बाध्य होना पडे। आश्चर्य यह लगा कि हजामत भी सरकार ही बनाती है, यानी सैलून भी सरकारी और बूटपालिश तक सरकारी है। होटल आ कर आपस मे चर्चा होने लगी कि इगलैड, फ्रास, स्वीडन, जरमनी आदि देशों के मुकाबले में रूस के जनजीवन का स्तर नीचा होने पर भी इस की शक्ति का विश्व में महत्व है। विज्ञान के क्षेत्र में अमरीका जैसे साधनसपन्न राष्ट्र का रूस प्रबल प्रतिद्वद्वी है।

एक बात रूस और भारत में करीब एक सी लगी कि सार्वजनिक पार्कों मे या सडको के निराले कोनों पर फ्रांस, इगलैड या बेल्जियम की तरह नरनारी प्रगाढ आलिंगन और चुम्बन मे रत नही दिखाई देते। हवाई में तो इस से भी कही आगे बढ जाते हैं। मास्को मे स्त्रीपुरुष पासपास बैठे बातचीत मे मग्न जरूर दिखाई देते है, पर सीमा रेखा मे आगे बढने के थोडे प्रयास के साथ ही पुलिस की सीटी उन्हे सचेत कर देती है। कई बुकस्टालो पर हम गए पर कही कामोत्तेजक मैगजीनें या पोस्टकार्ड नही दिखाई पड़े। लदन और पेरिस की तरह यहा सडको पर 'पिंप' (दलालो) को साए की तरह चलते नही देखा। इस ढग के लोगो को यहा बहुत ही कठोर दड दिया जाता है। मास्को के टैक्सीचालक भी शिष्ट और विनयशील हैं। विदेशो के टैक्सी ड्राइवरो का कटुतिक्त अनुभव हमे था। 'टिप' के लिए किस तरह मुह बिचकाते और झल्लाते है, पर यहा वह सब कुछ नही था।

सोवियत देश में पुरुषो की तरह स्त्रिया भी काम पर जाती है। इसलिए इनके बच्चो के लिए हर महल्ले मे शिशुगृह है। इन मे डाक्टर, नर्स और परिचारिकाए नियुक्त रहती है। सब की पोशाक एक सी और खाना एक सा। इन शिशुगृहों को क्रेशे कहते है। इनमे उमर के अनुसार बच्चे अलगअलग रखे जाते है। उन के लिए मनोरजन के अच्छे साधन रहते है। महिलाए काम पर से वापस आते समय इन्हे साथ ले कर चली जाती है। बच्चे यही प्रारम्भिक

शिक्षा भी पा लेते है । इन्हे रखने का शुल्क मातापिता की आय के अनुपात मे लगता है । अतएव अधिक वेतन या कम वेतन पाने वालो के बच्चो के लालनपालन मे भेदभाव की गुजाइश नही ।

स्कूलो के लबे अवकाश मे अथवा गर्मियो की छुट्टियो मे स्कूल की तरफ से बच्चो को समुद्र के उपकूल या रमणीक स्वास्थ्यप्रद पर्वतो पर घुमाने ले जाया जाता है । इस अवधि मे अध्ययन के साथसाथ पारस्परिक सहयोग की भावना को विशेष रूप से प्रोत्साहन दिया जाता है । स्कूल, कालेज और घरो मे किस प्रकार की पुस्तके पढी जाए, यह भी सरकार ही निश्चित करती है । अर्थात साम्यवाद की विरोधी विचारधारा का साहित्य यहा के बुकस्टालो ओर लाइब्रेरियो मे नही मिलता । प्रत्येक दल के साथ शिक्षक के अतिरिक्त डाक्टर भी रहते है ।

सोवियत सरकार एकतत्री है । शिक्षा मे वह इस ढग से साम्यवाद का अनुप्रवेश करा चुकी है कि नई पौध की विचारधारा इतनी कुठित सी है कि साम्यवाद के अलावा ओर भी कोई सामाजिक व्यवस्था हे या सभव है, इस की कल्पना वह नही कर पाती । मार्क्स एजेल्स और लेनिन आदि उन के लिए अवतार है । कुछ समय पहले तक स्टालिन भी था, पर अब पाठ्यपुस्तको से उस का नाम निकाल दिया गया है । आश्चर्य तो यह हे कि धर्म न मानने वाले साम्यवाद ने स्वय को एक धर्म बना दिया ओर उस मे भी मसीहो की ठीक उसी ढग से सृष्टि की जैसे इसलाम ने मुहम्मद साहब की और ईसाइयो ने ईसा की ।
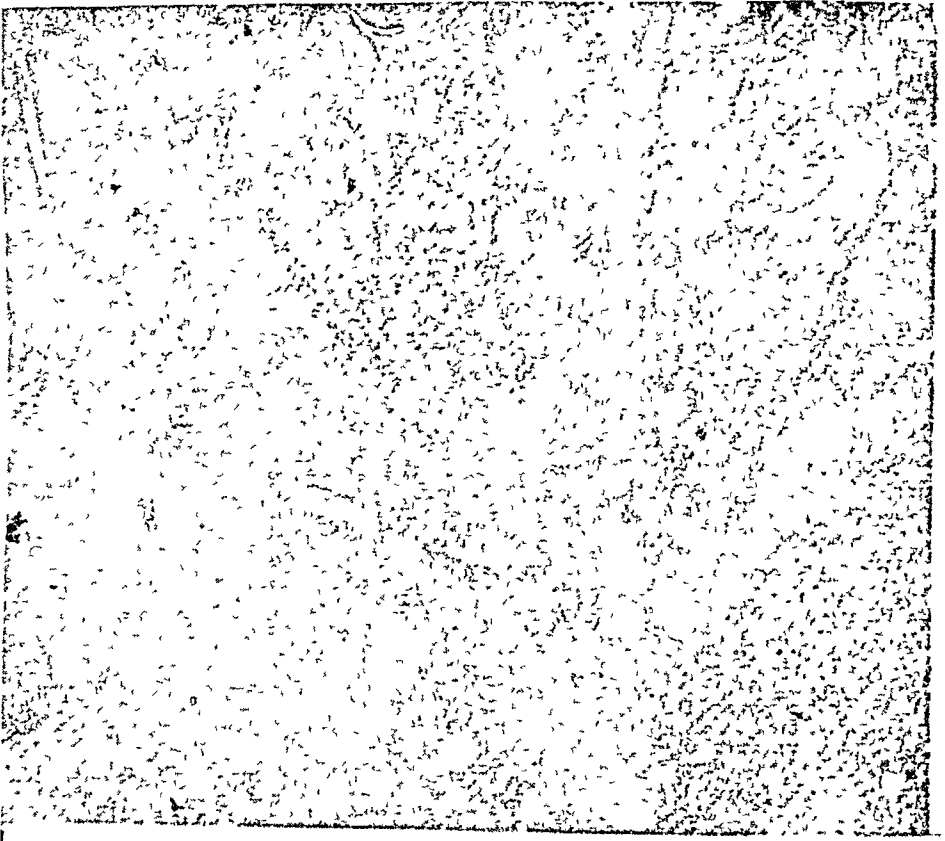
जिस की हर बात पर मास्को से होड़ लगी रहती है......

लेनिनग्राद-1

मास्को से लेनिनग्राद हमे हवाई जहाज से आना पडा । चाहते तो हम थे कि ट्रेन से सफर करे, ताकि सोवियत देश के ग्राम्याचल की झाकी के साथसाथ यहा की ट्रेनो के बारे मे कुछ जानकारी प्राप्त कर सके, किन्तु कुछ तो समयाभाव के कारण और कुछ सरकारी व्यवस्था की वजह से हमारी यह आकाक्षा पूरी न हो सकी ।

मास्को मे हम पाच दिनो तक रहे मगर जितनी जानकारी सोवियत शासन व्यवस्था अथवा वहा के जनजीवन के विभिन्न पक्षो के सबध मे पाना चाहते थे वह सभव न हो सका । पहली बाधा तो भाषा की और दूसरी सरकारी गाइड के रूप मे मिरकोव और उस के साथी की, जो छाया की तरह सदैव साथ रहते थे । जो चीज न दिखानी हो या जो न बताना हो, उस के लिए उन के पास बनेबनाए बहाने तैयार रहते थे । इस ढग का रुख उन का रहता था कि हमारा उत्साह अपनेआप ही ठडा हो जाता । वैसे वे दोनो बहुत ही नम्र और हसमुख थे और पिछले सात दिनो मे उन्होने किसी प्रकार की शिकायत का मौका नही दिया ।

मै ऊब चुका था । इसलिए मैं ने श्री बिडला और साथियो को मास्को मे छोड कर प्रभुदयालजी के साथ लेनिनग्राद देख लेने का निश्चय किया । इस बार हम मास्को के जिस एयरपोर्ट से रवाना हुए वह पहले जितना न तो बडा था और न साफसुथरा । बाथरूम वगैरह भी गदे थे, रेस्तोरा घटिया सा । साथ के यात्री सभी रूसी थे, जिन मे से अधिकतर अगरेजी नही समझते थे ।

लेनिनग्राद से हम सर्वथा अपरिचित थे । फिर भी हम खुश थे क्योकि मिरकोव और उस के साथी से पिड छूट गया था । वे मास्को ही बिडलाजी के साथ रह गए । यहा का एयर पोर्ट लदन, पेरिस या बर्लिन की तरह व्यस्त नही रहता । हम ने वहा लगी समयसारणी देखी तो पता चला कि आनेजाने वाले हवाई जहाजो की कुल सख्या चालिसपैतालीस मात्र है । इस से कही ज्यादा तो बबई, कलकत्ता के एयरपोर्टों मे है जब कि हमारा देश पिछडा और अल्प उन्नत समझा जाता है ।

एयरपोर्ट से हम अपने पूर्व निश्चित होटल अस्टोरिया के लिए टैक्सी से रवाना हुए । रास्ते मे हम ने देखा, प्रासाद सरीखे कई एक मकान खडहर से हो रहे है । कुछेक नए ढग के ऊचे बन रहे हैं । टैक्सी वाले से पूछा, यानी हाथ और उगलियो को नचा कर सकेत से पूछा तो उसी भाषा मे उत्तर मिलाकुछ तो पुराने होने के कारण गिराए जा रहे है और कुछ नाजियो के आक्रमणकाल मे ढह गए थे । हम ने देखा कि कई मजिलो के ऊपर लोहे के ढाचो पर झलाई का

काम हो रहा है और चिनगारिया नीचे गिर रही है। यह भी देखा कि मोटा काम औरते कर रही है। कई मजिल ऊचे मकान के सहारे लगे ढाचे पर खडी हो कर लोहे की बीमो मे झलाई का काम कर रही थी। हमारे गरीब देश मे सिर पर ईटे रख कर वास की सीढियो के सहारे औरतो को चढते देखना आश्चर्य नही, किंतु सभ्य और उन्नत साम्यवादी राष्ट्र मे भी इस ढग का काम पेट के लिए इन को क्यो करना पडता है, यह समझ मे आया नही।

टैक्सी मे हम ने आपस मे सोवियत शासन या व्यवस्था के वारे मे कोई वात न की। हमे डर था कि कही टैक्सी वाला खुफिया न हो। होटल पहुच कर हम ने अपने कमरे मे सामान रखा। हाथ मुह धो कर, रेस्तरा मे आ कर हम जलपान करने लगे। हमारी टेवल एक कोने मे थी, सिर्फ तीन कुरसिया लगी थी। दो पर हम वेठे, एक खाली रही। आसपास के टेवलो पर लोग बैठे थे।

थोडी देर बाद हम ने देखा कि एक लवा सा आदमी कधे पर कैमरा लटकाए हमारी ओर आ रहा है। लगा, आ गया—शायद हमारे लिए मास्को मे सरकारी मेजवान। मुसकरा कर इशारे से खाली कुरसी पर बेठने की उस ने इजाजत ली ओर नाश्ता करने लगा। मै ने हिंदी मे प्रभुदयालजी से धीरे में कहा, "लगता है, यह 'देवदूत' (गाइड के रूप मे खुफिया) नही है।"

"चुपचाप देखे जाओ," कह कर नाश्ता करते हुए प्रभुदयालजी ने चिवडे और वरफी को अपने झोले से वाहर किया।

हम ने देखा कि आगतुक वडे गौर से हमारी ओर कनखियो से देख रहा था। अपने चिवडे और वरफी का जादू विदेशो मे हम कई वार आजमा चुके थे। इसलिए इन का नाम हमने 'खुल जा समसम' रखा था। मै ने आगतुक से विना झिझक अगरेजी मे कहा, "भारत का है, आप भी कुछ चखना पसद करेगे ?"

हमारा निशाना अचूक बैठा। "ओह, जरूर ' नि सदेह ! आप भारत के हे ? साफ अगरेजी मे कह कर वह हमारी तरफ मुखातिब हुआ। फिर पारस्परिक परिचय हुआ। आगतुक मिस्टर जौन स्वीडिश पत्रकार थे। अपने देश के किसी दैनिक के सवाददाता के रूप मे पिछले चार महीनो से रूस मे प्रवास कर रहे थे। हमे आश्चर्य हो रहा था कि किसी भी विदेशी, यहा तक कि कम्युनिस्ट देशो के लोगों की गतिविधि पर भी जव रूस मे नियत्रण रखा जाना है, तो पत्रकार और सवाददाता के रूप मे मिस्टर जोन को स्वच्छद जानेआने की सुविधा किस तरह मिल सकी ! पूछने पर उन्होने बताया कि पिछले महायुद्ध मे स्वीडन तटस्थ रहा है। रूस के साथ उसके सवध अच्छे रहे है, इसलिए अन्य देशो के सवाददाताओ से उन्हे अधिक छूट है, फिर भी परोक्ष रूप से नियत्रण तो रहता ही है।

बोलशाय मे उस दिन एक नाट्यरूपक था। रूसी भाषा मे सवाद और सलाप होने के कारण वारवार हमे द्विभापी की मदद लेनी पड रही थी। 'युद्ध का कितना भयकर परिणाम होता है, इस की कथावस्तु थी। अभिनय मजा हुआ था और कलाकारो का कोशल भी उच्च स्तर का। अर्तविराम के वाद स्टेज पर एक व्यक्ति आया जिस के लिए लगातार करीब पाच मिनट तक जोरजोर से तालिया वजती रही। पहले तो हमने समझा कि कोई राजनीतिक नेता होगा, पर वाद मे जानकारी मिली कि वह देश का सर्वश्रेष्ठ वाद्यसगीतकार था। यहा लेखको या वैज्ञानिको को सव से अधिक आदर और स्नेह मिलता है, उस के बाद कलाकारो को और सव कही अन्यान्य नेताओ को। धनसपति का सचय सभव नही, अतएव धनी या सपत्तिशाली की प्रतिष्ठा का सवाल ही नही उठता !

एक आम, वादाम की बरफी और चिवडे हम ने उन्हे दिए। आम तो शायद पहले कही वह खा चुके थे, किन्तु बरफी और चिवडे उन्होने पहली बार देखे और चखे। उन्होने वड़ी रोचकता के साथ इन के नाम पूछे और नोट किए। शायद उन्हे ये चीजे बहुत ही स्वादिष्ट लगी।

मिस्टर जौन को हमने वताया कि हम अपने देश के संसद सदस्य है और शासकदल काग्रेस के है। पडित नेहरू के विचारों से सर्वथा सहमत है और हमारी यात्रा का उद्देश्य है, विदेशो के औद्योगिक विकास की जानकारी प्राप्त करना। सोवियत सरकार के आमत्रण पर ही रूस आए है, इसलिए हमारी इच्छा है कि इस महा देश के बारे मे अधिकाधिक परिचय प्राप्त करे। इस के वाद हम फिनलैंड होते हुए स्वीडन जाएगे। हमने वताया कि भाषा की दिक्कत और सरकारी नियत्रण मे कारण हम यहा के वारे मे आशानुकूल जानकारी नही कर पा रहे हैं।

पता नहीं, भारत ने या भारतीय मिठाई ने उन्हे प्रभावित किया, वह हमे यथासाध्य सहयोग देने को तैयार हो गये। यही नही उस अनजाने शहर मे वह हमारे लिए बिना फीस के गाइड वने और सारे दिन की सर्विस अपनी मोटर के साथ दी।

उन्होने हमारे लिए प्रोग्राम बना दिया और कहा, "बातचीत हम बाहर घूमतेफिरते करते रहेगे, खानेपीने के टेबल पर नही। क्योकि हो सकता कि कोई गुप्त माक्रोफोन टेबल पर हो या पास की टेवल पर अंगरेजी जानने वाला गुप्तचर हो। आप लोग प्रश्न बहुत सावधानी से करे और जितना उत्तर दू उसी से सतोष कर ले। "दो घटे वाद हरमिटेज मे मिलने का वचन देकर उन्होने हम से विदा ली।

हम दोनो अकेले ही शहर घूमने निकल पड़े। लेनिनग्राद सोवियत सघ का दूसरा वृहत्तम नगर है और ससार के वडे शहरो मे इस का स्थान (शायद ग्यारहवा) है। यहा की जनसख्या लगभग तीस लाख है।

लेनिनग्राद वहुत कुछ वीनिस या एम्सटडेम की तरह सौ से भी अधिक छोटे-बड़े द्वीपो पर वसा हुआ है। यहा करीव चार सौ पुल हैं जो यहा के विभिन्न महल्लो को एकदूसरे से जोडते हैं। ग्रीष्मऋतु मे तो यहा अठारहउन्नीस घटे तक सूर्य का प्रकाश रहता है, और जाडे मे नौ वजे दिन तक अधेरा। इसका कारण यह है कि ६० अक्षाश पर स्थित होने के कारण यह ध्रुवाचलीय क्षेत्र मे है। सरदी यहा इतनी ज्यादा पडती है कि तापमान शून्य से भी ३० डिग्री नीचे उतर जाता है। नेवानदी जाडे के मौसम मे जम कर पत्थर सी हो जाती है। उस समय यहा के निवासी इस पर तरहतरह के खेल खेलते है। वडी हिम्मत और जीवट की जरूरत इन खेलो के लिए पडती है शरीर मे बल, स्नायुयो मे शक्ति और अभ्यास इन के लिए आवश्यक है। भारत मे आए हुए 'हालिडे आन आइस' से इस की कुछ झाकी मिल सकती है। इन खेलो को देखने के लिए सोवियत सघ के दक्षिणी भाग तथा पडोसी देशो से हजारो यात्री आया करते हैं।

ससार के अन्य वडेवड़े शहरो की तरह यहा भी इतिहास ने करवटे बदली है, मामूली व्यापार केद्र था यह किसी जमाने मे। स्वीडन के व्यापारी नेवा के मुहाने पर जहाजो से आयाजाया करते थे और रूस से माल की खरीदफरोख्त करते थे। यहा दलदली जमीन थी, सरदी हद से ज्यादा पडती थी। रूस के प्रसिद्ध सम्राट पीटर महान को धून चढी कि राजधानी

यही बने, ताकि यूरोप के सभ्य देशो के निकट वे केद्र बना सके ।

पीटर रूस को दकियानूसी घेरे से बाहर ला कर यूरोप के देशो की पक्ति मे बैठाना चाहता था । रूस को आधुनिक बनाने मे उस का अवदान अत्यधिक महत्वपूर्ण है । सम्राट पीटर ने अपनी मुराद पूरी की और लेनिनग्राद को सन १७१७ मे रूस की राजधानी बनने का गौरव मिला । किंतु उस ने इसे अपना नाम नही दिया । बल्कि ईसाई धर्म के महान प्रचारक सत पीटर की स्मृति मे इस का नाम सेट पिट्सवर्ग रखा । इस के नाम से जुडी हुई जरमन भाषा की बू हटाने के लिए बाद मे इस का नाम बदल कर पेत्रोग्राद रखा गया । लेनिन के प्रति कम्युनिस्टो की अपरिमित भक्ति के काण इस का नाम १९२४ मे लेनिनग्राद कर दिया गया । लगभग दो सौ वर्षो तक इस ने रूस का शासन किया । यही जारशाही का राजदड घूमता रहा । यही से पीटर, कैथरीन ओर अलेग्जेडर ने विशाल रूसी साम्राज्य पर निरकुश शासन किया । फिर यही केद्र बना जारशाही का तख्ता उलटने का । सम्राटो की मानमर्यादा, भय, आतक उनकी अच्छाइया या बुराइया सभी को साम्यवादी क्राति ने समान रूप से धूलिधूसरित कर दिया । शहर को देखने पर बारबार मन मे भावना उठती है 'खडहर बता रहे है, इमारत कितनी बुलद थी ।'

खेर, आज भी लेनिनग्राद शानदार है । उद्योगधधो और कलाकोशल सभी मे वह दूसरे सोवियत नगरो से आगे है । सोवियत सघ के बदरगाहो मे लेनिनग्राद को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समझा जाता है । इस की गोदी लगभग सोलह मील लबी नहर के जरिए सागर मे जुडी है ओर ससार के बडे बदरगाहो मे मानी जाती हे । लगभग तीन सो विदेशी जहाज यहा पर प्रति वर्ष आते हे । कलकत्ता और बबई मे इस से कही अधिक जहाज विदेशो से आया करते है, जब कि ससार के चुने हुए बदरगाहो मे इन की गिनती नही होती । कारण स्पष्ट है, इस समय तक भी रूस विदेशी व्यापार के प्रति शकाशील है ।

जनसख्या की दृष्टि से मास्को लेनिनग्राद से दोगुना है ओर सोवियत सघ की राजधानी होने के कारण उस का महत्त्व भी अधिक है । फिर भी, जहा तक कला ओर वास्तुशिल्प का सवाल है, इस की बराबरी मे रूस का कोई भी शहर नही आता । ससार के सुदरतम नगरो मे इस की गिनती होती है । अब तक जिन बडेबडे शहरो मे जा चुका था उन मे बगलोर, स्विट्जरलैड के ज्यूरिख ओर लूजर्न, पेरिस, स्टाकहोम, हेग ओर वियना के समकक्ष इसे माना जा सकता है ।

लेनिनग्राद की सडको पर घूमते हुए लगता है कि यूरोप के किसी अच्छे शहर मे हम हे । शहर के केद्रीय भाग को हम देख रहे थे । हमे यहा टूटीफूटी अगरेजी समझने वाले बीचबीच मे मिल गए । इन से बडा सहारा मिला । भारतीय भाषाओ मे यो ही यात्रा वृत्तात बहुत कम हे, बगला मे कुछेक हैं जरूर । लेनिनग्राद के विषय की आधुनिक जानकारी के बारे मे तो अगरेजी मे भी बहुत ही कम सामग्री है । इसलिए यहा के स्थानीय लोग बडी रुचि के साथ अपने शहर के इतिहास और श्रेष्ठता को बताते है । मास्को मे यह बात नही है ।

यहा कुछ वृद्धो से बाते करने पर लगा कि वे अपने भूतपूर्व सम्राट व सम्राज्ञी की चर्चा मे उसी प्रकार रुचि रखते है जेसे ब्रिटेन के लोग । बडी खुशी से उन के व्यक्तिगत जीवन की प्रणय कथा, उन की मनमानी या जिद्दीपन का बयान करते है ।

यहा स्मोलेनी इस्टीट्यूट को देखते समय उन्होने बताया कि यह विद्यालय मूलत राजघराने अथवा रईसो की कन्याओ के लिए बनाया गया था । सन १९१७ मे इसे बोलशेविको ने अपना प्रधान केद्र बनाया । लेनिन इसी भवन की तीसरी मजिल पर रहता था ।

पास के तवारिश भवन को भी हम ने देखा । इस के बारे मे बडा मनोरजक इतिहास है । इसे रूसी सम्राज्ञी कैथरिन ने अपने प्रेमी प्रिस पोतोम्किन के लिए बनवाया था । क्रिमिया के

युद्ध मे विजयी होने पर उसे उपहार मे दिया गया। प्रिंस ने इसे दूसरे को दे दिया मगर कैथरिन ने फिर इसे खरीद कर अपने प्रेमी प्रिंस को दोबारा उपहार मे दे दिया। इस ढग की राजसी मौज की बात मै ने पहले कभी नही सुनी थी। उन्नीसवी शताब्दी तक यूरोप के राजघरानो की इस प्रकार की खुली प्रेम चर्चाओं की कथाए भरी पडी है।

लेनिनग्राद को बनानेसवारने का दो वास्तुकारो को बहुत बडा श्रेय है। दोनो मे इतालवी रक्त था। एक का नाम था बार्त्तोलोम्यो रास्त्रेली। इस का जन्म पेरिस मे हुआ था, किंतु सन १७१६ मे यह रूस मे आ कर बस गया। इसी ने शरद प्रासाद तथा अन्यान्य राजप्रासाद बनाए। दूसरा था कार्लो इवानोविच रोस्सी। लेनिनग्राद की एक इतालवी नर्तकी का यह पुत्र था। रोसी ने यहा के सीनेट, बैले स्कूल, पुस्तकालय और अलेग्जेड्रेस्की थिएटर का निर्माण किया। इस थिएटर का नाम अब रूसी साहित्यकार की स्मृति मे पुश्किन रख दिया गया है।

जार शासन के अत के साथसाथ लेनिनग्राद के प्राचीन और मध्ययुगीन गौरव का अवसान हुआ। अप्रैल १९१७ मे लेनिन स्विट्जरलैड से यहा आया। चद महीनो मे उस के क्रातिकारी विचार शोषित और आतकित रूसी प्रजाजनो के दिमाग मे घर कर गए। अक्टूबर मे साम्यवादी मजदूरो और मल्लाहो ने शरद प्रासाद को घेर लिया। मल्लाहो के पास उस समय 'औरोरा' नामक एक युद्ध पोत भी था। इस पर से उन लोगो ने शरद प्रासाद पर गोले बरसाने शुरू कर दिए। यही से लेनिन की शक्ति का निखार हुआ। जहाज आज भी वहा के नेवल म्यूजियम मे है। हम ने प्रश्न किया कि जार के प्रति रोष था, पर ज़ार तो मार्च १९१७ मे ही सिंहासन त्याग चुका था। उत्तर मिला, ठीक है अस्थायी सरकार जरूर थी पर शोषित वर्ग इतना असतुष्ट हो चुका था कि उस मे धैर्य नही था और शासन सूत्र को हाथ मे लेने के लिए लाल क्राति की जरूरत पडी।

विद्रोह हुआ, लूटमार हुई, हजारो जाने गई। भुखमरी और बेकारी फैली। साम्यवादी सरकार ने शोषित वर्ग का त्राता बन कर लोगो का दमन किया। पहले था जार का आतक अब जनता के नाम पर जनता मे जनता की सरकार का आतक छा गया। जनसकुल नगर की आबादी इक्कीस लाख से घट कर १९२० मे सात लाख रह गई।

समाचारो पर लाल सरकार ने रोक लगा दी। यह क्रम स्तालिन की मृत्यु तक चला। अपने शासनकाल मे स्तालिन ने जितनी हत्याए करवाई उन की उस समय किसी को खबर तक न लगी। इतिहास मे चगेज, तैमूर, और नादिरशाह आदि के बारे मे सुना जाता है कि हजारो को उन्होने कटवा दिया। पर यह भी सही है कि वे लुटेरे या डाकू ही माने जाते रहे नेता या कामरेड नही। हा, शासको ने, राजाओ ने भी कभीकभी ऐसे जघन्य आचरण किए है पर साम्यवादी शासको ने उन से कम नही किया। तो फिर क्या अतर रहा सामतवाद और साम्यवाद मे ?

लेनिनग्राद और मास्को मे हमे वैसा फर्क लगा, जैसा कि अपने देश के बगलौर और कलकत्ता मे है। यद्यपि लदन या न्यूयार्क की तरह मास्को के नागरिक काम पर भागते नजर नही आते फिर भी लेनिनग्राद से कही ज्यादा भीड वहा नजर आती है। शाम को नागरिक जिस मौज मे लेनिनग्राद की सडको पर मिलते है वह नजारा मास्को मे देखने मे नही आता। सैंटो की सौरभ बिखेरती महिलाए भी लेनिनग्राद मे मिल जाएगी, पर मास्को मे नही। आश्चर्य है कि 'बुर्जुआ' प्रवृत्ति थोडीबहुत मात्रा मे यहा जीवित कैसे रह पाई।

एक बात की लेनिनग्राद और मास्को मे होड सी लगी रहती है। यहा वाले मास्को वालो को अपने से घटिया मानते है। यहा की एक भूगर्भ ट्रेन मे सफर कर रहा था। मैं ने बातचीत के सिलसिले मे बताया कि मास्को के मेत्रो मे भी बैठ चुका हू। तुरत उत्तर मिला मगर वहा

तो इस ढग की खूबिया नही हैं ।" पता नही किन खूबियो की तरफ उन का इशारा था ! क्योकि जहा तक मेत्रो का सवाल था, मास्को की यहा से बहुत ज्यादा सुदर थी । लेनिनग्राद और मास्को की प्रतिद्वद्विता इतनी गहरी है कि दोनो के म्यूजियम किसी एक कला वस्तु को अपने यहा लाने के लिए दूसरे देशो मे भी मूल्य की ऊचीऊची बोली बोलते है ।

मास्को का बोलशोय थिएटर मशहूर है, लेकिन लेनिनग्राद का बैले भी नायाब माना जाता है । यहा वालो की एक मजेदार शिकायत यह सुनने मे आई कि मास्को वाले उन के कलाकारो को अपने बैले के लिए 'हरण' कर ले जाते है । मुझ से तो एक युवक ने यह भी कहा, "अच्छा किया जो आप यहा चले आए, मास्को मे जिंदगी है कहा ?"

शहर का केंद्र भाग पेरिस के पैले द ला काकर्द से बहुत कुछ मिलता है । यहा हम ने दो प्रतिमाए देखी । एक दिसबर चौक मे रूसी सम्राट पीटर महान की है । कासे की बनी यह प्रतिमा बहुत ही शानदार है । सम्राट घोडे पर सवार है, गर्वोन्नत मस्तक है उस का । यह सम्राट था भी अत्यत व्यक्तित्वशाली । कहा जाता है, कि पीटर जितना दीर्घकाय था उतना ही बलिष्ठ भी । लबाई ६ फुट ६ इच । इस के शौर्य और बल की गाथाए आज भी लोगो की जबान पर है । रूस का इतिहास इस के कृतित्व से भरा पडा है । क्रूर भी वह कम नही था । बारह हजार लोगो को इस के हुक्म से एक ही दिन मौत के घाट उतार दिया गया था । फिर भी यदि यह कहा जा सकता है कि स्तालिन ने रूस को दुनिया के सर्वशक्तिमान राष्ट्रो की पक्ति मे बैठा दिया, तो यह कहना ही पडेगा कि पीटर ने अधकार मे पड़े पिछडे रूस को प्रकाश दिखाया और यूरोप के उन्नत देशो के बीच खडा कर दिया । पीटर की यह प्रतिमा दो फ्रासीसी मूर्तिकारो ने बनाई है ।

दूसरी प्रतिमा है रूसी सम्राट निकोलस प्रथम की । इस सम्राट के बारे मे एक मजेदार बात सुनने मे आई । आज का सिटी हाल मूलत मेरिस्की प्रासाद था । सम्राट ने इसे अपनी रानी मेरी के लिए बनवाया था । मगर रानी को यह प्रासाद जचा नही । न जचने का कारण यह था कि सम्राट की घुडसाल क्यो इस की किसी एक खिडकी से दिखाई पडती है! राजारानियो के चोचले प्राय सारे देशो मे एक समान ही रहे है ।

मिस्टर जौन से हमे निश्चित स्थान और समय पर मिलना था । समय कम रह गया था । घूमतेघूमते कुछ थकान सी हो आई । काफी पीने के लिए हम एक रेस्तरा मे गए, ताकि थोडी ताजगी आ जाए । यहा भी वातावरण मास्को से भिन्न था । लोगो के चेहरो पर ताजगी और कुछ बेफिक्री भी लगी । एक टेबल पर हम बैठ गए । एक अध्यापक पहले से बैठा था, विज्ञान का था । स्वय ही उस ने हम से परिचय किया । हमे भारत का जान कर उसे बडी खुशी हुई । उस का कोई चाचा रूसी क्राति के समय भारत भाग गया था, फिर स्वदेश वापस लौटा नही । थोडी बहुत बातचीत के बाद उस ने कहा, "निश्चय ही मास्को से हमारा शहर आप को ज्यादा अच्छा लगा होगा ।" हम ने यह स्वीकार किया ।

वह आगे कहने लगा, "हमारा शहर दुनिया मे बेजोड हो उठता, मगर नाजियो के कारण इस के विकास मे बहुत बडी बाधा पड गई । सन १९४१ के अगस्त मे नाजी लुटेरे साम्राज्यवादी नशे मे अपनी अजेय फौजो को ले कर हमारे शहर पर चढ आए । उन्होने जबरदस्त घेरा डाल दिया । वह घेरा ९०० दिन के घेरे के नाम से प्रसिद्ध है । बमबारी से शहर को वे तहसनहस करते रहे । फिर भी हमारे बहादुर कामरेडो ने उन्हे आगे बढने नही दिया, बमो की मार मे तो लोग मरते ही थे पर भुखमरी और सक्रामक व्याधियो से भी काफी लोग मरने लगे । अनुमान है कि इस दौरान मे लेनिनग्राद ने अपने आठ लाख नागरिक खो दिए । फिर भी हम हिम्मत नही हारे । जैसे ही बमवर्षा रुकती कि हमारे नागरिक खदको से या मलबो से मृतको को निकाल लाते, घायलो की सेवाशुश्रूषा करते और फिर अपने दैनिक काम मे लग जाते ।

"आखिर जनशक्ति के सामने साम्राज्यवादी नाजी टिक न सके। जनवरी १९४४ मे उन्हे हार कर यहा से हटना पड़ा। उन के लाखो सैनिक बर्फानी हवा और ठड से जम कर अकड गए। सदा के लिए नेवा नदी मे रह गए। युद्ध विशारदो का तो यहा तक कहना है कि यदि नाजी रूस पर हमला नही करते तो उन की सर्वोत्तम फौजे बरबादी से बच जाती और बहुमूल्य युद्ध सामग्री भी नष्ट न होती। तब शायद युद्ध का नतीजा दूसरा ही होता। रूस से नेपोलियन भी टकराया था, मास्को मे तो घुस गया था। तालस्ताय के 'युद्ध और शाति' में इस का वर्णन है। नेपोलियन को भो पता चल गया कि रूस का किसान केवल धरती की छाती नही चीरना जानता, साम्राज्यवादी लुटेरे के सिर छेदना भी जानता है। उस समय मैं बहुत छोटा था, पर मैं ने भी यथाशक्ति लडाई मे भाग लिया था।"

उस की जोश भरी बातो मे सचाई थी। मगर जब उस ने यह कहा कि दुनिया मे कही ऐसी मिसाल नही मिलेगी तो हम ने उसे बताया कि हमारे भारतवर्ष मे इस ढग के एक नही अनेक उदाहरण है। मैं ने चित्तौड के घेरे की बात बताई।

वह आश्चर्यचकित रह गया, कहने लगा, "मगर वह तो एक व्यक्ति की जिद की बात थी, पर यहा तो पूरी जनता का बलिदान था।"

हमें देर हो रही थी, अत उस से विदा लेते हुए हम ने कहा, "राजा हो या नेता, सभी के पीछे जनता का बल तो रहता ही है। व्यक्ति यदि समष्टि को साथ ले कर चलता है तो समष्टि स्वत. उस मे सिमट जाती है।"

मैं ने देखा, वह कुछ उलझाउलझा सा काफी पीने लग गया।

रास्ते मे प्रभुदयालजी मुझे समझाने लगे, 'सोवियत' शासन अथवा साम्यवादी तरीके मे व्यक्ति के व्यक्तित्व को नष्ट कर दिया जाता है। मास्को मे यह देख चुके हो। बहुत बचपन से उस के विचार को केवल साम्यवादी सरकार की समर्थित दिशा मे ही बढने दिया जाता है। फलत यहा इतिहास और सस्कृति की विविधता को समझने और परखने की शक्ति नई पौध में है कहा। यह तरीका लगभग पिछले तीस वर्षो से अपनाया गया है। इस का ध्यान रखना चाहिए। यहा बहस का मौका नही देना चाहिए। कही किसी दूसरे मिरकोव की छाया लगी कि अब तक का सारा मजा किरकिरा हो जाएगा।"

हरमिटेज के करीब हम आ गए। देखा, मिस्टर जोन लान मे खिले फूलो को देख रहे हैं। वह आगे बढ आए, कहने लगे, "कोई दिक्कत तो नही हुई ?" हम ने उन्हे अपने अनुभव के बारे मे सक्षेप मे सुना दिया। "आप अच्छी किस्मत वाले है दोस्ती करना जानते है।"

मिस्टर जोन हम दोनो को साथ ले कर हरमिटेज दिखाने ले चले। उन्होने बताया, "यहा के दर्शनीय स्थानो मे यह सर्वोपरि है। रोम के वेटिकन और पेरिस के लुव्रे म्यूजियम के समकक्ष इस संग्रहालय को माना जाता है। अलभ्य वस्तुए यहा सगृहीत है। वास्तव मे पहले यह जार का राजप्रासाद था। यह इतना बडा है कि यदि इस के सारे बरामदो मे घूमा जाए तो १६ मील का चक्कर लग जाए। इस मे १,५०० बडेबडे कक्ष है। इन मे से सिर्फ ४०० को सग्रहालय के काम मे लाया गया है। इस की चित्रशाला का सग्रह भी अमूल्य है। राम्ब्रैंड, पिकासो, रूबेस, टिटान, ल्योनार्दो दविंची आदि के दुर्लभ चित्र यहा मिलेगे। इन मे से किसीकिसी का मूल्य करोड दो करोड तक है।

मै ने लुव्रे और वेटिकन मे इन मे से प्राय सब प्रसिद्ध चित्रकारो की बनाई अन्य तसवीरे पहले देखी थी।

हरमिटेज का आकर्षक अश है इस का खजाना। इस मे प्रवेश के लिए अनुमति प्राप्त करनी पडती है। हम ने पहले से इन्तजाम कर लिया था। खजाने मे ससार के अद्वितीय सोने के गहने, बरतन और वस्तुए है। प्राचीनकाल से ले कर जार के समय तक के स्वर्णाभूषण देखने लायक हैं। मिस्र के सम्राट् तुत्मखामन की समाधि से निकाले गए स्वर्ण पात्र, अलकार और

राजचिह्न भी यहा देखे ।

रूसी सम्राटो के जवाहरात, अलकारआभूपण और उन के काम मे आने वाली वस्तुए देखी । सोने की बनी इन चीजो की कारीगरी ओर सफाई बेशक लाजवाव है, पर दक्षता जो भारतीय कारीगरो के हाथ मे है वह इन चीजो मे नही दिखाई पडी । ठोस सोने की एक वडी सी शृगारदानी देखी । ६० कक्ष थे उस मे । यह रूस की सम्राज्ञी अन्ना की थी । सन १७१० मे १७४० तक इस का शासनकाल रहा है । इन्हे स्नान से वडी चिढ थी । बदन पर खुशबूदार उबटन लगवा लेती थी और उसे साफ करा लेती थी । यहीं एक कवल देखा, जिसे तुर्की के सुलतान ने सम्राट निकोलस प्रथम को सन १८३० मे उपहार दिया था । ८६ वडेवडे हीरे, जो हमारे यहा के नए पैसे के बराबर होगे, इस पर जडे हुए हे । प्रकाश की किरणे इन हीरो पर बिखर कर समय की करवटो को मुसकरा कर बता रही थी । मै सोच रहा था कि यद्यपि रूस की सर्दी के अनुरूप ही कवल मोटा और गरम है पर क्या इन हीरो से कवल की गरमी ओर बढ जाती है ? इन सब के अतिरिक्त ६० सन्दूको मे बद किए हुए आभूपण वहा और थे ।

पीटर महान के कक्ष की ओर जाते हुए मै ने मिस्टर जोन से कहा, "अचभे की बात तो यह है कि साम्यवादी सरकार ने ६० वडेवडे सदूको मे भरे ठोस सोने के पात्र और आभूपणो को बेच कर अपने शासनकाल के प्रारभिक दिनो की भुखमरी से अपने भूखे नागरिको को बचाया क्यो नही ? विदेशी तो बडीवडी कीमते इन के लिए दे देते । लाखो व्यक्तियों के प्राण बच जाते ।

मिस्टर जोन न कहा, "इन चीजो का ऐतिहासिक महत्व हे, इसी लिए इन्हे सुरक्षित रखा गया है । बात सही है मगर साम्यवादी तो इतिहास, धर्म ओर सस्कृति को स्वीकार करते नही—यहा तक कि अपने देश के भी । जिस तरह इस्लाम या ईसाई मजहब मे धर्म, सभ्यता और सस्कार की शुरुआत मानी जाती है उन के अपनेअपने पैगबर के आविर्भाव के साथ उसी प्रकार साम्यवादी भी मार्क्स के आविर्भाव के साथ यथार्थ सभ्यता और सस्कृति का विकास मानते है । उन के लिए इस के पूर्वकाल की सभी बाते जगलीपन की है, उन मे वर्ग सघर्प है शोषण है ।"

"मेरा ख्याल है कि जारो की इन बहुमूल्य वस्तुओ का प्रदर्शन इसलिए कराया जाता है कि लोग समझे कि जार शासक जनता का शोषण कर के कितनी ऐयाशी करते थे —मैं ने अपने विचार रखे ।

सम्राट पीटर के कक्ष मे उस के निजी काम मे आने वाली चीजे देखी । शरीर के अनुरूप ही उस के शस्त्र भी लबेचौडे थे । वही एक नुकीली गदा भी रखी थी, जिस से उस ने अपने बेटे का सिर फोड दिया था । कहते है, कि उसे अपनी रानी के चरित्र पर सदेह हो गया था । जहा तक उस ने रानी के प्रेमी की नृशस हत्या की वह तो समझ मे आने की बात है पर बेचारे बालक का क्या कसूर था ?

सभी कक्षो को यदि सरसरी तौर पर देखा जाए, तो कम से कम दो दिन का समय चाहिए । हमारे पास तो इतना ही समय पूरे लेनिनग्राद के लिए था । अतएव हम काजान कैथड्रेल देखने के लिए निकल पडे ।

रोम के सेट पीटर्स गिरजे के अनुरूप यह बनाया गया है । इसे सन १८०१ मे बनाना शुरू किया गया और लगभग ग्यारह वर्षो मे पूरा किया गया । इस के ऊपर का गुबद रूस भर मे सब से अधिक सुदर है । मेरा ख्याल था कि रूस का यह सब से सुदर गिरजा अब भी उपासना मदिर होगा । मगर यहा आने पर पता चला कि सन १९२९ मे इसे विज्ञान की अकादमी बना दिया गया था और इन दिनो यह धर्मो के इतिहास का सग्रहालय है । धर्म के नाम पर जो बिभिन्न अत्याचार किए जाते रहे है उन की सजीव झाकिया यहा देखने मे आती है । एक झाकी मे देखा कि बदियो को जलाया जा रहा है । दूसरे मे देखा, उन के शरीर की बोटिया

रखाली जा रही है। यही एक औजार ऐसा देखा जो बंदियो के मुह पर लगा दिया जाता था ताकि उन का मुंह न खुल सके। बंदी को भूखा रख कर कई दिनो बाद उस के मुह पर यह औजार वे लगा देते थे और उस के सामने खाना रख देते थे। बेचारा खाना देखता था और घुटघुट कर मरता था। एक ऐसी कुरसी देखी जिस मे नुकीले कांटे लगे थे। उस पर भूखे बंदी को बैठने के लिए विवश किया जाता था। वे उसे उसी से बाध देते थे और खाना देते थे। लहूलुहान हो कर वह दो कौर खा भी नही पाता था कि दम तोड देता था।

खड़ा हुआ मैं एकटक कब तक न जाने उस कटीली कुरसी को देखता रहा। मिस्टर जौन ने कहा, "गौर से क्या देख रहे है ?"

मैं सचेत हो गया, धीरे से कहा, "सोच रहा हू कि इन अमानुषिक यत्रणादायक वस्तुओ को दिखा कर कही साम्यवादी नेता अपने किए गए अत्याचारो को ढकने का प्रयत्न तो नही कर रहे है ?'

खंडहरों में सच्चाई की ढूंढ़ ?

लेनिनग्राद—२

काजान गिरजाघर देखने पर कुछ भारी सा हो गया था। तरहतरह के विचार उठने लगे। मै ने मिस्टर जोन से अनुरोध किया कि अब गिरजाघरो को न देख कर ऐतिहासिक महत्त्व के किसी स्थान को देखा जाए। हम सत पीटर और पाल के किले की ओर चले।

सिलेटी रग की नीवा नदी के बीच किले की पीले रग की मीनारे आसमान में बादलो से छेडछाड कर रही थी। दूर से ऐसा लगता था मानो छोटा सा किला होगा पर अदर जाने पर देखा कि अपने मे यह एक अच्छीखासी बस्ती है। इस किले को सम्राट पीटर महान ने बनवाया था। काफी पुरानी इमारते यहा है जो देखभाल की वजह से अब भी दुरुस्त हैं। निकोलस प्रथम को छोड कर प्राय सभी रूसी सम्राटो की समाधिया इस मे है। कई अच्छे गिरजे भी सम्राटो द्वारा इस मे बनवाए गए थे जो आज भी हे। हम ने सत निकोलस का गिरजा देखा। पुराना होने के बावजूद इस की सुनहली चमक आज भी शानदार है। युसुबोव महल का वह स्थान भी देखा जहा रासपुतिन की हत्या की गई थी। यही हमने सम्राट पीटर का ग्रीष्म प्रासाद देखा। चारो तरफ कुज और उपवन है, जगहजगह कलापूर्ण प्रस्तरमूर्तिया है। जाडे मे इन्हे लकडी की पट्टियो से ढक दिया जाता है ताकि पाले और ठड के कारण चटक न जाए। मुझे लेनिनग्राद भर मे इस प्रासाद से अधिक आकर्षक स्थान दूसरा न लगा।

समय सब कुछ बदल देता है। दिल्ली का लाल किला, जो कभी सल्तनते मुगलिया के शहनशाहो का महल था, उन्ही के लिए बदीगृह बना। देश की आजादी के लिए जान देने वाले आजाद हिंद फौज के सिपाहियो का मुकदमा भी यही पर हुआ। इसी तरह सत पीटर और पाल के किले ने जारशाही के नजारे देखे ओर उन्ही के लिए यह कारागार भी बना। पीटर प्रथम के शासनकाल मे यह अत्याचार और हत्या का प्रधान केद्र बना रहा। लगभग दो सौ वर्षो मे यहा न जाने कितने लोग जीतेजी गाड दिए गए, कठोर यत्रणा देदे कर मार डाले गए या इस की सडी बदबूदार अधेरी कोठरियो मे पडेपडे पागल हो गए। रूस के बडेबडे क्रातिकारियो को यहा कारावास का दड मिला। प्रसिद्ध क्रातिकारी लेखक दास्तोवस्की को यही कोठरी मे बद किया गया था।

किला देख कर हम लेनिनग्राद का स्टेडियम देखने निकले। रास्ते मे एक मसजिद भी देखने को मिली। ईसाई प्रधान अचल मे मसजिद का होना विस्मयकारी था, खास तौर मे इसलिए कि रूस मे धर्म को महत्त्व नही दिया जाता है। पूछने पर पता चला कि रूस मे

ईसाइयो के बाद मुसलमानो की सख्या सब से ज्यादा है। सोवियत देश के एशियाई क्षेत्र के कई राज्यो मे तो मुसलमानो की सख्या अधिक है ही, यूरोपीय अचल के जार्जिया और आरमेनिया आदि इलाको मे भी इन की संख्या काफी है। लेनिनग्राद जारो के समय राजधानी थी और अब भी यहा काफी सख्या मे मुसलमान आतेजाते रहते है, इसलिए मसजिद मे जुमे के दिन काफी चहलपहल रहती है।

इन के अलावा, यहूदी और बौद्ध भी सोवियत देश मे है। इन दिनो रूस मे लगभग ढाई लाख यहूदी है। बौद्ध वहुत कम है पर मध्य एशिया मे इन की सख्या काफी है। एक समय था जव अफगानिस्तान की सीमा से ले कर चीनसागर तक बौद्धविहार जगहजगह बने थे। इस्लाम के अभ्युदय के साथ ही बौद्धोका पराभव हुआ। आज भी इन के अवशेष यत्रतत्र मिल जाते है :

रूस मे यहूदियो के साथ अच्छा व्यवहार नही किया जाता है। जरमन नाजियो की तरह उन पर कठोर अत्याचार भले ही न किए गए हो पर इन्हें नाना प्रकार से हतोत्साहित किया जाता रहा है और अब भी यही सिलसिला है। इस के कारण का सही अनुमान लगाना कठिन है। शायद सयुक्त अरव राष्ट्रो की तुष्टि के लिए यहूदियो से तनाव बनाए रखना आवश्यक समझा जाता हो। रूस वालो की यह भी धारणा है कि यहूदी एक अंतर्राष्ट्रीय कौम रही है। अव इजरायल इन का अलग राष्ट्र वन गया है। ऐसी स्थिति मे, इन की वफादारी अन्य देशो के प्रति नही हो सकती है, इसी लिए इन पर विश्वास कम किया जाता है। यो तो सोवियत सेना और सरकार मे ऊचे पदो पर कुछेक यहूदी हे पर धीरेधीरे ये हटाए जा रहे है।

स्टेडियम शहर से लगभग छ सात मील दूर है। इस मे दाखिल होने के पहले एक प्रवेश पत्र दिखाना पडा। मिस्टर जोन ने इस के लिए पहले ही प्रवध कर दिया था। स्टेडियम देख कर अनुमान होता है कि सोवियत जनता और सरकार दोनो का उत्साह खेलकूद के प्रति काफी है। खेलकूद को यहा के लोग राष्ट्रीय महत्त्व देते हैं और विदेशो से प्रतियोगिता मे आगे वढे रहने का प्रयास करते हैं। एक पृथक मत्रीपरिषद की देखरेख मे खेलकूद का प्रवध होता है। सोवियत सघ मे दो खेल वहुत ही जनप्रिय है—मैदान में फुटबाल और घर मे शतरज। अन्य यूरोपीय देशो की तरह यहा गोल्फ के प्रति रुचि नही है। सारे देश मे अच्छेअच्छे क्लब है। पता चला इन क्लवो मे लगभग तीस लाख अच्छी श्रेणी के खिलाडी है। सरकार की ओर से इन के खाने पीने और रोजगार की विशेष व्यवस्था की गई है।

स्टेडियम के वाद मिस्टर जोन हमे ओरिएटल इस्टीच्यूट मे ले गए। भारत मे हमे एक वार राहुलजी ने वताया था कि यह रूस मे प्राच्य विद्या तथा सस्कृति के अध्ययन का केद्र है। भारत की लगभग सभी भाषाओ के शीर्ष लेखको की चुनी हुई कृतियो का रूसी मे यहा अनुवाद होता है। हम ने दिवगत वारान्निकोव द्वारा तुलसी के 'रामचरितमानस' का अनूदित सस्करण देखा। यहां हमे हिंदी भाषी रूसी भी मिले। मुझे ऐसा लगा कि रूस मे भले ही द्वद्वात्मक भौतिकवाद के प्रति अधिक आस्था हो, क्योकि साम्यवादी सरकार ने जनता के विचारो को इसी दिशा मे मोड दिया है, फिर भी भारतीय चिंतन के प्रति वहा जिज्ञासा है। अच्छा होता, यदि हमारे यहां भी प्रयास किया गया होता कि हम विदेशो मे अपनी सस्कृति और साहित्य का प्रसारप्रचार वढाए। हमारे बड़ेवडे मठाधीश, जिन के पास प्रचुर सपत्ति और साधन है, यदि भारतीय सस्कृति के प्रचार मे थोडी सी भी रुचि ले तो न केवल हमारी राजनीतिक मर्यादा पुष्ट होगी, वल्कि दूसरे देशो से हमारा मैत्रीसवध भी अधिक बढेगा। कम से कम पूर्वी एशिया और रूस के साथ तो निश्चित रूप से।

ओरिएटल इस्टीच्यूट मे सस्कृत, पाली, हिंदी, तमिल, बगला आदि भाषाओ के अच्छेअच्छे ग्रथो के अनूवाद हो रहे है।

रात हो आई थी। हम बदरगाह की ओर गए। जून का महीना था पर हमे सर्दी लग रही थी। बदरगाह के किनारे बहुत से मल्लाह युवतियो के साथ प्रेमालाप मे तल्लीन थे। इस ढग के दृश्य हम ने मास्को मे नही देखे थे। हम ने मिस्टर जोन से कहा, "रूस मे तो इन बातो को प्रोत्साहन नही मिलता, फिर यहा यह सब कैसे ?" उन्होने जवाब दिया, "यह दृश्य आप को अजीब सा लगता है पर भूख की पूर्ति तो करनी ही पडती है, चाहे वह पेट की हो या सेक्स की। ये मल्लाह महीनो घर से दूर रहते है इसलिए जहाज से उतरने पर इन का सब से पहला काम होता है—साथी ढूँढ कर मौजमस्ती मे डूब जाना। सभी देशो मे ऐसा होता है। हागकाग, सिंगापुर, मार्सलीज, पोर्ट्स्माउथ आदि मे इसी ढग के दृश्य देखने मे आते है।" हम ने कहा, "पर बबई, मद्रास, कलकत्ता मे नही।"

रात्रि के लगभग बारह बजे हम होटल वापस आ गए। इस समय भी कुछकुछ प्रकाश था। मिस्टर जोन ने हमारे साथ काफी पी और अगले दिन का कार्यक्रम निश्चित कर विदा ली। चलतेचलते हसते हुए कह गए, "चिवडे और बरफी तैयार रखे !"

हमारे विशेष आग्रह पर दूसरे दिन सुबह मिस्टर जोन स्वीडिश दूतावास के अपने एक मित्र को साथ ले आए। हमारा परिचय कराते हुए उन्होने मित्र से कहा कि वह विना सकोच अथवा दुविधा के रूस सबधी पश्नो के बारे मे हमे बता सकते है, क्योकि हम केवल जिज्ञासु है, हमारा उद्देश्य रूस अथवा साम्यवाद के विरोध मे प्रचार करना नही है।

हम यह जानना चाहते थे कि रूस की जनता ने एकाएक इस प्रकार रक्तक्राति को कैसे स्वीकार कर लिया ? फ्रास मे भी क्राति हुई, इगलैड मे भी, पर वहा तो परिस्थिति इतनी जल्दी नही बदली !

उत्तर मे हमे बताया गया कि यहा की जनता अशिक्षित थी ओर जारो के अत्याचार, सामतवादी शोषण और धर्माचार्यो के पाखड के कारण आर्थिक व्यवस्था इतनी असतुलित रही कि उस से छुटकारा पाने का अन्य कोई उपाय समझ मे नही आया। लोग किसी भी मूल्य पर परिवर्तन चाहते थे और इसी लिए क्राति को उन्होने स्वीकार किया। यदि उन्हे यह अनुमान होता कि क्राति के कारण उन का व्यक्तित्व नष्ट हो जाएगा तो शायद वे साम्यवादी व्यवस्था को स्वीकार नही करते। जो भी हो, जारशाही का अत करके यहा प्रजातन्त्रवादी सरकार बनी। पर १५ वर्ष बाद स्तालिन के शासन मे उस का रूप अधिनायकवादी हो गया। मार्क्स का नाम केवल प्रचार के लिए ही रह गया।

स्तालिन ने भी वही किया जो पीटर और निकोलस करते थे। जनता मे भीतर ही भीतर असतोष फैला, पर उस के जीवनकाल मे उस के रोबदाब के सामने किसी प्रकार का विद्रोह अथवा विरोध न हुआ। स्तालिन की मृत्यु के बाद इस असतोष का सब से अधिक लाभ उठाया ख्रुश्चेव ने। उस ने जनता को बताया कि स्तालिन ने तानाशाही चलाई जो मार्क्सवाद के प्रतिकूल है। इस प्रकार के प्रचार से उस ने अपनी शक्ति बढा ली।

इस प्रसग मे मै ने उन से पूछा, "यह बात कहा तक सच है कि स्तालिन की हत्या की गई ?"

उन्होने कहा कि सदेह लोगो मे है पर निश्चित रूप से कुछ कहा नही जा सकता। स्तालिन की मृत्यु किस प्रकार हुई, इस पर उन्होने जो कुछ बताया, वह हमारे लिए एक नई जानकारी थी।

अपनी बात की पुष्टि के लिए उन्होने एक प्रसिद्ध फ्रासीसी समाचारपत्र म प्रकाशित घटना का उल्लेख किया। घटना इस प्रकार है कि स्तालिन की तानाशाही का विरोध वोरोशिलोव ने किया। अपनी सेवाओ के कारण उसका प्रभाव और व्यक्तित्व रूसी नेताओ मे स्तालिन से कम नही था। दोनो मे विवाद और विरोध भीतर ही भीतर बढता जा रहा था। उन्ही दिनो रूसी प्रेसीडियम के समस्त सदस्यो की चिकित्सा का भार नौ प्रसिद्ध यहूदी

डाक्टरो को सौपा गया था। स्तालिन ने जनवरी १९५३ मे चिकित्सको को यह कह कर गिरफ्तार करा लिया कि इन्होने सदस्यो की हत्या करने की योजना बनाई। दो डाक्टरो को तो इस बुरी तरह पीटा गया कि वे मर गए। दरअसल दोष बेबुनियाद था किंतु स्तालिन यहूदियो मे आतक की सृष्टि कर के उन्हे सुदूर साइबेरिया मे बसाना चाहता था ताकि वे किसी से सपर्क न रख सके। वोरोशिलोव ने एक बैठक मे इस का विरोध खुले रूप से किया। मोलोतोव और कागनोविच भी उस के मन के थे, पर उनमे विरोध करने का साहस नही था। वोरोशिलोव ने प्रेसीडियम की एक बैठक मे अपनी जेब से सदस्यता का कार्ड निकाल कर मेज पर फेकते हुए कहा, "यदि बेकसूरो के प्रति इस ढग की कार्यवाही की गई तो कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य बने रहना मेरे लिए लज्जा की बात होगी।" स्तालिन क्रोध से तमतमा उठा। उसने वोरोशिलोव को डपटा, "तुम कौन हो सदस्य बनने या छोडने वाले! यह तो मै हू जो निर्णय करू कि तुम्हे सदस्य बनाए रखा जाए या निकाल दिया जाए।"

इस पर कुछ फुसफुसाहट हुई। लेकिन जब उपस्थित सदस्यो की नजर स्तालिन पर पडी तो उन्होने देखा कि वह कुर्सी मे लुढक चुका है और फर्श पर औधा पडा है। बेरिया, जिसे बाद मे ख्रुश्चेव ने मरवा दिया था, खुशी से नाच उठा। कहने लगा, "आखिर हम आजाद हुए।"

इसी बीच स्तालिन की लडकी स्वेतलाना खबर पा कर घटनास्थल पर आ गई। उस ने पिता के सिर को उठा कर गोद मे रख लिया। स्तालिन के शरीर मे अब भी गरमी थी, पर वह कुछ बोल न पाया। यह बेहोशी उस की मौत तक बनी रही।

यह सही है कि स्तालिन ने तानाशाही की और अपने को पुजवाया, फिर भी यह मानना पडेगा कि उसने रूस को सशक्त बनाया और ससार के अग्रणी राष्ट्रो मे प्रतिष्ठित किया।

१९२८ के बाद रूस ने पचवर्षीय योजनाए शुरू की। आशानुकूल इनमे सफलता नही मिल सकी। फिर भी, एक पिछडे हुए विशाल देश के विकास के लिए इस के सिवा अधिक सुविधाजनक रास्ता और हो भी क्या सकता था? आज खाद्यान्न और खनिज पदार्थो मे रूस स्वावलम्बी है। फौजी सामान और आणविक शक्ति मे उसके प्रतिद्वन्द्वी इगलैंड, फ्रास और जरमनी नही है। उस का प्रतिद्वद्वी है अमरीका, जबकि अमरीका का वार्षिक बजट रूस से कही बढाचढा है।

शिक्षा मे रूस ने आशातीत प्रगति की है। तीन दशको मे ३० प्रति शत से बढा कर ९९ प्रति शत लोगो को शिक्षित बना देना मामूली बात नही।

विश्व की सब से बडी जनसख्या वाले किंतु गिरे हुए राष्ट्र चीन को भी रूस ने उठाया और शक्तिशाली बनाया। अपने अनुभवी फौजी अफसर और इजीनियरो को वहा भेज कर रूस ने चीनियो को तैयार किया। आज वही चीन रूस विरोधी बन गया है। रूसी भी सावधान हो चुके है। युगोस्लाविया के प्रेसिडेट टीटो के विरोध को सोवियतवासियो ने सह लिया है पर चीन के प्रति ऐसी सभावना नही रहेगी। रूस और चीन के बिगडते सबध इस ओर स्पष्ट सकेत करते है। रूस वालो की धारणा है कि चीनियो के समान एहसानफरामोश और धोखेबाज विश्व मे शायद ही कही हो। मैने हसकर कहा, "हम तो इसके भुक्तभोगी है, हमसे ज्यादा इस तथ्य को कौन जानता है!" फिर पूछा, "दोनो ही मार्क्स के सिद्धात को मानते है, दोनो ही साम्यवादी है, फिर यह असाम्य क्यो?"

वह कहने लगे, "सब से बडा वाद स्वार्थवाद है, इसे न भूलना चाहिए। मनुष्य के जन्मकाल से यह उसके साथ जुडा हुआ है और सुविधानुसार समयसमय पर इसके नामकरण होते रहते है।" हम सभी हस पडे। वह कहने लगे, "साम्यवादी देश जनता को भुलाने के लिए मार्क्सवाद का नाम अपनेअपने ढग और तरीके से लेते रहते है।" अन्यथा है ये सभी एक दूसरे

मे दूर। मार्क्स ने १८६७ मे जब कैपिटल लिखा था तो उस समय स्थिति दूसरी थी। उद्योगधधो की शुरुआत थी, मजदूरो का शोषण खूब होता था। प्रतिदिन बारह से सोलह घटे तक उन्हे काम करना पडता था और समाज मे बहुत बडी विषमता थी।पर समय के साथसाथ मान्यताए बदलती गई। श्रमिको की सुखसुविधा का ध्यान, स्वार्थ पूर्ति की दृष्टि से ही सही, सभी जगह आवश्यक समझा गया चाहे वह पूजीवादी व्यवस्था हो या साम्यवादी। इस समय यदि मार्क्स जिदा होता तो शायद उसे कैपिटल लिखने की कोई जरूरत नही होती क्योकि इन सौ वर्षो मे उस के विचारो के विरोधी देशो मे मजदूरो या किसानो की दशा कम उन्नत नही हुई है। यदि स्वीडन अमरीका, पश्चिमी जरमनी और स्विट्जरलैड को एक पलडे पर रखा जाए और दूसरे पर रूस, पोलैड, चीन, पूर्वी जरमनी को तो इस कथन की सच्चाई का अदाज मिल जाएगा।

५६-५७ मे हगरी मे जिस नृशसता से लाखो व्यक्तियो की हत्या की गई थी, उस के सिलसिले मे उन्होने बताया कि साम्यवादी सिर्फ मानते है कि सिद्धात के आगे व्यक्ति का जीवन कोई भी मूल्य नही रखता। यदि हगरी का विद्रोह सफल हो जाता तो फिर सोवियत गुट के अन्य देश भी सिर उठाते और तब रूस की सत्ता की साख घट जाती। इसीलिए मानअपमान या आलोचना की परवाह किए बिना कठोरता से दमन किया गया। राजनीति का उन का यह प्रयोग अब तक सफल रहा है। लोग उगलिया भले ही उठा ले पर सिर नही उठा सकते।

हमे जितनी जानकारी यहा दो दिनो मे मिली, मास्को मे पाच दिन तक रह कर भी नां पा सके थे। हम चाहते थे उन से और प्रश्न पूछे, पर ऐसा सभव न हुआ। समय उन के पास था नही और हमे भी अपने अगले कार्यक्रम के लिए तैयार होना था। शाम के प्लेन से हमे फिनलैड की राजधानी हेलसिंकी जाना था। इसलिए दिनभर मे जितना कुछ सभव था, देख लेना चाहते थे।

यो तो लेनिनग्राद मे ४८ म्यूजियम है पर हम इन से बडेबडे म्यूजियम अब तक देख चुके थे, इसलिए हम उन मे नही गए। फिर भी हम ने प्राकृतिक इतिहास के सग्रहालय को देखा। इस की तारीफ मास्को मे हम ने सुनी थी। प्रागैतिहासिक काल से आज तक की वस्तुओ का सग्रह बडे करीने से यहा है। हम ने यहा दस हजार वर्ष पहले का एक हाथी देखा जिसे एक शिकारी ने साइबेरिया मे बर्फ के नीचे ढका पाया था। वहा से इसे टुकडेटुकडे कर के लाया गया और बाद मे जोड कर वहा रख दिया गया। हजारो वर्ष पहले किस प्रकार मनुष्य और पशु साथसाथ रहते थे, किस प्रकार मानव समाज ने विकास किया, इन्हे क्रमबद्ध रूप से माडलो द्वारा यहा दिखाया गया है।

नौसेना का म्यूजियम भी हम ने देखा। इसे 'एडमिरल्टी' कहते है। यह भवन आधा मील लबा है। इसे रूसी सम्राटो ने बनवाया था। यद्यपि रूसी नौसेना की शक्ति कभी भी उल्लेखनीय नही रही पर जारो को बडे और विशाल भवन बनाने का शौक था इसलिए यह भवन बना। आज भी रूसी नौशक्ति प्रथम पक्ति मे नही है। म्यूजियम मे हम ने पुरानेपुराने हथियार, जहाजो के माडल और विभिन्न युगो मे बने नाना प्रकार के अस्त्रशस्त्र देखे।

हमे बताया गया था कि यदि रूसी कला का निखार देखना हो तो लेनिनग्राद के किसी थियेटर, विशेषतया किरोव को तो जरूर देखा जाए। हमे शाम को ही लेनिनग्राद छोडना था इसलिए इच्छा मन मे ही रह गई।

लेनिनग्राद मे कई तरह के बडेबडे कारखाने है। इन मे कई तो रूस मे सब से बडे माने जाते है। इन मे से एक मे हम गए। जो बिजली के पखे बनाने का कारखाना था। अनुशासन और प्रबध का परिचय तो हमे मास्को मे ही मिल चुका था। इस मे करीब दस हजार मजदूर

है और इजीनियर है लगभग ढाई हजार। जब हम ने प्रश्न किया कि आखिर ढाई हजार इजीनियर यहा क्या करते है तो उत्तर मिला, "सुदक्ष स्नातक (ग्रेजूएट) भी यहा साधारण मजदूरी करते है ताकि सभी तरह के काम की व्यावहारिक जानकारी प्राप्त कर सके।

लेनिनग्राद से चलते समय इस की यादगार क तौर पर हम कुछ ले जाना चाहते थे। मैं ने एक रोएदार मफलर खरीदा। दाम बहुत ज्यादा था। हमारे पास रूसी रूबल बच गए थे इसलिए खरीद लिया। थोडे से भारतीय रुपए देने लगा तो दुकानदार ने लेना अस्वीकार कर दिया। हा, अमरीकी डालर लेने को वह तैयार था। हम ने मिस्टर जोन की मारफत कहा "भारत तो आप का मित्र देश है, फिर भी हमारे सिक्के से ज्यादा आप अमरीकी सिक्के को मान्यता देते है, यह बात समझ मे नही आती।"

बडा रोचक उत्तर मिला, "दोस्ती और सिक्के की कीमत अलगअलग है।"

ध्यान आया कि दस वर्ष पहले जब यूरोप आया था, उस समय हमारे सिक्के की साख थी—दूसरे सिक्को के मुकाबले हाथोहाथ चलता था। स्पष्ट था कि हम ने असतुलित ढग से अपनी योजनाए बनाई है।

फर (रोए) के बारे मे हमे बताया गया कि साइबेरिया मे छोटे चूहे जैसा एक जानवर पाया जाता है, उसी की खाल से यह बनता है। फर मे मफलर के अलावा कोट भी तैयार होता है जिसे 'सैबर' या 'मिंक कोट' कहते है। उम्दा किस्म के एक कोट की कीमत पाच लाख रुपए तक होती है। हमारे पास न तो ऐसे कोट खरीदने के लिए रुपए ही थे और न इच्छा ही। पहले इस बात का पता रहता तो दुकानदार से पूछ कर कम से कम इन कोटो को देखते जरूर और अगर वह मजूरी दे देता तो हाथ से छूते भी।

हमारे बहुतेरा मना करने पर भी मिस्टर जोन एयरपोर्ट पर हमे छोडने के लिए आए और विदा कर ही वापस गए। उन के स्नेहपूर्ण व्यवहार से हमे लगा कि पूर्वजन्म सबधी हमारी धारणाओ मे शायद कुछ तथ्य है, अन्यथा महज एक बार की मामूली सी जानपहचान मे इतना स्नेह और अपनापन कैसे सभव हो सका। उन का कार्ड आज भी सुरक्षित है और उन से फिर से मिलने की भी बात थी पर दोनो ही पक्ष जानते थे कि शायद यह सभव नही होगा। विदाई के समय हम लोगो की आखे गीली थी। वायुयान मे बैठा सोचने लगा जीवन मे न जाने कितने क्षण ऐसे आते है जिन की पुनरावृत्ति होती नहीं पर उन की अमिट छाप हृदय और मस्तिष्क पर रह जाती है।

सन् १६५० मे अपनी ग्रीस यात्रा मे मिस्टर निगानी की पुत्रशोकाकुल पत्नी के साथ बिताए आधे घटे की याद अनायास ताजा हो उठी।

रेगिस्तान की अमृत धारा

पिरामिडों के देश में

पश्चिमी यूरोप के बाद यूनान भी देख चुका था। अब देखना था मिस्र—पिरामिडो का देश। ठीक भी यही लगा, क्योकि इतिहास के अरुणोदय काल मे ही यूनान की भाति नील की घाटी मे भी मानव सभ्यता की एक धारा प्रवाहित हुई थी, जिसे मिस्र सभ्यता कहते है। यूनान, बेबीलोन और सिधु घाटी की प्राचीनतम सभ्यताओ की भाति ही इस की महिमा और गरिमा भी विकसित होती चली गई थी और अब इस के अवशेष बताते है कि भौतिक उन्नति मे भी यह अपनी समकालीन सभ्यताओ से किसी कदर कम न थी।

मिस्र जाना पहले से तय था। एथेस मे सभी काम निपटा कर हवाई अड्डे पर पहुचा। मई का महीना था, मौसम साफ था।

दो घटे मे यूनान से मिस्र, खयाल आया, आज से ५,००० वर्ष पूर्व कितना समय लगता होगा ? अपने विजयोन्माद मे चूर, आधी की तेजी से बढता हुआ सिकदर भी कितने दिनो मे मिस्र तक पहुच पाया होगा ?

ध्यान भग हुआ। विमान की परिचारिका कह रही थी, "काहिरा आ रहा है और अब हम नीचे उतरेगे।"

विमान ने मिस्र की धरती का स्पर्श किया। उस समय रात के साढे बारह बज रहे थे। चुगी अफसरो के घेरे से बाहर निकला। हमे 'टी० डब्लू० ए०' (ट्राम वर्ल्ड एयरवेज) की बस ने नगर मे अपने पूर्व निश्चित स्थान 'विक्टोरिया होटल' पहुचा दिया।

होटल यूरोपीय ढग का था—साफ और आरामदेह—लेकिन दिल्ली के 'अशोक' और 'इंपीरियल' के मुकाबले का नही। बिस्तर पर पीठ सीधी करते ही नीद आ गई।

सुबह उठा। दिन चढ आया था। आठ बजे थे। गरमी ने बता दिया कि यह अफ्रीका है और सहारा का रेगिस्तान यहा से दूर नही। नित्य कर्म से निपट कर होटल से निकला।

रास्ते और बाजार बहुत कुछ पुरानी दिल्ली और कलकत्ता की 'जकरिया स्ट्रीट' की तरह थे। रोमन और अरबी लिपि मे लिखे साइनबोर्ड और अधिकाश लोग ताम्रवर्ण के तथा लबेचौडे थे। उन्हे देख कर लगा कि मिस्र सदियो से अरब और अफ्रीका का सगमस्थल रहा होगा। उन का पहनावा भी अरबो का सा था। लबे चोगे अमामे ढीले पायजामे और ऊची लाल टोपी। किसीकिसी की टोपी के चारो ओर फेटा भी बधा हुआ था। बातचीत के तौरतरीके भी बहुत कुछ अपने यहा की तरह थे। बुरको मे औरते, मसजिद, मुल्लेमौलवी और

शेख—वातावरण अपरिचित नही लगता था, शायद इसी लिए कि करीब नौ सौ वर्षो तक भारत पर भी इस्लाम का प्रभुत्व रहा है।

चीजो की सजावट मैं भी बहुत अपनापन सा था। एक जगह देखा, तरबूज के भुने हुए बीज और नमकीन चने रखे हुए थे। एक जगह बडे तरबूज की रसदार फाके भी सजी थीं। पेट भर चने और बीज खाए, फिर ऊपर से तरबूज। तृप्ति महसूस हुई। याद आया राजस्थान मे बाजरे के सिट्टे खा कर मतीरे का पानी पीना।

शहर के मकान विशेष आकर्षक नही लगे। वास्तुकला की दृष्टि से ये हमारे यहा से अच्छे नही है। नए मकान यूरोपीय ढग के थे। मुहम्मद अली की मसजिद बडी तो जरूर है पर दिल्ली की जामा मसजिद और अजमेर की दरगाह शरीफ की विशालता और शान कुछ और ही है।

गरमी सता रही थी। नहाना चाहता था। सोचा कि नील ही मे क्यो न नहाऊ ? और चल पडा। नील थोडी ही दूरी पर थी। तौलिए मे कपडे लपेट कर किनारे रखे और जाघिया पहने नदी मे उतरा। अब तक देश के बाहर इस प्रकार खुल कर नहाने का अवसर नही मिला था। आनद आ गया। लगा गगा मे स्नान कर रहा हू। तैरने के लिए हाथ चलाए ही थे कि पास ही से आवाज आई "अच्छी तरह तैरना तो जानते ही होगे ?"

देखा—पास ही एक बुजुर्ग स्नान कर रहे थे। गेहुआ रग, स्वस्थ शरीर, हलकी दाढी और ऊपर की ओठ पर बारीक मूछे। मै ने मुसकरा कर कहा, "जी हा, तैर लेता हू।"

"कैसा लगा हमारा देश ?" सवाल अगरेजी मे पूछा गया।

"अभी कुछ देख नही पाया कल रात ही आया हू," मैं ने कहा।

'हमारा देश' सुन कर कुछ ताज्जुब हुआ था, इसलिए मै पूछ ही तो बैठा, "माफ कीजिए, क्या आप यही के है ?"

उन्होने हस कर उत्तर दिया, "जी हा, क्या मेरी अगरेजी की वजह से आप मुझे कही और का समझ रहे है ? फ्रेंच, इतालियन और जरमन बोलने वाले भी आप को यहा मिल जाएगे।"

मै ने कहा, "मेरा ख्याल था कि मिस्रवासी ताम्रवर्ण के होते है, मगर आप आप "

वह कहने लगे, "आप का अनुमान सही है, पर पूरी तरह से नही। हमारे देश कर उत्तरी भाग अरब और यूरोप के समीप है, इसलिए दक्षिण की अपेक्षा यहा वालो का रग आपको साफ मिलेगा। इस के अलावा कुछ अरब, तुर्क, यहूदी, यूनानी और इतालियन भूमध्यसागरीय तट पर सैकडो वर्षो से बसे हुए है। उन की मिश्रित सताने अपनी सुदरता के लिए ससार मे वेजोड है।"

बातचीत मे मजा आ रहा था। मै ने कहा, "बचपन मे पढा था कि मिस्र नील की देन है। इसी लिए नील के प्रति आप लोगो के हृदय मे बडी श्रद्धा है। आज मै ने अपनी स्नान की हुई पवित्र नदियो की सख्या मे एक और बढा ली है।"

मिस्री बुजुर्ग ने कहा "जनाब, हमारे लिए तो यह आबेहयात है। हमारा सपूर्ण देश रेगिस्तान है। पश्चिम मे लीबिया से गरम रेत की आधिया आती हैं और पूर्व मे अरब का रेगिस्तान है। बस, बीच मे यह अमृत की धारा मौजूद है। इथोपिया के पठारो के उपजाऊ मिट्टी ला कर यह अपने किनारो पर जमा करती जा रही है। इसी मे खेती कर के हम कुछ अन्न उपजा लेते है। हम यहा विश्व की सर्वोत्तम रुई पैदा कर, उसे अन्य देशो को निर्यात कर के अपनी आर्थिक दशा सभाले हुए है। वरना न तो हमारे पास अच्छे उद्योग धधे है और न खनिज पदार्थ ही। हमारे यहा ८० प्रति शत लोग नील के किनारे खेती कर के जीवनयापन करते है। शेष २० प्रति शत शहरो मे रहते है। शहर भी इसी पट्टी के दोनो किनारो पर है।

मिस्र मे नील भी खुदा की तरह एक ही है," कह कर व हसने लगे।

देर तक नहाने के बाद हम बाहर निकले। उन्होंने कपडे पहनते हुए कहा, "चलिए काफी पीए, सामने कहवाघर है।"

मिस्र मे चाय की जगह काफी पीने का प्रचलन है।

कहवाघर हमारे यहा के मद्रासी रेस्तरा की तरह था। कमरे की दीवार पर प्रेसीडेंट नासर और मक्का शरीफ के चित्र, कुरान शरीफ की सचित्र आयते ओर कुछ कलेडर टगे थे। हम एक छोटी टेवल के किनारे वैठ गए।

मैं ने पूछा, "हलकी मगाऊ या कडी ?" उन्होंने सहज मुसकान के साथ कहा, "अपनी ओर से मगाने की वात भारत मे आप मुझ से कर सकते है, यहा तो मैं ही आप से पूछूगा।"

काफी बुरी नही थी। उन्होने वडे ही उत्साह से अपने देश के वारे मे जानकारी दी। मुझे ऐसा लगा कि वास्तव मे मिस्र को दक्षिण से उत्तर तक देखने के लिए कम से कम दस दिन का समय चाहिए। इसी प्रसग मे मैं ने कहा, "अगर आप बुरा न माने तो एक वात पूछू ?"

"शोक से पूछिए।"

मैं ने कहा, "पेरिस मे शाह फारूख के वारे में कुछ ऐसी चर्चा सुनी कि दुनिया के हर कोने की सुदरियो का एक वडा मजमा इन के हरम मे था, जिस पर करोडो रुपए सालाना खर्च किए जाते थे। इन की ऐयाशी ओर इन के अजीवोगरीव शौको पर इसी तरह मिस्र की वेशुमार दौलत वरबाद होती थी। इसे आपके देश ने कैसे वरदाश्त किया ?"

बुजुर्ग महोदय ने सजीदगी से कहा, "जनाव, शेख और वादशाह कुवेत, हिंदुस्तान या मिस्र, कही के भी हो, जव तक उन के पास निरकुश सत्ता रहेगी, नतीजा साफ ही है।"

इस सक्षिप्त उत्तर से मुझे अपने सवाल का जवाव मिल गया ओर याद आ गया अपने देश के नवाब और राजाओ के लज्जास्पद, विवेकहीन कारनामे। विदा होते समय बुजुर्ग महोदय ने मेरे हाथ अपने हाथो मे ले कर सीने से लगाए।

पीछे मुड कर देखा—छोटीछोटी डोगिया और नावे पाल ताने नील की लहरो मे तिर रही थी। लहरे धूप मे चमक रही थी। याद आ गई भारतेदु की पक्ति—नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति।

काहिरा से सात मील दक्षिण मे गिजे नामक स्थान है, विश्वविख्यात पिरामिड है। वस मे वैठ कर उधर ही चल पडा। शहर से निकलते ही, गरम रेत और सूखी हवा के थपेडे लगने लगे। मैं ने सोचा, 'वीच सहारा मे तपती रेत की आधियो मे कैसी गुजरती होगी ?'

गिजे से पिरामिड डेढ मील पर हैं। वस से उतरते ही, गधे और ऊट वालो ने घेर लिया। गरमी के कारण यात्री बहुत कम थे। इसलिए सभी अपनी ओर खीचातानी कर रहे थे। अगरेजी, फ्रेच और इतालियन के टूटेफूटे शब्दो मे वे अपनीअपनी सवारी की प्रशसा कर रहे थे। उन वाक्यो के बीच हिंदी का 'वहुत अश्चा' शब्द सुन कर मुझे सचमुच वहुत अच्छा लगा। मैं उन के मोलभाव से चौकन्ना था, क्योकि इस विषय मे पहले पढ चुका था।

सोच रहा था कि गधे पर वैठू या ऊट पर ? गधे की सवारी मे किफायत, ऊट की सवारी मे ज्यादा खर्च। गधो को देखो—कान लटकाए खडे थे। गधे की सवारी को अपने यहां अच्छी नही मानते, लिहाजा सोचा कि रेगिस्तान का जहाज ही उपयुक्त रहेगा। वडी हुज्जत के वाद 'अव्दुल' से ऊट का किराया तय हुआ तीन रुपए। यहा एक वात देखी—जैसे हमारे यहा आमतौर पर हर नेपाली 'वहादुर' है, उसी तरह हर मिस्री 'अव्दुल' है।

रास्ते मे अव्दुल ऊट की नकेल थामे चला जा रहा था। ऊट की चाल सुस्त पर अव्दुल की जवान चुस्त थी। टूटीफूटी अगरेजी मे अपनी, अपने खानदान की और अपने ऊट की तारीफ। कान खडे हो गए जब मुझे यह बतलाया गया कि मैं उस कमाल पर वैठा हुआ हू जिस पर

सुप्रसिद्ध जरमन जनरल रोमल बैठ चुका था। इतना ही नही, रोमल को हटा कर जब जनरल माटगोमरी काहिरा आया तो उस ने तमाम ऊंटो मे से इसी को पसद किया था।

"अगरेज बुरे हो या भले, होते है, कद्रदा ! वैसे आप के यहां के कश्मीर के महाराजा ने भी इस की चाल से खुश हो कर १००) रुपए तो बतौर बख्शीश ही दे दिए थे," अब्दुल ने लखनऊ के इक्के वालो के से अदाज मे कहा।

एक तो सिर पर कडकड़ाती धूप, दूसरे कमाल की चाल। परेशानी हो रही थीं। तिस पर जनाव अब्दुल ने फरमाया, "यह शुक्र समझिए कि आप को उन ठगों से बचाने के लिए मैं ने यो ही तीन रुपए कह दिए, वरना दस से कम मे तो मेरा कमाल अपनी नकेल ही नही थामने देता।"

उस की बकवास पर खीझ तो बहुत ही आ रही थी, लेकिन बियावान सहारा मे उस दैत्याकार डीलडौल को देख कर चुप कराने के बजाए खुद ही चुपी साधे रहने मे भलाई समझी।

हाल इतहा बेहाल हो रहा था, पर पिरामिड के पास पहुंचने पर शाति मिली। ऐसी समाधिया ससार मे अन्यत्र कही नही है। इन का निर्माण प्राय छ हजार वर्ष पूर्व हुआ था। कितने विशाल है ये पिरामिड, इस का अनुमान इस तरह लगाया जा सकता है कि खूफू के पिरामिड मे, जो सब से बड़ा पिरामिड है, लगभग ३० लाख टन बडीबडी शिलाए लगी हैं। इन का कुल वजन १७ करोड मन आका गया है।

मिस्र के महाराजे इन पिरामिडो को इसलिए बनवाते थे कि मृत्यु के बाद वे इन मे समाधिस्थ कर दिए जाए। शव के साथ उन की प्रिय वस्तुए—अलंकार, स्वर्णपात्र, राजचिह्न वस्त्रादि—इन मे रखे जाते थे। इन मे जो ठोस स्वर्ण के बने वजनी किस्म के अलकार पात्र अथवा राजचिह्न है, उन को अब मिस्र के राज्य सग्रहालय मे रख दिया गया है।

इन की दीवारो पर राजाओ के जीवन की प्रमुख घटनाओ और कीर्ति के चित्र उत्कीर्ण किए जाते थे और उन का वर्णन भी रहता था। पत्थरो पर खोदे हुए चित्रो के साथ कहीकही रग का भी प्रयोग किया गया है। राजाओ का शव रासायनिक लेप लगा कर एक विशेष प्रकार के ताबूत मे बद कर दिया जाता था। इस शवाधार को 'ममी' कहते है। इस ताबूत को पत्थर के एक बडे बक्स मे रख दिया जाता था। इस पर राजा की प्रतिमूर्ति, उस का राज्यकाल आदि अकित कर दिया जाता था। ममी मे रखे हुए शव सडतेगलते न थे। लेप का रासायनिक नुस्खा क्या था, इस का पता आज तक नही चल पाया है।

पिरामिड का निर्माण अत्यत कष्टकर तथा व्ययसाध्य था। हजारो गुलाम बडेबडे पत्थर सैकडो मील की दूरी से लबी रस्सियो से खीच कर लाते थे—दहकती बालू की आधी मे जहा पानी का नाम नही। कितनी जाने गई होगी, यह कल्पनातीत है।

इन के पास ही स्फिक्स की विशाल मूर्ति है, जिस की ऊचाई १८६ फीट है। इस का सारा शरीर सिंह का परतु सिर मनुष्य जैसा है। इस ढग की मूर्ति के बनवाने मे राजा की शक्ति और पराक्रम के प्रदर्शन की भावना रहती थी। अपनी कीर्ति और यश को अमिट रखने की आकाक्षा मनुष्य मे कितनी अधिक रहती है—पिरामिड, कुतुबमीनार और ताजमहल इसी के तो प्रत्यक्ष प्रमाण और प्रयत्न हैं।

पिरामिड से वापस बस स्टैड पर आया। दो बज रहे थे। अब्दुल को तीन रुपए देने लगा तो वह झगडा करने पर उतारू हो गया। हाथ हिलाते हुए चिल्ला कर कहने लगा, "दस की बात हुई, देते है तीन रुपए!"

शोर सुन कर दूसरे ऊट वाले भी वहा आ गए। आश्चर्य तो यह था कि जाते समय जहा सभी आपस मे उलझ रहे थे, अब सब उसी की तरफदारी करने लगे। खैर, किसी प्रकार दूसरे

लोगो के बीचबचाव से पाच रुपए मे छुट्टी मिली'। मैं सोचने लगा कि पूर्वी देशो मे हम लोग अपने इस व्यवहार के कारण पर्यटन व्यवस्था को कितनी हानि पहुचाते है और साथ ही विदेशियो की नजरो मे अपने राष्ट्र को कितना नीचे गिराते हे ।

ग्जिे से बस पर बैठ कर शहर लौट रहा था । मन मे विचार उठे, 'नील मे मिले बुजुर्ग व्यक्ति और ऊट वाला अब्दुल, दोनो ही तो मिस्र के हैं ! शिक्षा और सस्कार मनुष्य को कितना प्रभावित करते है ! जिस देश मे इन बातो पर अधिक ध्यान दिया जाएगा, वहा निश्चय ही अब्दुल कम मिलेगे ।" खिडकी से बाहर देख रहा था । पिरामिड ओझल हो चुके थे । कितना श्रम, धन और समय लगाया गया था इन पर ! सदिया गुजर चुकी हैं, जमाना कहा से कहा आ गया है ।

शहर आ कर नाश्ता किया । सग्रहालय देखने गया । दरवाजो पर गाइडो ने घेर लिया । मैं ने किसी को साथ नही लिया । समय कम रहने के कारण सरसरी तौर पर यह देखना चाहता था । मिस्र का यह सग्रहालय बहुत बडा नही है । सग्रह मे भी उतनी विविधता नही जितनी की कलकत्ता म्यूजियम मे है । मेरी दिलचस्पी मिस्र की शिल्पकला, पुरातत्व और इतिहास मे थी, इसलिए उन्ही को देखने लगा । मिस्र के प्रागैतिहासिक और प्राचीन काल की बहुत सी वस्तुए देखी । लेकिन मैं ने अनुभव किया कि उन की बारीकिया समझना मेरे लिए कठिन था । अच्छा होता कि 'इजिप्टालोजी' (मिस्र के पुरातत्व की विद्या) का थोडा सा ज्ञान प्राप्त कर लेता या गाइड को साथ ले लेता ।

यही ममी मे रखा हुआ तुतेनखामन का शव देखा । उस की बहुमूल्य वस्तुए भी यही सुरक्षित हे । यह सम्राट आज से ३,३०० वर्ष पूर्व हुआ था । धन के लोभ से पिरामिडो की लूटखसोट सैकडो वर्ष तक चलती रही । लेकिन रेत के नीचे दब जाने के कारण तुतेनखामन का पिरामिड सुरक्षित रह गया । पपियाई की कुछ वस्तुए भी इटली मे इतनी ही अच्छी हालत में देखने को मिली लेकिन वे इन से १४ शताब्दी के बाद की थी ।

अन्य वस्तुओ मे प्राचीन अस्त्रशस्त्र, चित्र, अलकार, लकडी के बक्स इत्यादि की बनावट प्राचीन मिस्रवासियो की परिमार्जित रुचि का परिचय दे रही थी । ३,३०० वर्ष पहले के सोनेचादी के कुछ बरतन भी दिखे जो खिले हुए कमल के आकार के थे । इन वस्तुओं को देख कर पता चलता है कि भारत की तरह यहा भी शायद सूर्य, अग्नि, सर्प और गरुड की पूजा देवीदेवताओ के रूप मे होती थी । राम शेप नामक सम्राट भी यहा हुए थे । ऐसा लगता हे कि सुदूर अतीत मे हमारे देश से मिस्र का घनिष्ठ सबध रहा होगा ।

सग्रहालय मे अस्वान के बाध का एक माडल भी देखा । याद आया कि सुबह एक मिस्री बुजुर्ग ने कहा था कि पर्यटक पिरामिड देखने तो आते है पर अस्वान का बाध कोई नही देखता। वास्तव मे इसी बाध ने मिस्र की काया पलट की हे । सचमुच ही यह बाध आधुनिक मिस्र का एक आश्चर्य है । इसका निर्माण १८६८ मे आरभ किया गया और १६०२ मे जाकर यह पूरा हुआ था । अब यहा एक अन्य विशाल बाध बन रहा हे ।

यही विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर से भेट हो गई । उन्होने कहा, "लगता है, आपकी रुचि का विषय है ।"

मैंने कहा, "जी हा, आजादी के बाद अब हमारी राष्ट्रीय सरकार ने भी इस ढग के कई बाध बनाए । लेकिन साथ ही यह भी देख रहा हू कि नील के पानी को रोक कर इस बाध ने २०० मील की एक कृत्रिम झील तो बना दी हे, पर इसमे फिले द्वीप अबू सिंबल, सिवुआ के मदिर इत्यादि पुरातत्व के महत्वपूर्ण स्मारक जलमग्न हो गए है ।"

प्रोफसर ने कहा, "जनाब, अतीत के स्मारकों की रक्षा का मोह हमे भी किसी स कम नही, लेकिन वर्तमान की आवश्यकताओ यानी अन्नवस्त्र आदि की उपेक्षा नही की जा सकती। अस्वान पर हमे नाज है। यह हमारा पुण्य तीर्थ है, जो सैकडो पिरामिडो, दरगाहो और मसजिदो से कही पाक है।"

सीढियो से उतरता हुआ सोच रहा था, "अस्वान का बाध या पिरामिड, मिस्र की जनता किसे हृदय से दुआ देती है? सचमुच, किस पर नाज है उसे?"
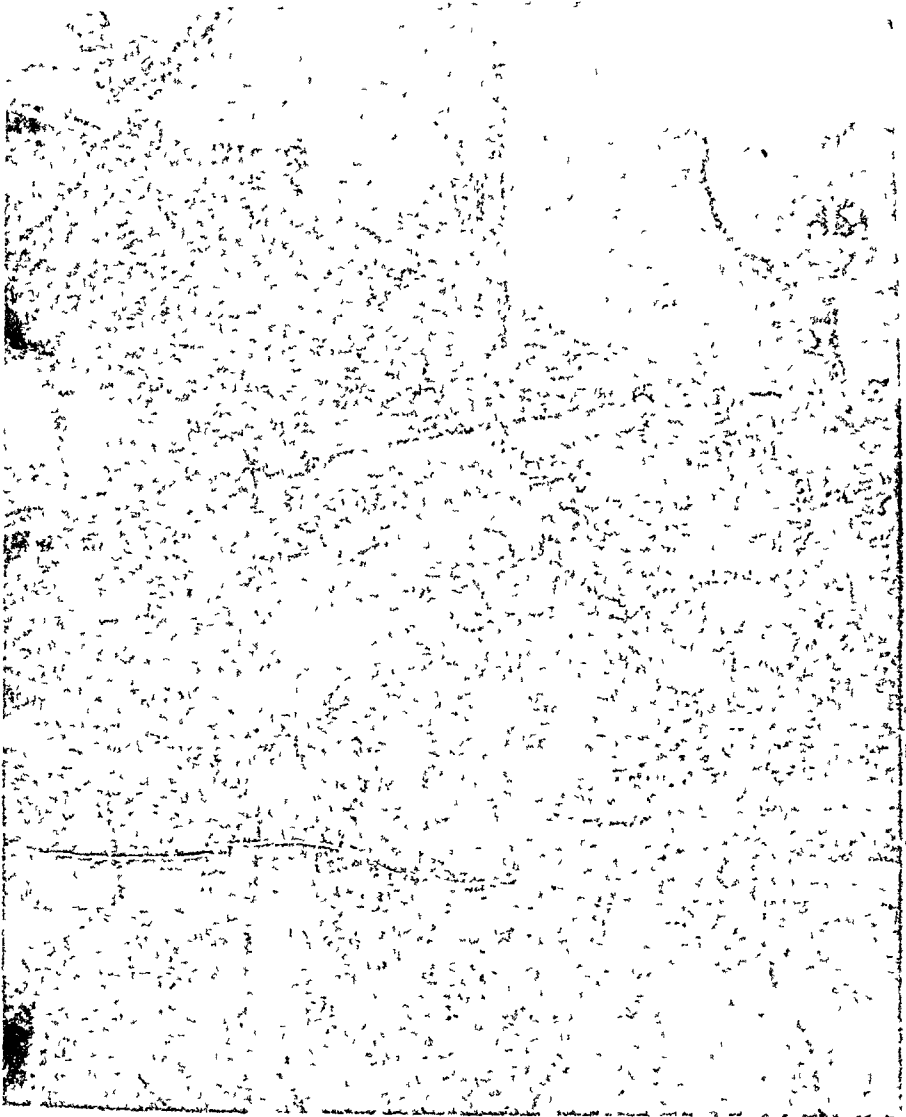
झीलों और द्वीपों का देश

फिनलैंड

रूस मे दस दिन रहने के बाद लेनिनग्राद से हम हेलसिंकी के लिए रवाना हुए। जेट विमान से ४० मिनट की उड़ान है। फासला बहुत कम, फिर भी दूसरा देश तो है ही। राजनीति, भाषा, अर्थव्यवस्था और रहनसहन के तौरतरीके भी भिन्न है। हमारे दूसरे साथी मास्को मे रह गए, इसलिए इस यात्रा मे मेरे साथ केवल प्रभुदयालजी थे।

साधारणतया किसी भी देश के पर्यटन के पहले उसके भूगोल, इतिहास, राजनीति समाज व्यवस्था एव आचार इत्यादि की जानकारी हम पुस्तके पढ कर कर लेते थे। लाभ यह हुआ कि हम नए देश मे अनाडी से न लगे और भ्रमण का आनन्द भी मिला। प्राय हर देश मे टूरिस्ट आफिसो मे दर्शनीय स्थानो के सबध में विवरण और नक्शे मिल जाते हैं। इसके अलावा एक छोटी पुस्तिका भी मिल जाया करती है, इसमे उस देश के रोजमर्रा के जरूरी शब्दो का अनुवाद अगरेजी मे रहता है।

फिनलैड यूरोप के उत्तरी छोर पर एक छोटा सा देश है। पूरे देश की जनसख्या है केवल चोवालिस लाख, अर्थात हमारे कलकत्ते से भी कम और क्षेत्रफल सवा लाख वर्ग मील है। यानी बहुत कुछ हमारे राजस्थान के क्षेत्रफल के बराबर। इतने छोटे देश मे अस्सी हजार टापू और साठ हजार झीले है। इसलिए इसे 'द्वीपो और झीलो' का देश भी कहते है। यहा के अधिकाश भूभाग पर लकडी के जगल हैं जो वर्ष मे आठ महीने बर्फ से ढके रहते है।

फिनलैड छोटा राष्ट्र है लेकिन इसमे राष्ट्रीय चेतना सदैव जागृति रही। उत्तरी सीमा पर नारवे है, पश्चिम मे है सपन्न राष्ट्र स्वीडन और पूर्व मे है साम्यवादी और शक्तिशाली सोवियत रूस। ११० वर्ष तक रूस के शासन मे रहा, लेकिन स्वाधीनता के लिए सदैव यहा के निवासी प्रयत्नशील रहे। रूस मे जार के अत्याचार के कारण असतोष बढता गया। बोलशेविक शक्ति बढ़ी, राजतन्त्र की नीव हिल उठी। सन् १९१७ मे जार के परिवार की हत्या कर दी गई। शासन ढीला था ही, फिनलेड इसी मोके पर स्वतन्त्र हो गया।

स्वतन्त्र फिनलैड अपने पिछले कष्टमय जीवन को भूला नही। रूस और पडोसी स्वीडन ने उस पर जो जोरजुल्म किए थे, उससे वह सर्तक रहकर अपने को सगठित और शक्तिशाली बनाने मे अग्रसर हो गया।

इतिहास साक्षी है कि धर्म प्रचार के नाम पर जिस ढग के अत्याचार और दुर्नीतियो को विदेशो मे अपनाया गया वैसा भारत ने किसी भी राष्ट्र के साथ नही किया। हमने जिहाद के

नाम पर अपनी फौजें नही भेजो वल्कि शाति के दूत श्रीलका, इडोनेशिया, मलाया, तिब्बत, मगोलिया और चीन मे भेजे। धर्म प्रचार के नाम पर यूरोप और अरब देशो मे हत्या, लूट और बलात्कार करना गौरव समझा जाता रहा है। क्योकि इस कृत्य मे धन तथा दासदासियो की लूट के साथसाथ गाजी बनने का या स्वर्गद्वार खुलने का सौभाग्य भी मिलता था। मुहम्मद गजनी बख्तियार खिलजी और औरगजेब की धर्माधता हमने सुनी थी पर सभ्यता का दम भरने वाले यूरोप के धर्मगुरु पोप के आदेशानुसार ईसाइयो ने (क्रूसेड) धर्मयुद्ध के नाम पर जो भयकर अत्याचार और रक्तपात किये हैं। उसकी कल्पना कर रोगटे खडे हो जाते हैं।

फिनिश ईसाई नही थे। इसलिए बारहवी और तेरहवी शताब्दी मे स्वीडन ने पवित्र धर्म-प्रचार के नाम पर इन निरीह लोगो पर तीन बार हमला किया। हजारो बच्चे, बूढो और स्त्रियो को लकडियो के घरो मे आग लगाकर जिंदा जला दिया या अन्य प्रकार से मार डाला। इसके करीब ५५० वर्ष बाद रूस के सम्राट अलेग्जेडर प्रथम ने सन् १८०९ मे फिनलेंड पर आक्रमण कर वहा स्वीडन की सत्ता खत्म कर दी। १०८ वर्ष बाद, ६ दिसम्बर १९१७ को फिनलैड स्वतत्र हुआ और १७ जुलाई १९१९ के दिन उसने अपने लिए गणतत्र की घोषणा की।

फिनलैड मे शासन के सर्वोच्च अधिकार राष्ट्रपति के हाथ मे है। वहा ससद मे २०० सदस्य है जो हमारे यहा की तरह निर्वाचित होते है। विधान या कानून बनाने का अधिकार राष्ट्रपति एव ससद मे निहित है। राष्ट्रपति का निर्वाचन छ वर्षो के लिए होता है।

उत्तरी ध्रुवाचल के निकट होने के कारण यह शीत प्रधान देश है। फिर भी, प्रकृति यहा अनुदार नहीं है। दर्शनीय और रमणीय स्थल एक नही, अनेक है। ऊचे नुकीले पत्तो वाले पेडो के घने जगल, झील और टापुओ से यह देश भरा है। इस देश के उत्तरी भाग में बर्फीली आधिया और तूफान जाड़े के मौसम की दैनिक घटनाए है, तो मध्य रात्रि का मुसकराता चाद सा सूरज सृष्टि के सूत्रधार के प्रति श्रद्धा की प्रेरणा भी देता है वर्ष मे आठ नौ महीने झीलो का पानी जम कर चट्टान सा कडा हो जाता है। इनपर विविध प्रकार के खेल होते रहते है। स्वाधीन फिनलेंड इनका आनन्द उठाता है। अपनी पराधीनता के दिनो मे उसका नैसर्गिक वैभव उपेक्षित रहा। पराधीन देशो की उन्नति का ध्यान दूसरो को क्यो रहेगा, चाहे वह देश भारत हो या फिनलैड।

सन् १९१७ से १९३९ तक बाइस वर्ष फिनिश जनता और सरकार अपने देश को सजाने, सवारने और सुधारने मे लगे। यह दीर्घ अवधि विश्व भर मे बड़ी मदी की थी लेकिन फिनिश जनता ने इसी समय अपने देश को समृद्ध किया, यह उनकी लगन और परिश्रम का पुष्ट प्रमाण है। आज फिनलैड की गणना सैलानियो के लिए कश्मीर, स्विट्जरलैड और स्वीडन से की जाती है।

सन् १९३९ मे द्वितीय महायुद्ध छिड़ा। इस समय तक रूस विश्व की वडी शक्तियो मे हो गया था। उसके पास अजेय सेना और अमोघ अस्त्र थे। साम्राज्यवादी और साम्यवादी देशो के इरादो मे ज्यादा फर्क नही होता, हां, तरीके कुछ अलग-अलग होते है। साम्राज्यवादी दूसरे देशो को वहाने बनाकर हडपते है और साम्यवादी सीधे हमला कर बैठते है। औरो का अनुभव कैसा हैं, हम यह नही जानते पर भारत ने ब्रिटेन और चीन से यही अनुभव प्राप्त किया है। साम्यवादी रूस ने भी इसी तरह सन् १९३९ मे छोटे से शातिप्रिय एव निरीह राष्ट्र फिनलैड पर जल, थल और नभ से एक साथ हमला बोल दिया। उन दिनो रूस मित्रराष्ट्रो मे नही था। इसलिए ब्रिटेन और अमरीका ने मौखिक सहानुभूति तो फिनलैड के साथ पूरी दिखाई पर सैनिक सहायता के नाम पर एक भी हथियार या सिपाही नही भेजा फिर भी फिनिश वीर

११० दिनो तक रूसी शक्ति का मुकाबला करते रहे। छोटा सा देश, सीमित साधन, कब तक टिकता ? उसकी युद्ध और खाद्य सामग्री घट गई। जनहानि देखकर विवश हो गया। १८ मार्च १९४० को रूस के साथ सन्धि करनी पडी। हार वह भूला नही।

जरमनी ने १९४१ मे जब रूस पर हमला किया तो उसी थकीहारी फिनिश जनता की रगो मे जोश उमड पड़ा। तीन महीने के अदर ही उसने रूस को अपने देश मे निकाल बाहर किया। लेकिन इस समय तक रूस मित्र-राष्ट्रो के गुट मे शामिल हो चुका था। ब्रिटेन और अमरीका की फौजी सहायता से रूस ने युद्ध मे थके हुए फिनलेड पर सितबर,१९४४ मे फिर हमला कर दिया। लाचार होकर फिनलेड ने रूस से सधि की और शर्तो के अनुसार देश का कुछ कीमती हिस्सा और २२५ करोड का हरजाना आठ किश्तो मे चुकाना मजूर किया। साम्राज्यवाद और साम्यवाद का यह गठबधन राजनीति के अध्येताओ के लिए एक ज्वलत दृष्टात है।

हारे ओर थके फिनलेड के पास इतना धन कहा था ? उसने हिम्मत नही हारी। नगे और भूखे रह कर फिनिश लोगो ने अपनी सर्वोत्तम लकडिया ओर अन्यान्य सामग्री देकर १९५२ तक यह कर्ज पटा दिया। जानकार लोगो का कहना हे कि रूस ने कम से कम दोगुनी रकम का माल कर्ज के एवज मे वसूल किया। समता ओर अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद का यह रूसी तरीका न्यायसगत किसी भी स्थिति मे नही कहा जाएगा।

फिनिश स्वभाव से ही परिश्रमी ओर उद्यमी हे। सर्दी इतनी ज्यादा यहा है कि बिना कडे काम के मनुष्य रह नही सकता। जगलो और खानो मे सपदा भरी पडी है। सन् १९५२ के बाद फिनलेड दोगुने उत्साह से अपनी प्राकृतिक सपदा का लाभ उठाने मे जुट पडा। इसकी उन्नति भी द्रुति-गति से हुई। सन् १९६० के जन मे जब हम वहा थे, यह सपन्न और उन्नत देशो मे गिना जाने लगा था।

लेनिनग्राद से हम शाम को साढे छ या सात बजे हेलसिकी पहुचे। कस्टम की औपचारिकता से निवृत्ति होकर जब होटल आए, आठ बज रहे थे। हेलसिकी फिनलेड के दक्षिण मे है। फिर भी ध्रुवांचल मे होने के कारण वर्ष के तीन महीने तक तो यहा एक-डेढ बजे तक कुदरती रोशनी रहती है। इसलिए रात्रि का भोजन कर हमने १० बजे शहर का एक चक्कर लगा लेना तय किया।

हेलसिकी फिनलेड का प्रमुख शहर हे और राजधानी भी। बाल्टिक सागर मे फिनलेड की खाडी से सटा यह शहर लदन या मास्को की तरह व्यस्त ओर भव्य तो नही लगता पर उनसे ज्यादा शात और सौम्य है। यहा की आबादी है पाच लाख। हम ऊनी पायजामे पर ऊनी पतलून और पाच-छ गरम पोशाक पहने दुकानो मे मोटे शीशे की चद्दरो के पीछे सजी चीजो को देखते जाते थे। कुछ ही घटे पहले हम रूस के एक प्रमुख शहर से आए थे। वहा की दुकानो मे काउटरो पर या आलमारियोमे कुछेक भोडी और सस्ती चीजे ही देखने मे आई थी। रूस के अन्य शहरो मे भी ऐसा हो नजारा देखा था। पर यहा के बाजार ओर दुकानो मे सुरुचिपूर्ण कलात्मक वस्तुओ को देखकर ऐसा लगा मानो खोई-खोई सी चीजे सामने आ रही हो। मैंने प्रभुदयालजी से कहा, "जो कुछ भी हमने रूस मे देखा, यदि साम्यवाद का यही अजाम है तो पूजीवाद उससे कही बेहतर हे।" कहने को तो कह गया मगर न जाने क्यो मैं कुछ सहम सा गया और आसपास झाकने लगा। प्रभुदयालजीने मुसकरा कर कहा, "डरने की क्या बात है, आदत पड गई क्या ? यह रूस नही फिनलेड है, भारत की तरह यहा बोलने के लिए स्वाधीन हो।" हम दोनो हस पडे।

दूध, रोटी, पनीर और फलो की दुकाने बहुत रात होने पर भी खुली थी। दूसरे दिन सुबह के लिए बहुत से फल और पैकटो मे दूध लेकर वापस आ गए। आजकल यूरोप ओर अमेरिका मे दूध बोतलो की जगह मोटे मोमिया कागज या प्लास्टिक की थैलियो मे बिकता

है। वापस आते समय रास्ते मे हमने दो-एक लोगों को वायलन बजाकर भीख मागते हुए देखा। हमे ताज्जुब हुआ क्योकि इटली, ग्रीस आदि यूरोप के दक्षिणी देशो मे भी तो भिखमगे दिखाई देते हैं, पर उत्तरी यूरोप के देशो मे नही मिलते। पूछने पर पता चला कि कुछ लोग यदा-कदा रूस से भागकर यहा आ जाते है। ऐसे ही व्यक्ति शुरूशुरू मे गा बजाकर भीख मागते है।

जून से अगस्त तक यूरोप के दक्षिणी देशो और अमरीका से बहुतबडी सख्या मे सैलानी यहा आते रहते है। इसलिए रात्रिक्लबो और नृत्यशालाओ मे बहुत चहलपहल रहती है। अगरेजी के थियेटर और सिनेमा यहा है। वेनिस और पेरिस मे जिस प्रकार की उच्छृखलता और नग्नता का प्रदर्शन होता है, वह यहा 'अपेक्षाकृत' कम है। फिर भी नाइटक्लब और कैबरे, मदिर या गिरजे तो है नही, इसलिए चाहे पेरिस हो या हेलसिकी, लोग इनमे जाते ही हैं उद्दाम लालसा लेकर, मात्रा चाहे ज्यादा हो या कम।

अगले दिन सुबह चार बजे अपने आप ही मैं जाग गया क्योकि धूप निकल आयी थी। रात को यहा इन महीनो मे होती ही नही। सोते समय खिडकियो पर काले परदे लगाना भूल गए थे। रोशनी मे सोने की आदत नही। देखा, प्रभुदयालजी गहरी नीद मे सो रहे हैं।

पिछली रात को घूमते समय पता चला था कि यहा गरम पानी और भाप के 'साउना' स्नानगृह हैं जो शहर मे सैकडो की सख्या मे है। केवल विदेशियो के लिए ही नहीं बल्कि स्थानीय लोगो के लिए भी ये आकर्षण रखते है, क्योकि वैज्ञानिक स्नान के साथसाथ इन्हे शारीरिक व्यायाम का अच्छा माध्यम माना जाता है। ऐसे स्नानगृह कई प्रकार और श्रेणी के होते है। दस रुपये से लेकर पचास साठ रुपयो तक के।

लदन और हाम्बर्ग के बाथहाउसो के उन्मुक्त वातावरण को मै अपनी पिछली यात्रा मे देख चुका था। इसलिए प्रभुदयालजी को बिना कहे अकेला ही स्नान करने चला गया क्योकि उनके सामने निर्वस्त्र होकर नहाने मे सकोच होता। मध्यम श्रेणी के एक 'साउना' मे गया। जरा सवेरे पहुचा था इसलिए भीड नहीं थी। फिर भी बीसपचीस स्त्रीपुरुष तो थे ही।

प्रत्येक के लिए एकएक छोटी कोठरी सी रहती है उसमे कपडे वगैरह उतारकर भाप के कमरे मे चले जाते हैं। वहा एक प्रकार के घास से शरीर को रगडते रहते है और बीचबीच मे ठडे पानी के फव्वारे के नीचे स्नान भी करते रहते है। कम या ज्यादा कई मात्रा के ताप के कक्ष हैं। सिर पर ठडा तौलिया रख लिया जाता है, नही तो चक्कर आने का अदेशा रहता है। कुछ देर तक स्नान करने के बाद वही पर बने एक तालाबनुमा बड़े हौज मे तैरने के लिए आ जाते है। स्त्रिया बिकनी पहने रहती है, शेष सारे अग खुले रहते है। पश्चिम के देशो मे प्रथा है कि पुरुष, स्त्रियो के सामने निर्वस्त्र नही होते, यहा तक कि गजी या बनियान तक नही उतारते। इन स्नानगृहो मे पूरी छूट है। यहां एक प्रकार से 'न्यूडिस्ट क्लब' का वातावरण रहता है। मैं ने लक्ष्य किया कि इतने उन्मुक्त वातावरण मे भी शालीनता की लक्ष्मण रेखा का उल्लघन नही होता। उत्तरी यूरोप के प्राय सभी बडे या छोटे देशो मे इस प्रकार के सार्वजनिक स्नानगृह है। पर अशोभनीय वारदात शायद ही कही हो। बल्कि ये सामाजिक स्तर पर मिलनेजुलने के अच्छे माध्यम माने जाते है और है भी। इन दिनो दक्षिणी यूरोप मे भी ऐसे क्लब हो गए है पर वहा का वातावरण कुछ दूसरे ढग का रहता है।

स्नानगृह मे, मै ही अकेला भारतीय थां। इसलिए मेरे प्रति लोगो मे दिलचस्पी थी। भारत के बारे मे यहा के लोगो की जानकारी बहुत कम है। हमारी सरकार का प्रचार विभाग भी इन देशो मे अपेक्षित रूप से सक्रिय नही है। हम सपर्क भी यूरोप मे ज्यादातर ब्रिटेन, फ्रास, जरमनी और रूस आदि देशो से रखते है। बडे आग्रहपूर्वक ये मिले। मै ने देखा कि हमारे देश से इतना कम सपर्क रहने पर भी इन मे बहुत से गाधीजी, नेहरूजी और रवीद्रनाथ के बारे मे काफी कुछ जानते है।

लगभग डेढ घटे वाष्पस्नान और तैरने मे लग जाते है। शरीर इतना हलका हो जाता है और मन ऐसा प्रसन्न कि आसमान में उडने की तबियत होती है। स्नान के बाद सुस्वादु काफी पीने को मिलती है। मुझे पूरी तरह याद नही, पर चार्ज शायद १२ रुपए या १४ रुपए लगे।

अपनी विदेश यात्रा मे हर जगह मैं मध्यम श्रेणी के रेस्तरा और क्लबो को चुनता था, क्योकि इन मे जनसाधारण से भेट हो जाती थी। उन के जीवन और वहा की विचारधारा को नजदीक से देखने और समझने का मौका मिलता था। एक ओर सुविधा यह भी होती थी कि मध्यम श्रेणी की जगहो के खर्च कम लगता था।

नहाधो कर साढे आठ बजे होटल लौटा तो प्रभुदयालजी बैठे राह देख रहे थे। कुछ चिंतित भी थे। उन्हे फिक्र हो रही थी कि नया देश है, भाषा की भी दिक्कत है। सकोच के साथ मै ने स्नानगृह की बात कही तो हसते हुए कहने लगे, "मुझे क्यो नही जगा लिया, मै भी साथसाथ चलता।"

विदेशो मे होटल या रेस्तरा मे हम पहले ही सरल और स्पष्ट अगरेजी मे कह देते थे, "नो फिश, एग्ज एड मीट।" यानी मछली, अडे और मास नहीं, केवल दूध, मक्खन और रोटी। नाश्ते के लिए परिचारिका आई। बहुत से टोस्ट के साथ मक्खन, मीठी चटनी और साथ मे दो बडेबडे कैटर दूध से भरे हुए। बहुत समझाया कि इतने सारे दूध का क्या होगा? पर किसी तरह कम करने को तैयार न हुई, केवल हसती रही। आखिर हिम्मत कर सारा पी ही लिया। स्वाद के क्या कहने, उत्तरी यूरोप के देश दूधमक्खन के लिए दुनिया भर मे प्रसिद्ध हैं।

हमारे होटल मे एक फ्रेच यात्री से जानपहचान हो गई। अगरेजी अच्छी तरह बोल लेता था। कई बार यहा आ चुका था। दोएक दिन बाद लैपलैड जा रहा था, हमें भी आग्रह करता रहा कि ऐसे मौके आप को बारबार नही मिलेगे। जब भारत से इतनी दूर उत्तरी ध्रुव के पास तक आ ही गए है तो क्यो नही तीनचार दिन का समय निकाल कर उस के साथ चलें और लैपलैड, रेडीयर और मध्य रात्रि का सूर्य और बर्फानी आधिया देख ले।

हमारे लिए यहा की सर्दी भी काफी थी, चमडे के वस्त्र भी हमने नहीं लिए थे, जिस से कि बर्फानी हवाओ के थपेडे सहे जा सके। फिर मैं तो वहां तक सन १९५० में ही हो आया था। इसलिए उस का आभार मानते हुए हमने प्रस्ताव के लिए नाही कर दी।

नाश्ता इतना ज्यादा कर लिया था कि दोपहर के भोजन की जरूरत नही रही। फ्रेंच मित्र के साथ बाजार देखने निकल पडे। हर तीसरी दूकान फलो या फूलो की थी। शराब या बियर तो प्राय हर दूकान मे। पानी की जगह यहा लोग इन्हे पीते है। इस के बारे मे यह पता चला कि अत्यत ठडे देशो मे केवल पानी पीने से फेफडो मे सर्दी जम जाने का भय रहता है, सर्दी से बचाव के लिऐ ब्राडी या दूसरी किस्म की शराब पीना जरूरी है। मगर हमे कही भी ऐसी जरूरत महसूस नही हुई। हम पानी पीते रहे और हमे न सर्दी लगी और न हमारे फेफड़ो मे ही सर्दी जमी।

इन देशो मे एक बात आमतौर पर देखने मे आई कि बागबगीचो, रेलवेस्टेशनों, एयरपोर्ट; रेस्तरा, थियेटर और बाजारो मे एक तरफ किसी कोने मे स्त्रीपुरूष बिना सकोच या झिझक के आलिंगन अथवा चुबन लेते रहते है। फ्रेंच साथी ने इस के लिए दलील दी कि गरम मुल्को की बात और है पर सर्द मुल्को मे तो शरीर की उष्णता को स्थिर रखने के लिए आलिंगन और चुबन करते रहना जरूरी है। मुसकराते हुए उस ने कहा कि इन देशो मे यदि उत्तेजक साधन और माध्यम न अपनाए जाए तो हमारी जनसख्या की वृद्धि ही रुक जाएगी।

हो सकता है, इन बातो मे कुछ तथ्य हो, पर हम भारतीयो के लिए तो यह शालीनता

ओर मर्यादा की सीमा के बाहर की बाते लगी। हमारे यहा भी लद्दाख और उत्तरी कुमायूं आदि ऐसे काफी अचल हैं जहा कडी सर्दी पडती है। वहा शरीर की उष्णता के लिए इस ढग के माध्यम और साधन की जरूरत कभी नहीं समझी गई। कुछ छोटीमोटी चीजे बाजार से खरीदी। सर्दी इतनी थी कि दौडने का मन करता था। थकावट का नाम नही था। बस मे बैठ कर पास के एक देहात मे पहुचे। अच्छा लगा। चमकदार और चिकनी लकडी के छोटेछोटे मकान थे। हरेक घर के साथ फलो और फूलो का बाग, स्त्रिया और बच्चे काम कर रहे थे। सभी स्वस्थ और प्रसन्न दिखाई पडे। शरीर सुडौल और सुदर।

एक घर के सामने हम रुके। गृहणी थोडीबहुत अगरेजी जानती थी। उसने बड़े प्रेम से अपना बगीचा दिखाया। मना करने पर भी फलो का रस पिलाया। देखा, मकान छोटा था पर आधुनिक सभी साधनो से सपन्न, टेलिविजन, हीटर, टेलिफोन, छोटा सा पुस्तकालय। अपने देश के देहात के घरो के लिए तो आज भी ये सारी चीजे कल्पना तक ही सीमित है। गृहिणी ने बताया कि पति की फलो की दुकान है हेलसिंकी में। सुबह नौ बजे जाता है, दिन का भोजन वही करता है, शाम के बाद नौ बजे घर लौटता है। गाव मे एक सरीखे मकानो को देख कर हम ने कारण पूछा तो उस ने बताया कि कुछ वर्ष पहले अग्निकाड मे सारा गाव जल गया था। जब गाव नए सिरे से बसा तब सभी मकान एक ढग के बना लिए गए। इस बार भी मकान लकडी के ही हैं पर अब आग बुझाने के उन्नत और वैज्ञानिक साधन है।

वही पर गाव के स्कूल की अध्यापिका से मुलाकात हुई। रूसी, स्वीडिश, अगरेजी और फ्रेंच भी जानती थी। एनी बेसेंट की गीता का अगरेजी अनुवाद उस ने पढा था। तभी से भारतीय दर्शन के प्रति रुचि हुई। उस का विश्वास था कि भौतिक उन्नति से सुख भले ही मिल जाये पर वास्तविक आनद नही। सुदूर उत्तरी ध्रुवाचल मे भारतीय विचार के इस तत्व को सुन कर बडी खुशी हुई। फिनलैड के बारे मे उस ने बहुत सी बाते बताई। शिक्षा के क्षेत्र मे फिनलैड के शासन ने बहुत प्रशसनीय कार्य किये हैं। शायद ही कोई अनपढ व्यक्ति फिनलैड मे मिले। अपनी भाषा के अलावा रूसी और अगरेजी बहुत से लोग जानते है। उस ने यह भी बताया कि यहा की स्त्रिया पुरूषो से अधिक भाषाए जानती है, क्योकि उन्हे पढने और सीखने की फुरसत ज्यादा रहती है।

हमने राय मागी कि हम फिनलैड मे क्या देखे ? उस ने कहा भारत की विविधता के मुकाबले मे छोटा सा फिनलैंड कुछ खास तो पेश नही कर सकता, फिर भी ओलपिक स्टेडियम और विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी जरूर देख ली जाए, अगर समय मिले तो ओलको भी। ओलंको का ट्रेन से केवल दो घटे का रास्ता है। वहा आप को विश्व के हर कोने के लोग मिलेगे। कोई बर्फीले ठडे पानी की झील मे तैर रहा है तो कही घुडसवारी की प्रतियोगिता चल रही है। टेनिस, गोल्फ, फुटबाल, हाकी, वालीबाल आदि दुनिया भर के खेलकूद और विभिन्न तरीके की कुश्तिया भी देखने को मिलेगी। मनोरजन के काफी साधन है। हा, नाइटक्लब और कैबरे नही है।

हेलसिंकी आ कर हम यहा के विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे गए। यहा हम ने देखा, प्राय सभी भाषाओ की आठदस लाख पुस्तके थी। कलकत्ते की हमारी नेशनल लाइब्रेरी मे इस से कुछ अधिक सख्या जरूर है, पर हमे यह नही भूलना चाहिए कि फिनलैड हम से सौ गुना छोटा देश है। भारतीय भाषाओं की पुस्तके देखने मे नही आई। अगरेजी, फ्रेंच और जरमन मे सस्कृत की पुस्तको के अनुवाद जरूर देखे। हम ने एक बात की कमी अनुभव की कि विदेशो के छोटछोटे राष्ट्रो मे हमारी ओर से सपर्क स्थापन करने के प्रति ऐसी उदासीनता बरती जाती है कि उसे उपेक्षा का पर्यायवाची कहा जाए तो असगत न होगा। यही कारण है कि सयुक्त राष्ट्र सघ मे हमारी आवाज का साथ देने वालो की सख्या बहुत कम रहती हैं। हमारे विदेश मत्रालय के लिए यह विशेष ध्यान देने की बात है। ऐसी स्थिति मे यहा के पुस्तकालय मे हिंदी

साहित्य या भाषा सबधी पुस्तकें या उन के अनुवाद का न होना स्वाभाविक है। आज प्रचार का युग है। दूसरे बडे देश अपने विशिष्ट साहित्य को विश्व के बड़ेबडे पुस्तकालयो को भेट के रूप मे भेजते रहते है। लाइब्रेरी के कक्ष ताप नियत्रित हैं। अध्येताओ के लिए भी यहा हमारी नेशनल लाइब्रेरी की तरह हर प्रकार की सहायता और सुविधा सहज उपलब्ध है। कैंटीन की सुविधा और वातावरण तो हमारे से कही अधिक सुदर और स्वच्छ।

फिनलैड की गाइडबुक मे यहा के दर्शनीय स्थलो का उल्लेख था—ससद भवन, नेशनल म्यूजियम, वाटरटावर, किला और ओलपिक स्टेडियम। लेनिनग्राद, मास्को के म्यूजियम तो हम ने पिछले हफ्ते मे ही देखे थे, पेरिस के लूव्रे और वेटिकन मे पोप की आर्ट गेलरी भी हम देख आए थे। इसलिए इन मे अब रुचि न रही। ओलपिक स्टेडियम और वाटरटावर देख लेना तय किया।

ओलपिक स्टेडियम १६४० मे विश्व के खेलो के लिए बनाया गया था लेकिन महायुद्ध के कारण उस वर्ष खेल नही हो सके। अतएव, फिर से १६५२ मे इस की साजसज्जा की गई और उस वर्ष यही विश्व के खेलो की प्रतियोगिता हुई। दुनिया के कोनेकोने मे, हर छोटेबडे राष्ट्र से यहा चुनेचुने खिलाडी आए थे। अमरीका, फ्रास, रूस और ब्रिटेन का तो कहना था कि फिनलैड कहा से बाहर के इतने खिलाडियो और दर्शको को जगह दे सकेगा, इतना बडा स्टेडियम कैसे बना पाएगा? फिनलैड इन बातो से निराश नही हुआ। दूने उत्साह से उस ने चुनौती स्वीकार की। दो वर्ष के कठिन परिश्रम और करोडो की लागत से आखिर यह स्टेडियम बना ही डाला। फिनलैड अपने रगबिरगे सगमरमर के लिए प्रसिद्ध है। इस से विदेशी मुद्रा की उसे अच्छी आमदनी हो जाती है। पर स्टेडियम निर्माण के समय अच्छे किस्म के पत्थरो का निर्यात रोक दिया गया क्योकि उसे प्रदर्शनी का फर्श बनवाना था। उसी समय हेलसिंकी की सुदरता को देखने के लिए एक बहुत ऊचां टावर भी बनाया गया।

हम ने सुना कि १६५२ मे जब यहा सारे देशो से खिलाडी और शौकीन दर्शक आए तो उन्हे स्टेडियम देखकर विस्मय हुआ क्योकि अब तक अमरीका और फ्रास भी इतनी अच्छी व्यवस्था नही कर पाए थे। हमारे भारतीय हाकी टीम के खेल को आज भी यहा वाले याद करते हैं। भारतीयो को तो वे हाकी का जादूगर कहते हैं। यहा की ओलपिक प्रतियोगिता मे भारत हाकी और पोलो मे शीर्ष स्थान तक पहुचा था।

सुबह नाश्ते मे सेरो दूध, पाव रोटी और मक्खन ले लिया था। एक तो दिन भर घूमते रहे और दूसरे यहा की ठडी स्वास्थ्यकर हवा। भूख जोरो की लग रही थी। होटल लोट कर उबला साग, पाव रोटी और भारत से लाए हुए चिवडे की खीर खा कर भूख शात की। हम ने देखा कि हमारी तरह दूसरे यात्री भी यहा ज्यादा खाते हैं। पूछने पर मालूम हुआ कि यहा प्रति व्यक्ति की औसत खुराक ३,२०० कैलोरी से भी अधिक है, जब कि भारत मे यह औसत १,६०० के लगभग है। हमरा फ्रेंच मित्र हमारी प्रतीक्षा कर रहा था। मुसकरा कर कहने लगा, "अभी तो दस ही बजे है, क्यो न नाइटक्लब चला जाए। आप विदेशी मेहमान हे, अगर इन के नाइटक्लब मे न गए तो ये बुरा मान जाएगे।" बुरा मानने वाली बात पर हसी आई। हम ने थकावट का बहाना बताकर उस से छुट्टी ली।

दूसरे दिन हमे विश्व के सब से धनी देश स्वीडन की राजधानी स्टाकहोम के लिए सुबह ही एयरपोर्ट जाना था। कमरे मे आ कर प्रभुदयालजी सो गए। मुझे नीद नही आ रही थी, खिडकी के पास खडा हो गया। शहर की झाकी देखने लगा। वेनिस की तरह सेकडो टापुओ पर बसा यह नगर उस से कितना स्वच्छ है। आचारविचार और व्यवहार मे भी। सडको पर से जब चाहे, जहा चाहे इसकी लहरे दिखाई पड जाती है। सागर की ओर दृष्टि गई। देखा छोटेबडे जहाजो की बत्तिया दीवाली सजा रही हैं। ●

विषम परिस्थितियों में जूझने की शक्ति

नार्वे

'दो फूल साथ फूले, किस्मत जुदाजुदा है,' वहुत दिनो पहले किसी नाटक के गाने मे इसे सुना था। जब स्वीडन के बाद नार्वे देखने गया तो उक्त पक्ति याद आ गई। स्वीडन और नार्वे दोनो पडोसी है। एक हजार मील तक जुडी हुई सीमा, दोनो स्थानो के लोगों का एकसा पहनावा, एक सी चालढाल, शारीरिक गठन, रीतिरिवाज और एक से ही प्राकृतिक दृश्य। लेकिन जहा स्वीडन विश्व के सपन्नतम देशो मे से है, नार्वे अपने जीवन के सघर्षो मे निरतर जूझता चला जा रहा है। वर्फीले तूफान और समुद्री लहरो के थपेडों को सहता हुआ वह किसी न किसी तरह विश्व के रगमच पर अपना अस्तित्व कायम रखने की कोशिश कर रहा है।

स्वीडन को दुनिया का सर्वोत्तम लोहा, तावा और कागज बनाने की लकडी प्रचुर माता मे प्रकृति ने दे रखी है, जब कि नार्वे के हिस्से मे आए है पहाड, गिरिनिखात (फियर्ड) और नदिया। इस छोटे से देश मे डेढ लाख तो टापू ही है। विचित्र और तरहतरह के है ये—पहाड़, फियर्ड और झीलो से भरे हुए। प्रकृति यहा अनुदार है फिर भी यह हमारे देश की तरह गरीब नही है। इस बात का सहज अनुमान इस से लग सकता है कि हमारी राष्ट्रीय आय से उस की आय १३ प्रतिशत अधिक है जव कि जनसख्या है—० ७ प्रतिशत। प्रति व्यक्ति वहा वार्षिक आय है दस हजार रुपए। जव कि हमारे यहा प्रति व्यक्ति वार्षिक आय केवल ४५० रुपए है।

भौगोलिक कारणों का प्रभाव स्थानीय जनजीवन और सस्कृति पर पडता है। इसी लिए नार्वे के बर्फीले तूफानो, कठोर भूखड और गिरिनिखातो का प्रभाव वहा के निवासियो पर भी पडा है। वे दुर्धर्ष, कठोर और कष्टसहिष्णु बन गए। नार्समेन, नार्मन, नार्डस और वाइकिंग के नामो को सुन कर किसी जमाने मे यूरोप के देशो मे कपकपी उठ जाती थी। आज से हजार सवा हजार वर्ष पहले, जब कि न तो उन्नत वैज्ञानिक साधन थे और न भौगोलिक ज्ञान, हजारो की सख्या मे वाइकिंग बडेबडे जहाजो के जरिए समुद्र की ऊची लहरो को चुनौती देते हुए आधी की तरह जिस देश मे उतर पडते थे वहा हाहाकार मच जाता था।

कुछ इतिहासकारो की मान्यता है कि मानव की आदि सभ्यता का विकास नार्वे से ही हुआ। यह बात कहां तक सही है, कहना कठिन है पर दसबारह हजार वर्ष पहले मनुष्य के काम मे आने वाली चीजे यहा अवश्य मिली है। अन्वेषण अब भी जारी है। यहा की चट्टानो के बारे मे भूतत्त्वशास्त्रियो की राय है कि वे अस्सी लाख वर्ष पुरानी होगी।

जमाना करवटे वदलता है। नार्वे के दुर्धर्ष नाविक आज अपने पूर्वजो की तरह खूखार और क्रूर भले ही न हो, फिर भी है उन का जीवन कठोर और सघर्षमय

नार्वे में भूमि का केवल तीन प्रति शत भाग कृषि योग्य है, २४ प्रति शत जगलो से भरा पडा है और शेष ७३ प्रति शत मे पहाड, गिरिनिखात (फियर्ड) और झीले हैं। वहा का कुल क्षेत्रफल १ २५ लाख वर्ग मील है।

नक्शा देखने पर नार्वे ऐसा लगता है मानो एक वडी ह्वेल मछली हो। यह भी वडी मजेदार बात है कि नार्वे की छत्तीस लाख की आवादी मे से लगभग नब्बे हजार मछुवे हैं। इन के पास चालीस हजार नावे या वोट हैं। ये लोग वर्ष मे तेरह लाख टर्न मछलिया समुद्र से निकाल कर अपने देश की खाद्य समस्या हल करते है। बची हुई मछली को विदेशों मे निर्यात कर दिया जाता है।

ह्वेल मछली के तेल के लिए विश्व को नार्वे पर निर्भर रहना पडता है। इन दैत्याकार समुद्री जीवो को पकडने के लिए अत्यत साहस और वल की जरूरत पडती है। नार्वे के लोगो के भोजन मे भी मछली और समुद्री जीवो की प्रधानता है।

मई के तीसरे सप्ताह से लगातार दो महीने तक यहा सूर्यास्त नहीं होता, इसी प्रकार आधे नवबर से जनवरी तक उत्तरी नार्वे मे घनघोर अधेरी रात रहती है। ऐसा लगता है कि उत्तरी ध्रुव के बर्फीले तूफानो से भयभीत हो कर सूर्य सदा के लिए छिप गया हो। इन दिनों उत्तरी पूर्वी भाग मे इतनी कडाके की सर्दी हो जाती है कि मुह से थूक जमीन तक गिरतेगिरते वर्फ बन जाता है। लेकिन यह बात नार्वे के पश्चिमी हिस्से पर लागू नही होती । अमरीका से चली गल्फ स्ट्रीम की गरम जलधारा अतलातिक को पार कर नार्वे के पश्चिमी तट से होकर मुडती है इसलिए पश्चिमी भाग मे समुद्र जहाजरानी के लिए वर्ष भर खुला रहता है। हजारों वर्षो से विश्व के विभिन्न समुद्रो मे विपम परिस्थितियो से जूझने के कारण नार्वेवासी नौविद्या मे बडे प्रवीण हो गए है। जहाजरानी मे नार्वे का ससार मे तीसरा स्थान है।

अनुमान था कि कठोर सर्दी मे यहा के लोग घरो मे रहते होगे पर देखा कि स्थानीय लोगो की दिनचर्या मे मौसम की वेरुखी से कोई अतर नही आता। लोग यथावत अपने गाय, वैल, सुअर, भेड सभालते है, दैनिक काम पर आते है। खेती के लायक जो भी थोडीवहुत जमीन यहा है, वह जब वर्फ के नीचे दव जाती है तो लोग उन दिनों दूसरे धधो मे लग जाते हैं।

नार्वे मे कोयले का सर्वथा अभाव है और पेट्रोलियम भी यहा नही है। इसलिए नार्वेवासियो ने अपने कारखानो या मशीनो को चलाने के लिए जलशक्ति का उपयोग किया है। जल से विद्युत पैदा कर पूरे देश की औद्योगिक आवश्यकता की पूर्ति की जाती है। विश्व मे सब से ज्यादा व्यक्तिश विद्युत उत्पादन की दृष्टि से नार्वे अग्रणी है।

'निशा सूर्य के देश मे' नामक लेख मे नार्विक की चर्चा मैं ने की है। लगभग तेरह हजार की आवादी का यह शहर है। हैमरफास्ट को छोड कर विश्व का यह सव से उत्तरी पोर्ट है। गल्फस्ट्रीम की उष्ण जलधारा के काण यहा बर्फ जम नही पाती इसलिए जहाजो के आवागमन के लिए यह वर्ष भर खुला रहता है। स्वीडन की किरुना के विश्वविख्यात लोहे की खानो के उत्पादन का अधिकाश निर्यात यही से होता है।

नार्विक से करीव डेढ सौ मील उत्तर मे हैमरफास्ट है जो उत्तरी ध्रुव से केवल ६० मील के फासले पर है। एक बार तो इच्छा हुई कि इसे भी देख लिया जाए पर साथी न रहने के कारण नही गया। यहा की आवादी केवल छ. हजार है। यात्रियो के लिए मई से जुलाई तक हवाई मार्ग खुला रहता है।

स्वीडन से आते समय मै ने ट्रेन से सफर किया था। किरुना से होता हुआ नार्विक आया था। जाते समय मैं ने निश्चय किया कि जहाज, बस या कार से ओसलो की यात्रा की जाए। इस प्रकार इस देश को अपेक्षाकृत अच्छी तरह देखने का मौका मिल जाएगा।

टूरिस्ट आफिस में जाने पर पता चला कि जहाज के लिए तो दो दिन रुकना पडेगा पर उसी दिन दोपहर को विजे की तापनियन्त्रित डीलक्स स्टेशन वेगन जा रही हैं। उस में कुल नौ

सीटे थी। ड्राइवर दो थे जो गाइड का भी काम करते थे। विंजे यहा के विश्वसनीय ट्रावेल एजेंट हैं। इन के नाना प्रकार के टूर प्रोग्राम रहते हैं। इन की कारो और बसो मे एक मोटरसाइकिल भी रहती है। रास्ते मे कुछ खराबी होने पर इसी से पास के गाव मे खबर दे दी जाती है जिस से फौरन आवश्यक मदद मिल जाती है।

ओसलो की यात्रा लबी थी। सात सौ मील का सफर, बीहड़ और खतरनाक पहाड़ी रास्ते और बस्ती दूरदूर पर। सोचने लगा, 'जीवन मे बहुत ही कम अवसर ऐसी यात्रा के लिए आते हैं और इन स्थानो पर आना तो शायद ही फिर सभव हो। फिर क्यो न इस मौके का लाभ उठाया जाए।' साथ के यात्रियो मे से दो अमरीकी वृद्धाए थी। उन्हे इस कठिन यात्रा के लिए तैयार देख कर मेरा उत्साह भी बढा। ५०० रुपयो की टिकट चार दिन की उस यात्रा के लिए मैं ने खरीद ली। होटल और भोजनादि के चार्ज इस मे शामिल थे। ट्रेन या हवाई जहाज से किराया कम लगता पर नार्वे के जो दृश्य मैं ने इस यात्रा मे देखे, वे ट्रेन या हवाई जहाज से जाने पर नही देख पाता।

दोपहर को दो बजे हम रवाना हुए। आफ्टे फियर्ड के किनारेकिनारे हमारी गाडी जा रही थी। रास्ता बहुत ही विकट और उतारचढाव वाला था। कहीकही फेरी से भी पार उतरना पडता था। तीन घटे मे लगभग सौ मील का रास्ता तय किया। फियर्ड पर फेरी की इतनी अच्छी व्यवस्था है कि गाड़ी के पहुचते ही उसे पार कर दिया जाता है। मुसाफिर गाडी मे ही बैठे रहते हैं, उन्हे उतरना नही पडता। पाच बजे शाम को हम सारेफोल्ड नाम के एक गाव मे कुछ देर के लिए रुके। जितनी देर मे नाश्ता पानी किया, उतनी देर मे गाडी की देखभाल पूरी तौर पर कर ली गई। पूरी सफर मे इस प्रकार की व्यवस्था रखी जाती है कि मशीन की गड़बडी से असुविधा न हो।

उस रात हम भो नाम के गाव मे रुके। यो तो रात के नौ बजे थे पर रोशनी दिन की तरह थी। गाव को देखते हुए होटल की व्यवस्था अच्छी थी। निरामिष यात्रियो को ऐसे स्थानो पर दिक्कत होती है क्योकि आमतौर पर यहा मछली और समुद्री जीवो के ही मीनू बनते हैं। होटल और रेस्तरांओं मे आए दिन खाना ही पडता है। लोगो को सामिष खाते देख अभ्यस्त सा हो गया था फिर भी यहां तरहतरह के समुद्री जीवो को पका कर जब मेज पर रखा देखा तो उबकाई सी आने लगी।

यूरोप के अन्य स्थानो की तरह यहा भी भोजन के साथ वाद्य, सगीत और नृत्य के कार्यक्रम चलते रहते है। संगीत की धुन अच्छी लगी। पेरिस, वेनिस या ब्रूसेल्स की तरह उत्तेजना पूर्ण नही थी। यात्रियो के मनोरजन के लिए गांव से लडकिया आ जाती है। साथियो ने नाचना शुरू कर दिया था। दोनो ड्राइवर भी कपडे बदल कर नाचगाने मे शामिल हो गए थे। दोएक महिलाओ ने मुझे भी साथ नाचने के लिए आमन्त्रित किया पर मैं इस दिशा मे कोरा था।

दूसरे दिन सुबह यहा के ग्रीटे और ग्लेशियर देखे। ग्लेशियर वर्फ के झरने होते है। ऊचेऊचे पहाडो पर से आने वाला नदी का जल ठड के कारण वर्फ की तरह जम जाता है और धीरेधीरे नीचे खिसकता है। अपने यहा मनाली से आगे रोहतांग का ग्लेशियर देख चुका था। इसलिए ग्लेशियर के बारे मे पहले से ही जानकारी थी।

दोपहर मे नामसोम नाम के एक गाव के होटल मे पड़ाव डाला। यही लच लिया। पिछली रात रुचि के अनुकूल भोजन नही मिला था। इस अनुभव के कारण आगे के स्थानो पर पहले ही सूचना दे दी गई थी। यहा निरामिष भोजन अच्छा मिल गया। लच के समय गाडी को देखा जा रहा था। विश्राम के लिए भी थोडा सा समय हाथ मे था। गाव देखने निकल पडा।

छोटा सा साफसुथरा गाव। सागर के लहरे दोडदौड कर किनारा चूम रही थी। मछली

पक्कडने का यह एक प्रमुख केद्र है। मछियारो की बस्ती और उन का रहनसहन देखा। अपने देश के कोकण, तमिलनाडु, उड़ीसा और बगाल मे भी मछियारो की बस्तिया देखी थी। मगर कितना अतर है! नार्वे सपन्न देश नही है और वहा जीवन भी सघर्षमय है, फिर भी देखा कितना उन्नत स्तर है यहा का! आधुनिक यात्रिक साधन, सहकारिता और श्रम का संतुलित समन्वय कर उपार्जन को इन लोगो ने सरल बना लिया है। बच्चो को देखा, हमारे यहा की तरह लावारिस से नही घूम रहे थे। शिक्षा और खेलकूद की व्यवस्था अच्छी थी। बच्चो मे अनुशासन भी था।

अधिकाश बोटो मे मोटरे लगी थी। पकडी गई छोटीबडी मछलिया ढेरो पडी थी। किसीकिसी का वजन तो पचाससाठ मन तक था। अनेक मछलिया आकार मे इतनी बड़ी थीं जैसे हमारे यहा की भैंसे।

निरामिष होने के कारण वह दृश्य मेरे लिए भले ही रुचि कर न हो पर इन की व्यवस्था और व्यवस्थित जीवन का प्रभाव मन पर जरूर पडा। कार की लंबी यात्रा मे थक जाना स्वाभाविक है पर यहा कि खुली ठडी हवा ने ताजगी पैदा कर दी है।

दो दिनो मे हम ने करीब चार सो मील का सफर पूरा किया। रात मे उत्तरी नार्वे के एक कस्बे टरोवियम मे ठहरे। आबादी लगभग सत्रह हजार होगी। किसी समय यह नगर नार्वे की राजधानी था। वाइकिंग इसे जहाजो के लिए सुरक्षित गोदी समझते थे और अपने बडेबडे जहाज यहा खडे करते थे। यह कस्बा अपने नाम के फियर्ड के किनारे बसा हुआ है। रात का भोजन कर नगर का एक चक्कर लगा आया। रात के ग्यारह बज रहे थे पर प्रकाश काफी था। नार्वे मे अब तक जो देखा, उस से यहा का वातावरण कुछ भिन्न लगा। मल्लाह लडकियो को साथ लिए घूमते दिखाई पडे। शराब मे स्त्रीपुरुष धुत्त थे और शोरशराबा भी कम नही था।

कहते हैं चार कदम चलते ही पहचान दोस्ती मे बदल जाती है। दो दिनो के सफर में साथी यात्रियो से जानपहचान अच्छी हो गई थी। भारतीय होने के नाते उन सब की उत्सुकता मेरे प्रति कुछ अधिक थी। मौकेबेमौके तरहतरह के सवालो के जवाब दे कर उन की जिज्ञासा शात करता रहता था। सवाल भी बडे अजीब थे। एक महिला ने पूछा कि रग को सावला बनाने का सब से उत्तम उपाय कौन सा है? एक अन्य महिला ने जानना चाहा, भारतीय ग्रामीण चित्रो मे मर्द के पीछे औरत चलती देखी जाती है, साथ क्यो नही चलती? होली मे अपने मुह को रग कर लोग सडको पर क्यो नाचते हे? आप के यहा पत्निया पतियो से इतनी डरती क्यो है?

इस से लाभ भी हुआ। हम सब की आपसी झिझक मिट गई और हंसीखुशी के वातावरण मे यात्रा और आनदपूर्ण हो गई।

अगले दिन सुबह उठ कर देखता हू कि तेराकी की पोशाक मे सभी साथी तेयार हे। मुझ से भी फियर्ड मे तैरने के लिए बहुत अनुरोध करने लगे, पर मैं गरम कपडों मे भी सर्दी महसूस कर रहा था। तब भला खुले मे तैरने की हिम्मत मुझे कैसे होती! महिलाओ मे बहुत कहनेसुनने पर किसी तरह छुटकारा मिला। साथ उन के जरूर गया। इतनी सर्दी मे भी लोग खूब तैरे।

लौट कर नाश्ता किया और फिर अपनीअपनी सीटो पर गाडी मे जा बैठे। दिन भर मे हम ने कोई तीन सो मील की दूरी तय की। रास्ते मे दृश्य लगभग एक से ही मिलते रहे। नदिया, झीले, फियर्ड, गाव और उन के आसपास खेत। कहीकही नदिया बहुत तेज धार से बहती मिली। इसी प्रकार निखातो के बीच से समुद्र का जल भी देखा। बडे वेग से प्रवेश कर रहा था। जब किसी कगार पर से हमारी गाडी गुजरती तो नीचे झाक कर देखने पर भय सा होने लगता था। ड्राइवर यहा होशियार होते है, वरना हाथ सधे न रहे तो गाडी का सभलना

मुश्किल ही है। तब हड्डीपसली का पता तक न चले, गहरे खड्ढो मे जलसमाधि निश्चित है।

रात मे हम लिलेमर नाम के एक गाव मे ठहरे। लगभग तीनचार हजार सैलानी यहा हर समय रहते है। कहते है कि यहा के रेस्तरा का भोजन बडा स्वादिष्ट बनता है। मेरे लिए स्वाद चखना सभव न था क्योकि भोजन क्या था मछली, केकडे और भातिभाति के घोघे थे। जो भी हो, दूध, मक्खन, रोटी भी यहा अच्छी मिली। गाव छोटा सा था मगर आधुनिक साधन सभी मौजूद थे।

तीसरे दिन शाम को हम नार्वे की राजधानी ओसलो पहुचे। नार्विक से ओसलो की यात्रा काफी लबी और बीहड थी। फिर भी जितना आनद इस मे मुझे मिला, वह एक मधुर स्मृति के रूप मे आज भी मै ने सजो कर रख छोडा है।

प्रकृति एक ऐसी श्रेष्ठ कृति है जिसे बिना किसी अतिरिक्त खर्च के हम उपयोग कर सकते है। हमारे देश मे भी अपूर्व रमणीय स्थल है। हो सकता है, प्राचीनकाल मे अतिथि सत्कार की भावना के कारण इन स्थानो मे यात्रियो को असुविधा न हुआ करती हो पर आज के युग मे तो हमे इन को लोकप्रिय बनाने के लिए आवागमन के उन्नत साधनो और आधुनिक सुखसुविधा की व्यवस्था करनी ही पड़ेगी। अपने यहा जिन्होने पहलगाव से अमरनाथ और मनाली से रोहताग की यात्रा की है, उन्हे हमारी कमियो का व्यक्तिगत अनुभव हुआ होगा।

ओसलो इस देश की राजधानी भले ही हो पर यह मुझे विशेप आकर्षक नही लगा। सभव है इसलिए की इस से पहले मै यूरोप के कई एक बडेबडे शहरो को देख चुका था। कहते है, यह शहर लगभग एक हजार वर्ष पुराना है लेकिन शहर घूमने पर ऐसा नही लगता। हां, यहा के म्यूजियमो मे प्राचीनकाल के चिह्न अवश्य मिल जाते है। वाइकिगो की पोशाक, हथियार और नावे रखी हुई है। शहर मे पुराने जमाने के दोएक गढ या किले भी है।

यह अपने ही नाम के फियर्ड पर बसा है। पाच लाख की आबादी वाला यह शहर नार्वे का प्रमुख बदरगाह है। जहाज यहा साल भर आयाजाया करते है। उत्तरी यूरोप के बडे बदरगाहो मे इस की मान्यता है।

यदि नार्विक मे मध्यरात्रि का सूर्य देखने न जाता तो शायद यहा आता भी नही। बस, केवल अपनी घुमक्कडी प्रवृत्ति ने मुझे इस उत्तरी ध्रुवाचलीय स्थान को देखने के लिए प्रेरित कर दिया। इस यात्रा मे प्रभुदयालजी साथ नही थे। भोजन की असुविधा साधारणतया मुझे हुई नही क्योकि स्कैंडिनेविया के देशो में दूध, मक्खन, रोटी और पनीर बहुतायत से मिल जाते है।

ओसलो के लिए मै ने होटल मे पहले से बुकिंग नही कराई थी। गरमी के इन दिनो मे मेरी तरह दूसरे बहुत से यात्री ध्रुवाचलीय स्थानो से घूमते हुए यहा आ जाते है। इसी लिए होटलो मे जगह की कमी हो जाती है। मै ने तीनचार होटलो मे कोशिश की पर सफल न हो सका। एक बार तो यहा तक भ्रम हुआ, कि रगभेद की भावना के कारण शायद मुझे स्थान नही दिया जा रहा है पर देखा, मेरी तरह अन्य गैर यूरोपीय लोग उन्ही होटलो मे है तो यह भ्रम मिट गया।

कुछ पशोपेश मे पड गया। रात के दस बज चुके थे। सोचने लगा कि आवास की व्यवस्था तो होनी ही चाहिए। खैर, कुछ और कोशिश करने पर जगह मिली एक छोटी सी सराय (पेसन) मे। अवकाश प्राप्त व्यक्ति अपने मकान मे तीनचार कमरे किराए पर उठाने के लिए रख छोड़ते है। इन के यहा किराएदारो के लिए चाय, नाश्ते, भोजन आदि की भी व्यवस्था रहती है। अधिकतर इन पेसनो की मालकिन महिलाए होती है। कमरे मे गया, एक अजीब सी सीलन की गध मिली। वह गध अब तक याद है। बहरहाल, मै खुश था कि चलो जगह तो मिल गई वरना अनजान शहर मे सारी रात भटकता ही रह जाता।

सामान रख कर बैठा ही था कि मालकिन की लडकी दूधरोटी ले कर आई। देखता हू कि उस के साथ एक अन्य लडकी हाथ मे बैग ले कर आई है। पहली के चले जाने पर दूसरी लडकी बैग खोल कर उस मे से कई तरह की सिगरेटे निकाल कर दिखाने लगी। मैं ने कई बार उसे समझाया कि मैं सिगरेट नही पीता पर वह तो मानो छोडने को तैयार ही नही थी। टूटीफूटी अगरेजी मे बेतरह मनुहार करने लगी कि कुछ न कुछ पसन्द कर ही लू। सट कर इस प्रकार बेतकल्लुफी से बैठ गई जैसे वहुत पुरानी जानपहचान हो। लाचार हो कर मुझे आवाज मे कुछ वेरुखी ला कर उसे जाने के लिए कहना पडा।

दूसरे दिन सवेरे मै ने सराय की मालकिन से रात की घटना का जिक्र किया। वह मुसकरा कर कहने लगी कि आप ने बडेबडे होटलो को छोड कर मेरी सराय मे रहना पसद किया, इस से हमारे समझने मे कुछ भूल हो गई। क्या कहू आप ने पसद ही नही की, नही तो वह आप की ओसलो यात्रा को बहुत ही मधुर बना देती। अपने देश मे पजाव, अन्य पहाडी इलाको के होटलो के वारे मे इस ढग की बाते सुनी थी पर इन सभ्य ओर उन्नत देशो मे भी यात्रियो के लिए इस प्रकार की व्यवस्था रहती है, यह तो यहा आ कर ही जान पाया।

मालकिन क्याक्या कह गई, ठीक समझ नही पाया पर शायद उस का आशय था कि जो आत्मीयता और सुखसुविधा उस की इस सराय मे मिल सकती है, वह वडे होटलो मे नही मिलेगी। उस ने यह भी कहा, "यूरोप और अमरीका के अलावा दूसरे देशो के भी विशिष्ट व्यक्ति इस सराय मे ठहरा करते है और हफ्तो के लिए बुकिग करा लेते है। आप का तो महज दो ही दिनो का प्रोग्राम हे। चाहे तो गाइड के रूप मे किसी सहायक को साथ कर दू। चार्ज टूरिस्ट प्रतिष्ठानो से वहुत ही कम लगेगा।"

ओसलो मे मै किसी को जानता नही था, न मुझे इस सरायो के वारे मे ही कुछ पता था। इसलिए विदेश मे अप्रत्याशित झझटो से वचने की प्रेरणा और मितव्ययी होने की आदत के कारण उस के दोनो सुझावो के लिए मै ने धन्यवाद दिया और गाइड न ले कर गाइडवुक लेना स्वीकार किया।

गाइडबुक पढ कर मैं ने मोटे तौर पर शहर घूमने का एक कार्यक्रम वना लिया। पूरे दिन के लिए तीन रुपए मे ट्राम की टिकट ले ली।

सव से पहले मै जहाज वनाने के कारखाने देखने गया। नार्वे उन दिनो जहाजरानी के उद्योग मे विश्व मे द्वितीय स्थान पर था। अव तो जापान सव से आग वढ गया हे इसलिए इस का स्थान तृतीय माना जाता है। जो भी हो, नार्वे का यह उद्योग उस की आर्थिक स्थिति को सभालने मे बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। केवल जहाजो के किराए से ही नार्वे की वार्षिक आय १६० करोड रुपए है यानी इस देश की आबादी के अनुसार प्रति व्यक्ति ४५० रुपए। यह आय हमारे भारतवर्ष की कुल आय से भी कुछ अधिक है।

यहा के जहाजो के कारखाने और इस उद्योग के विकास को देख कर नार्वेवासियो के प्रति मन मे आदर का भाव उठना स्वाभाविक है। दैनिक जीवन के लिए आवश्यक अन्नवस्त्र और उद्योगो के लिए प्रयोजनीय धातु और कोयले के अभाव को इन्होने केवल श्रम ओर अध्यवसाय से दूर किया है। १४५ लाख टन के जहाज तो केवल यहा के प्रतिष्ठानो के पास हैं। इस के अलावा ५० लाख टन के जहाज इन के कारखानो मे प्रति वर्ष बनाए जाते है। आठ मील लवी गोदी मे सूखे डौक, तैरते डौक और पानी के डौक पर बने बीसियो कारखाने है जिन मे जहाजो के बृहदाकार ढाचे खडे रहते हैं। देख कर तव आश्चर्य होता है जव कि थोडे समय मे ही लोहे के इन पिंजरो को सुदर जहाजो मे वदल दिया जाता है। तब ये महासागरो की ऊचीऊची लहरो को लाघते हुए दुनिया के कोनेकोने मे माल और यात्री पहुचाते है, अपने देश के लिए धन वटोरते है और उस धन से अन्नवस्त्र तथा अपने उद्योगो के लिए कच्चे माल खरीदते हैं।

देखा, मजदूर काफी स्वस्थ थे। लगन और मेहनत से काम पर जुटे हुए थे। एक कारखाने के निरीक्षक से पूछने पर पता चला कि इन के मुकाबले मे केवल पश्चिमी जरमनी के मजदूर ही कार्य कुशलता और परिश्रम में ठहर पाते है।

मजदूरो की केटीन मे गया। काफी और रोटी ली। कीमत को देखते हुए बुरी न थी। इन लोगो के मीनू को देखा, मांसाहार प्रधान है। यह स्वाभाविक भी है क्योकि अत्यत शीतप्रधान अंचल मे होने तथा अन्न की कमी के कारण यहा मासाहार आवश्यक हो जाता है। इन लोगो से बाते भी की। रूसी मजदूरो से ये कही अधिक जानकारी रखते है। इस का कारण शायद यह है कि रूस मे निर्धारित काम और सरकार द्वारा नियन्त्रित जीवन है। परिणाम यह होता है कि व्यक्तित्व कुठित रहता है और व्यक्ति केवल यह सोचता है कि वह बडी मशीन का एक पुर्जा मात्र है। इसलिए वहा व्यक्ति केवल सौपे गए काम, भोजन और भोग तक ही सीमित रहने का अभ्यस्त होता है। वहा न उस के पास अतीत है और न भविष्य, वह केवल वर्तमान देख सकता है। नार्वे के मजदूरो मे ऐसी बात नही है। वे घरपरिवार, देशविदेश के बारे मे सोचते है और एक स्वर्णिम भविष्य की कल्पना कर कदम बढाते चलते है। उन का जीवन जड वत् नहीं, चेतनापूर्ण हैं। फुरसत के समय वे इब्सन के साहित्य के बारे मे भी चर्चा करते है।

जहाज के कारखानो को देखकर वापस आ गया। यहा की सबसे बडी सडक है कार्ल जीन्स गेट। इसी पर ओसलो की प्रसिद्ध इमारते है। राजप्रासाद, ससद भवन, बडेबडे दफ्तर, दुकाने और सब्जी के बाजार तक इसी एक सडक की दोनों पटरियो पर मिल जाएगे। ट्राम का पास सारे दिन के लिए था इसलिए इधर से उधर, रात के नौ बजे तक चक्कर लगाता रहा। लबे तडगे स्वस्थ चेहरो और खुशहाली को देखकर बार बार मन मे विचार उठता था कि यदि इन देशो के लोग, जहा प्रकृति तक अनुदार है, मेहनत करके खुशहाली ला सकते है तो हम अपने देश को, जहा खेतो पर नाज की बालिया मस्ती से झूमती हैं और धरती अपनी कोख से शिल्पोद्योग के लिए भांतिभाति का कच्चा माल देती है, क्यो नही संपन्न बना पा रहे है ?

रात दस बजे अपनी सराय मे लौटा। बाजार से कुछ फल और सब्जिया लेता आया था। देखा, माबेटी राह देख रही थी। उन्हे सब्जिया दे दी और अगले आधे दिन के लिए एक गाइड की व्यवस्था कर देने को कहा। मैं चाहता था कि वाईकिंग म्यूजियम, ससद भवन, ग्रामीण म्यूजियम के अलावा विश्व के महान नाट्यकार इब्सन का निवास स्थान भी देख लूं। गाइड के लिए आधे दिन का चार्ज देना पडा ३० रुपया। लच का खर्च और यातायात का किराया ऊपर से। सराय मे ठहरने की वजह से किराए मे जो बचत हुई थी, वह सभी रकम गाइड के खर्च मे लग गई।

मईजून मे स्केडिनेविया मे रात के बारह एक बजे तक दिवालोक रहता है। सोते समय अधेरा करने के लिए दरवाजे और खिडकियो पर काले परदे गिरा दिए जाते है। रात को मालकिन की लडकी आई और परदे गिराकर चली गई। जाते समय उसने शुभरात्रि का अभिवादन करते हुए सुखद निद्रा की कामना की। पश्चिमी देशो मे बतौर पेइगगेस्ट ठहरने पर मालकिन या परिवार के लोगो का ध्यान अतिथि की सुखसुविधा पर बहुत रहता है। कम खर्च और आत्मीयता के कारण बहुत से लोग इस व्यवस्था को होटलो से ज्यादा पसद करते है।

दूसरे दिन सुबह आठ बजे नाश्ता करके उठा तो देखता हू कि गाइड के रूप मे वही सिगरेटवाली लड़की हाजिर है। देखा, किसी प्रकार का सकोच या झेप अथवा रोष की झलक उसके चेहरे पर न थी। ऐसी दिखती थी मानों पहले पहल मिल रही हो। मालकिन ने उसका परिचय कराया नाम था डोरोथी। हम दोनो घूमने निकल पडे।

सबसे पहले विदोय प्रायद्वीप मे यहा के म्यूजियम देखने थे। रास्ते मे हमने देखा ओमलो फियर्ड मे इतनी सख्या मे छोटेबडे बोट तेजी से आ जा रहे थे कि किसी भी समय आपस मे टकरा जाने की सभावना थी। पर नार्वे के मल्लाह इतने कुशल है कि इस सकरे फियर्ड मे बडी तत्परता ओर सफाई से बोट निकाल ले जाते है।

बाहर से देखने पर यहा के म्यूजियम लदन ओर पेरिस के म्यूजियमो के मुकाबले मे नही ठहरते पर अदर जाने पर सग्रह बेजोड लगते है। एक कक्ष मे देखा नानसेन का 'फ्राम' जहाज रखा है। वे सारी वस्तुए भी रखी हे जिन्हे वे उत्तरी ध्रुव की यात्रा मे ले गया था। इस छोटे से जहाज को देखकर आश्चर्य होता है कि आज से ७० वर्ष पहले, जब विमान न तो इतना उन्नत था और न आज के से साधन थे, उत्तरी ध्रुव की खतरनाक यात्रा इस छोटे से बोट मे करने का साहस उससे केसे किया ! उसकी लिखी हुई पुस्तक 'उत्तरी कोहरा' पढने पर पता चलता है कि उसे अपनी इन यात्राओ मे कितने कष्ट झेलने पडे थे।

पास ही देखा 'कोनटिकी' नाम का जहाज भी था। इसे बोट कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। हाइड्रल नाम के नार्वे के एक युवक ने इसी पर पेरू से पोलेनेशिया तक की समुद्र यात्रा की। लगभग ५०० मील की लबी ओर कष्टो से भरी यात्रा, ऊपर से प्रशान्त की ऊची लहरे। फिर भी साहसपूर्ण यह दुस्साहसिक कार्य उसने पूरा कर ही लिया। कोनटिकी पुस्तक मे इस यात्रा के कष्ट और अनुभवो का वर्णन पढकर ऐसे नवजवानो के प्रति आदर के भाव जाग उठते है जिन्होने हर प्रकार के खतरे उठाकर अपने देश के गोरव को बढाया।

ग्यारह सौ वर्ष पहले के तीन वाइकिग युद्धपोत देखे। इन्ही पर बेठकर नार्वे के योद्धा अबाध रूप से यूरोप के देशो पर उमड पडते थे। इनके बारे मे जो पढने को मिलता हे उसमे रोगटे खडे हो जाते है। इस प्रकार की बर्बरता की तुलना रोम के वहशी सम्राट नीरो के कारनामे अरबो या तुर्को द्वारा जेहाद अथवा नादिरशाह की खूरेजी से की जा सकती हे। आज के युग मे नाजी फोजो और साम्यवादियो ने भी कम अत्याचार नही किए है। फिर भी सभ्यता का एक परदा इन लोगो ने जरूर रखा था। लोगो की नजरो से दूर नाजी कसट्रेशन कैपो ओर साइबेरिया की वीरान जेलो मे हजारो की तादाद मे घुटाघुटा कर लोगो के दम तोडे गए जबकि प्राचीन काल मे सरेआम आगजनी ओर कत्लेआम किया जाता था। सुसभ्य अगरेज ओर डच भी किसी से कम नही थे। हा इनका तरीका जरूर कुछ भिन्न रहा है। ये जोक या चीते की तरह खून पीते रहे। जब देश नगाभूखा हो गया तब उसे आजाद कर इन लोगो ने इसानियत का डका पिटवा दिया। शायद मनुष्य की पाशविक प्रवृत्ति उसकी चिर सहचरी हे।

डोरोथी से बीचबीच मे आवश्यक जानकारी मिलती जा रही थी। मैने उसे बताया कि हमारा देश भी किसी समय सामुद्रिक व्यापार और यात्राओ मे अद्वितीय था पर हमने यूरोप वालो की तरह कभी बर्बरता नही की। विदेशो को हमने लूटा नही, उन्हे दिया ही, ओर जो दिया वह आज भी उनकी सभ्यता और सस्कृति मे है। बर्मा, मलाया, स्याम और इडोनेशिया से लेकर सुदूर दक्षिण अमरीका तक देश इसकी साक्षी दे रहे है।

वाइकिगो के आक्रमण योजनाबद्ध और सुसगठित होते थे। वे पहले पास के किसी टापू पर जहाज और सामान इकट्ठा कर लेते, फिर वहा से सैकडो नावो मे सवार होकर धावा बोल देते थे। गावो मे आग लगाना और मारते काटते ध्वस करते निकल जाना उनका पूर्वनियोजित कार्यक्रम होता था। सिवा जवान औरतो के, शेष सभी को वे आग मे ढकेल देते थे। युवतियो से मनमानी करने के बाद वे उन्हे वही रोता-कल्पता छोड देते, साथ ले जाने की उन्हे फुरसत कहा थी ! ले भी जाते तो अपने देश मे उन्हे खिलाते क्या ? वहा तो पहले से ही खाद्य सामग्री का अभाव था। अपार क्षति पहुचाकर अट्टहास करते हुए अन्न और सम्पदा से लदे जलयानो और युद्धपोतो को लेकर वे फिर अपने देश को वापस आ जाते थे। जब कोई बडा योद्धा मर जाता तो उसके जलयान को उसकी लूट की सम्पत्ति के साथ दफना

देते थे। ऐसी ही तीन नौकाए मिली है जिन्हे यहा म्यजियम मे रखा गया है।

ग्यारह सौ वर्ष बाद इन्ही वाईकिगो की आसुरी प्रवृत्ति उभर आयी नाजी जरमनो मे। उन्ही वाईकिगो की तरह वे उमड पडे नार्वे पर। नार्वे श्रीहत हुआ। अपार धन की हानि हुई नाजियो ने हजारो की सख्या मे लोगो को गोली से उडा दिया। क्विसलिंग नामक एक राष्ट्रवादी नार्वे-वासी को हिटलर ने यहा के लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। सन् १६४० से १६४५ तक नार्वे पर जरमनो का अधिकार रहा। छ लाख जरमन फौजो ने इस देश को उत्तर से दक्षिण तक बुरी तरह रौदा।

इन वर्षो मे नार्वेवासियो ने धैर्य, सयम और साहस का जो परिचय प्रस्तुत किया है, उसकी मिसाल बेजोड है। सारा राष्ट्र मानो एक नियोजित रूप से सगठित हो कष्टसहिष्णु बन उठा और विदेशियो से असहयोग करने लगा। नार्वे के राजा ने लदन मे अपनी सरकार सगठित कर ली। जहाज पहले ही बच निकले थे। वे मित्र राष्ट्रो के युद्ध के सामान, तेल, सेना और हथियारो को ढोने मे लगे रहे। इनमे से बहुतो को जरमन पनडुब्बियो ने नष्ट कर दिया, फिर भी, वे नार्वे वालो को पस्तहिम्मत न कर सके। नार्वे के लोग, जो विदेशों मे थे वही से सगठित होकर जरमनो को परेशान करने मे जुट पडे।

जरमनी हारा और क्विसलिंग को गोली मार दी गई। जहा वह मारा गया था, वही पास मे सैनिको का एक स्मारक बनाया गया। शायद, याद दिलाने की इस भावना से कि नार्वे मे एक क्विसलिंग पैदा जरूर हुआ मगर हजारो ऐसे भी हुए जिन्होने देश की प्रतिष्ठा और मर्यादा के लिए अपने प्राणो की बलि दे दी।

वाईकिगो की नौकाओ के सग्रहालय के निकट ही विगत एक हजार वर्षों मे बने नार्वे के मकानो की प्रदर्शनी है। पुराने जमाने के मकान देखे। लकडी के मोटे लट्ठों को ऊपर नीचे खडा कर घरनुमा बनाया गया है। उसी रग की बेडौल टेबल, कुरसिया और दूसरी चीजे देखने को मिली। खानेपीने के बरतन लकडी के थे। इन्हे देख कर मै अपने यहां के हजार वर्ष से भी पहले के मकानो और लकडी के सामानो के बारे मे सोचने लगता था। कितनी कारीगरी, खूबसूरती और नफासत हमारे यहा थी! कितने सपन्न, सभ्य और सुसस्कृत थे हम! लेकिन आज? ऐसा क्यो?

दोपहर हो गई थी। हम विदोय से यहा की नेशनल लाइब्रेरी में गए। डोरोथी का कार्यक्रम मेरे साथ केवल आधे दिन का था। मैं ने उसे छुट्टी दे दी। मै पुस्तकालय मे रुक गया ताकि नार्वे के बारे मे कुछ आकडे और आवश्यक जानकारी पा सकू।

नार्वे मे शायद ही कोई निरक्षर मिले। यही नही, अनेक भाषाएं जानने वाले लोग भी यहा मिल जाएगे। अगरेजी का जितना प्रचलन यहा है, उतना पडोसी देश फास या जरमनी मे नही है। पचास करोड लोगों के देश भारत की नेशनल लाइब्रेरी से छत्तीस लाख की आबादी वाले इस देश की लाइब्रेरी मे पुस्तके अधिक है। इस के अलावा यहा और भी बडेबडे पुस्तकालय है। जहा कही भी जाइए, स्त्री, बच्चे, बूढे, जवान, कुछ न कुछ पढते मिल जाएगे।

जानता था, यहा भी हिंदी में पुस्तके नही मिलेगी। हम ने आज तक इस का प्रयास ही नही किया कि अतर्राष्ट्रीय स्तर पर पचास करोड की राजभाषा को सुपरिचित कराया जाए। फिर भी, हिंदी कोई भाषा है, इसे ध्यान मे लाने के लिए मैं ने कुछ पुस्तके हिंदी मे देने का अनुरोध किया। पुस्तकालय का सहायक चीनी, जापानी, तुर्की, अरबी, फारसी का नाम तो जानता था। रवीद्र के कारण बगला का नाम भी उस ने सुना था, पर हिंदी हिंदुस्तान की राजभाषा है, इस की उसे जानकारी नही थी। मै मुसकरा उठा लेकिन उस पर नही, स्वय पर, अपने देशवासियो पर, अपने दूतावासो पर जो विदेशो मे अपने देश की राजभाषा का प्रयोग तक करने मे सकोच अनुभव करते है।

बहरहाल, उस ने हिंदी के लिए विवशता बताई और कहा कि अगरेजी में पुस्तकें मिल सकती हैं। मैं ने विषय बता दिए, थोडी ही देर मे मेरी टेबल पर पुस्तको का अबार लग गया। मुझे जो जानकारी लेनी थी, आसानी से मिल गई। प्राप्त आंकडो से मुझे यह विचार बदल देना पडा कि नार्वे सपन्न देश नही है। हा, स्वीडन, स्विट्जरलेड, पश्चिमी जरमनी और अमरीका की अपेक्षा यह गरीब जरूर है।

द्वितीय महायुद्ध मे जरमनो ने यहा के सारे कारखाने नष्ट कर दिए थे। युद्ध के बाद देश मे न तो उधोगधधे बचे और न खाने के लिए अनाज। बची थी केवल एकता की भावना कि राष्ट्र को किस प्रकार पुनर्जीवित किया जाए। अमरीका ने इन्हे आठ वर्षों मे २,५०० करोड रुपए की मदद पहुचाई। इस राशि को सुनियोजित ढग से काम मे लगा कर नार्वे की जनता ने अपने शिल्पोद्योग का विकास किया और उत्पादन क्षमता पहले से डचोढी कर ली। बहुत कुछ ऐसी ही परिस्थिति हमारे देश की भी रही है बल्कि हमारे पास कच्चा माल था, शिल्पोद्योग नष्ट नही हुए थे, अमरीका और अन्य देशो से आर्थिक सहायता भी काफी मिली, हमारे रुपए इगलेड पर पावने भी थे, मगर सर्वस्व स्वाहा कर दिया हम ने। हम आज भूखे है और कर्जदार भी। अभाव का कारण केवल एक है। राष्ट्र और राष्ट्रीयता का बोध न मालिको मे है और न मजदूरो मे, न शिक्षको मे है और न विद्यार्थियो मे।

नार्वे मे प्रति वर्ष दस लाख यात्री विदेशो से आते है। इस से इन्हे लगभग बाइस करोड रुपए की आमदनी हो जाती है। जीवन मे आगे बढना इन्होंने अच्छी तरह जान लिया है। उत्साह और जिज्ञासा यहा के लोगो मे पर्याप्त है। यही कारण है कि पिछले पचास वर्षों मे अकेले नार्वे मे सात ऐसे व्यक्ति पैदा हुए जिन्हें नोबेल पुरस्कार मिला है। ध्यान देने की बात है कि नार्वे से लगभग डेढ सौ गुनी बडी आबादी वाले हमारे देश मे अब तक केवल दो ही व्यक्ति इस गौरव से विभूषित हो सके है।

वैसे नार्वे के पास केवल ३३,००० जवानो की जल, थल और नभ सेना है पर यहा १६ से १८ वर्ष तक के प्रत्येक युवक को सैनिक शिक्षा प्राप्त करनी पडती है। इस से जरूरत पडने पर इन्हे प्रशिक्षित सैनिकों का अभाव नहीं रहता।

मैं चकित रह गया कि महज छत्तीस लाख की आबादी है यहा की और टेलीफोन है सात लाख! पाच लाख मोटरे और ट्रक इन के पास हैं। इसी से अदाज लगाया जा सकता है कि इन के जीवन का स्तर केसा होगा। वृद्धावस्था, बीमारी और बेकारी के लिए यहा बीमे की व्यवस्था है। ऐसी परिस्थिति मे सरकार पेंशन देती है। १४०० करोड रुपयो का वार्षिक आयात और ६२० करोड का निर्यात नार्वे करता है। इस विषमता की पूर्ति होती है इन के मालवाही जहाजो के किराए से और कभीकभी विदेशी सहायता से। देश का वार्षिक बजट १,१०० करोड रुपए का है।

लाइब्रेरी मे काफी समय लग गया। थियेटर की बुकिंग पहले से कर ली थी। इब्सन का 'जनता शत्रु' नाटक स्थानीय नेशनल थियेटर मे चल रहा था। इसे मैं देखना चाहता था। कलकत्ता मे मै ने शभु मित्र और तृप्ति मित्र द्वारा प्रस्तुत यह नाटक बगला मे देखा था। भाषा न जानने पर भी अधिक दिक्कत नही हुई क्योकि अनुवाद पढा हुआ था। अभिनय मे स्वाभाविकता और दक्षता थी, फिर भी मुझे कलकत्ते के 'बहुरूपी ग्रुप' की टेकनिक इन से ज्यादा मजी हुई लगी।

यूरोप के सभी देशो मे बडीबडी नाट्यशालाए होती है। लोकप्रिय होने के साथसाथ इन्हे राष्ट्रीय महत्त्व का भी माना जाता है। यहा का नेशनल थियेटर भी इसी कोटि का है। पेरिस का 'आपेरा' इस से पूर्व देख चुका था। उस की तुलना मे यह बहुत छोटा है। फिर भी, इस छोटे से देश के लिए तो यह गौरवस्वरूप है ही।

थियेटर से वापस जब सराय पहुचा, रात के एक बजे थे। देखा, मालकिन की लडकी

जगी हुई है। मैं झेप सा गया मन ही मन । मेरे लिए सारी व्यवस्था कर दी गई थी।

औपचारिकता के नाते मैं ने खेद प्रकट दिया। थकान थी ही, विस्तर पर जाते ही आखों पर नीद का परदा गिरने लगा।

निशा सूर्य के देश में

स्वीडन

बहुत दिनो से सुन रखा था कि हमारी धरती पर उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव नामक ऐसे स्थान भी है जहा छ महीने का दिन और छ महीने की रात होती है। पिछली बार स्वीडन गया तो सोचा कि उत्तर के ध्रुवाचलीय प्रदेशो के इतने निकट जब पहुच ही गया हू तो क्यो न इस अवसर का लाभ उठा कर निशासूर्य के भी दर्शन कर लू! इसी इरादे से नक्शे पर निगाह डाली तो देखा कि उत्तरी ध्रुव को आइसलैड, स्केडिनेविया (नार्वे और स्वीडन), फिनलैड, साइबेरिया और अलास्का एक दायरे मे घेरे हुए है। स्केडिनेविया यूरोप के उत्तर मे एक प्रायद्वीप है जिस का आकार मुह खोले हुए शेर की तरह है। उस मे दो राज्य या देश है। उत्तर पश्चिम मे नार्वे है और दक्षिण पूर्व मे स्वीडन।

स्केडिनेविया जाने का कार्यक्रम मेरे यूरोप पर्यटन मे था, इसलिए मै ने सब से पहले वही जाना ठीक समझा। तय किया कि पहले स्टाकहोम पहुचा जाए, फिर वहा से उत्तर की ओर ध्रुवाचलीय प्रदेश लैपलैड से होते हुए, नारविक के रास्ते, नारवे मे प्रवेश कर उस की राजधानी ओसलो लौटा जाए, क्योकि इस प्रकार स्वीडन और नारवे दोनो को उत्तर से दक्षिण तक देख लूगा और निशासूर्य के दर्शन भी कर सकूगा।

स्टाकहोम पहुचा। यह स्वीडन की राजधानी है। इस मे चारो ओर छोटीछोटी पहाडियो के साथ झीलो की कतार इस प्रकार गुथी हुई है कि सारा वातावरण बहुत ही आकर्षक और दर्शनीय हो गया है। शहर के चारो ओर घने वन है, जो शहर के इतने निकट है कि शहर के मध्य भाग से वीसपचीस मिनट मे ही वनो मे पहुचा जा सकता है।

स्टाकहोम की स्थिति सामरिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। सच पूछा जाए तो इस की स्थापना ही वाल्टिक सागर के रास्ते पर स्वीडन पर होने वाले आक्रमणो के विरुद्ध एक गढ के रूप मे हुई थी। वाल्टिक सागर से आने वाले शत्रुओ की सेनाए मालार झील के रास्ते स्वीडन मे काफी अदर तक पहुच जाती थी। उन को मालार झील के मुहाने पर ही रोकने के लिए आसपास की कई द्वीपो पर मोर्चाबदी की गई थी और केद्रीय स्थिति वाले द्वीप पर ग्यारहवी शताब्दी मे एक विशाल दुर्ग बनाया गया था। कालातर मे उस दुर्ग के इर्दगिर्द बस्तिया बसती गई। उन का ही विकसित रूप आधुनिक स्टाकहोम है।

नगर का उत्तरी भाग व्यापार और खरीदफरोख्त का केद्र है। यहा आधुनिक ढग की दुकाने और कार्यालय है। दक्षिण भाग मे, जो नदी के दूसरी ओर है, स्टाकहोम द्वीप है। इसी पर स्वीडन का ससद भवन है और उस से आगे प्राचीन दुर्ग के स्थान पर, एक बहुत ही भव्य

राजप्रासाद खडा है। इस का नाम है रायल पैलेस। जिन दिनो रायल पैलेस मे स्वीडन के नरेश नही रहते, उन दिनो कुछ कक्ष आम जनता के लिए खोल दिए जाते है। इस पैलेस मे एक सग्रहालय भी है, जिस मे भूतपूर्व राजारानियो के इस्तेमाल की वस्तुए और अस्त्रशस्त्रादि सग्रहीत है।

स्टाडेन स्टाकहोम का सब से पुराना भाग है। उसकी कई गलिया बडी घुमावदार है और कोईकोई तो इतनी सकरी है कि ऊपर की मजिलो मे आमनेसामने रहने वाले लोग खिडकियो से आपस मे हाथ मिला सकते है। इन गलियो को देख कर काशी की गलियो की याद ताजा हो उठी। यहा के लोगो का मुख्य धधा नावो पर माल चढानेउतारने का है। नदी के किनारे हर कही मालअसबाब से लदी नावे दिखाई पडती है।

किनारे पर ही खुले मे बाजार लगे मिलेगे। भडकीले रगो की रगबिरगी छतरियों के नीचे सजी दुकाने बडी विचित्र और आकर्षक नजर आती है। यहा एक और विचित्रता देखी। कुछ दुकानो पर काच की बडीबडी पेटियो मे मछलिया तैरती रहती है ओर खरीदफरोख्त के लिए आई स्त्रिया जिंदा मछलियो मे से ही अपनी रसोई के लिए मछलिया चुनती हैं।

इस द्वीप का मध्य भाग कुछ ऊचा है। यही स्काटहोम का सब से पुराना कैथेड्रल है। चर्च मे काठ पर जडी हुई 'सत जार्ज और अजगर' की एक प्राचीन मूर्ति भी देखी।

स्टाकहोम मे नीले रग की ट्रामे ही आवागमन का मुख्य साधन है। ये ट्रामे काफी तेज रफ्तार से चलती है।

जनता के रहनसहन के स्तर की दृष्टि से स्वीडन और स्विट्जरलैड की गिनती ससार के सब से अधिक अमीर देशो मे की जाती है। स्टाकहोम मे मै ने रेडियो से युक्त बहुत सी मर्सीडीज और हंबर जैसी महगी मोटरगाडियां टेक्सियो की तरह चलती हुई देखी।

शहर के बीच से होते हुए ट्राम से डियर पार्क पहुचा। यही स्कासन देखा। यह एक बड़ा अजीबोगरीब सग्रहालय है। इस मे स्वीडन के विभिन्न प्रदेशो के विभिन्न वास्तु शैलियो मे बने पुराने मकान ला कर रखे गए है। यहा सदियो पुरानी पवनचक्किया, लकडी के बने गिरजे, लैप लोगों की झोपडिया और विभिन्न इमारते मौजूद है। अधिकाश मकानो मे उन के निर्माण काल की ही मेजें, पलग, कुरसिया आदि रखी है। विभिन्न प्रदेशो की तरहतरह की पोशाके भी यहा रखी गई है।

इस सग्रहालय मे एक चिडियाघर भी हे जिस मे केवल स्वीडन से बाहर के पशुपक्षी रखे गए है। पूरा सग्रहालय इस प्रकार बनाया गया है कि प्राकृतिक शोभा के साथ वह एकरूप हो गया है। कही भी कृत्रिमता नही आ पाई है।

स्टाकहोम की सब से सुदर इमारत है टाउन हाल। यह आधुनिक वास्तुकला का एक बहुत ही अच्छा नमूना है और ससार भर मे प्रसिद्ध है। कहते है कि इस के निर्माण में बारह वर्ष लगे थे। यह इमारत मालार झील के किनारे एक तिकोने प्लाट पर बनाई गई है। काले पत्थर से बने इस के खभो और मेहराबो का प्रतिबिब झील के जल मे देखते ही बनता है। इस की छत पर खडे हो कर उत्तरी यूरोप के वेनिस—स्टाकहोम—को देखा जा सकता है। देखते समय घुमावदार गलियों, चमकती नहरो, हरेभरे पार्को, नीली ट्रामो, रगबिरगी छतरियो वाली दुकानो और नौकाओ का दृश्य बड़ा ही अद्भुत लगता है।

नारविक जाने के लिए मै ने पूर्व तटीय मार्ग चुना। मतलब यह कि स्टाकहोम से बोदेन होते हुए किरूना के रास्ते नारविक जाने का मार्ग अपनाया। तीसरे दर्जे का टिकट ले कर २३ अप्रैल को दिन के चार बजे ट्रेन मे सवार हुआ। यहा के तीसरे दर्जे का किराया हमारे यहा के पहले दर्जे के किराए के बराबर है पर उस मे आराम और सुविधाए हमारे यहा के पहले दर्जे के मुकाबले कही ज्यादा है।

पूरी ट्रेन मे गैस के नलो द्वारा ताप को नियन्त्रित करने की व्यवस्था है। घटी वजाते ही ट्रेन का एक कर्मचारी हाजिर हो जाता है। रात को सोने के लिए विस्तर तैयार मिलता है और साथ ही तौलिया तथा पानी गिलास भी। पश्चिमी देशो मे कही भी विस्तर ढोने की मुसीबत नही उठानी पडती क्योकि जहाज, हवाई जहाज, रेल आदि की यात्रा में या होटल मे, जहा भी ठहरिए, साफसुथरा विस्तर तैयार मिलता है।

ट्रेन मे भोजन आदि की व्यवस्था भी थी। निरामिष होने के बावजूद मुझे, असुविधा नही हुई। दूध, पावरोटी और मक्खन पर्याप्त मात्रा मे मिल गया। ट्रेन पूर्वी तट के समानांतर बोदेन तक जाती थी।

स्वीडन के इस भाग मे बहुत सुदर प्राकृतिक दृश्य देखने को मिलते हैं। इस प्रदेश मे घने जगल है। वनो की उपज तथा शिल्पोद्योग से यह सपन्न बन गया है। इस अचल मे नदियां ओर बदरगाह भी है।

पश्चिम मे नारवे के पर्वतो से नदिया निकल कर स्वीडन के आरपार पूर्व मे वोधानियो की खाडी मे गिरती है। इन नदियो मे काटछाट कर लट्ठे बहा दिए जाते है जो बहते हुए कारखानो मे पहुचते है। यहा इन्हे काट कर ओर इन का सामान बना कर निर्यात के लिए बदरगाहो मे भेज दिया जाता है।

लकडी का उपयोग कागज बनाने मे भी होता है। स्वीडन का कागज ससार भर मे प्रसिद्ध है। यहा नदियो के प्रवाह को रोक कर विद्युतशक्ति का भी उत्पादन किया जाता है, जिस से बडेबडे कारखाने चलते है।

स्वीडन वासियो पर प्रकृति की बडी कृपा है। स्वीडिश भी प्रकृति के प्रति अनुदार नही हैं। वे जगल में पेडो पर आरे चलाते हैं लेकिन साथसाथ उन के विकास की व्यवस्था करते हैं। वे नदियो के प्रवाह को बाध बना कर रोकते है पर इस बात का भी खयाल रखते है कि बाध के कारण आगे चल कर खेती या जमीन पर प्रतिकूल प्रभाव न पडे। यही कारण है कि आज स्वीडन कागज और लकडी के उद्योग मे ससार के अग्रणी देशो मे गिना जाता है। साथ ही वह कृषि के क्षेत्र मे भी उन्नति की ओर बढ रहा है।

स्वीडन को प्रकृति से एक और वरदान मिला है। वह वरदान है बहुत अच्छे किस्म के लोहे का। यूरोप मे सब से अधिक लोहा इसी देश मे होता है। यहा लोहे की खाने मुख्यत दो स्थानो मे है—मध्यभाग मे तथा उत्तर के लेपलेड मे। स्वीडन प्राचीन काल से ही लोहे के उद्योग मे अन्य देशो से बढ कर रहा है। आज भी अच्छे इस्पात के लिए स्वीडन का लोहा प्रसिद्ध है। स्वीडन को समृद्ध बनाने ओर विदेशो मे धन बटोर कर देने मे, कागज ओर लकडी की भाति, लोहा भी मदद कर रहा है। यात्रा काफी आरामदेह थी। शीशे की खिडकियो पर काले परदे बाहर की रोशनी से बचाव कर रहे थे। इसलिए नीद मे बाधा नही पडी। सुबह आठ बजे नीद खुली।

रात भर मे लगभग ७०० मील उत्तर की ओर आ गया था। याद आया, स्वीडन की ट्रेने अपनी तेजरफ्तारी के लिए प्रसिद्ध है। सुबह की ठडी हवा मे ताजगी थी। एक अपूर्व स्फूर्ति का अनुभव हुआ। झटपट तैयार हो गया। शीशे के काले परदे को हटा कर बाहर का दृश्य देखने लगा।

बाहर तेज धूप छिटक रही थी ओर धरती अप्रैल के उस अतिम सप्ताह मे भी बरफीली चादर से ढकी नजर आ रही थी। कभीकभी छोटेछोटे गाव आखो के सामने आ कर तुरत ओझल हो जाते थे।

ट्रेन नो वजे बोदेन पहुची। उत्तरी स्वीडन का यह बडा रेलवे जकशन है। साथ ही सैनिक केद्र और एक औद्योगिक नगर भी है। स्टाकहोम से यहा तक यह ट्रेन एक्सप्रेस रहती है पर इस के आगे पेसेजर हो जाती है क्योकि उत्तर के इस प्रदेश मे यात्रियो का आनाजाना कम हो

जाता है । यहां से उत्तरपश्चिम की ओर किरूना होते हुए नारविक तथा दक्षिणपूर्व की ओर लुएला के बदरगाह पर पहुचा जा सकता है ।

बोदेन से ट्रेन लगभग साठ मील ही चली होगी कि सफेद पत्थरो की बनी एक सीमारेखा दिखाई पडी । मन मे प्रश्न उठा, 'स्वीडन की सीमा का अंत यहा तो नही होना चाहिए, फिर यह सीमारेखा यहां कैसे ?' इतने मे ही एक बोर्ड आखो के सामने से गुजरा । अगरेजी तथा अन्य दो तीन भाषाओ मे उस पर लिखा था'उत्तरी वृत्त'मुझे खुशी हुई कि मै अब ध्रुवाचलीय प्रदेश लैपलैड मे पहुच गया हू, जहा दो महीने सूर्यास्त होता ही नही ।

किरूना मे लैपो की एक अच्छी सराय है, जहा वे काफी और शराब के प्यालो पर जुटते है । मैं भी घूमताघामता वही पहुचा । बड़ी इच्छा थी इन्हे पास से देखनेसमझने की । वही एक शिक्षित लैप से भेट हो गई । वह थोडीवहुत अगरेजी जानता था इसी के माध्यम से बाते कर के लैपो के बारे मे काफी जानकारी हासिल की ।

लैप एक आदिम जाति है । लैपो की अपनी एक सभ्यता है । साधारणत प्रत्येक लैप तीन या कम से कम दो भाषाए तो जानता ही है । लैपो मे कई ऐसे है जो डाक्टर है, स्कूल कालिजो और विश्वविद्यालयों में अध्यापक है । स्वीडन की सरकार ने लैपो को समान नागरिक अधिकार दिये है । उन की शिक्षादीक्षा की समुचित व्यवस्था है । अपनी बात और अपने लोगो के प्रति जिस प्रकार का लगाव हम लोगों मे रहता है उसी प्रकार का लैपो मे भी है । भले ही कोई लैप डाक्टर, इजीनियर या प्रोफेसर बन जाए, स्वजनो का मोह उसे बराबर खीचता रहता है । बहुत से ऐसे लैप भी है जो आधुनिकता से पिंड छुडा कर अपने उसी कठोर जीवन में चले आए है और सचमुच उस मे वे सुखशाति और आराम का अनुभव करते है ।

रेगिस्तान में जैसे ऊट सब से बडी संपत्ति और जहाज है, वैसे ही बरफानी प्रदेश मे रेडियर है । यह हमारे देश के बारहसिंगे जैसा होता है । प्राचीन काल मे जिस प्रकार गाय की महत्ता हमारे जीवन के विविध अगो मे थी, ठीक उसी प्रकार रेडियर की महत्ता लैप जीवन मे है । इन की आर्थिक और सामाजिक स्थिति इसी के सहारे टिकी हुई है ।

बरफानी प्रदेश का यह पशु बरफ के बीच जमने वाली काई जैसी घास खा कर जीवित रहता है । लैपो को इस से अपना आहार और दूध प्राप्त होता है । लैप इस का मास तो खाते ही हैं, इस की हड्डियो, चर्बी, मज्जा, ततु, रोए और चमड़े तक को काम मे ले आते है । इस के सीग और हड्डियो से हथियार, औजार और दस्तकारी की कलापूर्ण वस्तुए बनाई जाती है । मछली मारने के लिए इस की खाल का उपयोग नाव बनाने मे किया जाता है । अपने तबू सीने के लिए लैप इस की अतडियो तक का धागे के रूप मे उपयोग करते हैं । तबुओ को रेडियर ढोते है ।

बाजार से रात के भोजन के लिए मुझे दालचावल, सब्जिया लेनी थी । सौदा खरीदते समय मैं ने देखा कि शहर मे सभी सुविधाए अन्य आधुनिक शहरों की तरह उपलब्ध हैं । वैसे तो अगरेजी समझने वाले मिल ही जाते हैं पर मुझे कहीकही दिक्कत भी महसूस हुई । ऐसे वक्त सोचने लगा कि स्वेड और अगरेजी भाषा का स्रोत तो एक ही भाषा से है । आपस मे बोल भले ही न सके पर इन मे क्या अतर है कि परस्पर समझना भी कठिन है ? सस्कृत से निकली हमारी हिंदी तो अपनी बहनो गुजराती, बगला, मराठी, असमी वगैरह से इतनी मिलतीजुलती है कि इन के बोलने वाले की भाषा हम बोल चाहे न सके पर समझ तो लेते ही हैं । मैं नारविक जाने वाली ट्रेन मे बैठा था । किरूना पीछे छूटता जा रहा था । सोच रहा था, 'अच्छा हुआ कि यहा के लोग गुटबदी के चक्कर मे नही फसे । फस जाते तो क्या पता आज अन्य देशो की भाति इन्हे भी अमरीका या रूस का मुह ताकना पडता ।'

१० बजे रात को नारविक पहुचा । नार्वे के उत्तरी भाग मे यह व्यापार का प्रमुख केंद्र

तथा बदरगाह है । ध्रुवाचलीय प्रदेश मे होने पर भी बदरगाह बारहो महीने जहाजो के आनेजाने के लिए खुला रहता हे । इस का कारण एटलाटिक महासागर के बीच से वहती हुई वह उष्ण धारा है जिसे 'गल्फ स्ट्रीम' कहते हे, । वह यहा बरफ जमने नही देती । नारविक बदरगाह से नारवे अपने यहा तथा स्वीडन का लोहे का सामान और लकडी विदेशो को निर्यात करता है ।

इस नगर को पिछले महायुद्ध मे जरमनो ने बुरी तरह तहसनहस कर दिया था लेकिन अब नार्वे के लोगो के धैर्य और अध्यवसाय के कारण यह फिर से उठ खडा हुआ हे । यही वजह है कि अच्छेअच्छे होटल तथा यातायात की सारी सुविधाए यहा वडी आसानी से हासिल हो जाती हैं ।

निशासूर्य के दर्शन कराने के लिए स्वीडन तथा नारवे दोनो ही देशो की ट्रेनें, हवाई जहाज, बस आदि नियमित रूप से राजधानी से ध्रुवाचल तक आयाजाया करती हे । हवाई जहाज से तो ६ घटे मे ही वापस लौटा जा सकता हे । स्टाकहोम के हवाई अड्डे से १० वजे रात को हवाई जहाज रवाना होता हे । उत्तर की ओर वढने पर रात के समय आप को अधेरा मिलने के बजाय उजाला मिलता जाएगा । ध्रुवाचल मे आप को निशासूर्य के दर्शन करा कर यह साढे तीन बजे स्टाकहोम वापस ले जाता हे ।

मै रात के समय नारविक पहुचा था लेकिन वहा दिन की तरह प्रकाश था ।

दूसरे दिन सुबह की ट्रेन से नारवे की राजधानी ओसलो के लिए रवाना हो गया । जितना मनोहर दृश्य मुझे किरूना और नारविक के बीच सफर मे देखने को मिला था, उतना विदेशो मे और कही नही मिला । रास्ते मे तोरनेत्रास्क झील का पानी जम कर चट्टान सा बन गया था । लैप मछुए इस पर खेमे डाल कर रह रहे थे । यही जीवन मे पहली बार निशासूर्य का आलोक देखा । सूर्य यंहा मई से जुलाई तक अस्त नही होता । अपने यहा सूर्यास्त के घटे भर पहले सूर्य मे जैसी आभा रहती है, वेसी ही आभा रात को १२ बजे मुझे दिखाई पडी ।

क्षितिज से कुछ ऊपर को उठा हुआ वह मुसकरा रहा था । उस के दर्शन से ही मेरा शरीर पुलकित हो उठा । मै समझ न पाया कि उस प्रकाशपुज को क्या कहू—दिवाकर, निशाकर या प्रभाकर ।

जहां राजा के साए में वास्तविक जनतंत्र पनप रहा है......

डेनमार्क

डेनमार्क स्कैंडिनेविया के देशो मे सब से छोटा है। कुछ वर्ष पहले तक इस की प्रसिद्धि 'दूधमक्खन का देश' के नाम से थी। आज भी यह दूध, मक्खन, पनीर, अडे, मास इत्यादि के उत्पादन के लिए ससार के अग्रणी देशो मे माना जाता है। इस के अलावा पिछले महायुद्ध के बाद जब से इस ने औद्योगीकरण की ओर ध्यान दिया है, यहा उद्योगधधो का विकास भी द्रुत गति से हो रहा है। डीजल इजन के बडेबडे कारखाने, सीमेट, केमिकल और कागज की मिलें भी पूरी सफलता के साथ उत्पादन कर रही है।

डेनमार्क का क्षेत्रफल १६,००० वर्ग मील है और आबादी सिर्फ ४६,००,०००। कृषि और पशुपालन यहा का मुख्य व्यवसाय सदियो से रहा है। यूरोप के इतिहास मे डेनमार्क का विशेष स्थान रहा है। डेन और स्कैंडिनेविया के 'वाइकिंग' प्रसिद्ध योद्धा माने जाते थे। चगेजी और तेमूरी आधियां स्थल पर चलती थी तो डेन और वाईकिंगो का तूफानी हमला सागर से उठता हुआ उत्तरी यूरोप के तटो से टकराता था। बडेबडे जहाजो पर हजारो की सख्या मे ये हमला करते थे। इगलैड पर इनका आधिपत्य रहा है। उत्तरी यूरोप इन के नाम से काप उठता था। अब युद्ध के तौरतरीकें बदल गए है—न समुद्री जहाजी योद्धा रहे हैं, और न प्यादे और घुडसवार ही। उन की जगह राकेट, एटम बम और हाइड्रोजन बमो ने ले ली है। डेनमार्क के लिए इस होड मे हिस्सा लेना सभव नही था, इसलिए उस ने अपना ध्यान दूसरी तरफ लगाया और फलस्वरूप इस के कृषिजात द्रव्य विदेशो के बाजार पर छाए रहते है और इस से करोडो की आमदनी होती है।

डेनमार्क की अपनी प्रथम यात्रा मे मैं अकेला ही गया था। उसी समय स्वीडन के उत्तरी भाग से हो कर किरूना और नारविक भी गया था। विदेशो मे चाहे कितने ही आकर्षक और दर्शनीय स्थान क्यो न हो, किंतु बिना साथी के मन नही लगता, जल्दी ही स्वदेश लौटने की इच्छा प्रबल हो उठती है। डेनिश अच्छे मेजबान होते है। अतिथियो के सत्कार के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। अकेला या अनमना देखने पर पूछपूछ कर प्रेरणा देते रहते है, प्रसन्न करना चाहते है। इन्हे बडा खयाल रहता है कि विदेशी उन के देश के प्रति उदासीनता की भावना न रखे, क्योंकि इस का प्रभाव अन्य यात्रियो पर पड सकता है। अकेलापन अखर गया था। दो ही दिन रहा था वहा, पर लौटते समय 'फिर कभी' की भावना ले कर आया। इसी कारण यूरोप भ्रमण के अवसर पर दूसरी बार वहा प्रभुदयालजी के साथ गया।

यूरोप भोगवादी है। वहा के देश अपनी स्थिति या अवस्था से सतुष्ट नही रहते। पार्थिव

लाभ के लिए सदैव यूरोपीय राष्ट्रो मे होड सी लगी रहती है। ४६,००,००० की आबादी के इस छोटे से देश का निर्यात हमारे देश के निर्यात सें ज्यादा है, जिस मे अधिकाशत मास, मछली, अडे और दूध की बनी चीजे है। चकित रह गया यह जान कर कि यहा औसत विदेशी व्यापार प्रति व्यक्ति ६,००० रुपए का है, जब कि हमारे देश का केवल ७० रुपए। इतने पर भी डेनमार्क को अपने पडोसी स्वीडन के समकक्ष होने की धुन है। इसी लिए कृषि और पशुपालन के अलावा आधुनिक उद्योगधधो का भी वह विकास कर रहा है, साथसाथ पर्यटन उद्योग को भी बढाना शुरू कर दिया है। सरकारी प्रोत्साहन से सुसज्जित रात्रि क्लव और केबरे खुलने लगे । यही नही, मई से अगस्त तक टिवोली नाम का एक स्थायी कार्निवल भी बनाया गया। सारे विश्व मे इस की प्रसिद्धि हो गई है। इस आकर्षण से दूरदूर से यात्री आया करते है।

सन १९६० मे डेनमार्क मे यात्रियो की सख्या १५,००,००० थी। इस प्रकार केवल पर्यटन उद्योग से उन्हे वार्षिक आय एक अरब दस करोड की हुई अर्थात हमारे यहा के प्रति व्यक्ति की आय से ४०० गुनी अधिक।

दूसरी यात्रा मे यहा आया तो पहले से होटल की बुकिंग नही थी, क्योकि रूस के बाद हमारा प्रोग्राम पूर्वी यूरोपीय देशो मे जाने का था। लेकिन हमारे साथियो ने कहा कि गरीबी और अभाव तो भारत मे ही नित्य देखते है, फिर क्यो नही कुछ दिन सुखी और समृद्ध देशो मे रहे। अत वहा की यात्रा रद्द कर हम यहा आ गए। जून का महीना था। फिर होटल खाली कहा ? किसी प्रकार बिना बाथरूम वाली एक छोटी सी कोठरी मिल गई, जिस मे पलग की जगह दो सोफे थे। यात्रियो की भीड इतनी थी कि होटलो के किराए भी बढा दिए गए थे। हमारे यहा मेले के दिनो मे मरियल टट्टू के तागे भी महगे हो जाते है, वही हालत यहा होटलो की थी।

फिनलेड और स्वीडन मे भी हम ने दूधमक्खन की प्रचुरता देखी थी, पर यहा की तो बात ही निराली थी। कहा जाता है कि हमारे देश मे कभी दूध की नदिया बहती थी। मगर महाभारत मे यह भी मिलता है कि बालक अश्वत्थामा को दूध की जगह आटे का घोल पिला कर भुलावा दिया गया था। गरीब मा दूध नही दे सकी थी। प्रचुरता या अभाव—किसे सही माना जाए ?

जो भी हो, डेनमार्क मे हम ने दूध की नदी या नाले तो बहते नही देखे, हा, यह जरूर देखने मे आया कि अधिकाश दुकानो मे दूध, मक्खन, पनीर और बडेबडे अडे बिकने के लिए रखे है, चाहे वह दवा की दुकान हो या किरानेगल्ले की। नाना प्रकार और आकार के मास भी सजा कर रखे गए थे। शीत प्रधान देश होने के कारण इन मे बदबू नही आती थी।

हम इन्हे देख कर यह सोचते थे कि किसी समय हमारे देश के किसानो के पास सैकडोहजारो गाए रहती थी। आज भी हमारे देश मे साढे नौ करोड से भी अधिक दुधारू गाए और भैसे है। अधिकाश प्रातो मे गोवध बद है, फिर भी न तो गोरक्षा हो पा रही है और न गोसवर्धन। दूध का अभाव दिन प्रति दिन बढता जा रहा है। गोवश का ह्रास हो रहा है। हमारे यहा प्रति व्यक्ति की औसत चार औस दूध प्रति दिन है। इस की तुलना मे डेनमार्क मे १४८ औस दूध का दैनिक औसत है। हम अपने बच्चो को ताजा दूध नही दे पाते। अमरीका और विदेशोसे सहायतास्वरूप आए हुए मिल्क पाउडर स्कूलो और अस्पतालो मे थोडी बहुत मात्रा म देते है। आज २० वर्षो की स्वतत्रता के बाद भी हमारी भारत माता लाखो अश्वत्थामाओ को दूध की तो बात दूर रही आटे का घोल भी पर्याप्त मात्रा मे देने मे असमर्थ है। कैसी विडबना है !

हमारी गायो की औसत दूध देने की क्षमता प्रति व्यक्ति केवल २५० पौड है, जब कि इन देशो मे जहा गाय माता स्वरूप नही है बल्कि उसे जानवर समझा जाता है, दूध की उपज

औसत ६,००० से ७,००० पौंड प्रति व्यक्ति है। पश्चिम के इन देशो मे गोवध पर प्रतिबंध नही है बल्कि यहा से अरबो रुपयों का गोमास निर्यात किया जाता है, फिर भी दूध की धारा क्षीण नही होती। स्पष्ट है कि हमारी गोभक्ति मे सेवाभाव कम है, दिखावा ज्यादा।

एक स्टोर से दो बोतल ठंडा दूध लिया। शायद एक किलो था। दो क्रोनर (लगभग दो रुपए) दिए। मै ने सोचा, 'जब भारत मे सवा रुपए किलो है तो इस धनी देश मे ज्यादा ही दाम होगा।' हमे ताज्जुब हुआ जब डेढ क्रोनर वापस मिले यानी आधा रुपया एक किलो के दाम लगे। बाद मे यह पता चला कि यह तो खुदरा का भाव था, थोक मे तो इस का आधा तक नही है। हमे बताया गया कि इस छोटे से देश मे, जिस का क्षेत्रफल हमारे राजस्थान का केवल १२ प्रति शत है, ३५,००,००० गाए और ७५,००,००० सुअर हैं। सन १९६३ मे १४,२५,००,००० मन दूध, ७५,००,००० मन मक्खन तथा पनीर और २,८०,००,००० मन मास का उत्पादन डेनमार्क मे हुआ। यही हाल सेब, अगूर और प्लम्स जैसे फलो का था। मैं ने प्रभुदयालजी से कहा कि यहा चावल और रोटी खाए ही क्यो, जब कि ऐसी उत्तम और उपादेय वस्तुए इतनी सस्ती मिलती है। वह हस कर कहने लगे कि एकदो दिन मे ही फल और दूध से मन ऊब जाएगा। आखिर पेट तो अन्न से ही भरेगा।

कापनहेगन डेनमार्क की राजधानी है। वहा समूचे देश की लगभग चौथाई आबादी रहती है—यानी, यहा की जनसख्या करीब दस लाख है और गरमी के दिनो मे तो राजधानी मे लाखो की सख्या मे बाहर से विदेशो के यात्री आ जाते है। इसलिए हम जब वहा पहुचे तो सडको पर चहलपहल खूब बढी हुई थी। अमरीका के अलावा दक्षिणी यूरोप के देशो से आए हुए लोग काफी सख्या मे दिखाई पड़े। अरब के शेख भी अमामे चोगे पहने हुए बडी शानशौकत से घूम रहे थे। इन के आसपास गोरी स्त्रियों का मजमा लगा रहता था।

आजकल सभी देशो मे टूरिस्ट आफिस है। इन कार्यालयो मे शहर के दर्शनीय स्थानो के विवरण की पुस्तिका, नक्शे के साथ विना कीमत मे मिल जाती है। हम जहा भी गए, इसे जरूर ले लिया करते थे। फिर भी, विना गाइड के अथवा किसी यात्री मित्र के बहुत सी जिज्ञासा की पूर्ति नही हो पाती। रूस मे हम सरकारी मेहमान थे इसलिए वहा हमे निःशुल्क गाइड मिल गए थे, लेकिन अन्य देशो मे ये महगे पडते है। इसलिए हम अगरेजी जानने वाले किसी यात्री से दोस्ती कर लेते थे जो हर तरह की जानकारी और मदद देने को हमेशा उत्सुक रहते थे। विदेशो मे सिवा अगरेजो के अन्य देशो के यात्री आपस मे मित्रता करने के लिए इच्छुक रहते है।

अपने होटल लौट कर हम ने एक डच दपति से मित्रता की। यद्यपि हालैड भी ठडा देश है फिर भी इन मे भ्रमण करने का चाव है। अवकाश मिलने पर ये दूसरे देशो की यात्रा पर निकल जाते है। इन से पता चला कि अमरीका भले ही विश्व का सब से धनी देश है लेकिन ईराकी और अरब देशो के मुकाबले में अमरीकी धनिक पैसे लुटाने मे शायद ही टिक सके। ये लाखो रुपए एक यात्रा मे खर्च कर देते है। वेनिस या पेरिस मे कुछ दिन के लिए रह कर वही से पाचसात प्रसिद्ध नर्तकी या माडल गर्ल्स को साथ ले आते है। डीलक्स होटलो मे बडेबडे फ्लैट किराए पर ले लेते है, क्योकि इन के मुसाफिरो और साथी लडकियो की सख्या बीसतीस तक पहुच जाती है। उन्होंने हसते हुए कहा कि सच पूछिए तो इन्ही लोगो के कारण हम जैसों को होटलो मे कमरे मिलने मुश्किल हो जाते है।

मैं ने पेरिस की अपनी पिछली यात्रा मे इन की शाहखर्ची को एक नाइटक्लब मे देखा था। इन वर्षो मे तेल की रायल्टी के नए एग्रीमेटो से इन की आमदनी प्रति वर्ष अरबो रुपए ज्यादा हो गई है, इसलिए ऐयाशी और मौजमस्ती मे उस दिन मेहनत की कमाई के रुपयो मे से अगर कुछ हिस्सा खर्च भी कर डाले तो ताज्जुब ही क्या! हमारे राजा और नवाब भी तो यही करते थे। इन अरबो मे शारीरिक क्षमता कुछ विशेष ढग की होती है जो यूरोप तथा

अमरीका के लोगों मे साधारणतया नही रहती । यह भी एक आकर्षण रहता है, जिस कारण सभ्रात एव धनी घरो की शोकीन यूरोपीय स्त्रिया भी इन के साथ दूसरे देशो की यात्रा पर चली जाती हैं । पश्चिम के समाज की वह स्वच्छदता हमारे भारतीय आचारविचार मे तो अनैतिक और निम्नस्तरीय रुचि की कही जाएगी । पता नही इन देशो के विचारक इस ओर कुछ सोचते है, या नही ।

शहर की सडको पर या सार्वजनिक पार्को मे हम ने घूमते हुए लक्ष्य किया कि यहा की स्त्रिया लबी और मजबूत होती है'। डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन ओर फिनलेड मे सभी जगह हम ने लबी और तगडी स्त्रिया देखी । रग गोरा जरूर है पर रूखापन लिए ओर इन के चेहरे ओर होंठो पर हल्के रोए भी होते है । दक्षिण यूरोप, इटली, ग्रीस, टर्की आदि की स्त्रियो के चेहरे पर इतना गोरापन नही रहता लेकिन इन मे लावण्य अधिक होता है । छरहरे बदन की होने के कारण ये उत्तरी स्त्रियो से अधिक सुदर ओर आकर्षक लगती है ।

फिनलेड और स्वीडन हो कर हम डेनमार्क आए थे । इसलिए यहा का वातावरण भी एक जैसा ही लग रहा था । हमारे यहा कलकत्ता से बनारस की यात्रा की दूरी या समय मे फिनलैड, स्वीडन और डेनमार्क तीनो आ जाते है । अर्थात, हमारे प्रातो से भी इन का क्षेत्रफल छोटा है फिर भी है तो ये अलगअलग देश—भाषा भी इन की अपनीअपनी है ।

होटलो मे पहले से कह देने पर निरामिष (भोजन) तेयार कर देते हैं । फिर भी हमारे भारतीय व्यजनो मे जो स्वाद मिलता है और उन से जो तृप्ति होती हे, वह हमे विदेशों के अच्छे से अच्छे या बडे से बडे रेस्तरा या होटलो मे नही हुई । भारत से हम कई प्रकार के अचार, चिवड़े और मिठाइया साथ ले आए थे, इसलिए स्वाद बदलने के लिए बीचबीच मे इन्हे खा लिया करते थे ।

डेनमार्क का कुछ भाग हालेड की तरह समुद्र से नीचा है । इसलिए समुद्री पानी रोकने के लिए बडेबडे डाइक (बाध) बनाए गए हे । इस मे सदेह नही कि यूरोपीय लोगों मे उद्यम के प्रति विशेष उत्साह रहता है । जहा हम प्रकृति के प्रकोप के आगे विवश हो जाते हे, बाढ से हमारी लाखो एकड जमीन प्रति वर्ष परती रह जाती है वहा वे उस से जूझते ह ओर उस की सीमा बाध देते है । हमे हमारे कच्छ के रन का खयाल आ गया । यदि हम सागर के खारे पानी को यहा आने से रोक पाते तो शायद इस बहुत बडे भूमि को उपयोग मे ले आते । पर अभी तो राजस्थान के बजर अचल को ही नही सभाल पाए है ।

द्वितीय महायुद्ध मे दूसरे देशो की तरह डेनमार्क भी चार वर्ष तक जरमनो के नाजी शासन के अधीन रहा । जैसा प्रत्येक विदेशी शासक का रवैया रहता है, वेसा ही जरमनो ने किया । यहा से दूध, मक्खन, पनीर और मास जरमनी भेजते रहे और बेचारे डेन आधे पेट रहते । जरमनी की हार के बाद फिर यहा के राजा के तत्वावधान मे जनतत्रीय शासन हो गया, जो अब तक है । साम्यवादी दल का तो यहा अस्तित्व ही नही है । यहा की ससद के १७६ सदस्यो मे केवल ११ ऐसे है जिन के विचार कम्युनिस्टो से कुछ मिलतेजुलते हे । सेनिक शिक्षा प्रत्येक के लिए अनिवार्य है । १८ वर्ष की उमर होने पर हरेक नागरिक को १६ महीने के लिए फौज मे शामिल होना जरूरी है ।

छोटा सा देश है, पर आबादी के अनुपात सा पैदावार कई गुनी है । इसलिए तैयार माल के लिए इसे बाहर बाजार ढूढना पडता है, लेकिन वहा भी पहले से जमे हुए मिलते है अमरीका, पश्चिम जरमनी और फ्रास । उन के सामने इस की क्या गिनती ? फिर भी यह देश अपने यहा उद्योगधधो को बढावा देने के लिए कच्चे माल का आयात ओर उस के बदले मे कृषिजात वस्तुओ का निर्यात कर के आर्थिक स्थिति का सतुलन ठीक रखता है । इस कारण इस का सिक्का विदेशो के खुले बाजारो मे भी निर्धारित दर मे चलता है । हमारा देश इस से सौ गुना बडा हे । हमारा आयातनिर्यात भी काफी है, पर हमारी आर्थिक दशा असतुलित है

और व्यवस्था सुदृढ नही। इस कारण से हमारी मुद्रा निर्धारित दर से नीचे मूल्य पर चलती है। हम ने स्विस बैक में भारतीय सिक्का भुनाया तो एक रुपए के सात आने ही मिले। हमारे लिए यह कम ग्लानि की वात नही। सन १९५६ से १९६१ तक के पाच वर्षो मे डेनमार्क की आय की वृद्धि ६ ४ प्रति शत प्रति वर्ष वढी जब कि हमारी लगभग तीन प्रति शत ही। वहा प्रति व्यक्ति की औसत वार्षिक आमदनी है करीब ग्यारह हजार रुपयो की, जब कि हमारे यहा तीन सौ से साढे तीन सौ रुपयो तक की। वहा पशुजात वस्तुओ के अलावा कृषि की उपज भी वहुत है। सन १९६३ मे इस छोटे से देश मे अनाज का उत्पादन ५५,००,००० टन था, यानी प्रति व्यक्ति ३५ मन। चीनी का उत्पादन हुआ २६ लाख टन। मै मन ही मन इन आकडो की तुलना मे अपने देश की स्थिति रख रहा था। मेरे सामने विहार, उडीसा, पूर्वी उत्तर प्रदेश और राजस्थान के सूखे बजर खेत और मरियल पशुओ के चित्र खिंच जाते थे।

सहकारी व्यवस्था मे डेनमार्क वेजोड है। प्रत्येक किसान यहा किसी न किसी सहकारी समिति का सदस्य है। वह अपने यहाँ का दूध, पनीर, मक्खन, अडे और मास इन्ही सहकारी समितियो के माध्यम से बेचता है। इस नन्हे से देश मे इस ढंग की २,००० समितिया है, जिन के ५,००,००० सदस्य है। इन की वार्षिक विक्री की राशि है करीव एक अरब पैतीस करोड रुपए। हमारे यहा भी स्वाधीनता के बाद सहकारी समितियो की बाढ सी आई थी लेकिन अधिकाश मे वेईमानी हुई और गरीब किसानो का रुपया सचालको की जेबो मे चला गया।

हमे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि यहा करीब एक सौ दैनिक या साप्तहिक पत्रपत्रिकाए प्रकाशित होती है। इन के पाठको की सख्या २५,००,००० है—यानी, प्रत्येक घर मे औसतन दो पत्रपत्रिकाए जाती है। इन के अधिकार मे अपने से पचास गुना वडा विश्व का सब से बृहद द्वीप ग्रीनलैड है, जहा की आवादी है केवल चालीस हजार—अर्थात् वहां २० मील पर एक व्यक्ति रहता है।

हम अव तक यह समझते थे कि शारीरिक क्षमता को कायम रखने के लिए मिलाजुला भोजन आवश्यक है, लेकिन यहा पता चला कि ग्रीनलैड के निवासी केवल मछली और रेडियर (हिरण की एक जाति) के मास पर जीवित रहते है। वहा अन्न और सब्जी उपजती ही नही। पिछले कुछ वर्षो से स्विस हवाई जहाज कपनी ने ग्रीनलैड की यात्रा की सुविधा कर दी है। इसलिए, कुछ समय के लिए ही सही, यहा आ कर एक नई दुनिया देखने के लिए यात्री आया करते है। सर्दी यहा इतनी है कि थूक और मूत्र जमीन पर गिरने के पहले ही वर्फ मे बदल जाता है।

कोपनहैगन के टिवोली गार्डन मे सैकडो की सख्या मे अमरीकी यात्रियो का समूह देखने मे आया। इन मे अधिकाश बूढी औरते थी। बच्चो की तरह आग्रह से कार्निवल घूमघूम कर देख रही थी। इन के साथ अधिकाश मर्द ग्रीनलैड घूमने गए थे या कैबरे मे नाच रहे थे। हमारे डच मित्र ने वताया कि अमरीका मे सैकडो यात्री क्लब है, जिन को यूरोप या विश्व भ्रमण का मौका मिल जाता है। ये एक साथ वड़ी सख्या मे आते है, इसलिए हवाई जहाज के किराए ओर होटलो के चार्ज मे भी सुविधा रहती है।

दूसरे देशो की तरह कोपनहैगन मे भी नाइटक्लब और कैवरे वहुत है, लेकिन प्रमुख आकर्षण है टिवोली गार्डन। यहा तबियत इतनी बदल जाती है कि इसे 'उत्तरी यूरोप का पेरिस' कहते है, लेकिन डेनिश इसे सुन कर यात्रियो से वनावटी गुस्से मे कहते हैं, 'पेरिस दक्षिणी यूरोप का कोपनहैगन है।'

डेनमार्क मे हमे दो ही दिन ठहरना था, इसलिए हम ने रात्रि मे टिवोली गार्डन देखने का कार्यक्रम वना लिया था। रात का भोजन जल्दी कर के हम टिवोली चले गए और आधी रात तक वहा घूमते रहे। टिवोली कार्निवल के सचालन का खर्च इतना वडा है कि केवल १ मई से १५ सितबर अर्थात साढे चार महीने हो यह खुला रहता हैं, और यात्रियो की भीड़ इतनी हो

जाती है कि इस समय कोपनहेगन की आबादी सवाई से भी अधिक हो जाती है। टिवोली के नाम की नकल में दूसरे देशों ने भी कार्निवल बनाए पर ऐसी साजसज्जा, आकर्षण और खेलतमाशे वे न जुटा सके और न उन्हें उतनी प्रसिद्धि ही मिल पाई। टिवोली का क्षेत्रफल करीब साढ़ेआठ लाख वर्ग फुट है। इतने खेलतमाशे और मनोरंजन यहा एक जगह मिल जाते हैं कि न तो मन ऊबता है और न दूसरी जगह जाने की तबियत होती है।

सब से पहले तो हम ने यहा पटाखों और फुलझड़ियों के खेल देखे। यू तो भारत में भी दिवाली पर तरहतरह की रोशनी और पटाखों से खेल करते हैं। कलकत्ते में आलू बाजार के बाजार में दिवाली पर होने वाली मशहूर पटाखेबाजी और आतिशबाजी देखी थी। लेकिन यहा इन का कुछ और ही समा था। पांचछः फुट लंबे पटाखे देखे। बत्ती भी उसी अनुपात में लंबी। बड़ी सावधानी से आग लगाई गई। पहले तो बड़े जोर का धमाका हुआ फिर आसमान में जा कर रंगबिरंगी रोशनी के बीच से छोटेछोटे अनेक पक्षी निकलते दिखाई पड़े। ये इतने स्वाभाविक बने थे कि पता नहीं चलता था कि ये कागज के बने हैं। कारीगरी देख कर तबीयत खुश हो गई। देखतेदेखते कहीं हवाई जहाज निकला तो कहीं पैराशूट से उतरते नकली आदमी, कई तरह की चीजें उन आतिशबाजियों से निकलती रही हैं।

हम ने सुना था कि लखनऊ के अंतिम नवाब वाजिदअली शाह शानशौकत त्योहारों पर लाखों रुपए आतिशबाजी पर लुटाते थे पर यहा तो डेनिश रोज ही त्योहार और पर्व मनाते हैं।

हम ने अपने यहा की नौटंकी जैसा रूपक भी यहा देखा। यहा इसे पेंटोमाइम कहते हैं। वैसे यूरोप और अमरीका के रंगमंच की उन्नति इन वर्षों में काफी हुई है क्योंकि स्टेज और प्रकाश की व्यवस्था में वैज्ञानिक साधनों का उपयोग किया जाता है, फिर भी बहुत से लोगों की रुचि पुराने ढंग के रंगमंच और रूपकों के प्रति है। हम ने देखा, यहा भी पुराने ढंग के पोशाक पहने, जोरजोर से बोलना और तलवार और भाले घुमाना बहुत बड़ा आकर्षण है।

बीचबीच में विदूषकों की उछलकूद देख कर लोग हंसी से लोटपोट हो रहे थे। खुले मैदान का थियेटर भी चल रहा था। शायद शेक्सपियर के 'किंग लियर' का अभिनय हो रहा था। सब से ज्यादा भीड़ 'फन कार्नर' में थी। बच्चे तो यहा से हटने का नाम ही नहीं लेते थे। तरहतरह की झांकियां, कुरसियां लगी बड़ीबड़ी चर्खियां जिन में स्नान मनाेरंजन होती थी। आपस में जोरों की होड़ चल रही थी कि कौन ऊपर आया, कौन नीचे। हमारे यहा भी मेले और प्रदर्शनियां लगती हैं पर उन में इतनी सजावट नहीं होती और न उतनी विविधता। नाच, जूआ और शराब ही टिवोली गार्डन की एक खास विशेषता है।

एक स्थान पर जो हम गए तो एक राक्षस मुंह बाए खड़ा था। हम ने भी पांच रुपए की १५ गेंदें ली और राक्षस के खुले मुंह का निशाना बनाया, पर हम एक भी गेंद उस में न फेंक सके। बहुत से कीमती इनाम सजा कर रखे हुए थे जो सफल होने पर मिलते। हमें तो एक पेंसिल भी हाथ न लगी।

बहुत से लोग सैकड़ों रुपए विविध प्रकार के खेलों में दांव पर लगा रहे थे। कोई बंदूक का निशाना लगा रहा था तो कोई तीरकमान का। मगर निशाना बहुत कम सही बैठता था। फिर से दूने जोश से दांव लगते थे। ऐसे खेलों से सरकार को प्रति दिन लाखों रुपयों की आय होती रहती है।

रात के १२ बजे हम टिवोली से लौटे। हजारों दर्शक वहा मिले। एक नौजवान भारतीय दंपति से भी भेंट हो गई—वे हनीमून मनाने आए थे, थोड़े दिनों पहले उन की शादी हुई थी। वे दिल खोल कर खर्च कर रहे थे। पता नहीं, उन्हें इतनी विदेशी मुद्रा कैसे मिली! नवयुवक भारत की किसी निर्यात कंपनी का डाइरेक्टर था और पत्नी शायद बीमारी का सर्टीफिकेट ले कर इलाज के बहाने से आई होगी। बड़े उत्साह से उन्होंने कहा, "ग्रीनलैंड अगले दिन

जाएगे।" हम सोचने लगे, गरीब भारत का धन विदेशो मे इस तरह लुटाने की अवैध या अनुचित सुविधा के कारण हमे विदेशी मुद्रा का कितना हिस्सा खोना पडता है।

अगले दिन सुबह का जलपान कर के हम वहा का प्राचीन राजप्रासाद देखने गए। प्राचीन पोशाके, अस्त्रशस्त्र, चित्र और कुछ जवाहरात देखने मे आए। लदन म्यूजियम या पेरिस के लूव्रे के मुकाबले मे ये जचे नही। जो भी हो, इतना जरूर है कि इन से पता चलता है कि यहा का राजवश प्राचीन है और उत्तरी यूरोप मे काफी प्रतिष्ठित।

११ बजे हमे लदन के लिए रवाना होना था। होटल लौट कर अपना सामान लिया और एयरपोर्ट पहुचे। प्रभुदयालजी ने कहा, "किसी देश की समृद्धि उस के विस्तार पर नही, व्यवस्था पर निर्भर है। डेनमार्क, स्वीडन और स्विट्जरलैड इस के अच्छे दृष्टात है।"

दो विश्वयुद्धों की लपटों से झुलसे हुए यूरोप का शांति केंद्र
वियना

वर्षों पहले मैं कलकत्ता की हैरिसन रोड पर जिस मकान मे रहता था, उस के सामने ही एक राजवैद्य की वडी दूकान थी। उन्होने एक ही व्यक्ति की दो तरह की आदमकद तसवीर लगा रखी थी। एक थी उस व्यक्ति की दवा खाने के पहले की तसवीर जिस मे वह दुवलापतला ढाचा मात्र दिखाई देता था। ओर दूसरी थी दवा खाने के वाद की जिस मे वही व्यक्ति हट्टाकट्टा और गठीला पहलवान सा दिखाया गया था। सैकडो व्यक्ति इस विज्ञापन से प्रभावित हो कर वैद्यजी से दवा खरीदते थे। मैं ने खुद भी खरीदी और दूध सेवन भी किया। लेकिन औरो का तो पता नही पर मैं पहलवान सा वन नही पाया।

विज्ञापन की वहुत वडी महत्ता है। इस की शक्ति को सव से ज्यादा अमरीका और यूरोप ने पहचाना है। वहा के व्यावसायिक और औद्योगिक प्रतिष्ठानो के साथसाथ सरकार भी अरबो रुपए प्रति वर्ष विज्ञापन पर खर्च करती है। पाश्चात्य डाक्टरो ओर वेज्ञानिको के वारे में चर्चा सुना करता था। वियना के डाक्टरो की तारीफ तो वहुत वर्षों से सुनता आ रहा था।

हमारे यहा के राजेमहाराजे इलाज के लिए वहा जाते रहते थे। हजारोलाखो रुपए खर्च कर आते थे और तारीफ करते थकते नही थे। पता नही इस मे अपनी शान दिखाने की कामना अधिक थी या वहा के डाक्टरो की सुदक्षता। शायद डाक्टर तो उतने योग्य लदन और ज्यूरिख मे भी थे, मगर आस्ट्रिया की यह खूवी जरूर थी कि वहा गरम पानी के स्रोत थे जिन के बारे मे आस्ट्रिया वालो ने प्रचार कर रखा था कि चर्म रोग या गठियावात के रोगी के लिए इन झरनो मे नहाना अचूक इलाज है। परिणामस्वरूप दुनिया के हर कोने से लोग वहा पहुचते और इस से आस्ट्रिया को विदेशी धन की आय होती। हमारे यहा भी राजगृह के झरनो के वारे मे लोगो की इसी प्रकार की धारणा है किंतु हम ने आस्ट्रिया की भाति व्यापक प्रचार करने का प्रयास शायद ही कभी किया हो। इसलिए विदेशी तो दूर अपने देशवासी भी बहुत कम वहा जाते हैं।

हम शाम के वाद वियना पहुचे थे। होटल पहुचतेपहुचते रात के वारह वज गए। मध्य यूरोप मे होने पर भी यहा ठडक रहती है, क्योकि यह आल्पस पर्वत के अचल का देश है। जुलाई के महीने मे कलकत्ते की जनवरीफरवरी की सी सर्दी थी। रात काफी हो चुकी थी। भोजन की समस्या हल करने के लिए तय किया कि साथ के चिवडे ओर खजूर काम मे लाए जाए। मगर गरम दूध की जरूरत थी जिस से कि चिवडे की खीर बना सके। प्रभुदयालजी के

मना करने पर भी मैं ओवरकोट पहन कर दूध की खोज मे निकल पडा । बाजार पहुचा । भाषा यहां जरमन बोली जाती है । विभिन्न देशो मे सैर करते रहने के कारण सभी भाषाओ के आवश्यक शब्द याद हो गए थे । फिर अतर्राष्ट्रीय भाषा सकेत से तो काम ले ही सकता था । बाजार मे उस समय तक भी रेस्तरा खुले हुए थे । दूध की दोतीन बोतले ली । फलो के रस की भी दोएक बोतले ले आया ।

अचानक होटल और उस के रास्ते का नाम भूल गया । रात के दोढाई बजे तक भटकता रहा । अपनी जल्दबाजी और जिद पर पछता रहा था । दोनो हाथो मे बोतले, बरफानी सर्द हवा, अनजान शहर और बढती हुई रात का सूनापन । एक टैक्सी वाले को रोका । उसे किसी तरह समझाया कि यहा दो मील के इर्दगिर्द मे जितने भी बडे होटल है, उन मे चलो । इत्तफाक कुछ ऐसा हुआ कि पहले ही जिस होटल के सामने टैक्सी रुकी, वही हमारा होटल था । भाग कर कमरे मे पहुचा । भुवालकाजी और हिम्मतसिंहकाजी काफी चिंतित हो उठे थे । सभ्य और सस्कृत शहर था इसलिए उचक्को का डर नही था । कही ईस्ट लदन या वेनिस होता तो शायद मेरे बारे मे ये दोनो साथी उस समय तक पुलिस को खबर दे देते । दोनो की कडवीमीठी सुननी पडी । मुझे अपने ऊपर इतना अधिक आत्मविश्वास था कि उसे घमड कहा जा सकता है । ताशकद और मास्को के ग्रामीण अचल की सैर के बारे मे अपनी बडाई कई बार उन से कर चुका था । अब वे मुझे आडे हाथो लेने लगे । बहरहाल, खीर और खजूर का प्रोग्राम रह गया । हम तीनो सिर्फ दूध पी कर सो गए । बिस्तर पर लेटते ही नीद आ गई ।

पिछली रात भटकते रहने के कारण थकावट आ गई थी । सोया भी देर से था । आखे खुली तो नौ बज चुके थे । दोनो साथी कब के उठ चुके थे और तैयार थे । अपने प्रमाद और आलस्य पर झेप गया । जल्दी से तैयार हो कर हम तीनो ने नाश्ता किया और बाहर सडक पर आ गए ।

वियना के लिए हम ने दो दिनो का समय निकाला था । यूरोप के इस ऐतिहासिक और सास्कृतिक नगर के लिए यह कम था । मगर हमारे पास इस के सिवाय अन्य विकल्प भी नही था । यहां केवल घूमना नही था बल्कि स्टेट बैंक के गर्वनर से मिल कर देश की आर्थिक और औद्योगिक स्थिति की जानकारी भी लेनी थी ।

सुबह का समय हाथ से निकल चुका था । टूरिस्ट बस साढेआठ बजे सबेरे आ कर चली जाती है । इसलिए, अब हम ने स्वतत्र माध्यम से शहर घूमने का निश्चय किया ।

थोडी दूर पर हमे बहुत ऊचा सा एक गुबद दिखाई पडा । कुतुबमीनार से इस की ऊचाई लगभग दूनी लगी । गाइडबुक मे देखा तो पता चला कि इसे सेट स्टीफन का गिरजा कहते है । रोम के सेट पीटर के गिरजे के बाद यूरोप का यह सब से मशहूर और बडा गिरजा माना जाता है । सोचा, 'पास ही तो है, अभी पहुच जाते है ।'

हम उस ओर बढे । दूर चलने पर भी जब वहा नही पहुचे तब गलती महसूस हुई । ऊचाई के कारण पास लगने वाला वह गिरजा लगभग डेढदो मील की दूरी पर था । गाइडबुक से पता चला कि चार लाख वर्ग फुट के क्षेत्रफल मे बना हुआ है । इस का शिखर ४५८ फुट ऊचा है । सन ११३७ मे बनना शुरू हुआ और तैयार होने मे लगभग साढे चार सौ वर्ष लगे । सन १७११ मे तुर्को से युद्ध मे जीती गई तोपो को गला कर इस का पीतल का विशाल घटा बनाया गया जिस का वजन ५५० मन है । आस्ट्रिया की सम्राज्ञी मारिया थेरेस्सा की इच्छा थी कि इस गिरजे को विश्व का सब से बडा धर्मस्थान होने का गौरव प्राप्त हो । इस के लिए उस ने इसे भव्य और विशाल बनाने के अनेकानेक प्रयास किए । एक बार तो यहा तक इरादा कर लिया कि इसे तोड कर फिर से बनाया जाए लेकिन सेट पीटर के गिरजे से बडा गिरजा बनाना करोडो व्यक्तियो का सहयोग, अपरिमित धन और साधन मागता था । वह बडे से बडे सम्राट के बूते के बाहर की बात थी ।

सेट स्टोफन के गिरजे मे बहुत से भित्ति चित्र है । कुछेक तो अत्यत कलापूर्ण है मगर वैटिकन में सिस्टनचर्च के विश्व विख्यात चित्रकारों की कलाकृतियो के समक्ष यहा के चित्रो मे मुझे कोई मौलिकता नजर नही आई ।

पिछले दो महायुद्धो की विनाशकारी लपटो मे वियना को भी झुलसना पडा है । गनीमत है कि यहा की वेहतरीन इमारते और खूबसूरत वुलद गिरजे काफी हद तक बच गए । यूरोप के अन्य शहरो मे मध्यकालीन इमारतो की वडी हानि इन महायुद्धों की वमबारी से हुई है । किंतु वियना के गिरजे और मध्ययुगीन इमारत किसी तरह वच गए । इसलिए आज पर्यटको के लिए इस शहर का एक विशेष आकर्षण है । आज भी यहा साठसत्तर फुट ऊचे दोमंजिले वडेवडे मकान देखने को मिल जाते है । न्यूयार्क या शिकागो मे इन पुराने मकानो के जितनी जमीन पर पचाससाठ गुने आवास भवनो का निर्माण करना स्वाभाविक है ।

जो भी हो, इन पुराने ढग की इमारतो की अपनी शान है और उन की बुलदी गुजरे हुए जमाने का एहसास आज भी जाहिर करती है । हमारे यहा कलकत्ता मे आसमान को छूने की होड लगाने वाले मकान पिछले दो दशको मे तेजी से बने और वनते जा रहे हैं । फिर भी पुराने ढग के भव्य और विशाल दोमजिले मकानो की शान का ये नए आलमारीनुमा मकान मुकाबला नही कर पाते । चोरबगान की बडेबड़े खंभो वाली सगमरमर की राजेंद्र मल्लिक कोठी आज भी उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध के वास्तुशिल्प की याद दिलाती है ।

जिस प्रकार आगरा और दिल्ली को सम्राट शाहजहा ने सवारासजाया, उसी तरह साम्राज्ञी मारिया थेरेस्सा ने वियना की महत्ता वढाई, इसे सजाया और सवारा । उस ने हॉफ्सबर्ग प्रासाद को जी भर के सुसज्जित कर अपने शौक की पूर्ति की । गिरजा देख कर हम हाफ्सबर्ग महल देखने गए । इसे शीशमहल भी कहते है । यूरोप के मध्ययुगीन इतिहास मे आस्ट्रियाहगरी साम्राज्य के प्रभाव, शक्ति और ऐश्वर्य का गौरवपूर्ण परिचय मिलता है । इस शक्तिशाली साम्राज्य के सामने फ्रास और ब्रिटेन दोनो को सिर उठाने की हिम्मत नही होती थी ।

तुर्को की असख्य तीखी तलवारे जब एशिया से ले कर अटलाटिक महासागर तट के राष्ट्रो के छक्के छुडा रही थी, आस्ट्रिया ने उन की नोक को तोड डाला था । तुर्को का हौसला पस्त हुआ और उन्हे वापस लौटना पडा ।

वियना को मध्ययुग मे कला, विज्ञान और संस्कृति का सुगमस्थल माना जाता रहा है । आस्ट्रियाहगरी के सम्राटो की राजधानी सदैव वियना ही रही । हाफ्सबर्ग राजप्रासाद इन सम्राटो का निवास स्थान था और इसी मे उन्होने अपना दफ्तर भी रखा । हालाकि आज आस्ट्रियाहगरी का साम्राज्य नही रहा और न वह प्राचीन राजतत्र ही, फिर भी इस शीशमहल की भव्यता मे अतर नही आया है । इस समय इस के वडेवडे कक्षो मे भातिभाति प्रकार के सग्रहालय, बीस लाख ग्रथो की नेशनल लाइब्रेरी और सरकारी दफ्फर हैं ।

दरअसल इसे महल न कह कर एक शहर कहना ज्यादा सही होगा । इस के विभिन्न कक्ष एक ही समय मे नही बने, बल्कि तेरहवी शताब्दी से ले कर उन्नीसवी शताब्दी तक यानी लगभग छ सौ वर्षो तक वनते रहे । फ्रास मे मैं ने पेरिस का लूब्रे और वर्साई के राजप्रासाद देखे थे । दोनो अपनी विशालता और भव्यता के लिए विश्वविख्यात है । किंतु मुझे हाफ्सबर्ग का यह प्रासाद इन से अधिक सुदर, सौम्य और भव्य लगा ।

प्रासाद मे घूमते हुए एक मसजिद दिखाई पडी । ईसाई राजमहल मे मसजिद ! ठीक वैसे ही जैसे मुगल हरम मे मदिर मिल जाए । पूछने पर पता चला कि सन १५२९ मे तुर्की फौजे वियना मे घुस आई थी और यहा कुछ समय तक उन का कब्जा रहा । उसी समय मे यह मसजिद बनी थी । शहर को उन्होने मनमाने ढग से लूटा और वरवाद किया । औरते, बच्चे और बूढे तलवार की प्यास बुझाने के लिए कत्ल किए गए । अनगिनत स्त्रियो और बच्चो को गुलाम बना तथा अथाह दौलत लूट कर वे यहा से अपनी राजधानी कुस्तुनतुनिया ले गए ।

तुर्कों ने कई बार आंधी की तरह वियना पर आक्रमण किए । सन १६६३ मे उन की एक बड़ी फौज ने जबरदस्त हमला किया । वियना के दरवाजे तक वे आ धमके । इस बार ऐसा लगता था कि आस्ट्रियाहगरी पर सदैव के लिए चाद तारे का हरा झडा फहरा उठेगा । आस्ट्रिया के लिए यह जीवनमरण का प्रश्न बन गया । उस के हारेयके सोलह हजार सिपाही दीवार की तरह तुर्कों के सामने अड गए । वियना के हर घर की स्त्रियो और बच्चो ने जीजान से उन की मदद की । इस प्रकार ६० दिनो तक नाकेबदी चलती रही । इस बीच यूरोप मे ईसाई राष्ट्रो ने सघबद्ध हो कर तुर्कों की इस्लामी खूरेजी को नष्ट करने का निश्चय किया । चार्ल्स आफ लारेन के नेतृत्व मे एक बड़ी ईसाई फौज ने तुर्कों पर आक्रमण कर दिया और उन्हे छिन्नभिन्न कर डाला । इस के बाद फिर कभी तुर्कों ने मध्य यूरोप की ओर आख उठाने का साहस नही किया ।

महल के बडे कक्ष मे हम ने आस्ट्रिया के सम्राटो के खजाने को देखा । नाना प्रकार के जवाहरात, जेवर, सिहासन, चादीसोने के खूबसूरत बरतन ओर फरनीचर सजेसजाए रखे थे । वैसे लेनिनग्राद के म्यूजियम मे हम ने रूस के सम्राटो की इस से कही अधिक सामग्री देखी थी । इसी प्रकार वर्साई के राजप्रासाद मे फ्रांस के सम्राटो की भी चीजे यहा से कही अधिक देखने मे आईं । लंदन के टावर के सग्रहालय मे ब्रिटिश सम्राटों के मुकुट और जवाहरात अरबोखरबो की कीमत के होंगे । जो भी हो, यूरोप मे प्राचीन दुर्लभ वस्तुओ के रखने के प्रति एक विशेष आग्रह राष्ट्रीय गुण के रूप मे सर्वत्र है जिस का अभाव हमारे यहा है । पेरिस के लूब्रे सग्रहालय मे सग्रहीत चित्रो का मूल्य ही एक अरब पचास करोड रुपए के बराबर कूता गया है ।

हाप्सबर्ग का सग्रह फ्रास, रूस और ब्रिटेन के मुकाबले अधिक प्रभावित न कर सका, फिर भी इतना तो मानना ही होगा कि इसे अच्छी तरह सजा कर रखा गया है । हमारे पास समय था इसलिए हम ने यहा का हिस्ट्री म्यूजियम देखना भी तय किया । किसी भी देश की सभ्यता, संस्कृति और उस के इतिहास के उतारचढाव का परिचय ढग के सग्रहालयो को देखने पर सरलता से मिल जाता है । जिज्ञासु विद्यार्थी और लेखक तो इन जगहो में महीनो बैठ कर जानकारी प्राप्त करते हैं ।

यहा के हिस्ट्री म्यूजियम मे सम्राटो के हथियार, युद्ध की पोशाके और उन के काम मे आने वाली चीजो का सग्रह है । युद्ध के घोडो के जिरह बख्तर, और सिपाहियो के लोहे के आवरण भी देखे । ऐसे भी यन्त्र देखे जिन के जरिए किलो पर से पत्थर और लोहे के गोले बरसाए जाते थे । नाना प्रकार के बेडौल और क्रूर कार्यो मे इस्तेमाल किए जाने वाले हथियार और उपकरण देख कर चित्त क्षुब्ध सा हो उठा था । सोचने लगा कि आदमी इनसान होने का दावा ही करता है, असलियत मे हैवानियत का साथ नही छोडता । इन्ही विचारो मे उलझा हुआ था कि प्रभुदयालजी ने कहा, "फिर भी मौत बरसाने वाले ये साधन आज की अपेक्षा कही कम कष्टकर हैं । इन का प्रभाव युद्धक्षेत्र तक ही रहता था, जब कि आज के उन्नत वैज्ञानिक अस्त्रशस्त्र पूरे शहर को नेस्तनाबूद कर के लाखो निरीह नागरिको का सहार कर देते है ।

चार बजे भारतीय दूतावास के सचिव के साथ यहा स्टेट बैक के गवर्नर से मिलने गए । हमे बातचीत मे कठिनाई महसूस नहीं हुई । वह अगरेजी साफ बोल लेते थे, फिर भी उन्होने हम से अपनी ही भाषा में बात की । हमारे बीच दुभाषिया था । उन्होने बताया, "यूरोपीय देशो मे फ्रास को छोड कर आस्ट्रिया को दोनो महायुद्धो के कारण दूसरे सब देशो से कही अधिक जनधन की हानि उठानी पडी । जरमनी का साथ देने के कारण युद्ध के हर्जाने की बहुत बडी रकम अदा करनी पडी । फिर भी जनता के सहयोग से हम राष्ट्र का नवनिर्माण कर सके है । जनता ने खुद भी अभाव को सहर्ष स्वीकार किया और निर्यात बढा कर विदेशी धन पैदा किया । इस प्रकार आस्ट्रिया मे पुराने उद्योगधधे सगठित रहे और नएनए

शिल्पोद्योगो की स्थापना होती रही ।

"सन १९६३ मे निर्यात १,१०० करोड़ रुपयो का था और आयात १,६०० करोड़ का, अर्थात सत्तर गुने बडे हमारे देश से कही अधिक । राष्ट्रीय आय थी पाच हजार करोड के लगभग यानी प्रति व्यक्ति ८०० रुपए वार्षिक और बजट था १,००० करोड का । विदेशी यात्रियो की सख्या उस वर्ष करीब ६० लाख थी । इन से देश को २६० करोड रुपयो की आमदनी हुई ।"

हमे जान कर आश्चर्य हुआ कि उन के देशो की यात्रिक आय स्विट्जरलैड मे भी अधिक है । विश्व मे केवल इटली ही एक ऐसा देश है जिस की यात्रिक आय आस्ट्रिया से ज्यादा है ।

हम ने उन के देश के प्रति विदेशी यात्रियो की इतनी रुचि का कारण जानना चाहा । हम ने लक्ष्य किया कि हमारे प्रश्न से उन्हे प्रसन्नता हुई । मुसकराते हुए सगर्व उन्होने कहा, "वियना के सेट स्टीफन के पवित्र गिरजे, हाप्सबर्ग के नायाब राजप्रासाद और शीशमहल जैसी ऐतिहासिक इमारते अन्यत्र कहा देखने को मिलेगी ! इस के अलावा आस्ट्रिया मे आल्प्स पर्वत पर जितने बडे पैमाने पर बरफ के तरहतरह के खेल होते रहते हैं, उतने और कही नही । स्पा (झरने) हमारे लिए वरदान है । इन के जल मे अमृत का सा गुण है'। पेरिस, वेनिस, शिकागो, लदन और दुनिया के सभी बडेबडे शहरो से नाना प्रकार के दुर्व्यसनो के कारण शारीरिक क्षमता को खो कर लोग यहा आते हे । हमारे यहा के पहाडो पर जा कर वे एक नई स्फूर्ति और जीवन पा जाते हे ।

"कई विदेशी यात्रियो का यह जरूर उलाहना रहता है कि आस्ट्रिया के जीवन मे वह मोज, गति ओर गरमी नही है जो पेरिस, वेनिस या लदन मे है । सही हे, मगर उद्दाम लालसा ही तो जीवन का चरम लक्ष्य नही । प्यास बुझाने की कोशिश मे मनुष्य की प्यास बढती जाती है और तब एक दिन वह अपने को इतना आसक्त पाता हे कि बरबस गडे मे गिरता चला जाता है ।"

हमे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि युद्ध से जर्जर हुए इस छोटे से देश मे हर दसवे व्यक्ति के पास एक मोटरकार है और हर तीसरे व्यक्ति के पास एक रेडियो । अनपढ तो कोई है ही नही । युद्ध का कर्ज इन लोगो ने कभी का चुका दिया और अब दूसरे देशो को ऋण दे रहे हैं । कृषि की दशा भी अच्छी है । बाइस लाख टन सब प्रकार के अनाज यहा वर्ष मे हो जाते हे यानी नौ मन प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष । पशुधन भी अच्छी हालत मे है । प्रति तीन व्यक्तियो के पीछे दो पशु है । आस्ट्रिया की धरती मे लोहा और तेल हे । उत्तम किस्म का ग्रेफाइट भी यहा काफी मात्रा मे है । युद्ध के बाद अपनी सारी उपज उन्हे ऋण चुकाने मे खपानी पडी । साठ लाख टन तेल तो अकेले रूस को आठ वर्षो तक क्षतिपूर्ति के रूप मे दिया ।

फिर भी यहा अर्थव्यवस्था असतुलित नही हुई । आज इनके सिक्के की प्रतिष्ठा विश्व के मजबूत सिक्को की तरह है । अब तो कागज, रसायन और अल्युमीनियम का निर्यात कर के आस्ट्रिया अपने को धनी बनाता जा रहा है । इस सारी सफलता के पीछे यहा की जनता की कर्मठता को श्रेय दिया जा सकता है । युद्ध के बाद सब प्रकार के सुखो को तिलाजलि दे कर यहा के मजदूरो ने अपने भविष्य को सुखमय बनाया । यह हमारे लिए अनुकरणीय है ।

स्टेट बैक मे हमारे लिए ४५ मिनट का समय था किंतु पूछताछ और बातचीत मे लगभग सवा घटे का समय लग गया । हमे सहर्ष हर तरह की जानकारी उन्होने दी ।

रात मे, यहा का विश्व प्रसिद्ध ओपेरा देखने गए । नाजी आक्रमण से इसको बडी क्षति पहुची थी । आस्ट्रिया के लोग सगीतकला के प्रेमी हैं । भाषा इन की जरमन जरूर है पर स्वभाव जरमनो से कही अधिक मृदु होता हे । अपने राष्ट्रीय महत्त्व की रगशाला के

पुर्निर्माण के लिए जनता ने विपुल धनराशि एकत्र करनी शुरू कर दी और सन १९५५ इसे पहले से भी कही अधिक सुदर और सुसज्जित बना लिया।

सगीत का स्वर मधुर था, हालाकि भाषा जरमन होने के कारण हम समझ नही पाए। ओपेरा की साजसज्जा बडी शानदार थी, किसी सम्राट के राजमहल से कम नही। सगीत लहरी मे सभी झूम रहे थे। हम ने देखा कि यहा पेरिस और हबर्ग की तरह स्त्रियो मे उच्छृखलता और नग्नता के प्रदर्शन की होड नही थी।

ओपेरा के विशाल कक्ष मे लोग अनुशासन से शातिपूर्वक बैठे स्वर लहरी मे तन्मय हो रहे थे। आस्ट्रियन मध्ययुगीन आर्केस्ट्रा आज भी सर्वश्रेष्ठ माने जाते है। इन का दावा है कि दुनिया मे सगीत के मामले मे इन के समकक्ष, कोई नही है।

अगले दिन सुबह नाश्ता कर हम बस से शोनबर्न प्रासाद देखने गए। वियना का यह दर्शनीय स्थल है। इसे 'ग्रीष्म प्रासाद' भी कहते है। फ्रास के सुप्रसिद्ध वार्साई राजप्रासाद के नक्शे पर इसे बनाया गया है। महल के चारो ओर उद्यान और नहर है। आस्ट्रियाहगरी के सम्राट ग्रीष्मकाल मे इस प्रासाद मे आ जाते थे। १४० कक्षो का यह महल बाग और नहर के बीच बडा सुदर लगा। यो तो इस मे कई सम्राटो के कक्ष है पर हमे सम्राज्ञी मेरिया थेरेस्सा के कक्ष और सग्रहालय बहुत आकर्षक लगे।

सम्राज्ञी थेरेस्सा की गणना अट्ठारहवी शताब्दी के विश्व प्रसिद्ध व्यक्तियो मे होती है। साधारण लोगो के स्वभाव और गुणदोष की चर्चा या टीकाटिप्पणी कम होती है, किंतु राष्ट्रीय मान के लोगो का छोटा सा दोषगुण बहुत व्यापक चर्चा का विषय बन जाता है और युगो तक जनता की जबान और साहित्य के पृष्ठो पर अकित हो जाता है। समाज और राष्ट्र के सर्वमान्य प्रतिष्ठित आसन पर जब कोई महिला होती है तब तो स्थिति और भी सयम की अपेक्षा करती है।

इगलैड की महारानी एलिजाबेथ प्रथम, फ्रास की मेरी अतोनिता, रूस की जारीना और भारत की रजिया बेगम का उल्लेख इस सदर्भ मे किया जा सकता है। आस्ट्रिया की सम्राज्ञी मेरिया थेरेस्सा भी इसी कोटि मे आती है। वह १७४० मे आस्ट्रियाहगरी के विस्तृत साम्राज्य के सिंहासन पर बैठी और लगभग चालीस वर्ष की सुदीर्घ अवधि तक उस ने शासन किया। हम ने देखा, उस के १६ पुत्रपुत्रियो के लिए महल मे अलगअलग कक्ष थे और सब के लिए पृथक व्यवस्था थी। महारानी के स्वय के बीसियो कक्ष है जिन मे आज भी बेहतरीन चीजे सजी हुई है। ऐशोइशरत की बहुमूल्य वस्तुए महारानी की पसद का परिचय देती है।

चीन और मिस्र के कक्ष को देखते हुए हम भारतीय कक्ष मे आए। पलग, साज और सामान, फरनीचर सभी भारतीय। हाथ के बने सैकडो कलापूर्ण चित्र। बडा आश्चर्य हुआ कि कागडा, राजपूत, मुगल और दक्षिणी शैली की विशुद्ध भारतीय कलाकृतियो के दुर्लभ सग्रह महारानी मारिया ने किस प्रकार हासिल किये होगे? राधाकृष्ण की लीला, रागमाला और पशुपक्षियो आदि के चित्रो के रगो की ताजगी बता रही थी कि इन की देखभाल सावधानी से की जाती है। अलमारियो मे देखा, विभिन्न प्रकार की भारतीय पोशाके सजी हुई थी। मै सोचने लगा कि आस्ट्रिया मे इन भारतीय वस्तुओ के आने का क्या स्रोत रहा होगा? ब्रिटेन ने तो लूटखसोट कर इकट्ठा किया, पर यहा कैसे? शायद उपहारस्वरूप मिली होगी या खरीद कर सग्रह की गई हो।

एक कक्ष मे देखा, नेपोलियन्न के किशोर पुत्र की प्रतिमा रखी थी। नेपोलियन ने आस्ट्रिया को जीत कर फ्रास मे मिला लिया था। एक बार सपरिवार कुछ दिनो के लिए वह वियना भी आया किंतु यहा अचानक उसके प्रिय पुत्र की मृत्यु हो गई। इस शोक से वह इतना विचलित हुआ कि अविलब वियना छोड कर वापस चला गया, स्मारक के रूप मे यह प्रतिमा

यहा रख दी गई। वह अपने इस पुत्र को आस्ट्रियाहगरी का सम्राट बनाना चाहता था।

ग्रीष्म प्रासाद का उद्यान बहुत ही सवारा हुआ है। नहर की सफाई देखकर तबीयत प्रसन्न हो जाती है।

अगले दिन हमे आस्ट्रिया से जाना था। हमने शाम को ससद भवन देख लेना तय किया। भारतीय दूतावास के सचिव हमारे साथ थे। क्योकि हम तीनो ही अपने देश के ससद सदस्य थे, इसलिए हमारे लिए विशेष सुविधा दी गई अन्यथा ससद भवन देखना सभव नही होता क्योकि उन दिनो सत्र चालू नही था।

आस्ट्रिया का ससद भवन कोरिन्थियन शैली पर बना है। राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के राजनीतिज्ञो की प्रस्तर मूर्तिया भवन के चारो ओर सजी रखी है।

ससदीय कार्यो के सपादन के लिए अनेक कक्ष है। मुख्य कक्ष, जहा ससद की बैठके होती है, बहुत ही बडा है। हमे बताया गया कि आस्ट्रियाहगरी के विशाल साम्राज्य के पाच करोड व्यक्तियो के प्रतिनिधियो के लिए इसे बनाया गया था। लेकिन पहले महायुद्ध के बाद वह साम्राज्य ढह गया, आस्ट्रिया एक छोटा सा राज्य रह गया और हगरी स्वतत्र बन गया। वहा से चलते समय ससद भवन के अधिकारी ने हमे आस्ट्रिया के ससदीय कानून की पुस्तके और स्मृतिस्वरूप अन्य चीजे दी। उन्होने हमसे कहा, "केवल वियना को ही आस्ट्रिया न समझे। जब तक साल्जबर्ग और इजबर्ग की यात्रा नही की जाती, आस्टिया देखना पूरा नही होता। वियना मे सिर्फ आस्ट्रियन लोग मिलेगे किंतु उक्त दोनो स्थानो पर हमारी प्रकृति का निखार और उसकी खूबसूरती मिलेगी। विभिन्न देशो से आये लोग वहा आमोदप्रमोद मे व्यस्त मिलेगे। विदेशी यात्रियो के लिए होटल, क्लब और रेलवे की टिकटो मे विशेष छूट दी जाती है।"

हमारी इच्छा तो हुई पर विदेशी मुद्रा की कमी के कारण गए नही।

वियना मे केवल दो दिन रहा। किंतु आस्ट्रिया देखने की इच्छा बनी ही रही। मध्य यूरोप के देशो मे स्विट्जरलैड को छोडकर शायद सबसे सुदर शिष्ट और शात वातावरण यहा का है। आज भी इच्छा होती है कि साल्जबर्ग और आल्पस हो आऊ।

दूसरे दिन सुबह हम लोग वियना से ४० मील की दूरी पर गरम पानी के झरने देखने गए। वहा जाकर तीन कोठरिया किराए पर ली। करीब तीस मिनट तक सारे बदन पर एक खुरदरी घास से मालिश की गई। इसके बाद झरने के उबलते पानी मे स्नान किया। वास्तव मे स्फूर्ति का अनुभव हुआ। राजगृह के झरनो में ऐसा ही लगता है। बहती हुई गरम जलधारा मे स्नान करने से रक्त सचालन मे तेजी आती है और पेशियो मे ताजगी। वैसे, यह सब हर जगह या हर देश मे एक सा ही है किंतु वियना मे इससे अधिक आकर्षक ओर उपयोगी बनाया गया है। स्नान से पहले और बाद मे विद्युत उपकरणो से शरीर के समस्त अगो की मालिश की जाती है। इसके लिए अलगअलग सुसज्जित कोठरिया है। स्वस्थ व्यक्ति इस ढग की मालिश से थकावट से शीघ्र ही मुक्ति पा जाते है।

एक बार के स्नान तथा अन्य उपकरणो के लिए कुल मिलाकर करीब पचास रुपए लिए जाते है। इसके अलावा वहा आने-जाने के और दूसरे खर्च अलग। मैने देखा विदेशो से आए हुए हजारो यात्री विभिन्न प्रकार से घटो तक स्नान कर रहे हैं। अनेक रंगो के शीशो से छनकर आती हुई रोशनी महीन ताप से वातग्रस्त और रोगग्रस्त शरीर के अगो को सेक रहे है। भूख लग जाती है तो पास के रेस्तरा में जाकर फलो का रस, दूध, मट्ठा, छाछ या लस्सी पी लेते है। शराब यहा देखने मे नही आई। शायद यहा भी प्राकृतिक चिकित्सा के विशेषज्ञो ने इस की मनाही कर रखी है।

एक जगह पाचछ युवतिया बिकनी पहने धूप मे बैठी थी। वे बारबार मेरे गेरुए शरीर

की तरफ देखकर आपस मे बाते कर रही थी। ऐसा लगा कि मेरा रग शायद उनके कुतूहल का कारण है। इधरउधर घूमता हुआ उनकी ओर चला गया। कई बार पश्चिमी देशो की सैर कर चुका था, इसलिए झेप मिट चुकी थी। अभिवादन के बाद बातचीत शुरु हो गई। पता चला कि वे सब इगलैड से आई है। उनका आकर्षण मेरे शरीर का वर्ण था। वे यहा गरम पानी मे स्नान करके और धूप सेक कर अपने श्वेत वर्ण को सावला बनाने की कोशिश मे थी। मैं सोचने लगा 'हमारे यहा सावली लडकी का विवाह होना मुश्किल हो जाता है और एक ये है जो अपने दूध से सफेद रग को सावला बनाने के लिए इतना धन व्यय कर रही हैं।' झरनो मे स्नान करके कुछ नाश्ता किया और टूरिस्ट बस से हम वापस वियना लौट आए।

वियाना के एक महल्ले मे जब हमारी बस पहुची तो देखा कि रास्ते मे हजारो स्त्रीपुरुष खडे है। सिपाही उन्हे दूर ढकेलने का प्रयत्न कर रहे थे। पूछने पर पता चला कि सामने के होटल मे दो फिल्मस्टार ठहरे हुए है और उन्हे देखने के लिए ये सब खडे है।

मैं ने प्रभुदयालजी से कहा कि यह रोग केवल हमारे यहा ही नही है, अपितु इन सभ्य देशो मे भी उसी तरह है।

लच के बाद हमे वियना से रवाना होना था इसलिए वहा ज्यादा देर न ठहर कर होटल लौट आए।

लोहे की दीवार के इस पार...और उस पार

जरमनी

बचपन मे जरमनी के बारे मे बहुत कुछ सुना था। घर मे पडितपुरोहित आते थे और बडो से वेदशास्त्र की चर्चा करते हुए भारत के पतन का कारण बताते थे, "शास्त्र सब यहा से जरमनी वाले ले गए इसलिए वहा तो उन्नति हो रही है और हमारे देश मे अविद्या—अज्ञान फैल रहा है।"

जरमनी का इतना ही परिचय उन दिनो जिज्ञासा को जगाने के लिए काफी था।

ब्रिटेन का कट्टर प्रतिद्वन्दी था जरमनी। हर क्षेत्र मे ब्रिटेन से उसने टक्कर ली। मजबूती और टिकाऊपन के लिए बाजारो मे जरमन माल मशहूर था। लोगो से सुनते थे और अखबारो मे भी पढने को मिलता था कि जरमनी ने विज्ञान व शिल्प उद्योग मे बडी तरक्की कर ली। अनजाने ही खुशी होती थी, वह इसलिए कि दुश्मन के दुश्मन से सहानुभूति होनी स्वाभाविक है। घुमक्कड मन मे उसी समय से जरमनी देखने की इच्छा का अकुर पैदा हो गया।

१९१४ मे प्रथम महायुद्ध हुआ। देश मे उस समय स्वराज्य आदोलन की लहर चल पडी थी। लेकिन गाधीजी ने उस सकट के समय ब्रिटेन को बिना किसी शर्त के सब प्रकार से सहायता दिलाई। ब्रिटेन ने युद्ध के बाद भारत मे औपनिवेशिक स्वराज्य कायम करने का वादा किया। बहुत बडी सख्या मे भारतीय जवाने फ्रास के मोर्चे पर जान की बाजी लगाकर बहादुरी से लडे। जरमनी हारा जरूर मगर उन्ही जवानों के मुह से जरमनो के साहस और बहादुरी की कहानी घरघर मे छा गई। ब्रिटेन वादे से मुकर गया, औपनिवेशिक स्वराज्य की जगह मिला जलियावाले बाग का नृशस हत्याकाड। भारत पराधीन ही बना रहा लेकिन थके-हारे जरमनी ने हिन्दुस्तानी दिल मे अपनी दिलेरी की खूबसूरत तसवीर बना ली।

पराजित राष्ट्र को हार का महगा मूल्य चुकाना पडता है। प्रथम महायुद्ध के बाद वर्साई की सधि मे जरमनी को अनेक क्षेत्रो से हट जाने के लिए बाध्य किया गया, जुरमाने और हरजाने के रूप मे भी उससे बडी रकम वसूल की गई। अफ्रीका और एशिया के देशो से उसका कब्जा हट गया।

विख्यात राजनीतिज्ञ चर्चिल ने भी स्वीकार किया था कि इस सधि की आर्थिक शर्ते प्रतिहिंसा की भावना से ओतप्रोत थी ।

जो भी हो जरमन लोग अपमान को भूले नही । प्रतिहिंसा की प्रतिक्रिया ने हिटलर को पैदा किया । लगभग अठारह वर्षो मे फिर से जरमनी उठ खडा हुआ किंतु इस बार आसुरी शक्ति और दुर्भावना के साथ। यदि जरमन लोगो को यह विश्वास रहता कि उनकी आर्थिक अव्यवस्था मध्यम मार्ग से सुधर सकती है तो वे गणतात्रिक व्यवस्था को छोडते नही और शायद नाजियो के हाथ अपने भविष्य को भी नही सौपते ।

नाजियो का उत्थान राष्ट्रीय समाजवाद के नारे पर ठीक उसी तरह हुआ जिस तरह रूस मे समाजवाद के नाम पर कम्युनिज्म का उदय । नाजियो ने दिशाहारा जरमनो को सब्जबाग दिखाए, जरमन जाति को दैवी शक्ति सम्पन्न बताया, उन्हें वरगलाया कि दुनिया पर शासन करने का एकमात्र अधिकार केवल जरमनो का है क्योकि उन मे विशुद्ध आर्य रक्त है । नाजियो की गोटी सधती गई । जरमन सैनिक जो निराशा और ग्लानि से भरे हुए बैठे थे, उन के फौजी दस्तो मे शामिल होने लगे । सन १९३७ तक हिटलर की नाजी पार्टी जरमनी के राजनीतिक अखाडे मे वाजी जीत ले गई । उस के हाथ मे सर्वोच्च सत्ता आ गई ।

जर्जर जरमनी की आर्थिक अवस्था को हिटलर ने सुधारा, इसे मानना पडेगा । उसने उद्योगधंधे बढाए, वेकारी दूर की, सेना मजबूत की और विदेश नीति मे सफलता प्राप्त की । इस से जरमनी की प्रतिष्ठा और सत्ता दोनो बढती चली गईं ।

हिटलर की सफलताओ के कारण जरमन जनता ने उसे युगावतार समझ लिया, विदेशनीति की सफलता और सेना के पुनर्गठन ने सस्कारहीन हिटलर मे मद भर दिया । उस मे क्रूरता, दम्भ, धोखेवाजी और दूसरे देशो के प्रति लोलुपता की भावना वढती गई । भस्मासुर की तरह, उस की सफलताए ही उस के विनाश और जरमनी के पराभव का कारण वनी ।

सन १९३७ मे हिटलर ने खोए हुए क्षेत्र राइनलैड पर अधिकार कर लिया । सन १९३८ मे उस ने आस्ट्रिया पर कब्जा कर के उसे जरमनी मे मिला लिया । इसी वर्ष उस ने चेकोस्लोवाकिया का सुडेटन प्रदेश दखल कर लिया । दलील यह थी कि वह जरमन भाषी अचल है । आगे चल कर १९३९ मे जरमन का पूरे चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार हो गया । इस समय तक आधुनिक शस्त्रो से सुसज्जित जरमन सेना विश्व मे बेजोड हो गई थी । अगस्त की शुरुआत के साथ ही जरमनो ने पोलेड पर धावा वोल दिया ।

वस, इस घटना ने यूरोपीय राष्ट्रो को जगा दिया । दूसरे महायुद्ध का सूत्रपात हो गया ।

मानवता के इतिहास मे शायद ही कभी ऐसा भयानक युद्ध हुआ हो । इस लडाई मे यूरोप प्रमुख रूप से रणागन बना। जरमन सेना ने आधी की तरह यूरोप के छोटेछोटे देशो को उखाड फेका । पोलैड, हगरी, चेकोस्लोवाकिया, युगोस्लाविया, डेनमार्क, नारवे, नीदरलैड, वेलजियम, रूमानिया, वुल्गारिया सभी पर नाजी झडे लहरा उठे । यूरोप मे इटली ने जरमनी का साथ दिया और एशिया मे जापान ने । तीनो राष्ट्रो का यह गुट 'धुरीराष्ट्र' और ब्रिटेन, फ्रास, रूस व अमरीका का गुट 'मित्रराष्ट्र' कहलाया ।

युद्ध के प्रारभिक काल मे जरमनी ने फ्रास की अजेय सैन्यशक्ति को बुरी तरह ध्वस्त कर दिया । ब्रिटेन घवरा उठा । उस के जीवनमरण का प्रश्न आ खडा हुआ । जून १९४१ मे हिटलर ने रूस पर धावा किया । वस, यही से हिटलर के पीछे पराजय की छाया मडराने लगी ।

वह भूल गया था कि यूरोप को रौदने वाले नैपोलियन की शक्ति भी रूस मे ही कुचली गई थी । रूस की लाल सेना ने जरमनी की नाजी सेना को बढने से रोका । स्टालिनग्राद में

एकएक गज जमीन पर जो लडाई हुई, उस की कल्पना शायद हिटलर ने नही की थी। एक ओर अमरीकी साजसामान से लैस रूसी सेना के धैर्य और साहस तथा दूसरी ओर जानलेवा बरफीली हवा के सामने हिटलर की सेना की हिम्मत पस्त हो गई। लाल सेना ने नाजियो को पीछे ही नही धकेला बल्कि वह जरमनी की राजधानी बर्लिन तक पहुच गई। रास्ते मे पडने वाले देश हगरी, पोलैड, चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया आदि नाजी अधिकार से मुक्त हो गए। उधर पश्चिम और दक्षिण से ब्रिटेन व अमरीका की मिलीजुली फौजे भी बर्लिन की ओर बढी। फ्रास की सेना भी मुक्त हो कर बर्लिन मे जा घुसी।

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के साथसाथ जरमनी के वैभव और प्रतिष्ठा का भी अत हो गया। जरमन राष्ट्र का अस्तित्व खडित हो गया।

उसे अपार जनधन की हानि उठानी पडी। अनाथ बच्चो और बेवा स्त्रियो के रुदन से जरमन राष्ट्र कराह उठा।

युद्ध के बाद ब्रिटेन, फ्रास, रूस आदि विजेता राष्ट्र भी पस्त हो चुके थे। स्वीडन, स्पेन, पुर्तगाल और स्विट्जरलैड को छोड कर यूरोप के सभी राष्ट्रो की आर्थिक स्थिति बिगड गई। इटली तो पहले से ही कमजोर था, जरमनी को इस युद्ध ने विनाश के दरवाजे पर घायल कर के पटक दिया।

जरमनी की तब की हालत देख कर यह सोचा भी नही जा सकता था कि वह निकट भविष्य मे कभी उठ सकेगा। लेकिन सोचने या न सोचने से क्या होता है! जरमनी ने देखतेदेखते फिर करवटे लेनी शुरू कर दी, उस मे फिर चेतना आने लगी।

सन १९५० मे जब यूरोप गया था तब युद्ध समाप्ति के पाच वर्ष बीत चुके थे। जरमनी जाने का भी अवसर मिला। उस समय केवल ब्रिमेन और हबर्ग देख पाया था। इतना जरूर अनुभव हुआ कि जरमन लोग लगन के पक्के और कष्टसहिष्णु है। समय कम था इसलिए बर्लिन न जा सका। बमबारी से गिरे मकानो के मलबे उजडे़टूटे कारखाने, भीड मे विकलांग नागरिको और वहा के लोगो के सघर्षमय जीवन को देख मन खिन्न हो गया था।

बर्लिन पहली बार १९६१ मे गया और दूसरी बार १९६४ मे। द्वितीय महायुद्ध के दौरान बर्लिन के बारे मे तरहतरह की बाते सुनने और पढ़ने का मौका मिलता था, 'फॉल ऑफ बर्लिन' और 'लागेस्ट डे' आदि फिल्मे भी देखी थी, इसलिए अनजान शहर नही लगा। १९६१ मे बर्लिन की सडको पर पाव रखते ही मुझे ग्यारह वर्ष पूर्व हबर्ग के अपने एक मित्र मिस्टर जिगलर की बात याद आ गई। उन्होने कहा था, "आज आप जरमनी की यह दयनीय दशा देख रहे है लेकिन दस वर्ष बाद हमे ऐसा नही पाएगे।"

बात सच निकली। इस एक दशक मे जरमनी के कलकारखाने फिर से चालू हो गए और उस ने अपने सारे कर्ज भी चुका दिए। यही नही, अविकसित देशो को वह आर्थिक, औद्योगिक और तकनीकी मदद भी देने लगा।

जुलाई १९६४ मे कोपेनहेगन से हवाई जहाज से शाम के समय हम बर्लिन पहुचे। हवाई अड्डे आम तौर से शहर के किनारे या उस से कुछ दूर हुआ करते है लेकिन बर्लिन का एयरपोर्ट शहर के बीच मे है और यह हमारे लिए ताज्जुब की बात थी। चारो ओर ऊचीऊची अट्टालिकाए और बीच मे बहुत बडा हवाईअड्डा। हम ने ठहरने की व्यवस्था पहले से करा रखी थी। दस मिनट मे हम अपने होटल मे पहुच गए।

बर्लिन के लिए हमारे पास तीन दिन का समय था। इसी अवधि मे पश्चिमी और पूर्वी बर्लिन देखना था। जलपान कर के हम ने होटल के काउटर से शहर का नक्शा और गाइडबुक ले ली। कोपेनहेगन मे ही बर्लिन के निरामिष रेस्तोराओ का पता लिख लिया था। डोरैस्वामी के रेस्तोरा की सडक वगैरह के बारे मे रिसेप्शन से आवश्यक जानकारी ले ली।

गाइड यूरोप मे बहुत महगे है। वैसे पर्यटको की सुविधा के लिए हर बड़ेबडे होटलो की अथवा यात्री सस्थाओ की बसें चलती है।

अगरेजी, फ्रेंच और स्थानीय भाषाओ मे दर्शनीय या ऐतिहासिक स्थलो का परिचय देने के लिए इन बसो में गाइड रहते हैं। यह सुविधाजनक और सस्ता माध्यम है। हम ने अपने लिए बर्लिन देखने का यही उपाय चुना।

आम तौर से अगरेजी का प्रचलन यूरोप में अब भी कम ही है। हा, प्रथम महायुद्ध के बाद अमरीकी पर्यटको के कारण अगरेजी को कुछ महत्त्व जरूर मिल गया है। होटलो, क्लबों और दुकानों मे अगरेजी से काम चल जाता है।

हमारा होटल यहां के प्रसिद्ध राजपथ 'कुर्फर स्टेडम' के पास ही था। इसे पश्चिम बर्लिन का प्रमुख केंद्र कहा जा सकता है क्योकि बडीबडी दुकानें, शानदार होटल और रेस्तोरा इसी राजपथ पर है।

बर्लिन को आधुनिक योजनाबद्ध नगर नही कहा जा सकता। हवाई जहाज से देखते ही इस का आभास मिल जाता है।

मूलत यह स्प्री नदी के निकट एक टापू पर बसाया गया था। यही छोटी सी बस्ती आज का विकासमान बर्लिन है। अब तो यह नदी के दोनो किनारो पर बस गया है, जैसे टेम्स के दोनो ओर भव्य व आकर्षक लदन नगर बसा हुआ है।

बर्लिन घूमते समय मुझे बारबार जरमनो के देशप्रेम और अध्यवसाय का खयाल आ जाता था। द्वितीय महायुद्ध के दौरान इस ऐतिहासिक शहर का लगभग तीन चौथाई भाग भीषण बमबारी से नष्ट हो गया था क्योकि लाखो टन बम इस पर गिराए गए थे। उसी ध्वसावशेष पर आज का बर्लिन फिर मुसकरा रहा है।

लगता है जरमन हार कर भी हिम्मत नही हारते इसी लिए यह जाति अजेय है, हमारे मध्ययुग के राजपूतो की तरह।

अपनी बांहो मे हरियाली लिए प्रशस्त राजमार्ग, भव्य भवन और रगबिरगे फूलो से सजे उद्यानो को देख कर कल्पना भी नही होती कि जरमन अभी कुछ वर्ष पूर्व विनाश के गहरे गढ़े मे जा गिरे थे।

१९५० मे जब जरमनी आया था तो ब्रिमेन और हबर्ग की सडको पर बहुत से विकलांग लोग दिखाई पडते थे। युद्ध की यह स्वाभाविक परिणति थी। आज लगभग चौदह वर्ष बाद उसी जरमनी मे दिखाई दिए स्वस्थ पुरुष व स्त्रिया और सुर्ख गालो वाले हंसते हुए बच्चे। लगता था जरमनो ने दुखदारिद्रय को जीत लिया है, एक मजबूत नई पीढी नई स्फूर्ति, उत्साह के साथ उठ खडी हुई है।

हम पैदल ही सैर करने निकले। कुर्फर स्टेडम के उत्तरपूर्व से तूरगार्टेन नामक एक सुदर उद्यान है जो लगभग छ सौ तीस एकड जमीन पर फैला हुआ है। उद्यान के बीच मे बर्लिन कांग्रेस का भव्य हाल है। पास ही हम ने नए बर्लिन का हसा क्वार्टर देखा। यह स्थल बर्लिन का सामाजिक केंद्र बिंदु है। १४ राष्ट्रो के श्रेष्ठ स्थापत्य शिल्पियो ने इस का निर्माण किया है। इस अचल मे सुदर भवन, स्कूल और गिरजो का फिर से निर्माण किया गया है।

बाजार मे घूमते हुए देखा, एक से एक उम्दा और नायाब चीजे दुकानो मे सजी है। ग्राहको की सख्या भी कम नही थी। हम ने खरीदारी भले ही नही की पर विभिन्न दुकानो पर जा कर कई प्रकार की चीजे जरूर देखी। इटली या अन्य दक्षिण यूरोपीय देशो की तरह चीजे न खरीदने पर यहा के दुकानदार झुझलाते नही और न मुह बनाते है। बाजार मे घूमने पर साफ पता चल जाता है कि युद्ध से जर्जरित और खडित जरमनी ने पिछले बीस वर्षो मे उद्योग और शिल्प के क्षेत्र मे न केवल युद्धजनित हानि को ही पूरा किया है बल्कि आशातीत उन्नति और सफलता भी प्राप्त की है।

शायद दो घटे घूमे होगे, कुछ थकान सी महसूस होने लगी। मैं ने प्रभुदयालजी से कहा, "नजदीक के किसी रेस्तोरा मे चलना चाहिए।" मगर वह तो कम से कम खाने के पक्षपाती रहे है इसलिए उन के आदेश के अनुसार केवल एक स्क्वैश पी कर स्वामी रेस्तोरा की खोज मे

चल पडे। रात के नौ वजे जव हम वहा पहुचे तो देखते है कि एक छोटी सी दुकान मे रेस्तोरा है। रेस्तोरा मे कुछ भारतीय थे और थोडेवहुत यूरोपीय भी थे।

दक्षिण भारतीय इडली दोसे और साभर के दर्शन हुए, फलो का सलाद भी मिला, पर चार्ज वहुत अधिक था। गहरे श्याम वर्ण के स्थूलकाय मद्रासी वधु मिस्टर स्वामी से हम ने इस का जिक्र किया लेकिन द्राम कम करना तो दूर रहा वह तो यह भी मानने को राजी न हुए कि चार्ज ज्यादा है। उन की दलील थी कि निरामिषभोजी यहा बहुत कम हे, इसलिए ग्राहक कम और बिक्री भी कम। उन का तर्क था कि कम विक्री को देखते हुए जो कुछ चार्ज किया जा रहा है, वह सर्वथा उचित है। एक और भी जोरदार दलील उन्होने यह पेश की कि छ हजार मील दूर घर छोड कर वह परदेश मे रहते है और मद्रास से रसम तथा साभर के मसाले मगवाते हैं। ऐसी दशा मे यदि स्वदेश के ही वधु दामो की कटौती के लिए कहेगे तो मद्रास लौट जाना ही उन के लिए अच्छा रहेगा। उन की गरदन हिलाहिला कर मद्रासी अगरेजी मे दी गई दलील ने हमे निरुत्तर कर दिया। हम ने उन्हे आश्वासन दिया कि जब तक वर्लिन मे रहेगे, उन के रेस्तोरा मे भोजन करने अवश्य आएगे।

रात मे काफी देर से होटल लौटे। सडके नियोन के रंगविरगे प्रकाश मे चमक रही थी। वहलपहल और लोगो की बेफिक्री देख कर जरमन राष्ट्र की विकसित शक्ति का सहज अनुमान लग जाता था।

जुलाई का महीना था। हम क्योकि उत्तरी यूरोप से आ रहे थे इसलिए यहा कुछ गरमी सी लग रही थी। वैसे तापमान केवल ६० फारेनहाइट था जव कि इन दिनो हमारे यहा तापमान ११२-११५ फारेनहाइट हो जाया करता है।

दूसरे दिन सवेरे हमारे होटल मे प्रभुदयालजी के मित्र श्री डिटमार सपत्नीक मिलने आए। यहा के बारे में हमे उनसे बहुत कुछ जानकारी मिली। उन्होने बताया कि वर्लिन शीतयुद्ध का शहर है। यह एक प्रयोगशाला है जहा आमनेसामने पूजीवादी और साम्यवादी व्यवस्था को कसौटी पर कसा जा रहा है। जहा गणतन्त्र का परीक्षण वर्लिन के पश्चिमी भाग पर चल रहा है, वही पूर्वी बर्लिन मे साम्यवादी एकनायकत्व और शासन के अनुशासन के नाम पर फौजीतन्त्र है। उन्होने सकेत किया कि हमे दोनो भागो मे जा कर खुद देख कर निर्णय लेना चाहिए कि जनता किसे चाहती है और दोनो मे कोन सा प्रयोग सफल हुआ है। महायुद्ध के पूर्व लदन और पेरिस के वाद वर्लिन का स्थान था। जरमनी की राजधानी का गौरव तो इसे प्राप्त ही था, हिटलर का हेडक्वार्टर भी यही था। आज भी आम जरमन व्यक्ति, चाहे वह पश्चिम अचल का हो या पूर्वी, अपनी इस राजधानी को खडित देखना नही पसद करता। उस की मान्यता हे कि जरमनी का और जरमनी के साथ ही बर्लिन का भी एकीकरण अवश्य होगा, भले ही शीतयुद्ध के कारण कुछ विलव हो जाए।

हम ने उन से प्रश्न किया . जरमनी के इस विकास या पुनरुत्थान के पीछे कौन सा चमत्कार है ?

बडे ही सहज भाव से उन्होने कहा, "आत्मसम्मान की भावना हमारी जाति का नैसर्गिक गुण है। इस के कारण हम मे राष्ट्र के प्रति चेतना है और इसी ने हमे कष्टसहिष्णु वना दिया हैं। यही मूल कारण है जिस ने हमे फिर से जीवित कर दिया।"

पश्चिम जरमनी ने जो अर्थनीति अपनाई, वह अनुशीलन के योग्य है। उस ने अमरीकी सहायता पा कर हमारी तरह अधाधुध वडीवडी योजनाए नही वनाईं वल्कि मध्यमार्गी नीति को अपनाया। इस प्रकार की नीति को सोशल मार्केट इकोनामी कहते है। इसकी विशेषता यह है कि आर्थिक उन्नति के लिए कृषि, शिल्प और उद्योग का विकास इस प्रकार किया जाता है कि व्यक्ति और समाज दोनो का हित हो। रूस का साम्यवादी तन्त्र भी अव इसे समझने लगा है, भले ही स्वीकार करने मे सकोच करे। मध्यम मार्ग की अर्थनीति के अनुसार निजी सपत्ति और निजी प्रयासों के लिए हर क्षेत्र मे पूरी छूट है लेकिन यदि राष्ट्र का हित किसी विशेष

व्यवसाय या व्यापार में हो तो उसका राष्ट्रीयकरण तो किया जाता है . फिर भी व्यक्ति और समाज के हितो की अवहेलना नही की जाती ।

विषय को स्पष्ट करने के लिए उन्होने एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया, "युद्ध के कारण जरमनी मे मकान बुरी तरह ध्वस्त हुए और आवास की विकट समस्या पैदा हो गई । सोशल इकोनामी के अनुसार मकानो पर नियन्त्रण लग गया । किराया वढने नही दिया गया । सरकार ने आवास के लिए खुद मकान बनवाए और लोगो को मकान बनाने के लिए ऋण भी दिए । समस्या का वहुत कुछ समाधान हो गया । आज नगरो मे गदी वस्तिया नही मिलेगी । वैसे क्योकि आवादी तेजी से बढी है इसलिए कुछ दिक्कत अब भी है ।"

१६४६ मे यहा की आवादी साढे चार करोड थी, जो १८ वर्षो मे बढकर लगभग पौने छ करोड हो गई है । युद्ध के वाद पश्चिम जरमनी मे साठ लाख मकानो की जरूरत थी । इन वर्षो मे वहा करीव पचपन लाख मकान बन चुके हैं ।

जरमनी के आर्थिक विकास में यहा के मजदूर सगठनो का सहयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इन श्रमिक सघो ने देश की नाजुक स्थिति को देखते हुए तय कर लिया था कि औद्योगिक प्रगति के लिए वे विवाद सुलझाने के लिए हडताल या 'सुस्त काम' के घातक तरीके नही अपनायेगे । यही नही, शुरूशुरू मे तो केवल थोडी सी मजदूरी लेकर उन्होने अथक परिश्रम करके नष्ट हो चुके कारखानो को नया जीवन प्रदान कर दिया ।

मैंने मिस्टर डिटमार से कहा, "जरमनी के विकास के लिए सबसे बडी सहूलियत यह मिली कि १६५५ तक सेना पर कुछ भी व्यय करना नही पडा और इस समय भी आपका सेना पर खर्च दूसरे बहुत से देशो की अपेक्षा वहुत कम है । इसलिए आपने सारे धन और साधन को देश के नए सिरे से निर्माण मे लगा दिया ।"

मुसकराते हुए उन्होने कहा, "वहुधा विदेशो के लोग हमारे बारे मे ऐसा कहते है जब कि स्पष्ट है कि हार के बाद न तो हमारे पास धन बचा, न साधन । जिस रूर क्षेत्र में जरमनी को दो महायुद्धो के लिए धन और साधन दिए, उसे युद्ध के दौरान भीषण क्षति उठानी पडी । शत्रु के विमानो ने रूर का विनाश कर दिया, कलकारखाने और बस्तिया उजाड दी ।

"लोग कोसो चलकर चुकदर या आलू लाते और किसी तरह परिवार की गुजर करते थे । हालत यह हुई कि फ्रास रूर की खानो से कोयला निकालता और यूरोप के वाजारो मे बेचा जाता था । हमारे मजदूर कम मजदूरी पर टिके रहे । हमे इससे लाभ हुआ क्योकि हमारी खाने वद नही हुई । हमे मित्रराष्ट्रो को युद्ध के हरजाने की बडी रकम चुकानी थी । उसके बदले हमने कोयला और खनिज पदार्थ दिये । तनाव कम होता गया ।

"उद्योगो से विदेशी पावदी हटी और औद्योगिक प्रगति तेजी से हुई । इसका वहुत बडा श्रेय है हमारे अर्थ मन्त्री लुडविग एरहर्ड को । उन्होंने उद्योगों को बढाने के लिए हर प्रकार की सरकारी सहायता दी । पारस्परिक सहयोग से जरमन नागरिक छोटेछोटे शिल्पोद्योग शुरू करने लगे । कल तक वर्तनभाडे वेचकर जहा पेट पालना दूभर था, आज हमारा जीवन स्तर यूरोप मे स्वीडन के सिवा सबसे ऊचा है । हमारी राष्ट्रीय आय १६५० की तुलना मे १३ वर्षो मे ६० प्रतिशत बढी है । मजदूरो को भी इतनी वचत हो जाती है कि वे टेलीविजन सेट खरीद सकते है और छुट्टियो मे सैर करने निकल जाते है । अब तो वे मोटर भी रखने लगे है ।

हमने लक्ष्य किया कि यहा प्रत्येक व्यक्ति डटकर काम मे लगा हुआ है, वेकारी नही हैं । जरमन व्यवसायी महत्वाकाक्षी है और यही उनका सबसे बडा गुण है ।

मिस्टर डिटमार से बात करके हमें वडा सतोष हुआ । अगरेजो मे भी हमने स्पष्टवादिता देखी पर कुछ अहमन्यता के साथ । जरमनो की स्पष्टवादिता कुछ नम्रता भरी थी । शायद दो महायुद्धो मे हार के कारण यह परिवर्तन हुआ हो । शाम के भोजन का निमन्त्रण देकर दोनो ने विदा ली ।

हमने टूरिस्ट बस से शहर देखने के लिए टिकट ले रखी थी। बस से जाने वाले हम पच्चीसतीस यात्री थे। यात्रा से पूर्व गाइड ने सबको होटल के लाउज मे एक साथ बैठाकर बर्लिन का सक्षिप्त परिचय दिया ताकि शहर देखते समय समझनेबूझने मे सुविधा रहे। उसने जरमन, फ्रेंच औरअगरेजी,तीनो भाषाओ मे यात्रियो को समझाया। पहले भी हमने बर्लिन के बारे मे पढ रखा था। उसकी वातो मे विशेषता यह जरूर थी कि अपने शहर की तारीफ वह इस ढग और इस लहजे मे कर रहा था जैसे कोई रिकार्ड बज रहा हो। एक फ्रेंच यात्री बोल उठा। "मोशिए, अब हमे अधिक मत ललचाइए, चलिए अपनी स्वर्गपुरी के दर्शन करा दीजिए।"

लगभग नौ बजे रवाना हुए। बस की छत और चारों तरफ की खिडकिया शीशे की थी जिससे सभी दृश्य साफ-साफ दिखाई देते थे।गाइड के बैठने के लिए एक ओर ऊची सीट लगी थी। माइक से वह हमे जानकारी देता जा रहा था। लदन और पेरिस की तरह यहा भी बडेबडे बागबगीचे है। यूरोप के देशो मे अपनी राजधानी को सजीली और सुदर बनाने की होड सी मध्ययुग मे रहती थी। बिसमार्क और सम्राट विलियम केजर ने बर्लिन को अन्य राजधानियो से अधिक भव्य बनाने का प्रयास किया था। लेकिन भला इद्रपुरी पेरिस के वैभव और सुदरता के समकक्ष पहुच पाना कहा सभव था! हिटलर ने भी इसे बढाया किंतु उसकी प्रेरणा से बने मकान पार्टी और युद्ध के ख्याल से बनाए गए। ये बडेबडे है जरूर, पर कलात्मक अभिरुचि का इनमे स्पष्ट अभाव है।

टायर गार्टेन नामक बडे उद्यान से हमारी बस धीरेधीरे जा रही थी। इस बगीचे के बीच '१७ जनवरी' नाम की एक सडक जाती है, उद्यान के पश्चिमी किनारे पर १२५ वर्ष पुरानी एक पशुशाला है। १९४४-४५ मे यहा के बहुत से पशुपक्षी बमबारी मे मारे गए। बहुत बडी राशि व्यय कर दुर्लभ पशुपक्षियो को ससार के विभिन्न देशो से मगाकर इसे फिर से सजाया गया है।

यहा थोडी देर हम रुके। छोटेछोटे बच्चे मातापिता की उगलिया पकडे गौर से हाथी, गेडे, भालू आदि देख रहे थे। उनकी भाषा भले ही समझ मे न आ रही थी पर भाव स्पष्ट थे। कोई पूछता था, "कितना खाता होगा?" कोई अपनी नाक दिखाकर कहता था, "इसके जैसी बना दो!" हमारे साथ भी बच्चे थे। समय हो गया था इसलिए माताए पकडपकड कर उन्हें बस मे ले जाना चाहती थी और वे इधरउधर बच निकलते थे। आखिर हम लोगो को मदद करनी पडी। सभी देशो के बच्चे एक सरीखे चपल होते हैं। पीले हो या गोरे।

इसके बाद हम हसा क्वार्टर आए। पिछली रात पैदल यहा घूम चुके थे। डलहम म्यूजियम हमे हसा क्वार्टर के बाद दिखाया गया। यह सग्रहालय युद्ध के पहले विश्व का एक बेहतरीन म्यूजियम माना जाता था। बमबारी मे इसे बहुत क्षति उठानी पडी। फिर भी रेब्रा के २६ दुर्लभ चित्र किसी प्रकार बच गए। इनमे तीन दुर्लभ चित्र 'स्वर्ण बख्तर मनुष्य', 'डेनियल का स्वप्न' तथा 'सेम्सन' और 'दलाइला' भी है। रयूबन के भी १४ चित्र यहा है। ये सब केजर के निजी सग्रहालय से लाए गए है।

केवल इन्ही अद्वितीय कृतियो के कारण यह सग्रहालय आज अपने गौरव को बचा पाया है। इसके अलावा यहा की एक अमूल्य निधि है प्राचीन मिस्र की महारानी नेफ्रीतीती के मस्तक की प्रतिमूर्ति। तीन-साढे-तीन हजार वर्ष पूर्व मिस्र मे यह कलापूर्ण प्रतिमा बनाई गई थी। वैसे पत्थर की मूर्तिया भी मिली हैं पर वास्तविक चेहरे से एक-दम मिलती-जुलती इतनी पुरानी प्रस्तर-मूर्ति यही मिली है। हमारे यहा बाइसतेइस सौ वर्ष पहले की बनी गौतम बुद्ध की अनेक मूर्तिया मिल जाती है पर वे वास्तविक प्रतिमूर्ति है या नही, इसका निर्णय नही हो सका है।

हवेल नदी के किनारेकिनारे ग्रेनवाल के राजपथ से गुजरती हुई हमारी वस ओलपिक स्टेडियम पहुच गई। १९३६ के विश्व की क्रीडा प्रतियोगिता के लिए इस का निर्माण हुआ था। १६ मजिलो की ऊचाई के विशाल स्टेडियम मे एक लाख से भी अधिक दर्शको के वैठने के लिए स्थान है। रेस्तोरा, विश्रामकक्ष, पुस्तकालय, वाचनालय तथा अत्य सुविधाए भी यहा उपलब्ध है।

स्टेडियम से थोडी दूरी पर हम एक कृत्रिम पहाडी पर पहुचे। मन मे एक कुतूहल सा हुआ कि राजस्थान की तरह यह धूल का टिब्वा इस हरियाली के बीच कैसे बना ? गाइड ने वताया, "१९४० के अगस्त से १९४५ के अप्रैल तक मित्रराष्ट्रो ने वर्लिन पर साढे बाइस लाख मन बम गिराए। इस के अलावा १९४५ अप्रैल के सिर्फ दस दिनो मे जब नाजी विमानभेदी तोपे ठडी हो चुकी थी, सोवियत रूस ने ग्यारह लाख मन वम वरसा कर सारे देश को तहसनहस कर दिया। रूस ने स्टालिनग्राद के युद्ध का वदला इस ढग से चुकाया। इस मे वेगुनाह नागरिको की जाने गई और अस्पताल, स्कूल, पवित्र गिरजे तथा ऐतिहासिक स्मारक नष्ट हो गए। पता नही कम्युनिस्ट तत्र का यह कौन सा मानवतावादी तरीका था।"

गाइड की आवाज मे व्यग्य तीखा था। उस ने कहा कि गिरजो, मकानो, अस्पतालो आदि के नष्ट होने पर जो मलवा वचा, उस मे से कुछ को यहा इकट्ठा कर के रख दिया गया है। युद्ध की विभीषिका और अभिशाप का यह प्रत्यक्ष नमूना है। यह द्वेष, घृणा और स्वार्थ की मानव निर्मित पहाड़ी है जिसे देख कर खुद मानवता कराह उठती है। फ्रेंच यात्री ने कहा, "पोलेंड और स्टालिनग्राद मे जरमनो ने कौन सी कमी रखी।"

दोपहर हो गई थी। लच के लिए हमे फिर अपने होटल वापस आना पडा।

भोजन और कुछ देर विश्राम के वाद फिर उसी बस से घूमते हुए करीब तीन बजे हम यहा का विजयस्तभ देखने पहुंचे। २१० फुट ऊचा यह स्तभ १८७० मे फ्रास पर जरमनी की विजय की स्मृति मे बनाया गया था। हम इस के ऊपर चढे। लगभग सारा वर्लिन यहा से दिखाई देता है। १९३३ मे हिटलर द्वारा जलाई गई राइख चासलरी भी दिखाई पडी। पूर्वी वर्लिन की हलकी सी झांकी भी यहा से देखने को मिल जाती है।

हम जुलाई के दूसरे सप्ताह मे यहां आए थे। उस समय तक ग्रीन वीक समाप्त हो चुका था। जून में यहा ग्रीन वीक यानी 'हरित सप्ताह' का मेला लगता है। इस मेले मे जरमन किसान अपनी उपज के वेहतरीन नमूने पेश करते है। कृषि की उन्नति कैसे की जाए, इस के लिए विभिन्न यत्र और साधनो की प्रदर्शनी लगती है। गाइड ने हमे जरमनी की कृषि योजना का परिचय दिया, जो तथ्यो पर आधारित था। उस ने बताया कि यहा चलाई गई योजना के अनुसार छोटेछोटे रकबो को मिला कर वडा किया गया है। इस से यात्रिक कृषि मे अधिक सुविधा हो गई है और उपज भी बढाई जा सकी है। आज पश्चिम जरमनी अपने खाद्यान्नो के लिए आत्मनिर्भर है। अव तो अन्न और कृषि की अन्य वस्तुओ का निर्यात भी यहा से हो रहा है। फलो की खेती भी खूब वढी है।

उत्सवो का ब्योरा देते हुए उस ने वताया कि कला उत्सव सितवर मे मनाया जाता है। इस अवसर पर नाना प्रकार के वाद्ययत्रो का वादन, गीत और नाट्य रूपको का आयोजन होता है। विदेशो से लाखो की सख्या मे लोग आते है।

गाइड विश्वप्रसिद्ध सगीतकार मौजर्ट और वेगनर की खूबिया वता रहा था। उस की वातो मे रस जरूर रहा होगा पर हम इस विषय मे कोरे थे। एक सहयात्री ने, जो शायद अमरीकी था, स्टेट लाइब्रेरी और राइख चासलरी दिखाने के लिए कहा। लाइब्रेरी प्रोग्राम मे थी ही नहीं इसलिए हम केवल चासलरी देखने गए।

गाइड ने बताया कि ससार के इतिहास मे जघन्य अपराध का शायद ही ऐसा कोई दूसरा दृष्टात मिले कि देश का सर्वोच्च शासक खुद अपने ही सचिवालय को भस्मसात करा दे।

जनवरी सन १९३३ मे हिटलर चासलर चुना गया और ठीक एक महीने बाद यानी २९ फरवरी को उस ने अपने नाजी गुप्तचरो के जरिए चासलरी के भव्य प्रासाद को खाक में मिलवा दिया, ऊपर से ढिढोरा पीटा कि साम्यवादियो की साजिश से यह दुष्कर्म हुआ है। इस प्रकार उस ने जरमनी की साम्यवादी पार्टी को अवैध करार दे दिया और नाजी पार्टी के प्रति जरमन जनता का मन जीतने का प्रयास किया।

चासलरी को देखने पर लगता है कि यह कार्यालय दिल्ली के हमारे सचिवालय से भी बडा रहा होगा। इस की कराहती हुई टूटीफूटी अधजली दीवारे आज भी अपने अतीत की गरिमा बताती है। शायद स्मृति बनाए रखने के लिए ही इसे इसी हालत मे छोड रखा गया है।

शाम को हम लोग होटल वापस लोटे। लाउज तक पहुचा कर गाइड ने शिष्टतापूर्वक विदा ली। हम ने देखा कि हमारे कुछ साथी गाइड को स्वेच्छा से कुछ भेट कर रहे है। हम ने भी एकएक मार्क (दो रुपए) दिया।

थकान मिटाने के लिए काफी मिली। आम तोर से यहा बिना दूध और चीनी के काफी पीते है। हम ने भी कोशिश की मगर गले मे जलन और मुह मे कडवाहट भर गई। काफी से भी ज्यादा यहा बीयर पीने का प्रचलन है। दरअसल बीयर को तो लोग पानी की तरह पीते है। करीब एक रुपए मे एक बोतल अच्छी बीयर मिल जाती हे। पुरुष, स्त्रिया, छात्र, मजदूर सभी पीते है। दूसरे देशो की अपेक्षा बीयर की खपत प्रति व्यक्ति यहा कही अधिक है।

रात्रि मे मिस्टर डिटमार के साथ रेस्तोरा मे भोजन करने गए। पतिपत्नी दोनो अगरेजी जानते थे इसलिए बातचीत और विचारो के आदानप्रदान मे कठिनाई नही हुई। इन देशो मे निमत्रण पर भोजन का अर्थ है दोढाई घटे का कार्यक्रम। मीनू के अनुसार एक के बाद एक तश्तरी आती हे और साथ मे नाना प्रकार के पेय भी चलते रहते है। खाने की टेबल पर ही व्यापारव्यवसाय, राजनीति, प्रेमविवाह आदि के महत्त्वपूर्ण मसले तय हो जाते हे।

हम जरमनी के बारे मे और भी जानना चाहते थे। मै ने श्रीमती डिटमार से जानना चाहा कि महायुद्ध का परिणाम यहा की जनसख्या पर अवश्य पडा होगा, स्त्रियो की सख्या पुरुषो से बढ गई होगी।

उन्होने बताया कि यह युद्धो की स्वाभाविक प्रक्रिया होती है। १९४६ मे प्रति हजार पुरुषो पर ११६ स्त्रिया अधिक थी पर इन अठारह वर्षो मे जनसख्या बढी है और असतुलन अब कम हो गया है। उन से जानकारी मिली कि वे लोग अब परिवार नियोजन पर भी ध्यान देने लगे है। पिछली शताब्दी मे औसत जरमन परिवार में पाच सदस्य होते थे, जब कि आज औसत केवल साढे तीन सदस्यो का है।

जरमनी मे हमारे यहा की तरह स्त्रीपुरुषो के पारस्परिक मेल पर सामाजिक प्रतिबंध नही हे बल्कि युद्ध के बाद कुछ समय तक तो उसे प्रोत्साहन दिया जाता रहा। वहा विवाह योग्य अवस्था पुरुषो के लिए चौबीसपचीस वर्ष है और स्त्रियो के लिए बाइसतेइस वर्ष। स्वेच्छा से विवाह होते है और तलाक की सुविधा है फिर भी जरमनी मे पारिवारिक व्यवस्था सुगठित है। हाल मे जो सर्वे हुआ उस के अनुसार दस हजार व्यक्तियो मे से केवल पैतालिसपचास तलाक के लिए न्यायालयो मे आए।

जरमनो का दैनिक जीवन नियमित है। सुबह आठ बजे तक लोग घर से काम पर चले जाते हैं। इस से पूर्व गृहिणी नाश्ता तैयार कर लेती है। नाश्ता साथ ले जाते है। बच्चो का स्कूल या किंडरगार्टन, यदि रास्ते मे पडा तो पिता या माता स्कूल मे छोडते जाते है। शाम को पाच बजे काम से लौटने पर साथ ले आते है। दसग्यारह वर्ष तक के छोटे बच्चो को रात के सातआठ बजे तक सुला दिया जाता है। बच्चो के स्वास्थ्य के लिए यह परपरा अच्छी लगी। इतवार या छुट्टी का दिन त्यौहार की तरह आमोदप्रमोद, सैरसपाटे मे बीतता है। वृद्ध

मातापिता,अलग रहते है। उन्हे सरकारी पेशन मिलती है। आठदस दिन मे वे एक बार अपने परिवार के लोगो से मिलने चले जाते है। बहुत वृद्ध हो जाने पर वृद्धालयो मे चले जाते है।

जरमन मुद्रा के बारे मे पता चला कि विश्व के किसी भी देश के मुकाबले मे मार्क की साख कम नही है। कारण यह कि जरमनी का बजट सतुलित है। आयात से निर्यात अधिक है। उद्योगधधे इतने अधिक है कि उनके लिए जरमन श्रमिक पूरे नहीं पडते। लगभग ढाई लाख विदेशी मजदूर जरमनी के कारखानो मे काम पर लगे हुए है। अलगअलग कामो के लिए मजदूरी मे फर्क जरूर है फिर भी प्रत्येक को लगभग पदरह सौ रुपए से अठारह सौ रुपए तक प्रति मास मिल जाते है। खाद्य सामग्री और देशो की अपेक्षा सस्ती है। फलदूध, मासमछली की वहुतायत है। हम ने आकडो के अनुसार देखा कि जरमनी मे प्रत्येक व्यक्ति को लगभग सवा सेर दूध, आठ औस मास या मछली, चार औस चीनी प्रति दिन मिल जाती है। हम अपने देश मे तो इन सारी सुविधाओ की कल्पना भी नही कर सकते। रात साढे ग्यारह बजे तक डिनर चलता रहा। इस के बाद वे अपनी गाडी मे हमे होटल पहुचा गए।
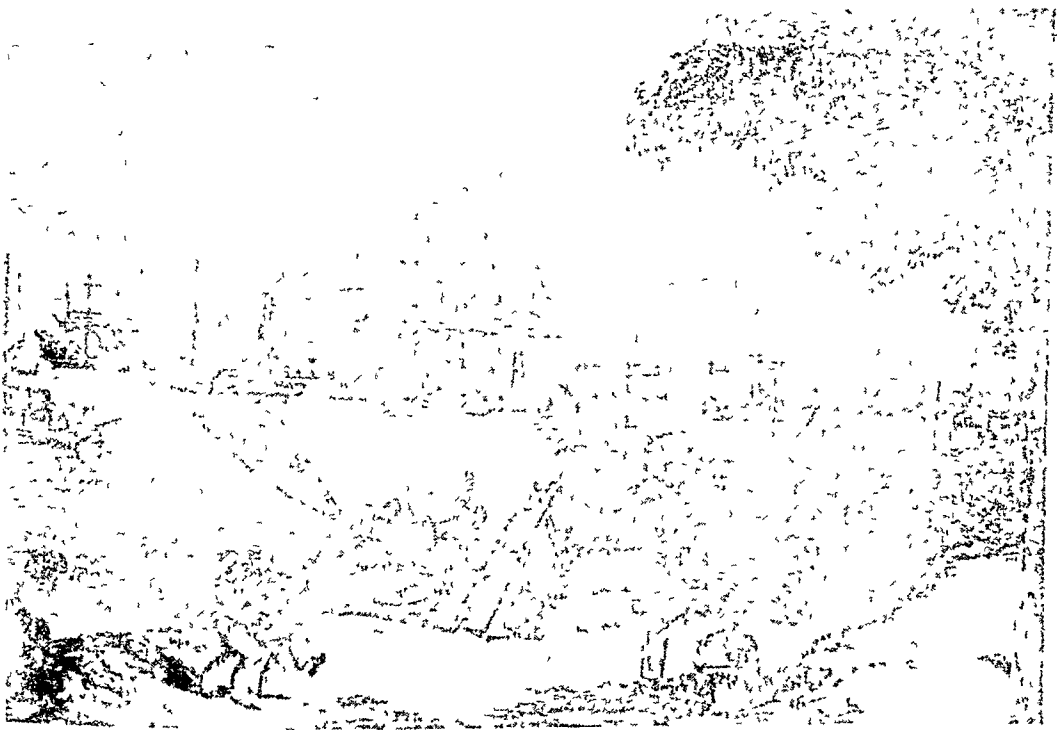
दो विरोधी शक्तियों के राजनीतिक दांवपेच की कसौटी........

बर्लिन

अगले दिन सुबह नास्ता कर के हम लोग पूर्व बर्लिन के लिए रवाना हुए। पश्चिम जरमनी के नागरिको के प्रवेश पर वहा कडा प्रतिबध है पर अन्य देशवासियो के लिए नही। पासपोर्ट और वीसा दिखाने पर अनुमति मिल जाती है। भारत और सोवियत रूस के आपसी सबध अच्छे रहे है इसलिए हमारे लिए अडचन का सवाल ही नही था, फिर भी पश्चिम बर्लिन से आने वाले शाम के ८ बजे तक ही रुक सकते है, उस के बाद उन्हे वापस चला जाना पडता है।

मेरे मन मे एक कुतूहल था, आज की बहुप्रचलित दो प्रमुख अर्थव्यवस्थाओ—साम्यवाद और पूजीवाद—की सफलता और परिणाम को प्रत्यक्ष देखने का अवसर मिल रहा था। बर्लिन के अलावा ऐसा अवसर विश्व मे अन्यत्र कही भी उपलब्ध नही है।

बर्लिन वास्तव मे पूर्व जरमनी की ही राजधानी है, जब कि पश्चिम जरमनी की राजधानी है बोन। यह पूर्व जरमनी के मध्य भाग मे है। पश्चिम जरमनी की सरहद से लगभग सौ मील दूर। सन १९४८ मे रूस ने बर्लिन मे बाहर से माल आने पर रोक लगा दी थी।

उस समय एक बार तो वहा निराशा और घबराहट फैल गई क्योकि बीस लाख व्यक्तियो के जीवनमरण का सवाल था। पर उन करीब ग्यारह महीनो मे अमरीका तथा मित्र राष्ट्र सोलह लाख टन खाद्यान्न तथा दूसरे जरूरी सामान हवाई जहाज द्वारा यहा लाए। उस समय अनेक प्रकार की कठिनाइया बर्लिनवासियो ने सही। पर केवल चार प्रति शत लोगो ने पूर्व बर्लिन से राशन लिया।

उस एक वर्ष मे अमरीका को १३० करोड रुपए सामान लाने के लिए खर्च करने पड़े। जब किसी प्रकार समझौता सभव नही हुआ तब मित्र शक्तियो ने सोवियत गुट के देशो के माल के आवागमन पर प्रतिबध लगा दिया। तब जा कर सयुक्त राष्ट्रसघ के बीचबचाव से घेरा उठाया गया पर फिर भी छुटपुट झझट चलते ही रहे। राजनीति के इन दावपेचो ने बर्लिन को कसौटी बना दिया है। हम ने देखा कि गणतत्रीय व ससदीय व्यवस्था शहर के पश्चिम भाग का इन २० वर्षो मे बहुमुखी विकास करने मे सफल रही है।

दूसरी ओर जो साम्यवादी यह दावा करते हुए नही थकते कि उन की व्यवस्था ही मानव के कल्याण का एकमात्र निदान है, तो आज तक वहा बारह लाख नागरिको के जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति नही कर पाते। इसी लिए जान जोखिम मे डाल कर भी वर्षो तक पूर्व

बर्लिन से भाग कर पश्चिम मे आते रहे है। बर्लिन के सीने पर दोनो के निशान उभर रहे है। प्रत्यक्ष देखने पर खरेपन का खुद ही अदाज हो जाता है।

दोनो बर्लिन के बीच की दीवार के पास हम पहुचे ही होगे कि हमे कुछ तनाव का सा वातावरण मिला। लोगो की शक्ल पर चिंता दिखाई पडी। कइयो ने यह भी बताया कि उस पार जाना आज शायद न हो।

मेरे मन मे एक सरसराहट सी हुई। प्रभुदयालजी के मना करने पर भी मैं ने दलील दी कि हमारे लिए भय की कोई बात नही है। लोगो के कामकाज ठीक है। सभी चलफिर रहे है। ऐसी स्थिति मे खतरे का अदेशा नही है। फिर हम तो भारतीय नागरिक है, जिन्हे कई बार पूर्वी यूरोपीय देश विभिन्न जलसो मे बुलाते रहते है।

हम फीड्रिश स्ट्रेशे से दीवार की ओर बढे। दीवार के करीब आने पर हमें पश्चिम बर्लिन के प्रहरियो ने रोका। एक पुलिस वाले ने बताया कि पिछली रात दीवार का एक हिस्सा पूर्व बर्लिन से भागने की कोशिश करने वाले किसी व्यक्ति ने बम से उडा दिया है। रूसी सैनिक अधिकारियो का आरोप है कि पश्चिम बर्लिन के अधिकारी वर्ग की साजिश है कि इसी तरह समूची दीवार गिरा दी जाए। यह जरमन साम्यवादी सरकार के सार्वभौम अधिकार पर गहरी चोट है जिसे बरदाश्त नही किया जा सकता। इस का प्रतिकार होगा, हरजाना लगेगा। जो व्यक्ति बम के धडाके से मरा है उस के लिए क्षतिपूर्ति करनी होगी आदिआदि। इस के पहले ख्रुश्चेव ने अमरीका तथा दूसरे राष्ट्रो को कई बार कडी चेतावनी भी दी थी। और यहा तक प्रचार किया गया था कि पूर्व बर्लिन से जाने वाले पुरुषो से तो गुलामो की तरह काम लिया जाता है और महिलाओ को वेश्यालयो मे भेज दिया जाता है।

मेरी समझ मे भाषा नही आ रही थी पर लोग साराश बता देते थे। प्रभुदयालजी कोट का पल्ला बारबार खीच कर वहा से हटने के लिए इशारा कर रहे थे, मगर मुझे छोड कर खुद हटना भी नही चाहते थे। मैं सोचने लगा कि पश्चिम जरमनी से इतनी दूर बर्लिन के पश्चिम भाग के इन मुट्ठी भर सैनिको का तो मिनटो मे सफाया हो सकता है। [illegible] ने की गुजाइश भी कहा ? भागेगें भी तो साम्यवादी इलाका ही चारो ओर है। इतने में देखा, एक अमरीकी अफसर खाली हाथ अकेले ही दीवार की ओर बढ रहा है। वह ठीक वही पहुचा जहा उस पार मचान पर से रूसी अफसर माइक से गरज रहा था। उस ने क्याक्या बाते की, सुन नही पाया। लेकिन हावभाव से पता चला कि बड़ी सजीदगी से वह कुछ समझा रहा था। थोडी देर बाद देखा रूसी संगीने झुक गई। वह अफसर मुसकराता हुआ लौट रहा था नाटो सधि के कारण पश्चिम जरमनी अमरीकी गुट मे है। सोवियत रूस ने पूर्व जरमनी और बर्लिन से अपनी सेना नही हटाई है, इसलिए बर्लिन की सुरक्षा और जरमन सघीय सरकार (पश्चिम जरमनी) के सहयोग के लिए अमरीकी फौजी दस्ता इस समय तक भी यहा रखा गया है।

आवागमन पूर्ववत चलने लगा। मै सोचने लगा कि सचमुच ही बर्लिन शीतयुद्ध के बारूद के एक ऐसे अंबार पर बैठा है, जो जरा सी चिनगारी से भडक उठेगा और तब तृतीय विश्वयुद्ध हो जाना कोई आश्चर्य की बात नही। अमरीका और रूस दोनो ही यहा हर घडी टकरा सकते है। दोनो की प्रतिष्ठा और मर्यादा बर्लिन के मसले मे दाव पर लगी है, कोई झुकने या हटने वाला नही लगता।

हम ने देखा कि दीवार की पश्चिमीओर चौडी, उजडी और वीरान पट्टी है। इस मे झाडिया उगी है। बीचबीच मे सलीबे (क्रास) भी है। ये उन लोगो की यादगार है, जिन को पूर्वीय भाग से भागने की कोशिश करते समय रूसी प्रहरियो ने गोली से उडा दिया था। दीवार के करीब जगहजगह रेस्तोरा और छोटीछोटी दुकाने भी देखने मे आई। हमारे यहा मदिरो के आसपास काशी, प्रयाग, हरिद्वार मे जैसे महात्म्य की सचित्र पुस्तके मिलती है।

उसी तरह की किताबे यहा भी मिलती है, जिन मे इस दीवार का इतिहास रहता है और तसवीरे भी ।

बर्लिन की दीवार को देख कर लगता है कि आज का सभ्य कहलाने वाला मनुष्य कितना जगली और वर्बर है ! इस के बनाते समय आसपास की खूबसूरत इमारते या उन के हिस्से गिरा दिए गए और वहा भोडे आकार के भूरे पत्थर चिन दिए गए । कहीकही तो मकानो के दरवाजो और खिडकियो मे पत्थर लगा दिए गए है । ऊचे मचान जगहजगह बने है । इन पर रातदिन मशीनगन साधे सोवियत प्रहरी डटे रहते है । दूरवीन, सर्चलाइट, लाउडस्पीकर इस ढग से फिट है कि कोई चिडिया भी यदि पूर्व से पश्चिम की ओर वढे तो पता चल जाता है—आदमी की बात ही क्या ! फिर भी मुक्तिकामी प्राणो की वाजी लगा कर दीवार फादने की चेष्टा करते है । दीवार के पास कही टैक है और कही सैनिको की टुकडिया । कानून इतना कड़ा है कि बढता हुआ व्यक्ति यदि 'हाल्ट' कहने पर रुक न जाए तो उसे वही गोली से उडा दिया जाता है । फिर भी पिछले १० वर्षो मे लगभग वीस लाख व्यक्ति दीवार फाद कर पश्चिम हिस्से मे आ गए है ।

युद्ध के बाद जरमनी की वदरबाट हुई । इस का लगभग एकतिहाई भाग सोवियत रूस ने दबा लिया, जिस मे १ ०८ लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल और डेढ करोड की आबादी थी । पश्चिम जरमनी के २ ४८ लाख किलोमीटर क्षेत्रफल और पाच करोड की आबादी के दोतिहाई भाग के हिस्सेदार बने अमरीका, ब्रिटेन और फ्रास । इसी तरह जरमनी की राजधानी—बर्लिन के टुकडे हुए । मित्र राज्य तो अव हट चुके है किंतु रूसी अभी तक जमे है । उन्हे भय है कि साम्राज्यवादी शक्तिया पूर्व जरमनी को हडप न जाए ।

जो भी हो जरमनी और खास कर के बर्लिन के इस बटवारे से बडी समस्याए पैदा हो गई । बाप्मा एक ओर तो बेटेबेटी दूसरी ओर । दोस्तमित्र, प्रेमीप्रेमिका सभी बिछुडे । आज वह एक ऐसा शहर है जिस मे परिवार बटे है, पानी और बिजली बटी है, होटल, रेस्तोरा, थिएटर, सिनेमा बटे है, प्रशासन भी बटे है । खडी है बीच मे भद्दी, मोटी, पत्थर की काटो वाली दीवार । पार करना तो दूर है, पास जाने मे भी भय लगता है ।

युद्ध के बाद जरमनी के दोनो भागो मे ठीक उसीतरह तनाव है जैसा भारत और पाकिस्तान मे । पश्चिम भाग की प्रगति तीव्र रही । उस की आर्थिक समस्याए सुधरती गई । किंतु पूर्व भाग मे विकास का क्रम मद रहा है । रूस उन वर्षो मे स्वय युद्ध जर्जरित था इसलिए उस ने इस की उपज से उचितअनुचित तरीको से लाभ उठाया । सभवत यह भी एक कारण हो सकता है ।

पश्चिम जरमनी के शिल्पोद्योग की प्रगति, आर्थिक सुदृढता और जीवन ने साम्यवादी व्यवस्था मे रहते हुए लोगो को स्वाभाविक रूप से आकर्षित किया। परिणाम यह हुआ कि पूर्व जरमनी से प्रति दिन हजारो की सख्या मे लोग पश्चिम बर्लिन पहुचने लगे । फलत पूर्व जरमनी मे कारीगर, मजदूर और विज्ञानविदो का अभाव हो गया, उस के कलकारखाने ठप्प होने पर आ गए । इसलिए इस बाढ को रोकने के लिए सोवियत रूस ने शहर के बीचोबीच खडी कर दी बर्लिन की दीवार ।

सन १९६२ के आरभ मे सोवियत नियत्रित पूर्व जरमन अधिकारियो ने योजना बनाई कि विभाजन के अनुसार सरहद पर ३३८ मील लबी एक दीवार बना दी जाए ताकि लोग भाग कर पश्चिम हिस्से मे न जा सके । सन १९६२ के अत तक दीवार बनी । ओसत ऊचाई सात फुट है, कहीकही इस से भी ऊची । बीचबीच मे लगभग सोलह फुट खुली जगहे भी है, जिन मे काटो के तार लगे है । पश्चिम बर्लिन के आसपास जहा तालाब और झीले है उन मे नावो पर खूटे लगा कर कटीले तार लगा दिए गए है और इन पर मशीनगनें बैठा दी गई है ।

जरमनी के शरणार्थियो के बारे मे जो आकडे मिले है उस के अनुसार सन १९६१ तक २३.१० लाख शरणार्थी पश्चिम जरमनी मे भाग आए थे। इन में विद्यार्थी, डाक्टर, इजीनियर और प्रोफेसर तो थे ही पर आश्चर्य हुआ यह जान कर कि हजारो साम्यवादी सैनिक भी भाग कर पश्चिम जरमनी मे आ गए। यह सिलसिला अब भी जारी है।

औद्योगिक या आर्थिक प्रगति का अदाज इसी से चल जाता है कि पश्चिम जरमनी का वार्षिक आयातनिर्यात है २०,५०० करोड रुपयो का, प्रति व्यक्ति वार्षिक आय है लगभग दस हजार रुपए, जब कि पूर्व जरमनी का है, ३,७४० करोड का और प्रति व्यक्ति वार्षिक आय है तीन हजार रुपए के लगभग। भारत मे प्रति व्यक्ति की आय है ३४० रुपए वार्षिक।

पूर्व बर्लिन मे प्रवेश करते समय हम ने देखा कि हमारी तरह साठसत्तर अन्य लोग भी धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कर रहे है। इन मे अमरीकी, फ्रासीसी, चीनी, अफ्रीकी, अरब आदि भी थे।

जाच की रस्म बड़ी कडी थी। यूरोपीय विशेपत जरमनो के पासपोर्ट की जाच बारीकी से की जा रही थी। इस के लिए खुर्दबीन तक काम मे लाया जाता था। चौकी से आगे बढ कर हम दीवार के पार आ गए। अब जरमन साम्यवादी भूमि मे हमारे कदम थे। घूसते ही लगता था कि हम किसी और दुनिया मे आए है। कई प्रकार की प्रचार सामग्री हमे दी गई, जिस मे साम्यवादी सरकार की प्रगति का ब्योरा था। इन पर विदेशी अतिथियो की सम्मति भी दी गई थी।

शाम को आठ बजे तक का समय था। अतएव शहर को वस से व पैदल घूम कर देखने का निश्चय किया। यहा के प्रसिद्ध राजमार्ग अडेनडेन लिडेन को देखा। कहा जाता है कि युद्ध के पूर्व यह बहुत ही शानदार था, दोनों ओर बडेबडे मकान थे और छायादार वृक्षो की कतारे थीं। बमबारी से ध्वस हो गया था। जिस तेजी से पश्चिम बर्लिन ने स्वय को खडहर से निकाल दिया है, वैसा यह भाग नही कर पाया है। सडको को सवारने की चेष्टा जरूर की गई है पर कसर अब भी काफी है। बर्लिन की प्रसिद्ध सस्थाए इसी अचल मे रह गई है। स्टेट लाइब्रेरी, आपेरा, हिटलर का दफ्तर, हमबोल्ट विश्वविद्यालय इत्यादि।

यहा घूमते समय लगता है कि पश्चिम बर्लिन की तरह गति, कहेकहे, आनद और उल्लास की झलक लोगो की शक्लो पर नही दिखती। ऐसे वातावरण मे पर्यटक का उत्साह ठडा पड जाता है।

विलहेल्म स्ट्रासे पर चासलरी देखने गए। हिटलर के समय मे यह उस का हेडक्वार्टर था। उस ने इसी तहखाने मे आत्महत्या की थी। बमबारी और गोलियो की बोछार के चिह्न और मलबे के ढेरो को देख कर मन मे स्वत एक भावना उठ जाती है कि हजारो वर्ष जीवित रखने की महत्त्वाकाक्षा के तृतीय राइस को हिटलर ने शक्ति, वैभव और गौरव के सर्वोच्च शिखर पर चढा दिया, और फिर उसे ऐसा खीचा कि वह गहरे गड्ढे मे जा गिरा—खडित और श्रीहीन।

हिटलर के बारे मे युद्ध के दिनो मे हमारे यहा बडो भ्रात धारणाए फैली थी। वह बाल ब्रह्मचारी है, निरामिष भोजी है, उस मे तप ओर तेज है इत्यादि। बाद मे पता चला कि परले सिरे का भोगी और क्रोधी था वह। पढालिखा बहुत साधारण था। इसी राइख के तहखाने मे उस ने आत्महत्या के एक घटा पहले अपनी प्रेयसी इवा ब्राडन से विवाह किया। उस समय बाहर रूसी तोपे लोहे की मोटी चद्दरो से मढी, इसकी दीवारो पर मौत के नगाडे बजा रही थी। इसी मे अलग तहखाने मे उस का अनन्य भक्त गोयबल्स विष की गोलिया खा कर सदा के लिए सो चुका था। रूसी सैनिक राइख के तहखाने मे घुसे तब आग मे हिटलर की लाश जल चुकी थी।

राइख के पास ही मार्क एजेल्स प्लाजा है। यहा बडेबडे प्रदर्शन और रैली के आयोजन

हुआ करते है। ऐतिहासिक स्थान, लाइब्रेरी, विश्वविद्यालय सडक—सबो के नाम यहा बहुत कुछ मार्क्स, एजेल्स, लेनिन और स्टालिन पर हो गए है। मगर स्टालिन के मरते ही ख्रुश्चेव द्वारा उठाई गई विरोध की लहर मे उस का नाम सोवियत भूमि और उस के अधिकृत देशो मे मिटाया जाने लगा। पूर्व जरमनी और पूर्व र्बालिन मे भी यही चल रहा था।

फ्राक फुर्टर एली, लगभग तीन मील लबी सडक है। यही एकमात्र राजपथ है, जिस पर सोवियत अधिकारियो की नजर गई है। चौडी सडक के दोनो ओर वृक्षो की कतारें है। हलके पीले रग के बडेबडे मकान रूस के युद्धोत्तर वास्तुशिल्प का परिचय देते हैं। इस का नाम बदल कर स्टालिन एली रखा गया था, पर सन १९६१ मे कार्लमार्क्स एली कर दिया गया है।

घूमतेफिरते एक रेस्तोरा मे हम कुछ जलपान के लिए पहुचे। काफी और सेंडविच ली। दाम पश्चिम से ज्यादा थे। अगर अनधिकृत तरीके से सिक्के बदल लेते तो किफायत तो जाती, पर साम्यवादी देशो मे इस प्रकार का खतरा मोल लेना बहुत महगा पड़ता है। वहा पर जरमन, रूसी, फ्रासीसी और दोएक चीनी भी दिखाई पडे। घूमते समय हमे स्थानीय किसी भी व्यक्ति से चर्चा करने का सुयोग नही मिला। सभव भी नही था, क्योकि इस पार की दुनिया लोह दीवार का देश है। मन मे उत्सुकता थी कि इस पार रहने वाला जरमन मिल जाता।

एक आकर्षक लडकी ने वडी सजीदगी से पास की खाली कुरसी पर बैठने की अनुमति मागी। मै ने कहा, 'खुशी से।'

उस ने बियर के लिए आर्डर दिया फिर बदल कर कहा, "अच्छा, काफी ले आओ।"

"शायद आप दोनो भारतीय या पाकिस्तानी है," उस ने साफ अगरेजी मे कहा। बातचीत का सिलसिला चल पडा। उस ने जानना चाहा कि कैसा लगा पूर्व र्बालिन।

मै ने अपने मन की प्रतिक्रिया बता दी कि उतना आकर्षक और उल्लासपूर्ण नहीं जितना कि पश्चिम र्बालिन है। मैं ने उसे यह भी बताया कि हमारी धारणा है कि पूर्व जरमनी की शासन सत्ता पूर्णत सोवियत रूस के हाथ मे है, इसी लिए यहा की सरकार मे केवल साम्यवादी हैं।

फ्राउ (युवती) ने हमे जानकारी दी, "यहा साम्यवादियो का प्रभाव अवश्य अधिक है पर कई सरकारी पदो पर गैर साम्यवादी भी है। रूस की तरह दल का सदस्य होना यहा आवश्यक नही।"

"पूर्व जरमनी को जरमन भाषा मे 'डोइशे डेमोक्रातिशे रीपब्लिक' अर्थात 'जरमन गणतत्र राज्य' कहते है। इस के सविधान के अनुसार देश के शासन का अधिकार श्रमिक, कृषक एव बुद्धिजीवियो के हाथ मे है। यहा की सब से बडी पार्टी है समाजवादी एकता पार्टी। कम्युनिस्ट और समाजवादी गणतत्री (सोशल डेमोक्रेट) इन दोनो दलो को मिला कर अब एकता पार्टी बनाई गई है। यह अतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट दल का एक अग है जिस का केंद्र रूस की राजधानी मास्को मे है। देश के शासन मे अन्य पार्टिया भी हैं, जैसे कृषक दल, क्रिश्चियन, डेमोक्रेटिक पार्टी इत्यादि। पूर्व जरमनी मे ससद के लिए प्रत्येक पाच वर्ष पर चुनाव किया जाता है। शासन और शासको की निष्ठा के कारण देश मे ऐसा वर्ग ही नही रह गया है कि विरोध की गुजाइश हो।"

इस अतिम वाक्य ने मुझे चौकन्ना कर दिया। समझते देर नही लगी कि फ्राउ सरकारी जासूस या प्रचारक है। मैं ने कहा, "इतना होने पर १७ जून १९५३ के र्बालिन विद्रोह के लिए तो कोई गुजाइश नही होनी चाहिए थी।" प्रभुदयालजी ने टेबल के नीचे से मुझे सावधान किया।

फ्राउ घबराई नही । उस ने दलील पश की कि यह बुर्जुआ लोगों की साजिश थी । आलसी ओर निकम्मो को रोटी ओर पैसे दिखा कर भडकाया गया था ताकि किसान ओर मजदूरो का शासन जम न पाए और वे पूर्ववत शोषण करते रहे ।

मैं पूछना चाहता था कि फिर क्या ये निकम्मे व आलसी अपनी जान पर खेल कर पश्चिम चले गए, ओर अब वहा खेत, खलिहान और कारखानो मे काम कर के पैसे कमा रहे हैं। जो न जा सके उन मे बहुत गोली से उडा दिए गए और शेष अब भी पूर्व जरमनी की जेलो मे या रूस के कारखानो मे बलात काम पर लगाए गए है। उन के बारे मे फोटो छाप कर प्रचार यह किया जाता है कि रूस मे विदेशी मजदूरो को भी काम मिलता है। पर यह सोच कर कि साम्यवादी देशों मे इस प्रकार की आलोचना खतरे से खाली नही होती, चुप रह गया ।

बातचीत का सिलसिला बदल देना पडा। मैं ने पूछा, "आप भी क्या पश्चिम जरमनी से घूमने आई है ?"

"नही, मै यही रहती हू, सास्कृतिक रिसर्च कर रही हू । हा मेरा छोटा भाई, मा और पिता वहीं हैं। मै ने लक्ष्य किया कि फ्राउ अब हमारे पास से दूसरे यात्री के पास जाना चाहती हैं।

रेस्तरा मे निकल कर हम बाजार देखने चले गए। तरहतरह के फल, मेवे, सब्जियां, मास ओर अडे बहुतायत मे थे किन्तु अन्य सामान उतने नही थे जितने कि पश्चिम मे। चित्रशाला ओर म्यूजियम भी बडे थे मगर समय कम बचा था इसलिए इन्हे ठीक तरह से देखना सभव नही था ।

घूमता हुआ दीवार तक पहुचा। सोचता जा रहा था, राजनीति के दावपेचो मे भी कैसी विडबना होती है ! भारत बटा, कोरिया विभक्त हुआ, वियतनाम खडित है। एक देश, एक भाषा, एक इतिहास और एक सस्कृति, मगर खडी कर दी जाती है राजनीति की दीवार ! जनता को विभक्त करने के लिए पहले धर्म और सप्रदाय का नारा बुलद किया जाता रहा है अब बीसवी सदी मे पूजीवाद, गणतत्र, साम्यवाद आदि की दुहाई दी जाती है ! सदिया बीती, विज्ञान बढा, मगर क्या मनुष्य अपना हृदय बदल सका ?

हम दीवार के फाटक पर आ गए। हमारी तरह और लोग भी बर्लिन के पश्चिमी भाग मे जाने के लिए क्यू लगाए हुए थे। उन से पूर्व बर्लिन के बारे मे राय लिखने के लिए कहा जा रहा था। मै ने लिखा 'पूर्व बर्लिन मे जीवन का जो रूप देखा, वह सोचनेसमझने की काफी खुराक देता है।'

चौथे दिन सुबह हमे वियना के लिए रवाना होना था। बर्लिन के पश्चिम भाग मे हलहम म्यूजियम, टापर गार्डन, हसा स्क्वायर, विजय स्तभ और पशुशाला आदि दर्शनीय स्थल हम देख चुके थे। फिर भी अभी बहुत कुछ देखना बाकी था। हमे जरमनी के ओद्योगिक एव आर्थिक विकास की जानकारी भी करनी थी। बोन स्थित हमारे भारतीय दूतावास के माध्यम से यहां के लैडसजनट्राल बैक (रिजर्व बैक) के जनरल मैनेजर मिस्टर फ्राज मुसान से दिन के तीन बजे मिलने का समय निश्चित था।

मिस्टर डिटमार आज फिर अपनी कार ले कर आए। उन्होने पूरे दिन का समय हमे दिया। उन की सहायता के बिना बर्लिन जैसे ऐतिहासिक महानगर को दो दिनो के अल्प समय मे देख पाना सभव न हो पाता ।

इस बार की यात्रा मे हमारी धारणा से कम ही खर्च हुआ। क्योकि कुछ देशो मे हम अपने मित्रो के घर अतिथि के रूप मे रहे, भारतीय दूतावास की कारे भी मिलती रहीं, ज्यादातर हम दूसरे दरजे के होटलो मे ठहरते रहे, इसलिए बचत हो गई। बचे हुए रुपयो से हम कुछ खरीदारी करना चाहते थे।

बाजार मे देखा, नाना प्रकार की बेहतरीन वस्तुओ की भरमार है। जरमन कैमरा.

दूरबीन, टेपरिकार्डर और बिजली के सामान तो दुनिया मे मशहूर है। हागकाग मे इन्ही सब चीजो के दाम हम पचीसतीस प्रतिशत कम देख आए थे। इसी लिए इच्छा रहते हुए भी हम ने कुछ नही खरीदा।

कैजर मिमोरियल चर्च देखने गए। १९४३-४४ की बमबारी मे इस का अधिकाश भाग टूट गया था। अब फिर से पुनर्निर्माण किया गया है। कुछ भाग इस समय भी टूटाफूटा था, शायद युद्ध की यादगारी के लिए छोड रखा गया है।

शहर का बोटेनिकल गार्डन देखा। काफी प्रसिद्ध है और बडा भी, पर मुझे हमारे कलकत्ते के बोटेनिकल गार्डन जैसा नही जचा।

यहा का ओलपिक स्टेडियम हम ने बस से देखा था। आज घूमते हुए उसे फिर देखा। बहुत ही भव्य और विशाल है। वैसे टोकियो मे भी एक लाख दर्शको के लिए बना स्टेडियम हम पहले देख चुके थे। पर बर्लिन के स्टेडियम मे बैठने की सीटो की व्यवस्था और साजसज्जा उस से कही अच्छी लगी। दुनिया के हर देश से चोटी के खिलाडी विश्व की ओलपिक प्रतियोगिताओ मे भाग लेते है। विशिष्ट दर्शक भी विदेशो से बडी सख्या मे आते है। इसलिए स्टेडियम की व्यवस्था भी उसी के अनुरूप की जाती है।

हम ने देखा था कि फिनलैड जैसे छोटे से देश ने भी स्टैडियम बनाने मे करोडो रुपए खर्च कर दिए थे। इस से देश को लाभ भी पहुचता है क्योकि विदेशी यात्रियो से अच्छे पैमाने पर आय हो जाती है और पर्यटन व्यवसाय का प्रचार भी हो जाता है।

मिस्टर डिटमार हमे और भी बहुत से दर्शनीय स्थल दिखाना चाहते थे पर समय काफी हो गया था इसलिए रेडियो टावर देख कर होटल लौट जाना तय किया। रेडियो टावर की ऊचाई ५०० फुट है। ऊपर तक लिफ्ट से जाने की व्यवस्था है। बर्लिन के दोनो हिस्से यहा से साफ देखे जा सकते है। मोटरो और चलनेफिरने वालो की सख्या देखनें से बर्लिन के दोनो भागो की सुखसमृद्धि के फर्क का अनुमान लग जाता है।

होटल मे लच ले कर लैडसजनट्राल बैक मे जब मिस्टर फ्राज के कक्ष मे पहुचे तो देखा कि और भी तीनचार व्यक्ति बैठे है। पारस्परिक परिचय हुआ। वे सभी बैक के विभिन्न विभागो के विशेपज्ञ थे। उन्हे हमारी बातचीत मे हिस्सा लेने के लिए आमन्त्रित किया गया था। इस से काफी सुविधा रही क्योकि सूचनाए साथसाथ मिलती जाती थी। हमारे वार्तालाप को अगरेजी मे बदलने के लिए, एक अतर्भाषी भी था और एक स्टेनो भी सारी बातो की टिप्पणिया लिखती जा रही थी।

हम ने उन्हे अपनी यात्रा का उद्देश्य बताया। हमे बडा आश्चर्य हुआ कि भारतीय वैकिंग व अर्थनीति और उद्योग विकास के बारे मे भी उनकी जानकारी है, वे आकडे तक सही बता रहे थे।

उन्होने कहा, "भारत और पश्चिम जरमनी अच्छे मित्र है। हम स्वय भी बहुत सकट से गुजरे है, फिर भी अपनी शक्ति के अनुसार भारत की आर्थिक और तकनीकी सहायता प्रति वर्ष करते जा रहे है। हमारा विश्वास है कि विश्वशाति और एशिया के देशो को चीन के खूनी पंजे से बचाने के लिए भारत को समृद्ध और सशक्त होना नितात आवश्यक है।"

जरमनी के औद्योगिक, आर्थिक और कृपि उत्पादन के सवध मे उन्होने जो आंकडे बताए, उन्हे सुन कर ऐसा लगा कि हम किसी जादूई करिश्मे की बाते सुन रहे है। आकडे सभी १९६३ के दिए गए थे।

जनसख्या ५ ७० करोड, बडे शहरो मे बर्लिन, हमबर्ग, कोलोन, एसन और फाकफुर्त। खाद्यान्न का उत्पादन १ ५५ करोड टन, बीट शुगर १ २५ करोड टन, दूध २ ०८ करोड टन, मक्खनपनीर ६ ३० लाख टन, अडे १,००० करोड, मछली ५६ लाख टन, कोयला और कोक १७ ७३ करोड टन, लिगनाइट १२ २५ करोड और सीमेंट ३ करोड टन। मोटरे और ट्रक २७ लाख, रेडियो और टेलीविजन-सेट ५४ लाख।

'दैनिक अखबार निकलते हैं १३७५, जिन की बिक्री है २ ३० करोड। साप्ताहिक और मासिक पत्रों की सख्या ६,५०० और बिक्री १५ २० करोड।

'आय का बजट ६,५०० करोड। राष्ट्रीय आय ६४,००० करोड, यात्रियो की सख्या ६०,००,००० । होटलो मे शयन की व्यवस्था १२,००,०००, प्रति व्यक्ति वार्षिक आय १०,००० रुपए।'

हम मत्रमुग्ध से यह सब सुनते जा रहे थे और नोट कर रहे थे। बातचीत का सिलसिला समाप्त हुआ। उन्हे धन्यवाद दे कर हम अपने होटल वापस आ गए।

हालाकि दुनिया मे अमरीका और दोएक यूरोपियन देश पश्चिम जरमनी से अधिक समृद्ध है किंतु हम तुलना कर रहे थे भारत से। हमारा देश इस से नौ गुना बडा है पर राष्ट्रीय आय केवल २०,००० करोड और प्रति व्यक्ति आय ३६१ रुपए। मोटर और ट्रको का उत्पादन अबतक हम केवल पचपन हजार तक ही कर पाए है। हमारे पास कृषि योग्य बहुत बडा भूभाग है। आबादी भी बावन करोड की है, प्रचुर खनिज पदार्थ है, फिर भी विश्व मे हम सब से गरीब देशो मे से है। जरमनी १६ वर्ष पहले मटियामेट हो चुका था। आज वह सपन्न और समृद्ध है और हम इन १६ वर्षो मे दरिद्रतर होते गए।

हम कारणो का विश्लेषण कर रहे थे। प्रभुदयालजी का कहना था कि हमारी सरकार ने मध्यम श्रेणी के कारखाने स्थापित करने के बजाय अधिक महत्त्व दिया बडीबडी योजनाओ को। राजनीतिक दलबदी और पार्टियो के प्रभाव मे पड कर देश की जनसख्या, श्रमशक्ति, खनिज पदार्थ व उपलब्ध साधनो के आधार पर योजनाए न बन पाई। फल यह हुआ कि हम बहुत सी आवश्यक वस्तुओ मे पिछडे रह गए। सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था भी हमारे यहा नही हो पाई। अच्छा होता यदि हमारे कृषि प्रधान देश मे सब से पहले सिंचाई और खाद पर ध्यान दे कर खाद्यान्न के उत्पादन को बढा कर भारतीय अर्थनीति की बुनियाद मजबूत करते।

जरमनी औद्योगिक देश था, फिर भी इस ने पहले छोटे और मध्यम श्रेणी के कारखानो को प्रश्रय और प्रोत्साहन दे कर चालू किया। तब कही क्रुप जैसे विशाल उद्योग प्रतिष्ठानो को पुनर्जीवित किया जा सका। कृषि को भी इन लोगो ने सब से पहले सभाला। राष्ट्रीय एकता और चेतना इन मे शुरू से ही जागरित रही है। इसलिए यहा के मजदूर नेताओ ने भी देश को पुनर्जीवित करने मे पूरा सहयोग दिया।

हमारे यहा ठीक इस के विपरीत हुआ। छोटेछोटे कारखाने और राष्ट्रीय महत्त्व के उद्योगो की परवा किए बिना मजदूर दलो का उद्देश्य रहा— कम काम करो, हडताल करो, अधिक मजदूरी की माग के लिए काम ठप्प कर दो। साम्यवादी मजदूर दलो का तो उद्देश्य ही है अराजकता फैलाना और दलगत स्वार्थ की पूर्ति करना। अपने देश और राष्ट्र के हितो से ज्यादा इन की दृष्टि रहती है साम्यवादी राष्ट्रो के सकेतो पर।

हमारी काग्रेस पार्टी और सरकार मे कुछ प्रच्छन्न साम्यवादी घुस आए। इन मे दोएक तो नेहरूजी के मत्रीमडल मे भी थे। इन्ही के प्रयत्नो से सरकारी कारखानो मे साम्यवादी मजदूर यूनियनो को मान्यता मिली। इस का भीषण दुष्परिणाम भुगतना पडा। चीन ने सन १९६२ मे आक्रमण किया, उस समय पता चला कि हमारे कारखानो मे हथियार नही, काफी पर्कुलेटर और सिगरेट लाइटर बनते है।

श्रमिको के नियमकानून भी यहा इस ढग के बने कि काम कम करने पर भी किसी को बरखास्त करना या हटाना संभव नही। इतना ही नही उत्पादन कम भले ही हो, घाटा बढता जाए, पर बोनस देना ही होगा। सहकारी सस्थाओ ने भी यूरोपीय देशो मे बडा ठोस काम किया है, जब कि हमारे देश की ऐसी अधिकाश सस्थाओ ने जनता के पैसे को बरबाद किया। आवश्यकता व योग्यता से अधिक स्थानीय राजनीतिक परिस्थितियोको महत्त्व दिया जाता रहा है। अतएव जरमनी के साथ अपने देश की तुलना करते समय इन बातो का ध्यान रखना अपेक्षित है।

बर्लिन के आपेरा ओर थिएटर यूरोप मे प्रसिद्ध है। बाख, मोजार्ट, वैग्नर और स्ट्राउस पाश्चात्य सगीत के चमकते सितारे है। ये सभी जरमनी के थे। आज भी उपासनालयो मे इन महान सगीतकारो द्वारा रचित शात, गभीर व मधुर स्वरलहरी सुनने को मिल जाती है। केवल यूरोप मे ही नही, सुदूर अमरीका ओर आस्ट्रेलिया तक मे भी मुरझाए मन मे नई जान आ जाती है इन की सगीतलहरियो को सुन कर।

मिस्टर डिटमार ने हम लोगो के लिए प्रसिद्ध सीलर थिएटर मे एक बाक्स रिजर्व करा लिया था। रात नौ बजे हम वहा गए। छ मजिलो की ऊचाई का यह बहुत ही शानदार थिएटर हाल था। कुरसिया बेहतरीन और आरामदेह, मच की सजावट भी बहुत सुरुचिपूर्ण थी। उन दिनो वहा केवल कसर्ट (वाद्य सगीत) का प्रोग्राम चल रहा था। विभिन्न प्रकार के छोटेबडे वाद्य यत्रो की मानो एक प्रदर्शनी सी लगी हो। कलाकारो की सख्या ही सैकडो मे रही होगी।

जब सगीत का एक पद खत्म होता तो लोग बारबार ताली बजा कर प्रशसा व्यक्त करते थे। हमे पश्चिमी सगीत की जानकारी नही है। स्वरलहरी अच्छी जरूर लगी पर बारीकी समझ मे नही आती थी। अनजान या अरसिक न माने जाए इसलिए हम भी ताली बजा कर दूसरे श्रोताओ की तरह दाद दे रहे थे। व्यक्तिगत रूप से मुझे तो अपने यहा की वीणा और सारगी की स्वरलहरी इन वाद्यो से कही ज्यादा मधुर लगती है।

आम तौर से जरमनी के बारे मे लोगो की धारणा यही रही थी कि ये बडे व्यावहारिक, मितव्ययी और कुछ रूखे से होते है। पर इस हाल की भीड, उन की तन्मयता आदि को देख कर ऐसा लगा कि श्रम और विश्राम दोनो का सही उपयोग जरमन समझते है।

थिएटर और आपेरा की टिकटे यहा बहुत पहले से रिजर्व हो जाती हे। इस के लिए एजेसिया है जो अपनी जोखिम पर सैकडो सीटे विभिन्न हालो की बुक करा लेती हैं। इन के बधे ग्राहक होते है। रुचि के अनुसार टिकटे उन्हे भेज देते है।

कसर्ट करीब ग्यारह बजे समाप्त हुआ। मिस्टर डिटमार हमे अपनी कार से होटल पहुचा गए। हम ने आभार मानते हुए उन्हे धन्यवाद दिया।

उन्होने हस कर कहा, "इसे कल सुबह तक हवाई अड्डे के लिए अपने पास सुरक्षित रखिए।"

मलबे के ढेर......पुर्ननिर्माण के प्रतीक

ब्रिमेन हंबर्ग

सन १६५० मे अपनी पहली यूरोप यात्रा मे जरमनी के दो ही शहर देख पाया था: ब्रिमेन और हबर्ग। १६६४ मे यूरोप की यात्रा का तीसरा अवसर मिला। इस बार फिर से मैं हंबर्ग तो गया पर ब्रिमेन नही जा सका।

अपनी पहली यात्रा में ब्रुशेल्स से ट्रेन द्वारा ब्रिमेन आया था। युद्ध समाप्त हुए लगभग पांच वर्ष हो चुके थे पर उस समय तक शहर की हालत सुधर नही पाई थी। टूटे हुए मकान, अस्पताल, गिरजे, बाजार, चारो ओर मलबे के ढेर, खालीखाली सी उजडी दुकानें, सूनी सडके और विकलाग लोग, कलकारखाने ठप्प, बेरोजगारी के कारण भटकते उदास चेहरे और अनाथ बच्चे—यही थी उस समय जरमनी की तसवीर, जिस पर मित्र राष्ट्रो की बमवर्षा और तोपो की गोलाबारी के निशान अब भी अकित थे। हबर्ग के बाद ब्रिमेन जरमनी का सबसे बडा बदरगाह माना जाता था। यहा आते ही मै ने युद्धोत्तर जरमनी की दुर्दशा देखी, जिस की कल्पना भी नही की जा सकती थी।

युद्ध के पहले ब्रिमेन का यूरोप के वाणिज्यव्यवसाय मे महत्त्वपूर्ण स्थान था। केवल जरमनी ही नही बल्कि पासपडोस के अन्य राज्यो के भी माल का आयातनिर्यात यहा के बदरगाह से होता था। यह लगभग चार लाख की आबादी का घना बसा हुआ शहर था, किंतु मुझे ऐसा लग रहा था जैसे किसी खडहर मे आ पहुचा हू। अजीब सुनसान और भयानक सा कसबा हो गया था।

युद्ध के कारण जरमनी के जहाज, कारखाने और बदरगाह बुरी तरह बरबाद हो गए थे। पराजित जरमनी की अर्थव्यवस्था अस्तव्यस्त थी और व्यापार बद सा पडा था, इसलिए चहलपहल न रहना स्वाभाविक था। ब्रिमेन मे न तो व्यापारियो का आनाजाना होता था और न यात्रियो का। हा, कभीकभी अमरीकी पर्यटक मिल जाते थे क्योकि इन पाच वर्षो मे अमरीका युद्ध की थकान मिटा चुका था और वहा के कुछ पर्यटक जरमनी के टूटेफूटे शहर देखने भी आ जाते थे। होटलो की दशा बुरी थी। वे बेमरम्मत से पडे थे और उन मे खानेपीने के सामान का अभाव था। सुखसुविधा के आधुनिक साधन भी वे नही जुटा पा रहे थे।

यहा आने के बाद मन मे एक दुख सा छा गया। सोचने लगा, 'न आता तो अच्छा था।' आज का सभ्य यूरोप अपने इतिहास मे चगेजखा और नादिरशाह को बर्बर और लुटेरे कहता है, ठीक है। बेरहमी से उन्होने शहरो को उजाडा और कत्लेआम किया। किंतु इस बरबादी को देख कर तो ऐसा लगता है कि चगेज और नादिर आज के इन लोगो से कही अधिक दयालु

और सभ्य रहे होगे। उन्होने और जो कुछ भी किया पर मसजिदो को नही तोडा, जब कि सभ्य ईसाइयो ने तो खुदा के अवतार ईसा के प्रार्थनाघरो तक को नेस्तनावूद कर दिया। अपने होटल के मैनेजर से मैं ने पूछा, "क्या कारण है कि पाच वर्ष हो गए, मलवे का ढेर हटाया नही जा रहा, मरम्मत का काम शुरू नही किया जा रहा ?"

उस ने टूटीफूटी अगरेजी मे कहा, "पहले शिल्प उद्योग, कृषि, अस्पताल, स्कूलकालिज ठीक होने है और तब इन के बाद दूसरी चीजो की मरम्मत या सुधार का प्रोग्राम है। जव तक बाहर से यथेष्ट सहायता नही मिल जाती तव तक हमे अपने ही साधनो और शक्ति पर भरोसा करना होगा। अफसोस है कि युद्ध के हरजाने मे हमे अपने अधिकाश साधन देने पड गए है, हमारी राष्ट्रीय आय का अधिकाश भाग युद्ध के कर्ज चुकाने मे चला जाता है। मगर हमारा विश्वास है कि जरमन जाति टूटेगी नही, वह फिर उठ खडी होगी।"

होटल मैनेजर की बातो मे साधारण जरमन नागरिक की कष्ट सहने की शक्ति और दृढ विश्वास का पहला परिचय मिला। मुझे पेरिस, ब्रुशेल्स और कोपेनहेगन के नाइट क्लव और कैबरे के दृश्य, वहा की सड़को की चहलपहल के नजारे याद आ गए। यद्यपि पडोस के ही देश हैं पर वे है विजेता। जरमनी से युद्ध का हर्जाना वे अव तक करीवकरीव पूरा पा चुके थे। उन मे अब युद्ध की थकान भी नही रह गई थी। वहा जिंदगी मे वहारे लहरा रही थी।

हमारे यहा शास्त्रकारो ने कहा है कि भूख और काम की आग दवाई नही जा सकती। हालाकि भारत ने लूटखसोट और युद्ध की वरवादी देखी है, एक बार नही अनेक वार, किंतु कभी भी सपूर्ण भारत इस चपेट मे शायद ही आया हो। इसलिए भूख ओर काम के वारे मे जो लिखा गया है उस की वास्तविकता और गहराई व्यापक तौर पर प्रत्येक भारतीय समझ सकेगा, इस मे सदेह है। लेकिन युद्ध से जर्जर हो गए जरमनी मे हम ने इसे प्रत्यक्ष रूप से देखा।

युद्ध मे १८ से ५० वर्ष तक के पुरुष बडी सख्या मे मारे गए। कुछ वचे किंतु वे विकलाग हो गए। इसलिए देश मे युवा स्त्री और पुरुषो की सख्या मे विषमता अत्यत उग्र रूप मे आ गई।

क्लबो, रेस्तोराओ और बारो मे अधिकाश प्रौढाए ओर युवतिया साहचर्य के लिए लोगो को ढूढती रहती थी। अमरीका के नीग्रो फौजियो के कई दस्ते इटली से वहा आ गए थे। वे भी स्वदेश और स्वजनो से बहुत अरसे से अलग थे। युद्ध से फुरसत मिल ही चुकी थी। अब उन के लिए शेष रह गया केवल खाना और मौज करना। यहा उन्हे इस का भरपूर मौका मिला।

मैं यही सोचता था, कहा गया नाजियो के आर्य रक्त का वह दभ, जिस के चलते लाखो वेगुनाह जरमन यहूदियो को जो सैकडो वर्षो से उसी देश मे रहते आए थे, आपस मे एक-दूसरे से हिलमिल कर रहते रहे थे—अमानुपिक यातनाए दे कर वेघरवार कर दिया गया, जहरीली गैस की कोठरियो मे भूखाप्यासा मार दिया गया। आइस्टीन जैसे विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक और स्टिफेनज्विग जैसे चोटी के लेखक को स्वदेश छोड कर खुद ही देश निकाला लेना पडा। आज उसी विशुद्ध जरमन आर्य रक्त मे नीग्रो रक्त का मिश्रण स्वेच्छा से हो रहा है।

हमारे धर्मग्रथ 'महाभारत' मे उल्लेख है कि युद्ध का दुष्परिणाम केवल जनधन और भूमि की हानि तक ही सीमित नही रहता, बल्कि इस का प्रभाव भावी संतानो पर भी पडता है क्योकि वर्णसकर सतति की वृद्धि युद्ध के बाद सहज स्वाभाविक है। इस से राष्ट्रीय गुण और विशिष्टता मे अतर आ जाना भी स्वाभाविक है।

यूरोप के पराजित देशो मे ऐसा हुआ कि विजेता राष्ट्रो के अज्ञात कुलशील नाविक और सैनिक आए। उन्होने भरपूर मौज की और कुछ दिनो वाद अपनेअपने देश को चले गए। भोगना पड़ा उन बेचारी माताओ को जिन्हे अपने तरहतरह के सावले, पीले चेहरो वाले

बच्चों को पालनापोसना पड रहा है। पिता का नाम भी किस का कहे, गनीमत यही है कि पश्चिम देशो में ऐसी बातो के लिए अड़चने नही आतीं। फिर जरमनी को तो उस समय किसी न किसी सूरत से अपनी आबादी बढानी थी इसलिए सरकार भी ऐसे सबधो के प्रति उदासीन थी।

शाम को ब्रिमेन पहुंचा था। बाजार मे थोडा-बहुत घूमा। तबीयत लगी नही। जो कुछ देखा था, दुख पैदा करने के लिए काफी था। शीघ्र ही अपने होटल वापस आ गया। भोजन की इच्छा नही हुई। होटल के रेस्तोरा मे एक कप काफी पी कर ऊपर अपने कमरे मे सोने चला गया।

दूसरे दिन सुबह उठ कर ब्रिमेन शहर का एक चक्कर लगा आया। शहर अच्छा रहा होगा और पुराना भी पर अधिकाश मकान बमवर्षा से टूट चुके थे। पश्चिम की तरफ से इसी नगर से मित्र राष्ट्रो की सेनाओ ने जरमनी मे प्रवेश किया था, इसलिए यहा बडी मोर्चेबदी हुई थी और बमबारी भी।

यहां का प्रसिद्ध टाउनहाल देखा, जो बच गया था। लगभग साढे पाच सौ वर्ष पहले की बनी हुई गोथिक शैली की यह इमारत बहुत शानदार है। इस के भीतर भित्तिचित्र और नक्काशी के काम सचमुच बेमिसाल है। लगभग सभी चित्र कलापूर्ण थे और उन मे भाव भी अत्यत स्वाभाविक ढग से व्यक्त हुए थे। करीब चार सौ वर्ष पहले का ब्रुमन द्वारा बनाया गया प्रसिद्ध चित्र 'सोलोमन का न्याय' देखा। युद्ध के बीच यह अमूल्य कृति सहीसलामत बच गई, गनीमत है!

ब्रिमेन के गिरजे प्रसिद्ध रहे है। बेलजियम मे ब्रुजे के गिरजो की तरह ये भी कलापूर्ण माने जाते हैं। इन मे सैट असजारिस के एक गिरजे का बुर्ज तो लगभग तीनसौ दस फुट ऊचा था किंतु अप्रैल १९४५ मे, जबकि जरमनी एक प्रकार से हार चुका था, मित्र राष्ट्रो की धुआंधार बमबारी से वह नष्ट हो गया।

मुझे आश्चर्य हो रहा था कि ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए अमरीका, ब्रिटेन और फ्रास करोडोअरबो रुपए एशिया और अफ्रीका मे व्यय करते है पर उसी धर्म के पवित्र स्मारको को, जिन मे ईसा और माता मरियम की मूर्तियो तथा अमूल्य धार्मिक चित्र है, वे अधाधुध बम गिरा कर और तोपो की मार से नष्ट कर देते है। यहा के दोतीन गिरजो के खडहरो मे गया, प्रार्थनाघर टूटे हुए थे। मलबे के ढेर के बीच दीवार के जो भी हिस्से खडे रह गए थे, उन पर अकित देखा कि सूली पर ईसा के शरीर से खून बह रहा है। मुझे उन की आखो मे इस प्रकार की करुणा भरी झलक दिखाई दी मानो वह अपने धर्मानुयायियो के कुकृत्यो पर आसू बहा रहे है।

बंदरगाह भी देखने गया। गोदिया टूटी पडी थी। कुछ जहाज माल उतार रहे थे। जरमनी से ले जा रहे थे कोयला, तेल और लोहा। बदरगाह की मरम्मत का काम जिस तेजी से चल रहा था उस से लगता था, सरकार का विशेष ध्यान इस ओर है।

तीन दिन पहले बेलजियम के प्रसिद्ध नगर एटेनबर्ग मे था। वह भी जरमन विमानो की बमवर्षा से ध्वस्त हो गया था। लेकिन अब वहा का दृश्य भिन्न था क्योकि बेलजियम मित्र राष्ट्रो का साथी था इसलिए विजेता भी। पराजित जरमनी के हरजाने की रकम से वहा तेजी से नवनिर्माण हुआ और शहर मे फिर से चहलपहल और उल्लास का वातावरण नजर आने लगा। नए मकान, सजी दुकाने, हसती शकले लेकिन यहा ब्रिमेन मे ठीक इस के विपरीत वातावरण था। सोचने लगा, "वास्तव मे पराजय किसी भी राष्ट्र के लिए अक्षम्य अपराध है।'

दिन भर शहर का चक्कर लगा कर रात मे अपने होटल वापस आया। कमरे मे आ कर गरम पानी से हाथपैर धो कर थकान दूर की और भोजन के लिए नीचे रेस्तोरा मे चला गया। अपनी टेबल पर अकेला ही था। चालीसपैतालीस की उमर की एक भद्र महिला अपनी

अठारहबीस साल की लडकी के साथ मुझ से अनुमति ले कर पास ही बैठ गई। व्यवहार शिष्टतापूर्ण था और बातो मे शालीनता थी।

पारस्परिक परिचय से पता चला कि साथ वाली लडकी उन की पुत्री है। पति युद्ध मे गया था, लौटा नही, मरने की खबर भी नही आई। युद्ध के दौरान पूर्वी पोलैंड मे बदी बनाया गया था, उस के बाद से कोई सूचना नही। रेडक्रास की मारफत कोशिशे की जा रही हैं पर सोवियत सरकार सहयोग नही देती। पाच साल का एक लडका भी है।

बातचीत का सिलसिला युद्ध की विभीषिका से शुरू हुआ था। आर्थिक कठिनाई और पारिवारिक समस्या से गुजरते हुए व्यक्तिगत रुचि पर जिस प्रकार की चर्चा उन्होने शुरू की, उस से मैं थोडा चौकन्ना हो गया। शिष्टाचार के नाते मैं ने उन्हे खाने के लिए पूछा, थोडे सकोच के साथ वह राजी हो गईं। देख कर ऐसा लगा शायद दोनो ही भूखी थी।

उन्हे भोजन मे साथ देने के लिए धन्यवाद दे कर अपने कमरे मे चला आया। एक अजीब सी घुटन से जूझता हुआ सो गया।

दूसरे दिन नाश्ता कर के ट्रेन से हवर्ग के लिए रवाना हो गया। यहा हमारे पटसन के व्यापारिक सपर्क की एक फर्म थी, जिसे मैं ने आने की पूर्व सूचना दे रखी थी। प्लेटफार्म पर, देखा फर्म के मालिक मिस्टर जिगलर उपस्थित नही थे, पर स्टेशन के बाहर पोर्टिको मे वह मेरी प्रतीक्षा मे खडे मिल गए।

अभिवादन के बाद उन्होने सकोच के साथ बताया कि जरमन नागरिको को स्टेशन, एयरपोर्ट और अन्य महत्त्वपूर्ण स्थानो पर जाने के लिए पूर्वाज्ञा लेनी पडती है। अपनी छोटी सी वाक्सवागन कार वह साथ लाए थे। होटल जाते समय उन्होने बताया कि खेद है, वह मुझे अपने घर न ठहरा सकेंगे। कारण यह है कि उन का मकान वमबारी मे ध्वस्त हो चुका है। एक हिस्सा जो बचा है वह बहुत ही छोटा है। छत और दीवारें भी कहीकही से टूटी हुई हैं। उन्होने अपनी असमर्थता और मेरी असुविधा के लिए क्षमा मागी। मैं ने देखा, उन की आखें गीली थीं।

दूसरे दिन सुबह वह होटल आए और मुझे अपने घर ले गए। घर मे शरणार्थियो के डेरे की सी हालत थी। छोटे से बरामदे मे डाइनिगरूम बना रखा था। डबलरोटी, काफी और कुछ फल मुझे खाने के लिए पेश किए गए।

परिवार मे उन की पत्नी, दो बच्चे, बूढी मा और छोटे भाई की विधवा पत्नी थी। मिस्टर जिगलर के दोनो छोटे भाई युद्ध मे मारे गए थे। उन की मा ने भरे गले से बताया कि उन का एक पुत्र अल अलामीन मे भारतीय सिपाही द्वारा मारा गया। उन्होने कहा, "वह इतना तगडा था कि चारपाच अगरेजो के लिए अकेला ही काफी था। यदि भारत और अमरीका युद्ध मे अगरेजो का साथ नही देतें तो हम हारते नही।" वृद्धा की बातो का भाषातर मिस्टर जिगलर कर रहे थे।

मैं ने खेद प्रकट करते हुए कहा, "पराधीन होने के कारण भारत विवश था। सच मानिए, हमारा मन कभी भी अगरेजो के साथ नही रहा। आप के दो जवान बेटे देश के लिए कुरबान हुए, कम से कम यह गौरव तो आप को मिला। जरा हमारी भारत की उन माताओ के बारे मे भी तो सोचिए, जिन के बेटे उस देश को बचाने के लिए मारे गए जिस ने उन के अपने देश को सैकडो वर्षो से गुलाम बना रखा था।" मैने देखा, मेरी बात से वृद्धा को सात्वना मिली।

जिगलर महोदय का कारखाना नष्ट हो चुका था, कारोबार भी अस्तव्यस्त था। उन्होने बताया कि एक बार तो उनकी हिम्मत पस्त हो गई थी। सहारा मिला अपने ही बचे-खुचे मजदूरो का। चौथाई मजदूरी लेकर वे काम पर डट गए। उन्होने टूटी मशीनो पर रातदिन काम किया। अब भी बहुत सी मशीने ऐसी है कि उन्हे बदलना निहायत जरूरी है।

वहा की मजदूर यूनियनो का कहना है कि सबसे पहले जरमनी के उद्योग-धंधे व व्यापार को सगठित किया जाए, जिससे कि वे अपने माल का निर्यात जारी कर सके, जहा तक अच्छी मजदूरी का सवाल है, राष्ट्र की आर्थिक दशा के सभलते ही वह अपनेआप बढ जाएगी।

उनसे यह भी पता चला कि केवल हवर्ग मे ही नही बल्कि सारे जरमनी में हर व्यक्ति राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण चाहता है और इसके लिए वह अपने बडे से बडे स्वार्थ को त्यागने के लिए तैयार है।

सारे दिन मिस्टर जिगलर के साथ शहर मे घूमता रहा। ब्रिमेन का सा वातावरण यहा भी देखा। एक बहुत बडे अस्पताल के अधटूटे हाल मे हम खडे थे। अस्पताल उजड़ चुका था। थकान मिटाने के लिए हम मलबे के ढेर पर बैठ गए।

जिगलर ने कहा, "दस वर्ष पहले हमारा यह नगर यूरोप के शिल्पोद्योग, जहाजरानी, व्यापार-वाणिज्य के प्रमुख केद्रो मे गिना जाता था। एटवर्प, रांटरडाम और मार्शलीज तो इसके मुकाबले मे क्या टिकते, लदन तक पिछड रहा था। हजारो कारखाने इसके ईर्दगिर्द थे। सारे यूरोप के देशो मे यही से माल जाता था। १६४३-४४ की भीषण बमबारी से इसका दो-तिहाई हिस्सा बिलकुल नष्ट हो गया। अकेले १६४३ के जुलाई-अगस्त महीने मे ही हवाई हमलों मे यहां कोई साठ हजार नागरिक मारे गए। किस प्रकार का मृत्यु का नृत्य हुआ होगा, यह आप ही सोच ले।

"यहा ४७० स्कूल थे, जिनमे से किसी तरह २५० बच गए हैं। इनमे से ५० मे तो पढाई का सिलसिला शुरू किया गया है, शेष मे गृहविहीन नागरिको के लिए आवास की व्यवस्था की गई है। बमवर्षा से ७० रेलवे पुल उडा दिए गए और बदरगाह तो एक प्रकार से बेकार ही हो चुका है। कारखानो की हालत आप देख चुके है। टूटे कारखाने मे भी यदि काम करे तो भी कच्चा माल और पूजी चाहिए। कच्चा माल मित्र राष्ट्र हरजाने मे ले जाते है और पूजी है नही।"

मैंने देखा उनकी आखे भर आई थी। खडे होकर उन्होने कहा, "मिस्टर टांटिया फिर भी एक जरमन होने के नाते विश्वास के साथ कह सकता हू कि आज से दस वर्ष बाद यदि आप यहां आएगे तो हमे ऐसी हालत मे नही पाएगे। हम उठ खडे होगे। आज हमारे मजदूर और कारीगर वेतन के लिए नही, देश के नवनिर्माण के लिए अथक परिश्रम कर रहे है। जरमनी झुक भले ही गया है, पराजय की व्याधि उसे लगी जरूर है, पर वह टूटेगा नही। जरमन हमेशा से राष्ट्रीय मर्यादा को समझते रहे हैं। वे मर नही सकते। उन्हे उठना पड़ेगा, वे उठेंगे।"

उनकी आवाज मे दृढ निश्चय की गूज थी।

भोजन के लिए उन्होने बहुत आग्रह किया पर मैने स्वीकार नही किया। मैं जानता था, उनके परिवार के लिए ही पूरा राशन उपलब्ध नही है। वह मुझे होटल तक पहुचा गए। उनसे विदा लेते समय मैं ने उन्हे भारत से लाए हुए तीन रेशमी स्कार्फ उनकी वृद्धा माता, पत्नी और भ्रातृवधू के लिए दिए। उन्होने कुछ सकोच के साथ स्कार्फो को स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन जिगलर महोदय अपनी छोटी सी कार लेकर आए और मुझे हवाई अड्डे तक पहुंचा कर उन्होने विदा ली। पहले दिन खीची हुई दो तस्वीरे वह मुझे दे गए जो आज भी मेरे पास यादगार के रूप में सुरक्षित है। हवाई अड्डे मे भी भीतर जाने की उन्हें मनाही थी। मुझे १६२०-२५ के कलकत्ते के ईडन गार्डेन मे हर रविवार के बैडवादन की याद आ गई, जहां भारतीय दूर खडे होकर ही देख सुन सकते थे और वहां रखी हुई कुर्सिया व बेंचे केवल विदेशी गोरो के लिए सुरक्षित थी।

सन १६६४ मे जब दोबारा हवर्ग आया तो देखा कि यह सर्वथा बदला हुआ था। टूटे हुए मकान और ध्वस्त गिरजे, स्कूल, कालिज तथा अस्पताल नही दिखाई पडे। अब उनकी जगह

खडी थी आलीशान इमारते । कई मंजिलो वाले ये नए भव्य प्रासाद नीले आकाश मे सिर ऊचा किए जरमनी के पुनरुत्थान की कहानी कह रहे थे ।

बंदरगाह देखा । विशाल दैत्याकार क्रेन बडेबडे मंचो पर हाथ फैलाए आसानी से ढेर का ढेर माल गोदियो मे लगे बडेबडे जहाजो से उठानेरखने मे व्यस्त थे । बूढो और विकलांगो की जगह दिखाई पडे स्वस्थ और सुपुष्ट नागरिक । उन के चेहरो पर स्वतंत्रता की आभा और समृद्धि की मुसकराहट थी । सुदर और स्वस्थ बच्चे पार्को व स्कूलो मे खेलकूद रहे थे । सहज ही विश्वास नही होता था कि उसी नगर मे आया हू जहा लगभग चौदह वर्ष पहले आया था ।

लदन मे अपने मित्र जिगलर को पहुचने की सूचना भेज दी थी । स्टेशन पर वह दिखाई नही पडे । वहा के टूरिस्ट आफिस से ठहरने के लिए प्रयत्न किए किंतु सफलता नही मिली । उन दिनो वहा एक औद्योगिक प्रदर्शनी लगी थी, देशविदेश से अनेक दर्शक आए हुए थे । इसलिए अच्छे होटलो मे जगह नही मिल सकी । काफी कोशिश के बाद स्टेशन के सामने एक पेशन आवास मे एक छोटी सी कोठरी मिली । इसी मे मैं और प्रभुदयालजी दोनो ठहरे । कोठरी के साथ मे बाथरूम भी नही था ।

अब तक जिस किसी होटल मे हम गए, भले ही वह द्वितीय श्रेणी का होटल रहा हो, हमेशा यह खयाल रखते थे कि बाथरूम कमरे के साथ लगा हो । बिना इस सुविधा के इन ठडे देशो मे शौच, स्नानादि के लिए क्यू मे खडा रहने के साथसाथ एक झेप होती है । सामान रख कर किसी एक अच्छे होटल की तलाश मे निकले ।

सयोग से पहले दरजे के एक होटल मे कलकत्ता के हमारे मित्र श्री झाझाडिया मिल गए । वह उसी दिन वापस जा रहे थे उन्होने हमारे लिए अपने होटल मैनेजर से बातचीत की किंतु उन का कमरा तो पहले ही से दूसरे यात्रियों के लिए सुरक्षित किया जा चुका था । श्री झाझाडिया के जरमन मित्र ने भी कई होटलो मे जगह के लिए फोन किया लेकिन व्यवस्था न हो सकी । लाचार हो कर हम फिर अपने उसी पेंशन आवास मे वापस आ गए ।

पिछली यात्रा मे मैं अकेला था । विदेश यात्रा का अनुभव भी नही था । पर इस बार साथ थे प्रभुदयालजी और कार्यक्रम भी पूर्वनियोजित था । जिन शहरो मे भारतीय दूतावास और कौसिल थे, वहा हमे यथासंभव सब प्रकार की सुविधाए मिल जाती थी । हमारे विदेश मत्रालय ने हमारे कार्यक्रमों की पूर्व सूचना दूतावासो और कौसिलो मे भेज दी थी ।

पश्चिम जरमनी से हमारा व्यापारिक सबध अच्छे पैमाने पर है । किंतु यहा की राजधानी बोन है और व्यापारिक व औद्योगिक केंद्र पश्चिम बर्लिन । इसलिए हबर्ग मे भारत सरकार की ओर से स्थायी प्रतिनिधि नियुक्त नही है । मेरा खयाल है कि हबर्ग के आयातनिर्यात और जहाज रानी के व्यापार की दृष्टि से इस शहर मे हमारे देश का एक व्यापार कौसिल होना चाहिए । इस से भारतीयो को काफी सुविधा मिल सकती है ।

टेलीफोन डायरेक्टरी से नबर देख कर जिगलर महोदय को फोन किया । घर पर उन की पत्नी मिली । फोन पर हम उन के जरमन लहजे की अगरेजी ठीक से समझ नही पा रहे थे, फिर भी किसी तरह अंदाज़ा लगा लिया कि मिस्टर जिगलर व्यापारिक कार्य से अमरीका गए हुए है । १४ वर्ष पहले की मेरी मुलाकत की और रेशमी स्कार्फ की याद उन्हे आ गई । हमारे आवास का पता पूछ कर उन्होने शाम को छ बजे मिलने का वादा किया ।

हमे हबर्ग मे केवल दो दिन रुकना था । हम जहा ठहरे थे, उस स्तर के आवासगृह मे निरामिष भोजन की सुविधा नही मिल पाती है । इसलिए दोपहर का भोजन बाहर ले कर शहर देखने का प्रोग्राम बनाया ।

कलकत्ते की तरह हबर्ग भी कई छोटेछोटे गावो को मिला कर बसा हुआ है । यहा बारहवी शताब्दी से पदरहवी शताब्दी तक के बहुत ही सुदर गिरजे है, जिनकी दीवारो पर अमूल्य धार्मिक चित्र अकित थे । द्वितीय महायुद्ध मे बमवर्षा से अधिकाश नष्ट हो गए । अब

फिर से उसी प्राचीन शैली पर उन्ही के अनुरूप चित्र बनाने के प्रयत्न हो रहे है। पर उन दुर्लभ कृतियो के चित्रकार तो फिर से मिलने से रहे। और न उनकी बारीकिया ही अकित की जा सकती है। इन प्राचीन चित्रो मे से कुछ अधजले टूटेफटे जिस अवस्था मे भी बच गए, उन्हे बहुत ही सभाल कर रखा गया है। हम ने माता व शिशु तथा क्रुसेड के चित्र देखे।

यहा की कुनस्थल आर्ट गैलरी को जरमनी का सब से बडा सग्रहालय माना जाता है। हम ने सैकडों छोटेबडे चित्र और मूर्तिया यहां देखी। हमे लदन की नेशनल आर्ट गैलरी के क्युरेटर ने बताया था कि विश्व मे दुर्लभ चित्र केवल पचीस या तीस होगे और ये सब पेरिस के लुव्रे, पोप के वेटिकन, लेनिनग्रांद और वाशिगटन के म्यूजियमो मे सगृहीत है। अपने सग्रहालय मे भी दोएक का होना उन्होने बताया। ये चित्र अपनी जगह से हटने के नही, चाहे प्रत्येक के करोड दो करोड रुपए ही क्यो न मिले।

दूसरे देशो के म्यूजियमो को चित्रो के अलावा अन्य दुर्लभ वस्तुओ के सग्रह के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना पडता है। इस मे बहुत बडी धनराशि व्यय की जाती है। हबर्ग के इस सग्रहालय को भी युद्ध के कारण काफी नुकसान उठाना पडा था। फिर भी अब यहा के सग्रह को देख कर ऐसा लगता है कि बहुत परिश्रम और धन लगा कर सग्रहालय को फिर से अलभ्य और दुर्लभ वस्तुओ से सुसज्जित किया गया है।

यहा का बदरगाह तो मित्र राष्ट्रो के हवाई हमले से एक प्रकार से नष्ट ही हो गया था। हमे बताया गया कि पिछले दस वर्षो मे साठ करोड रुपए लगा कर इसे फिर से बनाया गया है। हम एक मोटरबोट से बदरगाह देखने गए। एल्ब नदी के मुहाने पर बदरगाह स्थित है। दोनो किनारो पर सैकडों कारखानो की चिमनियो से निकलता धुआ वहा के व्यस्त औद्योगिक जीवन का परिचय दे रहा था। नावो से माल उतारा और लादा जा रहा था।

ऐसा लगता था, जैसे उद्योगो के किसी महासागर से हम गुजर रहे हो। हम ने इस तरह का दृश्य या वातावरण केवल न्यूयार्क और शिकागो मे ही देखा था। हबर्ग के बदरगाह मे देखा, विश्व के हर देश के जहाज अपनेअपने झडे फहराते हुए गोदियो मे खडे थे। मोटेतगडे तरहतरह के रूपरंग के नाविक उन पर काम करने मे व्यस्त थे।

शाम को श्रीमती जिगलर अपनी पुत्री के साथ मिलने के लिए निश्चित समय पर आई। '१४ वर्ष पूर्व उनसे केवल कुछ घटे के लिए ही मिला था। लडकी तो उस समय शायद पाचछ वर्ष की रही होगी। यदि पहले से बात न कर ली होती तो उन्हे शायद ही पहचान पाता।

अपने इस आवास मे उनकी विशेष खातिरदारी करना संभव नही था। फिर भी हम ने काफी और कुछ हलके नाश्ते के लिए प्रबध कर रखा था। हमे जानकर खुशी हुई कि जिगलर परिवार का कारखाना न केवल फिर से चालू हो गया बल्कि अब वह बहुत बडा हो गया है। वहा नाना प्रकार की मशीने बनने लगी है। उन का निर्यात विदेशो मे हो रहा है। सुदूर ब्राजील और मेक्सिको तक मे उन की मशीनो की माग है।

श्रीमती जिगलर को अपने उद्योगव्यापार की पूरी जानकारी थी। वह अपनी कपनी की सयुक्त मैनेजिग डायरेक्टर है। उन्होने बताया कि फैक्टरी का कुल उत्पादन लगभग पाच करोड रुपए वार्षिक का है। मजदूरो की सख्या ६०० और आफिस स्टाफ की ३० है। इंजीनियर और सेल्समैन के रूप मे पति काम सभालते है। हिसाबकिताब, उत्पादन और व्यवस्था की जिम्मेदारी उन पर है। कालिज की शिक्षा समाप्त कर के अब पुत्री ने भी कुछ अशो मे कारखाने की जिम्मेदारी सभालनी शुरू कर दी है।

मै ने उन से मजदूरो की समस्या को ध्यान में रखते हुए कुछ प्रश्न पूछे। उन की बातो से पता चला मानो श्रमिकमालिक सघर्ष अतीत के किसी बर्बर देश की बात हो। १९४७ के बाद इन १७ वर्षो मे एक बार भी काम रोको, सुस्त काम या हडताल की कोई घटना उन के यहा नही हुई, अन्यत्र भी नही। इस के विपरीत मजदूर क्षमता से अधिक उत्पादन मे जुटे रहे है।

नतीजा यह हुआ कि उन्हे कारखाने की क्षमता को बढाने के लिए विस्तार करते रहना पडा है।

हम उनकी बातो को सुनते जा रह थे और अपने देश की स्थिति की तुलना करते जा रहे थे। कलकत्ते मे मेरी जानकारी मे एक इसी प्रकार का कारखाना है, जिस का कुल उत्पादन डेढ करोड रुपए वार्षिक का है। इस मे मजदूरो की सख्या करीब एक हजार है। इस के अलावा अन्य स्टाफ डेढ सो के करीव है। मतलब यह कि जिगलर के कारखाने से इस मे मजदूरो और स्टाफ की सख्या कही अधिक है, जव कि उत्पादन वहुत कम हे।

कारण स्पष्ट है, साम्यवादी मजदूर यूनियने आए दिन झझटझमेले खड़े किए रहती है। इस से आलस्य और दीर्घसूत्रता को प्रोत्साहन मिलता है। सरकारी नियत्रण हे नही, इसलिए माल का निर्यात विदेशो मे हो नही पाता। कच्चा माल हमारे देश मे वडी तादाद मे हें, किंतु विवशता यही है कि श्रमिक और उनकी यूनियने उत्पादन के राष्ट्रीय महत्त्व को समझने की कोशिश नही करते।

कारण स्पष्ट है, साम्यवादी मजदूर यूनियने आए दिन झझटझमेले खडे किए रहती हैं इस से आलस्य और दीर्घसूत्रता को प्रोत्साहन मिलता है। सरकारी नियत्रण है नहीं, इसलिए माल का निर्यात विदेशो मे हो नही पाता। कच्चा माल हमारे देश मे वडी तादाद मे है, किंतु विवशता यही है कि श्रमिक ओर उनकी यूनियने उत्पादन के राष्ट्रीय महत्त्व को समझने की कोशिश नही करते।

हम यहा की प्रगति से बहुत प्रभावित हुए। हम ने पिछली वार और इस बार जो कुछ देखा उस की चर्चा श्रीमती जिगलर से की। वह मुसकरा कर कहने लगी, "यह सव तो आप दूसरे देशो मे भी देखते हुए आ रहे है। यदि समय हो तो हमारे यहा के पहाडी अचलो और गावो को भी देख लीजिए।"

शायद उन के कहने का आशय था कि गरमी के मौसम मे गावो की खुली हवा और पहाडी अचलो मे बर्फ पर तरहतरह के खेलो मे शहरो की घुटन से हमे कुछ राहत मिल जाएगी।

बातचीत मे काफी समय हो गया। हम ने वहुत इनकार किया किंतु मिसेज जिगलर के आग्रह को नही टाल सके। अगले दिन सुबह उन के घर नाश्ते का निमत्रण हमे स्वीकार करना ही पडा।

रात के भोजन के बाद प्रभुदयालजी सोने चले गए। मै ने टूरिस्ट वस से शहर घूमने की छुट्टी ले ली थी। शायद सौ रुपए लगे होगे। इसी मे चार नाइट क्लवो और दो फ्री ड्रिंक्स का कार्यक्रम शामिल था। यदि अलग से जाए तो वहुत ज्यादा खर्च पड जाता है।

एल्ब नदी के नीचे से हमारी बस गुजरी। ऊपर वेगवती नदी और नीचे जगमगाती रोशनी, बहुत चौडा रास्ता जिस के दोनो तरफ बसो,कारो और यात्रियो का आवागमन था। मैं सोच रहा था कि इतनी ज्यादा ट्रैफिक है पर रुकावट का कही नाम नही। हमारे कलकत्ते मे हावडा पुल पर आफिस के समय की भीड के कारण भरोसा नही रहता है कि समय पर ट्रेन पकड भी सकेगे। यदि हम भी इन की तरह हुगली नदी के नीचे हावडा और कलकत्ता को मिलाने वाली सडक तैयार कर सके तो आवागमन सुविधाजनक हो जाएगा। जिस से हावडा अचल भी कलकत्ते की तरह ही उन्नत और समृद्ध हो जाएगा।

रात्रि क्लब सर्वत्र एक से है। अन्य लेखो मे इन की चर्चा कर चुका हू। जिस प्रकार नशा सेवन करने वाले धीरेधीरे नशीली चीजो की मात्रा बढाते जाते है। उसी तरह का रवैया रहता है इन क्लवो मे भी। पहले कैवरे और बार रहे होगे, फिर पेरिस के फाली ब्रुजे की तरह भडकाने वाले दृश्य और नृत्य दिखाए जाने लगे। उन के बाद आए नग्न नृत्यो के क्लब। इन सब मे कोशिश यही रहती है कि कामोद्दीपन ने लिए दृश्य, वातावरण और तरीको मे नयापन रहे ताकि ग्राहक जुटते रहे, ऊबें नही।

उस दिन जिन क्लबो मे हम गए, उन मे दो तो वहुत साधारण थे और एक 'त्रातला' नाम का विशिष्ट साजसज्जा का क्लव था। इस मे केवल प्रवेश शुल्क ३० रुपए है। यहा ज्यादातर राजनीतिक नेता या अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति ही तफरीह के लिए जाते हैं।

चौथा नाइट क्लव, जहा हम ले जाए गए, 'रीपरवान' नाम का था। यह 'सैंट पाली' नामक मल्लाहो के बदनाम महल्ले मे है और यह प्रमुख रूप से मल्लाहो तथा सैनिको का क्लब है। यदि अकेला जा पहुचता तो भयभीत हो जाना कोई वडी बात न होती। यो भी जिस वक्त हम इस मे पहुचे उस महल्ले मे मारधाड, शोरशरावा हो रहा था। सभी देशो के स्त्रीपुरुष दिखाई पडे। भारतीय नाविक भी थे। यूरोप की लडकियो के अलावा चीनी, मिस्री व नीग्रो लडकिया वडी निर्लज्जता से नाविको की छेडछाड को प्रोत्साहन दे रही थी।

इन क्लवो मे रोशनी धीमी रहती है, शायद इसलिए कि लिहाज या शर्म भी उसी के अनुसार कम है। हम सब लगभग २५ यात्री थे, साथ में दो गाइड थे। हर रात यह टूरिस्ट एजेंसी यात्रियो को यहा लाती है। गाइड क्लब वालो के परिचित थे इसलिए यात्रियो के साथ किसी प्रकार के दुर्व्यवहार की सभावना नही थी।

हम क्लब मे दाखिल हुए तो जिन्हे पीना था, उन्होने हलकी या कडी शराब अपनी रुचि के अनुसार ले ली। पहला कार्यक्रम हुआ नाच का। इस मे यात्री भी शमिल हो गए। ज्योज्यो नशा गहरा होता गया, नाच भी तेज होता गया। फिर बाजे और सगीत तो सहायक थे ही। नाच व उछलकूद शोरचीख की सीमा पर पहुच कर समाप्त हुआ। थकावट दूर कर के उद्दीपन या उत्तेजना को कायम रखने के लिए शराब का एक दौर और चला।

दर्शक पी कर मतवाले हो रहे थे। अब स्टेज का शो शुरू हो गया। कथानक और दृश्य, हमारे यहा की मर्यादा के अनुसार बहुत ही अश्लील थे। हम भाषा जानते नही थे किंतु हावभाव से समझ रहा थे। दिखाया गया कि दो मल्लाह, दो लडकियो के यहा गए। चारो ने एकसाथ बैठ कर खूब शराब पी। उस के बाद एकएक कर कपडे उतारने शुरू कर दिए। जब सभी नगे हो गए तो किसी बात पर आपस मे झगडा हो गया।

झगडा होने पर लडकियो ने उन की जो पिटाई की उसे देख कर मुझे तो सिहरन सी हो आई। ऐसा लगा कि मैं अपने यहा की फ्रीस्टाइल कुश्ती का दगल देख रहा हू। लात और घूसो की मार तो थी ही, वे दातो से भी काट रही थी। हालत यह हो गई कि चारो के शरीर पर से जगहजगह से खून बहने लगा।

हाल मे रोशनी कम थी पर स्टेज पर फ्लैश लाइट से तेज प्रकाश किया गया था। मल्लाह भी वापसी वार करते थे पर हर वार लडकियो की चोटे तगडी बैठती थी। आखिर जब वे दोनो मार खातेखाते बेहोश हो गए तो लडकियो ने उन्हे कधे पर उठा कर भीतर की ओर फेंक दिया। उन्होंने एक हाथ पर छोटा सा रूमाल बाध रखा था। मै ने गाइड से पूछा, "सारा शरीर तो बिल्कुल नगा है, फिर बाह पर रूमाल क्यो ?"

उस ने बताया, "हमारे यहा बिलकुल निर्वस्त्र होना कानूनी तौर पर अपराध है। कानून की पाबदी के इस नए तरीके को सुन कर मुझे हसी आ गई। दर्शको में जो स्त्रिया थी वे लडकियो की जीत देख कर तालिया बजा रही थी ओर आवाजे कस रही थी। मैं यह सोचने लगा कि अफ्रीका के जगली तो सभ्य बनते जा रहे है, कपडे पहनने लगे है और जहा कपडे नही है वहा पत्तो का आवरण बना लेते है, मगर यूरोप के ये सभ्य कहलाने वाले लोग नगे हो कर इस प्रकार से उछलकूद मचाते है!

जिस समय हम होटल पहुचे, रात के दो बज चुके थे। मै ने इन चार घटो मे जो कुछ देखा, उस से मन मे एक प्रकार की अशाति सी अनुभव होने लगी। दूसरे दिन मिसेज जिगलर से नाइटक्लब का जिक्र किया। वह सहज भाव से हंस कर कहने लगी, "हमारे यहा इस प्रकार की मान्यता है कि मारपीट से प्रेमीप्रेमिका मे उत्तेजना ओर पारस्परिक प्रेम बढता है। ये सारे

दृश्य उसी पर आधारित होते है ।"

मैं ने कहा, "हमारे यहा भी ऐसा मानते है । हजारो वर्ष पहले वात्स्यायन ने अपनी पुस्तक 'कामसूत्र' मे आपस मे दात और नख से प्रहार करने का उल्लेख किया है । पर वह सब एकांत मे होता था, इस तरह सैकडो दर्शको के सामने नही ।"

मै १६५० मे जब इन के घर आया था, वही मकान अब भी था पर आज वह खंडहर एक सुदर बगला बन गया था । चारो तरफ छोटा सा बगीचा भी था । बेहतरीन फर्नीचर था और पोर्टिको मे खडी थी दो 'मर्सिडीज' कारे । श्रीमती जिगलर ने अपने मृत देवर की पत्नी को भी बुला लिया था । पहले मैं ने उसे विधवा देखा था पर अब उस ने फिर मे विवाह कर लिया है । पति विज्ञान के प्रोफेसर है, वह भी साथ आए थे ।

नाश्ते के समय तरहतरह के विषयो पर चर्चा होती रही । कामधधे के बाद जरमन साहित्य, इतिहास और कला पर भी बातचीत हुई । हमे प्रोफेसर से कई बातो की जानकारी मिली । विज्ञान के आचार्य होने के साथसाथ उन्हे इतिहास और साहित्य का भी अच्छा ज्ञान था ।

बातचीत के सिलसिले मे समय का अदाज न लगा । घडी पर नजर गई तो देखा, दस बज रहे थे । हम ने उन से विदा मागी । उन्होने अपनी गाडी मे हमे हमारे आवास तक पहुचा दिया ।

समय कम रह गया था, फिर भी हमारी इच्छा थी कि जरमनी के भीष्म पितामह बिस्मार्क का निवास और स्मारक देख लिया जाए । बिस्मार्क ने जरमनी के एकीकरण मे प्रमुख भाग लिया था । वह लोहपुरुष माने जाते थे । यूरोप की राजनीति मे अपने जमाने मे उन की बडी प्रतिष्ठा थी । टैक्सी द्वारा हम सैसनवाल्ड नामक उपाचल मे गए । बहुत ही सुदर बगीचे के बीच बिस्मार्क का महल है । उन के काम आने वाली सारी चीजे यहा के सग्रहालय मे रखी हुई हैं । ऐतिहासिक दस्तावेज भी सुरक्षित है ।

पास ही मे बिस्मार्क की कब्र भी हम ने देखी । देखते समय उन्नीसवी शताब्दी के जरमनी का इतिहास स्मरण हो जाता है । किस प्रकार इस अद्भुत क्षमतासपन्न व्यक्ति ने ४३ वर्षो तक अथक परिश्रम कर के अपनी सूझबूझ से जरमनी को यूरोप के देशो में शक्तिशाली और शीर्ष स्थान का अधिकारी बनाया । मुझे भारत के लोहपुरुष बल्लभभाई पटेल की याद हो आई । इस प्रकार के महानपुरुष ही राष्ट्र की मर्यादा, प्रतिष्ठा और शक्ति बढा सकते है ।

जो पांच सौ वर्षो से चैन से नहीं बैठ सका

तुर्की

स्वराज्य आदोलन के दिनो मे खिलाफत का नाम अकसर हम सुना करते थे। इस के पक्षविपक्ष मे उन दिनो बडेबूढो मे बहस भी जोरो से होती थी। खिलाफत के सिलसिले मे महात्मा गाधी, मौलाना शौकत अली और मुहम्मद अली की भी चर्चा हो जाती थी। उन दिनो हम बच्चे थे और इन बातो को समझते नही थे। बस इतना ही समझते थे कि अगरेजो ने तुर्कों के साथ अन्याय किया है।

आगे चल कर जब हम स्कूल से निकले तो कमाल पाशा तुर्की का बेताज का बादशाह हो गया था। लोग उसे अतातुर्क यानी तुर्कों का पिता कहने लगे थे। उस की बहादुरी और सुधारो की बाते सुनने मे आई। तुर्की को यूरोप का मरीज मुल्क कहा जाता था। अब लोग कहने लगे, नवजीवन और नई चेतना ले कर तुर्की उठ रहा है।

तुर्की और भारत का उन तीनचार वर्षो का इतिहास बहुत कुछ साम्य रखता है। वहा का सुलतान हमारे देशी राजामहाराजाओ अथवा नवाबो की तरह अपने स्वार्थ के लिए विदेशी अगरेजो और ग्रीको से मिल गया था। हम महात्मा गाधी के नेतृत्व मे अगरेजो से राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए अहिसात्मक सग्राम कर रहे थे जब कि मुस्तफा कमाल पाशा अपने चुने हुए बहादुर सैनिको और साथियो के साथ अपने देश की स्वतत्रता के लिए दो बडे दुश्मनो से एक ही साथ टक्कर ले रहा था।

निष्ठा निष्फल नही जाती। आखिरकार १९२२ की जुलाई मे अजेय अगरेजो को तुर्की से बोरियाबिस्तर बाधना पडा और अगले एक महीने के अदर ही तुर्क सैनिको ने स्मर्नी कि यूद्ध मे ग्रीक सेना को भी तहसनहस कर डाला। किसी प्रकार जान बचा कर बहुत ही थोडे ग्रीक सिपाही भाग सके। तुर्को के बदलते रग को देख कर उन के सुलतान मुहम्मद उसी वर्ष नवबर मे देश छोड कर भाग निकले और माल्टा द्वीप मे अगरेजो के शरणापन्न हुए। सुलतान मुहम्मद के इस पलायन के साथसाथ ४७५ वर्ष की ओटोमन सल्तनत का भी विश्व के रगमच पर से पटाक्षेप हो गया।

शत्रु का शत्रु भले ही अपरिचित हो, उस के लिए मैत्री की भावना जाग उठती है। हमारे देश पर अगरेजो का दमनचक्र जोरो से चल रहा था। वे अत्याचार और उत्पीडन करते जा रहे थे। जलियावाला बाग के घाव ताजा थे, रौलट एक्ट बन चुका था। लिहाजा, कमाल पाशा न केवल तुर्को का ही आदर्श नेता था बल्कि भारत मे भी लोकप्रिय हो गया। राष्ट्र सुधार के उस के तौरतरीको को भारतीय जनता बडे चाव से लक्ष्य करने लगी।

तुर्की इसलामी राष्ट्र रहा है। मुल्लामौलवियो का रोब और दबदबा सदियो से वहा के जनजीवन को प्रभावित करता रहा है। सुलतान भाग चुका था पर मुल्लामौलवी अभी वहा थे। ऐसी स्थिति मे प्रारभ मे तो कमाल पाशा ने इसलाम को राज्यधर्म के रूप मे मान्यता दी किंतु अपनी शक्ति प्रभुता के बढते ही एक वर्ष के अदर तुर्की को धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित कर दिया।

उस की दृष्टि मे इसलाम विदेशी धर्म था। इसे वह तुर्कों के लिए विदेशी सस्कार समझता था। इसलाम का जन्म अरब मे हुआ और वही से प्रसारित होता हुआ तुर्की मे आया था। अरबो ने अगरेजो की मदद से तुर्की को काफी परेशान किया था। इसलिए अपने शासन सगठन को व्यवस्थित करते ही उस ने इसलामी मदरसे बद करा दिए और कडे कानून बना कर परदे की प्रथा पर प्रतिबध लगा दिया। यहा तक कि मसजिदो मे अजान तक अरबी मे देना निषिद्ध कर दिया। अपने चौदह वर्ष के शासनकाल मे उस ने तुर्की को यूरोपीय ढग से काफी हद तक सस्कारित किया और यूरोपीय राष्ट्रो की पक्ति मे उसे ला कर खडा किया।

उन वर्षो मे सारे विश्व मे मदी का जोर था। ससार के व्यवसायी और औद्योगिक राष्ट्र आर्थिक असतुलन से परेशान थे पर कमाल पाशा का तुर्की अपनी आर्थिक, सामाजिक और सामरिक उन्नति की दिशा मे अग्रसर होता जा रहा था। वास्तव मे ही कमाल अतातुर्क, तुर्कों का पिता, चरितार्थ हुआ। तुर्क उस के नाम पर जान की बाजी लगाने को तैयार रहते। उन्होने उसे सुलतान और खलीफा दोनो का सम्मिलित पद देना चाहा किंतु कमाल ने इनकार कर दिया। उसे न अपनी फिकर थी, न अपने परिवार की। नि स्वार्थ भाव से उसने राष्ट्र की सेवा आजीवन की।

भारत से यूरोप जाने पर तुर्की रास्ते मे पडता है। बिना अतिरिक्त किराए के इस की राजधानी अकारा और प्रसिद्ध नगर इस्तबूल को देखा जा सकता है। पर अधिकतर यात्री इस सुविधा का लाभ नही उठाते। सभवत तुर्की के बारे मे जानकारी न होने के कारण वे इसे छोड देते है। यूरोप के लदन, पेरिस, रोम, बर्लिन के नाम पहले से सुने रहते है, इन्हे देखने की उत्सुकता भी रहती है इसलिए सीधे वही पहुच जाते हैं।

सन १९५० मे यूरोप की प्रथम यात्रा मे वहा के विभिन्न देशो को देखने का अवसर मिला। वापसी मे इटली के नेपल्स से सीधे काहिरा को देखता हुआ स्वदेश आ गया था। दूसरी बार सन १९६० मे रूस के अतिरिक्त यूरोप के कुछ और नए देशो मे गया। तुर्की देखने का आग्रह मन मे था पर अत मे समयाभाव के कारण इस बार भी वह छूट गया। १९६४ मे विश्वभ्रमण का प्रोग्राम बना। उस मे मै ने सावधानी के साथ तुर्की भ्रमण का कार्यक्रम निश्चित किया। और इस बार चूकि हमें विभिन्न राष्ट्रो की आर्थिक स्थिति और व्यवस्था का अध्ययन करना था इसलिए तुर्की को अपने प्रोग्राम मे शामिल करना जरूरी भी था।

देश छोडे ४५ दिन हो गए थे। भारत से बर्मा, दक्षिण पूर्वी एशियाई देश, जापान, अमरीका और यूरोप के अधिकाश देश अपने कार्यक्रम के अनुसार हम ने देख लिए। ग्रीस की राजधानी एथेस जब पहुचे तो गरमी सताने लगी। ठडे देशो से आने के कारण यहा का मौसम गरम लगा। इधर घर की याद भी आ रही थी। हम तीनों साथी विचारविमर्श के लिए बैठे। तय हुआ कि तुर्की और लेबनान तो देख लिया जाए, पाकिस्तान की यात्रा स्थगित कर दी जाए।

ग्रीस और तुर्की पडोसी देश है। दोनो की राजधानी की दूरी केवल ४०० मील है इसलिए जेट विमान से एथेस से इस्तबूल केवल ४५ मिनट मे ही पहुच गए। एयरपोर्ट देख कर ही पता चल गया कि तुर्की पश्चिमी देशो से भिन्न है। अब भी वहा मेहदी से रगी दाढिया नजर आ जाती है। लबे अमामे चोगे पहने मौलवी और मुल्ला दिखाई पडे। महिलाए बुरके मे

तो न थी किंतु वह स्वच्छदता नही थी जो पश्चिमी देशो मे दिखाई पडती है। अब भी वे सहमी सी रहती है। धर्मनिरपेक्ष तुर्की पर आज भी कट्टर इसलामी संस्कार है। भले ही बुरके हट गए है और मरदो ने कोटपत्तलून पहन लिए है। हवाई अड्डे मे इतजाम भी वैसा चुस्त न था जैसा कि जापान, यूरोप और अमरीका मे देखने मे आया। सफाई और सजावट भी कम थी।

यहां भारतीय राजदूत श्री मेहता राजस्थान के उदयपुर अचल के है। उन से पहले से जानपहचान थी। उन्होने हमारे दो दिन के प्रवास के कार्यक्रम की बहुत ही सुदर व्यवस्था कर दी। सपूर्ण तुर्की देखना इतने कम समय मे सभव नही था। इसलिए हम ने विशेष रूप से इस्तबूल को देखने का निश्चय किया। व्यापार व उद्योग का यह केद्र है और ऐतिहासिक नगरी भी है। प्राचीन और आधुनिक तुर्की की झाकी यहा एक साथ मिल जाती है। हमारे कार्यक्रम मे प्रमुख लोगो से मिलने के साथसाथ नगर के विख्यात राजमहल, म्यूजियम और मसजिदो का देखना भी शामिल था।

तुर्की एशिया और यूरोप दोनो महाद्वीपो मे है। किंतु इस का अधिकाश भाग एशिया में है। बोसफोरस की सकरी जलप्रणाली दोनो महादेशों को पृथक करती है। इसी के दोनो ओर इस्तबूल बसा हुआ है। आबादी है १५ लाख। यही यहा का प्रमुख बदरगाह और नगर है। दिल्ली की तरह यहा भी २५०० वर्ष पुराने स्मारक सुदूर गौरवमय अतीत की साक्षी देते है तो सामने खडा कई मजिलो का आधुनिक हिल्टन होटल उसे देख हसता सा दिखाई देता है। संसार के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगरो मे इस्तबूल की गणना होती है। समय के साथ नाम भी इस के बदले— कास्टेनटाइनोपल, कुस्तुनतुनिया और अब इस्तबूल। नाम भले ही बदलते रहे पर आज भी इसे यूरोप और एशिया का सगम माना जाता है।

चार दिन पहले हम आस्ट्रिया के विश्वप्रसिद्ध नगर वियना मे थे। वहा की स्वच्छता, शुद्ध और ठडी हवा के बाद यहा के पुराने महल्लो का गदा वातावरण घुटन सी पैदा कर रहा था। विदेश भ्रमण पर जाने वाले भारतीय बधुओ को मैं राय देना चाहूंगा कि जाते समय ही उन्हे अरब के देश, मिस्र, तुर्की, और ग्रीस देख लेने चाहिए ताकि गरमी और उमस की तकलीफ महसूस न हो।

बहुत दिनो बाद बर्फ डाले हुए तरबूज के ठडे शरबत को पी कर धोतीकुर्ते मे शहर घूमने निकले। शहर के बीच मे बहती हुई गोल्डन हौर्न नदी को स्टीमर से पार कर दूसरे हिस्से मे जा पहुचे। हमे सान सोफिया की ऐतिहासिक मसजिद देखनी थी।

एक भव्य एव विशाल गिरजे के कुछ भाग मे थोडा सा हेरफेर कर मसजिद का रूप देने के लिए बाहर चारो कोनो पर चार मीनारे खड़ी कर दी गई है। भीतरी हिस्सा अब भी पहले की तरह है। नीले मुजाएक से कुरान की आयते अरबी अक्षरो मे खूबसूरती से लिख दी गई है। हमारे लिए ऐसे परिवर्तन बहुत आश्चर्यजनक नही है क्योकि काशी, मथुरा और दिल्ली मे इस ढंग की बहुत सी इमारते है। गाइड ने हमे बताया कि सन ३३५ मे सम्राट कास्टेनटाइन ने इसे बनवाया था और अपने समय के बेजोड गिरजो मे इस की मान्यता थी। सगमरमर और मुजाएक की तरहतरह की टालियों पर कुमारी मरियम की बहुत ही सुदर और विशाल मूर्ति खुदी हुई है जिस के सामने सम्राट कास्टेनटाइन घुटने टेक नतमस्तक इस पवित्र गिरजे को उसे भेट कर रहा है। सजीदगी के साथ पवित्रता की साफ झलक उस के चेहरे पर है। यहा का वातावरण बहुत ही शात था।

गाइड ने इस गिरजे के निर्माण का इतिहास बताया तो हम विचारो मे डूब गए। हैलियोपोलिस का प्रसिद्ध सूर्य मदिर और लैकोनिया के कई प्रसिद्ध मदिरो को तोड़ कर उन के सामान से इस गिरजे का निर्माण किया गया। गाइड ने हमे पत्थरों पर उत्कीर्ण उन प्राचीन प्रतीको और चिन्हो को दिखाया। मैं खो सा गया। कुछ ऐसा ही कुतुबमीनार देखते समय मुझे लगा था। गाइड बताता जा रहा था, हजारो निरीह व्यक्तियों की हत्या और अग्निकाड भी इसी

के लिए हुए। कास्टेनटाइन इतिहास मे अमर बनना चाहता था। इस प्रसिद्ध गिरजे का निर्माण कर अपने को ईसाई धर्म का सर्वोच्च सरक्षक कहलाने की उस की उत्कट आकाक्षा थी।

लगभग ११२० वर्ष बाद जब सम्राट कास्टेनटाइन का बाइजन्टाइन साम्राज्य इतिहास के पृष्ठो मे सिमट चुका था तब एक दिन इस गिरजे के सामने सुलतान फतह मुहम्मद आ खडे हुए। इसलाम की फतह की निशानी के बतौर उन्होने इसे मसजिद बना देने का हुक्म जारी किया। सूर्य मदिर के पत्थरो से बना हुआ सोफिया का गिरजा अब मसजिद बन गया। माता मरियम की प्रार्थना की जगह कलमे पढे जाने लगे। मैं सोच रहा था कि प्रत्येक धर्म की मान्यता रही है, शाति और लोक कल्याण। पर इन के अनुयाइयो ने ज्यादातर विपरीत कर्म ही किए। धर्म के नाम पर निरीह स्त्रियो और बच्चो की हत्या की। धर्म स्थानो को नष्ट किया। चाहे वह भारत की काशी या मथुरा हो या फिर तुर्की का कुस्तनतुनिया, आखिर ऐसा क्यो ? क्या तलवार की धार पर ही बहिश्त का दरवाजा खुलता है ?

यो तो ओटोमन तुर्क सम्राट क्रूर और दुर्धर्ष थे फिर भी जहा तक सोफिया के गिरजे का प्रश्न है उन्होने इसे तोडा नही बल्कि अपने मूलरूप मे ही रखा, यह एक आश्चर्य का विषय है। मैं एक पत्थर की बेच पर बैठ गया। वातावरण मे एक प्रकार की घुटन सी थी। सूर्य मदिर ढह गया। हमारा सोमनाथ भी तो ढहा है। धर्म के नाम पर इतना अत्याचार ! प्रसिद्ध लेखक इरफान ओर्गो ने लिखा है, 'सोफिया की मसजिद मे इतने विभिन्न धर्मो के देवता इकट्ठे हो गए है कि शायद वे स्वय एक प्रकार की घुटन महसूस कर रहे हैं।'

कमाल अतातुर्क की दूरदर्शिता से आज वह न सूर्य मदिर है, न गिरजा और न मसजिद, बल्कि एक राष्ट्रीय सग्रहालय है, जहा हजारो यात्री प्रति दिन विदेशो से इसे देखने आया करते है।

यहा से हम ओटोमन सुलतानो के महल देखने गए। समुद्र तट पर थोडी ऊचाई पर एक बहुत बडे घेरे के अदर ये बने हुए है। सन १९२३ के बाद जब अतिम सुलतान भाग गया, तब से इसे राष्ट्रीय सग्रहालय बना दिया गया। गाइड से हमे जानकारी मिली कि सुलतान भागते समय अपने साथ अधिकाश कीमती सामान, जेवर और जवाहरात ले गए। फिर भी जो बचा, उन्ही को यहा सजा कर रखा गया है। बची हुई चीजे भी कम नही है। इन्हे देख कर एक साथ ही भय और विस्मय होता है। यह भी अदाज होता है कि उस समय के तुर्की सम्राट कितने बली और कामुक हुआ करते थे।

आश्चर्य तो यह है कि लबे अरसे तक इन्हे जनता अपना प्रतिनिधि, अपने राष्ट्र का प्रतीक कैसे मानती रही है ? पाक इस्लाम के ये खलीफा थे। प्राचीन ग्रीक ओर रोमन सम्राटो की तरह युद्धो मे इन्हे स्वय जाना पडता था। इन के नेतृत्व मे युद्ध सचालित होते थे। अतएव बडेबडे हथियारो के सचालन की क्षमता इन के लिए आवश्यक थी। इसलिए बचपन से ही इन के खानपान और तालीम की निगरानी रखी जाती थी। अच्छे पहलवान और अनुभवी युद्ध विशारदो की देखरेख मे तुर्की शाहजादे प्रति दिन वर्जिश करते थे। सुलतान स्वय युद्ध सचालन करते हुए इसलामी जोश के साथ जूझते थे।

जहा युद्ध के समय की इन की अद्भुत वीरता की कथाए है, वही शातिकाल मे इन की भोगविलासिता एव कामपिपासा की चर्चाए भी बेजोड ही है। सुलतानो के दरबार मे सैकडो तजुर्बेकार हकीम रहते थे। इन का काम यही था कि इन की ताकत और कुव्वत कायम रखे। जवाहरात और धातुओ के कुश्ते तैयार होते रहते थे। बूढे सुलतानो मे जवानी का जोश पेदा कराने की हरचद कोशिशे चलती रहती थी।

इस के पूर्व हम ने वर्साई और वियना के प्रसिद्ध राजप्रासाद देखे थे। किंतु उन मे और तुर्की सुलतानो के महलो मे एक स्पष्ट अतर है। उन महलो मे भव्यता थी, कला और सौदर्य के निखार के साथ, जब कि तुर्की सुलतानो के महल बेशुमार दौलत, हथियार और ऐय्याशी के

साजोसामान की एक वेतुकी वडी प्रदर्शनी लगा रहे थे । कारण स्पष्ट है । साम्राज्ञी मेरी अंतोनिता और मरिया थ्रेरेस्सा सुसस्कृत पूर्वजो की सतान थी जब कि ओटोमन सुलतान बर्बर और उद्दड तुर्क सेनापतियो के वशज थे । वास्तव मे ही सस्कार बहुत वडा प्रभाव उत्पन्न करते है ।

म्यूजियम के प्रथम कक्ष मे पिछले छ सात सौ वर्ष मे काम मे लाए गए हथियार रखे थे । मध्ययुग मे दुश्मनो और बागियो को सजा देने के लिए उपयोग किए गए औजार और हथियारो को देख कर कपकपी आ जाती है । कही सिर फोड़ने के लिए मनो वजन के हथौड़े तो कही तीखे काटे लगी गोल अलमारिया । इन मे मनुष्य को खडा कर नीचे से ज्योज्यो चक्का घुमाया जाता था, घेरा छोटा होता जाता और पूरे शरीर को छेद डालता था । उन दिनो मे फासी या गोलियो से मौत के घात उतारना हल्का दड समझा जाता था । इस के अलावा उद्देश्य यह भी रहता था कि दूसरे देशो के लोग इन कठोर यातनाओ को देखसुन कर भयभीत रहे और सिर न उठा सके ।

युद्ध के समय पहनने के लिए जिरहबख्तर भी यहा नाना प्रकार के देखे । घोडे और हाथियो के जिरहबख्तर भी थे ।

अन्य हथियारो के साथ हम ने यहां भीम की सी गदा भी देखी जिस के गोले पर नुकीले कीले जड़ी थी । नाना प्रकार के धनुषवाण देखे । तुर्की तीरदाजी मे मशहूर रहे है । पुराने ढंग की बदूके रखी थी, पाचछ फुट लबी, भद्दी और बेडौल । किंतु तलवारे, किर्च, भाले और नेजे वडे शानदार थे । इन की मूठो पर चादी और सोने की खूबसूरत नक्काशी थी । कइयो मे वेशकीमती जवाहरात जडे थे ।

दूसरे कक्ष मे सुलतान और वेगमो की सैकडो प्रकार की पोशाके थी । इन पर जरी और गोटे का काम किया हुआ था । प्राय सब पर हीरे, पन्ने, मोती और माणिक जडे थे । गाइड ने वताया कि तुर्की सुलतानो के हरम भोगो के खजाने थे । दुनिया के हर देश से लडकिया खरीद कर, भगा कर, लूट कर यहा दाखिल की जाती थी—एक से एक कमसिन और हसीन । हजारो की सख्या मे बेगमो की जमात होती थी । इस के अलावा खूबसूरत लडके भी सैकडो की तादाद मे रखे जाते थे । इन्हे गिल्मे कहा जाता था । बादियो और हिजडो की तो गिनती ही नही । आज भी तुर्को में यह शौक कुछ न कुछ मात्रा मे है ।

इसी कक्ष मे जवाहरात जडे सोनेचादी के लगोट से देखने मे आए । इन मे सामने की ओर छोटा सा सुराख था और ऊपर की ओर एक छोटा सा ताला लगा हुआ था । हमारे लिए यह विलकुल नई चीज थी । पूछने पर पता चला कि सुलतान किसी यात्रा पर अथवा लडाई पर वाहर जाते तो कुछ वेगमो और बादियो को तो अपने साथ ले जाते थे, बची हुई बेगमों के गुप्तांगो पर ये तालाबद लगोट लगा दिए जाते थे । वहुत दिनो पहले पढ़े हुए एक लेख की याद आ गई । उस मे इन्हे 'चेस्टिटी बेल्ट' कहा गया था । सोचने लगा, 'स्वय अनेक प्रकार के भोगो मे लिप्त रहते हुए निरीह बेगमो पर इस प्रकार के अत्याचार कहा तक वाजिब थे ?' लगोटो के आकारप्रकार को देख कर वडी ग्लानि हो रही थी । इन्हें पहन कर कितनी शारीरिक और मानसिक यत्रणा और यातना रहती होगी । मातृजाति का जघन्य अपमान ही तो था । हमारी सस्कृति मे तो ऐसी कल्पना तक भी किसी ने न की ।

हम ने अरब देशो के इतिहास मे पढा था कि उन देशो मे नारियो के प्रति आदर की भावना सदैव कम रही है । पैर की जूतियो से उन की तुलना की गई है ।

हम तीसरे कक्ष मे आ गए । आभूषण, हीरे, पन्ने, नाना प्रकार के रत्न तथा सोनेचादी के सामान सजे हुए थे । सैकडो सोने के दीवट (दीपक रखने की ऊची स्टूल) देखे, इन मे से प्रत्येक का वजन लगभग पदरह सेर था । आज के सोने के भाव से इन मे से एकएक का मूल्य दो लाख रुपए से ऊपर ही होगा । इन दिनो बिजली थी नही । महल के कक्षो में बड़ेबडे दीपक जलाए जाते थे । इन की मोटीमोटी वत्तियो के लिए तेल, घी, मोम या चर्बी का उपयोग किया

जाता था। सोने के बडेबडे हुक्के भी दिखाई पडे। तरहतरह की नक्काशी और मीनाकारी इन पर थी। किसीकिसी की नली तो पदरहबीस फुट से भी ज्यादा लबी। ठोस सोने के जेवर भी सजे थे। बेहतरीन हीरेपन्ने और मोती जडे विभिन्न देशो की कारीगरी के ऐसे जडाऊ गहनो की प्रथा हमारे देशमे भी रही है। मगर यहा के गहनो की बनावट हमारे यहा से कुछ भिन्न थी। दो बेशकीमती पन्ने देखे। छोटे का वजन था तीन पाव और जडे का पौने दो सेर। हम ने आज तक हीरेपन्ने या नगीनो का वजन माशारत्ती मे सुना था पर सेर दो सेर के तौल के भी ये हो सकते है, इस का अनुभव यही हुआ।

कीमत के बारे मे मै ने पूछा, तो उत्तर मिला, 'कीमत दे कर तो शायद ही कोई इन्हे खरीद सके क्योकि एक प्रकार से ये अमूल्य है। दुनिया मे कही भी इस प्रकार के बडे पन्ने उपलब्ध नही है। आप के यहा कोहेनूर का अपना इतिहास रहा है, उसी ढग का इन पन्नो का भी है।'

बात सही थी। कोहेनूर की कीमत भी नही आकी जा सकी। महाराजा रणजीतसिंह की याद आ गई, उन्होने इस की कीमत दो जूतिया बताई थी। स्पष्ट है, उन का इशारा था बलवान की शक्ति।

इन पन्नो के अलावा हमने यहा, अडो के आकार के आबदार मोती देखे। वैभव, विलास की विचित्र वीथियो के बीच यही विचार उठ रहे थे कि ये सारी कि सारी चीजे धरी रह गई। जिन्होने इन्हे बटोरा वे स्वय मिट गए। आज उनके नामोनिशान नही। फिर लूटखसोट, वासना, लिप्सा की क्या उपलब्धि रही? शायद भोगो की क्षणभगुरता को समझकर ही हमारे सम्राट भरथरी और सिद्धार्थ ने राज्य और गृह त्याग किया था। रघु, कर्ण और हर्ष के सर्वस्व दान की चर्चाए भी भारतीय इतिहास मे भरी पडी है।

गाइड ने हस कर कहा, "जनाब, इन्ही को देखकर आप हैरत मे आ गए? चलिए बेगमात के हरम अब आपको दिखा दू।"

हरम मे छोटेछोटे सैकडो कमरे थे। पहले ही तीन कक्षो मे हमारा काफी समय लग चुका था। गरमी महसूस हो रही थी, थकावट आने लगी। बेगमो और गिल्मो के कक्षो को हमने सरसरी तौर से देख लिया। हमे ऐसा लगा कि सुदर और सजे-सजाए कैदखाने है। ऊचीऊची दीवारो के बीच बडी उदासी का वातावरण था। शायद यहा उनकी उदासी भरी आहों का असर अब भी है। दीवार और दरवाजे दहशत पैदा करने के लिए काफी है। इन पर तगडे ख्वाजासराओ (हिजडो) का पहरा रहता था। हमे बताया गया कि इन हिजडो को इकट्ठा करने के लिए दुनिया के हर कोने मे सुलतान अपने विश्वस्त अनुचर भेजते थे। युद्ध के बाद की जीत की शर्तो मे धनदौलत और स्त्रियो के साथ इनकी माग भी की जाती थी।

दोपहर का समय हो चला था। भूख भी लग आई थी। होटल वापस आ गए। श्री मेहता ने लच का निमत्रण दिया था। तुर्की के कुछ विशिष्ट व्यक्ति भी आमत्रित थे। अब तक हम विदेशो मे बिना मसाले की साकभाजी खाते आ रहे थे। यहा मसालेदार सब्जिया मिली। हमारे देश से भी ज्यादा मसाले डालने का यहा रिवाज है। बीसियो प्रकार के आमिष व्यजन बने थे। हमारे लिए खासतौर से चावल का पुलाव, नान और कई तरह के अच्छे स्वादिष्ट फलो के रस थे। साथ मे दही और फल भी थे। तुर्की कई तरह के अच्छे स्वादिष्ट फलो के लिए मशहूर है।

हम सब आठ या दस व्यक्ति थे। एक ही टेबल पर बैठे। वैसे यूरोप मे और आजकल तो भारत मे भी होटलो मे सामिष और निरामिष-भोजी एक साथ बैठकर भोजन करते है। यहा एक विचित्र प्रथा है। सम्मानित व्यक्तियो के लिए विविध प्रकार की छोटीबडी मछलिया पानी के टबो मे रखी जाती है। भोजन के समय उन्हे पसद के लिए लाया जाता है और उसके बाद तलकर तश्तरियो मे सजाकर पेश किया जाता है। मेरे लिए तो यह दृश्य बडा वीभत्स सा

था, उबकाई आने लगी । बडी मुश्किल से अपने को रोक पाया । मुसलिम देशो मे भोज चीनियो की तरह काफी समय तक चलता रहता है । नाना प्रकार की चीजे तैयार होती रहती है, फरमाइशें और विभिन्न विषयो पर आलाप-आलोचना का क्रम चलता रहता है । श्री मेहता ने हमारा परिचय यहा के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ हमीद बे से कराया । वे पहले ससद के सदस्य थे । श्री मेहता के अच्छे मित्रो मे है । मेहता जी को उसी दिन किसी जरूरी काम से अंकारा जाना था इसलिए उनको हमारी देखभाल की जिम्मेदारी सौप गए ।

भोजन के उपरात श्री बे के साथ हम उनके फ्लैट मे गए जो समुद्र तट पर था। तबियत ताजा हो गई । खूब खुले दिल से बाते हुई । तुर्की की वर्तमान शासन व्यवस्था और विदेशो से सबध की चर्चा हुई । तुर्की के इतिहास के सबध मे उन्होने कहा कि आश्चर्य है कि लोग मिस्र की सभ्यता को सबसे प्राचीन बताते है । हमारे देश के खडहर स्पष्ट कह रहे है कि आज से छ सात हजार वर्ष पूर्व हम मिट्टी के बर्तन और पत्तो के घरो के युग से आगे बढ़े हुए थे । यह बात जरूर है कि मिस्र के पिरामिड करोडो मन के ठोस पत्थरों के बने है । जिन पर आग, पानी या मौसम का असर नही और हमारे आपके प्राचीन स्मारक जमीन मे दब गए और मौसम के थपेडो की चपेट मे आ गए ।

मैंने कहा, "मेरी कुछ ऐसी धारणा यहा आने पर बनी कि भारत के साथ आपके देश का सपर्क और सबध बडा प्राचीन रहा होगा । सूर्य मदिर के ध्वसावशेष सुमेरियन सभ्यता के प्रभाव का सकेत करते है । सुमेरु का उल्लेख बहुत बार हमारे यहा आया है । आपके यहा के प्राचीन राजा असुरबानी माल का नाम बडा परिचित सा लगा ।" हसते हुए मैंने यह भी कहा, "हमारे पुराण इतिहास मे देवअसुर सग्राम के बहुत से उदाहरण मिलते है । शायद बहुचर्चित असुर आपके यहा हुए थे ।"

तुर्की के इतिहास के विभिन्न पक्षो की चर्चा करते हुए उन्होने बताया, "आज का तुर्की वस्तुत ओटोमन सुलतानो की ठोस बुनियाद का नतीजा है । सन् १४५३ मे ओटोमन (उस्मान) सुलतान मुहम्मद ने डेढ लाख फौज के साथ आक्रमण किया और कौस्टेनो को पराजित कर यहा मजबूत मुस्लिम साम्राज्य स्थापित किया । उन्ही के वशज सन १९२२ तक राज्य करते रहे । ४७५ वर्षों के सुदीर्घ काल तक एक ही वश का शासन विश्व के इतिहास मे बहुत ही कम मिलता है । सोलहवी शताब्दी तक तुर्की सुलतानो ने मिस्र और सीरिया के अतिरिक्त पूर्वी यूरोप के बहुत से देशो को जीत लिया । उनकी फौजे मध्य यूरोप के आस्ट्रिया की राजधानी वियना तक पहुच गई । तुर्की सेना के वीरो की कथाए आज भी न केवल तुर्की मे बल्कि यूरोप मे भी चर्चित होती है ।

"म्यूजियम मे रखे इन के हथियारो और जिरहबख्तरो को देखकर आपको इनकी शारीरिक क्षमता का अदाज़ हो गया होगा । आप यूनान से आ रहे है । वहा तुर्को के बारे मे कहा जाता है कि हम बडे क्रूर और नृशस थे । हजारो बादिया, गिल्मे और बेगमो की जमात हरमो मे होती थी । हम जबरन मुसलमान बना लेते थे । यह सब कुछ अशो मे रहा होगा । मगर यह भी न भूल जाना चाहिए कि उस युग मे ईसाइयो ने भी इसलाम को उखाडने के लिए कम जुल्म नही किए । पिछले पाच सौ वर्षो मे यूरोप के ईसाई मुलको के साथ हमारे कई जग हुए । हमे अमनचैन से बैठने का मौका ही नही मिला । मगर तुर्क हारकर फिर बीसतीस वर्षो बाद बदला लेते थे । दोगुने जोश से हमला करते थे और अपनी खोई जमीन और इज्जत ही नही बल्कि गुलाम और बेशुमार दौलत और हथियार हासिल करते थे । यही रवैया था और यही रिवाज रहा है ।

"हमारे यहा के सुलतान मुल्क के बादशाह थे और कौम के खलीफा (धर्म गुरु) । इसलिए जितनी भी लडाइया लडी गई, उन्हे तुर्को ने जिहाद (धर्मयुद्ध) माना । जग मे जीतने पर जानिसार सिपाहियो को लूट के माल के अलावा बादिया और गिल्मे बतौर इनाम के दिये,

जाते थे। लडाई मे मरने का खोफ था नही, क्योंकि जिहाद मे जन्नत मिलती और जन्नत मे भी तो हूर और गिल्मे है।

बडी साफ अंग्रेजीमे हमीद साहब भावपूर्ण वर्णन कर रहे थे। कहने लगे, "तुर्क किसी भी कीमत पर आजादी का सौदा नही पसंद करता। हम पिछड गए थे। कुछ दकियानूसी भी हो गए, जमाने के साथ कदम नही रखा। शुक्र है कमाल अतातुर्क का, उन्होंने नयी जिन्दगी दी। हम अमरीका के प्रति भी कृतज्ञ है। उन्होंने हमे बेशुमार दौलत, फौजी मदद के साथ उद्योगधधे और शिक्षा की सहायता दी। अमरीका ने महसूस किया कि तुर्क एक बहादुर कौम है जो आन के लिए खुशी से मौत को चूम लेती है। दुनिया के इस भाग मे साम्यवाद को रोकने के लिए उसे एक बहादुर साथी चाहिए था। हम से बढ कर कौन?

"हम से अमरीका को कभी शिकायत का मौका नही मिला। साम्यवाद की हवा मे एक जहरीला नशा होता है। कुछ असर कभीकभी यहा के कालेज के लडको पर भी हो जाता है। वे साम्यवादियो के बहकावे मे आकर कभीकभी अमरीकी दूतावास के सामने प्रदर्शन भी करते रहते है। मगर यह जुनून कायम नहीं रहता, क्योंकि तुर्कियो का विश्वास जनतत्र मे है।"

शाम होने लगी। विदा करते समय श्री बे ने मेरे दोनो हाथ मिला कर अपने सीने पर रख लिए। तुर्की मे विदाई के अभिवादन का यही तरीका है। कहने लगे, "इस्तबूल तुर्की नही है, देहात को भी देख लीजिए। चारपाच दिन और रुक जाइए। हमारे ऐतिहासिक स्थान और खडहर, कृषि और उद्योगधधो से आप को हमारे देश का सही परिचय मिलेगा।" बडे स्नेह के साथ विदा किया।

शाम हो गई थी फिर भी प्रकाश था। दूतावास के सचिव के साथ हम इस्तबूल का नया हिस्सा देखने गए। इस अचल मे पूर्वी यूरोप के शरणार्थी बडी सख्या मे बसे हुए है। जैसेजैसे रूसी साम्यवाद के प्रभाव मे पडोसी राष्ट्र आते गए, उन देशो के बहुत से लोग, जो उस विचार धारा की चपेट को नही सभाल पाए, देश त्याग कर यहा आ गए। उन मे से कुछ, जो सम्पन्न थे, उन्होने व्यापार, व्यवसाय यहा आ कर शुरू कर दिया। बाकी जो गरीब थे उन की हालत कलकत्ते के आसपास बसे शरणार्थियो की तरह है।

मुझे अपने यहा के सन १९४७ की याद आ गई। पाकिस्तान के जुल्मो ने कितनो को बेघरबार कर दिया। बिना मुआवजा दिए कितनो की सपत्ति हडप ली गई। साम्यवादी देश धर्म के नाम पर न सही पर अपने सिद्धान्त के नाम पर भी तो यही करते है। धर्म और सिद्धात मे अतर ही क्या है?

तुर्की मे अगस्त मे फलो की बहुतायत लगी। सेब के आकार के पीच (आडू) केवल दोदो पैसे मे हमने खरीदे। बडे सुस्वादु थे। छोटेछोटे बच्चो ने फलो की टोकरिया लिए हमे घेर लिया। सभी अपने फल दिखाकर खरीदने के लिए कहने लगे। शायद सुबह फल भरी टोकरियो का बोझ सिर पर लाद कर चले थे। अब रात हो रही थी इसलिए घर वापस जाने की फिक्र मे थे। इनमे कुछ तो आठ-दस वर्ष के ही थे। सुदर गौर वर्ण और स्वस्थ थे मगर कपडे फटे थे। प्रभुदयालजी ने बिना जरूरत बहुत से फल खरीद लिए। मैं सोच रहा था, 'जीवन की विषमताए सभी जगह है चाहे वह धनी देश हो या गरीब, स्वीडन हो या तुर्की।

नये इस्तबूल मे कोई खास आकर्षण लगा नही। कलकत्ते या बम्बई की तरह सडके, बसे और स्टोर थे। बाजार और दुकानें देखते हुए होटल वापस आ गए। फल इतने खा लिए थे कि भोजन भी नही किया।

दूसरे दिन सुबह बेरुत के लिए रवाना हुए। हवाई जहाज एयरपोर्ट का चक्कर लगाता हुआ उत्तरपूर्व की ओर बढा। नीचे इस्तबूल ओझल सा हो रहा था। किंतु तुर्की मन मे बैठा था।

अरबी संस्कृति का प्रतीक
बेरुत

अपनी सन १९६१ की यात्रा मे बेरुत होकर स्वदेश लौटने का प्रोग्राम था लेकिन कुछ तो सफर की थकान और कुछ देश लौटने की प्रबल इच्छा के कारण हम सीधे काहिरा से भारत आ गए। यहां आने पर मित्रो ने उलाहने दिये कि बिना अतिरिक्त व्यय के लेबनान न देखकर तुमने एक सपन्न और सुदर देश को देखने का मौका खो दिया, दो-तीन दिन और लग जाते, मगर अरब और अरबी सस्कृति को नजदीक से देख लेते वे

खैर, १९६४ मे फिर अवसर मिला। हम विश्वयात्रा समाप्त कर के इस्ताबूल से भारत वापस आ रहे थे। रास्ते मे लेबनान की राजधानी बेरुत मे ठहरने का निश्चय किया।

बेरुत फ्रीपोर्ट है। कस्टम की जाच यहा कडाई से नही होती। हमे भारतीय दूतावास के सचिव लेने आए थे इसलिए दोएक बात पूछ कर ही औपचारिकता के घेरे से छुट्टी मिल गई। होटल की बुकिंग हम ने पहले से ही करा रखी थी क्योकि हबर्ग और वेनिस में ऐसा न करने का कटु अनुभव हो चुका था।

हम जिन देशो से होते आ रहे थे, उस के मुकाबले मे रोम, एथेंस और इस्ताबूल के होटल का स्तर घटिया था। हमारी धारण थी कि कुछ इसी प्रकार बेरुत में होटल भी होगे, किंतु जैसे ही हम होटल मे गए, वहा की साज़सज्जा, व्यवस्था और खिदमतदानी देख कर तबीयत खुश हो गई। ऐसा लगा कि एशिया के देशो मे भी पर्यटन व्यवसाय पर अब समुचित ध्यान दिया जाने लगा है। बहुत ही सुंदर कमरे, रेडियो और बेहतरीन फर्नीचर। मेजो पर लेबनान के दर्शनीय स्थानो, वहा के इतिहास, भूगोल और पर्यटको के लिए आवश्यक जानकारी की पुस्तकें रखी थीं। इन्हे पढ कर यात्रियो को काफी सुविधा रहती है क्योकि उन्हे अपनीअपनी रुचि के अनुसार क्याक्या देखना है, सिक्के की कीमत क्या है, होटल, मनोरजन के स्थान, रात्रिक्लब, थियेटर, सिनेमा, ट्रेन, बस और आवागमन के अन्य साधन तथा इसी प्रकार की अन्य बातो आदि की आवश्यक जानकारी मिल जाती है।

स्थानीय भाषा के आवश्यक शब्दो का अनुवाद भी अगरेजी और फ्रेंच मे इन पुस्तको मे रहता है। इस के अलावा सुदर जिल्द की एक बाइबिल भी हमे मेज पर रखी दिखाई पडी। पता चला कि स्थानीय बाइबिल एसोसिएशन धर्मप्रचार मे करोड़ो रुपए प्रति वर्ष खर्च करती है। सोचने लगा कि हमारे देश में भी धार्मिक सस्थाए और मठ है, जिन के पास बहुत बडी सपत्ति है, पर उन के माध्यम से विदेशो मे हिंदू धर्म के प्रचार के लिए शायद ही कुछ काम

होता है। हां, रामकृष्ण मिशन जरूर अपवाद है। जिस समय हम होटल पहुचे, रात हो गई थी। इसलिए उस दिन कही नही जा पाए। भोजन करके अगले दिन का कार्यक्रम बनाने और लेबनान के बारे मे आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के बारे मे चर्चा करने लगे।

लेबनान अरब के लैवात अचल मे है। भूमध्य सागर के पूर्वी छोर का यह छोटा सा अरब राष्ट्र है। इस के दक्षिण मे इजराइल है और उत्तर तथा पूर्व मे सीरिया। इस छोटे से राष्ट्र की स्थापना तुर्क साम्राज्य के पाच जिलो को मिला कर हुई थी। १६२० मे यह स्वाधीन हुआ पर १६४० तक इस पर फ्रास का सरक्षण रहा। अब यहा का शासन जनता द्वारा निर्वाचित सरकार करती है। ससद द्वारा छ वर्ष की अवधि के लिए राष्ट्रपति चुना जाता है।

हमे बताया गया कि यह सब से छोटा अरब राष्ट्र है। आबादी है इक्कीस लाख। पाच लाख लोग अकेले बेरुत मे ही रहते है। आबादी मे से आधे मुसलमान हैं और आधे ईसाई। मैं सोच रहा था कि यह भी एक देश है जिस का कुल क्षेत्रफल चार हजार वर्ग मील है। इतना तो हमारे एक जिले का होगा और जनसख्या कलकत्ता की एक तिहाई मात्र है। फिर भी इस की अपनी सरकार है, शासन है, सेना है और यह सार्वभौम स्वतत्र राष्ट्र है।

लेबनान मे खाद्यान्न का उत्पादन यहा की जनसख्या के लिए पर्याप्त नही है क्योकि अधिकाश भूभाग बस केवल जगल और पहाड़ है। केवल २३ प्रतिशत भूमि पर खेती होती है। पेट्रोल का उत्पादन भी नगण्य है, केवल सोलह लाख टन प्रति वर्ष जब कि इस से भी छोटे देश कुवैत का वार्षिक उत्पादन साढे ग्यारह करोड टन और इस के पडोसी देश सऊदी अरब का वार्षिक उत्पादन दस करोड टन है।

यहा फलो की पैदावार अच्छी होती है। सवा पाच लाख टन अगूर, सेब और माल्टा यहा होते है। लेबनान को प्रकृति ने धनी नही बनाया है फिर भी यह चौधराने से अच्छी आय पैदा कर लेता है। विश्व में पेट्रोल की आय के कारण सब से अधिक अमीर देश कुवैत और सऊदी अरब का विदेशी व्यापार लेबनान के माध्यम से होता है। 'ईराक आयल कपनी' के किरकुक आयल फील्ड से त्रिपोली तक पाइप लाइन है। इसी प्रकार 'ट्रासअरब आयल कपनी' की पाइपलाइन भी सऊदी अरब से यहा के बदरगाह सईदा तक है। इन देशो का तेल लेबनान के बंदरगाहो से ही विदेशो में निर्यात किया जाता है। आज की दुनिया मे पेट्रोल को 'तरल सोना' माना जाता है। कुवैत, सऊदी अरब, ईराक आदि को पेट्रोल से बेशुमार आमदनी होती है। लेबनान अपने बदरगाहो के उपयोग का किराया तो पाता ही है, अन्यान्य डिस्काउट वगैरह भी पाता है। बीसवी शताब्दी के शुरू मे लदन जिस प्रकार यूरोप के व्यापार का माध्यम था उसी प्रकार इस समय अरब देशो के लिए लेबनान की राजधानी बेरुत है।

यात्रिक व्यवसाय यहा की आमदनी का दूसरा बडा स्रोत है। भौगोलिक दृष्टि से लेबनान पूर्व और पश्चिम के देशो को जोडने वाली कडी है। इसी लिए बेरुत हवाई जहाजो के आनेजाने का एक महत्त्वपूर्ण पडाव बन गया है। यात्रियो के लिए यहा क्लब, होटल और मनोरजन के तरहतरह के आकर्षक साधनो को प्रचुर प्रश्रय दिया गया है। दोनो ओर के यात्री दोचार दिन का समय यहा के लिए निकाल ही लेते है। आकडो को देख कर पता चलता है कि १६६४ मे यहा लगभग पाच लाख पर्यटक आए जिन से इन्हे करीब अस्सी करोड रुपये की आमदनी हुई। मतलब यह कि यहा की जनसख्या के हिसाब से प्रति व्यक्ति ४०० रुपए की आय हुई जो कि कुल मिला कर हमारी वार्षिक प्रति व्यक्ति आय के लगभग है।

अन्य यूरोपीय व एशिया के पूर्वी देशो की तरह इन्होने भी रात्रि क्लबो को काफी तडकभडक वाला बना रखा हैं। ज्यो ही हम होटल पहुचे, साफ अगरेजी बोलने वाले दोतीन व्यक्ति बारीबारी से आ कर मिले। वे यहा के रात्रि क्लबो के एजेट थे। इन्होने लच्छेदार शब्दो मे इजिप्शियन ब्यूटी, न्यून क्लब, न्यूड नृत्य आदि के बारे मे बडेबडे प्रलोभन दिए। हागकाग, होनोलूलू, पेरिस और हबर्ग जैसे विलासिता के लिए मशहूर शहरो के रात्रिक्लब

हम देखते आ रहे थे। इन जगहो मे न्यूड नाइट क्लब तो दिखाई पडे थे पर नगे स्त्रीपुरुषो के नृत्य आयोजित करने वाले क्लबो के बारे मे यही आ कर सुना था। यो तो फ्रास, जरमनी और आस्ट्रिया मे न्यूड क्लब वर्षो से हैं, साल में दसपंदरह दिन के इन के कैंप भी लगते है पर इन मे नग्न नृत्य का प्रोग्राम नही रहता।

दरअसल इन का उद्देश्य भिन्न होता है। प्रकृति से अधिकाधिक सपर्क को प्रोत्साहन देना। इन के शिविरो मे सभी सदस्य नगे घूमतेफिरते है पर इन मे कामुकता भडकाने को प्रश्रय न दे कर वासनाओ को रोकने की ओर प्रयास रहता है। मुझे इन क्लबो मे जाने का मौका तो नही लगा लेकिन परिचितो से यही जानकारी मिली। हमारे यहा भी हजारो वर्षो से नागा सप्रदाय के लोग ऐसे ही रहते आ रहे है। हमारे यहा जैन साधुमुनि भी दिगबर ही रहते है। हां, विदेशो के दिगबर क्लबो मे स्त्रिया रहती है, हमारे यहा नही, यह एक भिन्नता अवश्य है। इस के अलावा हमारे यहा आध्यात्मिक दृष्टिकोण को महत्त्व दिया गया है, उन के यहा नही।

एजेटों को हमारे पास से निराश हो कर लौटना पडा। उन्होने समझा कि या तो हम परले सिरे के अरसिक हैं या कजूस। कम से कम उन की शक्ल से यही जाहिर हो रहा था, भले ही उन्होने हमे मौखिक धन्यवाद दे दिया। इन अरब देशो के रात्रि क्लबो के आसपास मारपीट और लूटखसोट की वारदातो के बारे में हम ने काफी सुन रखा था। इसलिए रुचि न होने पर भी महज अनुभव के लिए ही इतना बड़ा जोखिम उठाना हम ने वाजिब नही समझा।

अगले दिन सुबह नाश्ता कर के हम अपने दूतावास गए। बेरुत मे हमारे कौसल एक पजाबी सज्जन थे। अरब देशो के बारे मे उन का अध्ययन अच्छा था। भारत के साथ अरब देशों के वाणिज्य, व्यापार, आयातनिर्यात आदि के बारे मे उन से बाते हुई। उन्होंने स्पष्ट तो नही कहा क्योकि सरकारी पदाधिकारी थे, फिर भी उन की बातो से हमे अदाज मिला कि हमारे मत्री प्रति वर्ष अमरीका, ब्रिटेन, रूस और जरमनी तो जाते रहते है, पर हमारी सरकार अरब देशो को तृतीय श्रेणी का मानती है और इन की तरफ अपेक्षित ध्यान भी नही देती। जापान, फ्रांस और इटली जैसे उन्नत देश भी अपने विशिष्ट मत्रियो को समयसमय पर इन देशो मे भेजते रहते है जब कि हमारे देश से सचिव या उन से नीचे के अफसर ही यहा आते है।

प्रतिक्रिया यह होती है कि भारत के ऐसे रवैए को यहा वाले एक प्रकार से अपना अपमान समझते है। यदि हम उपेक्षा की नीति बदल कर अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपना ले तो अरब देशो मे हमारी चीजो का निर्यात बडे पैमाने पर हो सकना सभव है।

कौसल महोदय ने यह भी बताया कि रौकफेलर, फोर्ड, रुथचाइल्ड और निजाम हैदराबाद के वैभव और दौलत को इन देशो के शेखो ने मात दे दी है क्योकि 'तरल सोने' की धारा इनकी धरती मे बह रही है। उन की बाते तथ्यपूर्ण थी क्योकि हम ने खुद भी होनोलूलू, लदन, कोपेनहेगन और वेनिस मे इन्हे पानी की तरह रुपए बहाते देखा था।

इन देशो मे हमारे माल की खपत मे बाधा पहुचाने वाले जिस दूसरे कारण का उल्लेख उन्होने किया उसे सुन कर हमारा सिर लज्जा से झुक जाना स्वाभाविक था क्योकि हम खुद व्यापारी समाज के थे। उन्होने बताया कि हमारे शिल्पोद्योग की जो वस्तुए यहा पहुचती हैं उन की क्वालिटी और माप दोनो के बारे मे अकसर शिकायते आती है। भारत मे जब वह इन चीजो के निर्माताओ को पत्र लिखते है तो या तो जवाब ही नहीं आता और बारबार लिखने पर यदि आ भी गया तो सतोषजनक नही होता। यहा तक कि चीजो की किस्म

भविष्य मे सुधारने का आश्वासन तक नही मिलता । ऐसी स्थिति मे स्थानीय व्यापारियो को भारतीय वस्तुओ से सतुष्टि नही मिल पाती । नतीजा यह हो रहा कि इन देशो मे भारतीय माल की साख घट गई है ।

अरब देशो के ग्राहको की धारणा है कि सिवा चीन और पाकिस्तान के दुनिया के सभी देश अपने निर्यात की वस्तुओ की पूर्णता के बारे मे भारत से कही अधिक ईमानदार और सावधान रहते है ।

लगभग दो घटे तक हम अपने कौसल के साथ रहे । ऐसा लगा कि वह हमे समझाना चाहते थे कि हमारे उद्योगपतियो को व्यवसाय के लाभ के साथसाथ राष्ट्रीय सम्मान और साख का भी ध्यान रखना चाहिए । इस दिशा मे सरकार को भी ऐसी नीति अपनानी चाहिए कि स्टैडर्ड से हलके माल निर्यात करने वालो को दड मिले ।

हम ने दिल्ली आ कर अपनी जो रिपोर्ट व्यापार मत्री को दी उस मे इन सब बातो का उल्लेख कर दिया गया था ।

लेबनान की आर्थिक और औद्योगिक व्यवस्था के बारे मे हमे जानकारी लेनी थी । हमारे दूतावास ने वहा के व्यापार मत्री से उसी दिन सध्या का समय मुलाकात के लिए तय कर रखा था । हम ने दूतावास के लोगो को सहयोग के लिए धन्यवाद दिया और विदा ली ।

रोम, एथेस और इस्ताबूल से ही गरमी महसूस होने लगी थी पर यहा तो वह एक प्रकार से सताने हीलगी ।बाजार मे अधिक न घूम कर हम सीधे होटल वापस आ गए ।

तीन बजे दूतावास के सचिव कार ले कर आए । हम उन के साथ मिस्टर अफ़ज़लबेग के दफ्तर मे गए । अपने मुख्य सचिव और अन्य सहायको को भी उन्होने बुला रखा था । औपचारिक रूप से पारस्परिक परिचय हुआ । भारत के ऐतिहासिक और सास्कृतिक महत्त्व पर बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ । गाधीजी और नेहरूजी के बारे में वह कहने लगे कि कई शताब्दियो बाद ही इस प्रकार के अमन के पैगबर पैदा होते है । इन दोनो महान विभूतियो को विश्व अभी समझ नही पाया है । सत्य, अहिसा और पचशील के सिद्धांतो को अमल मे लाने के तरीके जो गाधीजी और नेहरूजी ने बताए है, वे गिरते हुए मानव समाज की राहत के लिए एक मात्र उपाय है।दुनिया चाद तक पहुचने का प्रयास कर रही है मगर वह यह नही समझती कि अपने नामोनिशान को मिटाने के लिए उस ने हाइड्रोजन बम और राकेट इस के पहले खुद ही तैयार कर रखे है ।

'इशा अल्लाह !' कह कर इस चर्चा को समाप्त कर वह अपने विषय पर आए । कहने लगे कि लेबनान और हिन्दुस्तान के ताल्लुकात कदीमी है क्योकि दोनो की तहजीब पुरानी है । जुबल (बिलोस) पोर्ट शायद दुनिया मे सब से प्राचीन है । भारत की बड़ीबडी समुद्रगामी नौकाओ से बेहतरीन सामान हमारे यहा हमेशा से आते रहे है और इसी रास्ते यूरोप को भेजे जाते रहे है । सिर्फ यही नही, अरबो ने भारत से ही गिनती सीखी और आज भी हम अको को हिंदसा कहते है ।

गणित, ज्योतिष, और दर्शन के सिद्धात हिंदुस्तान से बराबर हमारे यहा आते रहे है जिन्हे हम से यूनान ने सीखा और उन से यूरोप ने । हस कर कहने लगे, आज हम उन मुल्को से पिछडे है मगर खैर है कि हम महसूस करते है कि जमाने के साथ हमे कदम रखने है इसलिए कुछ पुराने तरीके जो आज के जमाने मे बेकार और दकियानूसी साबित हो रहे है, हम छोड रहे है । लेबनान इस ओर दूसरे अरब मुल्को से ज्यादा ख्याल रखता है, इस का आप ने अदाज किया होगा ।"

हम ने बताया, "सिवा मिस्र के हम अन्य किसी अरब मुल्क मे अब तक नही गए है । फिर भी इतना हम जरूर कहेगे कि आप के मुल्क मे आधुनिकता के प्रति लोगो मे झुकाव अधिक है और साप्रदायिक सकीर्णता भी कम है ।"

कुछ देर चुप रह कर वह कहने लगे, "लेबनान ने इतिहास के इशारे को समझा है। हमे फख्र है कि हम अपने कदीमी इखलाख को हामिल करने की तरफ बढ रहे है। खेती की पैदावार को आधुनिक तरीके से बढा रहे हैं। हमे उम्मीद है कि आने वाले दो तीन वर्षो मे हम इस मामले मे आत्मनिर्भर हो सकेंगे।"

उन्होने लेबनान की राष्ट्रीय आय ५०० करोड रुपयो की बताई। इस का मतलब है २,५०० रुपए प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष। हालाकि लेबनान केवल ५० करोड रुपयो के माल का निर्यात करता है लेकिन क्योकि कुवैत और सऊदी अरब का माल यहा के बदरगाहो से आताजाता है इसलिए इन्हे ३६० करोड रुपयो की अतिरिक्त प्राप्ति हो जाती है।

शिक्षा की प्रगति के बारे मे जो सुना, उस से आश्चर्य होना स्वाभाविक था। अरब देशो मे इजराइल को छोड कर सभी देश मुसलमानो के है। हमारी धारणा थी कि पाकिस्तान के मुसलमानो की तरह यहा भी धर्मांधता होगी और हर मामले मे कुरान और हदीस के बाहर की चीजो को ये भी कुफ्र मानते होगे। मिस्र में कुछ हद तक भ्रम का निवारण हुआ था पर उसे मैं ने आधुनिकता का थोडा सा प्रभाव मात्र समझा था। लेनिन लेबनान मे जीवन की गतिविधि और शिक्षा के प्रचारप्रसार के आकडो को जान कर अपनी धारणा मे सशोधन करना पडा।

इस छोटे देश मे आधुनिक सुविधाओ और सामग्री से लैस चार विश्वविद्यालय है। यहा हजारो स्कूल चल रहे है जिन मे लगभग तीन लाख पैसठ हजार विद्यार्थी और दस हजार अध्यापक हैं। इन के अलावा मुल्लामोलवियो के कुछ पुराने ढग के मदरसे भी है।

बातचीत के सिलसिले मे हमे बडे साइस्ता ढग से इशारा दे दिया गया कि यदि हिंदुस्तान अपनी चीजो का स्टैंडर्ड अच्छा रखे तो लेबनान की मारफत मध्यपूर्व मे भारतीय सामग्री की अच्छी खपत हो सकती है। हम पहले से ही अपने उद्योगो के स्टैंडर्ड के बारे मे सुन चुके थे। प्रभुदयालजी मुसकरा कर कहने लगे, "शुरू मे दिक्कते कुछ हो जाती है मगर हमे उम्मीद है कि हमारे माल के बारे मे शिकायत का मौका नही मिलेगा।"

चाय के साथ उन्होने अपने देश के बेहतरीन अगूर ओर माल्टा भी आग्रहपूर्वक खिलाए। बचपन मे देखा था, काबुल से बहुत मीठे अगूर आते थे, काठ के गोल डब्बो मे रुई मे लिपटे हुए। यहा के अगूरो ने उस मधुरता की याद ताजा कर दी।

विदा करने के लिए वह नीचे गाडी तक आए। उन का अनुरोध था कि हम लोग लेबनान की पहाडियो मे रमणीक जगहो को जरूर देख ले।

बाजार से गुजरते हुए हम ने देखा कि जगहजगह भारतीय फिल्मो के इश्तहार लगे हुए है। हमे अपने दूतावास के सचिव से पता चला कि भारतीय फिल्मो की यहा अच्छी माग रहती है, लोग उन्हे पसद भी करते है। इस कारण बहुत से स्थानीय लोग हिंदी समझ लेते है। प्रभुदयालजी ने धीरे से कहा, "जो काम 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' और 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' न कर पाई और हमारी सरकार भी जिसके लिए अब तक स्पष्ट दिशा नही अपना सकी, उसे हमारे सिनेमा वालो ने कर दिखाया।"

बेरुत, फ्रीपोर्ट और यात्रियो के आकर्षण का नगर होने के कारण दुकानो मे हर तरह के सामान खूबसूरती से सजे थे। दाम भी वाजिब थे। चीजो को देखने और दाम की जानकारी के लिए हम कई स्टोरो मे गए। वहा सभी देशो की चीजे थी।

यहा एक ओर विशेषता देखी। अवैध व्यापार यानी तस्करी का धधा यहा बडे पैमाने पर होता है। शायद लेबनान सरकार को इस मे अच्छी आमदनी होती है क्योकि पडोसी देश मे आयात पर सरकारी नियत्रण और प्रतिबध है जब कि यहा पूरी छूट है। यही कारण है कि यहा से विदेशी माल पडोसी देशो मे जाता है। यहा के बाजार मे आसानी से सभी देशो के सिक्के बदले जा सकते है।

हम ने इस ढग की एकदो दुकानो मे जा कर सिक्को के भाव पूछे। अमरीकी डालर स्वीडिश क्रोनर और स्विस फ्राक की दर अधिकृत दरो से ऊची थी। ब्रिटेन के पाउड, पश्चिम जरमनी के मार्क और जापानी येन के भाव अधिकृत दरो के आसपास थे। भारतीय मुद्रा का मूल्य केवल ६० प्रतिशत था और पाकिस्तान का ५० तथा बर्मा का सिर्फ ३० प्रतिशत।

हमारे दूतावास के सचिव का विशेप आग्रह था कि यहा का विश्वविद्यालय जरूर देखना चाहिए। वहा जा कर उन के वार्षिक बजट, अध्ययन की विविध सुविधाए और व्यवस्था देख कर पता चला कि अमरीकी ईसाई सस्थाए इन देशो मे ईसाइयत के प्रचारप्रसार के लिए वेशुमार धन खर्च करती रहती है। हो सकता है कि इस के पीछे उन का कुछ दूसरा उद्देश्य भी हो, फिर भी यह तो मानना ही पडेगा कि वे भूखो को अन्न, नगो को वस्त्र और गरीवो को शिक्षा दे कर रोजी और रोजगार के काबिल तो बना ही देती है। हमारे देश मे भी ईसाई मिशनरिया ऐसा करती है। हम वहुत शोर मचाते है कि धर्म लूटा जा रहा है, हिंदुओ को प्रलोभन दे कर ईसाई बनाया जा रहा है आदि। पर जब हम अपने यहा के शौकीन मठाधीशो और महतो की जगलो और पहाडो मे कष्ट सहते हुए ईसाई पादरियो से तुलना करते है तो शका का समाधान अपने-आप हो जाता है।

अमरीकी विश्वविद्यालय मे हम ने देखा कि हर देश और हर रग के विद्यार्थी वहा है। सगीत, कला, शिल्प, इजीनियरिंग, नर्सिंग, चिकित्सा आदि सभी प्रकार के स्कूल और कालेज इस के अतर्गत है। अधिकाश अध्यापक लेवनानी है। छात्रो के अनुशासन, रुचि और अध्यवसाय से सचालको को पूर्ण सतोष है। पिछले वर्ष इस विश्वविद्यालय का शताब्दी जयती मनाई गई थी।

लौटते समय बाजार से ऊटगाडी गुजरती देखी जो एक प्रकार से हमारे राजस्थान जैसी ही थी। उसी तरह सामान लादे बेफिक्री से नकेल थामे गाडी वाला मोटर और ट्रको की उपेक्षा करता चला जा रहा था। अच्छा लगा कि दौडभाग की दुनिया मे कहीकही मस्ती की चाल अब भी दिखाई दे जाती है।

बाजार मे ऐसे ही घूमते रहे, खरीदारी कुछ करनी थी नही। अगले दिन के लिए एक गाइड और कार तय कर ली। हालाकि देखने के लिए कुछ विशेप था नही। सफर के आरभ और अत मे तवीयत मे शाहखर्ची आ ही जाती है।

दूसरे दिन गाइड के साथ घूमने निकले। गाइड का नाम था इस्माइल। वह तनिक मोटा जरूर था मगर था बडा खुशमिजाज। अगरेजी साफ जानता था और हिंदी के भी दोचार शब्द बोल लेता था। शुरू मे 'गाइडधर्म' के अनुसार करीव आधे घटे तक उस ने लेवनान और बेरूत के इतिहास के बारे मे बताया। लेबनान के इतिहास के सिलसिले मे उस ने ईसाइयो और मुसलमानो के बीच मध्ययुग की लडाइयो और तनाव की जो बाते बताई, वे सही जरूर रही होगी, पर हमे ऐसा लगा कि मुसलमान होने के नाते उस ने कुछ पक्षपात से काम लिया। उस ने बताया कि लेवनान का क्षेत्र मानव सभ्यता के प्रारभिक काल के प्रथम और द्वितीय चरण का है। खुदाई करने पर इस के प्रमाण मिले हैं और मिलते जा रहे है।

गाइड ने बताया, "नवी ईसवी मे यहां मुसलमान और ईसाइयो मे कई बार लडाइया हुई। अब भी होती है क्योकि ईसाई मुसलमानो को बहका कर कुफ्र की राह ले जाने की अपनी आदत से बाज नही आते। लेकिन इतना जरूर है कि अब तलवारो की जगह अकल और हिकमत से लडाई होती है। इसलाम को खतरे मे डाले रखने के लिए ईसाइयो ने अरब क्षेत्र मे यहूदियो को बसा कर इजराइल कायम किया है। यहा से इजराइल सिर्फ १५० मील और यरुशलम २००'मील की दूरी पर है। इजराइल को चारो ओर से अरब मुल्क घेरे हुए है। दुनिया के अमन के लिए इजराइल एक कायमी खतरा है। पिछले डेढ हजार वर्षो मे जितना खून हमारी इस जमीन पर बहाया गया है, उस की मिसाल शायद ही और कही

भाषाओ मे फ्रेंच यहा अधिक प्रचलित है क्योकि फ्रास के साथ हमारा सपर्क अधिक रहा है। अब कुछ वर्षो से अमरीकी ढग की अगरेजी का भी प्रचार हो रहा है।"

गाइड की बाते बडी रोचक और तथ्यपूर्ण लगी। उस ने बताया, "यहा एक कालिज है जहा गाइडशिप की शिक्षा दी जाती हे। देश के इतिहास, भूगोल, अर्थ नीति आदि के अलावा कई विदेशी भाषाए भी इन्हे सीखनी पडती है।"

पिछले ५० दिनो से विश्व के सुदर और समृद्ध शहरो को हम देखते रहे थे। इसलिए बेरुत मे हमारे देखने लायक विशेष कुछ था नही। फिर भी इस्माइल के साथ शहर के पुराने भाग के खडहरो को देखने के लिए कार से गए। हमारे कुतुबमीनार के पास महरोली या राजगृह और नालदा के खडहरो की सी इन की हालत थी। कुछ खुदाई भी यहा हुई है। प्राचीन काल के बरतन, मूर्तिया और गहने मिले है। असीरियन सभ्यता का यहा प्रभाव था। जो शायद आसुरी सभ्यता रही हो। हमारे पुराणो मे देवासुर के सघर्ष का जिक्र आता है।

ईरान का मध्य और पूर्वी क्षेत्र भारत से सबधित रहा है। इसलिए इन की सभ्यता और मूल सस्कृति से हमारा सामजस्य है। असीरियन सभ्यता ओर सस्कृति ने अरब और यूनान को प्रभावित किया है। शायद यही कारण है कि इसलाम, ईसाइयो ओर यहूदियो के धर्म मे कुछ हद तक सामजस्य मिलता है। खडहरो के बीच इन्ही बातो पर सोचने लगा। शायद यही आसुरी सभ्यता और संस्कृति इसलाम के रूप मे भारत मे फिर से आई।

पास के सग्रहालय मे भी कुछ चीजे रखी देखी। वेशभूषा, पहनावा, रथ, पशुपालन सभी तो जैसे जानेपहचाने से लगे, महाभारत, रामायण और पुराणो मे वर्णित से।

ध्यान टूटा। इस्माइल कह रहा था, "हमारी बदकिस्मती है कि यहा से काफी चीजे अमरीका और फ्रास के म्यूजियमो मे चली गई।"

मै ने ब्रिटिश म्यूजियम मे औरगजेब की लिखी कुरानशरीफ देखी थी और लदन टावर मे कोहेनूर हीरा। सोचने लगा, 'पराधीन देशो के साथ व्यवहार एक सा ही होता है, चाहे फ्रास करे या ब्रिटेन।'

पुराने बेरुत से बदरगाह पर आए। यह बदरगाह काफी बडा और आधुनिक साधनो से सुसज्जित है। यहा १७ बडेबडे जहाज एक साथ ठहर सकते हे और उन पर माल चढाया या उन से उतारा जा सकता है। ससार के सभी देशो के जहाज यहा आते हैं। सन १९६३ मे ३,१०० जहाज इस बदरगाह पर आए थे। इसी से यहा के कारोबार का सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

वापस जाते समय इस्माइल हमे यहा की बडी मसजिद मे ले गया तो भीतर से हमे यह इस्तबूल की मसजिद की तरह लगी यानी पुराने गिरजे के ढग की। हम ने इस बारे मे गाइड से पूछा तो उस ने कुछ झिझक के साथ स्वीकार किया, "बारहवी शताब्दी मे क्रूसेडरो (ईसाई धर्म के नाम पर युद्ध करते हुए बलिदान होने वाले वीर) ने इसे बनाया था। इस का नाम 'सैट जौन बैप्टिस्ट' चर्च था। बाद मे इसे मसजिद बना लिया गया।" इस्माइल के झिझक से लगा कि धर्म के नाम पर उपासना गृहो को खडित करना मुसलमान होने पर भी वह अन्याय समझता है।

इस्माइल से हम ने विदा ली। मै तो उस के व्यवहार से बहुत ही प्रभावित और खुश था। मुझे वह गाइड नही बल्कि एक अच्छा साथी लगा। 'खुदा हाफिज' कह कर जब उस ने विदा ली तो मैं ने दोनो हाथ अपने सीने से लगा लिए। उस की मुसकराती शक्ल आज भी याद आती है।

बेरुत से हमे पाकिस्तान जाने की व्यवस्था करनी थी। हमारे दूतावास ने इस के प्रति उत्साह नही दिखाया। इसलिए मेरे दोनो साथी दूसरे दिन सुबह वहा से सीधे दिल्ली के लिए

चले गए। मैं थोडा सा खतरा ले कर भी पाकिस्तान देखना चाहता था इसलिए विसा की कोशिश के लिए रुक गया।

काफी दिक्कत और हमारे दूतावास की कोशिश के बाद मुझे केवल दो दिनों के लिए कराची का विसा मिला। लाहौर के लिए फिर से कराची में पूछने के लिए कहा गया ..

इस्तंबूल से मेरे साथ एक पाकिस्तानी युवक बेरूत आया था। हवाई जहाज में परिचय हुआ। अपने कारोबार के सिलसिले में यूरोपीय देशों से होता हुआ वह पाकिस्तान लौट रहा था। उसने भी बेरूत में मेरे विसा के लिए काफी कोशिश की। वह खुद पाकिस्तानी दूतावास में हमारे दूतावास के सचिव के साथ गया। वह मन ही मन अपने देश के दूतावास के व्यवहार के प्रति खिन्न भी था किंतु झेप मिटाने के लिए उसने कहा, "पाकिस्तानी नागरिकों को भी भारतीय विसा मिलने में दिक्कत होती है।"

हमारे दूतावास के सचिव ने मुसकरा कर नम्रतापूर्वक इसका खंडन किया और बताया कि लगभग हर रोज पाकिस्तानी नागरिकों को भारतीय विसा यहां से दिए जाते हैं।

युवक का नाम याद नहीं है। उसकी बात से पता चला कि उसके कारोबार का हेड आफिस कराची में है। आयातनिर्यात का व्यवसाय है। उसका पिता और बड़े भाई वहां काम देखते हैं। और वह विदेशों में व्यापार और संपर्क बढ़ाने के लिए घूमता रहता है।

उसका सुझाव था कि मक्का और मदीना देख लिए जाएं। पास ही है। हवाई जहाज से सिर्फ दो घंटे लगते हैं। यदि विदेशी मुद्रा की कमी हो तो सारे खर्च की जिम्मेदारी वह खुद लेने को तैयार था।

मैंने सुन रखा था कि केवल मुसलमान ही उन स्थानों में जा सकते हैं किंतु उसने बताया कि ऐसी कोई खास पाबंदी नहीं है, कभीकभी यूरोपीय और अमरीकी यात्री भी वहां जाया करते हैं।

सैलानी मन में एक बार तो इच्छा जगी कि क्यों न इसलामी तीर्थों की भी यात्रा कर ली जाए, शायद ही जीवन में ऐसा मौका हाथ लगे, मगर उसी समय मन में एक शंका और हो आई कि वहां जाकर कहीं किसी संकट में न पड़ जाऊं। अकेला था, हमारी यात्रा के संचालक प्रभुदयालजी सुबह ही वायुयान से चले गये थे। यदि वह होते तो भी शायद ही स्वीकृति देते। मैंने अपने दूतावास को अपनी इच्छा बताई मगर उन्होंने भी इस हज यात्रा के लिए प्रोत्साहन नहीं दिया। मन को समझाकर रह गया। शाम को 'पाक' एयरवेज के जहाज से कराची जाना पूर्ववत निश्चित कर लिया।

हवाई जहाज तक पहुंचाने के लिए कराची का युवक अपनी कार के साथ आया। उसने अपना फोन नंबर दिया और एक परिचय-पत्र भी। कराची में अपने घर पर ठहरने के लिए अनुरोध भी किया। मैंने देखा कि पाकिस्तानी और हिंदुस्तानी इंसानों का जितना तनाव अपने देशों में है, उतना दूसरे देशों में नहीं रहता। ऐसा लगता है कि अगर व्यक्ति अपने निहित स्वार्थों से जरा हट कर एक-दूसरे से मिलें तो मन का द्वेष धुल जाता है। हिंदुस्तानी और पाकिस्तानी इतिहास, भाषा, पहनावे और रंग की एकता का अनुभव तभी होता है जब कि इन दोनों देशों की भौगोलिक सीमाओं से बाहर हम परस्पर मिलते हैं।

हवाई जहाज में जाते समय मुड़कर देखा, इस्माइल दौड़ता आ रहा है। हाथों में ताजे अंगूर का एक पैकेट उसने जल्दी से थमा दिया। मैं सिर्फ 'धन्यवाद' दे पाया, मगर बेशक उस लेबनानी गाइड ने एक हिंदुस्तानी दिल को हमेशा के लिए बांध लिया। यद्यपि ये सब बातें देखने-सुनने में बहुत साधारण सी लगती हैं, पर इनका प्रभाव स्थायी रह जाता है।

जो कभी भारत का ही एक अंग था

पाकिस्तान

स्वदेश मे रहने पर अपने देश के आकर्षण का अनुमान नही होता। लेकिन विदेशों मे ज्यादा समय रह जाने पर स्वदेश के प्रति कितना प्यार, कितना खिचाव होता हे, इसका अदाज तो व्यक्तिगत अनुभव से ही हो पाता है।

इस बार की विदेश यात्रा मे घर की याद जरा जल्दी अनुभव होने लगी। हम सुदूरपूर्व जापान से अमरीका गए और फिर यूरोप से तुर्की होते हुए मध्यपूर्व लेवनान की राजधानी बेरुत पहुचे। अब तक की यात्रा वडी मनोरजक रही।

पृथ्वी की परिक्रमा मे ५० दिन लगे, , पर अव ५१वा दिन न तो मुझे अच्छा लगा और न मेरे साथियो को ही। हमारे कार्यक्रम मे अभी पाकिस्तान की यात्रा वाकी थी, लेकिन दोनो साथी श्री प्रभुदयाल हिम्मत सिंह और श्री रामकुमार भुवाल का सीधे कलकत्ते की ओर उड चले। मै अपने कार्यक्रम मे रद्दोवदल नही करना चाहता था, इसलिए ३० अगस्त १९६४ को रात्रि के ११ बजे कराची के लिए रवाना हो गया।

वेरुत से कराची मुश्किल से ढाई घटे की उडान है। खिडकी के बाहर झाककर देखा, दूर पर बेरुत की रोशनिया कापतीकापती तेजी से गायव हो गई। मन नही लग रहा था। सोचा, 'पास बैठे सहयात्री से कुछ वाते करू।' देखा तो उसकी नाक नीद से वाते कर रही थी। होस्टेस ने मुझे परेशान सा देखकर स्नेह भरी मुसकान मे पूछा, "चाय या काफी ?"

'कुछ नही, धन्यवाद !" मेरा उत्तर था और मै आखे वद करके सोने की चेष्टा करने लगा।

जेट हवाई जहाज की गति तेज थी, पर मेरा दिमाग उससे भी तेजो से दौड रहा था— भारत और पाकिस्तान दिल्ली और रावलपिंडी हिंदू और मुसलमान इगलैड और हिंदुस्तान सत्याग्रह खिलाफत . दमन और शोषण की आधिया गाधीजी जिन्ना दगे फसाद चीखपुकार !

"हम कराची पहुच रहे है, कमरबद लगा ले," निर्देश सुनाई पडा। ध्यान भग हुआ। कुछ ही क्षणो मे विमान के चक्के धरती छू गए। घडी देखी रात के डेढ वजे थे।

कराची हवाई अड्डे पर भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव तथा एक अन्य पदाधिकारी लेने के लिए आए थे। इनकी सहायता से कराची के कस्टम की जाच से निकल पाया और

सीधे होटल एयर फ्रास मे जाकर डेरा डाला। जिन देशो से मैं आ रहा था, वहा के होटलो की तुलना मे इसका स्तर नीचा था। फिर भी,यह काफी व्यवस्थित था। पलग पर लेटते ही गहरी नीद मे खो गया।

सुबह देर से नीद खुली। अगस्त का महीना था और धूप बादलो से खेल रही थी। ठडे देशो की यात्रा करने के बाद यहा गरमी महसूस हो रही थी। तैयार होने के बाद नाश्ता किया और दस बजे भारतीय दूतावास पहुच गया। विदेश मत्रालय ने मेरे कार्यक्रम की सूचना पहले से ही उनके पास भेज दी थी तथा आवश्यक निर्देश भी दे दिया था। इस सबध मे निर्धारित कार्यक्रम तय था। होटल इपीरियल मे एक बजे लच था जिसमे दूतावास वालो ने पाकिस्तान के कुछ विशिष्ट व्यक्तियो को पहले से ही आमत्रित कर रखा था।

कुछ समय बाकी था। मै चाहता था कि पाकिस्तान के प्रतिष्ठाता कायदे आजम का मकबरा देख लू। अधिकाश विदेशी ऐसा ही करते है।एक प्रथा सी चल निकली है। हमारे यहा भी राजघाट पर गाधीजी की समाधि पर विदेशी पर्यटक और राजदूत वर्ग के लोग श्रद्धाज्ञापन करते है। कायदे आजम का मकबरा ज्यादा अच्छा नही लगा। कुछकुछ पीर के मजार जैसा वातावरण था। पास ही वजीरे आजम मरहूम लियाकतअली खा का मकबरा भी था।

हमारे दूतावास ने मुझे पहले ही सकेत कर दिया था कि पाकिस्तान मे बदिशे काफी है, विशेष रूप से भारतीयो के लिए, इसलिए जो अच्छा लगे उसकी ही चर्चा की जाए और जो न रुचे उसका जिक्र न करे।

शहर के जिस हिस्से से गुजर रहा था, उसमे कोई नयापन नही था। ऐसा लगता था कि कलकत्ता के सर्कस ऐवेन्यू या बेग बगान से गुजर रहा हू। विदेशो में भारतीय शक्ल देखकर लोग नजर उठाते है, पर यहा हमशक्ल होने की वजह से ऐसा कुछ नही था।

लच के लिए होटल पहुंचा। बहुत दिनो बाद भारतीय भोजन का स्वाद मिला।यो तो विदेशो मे कभीकभी दूतावासो मे यह मौका मिल जाता था, फिर भी ठेठ हिंदुस्तानी खाना नही बन पाता था। भोजन के समय आमत्रित पाकिस्तानी मेहमानो से केवल औपचारिक बाते ही होती रही, क्योकि हमारे दूतावास ने पहले ही बता दिया था कि राजनीतिक चर्चा यहा की सरकार पसद नही करती। थोडी देर मे ही वातावरण मे दम कुछ घुटाघुटा सा लगने लगा।

भोजन के बाद पाकिस्तान के योजना आयोग के अध्यक्ष से मिलने गया। दरअसल हमारी यात्रा का उद्देश्य था—विभिन्न राष्ट्रो की आर्थिक अवस्था, व्यवस्था और उन्नति का अध्ययन। यहा का वातावरण कुछ भिन्न था। योजना आयोग के अध्यक्ष अली साहब ने पाकिस्तान की अर्थ सबधी योजना, विकास तथा सफलताओ की जानकारी दी। उन की सज्जनता और उत्साह ने अब तक दिल मे जमे हुए भारीपन को मिटा दिया। हमारी बातचीत के समय वहा कई विभागो के अफसर भी थे। सभी दिलचस्पी ले रहे थे। बातचीत के सिलसिले मे पता चला कि सभी लोग अविभक्त भारत मे विभिन्न सरकारी पदो पर रह चुके है और अब भी उन के नातेरिश्तेदार भारत मे हैं।

पाकिस्तान मे आर्थिक विकास अभी अधिक नही हुआ है। इस मे सदेह नही कि पाकिस्तान के औद्योगीकरण के लिए अमरीका और विश्व बैक ज्यादा उदार रहे है। सीटो के सदस्य होने के कारण अरबो रुपयो के अच्छी किस्म के हथियार (टैक, विमान आदि) पाकिस्तानी शासको को कम्युनिस्टो से लडने के नाम पर अमरीका से मुफ्त मिल गए, जब कि हमे खरीदने पडे।

विभाजन के समय पाकिस्तान के पास एक भी जूट मिल नही थी, लेकिन विदेशी मुद्रा के सहारे पाकिस्तान ने जूट उद्योग मे अच्छी उन्नति की है। रुई भी पश्चिमी पाकिस्तान में अच्छे किस्म की होती है। इस बात को मद्देनजर रखते हुए पाकिस्तान मे कपडे की मिले भी स्थापित

नजर मिलते ही करीब आए और सवालो की झडी लगा दी, "कब आए, कहा जाएगे ? शहर मे किसकिस से मिले ?"

कुछ झल्लाहट सी हुई। मै ने उन्हे बताया कि विभिन्न देशो की आर्थिक समस्या का अध्ययन करता हुआ कराची से यहा आया हू और कल ही दिल्ली चला जाऊंगा।

एक साथ दोनो की आवाज गूजी, "पासपोर्ट वीसा ?"

कहना न होगा, दोनो गुप्तचर थे।

पासपोर्ट और वीसा साथ ले कर नही चला था। मैं ने समझाने की कोशिश की कि 'पेलिटी होटल' मे ठहरा हू, वहीं पासपोर्ट और वीसा दिखा दूगा। लोट कर मिलने का समय भी बता दिया। मगर सब बेकार। दोनो, साथ ही रहे।

बस दौडती जा रही थी। मजा किरकिरा हो गया था। उदास मन से खिडकी के बाहर भागते हुए मकानो और दुकानो को देख रहा था। गवर्नमैट कालिज के टावर की वही पुरानी घडी, जामा मसजिद का वही आलीशान गुबज, गोल बाग, गुरु अर्जुन की समाधि ओर लाहौर का किला सभी तो वैसे ही है। आखिर बदला क्या ?

बस कचहरी रोड पर एक तागे वाले के पीछे जरा धीमी चाल मे बढ रही थी। 'दयानद एग्लो कालिज' का फाटक आया। पहले देवनागरी लिपि मे कालिज का नाम भवन की मेहराब पर था पर अब 'इसलामिया कालिज' अगरेजी ओर उर्दू मे लिखा हुआ है। इसी प्रकार कई मकानो और मदिरो की हालत देखने मे आई। आर्य समाज, सनातनधर्म, सिख समाज की बडीबडी शिक्षण सस्थाए और सर गगाराम ट्रस्ट जेसी दातव्य सस्थाओ पर लाहौर को फख्र था पर पाकिस्तान ने इन का नामोनिशान मिटा दिया है। हुकूमते पाकिस्तान तवारीख भी मिटाने की कोशिश कर रही है। क्या वह मिटा सकेगी ? कहते है कि श्री राम के पुत्र लव ने ही लवकोट यानी लाहोर को बसाया था। कहते यह भी है कि विजयोन्माद मे भरे सिकदर को इसी के पास रावी तट पर, एक आर्य सन्यासी द्वारा कडी, पर स्पष्ट भविष्यवाणी सुन कर वापस लौट जाना पडा था। महाराजा रणजीत सिंह की स्मृति और वीर भगतसिह का बलिदान क्या लाहौर के जर्रेजर्रे से कभी हट सकेगा ? शायद नही।

शाम हो चली थी। मै अपने होटल लौटा। दोनो सी० आई० डी० छाया की तरह साथ थे। मै ने उन्हे अपना पासपोर्ट और वीसा दिखलाया और कहने से न चूका कि आप यदि कभी भारत मे तशरीफ लाएगे तो आप के साथ ऐसा वर्ताव वहा कभी भी न होगा। हमारे यहा तो अभी भी करोडो मुसलमानो को वही अधिकार प्राप्त हे जो हिंदुओ को हे।

उन मे से एक जरा झेप गया ओर कहने लगा, "जनाब, ड्यूटी का तकाजा है! हम तो हुक्म के बदे है। आप को हमारी वजह से परेशानी हुई पर क्या किया जाए!"

कुछ देर आराम करने के बाद सोचा कि अभी रात का वक्त हाथ मे है। सन १९४० मे लाहौर की, शाम के बाद की रौनक देखी थी। देखू अब कैसा लगता है ? खाना खा कर अनारकली बाजार चला गया। वही दुकाने, वही सडक, सब कुछ वही, पर न तो वहा पहले की सी चहलपहल ही थी और न महाशय राजपाल या आत्माराम एड सस के साइनबोर्ड ही। ऐसा लगा जैसे अनारकली कह रही हो

> "न किसी की आख का नूर हू,
> न किसी के दिल का करार हू।
> जो किसी के काम आ सके,
> मै तो एक मुश्तेगुबार हू।"

बहुत खोजने पर भी न तो कोई हिंदू ही नजर आया, न कोई सिख। सुना है कि शहर मे एक गुरुद्वारा अभी भी बचा हुआ है जहा एक पुजारी अवश्य है, पर उसे बाहर के लोगो से मिलनेजुलने की मनाही है।

दिल्ली मे पाकिस्तानी दूतावास पाकिस्तानी हिंदू और सिखो के सबध मे जो प्रचार सामग्री प्रसारित करता है, वह बिलकुल झूठी और बेबुनियाद है ।

विचित्र सी मानसिक स्थिति मे रात दस बजे होटल लौटा । बेचैनी और थकावट के मारे बिस्तर पर पड गया । उस रात नीद बडी ही मुश्किल से सिर्फ दो घटे के लिए आई । नीद मे भी बारबार लगता था कि पुलिस के सिपाहीआ रहे है । दूसरे दिन प्रात इडियन एयर लाइस के मिस्टर जोजेफ आए । उन से पिछले दिन के अपने अनुभव बताए । उन्होने कहा, "इसी खयाल से मै कल दिन मे दो बार आप से मिलने आया था, पर मुलाकात न हो सकी । आप का यहा घूमना व्यक्तिगत सुरक्षा की दृष्टि से मुनासिब नही था । " हालाकि मिस्टर जोजेफ एग्लो इडियन थे, फिर भी उन्हे कई प्रकार की दिक्कते उठानी पड रह थी । हवाई जहाज पर बैठने के पूर्व एयरपोर्ट पर विदा देते समय उन्होने बडी आजिजी से कहा, "यदि आप भारत मे कहीं भी मेरी बदली करवा दें तो मैं आप का बडा उपकार मानूगा ।"

हवाई जहाज मे बैठा सोचने लगा, 'कैसा रहस्यमय बन गया है पाकिस्तान ! कोई भी दिल की बात खुल कर नही कह सकता ।' लाहौर के मुसलमान होटल के कर्मचारी ने चलते वक्त चुपके से कहा था कि उस की बहन दिल्ली मे रहती है, उसे टेलीफोन पर कह दू कि उस के भाई से मिल आया हू, वह राजीखुशी है ।

प्लेन मे बैठा विचारो को समेट रहा था । कई मुसलमानी मुल्को से हो आया हू   तुर्की, मिस्र, लेबनान .   पर कही भी भारतवासियो के प्रति इस ढग का द्वेष और सदेह का वातावरण नही मिला । फिर इस जगह ही क्यो ? यह भी भारत का अग था, क्या इसलाम के नाम पर भोलेभाले लोगो को गुमराह कर और पाकिस्तान बना कर भी उसके शासको की हवस पूरी न हो सकी ?" .

दूर पर कुतुबमीनार दिखाई पडने लगा । मन ने कहा, 'जमाना करवटे बदलता रहता है । पाकिस्तान भी जमाने की एक करवट ही तो है । क्या पता, शायद फिर बदल जाए !"

हमारा उपेक्षित पड़ोसी ?

नेपाल

कई बार मुझे नेपाल जाने का अवसर मिला। ये यात्राए अधिकतर व्यापार के उद्देश्य से थीं। भ्रमण और पर्यटन का लक्ष्य कम था। फिर भी यात्रिक रुचि के कारण प्रत्येक बार नगराज हिमालय के हिमकिरीट को देख कर मन मे नवीन उल्लास की प्राप्ति होती रही है।

नेपाल भिन्न देश है। किंतु उस का हमारे देश के साथ काफी सामजस्य है। सस्कृति, सभ्यता, भाषा, रहनसहन, पोशाक, मकानदुकान सभी हमारी ही तरह। विराटनगर, जनकपुर, वीरगज आदि क्षेत्रो मे तो आभास तक नही होता कि हम भारत के बाहर विदेश मे है क्योकि भौगोलिक समरूपता इन स्थानो की हमारी तराई जैसी ही है।

नेपाल एक छोटा सा देश है। हिमालय के ऊचे शिखरो के बीच बसा हुआ वह ऐसा लगता है, मानो नगराज ने बडे प्यार से इसे अपनी गोद मे बैठा रखा हो। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण वह अब तक बहुत ही सुरक्षित रहा है। उत्तर मे दुर्गम हिमालय के दुर्जेय शिखर, पूरब, पश्चिम और दक्षिण मे भारत—उस की सस्कृति का स्रोत, उस का अनन्य उदार मित्र।

यही कारण है कि नेपाल की स्वतत्रता कायम रही है। भारतीय सस्कृति मुगलो, पठानो और तातारो के हमलो और राजनीतिक करवटो के कारण विपन्न होती रही, किंतु नेपाल में उस का अत्यत स्वस्थ निखार हुआ। नेपाल निस्सदेह इस दिशा मे भारत से कही आगे रहा है।

नेपाल की जनसख्या लगभग एक करोड है। यह हमारे बिहार प्रदेश के लगभग पाचवें भाग के बराबर है। लबाई है ५२५ मील और चौडाई सिर्फ १२५ मील। जीवन सघर्षमय है। और आय का मुख्य साधन है—कृषि। चावल, पाट, मडुआ, गन्ना आदि की खेती होती है। भेडबकरिया पाली जाती है। दुधारू गोए भारत जैसी नही होती। जगलो से जडीबूटिया इकट्ठी की जाती हैं और लकडिया काटी जाती है। अधिकाश उद्योगधधे अब भी गृहशिल्प की अवस्था मे ही है। नए शासन मे आधुनिक, उन्नत एव बृहद स्तर पर उद्योगधधे को विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है। खनिज पदार्थो की खोज की जा रही है। ताबा मिला है और सीमेंट के उद्योग मे भी सफलता मिलने की सभावना है।

इस की भौगोलिक स्थिति इतनी महत्वपूर्ण है कि भारत, अमरीका, रूस, फ्रास, ब्रिटेन, चीन आदि सभी करोडो रुपयो की वार्षिक सहायता देते रहते है। इन मे सब से अधिक सहयोग भारत का है और इस के बाद अमरीका का।

मुझे ऐसा लगा कि कुछ वर्षो पहले तक भारत की नेपाल के प्रति उपेक्षा और अतर्राष्ट्रीय राजनीति मे भारतीय दुर्बलता ने भारत के प्रति नेपाल के विश्वास को हिला दिया है। यही कारण है कि वर्तमान भारतीय राजनीतिज्ञो के प्रति नेपाल मे वह आदर नही रहा जो युगो से रहता आया है। उस के पडोसी देश तिब्वत को चीन द्वारा उदरस्थ किए जाने पर भी भारत चुप्पी साधे रहा, इसलिए नेपाल को सुरक्षा और स्वरक्षा के लिए बाध्य हो कर चीन से हाथ मिलाना पडा। नेपाल की यात्रा मे इस विषय पर मेरे कई एक नेपाली मित्रो ने यह राय व्यक्त की। इसी तरह भारत की विदेश नीति की असफलता के कारण नेपाल को पाकिस्तान से भी सपर्क बढाने के लिए विवश होना पडा।

मै ने पूछा, "क्या चीन की साम्राज्यवादी भूख से नेपाल अपने को बचा सकेगा ?

उन्होने जवाब दिया, "इसी लिए तो हम अमरीका और ब्रिटेन से मित्रता रखते है।"

मेरा प्रश्न था, "नेपाल सदैव एकमात्र स्वतत्र हिंदू राज्य रहा है। पाकिस्तान कट्टर मुसलमानी देश है। इसलाम ने सदियो तक भारत मे हिंदुओ का उन्मूलन किया। इस समय भी पाकिस्तान मे उन्हे हर प्रकार से सताया जा रहा है तो क्या वह नेपाल को अछूता छोड देगा ?"

उन्होने गभीरता से कहा, "नेपाल का राज्यधर्म है—हिंदुत्व। सास्कृतिक और धार्मिक महत्ता का अशिक्षित जनता पर कितना अधिक मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडता है, इसे नेपाली सदैव जानते रहे है। इसीलिए विदेशी ईसाई या इसलामी सस्कृति को हमारे देश मे प्रश्रय नही दिया जाता है।"

मैं ने हस कर कहा, "बौद्ध होने के नाते चीन को तो सुविधा है।"

"सुविधा थी, पर अब नही है। क्योकि इसी नारे पर तिब्वत को चीन निगल गया। हम सजग हो गए। बुद्धवाद और चीनवाद में अतर है।" हसते हुए उन्होने कहा, "देखिए, रूसवाद और चीनवाद के धक्के से साम्यवाद कितने विवाद मे पड़ गया है।"

आम तौर से नेपाल के लोगो मे यह धारणा दृढ होती जा रही है कि चीन ने अपने स्वभाव के अनुसार नेपाल को सहायता के नाम पर धोखा दिया। कागज की मिल ओर खनिज पदार्थो की खोजो के बहाने सारे नेपाल के पहाड और जगलो की जानकारी हासिल कर ली। जब कि खदान या कारखाने बनाने का काम कतई शुरू नही किया गया। हा, नेपालतिब्वत का मार्ग तेजी के साथ अवश्य पूरा कर दिया गया। भारत ने नई योजनाए बनाने मे सहयोग दिया है, उन्हे क्रियान्वित भी कर रहा है और उस के द्वारा बनाए गए त्रिभुवन राज पथ पर आज भारत से सीधे काठमाडू तक पहुचा जा सकता है। अमरीका ने भी अस्तपाल, स्कूल, कालिज तथा उद्योगो मे आर्थिक तथा तकनीकी सहायता पहुंचाई है।

नेपाल के भूतपूर्व प्रधानमत्री मातृकाप्रसाद कोईराला मेरे मित्र है। कलकत्ते के अपने प्रवास मे वे मेरे साथ ठहरते रहे है। अपने प्रधान मत्रित्वकाल मे भी एक बार जब वे कलकत्ते आए तो भारत सरकार के अनुरोध के बावजूद मेरे साथ ही ठहरे।

उन का मुझ से सदैव आग्रह रहता था कि मैं नेपाल जा कर कुछ समय उन के साथ रहू। सयोगवश नेपाल की मेरी यात्राए ऐसे समय हुई जब वह मत्री पद पर नही रहे। वैसे नेपाल मे जब भी उन से मिला, उन मे वही स्नेह, वही सादगी, देश के प्रति उतना ही प्रेम पाया। कोईराला परिवार का अवदान आधुनिक नेपाल के इतिहास मे बेजोड है। सामतशाही का अत करने के लिए जनता को जागृत कर गणतत्र की स्थापना का अधिकाश श्रेय कोईराला बधुओ को है। राजनीति की लहरे विचित्र होती है। आज उन्ही कोईरालाओ में श्री बी० पी० और उन के अनुज बदी है।

पहली वार १९५४ मे काठमाडू गया था। उस समय महाराज त्रिभुवन नेपाल के वास्तविक शासक प्रतिष्ठित हो चुके थे। यह सहज सभव नही था। इस की भी एक अनोखी कहानी है।

उन्नीसवी शताब्दी के प्रथमार्ध मे नेपाल के राजवश मे नाना प्रकार के षड्यत्र हो रहे थे। १८४६ ई० तक तो स्थिति कुछ इस तरह बनी कि राजघराने का प्रत्येक सदस्य एकदूसरे का शत्रु बन गया। सिहासन और इसके लिए हत्या करना एक साधारण सी बात थी। हत्याए नित्य प्रति होने लगी। महारानी के प्रेमी गगनसिह की हत्या के बाद युवक जगबहादुर को प्रधान मंत्री एव सेनापति दोनो पद दिए गए। इसी बीच महाराजा जब कोट (राजमहल) वापस आए तो उन्होने अपने को सर्वथा बदी पाया।

इसके बाद प्रधान मत्रियो के हाथो मे सत्ता रही। इस दीर्घ काल मे जगबहादुर के वशज ही प्रधान मत्री बनते आए। पेशवाओ की तरह यह पद उन का पैतृक अधिकार बन गया।

नेपाल नरेश नाम मात्र के 'पाच सरकार' रह गए। प्रधान मत्री भी महाराज कहलाते थे। सविधान था नही। शासन के लिए निश्चत कानूनकायदे भी नही थे। इन जगबहादुरो का हुक्म ही कानून था। प्रजा, भूख, गरीबी, ठड और रोग की चपेट मे पिसती जा रही थी। धन और वैभव राणाओ के घरो मे बढता जा रहा था। भोगविलास तो उन दैवी अधिकार थे। सुदर लडकी देखी कि प्रधान मत्री के भाईभतीजो के महलो में 'केटी' बना कर रख ली गई। इन राजाओ मे कुछ के पास तो अवकाश ग्रहण के समय पचास-साठ करोड रुपए तक इकट्ठे हो जाते थे। अनेक के रुपए तो आज भी विदेशी बैको मे है।

सन १९४० के बाद भारतीय स्वतत्रताआदोलन की गति मे तीव्रता आने लगी। इस का प्रभाव नेपाल पर भी पडा। प्रमुख कारण थे, उत्तर भारत के विभिन्न कालिजो मे पढने वाले अनेक नेपाली नवयुवक। दोनो ही देशो की आर्य सस्कृति ने उन्हे एक सूत्र मे पिरो रखा था। भारत मे अगरेजो के विरोध मे उस आदोलन मे वे भी हमारे साथ शामिल थे। यहा तक कि भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के कार्यकर्ता की हैसियत से अगरेजी सरकार द्वारा नाना प्रकार की यातना भी सहते थे। इन्ही लोगो ने आगे चल कर नेपाली काग्रेस की स्थापना की।

शासक सजग थे। नेपाल मे उन्होने इसे पनपने नही दिया। वे कठोरता के साथ नेपाली काग्रेस के गणतात्रिक आदोलन को कुचलते गए। नेताओ को बदीगृह मे ठेल दिया। अधविश्वास, कुसस्कार और गरीबी के भवर मे पडी वहा की जनता जुबान तक हिलाने की हिम्मत न कर सकी। फिर भी नेपाली काग्रेस के कार्यकर्ता राणाशाही की तानाशाही को खत्म करने के लिए भारत मे पटना, फारबिसगज आदि शहरो मे रह कर सगठन करते रहे। आदोलन रुका नही।

सन १९४७ मे भारत स्वतत्र हुआ। नेपाली कार्यकर्ताओ की हिम्मत बढी क्योकि अब राणाओ के मित्र अगरेजो का उन्हे भय नही रहा। उन्हे उन भारतीय नेताओ के सहयोग का भी भरोसा था जिन के साथ सन १९४२ के आदोलन मे उन्होने कधे से कधा मिला कर अगरेजो से टक्कर ली थी।

सन १९४९-५० का समय नेपाल के इतिहास मे चिरस्मरणीय रहेगा। एरिका नाम की एक जरमन महिला डाक्टर महारानी की चिकित्सा के लिए भारत से बुलाई गई। इस प्रकार नेपाल नरेश के महल मे सर्वप्रथम किसी विदेशी महिला का प्रवेश हुआ।

महल मे रहते हुए इस का राजपरिवार के सदस्यो से घनिष्ठ परिचय होता गया। कुछ दिनो बाद तो वह एक अभिन्न अग ही बन गई। उस ने देखा कि यहा सभी सुखसाधन उपलब्ध है, वैभव और विलास का अभाव नही। फिर भी नेपाल नरेश उदास रहते है। उसे समझते देर न लगी कि वह वस्तुत मुक्त नही है। यहा तक कि उन का या उन के परिवार के किसी सदस्य का महल से बाहर निकलना, पत्राचार आदि सभी कुछ राणाओ की स्वीकृति पर निर्भर है। सोने का पिंजरा है, पर पछी कैद है।

इसी बीच महाराज के विचारो मे राणाओ को गणतात्रिक विचारो का रग दिखाई पडा। अधिकार और सत्ता तो उन के हाथों मे थी ही, नरेश पर मुकदमा चला कर उन्होने उन्हे राज्यच्युत करना चाहा। जनता कुसस्कार और अधविश्वास मे थी जरूर, किंतु नरेश को वह पाच सरकार ही समझती थी, जब कि राणा थे तीन सरकार।

मौके से लाभ उठा कर नेपाली काग्रेस के कार्यकर्ताओ ने पाच सरकार (नेपाल नरेश) के नाम पर जनतत्र की स्थापना कर राणाशाही से नेपाल को मुक्त करने की आवाज बुलद की।

एरिका के माध्यम से महाराज ने तत्कालीन भारतीय राजदूत श्री सिंह द्वारा भारतीय प्रधान मंत्री श्री नेहरू से सहयोग मागा। श्री सिह नेहरूजी से मिलने दिल्ली आए। नेपाल नरेश के लिए नेहरूजी का व्यक्तिगत सदेश ले कर वह काठमाडू लौट गए। सारी बाते गुप्त रखी गई। बस उपयुक्त अवसर की खोज थी।

६ नवबर १९५० की सुबह को महाराजा त्रिभुवन अपने ज्येष्ठ पुत्र (वर्तमान नरेश) महेद्र के साथ शिकार खेलने के बहाने महल से बाहर निकले। राणा के विश्वस्त सिपाही उन की निगरानी के लिए साथ थे। भारतीय दूतावास के सामने से वह गुजर ही रहे थे कि दूतावास का फाटक खुला। बिजली की तेजी से राजकुमार महेद्र ने गाडी को भारतीय दूतावास मे दाखिल कर लिया। योजना सफल हुई। सिपाहियो को राणाओ के पास लौटा दिया गया।

उस समय प्रधान मत्री राणा मोहन शमशेर थे। उन्होने प्रतिवाद किया, गर्जना की और धमकी भी दी कि दूतावास पर हमला किया जाएगा। भारतीय पक्ष ने स्पष्ट किया कि अतर्राष्ट्रीय विधिनियम के अनुसार इसे भारत पर आक्रमण माना जाएगा। नेपाली जनता के रुख, भारतीय शक्ति और अतर्राष्ट्रीय मान्यताओ के सामने राणा को झुकना पडा।

महाराज त्रिभुवन वीरविक्रमशाह देव सर्व शक्तिमान नरेश बन कर राजमहल मे वापस आए। सारे नेपाल मे हर्षोल्लास की लहर दौड गई। महाराजा ने नए सिरे से मत्रिमडल का गठन किया। उन का उद्देश्य था कि ब्रिटेन की तरह गणतात्रिक शासन पद्धति नेपाल के लिए अपनाई जाए। श्री कोईराला प्रधान मत्री बने।

सन १९५५ मे महाराज का हृदय की गति रुक जाने के कारण स्विटजरलैड मे देहात हुआ। युवराज महेद्र ने शासन की बागडोर सभाली। उन्होने नेपाली काग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ता श्री कोईराला को प्रधान मत्री मनोनीत किया।

कोईराला बधुओ के आपसी मतभेद और नेपाली काग्रेस के कार्यकर्ताओ मे पद के लिए होड ने बडी समस्या खडी कर दी। इस का कुप्रभाव जनता पर भी पड़ा। सभी एक दूसरे के प्रति दलबदी करने लगे। वातावरण विषाक्त हो गया। जनता के विचारो के दिशा भी बदलने लगी। श्री कोईराला और उन के भाई बंदी बनाए गए। प्रजातत्र एक प्रकार से फिर समाप्त हो गया।

महाराज महेन्द्र के निर्देशन मे नेपाल का नया सविधान बना। नेपाली ससद की स्थापना राष्ट्रीय पंचायत के नाम से हुई। पर सार्वभौम अधिकार उन के हाथ मे ही रहे।

पिछले कुछ वर्षो से नेपाल ने विश्व की राजनीति मे भाग लेना शुरू कर दिया है। आज चीन और पाकिस्तान दोनो ही उस की मित्रता का दम भरते है, हितैषी होने का दावा रखते है। पर यह किसी से छिपा नही है कि नेपाल को राणाओ की दासता से किस ने मुक्ति दिलाई ?

१९४९ मे भारत-नेपाल के पारस्परिक सबधो मे पाकिस्तान और चीन के झूठे प्रचारो के कारण कुछ कटुता आने लगी थी। किंतु श्रीमन्नारायणजी के राजदूत बनने के बाद भ्रातिया दूर हुई और अब आपसी सबध मैत्रीपूर्ण और दृढतर हो रहे है। पिछले वर्ष प्रधान मत्री इदिरा गाधी का नेपाली जनता ने काठमाडू मे अभूतपूर्व स्वागत किया था। भारत ने भी अपनी नाना प्रकार की जटिल आर्थिक समस्याओ के बावजूद नेपाल को बडे पैमाने पर आर्थिक और

तकनीकी सहायता दी है और आगे भी देते रहने का आश्वासन दिया है। भारत की सहायता से वहा बडेबडे बाध बनाए गए है जिस से कृषि का विकास हो और जनता समृद्ध हो। बाहर की दुनिया से सपर्क की सुविधा के लिए त्रिभुवन राजपथ का निर्माण भी भारत के सहयोग से हुआ है। इस के अलावा नेपाल के एक भाग से दूसरे भाग तक आवागमन के लिए सडके भी बनाई जा रही है।

मैं विराटनगर और वीरगज तो कई बार गया, किंतु काठमाडू जाने का मौका १३ वर्षो के लम्बे अर्से बाद अगस्त १९६१ मे लगा। देखा, इन वर्षो मे काठमाडू की कायापलट ही हो गई है। होटल, मकान, दुकान, सडके, सभी एक नई सजधज के साथ नजर आई। पहले वहा 'पारस' और शायद दोएक छोटे होटल थे और अब तो राजकुमारो द्वारा सचालित 'सेलिटी' और 'अन्नपूर्णा' नामक तापनियत्रित डीलक्स महगे होटल भी देखने मे आए। सडको पर विश्व के विभिन्न देशो के बहुत से पर्यटक भी घूमते हुए दिखाई दिए।

१९५० तक जो नेपाल सदियो से विदेशियो के लिए बद था, आज वही करोडो रुपए 'यात्रिक व्यवसाय' से पैदा कर रहा है।

काठमाडू की कुल आबादी लगभग तीन लाख है। इस मे पाटण और भक्तपुर भी शामिल है। समुद्र से यहा की ऊचाई करीब साढे चार हजार फुट है। श्रीनगर की तरह यह भी हिमालय के ऊचे पहाडो के बीच एक खूबसूरत वादी (घाटी) है। गरीबी और अमीरी का यहा जैसा फर्क शायद ही कही होगा। एक ओर तो ऊची मजबूत दीवारो के पीछे राणाओ के सुंदर विशाल महल खडे है और उन्ही दीवारो की दूसरी ओर सडी, गदी गलिया जहा शायद ही कभी सूर्य के दर्शन होते होगे। सडाध भरी तग कोठरियो मे बिलबिलातीबिलखती जनता की ९८ प्रति शत मानवता कैद है। सदियो तक यह क्रम चलता रहा है। आज भी इसे पूरी तरह नही हटाया जा सका है।

अपने मेजबानो के साथ मैं बाजार के एक मकान मे गया। तग और गदी गलिया पार करता हुआ जैसे ही मकान की सीढियो पर चढा कि सडाध की भभक आई। सिर चकरा गया। साथी ने मुझे परेशान देखा तो मुसकरा कर कहा, "सडास पीछे की तरफ है। इसीलिए दुर्गंध है। यहा वाले तो अभ्यस्त है। सदियो से जमी आदत स्वभाव का अग बन चुकी है।"

एक मित्र से मिला। नाम नही लूगा। वज्र शरीर जर्जर बन चुका था। धसी आखो मे प्यार था। पर वह जोश नही जो हम ने सन ४२ मे देखा था। कुछ कहने से पहले ही प्रश्नभरी दृष्टि का सक्षिप्त उत्तर मिला, "समय की माग है।" मैं ने साथ भारत चलने का अनुरोध किया। किंतु उन्होने यह कह कर टाल दिया, "यहा अभी बहुत काम बाकी है। कितनो को आप भारत ले जाएगे ?" सुन कर मुझे दधीचि की याद हो आयी।

बाजार मे देखा व्यापार और उद्योग मे राजस्थानी अच्छी सख्या मे है। थोक व्यापार तो एक प्रकार से इन के ही हाथ मे है। वर्षो से यहा बसे है। बहुत से तो नेपाली नागरिक बन गए है।

दुकाने विभिन्न देशो की चीजो से भरी हुई हैं। फाउटेन पेन, कैमरे, रेडियो, ट्राजिस्टर, घडिया, टेपरिकार्डर, ब्लेड तथा एक से एक उम्दा चीजे, रेशमी और ऊनी कपडे। भारत की तरह यहा आयात पर कडा प्रतिबध नही है। नेपाल की जनता की अभी तक क्रय शक्ति इतनी नही है कि कीमती और शौक की चीजो को खरीद सके। मुझे अपने एक व्यापारी मित्र से जानकारी मिली कि इन कीमती चीजो के ग्राहक या तो केवल सपन्न नेपाली है या फिर भारत या विदेश से आए लोग। अधिकाश विदेशी माल चोरी से सीमा पार कर भारत मे आता है। इस कार्य मे कुछ भारतीय व्यापारी भी है। मुझे बडी ग्लानि का अनुभव हुआ। सदियो की विदेशी दासता ने हमारा नैतिक पतन किस हद तक कर दिया है। चीन ने भारत के साथ विश्वासघात किया। आज भी वह सर्वनाश करने को तैयार है। फिर भी हमारे यहा चीनी

फाउटेन पेन और रेशमी कपड़े के लिए चोरबाजारी मे होड लगी है। जब कि हमारे अपने देश मे अच्छे से अच्छे पेन और कपडे बनता है।

बाजार घूमता हुआ नेपाल के सचिवालय की ओर चला गया। पहले काठमाडू एक साधारण शहर था। पुराने ढग के मकान, राणाओ के महल और मदिरो के अलावा १६वी शताब्दी मे बना सिंह दरबार–बस यही दर्शनीय स्थल थे। पिछली यात्रा मे सिह दरबार देख नही पाया था। इस बार देखा। पहले यह राजमहल था किंतु पचाससाठ वर्षो से नेपाल राज्य का सचिवालय है। इस मे १८०० कक्ष है, इसी से इस की विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है।

नया नेपाल बहुत कुछ बदल चुका है और बदल रहा है। विश्वविद्यालय, कालिज, हाईस्कूल, ला कालिज, मेडिकल कालिज आदि शिक्षण सम्थाए शिक्षा के प्रचारप्रसार मे लगी है। इन की इमारतें आधुनिक ढग की है। नेपाल मे साक्षरता बहुत ही कम है। कुल आबादी का केवल आठ प्रति शत ही साक्षर है। पुरुपो मे १२ प्रति शत और स्त्रियो मे चार प्रति शत ही साधारण रूप से शिक्षित कहे जा सकते है। इसी कारण वर्तमान सरकार राष्ट्रीय शिक्षण योजना आयोग का गठन कर देश से अशिक्षा को दूर करने मे प्रयत्नशील है। मैं ने देखा, लडको के अलावा अब काफी सख्या मे लडकिया भी स्कूलकालिजो मे शिक्षा पा रही है।

बाजार के बीचोबीच महारानी के नाम पर एक बहुत ही सुदर उद्यान बनाया गया है। पिछली बार बालाजू मे बाइस धारा देखने गया था। पर इन तेरह वर्षो के पश्चात वह स्थान पहचानने मे भी नही आता। धाराओ के चारो तरफ बहुत ही सुदर कुज बना दिए गए है। तैरने के लिए एक सरोवर भी बनाया गया है। इस के पास ही छोटेबडे कलकारखाने बन रहे है। लगा उद्योगधधे भी नेपाल मे अकुरित हो रहे है।

पुराने महल और मदिर जितने यहा सुरक्षित रह पाए है उतने भारत मे नही। इस का एक बहुत ही स्वस्थ परिणाम यह भी रहा है कि भारतीय सस्कृति अथवा धर्म की विभिन्न धाराओं का सफल प्रयोग और समन्वय यहा सभव हो सका। बौद्ध, वैष्णव और शैव या शाक्त सभी एक है। इन के अलगअलग मदिरो मे भी एकदूसरे के प्रतीक रहते है और पूजे भी जाते है।

सारे नेपाल मे मदिर, स्तूप और मठ भरे पडे है। राजधानी के आसपास पिछली दस शताब्दियो मे बने बहुत से मदिर है। इन मे विशेप रूप से पशुपतिनाथ, स्वयभूनाथ, गुह्येश्वरी, मजुश्री और हनुमान ढोका है।

पशुपतिनाथ का मदिर १३वी शताब्दी मे बना था। काशी के विश्वनाथ और पाटण के सोमनाथ के मदिर का जितना महत्त्व है, उतना ही पशुपतिनाथ का है। वाग्मति के तट पर बना यह तीर्थ सुदूर दक्षिण भारत और विदेशो से हिंदुओ को युगो से आकर्षित करता रहा है। पशुपतिनाथ के मदिर की एक और भी विशेपता है। विश्वनाथ और सोमनाथ के मदिरो को ध्वस किया गया। काशी का मूल मदिर आज मसजिद है। इसी प्रकार सोमनाथ का आदि मदिर ध्वसावशेप है। दोनो के नए मदिर बने किंतु पशुपतिनाथ यथावत् है। इस के ऊपर का कलश ठोस सोने का है। आगन मे नदी की विशाल मूर्ति है।

दर्शन करते समय पुजारी ने 'अस्ति जम्बूद्वीपे भरतखडे आर्यावर्ते ' का मत्रोच्चार कर चरणामृत दे कर आशीर्वाद दिया। मैं सोचने लगा, हिमालय की दुर्गम श्रेणिया और राजनीति के कृत्रिम व्यवधान हमारी सास्कृतिक एकता को जोडने मे भले ही बाधक रहे पर नेपाल और भारत का हजारो वर्ष का सबध सदा रहा है और रहेगा।

स्वयभूनाथ का मदिर देखा। मै ने समझा था यह शैव मदिर होगा। पर है यह बौद्ध। एक पहाडी के ऊपर बना यह मदिर लगभग दो हजार वर्प प्राचीन है। इस पर पहुचने के लिए ५०० सीढिया है। मुख्य मदिर के आसपास १३ और भी छोटेछोटे मदिर है। बीच मे छ फुट

ऊचा और साढे तीन फुट मोटा एक चक्र है, जिस पर जप के मत्र अकित हे। इसे घुमा कर भक्तजन मत्रजाप का फल प्राप्त करते है।

मजुश्री का नैत्य स्वयभूनाथ मदिर के पश्चिम मे है। माघ श्रीपचमी को यहा बहुत बडा मेला लगता है। हजारो की संख्या मे बौद्ध, शैव, शाक्त और वैष्णव मजुश्री के पूजन के निमित्त आते है।

गुह्येश्वरी का मदिर विशेष रूप से बौद्धो की तात्रिक शाखा की प्रसिद्ध तीर्थस्थली है।

हनुमान ढोका मे महावीर हनुमान जी की विशाल मूर्ति है। इसकी प्रतिष्ठा राजा जयप्रतापमल ने करीब तीन सौ वर्ष पूर्व की थी। पास ही मे दरवार चौक है ओर प्राचीन राजप्रासाद। राजमहल भव्य है। इसका सात मजिला सिहद्वार लकडी का बना है। इस पर खुदाई का काम इतनी बारीकी का है कि आखे उन पर टिकी ही रह जाती है।

अभी तक मै बुद्ध के जन्मस्थान लुबिनी वन नही जा पाया था। किन्तु काठमाडू के पास ही स्थित बोधीनाथ के स्तूप को देखने का अवसर मिला। यहा तथागत के 'अस्थि अवशेष' हैं। कहा जाता है कि विश्व के विशाल स्तूपो मे यह अन्यतम है। धान और मक्के के हरे भरे खेतो के बीच यह बडा ही आकर्षक लगता है। तिब्बत, वर्मा, जापान, भारत तथा अन्य देशो से हजारो दर्शनार्थी आते रहते है। इसके पास ही तिब्बती लामाओ का एक विहार भी है। अब तक विश्व के बहुत से बडेबडे गिरजे और मसजिदो को देख चुका था। किन्तु यहा जो शाति और आनद मिला, वह स्वय के अनुभव से ही समझा जा सकता है। मैं तथागत बुद्ध की मूर्ति देख रहा था, निर्विकार भाव थे—क्षमा, दया, प्रेम, तेजोमय मुखमडल मे मानो आभा निकलकर सासारिक विकारो की कालिमा को दूर कर रही थी।

ललितपुर जिसे पाटन भी कहते है, मुझे बहुत अच्छी जगह लगी। किसी समय नेपाल की राजधानी थी। आज भी विशुद्ध नेपाली सस्कृति की छाप यहा स्पष्ट दिखाई देती है। मल्लराजाओ के द्वारा बनवाया गया यहा का कृष्ण मदिर देखने लायक है। इसके पत्थरो पर उत्कीर्ण कारीगरी मथुरा के मदिरो के समान हे।

यहा के लोग काठमाडू से अधिक सुन्दर लगे। ब्राह्मण पुरुष और स्त्रिया तो सचमुच बहुत खूबसूरत है। लबी नुकीली नाक, उन्नत ललाट, बडीबडी खिची आखो को देख करइन्हे नेपाली मानने मे दुविधा हो सकती है।

नेपाल मे विभिन्न जातियो का सम्मिश्रण हुआ है। भारत, तिब्बत और मध्य एशिया से आकर लोग यहा बसते गए। किराती, नेवारी और पर्वती—ये तीन नस्ल यहा प्रमुख है। किराती और नेपाली तो यहा के मूल निवासी माने जाते है।

मुझे मेरे एक नेवारी मित्र ने बताया कि नेपाल मे भारत के जौनसार अचल से किरातो ने प्रवेश किया। बात सही लगी क्योकि नेपाली रीतिरिवाज मे मगोलीय और भारतीय दोनो प्रथाओ का सम्मिश्रण स्पष्ट है। किरातो का उल्लेख वेद और महाभारत मे मिलता है। इसके बाद मजुश्री (मचूरिया) से लोग यहा आकर बसते गए। क्योकि मध्य एशिया से भारत मे प्रवेश के लिए यह मार्ग यद्यपि दुर्गम था फिर भी समय की बचत करा देता था। भारतीय किरात और मचूरियन लोगो के सम्मिश्रण से नेवारी जाति की उत्पत्ति हुई। यही कारण है कि इनमे दोनो के रीति-रिवाजो का समन्वय मिलता है। नेपाल का मौलिक साहित्य, उस की कला और कौशल की श्रीवृद्धि मे इन्ही नेवारियो का असीम योगदान है। व्यापार के क्षेत्र मे भी यह अन्य नेपाली जातियो की अपेक्षा सबसे आगे बढे हुए है। कलकत्ते मे भी इनकी कुछ फर्मे है जो कस्तूरी आदि का धधा करती है।

भारत से समय-समय पर नेपाल मे लोग जा कर बसते रहे है। मुसलिम शासको के अत्याचार और उत्पीडन से परेशान हो कर सुदूर राजस्थान से राजपूत भी वहा जाकर बसते गए जो आगे चल कर पर्वतीय कहलाने लगे। नेपाल की सैनिक जाति के ठकुरी, खस और गुरुग इनकी सतान है जिन्हे हम गोरखा कहते है। इनकी भाषा पर भारतीय प्रभाव है।

ब्ल्कि यो कहना चाहिए कि अन्य भारतीय भाषाओ की तरह गोरखाली की जननी भी सस्कृत ही है।

कृष्ण मदिर से बाहर निकलकर एक खुली जगह मे बैठ गया। सामने छोटेछोटे सुन्दरसलौने बच्चे खेल रहे थे। गरीबी ने नेपाल को बेहाल कर रखा है फिर भी लोग मस्त रहते है। नाचगाना, तीजत्यौहार बडे शौक से मनाते है। बच्चे जमीन पर लकीरे खीच कर हमारे यहा की तरह कबड्डी खेल रहे थे छोटी लडकिया बाहर बैठी देख रही थी और किसो खिलाडी के पिट जाने पर हसहस कर तालिया बजा रही थी।

मैं इन्हे देख रहा था और बरबस यही ख्याल हो आता था कि आठदस वर्षो मे इनमे से बहुत से विभिन्न शहरो की गदी गलियो मे रहते मिलेगे। कुछ सेना मे भी भर्ती हो जायेगे। ब्रिटेन के साथ नेपाल की शायद शर्तबदी भी है। जो भी हो, अपने देश के स्वजनो से दूर, बहुत दूर ब्रिटिश हितो की रक्षा के लिए उसके उपनिवेशो मे थोडे से रुपयो पर अपनी जान हथेली पर लेकर खेलेगे। कैसी विडबना है! क्या यही इनके साहस और सीधेपन की कीमत है?

नया नेपाल यह जानता और समझता है। वह अभावो से जूझने मे लगा है। जाग्रत नेपाल का एशिया की राजनीति मे महत्वपूर्ण स्थान होगा क्योकि भारत और चीन जैसे दो बडे राष्ट्रो की शक्ति का सतुलन उसके सहयोग पर निर्भर करता है।

पाटन से लौट रहा था। साथ मे कालेज का एक छात्र था। बातचीत के सिलसिले मे उसने बडे गर्व से शुद्ध हिन्दी मे कहा, "हमारा देश केवल हिंदू अथवा बौद्ध सस्कृति के लिए ही आकर्षण का केन्द्र नही है। सैलानियो को अपनी ओर खीचने के लिए यहा का नैसर्गिक सौदर्य कश्मीर अथवा स्विट्जरलैड से कम नही। यह सही है कि यहा आधुनिक साधनो का अभाव है जिससे विदेशियो को कुछ असुविधा होती है। फिर भी वे आते है।

"पृथ्वी के ऊचे से ऊचे हिमाच्छादित शिखर आप यही पाएगे। सागर माथा (माउट एवरेस्ट), काचन माला, मकालू, लोहासे, धवलागिरी, अन्नपूर्णा, गौरीशकर—सभी २३ हजार से २९ हजार फीट की ऊचाई तक के है। शताब्दियो से इन से हम धैर्य, साहस, कर्मठता की प्रेरणा पाते रहे है।"

उसने बताया कि उसके कालिज से एक टोली गौरी शकर चोटी पर २३ हजार फुट की चढाई करने जा रही है। उसने मुझे भी साथ देने के लिए निमत्रण दिया।

मैंने हसकर कहा, "शायद बीस वर्ष पहले आपके इस निमत्रण को मै स्वीकार कर लेता। परतु अब तो गौरी शकर पर जाकर मेरा श्रद्धापूर्ण प्रणाम अखिल विश्व के कल्याण पुज शिव को यदि आप निवेदन कर सके तो मैं अपने को धन्य मानगा।"

कुछ अपनी—कुछ जग की

प्राक्कथन

स्वर्गीय रामेश्वरजी टाटिया मेरे अच्छे मित्रो मे थे। कलकत्ता आने के उपरान्त ही सन् १६४५ मे उनसे मेरा परिचय स्व० मित्र मोहन सिंह सेगर ने कराया था। स्व० टाटिया जी उन दिनो विवेकानन्द रोड पर ही रहते थे और मै भी वही पर। उस समय से ही मैने उनकी साहित्यिक अभिरुचि का स्पष्ट स्फुरण ही नही, क्रियात्मक पक्ष भी देखा और जव भी उनसे अन्य मित्रो के साथ मिलना होता, वे सदैव साहित्य सस्कृति, कला और दर्शन आदि की ही चर्चा करते रहते। उनका व्यक्तित्व अक्लत्रिम और उन्मुक्त था , सरल, मृदुल और आत्मीयता से पूर्ण—यही उनकी लोकप्रियता का रहस्य भी। उनका अन्तर और वाह्य एक था—कही दुराव या विसगति नही। उनकी साहित्यिक अभिरुचि व्यवसाय और उद्योग के ऊहापोह मे भी कभी कुण्ठित नही हुई। वे स्वाध्यायी और ग्रथपिपासु व्यक्ति थे। उनकी इस प्रकृति ने उनकी रचनात्मक प्रतिभा को और अधिक प्रखर बना दिया। वे स्वभाव से यायावरी वृत्ति के व्यक्ति थे पर इस यायावरी वृत्ति के अन्तर्गत भी उनमे ज्ञानात्मक और अनुभवात्मक प्रवृति ही मुख्य थी और इसके कारण उनकी वैचारिकता भी सहज सवेदनशीलता के साथ अपनी सर्जनात्मक भाव भूमि मे भिन्न-भिन्न रूपो मे अभिव्यक्ति हुई। इसका प्रमाण उनकी रचनाए है। जहा एक ओर उन्होने अपनी दैनन्दिनी डायरी लिखी तो दूसरी ओर अपनी 'विश्व यात्रा के संस्मरण'। सस्मरण और डायरी लेखन अपनी मूल अन्तर्धारा और रचनात्मक प्रक्रिया मे कहानी, वार्ता और वोधकथा के निकट पडती है। इसी से उनकी कहानिया भी केवल कल्पना प्रसूत नही रही वरन् उनमे जीवन की प्रत्यक्ष अनुभूतिया ही अभिव्यक्त हुई। स्व० टाटियाजी प्रत्यक्ष प्रमाण पुष्ट मन पर्याय मे विश्वास करते थे। उनकी समस्त रचना प्रक्रिया भी लोकचित्त के साथ मवाद स्थापित करती हुई अपना तादात्म्य खोजती थी। यही हमे यह भी जान लेना चाहिये कि कोई भी साहित्यिक कृति मानवीय जीवन के समानान्तर ही अपनी सार्थकता स्थापित करती है और जीवन की यही सामान्य भूमि उसे अर्थवत्ता देती है। रामेश्वरजी की रचनाए इसका स्पप्ट प्रमाण है। उनकी समस्त कहानिया प्राय बोध कथाए है और उनका धरातल ऐतिहासिक, सामाजिक, सास्कृतिक व धार्मिक है। उनकी इतिहास-दृष्टि पैनी और प्रखर है। उनकी मानसिकता समाज के साथ जुडकर अपना रूप निर्धारित करती है। उनकी वैयक्तिकता सस्कृति के उन तत्वो से निर्मित है जो मानव जीवन के प्रकृत और मान्य प्रतिमानो को अपनाती हुई जीवन की व्यापकता और विभिन्नता मे उन्ही प्रतिमानो को स्थापित करती है।

कुछ वर्प पहले जव मैं केरल विश्वविद्यालय' मे व्याख्यान देने गया तो वहा की पाठ्य-पुस्तक मे रामेश्वरजी की रचना को निर्धारित पाया। मैंने अपने मित्र और तत्कालीन

विभागाध्यक्ष डा० विश्वनाथ अय्यर से सहजभाव से पूछा कि रामेश्वर जी की रचना को पाठ्यक्रम मे स्थान देने का क्या कारण था। उनका उत्तर प्रभावी और सारवान था। उन्होने बताया कि उनकी रचनाओं मे भाषा की सहजता और सरलता के साथ-साथ प्रभविष्णुता है, जो अपनी अभिधा और मृदुता के कारण कथ्य और तथ्य को स्पष्ट करती है। डा० विश्वनाथ अय्यर के अनुसार दूसरा कारण था उनका जीवन को सहज दृष्टि से देखना, समझना और परखना, जो अनिवार्यत पाठक या यो कहा जाए कि विद्यार्थी को प्रभावित और आकर्षित कर सके। यह विचार और भाव का या सवेदना और विवेक के पारस्परिक गुथन का परिणाम होता है। डा० अय्यर का यह विश्लेषण सही है। इसी कारण से उनके ग्रन्थ 'इतिहास के निर्झर' को राजस्थान सरकार ने विभिन्न पुस्तकालयो के लिए क्रयार्थ प्रस्तावित किया है।

प्रस्तुत कहानी सग्रह भी लघु बोध कथाओ का ही सकलन है। इन बोध कथाओ की आधार भूमि इतिहास और सस्कृति है। इन लघु कथाओ मे लेखक ने सहज और सामान्य कथावस्तु मे अपने रचनात्मक कौशल से जीवन के गभीर पक्षो का तथ्यानुशीलन और निरूपण किया है। बोध कथा का वैशिष्ट्य उसकी नैतिक अर्थवत्ता मे होता है। उसके मूल्याकन की भी यही आधार है। किशोर जीवन के सम्यक विकास मे बोध कथाओ का बडा महत्व रहता है—वे अन्तस्तल को छूकर हमारी जातीय चेतना और सस्कारशीलता के परिष्करण मे सहायक होती हैं और इसीसे उसकी रचना भी सोद्देश्य और सप्रयोजन। रामेश्वरजी की अनेक बोध कथाए सस्मरणात्मक है और इसी से उसकी भावभूमि भी अत्यन्त पुष्ट। 'प्रभु का प्यारा' का हीरु और 'पिता का कर्ज' का राम दयाल जहा ऐतिहासिक है, वही 'सतो' का रामूजी वर्तमान का एक जीवन्त पात्र। हजारी दरोगा क्रूर सामन्ती शासन का प्रतीक है तो चन्दरी बुआ राजस्थान के ग्रामीण और पिछडी नारी जाति की। रामेश्वरजी को लोक जीवन और लोक चित्त की गहरी और सही पहचान थी—इसीसे उनकी कहानिया हमारी सवेदना को छूती हुई व्यापक और स्थायी प्रभाव छोड़ती है। यही उनका रचना वैशिष्ट्य है।

मुझे विश्वास है कि ये लघु कथाए अवश्य ही समादृत होगी और आज के किशोर वर्ग के व्यक्तित्व के विकास मे सहायक।

कल्याणमल लोढ़ा
वरिष्ठ आचार्य, हिन्दी विभाग
कलकत्ता विश्वविद्यालय एवं
भूतपूर्व कुलपति, जोधपुर विश्वविद्यालय

कलकत्ता
मकर सक्रान्ति
वि० स० २०४०

विश्व का सबसे बड़ा मासिक पत्र

१९६४ मे न्यूयार्क मे हमारे एक अमरीकी मित्र ने टाईम लाइफ रेस्तरा मे हमे दावत दी थी। यह रेस्तरा इनकी ५५ तल्ले की इमारत के सबसे ऊपरी तल्ले पर था। न्यूयार्क मे बहुत महगे रेस्तरा मे इसकी गिनती है। वैसे 'टाईम', 'लाइफ,' 'फॉरचून'-तीनो पत्रो को मै बराबर पढता रहता हू और मेरी धारणा है कि अपने विषय के ये सर्वोत्तम है। परन्तु यहा आकर जानकारी इनके बारे मे मिली, वह आश्चर्य-जनक थी। इनकी कुल प्रकाशन सख्या है—१४० लाख और दुनिया के सब देशो के हर तबके के लोग इनके पाठको मे है। विश्व के सब बडे शहरो मे टाइम के सवाददाता है, जिनमे से किसी-किसी के पास अपना हवाई जहाज भी रहता है।

लाइफ के लिए बहुत ऊचे दर्जे के आर्ट पेपर और टाईम के लिए टिकाऊपन को लिए हुए सफेद पतले कागज चाहिए, इसलिए इनकी अपनी कागज की मिले है। कहते है कि टाईम की एक टिप्पणी किसी बडे देश के राष्ट्रपति या प्रधान मत्री की स्थिति डावाडोल कर देती है।

यह सब होते हुए भी टाईम-लाइफ का विश्व में द्वितीय स्थान है, क्योकि रीडर डाइजेस्ट का प्रकाशन उनसे ८० लाख ज्यादा है।

विश्व के पहले एक सौ धनवानो मे तीन समाचारो-पत्रो के मालिक या पुस्तक प्रकाशक भी है। रीडरर्स डाइजेस्ट के वालेस, न्यूयार्क टाइम्स की श्रीमती हैज और इन्साइक्लोपेडिया ब्रिटानिका के विलियम बेटन। इन तीनो मे से प्रत्येक के पास १५० से २०० करोड है।

रीडरर्स डाइजेस्ट का नाम विश्व के छोटे-बडे सभी देशो मे सुपरिचित है। यह १४ भाषाओ मे छपता है और इसका कुल प्रकाशन है २८० लाख। विज्ञापन की दरे बहुत ऊची है, इसलिए कुल आय है लगभग ९० करोड वार्षिक।

लेखको को पारिश्रमिक भी पत्र के अनुरूप ही दिया जाता है। अलग-अलग विषयो के लेखो पर विभिन्न दरे है। परन्तु औसत चार पृष्ठ के एक लेख का ६-७ हजार रुपए मिल जाता है। भारतवर्ष मे शायद सबसे ज्यादा पारिश्रमिक २० रुपये से ५०० रु० तक है।

विज्ञापन की दरो मे देश-विदेश मे बहुत बडा फर्क रहता है। अमरीका के सस्करण के एक साधारण पृष्ठ का चार्ज है ५०-६० हजार रुपए, जबकि भारत मे केवल ३५०० से १०००० रुपए ही है।

इसके विज्ञापनो पर विश्व के करोडो ग्राहको को बहुत भरोसा रहता है, क्योकि बहुत जाच के बाद विज्ञापन स्वीकार किए जाते है। १९५५ तक तो अमरीकी सस्करण मे विज्ञापन दिए ही नहीं जाते थे। उसके बाद जब उद्योगपतियो और विक्रेताओ का बहुत आग्रह रहा तब

मि० वालेस ने ग्राहको के मत लिए और विज्ञापन शुरू हुए। अब भी कुछ विज्ञापन जिनसे ग्राहको के ठगने का डर रहता है, वापिस लौटा दिए जाते है। तम्बाकू और शराब के विज्ञापन डाइजेस्ट मे नही छपते।

१६४७ के किसी अक मे मुख की फुन्सियो के लिए 'ट्यूब मे चमत्कार' नाम की दवा का विज्ञापन निकला। थोडे दिनो मे ही उसकी बिक्री १० गुनी बढ गई।

केन्टीकट की एक महिला ने अपने गेरेज मे चोकर युक्त मोटे आटे की पावरोटी बनानी शुरू की। मि० वालेस को उसकी रोटी पसन्द आयी। उन्होने अपनी तरफ से उसकी उपयोगिता और स्वास्थ्यप्रद होने का प्रचार किया। एक वर्ष के भीतर ही उस महिला की बिक्री हो गई ११ करोड की और वह एक बहुत बडे गृह उद्योग की मालकिन बन गई।

१६२२ मे १८,००० रु० की पूजी से वालेस दम्पत्ति ने इस छोटे से प्रयास के रूप मे न्यूयार्क के एक गैरेज मे शुरु किया था। उसके बाद यह दिन दूना रात चौगुना बढता रहा। अमरीका मे टाईम-लाइफ की तरह अरबपति और सर्व-साधन सम्पन्न अखबारो की होड में रीडरर्स डाइजेस्ट ने न केवल अपना प्रथम स्थान ही बनाया-बल्कि दूसरे सबो को बहुत पीछे छोड दिया।

आज इसका अपना विशाल कारखाना ८० एकड मे न्यूयार्क के पास के चप्पका अचल मे है, जिसमे हजारो सुदक्ष व्यक्ति काम करते है। इसके मुख्य अधिकारी मि० लेविस की मासिक तनख्वाह है कुल मिलाकर लगभग ३५,००० रु० और साधारण मजदूरो की कम से कम वेतन है ४,००० रु०।

मि० वालेस बहुत सरल भाषा मे सर्वसाधारण के लिए लिखता है। रोचक कहानिया, सस्मरण, साधारण रोगो की सरल चिकित्सा, भ्रमण विवरण और कुछ हास्य के चुटकिले।

सम्पादकगन कहते है कि वालेस जो सामग्री चुन लेता है, उसे डाइजेस्ट के ४-५ करोड पाठक अवश्य पसन्द करेगे, क्योकि वह उनके मन की बात समझता है।

विश्व प्रसिद्ध अन्वेषक रिचार्ड बायर्ड जब दक्षिणी ध्रुव की यात्रा पर गया तो अपने सीमित सामान के साथ पढने के लिए छह अक डाइजस्ट के भी ले गया।

ससार की सभी प्रसिद्ध भाषाओ मे प्रकाशित यह पत्र लगभग एक सौ देशो के घर, कार्यालय, पुस्तकालय, रेस्तरा, क्लब और जेलो तक मे पढा जाता है।

इसी फरवरी के अक मे एक लेख है "बुढापे को कैसे रोका जाय।" मैने दो-तीन बार उस लेख को पढा। वास्तव मे ही बहुत ज्ञानकारी पूर्ण हे। इसी अक मे हसी के चुटकिलो मे से एक को यहा उद्धृत करता हू।

विश्व के सर्वश्रेष्ठ शतरज खिलाडी मि० वाल्टज के साथ—लगभग उसी श्रेणी की एक महिला खेल रही थी। एक मित्र ने महिला से पूछा कि विश्व के सर्वोत्तम खिलाडी के साथ खेलते हुए आपको कैसे लगता है। उसका जवाब था "यह तो आप इनसे पूछिये।" कितने सक्षेप मे कैसी चुनी हुई बात कही गयी है।

मासिक पत्र के सिवाय यहा से डाइजेस्ट सीरिज की पुस्तके, रिफरेन्स की किताबे और विविध प्रकार के कोष भी प्रकाशित होते है। इस समय इनके सब प्रतिष्ठानो की वार्षिक बिक्री है २७० करोड की—अर्थात हमारे ११०० करोड़ की लागत के हिन्दुस्तान स्टील के तीनो कारखानो के बराबर।

जी, मैं मारवाड़ी हूँ !

कहा जाता है कि लगातार एक दशक तक किसी एक स्थान पर रह जाने से वहा के पूरे नागरिक अधिकार मिल जाते है, यदि जन्म भी उसी स्थान का हो, तव तो किसी प्रकार के भेद-भाव का प्रश्न ही नही उठता। इसी परम्परा मे, विश्व के सबसे धनी देश अमेरिका और स्वीडेन को अपने यहा बसे हुए भारत के सिक्खो और अफ्रीका के नीग्रो को पूरे नागरिक अधिकार देने पड़े हैं। मैंने अमेरिका के सेनफ्रासिसको और लॉसएजल्स मे देखा कि वहा लाखो चीनी, जापानी, नीग्रो और भारतीय वसे हुए है तथा उन्हे विश्व के उस सर्वाधिक धनी और समृद्ध अचल के पूरे नागरिक अधिकार प्राप्त है। इनमे से कई तो वहा के अच्छे व्यापारियो मे गिने जाते है।

खेद है कि भारत मे कही-कही इसके ठीक विपरीत रूप देखने को मिलता है और वह भी अपने देशवासियो के लिए। कई एक प्रान्तो मे वहा वसे हुए अन्य प्रान्तो के लोगो के विरुद्ध दूषित एव भ्रात धारणाएँ या भावनाएँ उत्पन्न की जा रही है। इसके लक्ष्य विशेषकर राजस्थानी हैं जिन्हे 'मारवाडी' कहा जाता है।

यह सुनकर हमे दुख होता है कि राजस्थानियो के विरुद्ध एकाध प्रान्तो मे विशेषकर वगाल मे कहा जाता है कि वे हमारी धरती के नही है, (Sons of the Soil) वाहर के हैं।

मैं सोचने लगा, कि क्या वगाल और राजस्थान एक ही मातृभूमि, भारत के अगभूत नहीं है? अगर प्रान्तीय सीमाओ को मानकर भी चले तो भी वर्षो से राजस्थान से भिन्न प्रान्त में रहते आये 'मारवाडी' उस प्रान्त एव वहाँ की धरती और निवासियो से अलग कैसे हुए। कई परिवारो की तो पीढियाँ ही वहाँ जन्मी और पनपी। इसी तरह विहार, यू० पी० और उडीसा में भी हजारो वगाली परिवार सैकडो वर्षो से रहते आ रहे है। मारवाडियो के विरुद्ध यह भी कहा जाता है कि वे केवल व्यापार मे लगे रहते है। सामान्य जन-जीवन के विभिन्न पहलुओ से सम्वन्ध कम रखते है।

राजस्थानी स्वभावत उद्यमी और साहसी होते है। अजीविका की खोज मे वे जहाँ कही भी गये, वहाँ पनपे और सम्पन्न हुए। पर इस स्थिति मे आने के लिए जो घोर परिश्रम करना पडा उसमे उन्हे इतना अवकाश नही मिल पाया कि वे स्थान विशेष के सामान्य जनजीवन मे ज्यादा भाग ले सके। अब नई पीढी के राजस्थानी अवश्य घुलमिल रहे है और आज तो वगाल मे या पजाव मे रहने वाले मारवाडी युवको को जल्दी पहचान पाना मुश्किल है।

वगाल मे राजस्थानियो के विरुद्ध वातावरण वनाने मे कम्यूनिस्टो का बडा हाथ रहा है, चूँकि व्यापारी समाज के होने के कारण राजस्थानी सदा से काग्रेस का साथ देते रहे है।

अधिकांश बगाली-समाज इन विषैले नारो से प्रभावित नही है और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तो यह है कि बगाल केबिनेट मे दो मत्री राजस्थानी है।

४०० वर्ष पहिले मुगल बादशाह अकबर के समय मे हमारे कुछ पूर्वज राजस्थान से दिल्ली और आगरा आकर बस गये थे। उनकी गणना वहाँ के प्रतिष्ठित व्यापारियो मे होती थी। यहाँ तक कि उनकी आव-भगत बादशाह के यहाँ भी थी। १७ वी सदी मे बगाल की हाकिमी जब मुर्शीदकुली खॉ को मिली तो वह अपने साथ आगरे से कुछ विश्वस्त राजस्थानियो को रसद और दूकानदारी के काम के लिए बगाल ले आया, क्योकि हिसाब-किताब, मेहनत और तौल-जोख मे उनकी साख से नवाब बहुत प्रभावित था। इन्ही राजस्थानियो ने बगाल मे अपने-अपने व्यवसाय को जमाया।

१८ वी सदी के बाद तो बगाल के इतिहास की हर परत मे जगत् सेठो के घराने का वर्णन है। उनकी हुण्डी और बीमा की साख भारत मे ही नही, विदेशो मे भी थी। वे नवाब के अर्थ-मन्त्री के सिवाय प्रमुख सलाहकार भी थे। यहाँ तक कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भी बहुत बार उनकी कृपा पर निर्भर रहना पड़ता था।

कई बार मराठे स्वर्णभूमि बंगाल की प्रसिद्धि सुनकर बडी-बडी फौजो के साथ यहाँ लूट-पाट के लिए आए। परन्तु जगत् सेठो ने करोडो रुपए अपने पास से देकर उन्हें वापस कर दिया और गरीब जनता को उनके अत्याचारो से बचा लिया।

नवाब सिराजुद्दौला के समय जगत् सेठ घराने मे सेठ अमीचन्द थे। ये शिताचन्द और फतेहचन्द के बाद हुए। अमीचन्द को इतिहासकारो ने विश्वासघाती और देशद्रोही बताया है, क्योकि उन्होने ईस्ट इण्डिया कम्पनी और सिराजुद्दौला के सघर्ष में कम्पनी का साथ दिया था। परन्तु तथ्य तो यह है कि इसके पीछे देश-द्रोह या विश्वासघात की बात नही थी बल्कि उनके सामने नवाब ने ही ऐसी हालत पैदा कर दी थी कि कम्पनी का साथ देने के सिवाय अन्य कोई चारा नही रह गया था।

नवाब अलीवर्दी खॉ के लाड-प्यार से सिराजुदौला ऐयाश और जिद्दी हो गया था और नवाब के मरने के बाद कुछ चाटुकार उसके मुंह लगे हो गये जो जगत् सेठ से ईर्ष्या और द्वेष रखते थे। सेठ अमीचन्द की एक विधवा अनुपम सुन्दरी पुत्री थी। सिराजुद्दौला ने एक दिन उनकी पुत्री के बारे मे घृणित प्रस्ताव भेजा और न मानने पर धमकी दी। सेठ अमीचन्द के सामने उस समय दो ही रास्ते रह गये थे या तो नवाब का प्रस्ताव मानकर अपनी रोती बिलखती पुत्री को उसके हरम मे भेजकर उसका कृपा-पात्र बने रहना या फिर अपनी मान-मर्यादा बचाने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शरण लेना।

वे इन दिनो यह भी महसूस करने लगे थे कि नवाब की बढती हुई भोग-लिप्सा के कारण किसी भी भले घर की युवती की इज्जत सुरक्षित नही है और उन्हें आये दिन इस पकार की शिकायते सुनने को मिलती थी, इसलिए उन्होने ऐसे व्यक्ति के हाथ में देश का शासन रहने देना किसी भी हालत मे सुरक्षित नही समझा। उस समय कम्पनी की शक्ति नवाब के सामने नगण्य थी, परन्तु सेठ अमीचन्द ने अपनी मान-मर्यादा और धन-सम्पत्ति की बडी जोखिम उठाकर भी कम्पनी का साथ दिया। फलस्वरूप पलासी के युद्ध मे नवाब की करारी हार हुई। इसके बाद किसी ने नवाब की हत्या कर दी। परिस्थितियो से विवश होकर सेठ अमीचन्द को नवाब के विरुद्ध जाना पडा था, पर उसके मरने के बाद उन्होने उसके परिवारवालो की हर प्रकार से सहायता की और देखभाल भी की।

१९ वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे जगत्-सेठो के सिवाय प्रवासी मारवाडियो की बहुत-सी फर्मे मुर्शिदाबाद, कलकत्ता और असम मे स्थापित हो गयी थी। इनका नियम था कि कोई भी राजस्थानी युवक कलकत्ते या असम मे उपार्जन के लिए आकर उनकी गद्दी मे ठहर और खा-पी सकता था। उसके साथ उनका व्यवहार इतना प्रेम और सौजन्य का होता था कि इसे इसमे संकोच का अनुभव नही होता। इसके सिवाय कारोबार के लिए भी उसे इनके यहाँ से

५०० या १००० रुपये बिना ब्याज के उधार मिल जाते थे ताकि वह अपनी कपडे या गल्ले की छोटी सी दूकान कर ले। दूसरे व्यापारी और दूकानदार भी स्थापना (मुहूर्त) के समय कुछ-न-कुछ रकम उसके यहाँ जमा करा देते थे। इस प्रकार मेहनत और ईमानदारी से कुछ वर्षो मे उसका व्यवसाय जम जाता था। अब भी असम के प्रत्येक बडे शहर मे एक बडा बासा (सबसे पहले स्थापित फर्म) होता है, जहाँ बाहर से आये हुए लोग निस्संकोच ठहरते और भोजन करते है, यद्यपि अब यह प्रथा शिथिल होती जा रही है।

इस प्रकार मेहनत और मेलजोल से राजस्थानियो ने अपने पाँव सुदूर प्रान्तो मे जमाये तथा वाणिज्य व्यवसाय और उद्योग की दृष्टि से उन स्थानो को उन्नत किया एव खुद भी सम्पन्न हुए। उद्योग व्यापार के सिवाय मारवाडियो ने कभी सरकारी नौकरी, वकालत या डाक्टरी की तरफ ध्यान ही नही दिया।

२० वी शताब्दी मे प्रथम महायुद्ध के बाद मारवाडी आयात-निर्यात करने लगे तथा उद्योग-धन्धे स्थापित करने लगे। प्रान्तो की राजनीतिक व सामाजिक गतिविधि मे भी भाग लेने लगे। बगाल मे नमक-सत्याग्रह और विलायती कपडो की दूकानो पर धरने के सिलसिले मे न केवल मारवाडी पुरुष बल्कि महिलाएँ भी जेल गयी। जिस प्रान्त मे कमाते और रहते आये है, उस प्रान्त के धार्मिक कार्यो मे मारवाडी मुक्तहस्त से खर्च करते रहे है। असम, बगाल और बिहार के प्रत्येक शहर तथा कस्बे मे इनके द्वारा सचालित स्कूले, पुस्तकालय, धर्मशालाए और अस्पताल एक नहीं, अनेक देखने को मिलेगे।

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद भारत छोडकर जाते समय अग्रेजो से उनका अधिकाश उद्योग एव कारबार राजस्थानियो के हाथ मे आया और उन्होने इसे न केवल नष्ट होने से बचाया बल्कि और भी बढाया। आज तो भारत के औद्योगिक प्रान्तो मे इनका प्रमुख स्थान है। भारत के विभिन्न भागो मे राजस्थानियो का कम-बेशी यही इतिहास है।

विकास के इस दौर मे राजस्थानी स्थानीय जन-जीवन और सामाजिक मेल-मिलाप मे कम हिस्सा ले पाये।* इसे हम त्रुटि या कमजोरी मान सकते है। यद्यपि बगाल मे राजस्थानियो का इतिहास लम्बा है, पर वे बगला भाषा और साहित्य का अध्ययन नही कर सके तथा खान-पान की विभिन्नता के कारण न आपस मे शादी-विवाह ही कर सके। पर केवल इतने के लिए मारवाडी-समाज के अन्य अवदानो को भुला देना न्याय-सङ्गत नही है विशेषकर आजकी परिस्थितियो मे जब राष्ट्र को भावात्मक एकता की बहुत आवश्यकता है।

पिछले दिनो बगाल के एक प्रमुख दैनिक पत्र मे एक लेख छपा था जिसका भावार्थ यह था कि मारवाडियो ने यहाँ के प्राय सभी उद्योग-धन्धे अपने कब्जे मे ले लिए है और उनमे ज्यादातर कर्मचारी और अफसर अन्य प्रान्तो के रखते है। इस सम्बन्ध मे हमे कहना है कि जहाँ तक उद्योग-धन्धो का सवाल है, वह जबरन तो लिए नही जा सकते आपस के समझौते और बातचीत से खरीदे-बेचे जाते है, इसके लिए न केवल पूजी बल्कि रुचि, परिश्रम और साहस की जरूरत होती है। कर्मचारी वर्ग तो शायद आफिसो मे उसी प्रान्त के ही अधिकतर है। मजदूर जरूर उत्तर-प्रदेश, उडीसा और बिहार के होते है, क्योकि उनका काम कडी मेहनत माँगता है।

हम प्रतिष्ठित व प्रभावशाली समाचार-पत्रो और पत्रिकाओ से निवेदन करेगे कि यदि ऐसे आक्षेपो का प्रचार होता है तो उसकी प्रतिक्रिया अन्य प्रान्तो मे भी जरूर होगी जो देश के सगठन के लिए बहुत ही अवाछनीय है।

कुछ लोगो के गलत प्रचार से यह भ्रान्तिपूर्ण भावना हो जाती है कि मारवाडी समाज का उद्देश्य येन-केन-प्रकारेण केवल पैसा कमाना है और देश के विकास और स्वतन्त्रता मे उनका

---

* यह बात अन्य प्रवासियो—पजाबी, गुजराती, सिंधी आदि के सम्बन्ध में भी लागू होती है।

कोई योगदान नही रहा है, परन्तु आजतक के भारतीय इतिहास के पृष्ठो पर नजर डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसे प्रचारो मे द्वेष की भावना ही अधिक है। राजस्थान के सपूतो ने राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए सदियो तक सघर्ष किया है। धन और जन की अपार-क्षति उठाकर भी वे प्राणो की आहुति देने मे न हिचके। राणा सागा और प्रताप का शौर्य इस बात का साक्षी है। वीर दुर्गादास राठौर का त्याग और मीरा की भक्ति को किसी प्रकार भी भुलाया नही जा सकता। अगर हम आज के युग को भी देखें तो राष्ट्र के कल्याण और स्वाधीनता के लिए हजारो की सख्या मे राजस्थानी युवक और युवतियो के जेल जाने और कठिन यातनाओं के सहने के उदाहरण एक नही अनेक मिलेगे।

एक दिन मै एस्प्लेनेड के मैदान से गुजर रहा था। कुछ उच्छृखल युवको ने मेरी ओर ताना कसा — "यह मारवाडी है।" मुझे बुरा नही लगा और मैने गर्व के साथ कहा— "जी हा, मैं मारवाडी हू।"
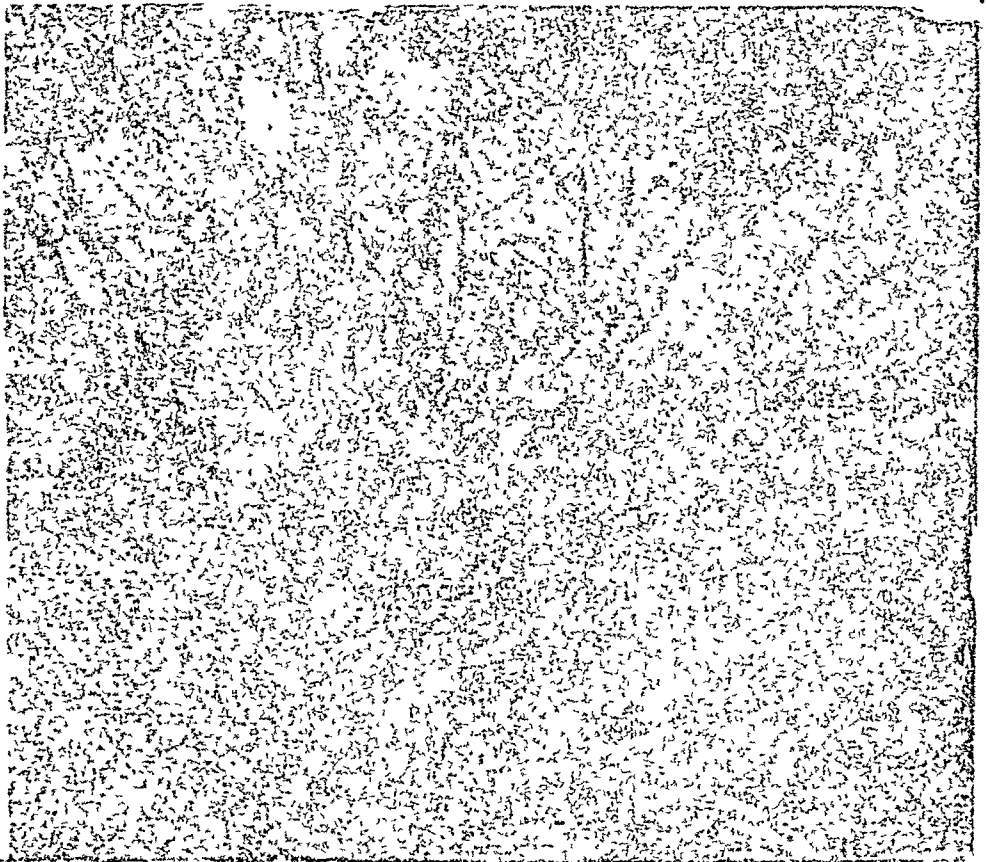
मारवाड़ी समाज की नई पीढ़ी

बगाल के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री विमल मित्र ने अपनी पुस्तक "साहब बीबी गुलाम" मे आज से सौ सवा सौ वर्ष पहले के धनी बगाली-व्यवसायी युवको के दैनिक जीवन की झाकी उपस्थिति की है ।

उस समय का अधिकाश वाणिज्य व्यवसाय मल्लिक, सील, लाहा और बसाक आदि बगाली परिवारो मे बटा हुआ था । उनके यहा पाट और गल्ले आदि की आढत के अलावा जहाजो पर माल लादने उतारने के ठेके, फौज को रसद सप्लाई और विलायती आफिसो की बेनियनशिप थी । उनके पुत्रो ने जमेजमाये व्यापार को सम्हालना छोड दिया और अधिकाश समय शराब और ऐयाशी मे देने लगे । धीरे-धीरे सारा का सारा कारबार नष्ट हो गया ।

पूर्वजो ने समझदारी से काम लिया और अधिकाश सम्पत्ति को देवोत्तर कर दिया । इसलिए सब कुछ चले जाने पर भी परिवार को भूखे रहने की नौबत नही आयी ।

उसके बाद खत्री-समाज की वढोत्तरी हुई और विदेशी फर्मों की बेनियनशिप के सिवाय दूसरे कई प्रकार के व्यापार उनकी कोठियो मे होने लगे । कुछ दिनो तक तो उनकी समृद्धि मे चार चॉद लगे रहे, परन्तु आगे जाकर वही दशा उनकी भी हुई । प्रति शुक्रवार को चुने हुए मुसाहिबो को लेकर, हर प्रकार की विलास सामग्री के साथ लिलुआ या दमदम के बगीचो मे जाते और सोमवार की सुबह अलसाये हुए मन और थके हुए तन के साथ वापस आते । बिना सम्हाल के धीरे-धीरे उनका कारबार बिगडने लगा । आफिसो के बडे साहबो के द्वारा बार-बार की चेतावनी का भी उनपर कोई असर नही हुआ । आखिरकार बेनियनशिप उन राजस्थानी युवको को मिली जो उनके आफिसो मे पुर्जा चुकाने या दलाली का काम करते थे । इन्होने अपने पुराने मालिको के चढाव– उतार को देख रखा था, इसलिए विलासिता से अलग रहकर कडी मेहनत और ईमानदारी से काम करने लगे । उनकी आफिसो का काम भी बहुत आगे बढा और साथ ही समाज मे प्रतिष्ठा भी ।

उसीका फल है कि आज देश का अधिकाश वाणिज्य एव उद्योग उनकी सन्तानो के हाथ मे है । इतने बडे औद्योगिक-साम्राज्य के पीछे उक्त समाज का बहुत ही उज्ज्वल इतिहास है आज से सौ सवा सौ वर्ष पहले जब न तो रेल थी और न पानी के जहाज ही, उस समय इनके पूर्वज बिना किसी प्रकार के सहारे के राजस्थान के बगाल और असम की सुदूर यात्रा, अनेक प्रकार के कष्ट सहते हुए चार-पॉच महीने मे पूरी करते थे और छ -आठ वर्ष की लम्बी मुसाफिरी के बाद वापस घर लौटते थे ।

हमे भी बहुत से ऐसे महापुरुषो को देखने-सुनने का मौका मिला है जो बहुत ही साधारण स्थिति से ऊँचे उठकर चोटी पर पहुँचे है ।

सर्वप्रथम तो हमारे स्व० प्रधानमत्री श्री शास्त्रीजी का ही उदाहरण है जो यह कहने मे कोई सकोच नही करते थे कि कई बार एक पैसा नाव के भाडे का न होने के कारण उन्हे गगा के उस पार से काशी मे पढने के लिए तैर कर जाना पडता था। इसी प्रकार इन्टुक के उपाध्यक्ष, भूतपूर्व उपश्रममत्री तथा विशिष्ट ससद सदस्य श्री आबिदअली भी एक कपडे की मिल मे साधारण मजदूर थे।

विश्वमित्र सञ्चालक स्वर्गीय श्री मूलचन्द अग्रवाल भी बहुत साधारण स्थिति से ऊँचे उठकर अपने जीवनकाल मे ही भारत के समाचार-पत्र सञ्चालको मे अग्रणी और आदरणीय हो गये थे। वे कहा करते थे कि प्रतिदिन १८-२० घटा काम करना तो उनके लिए साधारण सी बात थी। यहाँ तक कि कभी- कभी तो उन्हे पत्न की कटाई तथा बँधाई भी स्वय करनी पडती थी।

व्यापारी समाज मे भी ऐसे कई उदाहरण मिल जायेंगे। प्रसिद्ध चाय उत्पादक श्री हनुमानबक्स कनोई असम मे आज से ६५ वर्ष पूर्व दर्जी का काम करते थे। उसके बाद उन्होने एक छोटी-सी मोदीखाने की दुकान खोली थी। कुछ वर्षों बाद थोडी-सी जमीन मे चाय की खेती की और मशीनों के अभाव मे कडाहियोमे चाय गर्म करके सुखाते थे। आज उनके फर्म का कठिन परिश्रम और सच्चे व्यवहार के कारण भारत के चाय उत्पादको मे विशिष्ट स्थान है। विदेशो से आये हुए चाय-विशेषज्ञ भी उनके गणेशवाडी चाय बगीचे को देखने जाते है जिसमे प्रति एकड चाय का उत्पादन देश मे सबसे ज्यादा है।

विश्व प्रसिद्ध डीजल और बिजली की मोटरो के एव इञ्जिनो के निर्माता श्री किर्लोस्कर भी एक साधारण कारखाने मे मिस्त्री थे और अनेक सुप्रसिद्ध कपडे की मिलो के मालिक स्वर्गीय मफतलाल कपडे की फेरी करते थे।

इन सब उदाहरणो का उल्लेख करने का उद्देश्य नयी पीढी के मारवाडी समाज के युवको के बारे मे लिखना है। जिनके पास अपने पितामहो और पिताओ का अर्जित किया हुआ धन यश और जमा-जमाया कारबार है, साथ ही विदेशो के अच्छे फर्मो से व्यापारिक एव औद्योगिक सबध भी। खेद है कि आज के अधिकाश धनी युवक उन बगाली और खत्री समाज की चाल-ढाल को अपनाते जा रहे है जिनके बारे मे हम पहले लिख चुके है। हाँ, समय और साधन दोनो ही बदल गये हैं, इसलिए ७०-८० वर्षो पहले के मौज-शौक के तौर-तरीको मे फर्क जरूर आ गया है।

मैं नई दिल्ली के विज्ञान-भवन के सामने के फ्लैट मे रहता हूँ। इस भवन मे जलसे और चैम्बरो की मीटिंगे होती रहती है। वहाँ प्राय ही देखता हूँ कि कलकत्ते और बम्बई के युवक बहुत बडी- बडी फैशनैबुल मोटरो मे अपने साथ एक दो पजाबी सजे-सजाए युवको को लिए हुए (जो उनकी फर्मों के दिल्ली रिप्रेजेन्टेटिव होते है) उन मीटिंगो या जलसो मे शामिल होने के लिए आते है। इनमे से कई जलसो मे ससद सदस्यो को भी बुलाया जाता है, इसलिए उन लोगों से वहाँ मिलना हो जाता है। इसके सिवाय संसद या राष्ट्रपति भवन देखने की पास के लिए या और किसी काम से भी उनसे मिलना होता रहता है।

वैसे दिल्ली मे प्राइवेट कारो का किराया ३०-३५ रुपया प्रतिदिन है परन्तु जिन बडी गाडियो को ये रखते हैं उनका ६५-७० रुपया किराया है। अशोक होटल जिनमें ये लोग ठहरते है, उसका भी ८०-१०० रुपया प्रतिदिन पड़ जाता है। इसके सिवाय क्लबो, थियेटरो तथा अनेक प्रकार के खर्च अलग। चार-पाँच दिन की दिल्ली की एक यात्रा में, हवाई जहाज तथा अन्य सब खर्च मिलाकर, दो-ढाई हजार तक लग जाते है। जिन मीटिंगो मे ये जाते है उनमे न तो इनमे से अधिकाश को कोई पूछता ही है और न इनको वहा कुछ सीखने समझने की जिज्ञासा ही होती है। इसके सिवाय अनेक प्रकार की दूसरी बाते भी सुनने को मिलती हैं जिनका वर्णन यहा न करना ही अच्छा होगा।

कलकत्ते का एक युवक मिला, जिसके पिताजी से मेरा अच्छा परिचय था। उसकी सूट के बारे मे बात हुई तो पता चला कि ऊँट के बालो की है और कीमत २२००), २३००) रुपया! क्योकि आयात के प्रतिबध के कारण ऐसा कपडा भारत के बहुत कम आ पाता है। मैने हिसाब लगाया कि उस एक सूट की लागत मेरे डेढ सौ धोती, गजी और कुरतो के बराबर थी।

एक दिन एक युवक मित्र द्वारा ला-बला नाम के प्रसिद्ध रेस्तरा मे निमत्रित हुआ। सब मिलाकर आठ-दस व्यक्ति होगे जिनमे दो-तीन उसके विदेशी व्यापारी मित्र भी थे। यह जानते हुए भी |ऐसी जगह मे खाने-पीने की चीजो के बारे मे पूछना सभ्यता से बाहर माना जाता है, मन नही मानता और आमिष निरामिष के बारे मे पूछ लेता हूँ। सूप के बारे मे पूछा तो पता चला कि समुद्र के बीच मे किसी टापू की चिड़िया के घोसले का है, जो इस रेस्तरा की विशेष तैयारी मानी जाती है। यह घोसला आमिष है या निरामिष फिर से पूछना ठीक नही समझा और सूप नही लिया। खाने-पीने पर सारा खर्च करीब पाँच सो रुपया हुआ जिसमे आधा तो केवल चिडियो के घोसले के सूप का ही था। मन मे अपने को भी दोषी अनुभव करने लगा कि मेरे ऊपर भी तो पचास रुपये का खर्च आ गया।

इन बाइस सो रुपये की ऊट के बालो की सूट पहिनने वालो तथा ५०) रुपये के चिडियो के घोसले का सूप पीने वाले युवको से यह कहने का मन होता है कि उनकी सही कीमत तो उसी हालत मे ही आकी जा सकती है जब कि वे अपने पूर्वजो की तरह या आजकल के दूसरे गरीब युवको की तरह अनजानी जगह मे जाकर कितना कमा पायेंगे।

मुझे इसी समाज का एक युवक कुछ दिनो पहले कलकत्ते की बेंटिक स्ट्रीट मे मिला। नौकरी छूटने के बाद तीन सो रुपयो की पूँजी से पुराने लोहे के टुकडे सियालदह, कार्नवालिस स्ट्रीट या इन्टाली मे ठेले पर लादकर ५-६ मील प्रति-दिन पेदल चलकर हावडा के किसी कारखाने मे ले जाता है। वहा उनसे मोटरो के चक्को के ढक्कन बनवा कर दूसरे कारखाने मे पालिस करवा कर यहाँ की दूकानो मे बिक्री करता है। इस कड़ी मेहनत से उसे २५०)-३००) रुपया मासिक मिल जाते हैं। जिनमे से एक सो रुपया यहा रहने और खाने- खर्च के बाद देकर डेढ सो दो सौ अपने गाव भेज देता है जहा उसकी स्त्री, मा और तीन बच्चे है।

भारतीय जीवन का आदर्श सकडो हजारो वर्षो म श्रम, सयम और सतोष का रहा है। साथ ही व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के लिए भी हमे बहुत प्रकार के बलिदान करने पडे ह, इसलिए हमारी सस्कृति और समाज के लिए साम्यवाद किसी भी प्रकार वाछनीय नही ह, परन्तु हमारी आज की स्थिति भी ज्यादा दिन नही रह पाएगी। क्योकि एक ओर तो नाना प्रकार के व्यसनो मे पानी की तरह धन बहाया जाता है और दूसरी तरफ देश के करोडो बच्चे और बुड्ढो को भूखे पेट और नगे तन रहना पडता है।

विषमता सारे ससार मे ही है, परन्तु जब वह सीमा लाघ जाती है तब या तो रूस और चीन की तरह साम्यवाद आता है या अन्य अरब देशो और पाकिस्तान की तरह फौजी तानाशाही। काश, समय रहते हम चेत जायें और अपनी आवश्यकता एव विचारो को सयमित करके इस प्रकार का प्रदर्शन न करे जिससे दूसरो के मन मे दुख और ईर्ष्या पैदा हो।

नई पीढ़ी का दूसरा पहलू

'मारवाड़ी समाज की नई पीढी किस तरफ' शीर्षक से लिखे लेख के पक्ष मे और विपक्ष मे काफी चर्चा हुई। यहा तक कि बम्बई तथा राजस्थान से भी पत्र आये। इससे दो अनुभव हुए। पहला तो यह कि समाज के विभिन्न क्षेत्र के लोगो मे इस समस्या पर अच्छे पैमाने पर दिलचस्पी है, क्योकि सुदूर क्षेत्रो मे यह लेख भेजा गया ओर इससे यह भी सिद्ध हुआ कि हिन्दी समाचार-पत्र भी काफी बडी सख्या मे विभिन्न क्षेत्रो मे पढे जाते है।

उक्त लेख मे किसी के प्रति आक्षेप आदि का तो प्रश्न ही नही था, क्योकि जिन लोगो का चित्रण किया था वे तो सब अपने ही हैं। हाँ, कई दिनो से मनमे एक प्रश्न उठ रहा था उसको लोगो के सामने विचारार्थ रखा था।

जिन लोगों ने इस बारे मे अपने विचार बताये या सुझाव रखे, उनमे श्री कालीप्रसाद खेतान तथा विश्वमित्र के "मैदान मे मजलिस" के विशेष विचारणीय हैं। खेतानजी विभिन्न समाज के लोगो से मिलते रहते है, साथ ही बहुपठित और अनेक देशो की यात्रा कर चुके है इसलिए उनके अनुभव भी बहुमूल्य है। उन्होने युवको के जीवन के दूसरे पहलू के बारे मे लिखा वह हर समय मे और हर समाज मे रहे। सौ-सवा सौ वर्ष पहले के बगाली-समाज के एक पक्ष का चित्रण मैने अपने लेख मे किया था परन्तु उस समय भी श्री रामकृष्ण परमहस, केशवचन्द्र सेन, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि जैसे महापुरुष मौजूद थे और उन्ही के पुण्य कृत्यो से आज का बगाली समाज व्यापार और उद्योग मे पिछडा होने पर भी शिक्षा, साहित्य, कला, राजनीति, कानून और चिकित्सा क्षेत्रो मे विशिष्ट स्थान रखता है।

इसी प्रकार आज भी जहाँ मारवाडी-समाज के कतिपय धनाढ्य युवको मे अत्यधिक फिजूल खर्ची तथा फैशन-परस्ती आ गयी है, वहाँ ऐसे उदाहरण भी अनेक है कि सम्पन्न तथा मध्यम दोनो तबको के युवको मे अच्छी श्रेणी के डाक्टर, इन्जीनियर, अर्थ-शास्त्री, प्रोफेसर और कानून-विशेषज्ञ मिल जायँगे। १९६१ मे हमलोग जब रूस गये तब वहाँ मास्को मे भी हमे मारवाडी युवक शिक्षार्थी मिले और पिछले वर्ष वाशिंगटन और शिकागो मे भी मिले जो ऊँची इन्जीनियरिंग शिक्षा के साथ-साथ बचत के समय मे ढ़ाई-तीन हजार रुपये महीना उपार्जन कर लेते थे, जिससे वहा का खर्च निकालकर घर भेजने को भी बचा लेते थे। अच्छी श्रेणी के लेखक, कवि, कलाकार, डाक्टर और समाज-सेवी भी हमारे युवको मे है। इन युवको के प्रयत्नो से ही हम अपना स्थान न केवल उद्योग व्यापार मे, बल्कि दूसरी विभिन्न प्रवृत्तियो मे भी सुरक्षित रख पाये है।

दूसरे विचार जो श्री सिंघी द्वारा व्यक्त किये गये हैं, उनमे भी दो मत की वात नही है। हमे सूट पहनने या रेस्तरॉ मे खाने का विरोध नही है, किन्तु विरोध है चोरी से आयात किये हुए अत्यन्त कीमती कपडे के सूट से और २० रु० प्रति कप के समुद्र की चिडिया के घोसले के सूप से।

जहाँ देश मे आवश्यक उद्योगो और वीमारो की दवाई के लिए भी आयात राशि नही मिल पाती, वहा ऐसे वाहियात कामो मे विदेशी मुद्रा खर्च करना एक प्रकार से देशद्रोह है। अब रही अपने पर कम खर्च करके दूसरे गरीब लोगो और सस्थाओ को सहायता देना। मेरी राय मे तो यह भी तभी सभव हो सकेगा जबकि हमारे धनिक युवक दूसरे गरीब लोगो से मिल-जुलकर सहानुभूतिपूर्वक उनकी आवश्यकताएँ सुनेंगे अथवा सार्वजनिक सस्थाओ मे भाग लेंगे। इससे उनको जो एक प्रकार की "मानुष गन्ध" आने लगी, उसमे कमी आयेगी, साथ ही देश मे बडे पेमाने पर फैली हुई गरीबी और भूखमरी को भी नजदीक से देखने का मौका मिलेगा।
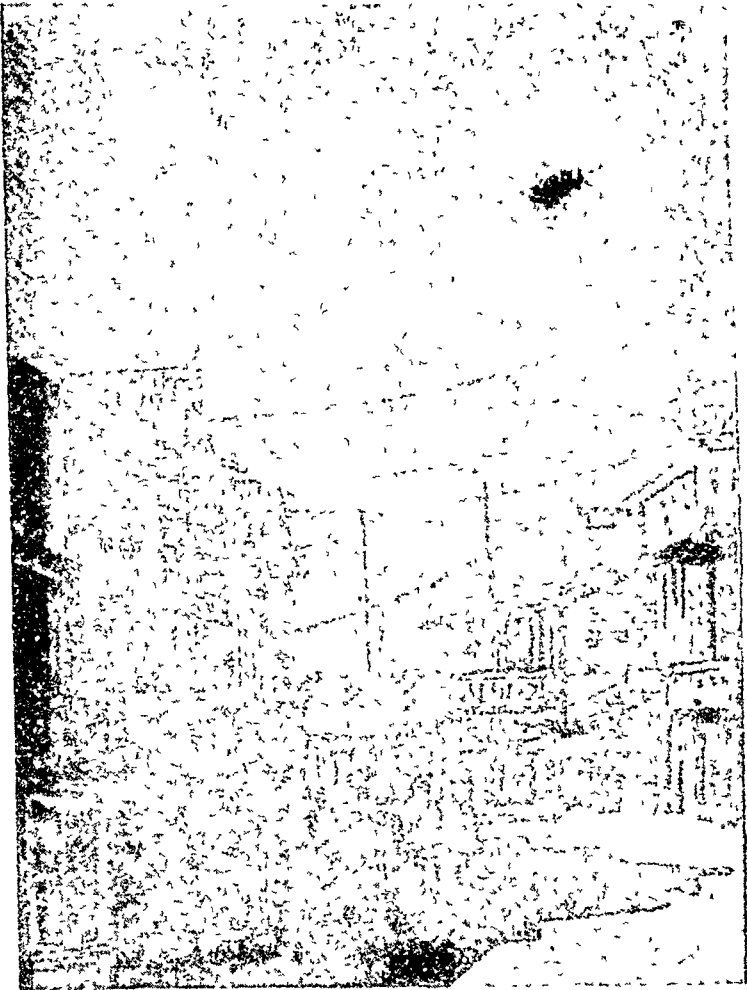
चरित्र-निर्माण में साहित्य का स्थान

किसी देश के निवासियो के सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन के निर्माण और विकास मे साहित्य का बहुत बडा हाथ रहता है। साहित्य समाज का दर्पण या प्रतिविम्ब-मात्र नही है, वह समाज के रुप-निर्धारण मे भी सहायक का काम करता है। वह समाज की दिशा का द्योतक मात्र ही नही है—दिशा-निर्देशक भी है। जहाँ एक ओर साहित्य समाज की गति का चित्रण करता है, वहाँ दूसरी ओर वह उस गति के क्रम का भी निर्धारण करता है। बाहर से देखने पर ऐसा लगता है कि जब समाज ऊँचा उठता है तो साहित्य का स्तर भी ऊँचा मालूम होता है और जब समाज पतन की ओर अभिमुख होता है तो साहित्य भी उसी प्रकार निम्नगामी नजर आता है, लेकिन हम ध्यान से देखे तो यह मालूम होगा कि साहित्य समाज की दशा का लक्षण मात्र नही है—उसका कारण भी है।

इतिहास में इसके अनेक उदाहरण पाए जाते हैं। रोम साम्राज्य कभी उन्नति के शिखर पर था। जिस साहित्य का उस युग में निर्माण हुआ, वह रोमन समाज को चित्रित करने के साथ प्रेरणा देने का काम भी करता था। लेकिन जब वहाँ के साहित्यकारो ने अपने साहित्य का रुख शुद्ध कलात्मकता को छोडकर शासको और सम्राटो की चाटुकारिता और इच्छापूर्ति की ओर मोड दिया तो उसके चलते सिर्फ साहित्य का ही नही, देश का भी पतन हुआ। अपने शासको की वासनापूर्ति के लिए जिस प्रकार के साहित्य का निर्माण उन्होने किया, वह देश को ले डूबा।

दूसरा उदाहरण लुई १४वे के राज्यकाल मे फ्रान्स का है। उस समय के प्रसिद्ध साहित्यकार भी उसकी प्रेमिकाओं के लिए उत्तेजक और अश्लील साहित्य की रचना मे लगे रहे—जिसके चलते देश मे विलासिता का एक ऐसा वातावरण बना, जिसके शिकार वहाँ के शासक ही नही, फ्रान्स का पूरा समाज हुआ।

अपने यहाँ भी उर्दू और ब्रजभाषा दोनो के साहित्य में एक ऐसा काल आया, जब रचनाएँ साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट होते हुए भी सामाजिक दृष्टि से वाछनीय नही थी। विलासिता का वह साहित्य शासको तक ही सीमित न रहा—आम-जनता भी उससे प्रभावित हुई।

इसके अतिरिक्त ससार के विभिन्न देशो मे इसके अनेको उदाहरण पाए जाते है। हमारे यहाँ स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व वर्षो मे सर्वश्री मैथलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तथा माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवियो ने जो साहित्य लिखा था, उसने आजादी की प्रबल इच्छा यहाँ के लोगो मे पैदा की। आज हमारे लिए चिन्तनीय विषय यह है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद राष्ट्र के उत्थान में प्रेरणादायक साहित्य का जो रूप होना चाहिए, वह पर्याप्त मात्रा मे

एक विचित्र अनुभूति

जयपुरसे आते हुए सुबह ७ मईको आगरा पहुँचा । लोहामण्डीमे रिक्शा किया और सिकन्दराके दो मील दूर अपने साहित्यिक मित्र रावीजीक निवास स्थान कैलास के लिए चल पड़ा । कैलाससे करीब आधा मील इधरका स्थान कुछ दूर तक जगल-झाडियोसे भरा, सूनसान ओर वीरान है । अचानक ऐसा लगा कि मुझ पर कोई हलकी सी चीज आकर गिरी । चारो तरफ देखा, कुछ भी नही था, न कोई आदमी । रिक्शा अपनी चाल चला जा रहा था । थोडी दूर आगे जाने पर वैसी ही चीज फिर गिरी जान पडी । इस बार सतर्कतासे खोजबीन की, किन्तु कपडो पर या रिक्शेमे, कही भी कुछ न मिला ।

कैलास की श्यामकुटी मे रावीजी के घर इसके पूर्व कई बार जा चुका हूँ । परन्तु इस बार न जाने क्यो मनमे एक हिचक सी हुई । अकेले ऊपर जानेके बजाय मैने रिक्शेवाले से कहा—"चलो देख ले रावीजी है या नही ।"

जब हम दोनो ऊपर पहुँचे तो देखा कि सारा मकान सुनसान पडा है । न रावीजी न उनके लोग और न सदा वहाँ रहने वाले ब्रह्मचारी जी । कई बार आवाज देकर उसी पैरो हम दोनो वापस आ गए । पास-पडोससे पता चला कि रावीजी यह मकान छोडकर सिकन्दरासे आगे गीता मन्दिरमे चले गए हैं । मै उसी रिक्शे पर गीता मन्दिर आ गया ।

रावीजी अपने जमे-जमाए स्थान कैलासको छोडकर यहाँ क्यो आ गए, इसके बारेमे उन्होने जो जानकारी दी, वह आजके बुद्धिवादी वर्गके लिए शायद अग्राह्य होगी । परन्तु उन जैसे भले और प्रामाणिक व्यक्तिकी बात पर अविश्वास भी नही किया जा सकता ।

घटना अद्भुत रही । १८ और १९ अप्रैल १९७२ दो दिनोके लिए वे दिल्ली गए । २० को वापस कैलास आने पर उन्हे बताया गया कि कई बार मकानमे पत्थरो के छोटे-बडे टुकडे गिरे और तरह-तरहकी आवाजे भी सुनाई पडी । उन्होने इन बातो पर विश्वास नही किया । उसी शाम उनके यहाँका दस-बारह वर्षका एक बच्चा स्कूलसे वापस आया । शकल बदली सी और आँखोमे अजीब सी चमक थी । थोडी देर बाद कडकती हुई आवाजमे कहने लगा—"आइन्दा इस बच्चे को अकेले इस रास्ते पर न भेजियेगा, आज तो मैने इसकी रक्षा कर दी ।"

रावीजीने प्रकोपग्रस्त बालक से पूछा—"आप कौन है ?" उसने उत्तर दिया "मैं श्यामलाल हूँ, मैंने ही यह मकान बनवाया था । बहुत वर्षो तक इसमे संन्यासीके रूप में रहा । जीवन मे कुछ ऐसी गलतियाँ हो गई कि मुझे प्रेतयोनि मे रहना पड रहा है । अब यहाँ कुछ ऐसी भयानक प्रेतात्माएँ आकर रहने लगी है जो नही चाहती कि अ . लोग यहाँ रहे ।"

थोडी देर बाद बच्चा अपनी स्वाभाविक अवस्था मे आ गया। जब उससे पूछा गया तो, वह स्वय चकित हो गया। उसे पहले की बात याद न थी।

सयोगसे रावीजीके साथ उनके साहित्यिक मित्र श्री आनन्द जैन भी दिल्ली से कैलास आए थे। उन्होने हँसते हुए कहा कि यह सब ढोंग है, मैं एक-दो दिनमे ही आपके भूतो को भगा दूँगा। विज्ञानके इस युगमे इन बातोको कोई विश्वास नही करेगा। इतनेमे ही सोडावाटरकी एक बोतल आकर उनके बीच गिरी। शीशेके टुकडे चारो तरफ बिखर गए पर किसीको चोट नही आई। फिर ईंटका टुकडा भी गिरा। सबो ने बहुतेरी जाच-पडताल की पर फेंकने वाला न मिला, न उसका कोई निशान ही।

उसी रात वह बच्चा जोर-जोरसे रोकर कहने लगा,—"साफा बाधे एक आदमी मुझे ऊपर बुला रहा है।" बच्चेकी मां वही थी, उसने गोदीसे उसे चिपका लिया। थोडी देर बाद बच्चे ने कहा,—"माँ, मुझे साधु बाबा बुला रहे है।" इस बार वह डरा सा नही था। खुद ही खुशी-खुशी ऊपर छतपर चला गया।

वापस आकर उसने बताया कि बाबाजीका सिर घुटा हुआ था, भगवा वस्त्र पहने थे, पैरोमे खडाऊँ। मुझसे कह रहे थे कि मेरी जो यह लोहेकी खाट है, उसका सिरहाना दूसरी ओर कर दो। तुम लोग यहाँसे अब चले जाओ। पास के कैलास मन्दिरसे गोसाईंजी आ गए थे। उन्होने बताया कि श्यामलालजी इसी वेशमे रहते थे। सन्यासी होनेके बाद उन्होंने कुछ अक्षम्य अपराध किए थे।

दूसरे दिन लडका फिर प्रभावमे आ गया। उससे बात करनेके सिलसिलेमे रावीजीने कहा, "महाराज यदि आप हमारे हितैषी हैं तो हम लोगोके साथ चाय पीजिये।" प्रेतात्मा के बताए अनुसार एक कप चाय कमरेके भीतर रख दी गई। दो मिनट बाद चायका प्याला खाली मिला। उन्होने भोजनका भी निमन्त्रण स्वीकार किया। हमने एक थालीमे भोजन सजाकर रखा और कमरा बन्द कर दिया। थोडी देर बाद देखा थालीसे दोनो फुलके और दाल समाप्त हो चके थे, चावल ज्योके त्यो रखे थे। इतनेमे ही एक साबित ईट आकर गिरी। आनन्दजी भी अब कुछ सहमे। उन्होने उपस्थित सब लोगोसे एक कागज पर हस्ताक्षर कराया और उसे ईट पर बाँध दिया और कहा कि हम चाहते है कि यह ईट सामने की खिडकी पर चली जाय। छोटा सा कमरा था, कोई अन्दर था नही। उसे अच्छी तरह बन्द कर दिया गया। कुछ देर बाद खोलने पर देखा गया कि ईट खिडकी पर रखी है और हस्ताक्षर का पर्चा खुला हुआ है। बच्चे पर उस समय तक प्रभाव था। रावीजी ने कहा कि यदि आप हमे पाच दिन की मोहलत दे तो हम जैसे भी हो, चले जाएगे। जवाब मिला, "पाच दिन तक आप पर कोई बाधा नही आएगी। आराम से रहिए।"

२५ अप्रैलको जब वे वहाँसे अपना सामान बाधकर चलने को तैयार हुए तो किताबोंसे भरी एक बडी सन्दूक के लिए सोचा कि फिर कभी ले जाएंगे। मगर देखनेमे आया कि वह दरवाजे तक अपने आप खिसक आई। इशारा स्पष्ट था, आखिर उसे भी लेकर आ गए।

रावीजीकी भतीजी प्रभाजीकी सन्दूकमे एक डायरी थी, उसमे लिखा हुआ मिला. "आदरणीय रावीजी, जैन बहुत तर्कवितर्क करता है, इसे समझा दीजिए और भी बहुत सी बाते थी। मैंने वह डायरी देखी। भाषा और लिखावट साधारण थी। वह सन्दूक भी मैंने रावीजीके नए स्थान पर देखी।

इन बातो की खबर पाकर श्यामलालजीके पुत्र आए। वे आगरेमे डाक्टर हैं। उन्होंने बताया कि उनकी पत्नी भी तीन चार दिन पहले जोर-जोरसे कहने लगी थी कि जल्द ही श्यामकुटीका नाश हो जाएगा।

सारी बाते सुनकर मुझे अपने ऊपर गिरी अदृश्य वस्तुकी याद आई। मनमें एक सिहरन

सी हुई ।

श्यामकुटीमे रावीजी वहुत वर्षो रहे । उस निर्जन स्थान को खाली करवानेकी किसी को गरज भी नहीं थी, क्योकि न तो वहाँ किराया ही आ सकता था, और न किसीके रहनेका प्रश्न था । आस-पासमे वे बहुत ही सेवा-भावी और मिलनसार माने जाते हे । उनसे कोई वैर-भाव भी रखने वाला नही है ।

इस घटनाको उन्होने अपने 'नये विज्ञापन' के मई अकमे सक्षेप मे प्रकाशित किया । वैसे भी पास-पडोसमे यह घटना काफी चर्चाका विषय वनी हुई है । कुछ मित्रोकी राय है कि टोलीमे वहाँ जाकर रातमे रहा जाय ।

मैं स्वयं भूत-प्रेतोमे विश्वास नही करता । हो सकता है मुझे जो अनुभव हुआ, वह मनका भ्रम हो । परन्तु जिस विस्तार से रावीजी, उनकी भतीजी तथा बच्चोंने बाते बताई उन पर अविश्वासका कारण नही बनता । उस बालकको भी देखा, वहुत ही निरीह, सीधा-सादा है । मैंने श्री आनन्द जैनको पत्र लिखा और उनके उत्तरसे मेरी धारणा की पुष्टि होती है ।

वहुत दिनो पहले मैंने बी० डी० ऋषि और लेडवीटरकी पुस्तके इस सम्बन्ध मे पढी थीं । कुछ घटनाएँ भी सुन रखी थी । परन्तु इसका निर्णय पाठको पर छोड़ना चाहूँगा ।
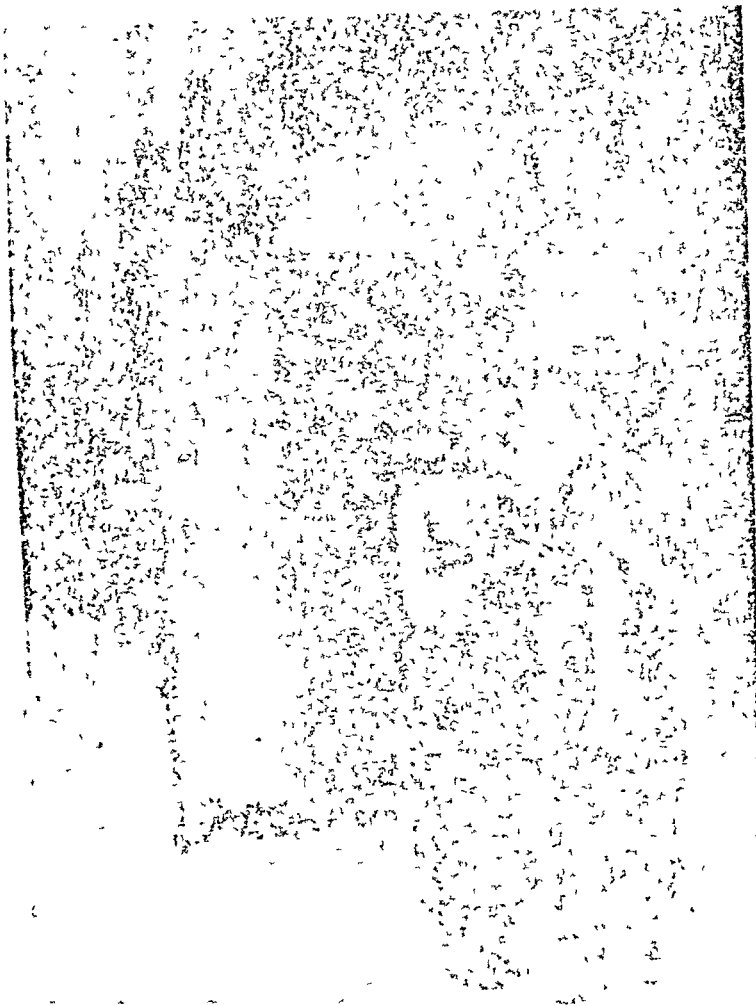
उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का नया प्रयोग

आजसे तीन वर्ष पहले जब देशके चौदह बडे बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया था तो इनमे जमा लगभग तीन हजार करोड रुपयोकी पूँजी सरकारी नियन्त्रणमें स्वत ही आ गयी। परन्तु मूलत उन बैंकोके जो भागीदार (शेयर होल्डर) थे, उनको इक्कीस करोड रुपये के करीब चुकता पूँजी और रिजर्व का जोडकर मिल गया। इससे जो लाखो छोटे-बडे भागीदार थे, वे एक प्रकारसे सन्तुष्ट हो गये। हाँ, इन सस्थाओ की पचासो वर्षकी साख (गुडविल) के लिए कोई मुआवजा नही दिया गया था। पिछले वर्ष साधारण बीमा कम्पनियो का जब राष्ट्रीयकरण हुआ तब लोगोके मनमे यह विश्वास था कि पहले की तरह ही मूल धन और सुरक्षित कोप (रिजर्व फण्ड) को जोडकर भागीदारो को रुपया मिल जायेगा। परन्तु इस बार सरकारने यह मुआवजा पिछली बारकी तरह (जो उचित और आवश्यक था) न देकर केवल लाभाशके अनुपात से दिया। नतीजा यह हुआ कि अपेक्षित कीमतोंसे लगभग आधी ही हिस्सेदारोको मिलेगी।

गत फरवरीके विधान सभाओके चुनावोके दौरान वित्त मन्त्री श्री चह्वाणने गुजरातमे अपने भाषणोंमें कहा था कि आवश्यक वस्तुओके करखानोका सरकार राष्ट्रीयकरण कर लेगी इसके पूर्व इस सम्बन्धमे ससदमे एकाधिकरणको तोडने के लिए २७वी धारामे सशोधन भी किया जा चुका था। पिछले दिनो जिस प्रकारसे कोकिंग कोयलाकी खानो और इण्डियन कापर कम्पनीको सरकारी तत्वावधानमे बिना मुआवजा तय किये ले लिया गया, उससे उद्योगपतियोमे चिन्ता होनी स्वाभाविक ही थी। अब, नयी दिल्लीमे विश्वस्त सूत्रोसे पता चला है कि कुछ अर्थ विशेषज्ञो एव कम्पनी-कानूनके जानकारो ने सरकारको ऐसी सलाह दी है जिससे कि बहुत थोडे रुपयो मे एक नये तरीकेसे उद्योगोका राष्ट्रीयकरण हो जाय। इसके लिये एक समिति बन गई है जिसके सदस्य है वित्त सचिव श्री आई० बी० पटेल, उद्योग सचिव श्री बी० बी० लाल एव कम्पनी-कानून सचिव श्री आर० प्रसाद। यह समिति पूरी जाँच और जानकारी करके सरकारको सलाह देगी कि बिना मुआवजा दिये किस प्रकारसे बड़े और जरूरी उद्योगो का राष्ट्रीयकरण हो जाय। वैसे, बीमा निगम, यूनिट ट्रस्ट ओर धर्मार्थ ट्रस्टोके हिस्सोकी प्राक्सीसे सरकारका बहुत सी कम्पनियो पर इस समय भी अधिकार हो सकता है, परन्तु इसमें इस बातका डर है कि मैनेजिग एजेन्सी समाप्त होनेके बावजूद उद्योगोके वर्तमान सचालक नाना प्रकारके झझट लगा सकते है। इसलिए उक्त समितिका पहला कार्य यह होगा कि बडे-बडे उद्योगपतियोको बुलाकर इस बातके लिए तैयार करे कि वे अपने हिस्से सरकारको बेच दे। इस प्रकार से केवल तीस-पैतीस प्रतिशत हिस्से खरीद कर ही विभिन्न उद्योगो पर सरकारी नियन्त्रण हो जायेगा। अध्यक्ष ओर प्रबन्ध निर्देशक सरकारी हो जायेंगे

सचालक-मण्डलमे भले ही वर्तमान सचालको मे से कुछको रहने दिया जाय।

यह भी सम्भव है कि अधिकाश वर्तमान अधिकारियो और तकनीकी विशेषज्ञोको पूर्ववत अपने-अपने पदो पर बहाल रखा जाय। परन्तु इसमे यह अडचन आ सकती है कि उनका अधिकतम मासिक वेतन वर्तमान दृष्टिकोणके अनुसार साढे तीन हजारसे अधिक न हो जब कि उनमेसे कइयोको इस समय पाँच-सात हजार तक मिलने है। यहाँतक सुना गया है कि कुछ वडे उद्योगपतियोको बुलाकर इस सन्दर्भमें बात-चीत शुरू कर दी गई है। ऐसा अनुमान है कि यदि वर्तमान सचालक स्वेच्छा पूर्वक अपने हिस्से वेचना नही चाहेगे तो आगामी सितम्बर-अक्टूबरसे ससदीय सत्रमे वाचू समिति की रिपोर्ट पर जब विचार होगा, उस समय २७ वी धारामे भी वडा परिवर्तन करके सरकार अपने हाथेमे यह अधिकार ले लेगी कि किसी भी प्रतिष्ठानके हिस्से जो संचालकोके पास हों उसे सरकार वाजार भावमे खरीदे ले कहा जाता है कि सर्वप्रथम एल्यूमीनियम, लोहे और चीनी के उद्योग लिए जायेंगे। ऐसा लगता है कि अपने आपमे नये ढगसे राष्ट्रीयकरणकी दिशामे यह एक बहुत वडा निर्णय होगा।

देखना यह है कि इन कारखानो की इस समय जैसी प्रगति होती जा रही है और भागीदारोको भी जो अच्छा लाभाश मिल रहा है वह सरकारी नियन्त्रणमे जानेके बाद रह सकेगी या नही। वर्तमान सरकारी क्षेत्रके अधिकाश कारखानोकी हालत तो शोचनीय है और वे घाटेमे चल रहे हैं।

आज टाटा, विडला, भरतराम और कस्तूरभाई जैसे सुदक्ष सचालकोके तत्वावधानमे नये होने वाले उद्योगोके हिस्से जिस तत्परता से बिक जाते है, उसमे भी शायद कमी आ जाएगी क्योकि खरीददारोको यह भरोसा नही रहेगा कि ये कारखाने उन्हीकी देख-रेख मे रह पाएगे या नही।

इण्डियन कापरके हिस्सोका भाव पहले चार रुपयेका था। अब सरकारी नियन्त्रणके वाद उसका भाव २५ प्रतिशत घट गया है। हो सकता है कि जो उद्योग सरकार अपने नियन्त्रणमे लेगी, उनके सचालकोको वर्तमान कीमत या उससे कुछ अधिक मिल जाए किन्तु शेष बचे लाखो छोटे-वडे भागीदारोको तो भविष्यमे शायद ही वर्तमान लाभाश मिल पाएगा।

गुनाहों का बादशाह

महमूद गजनवी, नादिरशाह और अहमदशाह अब्दालीकी याद आते ही बेकसूरोकी हत्या, बेकसोकी अस्मतदारी, मन्दिरोकी ध्वस लीला, गाँव, कस्बो, नगरोकी आगजनी आदि की दर्दनाक तस्वीरे सामने आ जाती है।

तैमूरकी तरह ये सब सिर्फ लूटके लिए भारत आए और अपना मकसद पूरा कर चले गए, पर इस लेखके नायक औरगजेबको यही पैदा और दफ़न होना था।

सन १६१८ मे दोहद (गुजरात) मे जन्म हुआ। पिता शाहजादा खुर्रम वहाँका सूबेदार था। १६२७ मे वह शाहजहाँ के नामसे तख्तनशीन हुआ। औरगजेब भी तबसे आगरामे रहने लगा। वही उर्दू, फारसी और अरबीकी शिक्षा पाई। बादशाह बड़े शाहजादे दारा शिकोह और शाहजादी जहानआरा से विशेष स्नेह करता था, इसलिए शुरूसे ही औरगजेब कुछ अलग-थलग सा रहकर कुरान शरीफ, मुहम्मद साहब की जीवनी और शेख जैनुद्दीनकी कृतियोके अध्ययनमे तल्लीन रहने लगा। युवराज दारा शिकोह अधिकतर मोज-शोक व काव्य सगीतमे मस्त रहता। शायरो, सूफी फकीरो तथा हिन्दू सन्तोकी सगत करता।

सत्रह वर्षकी अवस्था मे औरगजेबको तीन सेनाओ का अधिपति बनाकर बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करनेके लिए भेजा गया। थोडे ही समयमे उसने ओरछा पर अधिकार कर लिया अनेक मन्दिर तोडे और अपार धन सम्पत्ति लेकर वापस लोटा। मुसलमान दरबारी प्रसन्न व प्रभावित हुए। औरगजेब की मजहबी कट्टरताको बल मिला। आगे जाकर इसीके अनुसार अपने आचरण तथा व्यवहार को ढालता गया। हिन्दू विद्वेष के बल पर वह गाजी बननेका स्वप्न देखने लगा।

१६५२ मे एक बडी फौजके साथ उसे दक्षिणका सूबेदार बनाकर भेजा गया। ६ वर्षकी अवधिमे उसने वहाँकी शासन व्यवस्था ओर आमदनी की स्थिति सुदृढ कर ली। आगरेके दरबार मे धाक जम गई। वहाँ उससे सहानुभूति रखनेवाले पहले ही से थे, जो जरूरी सूचनाएं भेजते रहते थे। इनमे बादशाहकी छोटी शाहजादी रोशन आरा प्रमुख थी।

बादशाहने शाहजादा दारा शिकोहको तख्त-नशीन करने का ऐलान कर दिया। वेसे भी वली अहद होने के नाते लम्बे अरसेसे वह बादशाहके नाम पर शासन-सचालन करता आ रहा था। अकस्मात् १६५७ मे बादशाहकी बीमारीकी खबर फैली तो तख्तके लिए चारो शाहजादे बेताब हो उठे। बगाल से शाहशुजा दक्षिणसे औरगजेब और गुजरातसे मुरादने अपनी पूरी फौजोके साथ आगराकी ओर कूर्च कर दिया।

३६ वर्षके औरगजेब को पिछले २३ वर्षो के शासन व युद्ध सचालनका अनुभव था। अपने व्यक्तित्व पर दीन इस्लामका मुलम्मा चढा चुका था, छल-नीतिमे प्रवीण था ही। मीर जुम्ला ओर शाइस्ता खाँ जैसे प्रमुख प्रभावशाली व्यक्तियोको उसने बडी आसानीसे अपनी ओर मिला लिया।

मुगल खानदानमे शाही तख्तके लिए खूरेजी विरासतमे चली आ रही थी, पर पहले और अबकी स्थितिमे फर्क था। बादशाह अभी मौजूद है, वली अहद का ऐलान हो चुका है, शाही

फरमान लम्बे अरसे से उसके दस्तखतसे निकल रहे है। औरंगजेबने सोचा, वक्त नए तरीकेका तकाजा कर रहा है। उसने अपने छोटे भाई मुरादको मोहरा बनाया, कहने लगा—हिन्दू परस्त काफिर दारा को शिकस्त देकर सल्तनतको एक सच्चे बहादुर और इस्लाम पर यकीन रखनेवाले मजबूत हाथोमे सौप देना ही मेरा फर्ज है। यह तभी मुमकिन है, जब आप जैसा कौल फेलका पक्का जाबाज ईमान-परस्त तख्त-नशीन हो। उसके बादमे जिन्दगीके बाकी दिन मक्का शरीफमे सुकूनसे गुजार सकूँगा। उसने मुरादको बादशाह बनाने की कसम खाई। उसे जहाँपनाह-बादशाह हुजूर कहने लगा, दस्तबस्ता कोर्निश करने लगा। बेवकूफ मुराद जालमे फँस गया, तख्तकी सूरत देखनेके पहले ही खुदको हिन्दुस्तानका शाहंशाह समझ बैठा।

धौलपुरके पास धरमतके मैदानमे शाहजादोकी व शाही फौजमे जग छिडा। शाही फौजका सेनापति कासिम खाँ पहले ही से औरंगजेबसे मिला हुआ था। ऐन वक्त पर इस्लामी रगमे रगे मुसलमान सिपहसालारोने धोखा दिया। महाराज जसवत सिंह अपने बहुतसे राजपूत योद्धाओको खोकर घायलावस्था किसी प्रकार जोधपुर वापस पहुँचे।

डेढ महीने बाद सूमागढ का निर्णायक युद्ध हुआ। इसमे बादशाह स्वयं जाना चाहता था, पर औरंगजेबसे मिले हुए दरबारियोने दारासे कहा—यदि बादशाह सलामत खुद तशरीफ ले जायेंगे तो फतहका सेहरा आपको नही, उन्हीको मिलेगा। इस पर उसने बादशाह से अर्जकी कि जबतक बन्दा जिन्दा है, जहाँपनाहको तकलीफ करने की जरूरत नही। दारा एक विशाल सुसज्जित फौज लेकर मैदाने जगमें उतरा। औरंगजेबके पास इसकी आधी भी नहीं थी। इस बार भी सिपहसालार खलीलुल्ला खाँ दुश्मनोसे मिला हुआ था। उसने दाराको घोडे पर चढकर युद्ध सचालन करनेकी सलाह दी। सफेद हाथी का हौदा खाली देखकर शाही फौजने समझा कि दारा मारा गया। बूँदी नरेश छत्रसाल जैसे वीर सेनानी तथा इतनी बडी सेना होते हुए भी शाही फौज हार गयी। दूसरे दिन औरंगजेबने बादशाहको पत्र लिखा कि दारा काफिरोसे मिलकर गद्दी हथियाना चाहता था, इसीलिए मुझे जंगके लिए मजबूर होना पडा। अब मैं आपके हुजूरमे हाजिर होकर खिदमत पेश करना चाहता हूँ।

दो-तीन दिनोमे आगरा शहरकी व्यवस्था कर अपने बडे बेटे मुहम्मद सुलतानको किलेका घेरा डालनेके लिए भेज दिया। घेरा कसता गया, रसद व पानी बन्द हो गया। आठ जून को किला उसके कब्जेमे आ गया। जो भी पहरेदार खोजे तथा हरमकी ड्यूटी पर तैनात सशस्त्र तातारी औरते मिली, सभी को मौत के घाट उतार दिया और इस प्रकार अपने समय का सर्वाधिक सम्पन्न वैभवशाली वृद्ध बीमार बादशाह अपने ही युवक पौत्र द्वारा बन्दी बना लिया गया।

प्रमुख दरबारियोको धन तथा पदका लालच देकर, केवल पन्द्रह दिनोमे औरंगजेबने पूरे तौरसे अपने पैर जमा लिए बादशाहको कैद हो गयी, मगर बेवकूफ बादशाह हुजूर मुराद की मुराद अभी बाकी थी, उसे ठिकाने लगाना था।

फतहकी खुशीमे जश्न मनाया गया। हुजूरे आलम 'बादशाह' को खूब पिलाई गई। शराबके नशेमे धुत्त बेहोश मुरादको क्या पता कि क्या हो रहा है। आँखे खुलने पर उसने अपनेको शाही तख्त पर नही, शाही कैदखानेमे पाया। साढे तीन वर्ष तक ग्वालियर के किले में भाँति-भाँतिकी कठोर यन्त्रणाएँ दिए जाने पर भी जब उस अभागेके प्राण न निकले तो औरंगजेबने दो गुलामो को भेजकर उसे दुनियाकी कैद से रिहा कर दिया।

आगरा से भागकर दारा सपरिवार दो महीने तक पनाह की खोजमें भटकता फिरा। जहाँ पहुँचा वही कोरा जवाब। आखिर अहमदाबादके सूबेदार जीवा खाँ ने पनाह दी, एक बार दारा ने उसकी जान बचाई थी। वक्तकी बात, उसी सूबेदार ने इनामके लालचमे दाराको औरंगजेबके सिपाहियोको सौप दिया। दुःख, थकान और बीमारीकी मारी उसकी प्यारी

नादरा दर्म तोड चुकी थी, लाश पडी थी। अहसान फरामोश जीवो खाँने इतना भी मोका न दिया कि दारा अपनी बेगमकी लाश दफनवा सकता।

दाराको राजधानी लाया गया। शाहजादे सिपर शिकोह के साथ एक बूढी हथिनी पर बिठाकर दिल्लीकी सडको पर घुमाया गया। मैले-कुचैले कपडे, पैरोमे बेडियाँ, पीछे नगी तलवार लिए जल्लाद, ऐसा असहनीय मर्मान्तिक दृश्य देखकर, दिल्ली की जनता सिसक-सिसक कर रो रही थी, एक तरफ खडा हुआ विश्वासघाती जीवाँ खाँ मुस्कुरा रहा था, जनता से न सहा गया, उसे ईंट-पत्थरो से मार-मारकर वही ढेर कर दिया।

दारा कैदखाने भेज दिया गया। उसे मौतके घाट उतारने के लिए कुछ ऐसा न्याय का ढोग रचना था कि जनता उचित समझे। काजियोकी बैठक बुलाईगई, मसलेपर विचार हुआ, फतवा दिया गया—सजाये मौत। दूसरे दिन दाराकी लाश शहरमे घुमा दी गई।

अबतक औरगजेब शुजाको प्यार भरे पत्र लिखता रहा कि तुम बगाल, बिहार और आसाम पर बेफिकरीसे हुकूमत करो, काफिर दारा व मुरादको सजा देने के लिए मै दिलोजानसे कोशा हूँ, इनसे फुरसत पाते ही मेरी हविस पूरी होगी फिर वही होगा जो तुम चाहोगे।

शुजा बाहोशथा, मगर ऐयाश व आलसी भी। उसे अपनी सेना व सम्पत्ति पर अटूट विश्वास था। उसने सोचा, मैदान से दो के हट जाने पर एक से सलटने मे सुविधा होगी। इसलिए जान-बूझकर अनेक मूल्यवान एव अनुकूल अवसर हाथ से निकल जाने दिये।

मुराद और दारा को ठिकाने लगाकर औरगजेब ने शुजा पर चढाई कर दी। इलाहाबाद के पास खुजवा मे दोनो भाइयो मे मुठभेड हुई। शुजा बडी बहादुरी से लडा, पर बेहतरीन हथियारो से लैस नव्बे हजार शाही फोज व तेज सवारो के सामने उसकी सेना के पेर उखड गए। वह किसी प्रकार जान बचाकर बगाल की ओर भागा।

यो औरगजेब भाइयो और भतीजोका खून करके और बूढे बाप तथा बहिनको कैद करके बादशाह हो गया। दरबार मे अधिकाश सुन्नी थे, राजधर्म सुन्नी था, अस्तु सुन्नी-सम्प्रदाय को सन्तुष्ट करने के लिए तख्तशीन होते ही सूफी फकीरो को कत्ल करवा दिया। उन दिनो सरमद नामक एक पहुँचे हुए सूफी सन्त थे, देश दुनिया मे उनकी बडी शोहरत थी। काजियो से फतवा दिलवाकर इस महान सन्त की गर्दन उतरवा ली। एक पादरी मुसलमान बन गया था, कुछ दिन मे वह फिर ईसाई हो गया, उसे भी मृत्यु दण्ड दे दिया गया। बोहरे सम्प्रदाय के धर्मगुरु सैयद कुतुबुद्दीन को उनके ७०० अनुयायियो सहित अहमदाबाद मे सरेआम कत्ल कर दिया गया।

दादा 'जहाँगीर' था तो औरगजेबने भी अपना उपनाम 'आलमगीर' रक्खा। आलमगीर होने के लिए सारा आलम नही तो कम से कम सारा हिन्दुस्तान तो साया होना ही चाहिए। इसके लिए उसे अनेक युद्ध करने थे, क्योकि हिन्दुस्तान के बहुतसे हिस्से मुगल सल्तनतमे नही थे। लडाइयोमे लम्बे खर्चके लिए लम्बी रकम चाहिए, इसलिए अपने बुजर्गो द्वारा रद्द किया जजिया कर हर हिन्दू बच्चे, बूढे-जवान पर फिर लागू कर दिया। अफसर कडाईसे जजिया वसूल करते, लोग खूनका घूँट पीकर रह जाते। खजानेमे बेशुमार दौलत जमा होने लगी। जो नही दे पाते, मारे डरके मुसलमान बन जाते। इस्लाम का प्रचार-प्रसार जोर-शोरसे शुरू हो गया। 'आलमगीर जिन्दा पीर' का गगनभेदी घोष गूँजने लगा।

औरगजेब का मजहबी जोश इतनेसे सन्तुष्ट नही हुआ। उसे मन्दिरोमे सदियोसे सचित सोना, चाँदी, हीरा, जवाहरात, रत्न, धन आदि अखर रहा था। उसने प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिरोको निशाना बनाया। इधर मन्दिर टूटते, उधर हिन्दूओके दिल टूटते और शाही खजाने पर धन की अजस्र वर्षा होने लगती। अहमदाबादके प्रसिद्ध चिन्तामणि मन्दिरमे पहले गोवध कराया फिर उसे मस्जिद बनवा दिया। मथुराके केशवराय मन्दिरकी ध्वजा काफी दूरसे दिखाई पडती थी, औरगजेब भला इसे कैसे सह पाता, इसे तोडवा कर मस्जिद निर्मित

करा दी—यद्यपि ऊँची जातिके लोग तो मारे डरके कुछ नही बोले, परन्तु कृषक वर्ग व हरिजनो का खून खौल उठा। उन्होने पूरी शक्तिसे विद्रोह किया, अधिकाश मौतके घाट उतार दिए गए। सतनामी सन्तो की नृशस हत्या कर दी गई। काशीके विश्वनाथ मन्दिरकी भाँति अनेक प्राचीन प्रसिद्ध मन्दिरोके भग्नावशेष आज भी अपनी करुण गाथा सुना रहे है। सन् १६६० मे उसने सुदूर दक्षिणके मन्दिरोको तोडनेका आदेश दिया। इन ध्वस्त मन्दिरोकी सूची बनाई जाय तो एक छोटी-मोटी पुस्तक तैयार हो जाय।

अन्य धर्मावलम्बियोके धार्मिक उत्सव, मेले, पर्व, त्योहार गुनाह करार दे दिये गये, मन्दिरोमे शख-घण्टे बजने बन्द कर दिये गये। हिन्दुओंने बहुत गुहार पुकारकी, पर सब बेकार गई। शिवाजीनेजजिया उठा लिए लेनेके लिए पत्र लिखा, किन्तु औरगजेब भला इसे क्यो छोडता।

आमेर सदासे मुगल साम्राज्य का सहायक रहा। इसी वफादारीके आधार पर वहाँके राजा जयसिंह उच्च मुगल सेनाध्यक्ष थे। ओरगजेबने वहाँके सभी मन्दिर ध्वस्त कराकर सिद्ध कर दिया कि मजहबी दीवानगीमे वह किसीकी वफादारी का लिहाज नही करता। पजाबमे गुरु तेग बहादुर ओर गोविन्द सिंहके नेतृत्वमे सिक्खोने इस अपमान और अत्याचारके विरुद्ध विद्रोह किया, जिसे सैन्य बलसे कुचल दिया गया। सन् १६७५ मे दिल्लीमे गुरुतेजबहादुर का सिर काट दिया गया। आज वहाँ पर शीशगज गुरुद्वारा है। गुरुगोविन्द सिंहके दो बेटोको दीवारमे चुना दिया गया।

सन् १६८० मे औरगजेब अजमेर आया हुआ था। महाराज जयसिंह व दुर्गादास राठौरकी सलाहसे शाहजादा अकबरने स्वयको बादशाह घोषित कर दिया। औरगजेब ऐसे खेलोका माहिर खेलाडी था उसने शाहजादेके सेनापति तहब्बर खाँको लालच देकर अपने खेमेमे आमन्त्रित किया और कत्ल कर दिया। यहाँ उसने एक कमालकी चाल चली। अकबरके नाम एक पत्र लिखा—शाबाश मेरे बेटे, राजपूतोको खूब बेवकूफ बनाया, तुमने उनकी सारी साजिश नाकाम कर दी और सल्तनते मुगलियाको बहुत बडे खतरेसे बचा लिया। ऐसी व्यवस्था भी कर दी कि पत्र शाहजादेको नही, दुर्गादासको मिले। चाल कारगर हुई। राजपूतोने अकबरका साथ छोड दिया। निराश व दु खी शाहजादा मारवाडकी ओर चला गया। जब दुर्गादासको असलियतका पता चला तो बडा पछतावा हुआ, पर वक्त हाथसे निकल चुका था। अकबर किसी प्रकार सुदूर दक्षिणमे शम्भाजीकी शरणमे जा पहुँचा। औरगजेब उसके वली अहद, बडी बेटी और बेगमोको किलेमे कैद कर दिया।

उत्तरसे निश्चिन्त होकर उसका ध्यान शिवाजी तथा मराठोकी बढती शक्तिकी ओर गया। अपने विश्वस्त सेनापति शाइस्ता खाँको बहुत बडी सेनाके साथ दक्षिणका सूबेदार बनाकर भेजा। चार वर्ष तक लडनेके पश्चात भी अन्तत वह पराजित हुआ तो औरगजेब बौखला उठा ओर अपने सर्वाधिक सुयोग्य सेनापति जयपुर नरेश जयसिंहको एक सुसज्जित सेनाके साथ शिवाजीको पकडनेके लिए भेजा। यद्यपि जयसिंह उच्चतम सेनापति था, परन्तु वह हिन्दू था अपने विश्वासपात्र सिपहसालार दिलेर खाँको खबरदारी के लिए साथ लगा दिया। मराठा बडी बहादुरीसे लडे, पर इतनी विशाल सेनाके आगे अधिक समय तक टिक न सके। धीरेधीरे किले उनके हाथसे निकलते गये। पुरन्दरका प्रसिद्ध गढ भी उन्हे छोडना पडा।

हिन्दुत्वकी रक्षाके लिए भारतका केवल एक सपूत शिवाजी जानपर खेल रहा है, यह अनुभव कर जयसिंह हृदयसे उनका आदर करते थे। इसी कारण उन्होने मई १६६५ मे पुरन्दरमे शिवाजीसे एक सम्मानपूर्ण सन्धि कर ली और उन्हे पुत्र शम्भाजीके साथआगरा जाकर औरगजेबसे भेट करनेके लिए राजी कर लिया। अपने कुल-देवता गोविन्ददेवकी शपथ खाकर वहाँ उनके साथ प्रतिष्ठा पूर्ण व्यवहारके लिए जिम्मा लिया, इसके लिए स्पष्ट निर्देश देकर अपने पुत्र रामसिंहको साथ कर दिया।

औरगजेबने शिवाजीको हर प्रकारसे अपमानित किया, पिता-पुत्रको कैद कर लिया, किस प्रकार शिवाजी पुत्र सहित कैदसे निकल भागे, ये सारी बाते इतिहास प्रसिद्ध है।

महाराष्ट्र आनेके बाद शिवाजी दिखावेमे औरगजेबसे मेल रखते हुए गुप्त रूपसे बडी सावधानीसे शक्ति अर्जित करने लगे । १६७० मे शाही फौजो पर छापे भी मारने लगे । शाहजादा मुअज्जम सामना न कर सका । शिवाजीने अपने अनेक किले वापस जीत लिए और सूरतको दूसरी बार लूटा । आठ वर्ष तक युद्धमे बादशाहके अनेक अनुभवी सेनापति पराजित हुए तब उसने अपने सबसे बडे दो सेनापति महावत खॉ व दाऊद खॉको भेजा । कई बारकी हार-जीतके बाद आखिर छोटीसी मराठी सेनाका टिकना कठिन हो गया । भूपाल गढका किला उसके हाथसे निकल गया । इस युद्धमे हजारो मराठे वीरगतिको प्राप्त हुए । जो बचे, वे कैद कर लिए गये और उनके हाथपैर काट दिये गये । स्त्रियोके साथ अमानुपिक अत्याचार किये गये ।

१६८२ के बाद औरगजेब प्राय दक्षिणमे ही रहने लगा । गोलकुण्डाके सेनापतिको रिश्वत देकर अपनी ओर मिला लिया और उस अजेय किलेको सर कर लिया । इसी प्रकार बीजापुरको भी वहॉके वजीरो व अधिकारियोको घूस देकर मुगल साम्राज्यमे मिला लिया । इस तरह धीरे-धीरे सारे दक्षिणको अपने कब्जेमे कर लिया ।

गोलकुण्डाका सुल्तान बाबू हसन निहायत नेक व अमन पसंद इन्सान था, हिन्दुओकी धार्मिक भावनाका आदर करता था । शाहजादा शाह आलमके दिलमे इसके प्रति हमदर्दी थी । इसी अपराधमे औरगजेबने अपने इस शाहजादेको उसके चारो पुत्रो समेत बुलाकर कैद कर लिया और उसकी सारी सम्पत्ति जप्त कर ली ।

सन् १६८९ मे शम्भाजीको उसके २५ विश्वस्त साथियो सहित पकडकर दिल्ली लाया गया, १५ दिन तक कठोर यत्रणाए देकर मरवा दिया गया ।

औरगजेबका अत्याचार चरम सीमा पर था, पर मराठे वीर इससे हताश नही हुए, दुगुने उत्साह से बद्ध परिकर हुए, वे सगठित होकर मुगल साम्राज्यके कस्बे व शहर लूटने लगे । ७५ वर्षके बूढे बीमार बादशाहकी कमर झुक गई थी । परिवारमे कलह, सन्तान अयोग्य, इसलिए इतनी बडी हुकूमतके बावजूद वह दु खी तथा परेशान रहता था । मराठा छापामारोकी चोटोसे सेनाके सिपाही, हाथी, घोडे, ऊँट काफी सख्यामे मरने लगे । लगातार युद्धके कारण खजाना खाली हो गया, अफसर इस्लामके नाम पर जोर-जुल्म करते । हर ओर आह-कराहका आलम, अराजकता, विद्रोह—१५ वर्षोमे हालत खस्ता हो गई । ९० वर्षके आलमगीरके अन्तिप दिन घोर विषाद पूर्ण रहे ।

शाहजादे बुढापेकी ओर कदम रख रहे थे, पर उनकी ऐय्याशी जवानी पर थी । वे और उनके बेटे बादशाहतका ख्वाब देखते । पोते अपने पिता व पितामहकी तथा पुत्र अपने पिताकी मौतकी दुआ मॉगते । हर ओरसे निराश बादशाहको सन १७०९ की फरवरीमे बेहोशीके दौरे आने लगे, १५ दिनकी बीमारीके बाद २० फरवरीको उसने सदाके लिए ऑखें मूँद ली ।

अन्तिम समयमे अपने दो पुत्रोके नाम जो पत्र लिखे, उनसे उसके असीम मनस्तापका आभास मिलता है । ऐसा लगता है कि मनुष्य चाहे छल-कपटसे जीवनमे बडीसे बडी उपलब्धि प्राप्त कर ले, परन्तु अन्त समयमे उसके पाप सिर पर चढकर बोलते है ।

औरगजेब को उसके गुरुकी कब्रके पास दफनाया गया । सन् १९७१ मे मुझे यह कब्र देखनेका अवसर मिला । देखते ही उसकी घोर नृशसताके चित्र ऑखोके सामने आने जाने लगे । मन स्थिति कुछ अजीब-सी हो गई, जान पडा जैसे कोई कानमे कह रहा है—न गया साथ तख्त, न ताज, न राज, यहॉ फ़क़त दो गज़ जमीनके अन्दर मिट्टीमे मिला पडा है । औरगजेब—आलमगीर, आलमका नही, गुनाहोका बादशाह था ।

शरणागत की रक्षा

राजस्थानका उत्तर-पूर्वी हिस्सा पजावसे मिला हुआ है। वहाँ पर देशके विभाजनके समय काफी सख्या में मुसल्मान परिवार थे। हिन्दू-मुसलमानोमे आपसमे भाई-चारा था, एकदूसरेके सुख-दुख, विवाह-शादी और त्यौहारमे बडे जतन और प्रेमसे हिस्सा लेते थे।

हिन्दुओकी होलीमें मुसलमान डफो पर धमाल गाते थे और मुसलमानोके ताजियोमे मर्सिये सुनकर हिन्दुओकी आँखोमे आँसू आ जाते थे। वे भी नए-नए कपड़े पहनकर ताजियोके जुलूसमे शामिल होते थे, बच्चोके रोग निवारणके लिए उन्हें ताजियोके नीचेसे निकालते थे। मुझे याद है हमारे पड़ोसी मुसलमान बच्चे हमे यह कह कर चिढाते थे कि देखो हमारे ताजियो पर कितना सुन्दर गोटा-किनारी लगा है जब कि तुम्हारे देवता हनुमानका मुँह बन्दर सा है और गणेशजीका हाथी सा। हम जब दादाजीसे उनकी शिकायत करते तो वे हमे भुलानेके लिए उन्हे झूठमूठ डाँट देते थे।

हमारे घर के पीछेकी तरफ घासी लीलगरका छोटा सा घर था। हम उन्हे बराबर घासी भैया कहकर पुकारते थे। वे सब भी दादीजीको माँजी कहते। उनके यहाँ जमाई आता तो दादीजी दरी-गद्दा तथा निवारके पलग भेज देती। उस समय यद्यपि तनोकी छूआछूत थी पर दिलोमे प्यार था।

सन् १९४७ के शुरूकी बात है, देश-विभाजनकी चर्चाका अन्तिम चरण था। अग्रेजी सरकारने भारत और पाकिस्तान दो अलग-अलग मुल्क बनाकर शासन सौपनेका मसौदा बना लिया था।

पश्चिमी पजाबसे बडी सख्यामे हिन्दू भागकर आ रहे थे तथा पूर्वी पजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेशसे मुसलमान लाहौर और सिंध की तरफ जा रहे थे।

इसका कुछ असर राजस्थानके गाँवो-कस्बोके बाशिन्दो पर पड रहा था। कलकत्तेका भीषण दगा हो चुका था। मुख्य मत्री सुहरावर्दीकी सीधी कार्यवाही (डाइरेक्ट एक्शन) के कारण सैकडों हिन्दुओका कत्लेआम हो चुका था, वे सब खबरे भी वहाँसे आए हुए लोग बढा चढाकर सुनाते रहते थे।

आखिर १५ अगस्त, १९४७ को देशके दो टुकडे हो गए। उसके थोडे दिनों बाद पश्चिम पंजाब मे बड़े पैमाने पर जिहाद हुआ। वहाँसे जो ट्रेनें अमृतसर-जालंधर आतीं, उनमे सैकडो घायल हिन्दू रहते। युवती स्त्रियोको लाहौरमे जबरन उतार लिया जाता। ये सब समाचार अतिरजित होकर दिल्ली, हरियाणा और राजस्थान तक फैले।

राजस्थान और पजाबकी सीमा पर पाटण नामका एक कस्बा है। उस समय वहाँकी जनसख्या थी करीब १००००, जिनमें तीन चौथाई हिन्दू और एक चौथाई मुसलमान थे।

मुसलमानोमे अधिकाश गरीब थे, लखारे, रगरेज, लोहार, कुजरे तथा अन्य मजदूरी करने वाले। उनकी आजीविका हिन्दू महाजनो पर निर्भर थी।

पाकिस्तानी मुसलमानोंके अत्याचारोसे पीडित कुछ हिन्दू शरणार्थी उस गॉवमे सिंध और पजाबसे आये। उनके अधिकाश स्वजनोको वहाँ मौतके घाट उतार दिया गया था—बाकी बचे हुए किसी प्रकार दीन-हीन दशामे पहुँचे। उनके मनमे प्रतिहिंसाकी ज्वाला धधक रही थी।

उनमेसे किसी युवकने एक मुसलमान लडकीका जबरन शील भग कर दिया। इस प्रकारकी घटना राजस्थानके गॉवोके लिए नई थी। गावकी बहिन-बेटीको धनवान और गरीब सब बहिन-बेटी समझते थे।

लडकीके घर वालोंने पचोके सामने गुहारकी। युवक और उसके सम्बन्धी जोश और क्रोधमे थे। उनका कहना था कि उनकी बहिन-बेटियोके साथ पाकिस्तानी गुण्डोने इससे भी कहीं अधिक अत्याचार किए है। उनके स्तन काट डाले गये, उन्हे नगा करके जुलूसमे घुमाया गया आदि।

लडकी के भाइयोने मौका देखकर सिंधी युवकको घायल कर दिया। सारे गॉवमे खबर फैल गई कि वह मर गया है। शरणार्थी ओर गॉवके कुछ हिन्दू युवक उसके घरके सामने इकट्ठे होने लगे वहाँसे एक बडा जुलूस बनाकर वे सब मुसलमानी मोहल्लोंकी तरफ गए। रास्तेमे उनके घर और दूकाने जला दी गई। छिट-पुट खून खराबीकी घटनाए भी होने लगी।

सेठ श्यामलाल वहाँके प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। गॉवमे उनकी बनवाई धर्मशाला, कुऐं और रघुनाथजीका मन्दिर था। उनके घरके पीछेकी तरफ रहीमा नामके एक मुसलमान रगरेजका घर था। रहीमाकी माँ, पत्नी और तीन-चार छोटे बहिन-भाई थे। दंगाइयोकी उसके घरकी तरफ बढनेकी खबरे आ रही थी। पत्नीके चार-पाच दिनो पहले ही बच्चा हुआ था, वह सोरीमे थी। प्रत्यक्ष मृत्युको सामने आई देखकर घरके लोग भयसे कॉप रहे थे। रहीमाकी बहू गोदमे नन्हे बच्चेको लेकर श्यामलालजीकी माँजीके पास आई और उनके पैर पकड कर रोती हुई कहने लगी। "माँजी हम सब दो पीढियोसे आपके पास रहते है, आपका दिया ही खाते है। अब हम इन बच्चो और बूढे ससुर को लेकर कहाँ जायें। आपकी शरणमें आ गए है, मारो चाहे उबारो।"

पीछे के दरवाजे से रहीमाके घरवालोको सेठजीके घरमे लाकर नीचेके तल घरमे छिपा दिया गया।

यद्यपि दगाइयोको शक तो हो गया था, परन्तु लालाजीके ना कहने पर घरमे आकर खोज करनेकी हिम्मत नही हुई।

चार-पाच दिनो तक दगेका जोर रहा। वेसे माँजी परम वैष्णव थी, परन्तु उन सबके रहने-खानेकी व्यवस्था अपने घरमे ही की। उस समय अछूत और मुसलमानो से छूआछूत बरती जाती थी, परन्तु सकट के समय यह सब बातें भुला दी गई।

दगा शान्त होने पर उन्हे एक रातमे अपने विश्वस्त आदमियो और सवारियोके साथ पासके पुलिस थानेमे पहुँचा दिया गया। वहाँसे वे शायद किसी प्रकार पाकिस्तान पहुँच गए।

यह खबर जब गॉवके लोगोको मिली तो उनमेसे बहुतसे श्यामलालजीसे नाराज हुए, बुरा-भला भी कहने लगे। परन्तु उन सबका उलाहना सुनकर उनका एक ही जवाब था कि जो कुछ मैंने किया माँजीकी आज्ञासे किया है। उनकी यह मान्यता है कि एकके कसूरसे दूसरोको दण्ड क्यो दिया जाय। अगर पाकिस्तानी गुण्डोने हिन्दुओ पर जुलम किए तो उसके लिए गरीब रहीमा के अबोध बच्चोकी हत्या करनेसे क्या इसका बदला चुक जायगा?

इस गॉवमे १९५६ मे एक बार जाने का मुझे मौका मिला। मुसलमानोके घर या तो

टूटे-फूटे और उजाड पडे थे या शरणार्थियो द्वारा दखल कर लिए गए थे। वही मैने रहीमाकी कहानी सुनी थी।

सयोगकी बात कि १९६४ मे विश्वयात्रा करता हुआ मै पाकिस्तानसे करॉची पहुँचा। वहाँके रिजर्व बैंकके दफ्तरमे गया हुआ था। मैने देखा एक बूढा मुसलमान मेरेसे बात करना चाहता है। एक कोनेमे ले जाकर धीरेसे सहमते हुए कहने लगा कि बातचीतसे लगता है आप राजस्थानी हे। फलॉ जिलेके गॉवमे मेरी बेटी है। सुना है उसके एक बच्चा भी हुआ है, परन्तु अभी तक अपने नातीको नही देख पाया हूँ। बेटी-दामादको देखे भी १७ वर्ष हो गए। मेरे हाथमे बीस रुपये थमाते हुए कहने लगा कि बडी मेहरबानी होगी, अगर आप इन रुपयोसे बच्चेके कुर्ते-टोपी और थोडी सी मिठाई वहाँ भिजवा देगे। जितनी तनख्वाह मिलती है, उसमे खर्च चलना भी मुश्किल है, नही तो बेटीको भी कुछ भेजना चाहता था। मैने देखा उसकी ऑखे गीली हो आई हे। मैने बताया कि यह गॉव मेरे सीकर जिलेमे ही है—चीजे तो भिजवा ही दूँगा, कभी मौका मिला तो तुम्हारी बेटीसे मिलकर राजीखुशीकी खबर भी दे दूँगा। देखा बूढेको मेरी बात सुनकर बहुत सान्त्वना मिली है।

वृद्धसे बात करते हुए मुझे ८ वर्ष पहलेकी रहीमाकी बात याद आ गई। वह भी शायद इसी प्रकार अपने गॉव और घरसे दूर किसी पाकिस्तानके कस्बेमे नौकरी करता होगा। उसे भी इसी प्रकार अपनी जन्मभूमि और छोटेसे घरकी याद आती होगी।
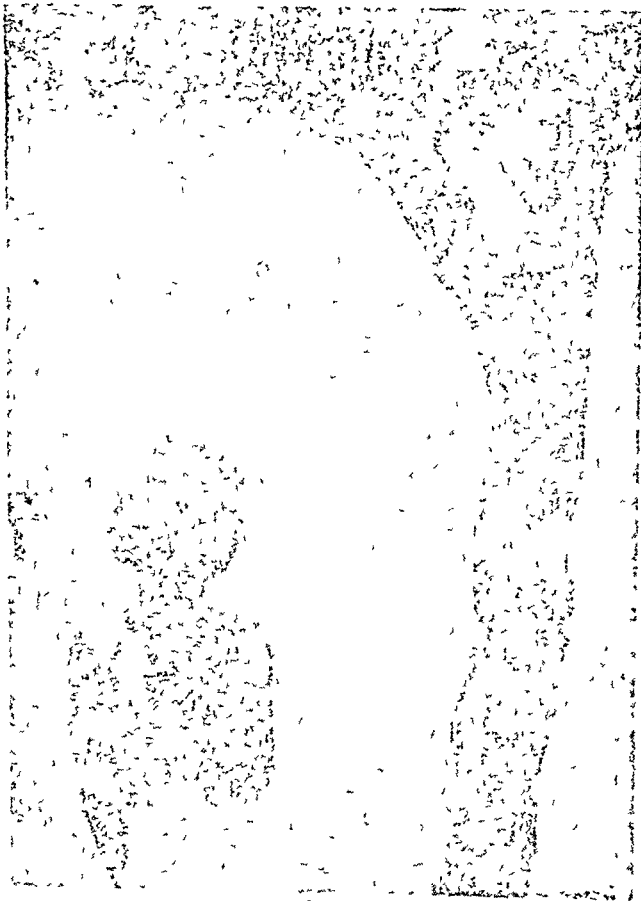
सम्बन्ध बराबरी का

महाभारत मे कथा है कि एक दिन बालक अश्वत्थामा दूध के लिए मचल गया। उन दिनो दूध बहुत सस्ता था, किन्तु गरीब माँ के लिए वह भी सम्भव न था। आँसू भरी आँखो से आटे का घोल पिलाकर बहलाने का प्रयत्न किया, किन्तु उसे चुप न करा सकी।

द्रोणाचार्य घर लौटे। देखा, बालक रो रहा है। असली बात का पता चला तो स्तब्ध रह गए। अपने ऊपर ग्लानि हुई। दारिद्र्य से मुक्ति के लिए वे आकुल हो उठे।

सहपाठी मित्र महाराज द्रुपद के यहाँ पहुँचे। उन्हे गुरुकुल की बाते याद दिलाईं। द्रुपद ने कहा, "ब्राह्मण! चाहो तो कुछ भिक्षा मिल सकती है। बचपन के किसी समय के परिचय को मित्रता का रूप देकर मेरी भावुकता को उभारने का प्रयत्न मत करो। सम्बन्ध और मैत्री तो बराबरी की होती है।"

अपमानित द्रोण के मन मे बात चुभ गई। उन्होने उसी क्षण एक निर्णय लिया और वही से सीधे हस्तिनापुर चले गए। धनुर्विद्या के अप्रतिम आचार्य थे ही। कौरव और पाण्डव कुमारो को शिक्षा देने के लिए राज्य ने उन्हे आदरपूर्वक नियुक्त कर दिया। द्रोण ने कठोर परिश्रम एव लगन से कुमारो को अस्त्र-शस्त्र सचालन मे थोडे ही समय मे निष्णात कर दिया। अर्जुन, भीम और दुर्योधन जैसे अपने पराक्रमी शिष्यो को देख कर गदगद हो उठते।

शिक्षा पूरी हुई। दीक्षान्त के अवसर पर जब गुरुदक्षिणा के लिए आचार्य से आग्रह किया गया तो उन्होने द्रुपद पर चढाई करने की दक्षिणा माँगी।

कुमारो ने सहर्ष स्वीकार किया। कौरव सेना के प्रचण्ड आक्रमण और रण-कौशल के सामने द्रुपद टिक न सका। बन्दी बनाकर शिष्यो ने उसे आचार्य के समक्ष प्रस्तुत किया।

"कहो राजन! अब तो मित्रता हो सकती है?" द्रोणाचार्य ने पूछा। द्रुपद लज्जित थे। क्या जवाब देते? यह बात द्वापर के अन्तिम चरण की है। इन दिनो की एक सच्ची घटना इस सन्दर्भ मे याद आ जाती है।

भिवानी के एक गरीब वैश्य का पुत्र किसी सम्पन्न परिवार मे दत्तक के रूप मे कलकत्ता आया। बहुत वर्षो बाद उसके पिता-माता की इच्छा हुई कि जगन्नाथपुरी की यात्रा की जाय और इसी अवसर पर अपने पुत्र-पौत्रो को भी देख ले।

थके-हारे एक दिन कलकत्ता पहुँचे। पत्नी को दूसरे सहयात्रियो के साथ धर्मशाला मे ठहरा कर स्वय पुत्र से मिलने के लिए वृद्ध पिता उसकी कोठी पर गया। पुत्र अपनी गद्दी पर बैठा था। उसकी खुशहाली और वैभव देखकर पिता का हृदय गदगद हो उठा।

मैले कपड़े, ऊँची धोती और बढ़ी दाढ़ी, सकुचाते हुए वृद्ध पिता के एक तरफ बैठ गया। मित्रो के साथ पुत्र गप-शप करता रहा। न तो उठकर पाँव छुए और न राजी खुशी के समाचार पूछे। किसी एक मित्र के पूछने पर बताया कि हमारे गाँव के जान-पहचान के है।

वृद्ध निर्धन था, किन्तु आत्माभिमान के धन से वचित नहीं। उसके मन मे वैभवके मदमे चूर पुत्रकी बात चुभ गयी। राजस्थान की हवा मे पला था, अपमान नही सहा गया। कह बैठा, "सेठजीके देश का तो मैं जान-पहचान का व्यक्ति हूँ परन्तु इनको जन्म देने वालीका पति हूँ। ये धनवान और हम गरीब, इसलिए इनका हमारा सम्बन्ध हो कैसा ? गलती हुई जो यहाँ चला आया। अच्छा हुआ जो इसकी माँ को ये बाते नही सुननी पड़ीं, उसे धर्मशाला मे ही छोड आया।"

ऐसी अप्रत्याशित और अप्रिय घटना के बाद बैठक जम नही पाई। धीरे-धीरे मित्र खिसक गए। वृद्ध तो पहले|ही जा चुका था।

कलकत्ते आने के बाद युवक सेठ ने जन्म देने वाले पिता-माता की कभी खोज-खबर न ली। उसमे गुमान आ गया था। परन्तु मुनीम गुमाश्तो के सामने हुई इस घटना के कारण वह बहुत झेप गया। घोडा गाडी मे पत्नी को साथ लेकर शाम को धर्मशाला मे पहुँचा। पिता-माता तब तक पुरी के लिए रवाना हो चुके थे।

कहते हैं, भाग्य गिरत-फिरत की छाया है। कुछ वर्षो मे उसके सगे छोटे-भाइयो ने बहुत धन कमा लिया जब कि व्यापार मे घाटा होने के कारण उसकी अपनी सम्पत्ति समाप्त हो गई। गरीबी की बात जब देश पहुँची तो माँ का दिल नही माना। जिद्द करके वृद्ध पति के साथ कलकत्ते के लिए रवाना हो गए। उस समय तक उसके अपने पुत्रो का यहाँ मकान हो गया था और कारोबार भी बढता जा रहा था।

खबर मिलने पर पत्नी और बच्चो सहित सकुचाता हुआ बडा पुत्र मिलने आया। माँ-बाप के पैरो पर गिर पडा और बहुत वर्षो पहले किए गए अपने दुर्व्यवहार के लिए क्षमा माँगने लगा।

"अब तो तुमने मुझे पहचान लिया होगा ?" कहते हुए पिता मुँह फेर कर बैठ गया।

वृद्ध माता एकटक देख रही थी, अपने बडे बेटे और बच्चो को। बीस वर्ष पहले बारह वर्ष के बालक को उसके सुख की कामना से अपने सीने से पृथक किया था। पुत्र कुपुत्र भले ही हो जाए माता कुमाता नही होती। उसने बेटे को खींच कर छाती से लगा लिया और भरे गले से कहने लगी—"भगवान का दिया तुम्हारे भाइयो के पास बहुत है। मूँग-मोठ मे कौन बडा कौन छोटा ? चारो मिलकर कारोबार सम्हालो।"

उसकी आँखें गीली हो आई थी, दोनो पौत्रो को गोद मे उठा कर जल्दी से कमरे के बाहर हो गई।

चोंच दी, वह चुगा भी देगा

उन्नीसवी शताब्दी की बात है। राजस्थानके किसी शहर मे एक करोडपति सेठ था। सब तरह से भरा पूरा परिवार सुन्दरी पतिपरायणा पत्नी और दो आज्ञाकारी स्वस्थ पुत्र। व्यापार के लाभ और व्याजसे प्रतिवर्ष सम्पत्ति बढती रहती। आडम्बरशून्य जीवनचर्या थी, खर्चमें वह बहुत मितव्ययी था। सालके अन्तमे आय-व्ययका मिलान करता और देख लेता कि पिछले वर्षकी अपेक्षा कितनी बढोत्तरी हुई, व्यय कितना रहा।

एक दिन, शहरमे एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् महात्मा आए। सेठने उनकी प्रसिद्धिकी बात सुन रखी थी। आदर-सत्कारके साथ अपने घर ले गया। सेवासे उन्हें प्रसन्न कर दिया। महात्माजी ने जन्म-पत्री देखी। उन्होने बताया, बृहस्पति उच्च है, सब प्रकारके सुखोमे जीवन व्यतीत होगा, यश भी भाग्यमे है। आप साधु-महात्माओ और दीन-दुखियोको प्रतिदिन अन्न भेट किया करे, इससे आपके वशमे पॉच पीढी तक धन, वैभव और यश अक्षुण्ण रहेगा।

महात्माजी यह सब बताकर चले गए। सेठ उनके कहे अनुसार दूसरे दिनसे अन्न वितरण करने लगा। परन्तु उसके मनमे एक चिन्ता रहने लगी "मेरी छठी पीढी कैसे रहेगी ? उनका क्या हाल होगा ? उनके लिए क्या किया जाय ?" इत्यादि।

सेठानी और मुनीम-गुमाश्तो ने बहुतेरा समझाया कि छठी पीढीकी अभीसे क्या चिन्ता है ? इतनी सम्पत्ति है, जमा हुआ कारबार, पॉच पीढी तक तो चलेगा ही, आगे भी कोई न कोई उनमे समर्थ होगा जो सम्भाल लेगा। मगर सेठजीका मन मानता नही, वे चिन्तामे दुबले होते गए, कुछ बीमार भी रहने लगे।

एक दिन अन्न वितरणके लिए अपनी कोठीकी ड्योढी पर बैठे थे कि एक गरीब ब्राह्मण भगवत-भजन करते हुए सामनेसे गुजरा, सेठने कहा कि महाराज, अन्न की भेट लेते जाइए। उसने विनम्रता से उत्तर दिया, "सेठजी इस समयके लिए मुझे पर्याप्त अन्नकी प्राप्ति हो गयी, सायकालके लिए भी सभवत किसी दाता ने घर पर सीधा भेज दिया होगा, न होगा तो मैं पूछ कर बता दूँगा।"

कुछ देर बाद ब्राह्मण वापस आया। उसने बताया कि घर पर भी कहीसे सीधा आ गया है, इसलिए आजके लिए अब और नही चाहिए।

सेठजी कुछ चकितसे रह गए। कहने लगे, "महाराज, आप जैसे सात्विक ब्राह्मणकी कुछ सेवा मुझसे हो जाए। कमसे कम एक छाज (एक तौल) अन्न अपने आदमियोसे पहुँचवा देता हूँ, बहुत दिनो तक काम चल जाएगा।"

ब्राह्मण ने सरल भावनासे कहा—"दयानिधान, शास्त्रोंमें लिखा है, परिग्रह पापका मूल है, विशेषत हम ब्राह्मणोंके लिए। आप किसी और जरूरतमन्दको यह अन्न देनेकी कृपा करें। दयालु प्रभुने हमारे लिए आजकी व्यवस्था कर दी है। कलके लिए फिर अपने आप ही भेज देगा। जिसने चोंच दी है, वह चुगा भी देगा।"

सेठजी उस गरीब ब्राह्मणकी बात सुन रहे थे। मन ही मन विस्मित भी थे, "इसे तो कलकी भी चिन्ता नही, जो आसानीसे मिल रहा है, उसे भी लेना नही चाहता। एक मैं हूँ जो छठी पीढ़ीकी चिन्तामें घुला जा रहा हूँ।"

दूसरे दिनसे वे स्वस्थ और प्रसन्न दिखाई देने लगे। दानधर्मकी मात्रा भी बढ गई। उनके चेहरे पर शान्तिकी आभा विराजने लगी।

जिस देश में गंगा-जमुना बहती है ।

पिछले दिनो दिल्लीके ससद भवन के सेन्ट्रल हॉलमे गया । मेरे मित्र श्री भोला रावत, एम०पी० ने कहा कि आइये आपको एक पुराने मित्रसे मिलाए । मैने चारो ओर नजर घुमाई किन्तु जान-पहचान का कोई भी दिखाई न पडा । पासकी बेंचपर गेरुआ वस्त्रधारी एक बाबाजी बैठे थे । भोला बाबूने हँसते हुए कहा, "पहचाना नही ? ये है श्री महेन्द्रकुमार सिंह, आपके साथ १९६२ तक ससद सदस्य रह चुके है ।" फिर तो उस दाढी मूँछोवाले हँसते चेहरे मे दस वर्ष पहलेके महेन्द्र बाबू मुझे दिखाई दिए ।

१९६२ के पहले ही उनके मनमे वैराग्य जगा था । आगेके ससदीय चुनावमे खडे नहीं हुए । अपना भरा—पूरा परिवार और सम्पत्ति त्यागकर सन्यास ले लिया । पिछले दस वर्षो से भारत के प्राय सभी तीर्थो और पहाडोकी यात्रा कर चुके हैं । मैंने पूछा कि क्या आपको किसी प्रकार की असुविधा का अनुभव नही होता ? सीधा सा उत्तर मिला, "वैसे तो सन्यासी को सुख-सुविधा, मान-अपमानका ध्यान नहीं रहना चाहिए । गगा-जमुनाका पवित्र देश है हमारा, इसके हर गाँव और खेडेमे श्रद्धालु माँ-बहने मिल जाती है, इसलिए जानी-अनजानी, किसी भी जगह जाता हूँ दो रोटी और रहनेका स्थान मिल ही जाता है, कभी-कभी तो दूध, दही और सब्जी भी । हाँ, रेलमे बिना टिकट नही चलता । वैसे तीसरे दरजेमे सफर करता हूँ, फिर भी इसके लिए पैसेकी जरूरत तो पडती ही है । यदि सरलतासे व्यवस्था न हो तो पैदल ही यात्रा कर लेता हूँ ।"

थोडी ही देरमे उन्हे बहुतसे परिचित मित्रोने घेर लिया । एकने पूछा कि महाराज, आप तो बहुत आराम और मौजशौकसे रहते थे, इस प्रकारके जीवनसे आपको कष्ट नही होता ? उत्तर मिला, "इस नये मोडसे वास्तवमे मुझे सुख और शान्ति मिली है, जिसका शताश भी इससे पहले जमीदारी और राजनीतिक जीवनमे नही मिल पाया ।

दूसरे मित्रने प्रश्न किया, "क्या आप अपने परिवारमे कभी जाते है ?" उन्होने कहा, "हाँ, कभी कदाच जैसे दूसरे घरोमे ठहरता हूँ उसी तरह एक दो दिनके लिए वहाँ भी ठहर जाता हूँ ।"

महेन्द्र बाबू से हम हमेशा राजनीतिक बहस और हँसीदिल्लगी किया करते थे । परन्तु मैने देखा अब उनके प्रति सबके मनमे श्रद्धा है, एक दो की आँखे तो गीली हो आई ।

उसी रात मुझे जयपुर जाना था । ऊपरकी बर्थ मिली थी । सदाकी भाँति भगवे रग का खादीका कुर्ता पहने था । रक्तचाप उपचारके लिए मेरे मित्र श्री रामाश्रय दीक्षित द्वारा दी हुई रुद्राक्षकी माला गलेमे थी जो सयोगसे बाहर दिखाई दे रही थी । कडक्टर गार्ड टिकट चेक

करता हुआ मेरे पास आया। बड़ी श्रद्धासे मेरी ओर देखा और किसी तरह नीचेवाली बर्थकी व्यवस्था मेरे लिए कर दी। मैंने सोचा, गार्ड मेरे वेशसे प्रभावित हुआ, क्यो न इस यात्रामे महेन्द्रजीका नुस्खा आजमाया जाय।

जयपुरका काम थोडी देरमे निपटा कर ढाई वजे वाली बससे आगराके लिए रवाना हुआ। वस कडक्टरने कहा, "बाबाजी, रास्तेमें मेहदीपुरके हनुमाजी का मन्दिर पडता है। दर्शन जरूर कीजिए, तुरन्त परचा देते है।" इस स्थान का नाम वहुत दिनोसे सुन रखा था। वहाँ पहुँचते-पहुँचते शाम के पाँच वज गये। मै उतर पडा। मुख्य सडकसे मन्दिर दो मील भीतरकी ओर है। ताँगा लेकर वहाँ छ. बजे पहुँचा। हलवाइयो, मोदियोकी छोटी-छोटी दुकाने, दो चार धर्मशालाएँ और एक बेडौलसा मन्दिर, यह था मेहदीपुर। भीतर जाकर देखा, ढोलक पर कीर्तन हो रहा है और तीन-चार औरते उसकी ताल पर सर धुन रही हैं, कभी-कभी चिल्ला उठती है। मन्दिरके सम्वन्धमे यह बात कही जाती है कि बालाजीके प्रभावसे प्रेतवाधा मिट जाती है। खैर मैं इस विवादमे पडना नही चाहता कि वास्तवमें वे प्रेत-पीडित थी या दर्शनार्थियोको प्रभावित करनेके लिए पुजारियो द्वारा नियुक्त।

गरमी, सडाँध और दुकानो की मक्खियोसे ऊब उठा और वापस मुख्य सड़क पर आ गया। सात बज रहे थे। घंटे भर खडा रहा परन्तु आगरा जाने वाली कोई बस नही आई। पता चला, अब कोई वस मिलेगी नही। लाचार, सड़कके किनारे सामान रखकर पासके कुएँकी जगत पर वैठ गया। आठ बज गए अंधेरा हो आया। सोचने लगा, शायद वापस मेहदीपुर जाकर किसी धर्मशालामे ठहरना पडेगा। इतने हीमे दूरसे आती रोशनी दिखाई पडी। कुछ देर वाद देखा, एक ट्रक आ रही है। पास आने पर हाथ दिखाकर उसे रोका। ड्राइवर ने पूछा, "कहाँ जाना है बाबाजी ?" मैने कहा, "आगरा।" इससे आगे कुछ और कह पाऊँ कि उसने वडे रोबसे अपने खलासी को मेरा सामान ट्रक पर चढानेके लिए कहा। जबतक वह नीचे उतरे, आसपास खडे भक्तोने मेरा सामान उसे पकडा दिया। ड्राइवरने ट्रक की छतकी ओर इशारा करते हुए कहा, "आप ऊपर आसन ले, कोई कष्ट न होगा।" उसकी आवाजमे स्नेह, श्रद्धा और विनय पाकर मै कुछ कह न सका। लोहेकी सीढियो के सहारे छत पर चढ गया। खलासीने सोनेके लिए अपना एक पुराना सा गद्दा बिछा दिया। मै उस पर लेट गया।

ट्रक चौडी सडकके दोनो ओरके ऊँचे-ऊँचे पेडोंकी झुकी डालियोके नीचेसे चली जा रही थी। ऊपर खुला आसमान, झिलमिलाते तारे। खलासी नई उमरका था, फुर्तीला और तेज। अपने सुख-दुखको सुनाने लगा। पाँच-छ वर्षसे ट्रकोमे घूमा करता है। घरकी गरीवीने कठोर जीवनके लिए वाध्य किया। माँ छोटे दो भाई और वहनकी देखभाल करती है। बाप शराबी था, पाँच बीघा जमीन थी, रेहन रखकर मर गया। दौसासे सोपस्टोन लादकर कानपुर जा रहा है। ट्रकके ड्राईवरको उस्ताद मानता है। उसीने खलासीमे भरती किया। उसकी जुबान कडवी है मगर दिल मीठा। बहुत गालियाँ देता और मारता था, मगर काम सीखा कर छोडा। साल दो साल हुए ड्राइविंगका लाईसेन्स भी दिला दिया। कभी-कभी स्टिअरिंग पकडा देता है, मगर अभी पूरीतौर पर गाडी छोडता नही। तनखाहके अलावा अक्सर अपने पाससे कुछ पैसे दे देता है।

मै सुनता जा रहा था, मगर थकानसे आँखे झपती थी। कब गहरी नीदमे सो गया पता नही। एकाएक ड्राइवरकी आवाज सुनाई पडी, "महाराज भोजन करेंगे ?" घडी देखी रात ग्यारह वजे थे, जगलमे रास्तेके किसी ढावेके सामने ट्रक रुकी थी। हाथ मुँह धोकर वही रखी मूँजकी खटिया पर लेट गया। थोडी देर बाद शुद्ध देसी घीकी छौंकी दाल, सुस्वादु रोटियाँ और अच्छा दही थालमे रखकर आया, साथमे अचार और प्याज तृप्त होकर खाया। चलते समय पैसे देने लगा तो ढावेवाला सकोच करने लगा।

करीब डेढ़-दो बजे रात ट्रक आगरेकी सीमा चुंगी पर रुकी। सुनाई पड़ा, "ऊपर कौन है?" आवाज सुनते ही मैं उठ पड़ा था। ड्राइवरने बताया, "एक महात्मा हैं।" ट्रक स्टार्ट करते हुए उसने मुझसे पूछा "कहां उतरेंगे महाराज।" मैंने कहा, "किसी भी धर्मशालाके पास छोड़ दो।" उसने अनुरोध किया, "आज रात क्यों न इसी पर आराम करें सुबह जहां मर्जी चले जायें।" मुझे नींद आ रही थी उसकी बात मान ली और ट्रक पर ही सो रहा।

सुबह पांच जब उठा तो देखा कि शहरके बाहर एक पेट्रोल पम्प पर दूसरी ट्रकोंके साथ हमारी ट्रक भी खड़ी थी। ड्राइवर और खलासी मेरे आसपास गहरी नींदमें थे। पासकी झाड़ियोंमें शौचादिसे निवृत्त होकर आया। इस समय तक वे जग चुके थे। ट्रक जमुनाके उस पार लोनिहाईमें रुकी थी। संयोगसे सुबहकी पाली पर जाता हुआ एक रिक्शा मिल गया। हाथका झोला मैंने साथ ले लिया और अटैची ट्रकमें ही रहने दी। ड्राइवरको अपना कार्ड देकर कहा कि कानपुरमें अपने आफिसमें रखवा देना, मैं वहांसे मंगवा लूंगा। उसने कहा—"फिक्र न करें महाराज आपका बक्स परसों सुबह तक पहुंच जायेगा।" रिक्शेमें बैठकर जब बेलनगंजसे गुजरने लगा तो सोचा कि न तो ट्रकका नम्बर लिया और न ड्राइवरका नाम पता पूछा। परन्तु मनने कहा कि धोखा नहीं होगा।

आगरेमें अपने साहित्यिक मित्र रावीजीके यहां सारा दिन बिताकर रातमें जब स्टेशन पहुंचा तो पता चला कि कानपुर जानेवाली पैसेन्जर ट्रेनमें फर्स्ट क्लासकी सारी सीटें पहलेसे ही भरी हैं। तीन दिनकी लगातार यात्रासे थका हुआ था। मनमें चिन्ता हुई। देखा, एक कम्पार्टमेन्टमें पति-पत्नी और तीन बच्चे थे। मैंने कहा, 'भाई एक सीट आप मुझे देनेकी कृपा करेंगे?' उन्होंने बच्चोंको एक सीट पर कर लिया और एक पूरी बर्थ मुझे दे दी। मैंने देखा, यहां भी मेरे वेशने अपना चमत्कार दिखाया। जब कानपुर उतरा तो पति-पत्नी और बच्चोंने भक्ति-भावसे मुझे प्रणाम किया।

घर पहुंचा तो दो-तीन घंटे बाद अग्रवाल ट्रान्सपोर्टका फोन आया कि आपकी अटैची हमारे ट्रकसे अभी आयी है, ड्राइवर यहीं बैठा है। आपको प्रणाम कह रहा है। उसने यह भी पूछा क्या मैं स्वयं ट्रकमें आया था या आपके यहां आने वाले कोई महात्माजी। मैंने जब उन्हें बताया कि मेहदीपुरसे आगरा तक मैं ही उनकी ट्रक पर आया हूं तब जाकर उन्हें विश्वास हुआ।

इस यात्रामें एक अभिनव अनुभव हुआ कि आज भी हमारे देशके जन-मानसमें गंगाकी पवित्रता और जमुनाका प्रेम वर्तमान है। हजारों वर्षोंसे दोनों बहनोंकी पुण्य भूमि पर बसे लोग साधु महात्माओंकी सेवा करते आ रहे हैं। देश का सौभाग्य है कि यह परम्परा कुछ अंशोंमें अवशिष्ट है। यही कारण है कि बिना किसी सम्बलके बदरीनाथसे कन्याकुमारी और द्वारिकासे सुदूर कामाख्या तक साधु सन्यासी यात्राएँ कर पाते हैं।

जीवन की उपलब्धि

ईस्वी पूर्व पहली शताब्दीमे रोममे सिसेरो नामका एक विलक्षण विचारक और वाग्मी हुआ। अपने सदाचार, सद्विचार और निष्ठापूर्ण जीवनके कारण जनमानसको उसने प्रभावित किया था।

रोमन सभ्यता और सस्कृतिका वह स्वर्णिम युग था। पश्चिममे ब्रिटेन, रोम और स्पेन पूर्वमे मेसोपोटामिया और बेबीलोन तथा दक्षिणमे भूमध्य सागर तटीय अफ्रीकाके देश विशाल रोमन साम्राज्यके अग थे। रोमकी सडको पर विदेशोसे लाए सोना, सुन्दरी और गुलामोका प्रदर्शन सामन्त बडी शानसे करते। वह जमाना था जब ससारकी सभी सडकें रोमको जाती थी।

आमोद-प्रमोद, भोग-विलास और बुद्धिचर्चा रोमन नागरिकोकी दिनचर्या थी, तर्क-वितर्कमे पराजित कर देना प्रतिष्ठाकी बात समझी जाती। यदि इससे निर्णय नही होता तो तलवारे खिच जाती। रोम के चौकमे असि-द्वन्द्व और वाक-द्वन्द्व के दृश्य आए दिन देखने मे आते। सिसेरोके भी व्याख्यान वहाँ होते। उसका सिद्धान्त था, जनतन्त्र ही शासन सचालनका श्रेष्ठ पन्थ है। जनता मन्त्रमुग्ध होकर सुनती"।

उन दिनो यूरोपमें समता और बन्धुत्वकी बात कोई नहीं कहता था। गुलामीकी प्रथा प्रचलित थी। सुसभ्य ग्रीक और रोममे भी दास सम्पत्तिके रूपमे थे। अरब और अफ्रीकामे लाए सैकडो गुलाम रोमन सामन्तोके घरोमे रहते।

ईसासे लगभग ५० वर्ष पूर्व सेनापति सीजर फौजके बल पर रोमका एकाधिनायक बन बैठा। जिन्होने विरोध किया, मौतके घाट उतार दिए गए। प्रान्तोमे विद्रोहके प्रयासको क्रूरतासे कुचल डाला गया। सीजर! महान सीजर!! लोग नामसे थर्रा उठते।

यद्यपि सिसेरो व्यक्तिगत विरोधमे नहीं पडा, परन्तु जनतन्त्रके सिद्धान्तोका रोमन फोरममे डट कर प्रचार करता रहा। उसकी जनप्रियता देखकर सीजरने उसके प्राण नही लिए, केवल राजधानीसे निर्वासित कर दिया।

अपने कुछ नजदीकी शिष्यो और गुलामोके साथ वह एक गाँवमे रहकर जनतन्त्र पर ग्रन्थ लिखने लगा। बीच-बीचमे उसे सीजरके आतक और अत्याचारोकी खबरे मिलती रहती।

अधिनायकवाद महत्त्वाकांक्षी अधिनायकोको जन्म देता है और अधिनायकका अन्त भी उन्हीके द्वारा होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। एक दिन सीजरके विश्वस्त मित्र और सेनापति ब्रूटसने सभासदोकी एक बैठकमे उसकी हत्या कर दी। मरते समय सीजर केवल इतना ही कह पाया "ब्रूटस! तुम भी..."।

राजधानीमे अशाति फैल गई। विशाल रोमन साम्राज्यमे अव्यवस्था बढ जानेके लक्षण

दिखाई देने लगे। सेना लेपिड्सिके साथ थी। राजकोष और साधन प्रधान मन्त्री एन्टोनीके पास थे। किन्तु अधिनायकवादसे त्रस्त जनता थी युवक नेता आक्टेवियसके साथ। तीनोमे युद्धकी तैयारियाँ होने लगी।

आक्टेवियसने अपने गुरु सिसेरोको रोमका निमन्त्रण देते हुए लिखा, "रोम पर भयानक विपत्ति आई है। बचपनसे ही आपके सिद्धान्तोका कायल रहा हूँ। जनता मेरे साथ है, परन्तु धन और सेनाकी कमी है। यदि इस सकटकालमे आकर मेरी सहायता करेगे तो जनतन्त्रकी स्थापना सभव हो सकेगी।"

मातृभूमिके प्रति अपने कर्तव्य पालन के लिए सिसेरो रोम पहुँचा। बहुत वर्षो बाद आया था। बाल सफेद हो गए थे, दाँत गिर चुके थे, शरीर जर्जर हो गया था, फिर भी वाणीमे पहलेकी सी ओजस्विता थी। उसकी सभाओमे लाखोकी सख्यामे रोमन नागरिक आने लगे। एन्टोनी और लेपिडिस डर गए कि कही जनता विद्रोह न कर बैठे।

आखिर, एक दिन रोमके बाहर तीनोकी एक गुप्त बैठक हुई। सभी भयभीत थे। तय हुआ कि आपसमें व्यर्थकी लडाई क्यो करे। रोमन साम्राज्यके तीन हिस्से हुए रोम, ब्रिटेन और स्पेन तथा अफ्रीकाके प्रदेश। राज्योके सचालनके लिए विपुल धनकी आवश्यकता थी। तीनोने अपने-अपने धनी मित्रोके नाम बताए। उनको मार कर धन सग्रहकी योजना बनी। इसके बाद ऐन्टोनीने कहा कि सुचारु रूपसे राज सचालनके लिए सबसे बडे बाधक होगे, बुद्धिजीवी, अतएव इन्हे भी अविलम्ब समाप्त कर देना चाहिए। ऐसे नामोकी सूची बनी, पहला नाम था सिसेरोका।

आक्टेवियस इस पर अड गया। कहने लगा, "जिसकी सहायतासे मैं वर्तमान स्थिति पर पहुँच सका, जो मेरे लिए पितृतुल्य है, उनकी हत्याके लिए मैं सहमति कैसे दे सकता हूँ।" समझौता उस दिनके लिए रुक गया किन्तु दूसरे दिन उस महान विचारककी हत्याके लिए तीनो एकमत हो गए। इस प्रकार रोमन साम्राज्यका बँटवारा हुआ।

सिसेरोको सूचना मिल गई। कुछ समय बाद 'रिपब्लिका' ग्रन्थ पूरा कर अपने पुत्र और मित्रोको सौपते हुए उसने कहा, "मेरे जीवनका उद्देश्य पूरा हुआ, अब तुम्हे कष्ट न दूँगा।" उन लागोने समझानेकी कोशिशकी, "सामने ही द्रुतगामी नौका है, स्वीकृति दे, हम आपको सकुशल ग्रीस पहुँचा देंगे। ग्रीक आपका स्वागत कर गौरव बोध करेगे।"

सिसेरोका उत्तर था, "मृत्यु अवश्यम्भावी है, थोडे दिन जीनेके लिए मातृभूमि छोडकर नही जाना चाहता। इसी मिट्टीमे पैदा हुआ, इसीमे मिल जानेपर मेरी आत्माको शान्ति मिलेगी मनुष्यका जन्म एक उद्देश्यसे होता है, उसकी पूर्ति ही जीवनकी सबसे बडी उपलब्धि है। अब जीवनका मोह क्यो।"

सूचना राजधानीमे पहुँची। सिसेरोके सिरके लिए बहुत बडा इनाम घोषित था। बीसियो सशस्त्र सिपाही उसे बन्दी बनाने आए। उसके साथियोने अपनी तलवारे निकाल ली।

"सावधान, रक्तपात नही, बिलकुल नही' कहते हुए सिसेरोने आत्म समर्पण कर दिया।

सैनिक उसका सिर और हाथ काट कर रोम ले गए। राजधानीके उसी चौकमे इन्हे सलीब पर टाँगा जहाँ उसने सैकडो बार लोगोको अपने सारगर्भित उपदेशोसे अभीभूत किया था।

सिसेरोका आत्मोत्सर्ग व्यर्थ नही गया, उसका उद्देश्य जनतन्त्र जनमानसमे अमर हो गया। सम्राट और सामन्तोकी भोगलिप्सा बढती गई। अत्याचार बढते-बढते कुछ वर्षो बाद सम्राट नीरोकी सनक और क्रूरतामे साकार हो उठे। अबाध भोग-लिप्साका अगला कदम पतनकी ओर बढता है, वही हुआ। जनताके अन्दर अधिनायकवादसे मुक्तिकी चिनगारीने ज्वालाका रूप धारण किया। उसकी लपटमे नीरो भस्म हुआ। साम्राज्य खण्ड-विखण्ड हो गया, और साक्षी देनेके लिए बच गये खण्डहर।

फूलों की घाटी

सन् १९५० और १९६४ मे १३४०० फीटकी ऊंचाई पर स्विटजरलैडमे आल्पस पर्वत की चोटी यगफ्राउ पर हो आया था। लोगो ने कहा कि शायद वहा पतली हवाके कारण सास लेनेमे कष्ट होगा, परन्तु मुझे ऐसी कोई तकलीफ नही हुई । हाँ, यह जरूर था कि स्विस इजीनियरोने पहाडके भीतर सुरग काट कर ऊपर तक ट्रेन पहुँचा दी है। इसलिए यात्री बिना थकावटके दो घटेमे इण्टरलॉकनसे वहाँ पहुँच जाते है। ऊपर जाते ही ताप नियत्रित होटल मे चाय और नाश्ते की व्यवस्था रहती है।

देश लौटने पर जब वहाँ की सुन्दरता और भव्यताके बारेमे लिखा तो कई मित्रो ने कहा कि तुम एक बार हिमालयके लोकपाल हेमकुण्ड और फूलोंकी घाटी जाकर आओ, फिर दोनो की तुलना करो।

स्माइथकी बहुचर्चित पुस्तक 'फूलो की घाटीके' बारे मे बहुत कुछ सुन रखा था, परन्तु उसे कभी पढनेका मौका नही मिला।

जुलाई ७२ मे दो मित्रोके साथ उत्तराखण्डकी यात्रा के लिए गया। अधिक वर्षाके कारण रास्तेमे रुकावट आगई इसलिए केवल यमुनोत्तरी-गगोत्तरी जाकर वापस आना पड़ा, बदरी-केदार नही जा सका।

सौराष्ट्रकी यात्रा करता हुआ १६ अगस्तको नयी दिल्ली आया। बदरी-केदार जाकर उत्तराखण्ड पर कुछ लिखनेका विचार था, इसलिए वहा २५-३० बार गए हुए मित्रवर गगाशरणजी सिन्हा, ससद सदस्यसे सलाहकी।

उन्होंने कहा कि अगर जानेका मन है तो फूलोकी घाटी देखनेका भी यही उपयुक्त समय है, इसलिए हिम्मत करके हेमकुण्ड और फूलोकी घाटी हो आओ।

मुझे २४ तारीखको कानपुर वापस लौटना था, इसलिए उसी रात हरिद्वारके लिए रवाना हो गया, गर्म कपडे दिल्ली मे थे नही इसलिए केवल खादी के कुर्ते-धोती और तीन कम्बल साथमे ले लिए और श्री प्रबोध सन्यालके उस 'महाप्रस्थानके पथ पर' चल पड़ा।

केदारनाथके लिए ऋषिकेशसे बस द्वारा गुप्तकाशी गया—परन्तु वर्षाके कारण आगेका रास्ता खराब था, इसलिए वापस रुद्रप्रयाग होता हुआ बदरीनाथ चला आया। सन् १९४५ मे पिताजी-माताजीके साथ वहा आ चुका था, परन्तु इन २७ वर्षोंमे बदरीनाथ की काया-पलट हो गयी है—छोटेसे पहाडी गाँवकी जगह अब एक सुन्दर कस्बा बसा हुआ है, जिसमे पाँचसौ गेस्ट हाउस, धर्मशाला और अतिथिशालाएँ है—बिजलीकी जगमगाती रोशनीसे सुसज्जित दुकाने। खैर, यहा तो मुझे केवल फूलोकी घाटीके बारेमे ही लिखना है।

प्रसिद्ध पर्वतारोही स्माइथने १९३१ मे कामत चोटीमे उतरते हुए, इस स्थानकी झलक देखी थी, परन्तु उस समय उसके साथ बडा काफिला था—प्रोग्राम भी नही बना हुआ था, इसलिए वहा बिना रुके वापस यूरोप चला गया। परन्तु उसके मनमे इसे देखनेकी प्रबल आकाक्षा बनी रही। उसने लिखा है कि एक प्रकार अनजाना आकर्षण-सा रहा। आखिर १९३८ मे वह कुछ पहाडी मार्ग दर्शको और कुलियो के साथ उत्तराखडकी सुन्दर घाटीके इस स्थान पर आ पहुंचा।

यहा वह दो महीने रहा ओर पूरी खोज-बीनके बाद अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वेली आफ फ्लावर्स' लिखी फिर तो इस अचिन्हे-अजाने स्थानका विश्वमे नाम हो गया ओर बहुतसे साहसिक यात्री अनेक देशोसे यहा आने लगे। कहते है कि यहाकी मादक हवा और सुगधसे बेहोशी-सी आ जाती है। एक विदेशी महिला जोआन मार्गरेट लेग तो बेहोश होकर यही खड्डमे गिरकर मर गई। मैने उसकी समाधि इस वीराने स्थान पर देखी। पर्यटक आज भी श्रद्धा-स्नेहसे उस पर दो फूल चढाते है। स्वदेश और बन्धु बान्धवोसे हजारो मील दूर पुष्पोकी शय्या पर चिर निद्रामे सोई हुई है।

सयोगसे, यहाँसे चार मील पर सिक्खोके दसवे गुरु गोविन्द सिंहके पूर्व जन्मकी तपस्थली लोकपाल हेमकुण्ड है, जिसका पता बडी खोजके बाद १९३२ मे लग पाया। हजारोकी सख्यामे श्रद्धालु सिक्ख स्त्रीपुरुष प्रति वर्ष तीर्थयात्राके लिए जाते है, इसलिए अब साधारण पर्यटकके लिए भी फूलोकी घाटीमे जाना सहज हो गया है।

बदरीनाथसे १३ मील पहले ६००० फीटकी ऊँचाई पर गोविन्द घाट गुरुद्वारा हे, यहाँ तक मोटरे और बसे आती है। मै ग्यारह बजे वहाँ पहुँचा। ग्रन्थीजीने बडे प्रेमसे लगरमे खाना खिलाया ओर ऊपर जानेके लिए चार आदमियोकी एक डण्डी कर दी। वैसे घोडा सस्ता ओर ज्यादा आरामदेह रहता परन्तु उस दिन सारे घोडे ऊपर जा चुके थे और मुझे जल्दी थी। वहाँसे साढे सात मील ऊपर चढकर दस हजार चार सो फीटकी ऊँचाई पर घाघरिया नामके स्थान पर भी गुरु द्वारा है। फूलो की घाटी ओर हेमकुण्ड जाने वालो के लिए यह सुस्ताने को जगह है। रातमे वहाँ ठहर गया। यहाँ भी ग्रन्थ साहब की आरतीके बाद कडा प्रसाद मिला और सादा भोजन। हेमकुण्ड जाने वाले दस-पन्द्रह सिक्ख यात्री ठहरे हुए थे फिर भी जगह काफी थी। रात्रिमे ओढनेके लिए व्यवस्थापक ने ४-५ कम्बले दे दी।

दूसरे दिन सुबह साढे छ बजे हेमकुण्डके लिए रवाना हुआ। यहाँसे ४ मील दूर १५१०० फीटकी ऊँचाई पर यह पवित्र मनोरम स्थान है।

यहाँकी पतली हवासे मुझे किसी प्रकारके चक्कर नही आए। कपडोमे केवल एक कुर्ता और एक खादीकी जाकेट थी, ऊपरसे एक कम्बल ओढे था। इतनी ऊँचाई पर आनेका मेरा यह पहला मौका था।

दो बजे जब वापस घाघरिया पहुँचा तो काफी थक गया था। मैने डाडी केवल ऊपर चढनेके लिए की थी। खडी उतराईमे बिना अभ्यासके पैरोके घुटनोमे दर्द हो गया। भोजन करके आराम कर रहा था कि सयोगसे एक घोडा मिल गया और फूलोकी घाटी उसी दिन चला गया।

मार्ग अत्यन्त विकट हे। विष्णुगगाके किनारे ऊँची-नीची पथरीली सकरी सडक पर घोडा चला जा रहा था। कही-कही तो केवल मुश्किल से दो फीट चौडाई ही थी। हिचकोले लगते थे। मन दूर अतीतकी ओर खिच जाता। मुक्तिकी कामनासे किस प्रकार एकाकी त्यागी सन्यासी इन वन-प्रान्तरोसे गुजरते होगे। क्या मिलता होगा उन्हे इन बीहड और निर्जन मार्गो पर ? क्षण भरमे दृष्टि चली जाती नीचे गहराईमे, गरजती विष्णु गगा पर। झाग उडाती पत्थरोसे टकराती बढती जा रही थी, किसी भी अवरोधकी अटक नही जैसे इसीमे जीवन की सार्थकता हो। एक पुल से घोडा गुजरा। ऊँचे दो पर्वतोके बीच सकरा सा पूल, नीचे वेगवती

नदी का उफान। जरा सा चूक हुई कि सब खेल खतम। जिन्दगी और मौतका फासला ही कितना ?

मैं गौर कर रहा था पहाडी घोडा हमेशा गर्तकी तरफ चलता है पर उसकी सधी चालमे फर्क नहीं आता। घोडे का मालिक मुझ पर नजर रखे था। जरा भी भयभीत देखता तो दम दिलासा देता रहता। साहसिक घटनाओ, देवता-पुराणोकी न जाने कहाँ-कहा की बाते कहते-सुनाते दो तीन मील की बीहड चढाई पार करा दी। हँस कर अन्तमे कहा, "आब आगयी फूल घाटी।'

सचमुच, सामने फूलो की घाटीने मुस्करा कर स्वागत किया। जीवनमे देश-देशान्तरोके भ्रमण-पर्यटनके बहुतसे अवसर मुझे मिले। उत्तरी ध्रुवाचलमे निशासूर्यके दर्शन कर चुका हूँ। स्विटजरलैण्ड, फ्रान्स, आस्ट्रिया की सौदर्य स्थलिया देखी है। सहाराके धधकते मरुस्थलमे रेत की आँधियोको देखा है और विसूवियसकी उगलती आगमे प्रकृतिके रौद्ररूप महाकाल को देखा है। परन्तु यहाँ जो कुछ देखा वह तो प्रकृतिकी अद्भुत और अवर्णनीय रचना थी। मुझे कविवर श्रीधर पाठककी पक्तियाँ याद आगयी।

"प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सवारति,
पल पल पलटति, भेस छनिक छवि छिन-छिन धारति।"

लगता है, देवाधिदेव शिवको प्रसन्न करनेके लिए आद्याशक्ति पार्वती अपना शृगार कर रही है।

मेरा भाग्य अच्छा था। मुझे रुपहली धूपमे पूरी घाटीके फूल दिखाई पडे। बहुत बार घने कोहरेके कारण पर्यटकोको वहा से निराश लोटना पडता है। जो कुछ देखा, वह लिखना सम्भव नही। अनुभवको शब्दो मे उतार सकते है, अनुभूतिको नही। स्विटजरलैण्डको देखने के बाद मैंने उसे भूलोकका नन्दन कानन समझा था यहाँ आने पर लगा कि यह धारणा भ्रान्तिमूलक थी।

इस अचल का नाम भूयन्दरकी घाटी है। मै सोचने लगा कही यह भू इन्द्रका अपभ्रश तो नही। भाषा विज्ञान माने न माने, मैं तो मान बैठा। पता नही इस जगह पर ही प्रकृतिने इतनी कृपाकी, सैकडो-हजारो तरह के फूल बिखेर दिये।

ऐसा लगता है कि ऊन और रेशमसे बुना गया विविध रगोका एक गलीचा सा बिछा हुआ है। आमतौर पर दस हजार से अधिक ऊँचाई पर फूलोकी तो बात ही क्या हरियाली नहीं मिलती। परन्तु यहाँके हिमशिखरोकी गोदमे फूलो की बारात भूगोल और प्रकृति शास्त्र के लिए एक जिज्ञासा प्रस्तुत करती है।

डालियासे भी बडे और राईके समान छोटे सैकडो तरहके फूल देखनेमे आये। आश्चर्य तो यह है कि बर्फानी तूफान, अत्यधिक शीत और ओलोकी वर्षाको सहकर किस प्रकारसे ये कोमल पुष्प विकसित हो जाते है।

कई विशेषज्ञ यहाँके फूलोके बीज और पौधे विदेश ले गये, परन्तु अनेक प्रयत्नोके बावजूद इस प्रकारकी सुगन्ध और रूपरगके पुष्प पैदा नहीं कर पाए

जाते समय मित्रोने चेतावनी दी थी कि वहाँ पर इतनी ज्यादा सुगन्ध है कि बेहोशी सी आ जाती है। मुझे लगा कि, सुगन्ध वहा जरूर है, किसी फूलमे लेवेण्डरकी, किसीमे ताजा पिसी हुई कॉफीकी, तो किसीमे अजवायन, दालचीनी और लौंग जैसी। परन्तु बेहोशी अगर किसीको आती भी है तो केवल सुगध से नही बल्कि यहाँके प्राकृतिक सौंदर्य और १२००० फीट की ऊँचाई की पतली हवा से।

मनुष्य की तरह पशु भी शायद सौंदर्य प्रेमी होते है। बशीलाल और मै जब इस नन्दन काननमे एक घटा ठहर कर नीचे उतरने का विचार करने लगे तो देखा कि उसका हीरू घोड़ा फूलोके ऊँचे-ऊँचे पौधोमे छिपा हुआ खडा है।

पुकार-पुचकारने के बाद किसी प्रकार नीचे जानेको उसे तैयार किया और ६ बजकर ३० मिनट तक हम उस अद्भुत वर्णनातीत और अनोखे स्थलसे वापस लौटे।

रात्रिमें गुरुद्वारेमे लेटा हुआ सोचता रहा कि अगर यह स्थान स्विटजरलैंड या हालैण्डमे होता, तो विश्वमे बडे पैमाने पर विख्यात होकर हजारो लाखो विदेशी यात्रियोका आकर्षण। पर्यटन केन्द्र बन जाता, 'पक्की सडक बन जाती। ठहरनेके लिए ताप नियन्त्रित होटल-मोटल हो जाते; करोडो डालर पाउण्ड मार्क आकर यहाँ बिखर जाते। परन्तु हमे तो इन सब बातोको सोचने-समझने की फुरसत ही नहीं है। बीसवी शताब्दीके पूर्वार्द्धमे अजन्ताके अनमोल भित्ति चित्रो का भी एक विदेशी पर्यटकने ही पता लगाया था और बीसवी शताब्दीमे विश्वके इस अद्वितीय आश्चर्यका भी स्माइथ नाम के विदेशी पर्वतारोही पर्यटक ने।

लोकपाल-हेमकुण्ड

भारतीय ऋषि-मुनियोने न जाने क्यो अपनी तपस्थली दुर्गम हिमाच्छादित देवात्मा हिमालयको चुना था । शायद उनको वहाँकी शुद्ध हवा, स्वच्छ वातावरण और बर्फानी चोटियो ने आकर्षित किया हो ।

पर्वतराज हिमालयको केवल मात्र तपस्थली कहना भूल होगी । शिव-पार्वती, दुष्यन्त शकुन्तला और अनिरुद्ध-उषाका प्रथम प्रणय यहीके पहाडो के वन-प्रान्तरमे हुआ था । मादक हवा और वातावरणसे विमोहित होकर अश्विनी कुमारोकी चेतावनीको भूलकर पाण्डुराजने अपने क्षय रोग की परवाह न कर अपने माद्री के साथ सभोग करके एक प्रकारसे मृत्युका आह्वान किया था ।

तपोलीन ऋषि मुनियो के साथ-साथ आज भी यहाँके खेतो, खलिहानोमे ढोर चराती हुई या नदी से पानी लाती हुई उर्वशी, मेनका और रम्भाएँ देखी जा सकती है । इस स्थानकी हवामे इतनी मादकता है कि जिससे उद्वेलित होकर शिवजी जैसे तपस्वी के मनमे भी कामोत्तेजना हो आई । आखिर, उन्हे कामदेव को भस्म कर देना पडा ।

यहीं की एक परम रमणीय मनोहारी बर्फानी घाटीमे सिक्खोके दशमेश गुरु गोविन्द सिंहजीने अपने पूर्व जन्ममे तपस्याकी थी । उन्होने स्वरचित ग्रन्थ विचित्र नाटक मे लिखा है –

"अब मै अपनी कथा बखानो ।
तप साधम जिह विधि मुहि आनो ॥
हेम कुण्ड पर्वत है जहाँ ।
सपत श्रृग सोभित है तहाँ ।
सपत श्रृंग तह नाम कहावा ।
पाडु राज जहँ जोग कमावा ।
तेहि हम अधिक तपस्या साधी ।
महाकाल कालिका आराधी ॥"

गुरुजी के स्वर्गवास के बाद २२५ वर्षो तक यह स्थान जनता से छिपा हुआ था ।

बीसवी सदी के शुरू से ही सिक्खो के मन मे इस पवित्र तीर्थ को खोज निकालने की आकाक्षा रही । सन् १९३२ मे बाबा करतार-सिह बेदीको पाण्डुकेश्वरमें एक वयोवृद्ध महात्मा

द्वारा इस स्थान का पता चला और वे अनेक प्रकार के कष्ट सहते हुए यहाँ पहुँच गये।

यहाँ आकर उन्होंने गुरुजी द्वारा वर्णित सात चोटियाँ देखीं और उनके बीच में स्वच्छ निर्मल जल का एक कुण्ड। वहीं पर रखी हुई एक शिला पर ध्यानमग्न होकर बैठ गए। अधिक सर्दी और पतली हवा के कारण बेहोश हो गए।

उसी बेहोशी में उन्हें आभास हुआ कि एक महात्मा कह रहे हैं कि अरे भाग्यवान तेरा जीवन सफल हुआ! यही वह शिला है, जिसपर बैठकर गुरुगोविन्द सिंह जी ने तपस्या की थी। चेतना आने पर यात्रा करनेवाले सिंह को एक विचित्र आनन्द की अनुभूति हुई। सारा शरीर हर्ष से रोमांचित हो गया, एक प्रकार की दैवी शक्ति के प्रादुर्भाव का आभास हुआ।

अमृतसर आकर उन्होंने सारा वृतान्त सिक्खों के नेता भाई वीरसिंहजी को सुनाया। वीरसिंहजी ने कुछ साहसी मित्रों को तैयार किया और उनको साथ लेकर इस दुर्गम स्थान पर पहुँचे। बहुत परिश्रम के बाद सन् १९३६ में उसी शिला पर एक छोटे से गुरुद्वारे का निर्माण हुआ।

सन् १९३९ के बाद से श्रद्धालु सिक्खों के जत्थे प्रतिवर्ष यहाँ आते रहते हैं। उनमें से कइयों ने रात्रि में सरोवर में बिजली की सी चमक देखी। हेमकुण्ड दर्शन के लेखक डा० जवाहर सिंह ने लिखा है कि उन्होंने अपने कई एक साथियों सहित एक बाज पक्षी देखा, जो इनके जत्थे के साथ साथ घाँघरिया तक आया। यही बाज उन्होंने अमृतसर में गुरु के बाग के मोरचे के समय देखा था। उन लोगों की धारणा है कि जो बाज गुरुजी के पास रहता था, वही उनके गुरुद्वारे और तपस्थली में आजतक है।

२० अगस्त, १९७२ को बदरीनाथ की यात्रा करके लौटते समय लोकपाल-हेमकुण्ड जाने के लिए गोविन्द घाट गुरुद्वारे में आया। हेमकुण्ड के लिए जोशीमठ या बदरीनाथ के तहसीलदार से परिपत्र ले लेने पडता है, क्योंकि यह क्षेत्र तिब्बत की सीमा पर है।

अलकनन्दा के किनारे गोविन्द घाट गुरुद्वारा पाण्डुकेश्वर से एक मील दूर ६००० फीट की ऊँचाई पर है। यहा पर ५०-६० यात्री आराम से ठहर सकते हैं। चाय-पकोडी और मिठाई की एक दुकान भी है। वैसे, गुरुद्वारे मे यात्रियों के लिए चाय और भोजन की व्यवस्था रहती है।

दूसरे दिन इस क्षेत्र के निरीक्षण के लिए जिलाधीश का ऊपर जाने का प्रोग्राम था, इसलिए अचल के सारे घोडे पहले से ही आरक्षित कर लिए गए थे। ग्रन्थीजी ने मेरे लिए ८०) रु० में हेमकुण्ड जाने के लिए चार आदमियों की एक डाडी कर दी थी। अगर घोड़े पर जाता तो केवल ४०) लगते। भोजन करके १२ बजे रवाना हुआ।

अलकनन्दा पर लकडी का एक पुल बना हुआ है, उसे पार करते ही खडी चढाई मिलती है। रास्ते में जगली झाड़ियाँ और वृक्ष बहुतायतसे थे।

दो घण्टे चलने के बाद तीन मील पर एक गाँव मिला, यहाँ एक चायकी दुकान थी। डाडी वाले काफी थक गए थे, थोडी देर सुस्ताकर आराम करने लगे।

अब शायद हम ८००० फीटकी ऊँचाई पर आ गए थे। हवा मे ठडक थी—रास्ता भी कुछ सीधा था। डाडीसे उतर कर मैं पैदल चलने लगा। एक पढ़ा-लिखा पहाडी युवक ऊपर जा रहा था। उसकी बकरियाँ और भेडे फूलोकी घाटीमे चरने को गई हुई थी। उससे फूलोकी घाटी के बारेमे बहुत तरहकी जानकारी मिली। मै तो थोडी-सी चढाईमे हाँफ जाता परन्तु वह टेढी-मेढी पगडंडियों से दौडता हुआ ऊपर पहुँच जाता है। उसने बताया कि जून तक यह रास्ता बर्फ से ढँका हुआ रहता है। उस समय यहाँके ग्रामीण ही आ-जा सकते है और वे भी केवल भ्यूंदार गाँव तक।

दिन के लगभग ३-३० बजे हमलोग गोविन्दघाटसे ५ मील पर भुयन्दर गाँव मे पहुँचे। यहाँ चाय पी और गर्म पकोडियाँ खायी।

बहुत वर्षोसे इस गांवमे एक वृद्ध बगाली साधु रहते है। उनसे मिलने गया। जवानीमे हिमालय के बहुतसे हिस्सो की उन्होने यात्राकी है। भुयन्दर घाटी और आसपास के क्षेत्रकी जानकारीकी अग्रेजी मे एक पुस्तक भी लिखी है।

उनको घेरे हुए पहाडी स्त्री-पुरुष बैठे थे। वे उन्हे होमियोपैथिक दवा देते है। एक प्रकारसे उनके अपने परिवार की तरह हो गए है।

मैंने बगलामे बात शुरू की—बहुत दिनो बाद मातृभापा को सुनकर उनके मनमे खुशी हुई। शायद ५०-६० वर्ष पहले छोडे हुए स्वजन और गॉव-घर फिर याद आ गए।

मैने पूछा, "महाराज, तीर्थ तो वगाल-आसाममे भी है। पडोस मे काशी भी बडा तीर्थ है, वहा बन्धु-बान्धव भी मिल जाते, फिर आप इस अजाने-अचिन्हे बीहड स्थानमे अकेले रहकर क्यो कष्ट सहते है ?"

उन्होने हँसते हुए कहा—"मेरे ये पूर्व जन्मके बन्धु है। इनकी पुकार सुनकर ही यहा रहता हूँ। यही मेरे लिए तीर्थ और तपस्थली है। माँ गगा कलकत्ता और काशीमे है और उसका उद्गम स्थल इस क्षेत्र मे है इसलिए एक प्रकार से मै अपने ननिहाल मे आया हुआ हूँ।

"जीवनके तीसरे दशक मे भ्रमण करता हुआ न जाने किस आकर्पण से यहाँ आ पहुँचा—उन बातो को पचास वर्प हो गए। अब तो प्रभु से यही प्रार्थना है कि देवताओ की इस हिमाच्छादित भूमि मे किसी दिन इन सब लोगो के हाथ से गगा लाभ करूँ।

महाराज का एक श्रद्धालु भगत चाय बनाकर लाया। 'ना' नही कर सका। विदा के समय उन्होने स्वरचित पुस्तक भेट की।

भुयन्दर से आगे फिर कडी चढाई है—घाघरिया पहुँचे तब पॉच बज गए थे। डाँडी वाले इस सर्दी मे भी पसीने से तरबतर होकर हॉफ रहे थे। मनुष्य को अपने और परिवार वालो के पेट भरने के लिए सब कुछ करना पडता है। अगले दिन फिर इन्हे इससे भी कड़ी चढाई-हेमकुण्ड पर जाना होगा, जहाँ की हवा भी पतली है। इसलिए उबकाई और चक्कर भी आते है। शायद जीवन के अतिम दिनो तक इनका यही कार्यक्रम चालू रहेगा।

घाघरिया का गुरुद्वारा १०,००० फीट की ऊँचाई पर है। श्रद्धालु सिक्खो ने १९३९ मे यात्रियो के सुस्ताने के लिए इसे बनाया था। अब तो काफी बडा हो गया है। १५-२० स्त्री-पुरुष ठहरे हुए थे। ग्रन्थीजी ने बडे प्रेम से कोने मे एक जगह बता दी। थोडी देर बाद प्रसाद के रूप मे गर्म चाय मिली।

सर्दी और थकावट के कारण कबल ओढकर सो गया था। गुरुग्रन्थ साहब की आरती का समय हो गया, ग्रन्थी जी ने जगाकर कीर्तन मे चलने को कहा। सिर पर ओढने को साफा या टोपी नही थी, इसलिए कम्बल ओढे माथा टेककर कीर्तन मे बैठ गया।

जो भजन कीर्तन हुए, वे सब वैष्णव धर्म से मिलते जुलते थे। भाषा भी समझ मे आ रही थी। आरती के बाद सुस्वादु कडा प्रसाद मिला।

गुरुद्वारे मे भोजन के लिए लगर मे बैठना पडता है। इनमे छोटे बडे का भेदभाव नही रहता। बडेबड़े अफसर और धनी सिक्ख भोजन परोसते है तथा सफाई वगैरह का कार्य बडे प्रेम से करते है।

गरम फुलके, दाल और आलू-प्याजकी सब्जी थी। भूखमे यह सादा खाना भी अमृत-तुल्य लगा। भोजनके बाद सबोने अपनी थाली-कटोरी को राखसे अच्छी तरह मलकर धो-पोछकर रख दिया।

रातमे काफी सर्दी थी। व्यवस्थापकने ५ कम्बले दी—दो मेरे पास थी। सोते ही खूब नीद आ गयी।

दूसरे दिन ६ बजे उठा। नित्य कर्मसे निवृत्त होकर तैयार हुआ—इतनेमे डाडी वाले आगये। आज चलना तो केवल ४ मील ही था, परन्तु चढाई थी ५,००० फीटकी।

मै अचानक ही विना प्रोग्रामके इस यात्रा पर निकल पडा था। इसलिए, गरम कपडे साथमे नही ला सका था। दो कवले ओढकर डाडी पर बैठ गया। आमतौर पर १०-१२ हजार फीट पर हरियाली नही रहती, परन्तु इस अचलमे ही विश्वप्रसिद्ध फूलो की घाटी है, इसलिए हमे रास्तेमे जगह-जगह सुन्दर फूल और पौधे दिखाई दिये। वैसे, वर्फ गल चुकी थी, फिर भी दोनो तरफ पहाडोके कोनोमे वर्फकी चौडी पट्टी थी। कही-कही इनके वीचसे झाकती हरियाली प्रकृतिकी जीवनी-शक्तिका परिचय देती थी। काफी कडी चढाई पडती है, हवा भी पतली है।

डाडी वाले धीरे-धीरे रेगते हुए ऊपर चढ रहे थे, जब थक जाते तो आराम करने लगते। मुझे उनकी थकावट देखकर न जाने कैसा ही लग रहा था, परन्तु मेरा इतनी ऊँचाई और खडी चढाई पर जानेका पहला ही मौका था। फिर भी वीच-वीचमे मेरे पैदल चलनेसे उन्हे राहत मिल जाती थी। हमे कुछ पहाडी मजदूर लोहेके खम्भे लिए हुए ऊपर जाते मिले। गोविन्दघाट गुरुद्वारेसे १२ मीलकी चढाईके उन्हे २० रुपये मिलते है। एक मन वोझ लेकर दो दिनोमे अथक परिश्रम करके वे ऊपर हेमकुण्ड पहुँचते है जहा पर गुरुद्वारेका निर्माण हो रहा है।

एक अधेड सिक्ख दम्पत्ति मेरे साथ-साथ पैदल चल रहे थे। आधी दूरी तो हिम्मत करके पत्नीने किसी प्रकार पार कर ली, इसके वाद एक शिला पर बैठ गई। पतिकी वहुत आरजू-मिन्नतके वाद भी वह जानेको तैयार नही हुई। मैंने अपनी डाडीमे बैठ जानेको कहा, परन्तु ऐसा लगा कि वे पैदल यात्रा की मनौती मानकर घरसे चले थे। हम जव करीब एक मील रह गए तो वहुत ऊँचे पर एक झण्डा दिखाई दिया। डाडी वालेने वताया कि वही हेमकुण्ड लोकपाल है। ऊँचाई देखकर मनमे कैसा ही भय सा समा गया। रामनामका जप करता हुआ आँख मीचकर डाडी पर बैठ गया। जीवनमे पहाडो पर काफी घूमा हूँ, परन्तु इतनी कडी ऊँचाई कही भी देखनेमे नही मिली। मेरे ऊपर पहुँचनेके थोडी देर बाद ही वे दोनो भी थके-हाँफे ऊपर पहुँच गए।

१५,१०० फीट पर यह पवित्र स्थान है। इतनी ऊँचाई पर आनेका मेरा पहला मौका था। हवामे ऑक्सीजनकी कमीके कारण पतलापन था, फिर भी श्वास लेनेमे खास तकलीफ नही हुई। वहाँ जाकर जो कुछ देखा, वह तो वर्णनातीत था। तुलसीदासजीकी उक्ति याद आ गयी, "गिरा अनयन, नयन विनु वानी।"

सातो चोटियोके वीच की घाटीमे एक सुन्दर सरोवर है—उसके किनारे एक छोटा-सा गुरुद्वारा वना हुआ है। कहते है इसके भीतर रखी हुई शिला पर अपने पूर्व जन्ममे गुरु गोविन्द सिंहजीने तपस्या की थी।

नए गुरुद्वारेका भव्य भवन वन रहा था। वर्षमे केवल तीन महीने काम हो पाता है, इसलिए पाँच वर्ष हो गए और समाप्ति मे और पाँच वर्ष लग जाएंगे। ५० लाख रुपये इसके लिए श्रद्धालु सिक्खोने इकट्ठा किया है। ७४ वर्षीय रिटायर्ड इजीनियर श्री वसनसिंहजी प्रति वर्ष तीन महीने यहाँ रहकर निर्माण कार्यकी देखभाल करते है। और भी तीन-चार स्वयसेवक उनके साथ रहते है। चौगुनी मजदूरी देकर नीचेसे मजदूर लाते हैं, जिनमे से कुछ ठड और पतली हवा नही सह सकनेके कारण वापिस चले जाते है। उन सबके रहनेके लिए चार-पाँच कोठरियाँ वनी हुई है।

'वाह गुरुजीकी फतह' के बाद गर्म चायका गिलास मिला। ग्रन्थीजीने गुरुग्रन्थ साहवके दर्शन कराए। सरोवर मे स्नान करनेका मन तो वहुत था, परन्तु हडकम्प ठडके कारण विचार छोड दिया। मेरे साथ आए हुए पति-पत्नीने जल्दीसे २-३ डुवकी ले ली।

गुरु गोविन्द सिंहजीने अपनी वाणीमे कहा है—'चित न भयो हमारो आवनको।

वास्तवमें ही यह जगह ऐसी रमणीक और पवित्र है कि नीचे उतरनेका जी नही चाहता। यहाँसे ४,००० फीटकी ऊँचाई पर सात चोटियोके बीचकी चोटी पर एक झडा फहरा रहा था। पूछने पर पता चला कि कुछ हिम्मती सिक्ख प्रतिवर्ष वहाँ जाकर झंडा लगाते है।

सयोगसे आती दफे रास्तेमे वे लोग मुझे मिले। उन्होने बताया कि यद्यपि ऊपर जानेका तो रास्ता नही है, पर 'वाह गुरु' का जाप करते हुए किसी न किसी प्रकार पहुँच जाते है।

बाबाजीने भोजनके लिए ठहरनेका आग्रह किया, परन्तु डाडी वालोको नीचे उतरनेकी जल्दी थी और रास्तेकी बीहडता और सूनेपनको ध्यानमे रखकर उनके साथ ही जाना चाहता था, इसलिए आधा घटा ठहरकर वहाँसे रवाना हो गया।

विश्व का सबसे धनी हावर्ड ह्यूजेस्

सन १९६० तक मान्यता थी कि फोर्ड और रॉकफेलर विश्व के सबसे धनी है। वैसे पहले पन्द्रह धनियोमे आगा खॉ और निजाम हैदराबादका नाम भी लिया जाता था। परन्तु समय बदलता रहता है—आज निजाम हैदराबाद और आगा खॉ के उत्तराधिकारी केवले १०-१५ करोडके आसामी रह गये है। उन जैसे सैकडो हजारो धनी विभिन्न देशोंमे बिखरे पडे है।

फोर्ड और रॉकफेलर घराने यद्यपि पहले दस धनियोमे है, जबकि पिछले बारह वर्षोसे प्रथम स्थान मिल गया है हावर्ड ह्यूजेस को, जिसके पास लगभग १२०० करोड की सम्पत्ति कूँती जाती है।

हॉरल्ड रोबिन्सका प्रसिद्ध उपन्यास 'कारपेट बैगर्स' पढ रहा था। प्रकाशकोका दावा है कि इसकी लगभग ६० लाख प्रतियाँ बिक चुकी है। मुझे भी इसका वर्णन रोचक किन्तु अजीब-सा लगा। २० प्रतियाँ खरीदकर मित्रोको भेट दी। उपन्यास का नायक जोनाका करोडपति पिता मर गया। उसकी लाश को छोडकर वह अपनी युवती विमाता रोना (जो विवाहसे पहले उसकी प्रेयसी थी) के पास जाकर प्रेमालाप करने लगा। रोना कहती है कि अगर तुम्हारा पिता आ जायेगा तो उसका जवाब होता है कि पिता अब कभी नही आयेगा। इसी प्रकार की और भी बहुत-सी बाते इस किताबमे है जो हमारे देश की लक्ष्मण रेखासे तो दूर है ही, फ्लाबरकी मैडम बोवरी और लोरेन्सकी लेडी चेटरलीज लभरसे भी कही ज्यादा अश्लील है। पुस्तक पढते हुए मै सोच रहा था कि अगर यही अमरीकी जीवन है तो फिर हम भले और हमारा देश भला।

जानकार मित्रोने बताया कि उपन्यासका जोना वास्तवमे हावर्ड ह्यूजेस् है, जिसकी जीवनी पर यह उपन्यास आधारित है।

इसके बाद ह्युजेस् के बारेमे अधिक जानकारी लेने की इच्छा हुई। जो कुछ सामग्री मिली, उसे जान-सुनकर ऐसा लगा कि अत्यधिक धन-सम्पत्ति अधिकाश मनुष्योको वास्तवमे ही बौरा देती है, खास करके जवानी के समय मे।

१९०५ मे ह्यूजेस् का जन्म हुआ। उसका पिता एक सफल उद्योगपति था। प्रथम महायुद्ध मे उसका बारूद और हथियारोका कारखाना था, जिसके लाभसे युद्ध समाप्तिके समय उसके पास १५-२० करोड रुपये हो गये।

उसकी मृत्यु पर २० वर्षके युवक पुत्र के हाथमे व्यापार-उद्योग आया। पहले से ही पिता-पुत्रमे मेल नही था, क्योकि उस छोटी उम्रमे ही जितनी आदते उच्छृखल धनी युवकोमे होती है, वे सब पर्याप्त मात्रामे ह्यूजेस् मे थी।

पिताके मरने पर थोडे समयके लिए पुरानी आदतें छोडकर जिस दृढता और लगनसे उसने कारबार को सम्हाला और बढाया, उसे देखकर दूसरे उद्योगपतियों और उसके अपने कारखानेके कर्मचारियों को आश्चर्य हुआ ।

शुरूसे ही वह दक्ष पाइलट था. उसने हवाई जहाज बनानेका कारखाना खोला और उसके हवाई जहाजोंने तेज चलनेमें विश्वमे नया रिकार्ड कायम किया । उसने स्वय भी तेज उडानोंके लिए राष्ट्रीय इनाम जीते, जिनसे उसका चारो तरफ नाम फैल गया और उसके उद्योगों को बडे आर्डर मिलने लगे ।

१९३१ मे विश्व मे, खास करके अमरीका मे बडी मंदी आई । घटे दामोंमें भी चीजोंके खरीददार नही थे । ह्यूजेस् ने हिम्मत करके जमीन, मकान, फिल्म स्टूडियो, विभिन्न उद्योगो के शेयर, बडे-बडे होटल-मोटल और केबरे खरीद लिए । अगले ७ वर्षों मे यूरोपमे द्वितीय महायुद्ध की तैयारी होने लगी । उसकी खरीदी हुई वस्तुओ के दाम बहुत बढ गए और कारखानो का अनाप-सनाप आर्डर मिले । सन् १९४५ मे जब युद्ध समाप्त हुआ तब उसके पास ५००-६०० करोड रुपये हो गए । उन दिनो अमरीकामे केपिटल नफे पर टेक्स बहुत कम थे । तेरह वर्षोमे ३० करोड से ५०० करोड होना एक अचम्भे की सी बात है, इस सन्दर्भमे मुझे अपने देश की नई दिल्लीकी बात याद आजाती है।

१९२२ मे मेरे एक जान पहचानके व्यक्तिने रेटन्डन रोड मे १२००० गज जमीन ४,५००) रुपयेमे खरीदी । उस समय वहाँ जगल था । रातमे सियार गीदड और अन्य वन्य पशु घूमते रहते थे ।

नई दिल्ली बढती गयी, उसी अनुपातमे जमीनोके दाम भी ऊँचे होते गए । आज भी वह जमीन उसी व्यक्तिके पास है और उसकी कीमत है—२५०) रुपये प्रति गजके हिसाबसे लगभग तीस लाख रुपये ।

अमरीका और यूरोपमे ह्यूजेस्के बारे मे अनेक प्रकार की किम्बदन्तिया फैलने लगी । हजारो स्त्री-पुरुष विभिन्न कामोसे उससे मिलने का प्रयत्न करने लगे । उसके पाच सचिवोके जिम्मे तो केवल यही काम था कि उनमेसे थोडे से लोगोको चुनकर ह्यूजेस्से मिलने दिया जाय ।

इतना व्यस्त रहते हुए भी उसकी एक अपनी रगीन दुनिया थी, जिसके लिए वह बहुत जरूरी कामोको छोडकर पर्याप्त समय निकाल लेता था । वेश बदलकर बदनाम जुआघर कैबरे और नाइटक्लबोमे वह प्राय ही चला जाता ।

पाँच-दस की जगह सौ-दो सौ डालर की बख्शिश देता, इसलिए वहाँ की सब नर्तकियाँ उसके इर्द-गिर्द इकट्ठी रहती । उनमेसे दो-चार को चुनकर वह गुप्त फ्लैटमे ले जाता । उन सब स्थानो का पता केवल उसके निजी सचिवको ही रहता और वह भी बहुत जरूरी होने पर ही वहाँ फोन करता ।

१९६५ मे ह्यूजेस् साठ वर्ष का हो गया । उस समय उसकी सम्पत्ति थी, लगभग १२०० करोड रुपये और अब वह विश्व का सबसे धनी व्यक्ति था ।

निजाम हैदराबादकी तरह ह्यूजेस् भी बहुत साधारण लिबासमे रहता है । एक बार सैरके लिए लन्दन गया । उसे अपनी किसी प्रेमिकाको हीरा का हार एक उपहार देना था । वहाँकी रिजेण्ट स्ट्रीट की एक प्रसिद्ध जवाहरात की दूकान मे चला गया । साथमे उसका निजी सचिव था । वेश-भूषा देखकर उन्होने पचास-साठ हजारके कई हार दिखाये । उसने कहा—मुझे कीमती हार चाहिए, दो-चार लाख के दिखाये गए । ह्यूजेस् ने कुछ रोबसे कहा कि मैने सुना था कि आपकी दुकान मे बेहतरीन गहने रहते है, फिर यह सब सस्ती चीजें दिखाकर मेरा और अपना समय क्यो नष्ट कर रहे है ।

अगर भारतीय जौहरी होते तो समय को व्यर्थ बरबादी समझकर उसे टरका देते, परन्तु यूरोपके दूकानदार वहुत शालीन और सभ्य होते है। उन्होने एक पन्द्रह लाखका हार दिखाया। हार खरीदकर उसने अपने सचिवसे चेक देने को कहा। जब दुकानवालोको पता चला कि अरबपति हावर्ड ह्यूजेस् उनकी दूकानमे खडा है तो फिर लगे खातिरदारी करने और दूसरी कीमती चीजे दिखाने।

१९६६ मे वह इकसठ वर्ष का था। परन्तु ऐय्याशी, अबाध भोग-विलास और नाना प्रकारके व्यापारिक झझटोके कारण उसका शरीर थक गया। याददाश्त भी कम हो गई। लोगो मे चर्चा होने लगी कि वह विक्षिप्त होता जा रहा है। आखिर उसने मौज-शौक और व्यस्त जीवनसे ऊबकर अवकाश लेने का तय किया।

न्यूयार्क, लासऐजल्स और हालीवुड महलोको छोडकर लासवेगास मे रहने का तय किया।

तीस वर्ष पहले टी० डब्लू० ए० (प्रसिद्ध हवाई जहाज कम्पनी) के ६६ लाख शेयर लगभग २५ करोड मे खरीदे थे। वे ४१५ करोड में बेच दिए।

लासबेगासमे कुछ दिनो तक तो ठीक से रहा, परन्तु फिर पुराने सस्कार उभरने लगे और १९७० तक के ४ वर्षो मे वहाँ पर बहुतसे जुआघर, कैबरे, रात्रि क्लब और होटल-मोटल खरीद लिए, जिनकी कीमत थी १५० करोड। अपने रहनेके लिए एक बहुत बडे होटलका पुर्ननिर्माण कराया, जिसके चारो तरफ काँटेदार बिजलीके तार है, रात-दिन कडा पहरा रहता है। एक प्रकार से उसे भव्य और सुन्दर जेलखाना ही कहना चाहिए।

मनमे कुछ इस प्रकारका भय-सा समा गया है कि,बाहर नही निकलता। उसके विशेष सचिव और कुछ प्रेमिकाएँ भी फोन पर ही बात कर लेती है। केवल निजी डाक्टर जाँच और चिकित्साके लिए मिल पाते है।

कभी-कभी बिना किसी को सूचना दिए दूसरे स्थानो पर छुट्टी मनाने चला जाता हैं। उसके अपने दो तेज चलने वाले जेट हवाई जहाज है। यात्रा के समय दोनो साथ रहते हैं।

दिसम्बर १९७१ मे विलफोर्ड इरविंग नामके लेखकने प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशक मेग्रिव हिलसे उसकी आत्मकथा प्रकाशनके लिए एक बडी रकम अग्रिम ले ली। उसका दावा था कि यह ह्यूजेसने स्वय टेप रिकार्डिंग करायी है। देश-विदेश मे प्रचार हो गया कि ह्यूजेस्की आत्मकथा प्रकाशित हो रही है। जब उसके वकीलोको पता चला तो पुस्तकके प्रकाशन पर रोक लगा दी गयी। इरविंग पर धोखाधडी का मुकदमा प्रकाशकोने चलाया है।

वैभव, विलास और अन्त

पिछले एक लेखमे मैंने विश्वके सबसे धनी हावर्ड ह्यूजेस्के बारेमें लिखा था। उसके पास १२०० करोड़की सम्पत्ति है। आय है लगभग पच्चीस लाख प्रतिदिन यानी १७००) रुपये प्रति मिनट। इन सबके बावजूद ह्यूजेस अर्ध विक्षिप्त सा, लासवेगासके एक एकान्त महलमें रहता है।

वास्तवमें, इतनी बडी सम्पत्ति और आय आश्चर्यकी सी बात लगती है। पिछले दिनो मुगल साम्राज्य के उत्थान और पतन पर कुछ पढते हुए मुझे बादशाह शाहजहाँकी धन-दौलतका जो व्यौरा मिला उसकी तुलनामे ह्यूजेस्, मैलन, रॉकफेलर, फोर्ड और ओनासिस बहुत ही गरीब दिखायी देंगे।

अकबरके समयसे ही मुगलिया खजानेमे जवाहरात और सोना जमा होना शुरू हो गया था, जो एक सौ वर्षोमे शाहजहाँके शासन तक बढ़ता ही गया। इसके बाद १६५८ से १७०७ तक ४६ वर्षो के औरगजेबी शासनकालमे यह सब अथाह धन-दौलत समाप्तप्राय हो गई। सिक्खो, राजपूतो, मरहठो और दक्षिणके सुलतानोसे लडनेके लिए औरगजेबकी फौजमें सवार और पैदल मिलाकर लगभग सात लाख सिपाही थे, जो काबुल-कन्धारसे लेकर दक्षिणमें कर्नाटक तक फैले हुए थे। वह स्वय १६८१ से १७०७ तकके २६ वर्षोमे अधिकाशतः दक्षिणकी लड़ाइयोमे उलझा रहा, इसलिए केन्द्रीय शासन खोखला होता गया और आयमें कमी होने लगी।

शाहजहाँका शासनकाल सन् १६२७ से १६५८ तक रहा। इन ३१ वर्षोंमें न तो देशमें कोई बड़ा अकाल पडा और न उल्लेखनीय युद्ध ही हुए। हाँ, दो हजार स्त्रियोंके शाही हरम, शाहजादे और शाहजादियोकी मौज शौक और ऐय्याशियों पर बहुत बड़ा खर्च होता था। बादशाहकी अपनी बेगमोके सिवाय सैकडो रखैले और माशूकाएँ थी। अमीर खलीलुल्ला खाँकी बेगम इनमे प्रधान थी, उसकी जूतियोमें २० लाखके हीरे पन्ने जड़े थे। फिर भी शाहजहाँके जमानेमें आय इतनी अधिक थी, जिस कारण प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये खजानेमें बढ़ते चले गए।

किया, जिसकी चमकसे दीवाने खास जगमगा उठा । उस समय तक गोलकुण्डाकी हीरोंकी खानें विश्वमें सबसे बड़ी थीं ।

बादशाह बड़ी देर तक आश्चर्यसे उस हीरेको देखता रहा । भेंट स्वीकार करते हुए कहा—'मीरजुमला मअज्जमदौलत तुमसे बहुत खुश हैं । इस बेहतरीन हीरेका नाम हम कोहेनूर रखते हैं ।'

अपने लन्दन प्रवासमें मैंने देखा कि वही कोहेनूर ब्रिटेनके बादशाहके ताजमें जड़ा हुआ टावर आफ लन्दनके संग्रहालयमें रखा हुआ है । मैं जब भी लन्दन पहुँचता, इस हीरेको अवश्य देखता । मनमें दुःख होना स्वाभाविक ही था । भारतीय इतिहासकी अनेक बातें उभर कर मानस पर छा गईं ।

शाहजहाँने तख्तेताऊस नामका सोनेका सिंहासन बनवाया । इसकी लम्बाई चौड़ाई १० × ७ फीट थी और ऊँचाई १५ फीट । यह ठोस सोनेका था जिसमें बेशकीमती जवाहरात लगे हुए थे, और इसको बनानेमें सैकड़ों कारीगरोंको ८ वर्ष लगे थे । उस सस्तीके जमानेमें इस पर सात करोड़ रुपये लगे, जो आजकी क्रयशक्तिके हिसाबसे तीन-चार सौ करोड़के लगभग होगा । फारसके शाहने बादशाह जहाँगीरको एक अलभ्य मणि भेंटकी थी । वह भी इस सिंहासनमें जड़ी हुई थी । आज केवल उस मणिकी कीमत ही कई करोड़ रुपये होगी । पता नहीं, अब वह किसी दूर देशमें है अथवा नादिरशाह या अहमदशाह अब्दालीके वंशजने उसको छिपा रखा है या फिर जमींदोज होकर पृथ्वीकी गोदमें सो रही है ।

इस संदर्भमें मुझे टर्कीमें इस्ताम्बूलके म्यूजियममें भूतपूर्व सुलतानोंके खजानेके दो पन्नोंकी याद आ जाती है । एकका वजन था १५०० और दूसरेका ६०० ग्राम । मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि इतने बड़े पन्ने हो सकते हैं । क्यूरेटरसे कीमतके बारेमें पूछा तो उत्तर मिला कि दाम देकर विश्वका बड़ेसे बड़ा धनी भी शायद ही इन्हें खरीद सके । जिस प्रकार आपके कोहेनूरका इतिहास रहा है, उसी ढंगका इन पन्नोंका है ।

हमारे देशमें रोम और ग्रीसकी तरह इतिहास लिखनेकी प्रथा नहीं थी इसलिए वाल्मीकि, पाणिनी और कालिदास जैसे विशिष्ट विद्वानोंके समयको लेकर केवल मन गढ़त अन्दाज लगाते हैं, परन्तु मुगल बादशाहोंमें अपना रोजनामचा लिखनेकी आदत थी । उनके यहाँ अरब-फारसके सिवाय फ्रान्स और ब्रिटेन के विद्वान भी रहते थे. इसलिए उस समयके प्रामाणिक तथ्य और अंक उपलब्ध हैं ।

सन् १६५८ में बादशाह शाहजहाँके पास, जब वह औरंगजेब द्वारा कैद कर लिया गया था, निम्नलिखित संपत्ति थी । छोटे बड़े तराशे और बिना तराशे हीरे ५० लाख, मानिक ६० लाख, पन्ना ६० लाख और मोती ३६० लाख रत्ती थे । कुल मिलाकर सारा वजन ५.३० करोड़ रत्ती होता है । आज इन सबकी कीमत जोड़नेके लिए शायद कम्प्यूटरकी दरकार पड़े । हजारों तलवारें, कटारें और दूसरे हथियार थे, जिनकी मूठोंमें बेशकीमती हीरे-जवाहरात जड़े हुए थे । तख्तेताऊसके सिवाय बादशाह और शाहजादोंके लिए ठोस सोनेके नौ सिंहासन और थे । सैकड़ों सोने-चाँदीकी कुर्सियाँ थीं । जिस सोनेके हौजमें बादशाह गुसल करता था, वह ७ × ५ फीट लम्बा चौड़ा था । इसमें बेशकीमती हीरे पन्ने माणिक जड़े हुए थे । आज इसकी कीमत भी ५०-६० करोड़के लगभग होगी ।

इन सबके सिवाय सात सौ मन सोनेके बरतन थे, जो आजके हिसाबसे लगभग ६० करोड़के होते हैं । ये सब बातें भूल भुलैयाकी सी लगती हैं पर हैं सब ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित । १६५८ की १० जूनको आगरा गरमीसे लोहेके उबलते लावाकी तरह तप रहा था । औरंगजेबका बड़ा बेटा महमूद सुलतान पाँच हजार चुने हुए सिपाही लेकर लालकिलेमें गया । वहाँके सब पहरेदारोंको मौतके घाट उतार दिया और ६८ वर्षके बुजुर्ग दादा शाहजहाँको कैद कर लिया ।

जिसकी टेढी भृकुटीसे चारों शाहजादे और उनके पुत्र काँपते थे, जिस महमूद सुलतानको

शाहजहाँने गोदीमे खिलाया था, उसी १८ वर्षके नौजवान शाहजादेके सामने आज वह बिलख-बिलख कर रो रहा था ।

इसके बाद भी किलेकी ऊपरी बुर्जमे कैदी बादशाह सातवर्ष तक जिन्दा रहा । जिसकी खिदमत मे हजारो बाँदी, मुगलानी, तातारी, हथियारबद औरते और खोजे रहते थे । वहाँ अब केवल उसकी बडी बेटी जहाँनआरा रह गयी थी ।

अपनी जवानीके दिनोमे उसने सैकडो बेकस औरतोकी अस्मत लूटी । वजीरे आजम शाइस्ताखाँकी युवती बेगमने तो अनशन करके अपने प्राण त्याग दिये थे । वे सब भयावने रूप मे उसे नीद मे दिखाई देती । दारा, शुजा और मुराद तीनो बेटोकी और उनके अधिकाश शाहजादोकी औरगजेब द्वारा हत्या कर दी गयी थी । बादशाह को रातमे भयानक सपने आते रहते और वह चौक कर जग जाता । ताजमहल को देखते हुए फिर सारी रात गुजारता । कभी-कभी 'बचाओ बचाओ' कह कर चिल्ला उठता था । सन् १६६५ मे इस प्रतापी और विश्व मे सबसे बडे धनी बादशाह ने रोते बिलखते अपना दम तोड दिया । बिना किसी आडम्बर के उसकी लाश बेगम मुमताज महल की कब्र के पास ताजमहलमे दफना दी गयी ।

सोचता हूँ, क्या मिला शाहजहाँ को इतने बडे साम्राज्य और वैभवसे, क्या दिया अपरिमित सम्पत्तिने ह्यूजेस् को ? एक नही, अनेक दृष्टान्त इतिहासके पृष्ठोमे है । शकराचार्य ने कहा है —

अर्थाअनर्थ भावयनित्य नास्तितत सुखलेश सत्यम्
पुत्रादपि धनभाजा सर्वत्रैषा विहिता नीति ॥

अर्थ ही अनर्थ है । सत्य है कि उसमे सुख लेश मात्र भी नही है । अधिक धन होने पर पुत्रोसे भी भय बना रहता है । यही नीति सर्वत्र लागू है ।

आज का विद्यार्थी

दिल्ली से ट्रेन मे कलकत्ता जा रहा था। डिब्वे मे मेरे मिवाय एक नव-विवाहित दम्पति थे और चौथी सीट खाली थी। पत्नी के सकोच को देखकर ऐसा लगता था कि वह प्रथम वार ससुराल जा रही है।

अलीगढ स्टेशन पर गाडी ठहरी। डिब्वे के सामने वीस-पच्चीस युवक हाथो मे हाकी स्टिक लिए हुए आकर खडे हो गए ओर घूरने लगे। थोडी देर वाद गाडी चलने लगी तो देखना हूँ कि वे सब डिब्वे मे घुस आए और आपस मे भद्दा हँसीमजाक करने लगे। युवती शर्मिन्दा होकर एक तरफ बैठ गई। परन्तु उनको तो जानवूझकर बात बढानी थी, इसलिए उर्दू की अश्लील गजले और कोव्वाली गानी शुरू कर दी। युवक ने आपत्ति की तो झगडा करने पर उतारू हो गए, बेचारी लडकी रोने लग गई।

मैं थोडी देर तो यह सब देखता रहा परन्तु जव उनकी हरकते शालीनता की मीमा को पार करने लगी तो उनसे वहस करना फिजूल समझकर गाडी की जजीर खीच ली। गाडी रुकने पर गार्ड व टिकट निरीक्षक के अतिरिक्त ओर भी वहुत से यात्री वहा आकर इकट्ठे हो गए। सारी बातो को सुनकर सबने नोजवानो को बुराभला कहा, परन्तु उन्हे इससे किसी प्रकार की झिझक या शर्म महसूस नही हुई। खेर,उस समय वात वही समाप्त हो गयी ओर वे सब दूसरे डिब्वे मे चले गए। हमारे पास टिकट निरीक्षक आकर बैठ गया और कहने लगा कि ये सब यहाँ के कालेजो के विद्यार्थी है। रविवार या अन्य छुट्टी के दिन इनके लिए ऐसी हरकते साधारण सी बात हो गई है। जहाँ कही भले घर की वहू-वेटी को देखते है कि आवाज कसने लगते है, मौका पाकर छेडखानी भी कर लेते है। इनसे टिकट माँगने पर लडाई झगडा पर उतारू हो जाते है और कभी-कभी मारपीट तक भी कर बैठते है। ये प्राय दस-पन्द्रह की टोली मे होते है और हम अकेले , इसलिए हमारे पास सिवाय उच्च अधिकारियो को शिकायत करने के दूसरा चारा नही रह जाता।

मुझे कुछ दिनो पहले समाचार-पत्रो मे पढी हुई लखनऊ की एक घटना याद आ गई कि वहाँ के कालेजो के लडको ने स्कूल और कालेज जाती हुई लडकियो को वहुत तग करना शुरू कर दिया था और अन्त मे उनमे से कई-एक को पुलिस द्वारा गिरफ्तार करना पडा। आए दिन की तोडफोड, हडताल, प्रोफेसरो से दिल्लगी और कभी-कभी धमकी देना आदि इनके लिए साधारण बातें है।

सोचने लगा, इनके माता-पिता दूसरे जरूरी खर्चो मे कटौती करके इनको उच्च-शिक्षा के लिए कालेजो मे भेजते है। उनकी यही आकाक्षा रहती है कि पढ-लिख कर वश का नाम उज्ज्वल करेगे और हमे वूढापे मे कमाकर खिलायेगे। उन्हे क्या पता कि उनके ये सपूत इस

प्रकार से उनकी गाढी कमाई का धन बर्बाद करते है और छ६-७ वर्षो मे डिग्री प्राप्त करने तक अनेक अवाछनीय बातों से भी जानकार हो जाते हैं। बी०ए० या एम० ए० करने के बाद घर की खेती-बारी या दुकानदारी के बारे मे इन्हे शर्म आने लगती है, इसलिए अखबारो मे काम खाली-'वान्टेड' के कालम देखकर क्लर्की के लिए प्रर्थनापत्र देते रहते है। एक दिन मेरी जान-पहचान का एक मिस्त्री, अपने बी० ए० पास पुत्र की नौकरी के लिए आया। वह स्वय पढा-लिखा नही है, परन्तु हाथ का कारीगर है और प्रतिदिन छ सात रुपये कमा लेता है। बी०ए० पास करने के बाद लडके को घर के धन्धे मे शर्म आने लगी और सवा सौ डेढ सौ रुपये की नौकरी ढूँढने लगा। बाप तो साधारण कपडो मे था परन्तु पुत्र नायलन की बुश्शर्ट, मक्खन-जीन की पतलून और पालिश किए हुए चमचमाते जूते पहने हुए था। मुझे एक हिन्दी और अग्रेजी के निजी सहायक की जरूरत थी। उसे जोन गुन्थरकी 'इन्साइड एशिया' पढ़ने को दी तो एक-दो पृष्ठ उलटकर कहने लगा कि यह पुस्तक तो हमारे कोर्स मे नही थी। एक छोटे से वाक्य का अनुवाद करने को दिया तो सात शब्दों मे चार गलतियाँ। लिखने का तात्पर्य यह है कि हमारी आधुनिक शिक्षा का नैतिक और बौद्धिक स्तर निरतर गिरता जा रहा है।

यह तो हुई गाँवो और कस्बो के साधारण विद्यार्थियो की बात। कलकत्ते और बम्बई आदि बडे शहरो के धनिको के अधिकाश लडको की तो शिक्षा-प्रणाली और भी विचित्र है। मुझे एक शिक्षा शास्त्री एव कई सस्थानों के सचालको ने बताया कि इनके लडको को पहुँचाने, लेने और नाश्ता देने के लिए बडी-बडी कारें स्कूलो और कालेजो मे दिनभर आती रहती है। इनकी मैट्रिक तक की पढाई और परीक्षा स्कूलो मे ही होती है। इसलिए परीक्षा मे उत्तीर्ण होने के लिए पहले से ही सारी व्यवस्था कर ली जाती है। कालेजो मे जाने के बाद इनकी शान-शौकत और भी बढ जाती है।

बडी-बडी मोटरे, बीसो सूट, नए-नए दोस्त और कभी-कभी उनके साथ क्लबो मे शराब और नाच भी। परीक्षा के समय से पहले जितने भी सम्भावित परीक्षक होते है, उनको ट्यूशन पर रख लिया जाता है। यहाँ तक कि कुछ लडको को पढाने के लिए हजार बारह सौ रुपये मासिक ट्यूशन फीस लग जाती है। खैर, डिग्री तो कालेजो मे भी इन्हे किसी-न-किसी प्रकार प्राप्त हो जाती है, परन्तु वास्तविक ज्ञान की उपलब्धि तो शायद ही होती है।

हमारे पुराने ग्रन्थो मे गुरुकुलो की चर्चाएँ है कि राजा और गरीब दोनो के लडके आश्रम मे रहकर एक साथ पढते थे। बारी-बारी से सबको आश्रम का काम करना पडता था, इसमे भिक्षाटन भी शामिल था। इसके बहुत समय बाद के भी तक्षशिला और नालन्दा के विद्या मन्दिर भारत की शिक्षा-प्रणाली की महत्ता के जीते-जागते उदाहरण रहे है।

उन्नीसवी शताब्दी के श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और श्री गोपालकृष्ण गोखले की याद आती है कि उनके पास न तो पढने को पुस्तके ही थी और न रोशनी के लिए तेल ही। इधर-उधर से पुस्तके माँगकर ले आते और सडक की रोशनी मे पढते रहते। इसके बावजूद वे प्रसिद्ध विद्वान् ही नही अपितु आदर्श पुरुष भी हुए। और याद आती है स्वामी दयानन्द सरस्वती की जो वेद, वेदाग और उपनिषद् आदि की शिक्षा प्राप्त करके अपने गुरु विरजानन्द जी से विदा लेने लगे तो गुरु दक्षिणा मे थोडे से लौग ही दे पाए थे। उसी दक्षिणा से प्रसन्न होकर गुरु ने उनको हृदय से आशीर्वाद दिया था। ये भी पिछली शताब्दी के प्रकाण्ड विद्वान होने के साथ-ही-साथ महान सुधारक भी हुए।

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ से ही भारतीय शिक्षा का रूप बदलने लगा। यहाँ तक कि हमारे इतिहास को भी स्मिथ और मर्सडन ने पूरे तौर पर बदल दिया। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और शिक्षा-शास्त्री मैकाले को इङ्गलैड जाने पर भारत में प्रचलित की गई शिक्षा के बारे मे

पूछा गया तो उसने कहा था कि जो काम भारत मे हमारी बन्दूक और तोपे नही कर सकी है, वह काम हमारी चालू की गयी शिक्षा-प्रणाली पूरा कर देगी अर्थात् भारतीयो का रग तो काला ही रहेगा परन्तु मन से वे अग्रेज बन जायँगे ।

आज एक सौ वर्ष बाद हम मैकाले की भविष्यवाणी की सत्यता महसूस कर रहे हैं । फर्क केवल इतना ही है कि आज से चालीस-पचास वर्ष पहले के कालेजो के विद्यार्थियो को अग्रेजी भाषा का ठोस ज्ञान हो जाता था जबकि आज उन्हे न तो अग्रेजी भाषा का ज्ञान हो पाता है और न मातृभाषा का ही ।

डिग्री और ज्ञान अलग-अलग चीजे है। मेरे एक बुजुर्ग मित्र हैं जिन्होने केवल अग्रेजी मे प्राइमरी रीडर ही पढी थी परन्तु वे अब तक नियमित रूप से कुछ-न-कुछ पढते रहते हैं । हिन्दी और अग्रेजी के तो माने हुए विद्वान् है ही, सस्कृत और फ्रेन्च भी जानते है ।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त कभी स्कूल नहीं गए । परन्तु उनके काव्य-ग्रन्थो पर शोध करके कई व्यक्ति डाक्टरेट की उपाधि ले चुके है । एक बार हमे बगला महाकाव्य वृत्रासुरवध सुना रहे थे । उनके स्पष्ट छन्द-ताल युक्त अजस्र बगला कविता पाठ को सुनकर वहाँ बैठे हुए विद्वान् अचभित और आत्मविभोर हो गए ।

हम स्कूलो और कालेजो की ऊँची पढाई के विरुद्ध नही है, क्योकि आज फिर से गुरुकुल की पढाई न तो व्यावहारिक ही होगी और न वाछनीय ही । परन्तु साथ ही यह भी कहना चाहेगे कि इस समय की शिक्षा-प्रणाली मे आमूल परिवर्तनो की आवश्यकता है । शिक्षा का अर्थ कुछ पुस्तको का पढ लेना या डिग्रियाँ हासिल कर लेना ही नही है । शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य तो अच्छे नागरिक बनना है । अक्षर ज्ञान या पुस्तकीय विद्या तो उसका एक साधारण-सा पक्ष है । नैतिक आधार और नैतिकता के बिना कोई शिक्षा पूरी नही कही जा सकती । हमे युवको को सुरक्षित के साथ-साथ सु-नागरिक बनने पर भी ध्यान देना होगा । इसमे जनता और सरकार की जिम्मेदारी तो है ही परन्तु इसके लिए शिक्षको का उत्तरदायित्व सबसे अधिक है ।

खेद है कि आज के अधिकाश शिक्षक प्राइवेट ट्यूशनो पर ज्यादा ध्यान देते है और स्कूलो या कालेजो मे बहुत कम पढाते है । इनमे से कई-कई तो ६-७ टच्यूशन तक करते है । कालेज और स्कूल की अध्यापकी तो एक प्रकार से टच्यूशनो को प्राप्त करने के लिए रहती है । यही नही बडे शहरो मे तो शिक्षक ही धनी विद्यार्थियो को पास कराने की व्यवस्था भी कर देते है । अभी हाल ही मे कलकत्ते की एक प्रसिद्ध शिक्षण-सस्था मे इसके लिए ग्यारह शिक्षको को कार्य-मुक्त कर दिया गया था ।

यह सब लिखने का हमारा उद्देश्य आज के युवको की आलोचना करना मात्र नही है, वरन् उनका ध्यान इस ओर आकर्षित करना है कि वे एक महान देश के उत्तराधिकारी है इसलिए वे स्वय और उनका आचार-व्यवहार जैसा होगा वैसा ही देश का रूप भी बनेगा ।

यह सुख—यह ऐयाशी

एक दिन मेरे बंगले के माली ने आकर कहा कि दूसरा माली कई दिनों से बीमार है काम पर नही आता। उस समय बात आयी-गयी हो गयी। थोड़े दिन बाद जब फिर कानपुर आया तो देखा कि कई जगह पैबन्द लगी हुई मैली साडी मे एक बीमार महिला कोने मे खडी है। नौकर ने बताया कि माली ज्यादा बीमार है—यह उसकी पत्नी है। उसके सूने-सूने चेहरे पर घबराहट, डर और दैन्यता की छाया स्पष्ट नजर आ रही थी। आयु शायद ३२—३३ की थी, परन्तु उसे ४५ से ५० की भी कह सकते थे।

बंगले के पीछे मालियो और नौकरो की कोठरियां थी। वहा जाकर मैने देखा कि माली और उसके तीन दुबले-पतले बच्चे, ८' x ६' की एक कोठरी मे फटी हुई खाट पर बैठे हुए थे। उन सबके ओढने के लिए एक जीर्ण-क्षीर्ण पैबन्द लगी हुई गुदडी थी। उस चटाई और एक गुदडी मे वे जनवरी की सर्दी को किस प्रकार सहन कर रहे थे—यह बात समझ से परे की थी। इससे भी ज्यादा आश्चर्य यह जानकर हुआ कि माली के ४७) मासिक वेतन मे ही पाँचो के पेट भरने का, तन ढकने के कपडो का और दवा का बजट भी था।

, दूसरे दिन मैने हमारे अस्पताल के बडे डाक्टर को बुलाकर माली और उसकी स्त्री को उन्हे सुपुर्द किया। कइ प्रकार की जाँच - पडताल के बाद पता चला कि माली को तो पेट का यक्ष्मा है और लगातार खुराक की कमी के कारण स्त्री की भी जीवनी शक्ति बहुत कम रह गई है। जैसे भी थोडा बहुत बना उसकी व्यवस्था की, सरकारी अस्पताल मे भर्ती करा दिया। दवा और साधारण पथ्य मे शायद उसकी जान भी बच जायगी। उन दो-चार दिन काममे मन नही लगा। मालीके परिवार का चित्र आखो और मन दोनो के सामने घूमने लगा। सोचने लगे कि इनकी प्रति व्यक्ति आय १००) रु० वार्षिक से भी कम है। जबकि देश की औसत आय ४६०) है और किसी-किसी व्यक्ति की तो एक लाख तक है—कारण स्पष्ट है चूकि न तो उनका कोई लेबर यूनियन है और न वे किसी प्रकार का विरोध ही कर सकते है, इसलिए तिलतिल करके मौत के मुँह की ओर बढते जा रहे है। मुझे स्वर्गीय डा० लोहिया के ससद मे कहे हुए शब्द याद आ गए, जिन्होने देश के कुछ व्यक्तियो की निम्नतर आय चार-पाच आने बताई थी।

उन्ही दिनो एक धनी घराने मे लडकी की शादी थी। बारात किसी दूसरे गाव से आई थी—मुझे भी एक-दो बार वहाँ जाना पडा। लोगो ने बताया कि विवाह पर तीन चार लाख खर्च होगा। खैर, अपनी लडकी को सामर्थ्य के अनुसार सभी देते है। परन्तु जो ऊपरी खर्च और तडक-भडक वहा देखने मे आई—वह अभूतपूर्व थी। बंगलेके सहन मे सारे पडाल को फूलो से सजाया गया था। वृक्षो पर हजारो हरे-लाल जगमगाते बल्ब मैसूर के वृन्दावन गार्डेन की

याद दिला रहे थे। लखनऊ से शहनाई पार्टी बुलायी गई थी। बाराती तथा अन्य आमन्त्रित व्यक्ति १०००-१२०० से कम नही थे। उनके लिए चाय, काफी, फलो के रस, सूखे मेवे और कई प्रकार की मिठाइयो पर भी बहुत खर्च किया गया था।

आजकल विवाह मे घुडचढी के समय के सारे कार्य आमतौर पर २ घण्टे मे समाप्त हो जाते है, परन्तु वहाँ नाच-गाने और कव्वाली गजलो का इन्जाम था—इसलिए रात के १२ बज गए।

दूसरे दिन सज्जनगोठ की जीमनवार (भोज) थी। बडे-बडे थालो मे नाना-प्रकार के पकवान और ८-१० कटोरियो मे कई तरह की साग-सब्जी सजाकर रख दी गई। ज्यादातर लोगो के लिए उतना सब खा पाना सम्भव नही था—इसलिए थाली मे जूठन रहना स्वाभाविक ही था। मुझे शिकागो के पामर्स हाउस नामके प्रसिद्ध रेस्तरां मे अपने अमेरिकन मित्र द्वारा दिए गए भोज की याद आ गई। बहुत प्रकार की मिठाइयां और फलोको सजाकर रख दिया गया था। जब हमने कहा कि इन सबका एक-तिहाई कर दीजिए, तो हँसकर मिस्टर लेजी ने कहा था आप जितना चाहे खा लीजिए—बचा हुआ नष्ट कर दिया जाएगा—"अधिकता हमारी समस्या है।" परन्तु यह तो विश्व के सबसे धनी देश अमरीका की बाते है, जहाँ चीजो के मूल्य का सन्तुलन रखने के लिए कभी-कभी गल्ले और रुई को समुद्र मे डुबो दिया जाता है—न कि हमारे भारत की, जहाँ कि हजारो-लाखो परिवार के बच्चो को फटे-चिथडे और आधा पेट खाना भी मय्यसर नही होता। सोचने लगा कि १०० वर्ष पहले मार्क्स ने भी शायद इसी तरह की विपरीत घटनाएँ देखी थी, जिससे उसे "केपिटल" लिखना पडा। यह सच है कि विषमता सारे विश्व मे है—परन्तु यह भी सच है कि जब वह हमारे यहाँ की तरह सीमा से बढ जाती है तो फिर फ्रास, रूस और चीन की-सी राज्यक्रान्ति अवश्यम्भावी हो जाती है। उस समय वहाँ की भूखी नगी जनता उलट पडी तो वहाँ के सम्राटो का सर्वनाश तो हुआ ही—साथ ही उनके निरीह बच्चो तक को जान से हाथ धोना पडा था। इतिहास की पुनरावृत्ति तो होती ही है। हमे यह भी नही भूलना चाहिए कि फ्रास, रूस और चीन मे तो सर्व सत्तावान सम्राट, जार और राष्टपति थे, जिनके पास फौजे तोपे और बन्दूके थी, जब कि हम तो केवल रुपयो के जोर पर ये भौंडे प्रदर्शन और खर्चे कर रहे है।

दीवार पर स्पष्ट लिखा है, परन्तु खेद है कि हम पढ नही पा रहे हे, क्योकि हमने जान-बूझकर अपनी आँखें बन्द कर रखी है।

●

समय बदला पर हम नहीं

आज बम्बई और कलकत्ते में आम-चर्चा है कि उद्योगव्यापार मन्दा है। जमीनो और मकानो की कीमते घट रही है—चीजो की बिक्री कम है, आदि आदि।

'अकाल मे अधिक मास' की कहावत के अनुसार इस मन्दी के साथ-साथ राजस्थान के कुछ हिस्सो में भयकर अकाल भी पड गया, जिससे हजारो पशु भूख और प्यास से मर जायँगे। भोजन की कमी के कारण मनुष्यो और वच्चो का शरीर घटकर ककाल सदृश्य रह जायगा।

विभिन्न सेवा-सस्थाओने वहाँ राहत का कार्य शुरू किया है और इसके लिए धनी-वर्ग थोडा वहुत दान भी दे देते है। परन्तु खेद है कि आज भी उनकी अपनी मौज-शौक के खर्चे मे किसी प्रकार की कमी तो आई ही नही—कुछ-न-कुछ बढोत्तरी ही हुई है। अगर गाँव और पड़ोस के लोग पानी के बिना मर रहे हो तो तैरने के लिए पानी के तालाब को लोग किसी भी हालत मे नही रहने देगे। हाँ, सन् १९४३ मे कलकत्ते की सडको पर लाखो व्यक्ति भूख से मर गए थे—जब कि सामने की दूकानो पर सैकडो मन मिठाई सजी रहती थी, परन्तु आज १९६६ है—न कि १९४३।

मेरे एक मित्र जो प्रसिद्ध पत्र-सचालक के सिवाय सब प्रकार से साधन सम्पन्न है—पिछले दिनो सपत्नीक दिल्ली आये। वे एक मित्र के फ्लैट मे ठहरे थे। सब तरह की सुविधाएँ और आराम उनके लिए उपलब्ध थे। उसी समय फेडरेशन की मीटिंग थी, जिसमे सम्मिलित होने के लिए कलकत्ते और बम्बई से वहुत से व्यक्ति आए थे। जिनमे कुछ तो सदस्य थे, अधिकाश तमाशबीन। वे भी अगर चाहते तो उनको भी दिल्ली मे इस तरहका आतिथ्य मिल जाता, क्योकि उनके बहुत से सम्वधी और परिचित मित्र वहाँ रहते है और उन दिनो तो ससद का अधिवेशन भी चालू था।

परन्तु उन सबको तो ओबेराय इन्टरनेशनल मे ही ठहरना था, जो इस समय भारत मे सबसे महँगा होटल है और जहाँ केवल चाय का चार्ज लगता है—डेढ रुपया प्रति कप, टिप अलग। यह भी सुना गया कि वहाँ जगह की माँग इतनी थी कि रिजर्वेशन के लिए सिफारिश करनी पडती थी।

मैने अपने मित्र से कहा कि जब साधारण स्थिति के नवयुवक भी ओबेराय या अशोक होटल मे ठहरते है, तो आप लोग वहाँ क्यो नही ठहरे? सबसे एक जगह ही मिलना-जुलना हो जाता और इन सब होटलो में ठहरने से बडप्पन की शान भी है।

उनका जवाब था कि मिलना-जुलना तो कलकत्ते मे सार्वजनिक उत्सवों या विवाह-शादियो मे इन लोगों से होता ही रहता है और जहाँ-तक बडप्पन और शान का सवाल

है—वह फिजूल-खर्ची और दिखावे मे नही है । हा, इसमे एक प्रकार से स्वयं की हीन-भावना की पूर्ति जरूर हो जाती है । मेरे यहाँ से ही उन्होने दो-तीन भारत प्रसिद्ध व्यक्तियोको फोन करके मिलने का समय निश्चित किया । मुझे अपने प्रश्न का उत्तर स्वयं मिल गया, क्योंकि उन बडी-बडी मोटरो और आलीशान होटलो मे ठहरने वालो को तो सचिवो और उप-सचिवो से मिलने के लिए भी दो-चार दिन पहले समय लेना पडता है । कारण स्पष्ट है—वास्तव मे आज धन और दिखावे का मापदण्ड ही घट रहा है । उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि एक गरीब नाईके पुत्र श्री कर्पूरी ठाकुर का बिहार जैसे बडे प्रान्त का मुख्यमन्त्री और कई साधारण सार्वजनिक कार्यकर्ताओंका बङ्गाल प्रान्तमे मन्त्री बन जाना ।

इस सन्दर्भ मे मेरे दो मित्रो की याद आ जाती है । प्रथम इस समय कैबिनेट मिनिस्टर के सिवाय देश के बडे नेता है । सात वर्ष पहले वे केवल सदस्य थे, परन्तु उस समय भी सासद मे उनकी धाक थी । उन्होंने मुझे एक दिन भोजन का निमन्त्रण दिया परन्तु घरमे शायद कहना भूल गए । जब आठ बजे रात्रि मे पहुँचा तो वे कुछ सकपका गए, परन्तु उसी समय बात को सभाल कर बोले—आपके यहा का खाना तो कई बार खा चुका हूँ, सोचा आज अपना खाना जो हम नित्य प्रति खाते है—आपको खिलाऊँ । कांसे की थालियो मे बिना घी की रोटिया, दाल और तेल की एक सब्जी थी—जो वास्तव मे स्वादिष्ट लगी । हँसकर कहने लगे, मै पहले से कह देता तो आपके लिए शायद घी मँगाया जाता । खैर, आपको भारत के औसत आदमी का खाना खाने का अवसर तो मिला । सोचने लगा इतना बडा नाम, विद्वता और सम्मान की भी कमी नही, परन्तु रहन-सहन इतना सादा !

बिना पूछे उनके लडके को एक फार्म मे ३५०) रु० माहवार की नौकरी दिला दी । उन्हे पता चला तो वापस बुला लिया, बोले—यह लडका दुर्भाग्य से बहुत पढ-लिख नही पाया । इसलिए मेरे नाम से नही, बल्कि इसकी योग्यता से उचित वेतन मिले—वही वाजिब है ।

द्वितीय मित्र यद्यपि मन्त्री तो नही है, परन्तु सम्मान, विद्वता और सूझ-बूझ मे बहुत से मन्त्रियो से बडे है । कई बार बडे से बडे पद और काम सम्भालने के लिए कहा गया, परन्तु नम्रता-पूर्वक बराबर टाल देते रहे । हा दूसरे योग्य मित्रो को जरूर वैसे कामो पर लगा देते है । मै एक दिन सुबह उनके यहा बैठा था, प्रधान मन्त्री के सचिव का फोन आया कि एक बहुत जरूरी काम से प्रधान मन्त्री आपसे अभी मिलना चाहती है । उन्होंने कहा कि मैं ६ बजेसे पहले नही आ सकूँगा । थोडी देर बाद ही फिर फोन आया कि आप नो बजे आ जायँ ।

मुझे भी प्रधान-मन्त्री के यहाँ से बहुत कम, परन्तु दूसरे मन्त्रियो के यहा से फोन आते रहते है । मै अन्य प्रोग्रामो मे रद्दोबदल करके भी वहा जाना जरूरी समझता हूँ और इसमे अपनी बडाई और प्रभाव की वृद्धि समझते हुए दूसरे मित्रो को भी कह देता हूँ कि फला मन्त्री ने बुलाया था, इस तरह की बाते हुईं आदि । शाम को मैने उनसे प्रधान मन्त्री की भेंट के बारे मे पूछा तो बोले अमुक काम की सलाह के लिए बुलाया था और भी बाते करना चाहती थी, परन्तु एक कैबिनेट मिनिस्टर और एक प्रसिद्ध उद्योग-पति नो बजे से विजिटिंग रूम मे बैठे थे । शायद उनको नौ और साढे नौ बजे का समय दिया हुआ था । प्रधान मन्त्री ने अपने सचिव से कहा कि मुझे इनसे बातें करने मे समय लगेगा तुम उन्हे दूसरा समय दे दो । मेरे मित्र ने नम्रता-पूर्वक उनको कहा कि गलती मेरी थी कि दूसरो को दिया हुआ समय ले लिया, मै कल फिर मिल लूँगा आप उनको बुला ले । प्रधान मन्त्री जब उन्हे बाहर तक पहुँचाने के लिए आईं तो उन दोनो ने देख लिया । दो-तीन दिन बाद उद्योगपतिके यहाँ से मेरे पास फोन आया कि फला व्यक्तिसे तुम्हारी मित्रता है । मै उनको एक दिन भोजन के लिए बुलाना चाहता हूँ । अगर वे मजूर करे तो उन्हे फोन कर दूँ । मैंने मित्र से कहा तो उन्होंने हँसकर कहा कि वैसे उनसे मेरी जान-पहचान तो है परन्तु मै इन दिनो कुछ व्यस्त हूँ इसलिए फिर कभी चलेगे ।

यह सब लिखने का तात्पर्य अपने धनी युवको को यह बतलाना है कि शान-शौकत और दिखावे मात्र से ही प्रभाव बढता है—यह धारणा नितान्त भ्रमपूर्ण है ।

हमारे भारत मे तो ऊँचे-विचार और सादे जीवन का महत्व बराबर रहा है और आज भी है। आज देश की दशा खराब है—खास करके बङ्गाल तो एक प्रकार से ज्वालामुखी के मुँह पर है, जहाँ किसी समय भी भूकम्प आ सकता है। परन्तु खेद है कि वे यह नही लक्ष्य करते कि पूँजी भी श्रम की तरह उत्पादन का एक अङ्ग मात्र है। अतएव मेहनतकश जब उनके और अपने बीच सुख-साधन का विराट अन्तर पाता है तो उसमे विद्वेष और विद्रोह की आग धधक उठती है। बदले हुए समय का यह सुस्पष्ट सकेत है किन्तु विडम्बना यही है कि "समय बदला पर हम नही" बदले ।

ये विदेशी पुतले

हमने मास्को के क्रेमलीन मे देखा था कि जारो के समय के जो भी चिह्न थे, उन्हे बिना यह परवाह किए कि इनका कितना ऐतिहासिक महत्त्व है, पूरी तरह से मिटा दिया गया है।

यही बात दूसरे स्वतन्त्र देशो मे देखी और सुनी गई है। ब्रिटिश फौजो को हटाने के बाद अमरीका के प्रथम प्रेसिडेन्ट जार्ज वाशिंगटन ने पहला काम यह किया था कि अंग्रेजो द्वारा छोडे हुए स्मारको को समाप्त कर दिया। उनकी मान्यता थी कि दुश्मनो के इस प्रकार के चिह्नो से देश के बच्चो के मन मे हीन भावना पैदा होती है, वे अपने को दूसरो से छोटा समझने लगते है।

फ्रास की राज्यक्रान्ति के समय सम्राज्ञी मेरी अन्तोनिता ने विद्रोहियो को कहा था कि "मेरे निरीह बच्चो की जान बख्श दो, भला इन सबका क्या कसूर है?" परन्तु जनता ये सब दलीले सुनने को तैयार नही थी, उनका कहना था कि दुश्मनो के जिन्दे या मुर्दे किसी प्रकार के चिह्नो को हमे नही रखना है।

हमारे भारत मे सदा से ही दया, क्षमा और सहिष्णुता को प्रधानता दी गयी है। हमारे धर्म-ग्रन्थो मे भी कहा गया है कि बदले की भावना से घृणा उत्पन्न होती है जो किसी हालत मे भी वाछनीय नही है। परन्तु इसका यह अर्थ भी नही है कि जिन लोगोने हमे अपमानित किया, हमारे बच्चो और स्त्रियो की बेरहमी से हत्या की, हमारे ऐतिहासिक तथ्यो को तोड-मरोड दिया और हमारे कारीगरो के हाथ काट दिये, उन सबके स्मारको की हम रक्षा करते रहे।

वैसे बहुत से अग्रेज सेनापतियो और अधिकारियो ने यहाँ अनेक प्रकार के अमानुषिक अत्याचार किए, परन्तु राबर्ट क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्स और डलहौजी के कुकृत्यो से तो इतिहास भरा हुआ है—यहाँ तक कि ब्रिटिश ससद मे भी पहले दोनो के काले-कारनामो की लम्बी सूची सुरक्षित है।

हमें स्वतन्त्रता मिले २२ वर्ष हो गये। विश्व मे जनसख्या के लिहाज से हमारा द्वितीय स्थान है—हमारी अपनी सस्कृति भी शायद सबसे पुरानी है। पिछले सौ वर्षो मे हमारे यहाँ भी तिलक, गाधी, रवीन्द्रनाथ, सुभाषचन्द्र और जवाहरलाल नेहरू जैसे महान् व्यक्ति पैदा हुए है। परन्तु खेद है कि आज भी हम उन विदेशियो की पूजा करते है, जिन्होने इस देश का हर प्रकार से शोषण किया, इसकी मातृ जाति का अपमान किया, इसके बच्चो को अशिक्षित रखा और जालियाँवाले बाग का अमानुषिक हत्याकाण्ड किया।

कलकत्ते की प्रमुख व्यापार-उद्योग प्रतिष्ठानो की सडक का नाम क्लाइव स्टीट है। इसी

प्रकार अपने समय के प्रसिद्ध जालिम वारन हेस्टिंग्स के नाम से भी कई मोहल्ले और सड़कें यहाँ पर है। जिस स्थान से इस प्रान्त का शासन संचालन होता है उस जगह का नाम डलहौजी स्क्वायर है।

मुझे पता नही है कि जालियाँवाले बाग के हत्याकाण्ड के सूत्रधार डायर के नाम पर भी कोई स्मारक देश मे है या नही ? परन्तु उस समय के वाइसराय और पजाब के गवर्नर के नाम से तो जरूर कुछ यादगार होगी ही।

यद्यपि स्वर्गीय डा० लोहिया ने इस सन्दर्भ मे बहुत कुछ कहा और लिखा था। परन्तु खेद की बात है कि सिवाय कुछ सडको के नाम बदल देने के आजतक किसी प्रकार के सामूहिक प्रयत्न इसके लिए नहीं किए गए।

इतने वर्षो के बाद भी भारत मे विदेशी पुतले खडे हुए हमारी सस्कृति, सभ्यता और ऐतिहासिक तथ्यो को झूठा साबित कर रहे है। इनमे से कुछ तो ऐसे व्यक्तियो के है, जिन्होने घिनौने तरीको से मरहठो और सिक्खो की देश-भक्त फौजो को कुचला था।

लार्ड मैकाले ने कहा था कि भारतीयो के रग के सिवाय उनकी भाषा और वेष अगर अग्रेजी कर सकेगे तो हमे भारत मे अपने आप सफलता मिल जायगी।

२२ वर्षो से अग्रजी शासन समाप्त हो गया, परन्तु मैकाले का नुस्खा आज भी अपना काम कर रहा है। स्वतन्त्र भारत के नेता अपने बच्चो को अग्रेजी लिबास मे मिशनरी स्कूलों मे भेजने मे अपनी इज्जत और मान-बडाई समझते है। कहते है—इनमे से कइयो के दाखिले के लिए १०-१२ वर्षो तक राह देखनी पडती है।

उन सब स्कूलो मे अभी तक विंसेन्ट स्मिथ और मार्सडन के भारतीय इतिहास पढ़ाए जाते हैं, जिनमे झाँसी की रानी को कुचक्रों, ताँत्या टोपे को बागी और बहादुर शाह ज़फर को सनकी बताया गया है, साथ ही क्लाइव, हेस्टिंग्स और डलहौजी को वीर, चरित्रवान और उदार कहा गया है। इस प्रकारके ऐतिहासिक ग्रन्थों को पढकर हमारे भावी नागरिको के मन मे जिस प्रकार के उद्‌गार उत्पन्न होगे, उसमे शायद दो राय नही होगी।

वैसे हर जलसे मे हम वन्देमातरम् और जन-मन-गण अधिनायक का गान करते हैं। परन्तु हमे सोचना है कि क्या वास्तव मे ही हम इसके अधिकारी है ? क्योकि जिन वीरो ने मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए अपना आत्मोत्सर्ग किया है, स्मारक तो उन शहीदो के होने चाहिए, परन्तु आज शायद ही कही भगत सिंह, सुखदेव, खुदीराम और चन्द्रशेखर आजाद के स्टेच्यू देश के विशिष्ट स्थानो मे नजर आवेगे।

खेद की बात है कि इस समय तक भी हमारी इस स्वतन्त्रता की भूमि पर ये सब विदेशी पुतले सिर उठाये गर्व से हमे हिकारत की नजर से देख रहे है और हमारे स्वाभिमान को चुनौती दे रहे है।

●

अंग्रेज गये पर अंग्रेजियत नहीं

मुझे अपने लेखो के बारे मे कुछ मित सलाह देते है कि उन्हे अग्रेजी पत्रो मे भी भेजा करूँ। मैं स्वय भी कभी-कभी इस बारे मे सोचता हूँ। परन्तु मेरे अधिकाश लेख एक प्रकार से हिन्दी भाषियो के और एक विशेष वर्ग के लोगो के उपयुक्त ही होते है। जहाँ तक आर्थिक विषय के लेखो का प्रश्न है उन्हे अग्रेजी पत्रो मे देने से शायद ज्यादा पाठको को पढने का मौका मिले—परन्तु वे सब मुझे दूसरे किसी व्यक्ति से अनुवाद कराके भेजने पडते हैं। उनमे कभी-कभी मेरे विचारो को पूरा प्रतिनिधित्व नही मिल पाता। इनमे से कई लेखो का गुजराती और मराठी पत्रो ने अनुवाद किया भी है।

मैंने यह भी अनुभव किया है कि उत्तर भारत मे हिन्दी समाचार-पत्रो के पाठक, अग्रेजी पत्रो से कही अधिक है। एक समाचार-पत्र को सारे दिन मे औसत ५-६ व्यक्ति पढ लेते है, जब कि अग्रेजी के पत्र खरीदते तो बहुत से लोग है, परन्तु उनमे से अधिकाश शेयरो और बोरे पाट के भाव को देखकर ही सतोष कर लेते है। उनमे से ज्यादातर को दूसरे समाचारो को समझने के लिए हिन्दी समाचार-पत्र पढना जरूरी हो जाता है। खेद तो इस बात का है कि हिन्दी के हिमायती, बाते तो ज्यादा करते है, परन्तु व्यवहार मे कम लाते है। आज भी बँगला और अन्य दक्षिणी भाषाओ के कई समाचार-पत्र डेढ-दो लाख बिकते है।

मुझे कई बार विदेशो मे जाने का मौका मिला है। जापान, हालैंड, स्वीडेन, फ्रास या इटली—कही भी यह देखने मे नही आया कि अपनी भाषा की जगह किसी दूसरे देश की भाषा का प्रयोग होता हो। न्यूयार्क की एक बहुत बडी पुस्तको की दुकान पे गया। भारत के बारे मे कुछ किताबे देखी। जब हिन्दी पुस्तको के बारे मे पूछा तो कहा गया कि हिन्दुस्तानी तो अग्रेजी पुस्तके ही खरीदते है, इसलिये हिन्दी की तो कोई किताब हमारे यहाँ नही है। मैने देखा कि उनके यहा दूसरी भाषाओ की बहुत सी पुस्तके थी।

लार्ड मैकाले ने भारत से अवकाश लेते समय अपने अग्रेज अफसरो को गुप्त हिदायत दी थी कि भारतीयो के दिल और दिमाग इस प्रकार के बना दो कि वे अपनी सस्कृति और भाषा को भूलकर ब्रिटेन की सस्कृति और भाषा ग्रहण कर ले। इससे हमारे उद्देश्य की पूर्ति अपने आप हो जायगी।

सयोग से हमे स्वतत्रता तो मिल गई। परन्तु बाइस वर्षो के लम्बे समय के बावजूद मैकाले के नुस्खे का प्रभाव अभी तक ज्यो का त्यो कायम है, शायद कुछ बढा ही है। आम जनता की तो बात ही क्या, भारतीय ससद मे भी तो अधिकाश सदस्य अधकचरी अग्रेजी बोलने मे ज्यादा शान समझते है जब कि वे अच्छी हिन्दी बोल सकते है। इसको इस हीन

भादना कह सकते है। वैसे सर्वश्री गगाशरण, प्रकाशवीर शास्त्री, अटलबिहारी वाजपेयी, मधुलिमये आदि चोटी के सदस्य सदा हिन्दी मे बोलते है और उनको सब भाषाओ के समाचार-पत्रो से बराबर सहयोग मिलता है।

भाषा के सिवाय खानपान और पहनावे मे भी इन वर्षो मे भी विदेशी प्रभाव बढा है। खास करके पजाबी और मारवाडी समाज मे। सुना जाता है कि इन दिनो कलकत्ते के पार्क स्ट्रीट के आसपास पच्चीसो रेस्तरां और नाइट-क्लब खुल गए है जहाँ एक बार के खाने-पीने के चार्ज लगते है ३५-४० रुपये। इनमे खाने के समय के नाच-गाने का चार्ज भी शामिल है। जानकार लोग कहते है कि इनके ग्राहको मे ७५ प्रतिशत से ज्यादा पजाबी और राजस्थानी युवक-युवतियाँ ही रहती है।

दिल्ली मे एक बगाली मन्त्री के पुत्र के विवाह मे गया था। वहाँ देखा कि जितने भी बगाली मेहमान थे, वे सब धोती कुर्ते और चादर मे थे। इनमे ५-७ तो सुप्रीम कोर्ट के जज या एडवोकेट थे, परन्तु वे घर जाकर पोशाक बदल कर आए थे। इस बार कलकत्ते के कई राजस्थानी-समाज के विवाहो मे जाने का मौका मिला। वहाँ देखा कि दो-चार व्यक्ति ही धोती कुर्ते वाले थे--बाकी सब कोट, पतलून और टाई मे थे। यही नही, आजकल तो मुर्दनी (श्मशान-यात्रा) मे भी कोट-पेंट और टाई लगाये हुए व्यक्ति दिखाई देते है।

सुविधा के लिए अगर कोट-पेंट पहने या अग्रेजी मे बात करे तो कोई एतराज की बात नही है, परन्तु भारतीय वेशभूषा या भाषा को मागलिक और सामाजिक कामो मे भी तिलाजलि दे दी जाय--यह कहाँ तक न्यायसगत होगा ?

अभी थोडे दिनो पहले की ही बात है--एक भारत प्रसिद्ध व्यक्ति के पास बैठा हुआ था। उनके सचिव ने एक साधारण से कागज पर हिन्दी मे लिखा हुआ एक नाम दिया। वे स्वय जाकर उनको लिवा लाये। चार-पाच दिनो की बढी हुई दाढी खादी की ऊँची धोती, हाथ से धोए हुए कुर्ता-टोपी मे एक वयोवृद्ध दुबले पतले से सज्जन थे। बहुत ही सक्षेप मे उन्होने गुजरात और राजस्थान के अकाल के बारे मे कुछ बाते की। ऐसा लगा कि कपडो की तरह वे बातचीत मे भी मितव्ययी है। नाम पूछने की जिज्ञासा स्वाभाविक ही थी। वे थे-- गुजरात के प्रसिद्ध सत रविशकर महाराज। वैसे उनकी जीवनी और भावप्रसग पढा हुआ था कि किस प्रकार उन्होने देश के उपेक्षित और अछूत जातियो के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया। बिहार के पिछले अकाल मे लाखो भूखो-नगो के लिए अन्न वस्त्र की व्यवस्था की--यह बात सर्वविदित है।

मै इस ठेठ देहाती व्यक्ति की, उन साहबी ठाठबाट वाले लोगो से तुलना कर रहा था, जो अपनी फर्राटेदार अग्रेजी के माध्यम से उनके निजी सचिव से मिलने का समय लेने की प्रार्थना कर रहे थे। उपर्युक्त घटना लिखने का उद्देश्य यह है कि मनुष्य मे अगर चारित्रिक बल हो तो उसे साधारण वेशभूषा मे भी सम्मान मिल सकता है। इसमे अग्रेजी भाषा या वेशभूषा का प्रयोग जरूरी नही है।

यमुनोत्तरी

सन् १९४५ मे माताजी एव पिताजी के साथ वदरी-केदार जा चुका था। उन दिनो यमुनोत्तरी-गगोत्तरी बहुत कम यात्री जाते थे। पहाडो की तली मे ऊवड-खाबड सँकरी-पथरीली पगडडियाँ, रास्ते में चट्टियाँ और दूकाने दूरदूर पर, साथी यात्री भी कम मिलते, इसलिए केवल साधु-सन्यासी या थोड़े से हिम्मती यात्री ही उत्तराखण्ड के चारो तीर्थों की यात्रा कर पाते।

सन् १९७१ के अगस्त मे समाचार-पत्रो मे पढा कि यू० पी० सरकार ने यमुनोत्तरी-गगोत्तरी के मार्ग को काफी दूर तक मोटरो के जाने लायक बना दिया है। आवास तथा खाने-पीने की सुव्यवस्था भी कर दी गई है।

उन दिनो मै कानपुर मे रहता था। मेरे कवि-मित्र श्री रामाश्रय दीक्षित और बालकृष्ण गर्ग ने सुझाव दिया कि हमे उत्तराखण्ड के चारो तीर्थों की यात्रा करनी चाहिए। मेरे पैरो मे तो चक्कर है ही, तुरन्त तैयार हो गया। दूसरे दिन ही एक नयी एम्वेसडर कारसे हम चार साथी इस तरह से इस दुर्गम और लम्बी यात्रा के लिये रवाना हो गए, जैसे किसी की बारात मे जा रहे है।

लोगो ने सलाह दी कि वर्षा के मौसम मे यह यात्रा नही करनी चाहिए, पहाड नीचे की तरफ खिसकते रहते है, रास्ते वद हो जाते है, ऊपर से गिरते हुए पत्थरो से भी चोट लगने का भी भय रहता है, परन्तु हम तो माँ गगा के पीहर अपने ननिहाल जा रहे थे, हमे डर किस बात का था।

उत्तराखण्ड-यात्रा की पुस्तके पढ कर थोडी-सी दवाइयाँ, मोमजामे, छाते, गरम कम्वल, रबड के जूते, खाने-पीने का सामान, एक स्टोव और दो लालटेन साथ मे लेकर चले।

रात मे बरेली ठहरे। दूसरे दिन शाम को हरद्वार पहुँचे। वहाँ जैपुरिया अतिथिगृह मे ठहर गए। गगा के किनारे यह एक अच्छा बडा मकान है, भोजन की सुव्यवस्था है।

शाम को हर की पेडी पर स्नान किया। रास्ते की सारी थकावट मिट गई और मन प्रसन्न हो गया। गगा के किनारे दूर तक पक्का प्लेटफार्म बना हुआ है। हजारो स्त्री-पुरुष टहल रहे थे, भजन गा रहे थे, कथा सुन रहे थे और चाट के खोमचो वालो के इर्द-गिर्द खडे हुए नाश्ता कर रहे थे। एक प्रकार से विराट मेला लगा हुआ था। स्नान करके हम गगा-किनारे एक बेच पर बैठ गए। २-३ लडके तेल की शीशियाँ लिए हुए घूम रहे थे। हमने सिर-चपी कराई। ये लोग सिर की मालिश मे इतने दक्ष होते है कि चाहे कैसा ही सिर-दर्द हो, आराम मिल जाता है।

दूसरे दिन सुबह नाश्ता करके ऋषिकेश के लिए रवाना हो गए। बाबा काली कमली वाले के कार्यालय मे गए। उनसे आगे के लिए परिचय पत्र लिए। यह सस्था उत्तराखण्ड-क्षेत्र की पिछले सत्तर वर्षो से अद्भुत सेवा करती आ रही है। प्राय सभी स्थानो मे इनके विश्रामगृह और अन्न क्षेत्र है। यात्रियो को आवास के सिवाय ओढने-बिछाने के कम्बल भी उधार देते है।

ऋषिकेश मे हमे सलाह मिली कि पहले यमुनोत्तरी जा कर, फिर गगोत्तरी जाना चाहिए। भगवान राम के दर्शनो के लिए सन्त तुलसीदास को भी पहले हनुमानजी की आराधना करनी पडी थी।

गर्मी के मौसम मे हरद्वार और ऋषिकेश मे दिन मे पत्थर तप जाते है। हम जल्दी से ऊपर चले जाना चाहते थे, इसलिए भोजन करने के थोडी देर बाद ही नरेन्द्रनगर और टेहरी के लिए रवाना हो गए।

दस मील चलकर चार हज़ार फीट की ऊँचाई पर स्थित नरेन्द्रनगर पहुँच गए। अच्छा सुन्दर छोटा-सा कस्बा है यह—पुराने टेहरी राज्य का प्रमुख स्थान। हम यहाँ नहीं ठहरे और ४१ मील आगे टेहरी के लिए रवाना हो गए।

टेहरी कस्बा पहाड की तराई मे है। हम फिर २२०० फीट नीचे उतर आए थे। हवा मे गर्मी थी-पुराने राजा की राजधानी तथा देहरादून-मसूरी से सीधे रास्ते पर होने के कारण टेहरी अच्छी बडी व्यापार की मडी है।

थोडी देर सुस्ता कर चाय पी और २६ मील आगे धरासू के लिए रवाना हो गए। धरासू गगोत्तरी-यमुनोत्तरी के रास्ते का जक्शन है, इसलिए यहाँ काफी चहल-पहल रहती है। भागीरथी के किनारे एक पुराना टूटा सा मन्दिर था, वहाँ ठहर गए। हम कानपुर से ही तय करके चले थे कि जहाँ तक सम्भव होगा, स्वय बनाकर सादा गर्म भोजन करेगे। इसलिए स्टोव जलाकर, चावल-दाल-आलू-प्याज-मटर सब मिलाकर पचमेल खिचडी बनाई और बहुत से घी का छौका दे दिया।

वैसे हम लोग सब खाने के शौकीन थे, परन्तु उस दिन की खिचडी मे जो स्वाद आया, वह तो अनुभव की ही चीज है। दरअसल स्वाद भूख मे है और भूख यथेष्ट श्रम से जागृत होती है।

धरासू की ऊँचाई लगभग चार हजार फीट है—मौसम साफ था, हम मन्दिर के पास के चबूतरे पर कम्बल बिछा कर सो गए।

दूसरे दिन सुबह उठकर तथा नित्य कर्म से छुट्टी पाकर ऊपर एक दूकान पर गरम-गरम आलू-प्याज की पकौडी और चाय का नाश्ता करके आगे के लिए रवाना हो गए। आज यात्रा तो केवल ५० मील की ही थी, परन्तु रास्ता काफी ऊँचा नीचा था। सडक भी पिछले दो वर्षो मे ही बनी थी, अभी काम पूरा नही हुआ था। कही-कही सुरग लगा कर रास्ता चौडा करने के लिए पहाड तोडे जारहे थे। हम धीरे-धीरे चल कर पाँच घण्टो मे ६००० फीट ऊँचाई के दडौटी गॉव मे जाकर ठहरे। मोटर रोड यही तक थी। अब आगे यहाँ से यमुनोत्तरी तक १२ मील पैदल जाना था। रास्ता भी कठिन चढाई का था, इसलिए उस दिन यही ठहरने का तय किया।

चार-पाँच वर्ष पहले यह शायद छोटी-सी चट्टी थी, परन्तु अब यमुनोत्तरी का मार्ग सुगम होजाने से यात्री बहुत आने लगे है, इसलिए नए-नए मकान और दूकाने बन गई हैं। हमने एक कमरा पाँच रुपए किराए मे ले लिया। बिस्तर खोल कर आराम करने लगे। भूख लग आई थी, परन्तु खाना कौन बनाए ? नाइयो की बारात मे सब ठाकुर। कानपुर मे किया हुआ व्रत तीसरे दिन ही टूट गया, हलवाई की दूकान से पूडी-मिठाई लेकर क्षुधा शान्त की।

रात मे पिछले दो दिनो की यात्रा की चर्चा होने लगी। हम ऋषिकेश से १२५ मील आगए थे। आज से तीस वर्ष पहले यात्रियो को इतनी यात्रा मे १०-१२ दिन लग जाते थे। रुपयो की और साधनो की कमी रहती थी, इसलिए अधिकाश सामान सिर पर ढोकर चलना पडता था। १०-१२ मील चल कर दोपहर मे और रात्रि मे रास्ते की किसी चट्टी पर ठहर जाते थे।

रात मे भजन-कीर्तन कथा-वार्ता होती। दूकानदार, भारवाही कुली, घोडे वाले, डाण्डी वाले और छोटे-छोटे मन्दिरो के पुजारी आदि वहुत से लोगो के परिवारो की परवरिश इस प्रकार होजाती थी। आज वे सव वेकार हो गए है। चट्टियो की दूकाने सूनी पडी हैं—अधिकाश टूट गई हैं। उस समय यात्री भी रास्ते के कष्टो को दुखदायी नही समझते थे, वे उन्हे एक प्रकार की कठिन तपस्या मान कर मन मे सन्तोष अनुभव करते थे। पर अब वे वाते समाप्त होगई हैं। अतिरिक्त समान वही रख कर, मोटर बन्द करके मकान-मालिक की निगरानी मे रख दी। दूसरे दिन सुवह उस १२ मील की कठिन पैदल-यात्रा पर हम सव रवाना हुए। मेरे पैरो मे दर्द था, इसलिए एक घोडा कर लिया। वाकी के सव लोग हाथ मे लाठियाँ लिए पैदल चले। दो भारवाही कुली और एक पण्डाजी—इस तरह हम सब ८ व्यक्ति यमुना मैया के पीहर को चले।

अव हम ७००० फीट की ऊँचाई पर चल रहे थे। खुमानी और चीड के वृक्ष पीछे छूट गए थे, फिर भी जमीन ओर पहाड़ हरे-भरे थे। ठढी मादक हवा जोरो से चल रही थी, एक तरफ ऊँचे पहाड थे, दूसरी तरफ वहुत निचाई मे यमुना तीव्र गति से दौडती-सी जा रही थी। राणा गाँव तक दो मील का रास्ता इतना विकट था कि जैसे १० मील चले हो। ४ घण्टो मे हनुमान चट्टी पहुँचे। शायद इसी तरह के रास्तो के लिए कहावत वनी थी कि 'नौ दिन चले अढाई कोस।'

हमे आज रात मे जानकी चट्टी मे ठहरना था, जो यहाँ से चार मील पर थी। हम वहाँ शाम को ही पहुँच कर दाल-फुलका वनाकर खापीकर आराम करना चाहते थे। पडाजी ने कहा—यह रास्ता पीछे वाले से भी कठिन है।

हल्का खाना खाकर दो वजे चले। शुरू के १ मील मे ही गर्गजी तो ची वोल गए, परन्तु वीच रास्ते मे डाडी और घोडे नही मिलते। साथ के यात्री दलो में कुछ वृद्ध स्त्री-पुरुष पैदल चल रहे थे। उन्हे देखकर किसी प्रकार हिम्मत करके वे भी आगे वढते रहे। दुर्योग से वूदा-वूदी शुरू हो गई। मोमजामे ओर छाते साथ मे थे, परन्तु हवा की ठढक और तेजी वढ गई।

आखिर ६ वजे शाम को हम जानकी चट्टी पहुँच गए। दूसरे यात्री-दल भी आगए थे; जगह की तगी थी, इसलिए सव परेशान थे। हमारे पास के काली कमली वाले के परिचय-पत्र ने वहुत मदद दी। हमे ऊपर के तल्ले पर एक कोठरी मिल गई।

जानकी चट्टी लगभग १०,००० फीट की ऊँचाई पर है, यहाँ से वर्फानी चोटियाँ दिखाई देती है। मैने साथियो को वाहर चल कर प्राकृतिक सौंदर्य ओर ईश्वर की अद्भुत रचना का साक्षात करने को कहा, परन्तु वे सब तो गरम पानी मे नमक डाल कर पैरो को सेक रहे थे। पिछले दिन की काव्य और साहित्य-चर्चा भूलकर सब आँखें वन्द किए वैठे थे।

वर्षा के कारण रात काफी ठढी हो गई थी। परन्तु हम लोग थके हुए थे, लेटते ही गहरी नीद मे सो गए।

दूसरे दिन सुबह साथ के यात्रियो का यमुना मैया का 'जयघोष' और भैरवी राग के भजन सुनकर जागे, देखा वर्षा थम गई थी, आकाश साफ था।

आज हमे यमुनोत्तरी की चढाई करनी थी—अगले ४ मील मे १००० फीट की ऊँचाई

चढनी थी। सूर्योदय होते ही रवाना होगए। शीतल मन्द समीरण बह रहा था। वन-प्रान्तर मे नाना प्रकार के वृक्ष और लताए थी। हम उल्लास-भरे मन से आगे बढते जा रहे थे। हमे जयदेव कवि का यह भजन याद आगया—"धीर समीरे यमुना-तीरे वसति वने वनमाली।"

मार्ग कही पथरीला, कही रेतीला था। १० बज गया था। वापस लौटने वाले यात्री मार्ग मे मिलने लगे। दोनो तरफ से 'जय जमुना मैया" का घोष होता। सात्वना मिलती कि आगे का रास्ता अच्छा है, परन्तु यह तो हम शुरू से ही सुनते आ रहे थे, इसलिए जानते थे कि यह केवल धीरज बँधाने की बात है।

आज दीक्षितजी और गर्गजी—दोनो घोडो पर थे, इसलिए फिर उन्हे काव्य-चर्चा याद आगई। पहाडो की कही-कही पीली और सफेद चमकती हुई मिट्टी को देख कर सभीने वहाँ सोना और चाँदी होने की सम्भवना प्रकट की।

इस प्रकार लगभग १२ बजे हम उस पतित-पावनी पवित्र यमुनोत्तरी की घाटी मे पहुँच गए। जिसके बारे मे बचपन से ही सुनते आरहे थे। हमारी नानीजी के अन्तिम समय तक यह पछतावा रहा कि वह यमुनोत्तरी-गगोत्तरी के दर्शन नही कर सकी।

सामने ही २०७०० फीट ऊँचा (पूछ बन्दर) हिमशिखर है। कहते है हनुमानजी लका-विजय के उपरान्त अयोध्या-आगमन और राजतिलक के बाद भगवान राम से आज्ञा लेकर इसी चोटी पर रहने लगे थे। इसी वन्दरपूछ के एक भाग कालन्दगिरि से यमुना निकली है, इसलिए इसका एक नाम कालिन्दी भी है।

गगोत्तरी से १२ मील ऊपर गोपुर तक तो बहुत यात्री जाते है, परन्तु कालिन्दी गिरि पर अभी तक किसीके जाने की बात नही सुनी गई।

यमुनोत्तरी आकर श्रद्धालु यात्री सचमुच ही आत्मविभोर हो जाते है। सूर्य की पुत्री और यम की बहन का साक्षात्कार करके सब अपने जीवन को धन्य मानते है। अधिकाश यात्री मई-जून मे आते है, इसलिए अब भीड ज्यादा नही थी। हमे बाबा काली कमली वाले की धर्मशाला मे पर्याप्त स्थान मिल गया।

पूछने पर पता चला कि केवल ४ मील पर ही यमुना-मुख है। आज से पचास वर्ष पहले स्वामी रामतीर्थ वहाँ जा भी चुके थे, जब न तो बर्फ काटने के औजार थे—न रस्सी की सीढियाँ ही। सोचा, हम भी क्यो न वहाँ जाने का प्रयत्न करे। परन्तु किसी ने भी हिम्मत नही की, सब निराशा की बात करने लगे। कहने लगे—'स्वामी राम की बात और थी—वे तो यमुनोत्तरी से सीधे गगोत्तरी भी चले गए थे, जबकि आज तक के सुदक्ष पर्वतारोहियो की भी हिम्मत नही हुई।

एक लकडी के हिलते हुए पुल को पार करके हम उस पार पहुँचे। वहाँ यमुनाजी का छोटा-सा मन्दिर और तीन तप्त कुण्ड है। शुरू मे तो पानी बहुत गर्म लगता है, परन्तु एक बार भीतर बढने पर बाहर निकलने का मन नही करता। पिछले दिनो की सारी थकावट यहाँ आकर मिट गई।

शाम के भोजन के लिए एक पोटली मे चावल आलू बाँध कर कुण्ड मे डुबो दिए। कुण्ड के पानी का तापमान १९७ डिग्री है, जबकि बाहर का रहता है—२० से ५५ तक। आस्ट्रिया और जर्मनी इस प्रकार के गर्म कुण्डो के स्नान के लाभ का प्रचार करके अरबो रुपये वर्ष मे विदेशी यात्रियो से कमा लेते है।

रात्रि मे मैया की आरती करके कुण्ड के गर्म जल मे पकी हुई चावल-दाल की सुस्वादु खिचड़ी खाकर हम साथी यात्रियो के साथ भजन-कीर्तन मे बैठ गए।

सयोग से एक महात्मा वही ठहरे हुए थे। वे कई वर्षो से हिमालय के विभिन्न हिस्सो मे घूमते रहे है। उन्होने बताया कि जिस छाया-पथ से स्वामी रामतीर्थ यमुनोत्तरी से गगोत्तरी

गए थे, उसकी दूरी केवल २०-२२ मील है, जबकि आम चालू रास्ता १०० मील है ।

बहुत प्रयत्न करने के बाद भी महात्माजी उस रास्ते से नही जासके । उनका कहना था कि जितना दूर तक गए और उनकी दृष्टि गई उन्हे ऐसा लगा कि स्वर्ग और मृत्यु का नियन्त्रण करने वाले देवाधिदेव का सिहासन यही है ।

दूसरे दिन सुबह उठे तब मन प्रफुल्लित और प्रसन्न था । रात्रि मे अच्छे सपने आए थे । माता के मन्दिर मे जाकर चीर चढाया और पूजन किया । ऊपर की गुफा मे एक महात्मा रहते है, उनके दर्शन करने गए । कहते है—पिछले २० वर्षो से वे सर्दी-गर्मी मे बारहो महीने यहीं रहते आरहे है । शीतकाल मे, जब बर्फ जम जाती है, एक कुदाली से बर्फ काट करके केवल नित्य कर्म करने के हेतु थोडी देर के लिए ही वे बाहर निकलते है, फिर दिन-रात गुफा मे ही रहते है—भक्त लोग उनके लिए ६ महीनो का आवश्यक सामान जमा करके रख देते है ।

वे मौन थे, इसलिए बात न होसकी । हम उनकी चरण-धूलि लेकर वापस चले आए । वैसे तीन रात्रि तीर्थ-स्थान मे रहने का माहात्म्य है, परन्तु हमे तो जैसे माँ गगा बुला रही थी, इसलिए परमेश्वर की उस पुण्य-भूमि को और नैसर्गिक शोभा से परिवृत अदृश्य शक्ति को शत-शत प्रणाम करके वहा से वापस रवाना हो गए ।

गंगोत्तरी

विश्व की बड़ी नदियो से गगा का ३९वाँ स्थान है। अफ्रीका की नील, दक्षिण अमरीका की अमेजन और उत्तर अमरीका की मीसीसीपी—हमारी गगा से दुगुनी से भी ज़्यादा बडी है। हमारे यहाँ की ब्रह्मपुत्र और सिन्ध भी गगा से २५० मील ज्यादा लम्बी है, परन्तु जो महत्ता गगा की है, वह उन दोनो की नही। वैसे भी ब्रह्मपुत्र का अधिकाश हिस्सा तिब्बत मे और सिन्धु का पाकिस्तान मे रह जाता है, जबकि गंगा पूर्ण रूप से भारत भूमि को शस्यश्यामला और सुजला बनाती है। गगा हमारे लिए केवल नदी नही है—बल्कि हमारी जीवनदात्री, अन्नदात्री और मातृस्वरूपा है।

गोमुख और गगोत्तरी से जल लेकर लोग २५०० मील की यात्रा करके सुदूर दक्षिण के रामेश्वर और कन्याकुमारी की मूर्तियो को उस पवित्र जल से स्नान कराके अपने जीवन को धन्य मानते है।

गगा और सिन्धु का इतिहास आर्य-सभ्यता से भी पुराना है। यह कहने मे अत्युक्ति नही होगी कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता इन्हीं दोनो के किनारे पर पनपी और फली-फूली है।

गगा-पूजन से मन को शान्ति मिलती है, पवित्र भावो की जागृति और शुभ कर्मो की प्रेरणा मिलती है।

अगर आप गंगा नदी मे गोता लगाते है, तो वह काशी, नवद्वीप और गगासागर के समग्र जल मे लगाने के बराबर हुआ, क्योकि १५०० मील की लगातार धारा तो अविभाज्य और अटूट है। भला इससे ज्यादा राष्ट्रीय एकता का प्रमाण और क्या होगा ?

श्रीमद्भगवद्गीता पर जगद्गुरु शकराचार्य, सन्त ज्ञानेश्वर, लोकमान्य तिलक, महर्षि अरविन्द, विनोबा भावे और महात्मा गान्धी जैसे सन्तों और विद्वानो ने अपने-अपने ढग से टीकाएँ प्रस्तुत कर श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। साधारण पाठको के लिए सैकडो अन्य लोगो ने भी सरल शब्दों मे इस महान ग्रन्थ को सुलभ बनाने का प्रयास किया है।

एक बडे यज्ञ मे वेदपाठी विद्वानो के साथ-साथ स्वाहा का शब्दोच्चार करके साधारण भक्त भी आहुति देते रहते है।

इसी उदाहरण से उत्साहित होकर अपने स्वल्प ज्ञान को जानते हुए भी यमुनोत्तरी-गगोत्तरी पर लिखने का मुझे उत्साह मिला है।

यमुनोत्तरी की यात्रा करके हम चारो साथी दडोटी चट्टी तक १२ मील घोडों पर वापस आए। जाते समय जहाँ दो दिन लगे, वहाँ वापस आती बार केवल ४ घण्टे में ही पहुँच गए।

पण्डाजी को विदा दी; घोडे वालो, भारवाही मजदूरो और मोदी का हिसाब चुकता किया। कुछ ऊपर से बख्शिश भी दी। वर्ष मे उन्हे केवल चार महीने काम मिलता है, खेती की जमीन है नही, अत्यन्त गरीबी है ओर अभाव मे जीवन व्यतीत करते हैं।

शायद कुबेर की अलकापुरी इसी अञ्चल मे थी।हो सकताहे इनके पूर्वज गधर्व, यक्ष या किन्नर जाति के रहे हो, परन्तु अब उनके ये बेटे, पोते लोगो को कन्धो पर वेठा कर, उनका बोझा ढोकर अथवा वह भी नही मिलने पर ढोर चरा कर या रस्सी बँट कर किसी तरह आधे भूखे, नगे रह कर परिवार का भरण-पोषण करते हैं।

हम लोग ऋषिकेश से ही खाने का यथेप्ट सामान लेकर चले थे; परन्तु अभी तक उसका खास उपयोग नही होपाया था। ऊँची चढाई और लगातार यात्रा से थकावट आजाती है, इसलिए दूकानदारो के यहा से दाल-फुल्का या पूडी-मिठाई लेकर खाते थे। आज भगवान् कृष्णप्रिया यमुना से साक्षात् करके आरहे थे। मन प्रसन्न था, सब मिल कर रसोई की व्यवस्था करने लगे।

खा-पीकर मोटर मे सामान लाद कर दडोटी को दण्डवत करके हम ३ बजे चले। हमे रात्रि मे उत्तरकाशी जाकर ठहरना था। यहाँ से धरासू ६० मील पर है। रास्ता उतार का था, परन्तु पहाडी रास्तो पर, चाहे वे चढाव के हो या उतार के, हमेशा मोटर धीरे-धीरे सावधानी से चलानी पडती है। मुझे इसका कटु अनुभव अपनी काश्मीर-यात्रा मे हो चुका था।

हम उत्तरकाशी पहुँचे, तव सध्या बीत चुकी थी। मन्दिरो मे आरती होरही थी और घण्टो की आवाज आरही थी। रात्रि मे बिडला धर्मशाला मे ठहरे, साफ-सुथरे ओर हवादार कमरे है, वहा विजली-पानी तथा फ्लश की टट्टियाँ।

कहते है आर्य इसी रास्ते से विजय करते हुए मैदान की ओर बढे थे। किरातार्जुन-युद्ध भी यही हुआ था। ऐसी भी मान्यता हे कि कलियुग मे जब काशी लोप हो जाएगी, तब यही काशी रहेगी। काशी की तरह यहाँ भी अस्सी, वरुणा, दशाश्वमेध ओर मणिकर्णिका घाट है।

शायद ३०-३५ वर्षो पहले यह साधु सन्तो ओर योगियो की भूमि थी। आज भी उनके आश्रम इसके आसपास के वन-प्रान्तर मे है। कुछ योगी महात्मा इस समय भी विद्यमान हे। परन्तु अब तो यह एक बडा कस्बा होगया है।

उत्तराखण्ड के तीनो धाम तथा टेहरी का केन्द्र-स्थल होने के कारण यहाँ मोटरो, बसो और ट्रको की रात-दिन चिल्ल-पो रहती है। बाजार मे सैकडो दूकानें हे। लोग दोनो तरफ से कठिन यात्रा करके आते है—इसलिए चटपटी चीजे खाने की तीव्र इच्छा रहती हे। देखा बीसियो दूकाने चाट ओर मिठाई की है, जिनके अधिकाश ग्राहक तीर्थयात्री है।

सुबह भागीरथी मे स्नान किया, वर्षा का मौसम था, नदी पूरे उफान पर थी, पानी भी मिट्टी भरा था। जो आनन्द हरद्वार या देवप्रयाग के सगम मे आया, वह यहाँ नही था। स्नान करके विश्वनाथ के मदिर मे दर्शन करने गए, यही एक पण्डाजी साथ हो गए। इसी प्रागण मे शक्ति का प्राचीन मदिर है। उसमे एक २६ फीट लम्बा बहुत मोटा त्रिशूल है। कहते हैं, यह देवासुर सग्राम के समय का है। उस पर जो लेख है, वह राहुलजी के मतानुसार आज से एक हजार वर्ष पहले राजा गुह की विजय यात्रा के बारे मे है। जो भी हो, हमने आज तक इतना बडा त्रिशूल तो क्या, तोप भी नही देखी।

इसी प्रागण मे एक बुद्धमूर्ति भी है। सभव है किसी समय यहाँ बौद्ध धर्म का प्रभाव रहा हो। उत्तरकाशी की ऊँचाई ३८०० फीट है। यह घाटी मे है, चारो तरफ उच्च गिरि-शिखर हैं। चीड ओर देवदार के वृक्षो से सुगन्धित ठडी हवा आती रहती है। पहाडो के ऊपर से गिरते हुए जल-प्रपात हरे-भरे खेत और नाना प्रकार के पुष्प यात्रियो के मन मे शान्ति उत्पन्न करते हैं।

भोजन करके हम एक बजे मोटर से चले। दृश्य इतने सुहावने थे कि पैदल चलने का मन होता था।

रास्ते की कई चट्टियो से गुजरते हुए हम २७ मील पर गगनानी चट्टी पर ठहरे। ६२०० फीट की ऊँचाई पर पहाडो से घिरा हुआ यह अच्छा सुन्दर स्थान है। यहाँ गर्म पानी के तीन कुड है, पास मे ही एक ठण्डे पानी का झरना है। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार गर्म पानी मे स्नान करके तुरन्त ठडे पानी मे स्नान करने से बहुत-सी बीमारियाँ मिट जाती हैं। हमने गर्म पानी के झरने मे तो खूब देर तक स्नान किया, परन्तु बर्फ के समान शीतल जल मे स्नान करने की हिम्मत नही हुई।

यही हमने सुना कि गगा पार करते समय पाराशर मुनि ने मल्लाह की सुन्दरी पुत्री मत्स्य-गंधा से सम्भोग किया था, जिससे वेदव्यास जी पैदा हुए। परन्तु यही कथा कालपी की यमुना जी के लिए प्रसिद्ध है—पता नही कौन-सी बात सही है।

गर्म पानी मे स्नान करने के बाद मन और तन मे स्फूर्ति आ गई थी। यहाँ से १४ मील पर ही ८४०० फीट की ऊँचाई का इस क्षेत्र का प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान हरसिल है। आज से ११५ वर्ष पहले, जब न तो सडके थीं और न आवागमन के साधन ही, विलसन नाम का एक अग्रेज यात्री किसी तरह यहाँ आ पहुँचा। स्थान की रमणीयता देखकर वह मुग्ध हो गया और घर परिवार को भूलकर यही रहने लगा। हमने उसके उस समय के बनाए हुए बँगले मे कुछ देर ठहर कर चाय-नाश्ता किया।

इस स्थान के बारे मे एक प्रसिद्ध पौराणिक कथा है। जलधर दैत्य की पत्नी वृन्दा अद्भुत सुन्दरी और पतिव्रता थी। दैत्यो का बल कम करने के लिए उसका पातिव्रत धर्म नष्ट करना जरूरी था, यह काम सौपा गया विष्णु को। उन्होने जलधर का रूप धारण करके उसका शील भग किया। जब छल का पता चला तो सती ने शाप दिया कि तुम शिला हो जाओ; वह शिला आज भी वहा पर है। इसलिए इस स्थान का नाम "हरिशिला" या "हरसिल" हो गया।

यहाँ से ६ मील की दूरी पर जागला नाम का प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ भगीरथ ने तप किया था। कहते है—यहाँ तक गंगा जी उनके पीछे-पीछे चली आई, परन्तु यहाँ आकर वेग इतना प्रबल हो गया कि यहाँ जो जह्नु ऋषि का आश्रम था, उसको वह बहा ले गई। ऋषि ने क्रुद्ध होकर भागीरथी (गगाजी) का आचमन कर लिया। भगीरथ की कडी तपस्या के बाद प्रसन्न होकर उन्होने अपनी जाघ चीरकर फिर गगा को पृथ्वी पर जाने दिया। इसीलिए भागीरथी (गंगाजी) का एक नाम 'जाह्नवी' भी है।

घनघोर परिश्रम करके पत्थरो एव पहाडो को तोडकर जह्नु ऋषि के सहयोग से उसे आगे बढाया। जो भी हो, यह स्थान अत्यन्त भयावह है। नीचे गहरी घाटी मे जोर से दौडती हुई जाह्नवी को देखकर मन मे सिहरन सी हो जाती है।

मोटर का रास्ता यही तक बना है। आगे ढाई मील भैरो घाटी तक पैदल जाना पडता है। यह चढाई दमतोड है। परन्तु यात्री सोचता है—सामने ही तो माँ गगा का उद्गम है, वहाँ पहुँचकर ही विश्राम लेगे। भैरो घाटी से फिर साढे छ. मील तक मोटर बसे जाती हैं।

हम जिस समय गगात्तरी पहुंचे, शाम हो गई थी। सामने के ऊँचे पहाड से शक्ति-रूपणी जगन्माता गगा बडे वेग से नीचे उतर रही थी। जैसे मा को अपने भूखे बच्चे को दूध पिलाने की जल्दी हो—चारो तरफ पवित्र जल के कण बिखर रहे थे। ऐसा लगता था कि भगवान शकर अपनी जटाओ को हिलाकर मोतियो की बौछार कर रहे है।

स्वामी रामतीर्थ यमुनोत्तरी के छाया-पथ से यहाँ आये थे। उन्होने जो वर्णन किया है उसको सक्षेप मे यहाँ देता हूं—

"यहाँ, दुग्ध धवल कातियुक्ति शिखरो से देवदार वृक्षो का चिर साहचर्य हे, उनका वर्णन राम किन शब्दो मे करेगा । यहा परमात्मा पर्वत रूप मेंनिद्रास्थ हे, और वृक्ष रूप मे श्वास ले रहा है । छाया-पथ के दोनो ओर की रगबिरगी पुष्प लताएँ पर्वतो पर कलापूर्ण शाल ओढाती है । जब-जब दृष्टि जाती है, ऐसा लगता है स्वर्ग-मृत्यु का नियन्त्रण करने वाले देवाधिदेव का सिहासन यही है ।"

हम लोग बाबा काली कमली वाले की धर्मशाला मे ठहर गए । उनके पास पहले से सूचना आ गई थी—कमरे को अँगीठी जलाकर गर्म कर रखा गया था । भोजन की व्यवस्था भी उन्होने कर रखी थी ।

गगा मैया की आरती का समय हो गया, दूसरे यात्रियो के साथ हम भी हाथ जोडकर खडे हो गए । शरीर मे एक प्रकार का हर्षोद्वेग-सा हो आया था । आज दो वर्ष बाद भी जब याद करता हूँ तो ऐसा लगता है—जैसे कल की सी बात है । मैने शेक्सपीयर के किसी नाटक मे पढा था कि जगह के वातावरण से मनुष्य के मन मे अच्छे बुरे का असर होजाता हे । यहा आकर उसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिला ।

मुझे योगी अरविन्द की गगोत्तरी के बारे मे कही हुई यह कविता याद आ गई —

> नीरवता जो परम पुरुष की केवल वाणी—
> अविज्ञात, आरम्भ शब्द से हीन अन्तमय ।
> क्षण मे दिखी-सुनी सारी वस्तुएँ मिटाती,
> एक सकल वर्णन अतीत चोटी पर राजित ।

प्रसाद लेकर ऊपर कमरे मे आए, भोजन किया । ऊँचाई तो १०४०० फीट ही थी, परन्तु हिमालय के भीतरी हिस्से मे होने के कारण सर्दी बहुत थी । कुछ कम्बल क्षेत्र से ले लिए । गहरी नीद मे सो गए ।

दूसरे दिन सुबह फिर आरती मे गए, परन्तु जो आनन्द और अनुभूति रात मे हुई वह दिन मे नही हुई ।

कुछ लोग गोमुख जाने की तैयारी कर रहे थे । यहाँ से १२ मील पर १२७५० फीट की ऊँचाई पर वह हे । वहाँ से गगाजी एक छोटे से नाले के रूप मे निकली है । कहते है रास्ता बहुत ही दुर्गम, परन्तु सुन्दर है । मेरा मन तो बहुत था, परन्तु घोडे जा नही सकते थे, पैदल चलने की हिम्मत नही थी ।

गगोत्तरी मे भी एक महात्मा रहते है—उनके दर्शन करने गए । वे हिन्दी बोलते थे—कहने लगे—माँ गगा से इस बात की शिक्षा लेकर जाओ कि बिना फल की इच्छा के दूसरो की भलाई करते रहो इसी मे जीवन की सार्थकता है ।" हम थोडी देर बैठे, उन्होने मिश्री का प्रसाद दिया—प्रणाम करके हम चले आए ।

चाय-नाश्ता करके माँ गगा के पीहर—अपने ननिहाल—से एक प्रकार से भारी मन से ही विदा हुए । मनुष्य-जीवन मे ऐसे क्षण बहुत कम आ पाते है, परन्तु इसकी सुखद याद जीवन पर्यन्त बनी रहती है ।

बदरीनाथ

राजस्थान मे कहावत है "गया बदरी काया सुधरी" और सैकडो वर्ष पहले से ही काया सुधारने के लिए सचमुच ही जवान और वृद्ध स्त्री-पुरुष अल्प सम्बल के साथ परमेश्वर का भरोसा करके इस दुरूह यात्रा पर निकल पडते। साथ मे रहता था लोटा, डोरी, थोडे से कपडे, दो कम्बल, कुछ दवाइयाँ और एक लाठी। एक दरी मे सब सामान बाँधकर कधे पर या सिर पर रखकर गाव पडोस के लोगो से विदा लेकर भगवान बदरीनाथ-केदारनाथ के दर्शन करने पैदल यात्रा पर चल देते थे। उस समय न तो रेल थी, न मोटर और न अच्छी सड़कें ही।

लोग उन्हे गाँव के गोरवे तक पहुँचाने आते, श्रद्धा से पाँव छूकर प्रणाम करते। वापस आने की सभावना कम रहती, इसलिए वातावरण मे उदासी छा जाती। तीन धाम (रामेश्वर, द्वारका, पुरी) तो बहुत से लोग कर आते, परन्तु चौथा धाम सौ मे एक-दो व्यक्ति ही कर पाता। मुझे याद है बदरी-केदार की यात्रा के लिए वैशाख मे जाकर जब श्रावण-भादों मे यात्री वापस लौटते तब पहले से ही गाँव मे चर्चा फैल जाती। उन्हे लेने पचासों आदमी सामने जाते, छोटे पैर छूते, बडे आलिगन करते। 'जय बदरी विशाल' के घोष से आसमान गूँज उठता।

दो-चार दिन मुस्ताने के बाद भगवान का प्रसाद होता (हलुवा पूडी या लड्डू जलेबी) नाते-रिश्तेदारो को और गाँव के लोगो को सामर्थ्य के अनुसार भोजन कराते और साथ में लाई हुई बदरीनाथ की छोटी-छोटी तस्वीरे और खील-मखानो का प्रसाद देते।

मेरे दादाजी परम वैष्णव थे, तीनो धाम की यात्रा कर आए थे, परन्तु बदरीनाथ नहीं जा पाए। दादीजी हमेशा उदास मन से इस बात का जिक्र करती। मै दो बार बदरीनाथ हो आया हूँ—१९४५ मे और १९७३ मे। यहाँ दूसरी यात्रा का वर्णन लिखूँगा, कारण पिछले तीस वर्षो मे बहुत से परिवर्तन हो गए हैं।

हाँ तो अगस्त १९७३ मे अकस्मात "फूलो की घाटी" जाने का प्रोग्राम बना लिया। सोचा कि पाण्डुकेश्वर से १४ मील ही तो बदरीनाथ है, क्यो नही वहाँ फिर एक बार हो आऊँ। साथी कोई था नही, परन्तु सोचा जब सुदूर उत्तरी ध्रुवाचल मे अर्द्धरात्रि का सूर्य अकेला देख आया, जहाँ न तो कोई मेरी भाषा समझता था, न किसी से मेरी जान-पहचान ही थी, चारो तरफ बर्फ, कुछ लैप, स्त्री-पुरुष और भोकते हुए रेण्डियर कुत्ते मात्र थें, तब भला यह तो अपने स्वदेश का बडा तीर्थ है सैकड़ो स्वजन बन्धु मिल जाएँगे।

दिल्ली से ट्रेन मे चलकर दूसरे दिन सुबह हरिद्वार पहुँचा। पिछले वर्ष भी आया था, परन्तु उस समय गगोत्तरी जाने की जल्दी थी, इसलिए ठहरा नही। इस बार दो-तीन दिन ठहर कर इस पवित्र और प्राचीन स्थान को अच्छी तरह देखना चाहता था। पडाजी को बुलाया, वे बहुत सी पुरानी बहियाँ लेकर आये। सन् १८९५ की मेरे दादाजी की सँही देखी,

वे अपने पिताजी की अस्थियाँ लेकर आए थे। मेरा जन्म तो इसके १५ वर्ष बाद हुआ। मुझे बचपन के दिन याद आगए। वे हम दोनो भाइयो को गोद मे बैठा कर रामायण-महाभारत की कहानियाँ सुनाया करते थे। भीम ने वडे वृक्ष को हिलाकर ऊपर चढे हुए कौरवो को गिरा दिया—इसे सुन कर हम बहुत खुश होते थे।

हरद्वार का पुराना नाम गगाद्वार और मायापुरी भी था, देश की सात पुरियों मे इसकी गणना है। कहा जाता है कि समुद्रमथन के बाद, जब इन्द्रपुत्र जयन्त अमृत कलश लेकर जा रहा था, कुछ देर के लिए वह यहाँ ठहरा था, फलत अमृत की कुछ बूँदे इस स्थान पर गिर गई थीं। यहाँ इतनी चहल-पहल और इतने दर्शनीय स्थान है कि अकेले व्यक्ति का भी मन लग जाता है। तीसरे दिन सुबह बस से ऋषिकेश चला आया। यहाँ के बाबा काली कमली वाले के क्षेत्र से मै परिचित था, वही ठहरा। यद्यपि वहाँ बहुत से होटल-रेस्तरा है, परन्तु मैने क्षेत्र के भंडारे मे ही भोजन किया। रोज सैकडो व्यक्तियो का भोजन वहाँ बनता है और साधु-महात्माओ को प्रसाद मिलता है, कभी कदाच धनी यात्री खीर-पूडी या लड्डू-जलेबी का भडारा भी करा देते है।

लक्ष्मणझूला होकर उस पार गगा किनारे के गीता-भवन गया। यह सस्था गोविन्द भवन, गोरखपुर द्वारा सचालित है। तीन बडे-बडे भवन है, ३५० कमरे। श्रद्धालु यात्री ओर सत्सग के लिए आए हुए लोगो की यथेष्ट उपस्थिति रहती है, विद्वान सत-महात्माओ के प्रवचन होते रहते है। पास मे ही स्वामी शुकदेवानन्दजी द्वारा स्थापित 'परमार्थ निकेतन' नाम की इससे भी वडी सस्था है, जिसमे ५०० कमरे है। यहाँ भी कीर्तन, भजन, पूजा-पाठ होते रहते है। इस भवन मे कई एक मन्दिर और स्थायी झाँकियाँ है।

इन दोनो सस्थाओ के सिवाय दर्जनो सस्थाए यहाँ है, जिनमे स्वामी शिवानन्द की 'दिव्य जीवन सोसाइटी' और महेश महर्षि योगी के 'यौगिक आश्रम' मे भारतीयो के सिवाय विदेशी साधक भी योग-विद्या सीखने जाते है। ऋषिकेश मे आकर देवात्मा हिमालय के दर्शन होने लगते है, परन्तु उसका विराट रूप तो आगे जाकर ही मिलता है।

यहाँ से ४४ मील पर देवप्रयाग है। यहाँ भागीरथी और अलकनन्दा का सगम है। दोनो नदियो का इतने जोर का वेग है कि लोहे की साकल पकड कर स्नान करना पडता है।

यह मन्दिरों और पडो का शहर है। कहते है रावण को मारने से भगवान राम को ब्रह्महत्या का पाप लगा था, उसे दूर करने के लिए उन्होने यहाँ तपस्या की थी। परन्तु इस प्रकार की बाते हर एक तीर्थ के साथ जुडी हुई है, पता नही उनमे कितनी सत्य है।

देवप्रयाग से दूसरी बस से चल कर २४ मील की दूरी पर ६ वजे श्रीनगर पहुँचा। श्रीनगर गढवाल क्षेत्र का वडा और प्राचीन शहर है, इसी के पास मे टेहरी नरेश कीर्तिशाह ने कीर्तिनगर नाम का शहर बसाया है।

श्रीनगर के पहले भीलेश्वर महादेव का मन्दिर है। यहाँ भील रूपधारी शिव के साथ अर्जुन के युद्ध हुआ था, प्रसन्न होकर भगवान शिव ने अर्जुन को पाशुपत अस्त्र दिया था।

हरिद्वार से ८० मील आ गया हूँ। यद्यपि ऊँचाई तो केवल १७०० फीट है, परन्तु ऊँचे पहाडो से घिरा हुआ यह सुन्दर स्थान है। यही महर्षि नारद राजा शीलनिधि की रूप-लावण्यमयी पुत्री पर मोहित होगए थे। भगवान विष्णु ने उन्हे बन्दर का रूप बना कर भेज दिया। सुन्दरी तो नही मिली, वेइज्जती और जग-हँसाई जरूर हुई।

वैसे बिना ठहरे, दूसरे दिन ही बदरीनाथ पहुँच सकते है, परन्तु मैं रास्ते के मुख्य तीर्थो को देखते हुए जाना चाहता था, इसलिए रात मे बाबा काली कमली वाले के अतिथिगृह मे ठहर गया।

दूसरे दिन सुबह की बस से २१ मील चल कर रुद्रप्रयाग पहुँचा। यह बदरी-केदार का केन्द्र-स्थल है। यहाँ अलकनन्दा और मन्दाकिनी का सगम है।

काली कमली के सिवाय सरकारी यात्री-निवास भी यहाँ है। श्रीनगर मे प्रेम-व्यापार मे असफल होने से नारद जी का मन खराब होगया और वे यहाँ आकर शिवजी की आराधना करने लगे। भगवान शिव ने प्रसन्न होकर उनको संगीत-विद्या की शिक्षा दी।

रुद्रप्रयाग मे बस केदारनाथ से आने वाले यात्रियो के लिए एक घण्टा ठहरती है। मैं उसी बस से २० मील आगे कर्णप्रयाग चला आया। यहाँ पिंडारक नदी अलकनन्दा से मिलती है। अलकनन्दा का पानी गदला सफेद है, जबकि पिंडारक का हरित और साफ। नजदीक के पिंडारी ग्लेशियर से यह नदी निकलती है। सुना गया है कि कुछ साहसिक भारतीय पर्वतारोही इस ग्लेशियर तक पहुँच गए थे। स्कन्दपुराण के अनुसार, यही राजा कर्ण ने अपने पिता सूर्य का तप और यज्ञ किया था। सूर्य ने प्रसन्न होकर उसे अभेद्य कवच, अक्षय तूणीर और अजेयत्व दिया।

१३ मील पर इस अंचल का प्रसिद्ध रमणीक स्थान नन्दप्रयाग है। यहाँ नन्दा नदी आकर अलकनन्दा में मिली है। यही पर कण्व ऋषि का आश्रम था, जहाँ कुमारी शकुन्तला से राजा दुष्यन्त ने गधर्व विवाह किया था। आज भी यहाँ के हरित वन-प्रान्तर मे नाना प्रकार के सुन्दर पशु-पक्षी दिखाई देते है।

मुझे एशिया, अफ्रीका, यूरोप और अमेरिका के विभिन्न स्थानो को देखने का मौका मिला है। मेरी राय मे गगोत्तरी के रास्ते के हरसिल और बदरीनाथ के नन्दप्रयाग के समान न तो स्वीट्जरलैण्ड का इण्टरलाकेनहै, न जापान का निक्को।

अगर इन स्थानो में अच्छे होटल-मोटल बना दिये जायँ और विदेशो मे पूरे तौर पर प्रचार किया जाय, तो देश की यात्रिक आय मे यथेष्ट वृद्धि हो सकती है।'

नन्दप्रयाग मे कुछ देर ठहरा, इच्छा बहुत थी, परन्तु इस बार की यात्रा पर अकेला आया था, इसलिए मन अस्थिर रहा। मेरा सुझाव है कि दुरूह और लम्बी यात्राओं पर २-४ मित्रो के साथ जाना चाहिए।

यहाँ से आगे ऐसी मादक ठडी हवा शुरू होजाती है कि उससे नारद, दुष्यन्त, पाण्डु तथा साक्षात भगवान शिव आदि के मन मे भी उद्वेग उत्पन्न होगया, फिर साधारण मनुष्य की तो वात ही क्या? जब जोशीमठ पहुँचा तब रात होगई थी। रास्ते की गोपेश्वर, चमौली, पीपलकोटि और गरुडगगा चोटियो को बिना देखे ही छोड आया था।

अगर अपनी मोटर हो तो इनमे से कई प्रसिद्ध स्थानो को थोडी देर ठहर कर देखा जा सकता है।

जोशी मठ ६१५० फीट की ऊँचाई पर है। रात ठडी थी, सुबह उठा तब चारो तरफ हिमाच्छादित शिखरो को देख कर मन विमुग्ध होगया। मुझे राष्ट्रकवि दिनकरजी की यह कविता याद आगई—

मेरे नगपति मेरे विशाल!
साकार दिव्य गौरव विराट,
मेरी जननी के दिव्य भाल!

यही से तो तिब्वत का पुराना मार्ग था। यह सारा प्रदेश महान भारत का अग था—कैलास, मानसरोवर और राक्षसताल।

यही कुबेर की अलकापुरी थी। यक्ष, किन्नर, गंधर्व अपनी सुन्दरी प्रेयसियो के साथ प्रेमालाप करने मे तल्लीन रहते थे। उनकी तो वात ही क्या? इसी वन-प्रान्तर मे तपोलीन महामुनि विश्वामित्र योग को छोडकर मेनका के साथ भोग मे लग गए और शकुन्तला का जन्म हुआ। १२०० वर्ष पहले जब शकराचार्य देश के विभिन्न भागो की यात्रा करते हुए यहाँ पहुँचे, तब इस स्थान की पवित्रता और रमणीयता से प्रभावित होकर उन्होंने अपना उत्तर दिशा का मठ यही स्थापित किया। आज भी वह इसी रूप मे है।

जोशीमठ से १३ मील पर पाण्डुकेश्वर है। यही से विश्व-प्रसिद्ध "फूलो की घाटी" ओर सिखो के तीर्थ हेमकुण्ड लोकपाल जाने का रास्ता हे। यहां राजा पाण्डु कुन्ती ओर माद्री के साथ बहुत दिनो तक रहे थे। कहते है पाण्डु जन्म-रोगी थे, इसलिए वश चलाने के लिए कुन्ती और माद्री ने विभिन्न देवताओ के नियोग से पाँचो पाण्डवो को इसी स्थान पर उत्पन्न किया था। यही पर गधमादन और शतशृग पर्वत है। पाण्डुकेश्वर से बदरीनाथ केवल १४ मील रह जाता है। पहले कठिन चढाई थी, अब तो मोटरो और बसो से आराम से यात्री भगवान के मन्दिर के दूसरी तरफ पहुँच जाते हे। हनुमान चट्टी मे हनुमानजी राह देखते ही बैठे रहते है। बदरीनाथ की ऊँचाई १०३२५ फीट है, सारा शहर ६ महीनो तक बर्फ से ढका रहता है। ८वी शताब्दी मे श्री शकराचार्य ने अलकनन्दा से निकाल कर इन मूर्तियो को मन्दिर मे स्थापित किया था। वर्तमान मन्दिर इन्दौर की महारानी अहिल्याबाई होलकर का बनाया हुआ है।

इतनी पौराणिक कथाएँ इस पवित्र तीर्थ के साथ जुडी हुई है कि उनके वर्णन से एक अलग पुस्तक बन जायेगी। मै तो नही जा पाया, परन्तु साहसिक यात्री ५ मील पर वसुधारा प्रपात और १६ मील सतोपथ जाते हैं। कहते है कि प्रकृति की अद्भुत छटा उन स्थानो मे हे। पाँचो पाण्डवो और द्रौपदी ने इसी रास्ते से स्वर्गारोहण किया था। यद्यपि अब बदरीनाथ बडा शहर होगया है, परन्तु किसी समय यह ऋषि-मुनियो की तपोभूमि थी। व्यासजीने महाभारत की रचना यही की थी, नर-नारायण ने भगवान शकर की आराधना भी यही की थी। इसीके आसपास वशिष्ठाश्रम है, जहाँ विश्वामित्र के क्षात्रतेज को ब्रह्मतेज के सामने झुकना पडा था। पति द्वारा परित्यक्ता होकर शकुन्तला केदार-बदरी अचल मे ही रहने लगी थी। उसने यही प्रतापी भरत को जन्म दिया था।

बदरीनाथ से वापस लौटते समय कविवर सुमित्रनान्दन पन्त की यह कविता याद आगई —

"मानदण्ड भू के अखण्ड हे !
पुण्यधरा के स्वर्गारोहण !
नैसर्गिक शोभा से परिवृत,
गुह्य अदृश्य शक्ति से रक्षित।
मानदण्ड भू के अखण्ड हे !!

केदारनाथ

स्कन्दपुराण मे कथा है कि गोत्र-हत्या और गुरुजनो के वध से सन्तप्त पाण्डव व्यासजी की शरण मे गए और उन्होने उनसे इस पाप से मुक्ति का उपाय पूछा। व्यासजी के आदेशानुसार द्रौपदी-सहित पाँचो पाण्डव केदारनाथ मे भगवान शकर की तपस्या करने चल दिए। शिवजी उनको दर्शन देना नही चाहते थे, परन्तु महाबली भीम और अर्जुन से वे डरते भी थे। वे पाताल मे जाने लगे, भीम ने जोर से उनकी पीठ पकड ली, इसलिए पीछे के धड का हिस्सा केदारनाथ मे रह गया, आगे का भाग नेपाल के पशुपतिनाथ के मन्दिर मे है।

केदारनाथ की ऊँचाई ११,७५० फुट है। चारो तीर्थो मे यह सबसे ऊँचा है। तीन तरफ वर्फ के ऊँचे गिरिशिखर है। सनसनाती ठडी वर्फानी हवा चलती है, फिर भी श्रद्धालु यात्री यहाँ आकर जीवन को धन्य मानते है। मन्दिर मे शिवलिंग नही है, केवल एक खुरदरा-सा बड़ा सारा पत्थर है, जिसको घी मल-मल कर भक्तो ने चिकना बना दिया है। जो यहाँ आता है, वही प्रेम और भक्ति से इस पर घी मलता है।

हजारो वर्षो से देश के सन्त-महात्मा यहाँ आते रहे है। यहाँ की भैरव-झाँप चोटी पर से गिर कर कुछ लोग शिवलोक-प्राप्ति के लिए कभी प्राण-विसर्जन भी किया करते थे। पिछले १५० वर्षो से यह कानूनन बन्द कर दिया गया है। कहते है, अगर पहाड लाँघ कर जाया जाए तो बदरीनाथ और गगोत्तरी यहाँ से बहुत नजदीक है। परन्तु यह रास्ता हमेशा वर्फ से ढका रहता है—बीच के पहाडो की ऊँचाई भी २०-२२ हजार फुट है। स्वामी रामतीर्थ की तरह का महामानव ही सीधे रास्ते से जा सकता है। अगर इस क्षेत्र मे देश-विदेश के लाखो यात्री आने लगे तो स्विटजरलैण्ड से इटली तक आल्पस पहाड के भीतर जो १२ मील लम्बी सिम्पलन सुरग बनी है, वैसी ही शायद यहाँ भी बन जाय।

केदारनाथ मे सर्दी इतनी थी कि हम एक रात भी नही रहे। मन्दाकिनी और सरस्वती के सगम मे स्नान करने का बहुत बडा माहात्म्य है, परन्तु हडकम्प ठड थी। हमने थोडा-सा जल लेकर माथे से लगा कर ही सन्तोष कर लिया।

पाँचो पाण्डव और द्रौपदी यहाँ के ऊँचे पहाड लाँघ कर बदरीनाथ होते हुए स्वर्गारोहण के लिए गए थे। इस प्रकार जब मार्ग मे चलते हुए युधिष्ठिर के चारो भाई एक-एक कर द्रौपदी समेत वर्फ मे गल गए और अन्त मे परम सत्यनिष्ठ होने के कारण केवल युधिष्ठिर उस अगम पथ पर आगे बढते चले गए। तब उन्हे सदेह स्वर्ग लेजाने के लिए देवराज इन्द्र स्वय विमान लेकर उनके सामने उपस्थित हुए और उन्होने प्रसन्न होकर उनसे अनुरोध किया कि वे विमान मे आरूढ होकर उनके साथ इसी रूप मे स्वर्ग चले। उस समय युधिष्ठिर के साथ मे

एक कुत्ता भी था, जो उनको मार्ग-दर्शन कराता हुआ, उनके साथ आया था। इन्द्र ने युधिष्ठिर से उस अपवित्र पशु का साथ छोडे देने को कहा, परन्तु युधिष्ठिर का उत्तर था कि 'जिसने ईमानदारी से सकट के समय मे उनका साथ दिया है, उसे वे स्वर्ग-सुख के लिए भी कभी नही छोडेगे।'

वस्तुत यह आजीवन सत्यवादी युधिष्ठिर की अनन्य धर्मनिष्ठा तथा न्यायप्रियता की अन्तिम कठोर परीक्षा थी। इस परीक्षा को लेने के लिए स्वय धर्म के अधिपति यमराज ने श्वान (कुत्ते) का रूप धारण किया था। इसी कुत्ते ने महाप्रस्थान के इस विकट, अगम्य एव अज्ञात पथ पर, युधिष्ठिर को मार्ग-दर्शन कराते हुए, उन्हे आगे बढते रहने मे सहायता की थी। यह स्मरणीय है कि युधिष्ठिर को धर्म के देवता यमराज का पुत्र माना गया है और इसीलिए उनकी एक सज्ञा 'धर्मराज' भी है। पुत्र-स्नेह के कारण ही यमराज ने कुत्ते के रूप मे युधिष्ठिर का पथ-प्रदर्शन किया। इस तरह जब इस अभिक्रमण के अन्त मे युधिष्ठिर को स्वर्ग ले जाने के लिए स्वय इन्द्र देवता उपस्थित हुए और वे कुत्ते को यही छोड कर स्वर्गारोहण करने का आग्रह करने लगे, तब युधिष्ठिर ने अत्यन्त नम्रतापूर्वक कृतज्ञ भाव से उनसे निवेदन किया कि 'जो प्राणी इस अगम्य मार्ग पर सकटो के बीच उनको मार्ग-दर्शन कराता हुआ सुरक्षित रूप से यहाँ तक ले आया है, उसे यही छोड कर स्वर्गारोहण करना वे किसी प्रकार भी उचित नही समझ सकते।' उनकी यह उक्ति सुन कर देवराज इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके पथप्रदर्शक कुत्ते ने तत्क्षण अपने को 'यमराज' के रूप मे प्रकट कर दिया। इस प्रकार स्वय यमराज को अपने सामने पाकर युधिष्ठिर ने अत्यन्त भक्तिभाव से उनका नमन् किया। यमराज ने भी युधिष्ठिर को पुलकित होकर अभिनन्दित किया। इस प्रकार परीक्षोत्तीर्ण युधिष्ठिर ने अपने पिता यमराज तथा देवाधिपति इन्द्र के साथ सदेह स्वर्ग के लिए प्रयाण किया।

आद्य शकराचार्य यहाँ १२०० वर्ष पहले आए थे। उन्होने देश के चारो कोनो पर चार मठ स्थापित किये। साधुओ और ब्रह्मचारियो के लिए उन्होने उस समय जो व्यवस्था बनाई थी, वह आज तक कायम है। पुरी, भारती, तीर्थ एव सरस्वती आदि सब नाम उन्ही के दिए हुए है। वे पश्चिम मे द्वारका, पूर्व मे जगन्नाथ पुरी, उत्तर मे केदार-बदरी-जोशीमठ और दक्षिण मे काची तक तो गए ही, बनिहाल की ८५०० फुट की ऊँचाई को पार करके श्रीनगर मे जाकर शारदा पीठ की भी स्थापना उन्होने की।

जब गौतम बुद्ध के उपदेशो को भूल कर लोग राजमद मे पागल हो रहे थे, तब राज्यशक्ति और श्रमणशक्ति की बिना परवाह किए शकराचार्य ने वैदिक धर्म का प्रचार किया था। हठयोगी मत्स्येन्द्रनाथ और उनके शिष्य गोरखनाथ की भी यही साधना भूमि रही है। वैसे १६०० मील लम्बा और २०० मील चौडा देवात्मा हिमालय कश्मीर से नेफा तक उत्तर भारत मे प्रहरी की तरह खडा है, परन्तु जिसको देवभूमि कहते है, वह यह उत्तराखण्ड ही है। कालिदास ने कुमारसम्भव के प्रारम्भ मे इसी के बारे मे कहा है —

अस्त्युत्तरस्या दिशि देवात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराज।
पूर्वापरो तोयनिधीवगाह्य-
स्थित पृथिव्या इव मानदण्ड ॥

—अर्थात पूर्व पश्चिम समुद्रो मे एक साथ स्नान करने वाला (सिन्धु ओर ब्रह्मपुत्र मे) हिमालय नामक पर्वतराज देवात्मा इस भूमण्डल को नापने वाले मानदण्ड की तरह उत्तर दिशा मे खडा है।

हरिद्वार और कनखल

उत्तराखण्ड के किसी भी तीर्थ की यात्रा हो, हरिद्वार मे हरकी पौडी मे स्नानपूजन करके ही यात्रा शुरू की जाती है। हरिद्वार बहुत बार आ चुका था। इस बार दक्ष-यज्ञ-स्थल कनखल के पास बस्तीराम की पाठशाला मे ठहरा। यह जान कर खुशी हुई कि इसी स्थान पर कुछ दिनो तक स्वामी दयानन्द भी रहे थे। हरिद्वार और कनखल के बीच मे गगा किनारे विभिन्न पथो के साधुओ के बडे-बडे आश्रम है, जहाँ यात्रियो के रहने की व्यवस्था है। किसी-किसी मे भोजन भी मिलता है।

राजा दक्ष हिमालय के ही किसी खण्ड के निवासी थे, परन्तु जनसाधारण की सुविधा के लिए उन्होने यज्ञ के लिए कनखल को चुना। सब देवताओ को बुलाया गया, परन्तु महादेव शिवजी को जान-बूझ कर निमन्त्रण नही भेजा गया। दक्ष-पुत्री सती को कैलास मे इस यज्ञ की सूचना मिली। पति की मनाही के बावजूद वह कनखल आकर यज्ञोत्सव मे शामिल हुई। देखा पिता द्वारा अनुपस्थित शिवजी का बार-बार अपमान किया जा रहा है। अपशब्द भी कहे जा रहे हैं। वह दु ख, ग्लानि और पश्चात्ताप को नही सह सकी। फलत यज्ञकुण्ड की प्रज्ज्वलित आग मे कूद कर भस्म हो गई। फिर जिस प्रकार शिवजी के गणो ने यज्ञ-विध्वस करके दक्ष का वध किया, उसकी कथा कनखल के साथ जुड़ी हुई है। सती के बलिदान की बात सुन कर शिवजी यहाँ आए। वे सती के शव को कधे पर लेकर भारत के बहुत से हिस्सो मे पागलो की तरह घूमते रहे, कनखल से लेकर सुदूरपूर्व कामरूप और नेपाल के काठमाण्डू तक। वह स्थान देखा, जहाँ सती माता भस्म हुई थी। गगा-किनारे उस पवित्र हवनकुण्ड को देख कर मन मे सिहरन हो आती है। कुण्ड मे से भस्म लेकर माथे मे लगाई। कनखल से दो मील पर महाविद्यालय ज्वालापुर और गुरुकुल कागडी है। स्वामी श्रद्धानद और स्वामी दर्शनानद के ये अमर स्मारक है। दोनो ही सस्थाओ ने देश को बडे-बडे विद्वान दिए है।

रुद्र प्रयाग और गुप्त काशी

कनखल से मोटर-बस द्वारा ऋषिकेश होता हुआ १०४ मील पर रुद्रप्रयाग आगया। दूसरे दिन सुबह रुद्र प्रयाग से २६ मील चल कर गुप्तकाशी दोपहर के पहले ही पहुँच गया। रास्ते मे बहुत वर्षा हो रही थी, कही-कही पानी के जोर से पहाड से पत्थर नीचे गिर रहे थे। आषाढ-श्रावण मे यह यात्रा नही करनी चाहिए। वैशाख-ज्येष्ठ मे यात्रियो की बहुत भीड रहती है, इसलिए साधन-सम्पन्न लोगो को आश्विन-कार्तिक मे आना चाहिए। उस समय रहने की जगह भी पर्याप्त मिलेगी और प्राकृतिक दृश्य भी ज्यादा लुभावने होगे।

गुप्तकाशी की ऊँचाई ४,५०० फुट है। यहाँ पर विश्वनाथ का बडा मन्दिर है। मन्दिर के पास मे ही दो झरने मणिकर्णिका नाम के कुण्ड मे गिरते है। इनमे स्नान करके दर्शन करने की प्रथा है। गुप्तकाशी से गौरीकुण्ड जाते हुए रास्ते से थोडा हट कर ६००० फुट ऊँचे पहाड पर त्रियुगी नारायण का मन्दिर है। यहाँ शिव-पार्वती का विवाह हुआ था। विवाह कुण्ड की अग्नि आज तक प्रज्ज्वलित है। यहाँ आने वाले यात्री अग्निकुण्ड मे घी-लकडी या हवन-सामग्री अवश्य डालते हैं।

गुप्तकाशी से ८ मील आगे सोन-प्रयाग तक बस जाती है। उसके बाद १० मील पैदल जाना पडता है। रास्ते मे गौरीकुण्ड नाम का प्रसिद्ध तीर्थ पडता है। यहाँ शिव-पार्वती का मन्दिर है। कहते है, यहाँ पार्वतीजी ने ऋतु-स्नान किया था। यहाँ पर गर्म पानी का कुण्ड है। यात्री थके-हारे आते हैं, इसलिए इस कुण्ड मे स्नान करके तन-मन से स्वस्थ हो जाते है। गौरी कुण्ड के पहले मुण्ड कटे गणेशजी का मन्दिर है।

कहते है पार्वतीजी स्नान करने गईं। उन्होने गणेशजी को द्वार पर बैठा दिया और कहा

कि किसी को भीतर न आने देना। संयोग से शिवजी अपने गणो सहित इसी बीच आगए। गणेशजी ने उन्हे रोका। दोनो मे युद्ध हुआ। शिवजी ने त्रिशूल से बालक गणेश का सिर काट लिया। पार्वतीजी की नाराजगी दूर करने के लिए देवता लोग उत्तर दिशा मे गए। उन्हे एकदन्त हाथी मिला, उसका सिर काट कर उन्होने बालक के धड पर लगा दिया। ब्रह्मा, विष्णु और शिव बालक से बोले कि 'हमसे भी पहले तुम्हारी पूजा होगी और आज से तुम्हारा नाम श्रीगणेश होगा।'

केदारनाथ का दुर्गम पथ

यहाँ से केदारनाथ केवल ८ मील रह जाता है, परन्तु चढाई ५२५० फुट की है। उत्तराखण्ड के अन्य तीर्थों पर इतनी सीधी चढाई और कही नही। इस ८ मील मे चीरवासा, भैरव और रामबाडा चट्टी है। वैसे यहाँ बडे तीर्थ नही है, परन्तु यात्री इतने थक जाते हैं कि थोडी-थोडी दूर पर ठहरने का बहाना ढूँढते रहते हैं। इसीलिए भैरव को केदारनाथ भगवान का द्वारपाल मान कर पूजा करते है और चीर चढाते है।

मुझे उत्तराखण्ड के चारो तीर्थो के सिवाय वैष्णवदेवी और अमरनाथ भी जाने का मौका मिला, परन्तु जो दृश्य रामबाडा से आगे केदारनाथ के रास्ते मे मिलते हैं, उनकी तुलना केवल अमरनाथ के रास्ते मे शेषनाग से या गगोत्तरी अचल से ही की जा सकती है।

बहुत बार यात्री थक कर बैठ जाता है, मन मे झुंझलाता है कि क्यो इस महाप्रस्थानके पथ पर आगया। परन्तु थोडी देर बाद ही उसे झुकी कमर की लाठी टेकती हुई, धीरे-धीरे चलती कोई वृद्धा दिखाई देती है। उससे प्रेरित होकर हिम्मत करके वह भी आगे बढता है। चारो तरफ बर्फ के पहाड, कही-कही रास्ते मे बर्फ—न वृक्ष है, न हरियाली। साथी यात्री हिम्मत बँधाते है, अब तो आगए भगवान शिव के धाम मे। इसी पहाड के पीछे तो है। पर वह पहाड तो जैसे आगे ही आगे सरकता जाता है।

गलती से भादो मे आगया। टिपटिप वर्षा हो रही है, ठड से शरीर सिहर उठता है। छप्पर, पडाव या चट्टी कही भी दिखाई नही देती। न कोई वृक्ष ही हे, जिसके नीचे खडा होकर सुस्ता लिया जाय। छाता खोल कर चलने मे डर लगता है—कभी-कभी तेज हवा भर जाने से वह कुछ दूर तक घसीट ले जा सकता है। इस 'कुछ दूर' का अर्थ पहाड का गर्त्त भी होसकता है, जिसमे गिरने के बाद सब समाप्त। फिर भी यात्री मन ही मन 'अद्य मे सफल जन्म, अद्य मे सफला क्रिया' जपते हुए केदारनाथ से वापस आते है।

यद्यपि गौरीकुण्ड से केदारनाथ तक सीधी चढाई है, परन्तु इन पहाडो की चढाई मे खतरा नही है, धीरे-धीरे सरकते हुए ऊपर चढना पडता है। मन मे एक प्रकार का उत्साह ही रहता है। परन्तु वापस आते समय उतराई मे घुटनो पर बहुत जोर पडता है। अगर लाठी मजबूती से नही पकडी तो सकट की आशका है, क्योकि पीछे से धक्का-सा लगता है और मनुष्य सतुलन खो देता है।

पता चला है कि इस उतराई मे भी बहुत बार दुर्घटनाएँ हो जाती है। ठोकर लग कर कभी पैर तले का पत्थर नीचे सरक जाता है, कभी दौडते हुए-से यात्री का डग चूका कि नीचे खड्ड मे लुढका! मगर तीर्थ यात्रा के पथ जितने ही कठिन होते है, उतने ही वह मनुष्य के साहस और पराक्रम को अधिकाधिक आकर्षित करते हैं।

अद्भुत आनन्द

यद्यपि यह पैदल रास्ता केवल ८ मील का है, परन्तु इससे जो उपलब्धि होती है, वह पहले के १५० मील मे नही। जब कभी बस या कार से यात्रा की, न ऊपर से गिरते रुपहले प्रपात देख सका, न पाताल के समान दिल दहलाने वाले गर्त। रास्ते के बहुत से तीर्थ ओर

मन्दिर, जिनके साथ अनेक प्रकार की कथाएँ जुडी हुई है, बिना देखे ही रह जाते है। कहते है, पैदल यात्रा मे पूरा पुण्य मिलता है, जबकि आदमी के कन्धे पर यात्रा करने वाले को आधा। जो मोटर या बस मे बैठ कर जाते है, उनका पुण्य नही के बराबर समझना चाहिए।

यह भी किंवदन्ती है कि हिमालय के इन तीर्थो मे एक प्रकार का आकर्षण होता है, जिससे मनुष्य की बार-बार यहाँ आने की इच्छा बनी रहती है। मेरे मित्र गगाशरण सिन्हा २५ या २७ बार आ चुके है। १० या १२ बार तो बहुत से लोग आए है।

मैंने उत्तरी ध्रुवाचल मे बारहो महीने बर्फ से ढके किरुना और नारविक गाँव देखे है, परन्तु जो आनन्द अमरनाथ के रास्ते पर शेषनाग मे या गगोत्तरी मे या केदारनाथ मे आया, वह स्वीडन और नार्वे के सब तरह की सुविधाओ से पूर्ण उन स्थानो मे नहीं आया।
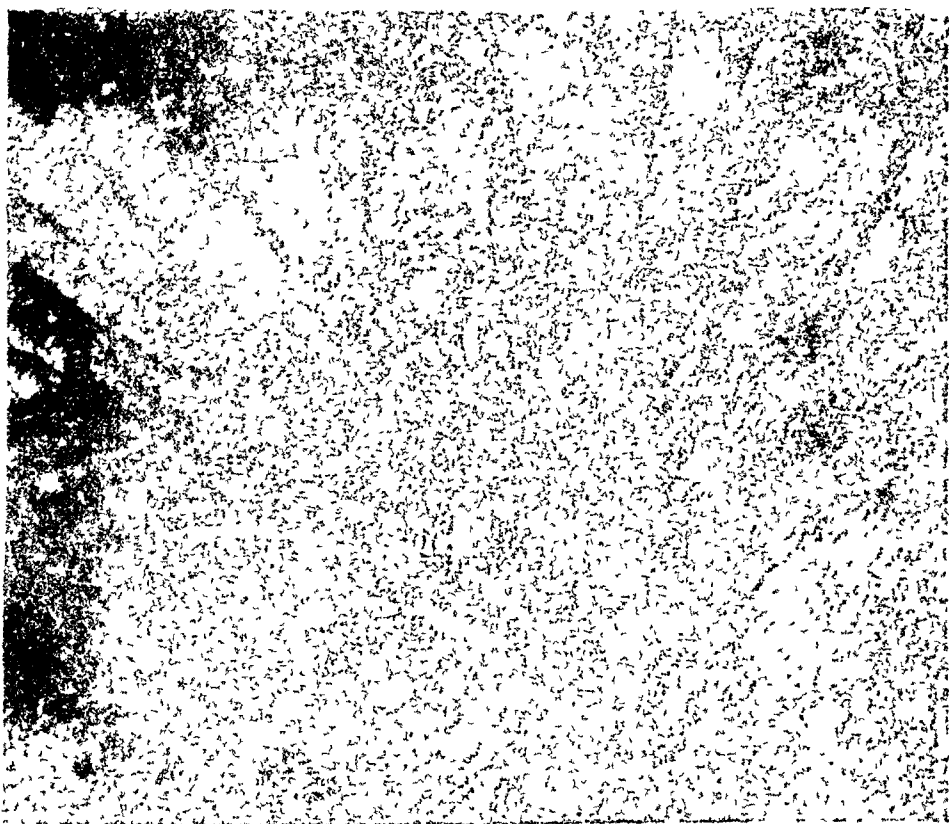
शेषनाग-पंचतरणी-अमरनाथ

काश्मीर के बारे मे अनेक वर्षो से सुनता आरहा था, परन्तु सयोग से वहा जा नहीं पाया। सन् १९६० मे जब स्विटजरलैण्ड जाकर आया और वहाँ के इण्टरलाकन और जगफ्राऊ की सुन्दरता के बारे मे लिखा, तो मित्रो ने कहा कि "तुम काश्मीर देखकर आओ और फिर तुलना करो कि विश्व का 'नन्दन कानन' कहाँ है ?

इसके बाद तो कई बार काश्मीर हो आया। श्रीनगर की घाटी और यहाँ के पहाडो मे एक प्रकार का आकर्षण है, जो बारम्बार यात्रियों को बुला लेता है। शायद इसीलिए बादशाह जहाँगीर और बेगम नूरजहाँ अनेक कष्ट सह कर यहाँ बहुत बार आते रहते थे। उनके लगाए बाग-बगीचे अभी तक श्रीनगर की शोभा बढा रहे है।

काश्मीर पर अलग लिखूँगा। यहाँ तो मैं परम पुनीत प्रसिद्ध तीर्थ अमरनाथ पर लिखना चाहता हूँ।

सन् १९६५ की बात है—ससद का सत्र समाप्त हो गया था, दिल्ली मे भयानक गर्मी थी। मैंने अचानक श्रीनगर जाने का प्रोग्राम बना लिया। वहाँ मेरे मित्र ईश्वरदासजी जालान (मत्री-पश्चिम बगाल) मिल गए। जुलाई का महीना था, अमरनाथ की यात्रा शुरू हो गई थी। मैने उन्हे वहाँ चलने का सुझाव दिया, वे राजी हो गये, परन्तु काश्मीर सरकार ने मनाही कर दी, क्योकि जोरो की वर्षा हो रही थी और पहाड धसकने का डर था। मैंने जालानजी से छुट्टी ली और यात्रा के लिए रवाना हो गया। सोचा कि "होइहे वही जो राम रचि राखा, और भी तो इतने लोग जा रहे है, फिर तुम्हे ही यह डर क्यो है ?"

पहलगाँव तक ५९ मील बस से आया, रास्ते मे अनन्तनाग और मट्टन (मार्तण्ड) नाम के सुन्दर ऐतिहासिक स्थान पडते है। यहाँ बसे थोडी देर ठहर कर यात्रियो को पुराने मन्दिर देखने का मोका देती है।

पहलगाँव मे मध्य प्रदेश के मत्री डा० शकरदयालुजी शर्मा का साथ हो गया। अब वे केन्द्र मे मत्री है। वे काश्मीर सरकार के चेतावनी के बावजूद यात्रा पर चले आए थे।

चन्दनवाडी तक हम जीप से आए। यह अमरनाथ यात्रा का पहला पडाव है। ९५०० फीट की ऊँचाई पर यह छोटा सा गाँव है। १०-५ चाय नाश्ते की दुकाने, दो-तीन ढाबे, यात्रियो के ठहरने के लिए १०-५ कोठरियाँ यहाँ है। शर्माजी जाते समय पैदल यात्रा करना चाहते थे, परन्तु मैंने एक घोडा ले लिया, ४-५ दूसरे यात्री भी घोडो पर जा रहे थे। ऐसी बीहड और खतरनाक यात्रा मे लोग आपस मे जान-पहचान कर लेते है और एक दूसरे की सहायता करते रहते है।

चन्दनवाडी मे पहली बार ठोस बर्फ का प्राकृतिक पुल देखा। इसमे मनुष्यो और मशीनो द्वारा मरम्मत किये जाने की जरूरत नहीं है, न मेहराब हैं और न खम्भे ही। नीचे नील गगा उफनती हुई बह रही थी। हम पत्थर की तरह की ठोस बर्फ के पुल पर घोडो पर या पैदल जारहे थे।

वैसे पहलगॉव की लीदर नदी का पानी भी नीली आभा लिए हुआ-सा है, परन्तु यहॉ तो ऐसा लगता है जैसे नदी मे किसीने गहरा नीला रग घोल दिया है। इसके बारे मे एक कथा है, वह यह कि 'एक बार भगवान शकर और पार्वती ऑखमिचौनी खेल रहे थे, सयोग से शकरजी का मुँह पार्वतीजी के नेत्रों से छू गया। काला अजन सारे मुँह पर लग गया। उन्होने इस नदी में अपने मुँह को धोया। तब से इसका पानी नीला हो गया।' इस जल मे आचमन का और नील गगा मे स्नान का बहुत महात्म्य है। चन्दनवाडी से दूर जाने पर इस यात्रा का सबसे कठिन मार्ग पिस्सू घाटी है। एक मील मे २२०० फीट की चढाई है। कहा जाता है कि 'एक बार बहुत से देवता और राक्षस भगवान शकर के दर्शनो के लिए अमरनाथ जा रहे थे। पहले कौन चढे—इस बात को लेकर उनमे झगडा होगया और देवताओ ने राक्षसो को पीस कर उनका चूरा कर दिया। उनकी हड्डियो का यह ढेर है और तब से इनका नाम पिस्सू घाटी पड गया।'

यहॉ हमे सैकड़ो लम्बे बालो वाली भेड-बकरियॉ मिली। चीटी की तरह रेगती वे ऊपर चढ रही थी। साथ मे दो-तीन कुत्ते और गुज्जर स्त्री-पुरुष थे। पूछने पर पता चला कि जहॉ भी मैदानो मे या पहाडो पर घास उपलब्ध होती है, अपने ढोरो को चढाई के लिए वे ले जाते हैं। तम्बुओ मे रहते है। मनुष्य को जीवन-यापन के लिए कितनी कठिनाइयॉ सहनी पडती है, यह इन्हें देखकर पता चलता है।

थोडी दूर तक तो शर्माजी लाठी टेकते हुए साथ-साथ चलते रहे, परन्तु अभ्यस्त टट्टुओ के मुकाबले मे इस कडी चढाई मे वे थक गए और पीछे छूट गए। सँकरा-सा टेढा मेढा रास्ता, थोडा-सा पेर चूका और गर्त मे गिर कर सब समाप्त। घाटी पार कर जब शिखर पर आए, सब लोग 'जय अमरनाथ' का घोष करने लगे। वहॉ करीब आधा घटा ठहरे। इतने मे शर्माजी तथा अन्य पैदल आने वाले यात्री भी पहुँच गए।

पिस्सू टाप से ४ मील पर जाजपाल है। टट्टू थक गए थे, आगे का रास्ता सीधा था, हम पैदल चलने लगे। वैसे सर्दी मे पैदल चलना अच्छा भी लगता है।

हम पहाडो के बीच की सँकरी पगडडी से चल रहे थे। बहुत नीचे शेपनाग नदी चॉदी की रेखा-सी नजर आती थी।

'कुछ लोग थक कर जाजपाल ठहर जाते है, परन्तु हम तीन मील आगे शेपनाग जाकर ठहरे। ११९५० फीट की ऊँचाई पर थोडी-सी मिट्टी की कोठरियॉ है यहाँ। कलकत्ते-बम्बई मे तो हम ऐसी जगह मे रहने की सोच भी नही सकते थे, परन्तु यहॉ तो एक-एक कोठरी मे ५-७ व्यक्ति साथ-साथ ठहर गए। मिट्टी का टूटा हुआ-सा फर्श था, उस पर बिस्तरा लगा कर सुस्ताने लगे।

भूख जोरो से लग आई थी, यात्रा के दिनो मे यहॉ कुछ दूकाने लग जाती है। भोजन करके झील के किनारे बैठ गए।

१२,००० फीट की ऊँचाई पर यह झील स्विट्जरलेण्ड के जिनेवा और ज्यूरिख की झीलो से कही ज्यादा सुन्दर है। उस पार ब्रह्मा, विष्णु और महेश नाम की बर्फानी चोटियो को और आकाश के तारो को झील के स्वच्छ पानी मे देख कर बरबस मुह से निकल आता है—'जीवन अब सचमुच सफल होगया।' किन्तु यह अजीब बात है कि यहॉ की हवा मे सॉस लेते ही बेहोशी-सी होने लगती है। ऐसा लगता है वायु मे किसी प्रकार का नशीलापन है। सम्भवत इसी लिए उसमें श्वास लेने मे तकलीफ होती हे। इसके बारे मे भी इस प्रकार की एक पौराणिक कथा है —

'एक अत्यन्त पराक्रमी राक्षस यहॉ रहता था। भोले शिव ने भग की तरग मे अपनी

पुरानी आदत के अनुसार उसे यह वरदान दे दिया कि वह किसी मनुष्य या देवता द्वारा नही मारा जा सकेगा। फिर क्या था! उसने निर्भय होकर देवताओ से अपने पुराने वैर का बदला लेना शुरू किया और देवताओ की धर-पटक करने लगा। इस पर त्रस्त होकर वे सब भगवान विष्णु के पास गुहार करते हुए पहुँचे। विष्णु ने बहुत सोच-विचार कर शेषनाग को बुला कर आज्ञा दी कि तुम यहाँ की सारी वायु अपने हजार फणो से भक्षण कर लो। हवा के नही रहने से राक्षस घुट-घुट कर मर जायेगा।

पता नही इस बात मे कितनी सच्चाई है; परन्तु यह बात सही है कि अभी तक यहाँ की हवा मे सन्तुलन नही है और शीत ऋतु मे एक बडे सर्प के फुङ्कार की सी आवाज होती रहती है। शेषनाग मे रात मे वर्षा होगई थी, इसलिए काफी सर्दी थी, सन-सन करती हवा चल रही थी। तीन ऊनी कम्बल ओढने के बावजूद हमे ठड लग रही थी। दूसरे दिन हमे ६ मील चल कर पचतरणी पहुँचना था। सुबह ८ बजे नाश्ता करके "जय अमरनाथ बाबा की" घोष करते हुए हम आगे बढ़े। पहली चार मील की यात्रा मे ३००० फीट की कडी चढाई है। वायुजन और महागुनम तक १४७०० फीट की ऊँचाई तक जाते है। पर्वतारोहियो के सिवाय इतनी ऊँचाई पर शायद बहुत कम लोग जा पाते है। ऐसा लगता है कि सिर पर मनो बोझ रखा हुआ है। अगर ६ मील पर भगवान अमरनाथ के दर्शनो का लोभ न हो, तो लोग ऐसे बीहड और कठिन रास्तो पर आते ही नही। चारो तरफ चाँदी-सी बर्फ शायद बारहो महीना गिरती रहती है। कही-कही घोडो के पैर ऊपर तक बर्फ मे धँस जाते है। ऊपर बैठा यात्री भय से सिहर उठता है, और आतंकित होकर सोचता है कि कही वह यहाँ बर्फ मे न समा जाए। और वही उसकी सदा के लिए समाधि न बन जाए। घोडे वाले ने बताया कि कभी-कभार पोली बर्फ मे टट्टू अन्दर धँस जाते है। बडी मुश्किल से उन्हे बाहर निकाला जाता है। महागुनम के बाद पचतरणी तक पाँच मील की ३००० फुट की उतराई है। आज चले तो कुल ६ मील पर इसीमे पाँच घण्टे लग गए। करीब एक बजे पचतरणी पहुँचे। यह अमरनाथ-यात्रा का अन्तिम पडाव है। कुछ साहसी यात्री सीधे अमरनाथ का दर्शन करके वापस यहाँ आकर ठहरते हैं, परन्तु हम लोगो ने दूसरे दिन जाने का तय रखा। पचतरणी नदी के किनारे यहाँ दो चार घर है, जो ६ महीने बर्फ मे दबे रहते है। सामने बर्फ के पहाडो मे ग्लेशियर दिखाई देता है, जिससे यह नदी निकलती है। कहते हैं शिवजी ताण्डव नृत्य करते हुए इधर जा रहे थे। सयोग से उनकी जटा ढीली होगई और उससे निकल कर गगा यहाँ पाँच धाराओ मे बिखर गई।

रात मे यहाँ काफी सर्दी पडती है, ऐसे स्थानो पर अगर स्लीपिंग बैग साथ मे ले लिया जाये तो सर्दी से बचाव रहता है। यह मोटे गर्म कपडे का रुई भरा थैला होता है, जिसमे गले तक ढक कर आराम से सोया जा सकता है।

दूसरे दिन ८ बजे चलकर १२७५० फुट की ऊँचाई पर स्थित बहुचर्चित अमरनाथ की गुफा मे पहुँच गए। रास्ते मे भैरोघाटी नाम का बहुत ही खतरनाक स्थान पडता है। यह इतना सकरा है कि केवल एक व्यक्ति ही इस पर से जा सकता है। सावधानी के लिए घोडो पर से उतर कर पैदल चलना होता है। कभी-कभार चक्कर आकर नीचे गर्त मे गिरने से दुर्घटनाए होजाती है।

हिमगगा मे स्नान करने के बाद अमरनाथ के दर्शनो का माहात्म्य है। परन्तु दो-चार श्रद्धालु हिम्मतवर व्यक्ति ही ऐसा कर पाते है। अधिकाश तो आचमन करके ही दर्शन-पूजन के लिए जाते हैं।

अमरनाथजी बर्फ-निर्मित गुफा-मन्दिर मे विराजते है। गुफा की लम्बाई, चौडाई और ऊँचाई लगभग ५० फुट है,—हमारे बम्बई के आधुनिक मकानो के चार तल्लो इतनी ऊँची। गोलाकार मेहराबें है। न जाने कितने हजार वर्षो से यह इसी हालत मे है न मनुष्य द्वारा

मरम्मत की दरकार और न टूटने का डर। सामने के चबूतरे मे बर्फ के बने धवल स्वच्छ अमरनाथजी विराजमान हैं। जुलाई से सितम्बर तक यात्रा रहती है। शिवपिंडी की ऊँचाई घटती-बढ़ती रहती है—१ फुट से ७॥ फुट तक। कहते है 'पार्वतीजी शिवजी से अमरत्व का रहस्य सुन रही थी, इसी बीच उन्हे नीद आगई। वहाँ एक कबूतरो का जोडा भी था, उन्होने वह कथा सुनली, फलत वे अमर होकर यहाँ रहने लगे।' शुरू मे तो मुझे वे कबूतर नही दिखाई दिये, परन्तु पीछे एक साथी ने बताया कि एक कोने मे बैठे हुए वे गुटरगू कर रहे थे। पता नही, ये शिव-पार्वती वाले कबूतर ही थे या दूसरे। परन्तु यह तथ्य है कि वे वहाँ मिलते जरूर हैं।

स्वामी विवेकानन्दजी इस पवित्र स्थान पर जब दर्शनों के लिए आए तो वे भाव-विभोर होगए। उन्हे आभास हुआ कि साक्षात् शिव उन्हे वरदान देने के लिए उपस्थित है। उन्होने लिखा है—"लिंग स्वय ईश्वर है, यहाँ की हर वस्तु पूजनीय है, मैने जीवन में ऐसा आनन्द-दायक पवित्र स्थान कही नही देखा।" भारतीय के सिवाय बहुत से विदेशी अन्य धर्मीय यात्री भी इस ईश्वरीय चमत्कार को देखने आते है। जम्मू-काश्मीर सरकार की तरफ से श्रावणी पूर्णिमा की यात्रा की व्यवस्था रहती है। उस समय हजारो यात्री भगवान अमरनाथ के दर्शन करते है।

दर्शन करके यात्री अपने जीवन को धन्य मानते है और वे वहाँ फिर आने का निश्चय करके लौटते है। परन्तु उनमे से आ कितने पाते है?

जाते समय पूरे ढाई दिन लगे, परन्तु आती बार तो पैदल और सवार सब-दौडते-से चलते है और रात्रि मे १६ मील चल कर शेषनाग जाकर ठहरते है।

दूसरे दिन चन्दनवाडी होते हुए वापस पहलगॉव आए। वहाँ का वही व्यस्त जीवन—बडे-बडे होटल-मोटल, तम्बू, क्लब और दूकाने! अगर अमरनाथ जैसा रमणीक स्थान विश्व के किसी उन्नत देश मे होता तो शायद ही वहाँ का कोई व्यक्ति इसे बिना देखे रहता। इसके साथ ही वह विदेशो मे नाना तरह का आकर्षक प्रचार करके वहाँ से भी लाखो यात्रियो को भगवान शिव के इस प्रतीक मन्दिर प्रकृति के इस मनोरम विचित्र दृश्य-चित्र को देखने के लिए खीच लाता।

राजगिर

'रमणीक है राजगृह, रमणीक है गृद्धकूट, रम्य है सप्तपर्णि गुफा, रमणीक है आम्रवन और रम्य है मृगवन ।'

जिस युग पुरुष ने ८५ वर्ष के जीवन मे किसीकी निन्दा-स्तुति नही की, उन्ही भगवान बुद्ध ने एक दिन आत्मविभोर होकर राजगिर के बारे मे यह कहा था । उन्हे इस स्थान से बहुत प्यार था और वे लम्बे समय तक यहाँ के गृद्धकूट पर्वत पर तपस्या करते रहे थे ।

बिहार की पवित्र भूमि पर कई एक ऐसे स्थान है, जो जैन और हिन्दू दोनो धर्मावलम्बियो के तीर्थ है, परन्तु राजगिर तो जैन, बौद्ध और हिन्दू तीनो धर्मो की त्रिवेणी है ।

महाभारत के प्रसिद्ध सम्राट जरासध की यह राजधानी थी । भीम और अर्जुन के साथ भगवान् कृष्ण यहाँ चालीस दिन रहे थे । यही पर भीम और जरासन्ध का गदा-युद्ध हुआ था, जिसमे जरासध मारा गया था । भगवान बुद्ध और जेनियो के २४ वे तीर्थङ्कर महावीर की यह तपस्थली रही है ।

प्राचीन समय मे राजगिर का नाम वसुमति, वार्हद्रथपुर, गिरिव्रज और राजगृह था । रामायण मे उल्लेख है कि इसकी स्थापना ब्रह्मा के बेटे वसु ने की थी, इसलिए इसका नाम वसुमति हुआ ।

महाभारत-काल के कुछ पहले राजा ब्रहद्रथ ने इस राजधानी बना कर इसका नाम रखा वार्हद्रथपुर । इसी वश मे प्रतापी सम्राट जरासध था ।

चारो ओर पहाडो से घिरा हुआ होने के कारण बौद्ध-काल के पहले इसका नाम हुआ गिरिव्रज । पाँचवीं, चौथी-शताब्दी पूर्व मगध के सम्राटो की राजधानी होने से नाम होगया राजगृह । जरासध मथुरा के राजा कस का श्वशुर था । जब कृष्ण ने कस को मार दिया, तब एक बडी फौज लेकर इसने मथुरा पर चढाई कर दी । यद्यपि मागधी फौजो के मुकावले मे सैनिक बल मे यादव बहुत कमजोर थे, परन्तु कृष्ण-बलराम के नेतृत्व मे वे जी-जान से लडे और बार-बार जरासध को हार कर वापस लौट जाना पडा । पर प्रबल शत्रु की लगातार की चढाइयो से तग आकर सुरक्षा की दृष्टि को ध्यान मे रखते हुए यादवगण मथुरा से राजधानी हटा कर सुदूर पश्चिम द्वारका ले गये । इसी लिए कृष्ण का एक नाम 'रणछोड' भी है । सिवाय काशी-मथुरा के दूसरे किसी शहर का इतना पुराना इतिहास नही मिलता ।

२५०० वर्ष पहले यह मगध की राजधानी थी और बिम्बसार यहाँ का राजा था । उसके पुत्र अजातशत्रु ने पिता को कैद करके मरवा डाला । जिस जेलखाने मे उसको रखा गया था, वह आज भी टूटी-फूटी हालत मे है ।

सम्राट अजातशत्रु ने बुद्ध की अस्थियों के एक भाग को यहाँ लाकर बडे उत्सव के साथ एक स्तूप के रूप मे स्थापित किया था। जैन धर्म के बीसवें तीर्थङ्कर सुव्रत की जन्मभूमि राजगिर है। चौबीसवें तीर्थङ्कर महावीर स्वामी ने तो चौदह चातुर्मास राजगिर में किए थे। २५०० वर्षो के लम्बे समय तक यह पूर्व भारत की गौरवशाली राजधानी रही।

अजातशत्रु का पुत्र उदाधि यहाँ से राजधानी हटा कर पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) लेगया। उस समय नौकाओ और जलवाहनो का विकास होगया था, इसलिए गगा-किनारे होने के कारण वहाँ यातायात की सुविधा थी। आज से १५०० वर्ष पहले जब चीनी यात्री फाहियान भारत आया, तब वह राजगिर गया था। उस समय राजधानी उजड़ चुकी थी, कुछ बुद्ध श्रमणों के सघाराम वहाँ थे। उसके दो सौ वर्ष बाद ह्वेनसाग आया। उस समय सघाराम भी समाप्त होकर खण्डहरो के रूप मे पडे थे।

राजगिर तो फिर नही बस पाया, परन्तु इसके पडोस मे ही नालन्दा गाँव मे ९वी शताब्दी में एक विश्वविद्यालय का निर्माण हुआ, जहाँ हजारो छात्र ओर शिक्षक रहते थे। वहाँ के छात्रों के और शिक्षकों के निवास-भवन, शिक्षा-कक्ष और सभा-भवन के भग्नावशेषो को देख कर आश्चर्य होता है कि १२०० वर्ष पहले हमारे यहाँ शिक्षा-पद्धति मे कितनी उन्नति हो चुकी थी।

१९०५ से भारत सरकार ने राजगिर मे खुदाई शुरू की। जितनी ऐतिहासिक सामग्री यहाँ मिली, वह अपने आपमे बहुत महत्वपूर्ण है। सिवाय मोहनजोदडो (अब पाकिस्तान मे) के और कही भी इतने पुरातन अवशेष नही हैं।

मैं सन् १९७५ के अगस्त में वहाँ गया था। इसके पहले भी तीन बार जा चुका हूँ। परन्तु इस बार कार पास मे रहने से घूमने-फिरने की सुविधा थी।

पिछले पाँच-सात वर्षो से भारत सरकार ने राजगिर को पर्यटन-केन्द्र बनाने की योजना चालू की है।

गृद्धकूट पर्वत पर चढने के लिए एक विद्युत-चालित रज्जु मार्ग की व्यवस्था है। आठ आने देकर आराम से चलती हुई कुर्सियो पर बैठ कर ऊपर पहाड पर चढ़ा-उतरा जा सकता है; ऊपर का सौन्दर्य तो वर्णनातीत है। ऐसा लगता है कि भगवान बुद्ध की वाणी अब तक वहाँ गूँज रही है।

जापान मे एक पहाडी पर बुद्ध-मन्दिर का निर्माण हुआ है, जहाँ हजारो दर्शक रोज जाते है, परन्तु उसका इस पवित्र स्थान से मुकाबला ही क्या ? यह तो तथागत की जीवन-घटनाओ और व्याख्यानो का केन्द्र-स्थल रहा है।

राजगिर नए-पुराने दो हिस्सो मे बँटा है, पुराना ५,००० वर्ष से लेकर २५०० वर्ष पहले तक का है, जबकि नया २४०० वर्ष पहले अजातशत्रु ने बसाया था। अब तो दोनो ही खण्डहर होगए है और उन पर नया शहर बस गया है।

पाली टीकाकार बुद्ध घोष ने लिखा है कि राजगृह के दोनो विभागो की जनसख्या १८ करोड है, यह नि.सन्देह अत्युक्ति है, फिर भी पुराने नगर के चारो तरफ १५ फुट चौडी पत्थर की ऊँची दीवार को देख कर ऐसा लगता है कि किसी समय यह बडा नगर रहा होगा। अबतक की खुदाई मे तीन स्तर (तल्ले) मिलते है। समयान्तर मे नीचे के स्तर को पाट कर ऊपर मकान बनते गए। पतली ईटो और मिट्टी का प्रयोग हुआ है। कुएँ तथा पानी जाने की नालियाँ भी हे। ऐसा लगता है कि ४००० वर्ष पहले मिस्र ओर सिन्धुघाटी की तरह पूर्वी भारत मे भी सभ्यता पनप चुकी थी।

तप्त कुण्डो की दायी ओर एक बहुत 'पुराना क्लद निवाप' नामक सरोवर है, जिसका वर्णन बौद्ध ग्रन्थो मे है।

पास मे ही वैभार पहाड़ी पर एक बहुत बडा चबूतरा है, जिसे जरासध की बेठक कहते हैं।

दूसरे दिन हम लोग गर्म कुण्डो मे स्नान करके यहाँ के प्रसिद्ध स्थान "मणियार मठ" को देखने गये । १८६१-६२ मे ही इस स्थान का पता प्रसिद्ध पुरातत्वविद कनिंघम को लग चुका था । उसने खुदाई शुरू की और जितनी महत्वपूर्ण वस्तुए यहां निकली, उनकी तुलना केवल मिस्र के राजाओ की कब्रो मे पाई गई वस्तुओ से ही की जा सकती है । मठ मे लोहे की चादरो का भी उपयोग हुआ है । इससे पता चलता है कि उस समय तक हम लोग लोहे का उपयोग करना सीख गए थे ।

यहाँ पर पलँग-लेटी माया की मूर्ति है, साँप लिपटे हुए गणेशजी की तथा छह भुजाओ वाली शिवमूर्ति है । उत्तरकालीन बनी हुई कुछ जैन-मूर्तियां भी है । अगर इन मूर्तियो मे से कुछ को वाशिंगटन, लन्दन या पेरिस के म्युजियमो को वेच दिया जाय, तो करोडो रुपये मिल सकते है ।

यही पास मे सोन भडार की गुफाएँ हैं । इनका निर्माणकाल १७००-१८०० वर्ष पूर्व का है, इसमे जैन साधु रहते थे । थोडा ऊपर जाकर जरासध का अखाडा है, इसकी मिट्टी चिकनी और सफेद है । यही भीम के साथ जरासन्ध का २८ दिनो तक मल्ल-युद्ध हुआ था । दूसरो की तरह हमने भी बल-सचार के लिए मिट्टी को लेकर शरीर पर मला ।

इन सवके सिवाय यहाँ शखलिपि, अजातशत्रु स्तूप, बलराम मन्दिर, विभिन्न समय के जेन मन्दिर, आम्रवन और मर्दकुक्षि आदि इतनी पुरानी वस्तुए देखने की है, जिनके लिए कम से कम दो-चार दिनो का समय चाहिए ।

अप्रैल से जुलाई तक चार महीनो को छोड कर बाकी आठ महीनो मे राजगिर मे यात्रियो की भीड लगी रहती है । रहने के लिए साधारण होटलो मे और निजी मकानो के सिवाय चार वडी-वडी जैन और बौद्ध धर्मशालाए हैं । अव तो १२ कमरो का सुसज्जित पर्यटन विभाग का अतिथिगृह वन गया है । दोहरे कमरे का चार्ज केवल ५) रुपये प्रतिदिन—वही भोजन-चाय-नाश्ते की व्यवस्था हे । चार्ज भी वहुत कम । हमलोग यही पर ठहरे थे ।

फ्रास मे विशी नाम का एक देहाती गाव है । वहा राजगिर की तरह का ही स्वास्थ्यप्रद पानी निकला । फ्रास की सरकार ने विश्व भर मे उस पानी का विज्ञापन करके करोडो रुपये वर्ष की आय कर ली । हमारे भारतीय धनी भी पेट की वीमारी के लिए प्रति वोतल पाच-छह रुपए देकर विशी वाटर खरीद कर पीते हे ।

राजगिर का पानी चर्म और पेट के रोगो के लिए हर दृष्टि से 'विशी', आस्ट्रिया और जर्मनी के चश्मो से ज्यादा स्वास्थ्यकर है, परन्तु राजगिर उपेक्षित-सा है, जव कि उन जगहो मे बहुत से होटल-मोटल, क्लव और रेस्तरा खुल गए हैं । लाखो विदेशी यात्री प्रति वर्ष जाकर रहते है, यहाँ तक कि कुछ भारतीय पर्यटक या वीमार भी जाते है ।

हमारे यहाँ कहावत है —"घर का जोगी जोगना, आन गाँव का सिद्ध ।"

गांधीजी का स्वराज्य

गाधीजी ने स्वराज्य मिलने के कुछ ही दिनों पहले कहा था कि अगर स्वराज्य मिल गया तो राष्ट्रपति भवन और राज्यपाल भवन अस्पताल, गरीब विद्यार्थियो के लिए आवासगृह तथा स्कूल व कालिजो के काम मे लाये जायेंगे । राष्ट्रपति और राज्यपाल साधारण भवनो मे रहेगे ।

हमे स्वराज्य मिले २० वर्ष हो गये लेकिन वे सब बडे-बडे प्रासाद आज भी उसी प्रकार हैं बल्कि उनपर होनेवाला खर्च पहले के अनुपात मे दुगुना-तिगुना हो गया है । इस समय राष्ट्रपति भवन का कुल खर्च ५० लाख रुपये प्रतिवर्ष है और राज्यपालो के आवास का औसत खर्च प्रतिवर्ष १ करोड़ रुपये है । इनके बारे मे कुछ चर्चा होती है तो यह कहकर टाल दिया जाता है कि विदेशो के विशिष्ट अतिथियो को ठहराने के लिए इन बडे-बड़े भवनो की आवश्यकता है ।

भारत से बहुत अधिक सम्पन्न देशो में भी अतिथियो के लिए इस प्रकार के महलो की व्यवस्था नही है । हमारे भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्री नेहरू जब इग्लैड जाते थे तो उन्हे वहाँ के किसी प्रसिद्ध होटल मे ठहरा दिया जाता था । मै जब सन् १९६० मे मास्को मे था उस समय मैंने यह देखा कि केन्द्रीय मन्त्री श्री पाटिल को मास्को के एक होटल मे ही ठहराया गया था ।

हम राष्ट्रपति और राज्यपालो की बात छोड भी दे तो हमारे केन्द्र ओर राज्यो के मन्त्री, राज्य मन्त्री, उप-मन्त्री और ससदीय सचिव, जिनकी सख्या ३५० के करीब है, इन सब पर भी करदाताओ की एक बहुत बडी रकम प्रति वर्ष खर्च होती है । इनके दफ्तारो का काम प्राय सचिव या अफसर देखते है, क्योकि इन सबको तो विभिन्न प्रकार के जलसो और उद्घाटनो से ही फुरसत नही मिलती जो ये कार्यालय के कामो मे समय दे सके । यहाँ तक की कई बार मन्त्री महोदय किसी पेट्रोल पम्प या बीडी के कारखानो का उद्घाटनकरने के लिए भी चले जाते है । इन दौरो के लिए मोटरो और अफसरो का खर्च तो सरकारी है ही, इसके अलावा डी० ए० और टी० ए० के रूप मे भत्ता अलग से बनता है ।

मेरी जान-पहचान के एक मित्र है, जिनके घर की स्थिति शुरू मे बहुत ही साधारण थी । मित्रो की सहायता और छात्रवृत्ति से वह किसी प्रकार पढ-लिख कर राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रो मे काम करने लगे । सन् १९५७ मे उन्हे विधान सभा का टिकट मिल गया और अपने क्षेत्र से वह चुन लिए गए । नए मन्त्रि-मडल मे उनको भी लिया गया । मैंने उनको बधाई का तार भेजा । उसके बदले मे धन्यवाद ज्ञापनका जो उनका पत्र आया, उसमे मुझे थोडा सा अहभाव लिए हुए कुछ औपचारिकता-सी लगी, लेकिन उस समय मैने इस बात पर ध्यान नही दिया ।

कुछ दिनो बाद जब मैं राजधानी गया तो उनके बँगले पर मिलने गया। फाटक पर वर्दीधारी सिपाही, अच्छी शानदार कोठी, सुन्दर करीने से लगाया हुआ बगीचा और पोर्टिको मे बड़ी सी-मोटर। अर्दली से पूछने पर पता चला कि साहब घर पर ही हैं। उनके निजी सचिव को अपना कार्ड दिया और ड्राइगरूम मे प्रतीक्षा करने लगा। वहाँ और भी पाच-सात व्यक्ति पहले से ही बैठे थे।

पुराना परिचय : नया रंग

ड्राइङ्गरूम का फरनीचर ऊँचे दर्जे का था। नीचे कीमती गलीचा बिछा था। कमरे मे गाधीजी नेहरूजी की तसवीरे टँगी थी, तीन-चार अपने अपने स्वागत-समारोहों की भी।

ड्राइङ्गरूम मे बैठा हुआ मैं सोचने लगा कि आखिर पिछले तीन महीनो मे ऐसी कौनसी बात हो गयी जिससे इनके और इनके परिवार के रहन-सहन मे इतना फर्क आ गया।

आधे घण्टे की प्रतीक्षा के बाद वह भीतर से आए। कब आया, कहाँ ठहरा आदि उन्होंने पूछा। मुझे ऐसा लगा कि उनकी बातो मे पुराने परिचय का अभाव और बडप्पन का आभास है। हो सकता है कि दूसरे बहुत से लोग वहाँ बैठे थे, इसलिए उनके सामने उन्होंने इस ढग से बात कहना जरूरी समझा हो।

थोडे दिनो बाद वह किसी सरकारी काम से कलकत्ता आए। उनके सचिव का फोन आया कि मन्त्रीजी आए हुए है और मुझे मिलने के लिए बुलाया है। मैं खुशी-खुशी उनके यहाँ जाता। लेकिन उनके सचिव की बात का लहजा कुछ जँचा नही और मैंने नम्रतापूर्वक टाल दिया। इसके पहले उनके पहुँचने की सूचना तार तथा पत्र द्वारा आ चुकी थी और ऐसा पता चला कि ये सूचनाएँ दूसरे कई लोगो को भी दी गई थी।

कुछ दिनो बाद मेरे एक मित्र ने मुझसे कहा कि वह कह रहे थे कि आप कलकत्ता मे न तो उनको लेने के लिए स्टेशन आए और न उनसे मिले ही, इसलिए वह आप से कुछ नाराज हैं।

जब नया मन्त्रिमण्डल बना तो उसमे वह नही लिए गए। उसके बाद, जैसा कि आमतौर से लोग करते हे, उन्होंने भी एक खादी की सस्था और सहकारी समिति की स्थापना कर ली और अपना काम देखने लगे।

एक दिन अचानक ही वह मुझे दिल्ली स्टेशन पर मिल गए। छोटा-सा बिस्तर उनकी बगल मे था और थर्ड क्लास मे जगह खोज रहे थे। वैसे मन्त्री बनने के पहले भी वह थर्ड क्लास मे ही यात्रा करते थे, पर उसबार मुझे देखकर वह बहुत झेप गए।

तीन वर्ष : तीन रूप

कहने का तात्पर्य यह है कि मैंने तीन वर्षो मे एक मनुष्य के तीन रूप देखे। पहला—खादी की ऊँची धोती, बिना इस्तिरी किए हुए कपडे, अभावग्रस्त परिवार, लेकिन हर प्रकार के सेवा कार्य करने के लिए तैयार। दूसरा—बगुले के पख से सफेद कपडे, सजा हुआ ताप नियन्त्रित बगला, बडी कार और तौर तरीको मे अभिमान की स्पष्ट झलक। अब तीसरा रूप था—बिगडी हुई आदतो के कारण बढे हुए खर्चे की पूर्ति के लिए खादी या सहकारी सस्था के नाम से कुछ कमाना और अगर उसमे भी सफल न हुए तो फिर वही साधारण रहन सहन, पर अब झेप के साथ। इनमे से कुछ अपवादस्वरूप उदाहरण भी हे, लेकिन उनकी सख्या बहुत ही कम है।

मैं एक दिन स्टेट ट्रेडिंग के गैरिज मे गया, जहाँ विदेशी दूतावास की मोटरे बिकती हैं। बहुत ही सुन्दर और बडी-बडी गाडियाँ थी। इम्पाला, कैडिलेक, मर्सीडीज और एक-दो रोल्स भी। जो सबसे कीमती और अच्छी गाडियाँ थी, वे पहले ही से मन्त्रियो तथा उपमन्त्रियो के

लिए सुरक्षित हो गयी थीं और बाकी के टेण्डर लिए गए थे जो ५० हजार से १ लाख रुपए तक के थे।

मारवाड़ी समाज की नई-पीढी के सम्बन्ध मे मैंने लिखा था कि आज के धनी युवक किस प्रकार विलासिता और बडी-बडी मोटरो मे रुपया बरबाद करते हैं। लेकिन यहाँ आने पर मैं सोचने लगा कि वे तो सब वैसे वातावरण मे ही पले है और बापदादो की कमाई का उनके पास धन है, लेकिन इन नेताओ और मन्त्रियो मे से तो बहुत से गाधीजी और सरदार पटेल के साथ रहे हैं, कई बार जेल भी गए है और अर्थ-सङ्कट के दिनो मे कभी-कभी भूखे भी रहे है। फिर इन सबके मन मे यह भोगलिप्सा कहाँ छिपी पडी थी।

हमारा देश गरीब है। इसमे दो मत नही है। आए दिन हमे विदेशो से अन्न या दूसरी आवश्यक वस्तुएँ उधार या सहायता के रूप मे मँगानी पडती हैं। इन दिनो मे तो हमारी भुखमरी के बारे मे विदेशो मे बहुत लज्जापूर्ण प्रचार हो रहा है। केरल मे अमरीका से भूखे लोगो की तसवीरे लेने के लिए पत्रकार आ रहे है। तो हालैण्ड के बच्चे भारत की भूखी जनता के लिए धन इकट्ठा करके भेज रहे है। इन्ही सब बातो का उदाहरण देकर देश के नेता कम खर्च करके बचत करने का उपदेश देते रहते है और साथ ही गाधीजी के उपदेशो और सादे जीवन के बारे मे भी बताते रहते है।

मैं नम्रतापूर्वक इन नेताओ और उपदेशको से पूछना चाहता हूँ कि धार्मिक या सामाजिक मान्यताएँ तो मनुष्य को नाममात्र के लिए समान रूप से लागू होती हैं फिर इनके लिए बड़े-बडे बगले, कीमती मोटरे, इनके बच्चो के लिए देहरादून और मसूरी के इङ्गलिश स्कूल, वर्ष मे दो-तीन बार किसी-न-किसी बहाने इनकी विदेश यात्राएँ और इनके आए दिन के समारोह किस प्रकार औचित्यपूर्ण है जो इनके दूसरे साथियो के लिए नही जिन्होने इन्ही की तरह देश की सेवा की थी, जेल भी गए थे, पर वे मन्त्री नही बन पाए इसलिए हर प्रकार के अभावो से ग्रस्त है। उनके बच्चो के लिए अच्छी शिक्षा तो दूर की बात है, साधारण स्कूल की फीस भी वे नही जुटा पाते।

मुझे फ्रास की साम्राज्ञी मेरी अतोनिता की याद आती है, जिसके बरसाई के महलो मे नित्य नए जलसे और नाच-गाने होते रहते थे, पर पेरिस की जनता भूख से मर रही थी। १९४६-४७ के चागकाई शेक के समय चीन की भी याद आती है, जब वह और उसके मन्त्री अमरीका के आए हुए अरबो रुपयो से मौज उडा रहे थे और चीन की जनता भूख, ठण्ड और पीडा से कराह रही थी।

कहते है, इतिहास की पुनरावृत्ति अवश्यभावी है। चाहे देश कोई भी हो फ्रास, चीन या भारत। इसलिए आजके शासको को समयानुसार इन सब बातो पर गभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। इतिहास से सबक लेना चाहिए और उन्हे अपने रहन-सहन के तथा अन्य खर्चों को उसी सीमा और आदर्श-पद्धति के अन्तर्गत ले आना चाहिए जो स्वराज्य मिलने के पहले काग्रेस ने निर्धारित की थी और जो गाधीजी की कल्पना और आकाक्षा थी।

वामपंथी कांग्रेसी

विश्व के प्रमुख राजनीतिज्ञो का मत है कि अगर १९५४ मे हम तिब्बत पर चीन का प्रभुत्व स्वीकार न करते और इस बात को यू० एन० ओ० मे ले जाते तो शायद चीन, जो आज इतना शक्तिशाली हो गया है, नही हो पाता। १९६२ मे जो भारत पर हमला हुआ, वह भी नही होता। क्योकि उनको तिब्बत होकर ही नेफा या लद्दाख आने का रास्ता मिला था और अब तो सदा के लिए ही हमारी उत्तरी सीमा पर खतरा हो गया है।

तिब्बत मे चीन को अपार सोना मिला और उसकी बढती हुई जनसख्या के लिए बहुत सी जमीन भी। अगर उस समय हम डटकर विरोध करते तो अमेरिका, ब्रिटेन और शायद रूस और पाकिस्तान भी हमारा साथ देते, क्योकि तिब्बत पर चीन का अधिकार होना इन सबके लिए भी समस्या की बात थी।

जानकार लोगो का कहना है कि उसके पीछे वामपथी काग्रेसी नेताओ की सलाह थी। वे पडितजी के नजदीक तथा विश्वासपात्र लोगो मे से थे।

१९६२ मे नेफा मे जिस प्रकार से चीनियो द्वारा हमारी फौजो को क्षति उठानी पडी, उसके लिए सारी जिम्मेवारी एक सर्वोच्च सैनिक अफसर की बताई जाती है—जो 'एकबार' तो लडाई के बीच मे ही बीमारी का बहाना करके दिल्ली चला गया था और दूसरी बार जब बोमडीला पर चीनी सैनिको का कब्जा हो गया, तेजपुर खाली करने का ऐलान हो गया तथा जिलाधीश द्वारा करेंसी नोट जला दिए गए। उस समय अपने सुसज्जित बगले मे आराम से सो रहा था। इस अफसर को भी, उस समय के सुरक्षामन्त्री मि० मेनन ने दूसरे बडे-बडे अफसरो को नाराज करके किसी खास कारण से ही इतना ऊँचा ओहदा दिया था। जबकि प्रत्यक्ष लडाई का उसे कुछ भी अनुभव नही था। चीनी आक्रमण के बाद इन वामपथियो का प्रभाव बहुत कुछ घट गया और मेनन को तो एक प्रकार से काग्रेस ससदीय दल ने सुरक्षा मन्त्री के पद से हटने के लिए बाध्य किया। कुछ समय बाद श्री केशवदेव मालवीय को भी सिराजुद्दीन काण्ड के कारण मन्त्रीपद से इस्तीफा देना पडा।

१९६४ तक के १२ वर्षो मे इन लोगो ने कुछ शक्ति सचय कर ली और नई दिल्ली से एक साप्ताहिक और एक दैनिक पत्र चालू कर दिया। इन पत्रो के भवन-निर्माण के लिए किस प्रकार सरकारी सस्थाओ द्वारा भाडे के रूप मे रुपया अग्रिम कर्ज दिया गया और किस प्रकार इनको इतना ज्यादा अखबारी कागजो का कोटा मिला, इन बातो को लेकर ससद मे कई बार चर्चा हो चुकी है।

इन दोनो पत्रो के सचालको मे दो-तीन तो खुले तौर पर साम्यवादी विचारधारा के थे,

परन्तु उन्होंने शायद भीतर रहकर कार्य करने मे ज्यादा सुविधा समझी, इसलिए ये कांग्रेस के सदस्य बन गए ।

इन दो पत्रो के सिवाय और भी छोटे बडे कई साप्ताहिक पत्र बम्बई और दिल्ली से निकलते है, जिनका काम उन मंत्रियो और सदस्यो को—जो दक्षिण पथी माने जाते हैं, गाली देना और उनके विरुद्ध गलत प्रचार करना है । यही नही, कुछ देशो की हर प्रकार से कटु आलोचना करना भी उनका एकमात्र ध्येय है । इनमे से एक साप्ताहिक तो कोर्ट मे मुकदमा करने पर माफी मांगने के लिए मशहूर हो चुका है ।

स्वर्गीय शास्त्री जी यद्यपि बहुत थोडे से समय ही प्रधान-मंत्री पद पर रहे, परन्तु उनके समय मे इन लोगो ने अपनी गतिविधि को सीमित रखा, क्योंकि शास्त्रीजी ने इनको कभी भी बढावा नही दिया । वे सुनते सबकी थे, परन्तु करते थे स्वय सोच-विचार कर ।

इनमे से एक दो तो शास्त्रीजी के नजदीक के मित्रो मे रह चुके थे और उनको आशा थी कि शास्त्रीजी से भी वे मन चाहा काम प्रगति और समाजवाद के नाम पर करा सकेंगे । परन्तु वे इनकी बातें मुस्कराते हुए ध्यान से सुनते । स्वय बहुत कम बोलते थे और उनके जवाब से यह भी पता नही चल पाता था कि उनका मत 'हां' मे है या 'ना' मे ।

जब शास्त्रीजी को अपनी तरफ नही झुका सके तो इन्होने कांग्रेस अध्यक्ष कामराज की खुशामद करनी शुरू की, क्योंकि इनकी धारणा थी कि कामराज का तथा उनके २-३ अन्य साथियो का शासन पर इतना बड़ा प्रभाव है कि उनकी राय के बिना किसी प्रकार का बडा कदम प्रधान-मंत्री या दूसरे मंत्री नही उठा सकेंगे ।

परन्तु शास्त्रीजी ने १९६६ के बजट के केवल एक मास पहले श्री टी . टी कृष्णमाचारी जैसे प्रभावशाली वित्तमंत्री को, यह जानते हुए भी कि उस पर श्री कामराज का वरद हस्त है, बिना किसी से सलाह लिए मंत्रिमण्डल से अलग कर दिया ।

प्रधान-मंत्री का पद सभालने के ६ मास के भीतर ही, उन्होने अपनी स्थिति इतनी सुदृढ कर ली थी कि बिना किसी गुट विशेष के सहारे के उनका अपना कांग्रेस संसदीय दल मे बहुमत हो गया था ।

दुर्भाग्य से शास्त्रीजी का असमय मे ही ताशकन्द में देहान्त हो गया ।

१९६६ की जनवरी मे जब श्रीमती इन्दिरा गांधी प्रधान-मंत्री चुनी गयी तो इन लोगो को आशा हुई कि अब इनके गुट को अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा वापस प्राप्त करने का मौका मिलेगा, क्योंकि इन्दिराजी, पंडितजी के साथ १७ वर्ष तक एक प्रकार से निजी सहायक की तरह रह चुकी थी । और उनके बारे मे लोगो मे यह धारणा थी कि उनका झुकाव वामपंथी विचारधारा की तरफ है ।

जब नए मंत्रिमंडल का चुनाव हुआ और इनमे से किसी को भी उसमे शामिल नहीं किया गया तो इन्हे निराशा के साथ-साथ नाराजी भी हुई ।

दुर्भाग्य से देश मे दो वर्षों से लगातार अकाल पड रहा है । दूसरी तरफ प्रतिवर्ष १ करोड जनसंख्या बढती जा रही है । १९ वर्ष के लम्बे समय मे भी हम अपनी खेती के उत्पादन के लिए सिंचाई और खाद की व्यवस्था भी नही कर पाए और हमे इस समय भी लगभग दो सौ करोड का आयात इन दोनो चीजो का करना पडता है । यही नहीं, हमे अपने सिक्के का भी अवमूल्यन इन्ही सब करणो से बाध्य होकर करना पड़ा है—चाहे उसका नतीजा आगे चलकर जैसा भी हो ।

यद्यपि हमारी अधिकांश समाजवादी देशो से मित्रता है और वे हमे वाजिब तौर पर हर प्रकार की सहायता भी देते है । परन्तु उनकी अपनी कठिनाइयाँ भी है, इसलिए इन्दिराजी ने बहुत सोच-विचार कर अमेरिका के साझे मे एक बहुत बडा खाद का कारखाना बैठाना तय किया था । इस बात को लेकर साम्यवादियो ने तो विरोध किया ही—साथ-साथ वामपंथी

काग्रेसियो ने भी कम शोर नही किया और नतीजा यह हुआ कि एक बार फिर यह अत्यन्त जरूरी मसला खटाई मे पड गया ।

हमें साम्यवादी पार्टी वालो की (चाहे वे रूसवादी हो या चीनवादी) देश के प्रति वफादारी है, इसमे सदेह है, क्योकि वे अन्तर्राष्ट्रीय तरीको पर सोचते है और ऐसी धारणा है कि उन्हे आदेश और खर्च के लिए रुपया भी बाहर से ही मिलता है ।

हमे ज्यादा अफसोस तो इन काग्रेसी वामपथियो की हरकतो पर है—जो सस्था के भीतर रहकर इसकी जडो को कमजोर कर रहे है । परन्तु अब एक प्रकार से इनका असली रूप प्रकट हो गया है । श्री मेनन तो काग्रेस छोडकर बाहर चले गए और दो-दो बार अपने पुराने क्षेत्र उत्तर-बम्बई से हार गए । दूसरो मे से भी अधिकाश सन् १९६७ के चुनावो मे हार गए ।

हमारे प्रधान-मत्री ने बहुत ठीक कहा है कि बढती हुई कीमतो को रोकने के लिए हमें हर प्रकार से अपना उत्पादन बढाना होगा, चाहे सरकारी क्षेत्र मे हो या निजी क्षेत्र मे ।

सरकारी क्षेत्र की अपनी एक सीमा है । वे मध्यम और छोटे-छोटे कारखाने नही सभाल सकते, इसलिए इन सबको निजी क्षेत्र को ही देने होगे । उनका उत्पादन जल्दी शुरू हो, इसके लिए दफ्तरो की देरी के लिए भी कुछ उपाय सोचना होगा ।

भुवनेश्वर काग्रेस के समाजवादी सिद्धान्तो का यह अर्थ तो कदापि नही था कि जनता आवश्यक वस्तुओ के लिए भी अभावग्रस्त रहे, क्योकि उनके उत्पादन के लिए सरकारी कारखाने नही बैठ सकते।और अगर हमारे प्रधान-मत्री ने इस दिशा मे सही कदम उठाया है तो उसे हर प्रकार से सहयोग देना दूर रहा—उल्टा उनपर इल्जाम लगाया जाता है कि उनका झुकाव दक्षिण पथ की तरफ हो रहा है ।

हमारा लक्ष्य प्रजातान्त्रिक समाजवाद का है और हम उसके लिए हर प्रकार से प्रयत्नशील भी है । परन्तु इसकी आड मे कतिपय व्यक्तियो द्वारा देश को अगर किसी गुट विशेष में ले जाने का प्रयत्न किया जाएगा तो हर समझदार और देशभक्त नागरिक उनका डट कर विरोध करेगा ।

भारतीय साम्यवादी

कहते है हिटलर ने अपने शासनकाल मे कई लाख यहूदियो की हत्या करा दी थी। स्टालिन के बारे मे भी इसी प्रकार की चर्चा है कि जो उसके विरोधी विचारो के थे उन सबको या तो साइबेरिया भेज दिया जहाँ वे ठण्ड और भूख से मर गए या गोली से मार दिए गए।

खुश्चेव के समय मे हङ्गरी मे जिस नृशंसता से साम्यवादी विरोधी विचार वालो को खत्म किया गया, वह थोड़े वर्षो पहले की ही बात है।

चीन के बारे में यद्यपि सच्चे समाचार नही मिलते फिर भी जानकर लोगो और समाचार पत्रों की मान्यता है कि वहाँ साम्यवादी शासन के बाद लाखो व्यक्ति मौत के घाट उतार दिए गए हैं।

पिछले वर्षों मे पूर्वी पाकिस्तान से भी जिस प्रकार बडी सख्या मे हिन्दुओ को भागकर आना पडा, वह छिपी हुई बात नही है। इससे यह सिद्ध होता है कि साम्यवाद और डिक्टेटरशिप मे विचार स्वातत्र्य को स्थान नहीं है।

हमने स्वतत्रता मिलने के बाद अपने देश की मूलभूत नीति प्रजातत्रीय समाजवाद की रखी और विभिन्न राजनैतिक दलो और समाचार-पत्रो को अपने विचार व्यक्त करने की पूरी स्वतत्रता दी, परन्तु कतिपय लोगों मे और पत्रो ने इसका नाजायज फायदा उठाया और देश की सार्वभौमिक सत्ता को मजबूत न बनाकर उल्टा कमजोर और विशृङ्खल करने मे लगे रहे।

मैने एक बार बम्बई के दो साप्ताहिक पत्रों के बारे में स्वर्गीय नेहरूजी का ध्यान आकर्षित किया जिनमें से एक तो उनके और दूसरा मुरारजी भाई के बारे मे बहुत ही झूठा और शरारती प्रचार करते रहते थे।

सब बाते सुनकर उन्होने मुस्करा कर कहा कि हम समाचार-पत्रो की स्वतत्रता के लिए ब्रिटिश सरकार से इतने वर्षो तक लडते रहे हैं। अब क्या स्वाधीन होने के बाद उन विचारो से दूर हट जाएँगे ?

स्वर्गीय नेहरूजी के मन्त्रिमण्डल मे कुछ ऐसे वामपथी विचारो के व्यक्ति रहे जिन्होने हर प्रकार से कम्युनिस्टो को बढ़ावा दिया। इनमे से एक मत्री ने तो गोला बारूद और हथियार बनाने वाले सरकारी कारखानो मे साम्यवादी मजदूर दल को मान्यता दे दी जबकि वहाँपर बहुमत भारतीय राष्ट्रीय मजदूर पार्टी (इन्टुक) का था। इतना ही नही, उसने साम्यवादी देशो और भारतीय कम्युनिस्टपार्टी को खुश करने के लिए प्रतिवर्ष अमेरिका जाकर वहाँ की सरकार को बिना वजह बुरा-भला कहने का एक प्रकार से नियम-सा बना लिया था।

भारतीय राजनीति मे दिलचस्पी रखने वाले यह जानते है कि चीन की नीयत सन् १९५६ से ही खराब थी। वह लद्दाखकी तरफ हमारी जमीन दबाता जा रहा था और साथ ही साथ सडके भी बनाता जा रहा था। उन सब महत्व की बातो के बारे मे नेहरूजी को हमेशा अन्धेरे मे रखा गया। क्योकि इन सबको चीन की नेक नीति और मित्रता पर पूरा विश्वास था।

हमारे शस्त्रास्त्र बनाने वाले कारखानो की क्षमता कम नही थी, परन्तु उनमे गोलाबारूद और शस्त्र नही बनाकर काफी परक्यूलेटर और सिगरेट लाइटर बनाये गये।

सने १९६२ के सितम्बर मे जब चीनियो ने अचानक ही देश की उत्तरी सीमा पर बडे पैमाने पर हमला किया और उसका जो नतीजा हुआ उसके बारे मे समाचार-पत्रो मे और ससद मे काफी चर्चा हो चुकी है, इसलिए हम उसको यहाँ दोहराना नही चाहते। ताज्जुब तो इस बात का है कि उस राष्ट्रीय सङ्कट मे भी कुछ साम्यवादी नेता चीन को कसूरवार नही बता रहे थे और उन्होने बडी-बडी मीटिंगो मे इस प्रकार के विचार भी प्रकट किए।

हमे विश्वास है कि दूसरे देशो मे इस प्रकार के देश-द्रोहियो को कडा से कडा दण्ड दिया जाता, परन्तु हमने केवल भारत सुरक्षा कानून बनाकर इनमे से कुछ को उसके अन्तर्गत पकडकर जेल भेज दिया और उन्हे प्रथम श्रेणी दी।

आश्चर्य तो यह है कि इन सबसे कही ज्यादा इस धारा के अन्तर्गत दूसरे लोगो को जेल भेजा गया जिससे एक प्रकार से उस धारा का महत्व ही खत्म हो गया।

कुछ महीनो पहले इन वामपथी साम्यवादियो को भी बिना शर्त के छोड दिया गया और आज वे न केवल नागरिक शान्ति और सुरक्षा के लिए ही खतरा उत्पन्न कर रहे है, अपितु देश के लिए आवश्यक वस्तुएँ बनाने वाले कारखानो मे भी तोड-फोड की साजिश कर रहे है।

इनके पास प्रचार, आए दिन के जुलूस, सभाएँ और चुनाव के लिए रुपया कहाँ से आता है? यह किसी से छिपी हुई बात नही है। चार वर्ष पहले जब बैंक ऑफ चाइना के कागजो की जॉच हुई थी, तब इस बारे मे बहुत से तथ्य वहाँ मिले थे, परन्तु उसके बाद क्या कार्रवाई की गयी, इसकी कोई जानकारी नही है।

जिन पार्टी की वफादारी देश के प्रति नही होकर दूसरे देशो के प्रति है (जिनमे से कुछ देश तो हमारे दुश्मन है) और वे अपनी गतिविधियो के लिए भी उन देशो से आदेश लेते रहते है, ऐसी पार्टियो को सरकार द्वारा मान्यता देना और उसके सदस्यो के कारनामो पर रोक-थाम नही लगाना, और वह भी इस सङ्कट के समय, जबकि हमारे अपने देश मे ही नागा एव मिजो हिंसात्मक कार्यवाही कर रहे है, और चारो तरफ से हम बाहर के दुश्मनो से घिरे हुए है, बहुत ही अवाछनीय है। इसबार के चुनावो मे काग्रेस के आपसी झगडो के कारण कई प्रान्तो मे हार हुई। बगाल और केरल मे अन्य दलो के साथ साम्यवादियो ने मिलकर सरकार बनायी है। बगाल भारत का प्रमुख औद्योगिक प्रान्त है, वहाँ जिस प्रकार से कारखानो पर मजदूरो द्वारा घेराव को खुले तौर पर प्रोत्साहन श्रम-मन्त्री द्वारा दिया जा रहा है, उसे साम्यवादियो का योजना-बद्ध तरीका कह सकते है।

देश सब वादो और मतो से बडा है। अगर इसकी अखण्डता पर किसी के द्वारा ऑच आती है, तो वह चाहे कितना ही प्रभावशाली दल या व्यक्ति क्यो न हो, उसे सिर उठाने के पहले ही कुचल देना चाहिए। यही तो ऋषि चाणक्य का मत था और यही भारत को सार्वभौमिक शक्ति दिलाने वाले सरदार पटेल का भी।

डायरी के कुछ पृष्ठ

क्या खोया—क्या पाया

रामेश्वर टांटिया

रामेश्वरजी मेरे घनिष्ठ मित्रो मे से एक थे। साधु प्रकृति, परोपकार मे तत्पर, बुराइयों से निवृत्त, द्वेष से वैराग्य, स्पष्ट वक्ता, साहित्य मे रुचि, साहित्यकारो से घनिष्ठता और सज्जनो से मैत्री यह उनकी सहज प्रकृति थी। व्यवसायी थे, पर मुझसे जब-जब साक्षात्कार होता, चर्चा होती थी राजनीतिक, सामाजिक या साहित्यिक। वेदान्त मे उनकी कोई विशेष गति नही थी, पर स्वभाव से वे धर्मभीरु और श्रद्धालु थे। सेवा का यदि आह्वान हो तो सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, सुविधा-असुविधा को वे नितान्त भूल जाते थे। ऐसे मित्र की अकाल मृत्यु से समाज मे एक स्थान रिक्त हो गया, जिसकी पूर्ति दुर्लभ है।

पर ससार का रवैया ही ऐसा है कि कोई ठहरता नही। कृष्ण गये, राम गये, बुद्ध गये, शकर गये और गाधी भी गये—ससार का प्रवाह जारी है और जारी रहेगा। इससे क्या कोई उद्विग्न हो और क्या शोक करे। हमारी जिम्मेदारी मे भगवान ने जो काम हमे सुपुर्द किया, उसे जब तक श्वास है, निर्वाह करते जाओ। यही भगवान का सदेश है।

इस संसार-चक्र को जो यथावत् घुमाता रहता है, उसका जीवन सार्थक है। जो इस चक्र को घुमाये बिना ही खाता है वह गीता के शब्दो मे पाप खाता है। रामेश्वरजी ने इस चक्र को घुमाते रखकर अपने जीवन को सफल किया, ऐसा मेरा मानना है।

जब जाने का समय आता है तो कोई टिक नही सकता। पर इसमे शायद कुछ अपवाद है। "विधि का लिखा को मेटन हारा।" "हानि लाभ जीवन मरन जस-अपजस विधि हाथ।" यह सब यथार्थ है इस पर विधि के जनक भी हम ही है—विधि का निर्माण हमारे कर्म ही करते हैं। योग वाशिष्ठ ने विधि की कटु आलोचना की है और पुरुषार्थ की महिमा गायी है। पर एक बार जब हमने विधि की रचना कर दी तो फिर उसके प्रहार को भुगतना ही पडेगा। ऐसा नियम है।

गीता मे दो श्लोक है, जो पठन और मनन करने लायक है। ये श्लोक ससार-निर्वाह को सुगम बनाने के निमित्त ही श्री कृष्ण ने कहे हैं। ससार निर्वाह अध्यात्म से भिन्न नही है, यह भी समझ लेना चाहिए।

यद्यपि इन श्लोको में अध्यात्म का विवेचन नही है, पर कुछ लोग कहते है कि हमारे सारे कर्म अध्यात्म से भिन्न नही।

'जो कुछ करो' सो सेवा।
खावो पीवो सो पूजा।

यह कबीर के वचन है—और सही है। क्योकि परमार्थ भावना से किये गये सभी कर्म ईश्वर की पूजा है। प्रधान भावना है, न कि कर्म।

इसी दृष्टि से गीता के ये दो श्लोक भी ससार निर्वाह को सुगम बनाने के लिए ही कहे गये है और अध्यात्म से भिन्न नही

नात्यश्नतस्तु योगोस्ति न चैकान्तमनश्नत ।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नेव चार्जुन ॥
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु.खहा ॥

न ज्यादा खाओ न कम। न ज्यादा सोओ, न अधिक जागो। युक्त आहार, युक्त विहार, युक्त चेष्टा, युक्त कर्म, युक्त सोना और युक्त ही जागना—यह क्रम ससार यात्रा के दु ख को हर लेता है। यह श्री भगवान् का कथन केवल पढने की चीज नही, आचरण की चीज है। अति को त्याग के सहज काम और सहज विश्राम से ससार यात्रा सुगम होती है, स्वास्थ्य अच्छा रहता है और काम भी डटकर होता है—यह भगवान् की प्रतिज्ञा है।

रामेश्वरजी की यह डायरी उनके जीवन की सम्पूर्ण झाकी नही है। मैंने उसका जो चित्र दिया है वह इस डायरी मे नही मिलेगा। रामेश्वरजी का भौतिक शरीर गया पर आत्मा तो अमर है। जब तक उनका जस है, वह प्रेरणा देता रहेगा। ईश्वर उनके जस की प्रतिष्ठा को बनाये रखे।

७ जनवरी, १९८१ घनश्याम दास बिड़ला

प्रस्तावना

रुपये के दो पहलू होते है। एक सामने का और दूसरा पीछे का। वे मैले हो सकते हैं। कभी-कभी साफ करके भी दिखाये जा सकते हैं। किन्तु रत्न मे अनेक पहलू होते है। वह ऐसा काटा और तराशा जाता है कि उसमे अनेक पहलू बन जाते है। वे सब चमकते है। उनके कारण उसे जिस कोण से देखो, वह अपनी चमक से देखने वाले को आकर्षित और आनन्दित करता रहेगा। मनुष्यो मे भी कुछ रत्न होते हैं, जिनके जीवन के अनेक पहलू होते हैं और नियति ने उन्हे इस प्रकार बनाया और संवारा तथा काटा और तराशा है कि हर देखने वाले को वे प्रभावित, आकर्षित और आनन्दित करते हैं। श्री रामेश्वर टॉटिया इसी प्रकार के पुरुष रत्न थे। श्री घनश्यामदास जी बिड़ला उन्हें अधिक निकटता से जानते थे। वे उनके चरित्र के कई पहलुओ से परिचित थे। प्रस्तावना में उन्होंने उनके व्यक्तित्व, सेवा भावना और राजनीतिक रुचि का इतना सजीव वर्णन दिया है; किन्तु मैं उनकी साहित्यिक अभिरुचि से ही परिचित होने का अवसर पा सका। उनके अन्य क्षेत्रो के कार्य से अपरिचित रहा। अतएव, मैं उनकी साहित्यिक गतिविधियों पर ही कुछ कह सकता हूँ।

श्री रामेश्वर जी टॉटिया का मेरा परिचय दिल्ली मे राष्ट्र कवि मैथिलीशरण जी गुप्त के यहाँ हुआ। गुप्त जी मेरे बहुत पुराने मित्र थे। मैं उन्हे उस समय से जानता था, जब उन्होने 'सरस्वती' मे लिखना आरम्भ किया था। अतएव उनसे काफी घनिष्टता थी। उन्होंने मुझे टॉटिया जी का परिचय बडे प्रशंसापूर्ण शब्दो मे कराया। उस समय टॉटिया जी भारत की ससद् के सदस्य थे और दिल्ली ही में अधिकतर रहते थे। मुझे राजनीति मे रुचि नही है। मुझमे उनमे दो बातें सामान्य थी. साहित्यिक अभिरुचि और भ्रमणप्रियता, मैं उत्तरी गोलार्द्ध के अनेक देशो की यात्रा कर चुका था। टॉटिया जी भी बडे भ्रमणशील थे। किन्तु एक बात में वे मुझसे अधिक थे। मैंने अपनी यात्राओं का वर्णन नही लिखा। टॉटिया जी व्यवसायी भी थे। अतएव उनके सब काम सुव्यवस्थित होते थे। उन्होंने अपनी यात्राओ के अनुभव विवरण सहित लिख छोडे थे। मैं उन दिनो 'सरस्वती' का सम्पादन करता था। मैंने उनसे अनुरोध किया कि वे अपनी यात्राओं के कुछ सस्मरण 'सरस्वती' के लिए लिखें। शायद मैथिली शरण जी ने भी उन्हें यह सलाह दी थी। उन्हे लेखन का अभ्यास ही न था, वे अच्छे लेखक भी थे, उन्होने कृपाकर मेरा अनुरोध स्वीकार कर लिया और 'सरस्वती' के लिए वे अपनी यात्राओ के अनुभव लिखने लगे। उनके कई यात्रा-वर्णन धाराप्रवाह रूप से 'सरस्वती' मे प्रकाशित हुए और वे पाठकों को बड़े रुचिकर मालूम हुए। इसका कारण यह था कि एक तो उनकी भाषा बडी सरल और प्रवाहपूर्ण होती थी, दूसरे वे विदेशो के स्थानो और वस्तुओ को भारतीय दृष्टि से देखते थे और उन बातो पर प्रकाश डालते थे जो सांस्कृतिक, राजनीतिक या आर्थिक

दृष्टि से भारत के लिए महत्वपूर्ण है। उनके समान व्यस्त व्यक्ति के लिए ऐसे सुन्दर यात्रावर्णन लिखना बहुत बडी बात थी।

व्यवस्थित जीवन व्यतीत करने वालो मे कुछ लोगो को दैनन्दिनी (डायरी) लिखने की आदत पड जाती है। टॉटिया जी ने भी १६३२ से दैनन्दिनी लिखना आरम्भ कर दिया था, और सन् १६७७ तक लिखते रहे। शायद वे उसे नियमित रूप से प्रतिदिन नही लिखते थे, किन्तु दो-चार दिन का अन्तर भी कभी-कभी पड जाता था। उनका उद्देश्य इसे छपाने के लिए लिखना नही था। इसलिए इसमे अपने लिए महत्व की वाते—विशेपकर व्यवसाय और परिवार सम्वन्धी ही—अधिक लिखते थे। वर्तमान सस्करण सम्पादित सस्करण है। इसमे बहुत से अंश, जो पाठको के लिए अनावश्यक समझे गये है, निकाल दिये गये हैं। किन्तु जो व्यक्तिगत प्रवृतियाँ है वे उनके चरित्र, दृष्टिकोण और व्यक्तित्व को आलोकित करती है। उनसे हम पाते है कि वे कुशल व्यापारी, सरल व्यक्ति, समाजसेवी, सद्गृहस्थ और सामाजिक प्राणी थे। उनकी समाज-सेवा वहुमुखी थी, वे शिक्षा और विधवा विवाह मे विशेष रुचि लेते थे। पुस्तके पढने का शौक उन्हे आरम्भ ही से था और उनकी पठन-रुचि विस्तृत थी, किन्तु लेखन का शौक उन्हे बहुत वाद मे पैदा हुआ। सन् १६४७ के २१ दिसम्वर को वे लिखते है—

> "वगाल एशियाटिक सोसायटी मे महादेवी वर्मा का भाषण सुना। वहुत विदुषी है, कविता तो अच्छी करती ही है। मेरे मन मे आता है मैं भी कुछ लिखूँ। कौन मुझे याद रखेगा ? डायरी के आज वाले पन्ने पर लिखा है 'विदुषी पुजै सर्वत्र'। बात सही है। मुझे कुछ व्यापारी लोग जानते होगे, परन्तु विद्वान् को तो गॉव-गॉव के वच्चे भी जानते है, इज्जत करते है, मुझे थोडा समय लिखने-पढने मे देना चाहिए।"

इस प्रकार वास्तव मे टॉटिया जी श्रीमती महादेवी वर्मा के एकलव्य शिष्य प्रमाणित होते है। उन्हे महादेवी जी से प्रेरणा मिली, उसके कारण ही वे अपने व्यस्त जीवन मे थोडा-वहुत लेखन कार्य कर सके।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह डायरी 'स्वान्त सुखाय' थी। प्रकाशन के लिए नही। फिर भी उनकी तीव्र व्यावहारिक दृष्टि के कारण अनेक वातों पर प्रकाश पडता है और मालूम होता है कि वे कितने दूरदर्शी थे। १६ दिसम्वर, १६६२ को वे तेजपुर-गौहाटी की प्रविष्टि मे लिखते हैं—

> "यहाँ का ढग ठीक है। लोग कारवार मे जम रहे है। परन्तु सवने डिफेन्स को मजबूत बनाने पर जोर दिया। पूर्वी पाकिस्तान से बीच-बीच मे हिन्दुओ का आना चालू है और मुसलमान भी सीमा मे आकर वसते जा रहे है, इस वात की भी चर्चा हुई, आगे चलकर इससे प्राब्लम वढेंगे।"

उन्होने स्थिति को कितने सही ढग से समझा था और कितनी सही भविष्यवाणी की थी, वह असम के वर्तमान आदोलन और नाजुक स्थिति से भलीभाँति प्रमाणित है। जिस बात को एक यात्री के रूप मे वे समझ गये, उसे वहाँ के शासक नही समझ सके और यदि समझे भी तो उन्होंने भावी विपम स्थिति को देखने का कोई प्रयत्न नही किया।

टॉटिया जी राजस्थान से ससद् के सदस्य भी चुने गये थे। वैसे तो राजनीति से उनका पहले से ही सम्पर्क था। श्री जयप्रकाश नारायण और श्री लोहिया से उनकी घनिष्ठता थी, उनकी सहायता भी करते थे, किन्तु उन्होने कभी राजनीति मे प्रत्यक्ष भाग नही लिया। ससद् के सदस्य होने के वाद उन्हे उसमे थोडी-बहुत रुचि लेनी पडती थी, किन्तु वे कभी राजनीति मे डूबे नही, इसका कारण यह था कि उन्हे राजनीति का वातावरण प्राय अप्रिय लगा। उन्होने कही-कही लिखा है कि राजनीति मे झूठ बहुत बोलना पडता है। उस वातावरण मे वे रचपच नही सके। १३ मई, १६६२ को वे लिखते है—

"इन दिनो दिल्ली मे घटनाएँ तेजी से बदली हैं, मन मे बहुत तरह के विचार आते रहे। राजनीति मे आना मेरे जेसो के लिए ठीक नही, न कोई अकुश है और न ही नैतिकता। स्वार्थ का जोर ज्यादा चलता है। अब पीछे हटना सम्भव नही, देखे, क्या होता है।"

२० नवम्बर, १९५८ को लिखा है—

"मन मे विचार आता है, व्यापार छोड राजनीति मे आया, परन्तु इसमे ज्यादा उलझन है, झूठ ज्यादा बोलता हूँ, इससे बचकर रहना चाहिए।"

किन्तु मन की बात कभी-कभी निकल ही जाती थी। निजी वार्तालाप मे भी सत्य कहने मे सकोच होता था। ४ नवम्बर, १९५८ को लिखते है—

"भागीरथ जी के गया। वहाँ जे० पी० आये। फिर घर आ कर १०-१५ बजे से एक घटा जे० पी० के पास रहा। वहाँ मैने पडित जवाहरलाल नेहरू की कडी आलोचना की। बात सही भले ही हो, पर यह उचित नही था, मैने महसूस किया। आगे से सावधान रहूँगा।"

राजनीति मे रहनेवालो को निजी कक्ष मे भी मन की बात करने मे कितना सयम रखना चाहिए, चाहे भीतर-भीतर घुटता ही क्यो न रहे। वाक्स्वतन्त्रता राजनीति में कितनी रह जाती है, यह इससे स्पष्ट है।

अपने ही को वे राजनीति के लिए अनुपयुक्त नही समझते थे, प्रत्युत साहित्यकारो को भी ससद् मे लाना उन्हे ठीक नही मालूम हुआ। वे १ मार्च, १९६० को वे लिखते है—

"शाम को मैथिलीशरण गुप्त से मिलने गया। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से मिला। अग्नियुग के इन कवियो को राज्य सभा, लोकसभा मे लाना ठीक नही हुआ। मुझे ऐसा लगता है कि इनकी प्रतिभा कुठित हो रही है। साहित्य के साधक को राजनीति से क्या मतलब? कालिदास, सूर, तुलसी, भूषण ने राजनीति से अपने को दूर ही रखा था। रवीन्द्र, शरद, प्रेमचन्द ने भी।"

चीन के आक्रमण के समय की इनकी कुछ प्रविष्टियाँ ऐतिहासिक महत्व की है। इनमे से कुछ बानगी देखिए—

१३ अगस्त, १९६२ : "दिन मे पार्लियामेट गया। दिन मे लद्दाख पर डिबेट था। एथनी बहुत अच्छा बोले, पडित्त जी के सामने भले ही कोई न बोले, मगर लाबी मे चर्चा होती है कि उनकी फॉरेन पॉलसी फेल कर रही है। चीन के मामले मे उनकी ढिलाई रही और बहुत-सी बाते छिपाई गयी। परन्तु अब तो सब सहना पडेगा। चीन दबाता जाएगा।"

१४ अगस्त, १९६२ : "दो दिनो से पार्लियामेट मे क्वेश्चन कम हो रहे है। लाबी मे चीन के मामले पर खूब बाते होती है। चीन बडी लडाई की तैयारी मे है। पिछले महीने मुरारजी भाई ने दस हजार फुट से ऊपर रहने वाली मिलिट्री के लिए अतिरिक्त भत्ते की मजूरी दे दी है। परन्तु मिलिट्री वाले आधुनिक हथियारो के लिए पॉच-छह अरब रुपयो की जरूरत बताते है। मुरारजी भाई ने कहा है कि रक्षामन्त्री (श्री कृष्ण मेनन) इस मामले को केबिनेट मे रखे। पडित जी का कहना है कि इसकी जरूरत नही, चीन हमला नही करेगा। समझ मे नही आता कि क्या सही है और क्या गलत।"

९ अक्तूबर, १९६२ : "नेफा का कमाण्डर लेफ्टिनेट-जनरल कौल को बनाया गया है। अनुभवहीन आदमी है। ऐसा लगता है, भारत के दुर्दिन आ रहे है।"

२१ अक्तूबर, १९६२ : "खबर आई, चीन ने नेफा पर हमला कर दिया है। मन मे बहुत दुख हुआ। अपनी कुछ भी तैयारी नही है, हथियार भी नही, सेना ने पिछले जून महीने मे,

सातवी बार रक्षा मन्त्रालय को हथियार और सामान की कमी के बारे मे चेतावनी दी थी। हम लोगो ने कृष्ण मेनन से भी मिटिंगो मे कहा, परन्तु उसने किसी की नही सुनी, पडित जी ने उसका फेवर करके बहुत बडा खतरा उठा लिया है।"

२३ अक्तूबर, १६६२ : "पडित जी के भाषण से लोगो मे निराशा है। बाजार मे शेयरो के भाव बहुत तेजी से टूटे, तरह-तरह की अफवाहे आ रही थी।"

२४ अक्तूबर, १६६२ : "सारे दिन लडाई की चर्चा कि क्यूबा मे अमरीका और रूस तथा हिमालय मे भारत तथा चीन लड रहे है, परन्तु रूस और अमेरिका तो आपस मे नही लड रहे है, मुझे तो दिखावा लगता है। चीन ने हमारे ऊपर धावा बोल दिया है। दुनिया में कमजोर रहना अपराध है। बाजार मे बहुत घट-बढ़ है। मन मे अशान्ति है। पडित जी के साथ-साथ सारे कांग्रेसी नेता, एम० पी० वगैरह भी नेफा काण्ड के लिए जिम्मेदार ठहराये जाएँगे। मन में दुख-सा हो रहा है।"

२५ अक्तूबर, १६६२ : "सुबह के० एल० ढाँढनिया के यहाँ गया, और लोग भी थे। ड्राफ्ट बनाया कि दीवाली पर रोशनी वगैरह न की जाए। पडित जी की अपील है। मन मे अपने को दोषी पाता हूँ, देश के लिए कुछ करने का मन हो रहा है। हमारे बहुत से जवान मरे और घायल हुए बताते है। हाथ मे मामूली हथियार, बदन पर जरूरत के गरम कपडे तक नही, ठड मे हाथ-पैर की उँगलियाँ गल गयी।"

२६ अक्तूबर, १६६२ : "सुबह अखबारो मे देखा कि टूएनसाँग चला गया। चीन की सेना बाढ़ की तरह आ रही है। आसाम पर खतरा उतरने से पाकिस्तान भी झमेला खडा कर देगा, मन मे दुःख होता है। अपना देश हारता जा रहा है। हमारे जवानो की जान हमारी लापरवाही से जा रही है। कल जो स्टेटमेट मैने दिया था, वह अखबारो मे आया।"

२७ अक्तूबर, १६६२ : "हम लोगो ने वार-फण्ड मे एक लाख रुपया देने का तय किया। पिताजी को भी जँच गया।"

३ नवम्बर, १६६२ : "लडाई की हालत अच्छी नही है। नेफा के कमाण्डर कौल तो ११ तारीख को ही दिल्ली आ गये थे। उन्होने पडित जी और मेनन को बता दिया था कि चीन की घुसपैठ हो चुकी है और उन्हे दबाना बूते के बाहर है। इस बीच मैने अखबारों को कई लेख भेजे और पत्र भी ससद् मित्रो को लिखे हैं। देखें क्या होता है। लद्दाख मे हमारी सेना ने चीनियो को बढने नही दिया। कौल को फिर से नेफा कमान पर भेजा गया है।"

६ नवम्बर, १६६२ : "सारे दिन मेनन के बारे मे लोगो मे चर्चा रही, ऐसा लगता है, पार्टी के सदस्य और ससद् सदस्यो को पछतावा है।"

७ नवम्बर, १६६२ : "शाम को पार्टी मीटिंग मे पंडित जी ने मेनन को हटा दिया। एक प्रकार से मजबूर थे, मेनन के हटने से सबको खुशी हुई।"

८ नवम्बर, १६६२ : "कल पार्टी मीटिंग मे पडित जी ने मेनन को छोड देने को कह दिया। मेरा भी इसमे हाथ रहा। मुझे सन्तोष है। शायद पडित जी नाखुश होगे।"

२० नवम्बर, १६६२ : "दिन मे लडाई के बारे मे खबरे सुनता रहा। मन खिन्न हो रहा है, दुनियावाले हम लोगो पर हँसते होगे। ४ बजे नेहरू जी से मिला। और भी लोग थे। रात मे महावीर त्यागी आये। नेफा के मामले से वे बहुत चिन्तित थे।"

२१ नवम्बर, १६६२ : "सुबह उठते ही अखबारो मे देखा कि चीन ने "सीज़ फायर" कर दिया है, दिन मे नेहरू जी का स्टेटमेट सुना, कुछ दम नही था। दुनिया ने देख लिया, हमारी विदेश नीति कितनी कमजोर है और विदेशो मे हमारा कितना प्रभाव है। पार्लियामेट में डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी ऐसा कोई जोरदार विरोध करने वाला होता तो पडित जी सम्हले रहते और देश का भला होता। लोहिया जी बोलते है, परन्तु उनकी चोट पडित जी पर व्यक्तिगत रहती है। चीन को जो करना था कर दिया, जमीन तो हडप

ली ।"

अब ये इतिहास की बाते हैं, किन्तु इनका महत्व यह है कि ये बाते टॉटिया जी के समान काग्रेसी ससद् सदस्य ने अपनी निजी डायरी मे लिखी हैं, जो प्रकाशन के लिए नही लिखी जाती थी। इन प्रविष्टियो से मालूम होता है कि टॉटिया जी कितने देशभक्त थे, उन्हे देश का कितना दर्द था और उनकी दृष्टि कितनी स्पष्ट थी, नेहरू जी के अनुयायी होते हुए भी वे देश के हित में उनकी जिन बातो को उचित नही समझते थे, उन्हें अन्ध-भक्ति के कारण सही नही मान लेते थे। अनुशासन मे रहते हुए वैधानिक रूप से उन बातो का खुल कर विरोध भी करते थे, जैसा कि पार्टी मे उन्होने कृष्ण मेनन का किया।

जैसा कि मैं कह चुका हूँ, यह डायरी मूलत. व्यक्तिगत है। इसमे सार्वजनिक घटनाओ और बातो को बहुत कम स्थान मिला है। फिर भी उपर्युक्त प्रकार की बाते यत्रतत्र बिखरी हुई मिलती हैं, जिनसे टॉटिया जी की कुशाग्र बुद्धि, देश-भक्ति और दूरदर्शिता का प्रमाण मिलता है।

इस डायरी को सम्पादित करा कर उनके सुपुत्र और परम स्नेहभाजन पुत्र श्री नदलाल जी ने प्रकाशित कर पितृ-ऋण का केवल आशिक परिशोध किया है। जैसा कि श्री रामेश्वर जी टॉटिया ने स्वयं लिखा है, उनकी कामना अपने यश शरीर को जीवित रखने की थी, यह डायरी वह काम कुछ ही सीमा तक कर सकती है। मेरा उनका साहित्यिक परिचय और सम्बन्ध था। अनेक अवसरों पर मुझसे उनसे साहित्यिक विषयो, साहित्य की आवश्यकताओ और उनके लेखन तथा इसकी शैली मे काफी चर्चा हुई। इस डायरी का प्रकाशन स्वागत करने योग्य है, किन्तु उनकी आत्मा के सन्तोप और शान्ति के लिए कुछ ऐसा स्थायी महत्व का साहित्यिक कार्य किया जाए, जो उनके यश शरीर को जीवित रखे. "कीर्तिर्यस्य स जीवति"। मैं आशा करता हूँ कि उनके सुपुत्र इसी डायरी को प्रकाशित कर अपने कर्तव्य की इतिश्री न समझ लेगे।

श्री रामेश्वर जी टॉटिया से मेरे मधुर सम्बन्ध थे। मैं उनके निस्पृह साहित्य प्रेम और हिन्दी साहित्य के उन्नयन की अभिलाषा का हृदय से आदर करता था। उनके प्रति अपनी भावना और सम्मान को व्यक्त करने के लिए अस्वस्थ होते हुए भी मैं यह भूमिका लिखने को राजी हो गया, और मुझे प्रसन्नता है कि इस प्रकार मैं अपने दिवगंत आदरणीय मित्र के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करने का अवसर पा सका।

—श्रीनारायण चतुर्वेदी

९ मार्च १९८१
५२, खुर्शेदबाग, लखनऊ

यह रचना

रामेश्वर टाटिया से मेरा सम्पर्क सन् बयालीस के आन्दोलन के अन्तिम चरण मे आन्दोलन के कार्यक्रम के सिलसिले मे कलकत्ता जाने और रहने के समय हुआ। उसके बाद से यह सम्बन्ध निकटतर होता गया। बढता गया।

रामेश्वर जी एक सफल व्यावसायी और उद्योगपति थे। राजनीति के क्षेत्र मे भी वे सेवा की भावना से आये और उन्हे सुयश मिला। वे सहृदय थे। साहित्यिक सहृदय होता है। रामेश्वर जी की रचनाओ मे उनका हृदय बोलता है। इस कारण वे अपनी साहित्यिक रचनाओ के लिए सर्वाधिक याद किये जाते है। मन को छू जाने वाली शैली और सरल शब्दो मे बात कहने की उनमे अद्भुत क्षमता थी। लेखक रामेश्वर टाटिया को जितने लोग जानते थे, उतने लोक सभा के सदस्य अथवा व्यापारी उद्योगपति के रूप मे नही जानते।

साधारणत व्यवसायी और राजनीतिक साहित्य से दूर हटते जाते है, कुछ तो परिस्थितियोवश समयाभाव के कारण और कुछ रुचि परिवर्तन के कारण। रामेश्वर जी मे ऐसा नही देखा गया। ज्यो-ज्यो उनका कार्य क्षेत्र विस्तृत होता गया साहित्य के प्रति उनकी रुचि बढती गयी। अध्ययनशील वे शुरू से रहे, काफी पढते थे। हिन्दी, बगला और अग्रेजी की अच्छी जानकारी थी। विभिन्न भाषाओ के अनूदित साहित्य को भी पढा करते थे। नई से नई पुस्तके पढ डालते। रुचि के अनुकूल किताब लगी और मन मे यह हुआ कि इसे और भी लोग पढे तो उस पुस्तक की एकत्र प्रतियाँ खरीद कर मित्रो मे बाँट देते।

डायरी वे नियमित रूप से लिखते थे। किन्तु इसकी जानकारी किसी को नही थी। शायद परिवार के कतिपय सदस्यो को छोडकर बहुत कम ही लोग जानते हो कि वे जहाँ कही भी जाते, डायरी अवश्य साथ रखते और लिखते। घुमक्कडी और भुलक्कडी स्वभाव के थे ही। कभी-कभी इधर-उधर रख देते। कई दिनो बाद जब मिल जाती तो याद्दाश्त से पिछले दिनो की बाते नोट करते।

रामेश्वर जी की डायरियो मे उनकी सहृदयता प्रकट होती है, अत्यन्त सूक्ष्म रूप मे। विवरण या वर्णन नही मिलते। बडी से बडी घटनाओ के बारे मे उन्होने बहुत ही कम लिखा है। हाँ, यात्रा सम्बन्धी विवरण अपेक्षाकृत बड़े अवश्य है। इस प्रकार उनकी डायरियाँ नोट्स के रूप मे है, किन्तु इनमे बहुत सार है। अन्तर्द्वन्द्व, अपनी दुर्बलताओ की स्वीकृति, उद्देश्य और लक्ष्य के लिए किये गए प्रयासो के अनेक उल्लेख है। किसी पर आक्षेप करना उनका स्वभाव नही था। व्यवसायी, सामाजिक एव राजनीतिक कार्यकर्त्ता के रूप मे वे बहुतो के सम्पर्क मे आये। सहमति-असहमति का होना या रहना स्वाभाविक है किन्तु ऐसा लगता है कि उन्होने कार्य और उसके परिणाम को अधिक महत्व दिया, अपनी भावनाओ को बडा नही समझा। सम्भवत इसी कारण वे व्यक्ति की आलोचना के प्रति उदासीन रहे।

डायरियाँ व्यक्ति की मनोभावनाओ और अन्तर्मन की प्रतिक्रियाओ का सही परिचय प्रस्तुत करती है, बशर्ते कि ईमानदारी से लिखी गई हो। सन् १६४१ से १६७७ तक की डायरियाँ नि सन्देह एक विस्तृत काल खण्ड की है जिनमे समाज, राजनीति, अर्थ-व्यवस्था की तेजी से वदलती तस्वीरें मिलती है। मोती के दानों सी घटनाएँ अलग-अलग बिखरी सी है, किन्तु सूत्र मे पिरो देने पर बडे काम की साबित हो सकती है। एक विशेषता यह भी है कि कुछ ऐसी वाते है जिनका उल्लेख अन्यत्र कही नही मिलता।

श्री टाटिया ने सन् १६३७ तक कठोर परिश्रम कर व्यवसाय के क्षेत्र में पैर जमाया और सन् १६४७ आते-आते आर्थिक कठिनाइयों के प्रति वे आश्वस्त हुए। वे व्यापार मे समृद्ध हुए और समाज मे प्रतिष्ठावान। बडे लोगो से सम्पर्क वढने लगा। समाज सुधार और जनसेवा के कार्य मे अधिकाधिक सक्रिय होने लगे। अनेक सामाजिक, शिक्षण और सेवा-सस्थाओ से जुड गये। कलकत्ते की मारवाडी रिलीफ सोसाइटी के माध्यम से उन्होने तन, मन, धन से जो सेवाए अर्पित की उनका जिक्र डायरियो मे नही मिलता। केवल कही कही उल्लेख भर है। हाँ, इसी दौरान राजस्थान मे सूखा और अकाल के लिए राहत पहुँचाने के सन्दर्भ मे उनके प्रयासो के कुछ विवरण मिल जाते हैं। इनके पढने पर पता चलता है कि वे अखिल भारतीय स्तर के एव राजस्थान के शीर्षस्थ राजनीतिज्ञो के सम्पर्क मे आते गये। परिणाम यह रहा है कि सन् १६५७ मे वे लोकसभा के लिए सीकर निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित हुए।

यही से उनके जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ जो सन् १६६७ तक चलता रहा। इन दस वर्षो मे रामेश्वर जी दो वार लोकसभा के लिए सदस्य निर्वाचित हुए और काग्रेस की समदीय पार्टी के कोषाध्यक्ष के सम्मानित तथा दायित्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित रहे। सरकारी और गैर-सरकारी कई आयोगो और समितियो के सदस्य भी बनाये गये। इन वर्षो की डायरियो मे उनके अन्तर्द्वन्द्व की जो रेखाएँ मिलती है, उनसे स्पष्ट हो जाता है कि देश की राजनीति के अन्त पुर का जो रूप उन्होने देखा उससे उन्हे बडी निराशा हुई। सन् १६६७ के चुनाव मे भारत के नौ राज्यो मे काग्रेस की हार जनता के असन्तोष एव आक्रोश की एक प्रतिक्रिया थी। काग्रेस की राजनीति राष्ट्र कल्याण से हटकर दलगत स्वार्थो मे सिमटने लगी और फलस्वरूप श्री टाटिया इस चुनाव में निर्वाचित नही हो सके। उन्हे राज्यसभा अथवा लोकसभा के लिए उपचुनाव मे खडे होने के प्रस्ताव मिले किन्तु उन्होने समय की गति को देखते हुए सक्रिय राजनीति से पृथक् रहना ही उचित समझा।

सन् १६६७ से १६७७ ई० तक का समय उनके जीवन का अन्तिम अध्याय है। दिल्ली की राजनीति ने उनके मन मे वितृष्णा उत्पन्न कर दी थी। उनके लिए समाज-सेवा ही समाज-कल्याण का सशक्त माध्यम था। लोकनायक जयप्रकाश नारायण तथा राममनोहर लोहिया आदि वरिष्ठ नेताओ के सान्निध्य और सम्पर्क मे सन् १६४० से रहने के कारण उनका दृष्टिकोण स्वस्थ समाजवादी था। उनकी राजनीति दलबन्दी की पैतरेबाजी नही थी। ससद सदस्य चुने जाने पर उन्हे आशा थी कि जहाँ से वे निर्वाचित हुए, जिन्होने उन्हे अपना प्रतिनिधि चुना, कम से कम उनके प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकेगे। किन्तु दिल्ली की राजनीति मरीचिका-सी लगी और वे उससे जो हटे तो फिर कभी उधर नही मुडे। उन्होने भ्रमण, अध्ययन और लेखन पर अपने को केन्द्रित करना शुरू कर दिया। 'मेरा बचपन, मेरा गाँव' नाम से शैशव से किशोरावस्था तक के अपने भावभीने सस्मरण लिख डाले।

किन्तु अध्ययन और लेखन मे वाधा पड ही गयी। उत्तर प्रदेश के और देश के विशाल उद्योग-समूह ब्रिटिश इडिया कॉरपोरेशन, कानपुर मे चेयरमैन और मैनेजिग डायरेक्टर नियुक्त हुए। भारत का यह एक बृहत् औद्योगिक सस्थान है। इसके अन्तर्गत सूती, ऊनी तथा चीनी मिले है और चमडे का तथा इजिनियरिग उद्योग भी। उन दिनो अव्यवस्था के कारण इस सस्थान की दुरव्यवस्था थी, काफी नुकसान लगता जा रहा था। श्री टाटिया ने अपनी

सूझ-वूझ और व्यापार-कौशल से इसे डूबने से बचा लिया और संचालन-प्रबन्ध को व्यवस्थित कर दिया।

रामेश्वर जी आत्मनिष्ठ उद्योगपति नही थे। वे सही अर्थो मे समाज-सेवी थे और जन-जन मे उनके सुख-दुख के वीच रहना चाहते थे। इसीलिए कानपुर मे वी० आई० सी० का कार्यभार सम्हालने पर उन्हे स्थानीय नागरिक एव स्नेही-जनो के आग्रह से कानपुर के नगर प्रमुख (मेयर) का गुरुतर भार सम्हालना पडा। यह दोहरी जिम्मेदारी अनेक समस्याओ से पूर्ण थी। चिन्ता, दौड-भाग से मन और शरीर पर प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था। डायरियो को पढने पर आश्चर्य होता है कि वे कैसे इन सबके वीच डटे रहे, यद्यपि स्वास्थ्य गिरता जा रहा था।

रामेश्वर जी की इच्छा थी कि अपने राजनीतिक जीवन के भी सस्मरण लिख डाले। नाम भी सोच लिया था, 'मेरी राजनीति, मेरी दिल्ली' पर विधि को स्वीकार न हुआ। अप्रैल सन् १९७७ से वे लगभग अशक्त हो गये और उनकी इच्छा की पूर्ति नही हो सकी। अव तो उनकी राजनीति और दिल्ली की कुछ झाँकी डायरियो के पन्नो मे मिल सकती है जो अपने ढग की निराली है।

एक विशेषता टाटिया जी की डायरियो मे देखने मे आयी कि उनके अनुमान सही उतरते। देश की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक अवस्था के वारे मे उनके अनुमान आज भी सही सावित होते जा रहे हे। व्यापार मे भी उनके अनुमान सही उतरते, शायद उनकी पैनी सूझ-वूझ के कारण उन्हे सफलता मिलती रही। वस एक क्षेत्र फाटका ही ऐसा था कि सही सोचने पर भी गलत हो जाते, घाटा उठाते। इसके लिए अपने स्वभाव की अधीरता और जल्दीवाजी को उन्होने कारण वताते हुए अपनी दुर्वलता को स्वीकारा है। साथ ही, अपनी मानसिक एव शारीरिक अस्वस्थता के लिए भी इसी को कारण माना है।

अच्छा होता यदि इन डायरियो की जानकारी उनके जीवनकाल मे हो जाती। किन्तु डायरियो का जिक्र उन्होने कभी किया नही। श्री टाटिया के देहान्त के वाद पता चला कि सन् १९४१ से १९७७ तक की प्राय सब डायरिय्राँ है। इसके पहले की भी रही होगी क्योकि सन १९३२ की भी डायरी मिली और वाकी कहाँ हैं, इसका पता नही चला।

हिन्दी मे डायरी साहित्य कम ही है। जो मिलता है, उससे 'क्या खोया, क्या पाया ?' सम्भवत अलग ढग का है। शायद यह भी रामेश्वर जी की 'विश्वयात्रा के सस्मरण' के रूप मे लोकप्रिय हो सकेगा।

गगाशरण सिंह

वसन्तपचमी, २०३७ वि०
राजेन्द्र नगर, पटना।

सन् १९३२

१९ सितम्बर : कल से महात्मा जी व्रत रखेंगे इसी वास्ते पाट का, हेसियन का सब बाजार बहुत मंदा है।

२० सितम्बर : आज हडताल है। महात्मा जी आज से व्रत शुरू करेंगे। मैंने भी पूर्ण व्रत रखा। रात मे थोडा पानी पिया।

सन् १९४१

२० फरवरी : सन् १९४१ 'विशाल भारत' की फाइल पढ़ता रहा। हिंदी मे 'सरस्वती' ने एक समय मे अपना स्थान बनाया था, उसी तरह 'विशाल भारत' काम कर रहा है। बहुत अच्छा निकल रहा है। रात में रेडियो सुना। अंग्रेजो के लिये लड़ाई भारी पड़ती जान पडी।

सन् १९४२

२१ जुलाई : लडाई मे जरमनी रूस मे जीत रहा है, पर मिस्र मे अंग्रेज जीत रहे हैं। जापान की खास लगती नही। काम-काज थोडा बहुत हो रहा है।

१० सितम्बर : रूस हार रहा है। स्टालिनग्राड की पोजिशन सीरियस है। पॉच बजे शाम को गद्दी आया।

३० दिसम्बर : याददाश्त (१) मनुष्य को मितभाषी होना चाहिए। इसमे झूठ कम बोला जाता है और जो कुछ कहा जाता है, सोचने-समझने का समय मिल जाता है। वाचाल का विश्वास कम हो जाता है तथा मान नही रहता है।

सन् १९४३

१५ फरवरी : महात्मा जी के उपवास का ६ठा दिन है। अखबारो में ज्यादा खबर मिलती नही। लोगों मे कहना है कि गवर्नमेट कडाई बरतेगी। विदेशो की खबर नही आती। जर्मनी हार रहा है, रूस जीत रहा है।

कलकत्ता

३० मार्च : अखबार में खबर पढी कि फजलुल हक प्राइम मिनिस्टर ने रिजाइन दे दिया। मुस्लिम लीग की मिनिस्टरी होगी। लगता है, अब झमेला शुरू हो जायगा। हक कुछ समझदार तो था मगर लीग वाले एकदम उजड्ड है। लगता है, इस गोलमाल मे गवर्नमेट की चाल रही है। अंग्रेज चतुर होते है।

१२ जुलाई : अंग्रेजो ने सिसली पर हमला कर दिया और आगे बढ रहे है। ऐसा लगता है, जर्मनी की ताकत घट गयी। वह बुरी तरह हारेगा। अब तो इटली के निज के घर मे अंग्रेज-अमेरिकन घुस गए।

६ अगस्त : सारे दिन वर्षा आती रही। बाढ चारों तरफ बढ रही है। रेल लाइने उखड़ रही है। चारो तरफ अकाल तथा बाढ का प्रकोप हो रहा है। अन्न का अभाव और बीमारी फैलने की और भी तरह-तरह की खबरो का हल्ला है। बगाल मे अग्रेजो से मिलकर लीग वाले हिंदुओ को तग करने की तैयारी कर रहे हैं। व्यापारी भी नही बचेगे।

१ सितंबर : अकाल की हालत बहुत खराब है। गोदामो मे चावल है बताते है, पर अग्रेजो ने मिलिटरी के लिए जमा कर रखा है, इधर लोग मर रहे है, शाम को ६ बजे भागीरथ जी कोनोडिया के यहाँ गया, चेष्टा, सहायता हो रही है।

६ सितबर : अकाल की वजह से कलकत्ता मे बहुत लोग आ गये। रिलीफ कैप चल रहे हैं मगर पूरा पडता नही। सडको पर भूखो और बीमारो की लाशे पडी रहती है। ऐसा दृश्य देखा नही जाता। बामन गाछी मे झोपडियाँ बन रही है। उन्हे देखने गया।

२६ सितंबर : कलकत्ते मे अकाल से मारे लोग चारो ओर से आ रहे है। आदमी सडको पर मर रहे है, भिखमगे फिरते रहते है। छोटे बच्चे, बच्चियों का चेहरा देखा नही जाता। पैसे देने से कुछ होने का नही। सुनने मे आता है, लडकिया और औरते बुरे काम के लिये मजबूर हो गयी है।

२६ अक्टूबर : इधर बगाल मे बहुत अकाल है।

भाव	गेहूँ	घी	तेल	चावल
मन का	२४)	१४०)	५०)	३०)

इससे कम मे कुछ नही मिलता बल्कि ऊपर ही है। गरीब आदमी कैसे बचेगा, समझ मे नही आता।

५ दिसंबर : सुबह ११ बजे से १२ बजे तक जापानियो ने जबर्दस्त बबारी की। खिदिरपुर मे प्राय ५०० आदमी हताहत हुए। नुकसान विशेष नही हुआ।

सन् १९४४

२३ मार्च : जापान मणिपुर मे उतर आया। खबर है, आजाद हिंद फौज भी साथ है। हिंदुस्तान मे खुशी तो है पर अग्रेजो की कडाई बहुत है। साहब लोग घबराये नही लगते। दिन मे २०००० मन का काम किया। मेरा मन असीडीह जाने को कहता है पर पिता जी इधर है, इसलिए जाना नही चाहता।

२२ सितबर . शिलाग मे अच्छी बस्ती है। पहाडी लोग खसिया जाति के है। भाषा समझ मे नही आती। औरतो के चेहरे पर हँसी-मुस्कान रहती है। ईसाई मिशनरी वालो ने बहुतो को ईसाई बना लिया। बना रहे है, खुद भी यहाँ लोग बनते जाते है। इससे काम-काज का सुभीता इन्हे मिल जाता है। दवाई इलाज भी बिना खर्च हो जाता है। शाम को ६॥ बजे काउसिल हाउस मे दो अमेरिकन मिले। उनसे बातचीत हुई। अपने को न्यूज कॉरेसपोडेट बताया। कहते थे, शिलाग मे कोरप्शन बहुत है। हरेक औरत प्रॉस है। मुझको बुरा लगा। मगर चुप रह गया। अमेरिकन लोग अग्रेजो को गरीब और पिछडा समझते है। लडाई के बारे मे बताया कि जापान जल्दी हथियार डालेगा।

सन् १९४५

२६ जनवरी : सुबह अखबार पढा। इधर रूस बहुत जोर से बढ रहा है, जर्मनी दब रहा है लड़ाई मे जापान भी हार रहा है। ऐसा मालूम देता है, लडाई जल्द ही खतम हो जायगी। इस लडाई मे खास बात देखने मे आयी कि जिसके पास सामान और धन है और आदमी की

कमी नही, वह लबी लडाई जीतेगा जरूर। फ्रास और अग्रेज अकेले रहते तो नही जीत सकते मगर उन्हे अमरिका और रूस का बहुत बडा सहारा मिला। जापान को तो बिलकुल ही अकेला लडना पडा। इनको पहले ही सोच लेना था।
३० अप्रैल : मुसोलिनी को गोली मार दी गयी। उसके साथ क्लारा पैटेची, उसकी प्रेमिका को भी। एक समय के शक्तिशाली का बडा ही बुरा अत हुआ। हिटलर के बारे मे भी तरह-तरह की बात फैल रही है। मन मे सुभाष बाबू के लिये चिता होती है। पकडे गये तो अग्रेज उन्हे छोडेंगे नही। मुसोलिनी को उसके देशवासियो ने मारा।

२ जून : कल सारे दिन शरद बाबू का 'शेष प्रश्न' पढता रहा, राहुल जी की 'वोल्गा से गंगा' भी। आज भी पढ रहा हूँ। पूरा नही कर पाया, कमजोरी है। शरद बाबू की किताबों मे मुझे नारी का जो रूप मिलता है, दूसरी किसी मे नही मिला। 'पर्दे की रानी' और 'सन्यासी' अज्ञेय ने लिखी मगर शरद बाबू का सा रस नही दे पाये। 'शेष प्रश्न' पढते-पढते मेरी आँखे गीली हो जाती है।

सन् १९४६

१३ जनवरी : सुबह आर्डिनेस आया कि १०००), ५००) के नोट इल्लीगल टेडर। हम लोगो के कुछ है, इन्हे पलटाना और सलटाना पडेगा। बट्टा लगेगा। बहुत से जमीदार, बडे व्यापारी और अफसर के कसर लगेगी।
२६ जनवरी : मनुष्य की आयु अपने हाथ की बात है, आजकल इन दिनो मै जिस तरीके से रहता हूँ, बहुत खराब है। अपना ध्यान नही रखता, रूपयो की चिंता। रुपये ५०-६० हजार, १-१॥ महीने मे फाटके मे तथा लाख और तरफ लग गये। फाटके के रुपयो की बेसी चिंता है। आदमी की तृष्णा मिटती नही फिर क्या उपाय आदमी का क्या भरोसा, आज है, कल नही।
६ अप्रैल : अखबारो से मालूम होता है, केबिनेट मिशन फेल है। जिन्ना अपनी जिद पर अडा है, सिख भी अडगा लगाते है। मुसलमान अपने को हिदू और हिंदुस्तान से अलग कैसे मानते है, समझ मे नही आता। इनके बाप-दादा तो हिंदू ही थे। सिख धर्म भी हिंदू नानक ने चलाया। इनके धर्म-ग्रन्थ मे हिंदू देवी देवताओ की बाते है। ओकार को बडा मानते है तो फिर अडगा क्या ? सब झमेला स्वार्थ का है, इससे बहुत नुकसान पहुँचता है।
२० अप्रैल : अखबार पढा। काग्रेस ने एक रकम पाकिस्तान मजूर कर लिया, इस तरह की खबर है। मन को कैसा-सा लगा। जिन्ना की जीत हुई। काग्रेस ने एक रकम से अपने को हिदुओ की सस्था मानी और हिंदू तथा मुसलमानो को एक हिंदुस्तानी नही माना। अब तो हिंदुस्तान का बटवारा होगा ही। काग्रेस ने शुरू मे कम्युनल अवार्ड मानकर जो गलत बीज बोया, वह हाथ-पैर फैला रहा है। हिंदू महासभा की कौन सुनता है ! भले ही हल्ला करो हिंदू उसके साथ नही के माफिक है। काग्रेस के इस निर्णय से काफी असतोष-सा हो रहा है, सुनते है। बगाली नेता लोग बगाल का पार्टिशन चाहते है। इस मामले मे श्यामा बाबू का कहना मुझे ठीक जँचता है। शायद काग्रेस मे भी दो मत है।

कलकत्ता

२ जून : सुबह झाझा मे आँख खुली। स्नान वगैरह कर लिया। थकावट मिटी। सेकेंड क्लास मे काफी आराम रहा। थर्डक्लास मे तकलीफ तो होती है मगर बहुत तरह की बातचीत सुनने को मिलती है। धर्मशास्त्र और राजनीति वगैरह पर बात और बहुत रकम के विचार चलते रहते है। लखनऊ से एक आदमी बैठे थे, शायद गवर्नमेंट के भक्त थे, बताते थे अग्रेज अगर चले

गये तो बिजली, रेलगाडी वगैरह अपना सब कुछ उठा लेगे। हिंदुस्तानियो के पास इतना दिमाग कहाँ कि इन चीजो को बना सके। हँसी तो आयी पर बहस मे पड़ा नही।

कलकत्ता

२७ जुलाई : सुबह मैदान नही गया, परतु गगाजी गया। अखबारों से पता चलता है ब्रिटिश गवर्मेंट हिन्दुस्तानी सरकार बनाने पर जोर दे रही है। कांग्रेस और लीग का अड़गा बाधा है। परतु विचार आता है, अभी आजादी मिली नही, परतु झझट चालू हो गयी तो मिलने पर हालत कैसी बनेगी ? स्वराज्य, गुलामी, हंगामा की बातें इटेरेस्टिग लगती है मगर इसमे झमेला बहुत है। फिर भी स्वराज्य के लिए मन मे ऊँचे विचार आते हैं। शायद इसलिए कि ये लोग औरो के लिए अपना सब कुछ छोडे बैठे हैं। पडित जी, राजेन बाबू, पटेल जी चाहते तो बहुत रुपये की कमाई कर सकते।

दिन मे गद्दी आया, काफी पाट लिया, फाटका भी, परतु मन बहुत डर रहा था। मालूम नही कौन क्या बोल दे। मेरी आदत तो छूटती नही, परतु सौगध इतनी कडी खायी है कि लाभ तो मैं लूंगा नही।

१३ अगस्त : वायसराय लार्ड वावेल ने सरकार बनाने के लिए कांग्रेस के प्रेसिडेट को बुलाया है। पडित जी शायद मजूर कर लेगे परतु कांग्रेस के बहुत से नेता चाहते हैं कि सरदार पटेल काम-चलाऊ सरकार बनायं। मुझे भी कुछ जँचता है, जिन्ना से लोहे का ही आदमी टक्कर ले सकता है।

१६ अगस्त : बुखार-सा था। सुबह १० बजे आफिस गया। लीग वालो की बहुत बडी मीटिंग थी। वहाँ से लौटते हुए लीगवालों ने लूट-मार शुरू कर दी। चौरगी, धर्मतल्ला, मौलाली वगैरह मुसलमानी मुहल्लो मे हिंदुओ की दुकाने लूट ली गयीं, बहुत लोग मारे गये। हिंदू मुहल्लो से लोग जान बचाकर आ रहे है। पुलिस कुछ नही कर रही है। हालत खराब होती जा रही है। औरतो को बेइज्जत करते हैं, नगा कर मार डालते हैं। कर्फ्यू लगा दिया गया है पर मुसलमान लोग 'अल्ला हो अकबर' वगैरह बोलकर रात मे भी हमला कर रहे हैं।

१८ अगस्त : दगा का काफी जोर है। इसे दगा नही, कत्लेआम कहना चाहिए। १० अप्रेल को जिन्ना ने दिल्ली मे लीग की कान्फ्रेंस बुलायी थी। बडी गरम मीटिंग हुई, पाकिस्तान के अलावा दूसरे किसी पायट पर समझौता नही होगा। सुहरावर्दी ने कहा था। मुसलमान लोग बहुत सहन कर रहे है। फिरोज खान नून ने तो बड़े जोश के साथ कहा था कि यदि मुसलमानो के लिए अलग देश नही बनाया गया तो ऐसा कत्लेआम, खून-खराबा मचेगा कि मगोल हलाकू भी पिछड जाएगा। बात सही निकली। उन लोगों की पूरी तैयारी थी जब कि हम इसे बकवास समझते रहे। पठान पुलिस वालों ने बहुत अत्याचार किया। मिलिटरी बुलायी गयी है।

२१ अगस्त : सुबह देखा, सडको पर लाशे पडी हैं। क्या कसूर था इनका ? धर्म मनुष्य ने बनाया और उसी के लिए अधर्म करता है! बुरों मे भी अच्छे होते हैं। सना, हिन्दुओ ने मुहल्लो मे मुसलमान छिपाये रखा, मुसलमानो ने भी ऐसा किया। खबर देकर पहरे के साथ बचाकर निकाला ऐसे काम के लिए इन पर मार भी पड़ी। कई मारे भी गये दीपचद वगैरह कई लोग आये। कहते हैं मुसलमान डरपोक होते हैं। सामने नही आते। पुलिस की लारी के पीछे से हमला करते है। रात मे निकलते हैं।

२६ अगस्त : कांग्रेस और लीग के बीच समझौता नहीं हो पाया। लीगवालों ने गुस्सा उतारा बेकसूर लोगो पर। दगे मे ५००० के मारे जाने और १५००० के घायल होने की खबर है। कितनो की रिपोर्ट नही होगी, इसका क्या ठिकाना। वायसराय भी परेशान दिखता है। उसने

इटरिम गवर्मेट बनाने के लिए कांग्रेस को एक हफ्ता पहले कह दिया। शायद इसमे पडित नेहरू, सरदार पटेल, राजेद्र बाबू, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, आसफ अली रहेगे। सिखो के बलदेव सिंह, ईसाइयो के जॉन मथाई भी होगे। शफात अहमद, अली जहीर, जगजीवन राम और शरदचद बोस के भी लिए जाने की बात है।

२ नवबर : मेरे कारण फर्म को काफी नुकसान हो रहा है। आदत छूटती नही। भाई जी नाराज है, कुछ बोलते नही। मन मे कैसा-सा होता है। सुबह गाँधी जी से मिला। थोडी बहुत बात भी की। बहुत कुछ कहना चाहता था परन्तु उनके आगे कुछ बोल नही पाया। पता नही उनकी ताकत ज्यादा है या मेरी कमजोरी। साथ मे लोहिया जी थे, केदार बाबू भी। मैं पूछना चाहता था कि गांधी जी हमे शाति रखने को कहते है जब कि मुसलमान अत्याचार करते जा रहे है। देवताओ को भी दानवो के खिलाफ हथियार उठाना पडा था। उन्होने पहले ही कह दिया था कि अन्याय को अन्याय से नही दबाना चाहिए। कुछ बोलने के लिए रहा नही।

सन् १९४७

२ फरवरी : ११ बजे देवानदपुर गया। साथ मे चौदह आदमी थे। बडेल का गिरजाघर देखा। १६वी शताब्दी मे पुर्तगालियो ने बनाया बताते है। वहाँ का गगातट बहुत सुन्दर है। सैर करने की जगह है। गिरजा साफ-सुथरा और शात है। अच्छा लगा। पूजा के स्थान पर शाति भी होनी चाहिए, हम लोगो के मदिरो में तो बहुत गदंगी और शोर होता है। मन उचटता है। इमामबाडा हुगली मे देखा। बडा और अच्छा है। परतु लखनऊ जैसा नही है। हाज़ी मुहम्मद मोहसिन ने बनवाया। अपनी सारी सपत्ति और पुस्तके इसे दे दी थी। इस्लामी पढाई यहाँ होती है। देवानदपुर ३ बजे पहुँचे। शरद की स्मृति मे जलसा था। शरद ने सादा जीवन बिताकर ऊँचा साहित्य दिया।

२ अप्रैल : गाधी जी और वायसराय की मीटिंग चल रही है। मेरी समझ मे वावेल लीग का पक्ष लेने लगा था। बजट के मामले से यह बात साफ है। दगे-हगामे की शिकायत पर कोई कड़ा एक्सन नही लेता। लार्ड माउटबैटन की नीयत ठीक लगती है। पुरानी डायरियाँ देखता रहा। समय कैसे बीत गया। परमात्मा ने बहुत कुछ करा दिया। मीटिंग मे लोग मेरी तारीफ करते है। मैं जानता हूँ, पैसे की तारीफ है।

२६ मई : कल रात ट्रेन मे बहुत भीड थी। जगह मिल गयी। डब्बे मे २-३ स्त्रियाँ थी, देखने मे सुन्दर और सभ्य। सब समय इनके चेहरे पर मुस्कान। कौन इनकी तरफ किस निगाह से देखता है, इसकी परवाह नही। मेरा मन इन्हे देखकर अपने मे अभाव-सा महसूस करने लगा। मनुष्य गरीब होता हुआ भी आराम से रह सकता है। रुपया ही सुख का साधन नही है। मन बहुत बडी बात है।

१५ अगस्त : रात मे रेडियो सुना। १२ बजे के बाद १५ अगस्त की शुरूआत के साथ हिन्दुस्तान आजाद हुआ। पडित जी, राजेद्र बाबू और सरदार पटेल का भाषण हुआ। पडित जी का भाषण बहुत ही भावना पूर्ण था, सरदार पटेल का तथ्यपूर्ण ठोस। राजेद्रबाबू ने महात्मा जी की प्रशसा की और आश्वासन दिया कि स्वतत्र भारत मे गरीबी, भुखमरी, शोषण और ऊँच-नीच के भेद-भाव मिटाने के लिए हमलोग कोशिश करेगे। मगर उन्होंने हिंदुस्तान के टुकड़े होने पर खेद भी प्रकट किया। लार्ड माउंटबैटन को गवर्नर जनरल रहने दिया गया। पडित जी प्रधान मत्री बने। राजेद्र बाबू सविधान परिषद के प्रेसिडेंट। दिल्ली मे लाल किले पर हिन्दुस्तान का तिरगा झडा पड़ित जी ने फहराया। बहुत बड़ी भीड थी। रेडियो से सारी बातें बतायी जा रही थी। सुभाष बाबू का दिल्ली के लाल किले पर तिरंगा फहराने का सपना पूरा हुआ। आज वह रहते तो कितनी खुशी होती। रेडियो सुनते समय भगत सिंह, चद्रशेखर आजाद, वीर सावरकर, खुदीराम बोस की तपस्या और त्याग की बाते याद आ गयी। बस मे

बैठ कर विभिन्न मुहल्लो मे घूमा । बच्चे तिरगा झडा लिये 'जयहिंद' कह रहे थे । सभी जगह तिरगे की धूम । रात मे रग-बिरगी रोशनी मे कलकत्ता बहुत सुदर लग रहा था । आज का दिन याद रखने का है ।

३१ अगस्त : सुबह ६ बजे एरोड्रोम पहुँचा । जहाज मे बैठा । नीचे का दृश्य बहुत सुहावना लगा । हिंदुस्तान और पाकिस्तान की सीमा पहचानने की कोशिश की, मगर क्या पता चलता ? धरती एक है और देश बँट गया । एक घटे मे ढाका पहुँच गया । दिन मे काम-काज सलटाने मे रहा । शाम को रिक्शा मे बैठकर शहर खूब घूमा । पाकिस्तान बन जाने से यहाँ के मुसलमान खुश हैं । बहुत से हिंदू तो पहले ही भाग गये । बचे-खुचे भी रह नही पायेगे । अभी पूरी शाति है । व्यवहार भी ठीक है । पूर्वी पाकिस्तान में बगाली हिंदुओ के प्रति खास असतोष है ।

१० दिसम्बर : पाकिस्तान-इडिया मे समझौता हो गया है । कश्मीर का मामला मेरी समझ मे नही आता । हम लोगो को कडा रुख रखना चाहिए, सरदार पटेल वाला ।

२१ दिसंबर : बगाल एशियाटिक सोसाइटी मे महादेवी वर्मा का भाषण सुना । बहुत विदुषी है, कविता तो अच्छी करती है । मेरे मन मे आता है, मैं कुछ भी लिखूँ मुझे कोन याद रखेगा ? डायरी के आज वाले पन्ने पर लिखा है 'विदुष पुजै सर्वत्र' बात सही है । मुझे कुछ व्यापारी लोग जानते होंगे परतु विद्वान को तो गॉव-गॉव के बच्चे भी जानते है, इज्जत करते हैं । मुझे थोडा समय पढने-लिखने मे देना चाहिए ।

२२ दिसबर : बैजनाथ जी केडिया का बनारस मे शरीर शात हो गया । अच्छे काग्रेसी थे । हिंदी मे प्रेमचद को उर्दू से लाये । बच्चो के लिए बहुत अच्छी-अच्छी किताबे लिखी । बहुत ही उदार थे, समाज के लिए भी इन्होने बहुत किया । भगवान् की मर्जी ।

सन् १९४८

१४ मई : चीन मे च्याग काय शेक हार रहा है । चीजे बहुत महँगी है । कम्युनिस्ट बढ रहे है । हो सकता है, जीत जाये । हिंदुस्तान मे भी कम्युनिस्ट प्रोपगडा बढा रहे हैं । तेलगाना मे गोलमाल बढायेंगे, ऐसी खबर है । इन दिनो विदेश जाने की बहुत इच्छा जोर से हो रही है, पता नही क्यो ?

१७ सितबर : निजाम हैदराबाद सरेडर कर गया । लोगो मे बहुत खुशी है । बहुत बडे जुल्म वहाँ किये गये थे । रजाकारो ने बहुत उत्पात मचाया था । आतक फैला दिया था । जनरल जे० एन० चौधरी का बहुत नाम हुआ । कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी जी ने बहुत समझदारी से काम लिया । इतने बडे विद्वान और साहित्यिक होने पर भी राजनीति मे बहुत अच्छा अनुभव दिखाया । बबई मे प्रधानमत्री के रूप मे भी शासन अच्छा चलाया था ।

२४ सितंबर : डॉ० राममनोहर लोहिया का लेक्चर सुनने गया । काम की बात बोलते हैं । जब तक अमीर और गरीब की दूरी कम नही होगी, स्वाधीनता बेमतलब है । उन्होने एक रकम काग्रेस गवर्मेंट की आलोचना की । गाधी जी के सिद्धात को छोडकर हम लोग इग्लैड, रूस, अमेरिका की नकल करना चाह रहे है, इससे पैसे वाले तो उन्नति करेगे परतु गरीब और भी कष्ट मे फँसते जायेंगे । मुझे लगता है कि गॉव की उन्नति पर ज्यादा जोर देना चाहिए । छोटे-छोटे कारबार वहाँ खोलने चाहिए । गाधी जी की नीति इस मामले मे ठीक थी ।

२७ नवबर : लखनऊ मे नवाबी जमाने की सब इमारते देखी । दिल्ली आगरे के मुकाबले की नही लगी । बडा इमामबाडा जरूर कुछ अच्छा लगा । नवाबो ने अपने मौज शौक के लिए

बहुत किया। थोडा बहुत अपने धर्म के लिए। परतु अपनी प्रजा के लिए कितना किया ? फिर भी इनकी बाते बढा-चढा कर लोग कहते है। **वाजिदअली** नवाब बहुत ऐयाश रहा होगा। अपनी गद्दी बचाने की इन लोगो को फिक्र थी जिससे मौज-बहार चला करे। बादशाह और नवाब एक-से रहे। हिंदुस्तान को विदेश समझते थे और अपने को तुर्किस्तान, ईरान का। इसीलिए इनमे भारत के प्रति प्रेम नही रहा। पेशन लेकर बादशाह नवाब बने रहे। ऐसे लोगो की तारीफ करना मेरी समझ में नही आता।

२८ नवबर : झासी आया। वृंदावन लाल जी वर्मा से मिला। आधे घटे तक बात हुई। बहुत भले है, घमड नही है। इतिहास के प्रति विशेष रुचि है। शिकार का भी शौक है। खूब घूमते है। मैंने पूछा इतना कैसे लिख लेते है ? हँसकर बोले, मै नही लिखता, मेरा मन मुझसे लिखवाता है। उन्होने यह भी बताया बुदेलखड और बघेलखड के इतिहास के बारे मे लोगो मे जानकारी बहुत कम है। **मैथिलीशरण** गुप्त जी से मिला। बहुत ही सज्जन है। भगवान के प्रति भक्ति भी बहुत है।

सन् १९४९

१२ फरवरी : विधवा-विवाह में काफी इटरेस्ट ले रहा हूँ। काम भी आगे बढ रहा है। लोग चर्चा करते है, अखबारो मे नाम छपता है। परतु बात भी बहुत रकम की सुननी पडती है। एक पडित ने कहा, विधवाओ का ब्याह करवाते हो क्वाँरी कहाँ जायेगी ? मैने कह दिया कि समस्या विधवा की है, क्वाँरी की नही। ७ ता० के विधवा विवाह का बहुत अच्छा प्रभाव पडा। खास काम पुरुषोत्तम जी और मै, दोनो करते है। लोग कहते है, नन्दू की सगाई करेगे क्या ?

१५ फरवरी : विधवा-विवाह था। लडकी वालो ने कुछ भी खरच नही किया। सभा के ५००)-६००) खर्च हुए। रात मे घर जाकर मन मे काफी सन्तोष हुआ। उत्साह भी बढा। और भी विवाह होगे। मुझे विधवा कन्या के विवाह पर उसके चेहरे से दुख हटता सा दिखाई पडता है, इससे खुशी होती है।

२० मार्च : रात ९॥ बजे डा० लोहिया आये। बहुत विद्वान है, पढते रहते है। इसीलिए जो बोलते है, उसमे नुक्स नही होता। बहुत तरह की बाते हुई। वे कहते है, शक्ति और अधिकार का एक जगह या कुछ लोगो के हाथ मे रहना बहुत खतरनाक है। चाहे वह धन हो या शासन या विद्या। इससे शोषण बढता है। कम्युनिज्म और सोशलिज्म मे बहुत फर्क है। सोशलिज्म मनुष्य को विकास करने का जितना मौका देता है, कम्युनिज्म और कैपिटलिज्म उतना नही। बहुत अच्छी तरह समझाते रहे। मेरा मन करता है कि इनकी तरह कुछ करूँ। परतु अच्छे काम अच्छे लोगो से होते है, सबसे नही।

सन् १९५१

२ दिसम्बर : सुबह ११॥ बजे केलवाडा पहुँचे। कोटा से लगभग ८० मील पर है। शाहपुरा तहसील की ऊँचाई वाले हिस्से का गाव है। इससे आगे ढलान है। गाव मे गरीबी बहुत है। छोटी सी झोपडी मे पूरे परिवार फटेहाल किसी तरह रहते है। पेट भरने लायक भी नही मिलता। मदियो से यही हालत रही है। एक मील पर सूरजकुड है, वहाँ स्नान किया। पानी गरम सा था। खूब नहाया, थकान मिट गयी। मन को शाति मिली। जगह बहुत अच्छी बन सकती है, यदि ध्यान दिया जाय। ३ बजे तक जगलों में घूमता रहा। अंदाज ६ बजे वापस हम लौट आये। एक बासे मे भोजन किया, साधारण था परंतु अच्छा। रात मे दो मील घूमा, लोगो से बात करता रहा। केलवाडा मे सहरिया एक जाति है। ज्यादातर जमीन इनके पास

है, पर ये कोई सम्हाल नही करते । इनमे हाली-गुवाली प्रथा सुनी । पेशगी लेकर मियादी नौकरी करते है । मियाद पूरी होने तक या नौकरी छोड़ने तक कर्ज नही सलटा सके तो मालिक बकाया रकम की पर्ची दे देता है । दूसरे के नौकरी करने पर पहले का हिसाब चुकता करना पडता है वरना नौकरी नही मिल सकती । उसका सारा जीवन अपने कों गिरवी में रखकर बीत जाता है । शादी-व्याह पर ये लोग खर्च वहुत करते हैं । एक से ज्यादा औरते भी रखते हैं ।

६ दिसम्बर : ११ वजे अजमेर आये । गर्ग जी के साथ खाना खाकर अजमेर की दरगाह देखने गए । मुसलमान लोग इसे अपना तीर्थ स्थान मानते है । वहुत से हिंदू भी आते है, भेंट वगैरह चढाते है।कहते है, मनोकामना यहाँ आने पर पूरी होती हे, शाति मिलती है । मुझे कोई खास वात नही दिखाई पडी, अगर-धूप की सुगध जरूर अच्छी लगी । पुरी के जगन्नाथ मंदिर की तरह यहाँ भी भोग-प्रसाद चढता है इसे 'देग' कहते है । दरगाह के पास वहुत धन है, वाहर से आया भी करता है । शहर देखा, पुराने समय से प्रसिद्ध है । 'अजमीर' इसे सावित करता है । 'मीर' शब्द समुद्र या झील के लिए आता है । पुष्कर तीर्थ तो आज भी प्रसिद्ध है । अजमेर शहर मे जहाँगोर की बारहदरी देखी । 'ढाई दिन का झोपडा' देखा । पहले यह सस्कृत पाठशाला थी । कुतुवुद्दीन ऐवक ने इसे तुडवा दिया और सात मेहरावो का एक स्मारक खडा कर दिया । इन पर कुरान की आयते लिखी है । परतु इस स्मारक के पीछे तोडी गयी पाठशाला का वचा-खुचा भाग अव भी है । इतने ऊँचे खम्मे है कि शायद ही कही हिंदू मदिर मे अव तक देखे होगे । मुसलमानो के वाद अग्रेजो ने भी ईसाई धर्म प्रचार के लिए अजमेर को ही राजपूताना मे चुना था ।

२२ अप्रैल : सुबह जे० पी० के पास गया था । उनकी तवियत ठीक है । लगता है रुपयों की टान हो रही है, कुछ कहते नही । कुछ सहारा लगाना चाहिए ।

१७ मई : ३ वजे दहेज की मीटिंग मे गया । उधर मारपीट हो गयी । परतु मीटिंग होती रही । मैं भी बोला । गुस्सा दोनो तरफ था । मगर इस तरह समस्या का समाधान सभव नही । सयम रखना चाहिए ।

२५ मई : २२ सोसाइटी के, १३ प्रेस रिपोर्टर सुन्दरवन इलाके मे वढे । सदेशखाली और हसनाबाद वगैरह का बडा हृदयद्रावक दृश्य है । लोग भूखे रहते हैं, कपडे भी नही हैं । अन्न वस्त्र वाँटे । काम शुरू करना ही है । वहुत वडी समस्या है । इसका कोई स्थायी समाधान ढूँढना चाहिए । ऐसी मदद से कितने दिन, कितनी वार चल सकती है ?

३० जून : इस महीने मे काफी काम सोसाइटी का किया । प्राय. एक लाख तीस हजार चदा इकट्ठा किया । मन मे एक सतोष होता है । अपने लिए करना और दूसरो के लिए करने मे वहुत फर्क है । इस महीने मे ६-७ जगह पब्लिक मीटिंगो मे वोला । दान मे प्राय २५००) दिये । खुदरा का ठीक हिसाव नही रखा । रखना चाहिए ।

२४ जुलाई : बुखार है, पेट मे आव भी । किताव पढता रहता हूँ । 'मनुष्य के रूप मे' यशपाल का । ऐसा लगता है प्रच्छन्न रूप मे कम्युनिज्म का प्रचार करने की कोशिश हे । वैसे मनोरजक है, शैली भी अच्छी और नये तरीके ।

सन् १९५३

८ फरवरी : कल नन्दू का विवाह है । घर मे आज जमाई और जीमे । जीमनेवाला अडगा कुछ बेशी हो गया । लोग नाना तरह की वाते करते है । गलती मेरी है, नही तो इतना कुछ नही होता । परन्तु पिता जी और बड़ो के आगे कुछ कहने की हिम्मत मुझमे नही है ।

९ फरवरी : सुवह मैदान आया । दिन मे एक बजे जीमा । लोगो ने ५ बजे घर आना शुरू कर दिया । दिन मे सी० एल० बाजोरिया भी आये थे । शाम को काफी आदमी आये । लोगो ने

सादगी की वडाई की। आज से ३३ वर्ष पहले इन्ही दिनो मे मेरी शादी हुई थी। एक जमाना बीत गया। आज नन्दू की हो रही है, इसी तरह उसके लडके की होगी।

१६ मई : जे० पी० आये। उस समय केवल मैं ही था। उनके साथ लोक सेवक ऑफिस मे गया। पर्सनल खर्चे के लिए ५००) उनको दिये, ले नही रहे थे। एक रकम जवर्दस्ती ही दे दिया। खर्च की तगी रहती है, पर वे वोलते नही, रुपए लेने मे सकोच करते है। परतु वडे-वडे मिनिस्टर और अफसर इसके लिए वैठे रहते है। जे० पी० के वास्ते मैं कुछ नही करता, कितने त्यागी और महान है। रात मे उनके साथ ६॥ वजे तक स्टेशन मे था। मुझ पर वहुत स्नेह रखते हैं। दिल्ली की सीट को लेकर काफी चर्चा चल रही है। १०००) कृपालानी जी के चुनाव के लिए दिए। मेरा मन भी राजनीति मे आने के लिए होता है, यह गलती है। मुझे सावधान रहना चाहिए।

२७ मई : सुबह ५॥। वजे दो मोटरो से हरदेव सहाय जी के साथ गया, रास्ते मे अपने कैम्प देखे। काम ठीक चल रहा था। फिर जैसलमेर के वार्डर पर मियाकर गया। वावली एकदम उजाड है। पानी तो है ही नही। मन मे कैसा सा दुख भर गया। हम प्रवासी राजस्थानी धन कमाते है, वगीचों में मौज-शौक करते हैं और यहाँ हमारे पूर्वजो की जमीन मे गरीवी, भुखमरी और पीने को पानी नही। हमारी कमाई से क्या फायदा? लोगो से मिला, हिम्मत वहुत है। एक वावडी की खुदायी हो रही है, वह देखी। आती दफे कोलायत ठहरा। मीठा पानी पिया। फिर गजनेर आये। मन में विचार आता है, अकाल तो मिट जायेगा परतु हरियाली यहाँ कैसे आयेगी? खेती-वाड़ी नही होगी तो यह इलाका वढेगा नही। कुछ पक्का वन्दोवस्त होना चाहिए।

८ अगस्त : राजस्थान मे अच्छे राजाओ ने जो कुवे, झील, तालाव वनवाये उनसे वहुत बचाव रहा, नही तो सारा इलाका वजर रेगिस्तान हो जाता। वीकानेर के लालगढ के किले मे ३६० फुट गहरे चार कुओ से कितनी सुविधा हो गयी है। इसी तरह से जैसलमेर और दूसरी जगहो में झीलों से बहुत राहत मिलती रही है। महाराज गगासिंह जी की सूझ-वूझ से १६२७ मे नहर वीकानेर मे आयी। आज तो विज्ञान के वहुत से साधन है। सरकार यदि उत्साह से काम करे तो वीकानेर क्या सारा राजस्थान हराभरा हो सकता है। मुझे लगता है कि इजरायल के विशेषज्ञो की सलाह इस मामले मे ली जा सकती है।

सन् १९५५

२ जनवरी : उदयपुर आया। रात महिला मडल मे सी गया था। ६॥ वजे हम मातृ सदन गये। बहुत अच्छा काम हो रहा है। ऐसी सस्थाओ को मदद करने का मेरा मन होता है। पर कितना किया जाए? इतना साधन पास मे नही है। अगर इस क्षेत्र मे काम किया जाए तो अगले चुनाव तक अच्छी जमीन तैयार हो सकती है। मेरा मन भी एम० पी० की सीट लेने का सा हो रहा है। वीच-बीच मे आकर रहना जरूरी है।

नीम का थाना, अजीतगढ़

१८ अप्रैल : ११ वजे नीम का थाना पूगे। कुछ गाँवो के काम देखने गए। भागीरथ जी, ज्ञानचद जी एम० एल० ए० और मातादीन साथ थे। काम अच्छे हुए हैं। ३॥ वजे पाटन की तरफ गए, काम देखे। भीलवाड़ा मे लोहे की खान भी देखी। राजस्थान मे भी यदि इसी तरह मिनरल्स निकलते आये तो इडस्ट्री के बढ़ने मे देर नही लगेगी। प्रयास से पानी की व्यवस्था भी जरूर हो सकती है। एक गाँव मे गए, शादी के गीत गाए जा रहे थे। अच्छा लगा। १०॥ वजे अजीतगढ पूगे। गरमी पडती है। पर उतनी नही। कलकत्ते से वाहर मन लग जाता है। शरीर को आराम भले ही नही, परन्तु मन और दिमाग को शाति मिलती है।

जयपुर

२० अप्रैल: कल सुखाडिया जी से वात हुई थी। अगले वर्ष का काम लेने का तय हो गया है। जिम्मेदारी का काम हे। मातादीन कल रात मे दिल्ली चले गए, उनको मैंने राजा से मिलने को कहा है। जयपुर मे गर्मी कुछ ज्यादा पडने लगी है परतु रात ठढी होती है। २॥ वजे व्यापार मडल की सभा मे गए प्राय ४००-५०० आदमी थे। भोगीलाल जी पड्या आए, भाषण अच्छा रहा। मे भी अच्छा वोल सका, लोगो ने पसद किया। यहा उत्साह का वातावरण है। राजस्थान आगे वढना चाहता हे, वढ भी सकता हे। परतु आपस की खीच-तान नही होनी चाहिए।

झूंझनूं

२३ अप्रैल : सुवह जल्दी तैयार हो गए। राणी सती के मदिर को देखा। वास्तव मे देखने लयक वनाया है। दस-पन्द्रह लाख की सम्पत्ति है। ऐसे तीर्थ-स्थानो के माध्यम से सस्कृति और समाज की उन्नति के वहुत वडे-वडे काम हो सकते है। व्यवस्था ठीक रहनी चाहिए, नही तो आगे चलकर काशी, अयोध्या के मठो-मदिरो जैसी हालत वन सकती हे। ६॥ वजे वहा से चला। आगे चलकर काम देखा, आधे रुपए गॉवो वालो ने लगाए है। इस तरफ का काम काफी सतोषजनक है। ६ बजे मलसीसर देखा। मोती झुनझुनवाला के घर गए। १०॥ वजे राजगढ पूगे। एस० एम० मोहता के ठहरे। ३ वजे रिणी आए। दो जगह गए, काम देखा, एकदम खराब। मन कैसा हो गया। सामाजिक कार्य मे धन, श्रम और समय की वरवादी एक अपराध है। शाम को चूरू आकर ठहर गए।

चुरू, सरदार-शहर, रतनगढ़

२४ अप्रैल : सुवह ५॥। मे चूरू की तहसील के काम देखे, मेघराज जी साथ मे थे। काम साधारणतया सतोषजनक है। १०। वजे सरदार शहर पूगे। दिन मे काफी आदमी आए। ५००) रु० पूरन को, ५००) रु० पब्लिक लाइब्रेरी को, १००) रु० हरद्वारीलाल जी को दिए और भी ५०)-४०) रु० लग गए। सस्थाएँ देखी। लोगो से मिला। शाम को ७ वजे वापस कार से रतनगढ आए।

सन् १९५६

कलकत्ता

३० अप्रैल: मिशन रो मे सुबह ६ बजे पैदल चल रहा था। इसी तरह इस सडक पर चलते-चलते तीस वर्ष हो गए। एक दिन १९२५ मे शुरू किया था। प्राय युग बीत गए। उस समय जो मन मे विचार आते थे, आज भी याद है। सोचता था, किसी तरह एक-डेढ़ लाख रुपए हो जाएँ तो कर्ज मिट जाए और आराम से रहे। कौन जानता था कि समय का इस तरह से परिवर्तन होगा और करोडो रुपए मेरे पास हो जायेंगे। पर मन को शाति नही हे, शरीर नाना रोगो से जर्जर हो रहा हे, लालसा वढती जा रही है और ऐसा मालूम देता है कि शाति इस जीवन मे मिलने से रही। रुपयो से सुख नही होता। यह तो प्रमाणित हो गया परतु कही भी तो ठहरने का और आराम करने का नाम नही। उस समय १५ वर्ष की आयु थी, बचपन था, पर चिंता थी कर्ज की। और आज ४ बच्चे है, ४६ वर्ष की आयु हे, शरीर रोगी है और नाना तरह की चिंताए है। अगर कुछ रुपये लेकर रिटायर्ड हो जाऊँ तो क्या हर्ज है? पर हो नही सकता।

सन् १९५७

२३ जनवरी : दिन मे छुट्टी रही, नेताजी जन्म-दिवस है। नेताजी की यादगार मे आज जलूस निकाले गए। कल फिर भूल जायेंगे। फारवर्ड ब्लाक वाले अपनी राजनीति के लिए नेताजी

का नाम लेते है, परतु उनमे एक भी नेताजी के आदर्श पर चलने वाला नही दिखता। यही हाल काग्रेस का भी हो रहा है। आजकल राजनीति की यही विशेषता है।

१० मई : दिन मे लोकसभा मे गया। अतुल्य घोष, एस० एन० सिन्हा, ए० के० सेन, महाराजा बीकानेर, एम० एल० वर्मा आदि से मिला और भी बहुत से एम० पी० से मिला, जगजीवन जी से भी। पार्लियामेट मे करने के लिए काम वहुत है, ढग से किया जाय तो वहुत वडी सेवा हो सकती है। वहुत तरह की वाते जानने मे आयी।

नयी दिल्ली

२८ मई : दिल्ली आ गया। १०॥ बजे पार्लियामेंट गया। दिन मे बोलने की चेष्टा की बजट पर परंतु समय नही मिला। शायद कल मिल जायगा। राधेश्याम जी मुरारका और गजाधर जी सोमानी दोनो अच्छा बोले। दिन मे गगा बाबू ने एक उलाहना दिया, जगजीवन राम जी को मैंने उनके सामने पार्टी के लिए कुछ कहा था। ऐसी वात पर आइदा के लिए निगाह चाहिए। गगा बाबू ने अच्छा किया, मुझे सावधान कर दिया। मै ज्यादा बोल जाता हूँ, गलत बात है।

नयी दिल्ली

१७ जुलाई : ११ बजे पार्लियामेट गया। दिन मे लोगो से मिलता रहा। आसाम के देवकात बरुआ काफी प्रभावशाली है। ४ बजे मै भी बजट पर बोला, शायद अच्छा ही रहा। मालिया से बात की। अतुल्य घोष, उपेन बर्मन, फिरोज गाधी सबसे बाते हुई ' देश का काम पार्लियामेट के माध्यम से अच्छा हो सकता है। परतु इसके लिए काफी स्टडी करनी होगी। अभी मैं नया हूँ। जान-पहचान बढ रही है। तौर-तरीका सीख रहा हूँ।

११ सितम्बर : दिल्ली मे इस बार अपने को इनफीरियर फील कर रहा हूँ। चाय पर डिबेट थी पर कुछ न बोल पाया। काम मे दिलचस्पी नही लेने का दड है।

१६ सितम्बर : अपने क्षेत्र के दौरे पर हूँ। सुबह खडेला पहुँचा। १०००) रुपया एक छात्रावास मे दिए और भी माग तो वहुत थी, परन्तु मेरे पास नही थे। फिर कावट और दूसरे गावो से होते हुए अजीतगढ गया, वहाँ भी १०००) रुपया स्कूल को आलमारियो के लिए देने किए। इस तरह २२५०) रुपया इस यात्रा मे लग गए। खर्च बहुत हो रहा है। कभी-कभी विचार आता है अगर मै पैसेवाला एम० पी० नही होता तो क्या करता ? इस तरह रुपये देने से लेने और देने वाले की कमजोरी बढ सकती है। परन्तु लोगो का ऑबलिगेशन चुनाव मे बहुत हो जाता है तथा माँग भी बहुत ज्यादा रहती है, इसलिए बहुत से एम० पी० लोगो को गलत-सही काम के लिए ओबलाइज करते देखा।

सन् १९५८

२५ जनवरी : कल कन्हैयालालजी सेठिया के साथ मोटर मे कई गाँवो मे गया। बडरासर मे एक बूढे ने कहा कि दरबार का हुक्म तो खतम हो गया। अब किसका हुकुम है ? दस वर्ष हो गए, आजाद हुए। ऐसा प्रश्न सुनकर आश्चर्य हुआ। वह कहता था, 'पहले कुछ तो सुनवाई होती थी। अब लिखाई-पढाई होती है सुनवाई नही।' आज सुबह रामनगर गया। गौरा बामणी से प्रायः २५ वर्ष बाद मिला। बूढी हो गयी है। चेहरे पर झुर्रिया, चमडी पर सले उभर आयी है। कितना समय निकल गया, कितना बदल गया सब कुछ ! उसने मुझे पहचान लिया। हमारे यहा रसोई बनाती थी। मैंने उससे कहा कि कुछ खिला। हँसने लगी, दाँत नहीं थे। कहने लगी, 'मेरे हाथ का अब क्यो भायेगा ?' बेसन के लड्डू खिलाये, छाछ पी। बहुत देर तक पिछली बाते करती रही। रात मे शोभाचद जी से भजन सुना।

१ फरवरी : सुबह १०० ब्राह्मण जिमाये, गोदान किया। सब १०००) रुपये खर्च हुए। कुछ ऊपर भी हुए होगे। मेरी समझ मे अब ये सब व्यर्थ हैं। दान की गाय बेच दी जाती है या दाने-चारे के अभाव मे बीमार होकर मरती है। ब्राह्मण सतयुग मे ब्रह्म साधता था, त्रेता मे मन्त्र, द्वापर मे गुरु बनकर कान फूँकता था और अब रसोईया बनकर चूल्हा फूँकता है। पढने-पढाने, पूजन-पाठ के काम तो कब के छूट गए। परतु मुझे अनचाहे सब करना पडता है, पिताजी, माँजी के आगे क्या बोलता ?

१३ फरवरी : शाम को ५ बजे काग्रेस पार्टी की मीटिंग हुई। पडितजी आदि थे। बैंक वाले मेरे प्रस्ताव पर थोडे झल्लाए से। एस० एन० सिन्हा ने तो कहा कि ऐसा प्रस्ताव रखना ही नही चाहिए। मेरा प्रस्ताव बैंकिंग-व्यवसाय के लिये उपयोगी था। धनिको के स्वार्थ की बात नही थी। परतु पडित जी की मर्जी, शायद उन्हे इसके बारे मे अच्छी रिपोर्ट नही दी गयी। मैंने ढग से चुपचाप वापस ले लिया।

२२ फरवरी : मौलाना आजाद चले गये। भले थे। अरबी, फारसी के बहुत बड़े विद्वान। आजादी की लडाई मे गांधी जी का साथ दिया। नेहरू जी इन्हे बहुत मानते थे। मुसलमानो ने इनको अपना नेता कभी नही माना, बडे ताज्जुब की बात है। पडितजी बेहद दुखी हैं। बहुत से लोग इकट्ठा हो गये। सुनने मे आया कि किसी ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की थी जिस दिन कृष्णमाचारी रिजाइन करेगे उसी दिन मौलाना को चोट आयेगी और चार दिनो बाद उनका देहात होगा। चोट लगने पर कलकत्ते से डा० विधान राय देखने आये थे और उन्होने कहा था कि कोई खतरा नही है। परतु आश्चर्य है, ज्योतिषी की बात सही निकली। बडी चर्चा है।

११ जून : व्यास जी के साथ सुबह ११ बजे तक था। मैं महसूस करता हूँ कि चदे के काम मे मुझे कम जाना चाहिए। प्रेस्टिज घटती है पर उपाय क्या। आज राजनीति मे देना-दिलाना, खाना-खिलाना नियम-सा है। इसके बिना चलता नही, भले ही पब्लिक वर्क हो या नही। रात मे शाति प्रसाद जी के घर मालू जी जीमने गए थे, वही के तालाब मे डूब कर मर गए। शायद हार्ट फेल कर गया।

१५ अगस्त : लगता है, स्वाधीनता दिवस का अब कोई खास महत्व नही रह जायेगा। तैयारी होती है, भाषण होते है। भीड आती है, चली जाती है, आसपास के गाँव से दिल्ली देखने के लिये। गलती तो हम लोगो की है। दिन मे मुरारजी भाई के यहाँ खाने पर गया। शाम को राष्ट्रपति भवन गया, मैथिलीशरण जी और गगाबाबू साथ मे थे।

४ नवम्बर : तबीयत ठीक नही लगती। रात मे बिना खाये १०।। बजे सो गया था। भागीरथ जी के यहाँ गया। वहाँ जे० पी० आये। मैंने पडित जवाहरलाल जी की कडी आलोचना की। बात सही भले ही हो पर यह उचित नही था, मैंने महसूस किया।

२० नवम्बर : मन मे विचार आता है, व्यापार छोड राजनीति मे आया, परन्तु इसमे ज्यादा उलझन है। झूठ ज्यादा बोलता हूँ। इससे बचकर रहना चाहिए परतु यह कैसे हो ?

१९५९

१२ फरवरी : कुछ क्वेश्चन और सप्लिमेन्टरी की तैयारी की। कल का मेरा क्वेश्चन अच्छा रहा, पर पब्लिसिटी दूसरो को मिली। शायद मैं प्रभाव नही डाल सका। शाम को ढेवर भाई की पार्टी हुई, काफी आदमी थे। रात मे मै० श० गुप्त, रायकृष्ण दास जी, डा० मोतीचन्द, डा० नगेन्द्र जीमने आये। १० बजे तक आपसी गोष्ठी चली। इनके बीच बहुत कुछ सीखने को मिल जाता है। जूट एक्सपोर्ट ड्यूटी को लेकर जो बाते मैंने की थी, उसका नतीजा नही निकला, ऐसा मालूम देता है।

११ अप्रैल : फिरोज गाधी से उनकी कास्टिचुएसी के बारे मे बातचीत की। अच्छा अनुभव रहा। वायलेट अल्वा कलकत्ता मे मेरे यहाँ ठहरी हैं। डॉ० रामसुभग सिंह से बात की। वे मुझे

ट्रेजरार के लिए खडे होने को कहते है, मेरा भी मन है।
१५ अप्रैल : पार्लियामेट मे जूट और टी पर बोला, अच्छा बोला अग्रेजी मे। परतु मनु भाई ने कहा फाइनास मिनिस्ट्री को ऑफेंड नही करना चाहिए था। क्वेश्चन दिन मे स्टडी करता रहा। कुछ चदे की भी चेष्टा की। दम्माणीजी से ५०००) रु० श्री फिरोज गाधी दिलाए।

दिल्ली

१ मई : दिन मे वर्मा जी ने कहा, आप विथड्रा कर ले, इसीलिए मैंने अपना ट्रेजररशिप के लिये नाम वापिस लेना उचित समझा। पार्लियामेट का काम ही पूरी तौर पर नही कर पाता ऊपर से ट्रेजररशिप की जिम्मेदारी जरूर भारी पडेगी। स्वास्थ्य भी ठीक नही रहता। परतु ऐसा लगता है, विथड्रा नही कर पाऊँगा, प्रेशर पडेगा।

१८ नवम्बर : पार्लियामेट बद हो गयी, किसी का देहात हो गया। वर्मा-जी के घर गया, उनसे राजस्थान के बारे मे बात की। चीन का दबाव बढ रहा है, शायद भारत को जमीन छोड़नी पड़ेगी। आनेवाली पीढ़ी हमे माफ नही करेगी। पार्लियामेंट के सदस्यो की गलती है, इस मामले पर पडित जी को ढिलाई नही बरतने देते मगर हम लोगो को अपने से फुर्सत नही, स्टडी नही कर पाते इसलिए पडितजी की नीति का विरोध भी ठीक से नही होता है। मैं भी उन्ही मे हूँ।
१२ दिसंबर : राष्ट्रपति भवन मे शाम को गया, पार्टी थी। ५००० आदमी थे। मन मे कैसा-सा महसूस करने लगा। हमारे देश मे विदेशी प्रथा की नकल जोरो से चल पडी है। पानी तो ऊपर से नीचे बहता है। थोडे दिनो मे इस दिखावे की बाढ मे गरीब भी डूबेगें।

सन् १९६०

१ मार्च : शाम को मैथिलीशरण जी के पास गया। बालकृष्ण शर्मा नवीन से मिला। अग्नियुग के इन कवियो को राजसभा, लोक-सभा मे लाना ठीक नही हुआ। मुझे ऐसा लगता है, इनकी प्रतिभा कुठित हो रही है। साहित्य के साधक को राजनीति से क्या मतलब ? कालिदास, सूर, तुलसी, भूषण ने राजनीति से अपने को दूर ही रखा था। रवीन्द्र, शरद, प्रेमचन्द ने भी।
२९ अप्रैल : रात मे नीद नही आया। १०।। बजे पार्लियामेट गया। १५ मिनट मे ही मेरी जीत का पता चलने लगा। आखिर, मै जीता। रामसुभग जी भी जीते। प्रभुदयाल जी और सारे मित्र जीत गए। मन मे अच्छा लगा। इज्जत बढ़ गयी। सब बधाई दे रहे थे।

सन् १९६२

२९ मार्च : दद्दा के गया, दिनकरजी थे। दिनकरजी ने अपने मन से 'व्याल विजय' सुनाया। बहुत अच्छा लगा। आवाज मे बुलदी है, पर्सनलिटी भी अच्छी है, कहने का ढग भी जोरदार। गगाबाबू का आज चुनाव था, वे यही हैं। जीत का चास है।

३० मार्च : गगाबाबू चुनाव जीत गए, खबर सुबह मिली। मन मे बहुत खुशी हुई। दिन मे पार्लियामेट मे अपनी तरफ से कोशिशे करता रहा।

१३ अगस्त : दिन मे पार्लियामेट गया, लद्दाख पर डिबेट था, एथोनी बहुत ही अच्छा बोले। पडितजी सामने भले ही कोई न बोले, मगर लाबी मे चर्चा होती है कि उनकी फॉरेन पालिसी फेल कर रही है। चीन के मामले मे उनकी ढिलाई रही और बहुत सी बाते छिपाई गयी। परतु अब तो सब सहना पडेगा, चीन दबाता जायगा।

१४ अगस्त : दो दिनो से पार्लियामेट मे क्वेश्चन कम हो रहे है। लाबी मे चीन के मामले पर खूब बाते होती हैं। चीन बडी लडाई की तैयारी मे है। पिछले महीने मुरारजी भाई ने दस हजार फुट से ऊपर रहने वाली मिलिट्री के लिए अतिरिक्त भत्ते की मजूरी दे दी है। परतु मिलिट्री वाले आधुनिक हथियारो के लिए पॉच-छ अरब रुपयो की जरूरत बताते है। मुरारजी भाई ने कहा है कि रक्षा-मत्री इस मामले को कैबिनेट मे रखे। पडितजी का कहना है कि इसकी जरूरत नही, चीन हमला नही करेगा। समझ मे नही आता कि क्या सही और क्या गलत।

२८ अगस्त : आज अखबारो मे मेरी स्पीच आयी, लोगो ने पसद की। सुबह स्टेट मिनिस्टर्स की मीटिंग मे गया, काफी भाग लिया। सिमेट और लोहे के बारे मे बोला। इनके वितरण की व्यवस्था ठीक होनी चाहिए। रुकावट से प्रोजेक्ट रुके रह जाते है। राजस्थान के लिए विशेष सुविधा रखनी होगी। देखे क्या होता है।

६ अक्तूबर : नेफा का कमाडर लेफ्टिनेट जनरल कौल को बनाया गया है। अनुभवहीन आदमी है। ऐसा लगता है, भारत के दुर्दिन आ रहे है। थिमैया की बात सही निकलेगी।

२१ अक्टूबर : खबर आयी, चीन ने नेफा पर हमला जोर से कर दिया है। मन मे बहुत दु ख हुआ। अपनी कुछ भी तैयारी नही है, हथियार भी नही। सेना ने पिछले जून महीने मे सातवी बार रक्षा-मत्रालय को हथियार और सामान की कमी के बारे मे चेतावनी दी थी। हम लोगो ने कृष्णमेनन से भी मीटिंगो मे कहा परतु उसने किसी की नही सुनी। पडितजी ने उसका फेवर कर के बहुत बडा खतरा उठा लिया है।

२२ अक्तूबर : पडितजी के भाषण से लोगो मे निराशा है। बाजार मे शेयरो के भाव बहुत तेजी से टूटे। तरह-तरह की अफवाहे आ रही है।

२४ अक्तूबर : सारे दिन लडाई की चर्चा—कि क्यूबा मे अमेरिका और रूस तथा हिमालय मे भारत और चीन लड रहे है। परतु रूस और अमेरिका तो आपस मे नही लड रहे है, धमकियाँ है। मुझे तो दिखावा लगता है। चीन ने तो हमारे ऊपर धावा बोल दिया है। दुनिया मे कमजोर रहना अपराध है। बाजार मे बहुत घट-बढ है। मन मे अशाति है पडितजी के साथ-साथ सारे काग्रेसी नेता, एम० पी० वगैरह भी नेफा काड के लिए जिम्मेदार ठहराये जायेगे। मन मे दुख-सा हो रहा है।

२५ अक्तूबर : सुबह के० एल० ढाडनिया के गया और लोग भी थे। ड्राफ्ट बनाया कि दीवाली पर रोशनी वगैरह न की जाय, पडितजी की अपील है। शाम को मारवाडी सम्मेलन की मीटिंग मे गया। मन मे अपने को दोषी पाता हूँ। देश के लिए कुछ करने का मन हो रहा है। हमारे बहुत से जवान मरे और घायल हुए बताते है। हाथ मे मामूली हथियार, बदन पर गरम कपडे तक नही। ठड से हाथ-पैर की उँगलियाँ गल गयी।

२६ अक्तूबर · सुबह अखबारो मे देखा, टुएनम्राग चला गया। चीन की सेना बाढ की तरह आ रही है। आसाम पर खतरे उतरने से पाकिस्तान भी झमेला जरूर खडा कर देगा। मन मे दु ख होता है। अपना देश हारता जा रहा है, हमारे बहादुर जवानो की जान हमारी लापरवाही से जा रही है। कल जो स्टेटमेट मैने दिया था, वह अखबारो मे आया।

२७ अक्तूबर : हम लोगो ने वार फड मे एक लाख रुपये देने का तय किया। पिताजी को भी जँच गया।

३ नवम्बर : लडाई की हालत अच्छी नहीं है। नेफा के कमांडर कौल तो ११ तारीख को ही दिल्ली आ गए थे। उन्होंने पंडितजी और मेनन को बता दिया था कि चीन की घुस-पैठ हो चुकी है और उन्हें दबाना बूते के बाहर है। इस बीच मैंने अखबारों में कई लेख भेजे और पत्र भी संसद के अपने मित्रों को लिखे हैं। देखें क्या होता है। लद्दाख में हमारी सेना ने चीनियों को बढ़ने नहीं दिया। कौल को फिर से नेफा कमांड पर भेजा गया है।

नयी दिल्ली

६ नवम्बर : सारे दिन मेनन के बारे में लोगों में चर्चा रही। ऐसा लगता है, पार्टी के सदस्य और संसद सदस्यों को पछतावा है।
७ नवम्बर : शाम को पार्टी मीटिंग में पंडितजी ने मेनन को हटा दिया। इस प्रकार से मजबूर थे। मेनन के हटने से सब को खुशी हुई।
८ नवम्बर : कल पार्टी मीटिंग में पंडितजी ने मेनन को छोड देने को कह दिया। मेरा भी इसमें हाथ रहा, मुझे सन्तोष है, शायद पंडितजी नाखुश होंगे।

नयी दिल्ली

२० नवम्बर : दिन में लडाई के बारे में खबरें सुनता रहा। मन खिन्न हो रहा है। दुनियावाले हम लोगों पर हँसते होंगे। ४ बजे नेहरूजी से मिला, और भी लोग थे। तीन बजे मुरारजी भाई के साथ मीटिंग हुई थी। रात में महावीरजी त्यागी आए। नेफा के मामले से वे चिंतित थे।
२१ नवम्बर : सुबह उठते ही अखबारों में देखा कि चीन ने 'सीज फायर' कर दिया है। दिन में नेहरूजी का स्टेटमैंट सुना। कुछ दम नहीं था। दुनिया ने देख लिया, हमारी विदेश नीति कितनी कमजोर है और विदेशों में हमारा कितना प्रभाव है। पार्लियामेंट में डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी जैसा कोई जोरदार विरोध करने वाला होता तो पंडित जी सम्हले रहते और देश का भला होता। लोहियाजी बोलते हैं परन्तु उनकी चोट पंडितजी पर व्यक्तिगत रहती है। चीन को जो करना था कर दिया, जमीन तो हड़प ही ली।
४ दिसम्बर : ५ बजे बीजू पटनायक के यहाँ गया। वहाँ और भी बहुत से लोग आए थे। शास्त्रीजी वगैरह, नंदाजी आए थे। सोचने लगता हूँ, राजनीति भी कितनी रहस्यमयी है। ईमानदार को बेईमान और बेईमान को ईमानदार बनाने-बनने में देर नहीं लगती। बीजू का मान-सम्मान था, कितनी बदनामी हुई, फिर आज उन्हीं के घर पर सब आए।

सन् १९६६

१८ जनवरी : कांति भाई को विश्वास है, वे जीतेंगे। चुनाव में झूठ-सच खुल कर चलता है। मेरा मन कहता है, मुरारजी भाई हार जायेंगे।
१९ जनवरी : रिजल्ट आउट हुआ। मुरारजी भाई हार गए।

खंडेला

२० फरवरी : सुबह मतदान हुआ। कांग्रेस के पक्ष में मालूम देता है। परेशान था। १,०००) रु० का ३,००० वोटों की जीत पर सौदा किया। मदनजी के साथ रात में सीकर वापस आ गया। परेशानी और चिंता है परन्तु जीत की आशा है।
२१ फरवरी : सुबह सीकर की गिनती शुरू हुई। दिन में भाव बढ़ते-घटते रहे। रात में १२ बजे नन्दू सुजानगढ से आया। ९,००० वोटों से वहाँ की हार सुनकर चित्त खराब हो गया। नन्दू यहाँ से उसी समय चला गया, नीम के थाने की काउंटिंग पर। सुजानगढ़ से मुझे ऐसी आशा नहीं थी, बहुत बड़ा धक्का हुआ।

२२ फरवरी : सुबह उठा। थोडा बुखार था। नन्दू वगैरह आ गए हैं। सुजानगढ के रिजल्ट के बाद मेरी हार निश्चित हो गयी है। मन मे काफी उदासी है। सारे दिन पडा रहा। भाईजी राजलदेसर जाकर रुपये ले आए। कार एक्सिडेट होते-होते बची। मन मे इतनी ज्यादा चिंता है कि कभी नही हुई। रात मे जी० डी० बिरला का फोन आया। मुझे कभी भी इतनी चिंता नही हुई थी।

२३ फरवरी : सुबह मन कुछ ठीक हुआ। होना ही था। जो होना था, वह सामने आ गया। मन मे काफी चिंता रही। नन्दू, राजू दिल्ली गए। मुझे रोना आ गया। साबूजी मिलने आए। १५,००० मतो से हार हुई। कामराज, अतुल्य घोष आदि भी हार रहे हैं। काग्रेस काफी कमजोर होती जा रही है। मेरी हार के पीछे काग्रेस की अदरूनी दलबदी ओर कमजोरी है, मैं महसूस कर रहा हूँ।

२४ फरवरी : सुबह से ही काम सलटाने की व्यवस्था करने लगा। ४६,०००) रु० कलकत्ते पर हुडी की। पेमेट किया। लोग मिलने आते रहे। मन मे दु ख है, हूक-सी लगती है। त्यागीजी हार गए। मनु भाई, पाटिल आदि सब हार गए। इतना दु ख जीवन मे शायद एक बार हुआ, ३० वर्ष पहले जब फाटका मे रुपया खो दिया था। फाटका और राजनीति दोनो ही मेरे लिए माफिक नही। परतु व्यापार मे रुपया खोने का दु ख ऐसा नही होता।

नयी दिल्ली

२५ फरवरी : सुबह ६॥ बजे पुगा। मन मे उत्साह नही था। ७॥। बजे तक बिस्तर पर पड़ा रहा। पैरो मे दर्द है। १२।। बजे तक घर में रहा। फिर पार्लियामेट हाउस गया, लोगों से मिला। पी० डी० हिम्मतसिंहका से मिला, कुछ शांति मिली। मोरारजी भाई के गया, काति भाई से बात की। मन मे एक प्रकार की सुस्ती है, झेप-सी आती है। उदासी का वातावरण छाया हुआ है। 'सरिता' के विश्वनाथ मिलने आए।

२६ फरवरी : सुबह थकावट और आलस सा था। मन मे विचार आते हैं, कटी पतग की तरह हूँ। कोई सूत्र नही रहा। किस काम के साथ अपने को जुडा समझूँ ? इन वर्षों मे व्यापार, काम-काज से एक रकम अलग ही रहा।

सन् १९६७

२ मार्च : बगाल मे बहुत हेर-फेर हो रहा है। कम्युनिस्टो की मिनिस्ट्री बन रही है। इतने वर्ष, समय और मेहनत लगा कर क्या मिला ? सामाजिक कार्य करता तो ज्यादा सेवा होती, कुछ कर भी पाया था परतु राजनीति तो बेमतलब की है। इसमें कुछ करना चाहे तो हो नही सकता बल्कि उल्टा हो जाता है।

६ मार्च : मनुष्य पर जब विपत्ति आती है, तब धैर्य नही रख पाता। दूसरो को धीरज देना आसान है पर अपने पर आने पर वश नहीं चलता है। इस महीने मे जितनी चिंता और हैरानी हो रही है, वह कभी नही सोची थी, खासकर पद्रह दिनो मे तो हद सें ज्यादा। दिन में ऑफिस मे था। कामकाज तो देखना चाहिए परंतु मन स्थिर नही कर पाता हूँ।

१५ मार्च : मन करता है कि किसी अनजानी जगह चला जाऊँ। कितना प्यार किया राजस्थान को, कितनी कोशिशे की अपने क्षेत्र के लिए। लोगो ने गलत समझा। शायद धन मेरी हार का बहुत बडा कारण हो। सभी जगह रुपयो की मॉग क्योकि मैं पेसेवाला समझा जाता रहा। गलती मेरी भी थी, मैं देता रहा। धन की भूख बढती है, मिटती नही, नही मिलने पर क्षोभ होता है। परन्तु मुझे सतोष है, यहाँ कुए, तालाब, सड़के, स्कूल, अस्पताल रहेगे, मैं न भी रहू तो क्या। १२।। बजे की बस से ३ बजे सरदार शहर आया। लोग मिलने आए, पहली बार मिलने पर मन मे एक प्रकार की झेप और दु:ख सा महसूस हुआ। मदिर गया। मन के लिए ताकत की प्रार्थना की।

सन् १९६९

१४ मई : सुबह घूमने गया। दिन मे पार्लियामेंट मे था। जगजीवन बाबू से मिला। कल हेत्थीजी से भी बात हुई थी। सुबह उमाशकर जी दीक्षित से मिला—काफी नाराज थे, तिवारी को लेकर। कूपर एलेन का कुछ नही हो रहा है। दोपहर २ बजे एयर से लखनऊ पहुँचा। ४॥ बजे गुप्ताजी से मिला। उन्होंने मेयरशिप के लिए कह दिया है। मन मे खुशी हुई, सुबह बनारसीदास मिले थे, उन्होने ही विक्टोरिया मिल्स के लिए कहा है। कुल मिलाकर सब ठीक रहा।

२० मई : दिन मे सारे दिन काम मे व्यस्त रहा। ४ बजे चमडा कारखाने वाले आए, बीस आदमी थे। शायद झंझट भी करते। किसी तरह उनको पार किया। उनकी बात-चीत से मन मे क्लेश सा हुआ। हम लोगों ने यूरोप वालों की तरह यूनियन तो बना लिया पर सगठित होकर काम बढाना नही सिखाते। बस एक बात पैसे बढाने की जानते है, चाहे बरबादी करे, काम न करे, घाटा होता जाय। सारी इकानामी खराब होती जा रही है। कपडे का बाजार समान हैं। सुबह जटाधर जी बाजपेयी, भागवत प्रसाद जी तिवारी से मिला। रात मे रतनलाल जी शर्मा, विद्याधर जी और श्री भटनागर आए थे। मेयरशिप वाली बात आगे बढ रही है।

२२ मई : अभी भी कमर मे थोडा दर्द है। दिन मे भाई जी से बाते करता रहा। इस बार इतनी चिंताए हैं, न जाने क्यो ? कभी-कभी तो मर जाने को जी चाहता है। देने मे परमात्मा ने कमी नही की पर चिन्ताएं बढ गयी। शायद दोष हमारा ही है। नाना प्रकार की समस्याए एडवर्ड मिल, सीताराम मिल, लुकवा, भरतिया और रतनी के मुकदमे ही खास है।

३१ मई : सुबह भाई जी मोटर से पुरी के लिये रवाना हो गये। ओम शिलाग से आकर दिल्ली के लिए रवाना हो गया है। कपल्स के आर्डर मिलने वाले है। दोपहर का खाना नही खाया, पेट मे दर्द और बदहजमी सी है। दिन मे २ बजे ऑफिस मे था। रेणु चक्रवर्ती से मिला, ज्योति बाबू से न मिल सका। शाम को थोडी देर अमेरिकन लाइब्रेरी मे था। रात में ७॥ बजे स्टेशन आया, बी० एल० मिले। ए० सी० सी० की टिकट ली है। शेयर बाजार काफी तेज है, मुझे लगता है ऊंचे से ऊचे भाव आज हैं परन्तु मुझे फाटका करना आता है नही, बराबर घाटा देता जा रहा हूँ।

कानपुर

२ जून : एलगिन मिल गया। जैन ने कहा कि फाइबर के इम्पोर्ट लाइसेन्स बन्द हो गये हैं। चिन्ता हो रही हैं। रात मे सी० बी० गुप्ता का फोन आया, उन्होने बुलाया है। मेयरशिप वाली बात जोरो से चल रही है।

२५ जून : सुबह ९ बजे तिलक हॉल मे गया। वहा सभासदों ने नाश्ता किया। १० बजे से गिनती शुरू हुई। कुल मिलकर ६१ मत मेरे और १५ राधेश्याम जी बाजपेयी के। काफी भीड थी। लोगो ने बधाइया दी। मिल मे जाकर थोडी देर काम देखा। शाम तक घर मे लोगो की भीड लग गयी, मन मे प्रसन्नता हुई।

२९ जुलाई : सुबह ग्वालटोली की तरफ निकल गया। काफी गदगी है। मकबरे की बस्तिया, झुग्गिया अकेले ही हर तरह की बीमारिया और अपराध बढाने के लिये काफी है। बड़ी समस्या है। विदेशों मे इटली, मिश्र, टर्की वगैरह मे भी इस ढग की नही देखने मे आयी। कलकत्ते मे भी नही। क्या किया जाय, कुछ समझ मे नही आता। बहुत बडे रुपयो की जरूरत पडेगी, टाइम भी लगेगा। सबसे पहले सफाई और स्वास्थ्य के बारे मे बताना जरूरी है।

६ सितम्बर : दिन मे कारपोरेशन नही जा पाया। इन्दिराजी को लाने एयर पोर्ट गया। पहली माला मैने पहनायी। कुछ नाराज सी लगी। शायद मुझे मनुभाई, मुरारजी भाई, सी० बी०

गुप्ताजी का आदमी समझती है। परतु मेरे मन मे अब तक किसी गुटबदी मे जाने की बात नहीं। अब तो एम० पी० भी नही रहा जब था, तब भी गुट मे नही जुडा। ५ बजे वर्कर्स मीटिंग थी। ७ बजे पब्लिक मीटिंग मे इन्दिराजी को धन्यवाद मैने दिया।

कानपुर

१७ नवम्बर : इन्दिरा जी का बहुमत पार्लियामेंट मे हो गया, अब वह अपने को बहुत मजबूत बना लेगी। पुराने लोग अब शायद कुछ नही कर पायेंगे। कुर्सी की बहुत बडी ताकत होती है।

सन् १९७०

१३ जनवरी : ऐसा लगता है कि एक वर्ष मे शरीर काफी थक गया। लोग मुझे वृद्ध कहने लग गए है। सुन कर अच्छा नही लगता, उत्साह घटता है। शायद इसीलिए विलायत मे बुजुर्गों को वृद्ध कहते नही।

२६ जनवरी : १ बजे तक ७-८ जगह झडे फहराए। साधारण-सा बोला भी। आज मेरा जन्म दिन है। झूठ नही बोला। इन्दिराजी का जोर था। गुप्ताजी को लोग बुरा-भला कह रहे थे। ऐसा लगता है, गुप्ता जी की सरकार नही टिक पायगी।

१५ दिसम्बर : सुबह एक स्वामी जी के पास गया। आसन सीखने, अजीब से लगे। रुपया चंदे का मॉगते है। गलती हम लोगो की है। कौपीन या गेरुआ पहन कर आसन सिखाने वालो से हम आसन सीख कर समझते है कि योगाभ्यास करते है। ऐसे आसन तो व्यायामशालाओ मे सहज मे सीखे जा सकते है। स्वामी जी लोग अध्यात्म का रस बीच-बीच मे पिलाया करते है।

सन् १९७५

२२ जून : नथमल केडिया के साथ विशुद्धानद विद्यालय मे कवि-सम्मेलन मे गया, साधारण-सा था। अब पहले की तरह कविता मे भावना नही मिलती। शब्द-योजना भी वैसी नही रही। ऐसा लगता है, समय और हमारे सोचने के ढग मे काफी फरक आ गया।

२८ अगस्त : सुबह ८ बजे ५० सरकारी आदमी आये। सारे घर को घेर लिया। रात मे ११ बजे तक रहे। सब कुछ ले गये। मन एकदम खराब हो गया। वाइफ पर भी गुस्सा आता था, परतु उससे क्या बनता है। हम लोगो का सिस्टम कुछ ऐसा ही है। गहने-पहनने नही परन्तु इन पर खर्च अनाप-सनाप लगायेंगे। बार-बार इन्हे गढवायेंगे, तुडवायेंगे। रुपया फँसा रहता है, काम आता नही। लोगो की नजरो मे पड़ता है। नाना प्रकार की दिक्कते खडी हो जाती है। कुछ हो या न हो एक बखेडा बेकार का खडा हो गया। लोग क्या-क्या सोचेंगे ? कैसा सा लगता है।

९ नवम्बर : सुबह तैयार हुआ, ८॥ जसलोक मे भरती हो गया। डाक्टर मनी ने देखा। किडनी खराब होकर युरिया बढ गयी है। भूख एकदम बन्द है। शरीर मे सूजन है। सॉस लेने मे तकलीफ होती है। दवा दी, पानी कम कर दिया, थोडा निकाला भी। अच्छा हुआ, अस्पताल मे आ गया। दवा एक प्रकार से बद है। बदोबस्त ठीक है।

२३ नवम्बर : आज डॉक्टर ने छुट्टी दे दी है। ६,२००) रु० लगे। इलाज तो हो गया, परतु दोनो किडनी खराब हो गयी। जीवन एकदम सीमित हो गया। कल यहाँ से घर चला जाऊँगा। सोचता हूँ, प्रकृति जब मेरा साथ छोड चुकी है तो इलाज कितना कर पायेगी।

सन् १९७७

२६ जनवरी : आज ६७ वर्ष पूरे हो गए। एक प्रकार लम्बा समय हो गया। जो कुछ किया, उनमे से कुछ बातो को छोड कर मन मे सतोष है। १० वर्ष पार्लियामेट मे रहा। कानपुर का मेयर भी बना। बी० आई० सी० का मैनेजिंग डायरेक्टर रहा। जितनी सेवा बनी, कस्ता

रहा। सार्वजनिक सस्थाओ मे भी रह कर काम किया। गरीवी से उठ कर सपन्न बना। वच्चे भी इज्जत करते है। लडकी मे यद्यपि दुख पड गया परंतु सम्पन्न हो गयी। आज वह लगभग करोडपति है। नन्दू, शारदा दोनो का स्वभाव अच्छा है। वेला को अच्छा सम्वन्ध मिल गया। एक पोता, अशोक, वह पढने मे काफी होशियार है। भाई लोग सब मजे मे हैं। भरा-पूरा परिवार है। अब मै चला जाऊँ तो मन मे फिकर नही।

१६ अप्रैल : मन स्थिर रहता नहीं। सारा जीवन भाग-दौड मे खपा दिया। बाहर ही देखा, अन्दर की पुकार सुन कर भी अनसुनी करता रहा। आज तन जर्जर है, मन अस्थिर। उस पर काबू नही। लोग आते है आशा बधाते है। मै मुस्कुरा देता हूँ। जानता हूँ, भगवान् से तन पाया, मन पाया परतु आज दोनो को खोया बैठा हूँ।

२१ अप्रैल : अव डायरी लिखी नही जाती। आँखो के आगे धुँधला छा जाता है। शायद अब अधिक कष्ट नही भोगना पडे। जिस धन को कमाया, वह आज प्राण निकलने मे बाधा पहुँचाता है। नसो मे नली, सुई से खून चढाना यह सब जबरदस्ती प्राण को रोकने की कोशिश है। इससे शरीर को कष्ट होता हैं। गरीव को यह सुविधा कहाँ ? इसलिए वह थोडी तकलीफ सह कर छुटकारा पा जाता है।

६ मई : डायलेसेस पर १० से ४ बजे तक। शरीर पर जो बीतता है वह अलग, मन मे काफी तकलीफ होती है। उम्र भर का रोग लग गया। इस जीवन से छुटकारा मिल जाय तो अच्छा। मनुष्य आखिर काम करने के लिये जिन्दा रहता है। जब काम ही नही कर सकता तो उसकी क्या जरूरत ? घर वालो पर १०,०००) महीना खर्च डालने से क्या फायदा ? मेरे पर तो भगवान की कृपा है परन्तु दूसरे गरीब तो मर जाते हैं।

श्री रामेश्वर टाटिया युवावस्था मे।

श्री शिवनारायण जी टाटिया

दादा, स्व० श्री गिरधारी लाल जी टाटिया।
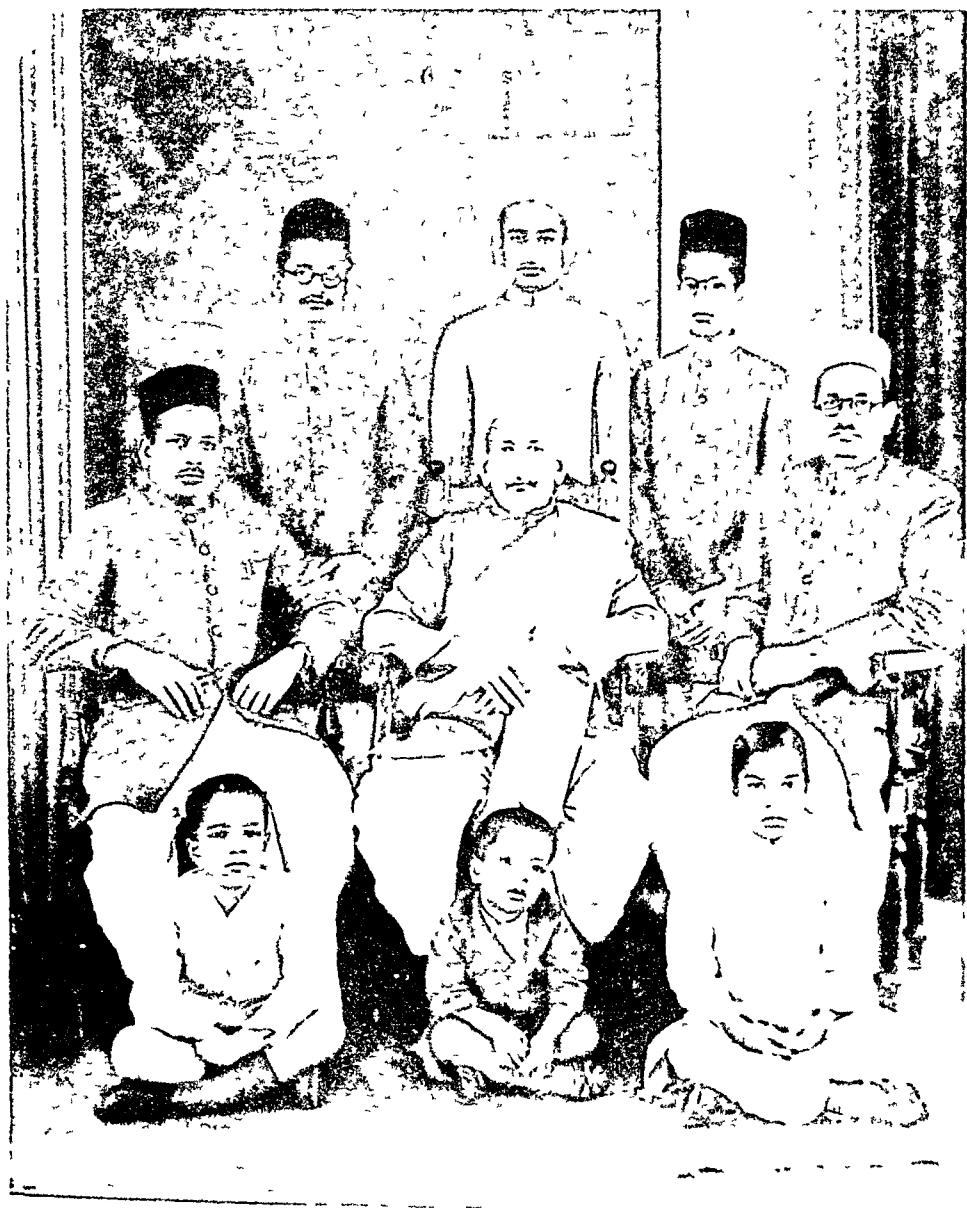
टाटिया परिवार—ऊपर-भाई सत्यनारायण, बृजलाल, मदनलाल। कुर्सी पर-बडे भाई शिवप्रताप, पिता श्री शिवनारायण, समग्र के रचयिता रामेश्वर टाटिया। नीचे बैठे हुए-रामेश्वर टाटिया के पुत्र नन्दलाल, भतीजा भगवती प्रसाद एव रतनी बाई।

बाये से ज्येष्ठ पुत्री रतनी बाई, पत्नी दुर्गा देवी, भाई वृजलाल की पत्नी पार्वती देवी, भाई मदनलाल की पत्नी सावित्री देवी
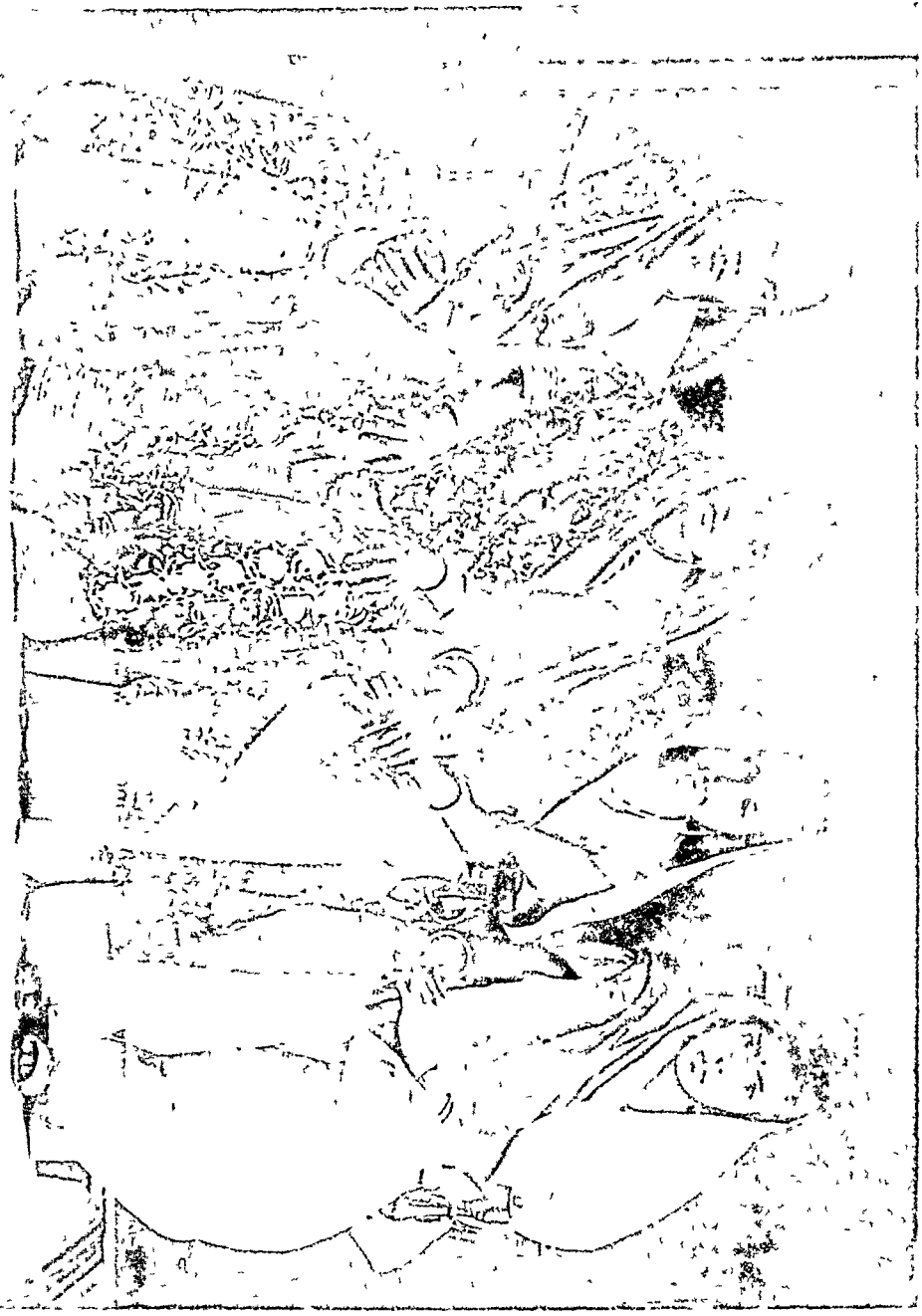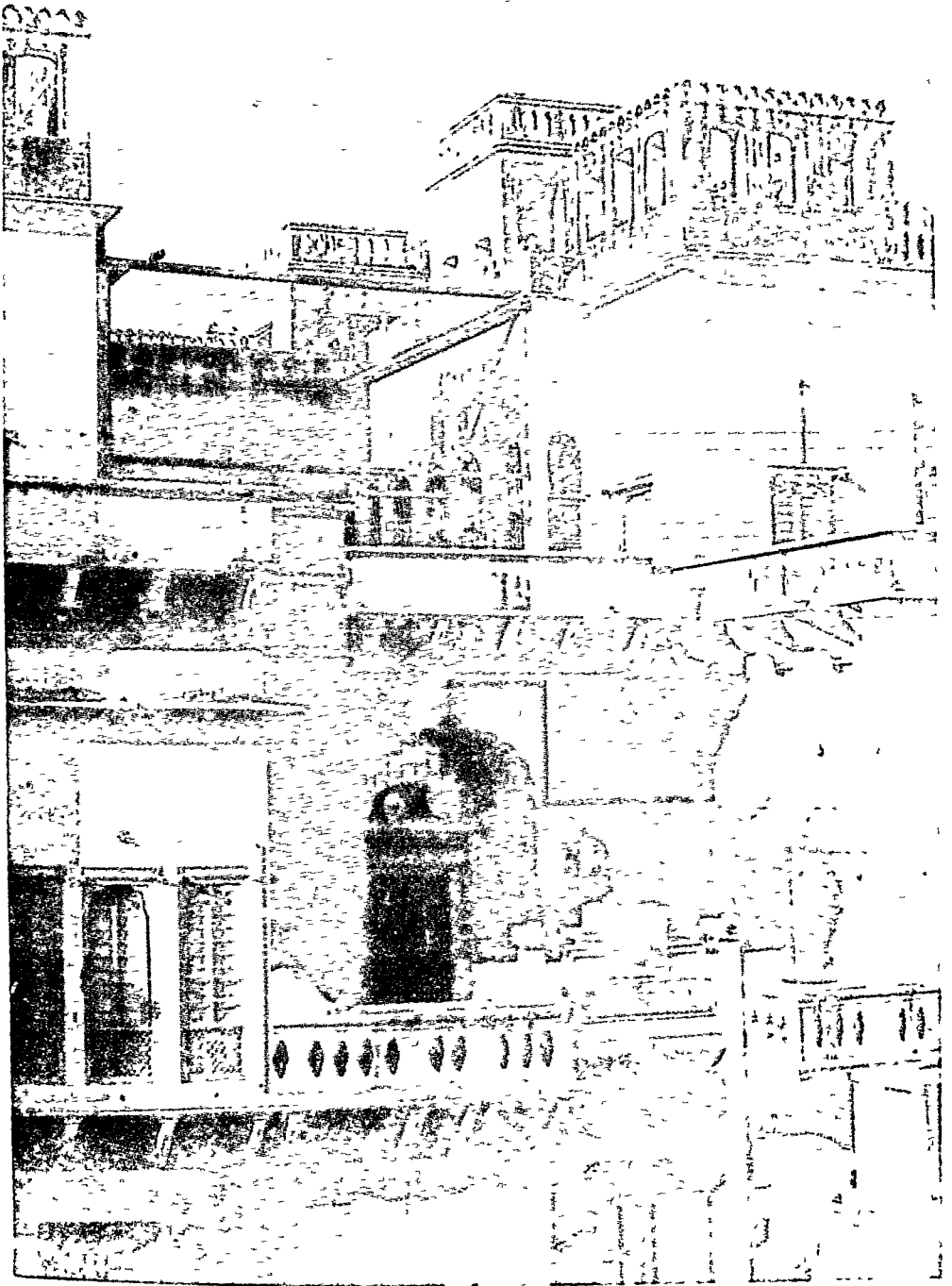
टाटियो की पुरानी हवेली, सरदार शहर

रोम के पार्सियोलिस के खडहरो मे श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिहका के साथ श्री रामेश्वर टाटिया।

श्री रामेश्वर टाटिया की बडी बहन स्व० श्रीमती मनोहरी देवी छोटडिया

श्री दौलतराम दुधवेवाला।
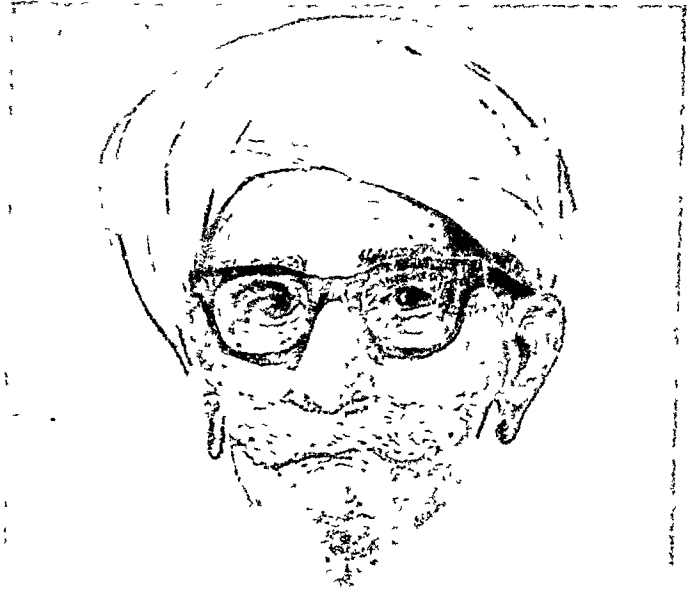
सौ वर्षीय ~ जी वैद्य, सरदार शहर
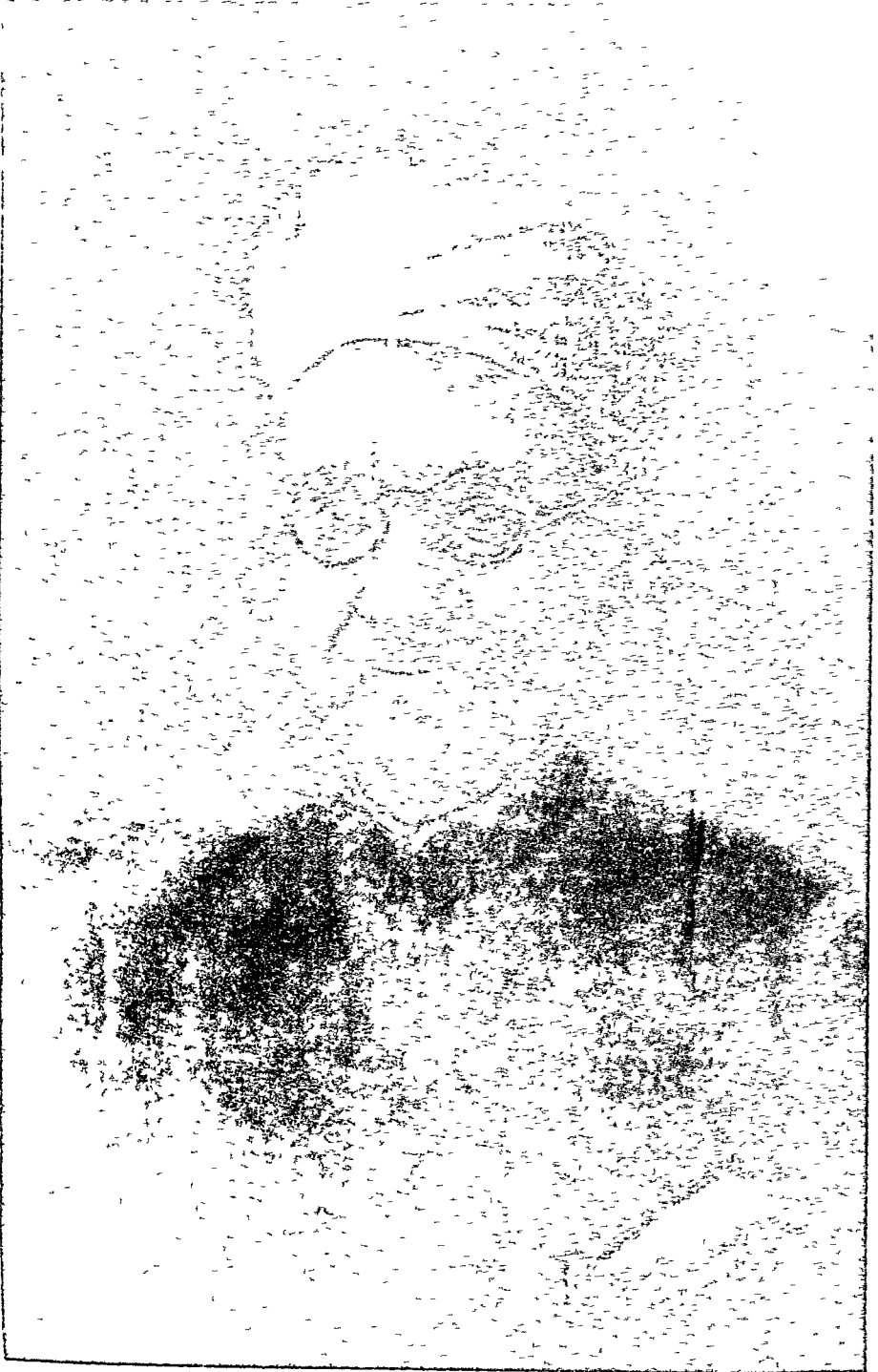
डेडराज भरतिया

बीकानेर नरेश स्व० श्री गगासिह जी महाराज

कानपुर के नागरिको द्वारा टाटिया जी का अभिनदन
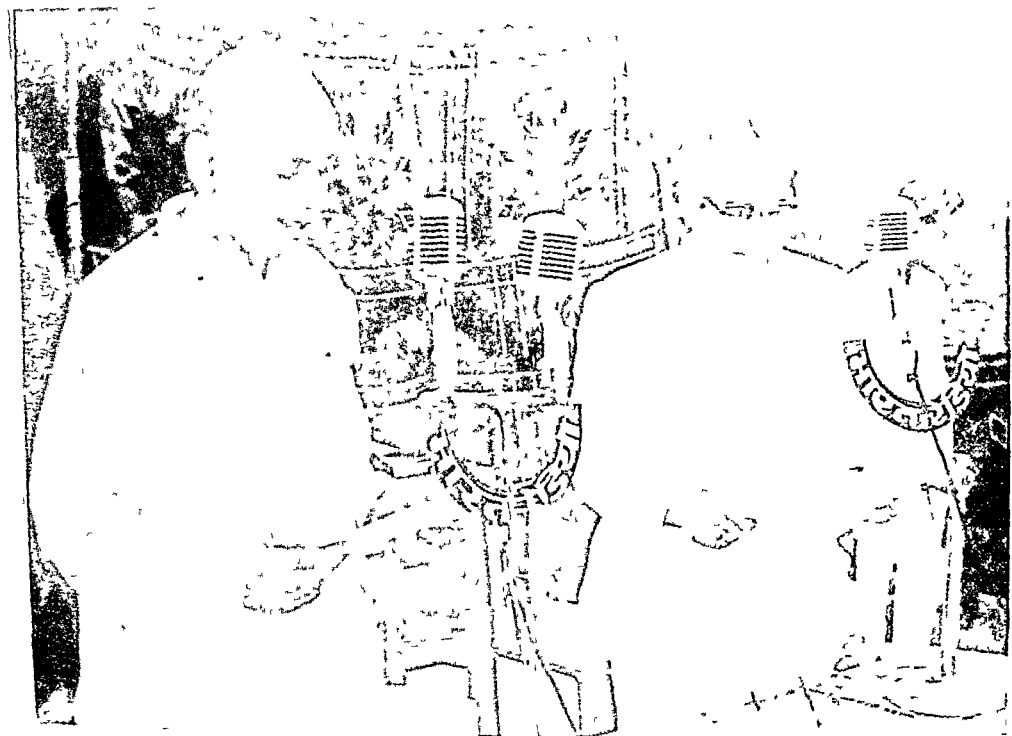
कानपुर मे मेयर पद की शपथ ग्रहण करते हुए श्री रामेश्वर टाटिया।
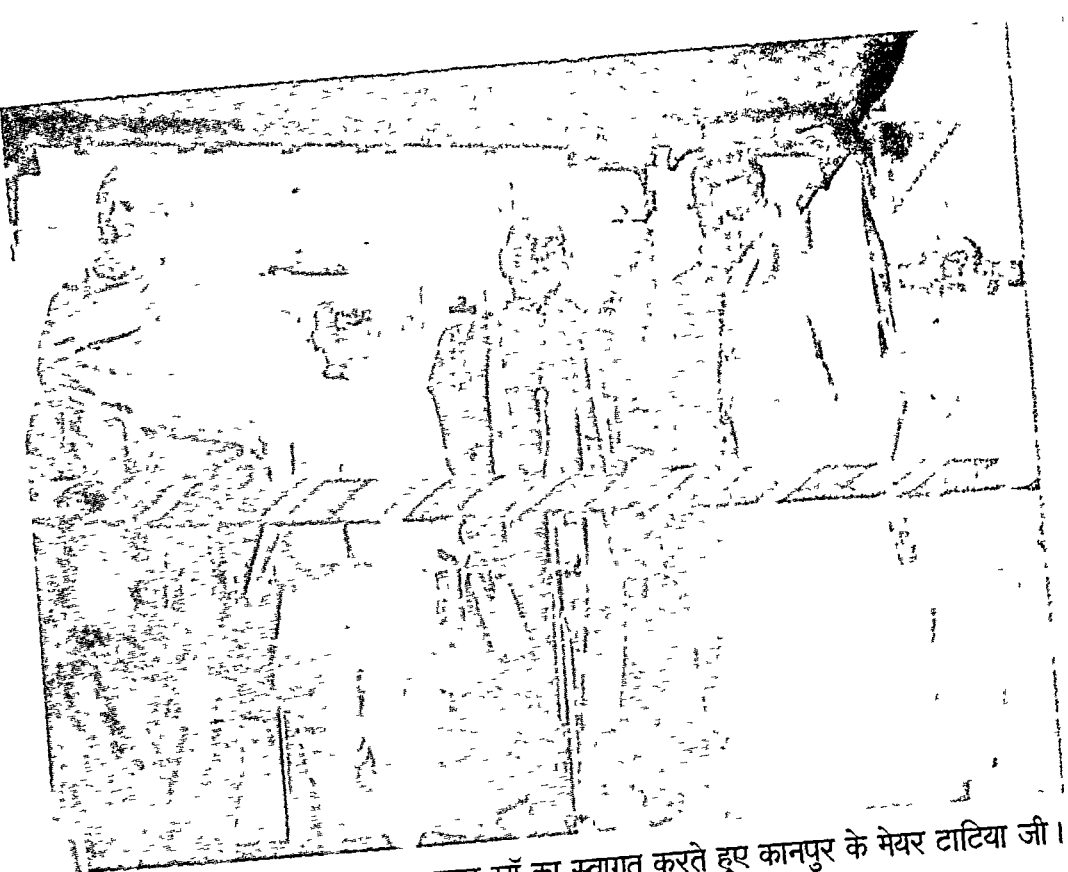
सीमात गाधी खॉ अब्दुल गफ्फार खॉ का स्वागत करते हुए कानपुर के मेयर टाटिया जी।

भूतपूर्व राष्ट्रपति वी०वी० गिरि का स्वागत करते हुए टाटिया जी।

कवि सुमित्रानन्दन पत का सम्मान करते हुए श्री रामेश्वर टाटिया।

राष्ट्र-कवि रामधारी सिह 'दिनकर' का सम्मान करते हुए श्री रामेश्वर टाटिया।
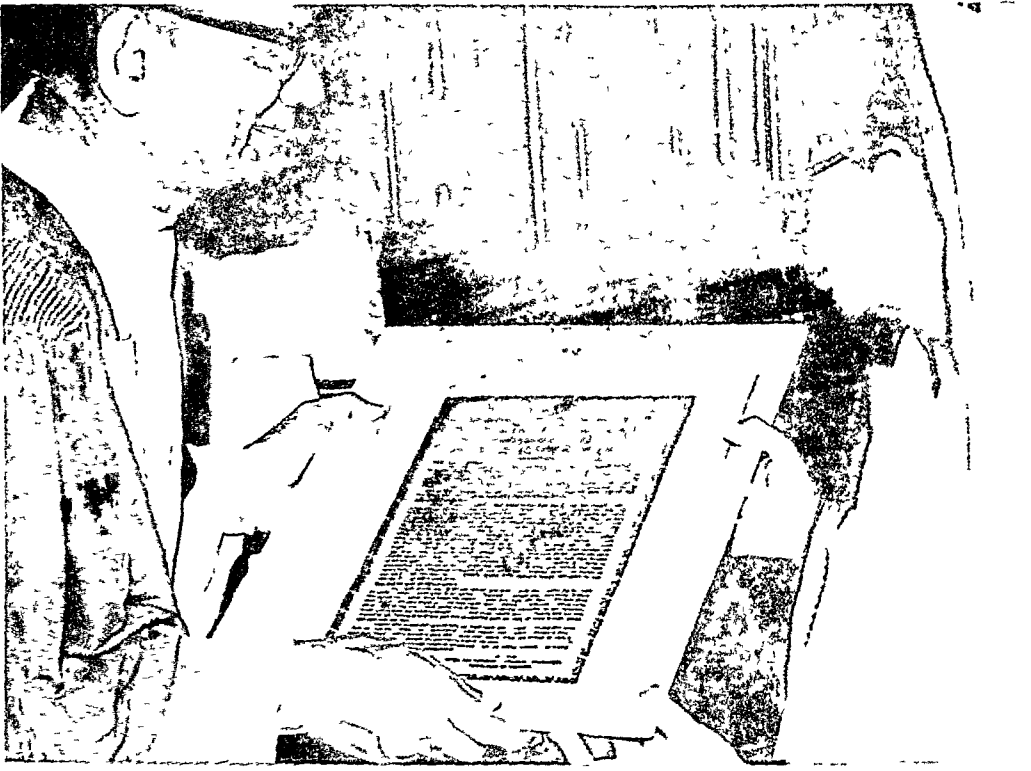
कानपुर मे मेयर पद से महादेवी वर्मा का सम्मान करते हुए रामेश्वर टाटिया
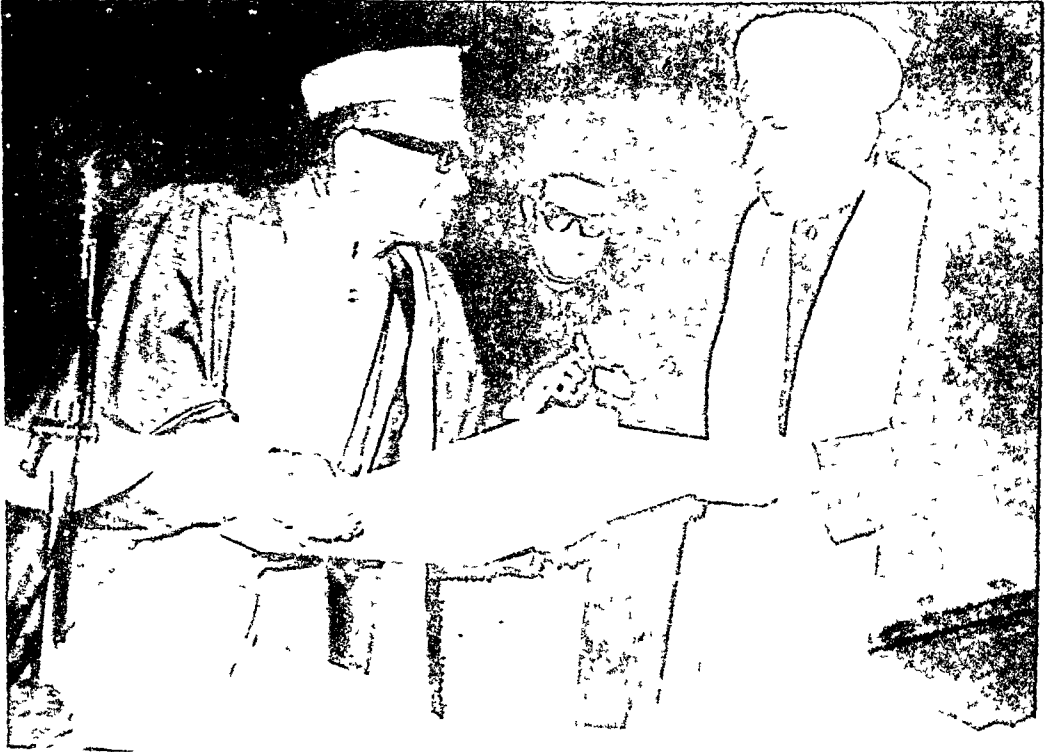
कानपुर नगर महापालिका के महापौर श्री रामेश्वर टांटिया द्वारा भारतरत्न
श्री चन्द्रशेखर वेंकटरमण का स्वागत तथा अभिनन्दन

क्या खोया क्या पाया

'क्या खोया क्या पाया' पर आयोजित विचार-गोष्ठी मे बोलते हुए लक्ष्मीनिवास बिडला

कथाकार अमृतलाल नागर 'क्या खोया क्या पाया' समर्पित करते हुए।
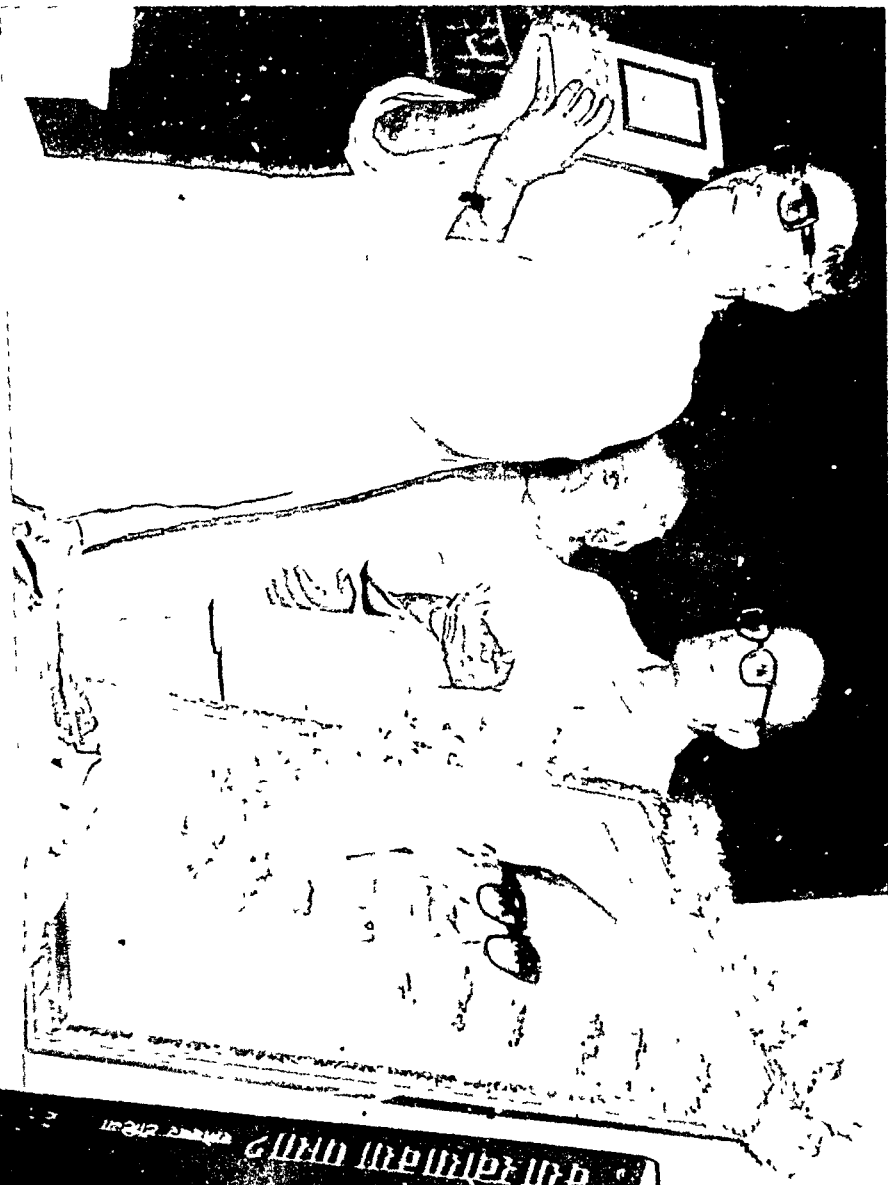
श्री अमृत लालनागर द्वारा 'क्या खोया क्या पाया' के समर्पण समारोह का एक दृश्य

रामेश्यर टाटिया रचित 'क्या खोया क्या पाया' का आवरण चित्र।
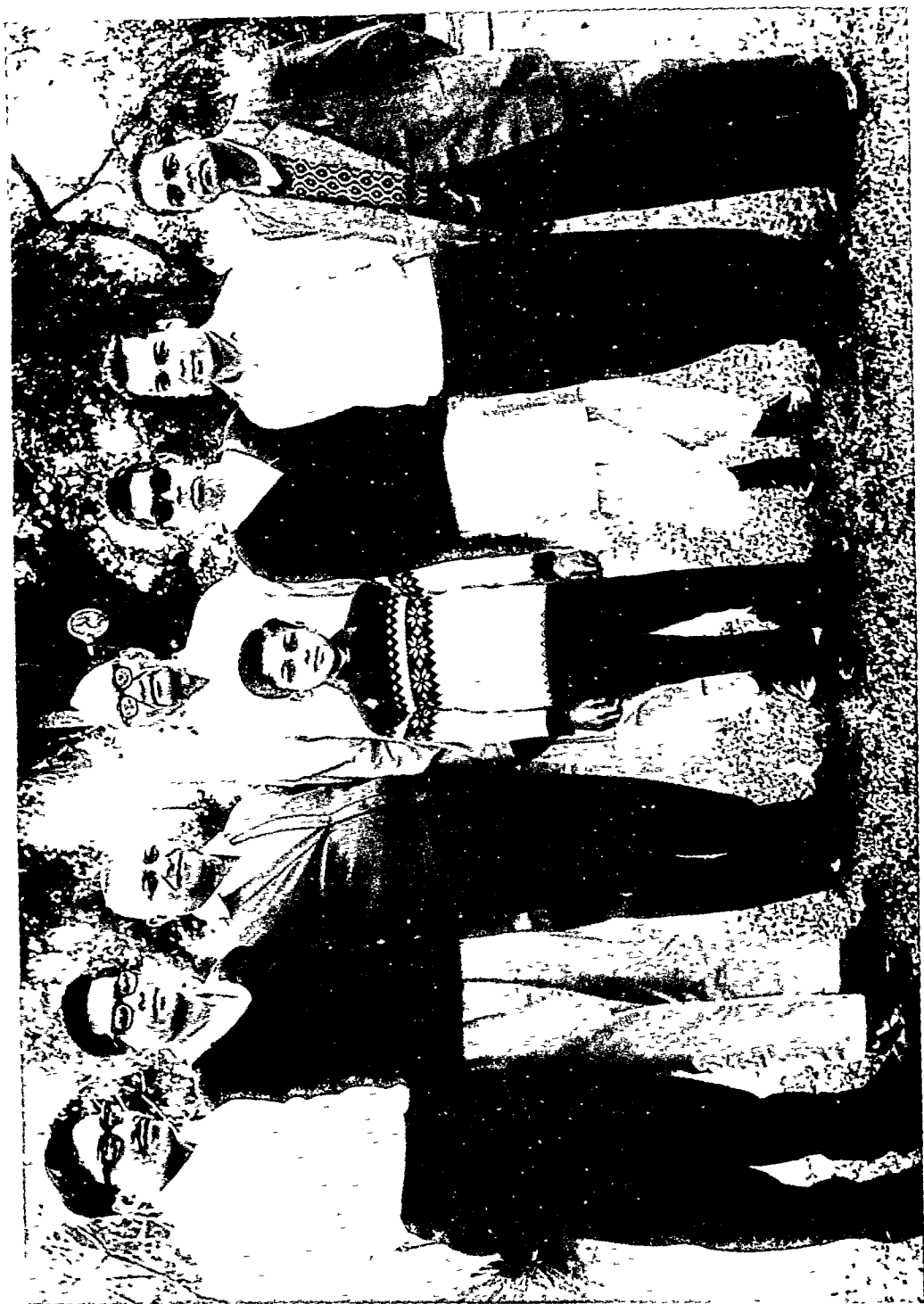
श्री रामेश्वर जी के साथ कानपुर मे—दाहिनी ओर से—श्री विनोद मोदी, श्री सम्पत दूगड, श्री रामेश्वर टाटिया, श्री आलोक चमडिया, श्री रामादास दीक्षित, श्री चिरजीलाल चमडिया, श्री बालकृष्ण गर्ग।

टाटिया शिवालय, सरदार शहर अपने शिवालय मे मोहिलो के राज्य के समय का शिला लेख अभी मौजूद है।

गणगौर का मेला सरदार शहर

गणगौर का त्यौहार

राजस्थान का लोक नृत्य

लोकनृत्य डाडिया
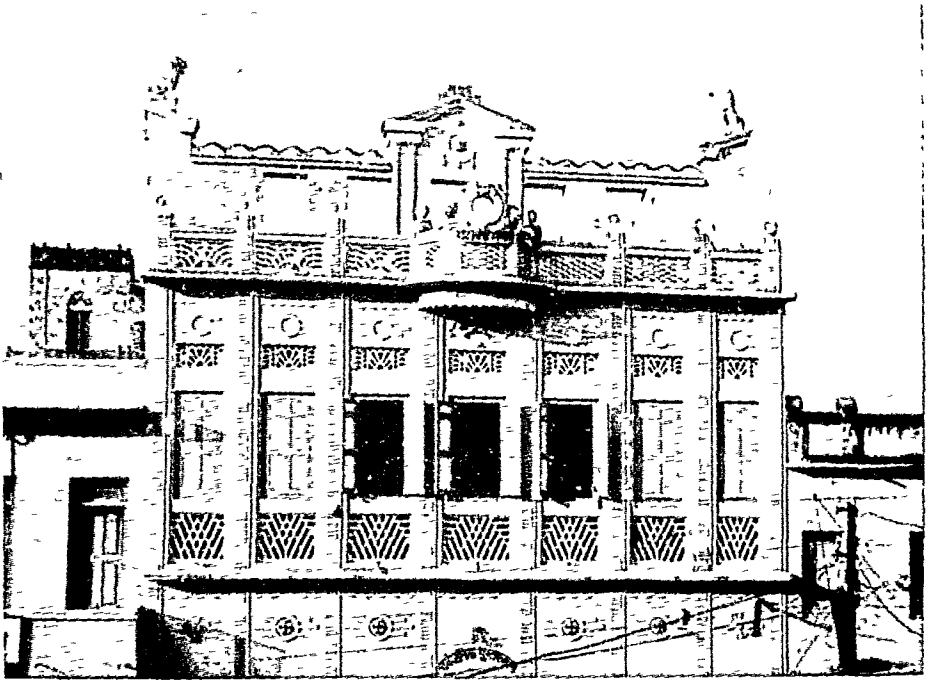
पब्लिक लाइब्रेरी, सरदार शहर

राजस्थान का बहुचर्चित अगारो पर नृत्य

तालावस्थित ग्रामीण पनघट

कुए पर गर्मी मे पानी की समस्या, घडो का जमघट, पानी भरती पनिहारिने
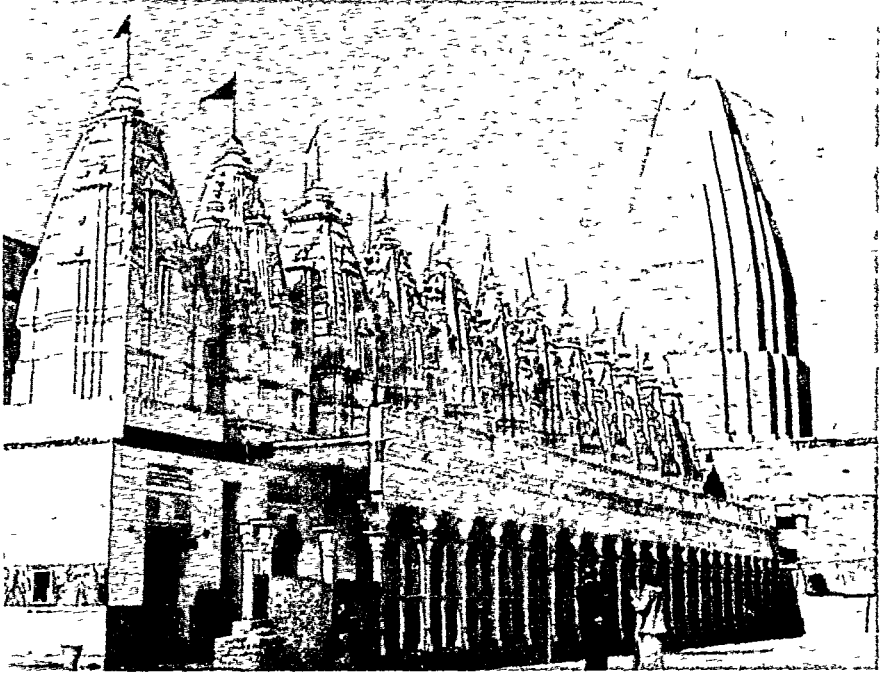
झूंझनु स्थित राणी सती मंदिर

राजस्थान का रथ

रेगिस्तान मे गाडी पर लुहार
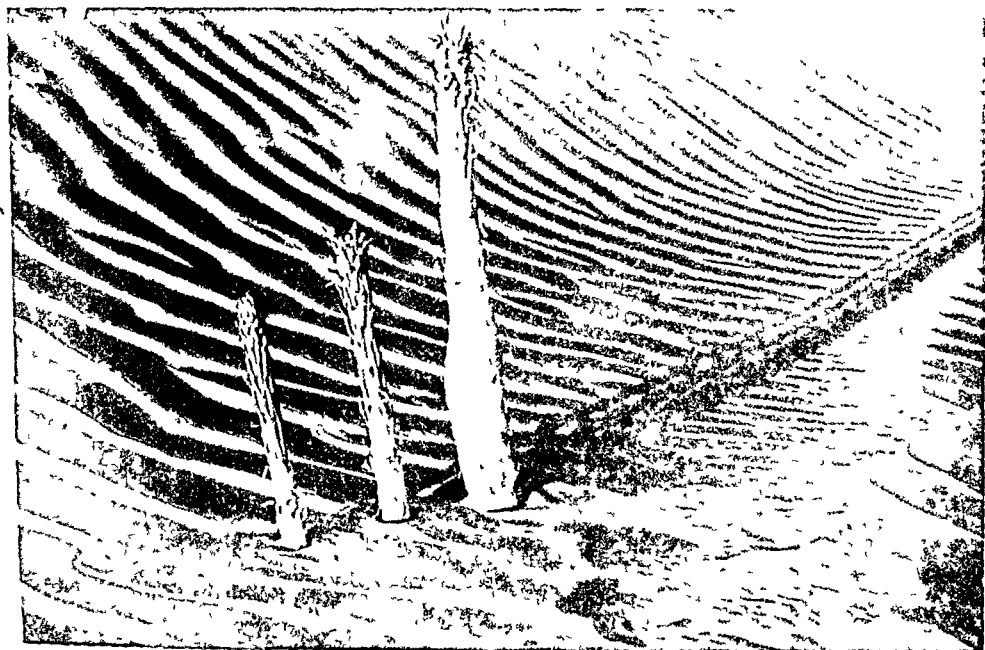
सर्दी के अन्त मे (भैपोड) मरगोज उगे हुए है।

शेयर बाजार, कलकत्ता

शेयर बाजार की सडक पर चहल-पहल कलकत्ता
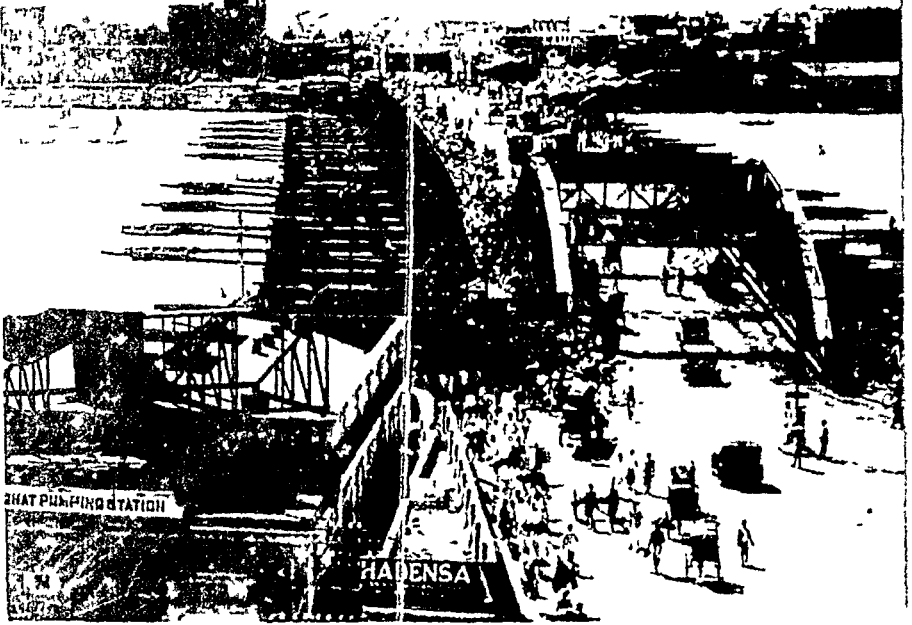
नावो पर बना हुआ पुराना हावडा पुल
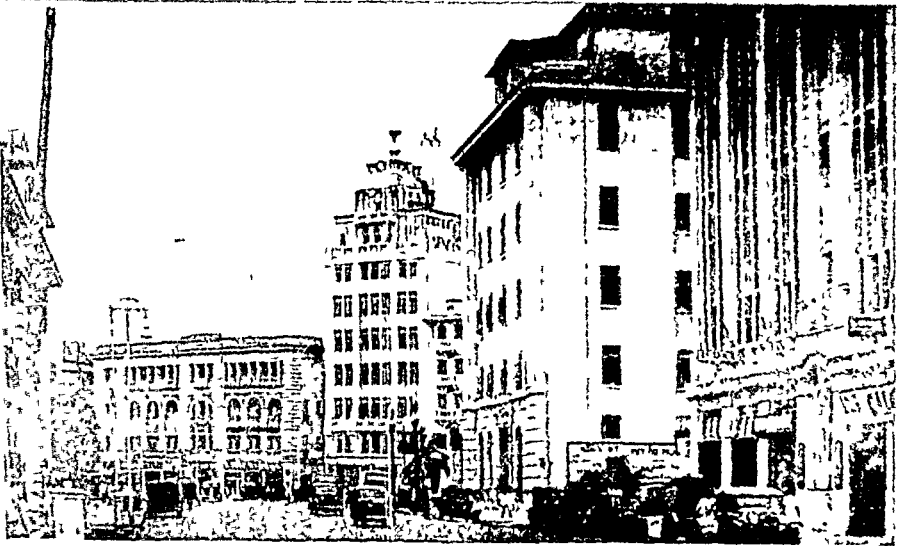
चौरगी का एक दृश्य, सामने 'टावर हाउस'

Friday 1 January 1932

১ জানুয়ারী—১৬ পৌষ শুক্রবার ১৩৩৮—অষ্টমী সন্ধ্যা ঘ ৫ ৫৩

फसली—८ पौष, १३३९ ۲۱ شعبان ۱۳۵۰ جمعہ

सम्वत—८ पौष (वदी)-शुक्रवार, १९८८

"New Year's Day"

[illegible]

Saturday 2 January 1932

डायरी की प्रति
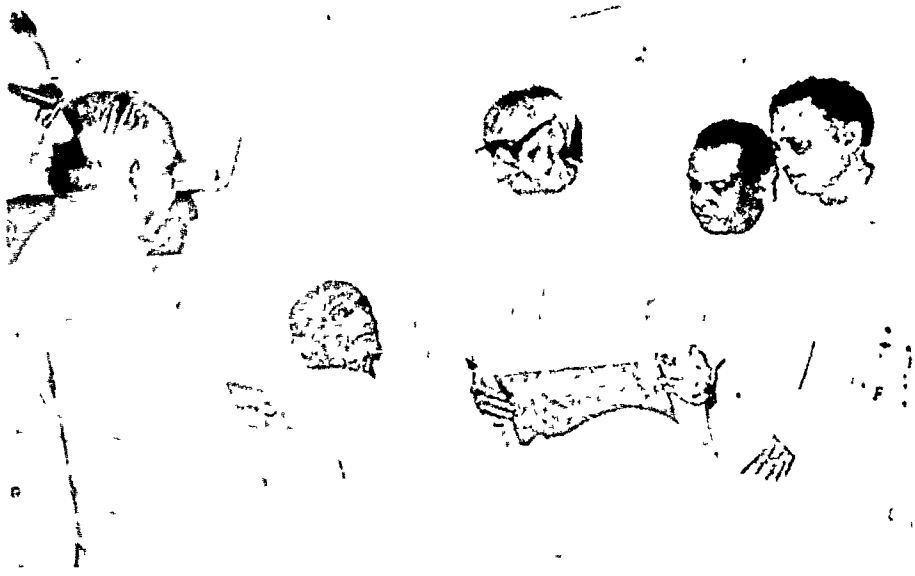
जसलोक अस्पताल बम्बई मे टाटिया जी को अभिनन्दन पत्र समर्पित करते हुये सर्वश्री भागीरथ कानोड़िया, नथमल केडिया, पुरुषोत्तम केजड़ीवाल, भंवरलाल दवे तथा गंगाशरण सिंह

भांरतरत्न श्री चन्द्रशेखर वेंकटरमण
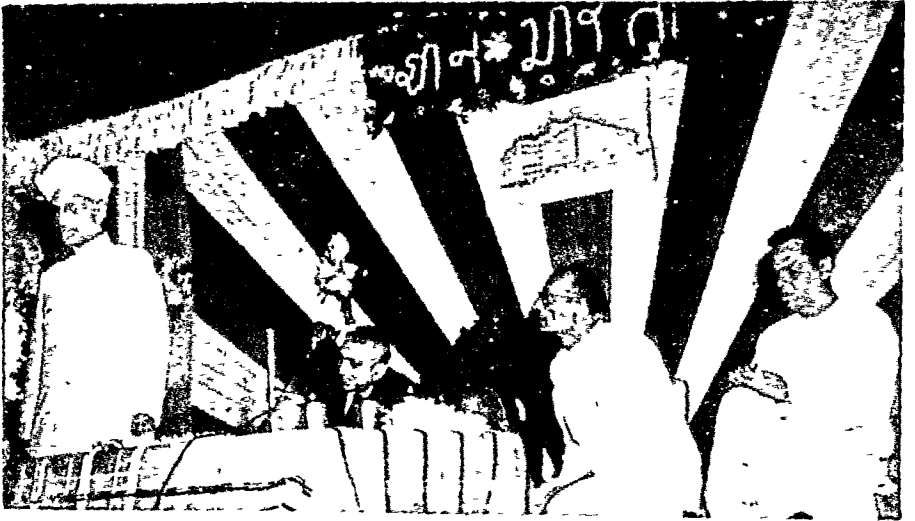
ज्ञान भारती विद्यापीठ, कलकत्ता का शिलान्यास करते हुए उपराष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन, साहू शान्तिप्रसाद जैन, टाँटिया जी अध्यक्ष तथा श्री नथमल केडिया
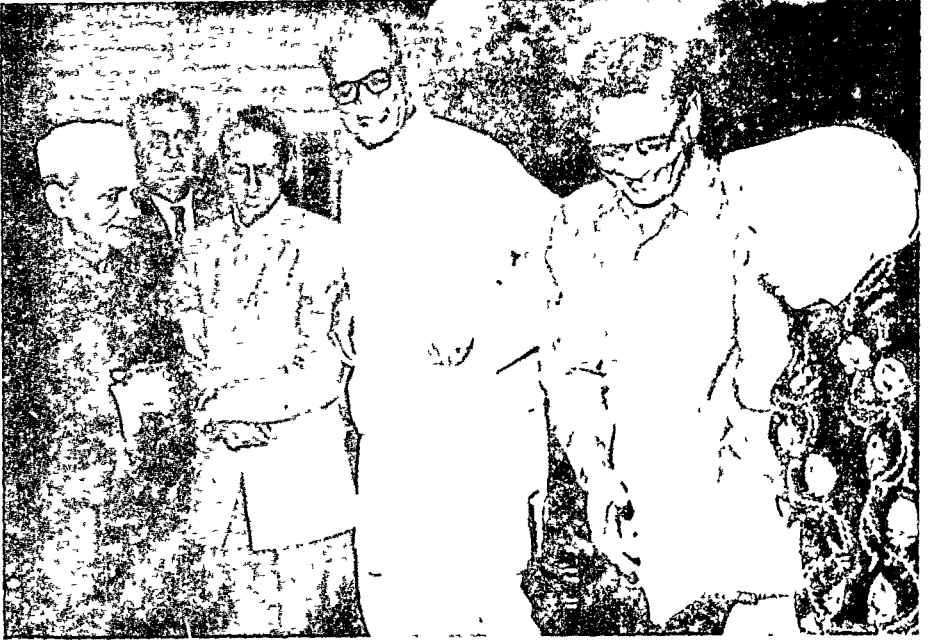
श्री लालबहादुर शास्त्री के सान्निध्य मे श्री रामेश्वर टाटिया तथा
उनके अनुज श्री सत्यनारायण और उनकी पत्नी

सीकर से दूसरी बार लोकसभा के लिए निर्वाचित